

दृष्टिकोण

कला, मानविकी एवं वाणिज्य की मानक शोध पत्रिका

प्रधान संपादक

डॉ. अश्विनी महाजन

दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

संपादक

प्रो. प्रसून दत्त सिंह

महात्मा गांधी केन्द्रीय विश्वविद्यालय, मोतिहारी

डॉ. फूल चन्द

दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

दृष्टिकोण प्रकाशन

वर्ष : 16 अंक : 6 □ नवम्बर-दिसम्बर, 2024

दृष्टिकोण

संपादक मंडल

डॉ. अरुण अग्रवाल

ट्रेन्ट विश्वविद्यालय, पीटरबरो, ओंटारियो

डॉ. दया शंकर तिवारी

दिल्ली विश्वविद्यालय

डॉ. आनंद प्रकाश तिवारी

काशी विद्यापीठ विश्वविद्यालय, वाराणसी

डॉ. प्रकाश सिन्हा

इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

डॉ. दीपक त्यागी

दीन दयाल उपाध्याय विश्वविद्यालय, गोरखपुर

डॉ. अरुण कुमार

रांची विश्वविद्यालय, रांची

डॉ. महेश कुमार सिंह

सिद्ध कान्हू विश्वविद्यालय, दुमका

डॉ. हरिश्चन्द्र अग्रहरि

अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा

डॉ. पूनम सिंह

बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

डॉ. एस. के. सिंह

पटना विश्वविद्यालय, पटना

डॉ. अनिल कुमार सिंह

जे.पी. विश्वविद्यालय, छपरा

डॉ. मिथिलेश्वर

वीर कुंअर सिंह विश्वविद्यालय, आरा

डॉ. अमर कान्त सिंह

तिलका मांझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर

डॉ. ऋतेश भारद्वाज

दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

डॉ. स्वदेश सिंह

दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

डॉ. विजय प्रताप सिंह

छत्रपति साहूजी महाराज विश्वविद्यालय, कानपुर

संपादकीय सम्पर्क:

220, पॉकेट-5, मयूर विहार, फेज-I, दिल्ली-110091

©Editorial India

Editorial India is a content development unit of Permanence Education Services (P) Ltd.

ISSN 0975-119X

नोट: पत्रिका में प्रकाशित लेखकों के विचार अपने हैं। उसके लिए पत्रिका/संपादक/संपादक मंडल को उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता। पत्रिका से सम्बंधित किसी भी विवाद के निपटारे के लिए न्याय क्षेत्र दिल्ली होगा।

सम्पादकीय

जानिए क्या है RCEP जिसका पीएम मोदी ने किया जिक्र, समझिए कैसे भारत के लिए है खतरा

4 नवंबर, 2019 के दिन आरसीईपी के तीसरे शिखर सम्मेलन में प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने यह घोषणा की कि भारत आरसीईपी से अलग हो रहा है और साथ ही साथ उन्होंने यह भी कहा कि उनकी आत्मा इस बात ही गवाही नहीं दे रही है कि भारत आरसीईपी के समझौते पर हस्ताक्षर करे। आरसीईपी सदस्य देश ही नहीं पूरी दुनिया इस घोषणा को लेकर चकित थी। लेकिन अगले पांच साल से भी कम समय में यह स्पष्ट हो गया है कि यह समझौता कुछ देशों, खासतौर पर चीन को छोड़कर शेष लगभग सभी देशों के लिए विनाशकारी था। खास तौर पर इस समझौते का भारी दुष्प्रभाव हमारे डेरी और कृषि ही नहीं तमाम उद्योगों पर भी पड़ने वाला था। उचित समय पर सही निर्णय लेकर भारत तबाही से बच गया।

आरसीईपी 16 मुल्कों के बीच में एक ऐसा प्रस्तावित समझौता था, जिसमें आसियान के 10 देश, जापान, दक्षिण कोरिया, न्यूजीलैंड, आस्ट्रेलिया, चीन और भारत शामिल थे। भारत को इस समझौते में शामिल होने के लिए मनाने की तमाम कोशिशें नाकाम हुईं और उस सम्मेलन में तो नहीं, लेकिन बाद के नवंबर 2020 के सम्मेलन में बाकी बचे देशों ने आरसीईपी समझौते पर हस्ताक्षर कर दिये।

गौरतलब है कि भारत के इस समझौते से निकलने के बावजूद आरसीईपी समूह दुनिया की 30 प्रतिशत जीडीपी और 30 प्रतिशत ही जनसंख्या का प्रतिनिधित्व करता है। उसके बाद भी भारत को कभी भी इस समूह में शामिल होने का न्यौता भी दिया गया है। इस संदर्भ में विश्व बैंक ने हाल ही में यह कहा कि भारत को आरसीईपी में शामिल होने के लिए सोचना चाहिए। ऐसे में भारत में दुबारा से यह बहस छिड़ गई है कि क्या हमें आरसीईपी में वापिस शामिल होना चाहिए अथवा नहीं? भारत में विश्व बैंक के समर्थक अर्थशास्त्रियों को शायद यह बात अच्छी लगी हो, लेकिन पिछले कुछ वर्षों के व्यापार आंकड़े कुछ और ही कहानी कह रहे हैं।

वास्तविकता तो यह है कि आरसीईपी में शामिल न होकर भी आज भी भारत चीन से बड़ी मात्रा में सामान आयात कर रहा है। 2020 के बाद से भारत ने चीन के आयात काफी तेजी से बढ़े हैं और 2020-21 में चीन से भारत के आयात 65.2 अरब डालर से बढ़ते हुए 2023-24 तक 101.7 अरब डालर तक पहुंच चुके हैं। उधर चीन को भारत सामान्यतः बहुमूल्य खनिज और कच्चा माल ही निर्यात करता रहा है, जो अधिकांशतः भारत के हित में नहीं है। भारत से चीन को जाने वाले निर्यात कम होने के कारण भारत का चीन के साथ व्यापार घाटा वर्ष 2020-21 में 44 अरब अमरीकी डॉलर से बढ़ता हुआ वर्ष 2023-24 में 85.1 अरब अमरीकी डॉलर तक पहुंच चुका है। भारत के आत्मनिर्भरता के संकल्प के सामने चीन से बढ़ते हुए आयात एक बड़ी चुनौती के रूप में उभरे हैं। समझ सकते हैं कि 2020 के बाद भारत ने तेजी से आर्थिकी संवृद्धि की है, जिसके कारण उद्योगों में कलपुर्जों की मांग भी तेजी से बढ़ी है। ऐसा माना जाता है कि भारत में चीन से आने वाले 75 प्रतिशत आयात मशीनरी, थोक दवाएं, रसायन और अन्य प्रकार के उपकरण और कलपुर्जों के हैं। यह वो सामान है, जो भारत में प्रतिस्पर्धी कीमत पर उपलब्ध नहीं है।

ऐसे में यह प्रश्न भी उठता है कि क्या आरसीईपी से बाहर रहकर चीन से आयातों की बाढ़ को रोका जा सका या नहीं? यह प्रश्न भी उठता है कि भारत का आत्मनिर्भरता का लक्ष्य प्राप्त करने में आरसीईपी से दूरी कोई काम की है भी या नहीं?

इन प्रश्नों के उत्तर खोजते हुए हमें यह समझने की कोशिश करनी होगी कि आरसीईपी में वर्तमान में शामिल अन्य मुल्कों की क्या स्थिति है? यह भी समझना होगा कि क्या आरसीईपी समझौते के अनुरूप यदि भारत ने भी आयात शुल्क घटाए होते (आरसीईपी समझौते की शर्त थी कि उसमें शामिल मुल्कों को 90 प्रतिशत वस्तुओं पर आयातों पर शुल्क घटाकर शून्य करना होगा) तो चीन से भारत के आयातों की क्या स्थिति होती?

इसको समझने के लिए हमें आरसीईपी में शामिल अन्य मुल्कों के आयातों, निर्यातों और व्यापार शेष का अध्ययन करना होगा। आरसीईपी के चालू होने के बाद से चीन के साथ आसियान देशों का व्यापार घाटा वर्ष 2020 में 81.7 बिलियन अमेरिकी डॉलर से बढ़कर 2023 में 135.6 बिलियन अमेरिकी डॉलर हो गया है। इसी तरह चीन के साथ जापान का व्यापार घाटा वर्ष 2020 में 22.5 बिलियन अमेरिकी डॉलर से बढ़कर 2023 में 41.3 बिलियन अमेरिकी डॉलर हो गया था। दक्षिण कोरिया जो दुनिया भर में आपूर्ति श्रृंखला का महत्वपूर्ण घटक माना जाता रहा है, को भी वर्ष 2024 में पहली बार चीन के साथ व्यापार घाटे का भी सामना करना पड़ सकता है। हालाँकि चीन के साथ भारत का व्यापार घाटा भी तेजी से बढ़ा है, लेकिन जानकारों का मानना है कि यदि भारत आरसीईपी में शामिल हो गया होता तो अधिकतर आयातों पर शुल्क शून्य होने के कारण यह घाटा असहनीय हो सकता था।

विश्व बैंक द्वारा भारत के आरसीईपी में शामिल होने संबंधी सुझाव के पीछे जो सबसे बड़ा तर्क दिया जाता है, वो यह है कि आरसीईपी से बाहर रह कर भारत वैश्विक मूल्य श्रृंखला (जीवीसी) से बाहर हो रहा है। आरसीईपी में शामिल होकर हम पुनः जीवीसी का हिस्सा बनकर अपनी जीडीपी में वृद्धि

कर सकते हैं। विश्व बैंक का पूरा तर्क वैश्विक मूल्य श्रृंखलाओं में एकीकरण करते हुए जीडीपी में वृद्धि से संबंधित है। हमें यह समझने की आवश्यकता है कि एक ओर, विभिन्न निर्मित उत्पादों के लिए चीन पर हमारी बढ़ती निर्भरता हमारे घरेलू उद्योग को नुकसान पहुंचा सकती है, और साथ ही चीनी सामानों पर बढ़ती निर्भरता अंततः भुगतान की बड़ी समस्याओं और वित्तीय अस्थिरता का कारण बनती है। यह एक ऐसी लागत है जो तथाकथित वैश्विक मूल्य श्रृंखलाओं के परिणामस्वरूप जीडीपी में होने वाले हल्के लाभ से कहीं अधिक बड़ी है। साथ ही कई आसियान देश जो पहले वैश्विक आपूर्ति श्रृंखला का हिस्सा थे, अब निवल आयातक बन चुके हैं, इस बात की दूर-दूर तक संभावना नहीं है कि भारत आरसीईपी में शामिल होकर वैश्विक आपूर्ति श्रृंखला का हिस्सा बन सकेगा।

हमें समझने की जरूरत है कि वैश्विक मूल्य श्रृंखला आम तौर पर चीन केंद्रित है, और अन्य सदस्य देशों की इसमें कोई खास भागीदारी नहीं है। इससे अन्य देश कमजोर स्थिति में आ जाते हैं। हमें यह भी समझना होगा कि चीन ने विनिर्माण में बहुत बड़ी क्षमता का निर्माण किया हुआ है। इससे चीन के लिए वैश्विक बाजारों में सभी प्रकार के उत्पादों को डंप करना संभव हो जाता है। इस डंपिंग ने अधिकांश देशों में विनिर्माण के लिए तबाही मचा दी है। यहां तक कि वे देश भी, जो पहले जीवीसी का हिस्सा हुआ करते थे, चीन के सामने अपनी जमीन खो रहे हैं। इस मामले में दक्षिण कोरिया सहित कई दक्षिण पूर्व एशियाई देश इसके जीवंत उदाहरण हैं।

यह भी समझने की जरूरत है कि आयात शुल्कों को कम करना स्वचलित रूप से किसी देश को वैश्विक मूल्य श्रृंखला का हिस्सा नहीं बना सकता, उसके लिए कई अन्य शर्तों को पूरा करना पड़ेगा। जीवीसी. पर शोधकर्ताओं का कहना है कि मूल्य श्रृंखला में सफल भागीदारी देश की आर्थिक ताकत, घरेलू फर्मों की अवशोषण क्षमता और घरेलू स्तर पर सक्षम वातावरण पर निर्भर करती है। सच्चाई यह है कि भूमण्डलीकरण के दौर में औद्योगिक नीति की अनदेखी के चलते, जीवीसी का लाभ उठाने में हमारी अर्थव्यवस्था तैयार नहीं। ऐसे में संभव है कि मूल्य श्रृंखला में हम मूल्य श्रृंखला में निम्न प्रौद्योगिकी के उत्पाद बनाने वाले देश ही बन कर रह सकते हैं।

देश आयात शुल्कों को उचित मात्रा में बढ़ाकर आयातों पर विभिन्न प्रकार के अंकुश लगाते हुए, प्रोडक्शन लिंकड इंसेंटिव जैसी स्कीमों के साथ आत्मनिर्भरता के लक्ष्य की ओर आगे बढ़ रहा है, ऐसे में आरसीईपी जैसे समझौते की सोच अर्थव्यवस्था को पटरी से उतार सकती है। हमें वैश्विक मूल्य श्रृंखला जैसे असत्यपूर्ण तर्कों के भुलावे में न आते हुए आरसीईपी में शामिल शेष देशों के अनुभवों के आलोक में आत्मनिर्भर भारत के अपने लक्ष्य की ओर तेजी से बढ़ने हेतु उपयुक्त औद्योगिक नीति के निर्माण की ओर आगे बढ़ने चाहिए।

संपादक

इस अंक में

पर्यावरण अवनयन: एक विस्तृत विश्लेषण—डॉ० नीलम कुमारी	1
18वें लोकसभा चुनावों के संदर्भ में सोशल मीडिया की बढ़ती भूमिका का विश्लेषणात्मक अध्ययन—रेखा यादव	4
योग में चित्त का स्वरूप—लै० डॉ० भावना टिमल	8
सामाजिक न्याय और अंबेडकर की दृष्टि: मोदी सरकार के सबका साथ, सबका विकास अभियान का प्रभाव—बिनय कुमार उपाध्याय	11
श्रीमद्भगवद्गीता में अनुस्यूत कर्मयोग: एक समीक्षात्मक अध्ययन—डॉ० भैरवी	16
भारतीय शासन के विभिन्न रूपों का एकत्रीकरण: एक विवेचना—डॉ० क्रान्ति प्रकाश	19
श्री स्वामी नारायण: जीवन एवं दर्शन—डॉ० अनुराधा पाठक; डॉ० रमेश कुमार विश्वकर्मा	22
भारत में दलित विमर्श: एक अवलोकन—महंथ माँझी	28
विनोबा भावे की तीसरी शक्ति की समसामयिक प्रासंगिकता—राजकुमार	34
गाँधी दर्शन में रचनात्मक कार्यक्रम का महत्त्व: एक अवलोकन—अनुराग प्रताप सिंह	38
न्यायसंगत वितरण का सिद्धांत: एक अवलोकन—डॉ० सुलेखा कुमारी	46
महात्मा गाँधी तथा खादी ग्राम उद्योग विशेषत: बिहार राज्य के संदर्भ में: एक अध्ययन—डॉ० अनिल शर्मा	51
महात्मा गाँधी और महिलाओं का उत्थान: एक ऐतिहासिक अध्ययन—डॉ० आशीष कुमार ठाकुर	56
व्यक्तित्व का सिद्धांत: एक सामान्य अवलोकन—डॉ० ददन राम	63
बाल अपराध के कारण तथा निवारण: एक विश्लेषणात्मक अध्ययन—अनुजा कुमारी	70
आधुनिक गृहों में फर्नीचर की प्रभावशाली व्यवस्था: एक अध्ययन—पूनम कुमारी	77
महात्मा गाँधी का असहयोग आन्दोलन विशेषत: बिहार के संदर्भ में: एक अध्ययन—किशोर कुमार पासवान	81
संसद सदस्य स्थानीय क्षेत्र विकास योजना में धनराशि प्रयोग में पारदर्शिता: हरियाणा राज्य का एक अध्ययन—दिनेश; राजेश कुमार कुण्डू	86
नागर शैली में बने प्राचीन गुप्तकालीन मन्दिरों की संरचना का समीक्षात्मक अध्ययन—ज्योति; डॉ० यशपाल सिंह; डॉ० विवेक दांगी	90
प्राथमिक शाला के पर्यावरण पाठ्यपुस्तक में निहित अधिगम प्रतिफल का NEP 2020 के संदर्भ में अध्ययन—डॉ० हेमन्त कुमार खटकर	96
प्रेमचंद के उपन्यासों में सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक पृष्ठभूमि—सुनील कुमार	98
जनजातीय समाजशास्त्र—डॉ० शशि गुप्ता	103
कश्मीर पर डॉ० भीमराव अम्बेडकर के विचार: अनुच्छेद 370 के संदर्भ में—प्रदीप कुमार	105
वैदिक काल में नारी शिक्षा: एक समीक्षा—डॉ० रंजीत कुमार	107
मौर्यकालीन शासन: प्रशासन के विविध पक्ष—डॉ० सुप्रिया कुमारी	112
ब्रिटिश शासन के तहत भारत में प्रशासनिक संगठन: एक समीक्षा—डॉ० अरविन्द कुमार	115
बिहार में अविकसित वर्गों की राजनीतिक भागीदारी और सशक्तिकरण की समीक्षा: एक समग्र दृष्टिकोण—आफजल इकबाल	119
राजस्थान राज्य के आर्थिक विकास में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश का योगदान—भगवान सहाय सैनी	123
भारतीय साहित्य में किसान पक्षधरता एवं आंदोलन—डॉ० नूरुद्दीन मुहम्मद परवेज	127
धर्मवीर भारती कृत उपन्यास 'गुनाहों का देवता' एवं 'सूरज का सातवां घोड़ा': एक अनुशीलन—कृष्ण देव	131
गर्भवती महिलाओं में स्वास्थ्य पोषण: एक अध्ययन—वन्दना सिंह; डॉ० सुषमा श्रीवास्तव	134
किशोरावस्था में मादक पदार्थों का बढ़ता प्रचलन: कारण और प्रभाव का अध्ययन—प्रीती सिंह; डॉ० सुषमा श्रीवास्तव	137
बालकों का बौद्धिक विकास पर पारिवारिक एवं विद्यालयी वातावरण के प्रभाव का अध्ययन—नीतू सिंह; डॉ० सुषमा श्रीवास्तव	141
वाराणसी साड़ी वस्त्र उद्योग में महिला श्रमिक और उनके स्वास्थ्य से सम्बन्धित समस्याएँ—लक्ष्मी सिंह; डॉ० सुषमा श्रीवास्तव	145
भारतीय इतिहास में नारी शिक्षा—आरती राय; डॉ० पी० पी० गोस्वामी	148
भोटिया जनजाति एवं आधुनिकीकरण—डॉ० अनीता बिष्ट; श्री नरेश सिंह ग्वाल	151
भारत—चीन संबंध, एवं सीमा विवाद—डॉ० संतोष कुमार सिंह	154

“एक जिला एक उत्पाद” (ODOP) योजना: सहारनपुर के सन्दर्भ में विश्लेषण—डॉ० पूजा जैन; डॉ० देवेन्द्र नाथ दास	157
बाढ़ आपदाओं का दुष्प्रभाव एवं प्रबंधन: महाराजगंज जनपद के सन्दर्भ में—दिवाकर सिंह; प्रो० रेखा विश्वकर्मा	162
म्यांमार की सामरिक स्थिति के परिप्रेक्ष्य में भारत-म्यांमार संबंध—डॉ० पूनम सिंह	167
गौरेला-पेण्ड्रा-मरवाही जिला के भैना जनजाति की शैक्षणिक समस्याओं का अध्ययन—लोक सिंह	170
घरेलू महिलाओं में रसोई बागवानी के प्रति जागरूकता का अध्ययन—प्रो० (डॉ०) शबनम तिवारी; कुमारी अनुपमा	175
स्वराज पार्टी में एस. सत्यामूर्ति की भूमिका—मोना कुमारी	179
गांधी और अम्बेडकर के साहित्य में दलित विमर्श: एक विश्लेषण—डॉ० उपासना	183
भोगवादी आत्मकेन्द्रित जीवन जीने का सच और कहानी ‘कब्र’—प्रोफेसर मनोज कुमार पाण्डेय	186
बुंदेली लोककथाओं में नारी विमर्श—डॉ० तानाबाई पाटिल	190
डॉ. भीमराव आंबेडकर के आर्थिक चिंतन का विश्लेषणात्मक अध्ययन—नवल किशोर बैठा	198
प्रथम स्वतंत्रता आंदोलन और दिल्ली उर्दू अखबार की भूमिका—विष्णु प्रभाकर उपाध्याय	202
चिंता व तनाव नियंत्रण में संगीत चिकित्सा की भूमिका—रुचिका श्रीवास्तव; डॉ० निशा कुमारी	207
झारखंड में शैक्षणिक स्थिति और जनजातियों समुदाय—डॉ० गौतम रंजन दास	210
भारत में सामाजिक न्याय प्राप्त करने के साधन और बाबासाहेब डॉ० अंबेडकर—डॉ० अनीता सुमन	214
सुभाष चंद्र बोस एवं गांधी जी के वैचारिक मतभेद और 1939 कांग्रेस का अध्यक्षीय चुनाव—गोविन्द कुमार	218
गांधी दर्शन की साम्प्रतिक उपादेयता: एक समीक्षात्मक अध्ययन—दीपिका कुमारी	221
शैक्षिक नीतिशास्त्र का स्वरूप और विचार—रसीदा खातुन	226
हाड़ौती क्षेत्र में नहरी तंत्र का विश्लेषण—देवेन्द्र मीना; डॉ० एल.सी. अग्रवाल	229
भारत एवं दक्षिणी पूर्वी एशियाई देशों के सामाजिक-सांस्कृतिक समन्वय सम्बन्धी अभिलेख—डॉ० सुमन कुमारी	233
मिथि मटेट मरुचि से गदरुत गरी उष्टी घात मिथि नी : ननघा उ गदरुत—डा० मुधनिरुत वेंत	236
हरियाणा की लोक संस्कृति के संवाहक—डॉ० सौरभ वर्मा	239
सूचना प्रौद्योगिकी: महिला सशक्तिकरण का सशक्त माध्यम—डॉ० श्वेता	242
रामानुज दर्शन में ईश्वर—एक अनुशीलन—रंजना मिश्रा	246
भारतीय प्राचीन विज्ञान का इतिहास: एक दृष्टि—अखिलेश कुमार द्विवेदी	248
प्राकृतिक आपदा, प्रबंधन व फसल संरक्षण संबंधित सरकारी योजनायें: जौनपुर जनपद के विशेष संदर्भ में—अनुपम कुमार यादव	251
परिवार के समर्थन की भूमिका: स्कूल जाने वाले बच्चों में सर्जनात्मकता को बढ़ावा देने पर एक समीक्षा—सोनी कुमारी	254
समयसंकलना अने कथनकेन्द्रनी कलात्मक गूँथणी: ‘ताकुं: बापदादा पारीनुं’—आशका देवपुरारी	258
बुंदेली लोकगाथाओं में नारी विमर्श—डॉ० देवेन्द्र शुक्ल	261
ई-पुस्तकालय और ई-पुस्तकों और ऑडियो-पुस्तकों की बढ़ती लोकप्रियता: एक अवलोकन—डॉ० अंजनी सराफ	270
‘तत्त्वमसि’ ऐक नदी नी परिक्रमा—पाधेली किरणभेन जयंतिलाल	274
भारत-अमेरिका संबंध: हिन्द प्रशांत-क्षेत्र के संदर्भ में—पवन कुमार	276
‘तिरस्कृत’ आत्मकथा का समाजशास्त्रीय अध्ययन—डॉ० अब्दुल हासिम	279
“भारत में स्वतंत्र एवं निष्पक्ष चुनाव व गंभीर समस्याओं का एक अध्ययन”—डॉ० जितेन्द्र कुमार	282
भक्ति साहित्य की प्रासंगिकता—डॉ० चंद्रकांत बापूराव जोगदंड	285
“विपणन रणनीतियों के विकास में संचालन अनुसंधान तकनीकों की उपयोगिता : एक व्यावहारिक अध्ययन”—भुवनेश कुमार शर्मा	287
बिटकॉइन से केंद्रीय डिजिटल मुद्रा तक: वैश्विक अर्थव्यवस्था में परिवर्तन—डॉ० नंद कुमार भोई	293
भारत की प्रचलित लोक प्रदर्शकारी कलाएँ—प्रतिभा कुमारी	299
महिला शिक्षा की आवश्यकता—विनीता कुमारी	302
हिन्दी साहित्य में संस्मरणों का विकासक्रम—डॉ० पूनम शर्मा	304
भारत के भाषा परिवार और संपर्क भाषा हिंदी—डॉ० जितेन्द्र कुमार सिंह	307

सहभागी शासन- भारत के संदर्भ में-प्रोफेसर (डॉ०) अनुपम शर्मा	311
आचार्य गौडपाद की द्वन्द्व-न्यायात्मक तर्कणा-पद्धति-डॉ० संजीव कुमार सुधांशु	316
रमणिका गुप्ता की कहानियों में अभिव्यक्त सामाजिक यथार्थ-डॉ० रावेन्द्र कुमार साहू	319
वैदिक कालीन उपलब्धियां एवं रथ का इतिहास-रश्मि पान्डे; डॉ० संजय कुमार मंजुल	322
वर्तमान समय में ग्रामीण महिलाओं की सामाजिक आर्थिक स्थिति-कुमारी रिकी; डॉ० सुषमा श्रीवास्तव	325
वैदिक ग्रंथों में पर्यावरणीय चिंतन-डॉ० सृष्टि गर्ग	328
ऐथेलेटिक्स खिलाड़ियों की शारीरिक क्षमता पर योग के प्रभाव का अध्ययन-भरत सिंह; डॉ० ममता कुमावत	331
राष्ट्रीय आंदोलन में बिहार के सत्याग्रहियों की भूमिका: एक अध्ययन-डॉ० आलोक रंजन	337
झारखंड की जनजातीय महिलाओं के प्रजनन स्वास्थ्य एवं स्वास्थ्य जागरूकता का अध्ययन-डॉ० विभा राय	340
“स्वतंत्रता संग्राम के दौरान बिहार के जनजागरण में अनुग्रह नारायण सिंह की भूमिका”-डॉ० दिलीप कुमार सिंह; अभिमन्यु कुमार	345
रूस-यूक्रेन संघर्ष में नाटो की भूमिका-डॉ० बेचु प्रसाद सिंह; रम्भा कुमारी	349
भारतीय ज्ञान परम्परा के स्रोत-डॉ० सुनील यशवंत व्यवहारे	354
मनुस्मृति और श्रीमद्भगवद्गीता में त्रिगुणों की तुलना एवं दैनिक जीवन में अनुप्रयोग-पटेल दिपिकाबेन बबाभाई	357
जयशंकर प्रसाद के स्कन्दगुप्त नाटक में अनंतदेवी का चरित्रांकन-डॉ० सविता	360
भारत में कौशल विकास और व्यावसायिक शिक्षा: एक समकालीन विश्लेषण-कामेश्वर प्रसाद; डॉ० शिव शंकर प्रसाद	362
‘अकेली’ तथा ‘मजबूरी’ कहानी में जिजीविषा को तलाशती नारी-डॉ० रजिंदर कौर	366
लैंगिक समानता एवं राजनीतिक न्याय-डॉ० श्याम लाल निराला	369
भक्तिकाल की मुख्य विशेषताएँ: एक विश्लेषणात्मक अध्ययन-डॉ० सोनिया दहिया	374
समकालीन हिंदी कविताओं में नारी चेतना के स्वर-प्रोफेसर इफ्फत असगर	378
साहित्य के सामाजिक प्रयोजन का प्रश्न और लघुपत्रिका आंदोलन-डॉ० उपेन्द्र प्रसाद	383
दुष्यन्त कुमार के कथा साहित्य का सर्वेक्षण-डॉ० अभिनय कुमार	387
प्रेमचंद की गोदान में ग्रामीण जीवन का यथार्थवादी चित्रण-डॉ० रीना देवी	391
आधुनिक संस्कृत साहित्य में जैन मनीषियों का प्रदान-डॉ० जागृति के० शाह	394
अरपल्ली भानवीओना सांस्कृतिक मुल्यांन उद्गाहर करती अनोभी कृति-लखतपुरी केशपुरी गौस्वामी; डॉ. राजेश त्रिवेदी, शंभुश्वर कोलेज	399
उत्तर प्रदेश के बलिया जिले में पंचायती राज व्यवस्था में महिलाओं की सहभागिता-ज्ञान प्रकाश	399
महिलाओं पर बढ़ते घरेलू हिंसा का समाशास्त्रीय अध्ययन-डॉ० चन्द्र प्रकाश	402
महिलाओं के सशक्तिकरण में शिक्षा का योगदान-राम प्रताप चौरसिया	405
मौर्य कालीन विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी का विकास-दिलीप कुमार	407
सात निश्चय योजना और सुशासन: जमीनी स्तर पर प्रभाव का मूल्यांकन (बिहार राज्य के संदर्भ में)-डॉ० प्रवीण कुमार झा	409
कृष्णा सोबती के उपन्यासों में स्त्री-अस्मिता और सशक्तीकरण: समकालीन सामाजिक संदर्भ-डॉ० गीता	412
कमलेश्वर की कहानियों में सामाजिक यथार्थ: एक दृष्टिपात-प्रदीप कुमार यादव; डॉ० सुषमा गौडियाल	416
‘डॉ. रांगेय राघव और उनका साहित्य सृजन: एक दृष्टि’-डॉ. चन्द्रकान्ता पिलवाल	421
प्रवासी भारतीय क्रांतिकारी आंदोलन में भीकाजी कामा का प्रभाव-बिजेन्द्र कुमार श्रीवास्तव	424
ब्रिटिश शासन के अधीन कृषि का व्यावसायीकरण तथा स्वतंत्र भारत में भारतीय कृषक समाज एवं उसकी आर्थिक विरासत पर इसका प्रभाव: एक ऐतिहासिक-विश्लेषणात्मक अध्ययन (Commercialization of Agriculture under British Rule and Its Impact on Indian Peasantry and the Economic Legacy in Independent India)-अनुपमा सिंह	427

पर्यावरण अवनयन: एक विस्तृत विश्लेषण

डॉ० नीलम कुमारी

एसोसिएट प्रोफेसर, भूगोल विभाग, आर.आर.पी. कॉलेज, भेड़गाँवा, मसौढ़ी, पटना

शोध - सार

किसी देश के समाजिक, धार्मिक एवं प्राकृतिक क्षरण का तात्पर्य यह है की उसकी गुणवत्ता का हास होना अर्थात देश के इन विशिष्ट विषयों का भी हास होना सामान्यतः यह कहा जा सकता है कि क्षरण एक प्रकार से देश के संसाधनों का अवरोधन होना है जिसके द्वारा देश के विकास की गति में कमी आ जाती है। यदि प्राकृतिक या पर्यावरणीय क्षरण की बात करे तो यह किसी भी देश के लिए घातक और विनाशकारी सिद्ध होता है पूर्व प्रदत्त संसाधन किसी भी देश के भौगोलिक, आर्थिक, सामाजिक स्थितियों के अनुपात को धारण करते हुए स्थापित रहती है। अर्थात् यह एक दूसरे के पूरक है इन संसाधनों में किसी भी एक का पतन या क्षरण करने पर दूसरे संसाधनों पर स्वतः प्रभाव पता चल जाता है अतः यह कहा जा सकता है कि किसी भी प्रकार का क्षरण किसी देश प्रदेश क्षेत्र के लिए अत्यंत हानिकारक होता है।

इस प्रकार के क्षरण प्राकृतिक और मानवीय दोनों ही हो सकते हैं यहाँ प्राकृतिक क्षरण कम मात्रा में हानिकारक होता है। वहीं मानवीय क्षरण मात्रा में सर्व व्यापक एवं अत्यधिक है इन बिंदुओं पर हमें गंभीरता से विचार करना होगा, और इन विषयों पर एक निर्णायक भूमिका निर्वाहन करनी होगी यदि हम इन विषयों पर आज गंभीर नहीं होते हैं तो हमारी आने वाली पीढ़ियाँ आर्थात् भविष्य को अत्यधिक नुकसान उठाना पड़ेगा और उन्हें अंधकार का सामना करना पड़ सकता है। अतः हमें आज से इस विसंगति को चिंतन के माध्यम से दूर करने का प्रयास करना होगा।

मूल शब्द:- पर्यावरण, अवनयन, प्रक्रिया, संसाधन, भौतिक, प्राकृतिक, प्रदूषण

प्रस्तावना

किसी भी देश या क्षेत्र के भौतिक के एकल या संघटको में उत्पन्न क्षरणावस्था को पर्यावरण अवनयन या पर्यावरण अवक्रमण कहते हैं। पर्यावरण अवनयन का अर्थ है पर्यावरण का भौतिक संघटको में जैविक प्रक्रमों खासकर मनुष्य की क्रियाओं द्वारा इस सीमा तक हास एवं अवक्रमण हो जाना कि उसे पर्यावरण की स्वतः नियामक क्रियाविधि होमियों स्टैटिक क्रिया विधि द्वारा भी सही नहीं किया जा सकता है।

दूसरे शब्दों में पर्यावरण अवनयन का अर्थ होता है मनुष्य के क्रियाकलापों द्वारा पर्यावरण के संघटको की आधारभूत संरचना में प्रतिकूल परिवर्तनों के कारण पर्यावरण की गुणवत्ता में इस सीमा तक हास होना की इन प्रतिकूल परिवर्तनों का जैविक समुदाय तथा मानव समाज पर गहरा प्रतिकूल प्रभाव पड़ने लगता है। पर्यावरण अवनयन के कारण पारिस्थितिकी तंत्र तथा पारिस्थितिकी विविधता में कमी होने से पारिस्थितिकी एवं पर्यावरणीय असंतुलन उत्पन्न हो जाता है। पर्यावरण अवनयन एवं पर्यावरण प्रदूषण सामान्यतः जन साधारण के लिए एक ही जैसे प्रतीत होते हैं। क्योंकि दोनों का सम्बंध पर्यावरण की गुणवत्ता में हास से होता है। परंतु इनके कारकों तथा इनके प्रभावों के क्षेत्र एवं मापक के आधार पर इनमें अंतर स्थापित किया जा सकता है। विद्वानों की दृष्टि से यह देखा जाय तो पर्यावरण प्रदूषण मात्र मनुष्यों के कार्यों के द्वारा स्थानीय स्तर पर प्रतिस्थापित करने की गुणवत्ता में हास जबकि पर्यावरण अवनयन का तात्पर्य मनुष्य के कार्यों तथा प्राकृतिक उपक्रमों द्वारा स्थानीय प्रादेशिक एवं विश्व स्तरों पर पर्यावरण की गुणवत्ता की हास तथा कमी आना है।

पर्यावरण प्रदूषण तथा अवनयन में पर्यावरण विभिन्न संघटको में होने वाली अव्यवस्था एवं असंतुलन के आधार पर अंतर को और भी स्पष्ट किया जा सकता है पर्यावरण प्रदूषण के अंतर्गत मानव क्रिया के द्वारा किसी एक संघटक या किसी एक वर्ग के जीवों पर होने वाले क्षरण या कमी पर्यावरण प्रदूषण का एक उदाहरण है। वहीं पर्यावरण अवनयन विभिन्न संघटको तथा कई वर्गों के प्राणियों पर होने वाली विसंगति को कहते हैं यह अवनयन मानव क्रिया कलापो तथा प्राकृतिक कारकों के द्वारा संचालित होती है।

सामान्यतः पर्यावरण अवनयन एक व्यापक परिभाषिक शब्द है जिसका अर्थ है, मनुष्य की क्रिया कलापो द्वारा पारिस्थितिकी तंत्र की स्थिरता तथा पारिस्थितिक संतुलन में विभिन्न परिणामों वाली अवस्था एवं संतुलन उत्पन्न हो जाना। जब पर्यावरण अवनयन नाजुक सीमा से इतना अधिक हो जाता है कि वो विभिन्न जीवों के लिए सामान्य रूप से तथा मनुष्य के लिए मुख्य रूप से घातक एवं जानलेवा हो जाता है तो उससे पर्यावरण प्रदूषण कहते हैं। स्पष्ट है कि प्रदूषण पर्यावरण अवनयन की अंतिम सीमा है।

यदि पर्यावरण प्रक्रिया या पराक्रम के विषय में बात करते हैं तो यह प्राकृतिक तथा मानवजनित दोनों ही हैं परंतु मानवजनित पराक्रमों द्वारा पर्यावरण में होने वाले अवनयन अधिक व्यापक तथा अधिक परिणाम वाला होता है। निम्न बिंदुओं के माध्यम से यह स्पष्ट हो जाता है कि मनुष्य अवनयन में किस प्रकार सर्वाधिक महत्वपूर्ण भूमिका करता है।

- स्थानीय प्राकृतिक वनस्पतियों का पूर्णतः या आंशिक रूप से विनाश करके।

- स्थान विशेष की वनस्पतियों की मौलिक प्रजातियों का समूह विनाश करके।
- प्राकृतिक मौलिक वनस्पतियों को उसके प्रजातियों के द्वारा प्रतिस्थापित करके।
- किसी स्थान में जंतुओं की मौलिक प्रजातियों को अन्य बाहरी प्रजातियों द्वारा प्रतिस्थापित करके।
- किसी भी क्षेत्र में विदेशी पौधों या जंतुओं या दोनों का प्रवेश कराके।
- प्राकृतिक पर्यावरण के किसी एक या कई संगठनों में परिवर्तन करके यथा: भूमि उपयोग में परिवर्तन वन काटकर खेती करना।
- क्षेत्र विशेष में रासायनिक खादों, कीटनाशक एवं नाशी रसायनों के छिड़काव से जहरीले रासायनिक तत्वों का प्रवेश कराके।
- औद्योगिक एवं नगरीय विकास द्वारा वायुमंडल की रासायनिक संरचना में प्रवेश कराके पर्यावरणीय प्रक्रियों में हेर-फेर करके यथा: वर्षा कराने के लिए मेघ विजन बादलो का विस्मरण एवं विषय गमनओला पात की रोकथाम आदि।

मानव जनित प्रक्रियाओं के कारण प्राकृतिक पर्यावरण के विभिन्न संघटकों में परिवर्तन होने से पर्यावरण की गुणवत्ता में हास होता है तथा पर्यावरणीय एवं पारिस्थितिकी संतुलन में अव्यवस्था होती है इन समस्त प्रक्रियाओं का परिणाम यह होता है की पर्यावरण को स्थानीय प्रादेशिक एवं विश्व स्तरों पर अवनयन होने लगता है।

पर्यावरण अवनयन के कारणों को ज्ञात करने हेतु उसके विभिन्न पहलुओं पर भी रचनात्मक चिंतन करना अत्यंत आवश्यक हो गया है। यह कारण ही विविध विंदुओं के तालमेल को बिगाड़ कर एक अप्रत्याशित संकट खड़ा कर देते है मानव एवं प्राकृतिक पर्यावरण के बीच तेजी से गिरता सम्बंध ही विश्वव्यापी पर्यावरणीय संकट का मूल कारण है वास्तव में प्राकृतिक संसाधनों के तेजी से विदोहन प्रौद्योगिकीय प्रगति एवं औद्योगिक नगरीय विस्तार के कारण प्राकृतिक पर्यावरण एवं उसके पर्यावरणीय स्वरूप पर प्रभाव पड़े है। मनुष्य के कार्यों द्वारा पर्यावरण में हो रहे परिवर्तनों तथा उससे जनित पर्यावरण अवनयन के भयावह स्वरूप देखने को प्राप्त होते है।

इस विषय में R.F. DASMANN (1976) ने कहा है कि मानव दौड़ हवा में ग्रेनेड लिए बंदर के सामान है कोई यह नहीं जानता है कि वह कब ग्रेनेड से पिन खींच लेगा तथा विश्व का तहस नहस हो जाएगा।

J. POELMANS-KRISCHEN (1974) ने पर्यावरणीय अवनयन तथा उससे उत्पन्न विश्व स्तरीय पर्यावरण संकट के लिए विभिन्न कारकों को इंगित किया था।

- उत्पादन विभव में तेजी से वृद्धि
- वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिकी खोज तथा विकास में तीव्र वृद्धि
- विश्व जनसंख्या में गुणोत्तर वृद्धि

सामान्य तौर पर पर्यावरण अवनयन तथा उससे जनित पर्यावरणीय समस्याओं एवं संकट के निम्न कारण है।

- मानव जनसंख्या में गुणोत्तर वृद्धि।
- तीव्र गति से वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिकीय विकास।
- तीव्र गति से विकास के लिए महत्वाकांक्षी विकास योजनाएँ।
- औद्योगिकीकरण, नगरीकरण एवं कृषि विकास में तेजी से वृद्धि।
- समाज में दार्शनिक एवं सामाजिक दृष्टिकोण।
- मनुष्य का प्राकृतिक पर्यावरण एवं प्रकृति के प्रति शत्रुता पूर्ण निर्दयी व्यवहार है।
- जनसाधारण में पर्यावरण बोध तथा पर्यावरणीय समस्याओं के प्रति जागरूकता एवं जानकारी की कमी।
- देश में मानव जाति में निर्धनता।
- कुछ देशों में कुछ वर्गों में आवश्यकता से अधिक समृद्धि अर्थात् असमान आर्थिक विकास।
- प्राकृतिक संसाधनों का अविवेक पूर्ण एवं लघुता पूर्ण विदोहन।

मानव की आवश्यकताएँ एवं पर्यावरण अवनयन

आज के वैज्ञानिक युग में मानव अपना भौतिक स्तर ऊँचा करने हेतु सदैव तत्पर है। आज का मानव न केवल मूलभूत उपभोग की वस्तु को प्राप्त कर संतुष्ट नहीं है अपितु वह विलासिता के साधनों एवं उपभोक्ता वस्तुओं के प्राप्ति में सदैव सचेष्ट है। मानव पहले झोपड़ियों में रहता था। वह कच्चे मकान में रहने लगा, लेकिन उसकी भौतिक आवश्यकताओं ने उसे पक्के मकान में रहने के लिए विवश कर दिया। मानव पैदल, इक्का, बैलगाड़ी, साइकिल के स्थान पर अब मोटर साइकिल, कार, बस, रेल आदि से चलने लगा है। ताड़ एवं बाँस के बने पंखे के स्थान पर विद्युत पंखे एवं रेफ्रिजरेटर का प्रयोग कर रहा है। कपड़ा धोने के लिए रेह के स्थान पर डिटरजेंट पाउडर का प्रयोग कर रहा है। सूती कपड़े के स्थान पर सिन्थेटिक कपड़ों का निर्माण हो रहा है, जिससे रसायनों का अधिकाधिक प्रयोग होता है। इस तरह उच्च भौतिक स्तर को प्राप्त करने की लालसा ने अनेक तरह के कृत्रिम साधनों के उत्पादन को बढ़ावा दिया है जिसके परिणामस्वरूप पारिस्थितिकी तंत्र को सुस्थिर रखने वाले जैव-भू-रासायनिक चक्रों पर दबाव बढ़ता जा रहा है। विलासिता के उत्पादक जैसे रेफ्रिजरेटर, एअर कंडीशनर में प्रयुक्त घातक रसायनों तथा क्लोरो फ्लोरो कार्बन एवं हैलोजन गैसों का वायुमण्डल में निस्तारण हो रहा है। इन रसायनों के प्रयोग से जीवन रक्षक ओजोन परत धीरे-धीरे अपक्षयित होती जा रही है। ओजोन परत के क्षय से विकिरण व्यवस्था बाधित हो रही है तथा उष्मा संतुलन

के अव्यवस्थित होने से तापमान में वृद्धि की सम्भावना बढ़ गयी है। किसी भी देश या भौगोलिक प्रदेश के भौतिक पर्यावरण के एकल कई संघटकों में उत्पन्न अवनयनता को पर्यावरण विघटन (अवनयन या अवक्रमण) कहा जाता है। ज्ञातव्य है कि पर्यावरण की संरचना अजैविक (भौतिक) तथा जैविक संघटकों द्वारा होती है, जिसका भौतिक तथा जैविक प्रक्रमों द्वारा कार्यों का चयन तथा नियंत्रण होता है। पर्यावरण में असन्तुलन की स्थिति में ही पर्यावरण विघटन एवं प्रदूषण का जन्म होता है। पर्यावरण को सबसे अधिक प्रभावित भी मनुष्य ही करता है, क्योंकि वह प्रगतिशील तथा बुद्धिमान प्राणी है, जिसकी आवश्यकताएँ असीम होने के कारण वह पर्यावरण के साथ हमेशा छेड़छाड़ करता रहता है और यह जब सीमा के ऊपर चला जाता है, तो पर्यावरणीय विघटन होने लगता है। पर्यावरण अवनयन का अर्थ है, पर्यावरण के भौतिक संघटकों में जैविक प्रक्रमों, खासकर मानव की क्रियाओं द्वारा इस सीमा तक हास एवं अवक्रमण हो जाना कि उससे पर्यावरण की स्वतः नियामक क्रियाविधि द्वारा भी सही नहीं किया जा सकता।

शोध विधि

शोध नियमों के अनुसार प्रस्तुत शोध सैद्धांतिक विश्लेषणात्मक, तुलनात्मक एवं नवीन व्यवहारिक पद्धतियों को अपनाते हुए मौलिकता प्रदान करने का प्रयास किया गया है। इस शोध कार्य हेतु द्वितीयक स्रोतों का प्रयोग किया गया। द्वितीयक स्रोतों के तहत आवश्यक सामग्री विभिन्न राष्ट्रीय पुस्तकालयों इंटरनेट एवं शोध संस्थानों आदि में उपलब्ध साधनों के आलावा प्राचीन संदर्भ ग्रंथों से एकत्र किया जाना अनुमान्य है। इन संदर्भ आधारित पुस्तकों के आलावा विभिन्न आयोगों के प्रकाशनों, आत्मलेखों, समाचार पत्र - पत्रिकाओं एवं दार्शनिकों का लेख इत्यादि के लेखन सामग्री संग्रहित कर विश्लेषणात्मक अध्ययन है।

निष्कर्ष

उपरोक्त विवरणों से स्पष्ट होता है कि पर्यावरण अवनयन के लिए जिम्मेदार पराक्रमों एवं कारणों से भावी जीवन के प्रति निराशा जागृत होती है। तथा यह भी आभास होता है कि विकाशील कार्य प्राकृतिक एवं पर्यावरण के लिए विपरीत है ज्ञातव्य है कि यदि हमें वर्तमान समाज को विकसित करना है तथा बढ़ती जनसंख्या की मांगों को पूरा करना है तो विकास की गति को बनाए रखना होगा परंतु विकास कार्य पर्यावरण एवं मनुष्य के अस्तित्व की कीमत पर नहीं किया जाना चाहिए। पर्यावरण अवनयन का सबसे अधिक महत्वपूर्ण कारण जनसंख्या वृद्धि है, हमें इस पर सकारात्मक कदम उठाते हुए नियंत्रण के लिए संचित होना होगा तथा अपने आने वाली पीढ़ियों को एक समृद्ध वातावरण तथा परिवेश देना ही हमारी कर्तव्यनिष्ठा कहलाएगी।

संदर्भ - सूची:

- सिंह रविन्द्र: पर्यावरण भूगोल का स्वरूप, प्रवालिका पब्लिकेशन इलाहाबाद, संस्करण - 2016, पेज संख्या- 370.
- सिंह रविन्द्र: पर्यावरण भूगोल का स्वरूप, प्रवालिका पब्लिकेशन इलाहाबाद, संस्करण - 2016, पेज संख्या- 372.
- महाराणा निश: “पर्यावरण एवं पारिस्थितिकी, अयवल् पब्लिकेशन आगरा, संस्करण - 2018.
- अग्रवाल अनिल: परीक्षा मंथन, प्रकाशन इलाहाबाद, संस्करण - 2011.
- सिंह, सविन्द्र (1991): “पर्यावरण भूगोल”, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद
- Park, C.C. (1980): “Ecology and Environmental Management” Butterworths, London.
- Singh, Savindra and Dubey, A. (1983): “Environmental Management : Some New Dimensions, in Environmental Management” edited by L.R. Singh et al., AGS, Geog. Deptt. A.U. Allahabad.
- सिंह, जगदीश (1988): “पारिस्थितिकी एवं संविकास”, ज्ञानोदय प्रकाशन, गोरखपुर
- सिंह, श्रीनिवास (1993): “पर्यावरण भूगोल के मूल तत्व”, तारा बुक एजेन्सी, वाराणसी
- कुरुक्षेत्र पत्रिका, जून 2007
- पूर्वांचल भूगोल पत्रिका, जौनपुर, 2002
- Dasman, R.F. (1976): “Environmental Conservation, John Willey, New York.
- अशोक दिवाकर: बढ़ती हुई जनसंख्या और विचारहीन विकास का पर्यावरण पर प्रभाव-एक समीक्षा। उत्तर भारत भूगोल पत्रिका

18वें लोकसभा चुनावों के संदर्भ में सोशल मीडिया की बढ़ती भूमिका का विश्लेषणात्मक अध्ययन

रेखा यादव

सहायक आचार्य, राजनीति विज्ञान, हिन्दू कन्या महाविद्यालय, सीतापुर

सारांश

प्रस्तुत लेख हालिया लोकसभा चुनावों के दौरान विभिन्न राष्ट्रीय व राज्य स्तरीय राजनीतिक दलों द्वारा चुनाव प्रचार हेतु सोशल मीडिया पर अपनाई गई विविध रणनीतियों पर केन्द्रित है। सोशल मीडिया समाज के विभिन्न वर्गों में राजनीतिक चेतना के विकास के साथ जीवन्त लोकतंत्र में उनकी भागीदारी बढ़ाने में सहायक है जिसने राजनीतिक दलों व मतदाताओं के मध्य दूरी को समाप्त कर दिया है। साथ ही भ्रामक सूचनाओं, त्रुटिपूर्ण प्रचार, डीपफेक वीडियो जैसी चुनौतियों का परीक्षण करता है।

मुख्य शब्द: सोशल मीडिया, यू ट्यूब, फेसबुक, निर्वाचन आयोग, राजनीतिक दल।

भूमिका:

पारम्परिक मीडिया की अपेक्षा सोशल मीडिया चुनावी राजनीति में महत्वपूर्ण भूमिका बढ़ती जा रही है। लोकतांत्रिक सरकारों द्वारा चुनावी प्रचार हेतु इसका व्यापक स्तर पर प्रयोग किया जा रहा है। सोशल मीडिया के विभिन्न माध्यमों व्हाट्सअप, यू ट्यूब जनता से संपर्क स्थापित करने का माध्यम उपलब्ध कराता है क्योंकि वर्तमान समय में प्रत्येक आयु, वर्ग, समूह के व्यक्तियों द्वारा सोशल मीडिया का किसी न किसी रूप में प्रयोग किया जा रहा है। कहा जा सकता है कि सोशल मीडिया ने न केवल जनता व राजनीतिक दलों के मध्य स्थापित परम्परागत दूरी को समाप्त कर मतदाताओं से संपर्क स्थापित करने का सशक्त माध्यम उपलब्ध कराया है अपितु राजनीतिक दलों, राजनेताओं द्वारा अपने सोशल मीडिया अकाउन्ट पर संबंधित चुनावी रैली, यात्राओं को पोस्ट साझा की जाती है जिस पर सामान्य जन अपनी राय व समझ व्यक्त करते हैं जो चुनावी विश्लेषकों, राजनेताओं को जनता के मनोभावों को समझने में सहायक होती है।

सोशल मीडिया: 18वें लोकसभा चुनाव (2024)

देश में 18वीं लोकसभा की 543 सीटों पर चुनाव हेतु निर्वाचन आयोग द्वारा 7 चरणों में 19 अप्रैल से 1 जून 2024 तक चुनाव प्रस्तावित हैं। विश्व के सबसे बड़े प्रजातांत्रिक देश में मतदाताओं की संख्या 960 मिलियन है। पिछले एक दशक से राजनीतिक दलों के चुनाव प्रचार में काफी परिवर्तन आया है। परम्परागत रैलियों, पद यात्रा, मतदाताओं से मिलना इत्यादि के साथ-साथ राजनीतिक नेताओं द्वारा सूचना तकनीकी के दौर में सोशल मीडिया की ओर ध्यान आकर्षित किया। सोशल मीडिया की महत्ता को समझते हुए लगभग प्रत्येक राष्ट्रीय व क्षेत्रीय दलों ने मतदाताओं से संपर्क साधने के लिए इसका प्रयोग किया।

भारत विश्व का सबसे बड़ा प्रजातांत्रिक देश होने के साथ ही विश्व का तीसरा सर्वाधिक नेट उपभोगकर्ता देश भी है और देश के लगभग सभी वर्गों के व्यक्ति सोशल मीडिया पर किसी न किसी रूप में सक्रिय हैं।

(रवि उपाध्याय) वर्तमान समय में सोशल मीडिया जनता तक पहुँचने का सुगम माध्यम बन गया है। संभवतया यही कारण है कि लगभग सभी राजनीतिक दलों द्वारा इसका व्यापक स्तर पर प्रयोग किया जाता है और चुनावी प्रचार में इसका स्पष्टतया प्रभाव देखा जा सकता है।

	May 2014	May 2017	May 2018	May 2019
Facebook	9	20	32	32
whatsapp	-	22	33	34
Twitter	2	5	14	12
Instagram	-	-	14	15
YouTube	-	-	-	31

स्रोत:- लोकनीति

(लोकनीति) 18वें लोकसभा चुनावों में सोशल मीडिया का विगत 10 वर्षों की अपेक्षा अधिक प्रयोग किया गया है। जहाँ वर्ष 2014 में महज 9 प्रतिशत व्यक्ति फेसबुक का प्रयोग करते थे और 2019 में यह 32 प्रतिशत हो गया। इसके अतिरिक्त यू ट्यूब, की लोकप्रियता का अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि 2019 में 31 प्रतिशत व्यक्ति इसका उपयोग करते थे जबकि वर्ष 2017 में 22 प्रतिशत।

वर्ष 2024 में भारत में सोशल मीडिया के विविध प्लेटफार्म- यू-ट्यूब, फेसबुक, व्हाट्सअप प्रयोगकर्ताओं की संख्या में काफी वृद्धि हुई है। सूचना प्रसारण की गति, लक्षित केन्द्रित समूह, उपयोगकर्ताओं के साथ बढ़ती अन्तःक्रिया सोशल मीडिया की उपयोगिता को दिखाता है।

भाजपा:- सामान्य तौर पर भाजपा की छवि पुरातन संस्कृति, दक्षिणपंथी विचारधारा, हिन्दुत्व पर जोर देने वाली राजनीतिक दल की है परन्तु सोशल मीडिया का प्रयोग करने में अन्य दलों की अपेक्षा वह शीर्ष पर है। भाजपा द्वारा 'नमो' रूप जो विशेषतया नरेन्द्र मोदी पर केन्द्रित है। भाजपा सरकार द्वारा भाजपा शासित राज्य-सरकारों द्वारा छात्र-छात्राओं को मुफ्त एंड्रायड फोन व रिलायंस 'जियो' के कम कीमत वाले सिम वितरित किए गए। इन एंड्रायड फोन में 'नमो ऐप' पहले से ही लोड था, जो प्रयोगकर्ताओं द्वारा इंस्टाल करने पर भाजपा को लोगों से जुड़ने में सहायता की।

2024 के लोकसभा चुनाव-प्रचार में भाजपा द्वारा प्रधानमंत्री मोदी की लोकप्रियता को देखते हुए उनकी स्वच्छ, कर्मठ, निर्णय लेने में समर्थ राजनेता की छवि प्रचारित की गई। भाजपा द्वारा मुख्यतया विजन 204, विकसित भारत, भारत को विश्वगुरु बनाना, नारी सशक्तीकरण, सामाजिक न्याय की प्राप्ति हेतु संविधान में परिवर्तन की आवश्यकता पर अधिक जोर दिया गया। भाजपा आई0टी0 सेल द्वारा केन्द्र व विभिन्न राज्यों में अपने स्वयंसेवकों के माध्यम से प्रतिदिन एक लाख व्यक्तियों को पार्टी से जोड़ने का लक्ष्य निर्धारित किया गया ताकि मोदी सरकार की पिछले 10 वर्षों के दौरान किए गए विकास कार्यों के बारे में मतदाताओं को जागरूक किया जा सके। इसके अतिरिक्त 500 मिलियन व्यक्तियों को व्हाट्सअप पर प्रधानमंत्री का पत्र भेजकर सरकार के विषय में उनका मत जानने का प्रयास किया गया। नमो ऐप के अतिरिक्त प्रधानमंत्री मोदी के नाम पर मतदान की अपील करते हुए 'डल थपतेज टवजम वित डवकप' मईपजमशू का आरम्भ किया गया। भाजपा द्वारा सोशल मीडिया के विभिन्न माध्यमों से न केवल सरकार की उपलब्धियों का प्रचार किया अपितु विभिन्न राजनीतिक संदेशों, विपक्ष की आलोचना, टिप्पणियों को अन्य भाषाओं में भेजा जाता है ताकि प्रयोगकर्ताओं को भाषा-संबंधी असुविधा न हो। भाजपा द्वारा 'जो राम को लाए हैं, हम उनको लायेंगे', 'मोदी की गारंटी', 'मोदी का परिवार', 'अबकी बार 400 पार', जैसे कई स्लोगन सोशल मीडिया पर चर्चित रहे। सोशल मीडिया के विभिन्न माध्यमों जिसमें भाजपा के इंस्टाग्राम पर 7.5 मिलियन, एक्स हैंडल पर 21.6 मिलियन अनुयायी हैं जबकि प्रधानमंत्री मोदी के इंस्टाग्राम पर 85 मिलियन अनुयायी हैं जिसके माध्यम से वे समय-समय पर अपने विचार, संदेश, चुनावी रैलियों, धार्मिक यात्राओं को साझा करते रहते हैं। प्रधानमंत्री मोदी विश्व के सर्वाधिक चर्चित, लोकप्रिय नेता हैं और सोशल मीडिया के प्रयोग में काफी कुशल हैं। पूर्व में भी वे 'मन की बात' कार्यक्रम के माध्यम से जनता से संवाद करते रहे हैं। भाजपा ने न केवल शीर्ष वरन् राज्यों में भी जनता तक अपनी नीतियों के प्रसार हेतु स्वयंसेवकों को निर्देशित किया है।

कांग्रेस: जनजीवन में सोशल मीडिया के बढ़ते महत्व को देखते हुए देश के सबसे पुराने राजनीतिक दल कांग्रेस ने भी विविध डिजिटल माध्यमों से जनता के समक्ष राजनीतिक मुद्दों पर अपना पक्ष रखा। यद्यपि अपनी प्रमुख विरोधी पार्टी भाजपा की अपेक्षा कांग्रेस ने 2017 में उत्तर प्रदेश विधानसभा चुनावों के समय अपनी सोशल मीडिया नीति पर ध्यान केन्द्रित किया। कांग्रेस द्वारा मुख्यतया सत्तारूढ़ दल भाजपा के लोकसभा चुनावों के दौरान विपक्षी राजनैतिक दलों के नेताओं की गिरफ्तारी, सरकारी एजेंसियों, सी0बी0आई0, प्रवर्तन निदेशालय के दुरुपयोग की अपने ऑनलाइन संदेश में कटु आलोचना की। भाजपा के चुनावी नारों-संविधान में बदलाव, विपक्ष दलों के सत्ता में आने पर राम मंदिर को ध्वस्त करना, लाभांश का सबसे बड़े अल्पसंख्यक वर्ग में वितरण जैसे दुष्प्रचारों की कटु आलोचना की। कांग्रेस ने मुख्यतया संविधान को बचाने, रोजगार, जातिगत जन भावना, महंगाई, राहुल गाँधी की 'भारत जोड़ो यात्रा', 'युवा न्याय', 'नारी न्याय', 'श्रमिक न्याय' जैसे विषयों को प्रमुखता दी। कांग्रेस द्वारा स्वयं को जीवंत, समावेशी दल की संज्ञा देते हुए समाज के सभी वर्गों के विकास व सामाजिक न्याय पर विशेष जोर दिया। कांग्रेस की बात की जाए तो फेसबुक पर 6.7 मिलियन, यू ट्यूब पर 4.24, इंस्टाग्राम पर 3.7 मिलियन अनुयायी हैं। जबकि कांग्रेस नेता राहुल गांधी के फेसबुक पर 6.5, इंस्टाग्राम पर 6.3, एक्स हैंडल पर 25.2 मिलियन प्रशंसक हैं। राहुल गांधी यू ट्यूब चैनल के माध्यम से आम जनता से मुलाकात कर उनकी समस्याओं पर चर्चा, भ्रष्टाचार लैंगिक हिंसा से जुड़े विषयों पर अपना मत रखते हैं।

आम आदमी पार्टी: भ्रष्टाचार, लोकपाल के मुद्दों पर तत्कालीन सत्ता के विरोध से उभरी आम आदमी पार्टी द्वारा भी व्यापक स्तर पर प्रयोग किया जा रहा है। आम आदमी पार्टी ने मुख्य रूप से प्रवर्तन निदेशालय के दुरुपयोग, मनी लॉन्ड्रिंग के आरोप में मुख्यमंत्री अरविन्द केजरीवाल की चुनाव के दौरान गिरफ्तारी पर अनेक मोक्स (संसद में भी केजरीवाल, तानाशाह के विरुद्ध लड़ाई), ई0डी0, सी0बी0आई0 बनाए। पार्टी द्वारा मुख्यमंत्री केजरीवाल की गिरफ्तारी के विरोध में पार्टी द्वारा व्हाट्सअप अभियान की शुरुआत की। आपकी वरिष्ठ नेता आतिशी द्वारा भाजपा पर अन्य राजनैतिक दलों को राजनीतिक प्रचार से रोकने का आरोप लगाया गया और अपने सोशल मीडिया अकाउंट पर मोदी सरकार के विरोध में एक गाना 'जेल का जवाब वोट से', जिन पर बाद में निर्वाचन आयोग द्वारा रोक लगा दी गई। जनता से संवाद करने में आम आदमी पार्टी ने सोशल मीडिया का काफी कुशलता से प्रयोग किया है। पार्टी के एक्स हैंडल पर 27.4 मिलियन अनुयायी हैं। 18वें लोकसभा चुनावों के दौरान बीजेपी हटाओ, संविधान बचाओ, मोदी को हटाना है जैसे कई पोस्ट किए गए व भाजपा के चुनावी घोषणा पत्र को जुमला पत्र मीम्स के माध्यम से संबोधित किया। मुख्यमंत्री केजरीवाल के सोशल मीडिया के विविध माध्यमों के विविध माध्यमों पर लोकप्रियता की बात की जाए तो उनके इंस्टाग्राम पर 2.1, एक्स हैंडल पर 2.4 मिलियन अनुयायी हैं। जबकि पार्टी के इंस्टा पर 1.1, एक्स पर 6.5 मिलियन समर्थक हैं। आम आदमी पार्टी द्वारा आपका रामराज्य शीर्षक से लोकसभा अभियान वेबसाइट का आरम्भ किया।

तृणमूल कांग्रेस: सोशल मीडिया की उपादेयता, बढ़ते प्रभाव से क्षेत्रीय, राज्य स्तरीय दल भी अछूते नहीं हैं। इसी क्रम में तृणमूल कांग्रेस ने विशेषतया पं० बंगाल के संदर्भ में केन्द्र सरकार द्वारा आर्थिक सहायता प्रदान न किए जाने का आरोप, सी0ए0ए0 का विरोध, 'भाजपा बनाम बाहरी', 'बंगाली अस्मिता', 'हम बनाम वे' पर केन्द्रित रही। 18वीं लोकसभा चुनावों में ममता बनर्जी का 'खेला होबे' नारा काफी चर्चित रहा। इसके पूर्व में पं० बंगाल राज्य विधानसभा चुनाव में भी वे भाजपा की विभिन्न मुद्दों पर तीखी आलोचना करती हैं। तृणमूल कांग्रेस द्वारा भाजपा को भ्रष्टाचार के आरोपी दल बदलू नेताओं का शुद्धीकरण वाशिंग मशीन कहकर प्रचारित किया। तृणमूल कांग्रेस के सोशल मीडिया- इंस्टा पर 1.08000 मिलियन, एक्स पर 6.8, जबकि मुख्यमंत्री ममता बनर्जी के इंस्टा पर 3.8 मिलियन व एक्स हैंडल पर 7.4 मिलियन अनुयायी हैं।

जे0डी0यू0: 18वें लोकसभा चुनावों में बिहार में भाजपा की सहयोगी जे0डी0यू0 ने भी अपनी सोशल मीडिया रणनीति पर ध्यान केन्द्रित किया। जे0डी0यू0 द्वारा राज्य में नीतीश कुमार की विकास पुरुष की छवि, सुशासन की घाटी को खूब प्रचारित किया गया। बिहार में जे0डी0यू0 के मीडिया प्रभारी मनीष द्वारा सरकारी नीतियों का सोशल मीडिया व जनता के मध्य प्रचार कर रही है, जे0डी0यू0 के प्रत्येक पार्टी के नेताओं को व्हाट्सअप ग्रुप के माध्यम से साकार के विकास कार्यों, नीतियों को जन-जन तक पहुँचाने का दायित्व प्रदान किया गया है। जे0डी0यू0 के फेसबुक अकाउंट पर 6.7 लाख, एक्स पर 2.6 मिलियन जबकि नीतीश कुमार के 20.9 मिलियन अनुयायी हैं।

राजद: बिहार के पूर्व उपमुख्यमंत्री तेजस्वी यादव भी 18वें लोकसभा चुनावों में सोशल मीडिया पर काफी सक्रियता दिखाई। तेजस्वी यादव द्वारा मुख्यतया 5 लाख रोजगार, विकास, संविदा की रक्षा जैसे मुद्दों पर विशेष जोर दिया। राजद के सोशल मीडिया अकाउंट पर 'माहौल है टनाटन टनाटन टनाटन', '1 करोड़ नौकरियाँ मिलेंगी, फटाफट फटाफट फटाफट', 'महिलाओं को 1 लाख मिलेगा खटाखट खटाखट' और एक्स पर तेजस्वी द्वारा तुम मुझे वोट दो, मैं तुम्हें नौकरी दूँगा। काफी चर्चित रहे। तेजस्वी यादव के फेसबुक खाते पर 26.7 मिलियन प्रशंसक, एक्स पर 50 मिलियन जबकि राजद के फेसबुक पर 11 लाख व एक्स पर 10.6 मिलियन अनुयायी हैं।

सोशल मीडिया इंप्लुएंसर्स: राजनीतिक दलों, राज नेताओं, पार्टी कार्यकर्ताओं के अतिरिक्त 18वें लोकसभा चुनावों पर सोशल मीडिया इंप्लुएंसर्स भी काफी सक्रिय हैं जिनमें ध्रुव राठी, कर्ली टेल्ल्स, रणवीर, नेहा राठौर प्रमुख हैं। जिनके सोशल मीडिया पर लाखों प्रशंसक हैं। इसके द्वारा प्रायः लोकतंत्र, जन प्रतिनिधि की जवाबदेही पर प्रश्न उठाते हैं। अनेक शीर्ष नेताओं जैसे नितिन गडकरी, स्मृति ईरानी के अनेक पॉडकास्ट हैं। इसके अतिरिक्त पूर्व वरिष्ठ पत्रकारों, न्यूज एंकर के विभिन्न चैनल, जिनमें रवीश कुमार, अभिसार, अजीत अंजुम, अशोक कुमार पाण्डेय प्रमुख हैं। इन यू-ट्यूब चैनलों में निरन्तर चुनावों के दौरान सरकारी नीतियों, चुनावी रैलियों में उनके द्वारा दिए गए भाषणों, चुनावी घोषणा पत्र पर विभिन्न विशेषज्ञों के माध्यम से चर्चा, टिप्पणी की जाती है जो कहीं न कहीं मत-व्यवहार को प्रभावित करने की क्षमता रखता है। सोशल मीडिया इंप्लुएंसर्स के प्रशंसकों, सोशल मीडिया पर उनकी सक्रियता को देखते हुए प्रधानमंत्री मोदी द्वारा राष्ट्रीय स्तर पर पहली बार उन्हें सम्मानित किया गया।

निर्वाचन आयोग: विश्व के सबसे बड़े लोकतांत्रिक देश भारत में स्वतंत्र व निष्पक्ष निर्वाचन का दायित्व भारतीय निर्वाचन आयोग पर है। लोकतंत्र के इस महापर्व में युवा, शहरी मतदाताओं की सहभागिता बढ़ाने हेतु सोशल मीडिया के विभिन्न माध्यमों का प्रयोग निर्वाचन आयोग भी कर रहा है। भारतीय निर्वाचन आयोग 'You are the one, turning 18, X पर हम # लोकसभा चुनाव 2024 में मतदान करने के लिए उत्साहित हैं। क्या आप भी तैयार हैं? # साथ चलेंगे # चुनाव 2024 # चुनाव का पर्व # देश का गर्व # जैसे पोस्ट के माध्यम से मतदाताओं को मतदान हेतु प्रेरित करने का प्रयास किया गया है।

लोकसभा चुनाव 2024 में राजनीतिक दलों की सोशल मीडिया रणनीति, कार्यशैली का विश्लेषण किया जाए तो निःसंदेह अन्य दलों की अपेक्षा भाजपा सोशल मीडिया पर अधिक सक्रिय है। भाजपा ने एक सुकेन्द्रित विस्तृत रणनीति के साथ मतदाताओं के मध्य अपनी बात रखने का प्रयास किया। जो उनके विविध पोस्ट में देखा जा सकता है जैसे 'मोदी हैं तो मुमकिन है', 'फिर एक बार मोदी सरकार'। जबकि कांग्रेस के किसी भी पोस्ट में अस्पष्ट पैटर्न के हैशटैग का प्रयोग करती नजर नहीं आई। भाजपा की भांति उनके पोस्ट में स्थायीकृत हैशटैग का अभाव है। यद्यपि प्रधानमंत्री मोदी की प्रचार शैली में विरोधाभास झलकता है, जहाँ एक ओर लोकप्रिय नेता की छवि, निर्णय लेने में सक्षम, सामाजिक मूल्यों में प्रतिबद्धता, भारत को विश्वगुरु बनाने की संकल्पना को दर्शाता है। वहीं दूसरी ओर हिन्दुत्व, संविधान में बदलाव, मंदिर-मस्जिद मुद्दे पर ध्रुवीकरण, अल्पसंख्यकों के विरुद्ध विवादास्पद टिप्पणी जैसे विषयों पर काफी उलझा हुआ है। इन दो मुख्य दलों के अतिरिक्त आम आदमी पार्टी ने भी सोशल मीडिया का कुशलतापूर्वक प्रयोग किया है।

आनलाइन प्लेटफार्म स्टैटिक्स के एक अनुमान के अनुसार आगामी 2029 तक भारत में सोशल मीडिया उपयोगकर्ताओं की संख्या 859 मिलियन होने की संभावना है जो निकट भविष्य में सोशल मीडिया पर राजनीतिक दलों की सक्रियता बढ़ायेगी।

निष्कर्ष: पारम्परिक मीडिया, जिस पर पिछले कुछ वर्षों से सत्ता पक्ष के समर्थक व एक विशेष विचारधारा के पक्ष-पोषण का आरोप लगता रहा है कि वह अनय सम सामयिक मुद्दों की चर्चा की उपेक्षा करता रहा है। वहीं इसके विपरीत सोशल मीडिया हर व्यक्ति को प्रत्येक विषय पर विचार अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता देती है। पिछले 10 वर्षों से सोशल मीडिया पर न केवल सामान्य जन वरन् जन प्रतिनिधियों की सक्रियता में वृद्धि हुई है। सोशल मीडिया पर कुछ चुनौतियाँ डीपफेक वीडियो, मिथ्या प्रचार, अभद्र टिप्पणी जैसी चुनौतियाँ भी हैं जिस पर सरकार व निर्वाचन आयोग द्वारा नियंत्रण की आवश्यकता है।

संदर्भ सूची:

- 1). Khullar, Arsiya & Haridasani Alisha (2024), Politicians slug it out in India's first social media election retrieved from <https://www.cnn> retrieved on 10 April 2024.
- 2). Barik, Soumyendra (2024), In long drawn Lok Sabha polls how youtube starts, insta reels ruled the roofs retrieved from <https://www.theindianexpress> retrieved on 3 June 2024.
- 3). Paliwal, Aishwarya (2024) BJP leading social media race dominating over AAP, Congress, Trinamool by 23.54% retrieved from <https://www.indiatoday> retrieved on 7 April 2024
- 4). Welle, Deutsche (2024), Youtube: indias next battle ground for free speech retrieved from <https://mediafreedom> retrieved on 16 April 2024.
- 5). Nanisethi, Serish (2024), Election 2024, with several journalist & politicians taking to online platform, will youtube become a game changer retrieved from <https://www.thehindu> retrieved on 27 March 2024
- 6). Etv Bharat (2024) BJP, JDU, RJD, Rev up Social media campaign in Bihar for 2024 Loksabha retrieved from <https://www.etvbharat> retrieved on 18 March 2024
- 7). 2024 L.S. elections : from digital Poll wars to electoral awareness by PTI, 18 April 2024

- 8). Lok Sabha Poll, EC uses social media to nudge elections to vote, <https://www.thehindu.com>
- 9). Lok Sabha 2024, Modi's party volunteers targetting 100,000 people a day, BBC 28 May 2024
- 10). Sharma Tanvi (2024) Lok Sabha election 2024, How social media emerged as key battle field for BJP vs Congress retrieved from <https://www.thetimesofindia.com> retrieved on 20 June 2024.
- 11). PTI (2024) Lok Sabha election 2024, Amid digital push, traditional campaigning methods retain their allure among politicians in West Bengal, retrived from <https://www.deccanherald.com>
- 12). The Youtube election social media emerges key player in Indian polls, Shephali Bhatt, the Economic Times, 11 May 2024.
- 13). ECI Leverages Power of Social Media to engage young and Urban voters. PIB.
- 14). Aam Aadmi Party Launches Aap ka Ram Rajya, website ahead of Lok Sabha election, The Economic Times, 24 April 2024.

योग में चित्त का स्वरूप

लै० डॉ० भावना टिमल

एसोसिएट प्रोफेसर, शारीरिक शिक्षा विभाग, श्रीमती शारदा जौहरी न0प0क0 महाविद्यालय, कासगंज, उ0प्र0

शोध सारांश

योग व्यावहारिक दर्शन है। भारतीय संदर्भ में योग आन्तरिक अनुशासन के रूप में सभी सम्प्रदायों में विद्यमान है। योग दर्शन के प्रणेता महर्षि पतंजलि हैं। इस हेतु योग दर्शन को पतंजलि दर्शन भी कहा जाता है। योगसूत्र योगदर्शन का प्रमुख ग्रन्थ है। योग दर्शन में चित्त केन्द्रीय अवधारणा है। बुद्धि, मन एवं अहंकार इन तीनों को अन्तःकरण मानते हुए चित्त पद से अभिप्रेत माना गया है। योगदर्शन में चित्त की पाँच अवस्थाएँ मानी गई हैं- क्षिप्त, मूढ़, विक्षिप्त, एकाग्र तथा निरुद्ध। चित्त का किसी विशिष्ट प्रकार से रहना वृत्ति कहलाता है। वृत्तियाँ असंख्य हैं तदपि इन्हें पाँच रूपों में विभाजित किया गया है- प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा तथा स्मृति। चित्त की इन्हीं वृत्तियों का निरोध योग दर्शन का लक्ष्य है। चित्त की वृत्तियाँ ही चित्त को चंचल बनाती हैं तथा ये क्लेशों का कारण बनती हैं। अतः चित्त की वृत्तियों का निरोध करके चित्त को उसकी स्वाभाविक अवस्था में लाकर कैवल्य को प्राप्त करना योग दर्शन का लक्ष्य तथा उद्देश्य है।

प्रमुख शब्द- चित्त, वृत्ति, क्षिप्त, मूढ़, विक्षिप्त, एकाग्र, निरुद्ध, प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा, स्मृति आदि।

भारत में प्राचीन काल से ही योग पद्धति प्रचलित है। भारतीय संदर्भ में योग आन्तरिक अनुशासन के रूप में सभी सम्प्रदायों सभी उपासनाओं में और सभी विधाओं में समान रूप से विद्यमान है। यह एक प्रकार से भारतीय सांस्कृतिक प्रक्रिया में अनुस्यूत सूत्र है। योग व्यावहारिक दर्शन हैं। मनुष्य के जीवन के चार उद्देश्य हैं- धर्म, अर्थ, काम, तथा मोक्ष। ये चार पुरुषार्थ हैं, इनकी प्राप्ति के लिए शरीर इन्द्रिय एवं चित्त की शुद्धि एवं नियन्त्रण आवश्यक है। जब तक शरीर, इन्द्रिय तथा मन साधक के वश में नहीं आते तब तक उद्देश्य की प्राप्ति नहीं हो सकती। योग का मुख्य मनुष्य को यह बताना है जिससे मोक्ष की प्राप्ति हो सके।

योग दर्शन पतंजलि दर्शन के नाम से भी जाना जाता है, क्योंकि इसके प्रवर्तक महर्षि पतंजलि हैं। पतंजलि का योगसूत्र योग दर्शन का प्रमुख ग्रन्थ है। योगसूत्र में चार पद हैं- समाधिपाद, साधनापाद, विभूतिपाद, तथा कैवल्य पाद।¹ योग शब्द का अनेक अर्थों में प्रयोग हुआ है। वस्तुतः योग का अर्थ जुड़ना अथवा मिलना अधिक प्रसिद्ध है। योगदर्शन में योग का अर्थ समाधि से लिया जाता है 'योगः समाधिः'²

चित्त का अर्थ- योग दर्शन में चित्त केन्द्रीय अवधारणा है। योग दर्शन में चित्त का अर्थ अन्तःकरण माना गया है जो कि बुद्धि का उपलक्षक है।

विज्ञानभिक्षु अन्तःकरण सामान्य को चित्त मानते हैं परन्तु उन्होंने चित्त को बुद्धि के उपलक्षक के रूप में स्वीकार नहीं किया है। नारायण तीर्थ अन्तःकरण तप को चित्त मानते हैं। इसी प्रकार हरि प्रसाद ने मन एवं बुद्धि करते हुए अन्तःकरण सामान्य को चित्त पद से अभिप्रेत माना है। योगदर्शन के लक्ष्य चित्तवृत्ति विरोध को दृष्टिगत रखते हुए बुद्धि, मन एवं अहंकार इन तीनों को ही अन्तःकरण मानते हुए चित्त पद से अभिप्रेत मानना चाहिए।

मनुष्य के बन्धन और मोक्ष का कारण उसका चित्त ही होता है। जब तक चित्त की वृत्तियों का निरोध नहीं किया जाता है। तब तक मनुष्य को क्लेशों से आत्यन्तिक मुक्ति नहीं मिलती। इस हेतु पतंजलि कहते हैं, मुक्ति चित्तवृत्तियों का निरोध है। जब चित्त की वृत्तियों का पूर्णरूप से निरोध हो जाता है तब चित्त अपनी स्वाभाविक अवस्था में स्थित हो जाता है। चित्त की दो अवस्थाएँ हैं-प्रथम कार्यावस्था है जिसमें वृत्तियों की कोई न कोई क्रिया अवश्य होती रहती है। इस अवस्था को व्युत्थान अवस्था भी कहते हैं। दूसरी अवस्था निरुद्धावस्था है जिसमें सभी वृत्तियाँ निरुद्ध होकर चित्त के स्वाभाविक रूप में विलीन हो जाती है।

चित्त प्रकृति का सात्विक परिणाम है। प्रकृति त्रिगुणात्मक है अतः चित्त भी त्रिगुणात्मक है। चित्त में तीनों गुणों का सद्भाव रहता है। प्रकृति से उत्पन्न होने के कारण चित्त जड़ है, किन्तु चेतन पुरुष के प्रतिबिम्ब से यह चेतन की तरह प्रतीत होती है।

चित्त की अवस्थाएँ- चित्त अवस्था भेद से बहुत रूप धारण करता है। चित्त की पाँच अवस्थाएँ योगसूत्र में बतलायी गयी हैं-

“क्षिप्तमूढं विक्षिप्तम् एकाग्रं निरुद्धमिति चित्तभूमयः”

1. क्षिप्त- इस अवस्था में रजोगुण की प्रधानता होती है। क्षिप्त का अर्थ होता है-फेंका हुआ। रजोगुण की प्रधानता के कारण चित्त का ध्यान विभिन्न विषयों की ओर आकृष्ट रहता है। इस आस्था में चित्त सक्रिय एवं चंचल रहता है और चित्त का ध्यान किसी एक वस्तु पर टिक नहीं पाता है।
2. मूढ़- यह तमोगुण प्रधान अवस्था है। इस अवस्था में चित्त में निद्रा, आलस्य, प्रमाद आदि वृत्तियाँ होती हैं। चित्त निष्क्रिय रहता है। इस अवस्था में राग, द्वेष इतने प्रबल होते हैं कि मनुष्य कर्तव्य, अकर्तव्य का निश्चय करने में असमर्थ हो जाता है। चित्त की प्रवृत्ति अधर्म, अज्ञान, अवैराग्य एवं अवैश्वर्य की ओर होती है।

3. विक्षिप्त- इस अवस्था में सत्त्व गुण प्रधान रहता है तथा रजोगुण एवं तमोगुण गौण होते हैं। सत्त्व का आधिक्य रहने पर भी रजस् के कारण सफलता और असफलता के बीच में कभी इधर कभी दूसरी तरफ चित्त की वृत्ति भटकती रहती है। यह क्षिप्त एवं मूढ़ के मध्य की अवस्था है। रजोगुण के प्रभाव के कारण ध्यान में एकाग्रता नहीं रहती। क्षिप्त और विक्षिप्त अवस्था में मुख्य अन्तर यही है कि जहाँ क्षिप्त में रजोगुण की प्रधानता के कारण किसी प्रकार की स्थिरता नहीं रहती वही विक्षिप्त में सत्त्व गुण के आधिक्य से चित्त कभी कभी स्थिर हो जाता है।
4. एकाग्र- इस अवस्था में सत्त्व गुण प्रधान रहता है। इस अवस्था में चित्त किसी एक विषय पर केन्द्रित हो जाता है। इसमें रजोगुण और तमोगुण का प्रभाव नहीं रहता है और चित्त स्फटिक के समान निर्मल और साफ दिखाई देता है। एकाग्रता को सम्प्रज्ञात भी कहते हैं।
5. निरुद्ध- यह चित्त की अन्तिम व सर्वोत्तम अवस्था है। इस अवस्था में चित्त की समस्त वृत्तियों का निरोध हो जाता है। चित्त में पूर्ण स्थिरता उत्पन्न होती है। यह ज्ञान शून्य अवस्था है। इसमें चित्त केवल संस्कार रूप में शेष रहता है। इस अवस्था को असम्प्रज्ञात या निर्बीज समाधि भी कहते हैं।

चित्त की इन पाँचों भूमियों में से प्रथम तीन भूमियों में कभी कभी वृत्ति का निरोध दिखालाई पड़ता है किन्तु ये तीनों भूमियों योग के लिए उपयुक्त नहीं हैं। अन्तिम दोनों भूमियाँ योग के लिए सर्वथा उपयोगी हैं। एकाग्र भूमि की प्राप्ति होने पर साधक परमार्थ विषय की ओर प्रेरित होता है तथा अविद्या, काम, कर्मादिक्लेश बन्धनों का टूटना आरम्भ हो जाता है। निरुद्ध अवस्था की प्राप्ति होने पर साधक योग अथवा समाधि में स्थिर होकर योगचित्तवृत्तिरोध कैवल्य के निकटतम सीढ़ी पर स्थित होता है।

चित्त की वृत्तियाँ- चित्त की वृत्तियों का निरोध योग का लक्ष्य है। चित्त का किसी विशिष्ट प्रकार से रहना 'वृत्ति' कहलाता है। वृत्त शब्द वृत्तवर्तन धातु से बना है। वर्तन अर्थात् व्यवहार। चित्त का व्यवहार ही वृत्ति है। वृत्तियाँ चित्त के विकार हैं। वाचस्पति मिश्र 'वृत्ति' को एक अवयवी के रूप में मानते हैं जिसके पाँच अवयव प्रमाण आदि हैं।⁹ विज्ञानभिक्षु का मत है वृत्तियाँ असंख्य हैं तथापि इन्हें पाँच रूपों में विभाजित किया जा सकता है। ये इस प्रकार हैं-

क्लिष्टाश्चाक्लिष्टाश्च पञ्चधा वृत्तयः प्रमाण विपर्यय विकल्प निद्रा सम्प्रतियः।

अर्थात् क्लिष्ट और अक्लिष्ट वृत्तियाँ पाँच प्रकार की हैं-

प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा तथा स्मृति।

1. **प्रमाण**- जिसमें प्रमा का ग्रहण होता है वह प्रमाण कहलाता है प्रमीयतेऽनेनेति प्रमाणम् अर्थात् प्रमा के साधन का नाम प्रमाण है। योग दर्शन में तीन प्रमाण माने गए हैं।

प्रत्यक्षानुमानागमाः प्रमाणानि।

प्रत्यक्षप्रमाण, अनुमान, प्रमाण और शब्द प्रमाण।

2. **विपर्यय**- विपर्यय मिथ्याज्ञान है क्योंकि यह पदार्थ के यथार्थ रूप में प्रतिष्ठित नहीं होता है।

विपर्ययो मिथ्याज्ञानमतद्रूपप्रतिष्ठम्।

इसमें वास्तविक स्वरूप की अभिव्यक्ति न होने से विषय का यथार्थ ज्ञान नहीं होता है। जैसे-अंधेरे में रस्सी को सर्प समझ लेना। विपर्यय वृत्ति को अविद्या भी कहते हैं। इस अविद्या की पाँच गाँठें हैं इसलिए इसे पंचपर्वा कहा जाता है।

अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, और अभिनिवेश ये अविद्या के पाँच पर्व हैं। इन्हीं का नाम क्लेश भी है। इन क्लेशों के कारण सत्त्व, रजस् एवं तमस, गुणों में परिणाम उत्पन्न होते हैं।

अविद्या- यह मिथ्या ज्ञान है। योग दर्शन में अविद्या ज्ञान का अभाव ही नहीं है, विपरीत ज्ञान भी है।

अस्मिता- पुरुष (आत्मा) शरीर तथा चित्त आदि से भिन्न है। पुरुष द्वारा उनसे तादात्म्य स्थापित कर लेना अस्मिता है।

राग- सुख और उसके साधनों की प्राप्ति की इच्छा राग है। अथवा सुखकारी पदार्थों में लिप्त हो जाना या विषयसुखों की आसक्ति ही राग है।

द्वेष- सुख अवरोधक और दुःखोत्पादक विषयों के प्रति धृणा होना द्वेष है। अर्थात् दुःखदायी पदार्थों से धृणा होना द्वेष है।

अभिनिवेश- प्रत्येक जीव में जीवन के प्रति आसक्ति एवं मृत्यु के प्रति स्वाभाविक भय अभिनिवेश है।

इन क्लेशों के कारण जीव संसार चक्र में पड़कर नाना प्रकार के कष्ट भोगता है।

3. **विकल्प**- वस्तु शून्य होने पर भी शब्दजन्यज्ञान के प्रभाव से जो व्यवहार देखा जाता है। वह विकल्प वृत्ति कहलाता है।

“शब्दज्ञानानुपाती वस्तुशून्यो विकल्प”

इसमें केवल शब्द के आधार पर पदार्थ की कल्पना करने वाली चित्त की जो वृत्ति है, वह विकल्प वृत्ति है। विकल्प के विषय का अस्तित्व नहीं होता है। जैसे- चौतन्य पुरुषस्य स्वरूपम्। चौतन्य पुरुष का स्वरूप है, इस वाक्य को सुनने पर ऐसा प्रतीत होता है जैसे चौतन्य में और पुरुष में भेद हो जबकि चौतन्य ही पुरुष है। अतः यह विकल्प वृत्ति है। विकल्प एक आरोपित ज्ञान है।

4. **निद्रा**- अभाव के प्रत्ययस्वरूप अथवा हेतुभूत तमः का अवलम्बन करने वाली वृत्ति निद्रा कहलाती है।

अभावप्रत्ययालम्बना वृत्तिनिद्रा।'

निद्रा एक मानसिक वृत्ति है क्योंकि जागने पर हमें इस विषय की स्मृति रहती है कि हमें किस प्रकार की नींद आई। निद्रा से तात्पर्य स्वप्न रहित निद्रा से है। इसलिये इसे अभाव की अवस्था भी कहा गया है।

निद्रा मुख्यतः तीन प्रकार की होती है।

सत्त्वगुण प्रधान:-

जब सोकर उठने पर यह स्मृति होती है कि मैं सुखपूर्वक 'सोया' यह सत्त्वप्रधान निद्रा है।

रजोगुण प्रधान:-

जब सोकर उठने पर ऐसी स्मृति हो कि 'मैं सुखपूर्वक सोया 'या' मेरा मन अस्थिर है' इत्यादि तब रजोगुणप्रधान निद्रा होती है।

तमोगुण प्रधान:-

जब सोकर उठने पर ऐसी स्मृति हो कि मेरा शरीर भारी हो रहा है तब तमोगुण प्रधान निद्रा होती है।

तीनों प्रकार की निद्रा के संस्कार चित्त पर पड़ते हैं, जिनसे स्मृति होती है, अतः निद्रा भी एक प्रकार की वृत्ति ही है।

स्मृति-

यह संस्कार जन्य ज्ञान है। अनुभव किये गये विषय की तदनुरूप आकारयुक्त वृत्ति को स्मृति कहते हैं।

अनुभूतविषयासम्प्रमोषः स्मृतिः

स्मृति का अर्थ है अनुभव किए हुए विषय का प्रकट हो जाना। किसी पदार्थ का उसके पूर्व अनुभव द्वारा छोड़े गये संस्कार द्वारा फिर से उसी रूप में संग्रह (स्मरण) करना स्मृति है। यह भी चित्त की एक वृत्ति है।

निष्कर्ष-

योगदर्शन का लक्ष्य चित्तवृत्ति निरोध है। चित्त की वृत्तियाँ ही चित्त को चंचल बनाती हैं तथा ये वृत्तियाँ ही मनुष्य के क्लेशों का कारण बनती हैं। इन्हीं के कारण पुरुष बुद्धि या चित्त के गुणों को अपना समझता है स्वयं को सुखी, दुःखी, कर्ता इत्यादि मानने लगता है। पुरुष एवं चित्त का यह अनादिकालीन सम्बन्ध ही जीव के बन्धन का कारण है। अतः कैवल्य हेतु जीव की समस्त चित्तवृत्तियों का सदैव के लिए शान्त हो जाना आवश्यक है। चित्त की वृत्ति का निरोध करके, चित्त को उसकी स्वाभाविक अवस्था में लाकर कैवल्य को प्राप्त किया जाता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची-

1. राममूर्ति पाठक, भारतीय दर्शन की समीक्षात्मक रूपरेखा, अभिमन्यु प्रकाशन, इलाहाबाद, 2004, पृष्ठ संख्या 35
2. डॉ० सुरेशचन्द्र श्रीवास्तव, पातंजलयोगदर्शनम्, चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, 2016, पृष्ठ संख्या 50
3. बी०के०एस० आर्यंगर, पतंजलि योग सूत्र, प्रभात पेपरबैक्स, नई दिल्ली 2018, पृ०सं० 32
4. बी०के०एस० आर्यंगर, पतंजलि योग सूत्र, प्रभात पेपरबैक्स, नई दिल्ली 2018, पृ०सं० 35
5. स्वामी सत्यानंद सरस्वती, मुक्ति के चार सोपान, योग पब्लिकेशन ट्रस्ट मुंगेर, बिहार, 2013, पृ० सं० 45
6. स्वामी सत्यानंद सरस्वती, मुक्ति के चार सोपान, योग पब्लिकेशन ट्रस्ट मुंगेर, बिहार, 2013, पृ० सं० 46
7. स्वामी सत्यानंद सरस्वती, मुक्ति के चार सोपान, योग पब्लिकेशन ट्रस्ट मुंगेर, बिहार, 2013, पृ० सं० 48

सामाजिक न्याय और अंबेडकर की दृष्टि: मोदी सरकार के सबका साथ, सबका विकास अभियान का प्रभाव

बिनय कुमार उपाध्याय

शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग, जयप्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा

भूमिका:

डॉ. भीमराव अंबेडकर भारतीय संविधान के निर्माता भारतीय समाज के सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक ढांचे में समानता और न्याय की स्थापना के प्रबल पक्षधर थे। उन्होंने भारतीय समाज की विषमताओं और जाति आधारित भेदभाव को दूर करने के लिए न केवल संवैधानिक प्रावधानों का निर्माण किया बल्कि एक समतामूलक समाज की अवधारणा को भी बढ़ावा दिया। अंबेडकर का यह मानना था कि जब तक समाज में मौजूद अन्याय और असमानता को समाप्त नहीं किया जाएगा तब तक लोकतंत्र की नींव मजबूत नहीं हो सकती। उनके दृष्टिकोण में समानता, बंधुत्व और स्वतंत्रता के मूल्यों का समावेशी सामाजिक परिवर्तन और समावेशी विकास के लिए आधारभूत स्तंभ है।

डॉ. अंबेडकर के सामाजिक न्याय के विचार विशेष रूप से हाशिए पर खड़े वर्गों को मुख्यधारा में लाने की वकालत करते हैं। उन्होंने कहा था कि किसी भी राष्ट्र का विकास तब तक संभव नहीं है जब तक कि उसमें समग्र समाज के लिए न्याय सुनिश्चित न किया जाए। उनका मानना था कि शोषित और वंचित वर्गों को केवल संवैधानिक अधिकार प्रदान करना ही पर्याप्त नहीं है बल्कि उनके लिए व्यावहारिक अवसर भी उत्पन्न करने होंगे। सामाजिक और आर्थिक असमानता के उन्मूलन के लिए उनकी दृष्टि समतामूलक समाज के निर्माण की दिशा में एक दूरदर्शी कदम थी।

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में नरेंद्र मोदी सरकार द्वारा प्रारंभ किया गया सबका साथ सबका विकास अभियान सामाजिक न्याय और समावेशी विकास को बढ़ावा देने का दावा करता है। यह अभियान समाज के हर वर्ग को विशेष रूप से वंचित और शोषित समुदायों को मुख्यधारा में शामिल करने और उन्हें सशक्त बनाने के उद्देश्य से शुरू किया गया है। इस पहल में आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक सशक्तिकरण के माध्यम से राष्ट्र की प्रगति को समग्र और समावेशी बनाने की परिकल्पना की गई है।

मोदी सरकार का यह अभियान बुनियादी ढांचे के विकास, शिक्षा, स्वास्थ्य सेवाओं, महिला सशक्तिकरण और रोजगार सृजन जैसे क्षेत्रों में सक्रिय है। सबका साथ सबका विकास के माध्यम से ग्रामीण क्षेत्रों में बिजली पानी और सड़कों जैसी बुनियादी सुविधाओं का विस्तार करने का प्रयास किया गया है। इसी तरह आर्थिक नीतियों जैसे मुद्रा योजना और जन धन योजना के जरिए समाज के सबसे निचले तबके तक लाभ पहुंचाने की कोशिश की गई है। इन नीतियों का उद्देश्य न केवल आर्थिक असमानता को कम करना है बल्कि सामाजिक सशक्तिकरण के माध्यम से राष्ट्रीय एकता को भी मजबूत करना है।

यह शोध-पत्र डॉ. अंबेडकर के सामाजिक न्याय के दृष्टिकोण और मोदी सरकार के सबका साथ सबका विकास अभियान के उद्देश्यों क्रियान्वयन और प्रभावों का समग्र रूप से विश्लेषण करता है। इसमें इस बात की जांच की जाएगी कि अंबेडकर की परिकल्पना में वर्णित सामाजिक न्याय के सिद्धांत किस हद तक मोदी सरकार की योजनाओं और नीतियों में परिलक्षित होते हैं। इसके साथ ही यह भी विश्लेषण किया जाएगा कि ये योजनाएं भारतीय समाज में समानता और न्याय सुनिश्चित करने में कितनी सफल रही हैं।

डॉ. अंबेडकर के विचार और उनकी प्रासंगिकता आज के समय में सामाजिक आर्थिक और राजनीतिक सुधारों के लिए प्रेरणा के स्रोत हैं। यह शोध-पत्र अंबेडकर की वैचारिक विरासत और वर्तमान नीतिगत परिदृश्य के बीच पुल का कार्य करेगा जिससे यह स्पष्ट किया जा सके कि भारत एक समतामूलक और न्यायसंगत समाज के निर्माण की दिशा में कितनी प्रगति कर रहा है।

अंबेडकर का सामाजिक न्याय का दृष्टिकोण:

डॉ. भीमराव अंबेडकर का सामाजिक न्याय का दृष्टिकोण भारतीय समाज की गहरी जड़ें जमाए हुए असमानता, जातिगत भेदभाव और लैंगिक असमानता को समाप्त करने पर केंद्रित था। उनके विचार न केवल राजनीतिक और संवैधानिक उपायों के माध्यम से इन समस्याओं को हल करने की दिशा में प्रेरित थे बल्कि समाज के वंचित और शोषित वर्गों को सशक्त बनाकर समतामूलक समाज की स्थापना के लिए भी मार्गदर्शन प्रदान करते हैं। उनका दृष्टिकोण समाज में न्याय, समानता और बंधुत्व के मूल्यों को स्थापित करने का एक व्यापक प्रयास था। उनके सामाजिक न्याय के दृष्टिकोण के मुख्य आयाम निम्नलिखित हैं-

1. समान अधिकार की स्थापना: डॉ. अंबेडकर का मानना था कि सभी नागरिकों को शिक्षा, रोजगार और सामाजिक प्रतिष्ठा में समान अवसर मिलना चाहिए। उन्होंने तर्क दिया कि शिक्षा को समान रूप से सभी तक पहुंचाना सामाजिक न्याय की दिशा में पहला और सबसे महत्वपूर्ण कदम है।

अंबेडकर ने यह कहा कि यदि किसी व्यक्ति को अपनी क्षमताओं और योग्यताओं का प्रदर्शन करने का समान अवसर नहीं दिया जाता तो यह लोकतंत्र के मूल्यों के साथ विश्वासघात होगा। उनके प्रयासों के परिणामस्वरूप भारत के संविधान में समानता का अधिकार (अनुच्छेद 14 से 18) और शिक्षा का अधिकार (अनुच्छेद 21ए) जैसे प्रावधान जोड़े गए।

2. आरक्षण प्रणाली का निर्माण: डॉ. अंबेडकर ने अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और अन्य पिछड़े वर्गों के लिए आरक्षण की अवधारणा प्रस्तुत की। यह प्रणाली न केवल रोजगार और शिक्षा के क्षेत्र में बल्कि विधायिका में भी प्रतिनिधित्व सुनिश्चित करती है। उन्होंने महसूस किया कि सदियों से शोषित और उपेक्षित समुदायों को समान स्तर पर लाने के लिए विशेष अवसर और संरक्षण आवश्यक हैं। यह कदम उनकी दृष्टि में समाज में संरचनात्मक असमानता को समाप्त करने और वंचित वर्गों के लिए सामाजिक और आर्थिक न्याय सुनिश्चित करने का माध्यम था।
3. जाति उन्मूलन की वकालत: डॉ. अंबेडकर का सामाजिक न्याय का दृष्टिकोण जातिगत भेदभाव और अस्पृश्यता को समाप्त करने पर आधारित था। उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा कि जाति एक विभाजनकारी व्यवस्था है जो समाज में असमानता और शोषण को बढ़ावा देती है। अपने प्रसिद्ध ग्रंथ एन्हिलेशन ऑफ कास्ट में उन्होंने जाति प्रथा को समाप्त करने और समतामूलक समाज की स्थापना की आवश्यकता पर बल दिया। उनका यह मानना था कि केवल कानूनों से जातिगत भेदभाव को समाप्त करना पर्याप्त नहीं है बल्कि सामाजिक सोच और सांस्कृतिक बदलाव भी उतने ही आवश्यक हैं।
4. संवैधानिक उपायों का प्रवर्तन: अंबेडकर ने संविधान के माध्यम से समानता, स्वतंत्रता और सामाजिक न्याय के सिद्धांतों को लागू करने का मार्ग प्रशस्त किया। उन्होंने अनुसूचित जातियों और अन्य कमजोर वर्गों के अधिकारों की रक्षा के लिए कई संवैधानिक प्रावधान जोड़े। अनुच्छेद 17 के तहत अस्पृश्यता को समाप्त करना और अनुच्छेद 15 के माध्यम से भेदभाव को रोकना उनके प्रयासों का हिस्सा था। उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि केवल संवैधानिक अधिकार प्रदान करना पर्याप्त नहीं है बल्कि इन अधिकारों का कार्यान्वयन सुनिश्चित करना भी जरूरी है।
5. लैंगिक समानता की वकालत: अंबेडकर ने लैंगिक समानता के लिए भी महत्वपूर्ण योगदान दिया। उन्होंने महिलाओं के अधिकारों की रक्षा और उन्हें समाज में समान स्थान दिलाने के लिए काम किया। हिंदू कोड बिल के निर्माण में उनकी प्रमुख भूमिका थी जिसका उद्देश्य महिलाओं को संपत्ति के अधिकार और तलाक जैसे अधिकार प्रदान करना था।
6. आर्थिक समानता का समर्थन: डॉ. अंबेडकर ने सामाजिक न्याय के साथ-साथ आर्थिक न्याय को भी समान महत्व दिया। उनका मानना था कि आर्थिक संसाधनों तक समान पहुंच के बिना समाज में सच्ची समानता स्थापित नहीं की जा सकती। उन्होंने औद्योगिक श्रमिकों के अधिकारों की रक्षा के लिए श्रम सुधारों और न्यूनतम मजदूरी की वकालत की।

सबका साथ सबका विकास अभियान: एक अवलोकन

सबका साथ सबका विकास अभियान जिसे प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने 2014 में प्रारंभ किया भारत के समावेशी और सतत विकास के लिए एक व्यापक दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है। इस अभियान का उद्देश्य समाज के हर वर्ग को विशेषकर वंचित और शोषित समुदायों को मुख्यधारा में लाना और उन्हें आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक रूप से सशक्त करना है। यह अभियान समावेशी विकास की दिशा में भारत की प्रतिबद्धता को रेखांकित करता है और गरीबी, असमानता और सामाजिक भेदभाव को समाप्त करने के लिए योजनाओं और नीतियों का एक समग्र ढांचा प्रदान करता है। इसके तहत गरीब और वंचित तबकों को सशक्त बनाने के लिए अनेक योजनाओं की शुरुआत की गई जो इस अभियान के मुख्य घटकों के रूप में कार्य करती हैं।

1. प्रधानमंत्री जन धन योजना: प्रधानमंत्री जन धन योजना का उद्देश्य वंचित वर्गों को वित्तीय समावेशन प्रदान करना और बैंकिंग सुविधाओं तक उनकी पहुंच सुनिश्चित करना है। यह योजना गरीबों को बैंकों से जोड़ने और उन्हें बचत, क्रेडिट और बीमा सेवाओं का लाभ देने पर केंद्रित है। इसके माध्यम से समाज के निम्न वर्ग विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले लोगों को बैंक खाता खोलने, बीमा कवरेज और क्रेडिट तक पहुंच प्रदान की गई। इससे न केवल उनकी वित्तीय स्थिति में सुधार हुआ बल्कि उन्हें आर्थिक प्रणाली का एक अभिन्न हिस्सा बनने का अवसर भी मिला।
2. आवास और शौचालय योजनाएँ: गरीब और वंचित परिवारों को बुनियादी सुविधाएँ प्रदान करने के उद्देश्य से इस अभियान के तहत प्रधानमंत्री आवास योजना और स्वच्छ भारत मिशन जैसी पहल की गई। प्रधानमंत्री आवास योजना का लक्ष्य प्रत्येक परिवार को पक्का घर उपलब्ध कराना है जबकि स्वच्छ भारत मिशन का उद्देश्य देश भर में शौचालयों का निर्माण करना और खुले में शौच की समस्या को समाप्त करना है। इन योजनाओं ने समाज के वंचित वर्गों के जीवन स्तर को सुधारने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है और उनके जीवन में सम्मान और सुविधा का अनुभव बढ़ाया है।
3. उज्ज्वला योजना: ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं को स्वच्छ ऊर्जा प्रदान करने के लिए प्रधानमंत्री उज्ज्वला योजना की शुरुआत की गई। इस योजना का उद्देश्य गरीबी रेखा के नीचे जीवनयापन करने वाले परिवारों को मुफ्त गैस कनेक्शन प्रदान करना है। परंपरागत चूल्हे पर खाना बनाने से उत्पन्न धुएं के कारण महिलाओं और बच्चों के स्वास्थ्य पर पड़ने वाले प्रतिकूल प्रभाव को ध्यान में रखते हुए इस योजना ने उन्हें स्वच्छ और सुरक्षित खाना पकाने की सुविधा प्रदान की। इससे न केवल महिलाओं के स्वास्थ्य में सुधार हुआ बल्कि पर्यावरण संरक्षण में भी योगदान मिला।
4. स्किल इंडिया और डिजिटल इंडिया: इस अभियान के तहत स्किल इंडिया और डिजिटल इंडिया जैसे कार्यक्रम शुरू किए गए जिनका उद्देश्य युवाओं के कौशल विकास और डिजिटल साक्षरता को बढ़ावा देना है। स्किल इंडिया अभियान ने युवाओं को रोजगार के लिए आवश्यक कौशल प्रदान किया जिससे उन्हें स्वरोजगार और नौकरियों के बेहतर अवसर मिले। वहीं डिजिटल इंडिया अभियान ने ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में डिजिटल तकनीक की पहुंच बढ़ाकर समाज के हर वर्ग को डिजिटल अर्थव्यवस्था का हिस्सा बनने का अवसर दिया। इन पहलों ने देश में तकनीकी जागरूकता और सशक्तिकरण को बढ़ावा दिया।
5. दलित उद्यमिता विकास: अनुसूचित जाति और जनजाति समुदायों के आर्थिक सशक्तिकरण के लिए दलित उद्यमिता विकास को प्रोत्साहन दिया गया। इसके अंतर्गत इन वर्गों के उद्यमियों को वित्तीय सहायता प्रशिक्षण और बाजार तक पहुंच प्रदान की गई। इसका उद्देश्य वंचित समुदायों के आर्थिक विकास को बढ़ावा देना और उनकी भागीदारी को राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में सुनिश्चित करना था।

अंबेडकर के विचारों से अभियान की संगति

डॉ. भीमराव अंबेडकर का सामाजिक न्याय का दृष्टिकोण और मोदी सरकार का सबका साथ सबका विकास अभियान दोनों ही वंचित वर्गों के सशक्तिकरण और समावेशी विकास की दिशा में प्रेरित हैं। अंबेडकर ने समाज के शोषित और उपेक्षित वर्गों को मुख्यधारा में लाने के लिए समतामूलक समाज की स्थापना की आवश्यकता पर बल दिया। मोदी सरकार का यह अभियान उनकी नीतियों और योजनाओं के माध्यम से अंबेडकर के सामाजिक न्याय के विचारों के कई पहलुओं को प्रतिबिम्बित करता है। दोनों के बीच कुछ प्रमुख समानताएँ इस प्रकार हैं:

1. समावेशिता पर जोर: डॉ. अंबेडकर का सामाजिक न्याय का मूलमंत्र था- जाति, धर्म और वर्ग के भेदभाव को समाप्त करके सभी को समान अधिकार प्रदान करना। उन्होंने सामाजिक समानता और समावेशिता की आवश्यकता पर बल दिया। इसी सिद्धांत के अनुरूप सबका साथ सबका विकास अभियान भी एक ऐसा समावेशी दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है जो देश के हर नागरिक को विकास प्रक्रिया का अभिन्न हिस्सा बनाता है।

प्रधानमंत्री जन धन योजना और आयुष्मान भारत जैसी योजनाएँ समाज के उन वर्गों को आर्थिक और स्वास्थ्य सुरक्षा प्रदान करती हैं जो अब तक मुख्यधारा से दूर रहे हैं। ये नीतियाँ अंबेडकर की समावेशी सोच की व्यावहारिक अभिव्यक्ति के रूप में देखी जा सकती हैं।

2. वंचित वर्गों का सशक्तिकरण: डॉ. अंबेडकर का मानना था कि सामाजिक अन्याय को समाप्त किए बिना वंचित वर्गों का सशक्तिकरण संभव नहीं है। उन्होंने आरक्षण और विशेष अवसरों के माध्यम से इन वर्गों को आगे बढ़ाने का प्रयास किया। इसी दृष्टिकोण के अनुरूप मोदी सरकार की योजनाएँ जैसे उज्ज्वला योजना और प्रधानमंत्री आवास योजना वंचित वर्गों के जीवन स्तर को बेहतर बनाने का प्रयास करती हैं।

उज्ज्वला योजना ने ग्रामीण और वंचित महिलाओं को स्वच्छ ईंधन प्रदान कर न केवल उनके स्वास्थ्य में सुधार किया बल्कि उन्हें रसोई में धुएँ से मुक्त जीवन भी दिया। इसी तरह आवास योजना ने गरीबों के लिए पक्के मकान उपलब्ध कराकर उन्हें सुरक्षित और सम्मानजनक जीवन का अधिकार प्रदान किया।

3. शिक्षा और कौशल विकास: डॉ. अंबेडकर ने शिक्षा को सामाजिक उत्थान और सशक्तिकरण का सबसे प्रभावी साधन माना। उन्होंने कहा था शिक्षित बनो संगठित बनो और संघर्ष करो। उनके इसी विचार को ध्यान में रखते हुए मोदी सरकार ने स्किल इंडिया और डिजिटल इंडिया जैसे कार्यक्रमों की शुरुआत की।

स्किल इंडिया अभियान युवाओं को रोजगारपरक कौशल प्रदान करके उन्हें आत्मनिर्भर बना रहा है। डिजिटल इंडिया ने ग्रामीण और वंचित क्षेत्रों में तकनीकी पहुंच बढ़ाकर उन्हें डिजिटल अर्थव्यवस्था का हिस्सा बनाया है। ये प्रयास अंबेडकर की उस सोच को आगे बढ़ाते हैं जिसमें शिक्षा और ज्ञान को सशक्तिकरण का आधार माना गया।

4. सामाजिक और आर्थिक समानता: अंबेडकर ने आर्थिक समानता को सामाजिक समानता का अनिवार्य हिस्सा माना। उनका मानना था कि यदि समाज के आर्थिक संसाधनों तक सभी की समान पहुंच नहीं होगी तो सामाजिक न्याय की स्थापना अधूरी रह जाएगी। मोदी सरकार की जन-धन योजना और मुद्रा योजना इसी दिशा में कार्य करती हैं।

जन-धन योजना ने वंचित वर्गों को वित्तीय समावेशन प्रदान किया जिससे वे बैंकिंग प्रणाली से जुड़ सकें। वहीं मुद्रा योजना ने छोटे व्यवसायों को वित्तीय सहायता प्रदान कर स्वरोजगार और उद्यमिता को बढ़ावा दिया। ये पहल आर्थिक समानता स्थापित करने की दिशा में महत्वपूर्ण कदम हैं।

5. लैंगिक समानता और महिला सशक्तिकरण: डॉ. अंबेडकर ने महिलाओं को समान अधिकार प्रदान करने के लिए हिंदू कोड बिल की वकालत की थी। उनका मानना था कि समाज में लैंगिक समानता के बिना न्याय और विकास अधूरा है। मोदी सरकार की योजनाएँ जैसे बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ और उज्ज्वला योजना अंबेडकर की इस सोच को आगे बढ़ाती हैं।

बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ अभियान ने लड़कियों की शिक्षा और कल्याण पर ध्यान केंद्रित किया जबकि उज्ज्वला योजना ने महिलाओं को स्वच्छ ईंधन उपलब्ध कराकर उनके जीवन को सरल और स्वास्थ्यवर्धक बनाया। ये नीतियाँ महिला सशक्तिकरण की दिशा में महत्वपूर्ण योगदान देती हैं।

अभियान की आलोचना और चुनौतियाँ:

सबका साथ सबका विकास अभियान ने समावेशी विकास और वंचित वर्गों के सशक्तिकरण की दिशा में महत्वपूर्ण पहल की है लेकिन इसके प्रभावशीलता पर कई आलोचनाएँ और चुनौतियाँ सामने आई हैं। जबकि इस अभियान का उद्देश्य समतामूलक समाज की स्थापना करना है वास्तविकता में इसकी कार्यान्वयन प्रक्रिया और परिणाम कई क्षेत्रों में अपेक्षाओं से पीछे रह जाते हैं। इन आलोचनाओं और चुनौतियों को समझना आवश्यक है ताकि इन कमियों को दूर कर इसे और प्रभावी बनाया जा सके।

1. जातिगत भेदभाव का जारी रहना: हालांकि अभियान समावेशिता और समानता की बात करता है लेकिन ग्रामीण भारत में जातिगत भेदभाव अब भी एक कड़वी सच्चाई है। अंबेडकर द्वारा वांछित जाति उन्मूलन का लक्ष्य अभी तक पूरी तरह से हासिल नहीं किया जा सका है।

विभिन्न योजनाओं जैसे आवास और शौचालय निर्माण में कई बार जातिगत पूर्वाग्रहों के कारण वंचित वर्गों को उचित लाभ नहीं मिल पाता। उदाहरण के लिए अनुसूचित जाति और जनजाति समुदायों के लिए बनाए गए आवास या अन्य सुविधाएँ अक्सर भेदभाव का शिकार होती हैं जिससे सामाजिक न्याय का उद्देश्य बाधित होता है।

2. संसाधनों की कमी: अभियान के प्रभावी क्रियान्वयन के लिए पर्याप्त वित्तीय और मानव संसाधनों की आवश्यकता होती है। हालाँकि कई योजनाएँ संसाधनों की कमी के कारण अपनी पूरी क्षमता से कार्य नहीं कर पातीं।

प्रधानमंत्री जन धन योजना और उज्ज्वला योजना जैसे कार्यक्रमों ने एक बड़ा आधार तैयार किया है लेकिन उनकी पहुंच को बनाए रखने और विस्तार करने के लिए जरूरी धनराशि और प्रशिक्षित जनशक्ति का अभाव है। इसके अलावा निगरानी और पारदर्शिता सुनिश्चित करने के लिए तकनीकी और प्रशासनिक संसाधनों का भी अभाव है।

3. लाभ वितरण में असमानता और भ्रष्टाचार: कई रिपोर्ट्स और अध्ययन यह इंगित करते हैं कि योजनाओं के लाभ वितरण में असमानता और भ्रष्टाचार अब भी एक बड़ी चुनौती है। जरूरतमंद और वंचित वर्ग जिनके लिए ये योजनाएँ बनाई गई हैं उन तक इनका लाभ पहुँचने में कई बार बाधाएँ उत्पन्न होती हैं।

वित्तीय समावेशन योजनाओं जैसे मुद्रा योजना के तहत दिए गए ऋणों में पारदर्शिता की कमी और शक्तिशाली वर्गों द्वारा उनका दुरुपयोग एक आम समस्या है। इसके अलावा लाभार्थियों की पहचान और चयन की प्रक्रिया में भी पक्षपात और भ्रष्टाचार की शिकायतें सामने आती हैं।

4. शहरी और ग्रामीण असंतुलन: सबका साथ सबका विकास अभियान के अंतर्गत शुरू की गई कई योजनाएँ शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों के बीच समान रूप से प्रभावी नहीं हैं। डिजिटल इंडिया और स्किल इंडिया जैसी पहल शहरी क्षेत्रों में अधिक प्रभावी रही हैं जबकि ग्रामीण क्षेत्रों में इनकी पहुँच और प्रभाव सीमित है।

ग्रामीण क्षेत्रों में बुनियादी ढाँचे की कमी जैसे बिजली इंटरनेट और परिवहन इन योजनाओं के क्रियान्वयन में बाधा उत्पन्न करती है। डिजिटल तकनीक पर आधारित योजनाएँ जैसे डिजिटल इंडिया ग्रामीण भारत में तकनीकी साक्षरता और संसाधनों की कमी के कारण अपेक्षित सफलता नहीं प्राप्त कर सकी हैं।

5. महिला सशक्तिकरण में बाधाएँ: हालांकि उज्ज्वला योजना और बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ जैसी पहलें महिला सशक्तिकरण की दिशा में महत्वपूर्ण कदम हैं लेकिन इनका प्रभाव सभी क्षेत्रों और समुदायों में समान रूप से नहीं देखा गया है। सामाजिक रूढ़िवादिता और पितृसत्तात्मक सोच अब भी महिलाओं के पूर्ण सशक्तिकरण में बाधा उत्पन्न करती है।

ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाएँ अब भी शिक्षा और स्वास्थ्य सेवाओं तक समान पहुँच से वंचित हैं। इसके अलावा उज्ज्वला योजना के तहत दिए गए एलपीजी कनेक्शन का नियमित उपयोग कई बार आर्थिक कारणों से संभव नहीं हो पाता क्योंकि रिफिलिंग की लागत गरीब परिवारों के लिए वहन करना कठिन होता है।

6. योजनाओं की निरंतरता और प्रभावशीलता का अभाव: अभियान के तहत शुरू की गई योजनाओं का दीर्घकालिक प्रभाव सुनिश्चित करना एक बड़ी चुनौती है। कई योजनाएँ शुरुआती चरण में तो प्रभावी साबित होती हैं लेकिन उनके सतत क्रियान्वयन और मॉनिटरिंग का अभाव उन्हें अल्पकालिक बना देता है।

इसके अलावा योजनाओं की सफलता के लिए जन जागरूकता और सहभागिता आवश्यक है लेकिन इनमें कई बार जनता की भागीदारी और जानकारी का अभाव देखा जाता है।

निष्कर्ष और सिफारिशें:

डॉ. भीमराव अंबेडकर का सामाजिक न्याय का दृष्टिकोण और मोदी सरकार का सबका साथ सबका विकास अभियान दोनों ही भारत के वंचित वर्गों के सशक्तिकरण और समावेशी विकास की दिशा में महत्वपूर्ण कदम हैं। अंबेडकर का दृष्टिकोण यह था कि समाज में समानता और न्याय सुनिश्चित किए बिना एक सच्चा लोकतंत्र संभव नहीं है और मोदी सरकार का अभियान इसी उद्देश्य को पूरा करने के लिए कई योजनाओं के माध्यम से कार्य कर रहा है। दोनों ही दृष्टिकोणों में वंचित वर्गों को मुख्यधारा में लाने की कोशिश की जा रही है लेकिन इन योजनाओं को अधिक प्रभावी बनाने के लिए कुछ सुधारों की आवश्यकता है।

1. नीतियों का विकेंद्रीकरण: एक महत्वपूर्ण सुधार जो सबका साथ सबका विकास अभियान को और अधिक प्रभावी बना सकता है वह है नीतियों का विकेंद्रीकरण। योजनाओं का क्रियान्वयन जब तक स्थानीय स्तर पर न हो तब तक उनका प्रभाव सीमित रहता है। स्थानीय सरकारी संस्थाओं, पंचायतों और नगर निगमों को योजनाओं के कार्यान्वयन में शामिल करना चाहिए। यह सुनिश्चित करेगा कि योजनाओं का लाभ सीधे तौर पर वंचित वर्गों तक पहुँचे और उनका प्रभाव स्थानीय जरूरतों के अनुसार हो।

इसके साथ ही विभिन्न समुदायों की विशिष्ट आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए योजनाओं का निर्माण और क्रियान्वयन किया जा सकता है।

2. सामाजिक जागरूकता: जातिगत भेदभाव को समाप्त करने के लिए सामाजिक जागरूकता अभियान अत्यंत आवश्यक है। अंबेडकर ने हमेशा जातिवाद के उन्मूलन की बात की थी और यह तभी संभव है जब समाज के हर वर्ग को इसके दुष्परिणामों से अवगत कराया जाए। इस हेतु सरकारी और गैर-सरकारी संगठनों को एकजुट होकर व्यापक जागरूकता अभियान चलाने की आवश्यकता है। इन अभियानों में शिक्षा, मीडिया और स्थानीय सामाजिक समूहों का महत्वपूर्ण योगदान हो सकता है।

इसके अलावा एक संवेदनशील और समावेशी समाज के निर्माण के लिए बच्चों और युवाओं को प्रारंभिक शिक्षा से ही सामाजिक न्याय और समानता के महत्व के बारे में बताया जाए।

3. स्वतंत्र निगरानी तंत्र: योजनाओं के प्रभावी क्रियान्वयन और पारदर्शिता सुनिश्चित करने के लिए एक स्वतंत्र निगरानी तंत्र का निर्माण किया जाना चाहिए। भ्रष्टाचार और पक्षपात की संभावना को कम करने के लिए ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए जो योजनाओं के लाभार्थियों की वास्तविक स्थिति की निगरानी करती हो।

इस तंत्र को तकनीकी रूप से सक्षम बनाना होगा ताकि इसमें वास्तविक समय में फीडबैक प्राप्त हो सके और किसी भी प्रकार की गड़बड़ी का तत्काल समाधान किया जा सके। इस प्रक्रिया में नागरिकों को भी शामिल किया जाए जिससे उन्हें योजनाओं की निगरानी और रिपोर्टिंग का अधिकार मिले।

4. शिक्षा पर जोर: अंबेडकर ने हमेशा शिक्षा को समाज में बदलाव का सबसे प्रभावी माध्यम माना था। इसलिए शिक्षा और कौशल विकास कार्यक्रमों को सुदृढ़ बनाना अत्यंत आवश्यक है। स्किल इंडिया और शिक्षा के अधिकार जैसे कार्यक्रमों को ग्रामीण और दूरदराज क्षेत्रों तक पहुँचाना चाहिए।

इसके लिए शिक्षा के बुनियादी ढाँचे में सुधार की आवश्यकता है ताकि हर बच्चे को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा मिल सके। साथ ही अधिक से अधिक छात्रों को उच्च शिक्षा और पेशेवर कौशल हासिल करने के अवसर दिए जाएं जिससे वे रोजगार बाजार में प्रतिस्पर्धी बन सकें।

5. लक्षित विकास: वंचित समुदायों को प्राथमिकता देना भी एक आवश्यक सुधार है। विशेष रूप से अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और अन्य पिछड़े वर्गों के लिए बनाई गई योजनाओं को बिना किसी भेदभाव के लागू करना होगा। इन वर्गों के लिए विशेष योजनाओं और कार्यक्रमों को बढ़ावा दिया जाना चाहिए ताकि वे समाज के मुख्यधारा में समाहित हो सकें।

इसके अतिरिक्त इन वर्गों के लिए वित्तीय और सामाजिक सहायता योजनाओं की व्यवस्था को सरल और प्रभावी बनाने की जरूरत है।

निष्कर्ष:

डॉ. भीमराव अंबेडकर का सामाजिक न्याय का दृष्टिकोण और मोदी सरकार का सबका साथ सबका विकास अभियान दोनों ही भारत को एक समतामूलक और समावेशी समाज की ओर अग्रसर करने के लिए महत्वपूर्ण कदम हैं। यदि सबका साथ सबका विकास अभियान डॉ. अंबेडकर के सिद्धांतों के अनुरूप कार्यान्वित होता है तो यह निश्चित ही वंचित वर्गों को मुख्यधारा में लाने और समाज में समता और न्याय स्थापित करने में सहायक हो सकता है।

हालांकि इस दिशा में कुछ चुनौतियाँ और बाधाएँ हैं जिनमें जातिगत भेदभाव, संसाधनों की कमी और योजनाओं का असमान वितरण प्रमुख हैं। इन चुनौतियों का समाधान करने के लिए योजनाओं का विकेंद्रीकरण, सामाजिक जागरूकता बढ़ाना और स्वतंत्र निगरानी तंत्र की आवश्यकता है। साथ ही शिक्षा और कौशल विकास पर अधिक जोर देना और लक्षित विकास कार्यक्रमों के माध्यम से समाज के सबसे वंचित समुदायों को प्राथमिकता देना अत्यंत आवश्यक है।

समाज के हाशिये पर पड़े वर्गों को सशक्त करने के लिए निरंतर सुधार और सही नीतियों की आवश्यकता होगी। यदि ये सुधार सही दिशा में किए जाते हैं तो हम डॉ. अंबेडकर के सामाजिक न्याय और समानता के आदर्शों को साकार कर सकते हैं। इससे न केवल एक समावेशी समाज का निर्माण होगा बल्कि भारतीय लोकतंत्र भी और सशक्त होगा जहाँ हर वर्ग को समान अवसर मिलेंगे और सभी को न्याय मिलेगा।

संदर्भ:

1. अंबेडकर, बी.आर. *Jat-Pat Ka Vinash (Annihilation of Caste)*, Buddham Publisher, 8 July 2017 ISBN-13 978-9385582110
2. KUMAR, DILEEP. (March-April 2024) डॉ. भीमराव अंबेडकर समाज सुधारक एवं सामाजिक चिंतक का भारतीय लोकतंत्र में योगदान IJFMR Volume 6, Issue 2, Retrieve From URL भीमराव अंबेडकर समाज सुधारक एवं सामाजिक चिंतक का भारतीय ...
3. जाफ़्रेलोट, क्रिस्टोफ. (2005) डॉ. अंबेडकर और अछूतता: भारतीय जातिवाद से संघर्ष. कोलंबिया यूनिवर्सिटी प्रेस।
4. Ambedkar, B. R. (1990). Dr. Babasaheb Ambedkar: Writings and Speeches, Vol. 7. *Government of Maharashtra, Bombay*, 243. Dr. Ambedkar Foundation Ministry of Social Justice & Empowerment, Govt. of India Retrieve from URL <https://hdl.handle.net/10535/10595>

URLs of some Websites:

1. 'Sabka Sath, Sabka Vikas, Sabka Vishwas and Sabka Prayas' is ...
2. प्रधानमंत्री जन धन योजना
3. Swachh Bharat Mission - Gramin, Department of Drinking Water ...
4. प्रधानमंत्री उज्ज्वला योजना योजना क्या है घू ऑनलाइन आवेदन कैसे ...
5. स्किल इंडिया डिजिटल और युवाओं की रोजगार क्षमता में सुधार
Posted On: 22 JUL 2024 3:36PM by PIB Delhi
6. प्रधानमंत्री आयुष्मान भारत योजना क्या है? क्या है इस योजना का ण्ण
7. About PM-JAy - National Health Authority | GOI

श्रीमद्भगवद्गीता में अनुस्यूत कर्मयोगः एक समीक्षात्मक अध्ययन

डॉ० भैरवी

अतिथि सहायक प्राध्यापिका, संस्कृत विभाग, बी०आर०ए० बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर, बिहार

‘श्रीमद्भगवद्गीता’ महाभारत के भीष्म-पर्व का अंश है, जो कि अट्टारह अध्यायों में संकलित है। भगवान श्रीकृष्ण तथा किङ्कर्तव्यविमूढ एवं मोह के कारण किङ्कर्तव्य-पथ से विचलित अर्जुन के संवाद-रूप में रचित ‘श्रीमद्भगवद्गीता’ भारतीय वाङ्मय की अमूल्य निधि है। गीता की प्रसिद्धि का मूल कारण यह है कि जिन दार्शनिक एवं गूढ़ सिद्धान्तों का प्रतिपादन वेदों, उपनिषदों, आरण्यको इत्यादि में श्लिष्ट-क्लिष्ट भाषा में हुआ है, गीता में उनका प्रतिपादन अत्यंत सरल, सहज रूप में हुआ है। यही कारण है कि गीता में प्रतिपादित जीवन-दर्शन को न केवल भारतीय जनमानस द्वारा अपितु वैश्विक स्तर पर भी अतयंत श्रद्धा की दृष्टि से देखा जाता है। जैसा कि पाश्चात्य विद्वान हम्बोल्ट ने गीता से प्रभावित होकर कहा है- किसी ज्ञात भाषा में उपलब्ध गीतों में सम्भवतः सबसे अधिक सुन्दर और दार्शनिक गीता है। गीता की महिमा एवं गुणवत्ता के कारण ही इसे मनुष्यमात्र के उद्धार के लिए रचित ‘प्रस्थानत्रयी’ में ब्रह्मसूत्र एवं उपनिषद के साथ स्थान दिया गया है।

यद्यपि गीता में मानव जीवन से संबंधित अनेकानेक धार्मिक तथा दार्शनिक सिद्धान्तों का विवेचन किया गया है, किन्तु वास्तव में उसका उद्देश्य मनुष्य को उसके कर्तव्य का ज्ञान कराना ही है, जिसे गीता में ‘कर्मयोग’ के नाम से अभिहित किया गया है। लोकमान्यतिलक, अरविन्द प्रभृति विद्वान् गीता को कर्मयोग का शास्त्र मानते हैं। ‘कर्मयोग’ शब्द दो शब्दों के योग से बना है ‘कर्म’ एवं ‘योग’। साधारणतः ‘कर्म’ का अर्थ है ‘काम’ एवं ‘योग’ का अर्थ है ‘जोड़ना’, किन्तु गीता के परिप्रेक्ष्य में इस ‘कर्म’ एवं ‘योग’ शब्द का विशेष अर्थ है। चूँकि गीता वर्ण-व्यवस्था में विश्वास करती है, इसलिए यहाँ ‘कर्म’ शब्द का अर्थ है, ‘अपने वर्णाश्रम धर्म से संबंधित कर्म’ एवं ‘योग’ शब्द का अर्थ है, ‘उसमें अपने को नियुक्त करना’। इस प्रकार ‘कर्मयोग’ शब्द का अर्थ हुआ- ‘अपने वर्णाश्रम धर्म के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति द्वारा कार्य करना। यहाँ यह ध्यातव्य है कि गीता में वर्णाश्रम व्यवस्था का विधान कर्म के आधार पर किया गया है, जन्म के आधार पर नहीं -

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः।

तस्य कर्तारमपि मां विद्ध्यकर्तारमव्ययम्॥¹

इस प्रकार गीता में कर्तव्य कर्म के विधिवत सम्पादन को मनुष्य की निःश्रेयस सिद्धि के लिए अविचार्य माना गया है। गीता के अनुसार मनुष्य के जीवन में कर्म अनिवार्य है। कोई भी मनुष्य चाहे वह विद्वान हो, मूर्ख हो, सबल हो, निर्बल हो, उसे कर्म करना ही पड़ता है, एवं ऐसा वह प्रकृतिजन्य गुणों से वशीभूत होकर करता है-

न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्।

कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः॥²

अतएव गीता के अनुसार कर्म के बिना व्यक्ति एक क्षण भी नहीं रह सकता, ऐसा निश्चित मत है। अतएव ऐसी परिस्थिति में एक प्रश्न स्वाभाविक रूप से उपस्थित होता है, कि मनुष्य के द्वारा किस प्रकार का कर्म करना चाहिए 2 कर्म दो प्रकार के होते हैं - सकाम एवं निष्काम। इसमें सकाम कर्म करने से मनुष्य जन्म-मृत्यु के चक्र में संसरण करता रहता है, उर्थात विभिन्न प्रकार की कामनाओं एवं इच्छाओं से युक्त होकर कार्य करता हुआ मनुष्य फल के रूप में पाप एवं पुण्य का भोग करता हुआ विभिन्न योनियों में संसरण करता रहता है। किन्तु ‘निष्काम कर्म’ के अनुष्ठान से मनुष्य को कर्म-बन्धन नहीं होता है, एवं न ही वह जन्म-मृत्यु के चक्रपाश में बँधता है। ‘निष्काम कर्म’ से तात्पर्य ‘कामना’ एवं ‘फल की इच्छा’ से रहित होकर कार्य करने से है। इस प्रकार कर्मफल का परित्याग करके निष्काम भाव से स्ववर्णाश्रमधर्म के अनुसार किया गया कर्म ही ‘निष्काम कर्म’ है, जिसे गीता में ‘कर्मयोग’ की संज्ञा दी गई है। गीता में कर्मयोग का मूलमंत्र अधोलिखित श्लोक है-

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।

मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोस्त्वकर्मणि॥³

अर्थात् मनुष्य का अधिकार केवल कर्तव्य कर्म करने में है, कर्म के फल में नहीं, क्योंकि मनुष्य केवल अपने वर्णाश्रमधर्म के अनुसार ही कर्तव्य-कर्म करने को स्वतंत्र है फल तो ईश्वर के अधीन है। पुनः गीता यह भी कहती है कि मनुष्य को कर्मफल का हेतु भी नहीं बनना चाहिए अर्थात् मनुष्य की शरीर, इन्द्रिय,

मन, बुद्धि आदि कर्म-उपादान के साथ किसी भी प्रकार की संलिप्तता नहीं होनी चाहिए। पुनः गीता मनुष्य को कर्म न करने में आसक्ति से वारित करती है, क्योंकि कर्म न करने से मनुष्य में आलस्य प्रमाद आदि तामसिक वृत्तियों का विकास होगा, एवं वह कभी संसारिक बन्धन से मुक्त नहीं हो सकेगा।

उपर्युक्त श्लोक के विवेचन से स्पष्ट है कि गीता जहाँ कर्मयोगी को कर्म-फल की इच्छा से रहित होकर कर्म करने के लिए प्रवृत्त करती है, वहीं कर्म न करने के निवृत्ति-मार्ग से भी वारित करती है। अर्थात् गीता कर्मयोग के माध्यम से प्रवृत्ति एवं निवृत्ति में सामंजस्य स्थापित कर कर्म-फल की इच्छा से रहित होकर स्ववर्णाश्रमधर्म के अनुसार कर्तव्य-कर्म करने को प्रेरित करती है। इस प्रकार किए गए कर्म में फलोत्पादिका शक्ति का अभाव होता है। फलस्वरूप इन कर्मों से बन्धन नहीं होता है। जिस प्रकार भूँजे हुए बीज में वपन की शक्ति नहीं होती है, उसी प्रकार कामनारहित एवं कर्म-फल-इच्छारहित कर्म में बन्धन की शक्ति नहीं होती है। ऐसा कर्म बन्धन का साधक नहीं अपितु बाधक होता है।

अतएव गीता कर्मयोगी को निष्काम-कर्म करने के लिए कर्तृत्वाभिमान एवं आसक्ति से रहित होकर कार्य करने को प्रेरित करती है। साधारणतः हम कर्म करते हैं, एवं अपने को कर्ता मान लेते हैं। हम ऐसा मान लेते हैं कि जो यह 'गृहीत' या 'विचारित' विषय है, इसको करने के लिए 'मैं' ही अधिकृत हूँ - यही कर्तृत्वाभिमान है। अतएव कर्मयोगी को ऐसे कर्तृत्वाभिमान से रहित होकर कर्म करना चाहिए। परन्तु साधारण मनुष्य के मन में यह संदेह होता है कि यदि मनुष्य में 'कर्तापन' न रहे, तो कर्म करने की प्रवृत्ति नहीं होगी। इसके निस्तारण हेतु गीता में कर्मयोगी को अकर्ता बनाने के लिए कर्म के पाँच कारण बताए गए हैं -

अधिष्ठानं तथा कर्ता करणं च पृथग्विधम्।

विविधश्च च पृथग्चेष्टा दैवं चात्र पञ्चमम्॥⁴

अर्थात् अधिष्ठान, कर्ता, करण, चेष्टा एवं दैव- इन पाँचों के समूह से कार्य सम्पन्न होता है। यहाँ 'अधिष्ठान' से तात्पर्य 'शरीर' से है। 'कर्ता' से तात्पर्य प्रकृति एवं प्रकृति द्वारा किए जाने वाले कार्यों से है।

करण तेरह हैं- इनमें पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ-श्रोत्र, चक्षु, त्वक्, रसना एवं घ्राण हैं, पाँच कर्मेन्द्रियाँ-पाणि, पाद वाक्, उपस्थ, पायु हैं, एवं 'मन', 'बुद्धि' तथा 'अहंकार', ये तीन अन्तःकरण हैं। इन तेरह करणों की पृथक्-पृथक् चेष्टाएँ हैं जैसे पाणि का कार्य है आदान-प्रदान करना, पाद का कार्य है गमन, वाक् का कार्य है बोलना, उपस्थ का कार्य है - मूत्र-विसर्जन, पायु का कार्य है मलत्याग। इन्हीं पंचज्ञानेन्द्रियों- श्रोत्र, चक्षु, त्वक्, रसना एवं घ्राण के क्रमशः श्रवण, दर्शन स्पर्श, स्वाद, सूँघना कार्य हैं। अन्तःकरण में उदित निश्चयात्मिका वृत्ति का नाम 'बुद्धि' है। बुद्धि में जब 'मैं' एवं मेरा यह अहंभाव उतपन्न होता है, तब उसको 'अहंकार' कहा जाता है। अन्तःकरण की संकल्पात्मिका- विकल्पात्मिका वृत्ति का नाम 'मन' है। किसी कार्य को किया जाय या न किया जाय, उसको संकल्प-विकल्प कहते हैं। यहाँ दैव से तात्पर्य पूर्वजनित कर्मों के शुभाशुभ फलों के अनुसार मनुष्य की कर्म करने में प्रवृत्ति की क्रियात्मक तीव्रता से है। इस प्रकार जब इन पाँच कारणों के द्वारा किसी कार्य का सम्पादन होता है, तो एक कर्ता को ही कारण मान लेना केवल अभिमान या अहंकार के अतिरिक्त कुछ नहीं। अतएव इस कर्तृत्वाभिमान से शून्य होकर कर्म करना ही कर्म योग है -

प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः।

अहंकारविमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते॥⁵

साधारणतः हम सुख-प्राप्ति एवं दुःखपरिहार के लिए कर्म करते हैं, अतएव कर्म का मूल कारण आसक्ति ही है। इस आसक्ति के त्याग के लिए गीता भगवदर्थ कर्म करने का निर्देश देती है। अर्थात् कर्मयोगी को यह समझना चाहिए कि 'मेरे द्वारा सम्पादित सभी कर्म भगवान के हैं', 'मैं ईश्वर के लिए भृत्यवत कर्म करता हूँ', इस प्रकार की विवेक-बुद्धि से सभी कर्मों का भार ईश्वर पर सौंप कर सब प्रकार से आशा-ममता, राग-द्वेष एवं हर्ष-शोक आदि विकारों से रहित होकर कार्य करना चाहिए-

सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ।

ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि॥⁶

मयि सर्वाणि कर्माणि संन्यस्याध्यात्मचेतसा।

निराशीनिर्ममो भूत्वा युध्यस्व विगतज्वरः॥⁷

इस प्रकार कर्मयोगी को कर्तृत्वाभिमान एवं आसक्ति से रहित होकर स्ववर्णाश्रमधर्म के अनुसार कर्म करना चाहिए। इस प्रकार कार्य करने वाले मनुष्य को कर्म-बन्धन किसी प्रकार प्रभावित नहीं करता। ऐसे निष्काम-कर्म करते हुए कर्मयोगी को परमात्मा की प्राप्ति होती है, जो कि कर्मयोग के साधना की परिणति है -

तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर।

असक्तो ह्याचरन्कर्म परमाप्नोति पूरुषः॥⁸

पुनः गीता कर्मयोग को मोक्ष या निःश्रेयस-सिद्धि के लिए केवल सैद्धान्तिक नहीं मानती। इसके अनुसार कर्मयोग बहुत पुरातन योग है, जिसके द्वारा राजा जनक जैसे अनेक कर्मयोगी महापुरुष परमात्मा को प्राप्त हो चुके हैं -

कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः।

लोकसंग्रहमेवापि संपश्यन्कर्तुमर्हसि॥⁹

अतएव वर्तमान में या भविष्य में यदि कोई कर्म-योग के द्वारा ईश्वर को प्राप्त करना चाहता है, तो उसके लिए निष्काम कर्मयोग का मार्ग सदैव प्रस्तुत है। इस प्रकार स्पष्ट है कि कर्तृत्वभिमान एवं आसक्ति से रहित होकर निष्काम भाव से स्ववर्णाश्रमधर्म के अनुसार किया गया भगवदर्थ कर्म 'कर्मयोग' है। ऐसा 'कर्मयोगी' निश्चित रूप से परमात्मा को प्राप्त कर लेता है- इसमें कोई संदेह नहीं है। अतएव कर्मयोग का मार्ग सर्वथा प्रशंसनीय है।

संदर्भ-सूची

1. श्रीमद्भगवद्गीता, गीता प्रेस, गोरखपुर 4/13
2. वही 3/5
3. वही 2/47
4. वही 18/14
5. वही 3/27
6. वही 2/28
7. वही 3/30
8. वही 3/19
9. वही 3/20

भारतीय शासन के विभिन्न रूपों का एकत्रीकरण: एक विवेचना

डॉ० क्रान्ति प्रकाश

नोवामुन्डी कॉलेज, नोवामुन्डी

सारांश

भारत के शासन संगठन के स्वरूप के विषय में यह बहुत ही महत्वपूर्ण चर्चा प्रायः राजनीति विज्ञान के छात्रों और मर्मज्ञों के बीच चलती रहती है कि भारत में शासन “संघात्मक” है कि “एकात्मक”। इसी के साथ ही साथ यह भी है कि संसदीय शासन के साथ संघात्मक शासन प्रारम्भ से ही चर्चा का विषय रहा है। प्रस्तुत शोध पत्र में हम यह अध्ययन करेंगे कि किस प्रकार सामाजिक, सांस्कृतिक विविधता को स्थानीय स्तर पर संवैधानिक शक्तियां देने के लिए संघात्मक शासन तो संकटकालीन स्थितियों से निपटने के लिए संक्रमणकालीन एकात्मक शासन के उपबन्ध किए गए हैं। अंततः देश की विविधता को राष्ट्रीय स्तर पर शासन में भागीदारी के लिए संसदीय शासन को अपनाया गया है। इस प्रकार से शोधपत्र में यह अध्ययन किया गया है कि भारतीय शासन व्यवस्था शासन का कोई विशुद्ध रूप न होकर संसदीय शासन, एकात्मक शासन और संघात्मक शासन का संश्लेषण है।

मूल शब्द: सांस्कृतिक विविधता, संघात्मक शासन, संसदीय शासन, एकात्मक शासन।

प्रस्तावना

भारतीय राजव्यवस्था के स्वरूप को लेकर राजनीति विज्ञान के अध्येताओं के बीच यह विषय चर्चित रहता है कि यहां पर संघात्मक शासन है या एकात्मक। इसी के साथ यह भी महत्वपूर्ण है कि यहां पर ब्रिटेन का अनुसरण करते हुए संसदात्मक शासन प्रणाली भी अपनाई गई है। शोध-पत्र में यह अध्ययन किया गया है कि यहां पर संविधान निर्माताओं का उद्देश्य शासन के किसी स्वरूप की शुद्धता को बनाए रखना नहीं था वरन देश की सामाजिक, सांस्कृतिक विविधता और भौगोलिक संरचना में विविधता की आवश्यकता को तथा देश की एकता और अखंडता को ध्यान में रखते हुए आवश्यकतानुसार शासन के तीन रूपों एकात्मक शासन, संघात्मक शासन, और संसदीय शासन के महत्वपूर्ण पक्षों को शामिल किया गया है।

सामाजिक-भौतिक वातावरण

सबसे पहले हम उन परिस्थितियों का अध्ययन करेंगे जो स्वतंत्रता के समय विद्यमान थीं। जैसा की हम जानते हैं कि भारत में सामाजिक-सांस्कृतिक बहुलता पाई जाती है। इसी के साथ-साथ भौगोलिक संरचना में भी विविधता पाई जाती है। इस वजह से संविधान निर्माताओं के सामने एक प्रमुख समस्या थी कि इस नव स्वतंत्र देश की विविधता को कैसे मान्यता प्रदान की जाए, जिससे लंबे संघर्ष के पश्चात प्राप्त आजादी और अखंड भारत के लक्ष्य को भी प्राप्त किया जा सके, क्योंकि भारत आजादी के सुखद अहसास के साथ ही विभाजन की दुखद अनुभूति के दंश भी झेल रहा था। ऐसे में आवश्यकता इस बात की थी कि एक ऐसी शासन प्रणाली अपनाई जाए, जिसमें स्थानीय रचनात्मक आकांक्षाओं को सम्मान मिल सके। अपने स्तर पर शासन संचालन का अधिकार मिल सके, जिससे स्थानीय आवश्यकताओं के अनुरूप नीति निर्माण हो और उनका क्रियान्वयन भी उनकी भागीदारी से संभव हो सके। इसके अतिरिक्त आवश्यकता इस बात की भी थी कि ऐसा प्रबंध भी संविधान में हो, जिससे देश को संक्रमणकालीन स्थितियों से उबार कर उसकी एकता और अखंडता को सुरक्षित रखा जा सके। इन दोनों आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए भारत में संघात्मक शासन को अपनाया गया साथ ही साथ एकात्मक पक्षों का भी समावेश किया गया है।

इसी के साथ आवश्यकता इस बात की भी थी कि देश में विद्यमान धर्म, जाति, भाषा, क्षेत्र और लिंग की विविधता को केंद्र की सरकार में हिस्सेदार बनाया जाए, क्योंकि इस प्रकार की व्यवस्था किए जाने से संपूर्ण देश के लिए नीति निर्माण और उसके क्रियान्वयन में इन विविधताओं की सक्रिय भागीदारी सुनिश्चित की जा सकती थी। इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए संविधान निर्माताओं ने संसदीय शासन को अपनाने का निर्णय लिया, क्योंकि इसी प्रकार शासन में देश सभी जाति, धर्म, भाषा, लिंग और क्षेत्र को केन्द्रीय सरकार में भागीदारी मिल सकती है। उसका कारण यह है कि इस शासन में मंत्रिपरिषद के सदस्यों की नियुक्ति के लिए आवश्यक है कि वे संसद के सदस्य हों। साथ ही यह भी होता है कि निम्न सदन में बहुमत प्राप्त दल को ही सरकार के गठन का अधिकार होता है और बहुमत प्राप्ति के लिए आवश्यक है कि उस दल को लगभग सभी जाति, धर्म, लिंग और क्षेत्र का समर्थन प्राप्त हो। इसलिए बहुमत प्राप्त दल सरकार (प्रधानमंत्री सहित मंत्रिपरिषद) के गठन में उक्त सभी की हिस्सेदारी को सुनिश्चित करता है।

अब शोधपत्र के अगले चरण में शासन के उक्त तीनों रूपों की प्रमुख विशेषताओं का अध्ययन करेंगे, जिससे यह स्पष्ट कर सकें कि शासन के किस रूप की कौन सी विशेषता देश की किस आवश्यकता की पूर्ति कर रही है। भारतीय संविधान में शासन के तीनों रूपों – संसदीय, संघात्मक और एकात्मक की प्रमुख विशेषताएं इस प्रकार हैं।

संसदीय शासन की प्रमुख विशेषताएं

1. कार्यपालिका और व्यवस्थापिका में घनिष्ठ संबंध

कार्यपालिका और व्यवस्थापिका में घनिष्ठ संबंध बहुत ही महत्वपूर्ण है। व्यवस्थापिका और कार्यपालिका के बीच संबंध के आधार पर दो प्रकार के शासन होते हैं। जहां ये दोनों अलग-अलग कार्य करते हैं वहाँ पर अध्यक्षात्मक शासन होता है, जबकि जहां इन दोनों में घनिष्ठ संबंध होता और अधिक स्पष्ट रूप से कहें तो यह कि जहां कार्यपालिका का गठन व्यवस्थापिका के सदस्यों में से ही किया जाता है, वहां पर संसदीय शासन होता है।

2. सामूहिक उत्तरदायित्व का सिद्धांत

संसदीय शासन में, जैसा कि भारत में भी मंत्रिपरिषद् सामूहिक रूप से अपने सभी कार्यों के लिए संसद के निम्न सदन अर्थात् लोकसभा के प्रति उत्तरदायी होती है और ये प्रतिनिधि राज्यों और संघ राज्य क्षेत्रों के अलग-अलग चुनाव क्षेत्रों से चुनकर आते हैं। इन प्रतिनिधियों का चुनाव जनता प्रत्यक्ष रूप से करती है। इसलिए ये जनता के प्रति उत्तरदायी होते हैं। इसके अतिरिक्त अन्य विशेषताएं हैं – नियतकालिक चुनाव, सार्वजनिक वयस्क मताधिकार, प्रतियोगी राजनीतिक दलों की उपस्थिति में संसदीय शासन का संगठन किया जाता है।

संघात्मक शासन की विशेषताएं:

1. शक्ति विभाजन – केंद्र और राज्य सरकार में शक्तियों का विभाजन किया गया है। जिसमें इस बात का ध्यान रखा गया है राष्ट्रीय महत्व के विषय संघ सरकार के पास रखे गए हैं जिनमें विषयों की संख्या 97 है। जबकि क्षेत्रीय महत्व के विषयों को राज्य सूची में रखा गया है, जिन पर विधान और प्रशासन का अधिकार राज्य शासन का है। और ऐसे विषय जो दोनों के लिए महत्वपूर्ण हैं उन्हें समवर्ती सूची में रखा गया है जिन पर विधान का अधिकार दोनों को है परन्तु विवाद की स्थिति में संघ द्वारा निर्मित कानून निर्णायक होता है।
2. लिखित और कठोर संविधान – संघ और राज्य के बीच शक्ति विभाजन एक लिखित और कठोर संविधान के द्वारा किया जाता है। यह बहुत ही महत्वपूर्ण पक्ष है क्योंकि इसी व्यवस्था के अनुसार दोनों सरकारें अपनी अपनी सीमा में रहते हुए स्वतंत्रता के साथ बिना एक दूसरे के मामले में हस्तक्षेप किये कार्य करते हैं। साथ ही इसमें यह भी उपबंध है कि संघीय प्रावधानों में बिना राज्यों की सहमति के किसी प्रकार के संशोधन नहीं किये जा सकते हैं।
3. स्वतंत्र, निष्पक्ष और सर्वोच्च न्यायालय – शक्ति विभाजन के बावजूद यह हो सकता है कि विषय क्षेत्र का विवाद हो जाए। ऐसी स्थिति में विवाद के निराकरण के लिए और भारतीय संविधान की रक्षा के लिए एक स्वतंत्र, निष्पक्ष और सर्वोच्च न्यायालय की व्यवस्था की गई है।

एकात्मक शासन

इसके साथ ही साथ भारतीय राजनीतिक व्यवस्था में कुछ एकात्मक विशेषताएं पाई जाती हैं। यहां सबसे पहले हम एकात्मक शासन का अर्थ जानेंगे। यह वह शासन प्रणाली है जिसमें शासन का संचालन एक केन्द्र से किया जाता है। यद्यपि इसमें भी ईकाइयों का अस्तित्व पाया जाता है, परन्तु वे केन्द्र के अधिकर्ता मात्र होते हैं। संपूर्ण देश के लिए एक ही संविधान है। इसी में संघ और राज्य के शासन संचालन से संबंधित प्रावधानों का उपबंध किया गया है। जबकि संघात्मक शासन में संघ के साथ ही राज्यों का अपना पृथक संविधान होता है। इकहरी नागरिकता पाई जाती है।

इसका लाभ यह होता है कि देश के किसी भी कोने में रहने वाला नागरिक, केवल देश का नागरिक होता है न कि राज्य का। एकीकृत न्याय प्रणाली भी पाई जाती है। जिसका लाभ यह होता है कि देश के प्रत्येक नागरिक की निष्ठा न्यायापालिका के प्रति होती है।

शोधपत्र के इस पड़ाव पर हम भारत की सामाजिक संरचना और सांस्कृतिक बहुलता के अलावा शासन के उक्त तीनों रूपों को जोड़ने का प्रयास करेंगे और यह देखेंगे कि किस प्रकार सामाजिक-सांस्कृतिक और भौतिक संरचना में विविधता को स्थानीय स्तर पर महत्व प्रदान करने के लिए संघात्मक शासन को अपनाया गया है, जबकि देश को संकटकालीन स्थितियों से उबरने और देश की एकता और अखंडता को सुरक्षित करने के लिए एकात्मक शासन के मूल तत्वों को अपनाया गया है। क्योंकि संकटकालीन स्थितियों में त्वरित निर्णय की आवश्यकता होती है, जो सबसे अच्छा एकात्मक शासन में ही संभव है। सदियों की गुलामी के अनुभव और स्वतन्त्रता के तुरन्त बाद में देश विभाजन की दुखद अनुभूति ने संविधान निर्माताओं को इस तरह का उपबंध करने के लिए प्रेरित किया है।

जहाँ एक तरफ संविधान निर्माताओं ने देश में विद्यमान विविधता को संवैधानिक मर्यादाओं में रहते हुए स्वतंत्रतापूर्वक कार्य करने का संवैधानिक अधिकार, संघात्मक शासन का उपबंध करके, प्रदान किया है। वहीं दूसरी तरफ इस विविधता से विघटन को रोकने के लिए संकटकालीन स्थितियों से उबरने के लिए एकात्मक शासन के प्रमुख पक्षों का समावेश किया है।

इसी क्रम में एक बहुत ही महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि संसदात्मक शासन भी अपनाया गया। इसको अपनाने के पीछे दो महत्वपूर्ण कारण हैं। एक तो हम ब्रिटिश शासन के दौरान इस प्रकार के शासन संचालन के अनुभवों को प्राप्त कर रहे थे। लेकिन इससे भी महत्वपूर्ण दूसरा पक्ष है वह यह कि देश की विविधता को एक सूत्र में कैसे पिरोया जाय। इस प्रश्न का उत्तर संसदात्मक शासन में ही संभव था, क्योंकि इसमें केन्द्र के स्तर पर शासन के संगठन के तरीके में ऐसे अवसर विद्यमान हैं, जिसमें देश के सभी क्षेत्रों जाति, भाषा, धर्म, लिंग आदि विविधताओं को शासन में भागीदारी के अवसर प्रदान करता है।

इसको और विस्तार से देखें तो स्पष्टता और अधिक होगी। चूँकि संसदीय शासन में निम्न सदन में बहुमत प्राप्त दल को सरकार के गठन का अवसर प्राप्त होता है। बहुमत प्राप्त तभी हो सकता है, जबकि देश के अधिकतर जाति, धर्म, भाषा, क्षेत्र से दल को सहयोग के आधार पर प्रत्याशी विजयी हों। संसदीय शासन में वास्तविक कार्यपालिका प्रधानमंत्री सहित मंत्रिपरिषद् होती है।

भारत में बहुमत प्राप्त दल के नेता को राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री के रूप में नियुक्त करते हैं। इसके पश्चात प्रधानमंत्री अपने मंत्रिपरिषद् के विस्तार में इस बात का ध्यान रखते हैं कि देश के सभी जाति, धर्म, भाषा, क्षेत्र और लिंग आदि को शासन में अवसर प्राप्त हो सके। ऐसा इसलिए करते हैं ताकि उन समुदायों के हितों को शासन में प्रतिनिधित्व प्राप्त हो और उनके हितों को सम्मानजनक अवसर नीतियों के रूप में प्राप्त हो सके। चूँकि संसदीय शासन में कार्यपालिका के रूप में जो मंत्रिपरिषद् होती है, उसमें सदस्यों की बहुलता होती है इसीलिए सभी को अवसर प्राप्त हो पाता है जबकि अध्यक्षीय शासन में कार्यपालिका का प्रमुख राष्ट्रपति होता है जो एकमात्र व्यक्ति होता है। इसलिए इसमें समाज के विविध पक्षों को शासन में भागीदारी का अवसर प्राप्त नहीं हो पाता है। इन्हीं बातों को ध्यान में रखते हुए संविधान निर्माताओं ने संसदीय शासन व्यवस्था को भी अपनाया।

निष्कर्ष

उपरोक्त अध्ययन के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि, सामाजिक-सांस्कृतिक विविधता को महत्व प्रदान करते हुए संघात्मक शासन अपनाया गया है। तो इस विविधता को राष्ट्रीय स्तर पर एक सूत्र में पिरोने के लिए और संकटकालीन स्थितियों से निपटने के लिए संसदीय तथा एकात्मक शासन को भी अपनाया गया है। इस प्रकार भारतीय शासन शासन का कोई विशुद्ध रूप न होकर उक्त तीनों का संश्लेषण है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. ब्रज किशोर शर्मा - भारतीय संविधान
2. डी.डी. बासु- भारतीय संविधान एक परिचय, बेयर एक्ट ... भारतीय संविधान
3. डॉ. आर.एन. त्रिवेदी डॉ.ए पी राय - भारतीय सरकार एवं राजनीति
4. डॉ. रूपा मंगलानी - भारतीय शासन एवं राजनीति
5. डॉ. प्रभुदत्त शर्मा - भारतीय प्रशासन
6. 1. J.C. Jauhari; The Constitution of India.
7. Basu Durga Das; Comparative Federalism
8. Singh Veerkeshwar Prasad; Bhartiya Shasan evam Raajneeti
9. Jain Dr. Pukhraj evam Faadia Dr. B.L ; Bhartiya Shasan evam Raajneeti
10. Kothari Rajini; Politics in India

श्री स्वामी नारायणः जीवन एवं दर्शन

डॉ० अनुराधा पाठक

विभागाध्यक्षा एवं वरिष्ठ सहायक प्राध्यापिका, दर्शनशास्त्र विभाग, रामदयालु सिंह महाविद्यालय, मुजफ्फरपुर

डॉ० रमेश कुमार विश्वकर्मा

विभागाध्यक्ष एवं वरिष्ठ सहायक प्राध्यापक दर्शनशास्त्र विभाग, डॉ०राम मनोहर लोहिया स्मारक महाविद्यालय मुजफ्फरपुर

बीज शब्द:- पुलहाश्रम, नव्यविशिष्टाद्वैत, ब्रह्म-परब्रह्मवाद, वैष्णव सम्प्रदाय, रचनामृत, प्रस्थानत्रयी, धर्मभूतज्ञान, ज्ञातृत्वशक्ति, विराट्, सूत्रात्मा, अव्याकृत, जड़चिदात्मिका, जीवनमुक्ति

भूमिका:-

श्री स्वामी नारायण का जन्म 2 अप्रैल 1781 को हुआ था। बारह वर्ष की अवस्था में ही गृहत्याग करने के बाद उन्होंने पुलहाश्रम में गंडकी नदी के किनारे छह माह एक पैर पर खड़े रहकर तपस्या की। मुनि गोपालयोगी के सान्निध्य में अष्टांगयोग सिद्ध किया। इसके उपरांत लगातार सात वर्ष तक सम्पूर्ण भारत की पैदलयात्रा पूर्ण करने के बाद सौराष्ट्र पहुंचे जहाँ लोजगाँव में स्वामी रामानन्द के आश्रम में उन्होंने रामानन्द स्वामी को अपना गुरु बनाया और उनसे ही वैष्णवी दीक्षा ग्रहण कर “सहजानन्द स्वामी” नाम पाया। यहीं उन्होंने अपना स्थाई निवास बना लिया।

स्वामी रामानन्द ने अद्भुत कर्तव्य शक्ति तथा आध्यात्मिक क्षमता से युक्त 21 वर्ष के युवक सहजानन्द जी को विधि पूर्वक धर्म की गद्दी पर प्रतिष्ठित कर एक नये सम्प्रदाय की प्रतिष्ठा की। स्वामी रामानन्द की मृत्यु के बाद सहजानन्द ने धर्मचक्र प्रवर्तन का कार्य प्रारंभ किया तथा सुगठित, सुव्यवस्थित सम्प्रदाय के सर्जन-प्रवर्तन का कार्य प्रारम्भ किया। स्वामी नारायण धार्मिक-आध्यात्मिक जीवन में सक्रियता के साथ ही सामाजिक कार्य भी करते रहे। समाज से अज्ञान, अंधश्रद्धा, जड़ता को दूर करने का प्रयास किया। स्त्रियों को भी धर्म ग्रंथों का अध्ययन करने की प्रेरणा दी।

मानव सेवा, समाज-सुधार, धर्म-उद्धार के साथ साथ साहित्य सर्जन और ललित कलाओं का पोषण प्रवर्तन किया।

जीव, ईश्वर, माया (प्रकृति), अक्षर ब्रह्म, और परम ब्रह्म के पाँच अनादि भेदों से युक्त स्वतन्त्र मौलिक वेदांत दर्शन प्रदान किया। 49 वर्ष की अल्पायु में ही 1830 को उन्होंने अपने भौतिक देह का परित्याग किया।

स्वामी नारायण की प्रशंसा करते हुए फ्रांजवा मेलिसन लिखते हैं- “भारतीय हिंदू परम्परा को जारी रखते हुए भी स्वामी नारायण सम्प्रदाय आधुनिक युग में नवीनतम हिंदू धर्म का सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत करता है।”

साहित्य एवं दर्शन:-

स्वामी नारायण ने अपने दर्शन का कोई विशेष नामाभिधान नहीं किया था। यद्यपि रामानुज का विशिष्टाद्वैत उन्हें प्रिय था। किन्तु बहुत से सिद्धांतों में अंतर के कारण रामानुज के विशिष्टाद्वैत से स्वामी नारायण का दर्शन भिन्न होने के कारण कालान्तर में उनका दर्शन “नव्यविशिष्टाद्वैत”, “ब्रह्म-परब्रह्मवाद” नामों से विशेष रूप से प्रचलित हुआ।

तत्त्वपंचक, परमेश्वरवाद ही परब्रह्मवाद, एकेश्वरवाद, साकारसगुण तत्व, अक्षर ब्रह्म का परब्रह्म से अतिरिक्त तत्व के रूप में निरूपण, केवल शरीर-शरीरी सम्बन्ध सम्बन्ध पर जोर, परमेश्वर का अक्षरब्रह्म स्वरूप सत्पुरुष द्वारा अविरत प्राकट्य, अक्षर ब्रह्मरूप होकर परब्रह्म की निरन्तर दासत्वभाव से भक्ति ही मोक्ष, मोक्ष प्राप्ति के लिए परमेश्वर के निरन्तर धारक प्रकट अक्षरब्रह्म स्वरूप, सत्पुरुष का समागम तथा उन्हीं के संग में ऐकान्तिक धर्म की सिद्धि प्राप्त करना विशेष विशेषताएं हैं।

स्वामी नारायण का दर्शन वास्तववादी, बहुजीववाद, नीतिपरायण, उपासना प्रधान भक्तिमार्गी दर्शन है। यह शुद्ध वैष्णव सम्प्रदाय है। स्वामी नारायण ने अपने दर्शन को अपने मौलिक और बुद्धिग्राह्य दार्शनिक विचारों को तर्कपूर्ण युक्तियों और शास्त्र प्रमाणों के आधार पर प्रतिपादित किया। उनकी पद्धति मण्डनात्मक थी क्योंकि उन्होंने अपने सिद्धान्त निरूपण में कभी भी किसी का खंडन नहीं किया।

स्वामी नारायण दर्शन आठ शास्त्रों पर स्वयं को आधारित करता है-

1. उपनिषद् सहित चारों वेद। 2. वेदांत सूत्र 3. गीता 4. भागवत 5. विष्णुसहस्रनाम 6. विदुर नीति 7. याज्ञवल्क्य स्मृति 8. स्कंद पुराण में विष्णुखंड के अन्तर्गत वासुदेव महात्म्य।

स्वामी नारायण ने अपना धर्म दर्शन, दार्शनिक सिद्धांत एवं साधन मार्ग का विवरण लोकभाषा गुजराती में प्रमुख ग्रंथ “रचनामृत” में प्रस्तुत किया है। आचार-व्यवहार – प्रायश्चित – विधि-निषेध, भक्ति रीति आध्यात्मिक मार्ग के लिए नित्य पाठ का लघुप्रबन्ध, शिक्षापत्री (संस्कृत भाषा) आदि ग्रंथ भी लिखे हैं। इसके अतिरिक्त सम्प्रदाय के साधुओं के लिए साधना और आत्मानुशासन सम्बन्धी उपदेश “वेदरहस्य” में वर्णित है।

इस दर्शन की ग्रंथ संपदा बहुत ही समृद्ध है यद्यपि प्रकाशित ग्रंथों की संख्या सीमित है।

श्री स्वामी नारायण द्वारा उद्बोधित और प्रमाणित ग्रन्थ वचनामृत जो कि मूलरूप से गुजराती में लिखा है, का संस्कृत अनुवाद शतानन्द मुनि ने “श्रीहरिवाक्यसुधासिंधु” नाम से किया है। इसपर श्री रघुवीराचार्य जी ने ‘सेतुमाला’ नामक टीका लिखी है तथा ‘ब्रह्मरसायणभाष्यम्’ के नाम से श्री कृष्ण बल्लभाचार्य जी ने एक विस्तृत भाष्य लिखा है।

श्री स्वामी नारायण जी द्वारा लिखित ‘शिक्षापत्री’ पर श्री शतानन्द मुनि जी ने “अर्थदीपिका” नामक एक बृहद भाष्य लिखा। श्री रघुवीराचार्य जी ने भी इसपर भाष्य एवं टीका लिखी है।

वचनामृत और शिक्षापत्री दोनों में स्वामी नारायण जी के वचन हैं। इसलिए इन्हें इस सम्प्रदाय में मूल ग्रन्थ का स्थान दिया जाता है। उपरोक्त ग्रंथों के अतिरिक्त ब्रह्मसूत्र पर श्री मुक्तानन्द स्वामी ने “ब्रह्ममीमांसा” नामक भाष्य लिखा है। श्री गोपालानन्द ने “ईशादिदसोपनिषद्भाष्यम्” तथा ‘श्रीमद्भागवतगीताभाष्यम्’ लिखा है। श्रीमद्भागवत के द्वितीय, दशम एवं एकादश स्कंध पर ‘भक्तमनोरंजनी’ नामक टीका भी लिखी है। इसके अतिरिक्त श्री ‘हरिस्वरूपनिर्णय’, “श्रीभक्तिसिद्धि” इत्यादि ग्रंथ भी लिखे हैं।

वस्तुतः वेदांत की आधारशिला प्रस्थानत्रयी तथा श्रीमद्भागवत पर गोपालानन्द स्वामी ने अकेले ही भाष्य लिखा है। वे स्वामी नारायण सम्प्रदाय के महान आचार्य हैं।

श्री शतानन्द मुनि रचित सत्संगीजीवन में उन्होंने दार्शनिक ज्ञान, साम्प्रदायिक विशिष्टता, आध्यात्मदर्शन के अतिरिक्त श्री स्वामी नारायण के जीवन, चरित्र एवं दर्शन पर विस्तारपूर्वक लिखा है। स्वामी अचिंत्यानन्द ब्रह्मचारी ने ‘श्रीहरिलीलाकल्पतरु’ में ग्रंथ लिखा है जिसका हेतु श्री स्वामी नारायण को ‘सर्वावतारी परब्रह्म भगवान् स्वयम्’ प्रस्थापित करना है। इस ग्रन्थ में स्वामी नारायण के अभिप्रेत अद्वैत मत के खंडन के साथ ही योग की विशद चर्चा की गई है।

अचिंत्यानन्द ब्रह्मचारी ने “हरिसंभवमहाकाव्य” तथा लगभग पचास (50) अन्य ग्रंथ संस्कृत में लिखे हैं। इसके अतिरिक्त श्री चौत्यानन्द मुनि रचित ‘श्रीज्ञानविलास’, नित्यानन्द मुनि कृत “शांडिल्यसूत्रभाष्य”, “श्रीहरिदिविजय”, श्री वासुदेवानन्द ब्रह्मचारी द्वारा रचित “सत्संगीभूषणम्” इस सम्प्रदाय के अन्य प्रमुख ग्रंथ हैं।

स्वामी नारायण सम्प्रदाय में बीसवीं सदी में प्रकांड विद्वान श्री कृष्णबल्लभाचार्य जी हुये जिन्होंने विपुल संस्कृत साहित्य रचा है। इनका प्रमुख योगदान इस सम्प्रदाय सम्प्रदाय के तत्त्वज्ञान से संबंधित है। लगभग प्रत्येक दर्शन पर ‘किरणावली’ नामक टीका लिखने के साथ ही “ब्रह्मरसायणभाष्य”, ‘श्रुतितात्पर्यनिर्णय’, श्री स्वामी नारायण दर्शन आदि अन्य प्रमुख ग्रंथ हैं। श्वेतायन व्यास के नाम से उन्होंने एक लाख छब्बीस हजार (126000) श्लोकों में लक्ष्मीनारायण सहिता लिखी है।

उपरोक्त सभी ग्रंथ इस सम्प्रदाय एवं उसके दर्शन को जानने के लिए उपयोगी हैं।

श्री स्वामी नारायण सम्प्रदाय की दो प्रमुख शाखाएँ हैं-

आचार्य शाखा तथा संत शाखा

संतशाखा अक्षरपुरुषोत्तमसंस्था के नाम से प्रसिद्ध है। इस शाखा ने अंग्रेजी एवं गुजराती में अनेकों ग्रंथों तथा लेखों को प्रकाशित किया है। इसी शाखा के विशिष्ट विद्वान हर्षदभाई त्रिवे ने अंग्रेजी में श्री स्वामी नारायण के जीवन तथा दर्शन पर एक महत्वपूर्ण ग्रंथ लिखा है।

श्री स्वामी नारायण सम्प्रदाय एवं नव्यविशिष्टाद्वैत का दार्शनिक सिद्धांत:-

ज्ञान स्वामीनारायण सम्प्रदाय में ज्ञान को स्वयंप्रकाश, नित्य, विभु, अचेतन द्रव्यविषयी पदार्थ माना गया है यह प्रकृति के त्रिगुण से परे, प्रकाश रूप तथा मोक्ष का कारण है। सत् स्वरूप है। इस ज्ञान के दो भेद हैं- परा तथा अपरा विद्या। सत्-असत् अर्थात् आत्मा-अनात्म का विवेक तथा जीव, ईश्वर, माया, प्रकृति, अक्षरब्रह्म और परमब्रह्म के स्वरूप का यथार्थ ज्ञान ही पराविद्या है। यह ज्ञान इंद्रिय-अंतकरण, जीव सत्ता तदाश्रित ज्ञान है।

ज्ञान उत्पत्ति तथा नाशवान है। उत्पत्ति अर्थात् ज्ञान का विकास तथा ज्ञान का नाश अर्थात् ज्ञान का संकोच। ज्ञान के साधन रूप तीन प्रमाण माने गए हैं- 1. प्रत्यक्ष 2. अनुमान तथा 3. शब्द। लौकिक विषयों में विश्वसनीय व्यक्ति का तथा पारलौकिक-आध्यात्मिक विषयों में व्यास जी रचित शास्त्र, भगवान की परावाणी तथा श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ सत् पुरुष के वचन शब्द प्रमाण के अंतर्गत आते हैं।

जाग्रत अवस्था में जो जगत विषयक ज्ञान होता है वह अपरा विद्या है।

शास्त्र प्रमाण अर्थात् शब्द प्रमाण के अविष्कार एवं अनुसरण में विवेक बताते हुए श्री स्वामीनारायण कहते हैं- “व्यास जी स्वयं भगवान है। हमें व्यास जी के वचनों का ही अनुसरण करना चाहिए।” परमभागवत व्यास जी के अतिरिक्त अन्य किसी का प्रमाण स्वीकार्य नहीं।” जो अनुभूति- प्रतीति नितांत विशुद्ध, निश्चित एवं शास्त्र प्रमाणित है, वह अवश्यमेव सत्य है तथा सर्वथा स्वीकार्य है।

तत्त्व-

तत्त्वपंचक:- स्वामीनारायणीय नव्यविशिष्टाद्वैत वेदान्त दर्शन तत्त्वपंचक अर्थात् पांच अनादि तत्त्वों को अपनी तत्त्वमीमांसा में स्वीकार करता है।¹ स्वामीनारायणीय वेदांत यथार्थवादी (वास्तववादी) दर्शन है।

इन पांचतत्वों का वर्णन अग्रलिखित है-

1. जीव⁴- वैष्णव वेदांत के सभी सम्प्रदायों के समान श्री स्वामी नारायण सम्प्रदाय में भी जीव को द्रव्य रूप माना गया है। जीव परमाणु के समान सूक्ष्म, चौतन्यस्वरूप ज्ञाता है। अपनी ज्ञातृत्वशक्ति द्वारा समग्र देह में नख से शिख तक व्याप्त रहता है। वह अजर, अमर, अविनाशी है। जीव चेतनद्रव्य है जो अपने ज्ञान रूपी प्रकाश द्वारा सब कुछ जानता है, ज्ञान ग्रहण करता है। वह देह, इंद्रिय-अंतःकरणादि से भिन्न है। जीवन इनका अधिष्ठाता है। जीव असंख्य है तथा सभी एक-दूसरे से भिन्न हैं।

धर्मभूतज्ञान चौतन्यरूप जीवात्मा का अपृथक्सिद्ध लक्षण है। वह ज्ञानस्वरूप तथा ज्ञाता है। अर्थात् ज्ञान का आश्रय भी जीव ही है। अपनी ज्ञातृत्वशक्ति द्वारा जीवात्मा समग्र देह में व्यापक होने के कारण ज्ञान प्रक्रिया में जिन-जिन पदार्थों को इंद्रियों अंतःकरण द्वारा ग्रहण करता है, उनका ज्ञान होता है तथा कोई नूतन ज्ञान प्राप्त हुआ- उसका भी ज्ञान होता है तथा जिसने जाना अर्थात् जाने वाला जीवात्मा है, यह ज्ञान भी होता है।

जीव ज्ञाता, कर्ता, भोक्ता है किन्तु उपरोक्त शक्ति परमेश्वर के अधीन है। अनादि काल से अविद्या-कार्य के कारण जीव बन्धन में पड़ता है तथापि परमेश्वर प्रदत्त संकल्प स्वातंत्र्य के कारण जीवात्मा अपने बन्धन को तोड़कर मुक्ति प्राप्त कर सकता है। परमेश्वर जीवों का कर्मफलदाता है। वह सदैव अंतर्धामी/साक्षी रूप में व्याप्त हो जीव के साथ रहता है।

ईश्वर ईश्वर को अनेक तथा एक-दूसरे से भिन्न माना गया है। चेतनता, सर्वज्ञता ईश्वर के लक्षण हैं। ईश्वर की सत्ता और ज्ञानशक्ति जीव से बहुत अधिक है। ईश्वर महामाया से बद्ध है। विराट्, सूत्रात्मा तथा अभी अव्याकृत ये तीनों ईश्वर के शरीर हैं और ईश्वर उनका शरीरी है। उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय यह तीनों ईश्वर की अवस्थाएँ हैं। प्रलय काल में ईश्वर भी जीव की भाँति मूल प्रकृति में लीन हो जाते हैं। ईश्वर की कार्यशक्ति और ज्ञातृत्वशक्ति अपने देह के अतिरिक्त जिस ब्रह्माण्ड का कार्य उसे सौंपा गया है, उस ब्रह्माण्ड में वह व्यापक रूप से सीमित है। ईश्वरों को भी परमपद-मोक्ष की आवश्यकता रहती है। वह भी परब्रह्म-परमेश्वर के अधीन है। उनमें भी अंतर्धामी व्यापक रूप से परमेश्वर रहते हैं।

महाविष्णु, विराट्, ब्रह्मा, सरस्वती, विष्णु, लक्ष्मी, महेश, पार्वती, सूर्य, चंद्र, अग्नि, वरुण इत्यादि सभी देवी-देवताओं का ईश्वर-कोटि में समावेश होता है।

माया-प्रकृति:- माया शब्द से त्रिगुणात्मिका प्रकृति का व्यपदेश किया गया है। किन्तु सांख्य की प्रकृति की भाँति वह स्वतन्त्र नहीं है। सत्, रज्जु, तम् इन तीन गुणों से युक्त है। स्वयं तमोरूप जड़चिदात्मक है। नित्य, निर्विशेष, परिवर्तन-परिणामक्षम्य है। अनात्मा अर्थात् देह-गेहादि संबंधित पदार्थों में अहं-ममत्व की जननी है।

माया परमेश्वर के अधीन तथा उनसे नियम्य है। माया एवं मायानिर्मित सभी पदार्थों में परमेश्वर अंतर्धामी रूप में अवस्थित है। माया-प्रकृति परब्रह्म की कार्योपयोगी, परब्रह्म पर सदा अवलंबित शक्ति हैं। वह अचेतन, विभु, महत्तत्वादि चौबीस तत्वों की जननी, जीव-ईश्वरों के बन्धन का कारण, क्षेत्र है। चेतन जीव-ईश्वरों को जड़ संज्ञा दिलाने की शक्ति माया में निहित है।

महामाया अर्थात् मूलप्रकृति उत्पत्तिरहित नित्य है जबकि माया के कार्यरूप जो महत्तत्वादि चौबीस तत्व हैं, वे अनित्य हैं। जगत सत्य है परन्तु नाशवान है। दुःख और बन्धन का कारण है।

माया की सत्ता परब्रह्म- परमेश्वर, परमेश्वर के अवतारों, अक्षरब्रह्म, अक्षरमुक्तों तथा ब्रह्मस्वरूप संत पर नहीं चलती। ये सभी दिव्य, निर्दोष और माया से निर्लिप्त हैं। अविद्यामय अन्धकार जैसे प्रलयकाल में माया-प्रकृति के गर्भ में सभी जीवेश्वर जड़तुल्य हो लीन (बीजरूप) रहते हैं इसीलिए माया को जड़चिदात्मिका कहा गया है। माया ही जीवेश्वरों के लिए अविद्या-कार्य, अज्ञान, बन्धन, ममत्वादि का कारण है।

अक्षरब्रह्म श्री स्वामी नारायण ने अक्षरब्रह्म को परब्रह्म से भिन्न और निम्न तत्व माना है। परब्रह्म-पुरुषोत्तम परम आध्यात्मिक तत्व है। जबकि अक्षरब्रह्म स्वरूप उनके पश्चात्, उनसे भिन्न। किन्तु अक्षरमुक्त, माया (प्रकृति-जगत), ईश्वर और जीवों से परे और उनका आधाररूप, भिन्न आध्यात्मिक तत्व है। 'अक्षर', 'ब्रह्म', 'अक्षरब्रह्म' के पर्यायवाची शब्द हैं।

अक्षरब्रह्म की परिभाषा इस प्रकार है-

अक्षरब्रह्म एक और अद्वितीय होते हुए भी मूर्तिमान तथा अमूर्तरूप से कार्यकारी है। मूर्तिमान अक्षरब्रह्म केवल भगवान् पुरुषोत्तम की नित्य सेवा में रहता है।⁵

अक्षरब्रह्म के साकार स्वरूप का निरूपण करते हुए 'हरिवाक्यसुधासिंधु' की सेतुमाला टीका में आचार्य रघुवीर प्रसाद जी लिखते हैं अर्थात् वह अक्सर, परब्रह्म हरिकृष्ण का सदा मुख्य परिचारक अर्थात् प्रमुख सेवक-उत्तम भक्त होने के कारण तथा दिव्य अतिमनोहर हाथ, पैर, मुख इत्यादि अवयवों से संपन्न होने के कारण पुरुष (अर्थात् पुरुषोत्तम) समाकार है।⁶

मूर्तिरूप में अक्षरब्रह्म परमात्मा समाकार, द्विभुज और दिव्यविग्रह है। सत्-चित्-आनंद लक्षणयुक्त, सदा साकार, अमायिक, त्रिगुणातीत, प्राकृतदोष से रहित एवं कल्याणकारी गुण-ऐश्वर्यों से युक्त है। परब्रह्म की नित्य सेवा में अतिशय निकटतम, उत्तम सेवक-भक्त के रूप में समीप रहता है। यह अक्षरब्रह्म परब्रह्म के अतिरिक्त या परब्रह्म से दूरस्थ कभी नहीं जा सकती। वहीं अक्षरब्रह्म अपने दूसरे रूप से परमधाम बनकर परब्रह्म-पुरुषोत्तम का नित्य स्थान है।⁷

अक्षरब्रह्म मुक्ति का स्थान है। अक्षरब्रह्म का यह अमूर्त स्वरूप निराकृति एकरस चौतन्यमय है। शास्त्रों में उसे ब्रह्मधाम, ब्रह्मपुर, चिदाकाश, परमधाम, अक्षरधाम इत्यादि नामों से वर्णित किया गया है। इस ब्रह्मधाम को सबसे परे बताया गया है।⁸

यह ब्रह्मधाम परिमाणरहित, अतिविशाल, सर्वत्र व्यापक, चौतन्यमय सर्वदिशि विस्तारित तेज का समूह के रूप में शास्त्रों में निरूपित है। इस धामरूप अक्षर में अनन्तकोटि मुक्तों से सेवित परब्रह्म परमात्मा नित्य निवास करते हैं।

सगुण और निर्गुण संज्ञाएँ अक्षरब्रह्म पर विशिष्ट अर्थ में प्रयुक्त होते हैं। अक्षरब्रह्म निर्गुणत्व में अतिसूक्ष्म और एक परमेश्वर के सिवाय सर्व में व्याप्त है।

माया और माया-प्रकृति के कार्यरूप अनंतकोटि ब्रह्माण्डों में अन्वयत्व से सर्वत्र बाह्यान्तर व्यापक है और कारणरूप में अनन्तकोटि ब्रह्माण्डों का आधार है। सगुण रूप में (परमेश्वर के अतिरिक्त) अत्यन्त विशाल है। संकोच-विकास रहित सर्वत्र बाह्यान्तर व्यापक चिदाकाश के रूप में अक्षरब्रह्म ही है। वह कूटस्थ, ध्रुव, अचल, सर्वव्यापक और अंतर्धामी है।

जब इस परमात्मा इस धरती पर अवतरण करते हैं तब अपने साथ मूर्तिमत अक्षरब्रह्म को भी अवश्य लाते हैं और परमात्मा अन्तर्ध्यान होने के पश्चात अपना प्राकट्य अक्षरब्रह्म में सांगोपांग रहकर जारी रखते हैं। अतः अक्षरब्रह्म अनादि गुरु हैं और वह परम ऐकान्तिक सन्त के रूप में इस पृथ्वी पर सदा प्रकट रहता है।

इस अक्षरब्रह्मस्वरूप सत्पुरुष में दृढ़ प्रीति ही आत्मदर्शन और परमेश्वर के दर्शन का साधन है।

परब्रह्म-पुरुषोत्तम परमब्रह्म सर्वोच्च आध्यात्मिक तत्त्व है। वह एक और अद्वितीय है। पुरुषोत्तम, वासुदेव, हरिकृष्ण तथा नारायण- इन नामों से परब्रह्म-परमात्मा का ही बोध होता है। वह एक ही सर्वोपरि, सर्वतन्त्र और सब कारणों के कारण हैं। परब्रह्म सदा साकार, सदासगुण, सर्वज्ञ, सर्वकर्ता, दिव्य और पूर्ण है। अनवधित्कातिशय अनन्त, कल्याणकारी गुणों से युक्त तथा सकल दिव्य ऐश्वर्य संपन्न है। सर्वदोषों और विकारों से रहित हैं। अमायिक हैं। त्रिगुणातीत है।

सर्वांतर्धामी, सबकी आत्मा, सर्वव्यापक, सर्वनियामक और स्वतन्त्र-सर्वाधार परब्रह्म जीव, ईश्वर, माया, अक्षरमुक्त और अक्षरब्रह्म का शरीरी ही है जबकि यह सभी परब्रह्म का शरीर है।

जैसे देह की अपेक्षा जीव सूक्ष्म, शुद्ध तथा अधिक प्रकाशमान है, वैसे ही भगवान इन सब से अतिशय सूक्ष्म, अतिशय शुद्ध अतिशय निर्लेप एवं अति प्रकाशितयुक्त हैं।¹⁰ 'भगवान अनंत ब्रह्माण्ड की आत्मा है, (तथा) जिस प्रकार क्षर (जीवेश्वरों) की आत्मा है, वैसे ही प्रकृति-पुरुष से परे जो अक्षरब्रह्म है उसकी भी आत्मा है।'¹¹ भगवान अपनी अंतर्धामी शक्ति द्वारा आत्मा और अक्षर में व्यापक है। भगवान स्वतन्त्र हैं जबकि आत्मा एवं अक्षर तो भगवान के अधीन और परतन्त्र है। भगवान अतिसमर्थ हैं जबकि आत्मा एवं अक्षर तो भगवान के समक्ष अत्यंत असमर्थ हैं। ऐसे शरीरी पुरुषोत्तम भगवान सदैव दिव्य मूर्तिमान हैं।¹²

परब्रह्म सबका प्रेरक, सर्वकर्ता, अनंत कोटि ब्रह्माण्ड का राजाधिराज, सर्वकारणों का कारण, अतिसमर्थ, व्यापक तथा मूर्तिमान होते हुए भी सबसे विलग है। इस भगवान के अतिरिक्त अन्य कोई जगत का कर्ता नहीं। भगवान-सम होने में कोई समर्थ नहीं। अतः परब्रह्म परमात्मा 'एकमेवाद्वितीयम्' है। सजातीय-विजातीय-स्वगत भेद का निषेध नहीं है। प्रत्युत एक से नामरूपप्रयोग का निषेध है। एवं से नैयायिक सूचित कार्य की पूर्वावस्था में असत्ता का निषेध है। अद्वितीयम् से परब्रह्म से अतिरिक्त पदार्थ में अनिमित्तान्तरत्व बताया है। श्रुति के 'ज्ञाज्ञी द्वावजावीशानीशौ', 'द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया', इत्यादि मंत्रों में जीवेश्वरों एवं परब्रह्म-परमात्मा का वास्तविक भेद सूचित है।

परमात्मा सर्वविकाररहित, त्रिगुणातीत और अमायिक है। माया-प्रकृति में यदि परमात्मा प्रवेश करें तो उसे भी तत्काल अवधि के लिए निर्गुण और ब्रह्मरूप कर देते हैं। ऐसे शुद्ध, अविकारी, निर्लिप्त, असंगी और दिव्य परमात्मा हैं। भगवान को अतिशय निर्दोष और दिव्य समझने वाला मुमुक्षु चाहे कितना भी दोषयुक्त हो तो भी अतिशय निर्दोष हो जाता है। ऐसी भगवान के स्वरूप की महिमा है। भगवान की महिमा अतिअपार, नेति-नेति है।

केवल भगवान ही सर्व कर्मफल दाता हैं और ऐकान्तिक धर्म के प्रवर्तक है। क्षर-अक्षर से विशिष्ट होने के कारण अनंत कोटि ब्रह्माण्डों का अभिन्ननिमित्तोपादान कारण भगवान हैं। अपने चित्-अचित् शरीर द्वारा बहु होने में समर्थ है। सत्य संकल्प है। जगत का उपादान कारण होने पर भी होने पर भी परब्रह्म में सविकारित्व की आपत्ति नहीं आती क्योंकि जगत उनके चिद्-अचिद् रूप विशेषणों का ही परिणाम है।

जिस प्रकार ऊर्णनाभि स्वशरीर रूप विशेषणों के द्वारा तंतुजालरूपी कार्य का उपादान कारण बनकर भी स्वरूप से अविकृत रहता है, उसी प्रकार परमात्मा इस जगत का उपादान कारण होते भी अविकृत है। विकाराश्रयत्व केवल उनके विशेषण में है, यह श्रुति के वाक्य 'यतो या इमानी भूतानी जायन्ते'¹³ तथा वेदव्यासकृत 'जन्माद्यस्य यतः'¹⁴ सूत्र पर गोपालनन्द स्वामी और मुक्तानन्द स्वामी कृत भाष्यों में सुस्पष्ट है। अतः परब्रह्म ही उपादान और उपादेय है।

उनका सूक्ष्म चिद्-अचिद् विशिष्ट रूप उपादान और स्थूल चिद्-अचिद् विशिष्ट रूप उपादेय है। अतएव उपादान और उपाधि में एकता है। श्रुति के 'नेह नानास्ति किञ्चन'¹⁵ इस वाक्य में नानात्व के निषेध का तात्पर्य है कि विशेष्य में कोई भेद नहीं अर्थात् परब्रह्म से कोई भी विशेषण पृथक् नहीं है।

अवस्थान्तर योग का नाम ही उत्पत्ति है। कोई वस्तु अपूर्व नहीं होती परन्तु उसकी अवस्था ही अपूर्व होती है। अतः 'उत्पत्ताश्रयद्रव्यस्वरूप' की सर्वदा विद्यमानता होने के कारण 'सत्कार्यवाद' ही यथार्थ है।

परब्रह्म भगवान् अपनी कृपा एवं संकल्प से जीवों के कल्याण के लिए पृथ्वी पर प्रकट होते हैं। वे ही भगवान रामकृष्णादिक रूप से स्वेच्छया जीवों के कल्याण के लिए युग-युग में प्रकट होते हैं। परन्तु वे मनुष्यतुल्य नहीं अपितु अक्षरधामाधिपति, दिव्य हैं। रामकृष्णादिक अवतार न तो प्राकृत हैं, न परब्रह्म के अंश हैं। अवतार मात्र परब्रह्म पुरुषोत्तम के कार्य निमित्त यथायोग्य अनुप्रवेश से, अपने संकल्प विशेष से होते हैं। जब परब्रह्म-परमात्मा पुरुष रूप से वैराजपुरुष में आकर विराजमान होते हैं तब वह अवतार कहलाता है। परब्रह्म भगवान् अपनी मूर्ति को जहाँ जितनी दिखानी होती है, वहाँ उतनी अपनी इच्छा से दिखाते हैं। और जहाँ जितना प्रकाश करना उचित होता है वहाँ उतना प्रकाश करते हैं।

संक्षेप में, श्रीमद्भागवत सूचित अंशावतार, कलावतार इत्यादि प्रकार के सभी अवतार वैराजपुरुष में से परब्रह्म-परमात्मा भगवान के तत्-तत् कालावधि के लिए तत्-तत् प्रकार की अन्तर्धामी शक्ति द्वारा अनुप्रवेश से होते हैं। वह परब्रह्म का स्वरूप सदा द्विभुज, द्विचरणयुक्त, मनुष्यकृति और दिव्य है। तथापि अपनी इच्छा से कभी-कभी चतुर्भुज, अष्टभुज, अनन्त भुजयुक्त स्वरूप दिखाते हैं तथा मत्स्य, कच्छप, वराह आदि रूपों में भासमान होते हैं। इस प्रकार जहाँ जिस प्रकार का रूप उपयुक्त होता है वहाँ वैसा रूप स्वेच्छा से प्रकाशित करते हैं। परन्तु स्वयं तो सदा एकरूप से ही विराजमान हैं।

श्री स्वामी नारायण कहते हैं- परब्रह्म-पुरुषोत्तम भगवान अपने अक्षरधाम में नित्य रहते हुए भी स्वेच्छा से अनंत कोटि ब्रह्माण्डों में अपने भक्तों के लिए अनंत (असंख्य) रूप से दिखाई देते हैं। परब्रह्म सर्वावतारी भगवान बिना माया-प्रकृति से सम्बन्ध लगाए, स्वसंकल्प से, स्वस्वातन्त्र्य से जहाँ भी, जैसे भी उपस्थित होना चाहते हैं, हो जाते हैं।¹⁶

इस सम्प्रदाय के आदि संस्थापक श्री सहजानन्द स्वामी (भगवान स्वामी नारायण) को परम इष्टदेव के रूप में अर्थात् सर्वावतारी पूर्ण पुरुषोत्तम (परब्रह्म) के रूप में और उनके परमहंस शिष्यों में से प्रमुख शिष्य परमआदर्श सन्त-भक्त गुणानन्द स्वामी को अनादि अक्षरब्रह्म के मूर्तिमंत स्वरूप के रूप में स्वीकार किया गया है। अतः इस सम्प्रदाय में भी अन्य वैष्णव सम्प्रदायों की तरह “भक्त सहित भगवान” की भक्ति का विधान है। उसी से इस ‘स्वामीनारायण सम्प्रदाय’ की गुरु परम्परा वाली शाखा ‘अक्षरपुरुषोत्तम सम्प्रदाय’ नाम से विख्यात है।¹⁷

भगवान स्वामी नारायण इस पृथ्वी से अन्तर्ध्यान होने के पश्चात उन्होंने अपनी ज्योति का प्रकटन अर्थात् अपने स्वरूप का प्राकट्य अपने शिष्य अक्षरब्रह्म के मूर्तिमंत स्वरूप गुणानन्द जी में किया। उसके बाद में उत्तरोत्तर परम ऐकान्तिक ब्रह्मस्वरूप सन्त (सद्गुरु) के द्वारा उनका प्राकट्य आज भी विद्यमान गुरु प्रमुख स्वामी जी में जारी है, ऐसी मान्यता है।

भक्ति और मुक्ति-

ऐकान्तिक धर्म और मुक्ति अपने-अपने धर्म के पालन के सम्बन्ध में अचलनिष्ठा, आत्मनिष्ठा की अतिशय दृढ़ता, एकमात्र भगवान के अतिरिक्त अन्य समस्त पदार्थों की प्रति अरुचि और भगवान में उनके माहात्म्यज्ञान सहित निष्काम भक्ति इन चारों साधनों के समन्वय से बनता है ऐकान्तिक धर्म। इसी धर्म को ‘भागवत धर्म’ भी कहते हैं। वास्तव में यह धर्म और भक्ति दो अलग बातें नहीं बल्कि इसका एक ही प्रकार है। ऐकान्तिक धर्म के अंतर्गत चार साधनों का स्वरूप इस प्रकार है धर्म अर्थात् श्रुति-स्मृति प्रतिपादित सदाचार जिसके नियम शिक्षापत्री में दिए गए हैं। उनका यथार्थ पालन ही धर्म है।

ज्ञान अर्थात् जीव, ईश्वर, माया-प्रकृति, अक्षरब्रह्म, परब्रह्म-पुरुषोत्तम तथा बंध- मोक्ष और जिनके द्वारा भगवान स्वयं प्रकट हैं, ऐसे सत्पुरुष का स्वरूप यथार्थ रूप से जानना।

वैराग्य अर्थात् परमेश्वर के अतिरिक्त सभी पदार्थों में अप्रीति और अनासक्ति। देह तथा मायिक पदार्थों से भिन्न अपने आत्मा को मानकर रहना ही वैराग्य है।

भक्ति अर्थात् परमेश्वर में ज्ञानपूर्वक अतिशय उत्कट स्नेह। भक्ति अर्थात् स्नेह। ऐसा स्नेह जिसमें तैलधारावत् परमेश्वर की अखंड स्मृति रहती हो तथा परमेश्वर को छोड़कर अन्य किसी भी चीज का संकल्प भी न आता हो।

मुक्ति भक्ति से ही सम्भव है। यहां भक्ति का अर्थ ऐकान्तिक भक्ति ही है क्योंकि आत्मनिष्ठा (ज्ञान), वैराग्य और धर्म तो भगवान की भक्ति के सहायरूप उपकरण हैं। भगवान की भक्ति के बिना उपरोक्त साधन जीव को मुक्ति नहीं दिला सकते और यदि धर्म, ज्ञान और वैराग्य अतिशय न हो और केवल भगवान की भक्ति हो तो भी उस जीव का कल्याण होता है और वह मुक्ति प्राप्त कर सकता है। इसलिए धर्मादि की तुलना में भक्ति विशिष्ट है तथापि धर्मादि अंगों की सहायता हो तो भक्ति में कोई बाधा नहीं होती। इसीलिए धर्मादि अंगों सहित भक्ति करनी चाहिए।

भगवान स्वामी नारायण ने भी भागवतगीता में उपदिष्ट चारों मार्गों (कर्ममार्ग, ज्ञानमार्ग, योगमार्ग और भक्तिमार्ग) का प्रतिपादन किया है। अतः उपरोक्त धर्मादि साधनों से युक्त भगवान की ऐकान्तिक भक्ति करने में मोक्ष अर्थात् परमपद की प्राप्ति होती है।

ऐकान्तिक भक्ति में पतिव्रता स्त्री के समान अनन्यनिष्ठा और परमनिरभिमानता का द्योतक दासत्व अन्तर्भूत है। ऐकान्तिक भक्ति में परमात्मा के प्रकट-स्वरूप की उपासना-भक्ति का निर्देश है क्योंकि जो मुमुक्षुजन अक्षरब्रह्म के साकार स्वरूप के साथ अपनी आत्मा की एकता को प्राप्त कर परब्रह्म के सदा साकार स्वरूप की भक्ति करता है, वही जीवन मुक्त होता है। और वही परमपद (मोक्ष) को प्राप्त करता है और वही परमधाम में परमब्रह्म-परमात्मा की नित्य सेवा में स्थान प्राप्त करता है।

जीवनमुक्ति अर्थात् अविद्या और जन्म-मरण के चक्र से निवृत्ति और भगवान के सानिध्य और सुख की अहर्निश अनुभूति। ऐसा जीवनमुक्त देहत्याग के बाद मोक्ष को प्राप्त कर भगवान के धाम में जाता है, भगवद्‌इच्छा से ब्रह्मरूप देह प्राप्त करता है। इस प्रकार स्वामीनारायण सम्प्रदाय में भी अन्य वैष्णव वेदांत की भांति क्रममुक्ति को माना गया है।

शरणागति इस सम्प्रदाय में शरणागति की महत्ता है किन्तु शरणागति के पश्चात स्वयं कुछ नहीं करना होता, ऐसा नहीं माना गया है। शरणागत को परमेश्वर की रुचि, रहस्य, अभिप्राय और आज्ञानुसार कर्म, परमात्मा की मोक्षदायिनी कृपा को प्राप्त करने के लिए करने ही पड़ते हैं। ऐसे शरणागत को परमात्मा अपनी कृपा अनुग्रह द्वारा मुक्ति प्रदान करते हैं। परमात्मा यदि चाहे तो अतिप्रसन्न होकर करुणावश किसी साधक को सीधे ही (बिना साधना मार्ग से गुजरे) मुक्ति प्रदान कर सकते हैं और करते भी हैं। किन्तु यह परमात्मा की कृपा-करुणा के आधिक्य को सूचित करता है। साधक के सीधे ही परमपद पाने के अधिकार को नहीं।

सन्दर्भ

- 1 वचन वरताल -18
- 2 व्यासादन्यो न कोडष्यस्ति महानाचार्य उत्तमः।
अतस्तद्वाक्यतो नान्याचार्यवाक्यं प्रमाणकम् (प्रमाणकम्)॥ 20
- 3 जीवा ईशा ब्रह्म माया परमेश्वर इत्यमी।
अनादयो भवन्त्येव पंच चापि न संशयः॥ हरिवाक्यसुधासिंधु, 233
- 4 हत्स्थोणुसूक्ष्मश्चिद्रूपो ज्ञाता व्याप्याखिलांतनुम्।
ज्ञानशक्त्या स्थितो जीवो, ज्ञेयोच्छेदिलक्षणः॥ शिक्षा, 105

5. सत्यं ज्ञानमनन्तं च पूर्णं चाखण्डमक्षरम्।
धाम यद्वासुदेवस्य मूर्तं च आमूर्तमुच्यते॥
शुद्धं नित्यं चाविकारि मायापीनां प्रकाशकम्।
तद्ब्रह्मेति विजानीहि, सर्वाधारतया मतम्॥ सत्संगी जीवनम्- 2/51/32-33
6. तदक्षरं कृष्णस्य सेवकत्वाद् मुख्य परिचारकत्वात् हेतोः दिव्यैरति मनोहरैः पाणिपादमुखादिभिः
अवयवैः प्रतीकैः उपलक्षितत्वात् साकृतिः पुरुषाकारमुच्यते।
हरिवाक्यसुधासिन्धु, सेतुमालाटीका, 63/48
7. तदाहुरक्षरं ब्रह्म सर्वकारणकारणम्।
हरैर्धाम परं साक्षात् पुरुषस्य महात्मनाः॥ शुकानन्द मुनि, हेतु टीका, 15/1/32
8. यद् गत्वा यह निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम्॥ गीता, 15/6
9. वच.ग.प्र.,71
10. वच. कारी, 8
11. वच.ग.म.,16 तथा ग. प्र. 72
12. वच.ग.प्र.,64
13. तैत्तिरीय उपनिषद् 13/1
14. ब्रह्मसूत्रम् 1/1/2
15. बृहदारण्यक उपनिषद्, 4/4/19
16. वच. लो., 4
17. जीवेशब्रह्ममुक्ताद्यगणित चिद्विद्ययाप्त बल्लाभाचार्य।
सर्वावतारि श्रीस्वामीनारायणभगवति वै मुख्यतात्पर्यम्॥
शिक्षापत्री किरणावली भाष्य,1 मंगलाश्लोक

भारत में दलित विमर्श: एक अवलोकन

महंथ माँझी

शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग, जयप्रकाश विश्वविद्यालय छपरा, सारण (बिहार)

रिसर्च आर्टिकल का एबस्ट्रेक्ट:

भारत में दलित विमर्श सामाजिक न्याय, समानता और मानवाधिकारों के संदर्भ में एक महत्वपूर्ण विषय के रूप में उभरा है। यह विमर्श ऐतिहासिक रूप से उत्पीड़न, भेदभाव और जाति आधारित सामाजिक असमानताओं के विरुद्ध दलित समुदाय की आवाज को मुखर करता है। स्वतंत्रता के बाद भारतीय संविधान द्वारा समानता और सामाजिक न्याय की दिशा में कई प्रावधान किए गए, लेकिन व्यावहारिक स्तर पर दलित समाज को अब भी सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक क्षेत्रों में चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। इस शोध आलेख का उद्देश्य दलित विमर्श के ऐतिहासिक, सामाजिक और राजनीतिक पहलुओं का विश्लेषण करना है। यह आलेख डॉ. भीमराव अंबेडकर के विचारों और दलित आंदोलनों के योगदान को रेखांकित भी कर सकता है, जिन्होंने भारत में दलित समुदाय के उत्थान के लिए महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। दलित साहित्य और सांस्कृतिक अभिव्यक्तियों के माध्यम से दलित चेतना को बढ़ावा देने वाले आंदोलनों का भी विश्लेषण भी अपेक्षित है। वर्तमान समय में दलित विमर्श केवल सामाजिक न्याय तक सीमित नहीं है, बल्कि यह राजनीतिक प्रतिनिधित्व, शिक्षा, आर्थिक अवसर और सामाजिक सम्मान की दिशा में एक व्यापक आंदोलन का रूप ले चुका है। अनुसूचित जाति और जनजातियों के लिए आरक्षण नीति ने दलित समुदाय को मुख्यधारा में लाने का प्रयास किया है, लेकिन सामाजिक संरचना में गहरे बदलाव की आवश्यकता अब भी बनी हुई है। इस शोध आलेख में दलित विमर्श की प्रासंगिकता और उसके सामाजिक प्रभावों की समग्र रूप से समीक्षा की जाएगी, ताकि भारत में समावेशी विकास और समानता आधारित समाज की दिशा में उठाए गए कदमों की स्पष्ट तस्वीर प्रस्तुत की जा सके।

की वडर्स: दलित, सामाजिक न्याय, संविधानवाद, आर्थिक समानता, न्याय, स्वतंत्रता, प्रभुत्व, सामंतवाद, जन जागरूकता, समाजीकरण, आधुनिकीकरण, प्रगतिशीलता आदि।

इंट्रोडक्शन एंड सब्जेक्ट मैटर:

दलित विमर्श एक ऐसी अवधारणा है जो आधुनिक मूल्यों, संवैधानिक मान्यताओं, सामाजिक एवं जनतांत्रिक संरचनाओं के संघर्षों से विकसित हुई है। इसमें धार्मिक जीवन की विकृतियों के विरुद्ध मानत की प्रतिष्ठा का चिंतन है। दलित विमर्श जहाँ अपने पुरोधाओं की रचनाशीलता, वौद्धिकता व आंदोलनों से बहुत कुछ ग्रहण करता है। वहीं समानान्तर रूप से देश के सबसे बड़े कानून भारतीय संविधान में दलितों आदिवासियों, महिलाओं के उत्पीड़न के हजारों वर्षों की गायी की समाप्ति हेतु प्रदान प्रावधान एवं उनके अनुपालन में उठने वालों स्वयं, जनांदोलनों से शक्ति लेता है। यह विमर्श आध्यात्मिक मूल्यों के नाम पर समाज में फैले प्रपच ढोंग धार्मिक भ्रष्टाचार की खबर लेने के साथ-साथ दलित वजन का अपमान, उत्पीड़न करने वाले हिंदू धर्मशास्त्रों स्मृतियों और उनके तथाकथित जनक ईश्वर और धरती पर उनके प्रतिनिधि श्भुदेवश यानी ब्राह्मणवादी के जन्मना विशेषाधिकारों की व्यवस्था पर जबर्दस्त सवाल उठाता है।

भारतीय संविधान सभी लोगों को नागरिक के रूप में परिभाषित करता है तथा उनके साथ धर्म, जाति, लिंग, नस्ल व रंग के आधार पर भेदभाव पर रोक लगाता है। संविधान यह व्यवस्था इसलिए देता है क्योंकि यहां सदियों से बहुजनों के मानवीय अधिकार प्रतिबंधित रहे हैं। अनुच्छेद 15 (4), 16 (4) में सामाजिक शैक्षणिक दृष्टि से पिछड़े बगों के उत्थान के लिए विशेष प्रावधान किए गए हैं। दलित आदिवासियों को प्रतिनिधित्व प्रदान करने हेतु अनुच्छेद 330 व 332 के तहत संसद में 119 व राज्य विधानसभाओं में 1050 स्थान आरक्षित किए गए हैं। इस प्रतिनिधित्व की समीक्षा प्रति दस वर्ष बाद की जाती है। संविधान केवल राजनैतिक प्रतिनिधित्व की समीक्षा के लिए दस वर्ष का समय निर्धारित करता है। राजकीय रोजगारों से इसका कोई संबंध नहीं है। वहां यह व्यवस्था तब तक जारी रहेगी जब तक उन्हें राजकीय नियंत्रित रोजगारों में समुचित प्रतिनिधित्व नहीं मिल जाता। दलित मराठी, गुजराती, हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं का एक प्रचलित शब्द है जिसका अर्थ है गरीब और उत्पीड़ित। लेकिन सामाजिक, साहित्यिक और राजनीतिक संदर्भों में दलित शब्द को एक भिन्न सांस्कृतिक अर्थ मिल जाता है। आंदोलन और साहित्य के साथ दलित शब्द जोड़ने से एक भिन्न समक्ष का संप्रेषण होता है। इस विशिष्ट संदर्भ में सबसे पहले इस शब्द का इस्तेमाल सत्तर के दशक की शुरुआत में बाबा साहेब अंबेडकर के नवबौद्ध अनुयायियों ने किया था। इस दलित शब्द में अंतर्निहित था कि 'जिसे तोड़ दिया गया है और जिसे उसके सामाजिक दर्जे से ऊपर बैठे लोगों ने जान-बूझकर नियोजित रूप से कुचल डाला है। इस शब्द में छुआछूत, कर्म सिद्धांत और जातिगत श्रेणी का नकार निहित है।'

अंतिम बौद्ध सम्राट वृहद्रथ की हत्या 185 ई०पू० में उसी के ब्राह्मणवादीसेनापति पुष्यमित्र सुंग ने पतंजलि की शिक्षा के अनुरूप की और जड़तामूल व गंभीर भेदभावों की जननी हिंदू विधि संहिता के रूप में मनुस्मृति की रचना हुई। बौद्ध काल में शूद्र राजा हो सकता था, धर्म गुरु व न्यायाधीश हो सकता

था. ऊचे से ऊंचे पद पर जा सकता था। स्त्रियों के लिए भी कोई बंधन नहीं थे लेकिन पतंजलि, पुष्यमित्र सुग व मनु ने इस समतामूलक व्यवस्था को षडयंत्र रचकर इसलिए पलट दिया क्योंकि इसमें ब्राह्मणवादी को सर्वोपरि स्थान प्राप्त नहीं थे। हिंदू विधि संहिता की पवित्र पुस्तक मनुस्मृति जहां कदम-कदम पर शुद्रों-अतिशूद्रों को अपमानित व दंडित करने की व्यवस्था देती है, वहीं व्यवस्था देती है कि ब्राह्मणवादी तीनों लोकों के मनुष्यों की हत्याएं करने के बाद भी सिर्फ वेद पाठ करके पाप मुक्त हो सकता है।

ब्राह्मणवादी दर्शन में चीजें जैसी दिखाई देती हैं। वैसी होती नहीं हैं। इसके विपरीत यथार्थवादी चिंतनधारा की सैकड़ों शाखाएं सदियों से लोकमानस में सक्रिय रही हैं। आठवीं से छठी शताब्दी ई०पू० के मध्य लोकायत-चार्वाक दर्शन हमारे सामने आया, जिसने इंसानी बराबरी की बात करते हुए स्वर्ग-नरक, मोक्ष और कर्मफल सिद्धांत को शोषकों के औजार कहा। शपरम्परा के इस मूलाधार ने बुद्ध पैदा किया, सरहपा पैदा किया, आगे चलकर कबीर पैदा किया। कबीर का उदाहरण लें। जीवन के हर क्षेत्र में दिए गए उनके महान अवदान को करीब पांच सौ सालों तक नजरअंदाज करने का प्रयास भवजन ने किया। कबीर जैसे दहकते अंगार को भाववादी दर्शन ने भी भुरभुरी रेत में दबाए रखने का असफल प्रयास किया। इस परम्परा से जुड़े महापुरुषों ने जीवन विरोधी उन सारी अवधारणाओं, मान्यताओं, आंदोलनों की पोल खोलकर उन्हें नकारा।²

‘हिन्दू शब्द के कई अर्थ और मुसलमान शासकों व अंग्रेजों द्वारा उनके प्रयोग व हिंदू शब्द के सवर्णों, पिछड़ों, दलितों, आदिवासियों की पहचान हेतु आपनाने से ब्राह्मणवादी संस्कृति और भारतीय- संस्कृति जो भिन्न-भिन्न राष्ट्रयताएं थीं, उनमें भारी भ्रम पैदा हो गया। सन् 1911 की जनगणना के समय- पहली बार ब्राह्मण नेताओं ने अंग्रेज सरकार पर दबाव डाला कि सभी कायस्थ, पिछड़े, आदिवासी हिंदू लिखे जाएं। भारतीय इतिहास की यह छोटी घटना है। संस्कृति के इतिहास में यह मामूली-सा दिखने वाला हेरफेर इस देश की ऐतिहासिक वास्तविकता को ध्वस्त करने में कामयाब जो गया। जिस देश का इतिहास हिंदू इतिहास नहीं था. वह हिंदू विचार परम्परा मान ली गई। दरअसल भारतीय उपमहाद्वीप का ऐतिहासिक-सामाजिक- सांस्कृतिक चित्र आज तक दुनिया ने यह देखा जो ब्राह्मण ने दिखाया चाहा।³ भारत का इतिहास कई संस्कृतियों से गुजरते हुए हमारे बीच है। डा. अम्बेडकर की इतिहास दृष्टि पर केवल भारती लिखते हैं, डा. अम्बेडकर पहले भारतीय इतिहासकार हैं, जिन्होंने इतिहास में दलितों की स्थिति को रेखांकित किया है। उन्होंने इतिहास लेखन में दो तथ्यों को स्वीकार किए जाने की बात स्वीकार की है। पहली बात यह स्वीकार कर लेनी चाहिए कि एक समान भारतीय संस्कृति जैसी कोई चीज कभी नहीं रही और यह कि भारत तीन प्रकार का रहा-ब्राह्मण-भारत, बौद्ध-भारत, हिंदू भारत। इनकी अपनी-अपनी संस्कृतियां रही हैं। दूसरी बात यह स्वीकार की जानी चाहिए कि मुसलमानों के आक्रमण से पहले भारत का इतिहास ब्राह्मणवाद और बौद्ध धर्म के अनुयायियों के बीच परस्पर संघर्ष का रहा है। जो इन दो तथ्यों को स्वीकार नहीं करता वह भारत का सच्चा इतिहास, जो युग के अर्थ और उद्देश्य को स्पष्ट कर सकें कभी नहीं लिख सकता।⁴

दलित विमर्श से जन्मा दलित साहित्य वर्णवादी, जातिवादी कर्मफलवादी, पुरोहितवादी, मनुवादी, हिंदुत्ववादी, सामाजिक-सांस्कृतिक मूल्यों के चिंतन तथा मानव मुक्ति दलित मुक्ति के सरोकरों के साथ समाज में फैले विभिन्न तरह के भ्रष्टाचार पर अंकुश लगाने व न्यायपरक समाज बनाने के लिए हमारे सामने है। दलित विमर्श के ये मुद्दे लोकायत, बुद्ध, सिद्धों, नाथों से होते हुए मध्यकालीन संतों तक स्पष्ट दिखाई देते हैं। कबीर धर्मांधता में कसे हिन्दूओं व मुसलमान भी गारी।⁵ वे ब्राह्मण की झूठी प्रतिष्ठा पर प्रहार करते हुए कहते हैं जो भीख मांगता फिरता है वह दूसरे का भला कभी नहीं कर सकता, वह तो चारे है- ‘वे ब्राह्मण कीन्ड कौन को काजा। ब्राह्मण सब कीन्ही चोरी।’ रविदास ने तत्काली आध्यात्मिक मूल्यों से ब्रिदोह करते हुए एकता और समाजवादी मूल्यों को आपनाने पर जोर दिया ‘ऐसा चाहों राज में जहां मिले सवन को अन्न। छोट बड़ों सब सम वसे रैदास रहे प्रसन्न।’ ज्योतिबा फुले ने ‘शिवाजी का पंवाड़ा’ (वीरगाथा) की प्रस्तावना में लिखा है, ‘ब्राह्मणों का शूद्रों के साथ जो व्यवहार होता है, उससे यह सिद्ध है कि ब्राह्मणों का इस देश से कुछ भी संबंध नहीं है। इन्होंने केवल स्वार्थ की वजह से इस देश पर एकाएक लगातार हमले किए और जिस-जिस समय जो लोग यहां हमलों की चपेट में आए उनको बंदी बनाया गया और ब्रह्म राजा ने उन सभी को अपना-अपना गुलाम बना दिया। ब्राह्मणों के पाखंडी ग्रंथों की चालाकी के संबंध में एक अभंग (कविता) में वे लिखते हैं- मनु जलकर खाक हो गया जब अंग्रेज आया। ज्ञानरूपी मां ने हमको दूध पिलाया। अब तो तुम भी पीछे न रहो। भाईयों, पूरी तरह जलाकर खाक कर दो मनुवाद को। हम शिक्षा पाते ही पाएंगे वह सुख। पढ़ तो मेरा लेख, जोति कहे।⁶

ज्योतिबा फुले की रचनाधर्मिता व आंदोलनों ने महाराष्ट्र में जो जनजागरण किया, उसका प्रभाव हिंदी भाषी राज्यों तक पहुँचा। इतिहासकार लाल बहादुर वर्मा, राजा राममोहन राय से उनकी तुलना करते हुए लिखते हैं, ‘राजा राममोहन राय के मुकाबले ज्योतिबा फुले के सरोकार अधिक गहरे थे, अधिक ‘रैडिकल’ थे। सैद्धांतिक विवेचन कभी-कभी सबके लिए ग्राह्य और प्रासंगिक नहीं होता पर एक व्यावहारिक तथा सुगम तरीका है, परिणामों के माध्यम से चीजों को समझने का। राजा राममोहन राय ने जिन सुधारों और उपकरणों की बात की थी वे समाज को आधुनिक बनाने के लिए जरूरी थे पर उनका क्षेत्र सीमित था और आज 150 वर्षों के बाद भी उनसे समाज का अभिजन मुख्य रूप से प्रभावित है। हां, यह जरूर हुआ कि उनकी समझ और शक्ति बढ़ी है। पर ज्योतिबा फुले के सुधार समाज में कुछ आधारभूत परिवर्तन के बिना लागू ही नहीं हो सकते थे। उन्होंने जो मुद्दे उठाए थे वे सामाजिक परिवर्तन के एजेंडे पर आज सबसे उपर हैं और जो शूद्र अतिशूद्र उनकी चिन्ता-चिंतन के केंद्र में थे वे आज अपनी दलित स्थिति को स्वीकारने को तैयार नहीं हैं। ब्राह्मणवाद जो सामाजिक विषमता को नैसर्गिक मानता है और दलित परिघटना के लिए पूतिया जिम्मेदार है, आज तरह-तरह के समझौते कर दलित वर्ग को ललचाए-फुसलाए-भटकाए रखना चाहते हुए भी उनके साथ हाथ मिलाने को तत्पर रहता है। मार्क्सवादी जो जडसूत्रवादी हो जाने पर सामाजिक यथार्थ की जटिलता को एक मात्र वर्ग माध्यम से ही समझने की जिद पर अड़े थे, आज वर्ग के साथ वर्ण-व्यवस्था को भी यचार्य की एक अभिव्यक्ति मानने की समझदारी विकसित करने में लगे हैं। इस तरह देखें तो फुले की भूमिका अधिक निर्णायक सिद्ध होगी ही।⁶ लेकिन इतिहासकारों ने अपनी सामाजिक संकीर्णताओं के कारण राजा राममोहन राय की तो नवजागरण का अग्रदूत कहते हुए उन पर बहुत कुछ लिखा लेकिन फुले का जिक्र तक न किया। इतिहास लेखन की इस दृष्टि ने बहुजन समाज के गौरवशील इतिहास को कभी जनता तक पहुँचने ही नहीं दिया। इसलिए, दलित विमर्श इतिहास की पुनर्व्याख्या चाहता है। अम्बेडकर ने कम्युनिस्टों को भी ब्राह्मणवादी करार दिया। और कम्युनिस्टों ने अंबेडकर को अंग्रेजों का पिछलग्गू और दालितों के लिए भटकाव करार दिया। ऐसे में मार्क्सवादी विश्लेषणों में अंबेडकर का जिक्र तो आने की अनिवार्यता थी, क्योंकि अंबेडकर एक शक्ति केंद्र बन चुके थे, और उनकी राजनीति गांधी तक को उलझाने लगी थी।

पर फुले तो एक विचारक-सुधारक थे। उन्हें नजरअंदाज किया जा सकता था और किया जाता रहा। इसलिए इतिहास लेखन में दलित दृष्टि और उनकी वास्तविक स्थिति को चिन्हित किया जाए तभी इतिहास वास्तव में प्रमाणित और जन इतिहास बन सकेगा।⁷

बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में अछूत नेताओं ने ऊंची जाति के हिन्दूओं के मुकाबले अपनी पृथक अस्मिता गढ़ी। उन्होंने दावा किया कि अछूत मुसलमानों, हिन्दुओं और सिखों की तहत अलग धर्म और संस्कृति रखने वाली भिन्न कौम है, इनमें उत्तर प्रदेश से स्वामी अछूतानंद, पंजाब से स्वामी शूद्रानंद, वसंत पाई ठक्करचंद एवं मंगूराम थे। इसी भाति महाराष्ट्र, आंध्रप्रदेश, कर्नाटक आदि में भी हिंदू आंदोलन प्रस्फुटित हुए। इन्होंने दलितों को मूल निवासी बताते हुए सामाजिक भेदभावों का प्रतिकार किया। पंजाब के मंगूराम व अन्य नेताओं की दलील थी, 'हम सब इस देश के मूल निवासी हैं और हमारा धर्म आदधर्म है। हिंदू काम ने बाहर से आकर हमें गुलाम बनाया है, हमारा विगुल बजते ही सभी चमार, चूड़े, सैनी, भांजरे, यानी सभी अछूत अपनी समस्याएं बताने के लिए एकजुट हो जाते हैं भाईयों, हम सात करोड़ और हमें हिंदुओं के रूप में सूचीबद्ध किया गया है। हमें अलग और आजाद किया जाना चाहिए। हमने हिन्दूओं पर भरोसा किया लेकिन वे विश्वासघाती निकले। भाईयों, अब वक्त आ गया है, जागों सरकार हमारी पुकार सुन रही है। सदियां गुजर गईं लेकिन हम सोए हुए हैं। भाईयों, मनु की लिखी पंक्तियां देखो, लेकिन वह तो हत्यारा था। कोई समय या जब हम भारत पर राज करते थे। यह धरती हमारी होती थी.... लेकिन हमारा इतिहास नष्ट कर दिया.... बेहतर जिंदगी गुजारने के लिए आओ एकजुट हो जाएं।'⁸ डा० अंबेडकर ने 1948 में यही दलील दी थी। उनका कहना था कि अछूत प्राचीन काल में मूल बौद्धों के वंशज हैं। ब्राह्मणों ने उन्हें गोमांस खाने पर विवश किया और उन्हें अछूत बना दिया ताकि वे 'टूटे हुए, अपवित्र, भूमिहीन और भद्र समाज की परिधि से दूर पड़े रहे।'⁹ स्वामी अछूतानंद ने आर्य समाज के शुद्धि आंदोलन को महज एक नाट करार दिया 'आर्य समाज की शुद्धि ढोंग है, और उसकी गुणकर्म की वर्णव्यवस्था झूठा शब्दजाल है। स्वामी जी ने आर्य समाज के मोहजाल से दलितों को निकालने में बहुत बड़ी भूमिका निभाई। स्वामी जी ने अपने आंदोलन के लिए 'आदि हिंदू' प्रेस दलित लेखक, पत्रकार और संपादक थे। दलितों के इतिहास पर लिखी उनकी पुस्तकें, कविता और नाटक हाथों-हाथ बिकती थी और उनसे परिवर्तन का वातावरण बनता था।¹⁰

भारत में गरीब की रेखा से नीचे रहने वाली कुल 49 प्रतिशत जनता के मुकाबले दलितों की 70 प्रतिशत उस अतिदरिद्रता की हालत में रहती है। देश की कुल आबादी का 16 प्रतिशत होने के बाद भी दलितों के पास कुल खेती योग्य जमीन का केवल एक प्रतिशत हिस्सा ही है।¹¹ 2001 की जनगणना के अनुसार दलितों में राष्ट्रीय साक्षरता दर 45 प्रतिशत है। इनकी तीन चौथाई आबादी ग्रामीण क्षेत्रों में रहती है तथा इतनी कृषि कार्यों में लगी है। देश के बारह प्रदेशों में छुआछूत प्रचलन में है और अन्य राज्यों में इसका असर कुछ कम हुआ है। देश में हर घंटे में दो दलितों को हिंसक हमले का शिकार होना पड़ता है, प्रत्येक दिन दो दलितों की हत्या कर दी जाती है और दो दलित घरों में आग लगा दी जाती है।¹² वह बीतवीं सदी का दूसरा दशक था जब 1914 में महावीर प्रसाद द्विवेदी की यशस्वी पत्रिका सरस्वती में दलित कवि हीरा डोम द्वारा रचित 'अछूत की शिकायत' प्रकाशित हुई।¹³ इसके बाद अछूतों ने धीरे-धीरे अपने मानवीय अधिकारों के आंदोलनों का संचालन किया। 1920 के बाद डा० अंबेडकर ने निरंतर दलित मुक्ति, मानवाधिकार के मामले उठाकर सरकार व पूरे देश का ध्यान आकर्षित किया। महाड़ व कालाराम मंदिर प्रकरण, गोलमेज सम्मेलन, पूना पेक्ट, स्वतंत्र मजदूर दल, शङ्खूल्ड कास्ट फेडरेशन, संविधान सभा से होते हुए देश के प्रथम कानून मंत्री और उसे त्यागपत्र तक का सफर विपरीत हालात से गुजरता हुआ 14 अक्टूबर 1956 को बौद्ध धर्मांतरण के साथ पूर्ण हुआ। उन्होंने कांग्रेस व गांधीजी की अछूतोंद्वारा संबंधी कार्यप्रणाली की ध्वजियां उड़ाते हुए 1945 में 'कांग्रेस और गांधी जी ने अछूतों के लिए क्या किया' नामक पुस्तक के प्रथम पृष्ठ पर लिखा 'हमारा मालिक बनने से तुम्हें फायदा होगा पर तुम्हारा दास बनने से हमें क्या फायदा हो सकता है।' उन्होंने गांधी के हरिजन व आत्मशुद्धि के प्रयोग को नकारते हुए आत्मसम्मान और दलित दावेदारी तथा दास की अपेक्षा स्वामी बनने की भाषा का प्रयोग किया। प्रसिद्ध इतिहासकार

सुमित सरकार लिखते हैं, इतिहास गवाह है कि हरिजन आंदोलन का जन्म ही दलित आंदोलन को दबाने के लिए हुआ था, लेकिन समय के प्रवाह में दलित आंदोलन ने हरिजन आंदोलन सामाजिक, धार्मिक प्रक्ति के मुद्दों को गौण साबित करते हुए राजनैतिक एवं आर्थिक प्रतिनिधित्व के सवाल पर अपने आंदोलन की बिसात तैयार की। गांधीजी के आत्मशुद्धि के नारे के बदले अंबेडकर के आत्मसम्मान आंदोलन ने दलित वंचित समाज में एक चिंगारी का काम किया और इनमें राजनैतिक चेतना पदी की।¹⁴

भारतीय संविधान के मूल्यों और यहां की सामाजिक हालत के विरोधाभास की व्याख्या करते हुए डा० अंबेडकर ने संविधान सभा में कहा था, 'भारतीय समाज में दो बातों का पूर्णतः अभाव है। इनमें से एक समानता है। सामाजिक क्षेत्र में हमारे देश का समाज वर्गीकृत असमानता के सिद्धांत पर आधारित है जिसका अर्थ है कुछ लोगों के लिए उत्थान एवं अन्यो की अवनति। आर्थिक क्षेत्र में हम देखते हैं कि समाज में कुछ लोगों के पास अथाह सम्पत्ति है जबकि दूसरी ओर असंख्य लोग घोर दरिद्रता के शिकार हैं। 26 जनवरी 1950 को हम लोग एक विरोधाभासी जीवन को जीते रहेंगे। अपने सामाजिक एवं आर्थिक जीवन में समानता को अस्वीकार करते रहेंगे।'¹⁵

भारतीय समाज में सदियों से व्याप्त प्रतिगामी, जड़ ताकतों से संघर्ष करने के लिए दलित विमर्श इसलिए मैदान में है कि वर्षों एवं हजारों जातियों के स्तम्भनुमा शोषण का खात्मा करके मानवीय, भेदभाव रहित, न्यायपरक समाज बनाया जा सके। मानव की प्रतिष्ठा के लिए यह आवश्यक है कि धर्म- संस्कृति, परम्परा के नाम पर भेदभाव की आंखों वाली जातिवादी रूग्ण मानसिकता पर कड़ाई से रोक लगे। क्या कारण है कि जाति विशेष का बौद्ध होने पर समान पद-गरिमा एवं समाज आर्थिक स्तर वाले दो व्यक्तियों में से एक अवैदिक घोषित हो जाता है तथा दूसरा बुद्धिमान, आधुनिक व न जाने क्या-क्या? जातिवाद चेचक, टी०बी० से भी भयंकर संक्रामक रोग है। आर्थिक विकास होने पर व्यक्ति का रहन-सहन, जीवनयापन के तौर तरीके बदल सकते हैं, लेकिन धर्म व जातिवादी समाज की नजरों में वह रहता निम्न ही है। उपप्रधानमंत्री रहते हुए बाबू जगजीवनराम द्वारा वारणसी में संपूर्णानंद की प्रतिमा का उद्घाटन करने पर ब्राह्मणों ने उसे दूध से धोकर 'पवित्र' किया था। इसी तरह काशीराम के सामाजिक, राजीनतिक संघर्षों के प्रति उच्च वर्ण एवं जातियों का रवैया दुर्भावनापूर्ण ही रहा है क्योंकि उन्होंने जातिवाद के स्थापित मूल्यों के खिलाफ व्यापक अभियान चलाए। जातिवाद की समस्या मात्र दलितों की समस्या नहीं है, यह संपूर्ण समाज एवं राष्ट्र की समस्या है। दलित मुक्ति के सवाल से केवल दलितों का ही हित होने वाला हो ऐसा नहीं है अपितु यह सारे देश की, बहुजन की

आवश्यकता है। ब्राह्मण यदि उच्च है तो दलितों को कोई आपत्ति नहीं लेकर सावाल यह है कि दलित नीचा क्यों? देश के सभी नागरिक उच्च एवं समकक्ष हैं, यदि उनमें भेदभाव होगा तो अशांति फैलेगी और कोई भी लोकतांत्रिक व्यवस्था नागरिकों के अशांत रहते हुए अपना शासन ढंग से चला ले, यह असंभव है।

दलित समाज में जन्में साहित्यकारों द्वारा दलित विषयों पर रचा गया साहित्य गैर दलित साहित्यकारों से अधिक गहरा व संवेदनशील होता है क्योंकि स्वानुभूति का साहित्य अधिक गहराई तक जाता है जबकि गैर दलित लेखकों का सहानुभूतिपरक साहित्य मात्र सतही होता है। दलित और स्त्री विमर्श के संदर्भ में यह बात स्पष्ट हो चुकी है। दलितों और गैर दलितों की दृष्टि पर डा. तुलसीराम कहते हैं, 'शंकराचार्य जीवन भर गौतमबद्ध की जड़ काटते रहे, किन्तु उनकी वंदना में लिखे एक श्लोक में उन्हें महान योगी और कमलासन पर बैठे विष्णु का अवतार बताते हैं, किन्तु दलित लेखक दया पावर जब बुद्ध पर लिखते हैं तो वे कहते हैं 'बुद्ध। अजंता तथा एलोरा में तरासी गई प्रतिमाओं में में तुम्हें नहीं देखता। मैं तो तुम्हें गरीबों, दुख के मारे हुए लोगों से बातें करते, उनकी बस्तियों में घूमते देखता हूँ। इस तरह एक गैर दलित और दलित की सोच का यह अंतर युगों का अंतर है।'¹⁶

उपर्युक्त उदाहरण बताता है कि दलित लेखकों को गैर दलित लेखकों की साहित्यिकता पर संदेह इसलिए है कि वे सामाजिक भ्रम पैदा करते देर नहीं लगाएंगे और दलित आंदोलन को खाक में मिलाने में जरा भी पीछे नहीं रहेंगे। लेकिन यह भी सच है कि गैर दलितों की दलित विषयों पर सच्ची अभिव्यक्ति का स्वागत करने में कोई कमी नहीं आएगी यदि उनमें द्विज मानसिकता के कारनामों, धर्मग्रंथों की झूठी पवित्रता और मानव शोषण पर लिखने का जज्बा हो। दलित साहित्य पर केवल दलितों का कॉपीराइट नहीं है लेकिन दलित साहित्यकार बनने की कसौटी ईमानदारी, तथ्यावेधी, इंसाफपरस्ती से होते हुए भारतीय संविधान के मूल्यों से जुड़ी है।

डा० अंबेडकर के चिंतन में समाजवाद और क्रांति के सूत्र मौजूद हैं। डा. अंबेडकर ने सर्वहारा की तानाशही का विरोध किया है। समाजवादी व्यवस्था का नहीं। वे राज्य के नियंत्रण में नई समाज व्यवस्था के लिए ऐसी आर्थिक व्यवस्था स्थापित करना चाहते हैं जिसमें संपत्ति का समान वितरण, कृषि पर राज्य का स्वामित्व हो, सामूहिक खेती की व्यवस्था हो और बीमा का राष्ट्रीयकरण हो। इसके साथ-साथ वे तीव्र औद्योगिकीकरण की जरूरत को भी मजसूस करते हैं। इसका सीधा-सा अर्थ था कि राज्य आर्थिक नियोजन के लिए आवश्यक पूंजी उपलब्ध कराएगा। डा० अंबेडकर की दृष्टि में ऐसी नई समाज व्यवस्था राजकीय समाजवाद में ही संभव हो सकती है। सोवियत संघ के विकास से पहले वहां ऐसा ही समाजवाद कायम था, जिससे डा० अंबेडकर प्रभावित नजर आते हैं। जो सबसे बड़ा अंतर था वह यही था कि डा० अंबेडकर संसदीय लोकतंत्र के हिमायती थे और संविधान द्वारा राजकीय समाजवाद की स्थापना करना चाहते थे। उसी विंदु पर आकर वे सर्वहारा की तानाशही का विरोध करते हैं।¹⁷ वे राजनैतिक क्रांति से पहले सामाजिक क्रांति का समर्थन करते हैं और भारतीय समाज की जड़ ताकतें द्वारा धर्म के नाम पर समता, स्वतंत्रता, बंधुता के हनन की वर्णवादी गायों का अंत करके ऐसा समतामूलक समाज चाहते हैं जहां किसी के प्रति भेदभाव न हो। दलित साहित्यकार खूनी क्रांति की अपेक्षा शब्दों की क्रांति को अपनाते हैं। मोहनदास नैमिशराय ने क्रांति की इसी अवध धारणा पर लिखा है। न तो तुम सामंत हो न माफिया। जिनके पास हथियार गिरोह होते हैं। तुम्हारे पास केवल शब्द हैं। उन्हीं को तुम्हें आंदोलन बनाना है क्रांति हथियारों से नहीं शब्दों से ही आती है। (आग और आंदोलन) दलित साहित्य हिन्दू समाज व्यवस्था के अमानवीय चेहरे को मानवीय बनाने के लिए आक्रोश और विद्रोह से लैस होकर गहरी संवेदना और सौंदर्य से आगे बढ़ता है प्रोफेसर नंदुराम के अनुसार "प्राचीन हिंदू साहित्य जो वर्णगत, जातिगत व्यवस्था प्रदान करता है, के प्रति दलित साहित्य में आक्रोश मुखरित हो रहा है। क्योंकि दलित रचनाकार स्थापित समाज व साहित्य दोनों को नकारता है तथा बराबरी की भावना पर आधारित एक नई व्यवस्था की स्थापना की जोरदार मांग करता है।" दलित प्रतिनिधित्व के प्रश्नों पर राजेन्द्र यादव लिखते हैं यह कैसी विडंबना है कि जब तक दलित समाज हमारी सहानुभूति और हमदर्दी के दायरे में होता है, तब तक हमारी दृष्टि में यह ठीक कहा जाता है लेकिन ज्यों ही वे अपने अधिकारों की मांग करते हैं, हमारे लिए घृणा और हिंसा का विषय बन जाते हैं।¹⁸ हजारों साल तक जातीय अपमान व घृणा से उत्पीड़ित लोग आज सम्मान चाहते हैं, आर्थिक सुधारों से पहले सामाजिक परिवर्तन चाहते हैं। सया समुदाय के गरीब से गरीब व्यक्ति को भी सामाजिक स्तर पर दूसरों से सम्मान मिलता है लेकिन आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न दलित को उसकी जातीय पहचान के कारण वैसा सम्मान नहीं मिलता। इसलिए दलित की पीड़ा आर्थिक कम सामाजिक अधिक है। सवर्णों की भांति मार्क्सवादियों ने भी इस अपमान को नहीं झेला। कबल भारती इसी पीड़ा के अंतर पर लिखते हैं 'इसकी श्रेणी जन्म से पूज्य थी। वह कैसे जानता/गरीबी नहीं। सामाजिक बेइज्जती अखरती है।' (तब, तुम्हारी निष्ठा क्या होती?) कबल भारतीय लोकतंत्र की रक्षा के लिए जातिविहीन व शोषण रहित समाज बनाने के लिए सभी नागरिकों को समता का पक्षधर बनकर एक और स्वतंत्रता संग्राम लड़ने के लिए उनका आह्वान करते हैं। लेकिन समानांतर रूप से वह यह भी कहते हैं कि समाजवाद, प्रगतिवाद के नाम पर ब्राह्मणवादी, सामंतवादी, पूंजीवादी आस्थाओं में लिपटी सहानुभूति नहीं चाहिए- 'जो समाजवाद के कैप्सूल में भर रहे हैं ब्राह्मणवाद। जो जनवाद की आड़ में। स्थापित कर रहे हैं सामंती मूल्य/जो सिद्ध कर रहे हैं। पय भ्रष्टक तुलसीदास को पथ प्रदर्शक/रूढ़िवादी निराला को प्रगतिवाद का जनक। जिन्हें इस देश का पूंजीवाद वाट रहा है पुरस्कार ताकि वे उसी तरह करते रहें। सत्य का संहारा।' (तब तुम्हारी निष्ठा क्या होती।)

बाबू जगजीवन राम आजीवन कांग्रेस की सेवा करते रहे, उन्हें बाबा साहब के विरुद्ध, संघर्षों को दलित समाज में फैलने से रोकने के लिए उपयोग में लाया गया। वे कांग्रेस के अध्यक्ष भी रहे, उनकी अगुवाई में चुनाव लड़कर, गरीबी हटाओ का नार देकर कांग्रेस सत्तसीन हुई लेकिन जैसी ही उन्होंने अपने कुशल नेतृत्व के परिणाम में प्रधानमंत्री का पद पाने की चेष्टा की, उन्हें वे अहसास करा दिया गया कि वे 'हरिजन नेता' है। (दलित नेता बन नहीं पाए) और मात्र चमार हैं। इसलिए अपनी औकात में रहें, यही तो या पूना पैक्ट का परिमाण। जब बाबूजी को अपनी असलियत मालूम हुई, उनकी आंखों से परदा हटा, तब उन्होंने आत्मसम्मान के लिए नया दल बनाया लेकिन तब तक उनमें संघर्ष की ताकत नहीं बची थी। दलितों में चेतना पैदा करने के लिए यह बहुत बड़ा उदाहरण है लेकिन कोई इससे सबक लेने को तैयार नहीं। आज गए दौर का दलित विमर्श दलितों को राजनैतिक नेतृत्व के लिए तैयार कर रहा है।

भारतीय समाज के निम्नतम सोपान पर जीवन यापन करने वाले समुदाय की सामाजिक आर्थिक समस्याओं का जाति व्यवस्था से प्रत्यक्ष संबंध है क्योंकि यही व्यवस्था सामाजिक आर्थिक संरचना एवं संसाधनों से जुड़ी हुई है। डा. अंबेडकर ने कहा था कि दुनिया के अन्य देशों में सामाजिक क्रांतियां होती रही

हैं, पर भारत में ऐसी सामाजिक क्रांति क्यों नहीं हुई। उन्होंने इसके लिए जाति प्रथा की बुराईयों को जिम्मेदार माना। हिंदू धर्म प्रयोग ने वर्ण एवं जाति व्यवस्था को ईश्वरजनित माना और यह स्थापित किया कि मनुष्य का भाग्य ईश्वर के हाथ में है और ईश्वर की आराधना ही उसके जीवन को सफल बना सकती है। इसके लिए उन्होंने जीवन की उत्पत्ति कर्मफल से निर्धारित की। शोषण की इस व्यवस्था ने पूरे समात में निकम्मापन पैदा करके एक वर्ण व जाति विशेष को शोषण का लाईसेंस दे दिया। दलित साहित्य इस दर्शन पर प्रहार करते हुए इसके तथाकथित जनक ईश्वर की खबर लेता है। दलित साहित्यकार व्यक्ति को भाग्य, भगवान, भविष्य के शिंकेज स निकालकर उसको बेहतर इंसान बनने के लिए प्रेरित करता है। जयप्रकाश कर्दम 'शुक्र है तू नहीं है' नामक कविता (राष्ट्रीय सहारा, 22.11.99) में लिखते हैं। ईश्वर तेरे सत्य और शक्ति में अब जान गया हूँ। तेरे दलालों की कुटिलता और कमीनेपन को भी धरती पर कोई नीव खोदने से पहले जिसके संविधान में लिखा है। पहचान गया हूँ। शुक्र है तू कहीं नहीं है, केवल धर्म के धंधे का एक ट्रेड नेम है। अगर सचमुच तू कहीं होता तो सदियों की अपनी याताना का हिसाब में तुझसे जरूर चुकाता। कर्मफल और पुनर्जन्म जैसे शोषक मुहावरों पर डा-एन-सिंह लिखते हैं-

मेरे हाथ की कुदाल

कब्र खोदेगी

उस व्यवस्था की

तेरा अधिकार सिर्फ कर्म में है

श्रम में है

फल पर तेरा अधिकार नहीं।

भंगी समाज की दयनीय हालत पर ओमप्रकाश वाल्मीकि लिखते हैं। जब तक रामेसरी के हाथ में।

खड़ांग-खड़ांग घिसटती लौह गाड़ी है

मेरे देश की लोकतंत्र

एक गली है।

(सदियों का संताप)

राम रूपी ईश्वर के कारनामों पर लेखनी चलाते हुए युवा कवि राजेन्द्र बड़ागुजर लिखते हैं-

अगर राम न होते

तो अच्छा होता

उनका होना तो

दलितों का अभिशाप बन गया

शम्बूक बध के साथ ही

दलितों पर काला वितान तन गया

(मनु का पाप)

दलित विमर्श धर्मांतरण की घटनाओं के कारणों में जाकर उनका समाजशास्त्रीय मूल्यांकन करते हुए इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि दलित समुदाय सामाजिक अपमान, घुटन व घृणा के प्रतिरोध में तथा अस्मिता व आत्मसम्मान के लिए ऐसे धर्म को स्वीकार करता है, जहां उसे समता, बंधुता व स्वतंत्रता मिले। आज करोड़ों दलितों को हिंदूवाद की दरिया से निकलकर बुद्धिवाद पानी बुद्ध धर्म की तरफ अग्रसर होते देख जा सकता है। बाबा साहब ने उन्हें ऐसे धर्म में जाने का संकेत दिया जिसमें ईश्वर के नाम से होने वाला शोषण नहीं, इंसानी बरावरी है। चूँकि दलित साहित्य में अंबेडकरवाद सबसे प्रमुख है इसलिए यहां बुद्ध धम्म के प्रति विशेष लगाव और हिंदुत्व के प्रति नकरा देखा जा सकता है। जिस तरह हिंदी का विपुल साहित्य धर्म ग्रंथों की घटनाओं के आधार पर लिखा गया है और जारी है, इसी तरह दलित साहित्य भी धर्म के मानव विरोध पक्षों को चित्रित करके सामाजिक जागरण का अभियान चला रहा है।

संचेतना के संपादक डा महीप सिंह हिंदी साहित्य में बुद्ध धम्म के प्रति व्याप्त कटुता पर कहते हैं 'जयशंकर प्रसाद कृत नाटक 'चंद्रगुप्त' प्राचीन गौरव गाया के बहाने जहां ब्राह्मणवादी के महिमा मंडित करता है, वहीं बौद्ध व शूद्र को पृष्ठ दर पृष्ठ अपशब्दों और गालियों से प्रतड़ित करता है- यह नाटक बार-बार बौद्ध धर्म का खंडन करता है, उसे वेश्याओं, पतितों और शूद्रों का धर्म बताता है। चाणक्य की इस मान्यता का पोषण नाटक द्वारा होता है कि राष्ट्र का शुभचिंतन केवल ब्राह्मण ही कर सकते हैं। नाटक की ध्वनि यह है कि बौद्ध होना, ब्राह्मण विरोधी होना और देशद्रोही होना एक ही बात है।'¹⁹

दलित साहित्य की आत्मकथाओं में द्विज मानसिकता के यथार्थ चित्रण के साथ तथाकथित निम्न जातियों के प्रति उनमें जो घृणा, उत्पीड़न, अवमानना मौजूद है, उसका सटीक, बेबाक व विद्रोह पैदा करने वाला चित्रण देखने को मिलता है। आत्मकथा लिखने की शुरूआत मराठी के लेखकों ने की और यह धीरे-धीरे सभी जातीय भाषाओं में विस्तर पा गई। दया पवार की 'बलुत' (अछूत), शरण कुमार लिवाले की 'अक्करमासी' (दोगला), लक्ष्मण गायकवाड़ की 'उचल्या' (उचक्का), लक्ष्मण माने की 'उपरा' (पराया) तथा इसी तरह मराठी के अनेक लेखकों ने आत्मकथाएं लिखकर भोगे हुए यथार्थ व दलित की दृष्टि से समाज की अभिव्यक्ति की। पंजाबी के प्रेम गौरखी ने 'गैरहाजिर आदमी' शीर्षक से 1994 में आत्मकथा लिखी थी। इस भाँति हिंदी गौरखी ने 'गैरहाजिर आदमी' शीर्षक से 1994 में आत्मकथा लिखी थी। इस भाँति हिंदी आत्मकथाओं में ओमप्रकाश वाल्मीकि की 'जूटन' मोहनदास नैमिशराय की अपने-अपने पिंजरे', सूरजपाल चौहान की 'तिरस्कृत' इत्यादि रचनाओं ने वर्ण व जाति की जड़ताओं को झेलकर आए समाज में यह नई हिम्मत पैदा की है कि निरंतर संघर्ष ही जीत की निशानी है।

ओमप्रकाश वाल्मीकि हिंदी साहित्य एवं साहित्यकारों की मानसिकता पर लिखते हैं- हिंदी साहित्य में दलितों के प्रति उपेक्षाभाव विद्यमान है। वाहाय तौर पर मानवीय दिखने वाले हिंदी साहित्य में सामंती प्रवृत्तियाँ, भेदभावों और वैमनस्य पर आधारित ब्राह्मणवादी सोच, वर्ण व्यवस्था की पक्षधरता प्रमुखता से दिखाई पड़ती है। जिसे सवर्ण साहित्य कहा जाए तो कुछ भी अतिशयोक्ति नहीं होगी। इस साहित्य में दलितों की चुप्पी इतनी गहन है कि बेचौन कर देता है। दलित यह मान चुका है कि वर्ण पर आधारित अमानवीय व्यवस्था उसे गुलामी से मुक्त नहीं होने देगी। इसलिए वह इस व्यवस्था का विरोध मुखरता से करता है। यह शोषित का पक्षधर है। शोषक को उसने पहचान लिया है। हिंदी के स्थापित साहित्यकारों ने भी उस शोषण की पहचान की है, लेकिन वे बीच की रेखा पर खड़े हुए हैं, जहाँ से खड़े होकर वक्तव्य देने में सुविधा होती है दोनों काम एक साथ हो सकते हैं।²⁰ दलित चिंतन नकारात्मक विचारधारा नहीं है, बल्कि इसके पास लोकतांत्रिक समाज निर्माण का सकारात्मक एजेंडा है, एक ऐसे समाज का सपना है, जिसमें सभी वर्गों व व्यक्तियों को विकास के समान अवसर उपलब्ध होंगे। जिसमें सभी के विकास की गुंजाइश होगी। इसे कोई अन्य स्वरूप देना संभव नहीं है।²¹ प्रस्तुत आलेख का संक्षेप यही है कि दलित विमर्श के मुद्दों को अपने दौर से टकराकर विकसित होना है। यदि उनमें जान है, स्वाभिमान है, मुक्ति का जज्बा है तो वे इस कार्य को पूरा करने में हर संभव प्रयास करेंगे। जैसा कि डा. अंबेडकर ने कहा था कि यदि मेरे अनुयायी मेरे संघर्षों को आगे न बढ़ा पाए तो वे उन्हें वहीं छोड़ दें, पीछे न जाने दें। आज दलित विमर्श के मुद्दों पर विभिन्न चिंतन जारी है और लोकतांत्रिक प्रक्रिया के तहत यहाँ शोषितों, बहुजनों, सर्वहारा की सत्ता स्थापित होकर रहेगी। साहित्य एवं मीडिया को यह विश्वास होना चाहिए कि समाज का हित हिंदुत्व के प्रचार माध्यम बनने में नहीं, समता मूलक समाज, नागरिक समाज के माध्यम बनने में है। यदि मुख्यधारा का साहित्य व मीडिया इसको स्वीकार करके सामाजिक न्याय व लोक कल्याण की अतधारणा के तहत सबकी तरफ देखकर आगे चले तो देश की बहुत-सी समस्याएँ स्वयंमेव दूर हो जाएंगी।

निष्कर्ष:

दलित विमर्श भारत में सामाजिक न्याय और समानता की दिशा में एक सशक्त आंदोलन के रूप में उभरा है। यह विमर्श न केवल दलित समुदाय के अधिकारों और गरिमा की पुनर्स्थापना की बात करता है, बल्कि जाति आधारित शोषण और भेदभाव को समाप्त करने की ओर भी संकेत करता है। डॉ. भीमराव अंबेडकर के नेतृत्व में दलित आंदोलन ने भारतीय समाज में परिवर्तन की नींव रखी, जिसके परिणामस्वरूप संवैधानिक सुरक्षा, आरक्षण और अन्य नीतिगत हस्तक्षेपों की शुरुआत हुई। हालांकि, दलित समुदाय को आज भी कई सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। दलित साहित्य, कला और सांस्कृतिक अभिव्यक्तियाँ समाज के हाशिये पर पड़े समुदायों की आवाज को सामने लाती हैं और उनके अनुभवों को सार्वजनिक विमर्श का हिस्सा बनाती हैं। इस शोध आलेख में यह स्पष्ट हुआ कि दलित विमर्श केवल अतीत की घटनाओं तक सीमित नहीं है, बल्कि यह एक निरंतर प्रक्रिया है जो समावेशी और न्यायपूर्ण समाज के निर्माण के लिए आवश्यक है। राजनीतिक भागीदारी, शिक्षा और आर्थिक सशक्तिकरण के माध्यम से दलित समुदाय के विकास की संभावनाएँ मजबूत हुई हैं, लेकिन सामाजिक संरचना में वास्तविक परिवर्तन के लिए समाज के हर स्तर पर संवेदनशीलता और समानता की भावना को प्रोत्साहित करना आवश्यक है। दलित विमर्श भारतीय लोकतंत्र को मजबूत करने और सामाजिक समरसता को बढ़ावा देने की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है, जो भविष्य में अधिक समतावादी समाज के निर्माण में सहायक होगा।

संदर्भ सूची:

1. इलियनर जिलियट, दलित न्यू कल्चरल कटेक्ट फॉर ऐन ओल्ड मराठी वर्ल्ड, कंट्रीब्यूशन दु एशियन स्टडीज-11, 1978, पृ० 77 (उद्धृत अभय कुमार दुबे, आधुनिकता के आईने में दलित, पृ० 196, वाणी प्रकाशन, दिल्ली)
2. हरिम मीणा, भारतीय दर्शन: परम्परा का द्वंद्व, पहल, सित-नव-2003 पृ० 181, जबलपुर।
3. मुद्राराक्षस, धर्मग्रंथों का पुनर्पाठ, पृ० 12 इतिहास बोध प्रकाशन, इलाहाबाद, 2004
4. कंवल भारतीय, दलित विमर्श की भूमिका, पृ० 26 इतिहास बोध प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण।
5. उपर्युक्त, पृ० 114
6. लाल बहादुर वर्मा, इतिहास के वारे में, पृ० 120 इतिहास बोध प्रकाशन इलाहाबाद, 2003
7. उपर्युक्त पृ० 122-123
8. मार्क जुरगेंसमेवर, रिलीजन एज सोशल जिन: वि मूवमेंट अगेंस्ट अनटचेबिलिटी इन दि ट्वेंटीयथ सेंचुरी पंजाब, वर्कल, यूनिवर्सिटी ऑफ केलिफोर्निया प्रेस, 1982, पृ० 98 (उद्धृत, आधुनिकता के आईने में दलित, पृ० 210)
9. धनश्याम शाह, अस्मिताओं का सहअस्तित्व, सं० अभय कुमार दुबे, आधुनिकता के आईने में दलित, पृ० 210 वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली 2004।
10. कंवल भारती, दलित विमर्श की भूमिका, पृ० 61
11. अभय कुमार दुबे, अछूत की शिकायत, पृ० 24, आधुनिकता के आईने में दलित।
12. ब्रह्मनस्कप, सितम्बर, 2001, मुंबई संस्करण।
13. माता प्रसाद, हिंदी साहित्य में दलित काव्यधारा, पृ० 312-314 विश्वविद्यालय, प्रकाशन, वाराणसी, 1993।
14. सुमित मुखर्जी, आधुनिक भारत, (1885-1947) हरिजन आंदोलन प्रथम छात्र संस्करण आठवीं आवृत्ति, राजकमल, प्रकाशन, नई दिल्ली।
15. भीमराव अंबेडकर, संविधान में दिया गया भाषण, नवम्बर 1949, सामाजिक क्रांति के दस्तावेज-2 सं० शंभुनाथ, वाणी प्रकाशन। 16. डा० तुलसीराम, दलित साहित्य की राजनीतिक अवधारणा, पश्यंती दलित चेतना अंक, अप्रैल जून- 1998 इंदौर।
17. डा० तेज सिंह, मार्क्सवाद और दलित साहित्य, पहल, सितम्बर-नव 2003, पृ० 215 जबलपुर।
18. हस्तक्षेप, राष्ट्रीय सहारा, 18 जनवरी 1997।
19. महीप सिंह, संचेतना (हिंदी मानस और दलित लेखन), जून 1999, नई दिल्ली।
20. ओमप्रकाश वाल्मीकि, बदलाव का साहित्य, पृ० 133, पश्यंती-दलित चेतना अंक अप्रैल-जून 1999, इंदौर।
21. डा० सुभाष चंद्र, दलित आत्मकथाएं अनुभव से चिंतन, पृ० 176, इतिहास बोध प्रकाशन, इलाहाबाद, 2006।

विनोबा भावे की तीसरी शक्ति की समसामयिक प्रासंगिकता

राजकुमार

(रिसर्च स्कॉलर) राजनीति विज्ञान विभाग, जयप्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा, सारण (बिहार)

शोध आलेख का सारतत्व:

विनोबा भावे भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के एक प्रमुख आध्यात्मिक और सामाजिक नेता थे, जिनका दर्शन मानवता, अहिंसा और समाज के नैतिक पुनर्निर्माण पर आधारित था। उन्होंने 'तीसरी शक्ति' की संकल्पना प्रस्तुत की, जो हिंसा और सत्ता-प्रतिष्ठानों से इतर एक वैकल्पिक शक्ति का प्रतीक है। विनोबा के अनुसार, यह शक्ति नैतिकता, करुणा और समाज के कमजोर वर्गों के उत्थान में निहित है। उनका मानना था कि समाज का वास्तविक उत्थान सत्ता के संघर्ष से नहीं, बल्कि जनमानस के आत्मिक और नैतिक उत्थान से संभव है। तीसरी शक्ति के माध्यम से विनोबा भावे ने समाज को सशक्त बनाने के लिए अहिंसक आंदोलनों जैसे भूदान और ग्रामदान की शुरुआत की। उनका दृष्टिकोण सत्ता और हिंसा के द्वैत से ऊपर उठकर एक समावेशी और सामूहिक कल्याण की दिशा में प्रेरित करता है। आज के समय में जब विश्व असमानता, हिंसा और राजनीतिक अशांति का सामना कर रहा है, विनोबा की तीसरी शक्ति की अवधारणा अधिक प्रासंगिक प्रतीत होती है। यह शक्ति व्यक्तिगत और सामाजिक स्तर पर आत्मबल, सामूहिकता और नैतिक साहस को बढ़ावा देती है। यह शोध आलेख विनोबा भावे के तीसरी शक्ति के सिद्धांत की समकालीन प्रासंगिकता का विश्लेषण करता है और यह दर्शाता है कि कैसे उनके विचार आज के वैश्विक और स्थानीय समस्याओं के समाधान में मार्गदर्शक बन सकते हैं। यह आलेख इस बात पर भी प्रकाश डालता है कि विनोबा का दृष्टिकोण सामाजिक न्याय, शांति और सतत विकास के लिए किस प्रकार प्रेरणा का स्रोत है।

प्रमुख शब्दावली: सत्याग्रह, सत्य, स्वतंत्रता, समानता, न्याय, भूदान, कल्याण, सत्याग्रह, अहिंसा, विश्व शांति, राष्ट्र-निर्माण, समाज-निर्माण, व्यक्तित्व विकास, लोकतांत्रिक व्यवस्था, समाजवाद, स्वतंत्रता समानता आदि।

प्रस्तावना:

स्वतंत्र भारत में राजतंत्र और उपनिवेशवाद का बोलबाला था, जिसकी व्यवस्था नाशाही और दण्ड पर आधारित थी। सामान्यता जनता के प्रति उपेक्षा का भाव रखा जाता था। उस समय की तानाशाही व्यवस्था से मुक्ति दिलाने के लिए एवं गुलाम भारत को आजाद करने के लिए सरदार पटेल, राम मनोहर लाहिया, पं० जवाहर लाल नेहरू, महात्मा गाँधी, सुभाषचन्द्र बोस इत्यादि असंख्य देशभक्तों ने विदेशियों के विरुद्ध भीषण संघर्ष करते हुए 'अंग्रेजों भारत छोड़ो' का नाम बुलन्द किया। कलायुग 15 अगस्त 1947 को भारत को आजादी मिली। हमारे मनीषियों ने स्वतंत्रता, समानता, भ्रातृत्वभाव एवं न्याय की व्यवस्था पर आधारित भारतवर्ष का स्वप्न देखा या जिसमें अन्याय, अत्याचार, असमानता पर आधारित समाज नहीं हो। सभी सुनिश्चित एवं सुखी सम्पन्न हों। लेकिन आजाद भारतवर्ष हे संबंध में हमारे स्वतंत्रता कालीन महापुरुषों का स्वप्न दिवास्वप्न ही निकला और राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक क्षेत्रों में अन्याय, अत्याचार, पक्षपात पर आधारित व्यवस्था का साम्राज्य कायम हो गया। इस बधस्या का पूर्ण विकृतरूप आज हमारे समक्ष उपस्थित है। विनोबा भावे ने अत्यन्त ही सरल, सहज, सुलभ, सर्वग्राह्य, लोकप्रिय सम्पूर्ण जनता की शक्ति अर्थात् तीसरी शक्ति पर आधारित व्यवस्था की कल्पना की। विनोबा की तीसरी शक्ति वह शक्ति है जो न तो हिंसा की शक्ति है और न दण्ड की शक्ति है। तीसरी शक्ति प्रेम की शक्ति है। विनोबा ने इसे लोकशक्ति या जनशक्ति भी कहा है। विनोबा ने कहा "मनुष्य के हृदय में एक ऐसी शक्ति है जिसमें उसका जीवन समृद्ध है। मनुष्य प्रेम पर भरोसा रखता है। प्रेम से पैदा हुआ और प्रेम से ही पलता है। आखिर में जब दुनिया को छोड़कर जाता है, तब भी प्रेम की ही निगाह से जरा दर्द-गिर्द देख लेता है और अगर उसके प्रेमीजन उसे दिखायी पड़ते हैं तो सुख से देह तथा दुनिया को छोड़कर चला जाता है।"

विनोबा कहते हैं कि हमलोग प्रायः कानून की रट लगाते हैं, पर कानून की रट लगाने से जनशक्ति का निर्माण नहीं हो सकता है। जनशक्ति का निर्माण तो तब होता है जब प्रेम की शक्ति का विकास अधिक सामाजिक स्वरूप में किया जाता है। जैसा उन्होंने स्वयं कहा है, "प्रेम की शक्ति का इस तरह अनुभव होत हुए भी उसे अधिक सामाजिक स्वरूप में विकसित करने की हिम्मत छोड़कर अगर हम 'कानून-कानून' ही रहते रहें तो सरकार हमसे जनशक्ति निर्माण की जो मदद चाहती है, वह मदद हमने दी, ऐसा नहीं होगा। इसलिए इस दण्ड शक्ति से भिन्न जनशक्ति का निर्माण करना चाहते हैं और वह निर्माण ही होगा। यह जनशक्ति दण्ड शक्ति का विरोधी है, ऐसा मैं नहीं कहता। यह हिंसा की विरोधी है, लेकिन दण्ड शक्ति से भिन्न है।" प्रेम आदि की शक्ति ने पूर्वकाल में एक बड़ी गलती की थी और वह गलती यह थी कि उसने राज्य का आश्रय लेकर अपना प्रसार करना चाहा था। परन्तु परिणाम उल्टा हुआ था। प्रेम शक्ति पर उण्ड-शक्ति, अहिंसा-शक्ति पर हिंसा-शक्ति तथा करुणा-शक्ति पर कानून की शक्ति हावी हो गयी थी। इस अनुभव का लाभ उठाते हुए राज्य सत्ता से अलग रहकर तीसरी शक्ति का विकास करने की जरूरत है। विनोबा जी ने लोक सेवकों को राजनीतिक पक्षों में जाने की सलाह नहीं दी और

राजनीतिक के बदले लोकनीति की कल्पना की। विनोबा जी स्पष्ट कहते हैं, कि “तीसरी शक्ति या लोक शक्ति हिंसा शक्ति की विरोधी है। यह दण्ड-शक्ति से भिन्न है। दण्ड-शक्ति का उपयोग करने का मौका न आये, ऐसी परिस्थितिका देश में निर्माण करने का हमारा लक्ष्य होना चाहिए। अगर हम ऐसा करते हैं तो हमने स्वधर्म पहचान कर उस पर अमल करना जाना।” विनोबा ने प्रेम एवं अहिंसा यानि तीसरी शक्ति का सामाजिक स्तर पर भी व्यापक प्रयोग किया है। विनोबा ने तीसरी शक्ति को लोकशक्ति या जनशक्ति भी कहा है। अहिंसा और करुणा की अमूर्त तीसरी शक्ति ही लोकशक्ति में मूर्त हो उठती है अर्थात् तीसरी शक्ति लोकशक्ति में आकार ग्रहण कर लेता है। लोकशक्ति की धारणा का प्रयोग ने चार अर्थों में किया है। प्रथम अर्थ में लोकशक्ति-नागरिक शक्ति या नागरिकों की अहिंसक स्वावलम्बी शक्ति का सूचक है। लोकशक्ति का यह रूप तब प्रकट होता है, जब जनता या नागरिक अपनी समस्याओं को पहचानने लगती है और संगठित होकर एक समुदाय का निर्माण करती है तथा समस्याओं का समाधान सरकार या राज्य के भरोसे से नहीं बल्कि स्वयं कर लेता है और साथ ही परस्पर अन्य समुदायों को सहयोग भी देता है। दूसरे अर्थ में, तीसरी शक्ति हमारे सामने तब आती है जब नागरिक राज्य या प्रशासनिक के द्वारा हो रहे अपने ऊपर अत्याचारों का विरोध सत्याग्रह जैसे अहिंसक साधनों के द्वारा कहते हैं। इस अर्थ में लोकशक्ति के उदय के लिए कष्ट-सहन और सत्याग्रह की शक्ति का विकास करना अनिवार्य है। तीसरे अर्थ में, जब नागरिक स्वयं की परिस्थितियों में तथा संस्थाओं की परिस्थितियों में परिवर्तन लाने के लिए संगठित होकर अहिंसात्मक कार्यवाही करती है तो वह लोकशक्ति कही जाती है। इस अर्थ में लोकशक्ति या तीसरी शक्ति समाज परिवर्तन का साधन वर्तमान सरकार या व्यवस्था को हटाकर अपनी इच्छानुसार सरकार का निर्माण करता है। चौथे अर्थ में, लोकशक्ति ऊपर के तीनों अर्थों को साथ लिये हुए नागरिकों के स्वावलम्बन, प्रतिरोधक और समाज परिवर्तन की समन्वयात्मक शक्ति का सूचक है अर्थात् जनता की अहिंसक संगठित शक्ति अपनी समस्याओं का स्वयं समाधान करें। यह अपने मामलों को नियंत्रित और संचालित करने की कुशल क्षमता की प्राप्ति करें। लोकशक्ति द्वारा स्थापित एवं संचालित समाज व्यवस्था को गाँधी और विनोबा ने सर्वोपय समान व्यवस्था कहा है, जिसके संचालन के लिए गाँधी जी ने ‘पंचायतीराज’ की परिकल्पना की थी।

तीसरी शक्ति के अर्थ को स्पष्ट करने के बाद राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक क्षेत्रों में विनोबा द्वारा दिये गये परिकल्पित तीसरी शक्ति के प्रयोग कर विचार करने की जरूरत है। विनोबा के अनुसार राजनीतिक व्यवस्था के अन्तर्गत दो मुख्य प्रश्न उपस्थित होते हैं। प्रथम है। मनुष्य की सम्पत्ति का आपस में किस प्रकार बँटवारा हो? दूसरा है: समाज के सुख-दुःख का सन्तुलन कैसे संभाला जाय? प्रथम प्रश्न का मुख्य रूप से राजनीति पर आधारित है तो दूसरा सामाजिक। लेकिन विनोबा के अनुसार राजनीतिक और सामाजिक प्रश्न इस प्रकार अंतर्ग्रथित हैं कि उसे अलग नहीं किया जा सकता। समाज में नैसर्गिक रूप से दो वर्ग हैं। एक सामर्थ्यवान वर्ग जिसे निसर्गतः बुद्धि या शक्ति प्राप्त है और दूसरा असमर्थ वर्ग है जिसे प्रकृति के द्वारा बुद्धि या शक्ति कम मात्रा में मिली है। प्रश्न है कि कम और अधिक सामर्थ्यवान व्यक्ति आपस में मिलकर किस तरह की व्यवस्था कायम करें। राजनीतिशास्त्र में कई प्रकार की राज्य व्यवस्थाओं की चर्चा की गयी है। विनोबा उसका व्यापक वर्गीकरण एकायतन, अनेकायतन और सर्वायतन जैसे तीन भागों में करते हैं। एकायतन और सर्वायतन की पद्धति एकान्तिक है। अतः इनका उपभेद नहीं हो सकता।⁴ लेकिन अनेकायतन पद्धति के विभिन्न पदों की चर्चा विनोबा जी ने की है।⁵ एकायतन निरंकुश शासन पद्धति है तो सर्वायतन का दावा करने वाली आधुनिक प्रजातंत्रिक व्यवस्था का आधार वोट है जिसे विनोबा ने “नाटक” “बोगस”⁶ कहा है। यह राजतंत्र है जिसमें एक ही व्यक्ति राष्ट्रपति या प्रधानमंत्री या मुख्यमंत्री के रूप में अपनी मर्जी की मनमानी शासन चलाते हैं। वोट की अर्थहीनता को गणितीय प्रणाली के आधार पर स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा कि, “एक सौ मतदाताओं में केवल तीन मतवाले व्यक्तियों का शासन चलता है।”⁷

विनोबा वर्तमान प्रजातंत्रिक पद्धति की कटु आलोचना करते हुए अनेकायतन पद्धति में अहिंसक राज्य की कल्पना करते हैं। साथ ही लोकशक्ति, लोकनीति, ग्राम-स्वराज्य और पंचायतीराज की स्थापना के लिए ग्रामदान, प्रखंडदान, जिलादान तथा सर्वोदय आन्दोलन की वकालत कर अहिंसक राज्य की कल्पना को साकार करने की बात करते हैं। अहिंसक राज्य अहिंसा और प्रजातंत्रिक राज्य पद्धति का संगठन है। अहिंसक राज्य में पूर्वाग्रह, अज्ञान और अंधविश्वासों के लिए कोई स्थान नहीं है। उसका लक्ष्य वैश्व और जे० ए० मिल के परार्थमूलक सुखवाद या उपायेगितवाद को मूर्त रूप देना है। मिल और बंधन ने कहा है कि राज्य का उद्देश्य अधिक से अधिक सुख की वृद्धि करना है। विनोबा जी ने अधिकतम सुख के स्थान पर अधिकतम कल्याण शब्द जोड़ दिया। राज्य का अस्तित्व ही अधिकतम लोगों का कल्याण करना होना चाहिए।⁸ हरेक व्यक्ति को अधिकतम कल्याण करने के लिए स्वतंत्र छोड़ देना चाहिए और राज्य को उसमें नहीं करना चाहिए। राज्य का कार्य केवल ब्राह्म एवं आन्तरिक संकटों से सुरक्षा करना है। अहिंसक राज्य के संगठन के संबंध में विनोबा ने कहा है कि असंख्य गाँव से निर्मित लोकनीति एवं लोकशक्ति पर आधारित व्यक्तियों का संगठन है, जिसका केन्द्र व्यक्ति है जो अपने गाँव के लिए सदैव भरने के लिए तत्पर होगा और वह गाँव असंख्य ग्राम-समुदायों के वृत्त में अपने को विलीन कर देगा। यही स्थिति प्रखंड स्तर, जिला स्तर, राज्य स्तर, एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर का संगठन होगा। ऐसे राज्य का उद्देश्य ‘सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयाः’ जैसे औपनिषदिक धारणा पर आधारित होगा। यह राज्य हिंसा शक्ति और दण्ड शक्ति पर आधारित न होकर सहयोग की शक्ति अर्थात् जनशक्ति या लोकशक्ति या तीसरी शक्ति पर आधारित होगी। ऐसे राज्य तीसरी शक्ति पर आधारित राज्य में प्राथमिक आवश्यकता की सभी वस्तुओं का उत्पादन हर गाँव के लोग अपने गाँव में ही बना लेंगे। अतः आर्ज अहिंसक राज्य पद्धति में हर व्यक्ति के पास स्वायत्त उद्योग की व्यवस्था हामी। खेती के पूरक ग्रामोद्योग का जाल सारे राष्ट्रों में फैला हो और उकने संरक्षण तथा बनाने का प्रबंध राज्य व्यवस्था करें। सम्पत्ति का विभाजन वर्षा की तरह बूंद बूंद घर घर में करने के लिए बहुजन समाज या जनता को स्वावलम्बी बनाने के लिए भी ग्रामोद्योग के सामान कोई सहज, सुलभ और समर्थ योजना नहीं है। ऐसे ही ग्रामोद्योग पर आधारित अहिंसक राज्य में गाँवों को संगठित करने वाली प्रान्तीय सत्ता, प्रान्तों को संगठित करनेवाली राष्ट्रीय सत्ता तथा ऐसे राष्ट्रों को परस्पर सहकार्य में संगठित करने वाली अखिल मानव सत्ता निमित्त मात्र की यानि नाममात्र की सत्ता होगी। विनोबा विश्व मानव की कल्पना करते हुए राग-द्वेष से रहित मुक्त प्राका व्यक्ति से युक्त अखिल मानव सत्ता की कल्पना की।⁹ अखिल मानव सत्ता अपने नैतिक दल के द्वारा विश्व मानवता का नियमन करेंगे। सामाजिक क्षेत्र में तीसरी शक्ति का प्रयोगसामाजिक क्षेत्र में तीसरी शक्ति का प्रयोग वर्तमान सामाजिक संरचना में अत्यधिक त्रुटियों पाकर एक नये सामाजिक संरचना पपर प्रकाश डाला है। विनोबा जी का सर्वोदय दर्शन पर आधारित समाज है। जिस समाज में सभी व्यक्ति के सुखी एवं निरोग रहने की कामना की गयी है। विनोबा जी ने सर्वोदय, शांति सेना, नारी उत्थान, समन्वय, आचार्य कुल आदि सामाजिक क्षेत्र में विनोबा के तीसरी शक्ति के प्रयोग का प्रतिफल है। समाज में शांति व्यवस्था की स्थापना के लिए पुलिस के बदले शांति-सेना का सहयोग लेने का सलाह दिया है तथा सर्वोदय समाज में परस्पर सहयोग और सद्भावना की स्थापना की लिए थर्मों के बीच गर्मिक सहिष्णुता एवं सर्वधर्म-समन्वय

के लिए 'मानव धर्म' की स्थापना किये हैं और समाज में शिक्षा की व्यवस्था के लिए युवकों को सच्चे देशभक्त और चरित्रवान नागरिकों की पीढ़ी तैयार करने का गार आचार्यकुल को सौंपा है।

विनोबा जी ने समाज को सर्वोदय दर्शन पर आधारित करने का प्रयास किया है अर्थात् आदर्श है। सर्वोदय महात्मा जी के हृदय से निकली हुई ऋषि वाणी है। आज के युग का 'युग-मंत्र' है। सर्वोदय पूँजीवाद, समाजवाद और साम्यवाद की होड़ में खड़ा किया हुआ कोई वाद नहीं है।¹⁰ सर्वोदय सभी वायों का समन्वय करने वाला कल्याणकारी यंत्र है। सर्वोदय अन्तोदय अर्थात् जो सबसे पिछड़ा हुआ है, दलित और उपेक्षित है उससे प्रारम्भ करके सबकी उन्नति के लिए कार्य किया जाता है। सबका एक साथ विकास ही 'सर्वोदय' है। भारतीय संस्कृति में सैकड़ों वर्षों से प्राचीन ऋषिगण अपनी तपःपूत वाणी में 'सर्व भवन्तु सुखिनः' का सन्देश देते आ रहे हैं। जैन दार्शनिक समन्तभद्र ने 'युक्त्ययानुशासन' का 61 वीं कारिका में 'सर्वोदय तीर्थमिव तबैव' का उल्लेख कर भगवान महावीर के अनेकान्तात्मक प्रकथन को ही "सर्वोदय तीर्थ"¹¹ माना है। गीता के 'सर्वभूत हितेतराः' को जनमानस तक पहुँचाने का कार्य गाँधी और उनके शिष्य विनोबा ने ही किया है।

विनोबा जी ने 'सबै भूमि गोपाल की' इस दर्शन के आधार पर भूदान, सम्पत्तिदान, ग्रामदान और ट्रस्टीशिप का आन्दोलन चलाकर सर्वोदय समाज को मूर्तरूप देने का प्रयास किया। विनोबा जी ने समाज में नारी उत्थान का भी कार्यक्रम किया। विनोबा जी ने भगवद्गीता में वर्णित कीर्ति, श्री, वाणी, स्मृति, नेष्टा, धृति और क्षमा जैसी सात शक्तियों को प्रत्येक नारी को अपने व्यक्तित्व में समाहित करने का आदेश दिया है। नारी अपने में इन सातों शक्तियों को धारण कर अपना व्यक्तित्व की श्रेष्ठता साबित कर सकती है।¹²

विनोबा जी ने सर्व धर्म समन्वय के विचार पर भी बल दिया है। सर्व धर्म समन्वय के लिए विनोबा जी ने गाँधी के बीले वाले विचार को आपस में संगठित करते हैं। उदाहरणस्वरूप, गाँधी अपनी प्राद्यना सभा में कुछ वैष्णव भजन, कुछ कुरान का उद्धरण और कुछ बाइबिल का अंश रखते थे जिसमें सभी धर्मों के व्यक्ति उपस्थित होते थे। किन्तु विनोबा जी सभी धर्मों के अलग-अलग प्रार्थना का अनुभव नहीं करते हैं। ये एक ही प्रार्थना में सभी धर्मों के प्रमुख तत्त्वों को संगठित करते हैं। इसी प्रकार प्रमुख धर्मों के बाहरी गुणों को आपस में संगठित कर एक नये 'मानव धर्म' की स्थापना करना विनोबा का लक्ष्य है। उदाहरणस्वरूप, ईसाई धर्म की सेवा भावना, इस्लाम का धर्म के संबंध में लोकतांत्रिक विचार और सूद लेने का बहिष्कार, जैनों की तपस्या ये सभी आपस में समन्वय के विचार हैं। इनके आधार पर परम मानव धर्म की स्थापना हो सकती है। अतः यहाँ भी विनोबा ने भिन्न-भिन्न धर्मों का आपस में संगठित करने का प्रयास किया है।

सर्व-धर्म-समन्वय व्रत के अन्तर्गत सभी धर्मों के भेदभाव को अर्थात् द्वेष या भिन्नता को मिटाकर अद्वैत विचार ही सर्व-धर्म-समन्वय का व्रत है। सर्व-धर्म-समन्वय व्रत ही तीसरी शक्ति है। इस तरह विनोबा जी ने समाज में सर्वोदय, शांति-सोना, नारी उत्थान, धर्म समन्वय एवं आचार्यकुल के द्वारा तीसरी शक्ति को मर्यादित किया।

विनोबा जी ने आर्थिक क्षेत्र के अन्तर्गत ट्रस्टीशिप, खादी, भूदान यज्ञ, सम्पत्तिदान-यज्ञ, ग्रामदान और श्रमदान की धारणा को विकसित किया है। विनोबा जी ने ट्रस्टीशिप सिद्धान्त को "विश्वस्तयोग"¹³ का नाम दिया है अर्थात् शरीर, बुद्धि और सम्पत्ति तीनों से जो भी प्राप्त हो उसे सबड़े हित में लगाना चाहिए। तीसरी शक्ति के विचार के अन्तर्गत ट्रस्टीशिप की योजना गाँव के स्तर से लागू होती है। गाँव के सारे फैसेले पंच करेंगे। न मालिक बड़ा है, न मजदूर छोटा, दोनों समता के स्तर पर खड़े होकर उत्पादन और वितरण में अपना स्थान तय करते हैं। गाँधीजी ने तीसरी शक्ति के अन्तर्गत खादी को महत्त्वपूर्ण स्थान देते हैं। खादी को गाँधी और विनोबा ने उद्योग के रूप में विकसित किया था। जब घर-घर में चरखें चलेंगे तो बेरोजगारी, बेकारी और भूखमरी तो दूर होगी ही अर्थव्यवस्था भी सुदृढ़ होगा। यदि खादी के उत्पादन के साथ गाँव के साथ गाँव में तेलघानी, कुम्हारी, बढईगिरी, लोहारी, चमड़े का उद्योग, मधुमक्खी पालन, मतस्य पालन, फूलों का व्यवसायिक स्तर पर उत्पादन, औषधि पौधों का व्यवसायिक स्तर पर उत्पादन करें तो विनोबा की लादी ग्रामोद्योग का विचार तो सशक्त बनेगा ही साथ ही प्रत्येक व्यक्ति-सम्पन्न होगा और राष्ट्र सम्पन्न होगा तथा तीसरी शक्ति अर्थात् सर्वोदय विचार भी जीवित हो उठा। इस तरह खादी ग्रामोद्योग मानव के आर्थिक तंत्र का एक आधारशिला है।

विनोबा जी ने समाज की आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ करने के लिए भूदान, सम्पत्तिदान और ग्रामदान का आन्दोलन चलाया। भूदान के माध्यम से भूमि का समान वितरण किया जाता है। खेती की इच्छा रखने वाले कुशल किसानों के लिए भूमि माँगा जाता है। 'सबै भूमि गोपाल की' इस दर्शन के आधार पर वैसी जमीन जिसे भूमिपति जमींदार परती रखकर फसल नहीं उगा सकते, उसे दान में लेकर भूमिहीनों और गरीबों के बीच वितरण किया जाता है जिससे सामाजिक और आर्थिक विषमता दूर होती है। विनोबा जी ने शिवरामपल्ली, तेलंगाना, हैदराबाद में भूदान आन्दोलन चलाकर हजारों एकड़ जमीन भूमिहीनों के बची वितरित किये। इस तरह विनोबा जी ने भूदान के द्वारा समाज के कमजोर, पिछड़े एवं दलित को आर्थिक रूप से सबल बनाने का प्रयास किया। तीसरी शक्ति के अन्तर्गत समाज में भूमिहीन को भूमि मिलने पर हीन भावना की समाप्ति होती है और आर्थिक रूप से उन्नति करने का अवसर सभी व्यक्ति को मिलता है। तीसरी शक्ति के अन्तर्गत भूदान के बाद ग्रामदान का भी विचार रखा था। ग्रामदान के द्वारा समाज में आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक तथा व्यक्ति के विभिन्न पहलुओं के बीच संतुलन कायम करने का प्रयास किया जाता है। व्यक्ति समाज के लिए अपने को अर्पित कर देता है और समाज व्यक्ति को संरक्षण और विकास करने का सुअवसर प्रदान करता है। इससे व्यक्ति और समाज में सामाजिक संतुलन कायम रहता है। ग्रामसभा कुछ लोगों को चुनकर ग्राम समिति का निर्माण करती है। गाँव का सारा कार्य इन्हीं ग्रामसभा और ग्राम समिति के आधार पर संचालित होता है। फिर ग्रामसभा बढ़कर पंचायत सभा, प्रखंड सभा, जिला सभा, राज्य सभा, राष्ट्र सभा और विश्व सभा की स्थापना का विचार आता है। इस प्रकार की व्यवस्था में जनता साक्षात् रूप से हाथ बंटाने लगता है जो तीसरी शक्ति का भी उद्देश्य है।

सम्पत्तिदान और श्रमदान भी भूमिदान का पूरक है। सम्पत्तिदान में प्राप्त धन का उपयोग कृषि से संबंधित वस्तु खाद, बीज, पशुधन या खेती का औजार खरीदा जाता है। सम्पत्तिदान के अन्तर्गत आमदनी का छटा भाग गरीब और असहायों को देने के लिए स्वीकार किया जाता है। गरीबों को अजीविका के लिए साधन प्राप्त करा देना और त्यागी कार्यकर्ताओं को जीवन निर्वाह के लिए मदद देना सम्पत्तिदान का लक्ष्य है। अपनी आवश्यक आवश्यकताओं की पूर्ति के

बाद की सम्पत्ति का उपयोग समाज के सभी गरीबों के लिए किया जाता है। समाज में जिनके पास दान में देने के लिए सम्पत्ति नहीं है, उसे शारीरिक रूप से जनकल्याण किया जाता है। समाज में जिनके पास दान में देने के लिए सम्पत्ति नहीं है, उसे शारीरिक रूप से जनकल्याण के कार्यों में अपनी अर्जित शक्तियों का उपयोग करना चाहिए। श्रमदान का लक्ष्य गाँव की उन्नति के लिए, सिंचाई की व्यवस्था के लिए नालियाँ बनाना, कुएँ खोदना, रोशनी का प्रबंध करना, स्वच्छता का प्रबंध और वृक्षारोपण का कार्य करना। जिनके पास धरती नहीं है वे अपने हाथ-पैर की मेहनत से बंजर भूमि को कृषि योग्य भूमि बनाने के लिए श्रम का उपयोग करेंगे। देश की आर्थिक अवस्था सुधार कर जनता को सुखी एवं सम्पन्न बनाने के लिए यह आवश्यक है कि श्रमदान के आन्दोलन को हम पुनः जीवित करें तथा उसमें हम तन, मन, धन से पूर्ण सहयोग दें। इससे हमारे हृदय में परोपकार, त्याग, उदारता और दया जैसे उज्ज्वल मनुष्यत्व की ओर अग्रसर होंगे और इसमें भ्रातृत्व की भावना जागृत होगी। इस तरह अर्थिक क्षेत्र में तीसरी शक्ति का प्रयोग करते हुए ट्रस्टीशिप, खादी, भूदान-यज्ञ, सम्पत्तिदान-यज्ञ, ग्रामदान और श्रमदान के द्वारा मानव में सेवा, त्याग और परस्पर सहयोग की भावना पर आधारित समाज के निर्माण का प्रयास किया। भूदान, सम्पत्तिदान, ग्रामदान, श्रमदान आदि के कार्यक्रम द्वारा समाज और मानव के सुखद एवं नवीन भविष्य को रेखांकित किया है। इस तरह अर्थिक क्षेत्र में तीसरी शक्ति का प्रयोग करते हुए ट्रस्टीशिप, खादी, भूदान-यज्ञ, सम्पत्तिदान-यज्ञ, ग्रामदान और श्रमदान के द्वारा मानव में सेवा, त्याग और परस्पर सहयोग की भावना पर आधारित समाज के निर्माण का प्रयास किया। भूदान, सम्पत्तिदान, ग्रामदान, श्रमदान आदि के कार्यक्रम द्वारा समाज और मानव के सुखद एवं नवीन भविष्य को रेखांकित किया है।

तीसरी शक्ति के द्वारा राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक आन्दोलन के माध्यम से समाज में सभी व्यक्तियों को एक कड़ी में जोड़ने का कार्य किया जाता है। समाज में प्रेम शक्ति का विस्तार होता है। लोकशक्ति या जनशक्ति को जागृत कर अन्तराष्ट्रीय मानव समाज की स्थापना ही तीसरी शक्ति का लक्ष्य है। इससे सर्वोदय दर्शन का विचार पुनर्जीवित होता है। सभी व्यक्ति परस्पर त्याग, सहयोग, प्रेमपूर्ण समाज बनाना ही तीसरी शक्ति के विचार को फलीभूत करना है। तीसरी शक्ति को मूर्त रूप ही समाज, राज्य और राष्ट्र के सम्पूर्ण मानव का कल्याण होगा।

निष्कर्ष:

समसामयिक परिवेश में ही नहीं, अपितु सर्वकालिक परिस्थिति में भी विनोबा की तीसरी शक्ति की अवधारणा अत्यन्त ही प्रासंगिक है। आधुनिक वैज्ञानिक विकास ने दण्ड शक्ति और हिंसा शक्ति को इतना प्रचण्ड बना दिया है जिसमें परमाणु अस्त्र से लेकर जैविक हथियार, नाइट्रोजन तम, हाइड्रोजन बम आदि जैसे महाविनाशक हथियार प्रमुख राष्ट्र राज्यों ने एकत्रित किये हैं। इन हथियारों की विनाशकता दण्ड शक्ति व हिंसा शक्ति के औचित्य पर सवालिया निशान खड़ा करती है और विनोबा की तीसरी शक्ति की अवधारणा को आदर्श स्वरूप में युगधर्म बना देती है। ठीक इसी प्रकार राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक क्षेत्र में भी तीसरी वैकल्पिक शक्ति प्रतीत होती है। बहुमत से सर्वमत की ओर अग्रसर होना लोकतंत्र का प्रस्थान बिन्दु है जिसे नागरिक शक्ति व प्रेम शक्ति के माध्यम से ही प्राप्त किया जा सकता है। आज पूरी दुनिया के अन्दर भौतिक विकास की जो हवा चल रही है वह प्रकृति-पर्यावरण, सुख-समृद्धि सबको उड़ा ले जायेगी और मानवीय समाज रचना का प्रश्न भी मर जायेगा, क्योंकि पूँजीवाद एवं अंधाधुंध औद्योगिकरण ने अब मानव के अस्तित्व पर ही सवालिया निशान लगा दिया। विनोबा जी अपनी तीसरी शक्ति के माध्यम से सम्पूर्ण लोकशक्ति को मानवीय समाज रचना, समतामूलक समाज रचना, एक सुन्दर समाज की रचना के लिए प्रेरित एवं संगठित करने की बात करते हैं जो समकालीन संदर्भ में अति प्रासंगिक है।

संदर्भ-सूची:

1. विनोबा, तीसरी शक्ति, सर्व-सेवा-संघ-प्रकाशन, राजघाट, वाराणसी, 1996, पृष्ठ-44
2. उपरिवत् पृष्ठ-44
3. उपरिवत् पृष्ठ-42
4. विनोबा भावे, लोकनीति, पृष्ठ-67
5. उपरिवत् पृष्ठ-67
6. उपरिवत् पृष्ठ-69
7. उपरिवत् पृष्ठ-68
8. मो० क० गाँधी, नवजीवन (हिन्दी), 18-9-1956
9. कि० ६० गाँधी, मशरूवाला, हरिजन सेवक, 27-3-1949
10. विनोबा भावे, सर्वोदय-विचार और त्वराज्य-शास्त्र, अखिल भारतीय सर्व-सेवा-संघ-प्रकाशन, काशी, 1958, पृष्ठ-84
11. समन्तभद्र, युक्तयानुशासन, श्लोक-61
12. विनोबा, सप्तशक्तियों, सर्व-सेवा-प्रकाशन, राजघाट, वाराणसी, मई 1995, पृष्ठ-5
13. विनोबा भावे, सर्वोदय विचार और स्वराज्य-शास्त्र, उपरिवत् पृष्ठ-134

गाँधी दर्शन में रचनात्मक कार्यक्रम का महत्त्व: एक अवलोकन

अनुराग प्रताप सिंह

(रिसर्च स्कॉलर) राजनीति विज्ञान विभाग, जयप्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा सारण, (बिहार)

शोध आलेख का सारतत्व:

महात्मा गांधी का दर्शन भारतीय समाज के पुनर्निर्माण और आत्मनिर्भरता पर केंद्रित था, जिसमें रचनात्मक कार्य एक महत्वपूर्ण स्तंभ था। गांधीजी के अनुसार, स्वतंत्रता केवल राजनीतिक आजादी तक सीमित नहीं थी, बल्कि इसका विस्तार सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक पुनर्जागरण तक था। रचनात्मक कार्य, जैसे- खादी आंदोलन, ग्राम स्वराज, हरिजन सेवा, और शिक्षा सुधार, समाज के कमजोर वर्गों को सशक्त बनाने और आत्मनिर्भरता की भावना विकसित करने का माध्यम थे। गांधीजी का मानना था कि समाज में व्याप्त असमानता, छुआछूत, गरीबी और बेरोजगारी जैसी समस्याओं का समाधान तभी संभव है जब व्यक्ति और समुदाय स्वेच्छा से रचनात्मक कार्यों में संलग्न हों। इन कार्यों के माध्यम से न केवल समाज में नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों का विकास होता है, बल्कि नागरिकों में जिम्मेदारी और सहभागिता की भावना भी प्रबल होती है। यह शोध आलेख गांधी दर्शन के तहत रचनात्मक कार्यों के विविध आयामों की पड़ताल करता है और उनके सामाजिक पुनर्निर्माण में योगदान को रेखांकित करता है तथा समकालीन भारतीय समाज में गांधी के रचनात्मक कार्यों की प्रासंगिकता को भी रेखांकित करता है।

प्रमुख शब्दावली: सत्य, अहिंसा, नैतिकता, सात्विकता, परोपकार, परमार्थ, सादगी, सदाचार, रचनात्मक कार्य, समाज-निर्माण, मानव प्रेम, आध्यात्मिक शुद्धता, सामाजिक परिवर्तन, आत्म शुद्धि, आध्यात्मिकता आदि।

प्रस्तावना:

महात्मा गांधी ने भारतवासियों को सत्य और अहिंसा के मार्ग से आजादी की लड़ाई लड़ने का सबक सिखलाया, गांधी जी अपने संघर्ष को सत्याग्रह कहते थे। सत्याग्रह का अर्थ होता है सत्य को पकड़ना। गांधी जी ने अपने रचनात्मक कार्यक्रम को सत्याग्रह के प्रचार को सबसे बढ़िया तरीका बतलाया, क्योंकि रचनात्मक कार्यक्रम सत्याग्रही को सेवा करने की शिक्षा देता है।

1992 के सत्याग्रह में गांधी जी ने लिखा था कि “यह कार्यक्रम हमें शान्त और दृढ़ बनायेगा। यह हमारी संगठन-शक्ति को जगायेगा, यह हमें परिश्रमी बनायेगा, यह हमलोगों को स्वराज्य के लायक बनायेगा और हमारे खून को ठंडा करेगा।” रचनात्मक कार्यक्रम से सत्याग्रही अनुशासित होता है। इसके द्वारा सत्याग्रही जनता में रह कर जनता की सेवा करना सीखता है। वह जनता का मालिक बन कर नहीं, उनका सेवक बन कर उनकी सेवा करता है। गांधी जी ने 1930 में लिखा था, “जब सत्याग्रही और गाँवों के लोग एक साथ मिल कर रचनात्मक कार्यक्रम करेंगे, तो आपसी विश्वास पैदा होगा जो सत्याग्रह की सफलता के लिए बहुत आवश्यक है। रचनात्मक कार्यक्रम के द्वारा गाँवों की जनता यह देखती है कि सत्याग्रही कितनी ईमानदारी से गाँव वालों की सेवा करता है। जिस तरह सेना के लिए ड्रिल और प्रशिक्षण आवश्यक है, उसी तरह अहिंसक सेना के लिए रचनात्मक कार्यक्रम आवश्यक है।” अपने दक्षिण अफ्रिका के सत्याग्रह में भी उन्होंने कुछ रचनात्मक कार्यक्रम रखा था। उन्होंने 1920 में अपने रचनात्मक कार्यक्रम का प्रस्ताव कांग्रेस में रखा और ज्यों-ज्यों उनका अहिंसक आन्दोलन जोर पकड़ता गया, उन्होंने सत्याग्रहियों के नैतिक बल और मनोबल बढ़ाने के लिए रचनात्मक कार्यक्रम पर जोर दिया तथा स्वराज्य की प्राप्ति के लिए रचनात्मक कार्यक्रम को बिल्कुल आवश्यक बतलाया। उन्होंने राजनीतिक कार्यक्रम से भी सामाजिक कार्यक्रम तथा समाज-सुधार पर जोर दिया। उन्होंने अहिंसक आन्दोलन में रचनात्मक कार्यक्रम को अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान दिया। रचनात्मक कार्यक्रम, के द्वारा गांधी जी समाज का स्वरूप बदल देना चाहते थे तथा समाज से शोषण और अन्याय को समाप्त करना चाहते थे। ग्रामोद्योग, साम्प्रदायिक एकता आर नशाबन्दी के द्वारा वे गाँवों में रचनात्मक कार्यक्रम, ग्रामोद्योग, साम्प्रदायिक एकता और नशाबन्दी के द्वारा वे गाँवों में सुधार लाना चाहते थे। रचनात्मक कार्यक्रम से एक व्यक्ति का सुधार होता था और फिर समाज का सुधार होता था। रचनात्मक कार्यक्रम मूल रूप से गाँवों के सुधार का कार्यक्रम था (18भाग) थे जैसे साम्प्रदायिक एकता, हुआ छूत का अन्त, नशाबन्दी, खादी, अन्य ग्रामोद्योग, बुनियादी तालीम, प्रौढ़ शिक्षा, गाँवों की सफाई, पिछड़ी जन जातियों की सेवा, स्त्रियों का उत्थान, स्वास्थ्य और सफाई की शिक्षा, राष्ट्रभाषा का प्रचार, मातृभाषा से प्रेम, आर्थिक समानता लाने के लिए प्रयत्न, किसानों का संगठन, मजदूरों का संगठन, विद्यार्थियों का संगठन, प्राकृतिक चिकित्सा।

महात्मा गांधी ने अपने रचनात्मक कार्यक्रम में आर्थिक विकास पर विशेष ध्यान दिया। उन्होंने आर्थिक सुधार के द्वारा देश के लोगों के आत्मबल को मजबूत करना चाहा। इसीलिए उन्होंने खादी को लोकप्रिय बनाने का काम शुरू किया। इसके द्वारा गरीबों को छः महीने तक काम मिल सकता है। गांधी जी ने धनी

लोगों को अपनी सम्पत्ति का ट्रस्टी समझने को कहा और यह कहा कि वे अपने धन को देश की सेवा में खर्च करें। वे खादी को देश से गरीबी और बेरोजगारी दूर करने का साधन मानते थे। इसी से वे खादी के साथ-साथ अन्य कुटीर उद्योगों को भी आवश्यक मानते थे। खादी के बाद छुआछूत निवारण को भी देश में स्वराज्य लाने के लिए अत्यन्त आवश्यक मानते थे। उनका विचार था बड़े उद्योगों से देश के लोगों को पूरा रोजगार नहीं मिल सकता है। बड़े उद्योगों से बहुत सी बुराइयाँ भी फैलती हैं, क्योंकि मजदूरों को गाँवों को छोड़ कर शहर की गन्दी बस्तियों में रहना पड़ता है। गाँवों के स्वच्छ एवं प्राकृतिक वातावरण से दूर होने से उनका नैतिक पतन होता है और वे शराब और अन्य बुरी आदतों में फँस जाते हैं। इसलिये गाँवों में कुटीर उद्द्योग और खादी पर आधारित उद्योगों को कायम किया जाए। गाँवों के गरीब लोग गाँव के प्राकृतिक और स्वच्छ वातावरण में रह कर अपनी रोजी-रोटी कमा सकते हैं। गाँधी जी का दृढ़ विचार था बड़े-बड़े उद्योगों से बुराइयाँ फैलती हैं और उनको सुधारना मुश्किल होता है। इसलिये खादी का उनके रचनात्मक कार्यक्रम में बहुत महत्वपूर्ण स्थान था। खादी के माध्यम से वे स्वराज्य लाना चाहते थे। खादी से शक्ति का विकेन्द्रीकरण होता है। अतः खादी ग्रामोद्योग और गाँवों की सफाई तथा गाँव का पुनर्निर्माण उनकी योजना में प्रमुख थे। उन्होंने गाँवों की सफाई और स्वास्थ्य पर भी बहुत ध्यान दिया। नशाबन्दी के द्वारा वे गाँवों और शहरों के गरीबों का जीवन सुधारना चाहते थे क्योंकि गाँवों के गरीब लोग नशे पर खर्च करते हैं और अपने पारिवारिक जीवन को दुःखी बनाते हैं। साम्प्रदायिक एकता उनके रचनात्मक कार्यक्रम का बहुत महत्वपूर्ण अंग थी। अपने जीवन के अन्तिम 16 महीनों में उन्होंने अपना सारा समय साम्प्रदायिक एकता को बढ़ाने में लगा दिया, क्योंकि पाकिस्तान बनने से देश में साम्प्रदायिक दंगे बहुत बड़े पैमाने पर हो रहे थे। इन दंगों को रोकने के लिए उन्होंने कलकत्ते में सितम्बर 1947 में उपवास किया एवं नवम्बर 1946 में नोआखाली की यात्रा की तथा वहाँ कई महीने रह कर हिन्दुओं में विश्वास पैदा किया नोआखाली के बाद उन्होंने बिहार की यात्रा की। उन्होंने पुनः जनवरी 1948 में साम्प्रदायिक एकता के लिए उपवास किया। अन्त में उन्हें साम्प्रदायिक एकता के लिए ही अपने प्राणों का बलिदान करना पड़ा। 30 जनवरी, 1948 को उन्हें इसी कारण शहीद होना पड़ा। रचनात्मक कार्यक्रम में स्त्रियों के उत्थान को अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था। गाँधी जी ने आजादी की लड़ाई में भारत की नारियों को आगे आ कर बलिदान करने का सबक सिखाया था। 1946 में कस्तूरबा गाँधी मामोरियल ट्रस्ट में सवा करोड़ रुपये जमा किये गये। इन पैसों को गाँवों में रहने वाली महिलाओं के उत्थान पर खर्च किया गया। इस ट्रस्ट के द्वारा स्त्रियों को बुनियादी तालीम, स्वास्थ्य एवं सफाई का प्रशिक्षण दिया जाता था और वे प्रशिक्षण पाने के बाद अपने जिले और गाँवों में केन्द्र खोलती थी। इस ट्रस्ट के द्वारा बहुत से प्रान्तों में मातृ-शिशु केन्द्र, बुनियादी स्कूल तथा दवाखाने खोले गये है। रचनात्मक कार्यक्रम में प्रौढ शिक्षा पर जोर दिया गया, जिसमें गाँवों के लोग भी लिखना पढ़ना और थोड़ा गणित सीख सकें। आज भी भारत सरकार प्रौढ शिक्षा पर कई योजनायें चला रही है। गाँधी जी ने अपने रचनात्मक कार्यक्रम में अपनी मातृभाषा सीखने तथा राष्ट्रभाषा सीखने पर बल दिया, क्योंकि उनके विचार में अँग्रेजी भाषा सीखने में बहुत समय बरबाद होता है और वास्तविक ज्ञान कम प्राप्त होता है। ज्यादा समय अँग्रेजी सीखने में चला जाता है।¹⁴ मजदूरों को कारखानों के प्रबन्धन में भागीदारी मिलनी चाहिए, मजदूरों का अपना संघ बनाना चाहिए तथा उस संघ के द्वारा बुनियादी स्कूल, दवाखाना, मातृ-शिशु-केन्द्र आदि संस्थाएँ चलाई जानी चाहिए। किसानों को जमीनदारी के शोषण के विरुद्ध लड़ना चाहिए और गाँवों में यथासम्भव सहयोग समितियाँ बना कर खेती और पशुपालन करना चाहिए। खेती के काम से फुर्सत पाने पर चर्बी चलाना चाहिए और अन्य कुटीर उद्योगों में अपना समय लगाना चाहिये। खेतों में काम करने वाले जो भूमिहीन मजदूर हैं, उन्हें उचित मजदूरी देनी चाहिए। विद्यार्थियों को पढ़ने से जो समय बचे, उन्हें उस समय देश-सेवा करनी चाहिए। उन्हें गाँवों में खादी एवं ग्रामोद्योगों के प्रसार में प्रमुख भूमिक अदा करनी चाहिए। उन्हें अपने आचरण से छुआछूत को हटाने तथा साम्प्रदायिक एकता बढ़ाने में मदद करनी चाहिए। उन्हें जातपाँत तथा अन्य भेद-भाव तथा हर तरह के अन्धविश्वास के ऊपर होना चाहिए। प्राकृतिक चिकित्सा रचनात्मक कार्यक्रम का अन्तिम बिन्दु था। गाँधी जी के अनुसार बहुत सी दवाइयाँ खा कर अपने शरीर को बरबाद नहीं करना चाहिए, बल्कि ईश्वर में विश्वास करके स्वाभाविक एवं प्राकृतिक जीवन बिताना चाहिए। प्रकृति के नियमों का पालन करना चाहिए। प्राकृतिक चिकित्सा में गाँधी जी ने सभी बीमारियों के इलाज के लिए मिट्टी, आकाश, हवा, पानी एवं धूप को औषधि बतलाया। महात्मा गांधी के रचनात्मक कार्यक्रम का वास्तविक उद्देश्य अहिंसा के द्वारा समाज में परिवर्तन लाना था। इसके द्वारा बिना खून बहाए देश का आर्थिक विकास हो सकता था, सामाजिक समानता स्थापित हो सकती थी और सच्ची शिक्षा दी जा सकती थी।¹⁵

साम्यवादी लोगों ने गाँधी जी के रचनात्मक कार्यक्रम का यह कह कर आलोचना की कि यह कार्यक्रम सुधारवादी और प्रतिक्रियावादी है क्योंकि इससे क्रान्ति के मार्ग में रूकावट आती है, लोगों में असन्तोष कम होता है तथा लोग अपने भाग्य से संतुष्ट हो जाते हैं। लेकिन गाँधी जी ये मानते हैं खूनी क्रान्ति से कोई समस्या हल नहीं होती और एक अन्याय के स्थान पर दूसरे प्रकार का अन्याय जन्म ले लेता है। अहिंसा के द्वारा जो सामाजिक परिवर्तन होता है, वह चिरस्थायी होता है। अतः गाँधीजी अहिंसा के आधार पर रचनात्मक कार्यक्रम के द्वारा इस देश के लोगों के जीवन में क्रान्तिकारी परिवर्तन लाना चाहते थे। सिर्फ भाषण देने की जगह पर रचनात्मक कार्यक्रम के द्वारा एक सत्याग्रही गाँधी जी के संदेश को देश के गाँव-गाँव और घर-घर में पहुँचा सकता था। रचनात्मक कार्यक्रम को गाँधी जी के शब्दों में अधिक और उचित रीति से सत्य और अहिंसात्मक साधनों द्वारा पूर्ण स्वराज्य की यानी पूरी-पूरी आजादी की रचना कहा जाता है। स्वतंत्रता के नाम से पहचानी जाने वाली चीज को हिंसा के जरिए और इसलिए खासकर असत्यमय साधनों की सहायता से निर्माण करने की कोशिशें जितनी अधिक दुःखदायी होती हैं, सो हम भली-भाँति जानते हैं। आज कल जो लड़ाई होती है उसमें हर रोज कितनी दौलत बरबाद होती है, कितने लोग मरते हैं और सत्य का कितना खून होता है। सत्य और अहिंसा के जरिये सम्पूर्ण स्वतंत्रता की प्राप्ति का मतलब है, जात-पाँत, वर्ण या धर्म के भेद से रहित राष्ट्र के प्रत्येक घटक की और उसमें भी गरीब से गरीब व्यक्ति की स्वतंत्रता की सिद्धि। इस स्वतंत्रता से किसी को भी दूर या अलग नहीं रखा जा सकता है। इसलिए अपने राष्ट्र से बाहर के दूसरे राष्ट्रों के साथ और राष्ट्र की जनता के भीतर उसमें अलग-अलग वर्गों के परस्परालम्बन के साथ इस स्वतंत्रता का पूरा-पूरा मेल रहेगा।¹⁶

जिस तरह हमारी खींची हुई कोई भी लकीर शास्त्रीय व्याख्या की लकीर की तुलना में अधूरी रहेगी, उसी तरह वास्तविक सिद्धान्त की अपेक्षा उसका व्यावहारिक अमल अधूरा रहता है। इसलिए जिस हद तक हम समय और अहिंसा को अपने राजमर्श के जीवन में अमल करेंगे उसी हद तक हमारी हासिल की हुई सम्पूर्ण स्वतंत्रता भी पूर्ण होगी।¹⁷ हिंसा के जरिए हासिल होने वाली स्वतंत्रता की काल्पनिक तो क्या सम्पूर्ण कही जा सकने वाली भी कोई व्याख्या नहीं क्योंकि इस तरह की स्वतंत्रता में यह बात सहज ही आ जाती है कि राष्ट्र जो दल हिंसा के साधनों का सबसे ज्यादा इस्तेमाल कर सकेगा देश में उसी

का डंका बजेगा। इस तरह के पूर्ण स्वराज्य में क्या आर्थिक और क्या दूसरी, किसी भी तरह की सम्पूर्ण समानता का तो विचार तक नहीं किया जा सकता।⁸

स्वराज्य की स्थापना के लिए जिस अहिंसक पुरुषार्थ की जरूरत है, उसके लिए यह जरूरी है कि रचनात्मक कार्यक्रम का अमल समझ बुझकर किया जाये। पूर्ण स्वराज्य की प्राप्ति के लिए हिंसा का साधन जरा भी उपयोगी नहीं।

वर्ष 1923-24 में भारत की राजनीतिक स्थिति अत्यधिक जटिल थी भारतीय राष्ट्रवाद के इतिहास में इस वर्ष एक संकटपूर्ण चरण शुरू हुआ। साम्प्रदायिक तनाव दिनों दिन उग्र होता जाता था और विभिन्न पार्टियों तथा दलों के मध्य की खाई चौड़ी होती जाती थी। खिलाफत के सवाल में अब दम नहीं रह गया था। यूनानियों पर कमालवादी तुर्कों की विजय पहली नवम्बर 1922 को हुई। तुर्क ग्राण्ड नेशनल ऐसेम्बली सुलतान मोहम्मद छठा का सिंहासनच्युत किया जाना, 24 जुलाई 1923 को लौसेन की संधि में तुर्की की उपलब्धियों की पुष्टि और 29 अक्टूबर 1923 को तुर्की में मुस्तफा कमाल की अध्यक्षता में गणतंत्र की स्थापना के फलस्वरूप अब वह समाप्त हो चुका था। गाँधी जी ने देश के विभिन्न भागों की यात्राएँ की तथा विदेशी शासन एवं विभिन्न आन्तरिक व्याधियों से देश की उन्नति के हेतु सही ढंग के रचनात्मक कार्यक्रम की सर्वोपरि क्षमता में अटल विश्वास के साथ प्रचार करते रहे। गाँधी जी जिन दिनों बंगाल की यात्रा पर थे देशबन्धु चितरंजन दास की मृत्यु दार्जिलिंग में 16 जून, 1925 को हो गई। 17 जून को इस शोकजनक घटना पर गाँधी जी ने इन शब्दों में अपना उद्गार व्यक्त किया था- “जब हृदय पर गहरा आघात लगता है, तो कलम आगे बढ़ने से इन्कार कर देती है। मैं इतना शोकाकुल हूँ कि तार द्वारा यंग इन्डिया के पाठकों के लिए कुछ अधिक नहीं भेज सकता। दार्जिलिंग में पिछले 5 दिनों में उस महान् देशभक्त के साथ रहकर मैं उनके और भी समीप आ गया था। देशबन्धु कितने महान् थे एवं कितने अच्छे थे, वह उनके समीप रहकर मैंने जाना। भारत ने अपना एक रत्न खो दिया है किन्तु स्वराज्य हासिल करके हम उसे फिर से प्राप्त कर सकते हैं।” देश बन्धु की मृत्यु के बाद भी पंडित मोतीलाल नेहरू आपने कौशल एवं निष्ठा के साथ स्वराज पार्टी को चलाते रहे। राष्ट्रीय कांग्रेस का पूर्ण संगठन पार्टी की सेवा में प्रस्तुत कर लिया गया था।⁹

भारत सचिव लॉर्ड बरकेनहेड के 10 जुलाई 1925 के भाषण से देश में जो घोर निराशा फैली उससे स्वराज पार्टी के हाथों में प्राधिकार हस्तांतरित होना सुलभ हो गया। यह कार्य 22 और 23 सितम्बर 1925 के अखिल भारतीय कांग्रेस समिति के पटना अधिवेशन में सम्पन्न हुआ। स्वराज्य पार्टी को बेलगाँव समझौता में लगाये गये प्रतिबंधों से मुक्त कर दिया गया। कांग्रेस की सदस्यता अब किसी के लिए भी साल में 4 आना का सदस्यता शुल्क या दो हजार गज स्वतः काते हुए सूत देने पर सुलभ कर दी गई। स्वराज पार्टी को कांग्रेस के पूर्ण प्राधिकार से देश की राजनैतिक समस्याओं पर काम करने को प्राधिकृत किया गया। पटने में ही अखिल भारतीय चर्खा संघ का जन्म हुआ। कताई एवं खादी के विकास के लिए एक विशेष संस्था की स्थापना का समय आ गया है और अनुभव से यह सिद्ध हुआ है कि इस प्रकार का विकास राजनीति से असम्पृक्त एवं अनियोजित स्थायी संगठन के बिना संभव नहीं है। इसलिए अखिल भारतीय संघ के नाम से एक संस्था स्थापित की जाती है। यह संस्था अखिल भारतीय कांग्रेस कमिटी की सहमति से एवं कांग्रेस संगठन के अभिन्न अंग के रूप में है।

महात्मा गाँधी देश के विभिन्न भागों में जनता के मध्य रचनात्मक कार्यों का प्रचार करने के हेतु यात्रा करते रहे। 10 उन्होंने कहा कि “मेरा अनुमान है कि जनता मुझसे मिलना चाहती है, इसलिए मैं यात्रा कैरता हूँ। मैं उनसे मिलना चाहता हूँ। उन्हें कुछ शब्दों में अपना सीधा सादा संदेश देता हूँ और हम दोनों को इससे संतोष है। जनता के मन में ये संदेश धीरे-धीरे उत्तरते हैं किन्तु उतरते अवश्य हैं।” गाँधी जी की बिहार यात्रा पुरुलिया में सितम्बर में 3 दिनों तक होने वाले बिहार प्रान्तीय सम्मलेन में उनके आने के साथ शुरू हुई। इस सम्मेलन की अध्यक्षता मौलवी मोहम्मद जुबेर ने की थी और इसका अधिवेशन पहली बार छोटानागपुर में हुआ था। श्री नीलकान्त चट्टोपाध्याय स्वागत समिति के सदस्य थे उसी पंडाल में हिन्दू महासभा तथा दूसरे दिन खिलाफत सम्मेलन का अधिवेशन भी हुआ। इस अवसर पर एक औद्योगिक प्रदर्शनी लगाई गई थी। महात्मा गाँधी के शब्दों में उसमें खादी के सुनिश्चित विकास का दृश्य देखने को मिलता था वहाँ कताई का सहयोग केन्द्र काम कर रहा था। उन्होंने उसे एक दिलचस्प प्रयोग कहा जिसके अच्छे परिणाम हो सकते थे। पुरुलिया में वे दशे-बन्धु के पिता द्वारा बनाये मकान में ठहरे। उसका सम्पूर्ण परिवेश उस उदारचेता परिवार की दानशीलता के सर्वथा उपयुक्त प्रतीत होता था। गाँधी जी ने देशबन्धु की तस्वीरों का उद्घाटन किया और एक देशबन्धु मार्ग एवं देशबन्धु पथ के साइनबोर्ड का भी उद्घाटन किया। वहाँ उन्होंने कुछ आश्रम भी देखा।¹¹

पुरुलिया राजनीतिक सम्मेलन में सम्मिलित होने के कुछ पूर्व गाँधी जी दीनबन्धु ऐण्ड्युज के आग्रह पर जमशेदपुर गये थे। वहाँ एक श्रमिक संघ की स्थापना ऐण्ड्युज के आग्रह पर जम अपने जीवनकाल में उसमें गहरी दिलचस्पी दिखाई और उनके मरणोपरान्त श्री ऐण्ड्युज उसके अध्यक्ष बने, किन्तु टाटा कम्पनी ने उसे मान्यता नहीं प्रदान की थी। महात्मा गाँधी के आगमन पर टाटा कम्पनी के मैनेजिंग डाइरेक्टर श्री आर. डी. टाटा ने कम्पनी की ओर से उनका हार्दिक स्वागत किया। वहाँ दो दिनों तक रहे। वहाँ के कारखानों में घूमें और मैनेजिंग डाइरेक्टर के साथ बातचीत की। इसके फलस्वरूप कम्पनी ने श्रमिक संघ को मान्यता प्रदान कर दी। श्रमिकों के मध्य भाषण करते हुए गाँधी जी ने दो महत्वपूर्ण बातें कहीं थी। दीनबन्धु ऐण्ड्युज तथा समझौता की शर्तों के सन्दर्भ में उन्होंने कहा कि श्री ऐण्ड्युज मेरे लिए सगे भाई से भी अधिक हैं और मैं उनका अनुरोध अस्वीकार नहीं कर सकता। मैं नहीं समझता कि ऐण्ड्युज की अपेक्षा किसी अन्य व्यक्ति के प्रति मेरा अधिक घनिष्ठ संबंध हो सकता है। हमलोग एक दूसरे के निकट आते रहे हैं और हम उस दिन की प्रतीक्षा करते हैं जब हमारी मित्रता अंग्रेज एवं भारतीय में सौहार्द तथा भ्रातृत्व के रूप में विकसित होगी। हम इसमें सफल होंगे या नहीं, यह भगवान के हाथों में है। किन्तु यह हम जानते हैं कि अपने जीवन में 24 घंटे उस उद्देश्य के लिए प्रयत्नशील हैं। मनुष्य मनुष्य में झगड़े होते हैं। उनसे हम उब चुके हैं और हमारा यह इरादा है कि मानव को पशुबल का व्यवहार करने से रोकें तथा उसे विवादों का निबटारा करने में आत्मबल के प्रयोग की ओर अभिमुख करें। समझौता की शर्तों के सन्दर्भ में गाँधी जी ने कहा कि मैं मजदूर बन गया हूँ क्योंकि मैं आपकी विशेषताएँ एवं दुर्बलताएँ दोनों से अवगत होना चाहता हूँ। मेरी दृढ़ आशा है कि आप कम्पनी का काम निष्ठापूर्वक करेंगे और काम करने के सिलसिले में आपका संघ दुनिया को यह दिखा देगा कि श्री टाटा ने जो आपका उदारतापूर्व सुविधाएँ दी हैं उनके आप योग्य हैं तथा ऐण्ड्युज उनके योग्य हैं एवं आप श्री ऐण्ड्युज के योग्य हैं। आप जानते हैं कि श्री ऐण्ड्युज आपका वैतनिक सेवक नहीं। उनकी सेवाएँ विशुद्ध सेवा भावना से आपको उपबन्ध है। ऐसा दिन आप नहीं आने दे जब उन्हें श्री टाटा से यह सुनने को मिले कि आज के समझौता के लिए उसे दुःख है। मैंने पूँजीपतियों से इसलिए मित्रता की है कि वे श्रमिकों के हित के लिए अपने को ट्रस्टी के रूप में समझे तथा वे स्वयं उन्हें खिलाते

के बाद भोजन करें। आप पूँजी से भयभीत हैं और पूँजी श्रम के प्रति कटु। मैं इसके स्थान पर पारस्परिक विश्वास एवं आदर की प्रतिष्ठा करना चाहता हूँ और आशा करता हूँ कि आप इसमें मेरी सहायता करेंगे। जमशेदपुर की सभा में गाँधी जी को देशबन्धु स्मारक अधिकोष के लिए 5,000 रु० को थैली प्रदान की गई। महिलाओं ने भी सभा आयोजित करके एक काफी अच्छी धनराशि जिसमें कुछ आभूषण भी थे, उन्हें समर्पित की।¹² पुरुलिया से गाँधी जी मुंडा तथा अन्य आदिवासी जातियों के इलाकों में गए। चक्रधरपुर से वे चाईबासा गए। वहाँ के हो जनजाति से उनका पहली बार परिचय हुआ। राँची जाते हुए खूँटी में मुण्डा लोगों से मिले। उन्होंने देखा कि 1921 से काँग्रेसकर्मियों द्वारा उनके मध्य जाकर चुपचाप एक सुधार-आन्दोलन शुरू किया जा चुका था। गाँधी जी ने इस संबंध में लिखा, 'यहाँ भक्तों की एक बस्ती सी बस गई है, भक्त अर्थात् निष्ठावान लोग। वे खदर में आस्था रखते हैं। स्त्री पुरुष नियमित रूप से खर्चा चलाते हैं। स्वतः निर्मित खादी पहनते हैं। अनेक अपने कंधों पर चर्खा लेकर मीलों चलकर आते हैं। मैंने लगभग 400 लोगों को देखा, वे सभी चर्खा चला रहे थे। उनके अपने भजन हैं जिन्हें वे मिलकर एक स्वर में गाते हैं।' चाईबासा से गाँधी जी चक्रधरपुर लौट आए और वहाँ से रास्ते में खूँटी तथा एकाधिक अन्य स्थानों पर ठहरकर राँची पहुँचे। राँची में महिलाओं की एक सभा आयोजित की गई थी। गाँधी जी ने उसमें भाषण करते हुए देश बन्धु स्मारक अधिकोष के लिए चन्दा देने की अपील की। सभा में उपस्थित अनेकों महिलाओं के पास पैसे नहीं थे। अतः उन्होंने अपना आभूषण उतार कर दे दिया। उनमें कुछ काफी कीमती थे।¹³ गाँधी जी को ग्राम गोलकुण्डा ले जाया गया। वहाँ बाबू गिरीश चन्द्र मजुमदार द्वारा एक सहायोग समिति के माध्यम से कताई का एक प्रयोग चल रहा था। राँची में गाँधी जी ने एक नाटक देखा। इसका आयोजन देशबन्धु अधिकोष के लिए किया गया था। वे ब्रह्मचर्य आश्रम भी देखने गए। वहाँ से हजारीबाग आए। वहाँ सेंट कोलम्बस कॉलेज के छात्रों को उन्होंने चर्खा, खादी और ग्रामीण लोगों से सम्पर्क कायम करने के रूप में समाज सेवा के महत्व पर बल दिया। उन्होंने कहा कि भगवान को जानने के लिए यह आवश्यक है, क्योंकि गरीबों की निःस्वार्थ सेवा ही भगवान की सेवा है।¹⁴ पटना में उन्होंने महसूस किया कि इस तरह बारबार यात्रा करते रहने के फलस्वरूप उनका स्वास्थ्य गिर चुका था। अतः राजेन्द्र बाबू ने उनके विश्राम करने की अपेक्षित व्यवस्था की। इस हेतु प्रदर्शन तथा उनका कार्यक्रम भी बहुत कुछ काट दिया गया। पटना में गाँधी जी खुदाबक्श ओरियंटल लाइब्रेरी देखने गए। इस अवसर पर उन्होंने कहा कि "खुदाबक्श ओरियंटल लाइब्रेरी देखने की मेरी बहुत काल से इच्छा थी। आज वह इच्छा पूरी हुई। मैंने उसके विषय में बहुत कुछ सुन रखा था, किन्तु यहाँ जो अमूल्य निधियाँ मुझे देखने का सौभाग्य मिला है उसकी मैंने कल्पना नहीं की थी। इसके निष्ठावान संस्थापक खाँ बहादुर खुदाबक्श ने जो एक वकील थे, बड़े ही स्नेह एवं अध्यवसाय के साथ विदेशों से भी अनेक प्राचीन अनुपलब्ध अरबी एवं फारसी पुस्तकें एकत्र की। कुरान को कुछ हस्तलिखित प्रतियों का अलंकरण देखकर मैं विस्मित हो गया। उनकी संरचना में अज्ञात कलाकर ने वर्षों लगाए होंगे। शाहनामा की अलंकृत प्रति का प्रत्येक पृष्ठ एक कलाकृति है, आँखों के लिए सम्मोहक।"¹⁵ गाँधी जी उद्योग विभाग द्वारा परिचालित कारखाना भी देखने गए। उसके हैण्डलूम की बुनाई एवं खिलौना बनाने के विभागों को देखकर उन्होंने कहा कि वहाँ सबसे प्रमुख वस्तु चर्खा नहीं था और चर्खा विभाग खोलने का उन्होंने परामर्श दिया। पटना से वे भागलपुर गए। वहाँ एक विराट सार्वजनिक सभा में उन्हें हिन्दू मुस्लिम समस्या पर उन्हीं के शब्दों में बोलना पड़ा। इस सिलसिले में उन्होंने सत्य अहिंसा से वे क्या समझते थे इस पर प्रकाश डाला। वहाँ प्रान्तीय मारवाड़ी सम्मेलन हुआ। उसमें सामाजिक बहिष्कार एवं समाज सुधार की प्रबल आवश्यकता की समस्या पर भाषण किया। तदुपरांत वे मोटर गाड़ी द्वारा बाँका गए। वहाँ मौलवी मोहम्मद शफी की अध्यक्षता में एक जिला सम्मेलन हो रहा था। तदुपरांत महात्मा गाँधी देवघर गए। उन्होंने वैद्यनाथ धाम तथा वहाँ के पंडों के संबंध में इस प्रकार लिखा है "अन्य तीर्थ स्थानों से भिन्न यहाँ के पंडे पर्याप्त रूप में सुसंस्कृत हैं। अधिकांश स्वयंसेवक चुस्त पंडा तरुण थे। ये तीर्थ यात्रियों की सहायता करते थे। उनमें कई लोग स्शिक्षित भी थे। एक हाईकोर्ट का वकील था। कुछ वयोवृद्ध पंडा भी मिलने आए। वे मुझ से जानना चाहते थे कि जनता की सेवा वे किस प्रकार कर सकते थे और जब मैंने उन्हें यह कहा कि उन्हें तीर्थयात्रियों से मुनाफा कमाने के बदले उनकी सेवा करनी चाहिए एवं तीर्थ स्थान सचमुच तीर्थ स्थान जान पड़े इसके लिए स्वयं पवित्र एवं संयमित जीवन व्यतीत करना चाहिए तो वे उसके लिए सद्य उद्यत हो गए और ऐसा जान पड़ा कि मेरी बातों को स्वीकार करते समय उनकी वाणी में निष्ठा की ध्वनि थी। मैंने जिन बुराईयों की ओर उनका ध्यान आकृष्ट किया था उन्हें भी उन्होंने स्वीकार किया। मुझे यह देखकर आश्चर्य मिश्रित हर्ष हुआ कि वैद्यनाथ धाम का प्रख्यात मंदिर अछूतों के लिए वर्जित नहीं था। मन्दिर के विस्तृत अहाते में ठीक उसके सामने महिलाओं की एक सभा आयोजित थी। इसमें व्यवस्था रखने का काम पंडा स्वयं सेवक कर रहे थे और देवघर में जहाँ भी मैं गया, पंडा स्वयं सेवकों द्वारा व्यवस्था अन्यत्र की अपेक्षा कहीं अधिक जान पड़ी। वहाँ एक सार्वजनिक सभा में 1921-22 में लोगों को जो घोर कष्ट सहने पड़े थे उसकी सूचना विस्तार से मिली।¹⁶ गाँधी जी ने उपस्थित श्रोताओं को संतालों के मध्य नशाखोरी का परित्याग करने तथा व्यवस्थित ढंग से चर्खा प्रचार करने की सलाह दी।¹⁶ देवघर से गाँधी जी खगड़िया गए। यहाँ देशबन्धु स्मारक अधिकोष के लिए महिलाओं की एक सभा में उन्हें नकद एवं आभूषणों के रूप में पर्याप्त रकम मिली। यही उनका माथुरी समुदाय के लोगों से परिचय कराया गया। (माथुरी मथुरा से अनेक पीढ़ी पूर्व आए हुए अनुमानतः वैश्य थे इनमें से अनेक मद्य मांस का परित्याग कर चुके थे।) उन्होंने अपने अभिनन्दन पत्र में कहा कि असहयोग आन्दोलन का अर्थ उन्होंने विशुद्धतः आत्मशुद्धि समझा है और इसके अनुकूल उनके आन्तरिक जीवन में एक क्रान्ति सी हो गई है। उस इलाके के संथालों में इसी तरह सुधार हुआ था। अनेकों ने नशाखोरी छोड़ दी थी। इसके बाद उन्होंने गिरीडीह और मधुपुर की यात्रा की। मधुपुर में गाँधी जी ने स्थानीय हॉल का उद्घाटन किया। राष्ट्रीय विद्यालय देखने गए। उसके शिक्षकों को उन्होंने परामर्श देते हुए कहा कि अपने स्कूल के माध्यम से इलाकों में यदि कुछ संदेश देने में उनका विश्वास हो तो वे किसी तरह का बलिदान करने से कुछ उठा नहीं रखें। मधुपुर से गाँधी जी पूर्णियाँ जिला की यात्रा पर गए। किशनगंज में एक बहुत बड़ी सभा में भाषण किया। यहाँ अच्छी रकम चंदा के रूप में उन्हें मिली। फिर वे अररिया, फारबिसगंज और विशनपुर गए। विशनपुर पूर्णिया से 25 मील पर स्थित एक गाँव है। यहाँ सभा स्थल में 15 फीट ऊँचा मंच बनाया गया था। श्रोताओं की भीड़ थी। स्मारक अधिकोष के लिए अच्छी खासी रकम यहाँ उन्हें मिली।¹⁷ गाँधी जी ने इस गाँव में एक पुस्तकालय और वाचनालय का उद्घाटन किया। विशनपुर से गाँधी जी पूर्णिया लौट आए। पूर्णिया जिला में उन्हें 17000 से उपर की धनराशि प्राप्त हुई। इसका कुछ अंश बिहार विद्यापीठ के लिए संरक्षित था और 15000 रु० देश बन्धु स्मारक अधिकोष के लिए। बिहार यात्रा में कुल 50,000 रु० की रकम उन्हें मिली। इसका कुछ अंश अखिल भारतीय चर्खा संघ के पंजी कृत अधिकोष में दिया गया।¹⁸ गाँधी जी की बिहार यात्रा हाजीपुर में समाप्त हुई। यहाँ लगभग 5,000 रु० की थैली उन्हें भेंट की गई। हाजीपुर में गाँधी जी स्थानीय स्कूल में ठहराये गये थे। दीपनारायण सिंह ने इसकी सारी व्यवस्था की थी। इसके विषय में उन्होंने इस प्रकार लिखा "बिहार के सभी राष्ट्रीय विद्यालयों में संभवतः इसका प्रबन्ध सबसे अच्छा

है और इसके अध्यापक भी सबसे अधिक योग्य हैं। इसके प्राचार्य में जनकधारी बाबू एक उच्च चरित्रवाले असहयोगी वकील हैं।" सोनपुर में उन्होंने एक सेवा आश्रम का उद्घाटन किया। इसका उद्देश्य सोनपुर मेला के अवसर पर वहाँ आनेवाले लाखों यात्रियों की सेवा करना था।¹⁹ लगभग इसी समय अली भ्राता खिलाफत अधिकांश के लिए धन संचय करने के हेतु बिहार आये थे।

महात्मा गाँधी की दूसरी बिहार यात्रा 11 जनवरी (1927) से शुरू हुई। बिहार के एक रेलवे स्टेशन पर उनसे मिलने हेतु आए हुए लोगों को उन्होंने एक मिनट के अपने भाषण में कहा "मैं यहाँ चर्खा और खहर के लिए धन संग्रह करने एवं खादी बेचने आया हूँ। कौन जानता है, कहीं यही मेरी अन्तिम बिहार यात्रा न हो। जितना अधिक मैं बेच सकूँ, बेच लूँ।" डालटेनगंज से प्रस्थान करके गाँधी जी गया पहुँचे। पटना होते हुए 27 जनवरी को मुजफ्फरपुर गए। वहाँ तीसरे पहर तिलक मैदान में एक सभा में भाषण किया। मुजफ्फरपुर में कुछ छात्रों ने उन्हें घेर लिया। गाँधी जी ने चम्पारण की कुछ सुखद स्मृतियों का विवरण देते हुए अपना भाषण आरंभ किया "आपलोगों ने कृपलानी जी के नेतृत्व में मेरा सर्व प्रथम अभिनंदन किया था और चम्पारण में मेरे साथ सहयोग किया था। अगले वर्ष भी आपने जिस प्रकार मेरे साथ सहयोग किया था, वह काम उल्लेखनीय है। आज भी आपसे मैं जो कुछ कहता हूँ उसे क्या आप नहीं करेंगे।" गाँधी जी ने छात्रों को खादी पहनने को कहा तथा ग्रहमचर्य पर बल दिया। रात में वे अन्य लोगों के साथ मोतिहारी के लिए रवाना हो गए। इस समय उनके साथ राजेन्द्र बाबू, महादेव देसाई, श्रीमती कस्तूरबाबाई और श्रीमती प्रभावती देवी थीं। मोतिहारी में चंदा में मिली रकम अच्छी नहीं थी क्योंकि सभा का ठीक से आयोजन नहीं किया गया था। मोतिहारी से गाँधी जी ने छपरा जिला की यात्रा की तथा रात उन्होंने जीरादेई में बिताई। राजेन्द्र प्रसाद का जन्म स्थान होने के नाते यह उनके शब्दों में तीर्थ स्थान था। छपरा के अन्य अनुमण्डलों की यात्रा करते हुए वे पूरब की ओर बढ़े और दरभंगा की यात्रा पर गए। छपरा की उर्वरा भूमि ने उन्हें आकृष्ट किया और उसके विषय में वो लिखते हैं "हर आधे मील पर आम के कुंज और सम्पूर्ण धरती, गेहूँ, चना और मटर से शस्यश्यामला है।"²⁰ डालटेनगंज में पहाड़ी इलाकों से 20-20, 30-30 मील तक से हजारों हजार ग्रामवासी उनके दर्शनार्थ आए थे। दर्शकों की भारी भीड़ होने के कारण उन्हें कई बार सभा के विभिन्न ओर से भाषण देना पड़ा। वहाँ लगभग 526 रूपया उन्होंने एकत्र किया। मैरवा में 30,000 लोगों की एक बड़ी सभा में भाषण किया। सभा में पूर्ण व्यवस्था थी। संक्षिप्त संदेश देते हुए उन्होंने कहा कि आप के पास जो कुछ भी है वह दरिद्र नारायण के लिए दे दें। यहाँ 1000/- रूपये उन्हें मिले। गया में और भी अधिक धन राशि उन्हें मिली होती, यदि सभा का आयोजन अच्छी तरह किया गया होता। ऐसे भी यहाँ उन्हें अच्छी रकम मिली। एक महाशय ने अपनी फोर्ड गाड़ी चन्दा में दे दी। वह 750/-रु० में नीलाम हुई। छपरा और सिवान में बहुत कम पैसे मिले लेकिन सर्वाधिक गरीब लोगों ने भी उसमें योगदान किया। इस बिहार यात्रा में 18 जनवरी को दलसिंगसराय, समस्तीपुर और दरभंगा से साढ़े छः हजार रूपये उन्हें मिले। यह इस यात्रा में एक अवसर में प्राप्त सबसे बड़ी रकम थी। मुंगेर और बेगुसराय में सभा का आयोजन अन्य स्थानों से ज्यादा अच्छा था। सभा-स्थल पर 4 मजबूत स्तंभों पर 6 फीट ऊँचा मंच बनाया गया था।²¹

महिलाओं की भी सभा लगभग हर जगह होती और वे चंदा में अपना आभूषण अक्सर दिया करतीं। ऐसी पहली सभा सोनपुर में हुई थी। गाँधी जी सभाओं में भारतीय नारीत्व के महान् आदर्शों का संदेश देते और भारतीय महिला को पर्दा से निकलने का आग्रह करते। वे कहते सतीत्व पर्दे में रहना मात्र नहीं। वह ऊपर से लादा नहीं जा सकता। पर्दे की दीवारों से उसकी रक्षा नहीं हो सकती। इसका विकास अन्तर से होना चाहिए और यदि सचमुच इसका कुछ मूल्य होना है, तो अनावश्यक प्रलोभन का प्रतिरोध करने की क्षमता होनी चाहिए। सीता के आचरण की पवित्रता एवं प्रलोभनों के समक्ष चट्टान की तरह अटल रहना सतीत्व का सर्वोच्च आदर्श है। यदि पुरुषों की दृष्टि का प्रतिरोध करने की भी उसमें क्षमता नहीं तो वैसा सतीत्व किस काम का। पुरुष अपनी स्त्रियों पर भरोसा नहीं कर सके तो वह कैसा पुरुष होगा। स्त्रियाँ पुरुष पर भरोसा करने का बाध्य हैं। उसी तरह उसे भी स्त्रियों पर विश्वास करना चाहिए। स्त्री और पुरुष समाज के दो अभिन्न अंग हैं। हम एक अंग को पूर्ण या अंशतः जड़ीभूत बनाकर जिन्दा नहीं रह सकते। सीता, श्रीराम की तरह ही उन्मुक्त एवं स्वतंत्र थी। उसके बिना श्री राम कहाँ रहते आदर्श। आत्म निर्भरता के लिए द्रौपदी कदाचित् अधिक अनुकरणीय उदाहरण प्रस्तुत करती हैं। वह मुर्तिमति शील थी वह एक सुकुमार फल थी। द्रौपदी विशाल शालमली वृक्ष की तरह थी। उसने शक्तिशाली भीम को अपने दृढ़ संकल्प के सम्मुख झुका दिया। भीम सब के लिए भयानक थे किन्तु द्रौपदी के सम्मुख भेंड़ बन जाते। उसे किसी पाण्डव के संरक्षण की आवश्यकता नहीं थी। आज भारत के नारीत्व के उन्मुक्त विकास में हस्तक्षेप करके हम स्वतंत्र एवं आत्मनिर्भर लोगों के विकास में बाधा डाल रहे हैं। हम अपने महिला समाज एवं अछूतों के प्रति जो कुछ कर रहे हैं वह हजार गुने रूप में हमारे ऊपर आघात करता है। हमारी कमजोरी, संकीर्णता और नस्सहायता का अंशतः यही कारण है। हम पूरा जोर लगाकर पर्दा की दीवारों को तोड़ डालें।²² इस यात्रा में गाँधी जी अपने साथ खादी लिए चलते और हर सभा में एवं हर स्टेशन पर बेचते। अपने खादी भण्डारों के कारण दरभंगा जिला महात्मा गाँधी के शब्दों में आधुनिक तीर्थ स्थान था। महादेव देसाई इस संबंध में लिखते हैं, "इन भण्डारों में जाना केवल एक अध्ययन ही नहीं, बल्कि एक उद्घाटन आँखों के लिए एक मनोरम दृश्य आत्मा के लिए शांति मिलने के समान होता है। पंडौल, मधुबनी सकरी और कपसिया हमारे सामने स्वप्नवत् प्रतीत होते। साफ-सुथरे आंगनों में तरुणी स्त्रियाँ बैठी होती सभी के सभी मुसलमान मौलाना शौकत अली को यह जानकर खुशी होती। वे सब चर्खा चलाती और उसका ध्वनि कानों में गूँजती रहती। 10 या 50 ही नहीं, पूरे 300 कत्तिने अपनी कला का विस्मयकारी प्रदर्शन करती जो इनके लिए जन्मजात थी। वेलवर में ब्राह्मणी कत्तिनों का एक गाँव था। लड़कियाँ छोटी-छोटी तकलियों पर सूत कातती एवं व्यस्क महिलाएँ चर्खा पर कपसिया मुसलमानों की बस्ती की तरुणों ने यहाँ कताई केन्द्र का संगठन किया था। यहाँ के सभी लोग हाथ से काते सूत की बुनाई करते दीख पड़े।²³ गया में नगरपालिका की ओर से गाँधी जी को एक अभिनन्दन पत्र प्रस्तुत किया गया। इसमें खादी और अछूतोंद्वारा कार्यक्रम की उपयोगिता में शंका प्रकट की गई थी। वहाँ हिन्दू सभा ने भी उन्हें एक अभिनन्दन पत्र प्रस्तुत किया। इसमें खादी और अछूतोंद्वारा के प्रति हार्दिक सहानुभूति प्रकट करते हुए शुद्धि के काम में उनके आशीर्वाद का आग्रह किया गया था। गाँधी जी ने इसके जबाब में कहा, प्यह किसी से छिपा नहीं है कि शुद्धि कार्यक्रम के सभी पक्ष मुझे पसंद नहीं। हिन्दू शास्त्रों का विस्तृत अध्ययन करने के उपरान्त मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि उनमें धर्म परिवर्तन के लिए कोई स्थान नहीं जैसा कि इस्लाम एवं इसाई धर्मों में है। कुरान का भी अध्ययन करके मैं इस निश्चय पर पहुँचा हूँ कि जिस प्रकार आजकल तबलीग (धर्म परिवर्तन) किया जाता है उसकी कोई व्यवस्था नहीं। संभव है कि मैं भूल कर रहा हूँ। वैसी स्थिति में भगवान मुझे सही राह दिखावें। व्यक्तिगत रूप में मैं अपने धर्म की रक्षा तपश्चर्या से करना चाहूँगा। यह मार्ग कष्ट सहने का है और किसी भी महान लक्ष्य तक पहुँचने का राजमार्ग। हिन्दू समाज से छुआछूत का अभिशाप दूर करना ही स्वामी जी (स्वामी श्रद्धानन्द) का सच्चा स्मारक होगा।

हिन्दू और मुसलमान दोनों ही स्वामी जी के बलिदान से अपने हृदय को शुद्ध करें। मुझे अपनी इच्छानुकूल गीता या कुरान पढ़ने को बाध्य क्यों करें। इसी प्रकार बाइबिल पढ़ने को बाध्य करने की लिए किसी ईसाई की मुझे क्या आवश्यकता? व्यक्ति और उसके धर्म के या भगवान के मध्य किसीको भी बिचौलिया या व्यवधान नहीं बनना चाहिए। जिसे धर्म का कोई परिचय नहीं, जिसका हृदय कठोर एवं अपवित्र हैं, वह दूसरे को पवित्र करने का साहस कैसे कर सकता है। किन्तु यह मेरी व्यक्तिगत धारणा है और मैं स्वतंत्रता का भक्त हूँ। अपनी-अपनी व्यक्तिगत धारणा के बावजूद मुझे यह कहना है कि श्रद्धानन्द जी को वैदिक धर्म के प्रचार करने का उतना ही अधिकार था जितना किसी मुसलमान को कुरान का और यदि श्रद्धानन्द जी की हत्या उनके शुद्ध कार्य के कारण की गई, तो इससे इस्लाम के माथे पर कोई सेहरा नहीं बंधता। हिन्दू धर्म एवं समाज को उनके बलिदान पर गर्व है और दोनों की महत्ता उससे बढ़ी है।²⁴ कोई मुसलमान उनकी हत्या की मन ही मन ताईद नहीं करे या यह नहीं समझे कि इससे इस्लाम की भलाई हुई है। न कोई हिन्दू ही उसका बदला लेने की बात सोचे। यदि हिन्दू या मुसलमान एक दूसरे के प्रति अविश्वास एवं भय में मुक्त रहेंगे, तो फिर दुनिया में कोई ऐसी ताकत नहीं, जो इन्हें स्वतंत्र होने से रोके सके। हम अपनी दासता की बेड़ियों के स्वयं निर्माता हैं। अबतक मैंने इस विषय पर अपनी जुबान बन्द रखी थी। किन्तु श्रद्धानन्द जी के बलिदान ने मुझे कुछ हद तक अपनी जुबान खोलने को बाध्य कर दिया है। फिर भी इस परिवेश में मैं कोई निदेश नहीं दे सकता। मैं केवल भगवान से प्रार्थना करूंगा कि वे हमें भय, घृणा और अविश्वास से मुक्त करें और प्रेम की ताकत पर ही एक मात्र भरोसा रखना सिखावें।²⁵

बिहार यात्रा में गाँधी जी ने कई राष्ट्रीय विद्यालय देखे। ये 1921 से अनेक बाधाओं और कठिनाइयों के बावजूद किसी तरह चले आ रहे और उनकी स्थिति आम तौर पर अच्छी थी। रिपोर्टों से पता चलता है कि 1926 में। कॉलेज, 15 मिडिल और 10 प्राइमरी विद्यालय थे। ये संस्थाएँ विद्यापीठ से संबद्ध थी। कॉलेज में केवल 32 छात्र थे। उच्च माध्यमिक और प्राथमिक विद्यालयों में छात्रों की संख्या 1925 में 797 1285 और 1009 की तुलना में 1926 में 607, 983 और 483 थी। शिक्षकों की संख्या पिछले वर्ष की 79, 70 और 34 की तुलना में 67 और 15 रह गई थी। 1925 में बेतिया का हाई स्कूल धन के अभाव के कारण बन्द हो गया था। पूर्णिया जिला के धरमपुर में वहाँ गाँधी जी की यात्रा के उपलक्ष्य में एक मिडिल स्कूल खोला गया था। पटना के राष्ट्रीय विद्यालय में उस समय 32 छात्र थे। धनाभाव राष्ट्रीय संस्थानों के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा थी। उनकी संख्या में कमी होने का एक कारण यह था कि जिला अभिषदों में या नगरपालिकाओं में जिन काँग्रेसी सदस्यों ने अधिकार ग्रहण किया था वे जिला अभिषदों के स्कूलों के प्रबंध में ही रुचि रखते थे। गाँधी जी ने कहा कि अध्यापकों एवं प्राध्यापकों को अपने ही कार्यक्रम में आवश्यक आस्था नहीं थी। उन्होंने अपने रचनात्मक शैक्षणिक कार्यक्रम के प्रति पूर्ण निष्ठावान होने की अपील की। राष्ट्रीय स्कूलों के पाठ्यक्रम में कताई एक अनिवार्य विषय होनी चाहिए। कताई को राष्ट्रीय शिक्षा का एक अनिवार्य अंग बनाने की आवश्यकता में निष्ठा एवं पूर्ण विश्वास होने की आवश्यकता पर भी उन्होंने बल दिया। उन्होंने कहा कि कताई के समान बड़े आन्दोलन की सफलता कार्यकर्ताओं के चरित्र पर ही निर्भर थी और यदि कार्यकर्ता किसी तरह का मुखौटा लगाना शुरू करे तो उसकी सफलता की कोई संभावना नहीं।²⁶

महात्मा गाँधी की इस बिहार यात्रा के अन्तिम दिन बिहार विद्यापीठ के छात्रों एवं अध्यापकों के बीच तथा खादी कार्यकर्ताओं के मध्य व्यतीत हुए। उन दिनों विद्यापीठ अनेक कठिनाइयों से जूझ रहा था। इनमें सबसे प्रमुख था धनाभाव। किन्तु राजेन्द्र प्रसाद और कुछ अन्य लोग चंदा से धन एकत्र करके यथासंभव उसे बनाये रखने का यत्न कर रहे थे। पटना में कुछ लोगों ने मासिक चंदा उसके लिए नियत कर दी थी। श्री भगवान दास ने इसके लिए कुछ जमीन दी थी जिससे कुछ आय होती थी। कुछ काल बाद मुजफ्फरपुर के बाबू गजाधर प्रसाद साहू ने अपने ट्रस्ट से कुछ अनुदान निश्चित कर दिया जो नियमित रूप से उसे उपलब्ध था उसकी कार्य क्षमता बढ़ाने एवं लोगों का ध्यान उसकी ओर आकृष्ट करने के हेतु यह निर्णय किया गया कि बाहर से कुछ विद्वानों को वहाँ बुलाया जाय। बनारस के एक प्रख्यात विद्वान श्रीरामदास गौड़ एवं बंगाल के कतिपय विद्वानों को वहाँ लाया गया। कुछ काल बाद जयचन्द्र विद्यालंकार को इतिहास का प्राध्यापक नियुक्त किया गया। मार्च 1929 के दूसरे सप्ताह में श्री राजगोपालाचारी ने विशेष आमंत्रण पर उसका वार्षिक दीक्षांत भाषण किया। स्नातकों के जीवन में उत्कृष्टतम गुणों का संबर्द्धन करने का आग्रह किया जिसमें वे अपनी मातृभूमि की उन्मुक्ति के हेतु अधिक से अधिक कष्ट सहने एवं आत्मशुद्धि के लिए प्रस्तुत हो सकें।²⁷ विद्यापीठ के अधिकारियों ने इसी समय एक खादी प्रदर्शनी का आयोजन किया। कलकत्ता खादी प्रतिष्ठान के श्री सतीशचन्द्र दास गुप्ता इसका उद्घाटन किया। इस अवसर पर बोलते हुए उन्होंने भारत की गरीबी तथा दासता से मुक्ति के लिए चर्खा एवं खादी के महत्व पर बल दिया। बिहार के खादी केन्द्रों के कार्य की उन्होंने प्रशंसा की। निष्कर्ष रूप से उन्होंने कहा “यदि हम चर्खा के माध्यम से स्वराज्य हासिल कर सकें तो यह दुनिया के समक्ष सिद्ध कर देगा कि पशुबल की अपेक्षा प्रेम कहीं अधिक शक्ति शाली है। भारत के करोड़ों क्षुधित लोगों को खाना मिले, उनका खोया हुआ सम्मान उसे मिले और तभी भारत दुनिया को सर्वाधिक महत्वपूर्ण संदेश दे सकेगा कि प्रेम की शक्ति पशुबल से कहीं अधिक होती है।” गाँधी जी ने बिहार विद्यापीठ के दीक्षांत समारोह में भाषण दिया उस समय इसके उपकुलपति के रूप में राजेन्द्र प्रसाद ने 9 स्नातकों को डिग्रीयों प्रदान की। सभी संस्थाओं में शिक्षा का माध्यम हिन्दी था, कताई अनिवार्य थी, और कुछ में बुनाई की शिक्षा दी जाती थी। कॉलेज को आवासीय छात्रों के भोजन के लिए 8 या 9 रूपया प्रति माह देना होता था। इस समय तक 24 को बी० ए० और 6 को बी० एस० सी० की डिग्री मिल चुकी थी। रजिस्ट्रार की रिपोर्ट में उनके महाविद्यालयोपरान्त जीवन के संबंध में कुछ रोचक बातें प्रस्तुत की गई थी। एक अन्य को जापान के किसी फार्म में महत्वपूर्ण नौकरी मिल चुकी थी। एक ने गौशाला और मवेशीपालन का अध्ययन किया था। वह अपनी दुग्धशाला चला रहा था दो पत्रकारिता में चले गए थे। एक कलकत्ता में व्यवसाय कर रहा था और एक काँग्रेस का कार्यकर्ता था। पटना के बहुसंख्यक लोग बिहार विद्यापीठ के दीक्षांत समारोह में उपस्थित थे। यह समारोह दीक्षा के निकट गंगा तट पर आम के कुंज में आयोजित था। गाँधी जी ने अपने भाव भरे भाषण में प्रारंभ में ही आशा प्रकट की कि स्नातकों ने उस दिन जो संकल्प लिया था उसका जीवन में अनुपालन करेंगे और यह कि विद्यापीठ के अस्तित्व की उपयोगिता सिद्ध हो जाएगी यदि एक भी आदर्श छात्र और शिक्षक वहाँ से निकले क्योंकि इन संस्थाओं का काम ही क्या था? रत्नों को प्रकाश में लाना, भले ही उनकी संख्या बहुत ही कम हो, किन्तु हों वे सार्वधिक निर्मल और अनमोल। तदुपरान्त गाँधी जी ने असहयोग संस्थाओं के सभी पक्षों पर प्रकाश डाला। इन संस्थाओं ने सरकार से सभी संबंध विच्छिन्न करके अपना विशेषात्मक उद्देश्य पूरा किया था। इन संस्थाओं के प्राध्यापकों की कठिनाइयों एवं उन्हें छोड़कर चल जाने वालों की चर्चा करते हुए उन्होंने कहा कि ये कठिनाइयाँ एवं कष्ट हमारी दैनिक जिन्दगी के अंग हैं और होने भी चाहिए यदि सत्य का अनुपालन गुलाबों की सेज होती, यदि सत्य का मूल्य कुछ भी नहीं चुकाना पड़ता और खुशी एवं आराम से ही उसकी उपलब्धि हो जाती, तो फिर उसकी विशेषता क्या होती। हमें सत्य के मार्ग पर स्थिर रहना चाहिए भले ही आकाश फट पड़े। यदि सत्य

के मार्ग का अनुसरण करते हुए हमें सारी दुनिया भी खो देनी पड़े, तो उससे क्या होता। 28 वर्ष 1927 जनवरी के अन्त में गाँधी जी ने बिहार से विदा ली। इस बार दास स्मारक अधिकांश के लिए उन्हें 40,685 रूपया मिले। यह यात्रा बिहार में जन जागरण के लिए स्मरणीय रहेगी। इसके साथ ही इस प्रान्त में गाँधी जी का जो भारीप्रभाव था उसका भी प्रदर्शन जगह-जगह हुआ। महादेव देसाई ने इसका उल्लेख करते हुए अपने व्यक्तिगत अनुभव के आधार पर लिखा है कि ऐसे लोगों को जिन्हें शंका या अविश्वास हो वे बिहार जाएँ और गंगा, सरयु, गंडक और सोन के निर्मल जल से अभिसंचित उस प्रान्त को देखें। उन्हें तत्काल यह पता चल जाएगा कि वहाँ की मिट्टी आस्था की गंगा से भी अभिसंचित है और जो कभी नहीं सुखेगी।²⁹

महात्मा गाँधी ने अपनी बिहार यात्रा के अन्तिम दिन खादी कार्यकर्ताओं से भेंट की। इस अवसर पर राजेन्द्र बाबू ने सिन्हा इंस्टीच्युट में एक विशेष खादी प्रदर्शनी आयोजित की थी। वहाँ एक शमियाना खड़ा किया गया था, काफी बड़ी भीड़ एकत्र हो गई थी। गाँधी जी ने अपना हिन्दी भाषण श्रोताओं के समक्ष पढ़कर सुनाया। उसमें दुनिया के विभिन्न देशों में प्रति व्यक्ति दैनिक आय तथा विद्यापीठ के छात्रों द्वारा हाल के वर्षों में खादी के उत्पादन एवं विक्रय के विवरण थे। खादी के इस उत्पादन का अर्थ हुआ उनके अनुसार बिहार के 3,000 गरीब महिलाओं में 30,000 रूपयों का वितरण। भारत की अधिकांश गरीब जनता की बहुत कम आय का उल्लेख करते हुए उन्होंने कहा कि गम्भीर चिन्तन एवं हाल के वर्षों में करोड़ों लोग से सम्पर्क के आधार पर मैंने उनकी आय के पूरक रूप में एक संभव साधन चर्खा का सुझाव दिया है। लोगों की भारी भीड़ हो जाने के कारण विशेष आमंत्रित लोग जिनमें मंत्री, बैरिस्टर और सरकारी अधिकारी भी थे, दूसरे दिन आए और लगभग डेढ़ दिनों में 2,000 रु० से अधिक मूल्य की खादी का विक्रय हुआ।³⁰

बिहार में खादी का काम 1921 से आरम्भ हुआ था। तिलक स्वराज्य अधिकांश से प्रान्तीय काँग्रेस कमिटी द्वारा एक अच्छी रकम प्राप्त करके यह काम शुरू किया गया था। किन्तु कार्यकर्ताओं के पर्याप्त अनुभवों नहीं होने के कारण संतोषजनक प्रगति नहीं हो सकी थी। आचार्य कृपलानी की सहायता से श्री रामविनोद सिंह ने मधुबनी में एक खादी उत्पादन केन्द्र की स्थापना करके महत्वपूर्ण काम किया था। उन्हीं की अनुशंसा एवं राजेन्द्र बाबू की सहमति से श्री सिंह ने खादी बोर्ड से ऋण के रूप में एक अच्छी रकम इसके लिए प्राप्त की। अखिल भारतीय चर्खा संघ की स्थापना एवं बिहार में उसकी एक शाखा खोले जाने से खादी का काम नये सिरे से वहाँ शुरू हुआ फलतः खादी के उत्पादन एवं विक्रय में अच्छी प्रगति होने लगी और बिहार में सस्ती खादी का उत्पादन होने लगा। इसके लिए दरभंगा जिला विशेष रूप से प्रख्यात था। अखिल भारतीय चर्खा संघ की बिहार शाखा पटना से मुजफ्फरपुर ले जायी गई वहाँ से मधुबनी। वहाँ चर्खा संघ का अपना भवन बनवाया गया।³¹ फरवरी 1925 में एक बिहारी संवाददाता ने गाँधी जी को उस समय तक की बिहार में खादी कार्य की प्रगति के संबंध में इस आशय का पत्र भेजा “बिहार प्रान्तीय काँग्रेस कमिटी की एक बैठक 25 जनवरी को हुई थी। उसके अधिकतर सदस्यों ने स्वतः सूत कातनेवाले सदस्यों के रूप में अपना नाम दर्ज कराया। विभिन्न जिलों से कार्यकर्ता 31 मार्च के पहले तक 3,000 स्वयं सूत कातनेवाले सदस्य बनाने को प्रतिबद्ध हुए। साल भर में कम से कम 13,000 ऐसे सदस्य बनाने का कार्यक्रम है चंदा के रूप में ऐसे सदस्यों के लिए, जिन्हें अपनी रूई खरीदने की क्षमता नहीं है, पर्याप्त रूई एकत्र करने का आश्वासन दिया गया। अपने अनुवीक्षण के रूप में मैंने देखा है कि सूत एवं खादी की किस्म में पर्याप्त प्रगति होती रही है और खादी बोर्ड के माध्यम से केन्द्रीकरण के द्वारा अपेक्षाकृत अधिक कार्यक्षमता बढ़ाने में सहायता मिली है। निम्नलिखित उत्पादन केन्द्रों में औसत मासिक उत्पादन इस प्रकार है: पंडोल 3,000 रु० गौरोल 15,000 रु०। तीन विक्रय केन्द्रों की तालिका इस प्रकार है मुजफ्फरपुर 2,500 रु० हाजीपुर 500 रु० पटना 2,000/- इस प्रकार आप देखेंगे कि विक्रय और उत्पादन में संतुलन है किन्तु कुल उत्पादन एवं कुल उपभोग इतना ही नहीं हैं। अनेक ऐसी कतिने हैं जो अपने वस्त्र की आवश्यकताओं के हेतु सूत कातती हैं। यद्यपि मुझे इस तरह उत्पादित सूत या खादी के पूरे आँकड़े प्राप्त नहीं हैं, किन्तु अनुमान किया जाता है कि ऐसे उत्पादकों की संख्या सैकड़ों में होगी। गाँधी आश्रम एक आदर्श कताई केन्द्र है। मुझे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि 12 वर्ष के लड़के वहाँ किस खूबी से काम करते हैं। वे न केवल रूई अच्छी तरह धुनते हैं और सूत अच्छी तरह काटते हैं, बल्कि उसके साथ ही कतिनों से सूत लेते हैं और उनको जाँच करते हैं, मजदूरी देते हैं एवं सूत बुनकरों को दे देते हैं। यह सारा काम बड़ी ही योग्यता एवं ठीक तरीकों से होता है। उसके यहाँ उत्पादित खादी 1922 की अपेक्षा ज्यादा है। इस आश्रम के अन्तर्गत निम्नलिखित उत्पादन केन्द्र हैं मधुबनी 7,000 रु० मलखाचक 600 रु०, माधोपुर 600 रु०, विक्रयकेन्द्र मधुबनी 1,500 रु०, भागलपुर 1,100 रु०, मलखाचक 500, और जमुई 500। इस वर्ष प्रान्तीय काँग्रेस कमिटी ने 5 लाख रूपए की खादी उत्पादित कराने को लक्ष्य रखा है। अभी प्रति माह 13,000 रु० की खादी का उत्पादन होता है। अतः इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए महावारी उत्पादन को तिगुना करना होगा। राजेन्द्र बाबू इसके लिए उत्साह के साथ क्रियाशील हैं। बिहार में इसके लिए पर्याप्त प्राकृतिक सुविधाएँ हैं। अतः लक्ष्य की प्राप्ति हो सकती है इसमें आश्चर्य नहीं।³²

निष्कर्ष:

रचनात्मक कार्यक्रम का महत्व अपने आप में काफी महत्व पूर्ण है। इसने भारतीय समाज हेतु जो योगदान प्रदान किया है इसे कभी भी भुलाया नहीं जा सकता है। इसके माध्यम से भारतवासियों की स्वतंत्रता हासिल करने तथा उनके सर्वांगीण विकास में काफी सहयोग मिला है। रचनात्मक कार्य-क्रम ने सत्य और अहिंसा के माध्यम से सम्पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्ति हेतु सकारात्मक सहयोग प्रदान किया है। इसके माध्यम से गरीबी, शराबबंदी, चर्खा का प्रचार, अपने द्वारा निर्मित वस्तु का उपयोग करना, भारतवासियों के उत्थान के लिए प्रयास किए गए। यह स्पष्ट है कि रचनात्मक कार्यक्रम वह प्रयास है जो इस देश की गरीबी जनता के लिए लाभदायक सिद्ध हुआ है यह इतिहास के पृष्ठों में हमेशा स्मरणीय रहेगा। सम्पूर्ण देश में जनता को उसके राजनीतिक अधिकार की ओर ध्यान दिलाने एवं उन अधिकारों को प्राप्त करने के लिए आवश्यक शक्ति तथा कार्य क्षमता हासिल करने का प्रशिक्षण देने के लिए महात्मा गाँधी के रचनात्मक कार्यक्रम को अभी भी चलाना चाहिए। विशेष रूप से चर्खा, खादी, अन्तर सामुदायिक एकता, छुआछूत निवारण, दलित वर्गों की स्थिति में सुधार, नशाबंदी, स्थानीय स्वायत्त संस्थाओं में प्रवेश, श्रमिकों का संगठन, श्रमिकों एवं मालिक के सम्बन्ध में सुधार जमीनदान-विकास सम्बन्ध, घनिष्ठ करने और देश को राष्ट्रीय आर्थिक औद्योगिक हितों के विकास के लिए इसे अपनाने से देश का कल्याण होगा।

संदर्भ

1. गोपी नाथ धवन, दि पोलिटिल फिलोस्फी आफ महात्मा गाँधी में उद्धृत, पृ० 191

2. यंग इण्डिया, 23 जनवरी 1930 पृ० 23 तथा गाँधी जी, सत्याग्रह इन साउथ अफ्रीका, पृ० 236-58 (अहमदाबाद नवजीवन ट्रस्ट, 1928)
3. गोपी नाथ धवन, दि पोलिटिकल फिलोस्फी आफ महात्मा गाँधी में उद्धृत, पृ० 195-96
4. वही, पृ०-206
5. वही, पृ० 207-08
6. गाँधी जी, रचनात्मक कार्यक्रम पृ०-7 (नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद)
7. वही पृ०-४
8. वही पृ०-१
9. यंग इण्डिया, 1924-26, पृ० 564
10. महादेव देसाई, गाँधी जी इन इण्डियन विलेजज, पृ० 232
11. वही, पृ० 265
12. यंग इण्डिया, 20 अगस्त 1931 और महादेवभाई की डायरी, गाँधी जी के साथ पच्चीस वर्ष पृ० 82 (वाराणसी सर्व सेवा संघ, 1968)
13. महादेव देसाई, गाँधी जी इण्डियन इन विलेजज, पृ० 238
14. वही, पृ० 239
15. वही पृ० 231-41
16. वही, पृ० 258-59
17. जी० चौधरी लाल बन्ध की स्वर्गीय पत्नी के स्मारक के रूप में।
18. महादेव देसाई, गाँधी जी इन इण्डियन विलेजज, पृ० 283
19. बिहार, उड़ीसा इन 1925-26 पृ० 29
20. यंग इण्डिया, 1926-28, १० 53
21. वही, पृ० 78
22. जनकधारी प्रसाद की आत्म कथा पृ० 144
23. यंग इण्डिया 1925-26, १० 62-63
24. वही, पृ० 74-76
25. बिहार विद्यापीठ और अन्य संस्थाओं की रिपोर्ट, 1925-26, पृ० 9 26. वही, पृ०-9
27. राजेन्द्र प्रसाद, आत्मकथा, पृ० 262-64
28. बिहार विद्यापीठ की रिपोर्ट, पृ०-531
29. यंग इण्डिया 1926-28, पृ०-86-88
30. राजेन्द्र प्रसाद, आत्मकथा, पृ० 264-65
31. वही, पृ० 86
32. यंग इण्डिया, 12 फरवरी 1925

न्यायसंगत वितरण का सिद्धांत: एक अवलोकन

डॉ० सुलेखा कुमारी

असिस्टेंट प्रोफेसर, अर्थशास्त्र विभाग, डॉ. एल.के.डी.वी. कॉलेज ताजपुर, समस्तीपुर, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा (बिहार)

रिसर्च आर्टिकल का एबस्ट्रेक्ट:

अर्थशास्त्र के अन्तर्गत न्यायसंगत वितरण का सिद्धांत एक महत्वपूर्ण अवधारणा है, जिसका उद्देश्य समाज में आर्थिक संसाधनों और आय का समान रूप से वितरण करना है। यह सिद्धांत समसामयिक लोकतांत्रिक तथा समाजवादी समाज के लिए भी अनिवार्य बन गया है, जो इस महत्वपूर्ण लोकतांत्रिक व समाजवादी मान्यता आधारित है कि समाज के सभी वर्गों को संसाधनों तक समान पहुँच मिलनी चाहिए, ताकि आर्थिक असमानता को कम किया जा सके और समावेशी विकास को बढ़ावा दिया जा सके। जॉन रॉल्स, अमर्त्य सेन और महात्मा गांधी जैसे विचारकों ने न्यायसंगत वितरण की आवश्यकता पर बल दिया है। इस सिद्धांत के तहत समाज के सबसे कमजोर और वंचित वर्गों के कल्याण के लिए समतामूलक योजनाएँ बनाई जाती हैं, जिनसे सभी को समान अवसर मिल सके। प्रगतिशील कर प्रणाली, सार्वजनिक सेवाओं का विस्तार और सामाजिक सुरक्षा योजनाएँ न्यायसंगत वितरण के महत्वपूर्ण उपकरण हैं। यह सिद्धांत केवल आर्थिक दृष्टिकोण तक सीमित नहीं है, बल्कि यह सामाजिक स्थिरता, शांति और समरसता के लिए भी आवश्यक है। न्यायसंगत वितरण की प्रक्रिया कई चुनौतियों का सामना करती है, जैसे- आय और संपत्ति में असमानता, नीतिगत विफलता, भ्रष्टाचार और जागरूकता की कमी। इसके बावजूद, न्यायसंगत वितरण की दिशा में किए गए प्रयास समाज के समग्र विकास और गरीबी उन्मूलन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। भारत में न्यायसंगत वितरण को बढ़ावा देने के लिए विभिन्न सरकारी योजनाएँ लागू की गई हैं, जिनमें मनरेगा, आयुष्मान भारत, और सार्वजनिक वितरण प्रणाली शामिल हैं। इन योजनाओं का लक्ष्य सामाजिक और आर्थिक रूप से पिछड़े वर्गों को मुख्यधारा में लाना है। यह शोध आलेख न्यायसंगत वितरण के विभिन्न आयामों पर विस्तृत चर्चा करता है तथा समावेशी और न्यायसंगत समाज के निर्माण में भी प्रस्तुत शोध आलेख सहायक हो सकता है।

प्रमुख शब्दावली: लोक कल्याणकारी राज्य, समाजवाद, न्याय, समता, समानता, लोकतंत्र, सामाजिक आधुनिकीकरण, आर्थिक प्रगति, विकास आदि।

प्रस्तावना:

न्यायसंगत वितरण का सिद्धांत अर्थशास्त्र का एक महत्वपूर्ण पक्ष है, जो समाज में संसाधनों और आय के समान वितरण की आवश्यकता पर बल देता है। इस सिद्धांत का उद्देश्य सामाजिक असमानताओं को कम करना और आर्थिक प्रगति के लाभों को सभी वर्गों तक पहुँचाना है। न्यायसंगत वितरण आर्थिक न्याय और सामाजिक स्थिरता का आधार है, जो किसी भी देश की समग्र प्रगति के लिए आवश्यक है। समाज के सभी वर्गों के बीच आर्थिक संसाधनों और आय का ऐसा वितरण, जिससे आर्थिक असमानता कम हो और समाज के सभी सदस्यों को उनके मूलभूत अधिकार मिलें, को ही न्याय संगत वितरण कहते हैं। यह सिद्धांत इस विचार पर आधारित है कि संसाधनों तक पहुँच का समान अवसर मिलना चाहिए, ताकि कोई भी व्यक्ति आर्थिक या सामाजिक रूप से पिछड़ा न रह जाए।

न्यायसंगत वितरण के अन्तर्गत समानता (EQUALITY), न्याय (JUSTICE), कल्याण (WELFARE), समान अवसर (EQUAL OPPORTUNITY) तथा समावेश (INCLUSION) जैसे तत्वों को महत्व प्रदान किया जाता है।

समानता एक ऐसा आदर्श है जो समाज में प्रत्येक व्यक्ति को बिना किसी भेदभाव के समान अवसर, अधिकार और संसाधनों तक पहुँच प्रदान करने पर बल देता है। यह अवधारणा सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और लैंगिक स्तर पर समानता की मांग करती है, ताकि समाज में व्याप्त असमानताओं को दूर किया जा सके और समावेशी विकास को प्रोत्साहन मिले। समानता का तात्पर्य केवल आर्थिक स्तर पर समानता से नहीं है, बल्कि शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार और न्याय तक समान पहुँच भी इसका अभिन्न अंग है। जब समाज में सभी को समान अवसर मिलते हैं, तो इससे सामाजिक स्थिरता, शांति और भाईचारे को बढ़ावा मिलता है, जिससे लोकतंत्र मजबूत होता है। समानता का महत्व इस बात में निहित है कि यह मानवाधिकारों की रक्षा करती है और सभी के लिए एक न्यायपूर्ण वातावरण का निर्माण करती है। यह अवधारणा इस विश्वास पर आधारित है कि प्रत्येक व्यक्ति में समान क्षमताएँ और संभावनाएँ हैं, और इसलिए उन्हें उनके जाति, धर्म, लिंग, भाषा या आर्थिक स्थिति के आधार पर विभाजित नहीं किया जाना चाहिए। हालाँकि, समानता की राह में जातिवाद, आर्थिक असमानता, लैंगिक भेदभाव, और शिक्षा की असमानता पहुँच जैसी कई चुनौतियाँ आती हैं। भारत जैसे विविधतापूर्ण देश में, समानता की प्राप्ति के लिए संवैधानिक प्रावधानों के साथ-साथ सामाजिक जागरूकता और सकारात्मक कदम उठाने की आवश्यकता है। शिक्षा का सार्वभौमिकरण, प्रगतिशील कर प्रणाली, महिला सशक्तिकरण, और सामाजिक सुरक्षा योजनाएँ समानता की दिशा में महत्वपूर्ण प्रयास हैं। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 14 से 18 तक समानता के अधिकार की गारंटी दी गई है, जो इस बात का प्रमाण है कि समानता एक संवैधानिक मूल्य है। समानता केवल एक नैतिक आदर्श नहीं है, बल्कि यह आर्थिक विकास

और सामाजिक प्रगति के लिए भी आवश्यक है। जब समाज में सभी लोगों को समान अवसर मिलते हैं, तो इससे न केवल गरीब और वंचित वर्गों का उत्थान होता है, बल्कि पूरे समाज की उत्पादकता और समृद्धि में भी वृद्धि होती है। समानता समाज में सामाजिक न्याय को बढ़ावा देती है, जिससे कमजोर वर्गों को आगे बढ़ने का अवसर मिलता है और वे अपनी क्षमताओं का पूर्ण विकास कर सकते हैं। यह अवधारणा समाज के सभी वर्गों के बीच एक संतुलन बनाए रखने में सहायक होती है, जिससे सामाजिक और आर्थिक असमानता को कम किया जा सकता है। हालाँकि, समानता की प्राप्ति में सबसे बड़ी बाधा गहरी जमी हुई सामाजिक धारणाएँ और पारंपरिक सोच हैं, जो समाज में भेदभाव को बढ़ावा देती हैं। इन बाधाओं को दूर करने के लिए शिक्षा, जागरूकता और कानून के माध्यम से समाज में समानता की भावना को प्रोत्साहित करना आवश्यक है। भारत में चल रही विभिन्न योजनाएँ, जैसे- मनरेगा, शिक्षा का अधिकार अधिनियम, और महिला सशक्तिकरण कार्यक्रम समानता की दिशा में उठाए गए महत्वपूर्ण कदम हैं। समानता की अवधारणा न केवल व्यक्तिगत स्तर पर बल्कि समाज के व्यापक हित में भी आवश्यक है। यह समाज को अधिक समावेशी और सहिष्णु बनाती है, जिससे समग्र विकास संभव होता है। जब समाज में समानता स्थापित होती है, तो इससे गरीबी, भेदभाव और सामाजिक तनाव में कमी आती है, और एक स्वस्थ, प्रगतिशील और खुशहाल समाज का निर्माण होता है।

न्याय एक सार्वभौमिक मूल्य है जो समाज में संतुलन, समानता और नैतिकता की स्थापना में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यह अवधारणा इस विश्वास पर आधारित है कि प्रत्येक व्यक्ति को उसके अधिकारों और कर्तव्यों के अनुसार सम्मान और निष्पक्ष व्यवहार मिलना चाहिए। न्याय का अर्थ केवल कानून के दायरे तक सीमित नहीं है, बल्कि यह सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक स्तरों पर भी समान रूप से महत्वपूर्ण है। न्याय की अनुपस्थिति में समाज में असमानता, भेदभाव और असंतोष जन्म लेता है, जो सामाजिक ताने-बाने को कमजोर कर सकता है। न्याय का उद्देश्य कमजोर और वंचित वर्गों की रक्षा करना और उन्हें समान अवसर प्रदान करना है, ताकि समाज में सभी को विकास का समान अधिकार मिल सके। न्याय के माध्यम से न केवल समाज में शांति और स्थिरता स्थापित होती है, बल्कि यह व्यक्तियों के आत्म-सम्मान और स्वतंत्रता की रक्षा भी करता है। एक न्यायपूर्ण समाज में सभी व्यक्तियों के साथ समानता और निष्पक्षता के साथ व्यवहार किया जाता है, और उनके मूलभूत अधिकारों की रक्षा की जाती है। न्याय की अवधारणा समय के साथ विकसित हुई है और विभिन्न संस्कृतियों और समाजों में इसे अलग-अलग रूपों में परिभाषित किया गया है। भारत में न्याय की अवधारणा प्राचीन काल से ही विद्यमान है, और आज भारतीय संविधान के माध्यम से इसे कानूनी रूप से संरक्षित किया गया है। न्याय की प्राप्ति के लिए स्वतंत्र न्यायपालिका, निष्पक्ष कानून व्यवस्था और नागरिकों की जागरूकता आवश्यक है। हालाँकि, न्याय की राह में कई चुनौतियाँ भी हैं, जैसे- भ्रष्टाचार, पक्षपात, और कानूनी प्रक्रिया में देरी। इन बाधाओं को दूर करने के लिए सरकार को प्रभावी कानून लागू करने, संस्थागत सुधार करने और समाज में न्याय की भावना को प्रोत्साहित करने की आवश्यकता है। न्याय की उपलब्धता समाज के हर वर्ग तक पहुँचनी चाहिए, ताकि कमजोर और वंचित लोग भी अपने अधिकारों की रक्षा कर सकें। इसके लिए निःशुल्क कानूनी सहायता, सार्वजनिक जागरूकता अभियान और समाज में नैतिकता और ईमानदारी को बढ़ावा देने की आवश्यकता है। न्याय केवल एक कानूनी प्रक्रिया नहीं है, बल्कि यह समाज के नैतिक आधार को मजबूत करने का एक साधन है। एक न्यायपूर्ण समाज में लोगों को उनकी क्षमताओं के अनुसार आगे बढ़ने का अवसर मिलता है, जिससे सामाजिक समरसता और समावेशी विकास को बढ़ावा मिलता है। न्याय की अनुपस्थिति में समाज में असमानता और भेदभाव का विस्तार होता है, जो समाज के विकास में बाधक बन सकता है। न्याय का महत्व इस बात में निहित है कि यह समाज में अनुशासन, सद्भाव और विश्वास को बनाए रखता है, जिससे समाज के सभी वर्गों को लाभ मिलता है। न्याय की अवधारणा केवल अपराध और दंड तक सीमित नहीं है, बल्कि यह शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार और अन्य सामाजिक क्षेत्रों में समान अवसर प्रदान करने की दिशा में भी कार्य करती है। न्याय का व्यापक अर्थ यह है कि प्रत्येक व्यक्ति को उसके अधिकारों के साथ-साथ उसके कर्तव्यों का भी ज्ञान हो, जिससे समाज में संतुलन और समरसता बनी रहे। न्याय के माध्यम से समाज में एक सकारात्मक वातावरण का निर्माण होता है, जिसमें हर व्यक्ति अपनी क्षमताओं का उपयोग कर सकता है और समाज के विकास में योगदान दे सकता है। इस प्रकार, न्याय समाज की आधारशिला है, जो समाज को निष्पक्ष, समान और संतुलित बनाती है, और सभी व्यक्तियों को उनके अधिकारों की रक्षा का विश्वास दिलाती है।

समान अवसर एक ऐसी अवधारणा है जो समाज के प्रत्येक व्यक्ति को बिना किसी भेदभाव के शिक्षा, रोजगार, स्वास्थ्य और अन्य क्षेत्रों में आगे बढ़ने का अधिकार और मंच प्रदान करती है। इसका उद्देश्य सभी व्यक्तियों को उनकी सामाजिक, आर्थिक, जातीय, लैंगिक या शारीरिक स्थिति की परवाह किए बिना समान अधिकार और अवसर देना है, ताकि वे अपनी क्षमताओं और योग्यताओं के अनुसार प्रगति कर सकें। यह सिद्धांत इस विश्वास पर आधारित है कि समाज की वास्तविक प्रगति तभी संभव है जब प्रत्येक व्यक्ति को अपने जीवन में सफलता प्राप्त करने का बराबर मौका मिले। समान अवसर सामाजिक न्याय और समावेशी विकास का मूलभूत तत्व है, जो न केवल व्यक्तिगत विकास को प्रोत्साहित करता है, बल्कि समाज में असमानताओं और भेदभाव को भी कम करता है। यह अवधारणा शिक्षा के क्षेत्र में विशेष रूप से महत्वपूर्ण है, क्योंकि शिक्षा ही एक ऐसा माध्यम है जो किसी भी व्यक्ति को अपने जीवन स्तर को ऊँचा उठाने और समाज में योगदान देने का अवसर प्रदान करती है। समान अवसर केवल कानूनों और नीतियों तक सीमित नहीं है, बल्कि यह समाज की सोच और मानसिकता में परिवर्तन लाने की दिशा में भी कार्य करता है। जब सभी को समान अवसर मिलते हैं, तो इससे समाज में प्रतिस्पर्धा और उत्पादकता बढ़ती है, जिससे समाज के आर्थिक और सामाजिक विकास को गति मिलती है। हालाँकि, समान अवसर की राह में कई बाधाएँ हैं, जैसे- जातिवाद, लिंग भेद, आर्थिक असमानता, और सामाजिक पूर्वाग्रह, जो समाज में गहरे पैठ बनाए हुए हैं। इन बाधाओं को दूर करने के लिए सरकार द्वारा आरक्षण, वित्तीय सहायता, और महिलाओं तथा वंचित वर्गों के लिए विशेष योजनाएँ लागू की जाती हैं। समान अवसर को साकार करने के लिए शिक्षा प्रणाली को सुदृढ़ करना, कौशल विकास कार्यक्रम लागू करना, और समाज के कमजोर वर्गों को सशक्त बनाना आवश्यक है। भारत जैसे विविधतापूर्ण देश में, समान अवसर की प्राप्ति के लिए संविधान में विशेष प्रावधान किए गए हैं, जैसे- अनुच्छेद 15 और 16, जो सभी नागरिकों को किसी भी प्रकार के भेदभाव से बचाने और समान अवसर प्रदान करने की गारंटी देते हैं। समान अवसर का महत्व इस तथ्य में निहित है कि यह समाज के सभी वर्गों को आगे बढ़ने और राष्ट्र निर्माण में योगदान देने का अवसर प्रदान करता है, जिससे एक न्यायसंगत और समावेशी समाज की स्थापना होती है। जब समाज में सभी को समान अवसर मिलते हैं, तो इससे

सामाजिक समरसता और भाईचारा बढ़ता है, जिससे समाज में शांति और स्थिरता बनी रहती है। समान अवसर न केवल व्यक्तियों को उनकी क्षमताओं को पहचानने और विकसित करने का अवसर देता है, बल्कि यह समाज में समता और निष्पक्षता की भावना को भी प्रोत्साहित करता है। इसके माध्यम से समाज में गरीबी, बेरोजगारी और अन्य सामाजिक समस्याओं को प्रभावी ढंग से कम किया जा सकता है, जिससे समग्र समाज का विकास होता है। समान अवसर की प्राप्ति एक सतत प्रक्रिया है, जिसके लिए सरकार, समाज और प्रत्येक व्यक्ति को मिलकर प्रयास करने की आवश्यकता है। इससे न केवल आर्थिक विकास को बढ़ावा मिलेगा, बल्कि सामाजिक न्याय और समावेशिता को भी सशक्त किया जा सकेगा।

समावेश एक ऐसी प्रक्रिया है जो समाज के प्रत्येक व्यक्ति को समान अधिकार, अवसर और संसाधनों तक पहुँच सुनिश्चित करती है, जिससे वे समाज के विकास और प्रगति में सक्रिय भागीदारी कर सकें। यह अवधारणा विविधता को स्वीकार करने और सम्मान देने पर आधारित है, जिससे समाज के हाशिए पर खड़े समुदायों, जैसे- आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों, महिलाओं, विकलांग व्यक्तियों और जातीय अल्पसंख्यकों को मुख्यधारा में लाने का प्रयास किया जाता है। समावेश का लक्ष्य एक ऐसा समाज बनाना है जहाँ सभी लोग बिना किसी भेदभाव के शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार और सामाजिक सेवाओं का लाभ उठा सकें और समान रूप से योगदान कर सकें। समावेश केवल नीतियों और कानूनों तक सीमित नहीं है, बल्कि यह एक सामाजिक आंदोलन है जो मानसिकता और दृष्टिकोण में बदलाव लाकर समाज में व्यापक स्तर पर स्वीकार्यता और समानता स्थापित करता है। यह प्रक्रिया समाज में समानता, न्याय और सहिष्णुता को बढ़ावा देती है, जिससे सामाजिक स्थिरता और शांति बनी रहती है। समावेश का महत्व इस तथ्य में निहित है कि जब समाज के सभी वर्गों को समान अवसर और भागीदारी मिलती है, तो इससे समाज की उत्पादकता और नवाचार क्षमता में वृद्धि होती है, जो समग्र आर्थिक और सामाजिक विकास को गति प्रदान करता है। समावेशी समाज में लोगों को उनके लिंग, जाति, धर्म, भाषा या शारीरिक स्थिति के आधार पर भेदभाव का सामना नहीं करना पड़ता, बल्कि उन्हें उनकी क्षमताओं और योगदान के आधार पर मान्यता दी जाती है। हालाँकि, समावेश की राह में कई चुनौतियाँ हैं, जैसे- सामाजिक पूर्वाग्रह, आर्थिक असमानता, और संस्थागत भेदभाव, जो समाज के कमजोर वर्गों को मुख्यधारा से दूर रखते हैं। इन बाधाओं को दूर करने के लिए सरकार, गैर-सरकारी संगठनों और समाज के सभी वर्गों को मिलकर कार्य करना आवश्यक है। शिक्षा, कौशल विकास, और महिलाओं तथा अल्पसंख्यकों के सशक्तिकरण के माध्यम से समावेशी विकास को बढ़ावा दिया जा सकता है। भारत में समावेश को बढ़ावा देने के लिए संविधान में कई प्रावधान किए गए हैं, जैसे- सामाजिक और आर्थिक रूप से पिछड़े वर्गों के लिए आरक्षण, विकलांग व्यक्तियों के अधिकारों की सुरक्षा, और महिलाओं के सशक्तिकरण के लिए विशेष योजनाएँ। समावेश की प्रक्रिया केवल सामाजिक न्याय तक सीमित नहीं है, बल्कि यह समाज में नवाचार, आर्थिक समृद्धि और राजनीतिक स्थिरता का भी आधार है। जब समाज के सभी वर्ग समान रूप से भाग लेते हैं, तो इससे समाज में सामूहिकता, एकता और भाईचारा बढ़ता है, जिससे समाज और राष्ट्र दोनों मजबूत होते हैं। समावेश एक सतत प्रक्रिया है, जो समाज के प्रत्येक व्यक्ति के सहयोग और भागीदारी से ही सफल हो सकती है। इससे न केवल व्यक्तियों का विकास होता है, बल्कि संपूर्ण समाज की प्रगति संभव होती है, जिससे एक अधिक न्यायसंगत, सहिष्णु और समावेशी समाज का निर्माण होता है।

न्यायसंगत वितरण के सिद्धांतों में (1.) सामाजिक न्याय का सिद्धांत (THEORY OF SOCIAL JUSTICE), (2.) अधिकतम कल्याण का सिद्धांत (MAXIMIZATION OF WELFARE THEORY), (3.) न्यूनतम जीवन स्तर का सिद्धांत (MINIMUM STANDARD OF LIVING THEORY), (4.) कराधान और पुनर्वितरण का सिद्धांत (TAXATION AND REDISTRIBUTION THEORY) तथा (5.) समता और उत्पादकता का संतुलन सिद्धान्त (THEORY OF BALANCE OF EQUALITY AND PRODUCTIVITY) महत्वपूर्ण हैं।

सामाजिक न्याय का सिद्धांत समाज में समानता, स्वतंत्रता और निष्पक्षता की स्थापना पर आधारित है, जिसका उद्देश्य समाज के प्रत्येक व्यक्ति को उसके अधिकारों और अवसरों में समानता प्रदान करना है। यह सिद्धांत इस विश्वास पर आधारित है कि समाज में सभी लोगों को उनके लिंग, जाति, धर्म, आर्थिक स्थिति या सामाजिक पृष्ठभूमि के आधार पर किसी भी प्रकार का भेदभाव नहीं सहना चाहिए। सामाजिक न्याय कमजोर, वंचित और पिछड़े वर्गों को मुख्यधारा में लाकर उन्हें विकास की समान भागीदारी का अवसर प्रदान करता है, जिससे समाज में असमानता और अन्याय को कम किया जा सके। यह सिद्धांत समाज में संसाधनों, अवसरों और सेवाओं का न्यायपूर्ण वितरण सुनिश्चित करता है ताकि समाज के सभी वर्ग समान रूप से लाभान्वित हो सकें। सामाजिक न्याय केवल आर्थिक असमानता को दूर करने तक सीमित नहीं है, बल्कि यह शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार और राजनीतिक प्रतिनिधित्व तक समान पहुँच की वकालत करता है। यह सिद्धांत समाज में सामाजिक समरसता और भाईचारे को बढ़ावा देता है, जिससे समाज में शांति और स्थिरता स्थापित होती है। हालाँकि, सामाजिक न्याय की राह में कई बाधाएँ हैं, जैसे- जातिवाद, लैंगिक भेदभाव, आर्थिक विषमता और सामाजिक पूर्वाग्रह, जो समाज के कमजोर वर्गों को आगे बढ़ने से रोकते हैं। इन चुनौतियों का समाधान करने के लिए सरकारों द्वारा विभिन्न नीतियाँ और योजनाएँ लागू की जाती हैं, जैसे- आरक्षण, शिक्षा के अधिकार, और महिलाओं एवं अल्पसंख्यकों के लिए विशेष योजनाएँ। भारत में सामाजिक न्याय को संविधान के माध्यम से संरक्षित किया गया है, जिसमें समानता का अधिकार, स्वतंत्रता का अधिकार, और वंचित वर्गों के लिए विशेष प्रावधान शामिल हैं। सामाजिक न्याय का लक्ष्य केवल कमजोर वर्गों को संरक्षण देना ही नहीं है, बल्कि यह समाज के सभी वर्गों के बीच संतुलन स्थापित करने का प्रयास करता है, जिससे समाज में निष्पक्षता और न्याय बना रहे। एक न्यायपूर्ण समाज में सभी लोग समान रूप से विकास के अवसर प्राप्त करते हैं, जिससे समाज में सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक समावेशिता को बढ़ावा मिलता है। सामाजिक न्याय न केवल समाज की प्रगति और विकास के लिए आवश्यक है, बल्कि यह मानवता और नैतिकता के आदर्शों को भी सुदृढ़ करता है, जिससे एक अधिक समावेशी और न्यायसंगत समाज का निर्माण होता है।

अधिकतम कल्याण का सिद्धांत समाज में ऐसे निर्णयों और नीतियों को अपनाने पर बल देता है, जिनसे सबसे अधिक लोगों को लाभ मिले और समग्र सामाजिक कल्याण में वृद्धि हो। यह सिद्धांत उपयोगितावाद के दर्शन पर आधारित है, जिसे मुख्य रूप से जेरेमी बेंथम और जॉन स्टुअर्ट मिल ने विकसित किया था। इस सिद्धांत के अनुसार, कोई भी नीति या कार्य तब नैतिक और उचित माना जाता है, जब वह समाज के अधिकांश लोगों की खुशी और संतुष्टि को अधिकतम करता है। इसका उद्देश्य व्यक्तिगत लाभ की बजाय समाज के व्यापक हित को प्राथमिकता देना है, ताकि संसाधनों का न्यायपूर्ण वितरण हो और समाज के सभी वर्गों को समृद्धि का लाभ मिल सके। अधिकतम कल्याण का सिद्धांत आर्थिक नीतियों, सामाजिक योजनाओं और सरकारी कार्यक्रमों के

निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है, जहाँ यह देखा जाता है कि कोई भी निर्णय समाज के कमजोर और वंचित वर्गों को किस प्रकार प्रभावित करेगा। इस सिद्धांत का मुख्य लक्ष्य समाज में असमानता और गरीबी को कम करना और सभी लोगों के लिए समान अवसर सुनिश्चित करना है। यह सिद्धांत इस विचारधारा को भी प्रोत्साहित करता है कि किसी भी नीति का मूल्यांकन उसके परिणामों के आधार पर किया जाना चाहिए, न कि केवल उसके उद्देश्य या प्रक्रिया के आधार पर। हालाँकि, इस सिद्धांत की आलोचना भी की जाती है क्योंकि यह अल्पसंख्यकों या कमजोर वर्गों के हितों की अनदेखी कर सकता है, यदि उनके लाभ से अधिक व्यापक समाज का लाभ सुनिश्चित हो। इसलिए, इस सिद्धांत को लागू करते समय सामाजिक न्याय, नैतिकता और समानता को ध्यान में रखना आवश्यक है, ताकि समाज के सभी वर्गों का समग्र विकास संभव हो सके। अधिकतम कल्याण का सिद्धांत शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार और सामाजिक सुरक्षा जैसे क्षेत्रों में विशेष रूप से प्रभावी होता है, जहाँ इसका उद्देश्य समाज के सभी वर्गों के जीवन स्तर में सुधार लाना और सामाजिक समरसता को बढ़ावा देना होता है। इस सिद्धांत के माध्यम से सरकारें और संस्थाएँ ऐसी नीतियाँ अपनाती हैं, जो समाज के बहुमत के हित में होती हैं, जिससे समावेशी विकास और सामाजिक कल्याण को बढ़ावा मिलता है।

न्यूनतम जीवन स्तर का सिद्धांत समाज के प्रत्येक व्यक्ति को एक निश्चित स्तर की बुनियादी सुविधाएँ और सेवाएँ उपलब्ध कराने पर बल देता है, जिससे उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके और वे गरिमा के साथ जीवन व्यतीत कर सकें। इस सिद्धांत का मुख्य उद्देश्य गरीबी, भुखमरी और असमानता को कम करना और समाज के कमजोर और वंचित वर्गों को मुख्यधारा में शामिल करना है। यह सिद्धांत मानता है कि प्रत्येक व्यक्ति को भोजन, वस्त्र, आवास, स्वास्थ्य सेवाएँ और शिक्षा जैसी बुनियादी आवश्यकताओं तक पहुँच का अधिकार होना चाहिए, ताकि वे सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक जीवन में समान रूप से भाग ले सकें। न्यूनतम जीवन स्तर का सिद्धांत सरकारों को इस बात के लिए प्रेरित करता है कि वे ऐसी नीतियाँ और योजनाएँ लागू करें जो समाज के सभी वर्गों के जीवन स्तर में सुधार लाएँ और उनके कल्याण को सुनिश्चित करें। इस सिद्धांत के अनुसार, आर्थिक विकास का उद्देश्य केवल उत्पादन और आय बढ़ाना नहीं है, बल्कि समाज के प्रत्येक व्यक्ति के जीवन स्तर में सुधार करना भी है। भारत में इस सिद्धांत को विभिन्न सामाजिक योजनाओं, जैसे-मनरेगा, सार्वजनिक वितरण प्रणाली (PDS), और शिक्षा का अधिकार (RTE) के माध्यम से लागू किया गया है। न्यूनतम जीवन स्तर का सिद्धांत समाज में समानता, समावेशिता और सामाजिक न्याय को बढ़ावा देता है, जिससे एक अधिक समतामूलक और न्यायसंगत समाज का निर्माण होता है।

कराधान और पुनरवितरण का सिद्धांत समाज में आर्थिक असमानता को कम करने और सामाजिक न्याय को बढ़ावा देने के लिए कर संग्रह और उसके न्यायपूर्ण पुनर्वितरण की प्रक्रिया पर आधारित है। यह सिद्धांत मानता है कि करधान केवल सरकार की राजस्व आवश्यकताओं को पूरा करने का साधन नहीं है, बल्कि यह संसाधनों के समान वितरण और समाज के कमजोर वर्गों के उत्थान का महत्वपूर्ण उपकरण भी है। इस सिद्धांत के अनुसार, उच्च आय वर्ग से अधिक कर वसूला जाता है और इन करों का उपयोग गरीबी उन्मूलन, शिक्षा, स्वास्थ्य सेवाएँ और सामाजिक सुरक्षा योजनाओं के लिए किया जाता है, जिससे समाज के सभी वर्गों को समान अवसर मिल सकें। पुनरवितरण की इस प्रक्रिया के माध्यम से सरकारें आर्थिक विकास का लाभ समाज के सभी वर्गों तक पहुँचाने का प्रयास करती हैं, जिससे सामाजिक समरसता और स्थिरता बनी रहे। करधान और पुनरवितरण का सिद्धांत सामाजिक न्याय, समानता और समावेशी विकास को सुनिश्चित करने में सहायक होता है, क्योंकि यह धन के असमान संचय को रोकता है और संसाधनों का बेहतर उपयोग सुनिश्चित करता है। भारत में आयकर, वस्तु एवं सेवा कर (GST) और कॉर्पोरेट कर जैसे विभिन्न कर उपकरणों का उपयोग कर पुनरवितरण की प्रक्रिया को लागू किया जाता है। इस सिद्धांत के माध्यम से सरकारें सार्वजनिक सेवाओं का विस्तार करती हैं और समाज के कमजोर वर्गों के जीवन स्तर में सुधार लाती हैं, जिससे एक संतुलित और न्यायसंगत समाज का निर्माण होता है।

समता और उत्पादकता के संतुलन का सिद्धांत समाज में आर्थिक विकास और सामाजिक न्याय के बीच संतुलन स्थापित करने पर बल देता है। यह सिद्धांत मानता है कि संसाधनों और अवसरों का समान वितरण आवश्यक है, लेकिन साथ ही उत्पादकता और आर्थिक प्रगति को बनाए रखना भी महत्वपूर्ण है। यदि समाज में अत्यधिक समता लागू की जाती है, तो यह नवाचार, उद्यमिता और आर्थिक विकास को बाधित कर सकता है, जबकि केवल उत्पादकता पर ध्यान केंद्रित करने से आय और संसाधनों की असमानता बढ़ सकती है, जिससे सामाजिक असंतोष जन्म ले सकता है। इस सिद्धांत के अनुसार, नीतियों और योजनाओं का उद्देश्य ऐसा वातावरण बनाना चाहिए जहाँ आर्थिक विकास की गति बनी रहे और उसके लाभ समाज के सभी वर्गों तक समान रूप से पहुँचें। सरकारें इस संतुलन को बनाए रखने के लिए प्रगतिशील करधान, सामाजिक सुरक्षा योजनाएँ और शिक्षा व स्वास्थ्य सेवाओं में निवेश करती हैं, ताकि आर्थिक विकास के साथ-साथ समाज के कमजोर वर्गों का भी उत्थान हो सके। यह सिद्धांत दीर्घकालिक आर्थिक स्थिरता और समावेशी विकास को सुनिश्चित करता है, जहाँ न केवल अमीर और सक्षम लोग, बल्कि समाज के सभी वर्ग विकास प्रक्रिया में भागीदार बन सकें। समता और उत्पादकता के संतुलन से समाज में सामाजिक समरसता और आर्थिक प्रगति एक साथ संभव हो पाती है, जिससे एक अधिक न्यायसंगत और समृद्ध समाज का निर्माण होता है।

न्यायसंगत वितरण के लाभ हो सकते हैं: सर्वप्रथम, सामाजिक स्थिरता को एक लाभ के रूप में देखा जा सकता है। जब समाज के सभी वर्गों को आर्थिक संसाधनों में भागीदारी मिलती है, तो सामाजिक तनाव और असंतोष कम होता है। द्वितीय, आर्थिक विकास को भी इसका एक लाभ बताए जा सकता है। जब सभी लोगों को समान अवसर मिलते हैं, तो मानव संसाधनों का पूर्ण उपयोग होता है, जिससे आर्थिक विकास तेज होता है। तृतीय, इस अवधारणा से गरीबी उन्मूलन में भी सहयोग प्राप्त होता है। आय के समान वितरण से गरीब वर्गों की आर्थिक स्थिति में सुधार होता है। चतुर्थ, मानव पूँजी का विकास में भी यह सहायक हो सकता है। शिक्षा और स्वास्थ्य सेवाओं तक सभी की पहुँच बढ़ने से मानव पूँजी का विकास होता है। अन्त में, सामाजिक समरसता की स्थापना में भी इस अवधारणा को महत्वपूर्ण माना जा सकता है। समानता और समावेश के कारण समाज में एकता और भाईचारा बढ़ता है।

न्यायसंगत वितरण की अवधारणा महत्वपूर्ण है, परंतु इसके सामने कई समस्याएँ और चुनौतियाँ भी हैं। सबसे बड़ी समस्या और चुनौती तो आर्थिक असमानता को लेकर है। संपत्ति और आय में व्यापक असमानता न्यायसंगत वितरण में बाधा डालती है। कई बार सरकार की नीतियाँ प्रभावी ढंग से लागू नहीं हो पाती, जिससे न्यायसंगत वितरण संभव नहीं हो पाता। कुछ मामलों में राजनीतिक हस्तक्षेप के कारण संसाधनों का अनुचित वितरण होता है। न्यायसंगत वितरण के लिए शिक्षा और जागरूकता का अभाव एक बड़ी चुनौती है। संसाधनों के अनुचित उपयोग और भ्रष्टाचार के कारण न्यायसंगत वितरण बाधित होता है।

न्याय संगत वितरण के सिद्धांत की समस्याओं और चुनौतियों के समाधान हेतु कई महत्वपूर्ण रणनीतियाँ अपनी जा सकती हैं। प्रगतिशील कर प्रणाली (PROGRESSIVE TAX SYSTEM) को अपनाकर न्यायसंगत वितरण के सिद्धांत की समस्या का समाधान एक सीमा तक किया जा सकता है। इसके लिए यह आवश्यक है कि अमीरों से अधिक कर लिया जाए और गरीबों के कल्याण पर खर्च किया जाए। सार्वजनिक सेवाओं का विस्तार (EXPANSION OF PUBLIC SERVICES) भी एक रणनीति हो सकता है। शिक्षा, स्वास्थ्य और आवास जैसी सार्वजनिक सेवाओं का विस्तार कर सभी को लाभ पहुँचाया जा सकता है। समावेशी विकास (INCLUSIVE DEVELOPMENT) की अवधारणा को भी न्याय संगत वितरण सिद्धांत की समस्या के समाधान में एक रणनीति के रूप में स्वीकार किया जा सकता है। इसके लिए यह आवश्यक है कि आर्थिक विकास की योजनाओं में सभी वर्गों की भागीदारी सुनिश्चित की जाए। यहाँ पर न्यायसंगत शिक्षा प्रणाली (EQUITABLE EDUCATION SYSTEM) को भी एक रणनीति के रूप में स्वीकार किया जा सकता है। शिक्षा में समानता लाकर भविष्य में आर्थिक असमानता को कम किया जा सकता है। न्याय संगत वितरण के सिद्धांत को प्रभावी बनाने के लिए सामाजिक सुरक्षा योजनाएँ (SOCIAL SECURITY SCHEMES) निर्धारण एवं क्रियान्वित की जानी चाहिए। वृद्धावस्था पेंशन, बेरोजगारी भत्ता और सार्वजनिक वितरण प्रणाली जैसी योजनाओं के माध्यम से गरीब वर्गों की सहायता की जा सकती है। यह उल्लेखनीय है कि भारत में न्यायसंगत वितरण की दिशा में कई योजनाएँ चलाई जा रही हैं, जैसे- मनरेगा, प्रधानमंत्री आवास योजना, आयुष्मान भारत योजना आदि। इन योजनाओं का उद्देश्य समाज के आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों को मुख्यधारा में लाना है।

निष्कर्ष:

न्यायसंगत वितरण का सिद्धांत किसी भी समाज की आर्थिक प्रगति और सामाजिक समरसता के लिए आवश्यक है। यह सिद्धांत समाज में समानता, न्याय और कल्याण को बढ़ावा देता है, जिससे देश का समग्र विकास संभव होता है। न्यायसंगत वितरण के माध्यम से ही एक सशक्त और आत्मनिर्भर समाज की स्थापना की जा सकती है। इस सिद्धांत को न केवल लोक कल्याणकारी का लोकतांत्रिक राज्य की सफलता के लिए आवश्यक माना जा सकता है बल्कि समाजवादी व्यवस्था वाले राज्यों के लिए भी इसे आवश्यक माना जा सकता है। सार रूप में, न्याय संगत वितरण का सिद्धांत महत्वपूर्ण एवं प्रासंगिक है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. जॉन रॉल्स, (1971), 'ए थ्योरी ऑफ जस्टिस', हार्वर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, कैम्ब्रिज, मैसाचुसेट्स।
2. रॉबर्ट नॉजिक, (1974), 'एनार्की, स्टेट, एंड यूटोपिया', बेसिक बुक्स, न्यूयॉर्क।
3. अमर्त्य सेन, (2009), 'द आइडिया ऑफ जस्टिस', हार्वर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, कैम्ब्रिज, मैसाचुसेट्स।
4. माइकल सैंडल, (1982), 'लिबरलिज्म एंड द लिमिट्स ऑफ जस्टिस', कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, कैम्ब्रिज।
5. गेराल्ड ए. कोहेन, (1995), 'सेल्फ-ओनरशिप, फ्रीडम, एंड इक्वलिटी', कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, कैम्ब्रिज।
6. रॉनल्ड डवर्किन, (2000), 'सोवरेन वच्यु: द थ्योरी एंड प्रैक्टिस ऑफ इक्वलिटी', हार्वर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, कैम्ब्रिज, मैसाचुसेट्स।
7. डेविड मिलर, (1999), 'प्रिंसिपल्स ऑफ सोशल जस्टिस', हार्वर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, कैम्ब्रिज, मैसाचुसेट्स।
8. नैन्सी फ्रेजर, (1997), 'जस्टिस इंटरप्रिटेड: रिथिंकिंग इक्वलिटी एंड डिफरेंस', वसों, लंदन।
9. थॉमस पोगे, (2002), 'वर्ल्ड पॉवर्टी एंड ह्यूमन राइट्स', पोलिटी प्रेस, कैम्ब्रिज।
10. माइकल वाल्जर, (1983), 'स्पीयर्स ऑफ जस्टिस: ए डिफेंस ऑफ प्लूरलिज्म एंड इक्वलिटी', बेसिक बुक्स, न्यूयॉर्क।
11. ब्रायन बैरी, (1995), 'जस्टिस एज इम्पार्शियलिटी', ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, ऑक्सफोर्ड।
12. सुसान मोलर ओकिन, (1989), 'जस्टिस, जेंडर, एंड द फैमिली', बेसिक बुक्स, न्यूयॉर्क।
13. फ्रैंक कनिंघम, (2002), 'थ्योरीज ऑफ डेमोक्रेसी: ए क्रिटिकल इंट्रोडक्शन', रूटलेज, लंदन।
14. चंद्रकांत लहिरि, (2010), 'डिस्ट्रिब्यूटिव जस्टिस: ए फिलॉसॉफिकल एनालिसिस', ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली।
15. प्रदीप कुमार, (2015), 'सामाजिक न्याय और भारतीय संविधान', सप्रू हाउस पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।

महात्मा गाँधी तथा खादी ग्राम उद्योग विशेषतः बिहार राज्य के संदर्भ में: एक अध्ययन

डॉ० अनिल शर्मा

राजनीति विज्ञान विभाग, डॉ. एल.के.डी.वी.कॉलेज, ताजपुर (समस्तीपुर), ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा (बिहार)

शोध आलेख का सारतत्वः

प्रस्तुत शोध आलेख महात्मा गांधी के विचारों और उनके द्वारा प्रोत्साहित खादी तथा ग्रामोद्योग के महत्व पर केंद्रित है, विशेषकर बिहार राज्य के संदर्भ में। गांधी जी का मानना था कि स्वदेशी आंदोलन और आत्मनिर्भरता भारत के सामाजिक-आर्थिक विकास के लिए आवश्यक हैं। खादी केवल एक वस्त्र नहीं, बल्कि स्वावलंबन और स्वाभिमान का प्रतीक है। यह आलेख बिहार में खादी और ग्रामोद्योग के ऐतिहासिक विकास, उसकी वर्तमान स्थिति और भविष्य की संभावनाओं का गहन विश्लेषण प्रस्तुत करता है। बिहार राज्य में खादी और ग्रामोद्योग ने न केवल ग्रामीण अर्थव्यवस्था को सशक्त किया है, बल्कि रोजगार के अवसर भी प्रदान किए हैं। यह अध्ययन गांधी जी के ग्राम स्वराज और आत्मनिर्भरता के सिद्धांतों के प्रकाश में बिहार में खादी उद्योग के विकास की समीक्षा करता है। आलेख में इस बात पर जोर दिया गया है कि कैसे खादी और ग्रामोद्योग सामाजिक समावेश, गरीबी उन्मूलन और ग्रामीण पुनर्निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। अंत में, यह शोध सुझाव देता है कि बिहार में खादी और ग्रामोद्योग को पुनर्जीवित करने के लिए नवाचार, सरकारी सहयोग और युवाओं की भागीदारी आवश्यक है, जिससे सतत विकास और आर्थिक स्वतंत्रता की दिशा में ठोस कदम उठाए जा सकें।

प्रमुख शब्दावली: सत्य, अहिंसा, सादगी, सदाचार, सरलता, स्वदेशी सामाजिक परिवर्तन, सात्विकता, सत्याग्रह, असहयोग, सविनय अवज्ञा, राजनीतिक आंदोलन, सामाजिक आंदोलन, वर्ग- समन्वय, सौहार्द तथा ग्रामीण विकास आदि।

प्रस्तावना:

वर्तमान मशीनी युग में महात्मा गाँधी पहले व्यक्ति हैं, जिन्होंने ग्रामीण व्यवसायों और घरेलू उद्योग-धन्धों को बड़े पैमाने पर पुनरुज्जीवित करने पर बल दिया। उन्होंने इसे इसलिए शुरू किया था कि किसानों को साल के उन दिनों में भी कुछ काम मिल जाय जब कि उनके खेतों पर कोई काम नहीं होता और वे घर पर खाली बैठे रहते हैं। भारतवर्ष में यह समय साल में चार या पाँच महीने रहता है। पहले जमाने में मशीन नहीं था। कातने, बुनने और अन्य ग्रामीण व्यवसायों में परिवार के प्रत्येक आदमी, यहाँ तक कि छोटे-छोटे बच्चे भी लगे रहते थे। रोजाना के काम के लिये घर पर ही खास मजबूत कपड़ा कात और बुन लिया जाता था। आज स्थिति यह है कि मनुष्य जाति का कम से कम आधा भाग ऐसा है जो इस प्रकार की सामायिक बेकारी से पीड़ित है। इसका एक बड़ा कारण मशीन के कपड़े का बड़ी मात्रा में पैदा होना है, जिसने अपने सस्तेपन के कारण धीरे-धीरे गृह-व्यवसायों और उद्योग-धन्धों को चौपट कर दिया। गाँधीजी पहले व्यक्ति थे जो इस बात में पूर्ण विश्वास रखते थे कि घरेलू धन्धों का पुनरुज्जीवन अब भी सम्भव है और इनमें ग्रामीणों को न सिर्फ शारीरिक, बल्कि नैतिक भूख की पीड़ा से भी बचाया जा सकता है। उन्हें इस दिशा में लाखों हृदय में आशा का संचार करने में कामयाबी भी मिली थी।¹ उनकी प्रतिभा हिन्दुस्तान की चहारदीवारी तक ही सीमित नहीं रही थी। बल्कि चीन में युद्ध के दबाव के कारण किसानों ने स्वयं ही रूई बोना, उसे कातना और बुनना शुरू किया था यह भी बिल्कुल सम्भव है कि कनाडा और उत्तरी ध्रुव प्रदेशों के लम्बे और अन्धे दिनों में इस प्रकार के घरेलू उद्योग-धन्धे फिर चल पड़े थे।²

भारत गाँवों का देश है, यहाँ की बढ़ती हुई बेरोजगारी के कारण जमीन का बटवारा एक जोरदार माँग बन गयी थी। पचास वर्ष पूर्व गाँवों में कुछ ही लोग बिना जमीन के थे। कुछ न कुछ जमीन सबके पास थी। उसी समय से किसानों से जमीन छीनने का काम तेजी से आगे बढ़ रहा था। उस समय बड़े जमींदार शोषण का जो कार्य करने में असमर्थ रहे, उस काम को शहरों में रहनेवाले व्यवसायियों ने अपने नतोपार्जित धन से किया था। इसका नतीजा यह हुआ कि आज गाँवों में भूमिहीन मजदूरों की संख्या अधिक थी। भूमिहीन मजदूर लोग साल के बहुत से महीनों में बेकार रहते थे। इस प्रकार जमींदार और शहरी अमीरों द्वारा किसान की जमीन हड़प ली गयी थी और गाँवों रोजगारी के रास्ते सिकुड़ गये थे। पश्चिम में वस्तुओं के कारण हमारे छोटे उद्योगों का ह्रास होता गया। दूसरे विश्व युद्ध के बाद जब कि हमारे देश में अपनी सरकार कायम हो गयी थी, उस समय हमारे देश में करघा उद्योग को देशी और विदेशी कारखानों के बने उत्पादनों की प्रतियोगिता का सामना करना पड़ा था।³

महात्मा गाँधी औद्योगिकरण के खिलाफ नहीं थे, लेकिन यंत्रोद्योग के बारे में वे चिंतित अवश्य थे।⁴ यंत्र से उत्पादन बड़ी तेजी से होता है और उसके साथ इस प्रकार की अर्थ व्यवस्था आ जाती है जिसके पुरे परिणाम उससे होने वाले लाभ की अपेक्षा अधिक है। देश के करोड़ों बेजुबान लोग स्वस्थ और सुखी हों, आध्यात्मिक दृष्टि से उनका विकास हो इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए अभी तक यंत्रों की आवश्यकता नहीं है। हमारे यहाँ अभी भी बहुत हाथ बेकार हैं। लेकिन जब हमारा बौद्धिक विकास हो जायगा और हमें महसूस होगा कि हमें यंत्रों की आवश्यकता है तब हम अवश्य ग्रहण करेंगे। हमें उद्योग चाहिए

तो इसके लिए हमें उद्यमी बनाना होगा। पहले हम स्वावलम्बी बनें तो हमें दूसरों के नेतृत्व की उतनी आवश्यकता नहीं रहेगी। जब और जैसे हमें आवश्यकता होगी हम यंत्रों को दाखिल करेंगे। हरिजन कोष के लिए और अस्पृश्यता निवारण प्रचार के लिए गाँधीजी जब मालाबम् को यात्रा कर रहे थे, तब देश के बेकारी और गरीबी मिटाने के लिए खादी के सिवाय दूसरे ग्रामोद्योगों को भी संजीवन करने का विचार उनके मन में स्फुरित हुआ उसके लिए चरखा-संघ की तरह राष्ट्रीय काँग्रेसों की छत्रछाया में किन्तु उसकी राजनीति से अलग स्वशासित संस्था स्थापित करने की उन्होंने काँग्रेस को प्रेरणा दी और फलस्वरूप 1934 में हुए बम्बई के काँग्रेस अधिवेशन ने अखिल भारतीय ग्रामोद्योग-संघ स्थापित करने के लिए प्रस्ताव किया। वह प्रस्ताव इस प्रकार था।⁵ “स्वदेशी का काम बढ़ाने का दावा करनेवाली संस्थाएँ सारे देश में काँग्रेसियों की सहायता से और बिना भी पैदा हो गयी हैं। इसलिए और काँग्रेस को ध्येय उसके उत्पत्ति काल से आम लोगों के साथ आत्मीयता बढ़ाते रहना होने का कारण और ग्राम पुनर्रचना तथा नव निर्माण काँग्रेस के रचनात्मक कार्य का एक अंग होने के कारण और ऐसी नवरचना में हाथ-कताई के मुख्य उद्योग के अतिरिक्त मृत अथवा मृतप्राय ग्राम उद्योगों को संजीवन करने का और उत्तेजन देने का समावेश होने के कारण और यह काम हाथ कताई की नवरचना की तरह काँग्रेस की प्रवृत्तियों के अंग के रूप में “अखिल भारतीय ग्रामोद्योग संघ” नामक संघ स्थापित करने का अधिकार दिया गया यह संघ उपरोक्त उद्योगों के पुनरुद्धार और प्रोत्साहन के लिए तथा देहात की नैतिक तथा शारीरिक प्रगति के लिए प्रयास करेगा। उसे अपना विधान बनाने रूपया, जमा करने और अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए जो भी काम करने पड़े वे करने का अधिकार दिया गया।

ग्रामोद्योग संघ की स्थापना होने से पहले ‘किन किन उद्योगों के लिए कहाँ कहाँ सम्भावनाएँ हैं इस बारे में स्थानीय जाँच होने लगी और काम की कुछ शुरुआत भी हुई। दिसम्बर 1933 के प्रथम सप्ताह में वर्धा में गाँधी सेवा संघ के सदस्यों के समक्ष ग्रामोद्योग संघ के बारे में अपने विचार बताते हुए गाँधीजी ने कहा “जिस क्षण नगर निवासी, गाँवों में बनी हुई चीजें काम में लेने का संकल्प करेंगे, उसी क्षण ग्रामवासियों और शहरवालों के बीच का टूटा हुआ सम्बंध फिर से जुड़ जायगा मृत अथवा मृतप्राय ग्रामोद्योगों में से किनको संजीवन किया जा सकता है, इस बारे में हम गाँवों में जाकर जाँच करें, सूची बनायें, वर्गीकरण करें। इसके बिना विश्वास पूर्वक कुछ नहीं किया जा सकता। परन्तु मैंने सबसे महत्व की दो चीजें हाथ में ली हैं खाने के पदार्थ और पहनने की चीजें।”

अक्टूबर, 1934 में बम्बई में इण्डियन नेशनल काँग्रेस का वार्षिक अधिवेशन हुआ जिससे काँग्रेस ने गाँधीजी के द्वारा काँग्रेस से अलग रह कर देश की सेवा करने की प्रस्ताव मंजूर कर लिया। तथा गाँधी जी के नेतृत्व में “अखिल भारतीय ग्रामोद्योग संघ की स्थापना की गई। यह संघ काँग्रेस के राजनीतिक क्रिया कलाप से सर्वथा मुक्त था और इसे ग्रामोद्योग को पुनरुज्जीवित कर उन्हें बढ़ाने का काम सौंपा गया था। इसके साथ ही इस संघ को गाँवों के नैतिक और भौतिक जीवन को भी समृद्ध करना था। गाँधी जी ने काँग्रेस से अलग हो कर अपने कार्यों को तथा काँग्रेस की नीतियों में परिवर्तन ला दिया तथा 1934 के बंबई अधिवेशन ने गाँधी जी के इन प्रस्तावों को पास कर अपनी सहमति को मुहर लगा दी। वर्ष 1915 में जब गाँधी जी दक्षिण अफ्रीका से भारत लौटे, तभी से उन्होंने गाँवों के उत्थान के लिए अपने विचारों को व्यक्त करना शुरू कर दिया था।⁶ गाँवों में जमीन का बंटवारा ठीक नहीं था जिससे कुछ लोगों के पास ज्यादा जमीन थी और ज्यादा लोग भूमिहीन थे। इसके अलावा अंग्रेजी शासन ने गाँवों के उद्योग धन्धों को नष्ट कर दिया था जैसे कपड़े का उद्योग, चमड़े का उद्योग, चीनी का उद्योग आदि। इससे गाँव के कुछ लोग साल भर बेकार रहते थे और खेतिहार मजदूरों की तरह काम करते थे और कुछ लोग छः महीने बेकार रहते थे। जमीन्दारी प्रथा साहूकारी प्रथा और खर्चीले रीति रिवाजों ने गाँवों के लोगों को निर्धन बना दिया था। इसीलिए गाँधी जी ने चर्खे को गाँवों की मुक्ति का बहुत बड़ा साधन घोषित किया था और 1923 से ही वे अपना ध्यान खादी के विकास पर लगाये हुए थे। वर्ष 1923 में आंध्रप्रदेश में काकीनाड़ा में काँग्रेस का अधिवेशन हुआ था और यहीं पर “ऑल इण्डिया खदर बोर्ड” की स्थापना की गई थी और सेठ जमनालाल बजाज को इस बोर्ड का अध्यक्ष बनाया गया था। जमना लाल जो ने पूरी लगन के साथ पूरे देश में खादी के प्रचार का काम शुरू कर दिया। वर्ष 1930 के बाद गाँधी जी ने गाँवों के आर्थिक जीवन के पुन निर्माण के बारे में सोचना शुरू किया। उन्होंने 1933 से जो हरिजनोंद्वारा के लिए देश के विभिन्न भागों की यात्रा की, उससे उनको यह विश्वास हो गया कि ब्रिटिश शासन के बाद ही गाँवों की दशा दयनीय हो गई और हरिजन और भी गरीब होते गये। इसीलिए उन्होंने ग्रामोद्योग पर जोर देना शुरू किया और उन्होंने स्वदेशी चीजों के इस्तेमाल पर जोर देना प्रारम्भ किया। 1930 के बाद गाँधी जी ने इस बात पर जोर दिया कि देश में जिन चीजों का इस्तेमाल हो, वे न केवल भारत में बनाई हुई हों, बल्कि वे भारत के गाँवों में बनाई हुई। उन्होंने शहरों में रहने वालों से अपील की कि वे प्रतिदिन जिन वस्तुओं का इस्तेमाल करें, उन्हें वे देख लें कि वे गाँवों में बनी हैं या नहीं जैसे वे गाँव में हाथ से कटे हुए चावल का इस्तेमाल करें, चीनी की जगह पर गुड़ का इस्तेमाल करें और मिलों में बने हुए कागज के स्थान पर गाँवों में बने हुए कागज का इस्तेमाल करें। गाँधी जी ने लिखा था कि “शहर वालों के लिए गाँव अच्छूत बन गये। शहर वाले न गाँव में रहना चाहते हैं और न गाँव की जिन्दगी से परिचित हैं।⁷ अगर वे गाँव में रहते भी हैं तो वे शहर की जिन्दगी चाहते हैं। लेकिन 30 करोड़ आदमियों के लिए शहरों में रहना सम्भव नहीं है।” गाँधी जी की दृष्टि में गाँवों की आर्थिक एवं सामाजिक पुनर्निर्माण आवश्यक है। ब्रिटिश शासन में शहरों द्वारा गाँवों का शोषण एक प्रकार की हिंसा है। गाँवों के उद्योग-धन्धों को फिर से जिलाना, कुपोषण को दूर करना, शिक्षा और सफाई की सुविधा को सुधारना आवश्यक है। इसलिए इन्होंने स्वयंसेवकों और स्वयंसेवी संस्थाओं से गाँवों की सेवा करने का आह्वान किया। गाँवों की सेवा करने के उद्देश्य से ही वर्धा के पास सेवाग्राम में उन्होंने रहना शुरू किया। इस गाँव की आबादी 600 थी। यहाँ पर न एक भी पक्की सड़क थी, न एक भी दूकान थी न एक भी डाक घर था। यहाँ पर जमनालाल बजाज ने जमीन खरीद कर एक कमरा बनवा दिया और उनके सहयोगियों के लिए भी झोपड़ियाँ बनवा दी। धीरे-धीरे सेवाग्राम आश्रम के रूप में विकसित होता गया, और गाँधी जी के शिष्य उनके साथ रहने लगे। इन शिष्यों में प्रोफेसर भंसाली, मौरिस फ्रायडमैन जो पोलैण्ड के रहने वाले थे, प्रमुख थे। फ्रायडमैन ने गाँधी जी के कुटीर उद्योग और अहिंसा पर पूर्ण आस्था रख कर काम करना शुरू किया। महादेव देसाई ने अपनी डायरी में लिखा है “सभी आश्रमवासी गाँव वालों की सेवा में लगे रहते थे।”¹⁰ शीघ्र ही सेवाग्राम 1937 से गाँधी जी की ग्रामविकास योजना को क्रियान्वित करने का केन्द्र बन गया। सेवाग्राम के आसपास गाँवों के आर्थिक और सामाजिक उत्थान के लिए कई संस्थाएँ काम करने लगीं जैसे-भगनवाड़ी में ऑल इण्डिया ग्राम उद्योग संस्था काम करने लगी। इस संस्था के संचालन में बहुत अधिक पूँजी नहीं लगी थी और इसमें गाँवों के लोग ही काम करते थे। इस संस्था ने ग्रामसेवकों को प्रशिक्षित करने के लिए विद्यालय की स्थापना की और ग्रामोद्योग पत्रिका नामक एक मासिक पत्रिका भी निकालना शुरू किया। सेठ जमनालाल बजाज ने वर्धा में 4 फरवरी, 1941 को ऑल इण्डिया-गो-सेवा- संघ की स्थापना की और जमनालाल जी इसके प्रथम अध्यक्ष बने। सेवाग्राम में ही गाँधी जी ने अपनी बुनियादी तालीम के विचारों को क्रियान्वित करने के लिए हिन्दुस्तानी तालीमी संघ की स्थापना की।¹¹

गाँधी जी ने गाँवों के लोगों में कुपोषण दूर करने के लिए कई प्रकार के प्रयोग किये और उन्होंने भारतीय वैज्ञानिकों से गाँव वालों की भोजन संबंधी आवश्यकताओं एवं कमियों पर शोध कार्य करने का अनुरोध किया, क्योंकि उनके विचार में गाँवों के लोग संतुलित भोजन नहीं करते हैं। वे लोग हरी सब्जियों का उपयोग कम करते हैं तथा अधिक अनाज खाते हैं। काँग्रेस के कार्यक्रम में गाँवों के महत्व को बढ़ाने के लिए ही गाँधी जी ने 1936 में काँग्रेस का अधिवेशन फैजपुर नामक गाँव में कराया। इस अधिवेशन के अध्यक्ष जवाहरलाल नेहरू थे। गाँधी जी का कहना था कि फैजपुर अधिवेशन से शहरों के लोग गाँवों में आ गये हैं। इस अधिवेशन में गाँव के लोगों द्वारा बनाई गई चीजों की प्रदर्शनी भी लगाई गई।¹²

महात्मा गाँधी ने अपनी स्वराज्य की कल्पना में स्त्रियों के उत्थान, हरिजनों के उत्थान, और गाँवों के उत्थान को बराबर महत्व दिया। इसलिए उनके रचनात्मक कार्यक्रम में खादी ग्रामोद्योग, बुनियादी तालीम, स्त्रियों की दशा में सुधार, स्वास्थ्य और सफाई की शिक्षा, भारतीय भाषाओं का उत्थान, राष्ट्र भाषा का उत्थान तथा किसानों मजदूरों आदिवासियों एवं अन्य दलित बगों के उत्थान को स्थान दिया गया था। सी०एफ० एंडज जो महात्मा गाँधी के मित्र एवं सहकर्मी थे, उन्होंने महात्मा गाँधी की विचारधारा पर लिखा “मैंने भारत में और विदेशों में हिन्दुस्तानियों के बीच काम करते हुए पाया है कि गाँधी जी के कार्यक्रम को मुख्य बातें पाँच हैं और वे एक हाथ की पाँच उँगलियों की तरह हैं और ये सभी कार्यक्रम अहिंसा के द्वारा किये जा सकते हैं।¹³

1. हिन्दु-मुस्लिम एकता,
2. अछूतोंद्वारा,
3. मादक द्रव्यों का निषेध
4. स्वाधीनता आन्दोलन में स्त्रियों का अधिक योगदान।
5. ग्रामोद्योगों, सूत कातने एवं कपड़े बुनने के लिए पूरा प्रोत्साहन।

गाँधी जी ने स्वराज्य के लिए ऊपर लिखे हुए पाँचों तत्वों को आवश्यक बताया और उन्हें अपने रचनात्मक कार्यक्रम में अत्यन्त महत्वपूर्ण बतलाया। उनको दृष्टि में गाँवों के जीवन में जबतक सुधार नहीं होता है, तबतक स्वराज्य नहीं मिलसकता। गाँधी जी ने इन उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए गाँवों में अपने शिष्यों को भेजा कि वे लोग गाँवों के निवासियों को स्वास्थ्य, सफाई, संतुलित भोजन गाँव की सफाई, घरोंकी सफाई, सूत कातना, कपड़े बुनना और अन्य कारीगरी को सिखलावें। गाँधी जी ने अपने कार्यकर्ताओं को ये सिखलाया कि वे गाँव वालों में स्वावलंबन की भावना पैदा करें जिसमें हमारे गाँव जो कूड़े का ढेर माने जाते हैं आदर्श गाँव बन सकें। गाँधी जी ने 18 मई 1925 को अपने पत्र इण्डिया में लिखा था “सभी काँग्रेस जनों को गाँवों में जाकर गाँवों के लोगों की सेवा करनी चाहिए। उन्हें बपने को जनता का सेवक समझना चाहिए। मुझे जिससे भी बातचीत होती है वे सभी इस बात से सहमत हैं कि गाँवों में जाकर सेवा कार्य करना आवश्यक है, लेकिन कुछलोग ही गाँवों में जाकर वास्तव में सेवा कार्य करते हैं। जो लोग गाँवों जा कर सेवा कार्य करते हैं, वे लोग चरखे के द्वारा ही सेवा कार्य करते हैं। हमारे देश में गाँवों की संख्या सात लाख है, लेकिन हमारे पास सात सौ भी स्वयं सेवक नहीं हैं, जो गाँवों में जाकर सच्ची सेवा कर सकें।”¹⁴

महात्मा गाँधी ने इस बात पर जोर दिया था कि काँग्रेस कार्यकर्ताओं को गाँव में जा कर गाँव वालों के अन्धविश्वास, उनका संकुचित दृष्टि कोण और उनके परम्परावादी विचारों को बदलना चाहिए। इसके लिए सबसे अच्छा तरीका यही है कि काँग्रेस कार्यकर्ता गाँवों में जा कर रहें और गाँव के लोगों के दुःख सुख के भागी बन कर उनमें शिक्षा का प्रसार करें और उनको सही ढंग से रहने का तरीका सिखायें, गाँव के लोगों को शुद्ध हवा अपने घरों में ले जाने का प्रयास सिखलायें, उनको हरी सब्जियाँ दूध इत्यादि का प्रयोग सिखलायें गाँव के लोग हरी सब्जियों का प्रयोग कम करते हैं, वे विटामिन से परिचित नहीं हैं, इसलिए काँग्रेस कार्यकर्ताओं को ये सब बातें सिखलानी चाहिए।” गाँवों की सफाई के बारे में भी गाँधी जी गाँव वालों को सिखलाना चाहते थे जिससे वे अपने पोख्रो और कुओं को साफ रख सकें। इसलिए उन्हें भगियों की तरह सफाई का काम करना होगा। धीरे-धीरे गाँव वाले भी उनका साथ देने लगेंगे। इससे गाँव वाले बहुत सी बीमारियों से मुक्त हो जायेंगे। अतः रचनात्मक कार्यक्रम का उद्देश्य गाँवों के सामाजिक और आर्थिक जीवन को मजबूत करना है। जबतक देश को आजादी नहीं मिलती है, तब तक गाँवों के जीवन में पूरा सुधार करना सम्भव नहीं है। फिर भी इस दिशा में निस्स्वार्थ सेवा के द्वारा परिवर्तन लाया जा सकता है। गाँधी की विचारधारा में गाँवों का पुनरुत्थान आवश्यक था इसलिए वे गाँवों में स्वास्थ्य, सफाई, संतुलित भोजन, शिक्षा और पंचायती राज्य को जरूरी समझते थे, गाँधीजी की दृष्टि में गाँवों के विकास वक बिना भारत का विकास नहीं हो सकता। इसके लिए स्वराज्य को प्राप्ति जरूरी है क्योंकि वे मानते थे की स्वराज्य प्राप्ति के बाद गाँवों में पूर्ण रूप से सुधार हो सकता है।¹⁵ वे मानते थे स्वराज्य के द्वारा गाँवों का जीवन समृद्ध होगा और गाँवों के सुखी होने से स्वराज्य सार्थक होगा।

महात्मा गाँधी की ही प्रेरणा से भारत के प्रथम प्रधान मंत्री जवाहर लाल नेहरू ने आजादी के बाद गाँवों के जीवन को सुखी बनाने के लिए कई कार्यक्रम लागू किये। नेहरू जी द्वारा सामुदायिक विकास-योजना गाँधी जी की चिन्तन-धारा का ही परिणाम थी। खादी ग्रामोद्योग का कार्यक्षेत्र बहुत व्यापक क्षेत्र में, दूर-दूर जंगल, पहाड़, नदी, घाटियों की अटूट श्रृंखला के बीच बिहार प्रान्त के 12 जिलों में फैला हुआ है। जिसमें 21 सबडिविजन 153 प्रखण्ड और लगभग 2 करोड़ की जनसंख्या है। प्रान्त और राष्ट्र के अनेकानेक बड़े उद्योग, कल-कारखाने और खनिज खदानों से पटा हुआ यह क्षेत्र मानवीय विषमता का अदभुत उदाहरण है। अपार धन लक्ष्मी से भरापूरा, किन्तु अपना गरीबी में संसार के सबसे गरीब क्षेत्र में से एक अनेक ऐसे गाँव और व्यक्ति-समूह हैं जहाँ अनेकानिक सरकारी गैर-सरकारी चेष्टाओं के बाद भी वर्तमान युग की सुख-सुविधा, शिक्षा, स्वास्थ्य, आवास एवं जीवन यापन के अन्य साधनों का वहाँ तक नहीं पहुँचाया जा सका है। बस ये बीहड़ बन और जंगल-पहाड़ ही उनकी जीविका हैं और जीवन भी। विभिन्न धर्मों, जातियों, जन-जातियों, आर्य, अनार्य, सुर, असुर, आदिवासी जैसे हो, संथाल, मुण्डा, बीरहोर, खड़िया, उराँव, कोल आदि मानव समूह यहाँ की धरती में ऐसे एकाकार हो गये हैं जिसे महामनव समुन्द्र ही कहा जा सकता है। कभी यह क्षेत्र अनेक छोटे बड़े क्षत्रिय और आदिवासी राजाओं क अधीन टुकड़े-टुकड़े में विभक्त रहा और बार-बार विदेशी आक्रांताओं तथा मुगल साम्राज्य से रौंदा जाता रहा।

वर्ष 1920-21 तक पूज्य बापू भारतीय जन-गण के नवोदित आशाकिरण बनकर परतंत्र भारत के क्षितिज पर छा गये थे। देश में एक नयी उमंग तरंग हिलोरें ले रही थी। क्रांत-दर्शी गाँधी ने राष्ट्र की पराधीनता का मर्म समझ लिया था “जब तक देश के हर हाथ में काम का, उत्पादन का और रोजी-रोटी का साधन नहीं होगा देश में सच्चा स्वराज्य नहीं आयागा।” और बस, उन्हें चखें का दर्शन मिल गया। जिस देश के लोगों के जीवन-यापन के आवश्यक सामान विदेश से आते हों भला उसकी दरिद्रता, पराधीनता को कौन मिटा सकता है। नहीं हमें घर-घर में चखें और दूसरे ग्रामीण उद्योगों का दाखिल करना होगा ताकि राष्ट्र क बेकार और हताश को दू किया जाय। जब तक नागरिक आत्मनिर्भर, स्वावलम्बी और स्वतंत्र नहीं तब तक राष्ट्र भी स्वतंत्र और आत्मनिर्भर कैसे हो सकता है ? देश को मात्र राजनैतिक स्वतंत्रता नहीं आर्थिक स्वावलम्बन चाहिए और बापू के इसी चिंतन के परिणामस्वरूप राष्ट्रीय काँग्रेस के कार्यक्रम में खादी का समावेश अनिवार्य माना गया। इस प्रकार खादी कार्य का प्रारंभ माना गया। खादी-कार्य का प्रारंभ तो 1921 में हो गया मगर उसका विधिवत कार्यारम्भ हुआ 1925 में, राष्ट्रीय काँग्रेस के पटना अधिवेशन में। जब अखिल भारतीय चर्खा संघ की विधिवत स्थापना हुई। चर्खा संघ की बिहार-शाखा के प्रतिनिधि देशरत्न राजेन्द्र बाबू नियुक्त हुए और मंत्री स्वयं लक्ष्मी बाबू। इस प्रकार 1925 से 1942 तक चर्खा संघ की देख रेख में बिहार में खादी-कार्य का प्रसार-प्रचार राष्ट्रीय स्वतंत्रता आन्दोलन के साथ-साथ चलता रहा। किन्तु सन् 1942 की महान क्रांति में खादी कार्य का ब्रिटिश दमन चक्र की चक्की में पिसना पड़ा और थोड़े समय में ही सब कुछ बिखरा-बिखरा सा हो गया। सम्पति नष्ट हुई कार्यकर्ता बंदी बने। दमन की आग ठंडी हुई तो बापू का चिंतन प्रकट हुआ। “जैसे खेती गाँव-गाँव होती है, रोटी घर-घर से बनती है वैसे ही अगर खादी भी घर-घर में बने, गाँव-गाँव में फैल जाय तो कोई भी शक्ति इसे नष्ट नहीं कर सकती। बापू के चिंतन के इसी सपने को लेकर सन् 1947 में बिहार में खादी-कार्य का पुनर्गठन “बिहार खादी समिति के नाम से और ग्रामोद्योग के कार्य का गठन ग्रामोद्योग समिति के नाम से हुआ जो 1955 में संयुक्त रूप से काम करने लगी और इसका नया नामाकरण “बिहार खादी ग्रामोद्योग संघ” हुआ।

बिहार खादी समिति और ग्रामोद्योग समिति के सम्मिलन के पश्चात् बिहार खादी ग्रामोद्योग संघ का, जो आज देश की एक प्रमुख रचनात्मक संस्था है, जन्म हुआ। अक्टूबर, 1955 को इसका विधिवत् शासकीय निबन्धन भी पूरा हुआ। इस प्रकार खादी ग्रामोद्योग के विकास की सम्मिलित जिम्मेदारी के उत्तरदायित्व का पालन करना इसका लक्ष्य बना। संघ के प्रथम अध्यक्ष स्वर्गीय लक्ष्मीनारायण और मंत्री श्री ध्वजा प्रसाद साहु निर्वाचित हुए। बिहार खादी ग्रामोद्योग संघ की अपनी ऐतिहासिक परम्परा रही है। देश के स्वराज्य आन्दोलन की एक-एक कड़ी इसके साथ अविभाज्य रूप से जुड़ी हुई है और इसकी प्रगति तथा विकास के पीछे, विश्ववन्द्य बापू का दिया हुआ जीवन दर्शन और उनकी कठिन तपस्या का प्राणवन्त संकेत है जो शोषण-रहित स्वावलम्बी समाज के निर्माण की ओर आज भी रचनात्मक संस्थाओं को प्रेरित करता है।”

बिहार सरकार ने सन् 1955 में “बिहार राज्य खादी ग्रामोद्योग बोर्ड” का निर्माण कर पटने में एक खादी भवन खोला और तत्कालीन मुख्य मंत्री स्वर्गीय डा० श्री कृष्ण सिंह के अनुरोध पर संघ ने एक वर्ष के लिए खादी ग्रामोद्योगों को इस बड़ी दूकान जिसमें हस्त शिल्प की सारी वस्तुएँ एक हो जगह मिल सके (बिहार की राजधानी पटना में) चलाने का उत्तरदायित्व लिया। संघ के अनुभवी कार्यकर्ताओं द्वारा इसकी तैयारी की गयी और 1 फरवरी, 1956 को बिहार के तत्कालीन मुख्य मंत्री स्वर्गीय डा० श्री कृष्ण सिंह जी के द्वारा उसका उद्घाटन सम्पन्न हुआ। इसमें सन्देह नहीं कि संघनी के कार्यकर्ताओं और अधिकारियों (श्री तारकेश्वर प्रसाद, संचालक, श्री रघुवंशनारायण सिंह, सहायक व्यवस्थापक और श्री रामवरण सिंह, लेखापाल थे) ने बड़ी कुशलता से एक वर्ष तक बिहार राज्य खादी ग्रामोद्योग भवन का संचालन कर अपने अनुभवों का परिचय दिया। बाद में सन् 1957 में खादी भवन को व्यवस्था और संचालन की जिम्मेवारी नवगठित बिहार राज्य खादी ग्रामोद्योग बोर्ड को संघ ने सौंप दी। इस कार्य से खादी ग्रामोद्योगों के प्रसार और प्रचार का प्रान्त में एक नया केन्द्र और खादी ग्रामोद्योगों की बढ़ती हुई लोकप्रियता का एक नया मानदण्ड निर्मित हुआ। अब तो इस प्रकार की दूकानें राज्य सरकार जमशेदपुर, भागलपुर और मुजफ्फरपुर में भी चलाती है।

बिहार खादी ग्रामोद्योग संघ की ओर से 1955 से 1971 तक उल्लेखनीय काम हुआ। संघ ने इस क्षेत्र के शहर-शहर और अनेक प्रमुख गाँव एवं कस्बे में अपने खादी ग्रामोद्योग केन्द्रों की स्थापना की। अनेक स्थानों पर जमीन लेकर इस काम के लिए व्यापक पैमाने पर भवन बनाये। चखें कमें अम्बर-चखें, मधुमक्खी-पालन, तेलधानी, साबुन निर्माण, चर्मोद्योग आदि कार्यों का छोटे-बड़े पैमाने पर विस्तार किया। अनेक कार्यों के शिक्षण-प्रशिक्षण की व्यवस्था की। सर्वोदय और भूदान, ग्रामदान आदि विभिन्न सर्वोदय और रचनात्मक कार्यों के साथ-साथ गाँधी विचार का काम चला। विनोबा के पद यात्रा से क्षेत्र-क्षेत्र में नये उत्साह का वातावरण बना नव जागरण आया। अब यह आवश्यक माना जाने लगा कि छोटानागपुर एवं इसके समीपस्थ अन्य जिलों को जोड़ कर एक ऐसा क्षेत्र बनाया जाय जिसमें सघन रूप से खादी और ग्रामोद्योग के कामों का संबंधन हो। उसके लिए आवश्यक साधनों की आपूर्ति और दिशा-निर्देश के लिए कार्यालय इसी क्षेत्र में स्थापित किया जाय।

बिहार खादी ग्रामोद्योग संघ जिसके द्वारा सम्पूर्ण बिहार में खादी का काम चलता था उसने बापू के द्वारा निर्देशित विकेन्द्रीकरण के विचार के अनुरूप सन् 1958 में ही तय किया कि जिस प्रखंड, जिला या क्षेत्र के कार्यकर्ता एवं नागरिक अपनी स्वतंत्र संस्था बनाकर काम को आगे बढ़ाना चाहेंगे संघ उनको अपना सारा उस क्षेत्र की चल-अचल सम्पति सहित कार्य उन्हें सौंप देगा। तदनुसार 9 फरवरी 1972 को छोटानागपुर खादी ग्रामोद्योग संस्थान, तोरली राँची की इस निर्बंधित संस्थान को संघ ने यहाँ के कार्य का दायित्व सौंप दिया।

बिहार सरकार के अधिनियम के द्वारा बोर्ड का गठन हुआ है। पूर्व में ग्रामोद्योग काम के लिए बोर्ड से सहायता प्राप्त होती थी सम्प्रति ग्रामोद्योग कार्य के लिए भी खादी ग्रामोद्योग आयोग से ही संबंध जुड़ा हुआ है। बिहार सरकार गाँधी जयन्ती के अवसर पर खादी बिक्री पर हर साल रिबेट देती रही है लेकिन पैसे का भुगतान समय पर नहीं होता जिससे संस्था संकट से ग्रस्त रहती है। बिहार सरकार के जिम्मे रिबेट का वर्ष 1991 तक एक करोड़ पाँच लाख रूपया बाकी है। इतनी बड़ी रकम फंसी रहने के कारण संस्था कैसे अपने काम को विकसित कर सकती है यह विचारणीय प्रश्न है।

1972 ई० में बिहार खादी ग्रामोद्योग संघ ने राष्ट्रपिता गाँधी जी की विकेन्द्रीकरण नीति के आधार पर अपने काम-काज की जिम्मेवारी प्रमंडल, जिला, अनुमंडल, प्रखंड और क्षेत्र के आधार पर संस्थाओं का गठन कर सौंप दिया। इसी क्रम में छोटानागपुर खादी ग्रामोद्योग संस्थान को इस क्षेत्र के कामकाज की जिम्मेवारी सौंप दी। यह विकेन्द्रित संस्था फुले फले इसके विकास में बाधा न हो इस दृष्टि से कार्य में नकद, खादी, रूई, सूत, चर्खा, आदि माल-असबाव

भी इसे दिया। बिहार खादी ग्रामोद्योग संघ से 50 लाख 64 हजार 410 रूपया 10 पैसे की पूजी भी इसे मिली जिससे यहाँ का काम प्रारंभ हुआ। वर्ष 1991 में बिहार खादी ग्रामोद्योग संस्था-संघ (कदमकुआँ, पटना) का गठन हुआ है। संस्था-संघ का काम मुख्य रूप से अपने सम्बद्ध संस्थाओं को राज्य सरकार, केन्द्र सरकार, खादी कमीशन, खादी-बोर्ड आदि के द्वारा अर्थ उपलब्ध कराना और इनकी समस्याओं के समाधान में योगदान देना है, साथ ही सम्बद्ध संस्थाओं के लिए बाहर से माल उपलब्ध कराना और इसके माल के लिए बाजार उपलब्ध कराना भी है।

वर्ष 1990 के बाद बिहार में खादी और ग्रामोद्योग क्षेत्र ने कई उतार-चढ़ाव देखे। इस दौर में आर्थिक उदारीकरण और निजीकरण के कारण पारंपरिक उद्योगों पर दबाव बढ़ा, जिससे खादी उद्योग प्रभावित हुआ। ग्रामीण अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाला यह क्षेत्र आधुनिक वस्त्र उद्योगों के बढ़ते प्रभाव और तकनीकी विकास की धीमी गति के कारण पिछड़ने लगा। बिहार में खादी ग्रामोद्योग की स्थिति धीरे-धीरे कमजोर होती गई। पारंपरिक बुनकरों और कारीगरों के लिए प्रतिस्पर्धा बढ़ गई, जिससे उनके उत्पादों की मांग घटी। कुशल कारीगरों का पलायन और युवाओं में इस क्षेत्र के प्रति घटती रुचि ने खादी उद्योग को नुकसान पहुंचाया। उत्पादन प्रक्रिया में तकनीकी नवाचार की कमी और विपणन के अभाव ने भी उद्योग की स्थिति को प्रभावित किया। बिहार सरकार ने खादी और ग्रामोद्योग को पुनर्जीवित करने के लिए कई महत्वपूर्ण कदम उठाए। सरकार ने खादी ग्रामोद्योग बोर्ड को सशक्त बनाने के लिए आर्थिक सहायता और प्रबंधन सुधार पर ध्यान केंद्रित किया। राज्य में स्वरोजगार बढ़ाने और ग्रामीण क्षेत्रों में उद्योग को मजबूत करने के उद्देश्य से विभिन्न योजनाएं लागू की गईं। प्रधानमंत्री रोजगार सृजन कार्यक्रम (PMEGP) और मुख्यमंत्री स्वरोजगार योजना जैसी योजनाओं के तहत ग्रामीण उद्यमियों को आर्थिक सहायता और सब्सिडी दी गई। इन योजनाओं का उद्देश्य खादी उत्पादकों को वित्तीय सहयोग प्रदान करना और उन्हें आत्मनिर्भर बनाना था। इसके अलावा, सरकार ने विभिन्न प्रशिक्षण शिविरों का आयोजन किया, जिसमें युवा कारीगरों को खादी उत्पादन और विपणन के आधुनिक तरीकों की शिक्षा दी गई। बिहार सरकार ने खादी उत्पादों की बिक्री बढ़ाने के लिए सरकारी विभागों में खादी वस्त्रों की अनिवार्य खरीद को बढ़ावा दिया। इसके साथ ही खादी और ग्रामोद्योग उत्पादों की प्रदर्शनियों और मेलों का आयोजन किया गया, ताकि खादी उत्पादों को बाजार में स्थान मिल सके। डिजिटल माध्यमों का उपयोग कर खादी उत्पादों की ऑनलाइन बिक्री को भी प्रोत्साहित किया गया, जिससे उपभोक्ताओं तक सीधा संपर्क स्थापित हो सका। इन प्रयासों के बावजूद चुनौतियां बनी हुई हैं। खादी उद्योग को प्रतिस्पर्धा के इस दौर में टिके रहने के लिए निरंतर नवाचार और बेहतर विपणन की आवश्यकता है। सरकार की सक्रिय भागीदारी और ग्रामीण उद्यमियों के सहयोग से यह क्षेत्र फिर से उभर सकता है और ग्रामीण अर्थव्यवस्था को सशक्त बना सकता है।

निष्कर्ष:

महात्मा गांधी ने खादी को भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का प्रतीक और आत्मनिर्भरता का माध्यम बनाया। उनके विचारों में खादी केवल एक वस्त्र नहीं, बल्कि स्वदेशी आंदोलन और ग्रामीण विकास का प्रतीक थी। बिहार में खादी उद्योग ने गांधीवादी आदर्शों को अपनाते हुए न केवल आर्थिक विकास बल्कि सामाजिक उत्थान में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। बिहार में खादी ग्रामोद्योग ने ग्रामीण अर्थव्यवस्था को मजबूती दी और स्वरोजगार के अवसर प्रदान किए। यह क्षेत्र विशेष रूप से महिला उद्यमिता और कमजोर वर्गों के लिए एक स्थायी आजीविका का माध्यम बना। 1990 के बाद खादी उद्योग को कई चुनौतियों का सामना करना पड़ा, लेकिन बिहार सरकार ने इसे पुनर्जीवित करने के लिए ठोस कदम उठाए। सरकारी योजनाओं, प्रशिक्षण कार्यक्रमों और विपणन अभियानों के माध्यम से खादी उद्योग को आधुनिक बाजार में प्रतिस्पर्धा करने के लिए सक्षम बनाया गया। डिजिटल माध्यमों और मेलों के आयोजन से खादी उत्पादों को नई पहचान मिली। इस प्रकार, बिहार में खादी उद्योग गांधीवादी दर्शन और राज्य सरकार के प्रयासों के संयुक्त प्रभाव से ग्रामीण विकास और आर्थिक आत्मनिर्भरता का मजबूत आधार बना है।

संदर्भ:

1. पत्तू राम, गाँधी बनाम राजनीति (एक अध्ययन) (लखनऊ: प्रकाशक: सर्वोदय साहित्य संसद पृ० 51-52 और सर्वपल्ली राधाकृष्णन, गाँधी अभिनन्दन ग्रंथ पृ० 54 (सत्य साहित्य प्रकाशन 1955)
2. वही -पृष्ठ-52
3. वही पृष्ठ-52-53
4. यंग इण्डिया, 25 जुलाई 1929
5. शंकर लाल बैंकर, गाँधी जी और राष्ट्रीय प्रवृत्तियाँ, (सर्व सेवा संघ प्रकाशन, राजघाट वाराणसी) पृ० 446
6. वहीं, पृ० 447
7. वही, पृ० 447
8. वही, पृ० 449
9. हरिभाऊ उपाध्याय- बापू कथा (वाराणसी प्रकाशन-सर्व सेवा संघ) पृ० 159
10. वही, पृ० 159-160
11. वही, पृ० 160-61
12. यू०एस०राव, माइण्ड ऑफ महात्मा गाँधी, पृ० 12
13. हरिजन, 2 नवम्बर, 1934
14. वहीं, नवम्बर 1934
15. जे०सी० कुमाररप्पा, गाँव आन्दोलन क्यों पृ० 160 (वाराणसी: संव-सेवा संघ, 1986)

महात्मा गाँधी और महिलाओं का उत्थान: एक ऐतिहासिक अध्ययन

डॉ० आशीष कुमार ठाकुर

एम.ए. (इतिहास), पीएच-डी.(तिलका मांझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर, बिहार)

महात्मा गाँधी का महिलाओं के उत्थान में योगदान भारतीय समाज में एक ऐतिहासिक बदलाव का प्रतीक है। गांधीजी का मानना था कि महिलाओं को समाज में समान अधिकार और सम्मान मिलना चाहिए, क्योंकि वे राष्ट्र निर्माण में पुरुषों के समान भूमिका निभा सकती हैं। उनके नेतृत्व में स्वतंत्रता संग्राम के दौरान महिलाओं की भागीदारी ने सामाजिक परिवर्तन की नींव रखी। गांधीजी ने महिलाओं को सत्याग्रह, खादी आंदोलन और असहयोग आंदोलन में भाग लेने के लिए प्रेरित किया, जिससे वे पहली बार बड़े पैमाने पर सार्वजनिक जीवन में सक्रिय हुईं। कस्तूरबा गांधी, सरोजिनी नायडू, अरुणा आसफ अली और अन्य महिलाओं ने उनके नेतृत्व में स्वतंत्रता संग्राम में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। गांधीजी का दृष्टिकोण था कि महिलाओं का उत्थान केवल शिक्षा और राजनीतिक भागीदारी तक सीमित नहीं होना चाहिए, बल्कि उनके आर्थिक, सामाजिक और मानसिक विकास की ओर भी ध्यान दिया जाना चाहिए। उन्होंने बाल विवाह, दहेज प्रथा और पर्दा प्रथा जैसी सामाजिक कुरीतियों के खिलाफ आवाज उठाई। यह अध्ययन गांधीजी के विचारों और आंदोलनों के माध्यम से महिलाओं के उत्थान की प्रक्रिया का विश्लेषण करता है और यह दर्शाता है कि कैसे गांधीजी के प्रयासों ने भारतीय समाज में लैंगिक समानता की दिशा में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

प्रमुख शब्दावली: सत्य, अहिंसा, नैतिकता, सात्विकता, सत्याग्रह, समानता, स्वतंत्रता, लैंगिक न्याय, लैंगिक समानता, शांतिपूर्ण परिवर्तन, असहयोग, सविनय अवज्ञा आदि।

प्रस्तावना:

नवीन आर्थिक पर्यावरण के उद्भव, नई राजनीतिक व्यवस्था की स्थापना, आधुनिक पाश्चात्य शिक्षा पद्धति और चिंतन शैलियों के प्रसार आदि के फलस्वरूप भारत में साधारण राष्ट्रीय और प्रजातांत्रिक जागरण हुआ उसी को एक अभिव्यक्ति यह भी थी कि जिस मध्ययुगीन सामाजिक अधीनस्थता और प्रपीड़न से भारतीय नारी सदियों से त्रस्त थी, उससे उसकी मुक्ति के आंदोलन शुरू हुए।

प्राक्-ब्रिटिश भारत में, संभवतः वैदिक युग के शुरू के काल को छोड़कर, हरदम नारी पुरुष की अधीनता में रहती आई थी। धर्म और विधि वचित थीं। स्त्री और पुरुष के निजी और सामाजिक आचरण की अच्छाई-बुराई के मानदंड भिन्न थे। प्रागैतिहासिक कबोलाई समाज को छोड़कर सभी प्राचीन और मध्ययुगीन समाजों की तरह भारत में भी, अंग्रेजों की विजय के पूर्व, स्त्री पुरुषों के अधीन थी। अंग्रेजों के आगमन पर जब भारत में नए अर्थतंत्र और नई विधि व्यवस्था की स्थापना हुई और जब भारत पश्चिम के देशों को आधुनिक प्रजातांत्रिक विचार शैली के संपर्क में आया, तो स्थिति अवश्य कुछ बदली।

अतीत में भी बौद्ध धर्म जैसे सुधार के आन्दोलनों ने स्त्री की स्थिति में सुधार लाने के कुछ प्रयास किये थे। लेकिन स्त्री के प्रति सदियों से जो सामाजिक और कानूनी अन्याय होते रहे थे उनके निवारण के लिए जोरदार आंदोलन अंग्रेजी शासन काल में हो चल सके। यह सही है कि भारतीय इतिहास में, गार्गी, चाँदबोबी, नूरजहाँ, रजिया बेगम, झाँसी की रानी, मीराबाई, और अहिल्याबाई जैसी औरतें हो चुकी हैं, जिन्होंने साहित्य, कला, दर्शन, प्रशासन और यहाँ तक कि रणकौशल के क्षेत्र में भी बड़े चमत्कार किए। लेकिन ये औरतें समाज की शासक, अधिकार प्राप्त श्रेणियों की उपज थीं, और इसलिए सामाजिक आधीनस्थता की उस स्थिति से मुक्त थीं, जिसमें अधिकांश भारतीय औरतें रहती थी और जहाँ उन्हें आत्मभिव्यक्ति के लिए न तो स्वतंत्रता थी और न उपयुक्त अवसर। अंग्रेजों की भारत विजय ने भारत का सम्पूर्ण सामाजिक परिवेश बदल दिया। इससे ऐसे वस्तुनिष्ठ एवं भावनिष्ठ तथ्यों का जन्म हुआ जिन्होंने लोगों में प्रजातांत्रिक भावनाओं का उदय कराया। सामाजिक अस्तित्व की स्थिति में जो समाज सुधार आन्दोलन उद्भूत हुए, उनका एक लक्ष्य यह था कि भारतीय नारी जिन सामाजिक और न्यायिक विषमताओं एवं अनीतियों की शिकार है, उन्हें दूर किया जाए।

प्राक् ब्रिटिश भारतीय नारी की दासता उन दिनों की सामाजिक, आर्थिक संरचना में निहित थी। उस वक्त समाज में व्यक्ति की स्थिति उसके जन्म द्वारा निर्धारित होती थी, और नारी की सारी अशक्तता का मूल यह था कि उसका जन्म ही नारी के रूप में हुआ था। धार्मिक विधान स्त्रियों की निकृष्ट स्थिति को पवित्र भी बना रहे थे।

भारत में अंग्रेजों ने पूँजीवादी अर्थव्यवस्था और नई सामाजिक बैधानिक संरचना कायम की, वह व्यक्ति की समानता और स्वतंत्रता पर आधारित थीं। इनमें जन्म, यानी जाति, संप्रदायमूलक विषमताओं के लिए जगह नहीं थी। जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में इन सिद्धान्तों की मान्यता के लिए संघर्ष करने पड़े। अंग्रेजी सरकार की झिझक और समाज के पोंगापथियों के प्रतिक्रियात्मक प्रतिरोध को कुछ हद तक खत्म करने के बाद ही नागरिक अधिकारों के क्षेत्र में स्त्री-पुरुष को अधिकाधिक बराबरी का दर्जा दे सकने वाले कानून बन सके। स्त्रियों को दबाकर रखने वाले कानूनों और रीतिरिवाजों को खत्म करने के प्रारंभिक प्रयास

पुरुष जाति के ही प्रबुद्ध सदस्यों ने किए। लेकिन जो इन अनीतियों की शिकार थीं, वे भी कालक्रम से स्वयं उदबुद्ध हुईं और उन्होंने अपने नेतृत्व में अपनी मुक्ति के आन्दोलन चलाए। उन्होंने अपने संगठन बनाए और अपनी आवश्यकताओं के विरुद्ध संघर्ष के लिए मोर्चा बंदी की। उनके सामाजिक राजनीतिक और शैक्षिक उत्थान के लिए काम करने वाले संगठनों में 1927 में स्थापित “आल, इंडिया वीमंस कांफ्रेंस” सबसे आगे था।¹¹

भारतीय औरतों की अशक्तता का उन्मूलन और विभिन्न प्रकारों के उत्पीड़न से मुक्ति की प्रक्रिया काफी लंबी थी। पुराणपंथी भारत और पुरानी सामाजिक और मनोवैज्ञानिक विचारधाराएँ इसके विरुद्ध थीं। फिर भी, इस दिशा में लगातार प्रगति होती रही और अनेक विशिष्ट सफलताएँ भी प्राप्त हुईं। एक जमाने में भारतीय नारी सती और बालहत्या जैसी बर्बर, क्रूर प्रथाओं की शिकार थी। पति के मरने पर विधवा को पति की लाश के साथ चिता पर मरना होता था। गरीब माँ-बाप के लिए लड़की की शादी काफी महंगी थी, इसलिए माँ-बाप प्रायः बच्चियों की हत्या कर देते थे। सती प्रथा के उन्मूलन के बाद भी विधवाओं को पुनः विवाह की सुविधा नहीं मिली। पर्दा-प्रथा और मंदिरों में वेश्यावृत्ति जैसी बुराइयाँ भी प्रचलित थीं। मुसलमानों में ही नहीं, हिन्दुओं के कुछ वर्गों में भी पर्दा जैसी घातक और हानिकारक प्रथा प्रचलित थी। औरतें मानों जिन्दगी भर के लिए कैद में डल दी गई हों। उसकी स्वभावतः तीव्र ज्ञानेन्द्रियाँ निष्क्रियता के कारण सुस्त पड़ जाती हैं, उन तक ज्ञान का प्रकाश नहीं पहुँच पाता, और वे अज्ञान एवं पूर्वाग्रह में पड़ी रहती हैं, अंधरे में रास्ता टटोलतीं, समाज के रीति रिवाज के नाम पर उत्सर्ग।¹²

प्रचारात्मक कार्य द्वारा राजा राम मोहन राय जैसे समाजसुधारकों ने सती प्रथा को समाप्त करने का प्रयास किया और अंत में लार्ड बेटिक ने इसे समाप्त कर दिया। बाद में बालहत्या को भी अपराध करार दिया गया। लोगों में शिक्षा एवं उदारवादी और बुद्धिवादी विचारों के प्रसारण से पर्दा-प्रथा भी मिटने लगी। भोपाल की बेगमों जैसी उच्चकुलीन औरतों ने इस दिशा में मार्गप्रदर्शन किया। औरतों के आन्दोलनों में इस बात पर जोर दिया गया कि पर्दा का सामाजिक प्रगति एवं शरीर और मन पर बुरा प्रभाव पड़ता है। सामाजिक जीवन के उत्थान में अगर औरतों को अपनी भूमिका अदा करनी है, अगर उनके लिए यह जानना जरूरी है कि किन कर्तव्यों एवं उत्तरदायित्वों के लिए उनके लड़कों को प्रशिक्षित होना है, तो पर्दा प्रथा को खतम होनी चाहिए।¹³

बाल विवाह भी हिन्दू समाज की एक प्रमुख बुराई थी और इससे पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों को अधिक नुकसान था। ईश्वरचंद्र विद्यासागर के फलस्वरूप 1856 का विडो रिमैरेज ऐक्ट एल०एस०एस० ओमेली द्वारा उद्धृत विधवा-विवाह कानून, पास हुआ। जिसके अनुसार विवाहित और अविवाहित लड़कियों के लिए सहमति की उम्र बढ़ाकर दस वर्ष कर दी गयी। भारतीय सुधारकों के प्रयत्न से 1872 में नेटिव ऐक्ट पास हुआ जिसमें विवाह के लिए लड़कियों की सहमति को आवश्यक बताया गया।¹⁴

बंगाल में ईश्वरचंद्र विद्यासागर तथा बंबई में श्री भालावारी, जस्टिस रानाडे और के० नटराज जैसे समाज सुधारकों ने विधवा विवाह के अधिकार का जमकर समर्थन किया। समाज सुधार के सभी संगठनों ने अपने कार्यक्रम में विधवा के विवाह को प्रमुख स्थान दिया, लेकिन यह आन्दोलन बहुत प्रगति नहीं कर सका क्योंकि जनमत बुरी तरह विधवा विवाह के विरुद्ध था। कानूनी रूकावटों के समाप्त के हो जाने पर भी, पुरानी चिंतन शैली में अंतर नहीं आया। मंदिरों में वेश्यावृत्ति की प्रथा भारत के कुछ भागों में देवदासी प्रथा के रूप में प्रथा प्रचलित थी।¹⁵

डॉ० मुथुलक्ष्मी रेड्डी और अन्य सुधारकों के सतत् प्रयत्न फलस्वरूप 1925 में एक ऐक्ट पारित हुआ और दंड संहिता की कुछ धाराएँ जिनके अनुसार नाबालिग लड़कियों का अवैध अनैतिक व्यापार दंडनीय है, देवदासियों पर भी लागू हुई।¹⁶ कुछ अपवादों को छोड़कर प्राक् ब्रिटिश भारत में स्त्रियों को प्रायः शिक्षा नहीं मिलती थी। मध्ययुगीन विचार प्रणाली में स्त्रियों को केवल गृहकार्य की जिम्मेदारी दी गई थी। लड़कों के लिए गाँवों और शहरों में स्कूल होते थे, लेकिन स्त्रियों के लिए कहीं शिक्षा का प्रबंध नहीं था। पुराने समाज के विनाश और नये समाज के उद्य के साथ ही भारत में एक नए जीवन दर्शन का जन्म हुआ। इच्छा स्वातंत्र्यवादी सिद्धान्तों ने तेजी से सत्तावादी सिद्धान्तों का स्थान ग्रहण किया। इन सिद्धान्तों के अनुसार लिंग, जाति, प्रजाति, धर्म आदि विभेदों के बावजूद हर व्यक्ति के समान अधिकार थे और सबको एक ही स्वतंत्रता मिलनी चाहिए। ब्रिटिश शासन के डेढ़ सौ वर्षों में इन प्रजातांत्रिक सिद्धान्तों के नाम पर स्वराज्य की माँग की गई, जातिगत विषमता के उन्मूलन की बात की गई, वंशानुगत पुरीहितों के एकाधिकार पर आधात किए गए, और आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक एवं शैक्षिक क्षेत्रों में स्त्री-पुरुष के सामानाधिकार की घोषणा की गई।

सामाजिक अस्तित्व के प्रत्येक क्षेत्र में प्रजातांत्रिक सिद्धान्तों की गैर प्रजातांत्रिक विरासत पर भी चोट की। उन्होंने जातिजन्म नियम और निषेध के अधीन व्यक्ति की लाचार स्थिति, और पुरुषों के प्राप्त अधिकार से स्त्री को वंचित रखने की प्रथा का विरोध किया। यह प्रायः सबने स्वीकार किया कि स्त्री की शिक्षा और संस्कृति के समान अधिकार हैं। स्त्रियों में तेजी से शिक्षा का प्रसार हुआ। लड़कियों की शिक्षा के प्रति जो रूढ़िगत विरोध था, वह खतम होने लगा। एक समय था जब भारत में स्त्री शिक्षा के समर्थक तो नहीं थे, अलबत्ता उसके विरोधी और शत्रु थे। अब तक स्त्री जाति कई मंजिलों से गुजर चुकी है, पूरी उदासीनता उपहास, आलोचना और स्वीकृति। अब आसानी से कहा जा सकता है कि भारत में सर्वदा स्त्रियों की शिक्षा को भी उतना ही आवश्यक समझा जा रहा है जितना लड़कों की शिक्षा को, इसे राष्ट्रीय प्रगति की आवश्यक शर्त माना जा रहा है।¹⁷

ब्रह्म समाज, आर्य समाज, रामकृष्ण मिशन आदि सुधार संगठनों, डैनिश, अमरीकी, जर्मनी और ब्रिटिश मिशनरी संस्थाओं और अल्पसंख्यक परन्तु प्रगतिशील पारसी संप्रदाय ने स्त्री शिक्षा की दिशा में पथ प्रदर्शन का काम किया। प्रो० कार्वे के द्वारा 1916 में स्थापित इंडियन वीमंस यूनिवर्सिटी ने स्त्रियों को शिक्षा प्रदान करने के सिलसिले में बड़ा काम किया।¹⁸

मुसलमानों में स्त्री शिक्षा का प्रसार काफी सुस्त था यद्यपि पिछली ही सदी के अंत में सर सैयद अहमद खाँ और अन्य नेताओं ने इसकी खुलकर हिमायत करनी शुरू की थी। फिर भी इस दिशा में लगातार तरक्की होती रही। स्त्री शिक्षा में लगातार होती हुई प्रगति का इसी बात से अंदाज हो जाता है कि 1917 में स्कूल जानेवाली लड़कियाँ की संख्या 1,230,000 थी और 1937 में यह संख्या बढ़कर 2,890,000 हो गई।¹⁹ भारतीय आबादी के अधिकांश जनता बहुत गरीब थे, और स्त्री शिक्षा के तीव्र विकास के रास्ते में यह तथ्य एक बहुत बड़ा अवरोध था। गरीबी के कारण भारतीय जनता के कर्मकार वर्ग, किसान और मजदूर, स्त्री शिक्षा की जो भी सुविधाएँ प्राप्त थी उनका फायदा नहीं उठा सके। वे इसका खर्च नहीं उठा सकते थे, इसलिए शिक्षा उन तक नहीं पहुँच सकी। भारतीय राष्ट्रवादियों के अनुसार भारतीय जनता की गरीबी का कारण यह था कि जिस तरह की आर्थिक प्रगति से उनका आर्थिक स्तर ऊँचा होता, उस तरह

की प्रगति के रास्ते में विदेशी शासन बाधक था। भारतीय जनता में शिक्षा के सार्वजनिक विकास का प्रश्न उनकी राजनीतिक स्वतंत्रता प्रगति के प्रश्न से जुड़ा हुआ था।

राजनीति में स्त्रियों का तीव्र प्रवेश, खासकर 1919 के बाद, भारतीय इतिहास की अत्यंत आश्चर्यजनक घटना है। प्राक् ब्रिटिश भारत में सुलताना रजिया बेगम, चाँद बोबी, नूरजहाँ, अहल्याबाई होलकर, जैसी कुछ अभिजातवर्गीय स्त्रियों के अतिरिक्त अन्य स्त्रियों ने राजनीति में भाग नहीं लिया। ब्रिटिश शासन काल में स्थिति बदली। उन्हें तो मताधिकार मिला था, सीमित ही सही, उसका उन्होंने जोशखरोश के साथ इस्तेमाल किया, साथ ही उन्होंने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस द्वारा चलाए गए जन आन्दोलनों में भी भाग लिया। महात्मा गाँधी और कांग्रेस राष्ट्रीय प्रयास के लिए उनका आह्वान कर रहे थे, और उन्होंने देखा कि इस भविष्यद्रष्टा गाँधी और ब्रिटिश सरकार की सर्वोपरि सत्ता ने उनके हाथों में एक कारगर हथियार दे रखा है। एक हाथ से उन्होंने निष्क्रिय विरोध (सत्याग्रह) का हथियार और दूसरे हाथ से मतदान का अधिकार ग्रहण किया।¹⁰ जब 1936 में कांग्रेस की सरकारें बनी तो कुछ महिलाओं ने मंत्री, अवर सचिव और प्रांतिय विधायिका सभाओं के उपाध्यक्ष के रूप में काम किया। भारतीय महिलाएँ लोकल बोर्ड और म्युनिसिपैलिटी की सदस्या भी हुईं। इस तरह भारतीय महिलाओं में जागरण की एक नई लहर आई। यह सही है कि अतिशय दरिद्रता के कारण नागरिक जीवन में प्रवेश और शिक्षा के अवसर उच्च और मध्यवर्गीय महिलाओं को ही सुलभ थे। फिर भी, ऐसा व्यापक स्त्री जागरण प्राक् ब्रिटिश भारत में देखने में नहीं आता। निचले तबकों की स्त्रियाँ भी, अशिक्षा और दारिद्र्य के बावजूद अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हो रही थीं, हजारों की संख्या में किसान और मजदूर औरतों ने हड़ताल, प्रदर्शन और कान्फ्रेंसों में भाग लिया। उनमें राजनीतिक चेतना का भी विकास हो रहा था और वे राष्ट्रीय राजनीतिक संगठनों में शामिल हुईं। वे मजदूर संगठनों और किसान सभाओं में भी भर्ती हुईं जिनका लक्ष्य था न केवल स्वतंत्र भारत वरन् स्वतंत्र समाजवादी भारत। भारतीय महिलाओं का यह जागरण उनमें राष्ट्रीय और व्यक्तिगत स्वातंत्र्य के लिए राष्ट्रीय भावना और प्रजातांत्रिक उद्देश्यों के विकास का परिचायक था तथा इसमें महात्मा गाँधी का योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण था।¹¹

बम्बई की महिला कल्याण संस्था भगिनी समाज का वार्षिक सम्मेलन 20 फरवरी, 1918 में गाँधी जी की अध्यक्षता में हुआ था। उस समय वह संस्था बहुत कुछ भाई करसन दास के उत्साह से चल रही थी। गाँधी जी ने इस समय कहा था, “मैं उस समय को आया देखना चाहता हूँ कि जब आप बहनों में से कोई भाई चितलिया का स्थान ग्रहण कर लेंगी जब वह इस संस्था से हटकर अन्य कार्यों के लिए मुक्त हो सकेंगी। जिसने स्त्री सेवा को ही अपना धर्म मान निलया है वह तो इस दिशा में दूसरा कार्य भी ढूँढ़ लेंगे, किन्तु इस संस्था का सच्चा स्वरूप, तो तभी प्रकट होगा जब यह संस्था अपने अधिकारियों का चुनाव स्त्री वर्ग में से करेगी और जब उसका कार्य जितना अच्छा इस समय है उससे भी अधिक अच्छा होगा। मैं स्त्रियों और पुरुषों दोनों के निकट सम्पर्क में रहता हूँ। और यह बात मेरी समझ में आ गयी है कि स्त्रियों की सेवा के कार्य में जबतक स्त्रियाँ न आयें तब तक मैं उस कार्य को नहीं चला सकता।” गाँधी जी ने पुनः कहा, “जब तक भारत में स्त्रियाँ तनिक भी दबी रहेंगी अथवा उन्हें पुरुषों की अपेक्षा कम अधिकार प्राप्त होंगे, तबतक भारत का सच्चा उद्धार न होगा। इसीलिए यदि यह संस्था इस प्रकार से अपने उद्देश्य को पूरा कर सकेगी तो उससे भारत के गौरव में वृद्धि होगी।”¹²

भारत में सर्वत्र यात्रा करते समय गाँधी जी ने देखा था कि इस सम्बन्ध में जो आन्दोलन चल रहा था वह अनन्त आकाश में एक छोटी सी बदली की तरह बहुत थोड़े लोगों तक ही सीमित था। करोड़ों लोगों को इस आन्दोलन का कोई ध्यान नहीं था। पिचासी प्रतिशत लोग इन गतिविधियों से अलिप्त रहकर जीवन बिता रहे थे। गाँधी जी ने कहा कि यदि भगिनी समाज की बहनें इन पिचासी प्रतिशत लोगों के जीवन का भली-भाँति अध्ययन करें तो, वे समाज के कार्यक्रम को रूप रेखा बहुत अच्छी तरह से बना सकेंगी। अबतक कानून निर्माण का कार्य प्रायः पुरुषों के हाथों में रहा है और पुरुषों ने सदा विवेक का उपयोग नहीं किया है। स्मृतिकारों ने स्त्रियों के संबंध में जो कुछ लिखा है, उसका सर्वथा समर्थन नहीं किया जा सकता। इनके बचन ही बाल-विवाह और विधवाओं पर लगाये गये नियंत्रण आदि के मूल में हैं।”¹³

महात्मा गाँधी के विचार से भगिनी समाज मुख्यतः सीता, दमयन्ती और द्रौपदी जैसी पवित्र, अत्यंत दृढ़ संकल्प और संयमी नारियो उत्पन्न करेगा। उस युग में जिन हिन्दुओं ने उनकी पूजा की थी वे आज इन आधुनिक सती-साधिवियों की भी करेंगे। हिन्दू उनके वचनों को शास्त्र वचनों के समान प्रमाण मानकर ग्रहण कर लेंगे। स्मृति आदि शास्त्रों में जो आक्षेप हैं उन्हें विस्मृत कर देंगे। हिन्दू धर्म में ऐसे परिवर्तन सदा ही होते आये हैं और होते रहेंगे। इसीलिए तो यह धर्म अन्त तक जीवित है और भविष्य में भी जीवित रहेगा। गाँधी जी कि ईश्वर से प्रार्थना थी कि यह संस्था शीघ्र ही ऐसी नारियों को उत्पन्न करे।¹⁴ गाँधी जी ने अपने देश की नारियों की अवनति के उन कारणों पर विचार किया जिनकों साधन बनाकर उनकी उन्नति की जा सकती है। परन्तु इस ध्येय को साध सकने वाली स्त्रियाँ तो इनी-गिनी ही हो सकेंगी। उन्होंने सामान्य स्त्रियों के लिए कर्तव्य निश्चित किया। प्रथम कार्य था यथा संभव अधिक से अधिक स्त्रियों को उनकी दुरवस्था का ज्ञान कराया जाय। यह कार्य सामान्य शिक्षा के बिना सम्पन्न नहीं हो सकता। यदि ऐसा माना जाय तो इस कार्य की सिद्धि के लिए लम्बा समय चाहिए। उन्हें उनकी दुरवस्था का ज्ञान अभी सामान्य शिक्षा की प्रतीक्षा किये बिना ही कराया जा सकता है। गाँधी जी बिहार के एक जिला की उच्च कुलों की बहुत सी बहनें से मिले। वे सभी पर्दा नशीन थी। उनलोगों ने गाँधी जी के सम्मुख आकर, जैसे बहन भाई से पर्दा नहीं करती, वैसे ही पर्दा हटा दिया। ये बहने पढ़ी लिखी नहीं थी। उनसे मिलने से पहले एक अंग्रेज बहन उनसे मिलकर गई थी। हिन्दू बहनों से मिलने के लिए गाँधी जी को कमरे में जाना पड़ा। गाँधी जी ने उनसे विनोद में कहा कि चलों, हम सब यहीं चलकर बैठे जहाँ सब पुरुष बैठे हैं। उनलोगों ने उत्साहपूर्वक कहा कि “हम तो इसमें बहुत प्रसन्न हैं, किन्तु हमारी प्रथा के अनुसार हमें अनुमति दी जानी चाहिए। हमें यह पर्दा तनिक भी नहीं रूपता, इसे आप हटवा दें।”¹⁵ जैसे पुरुष अपने क्षेत्र में सर्वोपरि है वैसे ही स्त्रियाँ भी अपनी क्षेत्र में सर्वोपरि हैं। यह स्थिति स्वाभाविक होनी चाहिए।¹⁶ गाँधी जी ने अपने विचार शिक्षा प्रणाली के सम्बन्ध में भी दिये। पढ़ने लिखने से बुद्धि विकसित होती है, तीव्र होती है एवं परोपकार करने को क्षमता बहुत बढ़ जाती है। वे समय-समय पर यह बताते रहते थे कि पुरुषों का स्त्रियों से उनके स्वाभाविक मानवीय अधिकार छौन लेने अथवा उन्हें प्रदान न करने का कारण स्त्रियों में विद्या का अभाव नहीं होना चाहिए, किन्तु निश्चय ही इन स्वाभाविक अधिकारों को कायम रखने उनमें बुद्धि करने के लिए विद्या की आवश्यकता है विद्या के बिना लाखों लोगों को तो शुद्ध आत्म ज्ञान भी प्राप्त नहीं हो सकता। विद्या के बिना मनुष्य पशुवत हैं, यह अतिशयोक्ति नहीं यथार्थ है। इसलिए पुरुषों की भांति स्त्रियों के लिए भी शिक्षा प्राप्त करना आवश्यक है। स्त्री और पुरुष का दर्जा समान है। दोनों की जोड़ी अपूर्व है, दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। दम्पति की वाहय प्रवृत्ति में

पुरुष होता है। इसलिए वाहय प्रवृत्ति का विशेष ज्ञान उसके लिए आवश्यक है। आन्तरिक प्रवृत्ति में स्त्री प्रमुख होती है। इसलिए गृह व्यवस्था और बालकों को शिक्षा-दीक्षा आदि विषयों का विशेष ज्ञान उसके लिए आवश्यक है। गाँधी जी का यह ख्याल नहीं था कि किसी के लिए कोई विशेष ज्ञान प्राप्त करने का निषेध रहे, बल्कि यह कि शिक्षा क्रम इन मुद्दों को ध्यान में रखकर तैयार किया जाय ताकि दोनों ही वर्गों को अपने-अपने क्षेत्रों में पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने का अवसर मिले।¹⁷

शिक्षा प्राप्ति के उपरान्त स्त्रियों के व्यक्तित्व का विकास होना शुरू हो जायगा। वे उचित अनुचित के सम्बंध में अपनी बहुमूल्य राय अपने परिवार को, समाज को तथा राष्ट्र को देने में समर्थ होंगी। वे अपने ऊपर हो रहे अत्याचारों के विरुद्ध आवाज बुलंद कर सकती हैं। इस पुरुष-प्रधान-समाज में पुरुषों द्वारा अपनी उपेक्षा की ओर समाज देश का ध्यान केन्द्रित कर सकती हैं। अपने स्वाभाविक अधिकार को प्राप्त कर समाज को एक नया रूप दे सकती हैं। उनके व्यक्तित्व के विकास में ही समाज तथा राष्ट्र का विकास निहित है। बालिका यदि शिक्षित है तो वह अपने ऊपर अनुचित सामाजिक दबाव को बर्दाश्त नहीं करेगी। यदि माँ अशिक्षित है, तो वह अपनी बालिकाओं को उचित समय तक शिक्षा दिलाने में सहयोग नहीं कर पाती। जो पुरुष बालिका के साथ विवाह करता है वह परोपकार भावना से नहीं बल्कि बहुत कुछ वासना के वशीभूत होकर करता है इन बालिकाओं की रक्षा कौन करे? इसका उत्तर कठिन किन्तु एक ही है। पुरुष के अतिरिक्त इनका सांसारिक रक्षक कोई अन्य नहीं है बालिका से विवाह करने वाले पुरुष को, उसकी पत्नी ही समझा सके, यह लगभग असंभव है। इसलिए यह अति सुधार कार्य समझदार पुरुष को करना है। गाँधी जी का कहना था कि यदि इनमें इतनी शक्ति हो तो, वे इन बालिका वधुओं की एक सूची बनावें, उनके पतियों के मित्रों को खोजें और उनके मार्फत एवं जो भी अन्य धर्मानुकूल एवं विनययुक्त कदम उन्हें सूझे, उन्हें उठाकर ऐसे पतियों को वे संदेश भेजें- आपने अज्ञानवश एक बालिका से विवाह करने का पाप किया है। जब तक इस बालिका की अवस्था परिपक्व नहीं हो जाती और जबतक यह शिक्षा प्राप्त नहीं कर लेती तबतक आप शुद्ध ब्रह्मचर्य का पालन करके इसे स्वयं शिक्षा देकर अथवा अन्य किसी के मार्फत शिक्षा दिलाकर संतान उत्पन्न करने और उसका पालन-पोषण करने योग्य नहीं बना लेते, तबतक आप इस पाप से मुक्त नहीं हो सकेंगे।¹⁸ गाँधी जी का आदेश था कि भगिनी समाज यह निश्चित करे कि वे कौन-से कार्य अपने हाथ में लेंगी। उनका यह कार्य क्षेत्र इतना विस्तृत है कि यदि संकल्प पूर्वक कार्य किया जाय तो बड़ा आन्दोलन इसके सम्मुख कुछ भी न रहें एवं स्वराज्य शब्द का उच्चारण किये बिना ही उस दिशा में बहुत बड़ी सेवा हो जायगी। जब छापाखाने नहीं थे और भाषण की सुविधा भी कम थी, जब चौबीस घंटे में एक हजार मील के बजाय लोग केवल 24 मील की ही यात्रा कर सकते थे, तब अपने विचारों के प्रचार का एक ही मुख्य साधन होता था। वह था हमारा कर्म, और उसका प्रभाव बहुत होता था। अब हम वायु के वेग से दौड़ रहे हैं और लेख लिख रहे हैं। उसके बावजूद हम अपने विचारों पर अमल करवाने में लगभग असमर्थ रहे हैं। हर ओर से निराश की ध्वनि सुनाई देती है। गाँधी जी का विचार था कि आज भी पहले की भाँति अपने कर्म से लोगों को इतना प्रभावित कर सकते हैं जितना अपने भाषणों और लेखों से कभी नहीं कर सकते। इस समाज से गाँधी जी की यही प्रार्थना दी कि वह ऐसे मौन कर्म को ही प्रधानता दे।¹⁹ गाँधी जी ने कुछ बहनों के पास संदेश भेजा कि शिक्षित वर्ग की स्त्रियों को अपनी अशिक्षित बहनों के लिए क्या करना चाहिए शिक्षित महिलाएँ अभी इस काम के पर्याप्त मात्रा में करती नजर नहीं आती। इसमें उनका दोष नहीं, उनको मिली शिक्षा का दोष है। इसलिए शिक्षित स्त्रियों का पहला कार्य ऐसे प्रयत्न करने हैं जिससे उनकी बहनें इस दोष का शिकार न हों। गाँधी जी की इच्छा थी कि शिक्षित बहनें इस प्रश्न को अपना मानकर तथा जिन्हें कुछ अनुभव है, वे बहनें भी, अपना सर्वस्व समर्पित करके इस विषय पर भारत वर्ष को जागृत करे और सही दिशा का ज्ञान कराये। शिक्षित स्त्रियाँ अशिक्षितों के साथ सम्पर्क स्थापित नहीं करती और प्रायः ऐसे सम्पर्क को बढ़ावा नहीं देती। इस रोग का उपचार करना चाहिए। शिक्षित स्त्रियों को अपने सहज कर्तव्य का ज्ञान कराने की आवश्यकता है। इन दोषों से पुरुष वर्ग भी मुक्त नहीं है, लेकिन स्त्रियों को पुरुषों के पीछे-पीछे चलने की जरूरत नहीं। स्त्रियों में नवीन भावनाओं के सृजन की तथा उनका व्यवहार में लाने की जो शक्ति विद्यमान हैं वह पुरुषों में नहीं है। पुरुष अपेक्षाकृत अविचारी, उतावला और सदैव नवीनता की खोज में लगा रहनेवाला होता है। स्त्री गम्भीर, धैर्यवान और अधिकतर पुरानी वस्तुओं से चिपककर रहनेवाली होती है। इसलिए उसे जबभी कोई नयी वस्तु सूझ पड़ती है तो उसकी उत्पत्ति स्त्री के हृदय कमल से होती है। इस प्रकार उद्भूत हुई वस्तु के प्रति उसकी अचल श्रद्धा होती है और इस कारण उसका प्रचार जल्दी हो सकता है अलएव गाँधी जी की यह मान्यता थी कि यदि शिक्षित स्त्रियाँ पुरुषों की नकल करना छोड़ दें और स्त्रियों सम्बंधी महान प्रश्नों पर स्वतन्त्र रूप से विचार करें तो हम अनेक उलझनों को आसानी से सुलझा सकते हैं।²⁰

महात्मा गाँधी ने विधवाओं की समस्या पर भी अपने विचार व्यक्त किया ष्विधवा अपनी इच्छानुसार पुनर्विवाह करें, इसके बजाय स्त्रियाँ विधुर पुरुष से स्वयं अथवा अपनी लड़की का पाणिग्रहण संस्कार न करने तथा पालने में झुलने लायक बाल-वर को अपनी बेटी देकर उसकी आहुति न देने को दृढ़ निश्चय करें। गाँधी जी को पूरा विश्वास था कि भारत के लिए इसका परिणाम मधुर होगा। छोटी-बड़ी सैंकड़ों विधवाओं का उपयोग देश के निमित्त कैसे हो यह प्रश्न बहुत विचार करने योग्य है तथा इस पर शिक्षित स्त्रियाँ गंभीरता से विचार करें। अनेक वर्षों से गाँधी जी के मन में यह विचार था कि थोड़े हो समय पहले हमारी स्त्रियाँ सूत कातने और बुनने का भी काम करती थी। इस धंधे की अवनति से हिन्दुस्तान को नुकसान पहुँचा है। विधवाएँ अभी मन्दिरों में अथवा कथित साधु-रांतों की सेवा में अथवा गप्पे हाकने में अपना समय गंवाती हैं। मंदिर जाने में ही धर्म है, गाँधी जी ऐसा नहीं मानते थे। उसी प्रकार जिन साधु-संतों को किसी प्रकार की सेवा की आवश्यकता नहीं है उनके पास बैठे रहने से दोनों की ही हानि है। ऐसी प्रवृत्तियों से विधवाओं को हटाकर हिन्दुस्तान का उपकार करने की पारमार्थिक प्रवृत्ति में उन्हें फिर लगना ही उनका शुद्ध पुनर्विवाह है। ऐसे काम करने को इच्छुक स्त्रियों को पहले तो स्वयं उद्योग की पाठशाला में पहला पाठ पढ़ना होगा, सूत कातना होगा तथा खड़ियों पर कपड़ा बुनना होगा।²¹

1920-22 के असहयोग आंदोलन के समय स्त्रियों ने गाँधी जी से पूछा, ष्हम असहयोग में क्या मदद कर सकते हैं? शांति निकेतन में रहनेवाली बहनों ने अत्यंत गम्भीरता से उपर्युक्त प्रश्न किया था। गाँधी जी ने शांतिनिकेतन की बहनों का यह उत्तर दिया कि जबतक इस कार्य में स्त्रियाँ पूरी तरह से सहयोग नहीं करती तबतक स्वराज्य की आशा रखना व्यर्थ है। स्त्रियाँ जितनी सूक्ष्मता से ऐसी बातों का पालन करती हैं उतनी सूक्ष्मता से पुरुष नहीं करते। यदि स्त्रियाँ इस बात को नहीं समझती कि राष्ट्र की स्वतंत्रता को बनाये रखना तथा उसे प्राप्त करना उनका धर्म है तब तक देश की उन्नति संभव नहीं। यदि स्त्रियाँ यह माने कि देव दर्शन में ही सम्पूर्ण धर्म का समावेश हो जाता है, तो यह धारणा अंधविश्वास का स्वरूप धारण कर लेती है और इसके परिणाम स्वरूप राष्ट्र

का नुकसान होता है। देव-दर्शन आत्म ज्ञान का एक साधन है, इस बात को जानने वाली स्त्री यह समझ जायगी कि राष्ट्र की स्वतंत्रता की ध्वनि मंदिर में भी गुंजित होनी चाहिए क्योंकि स्वतंत्रता के बिना धर्म की रक्षा करना असम्भव है।²²

अमृतसर में 18 अप्रैल, 1919 को जब जनरल डायर का कहर सर पर था उस समय लोग धर्म की कितनी रक्षा कर सके थे? उस वक्त भी स्त्रियाँ मंदिरों में जाती थीं, थोड़े बहुत पुरुष भी जाते थे। परन्तु मन्दिरों में जाने का क्या फल निकला? यदि स्त्रियाँ यह जानती होती कि जनरल डायर के अत्याचार से मुक्ति प्राप्त करना जनता का सर्वोपरि कर्तव्य है तो वे अपने पतियों तथा पुत्रों को शूरता का पाठ पढ़ाती तथा उन्हें भीरुता का परित्याग करके स्वाभिमान की रक्षा करने के लिए सिखलाती। लेकिन ऐसी बातें नहीं हुई।²³

महात्मा गाँधी वैसे शिक्षा पर विशेष बल देते रहे जो व्यावहारिक या प्रयोगिक हो। इस तरह की शिक्षा में एकाग्रता बनी रहती है तथा बच्चे ज्ञानार्जन के साथ-साथ अर्थोपार्जन का भी उपाय सीख जाते हैं। स्त्रियाँ कुछ कलात्मक काम पुरुषों से अधिक भी कर सकती हैं। चित्रकला, कताई आदि कलात्मक तथा समाजिक काम स्त्रियाँ विशेष रूप से कर सकती हैं। यदि पुरुष उसमें अधिक नहीं पढ़ें, तो स्त्रियाँ स्वावलम्बी बन सकती हैं। गाँधी जी के विचार में प्राथमिक पाठशालाएँ स्त्रियों के हाथ में ही रहनी चाहिए। उनमें लड़के और लड़कियाँ एक साथ पढ़ें। अगर सारा प्राथमिक शिक्षण स्त्रियों के हाथ में रहेगा, तो बच्चों का विकास, ठीक-ठीक होगा। समाज को मर्यादा में रखने की शक्ति भी स्त्रियों में आयेगी। बच्चों की तालीम का काम आज पुरुषों के हाथ में है। वस्तुतः पुरुषों में बच्चों का तालीम देने लायक कोई अक्ल नहीं दीखती। बड़े होने पर भले ही पुरुष तालीम दे सके, परन्तु प्राइमरी स्कूल के बच्चों के साथ कैसा व्यवहार किया जाय, यह पुरुष क्या जाने? वह सारा का सारा क्षेत्र स्त्रियों के हाथ में आना मिलना चाहिए। इस तरह वे काम भी करेंगी तथा उनका जीविकोपार्जन भी होगा। कई अन्य कार्य भी शिक्षित महिलाओं के जीविकोपार्जनार्थ हैं जिसे वे अपना सकती हैं।²⁴ स्त्रियों को वे सारे क्षेत्र हाथ में लेने चाहिए, जो सांस्कृतिक माने जाते हैं। आज तक इन क्षेत्रों में प्रकट रूप में ज्यादातर पुरुषों का हाथ रहा है, अप्रकट रूप से स्त्रियों का हाथ रहा है। दुनिया के महान् काव्य जिनका दुनिया पर असर है, चाहे वाल्मीकि रामायण है, व्यास का महाभारत हो, होमर, दार्ते, मिल्टन आदि के काव्य हों, सब के सब पुरुषों ने लिखे हैं। वेद में थोड़ी स्त्रियों भी ऋषि हैं जिन्होंने मंत्र निर्माण किये हैं। फिर बीच में कर्नाटक की अक्का महादेवी, राजस्थान की मीराबाई आदि दो-चार नाम आते हैं। परन्तु कुल साहित्य पर स्त्रियों का ज्यादा असर नहीं रहा है। अभी योरप में कुछ स्त्रियाँ लिखने लगी हैं। यह उनका सामाजिक कार्य माना जाता है। भारत में भी अब स्त्रियाँ जागरूक हो रही हैं। कई प्राइवेट स्कूल ऐसे हैं जहाँ शिक्षण का कार्य केवल महिलाएँ ही कर रही हैं। अब महिलाओं के लिए कॉलेज भी खुल गये हैं। जहाँ शिक्षक केवल महिलाएँ होती हैं। इस प्रकार सांस्कृतिक विकास में भी महिलाएँ अब योगदान दे रही हैं।²⁵

महात्मा गाँधी नारी जाति को बहुत सम्मान की दृष्टि से देखते थे, उनके विचार में पुरुष और स्त्री का समाज में स्थान बराबर है और उसे वैसे ही बनाये रखना चाहिए। वे बचपन से ही अपनी माँ को बहुत आदर की दृष्टि से देखते थे। अपनी आत्म कथा में उन्होंने लिखा है कि उनकी माँ भी उनकी हर प्रकार से रक्षा करती थी। ये सबसे छोटे भाई थे। इनसे दो बड़े भाई थे। इसलिए पिता से अधिक इनकी माँ ही ख्याल करती थी।²⁶ गाँधी जी ने अपनी माँ की धार्मिक प्रवृत्ति सेवा भावना, त्याग एवं भक्ति की बड़ी प्रशंसा की है। उन्होंने अपनी माँ से ही स्त्रियों के चरित्र उज्ज्वल पक्ष का ज्ञान प्राप्त किया और उन्होंने यह महसूस किया कि नारी में सहने की शक्ति, त्याग की भावना, सेवा-भावना, और सेवा करने की अधिक शक्ति होती है। इसलिए उन्होंने 23 मई, 1929 को यंग इण्डिया में लिखा था। ग्राम सुधार की योजना में भारतीय स्त्री का उत्थान, छुआ-छूत का विनाश तथा गाँवों के आर्थिक जीवन का सुधार सभी शामिल हैं। भारत का स्वराज्य नारी जाति के उत्थान, छुआ-छूत के विनाश और गाँधी की दशा सुधारने के बिना नहीं मिल सकता।²⁷ गाँधीजी के विचार में स्त्रियों की दुर्दशा के लिए पुरुषों की स्वार्थी भावना जिम्मेदार रही है। बाल विवाह, पर्दा, तथा स्त्रियों को पिता की सम्पत्ति में हक नहीं देना, ये सब पुरुषों के लोभ के कारण हैं। गाँधी जी ने लिखा था- “मैं नारी जाति के अधिकारों के विषय में कोई समझौता नहीं करना चाहता। मेरे विचार में लड़का और लड़की दोनों को समान अधिकार मिलना चाहिए। स्त्रियों में जैसे-जैसे शिक्षा का विकास होगा, वे अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हो जायेंगी तथा वे समाज से असमानता दूर करने का प्रयत्न करेंगी। लेकिन वास्तव में नारी जाति की दुर्दशा का कारण पुरुषों का शक्ति और यश पाने का लोभ है। पुरुष ने बराबर स्त्री को अपना सम्पत्ति समझा है और समाज में चूँकि सम्पत्ति का अधिकार पुरुषों के हाथ में है, इसी से उन्हें समाज ने नारी जाति पर अधिकार प्रदान कर दिया है।²⁸ इसी से गाँधी जी ने बाल विवाह की कटु आलोचना की। उन्होंने लिखा “बाल-विवाह से हमारा शारीरिक और नैतिक पतन होता है। इससे स्वराज्य और ईश्वर दोनों का अपमान होता है। जो पुरुष किसी लड़की की कोमल आयु का ख्याल नहीं करता, वह ईश्वर को भी नहीं मानता है। हमारे देश में बाल-विवाह की प्रथा देश के हर भाग में अत्यन्त प्राचीन काल से चली आ रहा है। स्वराज्य के लिए इसका विनाश आवश्यक है।”²⁹

महात्मा गाँधी ने स्वराज्य की कल्पना में राजनीतिक स्वाधीनता के साथ-साथ सामाजिक, आर्थिक, नैतिक, और शैक्षणिक उत्थान को आवश्यक समझा। गाँधी जी के प्रभाव से बहुत बड़ी संख्या में स्त्रियों ने राजनीतिक जीवन में भाग लेना शुरू किया, उनके नेतृत्व में स्त्रियों को बहुत आस्था थी। जब उन्होंने 1917 में चम्पारण सत्याग्रह शुरू किया तब उन्होंने देखा कि चम्पारण के गाँवों में अशिक्षा, पर्दा प्रथा, स्त्रियों में बहुत जबर्दस्त है। इसलिए गाँधी जी ने बम्बई से बबन गोखले, उनकी पत्नी श्रीमती अवन्तिका बाई गोखले तथा अपने पुत्र देवदास गाँधी को बुलवा कर पाठशाला खुलवा कर शिक्षा प्रसार का काम शुरू किया।³⁰

1927 में गाँधी जी ने बिहार का दौरा किया। उन्होंने दरभंगा में बहुत बड़ी संख्या में स्त्रियों को पर्दे में देखा। इससे उन्हें बहुत दुःख हुआ और उन्होंने 3 फरवरी, 1927 को यंग इण्डिया में पर्दा प्रथा के विरुद्ध एक लेख लिखा जिसमें उन्होंने देश के शिक्षित लोगों से पर्दा प्रथा उठाने की अपील की। उन्होंने इस लेख में इस बात पर जोर दिया कि सौ वर्षों में देश के लोगों को जो शिक्षा मिली है वह बेकार गई है, नहीं तो पर्दा जैसी कठोर प्रथा अपने देश में कायम नहीं रहती यदि सभी पढ़े-लिखे लोग अपने-अपने घरों में पर्दा प्रथा को उठा दें, तो यह प्रथा शीघ्र ही समाप्त हो जायेगी। इस प्रथा के कायम रहने से यह पता चलता है कि पढ़े लिखे लोगों में इतना साहस नहीं है कि वे इस प्रथा को जल्दी से जल्दी उखाड़ फेंके।³¹

महात्मा गाँधी के इस लेख का बिहार में बहुत प्रभाव पड़ा और बिहार की महिला संस्थाओं ने पर्दा प्रथा को समाप्त करने का प्रस्ताव पास किया। बिहार के पढ़े-लिखे हिन्दुओं और मुसलमानों के घर में पर्दा प्रथा उठने लगी। देश के अन्य भागों में भी इसका प्रभाव पड़ने लगा।³² वर्ष 1929 में बाल-विवाह को

समाप्त करने के लिए हर विकास शारदा के प्रयत्नों से “शारदा ऐक्ट” केन्द्रीय धारा संभा दिल्ली से पास किया गया। इसके अनुसार शादी के लिए लड़कों की उम्र 18 और लड़कियों को उम्र 14 निश्चित की गई। बाद में लोगों के विरोध के कारण लड़कियों की उम्र 15 वर्ष कर दी गई। गाँधी जी इन कानूनों के अलावा अपने प्रयत्नों से स्त्रियों को समान अधिकार दिलाना चाहते थे। उनकी दृष्टि में स्त्री पुरुषों की अपेक्षा नम्रता, श्रद्धा, त्याग, और कष्ट सहने में कहीं अधिक सक्षम है। इसीलिए गाँधी जी ने 20 फरवरी, 1918 को बम्बई के भिगनी समाज में भाषण देते हुए कहा था स्त्री, पुरुष को सहचरी है और उसे प्रकृति की ओर से समान मानसिक योग्यता प्राप्त है, अतः उसे पुरुष के बराबर समाज में अधिकार मिलना चाहिए। अप्रैल, 1930 में गाँधीजी ने जब नमक सत्याग्रह के दौरान अपनी दाण्डीयात्रा शुरू की तब भारत को स्त्रियों ने गाँधी जी के आह्वान पर बहुत बड़ी संख्या में सत्याग्रह में भाग लिया तथा खास कर नमक कानून को तोड़ने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। महिलाओं ने खास कर काँग्रेस के कार्यक्रम के अनुसार विदेशी कपड़े की दुकानों, विदेशी माल की दुकानों तथा शराब की दुकानों पर भारत की अनेक शहरों में धरना दिया, जिससे इन दुकानों को लगभग बन्द करना पड़ा। इस कार्यक्रम में महिलाओं को लाठी चार्ज और जेल की सजा सहनी पड़ी। इस कार्यक्रम में जिन प्रमुख महिलाओं ने भाग लिया उनमें श्रीमती सरोजिनी नायडू, कस्तूबा गाँधी, श्रीमती कमला नेहरू, श्रीमती विजय लक्ष्मी पंडित तथा श्रीमती कमला देवी चट्टोपाध्याय थीं। श्रीमती कमला देवी चट्टोपाध्याय ने गाँधी जी के प्रभाव का वर्णन करते हुए लिखा है ‘भगवान बुद्ध के बाद किसी ने भी भारतीय समाज पर इतना गहरा प्रभाव नहीं छोड़ा है। यह गाँधी जी के नेतृत्व का ही कमाल है कि भारत की स्त्रियाँ इतनी ऊँचाई तक उठ सकी हैं। गाँधी जी न केवल स्त्रियों का आदर करते थे, बल्कि उनका महत्त्व समझते थे। वे स्त्रियों को अपना साथी और सहकर्मी समझते थे। इसीलिए जब उन्होंने भारत की आजादी के लिए अहिंसात्मक आन्दोलन शुरू किया, ताँ उन्होंने स्त्रियों को भाग लेने के लिए आमंत्रित किया तथा स्त्रियों ने भी देखा कि अहिंसात्मक आन्दोलन में वे सक्रिय सहयोग दे सकती हैं क्योंकि वे त्याग और बलिदान कर सकती हैं।’³³ गाँधी जी जब द्वितीय गोलमेज सम्मेलन में भाग लेने 1931 में लंदन गए, तब इटली में उन्होंने भारतीय महिलाओं की एक भाषण में बड़ी प्रशंसा की थी, उन्होंने कहा था— “संग्राम में महिलायें पुरुषों की तरह सक्रिय भाग ले सकती हैं। यह भारत की स्त्रियों ने कर दिखाया है। उन लोगों ने पर्दा को फेंक कर नमक बनाया, विदेशी कपड़ों और विदेशी शराब की दुकानों पर धरना दिया तथा लाठीचार्ज तथा जेल का भी मुकाबला किया।”³⁴ महिलाएँ 1939 तक भारतीय जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सम्मानित होने लगी थीं। 1939 तक भारत के विभिन्न प्रान्तों की विधान सभाओं और देशी राज्यों में 80 महिलायें सदस्य निर्वाचित हुई थीं। महिलाओं के प्रभाव और पद को देखते हुए भारत का स्थान दुनिया में तीसरा हो गया था। संयुक्त राज्य अमरीका में महिलायें सबसे अधिक उच्च पदों पर थीं, दूसरा स्थान सोवियत यूनियन का था और तीसरा स्थान भारत का था। यह सब महात्मा गाँधी के चमत्कारी नेतृत्व का प्रभाव था।³⁵ इसका कारण यह था कि गाँधी जी आजादी की लड़ाई में स्त्री और पुरुष दोनों को समान स्थान देते थे। उनके प्रयत्नों से पर्दा प्रथा कम होने लगी, बहु-विवाह और बाल-विवाह कम होने लगे तथा लड़कियों को शिक्षा दी जाने लगी। 1933 से 1934 तक गाँधी जी ने हरिजनों के उद्धार के लिए यात्रायें कीं। उसमें उन्होंने महिलाओं की सभाओं में अनेक स्थानों पर भाषण देकर महिलाओं में जागरण लाने का प्रयास किया। उन्होंने अपने भाषणों में इस बात पर जोर दिया कि महिलाओं की दशा सुधरने से हिन्दू धर्म का उत्थान होगा। 1931 से काँग्रेस द्वारा सेवादल कैम्प का आयोजन किया जाने लगा। इसमें महिलाओं को देश सेवा करने के लिए ट्रेनिंग दी जाने लगी।

वर्ष 1931 के काँग्रेस के कँराची अधिवेशन में एक प्रस्ताव पास कर के भारत के संविधान में मौलिक अधिकारों की घोषणा काँग्रेस द्वारा की गई। इस प्रस्ताव में 14 धारायें थी और उनमें चौथी धारा के अनुसार स्वाधीन भारत में जाति, धर्म और लिंग के आधार पर पक्षपात नहीं किया जायेगा। सभी स्त्री-पुरुष तथा सभी धर्मों तथा जातियों के मानने वाले कानून की निगाह में बराबर होंगे तथा उनके साथ नौकरी और व्यवसाय के मामलों में कोई भेद भाव नहीं किया जायेगा।³⁶ भारत के आजाद होने पर 1950 में नया संविधान लागू किया गया जिसमें सभी नागरिकों को मताधिकार का अधिकार दिया गया। संविधान की चौदहवीं और पन्द्रहवीं धारा में मौलिक अधिकारों की घोषणा की गई। सभी नौकरी करने अथवा निर्वाचित होने का अधिकार दिया गया। इसके अनुसार स्त्रियों को चुनाव लड़ने, किसी पद पर नौकरी करने अथवा निर्वाचित होने का अधिकार दिया गया। यह महात्मा गाँधी के प्रयत्नों का ही परिणाम था। 1920 से 1947 के बीच देश में अनेक महिला संस्थाओं ने स्थानीय एवं राष्ट्रीय स्तर पर काम करना शुरू किया। देश के विभिन्न भागों में आर्य-महिला समाज, सेवा-सदन तथा विधवाश्रम पहले से ही काम कर रहे थे। 1947 तक इनकी संख्या लगभग 200 पहुँच चुकी थी। कुछ अखिल भारतीय महिला संस्थायें भी काम करने लगी थीं जैसे नेशनल काउन्सिल आफ वीमेन इन इण्डिया, दि ऑल इण्डिया वीमेन्स कान्फरेन्स, दि यंग विमेन्स क्रिश्चियन एसोसिएशन (वाई० डब्लू० सरी० ए०), तथा फेडरेशन ऑफ यूनिवर्सिटी वीमेन इनमें प्रमुख थे। नेशनल काउन्सिल ऑफ वीमेन इन इण्डिया तथा आल इण्डिया विमेन्स कान्फरेन्स के नेतृत्व में महिला जागरण आन्दोलन तेजी से आगे बढ़ा तथा महिलाओं के अधिकारों की माँग होने लगी। 1944 में कस्तूरबा के निधन के पश्चात् कस्तूरबा गाँधी राष्ट्रीय स्मारक कोष की स्थापना हुई जिसका उद्देश्य गाँवों में रहनेवाले बच्चों एवं स्त्रियों की दशा सुधरने के लिए विशेष प्रयत्न करना था। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत ग्राम सेविकाओं को गाँवों में सेवा के उद्देश्य से भेजा गया।

निष्कर्ष:

महात्मा गांधी के नेतृत्व में महिलाओं का उत्थान भारतीय समाज में एक क्रांतिकारी परिवर्तन का प्रतीक है। गांधीजी ने महिलाओं को स्वतंत्रता संग्राम में भागीदारी के लिए प्रेरित कर, उन्हें सामाजिक और राजनीतिक मंच पर सशक्त रूप से स्थापित किया। उन्होंने महिलाओं को आत्मनिर्भरता, शिक्षा और सामाजिक सुधारों की ओर अग्रसर किया, जिससे वे समाज में अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हुईं। गांधीजी का विश्वास था कि महिलाओं की शक्ति समाज के नैतिक और आध्यात्मिक उत्थान का आधार है। उन्होंने नारी को शक्ति और सहनशीलता का प्रतीक मानते हुए उन्हें सत्याग्रह और अहिंसा के माध्यम से सामाजिक बदलाव का वाहक बनाया। उनके प्रयासों ने महिलाओं को सामाजिक बंधनों से मुक्त कर आत्मविश्वास और आत्मनिर्भरता की ओर प्रेरित किया। गांधीजी के इस दृष्टिकोण ने भारतीय महिलाओं की भूमिका को पुनर्परिभाषित किया और स्वतंत्रता के बाद के भारत में महिला सशक्तिकरण की नींव रखी, जिसका प्रभाव आज भी समाज में देखा जा सकता है।

सन्दर्भ:

1. अम्मू मेनन मजुमदार, सोशल वेल्फेयर इन इण्डिया महात्मा गाँधीज काण्ट्रीब्यूशन (बम्बई: एशिया पब्लिशिंग हाउस, 1964), पृ०98
2. पी०सी० राय, लाइफ ऐंड टाइम्स ऑफ सी०आर०दास (1937) पु० 116
3. हर हाइनेस द महारानी आफ बड़ौदा, आल इंडिया वीमेंस एजुकेशन कॉफ्रेंस, 1927 के अवसर पर, पृ० 450
4. एस० नटराजन, ए सेन्चुरी ऑफ सोशल रिफार्म इन इण्डिया, (बम्बई: एशिया पब्लिशिंग हाउस, 1959). १०८४
5. हर हाइनेस द महारानी ऑफ बड़ौदा, ऑल इंडिया वीमेंस एजुकेशन कॉफ्रेंस, 1927 के अवसर पर आं मेली, पृष्ठ 450 में उद्धृत पु०142
6. एम० नटराजन, ए सेन्चुरी अऑफ सोशल रिफार्म इन इण्डिया पु० 142
7. मंगली का रानी, ऑल इंडिया चीमंस एजुकेशन कॉफ्रेंस, 1927 के अवसर पर ओमेली, पृ० 450 द्वारा उद्धृत
8. अम्मू मेनन मजुमदार, सोशल वेल्फेयर इन इण्डिया, पृ०96
9. मिसेज एच० पेये, षेद प्रोग्रेस ऑफ विमेन, एल० एस० एम० ओगाली द्वारा मार्टन इण्डिया ऐण्ट दि वेस्ट में संकलित, पृ०459
10. एल० एस० एस० मेली (संपा) मार्टन इंडिया ऐंड दि वेस्ट (1941) पृ० 475
11. परामर्शदाता मण्डल: श्री मोरारजी देसाई वगैरह गाँधी संस्मरण और विचार (1965, गाँधी शांति प्रतिष्ठान तथा सस्ता साहित्य मण्डल का संयुक्त प्रकाशन) पृ० 152-53
12. वही, पु० 353
13. वही, १० 353
14. वही, पु० 354 तथा एम० के० गाँधी, विमेन ऐण्ड सोशल इनजस्टिस (अहमदाबाद: नवजीवन प्रकाशन, 1970), पृ०३-10
15. एम० के० गाँधी, विमेन ऐण्ड सोशल इनजस्टिस, पृ० 69-97
16. यू० एस० मोहन राव, दि मेसेज ऑफ महात्मा गाँधी, पृ०१९
17. एम० के० गाँधी, दु दि विमेन जिल्द-2 (करीची: हिजोरानी 1941) पृ० 175
18. परामर्शदाता मण्डल गाँधी संस्मरण और विचार, पु०357
19. वही, पु० 357
20. वही पृ० 348 तथा एम०के० गाँधी, दु दि विमेन, पु० 183
21. वही ५० 349, तथा एम० के० गाँधी, हिन्दु धर्म, पृ० 141 (अहमदाबाद: नवजीवन ट्रस्ट, 1978)
22. वही, पृ० 464-525
23. वही पृ० 526 तथा एम०के० गाँधी, विमेन ऐण्ड सोशल इनजस्टिस
24. विनोबा भावे, स्त्री शक्ति पृ० 90 (वाराणसी: सर्व सेवा संध प्रकाशन)
25. डॉ० ईश्वर दत्त शोल नैतिक शिक्षा तथा भारतीय संस्कृति पर गाँधी जी के विचार और सिद्धान्त, प्रकाशन पृ० 7
26. मो० क० गाँधी, सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा (अहमदाबाद: नवजीवन प्रकाशन मंदिर) पृ० 2-3
27. यंग इण्डिया, 23 मई 1929
28. एम०के०गाँधी, विमेन ऐंड सोशल इंजस्टिस, पु०12 (अहमदाबाद, नवजीवन प्रकाशन, 1942)
29. वही; पृ०14
30. राजेन्द्र प्रसाद, चम्पारन में महात्मा गाँधी ५०258 (पटना: बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, 1965)
31. अम्मू मेनन मजुमदार द्वारा उद्धृत सोशल वेल्फेयर इन इण्डिया: महात्मा गाँधीज काण्ट्रीब्यूशन, पृ०102 (बम्बई: एशिया पब्लिशिंग हाउस 1964)
32. वही, पृ०103
33. वही, पृ०104
34. कमलादेवी चट्टोपाध्याय “दि स्ट्रगल फार फ्रीडम बीमेन आफ इण्डिया, पु०१४ (नई दिल्ली: भारत सरकार, 1958)
35. अम्मू मेनन मजुमदार द्वारा उद्धृत, सोशल वेल्फेयर इन इण्डिया, ५०106
36. वही, पु० 106

व्यक्तित्व का सिद्धांत: एक सामान्य अवलोकन

डॉ० ददन राम

असिस्टेंट प्रोफेसर, मनोविज्ञान विभाग, मुंशी सिंह महाविद्यालय, मोतिहारी, पूर्वी चंपारण, (बिहार)

शोध आलेख का सारतत्व:

व्यक्तित्व का अध्ययन मनोविज्ञान का एक महत्वपूर्ण, प्रासंगिक और जटिल विषय क्षेत्र है, जो यह स्पष्टीकरण का प्रयास करता है कि मनुष्य के विचार, भावनाएँ और व्यवहार किस प्रकार से विकसित होते हैं और उनमें क्या अंतर होता है। यह शोध आलेख विभिन्न व्यक्तित्व सिद्धांतों की विवेचना की अपेक्षा करता है, जिसमें सिगमंड फ्रायड का मनोविश्लेषणात्मक सिद्धांत, कार्ल जंग का विश्लेषणात्मक मनोविज्ञान, एरिक एरिकसन का मनोसामाजिक विकास सिद्धांत तथा बी.एफ. स्किनर का व्यवहारवादी दृष्टिकोण शामिल हैं। फ्रायड के अनुसार व्यक्तित्व की संरचना तीन भागों- इड (ID), ईगो (EGO) और सुपरईगो (SUPEREGO) से मिलकर बनी होती है, जो व्यक्ति के आंतरिक संघर्ष और अवचेतन मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाओं द्वारा संचालित होती है। वहीं, कार्ल जंग ने सामूहिक अवचेतन और आर्केटाइप्स की अवधारणा प्रस्तुत की है, जो व्यक्ति के सांस्कृतिक और आनुवंशिक प्रभावों पर बल देती है। एरिकसन ने व्यक्तित्व विकास को जीवन के विभिन्न चरणों में सामाजिक प्रभावों के आधार पर समझाया, जबकि स्किनर का व्यवहारवादी दृष्टिकोण इस बात पर केंद्रित है कि व्यक्ति के व्यवहार का निर्माण पर्यावरण और अनुभवों के परिणामस्वरूप होता है। इस आलेख में विभिन्न सिद्धांतों की तुलनात्मक समीक्षा प्रस्तुतीकरण अपेक्षित है, जो यह दर्शा सकती है कि व्यक्तित्व के विकास में जैविक, सामाजिक और सांस्कृतिक तत्वों की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। व्यक्तित्व के अध्ययन से मानसिक स्वास्थ्य, शिक्षा, व्यवसाय और सामाजिक व्यवहार की समझ को बेहतर बनाया जा सकता है। इस शोध आलेख में व्यक्तित्व सिद्धांतों की गहराई से पड़ताल करने तथा यह निष्कर्ष प्रस्तुत करने की अपेक्षा है कि व्यक्तित्व का विकास एक सतत और जटिल प्रक्रिया है, जो व्यक्ति के जीवन पर्यन्त चलती रहती है।

प्रमुख शब्दावली: व्यक्तित्व, अंतरमन, ईगो, सुपर ईगो, भौतिक अभौतिक, आत्म सम्मान, मनोवैज्ञानिक कारक, सांस्कृतिक कारक, आत्मविश्वास, संज्ञानात्मक दृष्टिकोण आदि।

प्रस्तावना:

व्यक्तित्व मनोविज्ञान का एक ऐसा क्षेत्र है जो व्यक्ति के विचारों, भावनाओं और व्यवहारों के पैटर्न को समझने का प्रयास करता है। यह एक व्यापक और जटिल अवधारणा है जो यह दर्शाती है कि हर व्यक्ति किस प्रकार अन्य लोगों से भिन्न होता है और समय के साथ उसकी विशेषताएँ किस प्रकार स्थिर बनी रहती हैं। व्यक्तित्व किसी व्यक्ति के भीतर मौजूद उन मनोवैज्ञानिक गुणों का स्थायी संगठन है, जो उसे अद्वितीय बनाते हैं। व्यक्तित्व का विकास जैविक, सामाजिक और सांस्कृतिक कारकों के संयोजन से होता है। जन्म से लेकर मृत्यु तक व्यक्ति के अनुभव, उसकी परवरिश, सामाजिक संपर्क और सीखने की प्रक्रिया उसके व्यक्तित्व को आकार देते हैं। मनोविज्ञान में व्यक्तित्व की व्याख्या के लिए कई सिद्धांत और दृष्टिकोण प्रस्तुत किए गए हैं, जो यह दर्शाते हैं कि विभिन्न मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाएँ और बाहरी कारक व्यक्तित्व निर्माण में कैसे योगदान करते हैं।

व्यक्तित्व के प्रमुख सिद्धांतों में मनोविश्लेषणात्मक सिद्धांत (PSYCHOANALYTIC THEORY) का नाम सबसे पहले लिया जा सकता है, जिसके जनक सिगमंड फ्रायड माने जाते हैं। फ्रायड के अनुसार, व्यक्तित्व का निर्माण मुख्य रूप से अवचेतन मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाओं और बचपन के अनुभवों से होता है। उन्होंने व्यक्तित्व को तीन भागों में विभाजित किया: (1.) इड (ID): यह व्यक्तित्व का सबसे प्राचीन और मूलभूत भाग है, जो जैविक प्रवृत्तियों और तात्कालिक सुख की मांग करता है। इड अवचेतन स्तर पर कार्य करता है और नैतिकता की परवाह नहीं करता। (2.) ईगो (EGO): ईगो इड और सुपरईगो के बीच संतुलन स्थापित करता है। यह वास्तविकता के सिद्धांत पर काम करता है और व्यक्ति को यथार्थवादी निर्णय लेने में मदद करता है। (3.) सुपरईगो (SUPEREGO): यह नैतिकता और सामाजिक मूल्यों का प्रतिनिधित्व करता है। सुपरईगो व्यक्ति को नैतिकता और आदर्शों के अनुसार कार्य करने के लिए प्रेरित करता है।

सिगमंड फ्रायड मनोविश्लेषण (PSYCHOANALYSIS) के जनक माने जाते हैं और उनका व्यक्तित्व सिद्धांत मनोविज्ञान के क्षेत्र में सबसे प्रभावशाली और विवादास्पद सिद्धांतों में से एक है। फ्रायड का मानना था कि व्यक्ति का व्यक्तित्व मुख्य रूप से अवचेतन मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाओं और बचपन के अनुभवों से निर्मित होता है। उनके अनुसार, व्यक्तित्व का विकास व्यक्ति के मन में मौजूद विभिन्न मनोवैज्ञानिक शक्तियों के बीच संघर्ष का परिणाम है। इस सिद्धांत में उन्होंने यह बताया कि व्यक्तित्व कैसे आकार लेता है, विकसित होता है और समय के साथ कैसे बदलता है। फ्रायड के अनुसार, व्यक्ति का मन तीन स्तरों में विभाजित होता है- चेतन (CONSCIOUS), अवचेतन (PRECONSCIOUS) और अचेतन (UNCONSCIOUS)। चेतन मन वह है जो हम जानते हैं और जिसमें हम अपनी दैनिक गतिविधियों के बारे में सोचते हैं। अवचेतन मन वह है जिसमें वे विचार और भावनाएँ होती हैं जो आसानी से चेतन मन में आ सकती हैं। जबकि अचेतन मन वह भाग है जिसमें वे इच्छाएँ, भावनाएँ और यादें दबी होती हैं जो व्यक्ति की चेतना में नहीं होतीं, लेकिन उनके व्यवहार

और व्यक्तित्व को प्रभावित करती हैं। फ्रायड के अनुसार, व्यक्ति के व्यक्तित्व का निर्माण मुख्य रूप से अचेतन मन में छिपी इच्छाओं और संघर्षों के परिणामस्वरूप होता है।

सिगमंड फ्रायड के व्यक्तित्व को तीन भागों में विभाजित प्रकार को उदाहरण सहित समझा जा सकता है। इड व्यक्तित्व का सबसे मूल और प्राचीन भाग है, जो जन्म से ही मौजूद होता है। यह व्यक्ति की जैविक प्रवृत्तियों और तात्कालिक सुख की मांग करता है। इड तर्क और नैतिकता की परवाह नहीं करता और केवल सुख प्राप्त करने पर केंद्रित होता है। फ्रायड ने इसे “सुख सिद्धांत” कहा है। उदाहरण के लिए, एक शिशु को जब भूख लगती है, तो वह तुरंत दूध की मांग करता है, बिना यह समझे कि उसकी माँ व्यस्त हो सकती है। इड पूरी तरह अवचेतन में स्थित होता है और व्यक्ति के व्यवहार को गहराई से प्रभावित करता है। ईगो व्यक्ति के व्यक्तित्व का वह भाग है जो इड और सुपरईगो के बीच संतुलन स्थापित करने का कार्य करता है। यह “वास्तविकता सिद्धांत” के अनुसार काम करता है और व्यक्ति को समाज के नियमों और वास्तविकता के अनुसार कार्य करने में मदद करता है। ईगो चेतन और अवचेतन दोनों स्तरों पर कार्य करता है। यह व्यक्ति को अपनी इच्छाओं को संतुलित ढंग से पूरा करने के लिए प्रोत्साहित करता है, ताकि समाज में स्वीकृति मिले और संघर्ष न हो। उदाहरण के लिए, अगर किसी व्यक्ति को भूख लगी है, तो ईगो उसे भोजन प्राप्त करने के लिए एक व्यवहारिक तरीका खोजने में मदद करता है, बजाय तुरंत भोजन चुगने या मांगने के। सुपरईगो (SUPEREGO) व्यक्तित्व का नैतिक और नैतिकता से जुड़ा भाग है, जो समाज के नियमों, मूल्यों और नैतिक मानकों का प्रतिनिधित्व करता है। सुपरईगो व्यक्ति को सही और गलत के बीच अंतर करना सिखाता है और नैतिक रूप से सही कार्य करने के लिए प्रेरित करता है। यह आंशिक रूप से चेतन और आंशिक रूप से अचेतन में कार्य करता है। सुपरईगो का विकास बचपन के दौरान होता है जब बच्चे अपने माता-पिता, शिक्षकों और समाज के अन्य प्रभावशाली लोगों से सीखते हैं। फ्रायड के अनुसार, इड, ईगो और सुपरईगो के बीच संघर्ष व्यक्ति के मानसिक स्वास्थ्य और व्यक्तित्व के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यदि यह संघर्ष बहुत तीव्र होता है, तो इससे मानसिक तनाव और मनोवैज्ञानिक विकार उत्पन्न हो सकते हैं।

सिगमंड फ्रायड ने व्यक्तित्व विकास को पाँच चरणों में विभाजित किया, जिन्हें मनो-यौनिक चरण (PSYCHOSEXUAL STAGES) कहा जाता है। उनका मानना था कि प्रत्येक चरण में व्यक्ति की ऊर्जा, जिसे उन्होंने “लिबिडो” कहा, शरीर के किसी विशेष भाग में केंद्रित होती है। यदि किसी चरण में व्यक्ति की आवश्यकताएँ पूरी नहीं होतीं, तो वह उस चरण में अटक सकता है, जिससे उसके व्यक्तित्व पर दीर्घकालिक प्रभाव पड़ सकता है। मुखीय चरण (ORAL STAGE) को प्रथम चरण कहा जा सकता है। जन्म से 1 वर्ष तक के चरण में शिशु की लिबिडो मुँह पर केंद्रित होती है। शिशु सुख प्राप्त करने के लिए चूसता है या वस्तुओं को मुँह में डालता है। यदि इस चरण में संतुष्टि नहीं मिलती, तो व्यक्ति में मुखीय लक्षण जैसे धूम्रपान, नाखून चबाना या अत्यधिक खाने की प्रवृत्ति विकसित हो सकती है। दूसरा चरण गुदा चरण (ANAL STAGE) 1 वर्ष से 3 वर्ष तक की होती है, जिसमें लिबिडो गुदा क्षेत्र में केंद्रित होती है और शिशु शौच नियंत्रण सीखता है। यदि माता-पिता बहुत कठोर या बहुत लचीले होते हैं, तो इससे व्यक्ति के व्यक्तित्व में या तो अत्यधिक स्वच्छता या लापरवाही जैसी प्रवृत्तियाँ विकसित हो सकती हैं। तीसरा चरण लैंगिक चरण (PHALLIC STAGE) कहलाता है जो 3 से 6 वर्ष तक होता है। इस चरण में लिबिडो लैंगिक अंगों पर केंद्रित होती है। इस चरण में लड़के “ओडीपस कॉम्प्लेक्स” (OEDIPUS COMPLEX) और लड़कियाँ “इलेक्ट्रा कॉम्प्लेक्स” (ELECTRA COMPLEX) अनुभव करती हैं, जिसमें वे अपने विपरीत लिंग वाले माता-पिता की ओर आकर्षित होते हैं और समान लिंग वाले माता-पिता को प्रतिस्पर्धी के रूप में देखते हैं। चतुर्थ चरण को निश्चेतन चरण (LATENCY STAGE) कहा है, जो 6 से 12 वर्ष की होती है। इस चरण में लिबिडो निष्क्रिय हो जाती है और बच्चा सामाजिक गतिविधियों, शिक्षा और दोस्तों पर ध्यान केंद्रित करता है। पांचवा चरण यौनिक (GENITAL STAGE) होता है, जो 12 वर्ष के बाद प्रारंभ होता है। इस चरण में लिबिडो पुनः सक्रिय हो जाती है और व्यक्ति यौन संबंधों और सामाजिक जुड़ाव की ओर आकर्षित होता है। फ्रायड का मानना था कि इन पाँच चरणों के दौरान व्यक्ति के अनुभव उसके व्यक्तित्व के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। फ्रायड ने यह भी बताया कि व्यक्ति के मन में चल रहे संघर्षों और तनावों से निपटने के लिए ईगो विभिन्न रक्षा तंत्रों (DEFENSE MECHANISMS) का उपयोग करता है। इनमें से कुछ प्रमुख हैं: (1.) दमन (REPRESSION): अप्रिय विचारों और भावनाओं को अचेतन में दबा देना। (2.) प्रक्षेपण (PROJECTION): अपनी नकारात्मक भावनाओं को दूसरों पर आरोपित करना। (3.) स्थानांतरण (DISPLACEMENT): अपनी भावनाओं को एक सुरक्षित लक्ष्य पर निकालना। (4.) युक्तिकरण (RATIONALIZATION): अपने व्यवहार के लिए तार्किक और स्वीकार्य स्पष्टीकरण देना।

निष्कर्ष ग्रुप में यह कहा जा सकता है कि सिगमंड फ्रायड का व्यक्तित्व सिद्धांत मनोविज्ञान के क्षेत्र में एक क्रांतिकारी योगदान था, जिसने मानसिक स्वास्थ्य, परामर्श और चिकित्सा के क्षेत्र में नई दिशाएँ खोलीं। हालांकि, उनके कुछ विचार विवादास्पद रहे हैं, लेकिन उनकी सोच ने मनोविज्ञान और मानसिक स्वास्थ्य को समझने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

सिगमंड फ्रायड के विचारों से प्रभावित होकर कार्ल जंग ने विश्लेषणात्मक मनोविज्ञान के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। वस्तुतः कार्ल जंग ने फ्रायड के सिद्धांतों को आगे बढ़ाते हुए विश्लेषणात्मक मनोविज्ञान का प्रतिपादन किया। जंग के अनुसार, व्यक्तित्व केवल व्यक्तिगत अवचेतन (PERSONAL UNCONSCIOUS) से ही नहीं, बल्कि सामूहिक अवचेतन (COLLECTIVE UNCONSCIOUS) से भी प्रभावित होता है। सामूहिक अवचेतन में उन सार्वभौमिक अनुभवों और प्रतीकों का भंडार है, जो सभी मनुष्यों में समान होते हैं। जंग ने इन्हें आर्केटाइप्स (ARCHETYPES) कहा, जैसे कि हीरो, माँ, छाया आदि। जंग ने व्यक्तित्व को मुख्य रूप से दो प्रकारों में विभाजित किया- अंतर्मुखी (INTROVERT) और बहिर्मुखी (EXTROVERT)।

एरिक एरिकसन भी एक प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक रहे हैं, जिन्होंने सिगमंड फ्रायड के मनोविश्लेषणात्मक सिद्धांतों को आगे बढ़ाते हुए “मनोसामाजिक विकास सिद्धांत” (PSYCHOSOCIAL DEVELOPMENT THEORY) प्रस्तुत किया है। फ्रायड के विपरीत, जिन्होंने व्यक्ति के व्यक्तित्व विकास को मुख्य रूप से कामुक ऊर्जा (LIBIDO) और मनो-यौनिक चरणों से जोड़ा, एरिकसन का मानना था कि व्यक्तित्व का विकास जीवनभर चलता रहता है और यह व्यक्ति के सामाजिक संबंधों, अनुभवों और समाज के साथ उसके जुड़ाव से प्रभावित होता है। एरिकसन ने कहा कि प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन में आठ प्रमुख चरणों (STAGES) से गुजरता है, और प्रत्येक चरण में उसे एक विशेष मनोसामाजिक संघर्ष (PSYCHOSOCIAL CONFLICT) का सामना करना पड़ता है। यदि

व्यक्ति इन संघर्षों को सफलतापूर्वक हल कर लेता है, तो उसका व्यक्तित्व स्वस्थ रूप से विकसित होता है। यदि संघर्ष अधूरे रह जाते हैं, तो इससे व्यक्ति के मानसिक स्वास्थ्य और सामाजिक संबंधों में बाधा उत्पन्न हो सकती है।

एरिकसन का सिद्धांत जीवन के प्रत्येक चरण में व्यक्ति के सामाजिक, भावनात्मक और मनोवैज्ञानिक विकास पर केंद्रित है। उन्होंने कहा कि समाज और संस्कृति का व्यक्ति के व्यक्तित्व विकास पर गहरा प्रभाव पड़ता है: (1.) विश्वास बनाम अविश्वास (TRUST VS- MISTRUST)- जन्म से 1 वर्ष तक का यह पहला चरण है जो शिशु के जीवन के प्रारंभिक समय को दर्शाता है। इस चरण में शिशु अपने माता-पिता या देखभाल करने वालों पर निर्भर होता है। यदि शिशु को पर्याप्त देखभाल, प्रेम और सुरक्षा मिलती है, तो उसमें विश्वास (TRUST) विकसित होता है। इसके विपरीत, यदि शिशु की आवश्यकताएँ पूरी नहीं होतीं, तो उसमें अविश्वास (MISTRUST) की भावना विकसित हो सकती है। यह विश्वास भविष्य में व्यक्ति के संबंधों की गुणवत्ता को प्रभावित करता है। (2.) स्वायत्तता बनाम संदेह और लज्जा (AUTONOMY VS- SHAME AND DOUBT)- 1 से 3 वर्ष तक आयु का बच्चा इस वर्ग में रखा जाता है। इस चरण में बच्चे अपने आसपास की दुनिया को जानने और स्वतंत्र रूप से कार्य करने की कोशिश करते हैं। वे स्वयं खाना खाने, कपड़े पहनने और छोटे-छोटे कार्य करने का प्रयास करते हैं। यदि माता-पिता बच्चे को स्वतंत्रता देते हैं और उसकी उपलब्धियों को प्रोत्साहित करते हैं, तो बच्चे में आत्मनिर्भरता (AUTONOMY) की भावना विकसित होती है। लेकिन यदि बच्चे को बार-बार टोक दिया जाता है या दंडित किया जाता है, तो उसमें संदेह (DOUBT) और लज्जा (SHAME) की भावना उत्पन्न हो सकती है। (3.) पहल बनाम अपराधबोध (INITIATIVE VS- GUILT)- 3 से 5 वर्ष तक का उम्र इस काल में आता है। इस चरण में बच्चा नए विचारों और गतिविधियों में पहल करना शुरू करता है। वह खेल में नए-नए तरीकों से भाग लेता है और अपने आसपास की दुनिया को समझने की कोशिश करता है। यदि बच्चे को अपने निर्णय लेने और नए कार्य करने की स्वतंत्रता मिलती है, तो उसमें पहल (INITIATIVE) की भावना विकसित होती है। लेकिन यदि माता-पिता उसे बार-बार रोकते हैं या उसकी आलोचना करते हैं, तो बच्चे में अपराधबोध (GUILT) की भावना उत्पन्न हो सकती है। (4.) उद्योग बनाम हीनता (INDUSTRY VS- INFERIORITY)- 6 से 12 वर्ष तक की उम्र को इस वर्ग में रखा जाता है। इस चरण में बच्चा स्कूल जाता है और विभिन्न सामाजिक और शैक्षणिक गतिविधियों में भाग लेता है। वह अपने सहपाठियों और शिक्षकों के साथ बातचीत करता है और नई क्षमताएँ सीखता है। यदि बच्चा स्कूल और समाज में सफल होता है, तो उसमें उद्योग (INDUSTRY) और दक्षता की भावना विकसित होती है। लेकिन यदि बच्चा असफल होता है या उसे बार-बार अस्वीकार कर दिया जाता है, तो उसमें हीनता (INFERIORITY) की भावना उत्पन्न हो सकती है। (5.) पहचान बनाम भूमिका भ्रम (IDENTITY VS- ROLE CONFUSION)- 12 से 18 वर्ष तक अर्थात् किशोरावस्था में व्यक्ति अपने अस्तित्व और समाज में अपनी भूमिका के बारे में सोचता है। इस चरण में व्यक्ति यह जानने की कोशिश करता है कि वह कौन है और उसे भविष्य में क्या करना है। यदि किशोर अपनी पहचान (IDENTITY) स्थापित करने में सफल होता है, तो वह आत्मविश्वास से भरा होता है। लेकिन यदि वह अपनी भूमिका को लेकर भ्रमित रहता है, तो उसमें भूमिका भ्रम (ROLE CONFUSION) की भावना उत्पन्न हो सकती है। (6.) घनिष्ठता बनाम अलगाव (INTIMACY VS- ISOLATION)- 18 से 40 वर्ष तक के इस चरण यानि युवावस्था का होता है। जब व्यक्ति घनिष्ठ संबंध (INTIMACY) स्थापित करने की कोशिश करता है। इस चरण में व्यक्ति प्रेम संबंध, विवाह और मित्रता की तलाश करता है। यदि व्यक्ति घनिष्ठ और स्थायी संबंध स्थापित करने में सफल होता है, तो वह समाज के साथ जुड़ाव महसूस करता है। लेकिन यदि वह ऐसा करने में असफल रहता है, तो उसमें अलगाव (ISOLATION) की भावना उत्पन्न हो सकती है। (7.) उत्पादकता बनाम स्थिरता (GENERATIVITY VS- STAGNATION)- 40 से 65 वर्ष तक की अवस्था होती है। मध्य वयस्कता में व्यक्ति समाज में योगदान देने और नई पीढ़ी का मार्गदर्शन करने की कोशिश करता है। यदि व्यक्ति समाज और परिवार में सकारात्मक योगदान देता है, तो उसमें उत्पादकता (GENERATIVITY) की भावना विकसित होती है। लेकिन यदि व्यक्ति अपने जीवन में अर्थ नहीं पाता है, तो वह स्थिरता (STAGNATION) और निराशा महसूस कर सकता है। (8.) अहंता बनाम निराशा (EGO INTEGRITY VS- DESPAIR)- 65 वर्ष और उससे अधिक यानि जीवन के अंतिम चरण में व्यक्ति अपने जीवन की ओर देखता है और उसका मूल्यांकन करता है। यदि वह अपने जीवन से संतुष्ट होता है और महसूस करता है कि उसने एक सफल जीवन व्यतीत किया है, तो उसमें अहंता (EGO INTEGRITY) की भावना विकसित होती है। लेकिन यदि वह अपने जीवन में असफलताओं और पछतावे को देखता है, तो उसमें निराशा (DESPAIR) उत्पन्न हो सकती है।

एरिकसन के मनोसामाजिक विकास सिद्धांत ने यह दर्शाया कि व्यक्तित्व का विकास जीवनभर चलता रहता है और व्यक्ति के सामाजिक अनुभव और संबंध उसके मानसिक स्वास्थ्य और आत्मसम्मान को प्रभावित करते हैं। इस सिद्धांत ने शिक्षा, परामर्श और मानसिक स्वास्थ्य के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान दिया है और यह आज भी मनोविज्ञान के अध्ययन का एक प्रमुख हिस्सा है।

व्यवहारवादी व्यक्तित्व सिद्धांत का विकास 20वीं शताब्दी में हुआ, जब मनोवैज्ञानिकों ने मानव व्यवहार को वैज्ञानिक रूप से समझने और अध्ययन करने का प्रयास किया। व्यवहारवाद का मूल आधार यह है कि व्यक्ति का व्यक्तित्व और व्यवहार उसके पर्यावरण और अनुभवों के परिणामस्वरूप विकसित होते हैं। व्यवहारवादियों का मानना था कि व्यक्तित्व के विकास में आंतरिक विचारों, भावनाओं या अवचेतन मन की भूमिका महत्वपूर्ण नहीं है, बल्कि बाहरी पर्यावरण और अनुभव ही व्यक्तित्व को आकार देते हैं। व्यवहारवाद के प्रमुख सिद्धांतकारों में जॉन बी. वाटसन (JOHN B- WATSON), बी. एफ. स्किनर (B- F- SKINNER), और इवान पावलोव (IVAN PAVLOV) शामिल थे। इन मनोवैज्ञानिकों ने अपने प्रयोगों के माध्यम से यह सिद्ध किया कि मानव व्यवहार को नियंत्रित और बदला जा सकता है, यदि पर्यावरण में बदलाव किया जाए। वाटसन ने व्यवहारवाद को मनोविज्ञान के एक प्रमुख क्षेत्र के रूप में स्थापित किया। उनका मानना था कि व्यक्ति के जन्म के समय उसका मस्तिष्क एक “कोरा कागज” (TABULA RASA) होता है, और उसका व्यक्तित्व अनुभवों और सीखने के माध्यम से निर्मित होता है। उन्होंने कहा कि यदि किसी बच्चे को एक निश्चित प्रकार के अनुभव दिए जाएँ, तो उसे किसी भी प्रकार का व्यक्ति बनाया जा सकता है। वाटसन ने इवान पावलोव के क्लासिकल कंडीशनिंग के सिद्धांत को आगे बढ़ाया। पावलोव ने अपने प्रसिद्ध कुत्ते के प्रयोग के माध्यम से दिखाया कि कैसे एक तटस्थ उत्तेजना (NEUTRAL STIMULUS) को बार-बार किसी जैविक प्रतिक्रिया (BIOLOGICAL RESPONSE) के साथ जोड़ा जा सकता है, जिससे वह उत्तेजना अंततः एक शर्तबद्ध प्रतिक्रिया (CONDITIONED RESPONSE) उत्पन्न करने लगती है। उदाहरण के

लिए, जब पावलोव ने हर बार कुत्ते को भोजन देने से पहले घंटी बजाई, तो कुछ समय बाद केवल घंटी बजाने से कुत्ते की लार टपकने लगी, भले ही भोजन न दिया गया हो। वाटसन ने इस सिद्धांत को मानव व्यवहार पर लागू किया। उनका सबसे प्रसिद्ध प्रयोग “लिटिल अल्बर्ट” (LITTLEALBERT) के साथ किया गया, जिसमें एक छोटे बच्चे को सफेद चूहे के प्रति डर पैदा किया गया। जब भी बच्चा चूहे के साथ खेलता था, तो एक तेज आवाज की जाती थी, जिससे बच्चे में डर की भावना उत्पन्न हुई। कुछ समय बाद बच्चा सिर्फ चूहे को देखकर ही डरने लगा, भले ही तेज आवाज न हो। इस प्रयोग ने दिखाया कि भावनात्मक प्रतिक्रियाएँ भी सीखने के माध्यम से उत्पन्न की जा सकती हैं।

स्कinner ने व्यवहारवाद को एक नए स्तर पर पहुँचाया और ऑपरेटेंट कंडीशनिंग (OPERANT CONDITIONING) का सिद्धांत प्रस्तुत किया। स्कinner का मानना था कि व्यक्ति के व्यवहार को पुरस्कृत (REWARD) या दंडित (PUNISHMENT) करने के माध्यम से बदला और नियंत्रित किया जा सकता है। स्कinner ने कहा कि जब किसी व्यवहार के बाद सकारात्मक परिणाम मिलता है, तो उस व्यवहार की पुनरावृत्ति की संभावना बढ़ जाती है। इसके विपरीत, जब किसी व्यवहार के बाद नकारात्मक परिणाम मिलता है, तो उस व्यवहार की संभावना कम हो जाती है। उन्होंने इसे “सुदृढीकरण” (REINFORCEMENT) और “दंड” (PUNISHMENT) का सिद्धांत कहा। स्कinner ने “स्कinner बॉक्स” नामक एक उपकरण का उपयोग किया, जिसमें उन्होंने चूहों और कबूतरों के साथ प्रयोग किए। उदाहरण के लिए, जब चूहे ने लीवर दबाया और उसे भोजन मिला, तो वह बार-बार लीवर दबाने लगा। लेकिन जब लीवर दबाने के बाद उसे बिजली का झटका मिला, तो उसने लीवर दबाना बंद कर दिया। स्कinner ने व्यक्तित्व विकास के संदर्भ में कहा कि व्यक्ति का व्यवहार पर्यावरण के उत्तरों (RESPONSES) पर आधारित होता है। यदि किसी बच्चे को अच्छे व्यवहार के लिए पुरस्कृत किया जाता है, तो वह बार-बार वैसा ही व्यवहार करेगा, जिससे उसका व्यक्तित्व सकारात्मक रूप से विकसित होगा।

पारंपरिक व्यवहारवाद केवल प्रत्यक्ष अनुभवों और प्रतिक्रियाओं पर केंद्रित था, लेकिन अल्बर्ट बंदुरा (ALBERT BANDURA) ने सामाजिक अधिगम सिद्धांत (SOCIAL LEARNING THEORY) प्रस्तुत किया, जिसने व्यवहारवाद को एक नया आयाम दिया। बंदुरा ने कहा कि व्यक्ति न केवल प्रत्यक्ष अनुभवों से सीखता है, बल्कि दूसरों के व्यवहार को देखकर और उसकी नकल करके भी सीखता है। बंदुरा का “बोबो डॉल प्रयोग” (BOBO DOLL EXPERIMENT) इस सिद्धांत का प्रमाण था। इस प्रयोग में बच्चों ने देखा कि वयस्क एक गुड़िया को मार रहे थे। बाद में जब बच्चों को उसी गुड़िया के साथ खेलने दिया गया, तो उन्होंने भी वैसा ही आक्रामक व्यवहार किया। इस प्रयोग ने यह दर्शाया कि व्यक्ति पर्यावरण से प्रभावित होता है और दूसरों के व्यवहार का अनुकरण करके अपने व्यक्तित्व का विकास करता है।

व्यवहारवादी सिद्धांत की कई प्रमुख विशेषताएँ हैं : प्रथम, व्यवहारवादी सिद्धांत के अनुसार व्यक्ति का व्यक्तित्व बाहरी पर्यावरण और अनुभवों के द्वारा निर्मित होता है। द्वितीय, व्यक्तित्व विकास मुख्य रूप से सीखने की प्रक्रिया के माध्यम से होता है, जिसमें व्यक्ति अनुभवों, प्रोत्साहन और दंड के माध्यम से व्यवहार विकसित करता है। तृतीय, व्यवहारवादी सिद्धांत प्रेक्षणीय (OBSERVABLE) और मापने योग्य (MEASURABLE) व्यवहार पर केंद्रित है। यह आंतरिक मानसिक प्रक्रियाओं को महत्व नहीं देता। चतुर्थ, व्यवहारवादी सिद्धांत के अनुसार किसी भी व्यक्ति के व्यवहार को परिवर्तित किया जा सकता है, यदि उसके पर्यावरण को बदला जाए। पंचम, व्यवहारवाद आनुवांशिकता (GENETICS) और जैविक प्रवृत्तियों (BIOLOGICAL INSTINCTS) की तुलना में पर्यावरण को अधिक महत्वपूर्ण मानता है।

व्यवहारवादी सिद्धांत ने मनोविज्ञान के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान दिया है, लेकिन इसकी कई आलोचनाएँ भी की गई हैं। आलोचकों का कहना है कि व्यवहारवाद व्यक्ति के आंतरिक विचारों, भावनाओं और इच्छाओं को महत्व नहीं देता, जबकि ये सभी व्यक्ति के व्यक्तित्व विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। व्यवहारवादी सिद्धांत सरल व्यवहारों को समझने में कारगर है, लेकिन यह मानव व्यवहार की जटिलता और विविधता को पूरी तरह से नहीं समझा पाता। व्यवहारवादी सिद्धांत के अनुसार व्यक्ति का व्यवहार पूरी तरह से पर्यावरण के नियंत्रण में होता है, जिससे स्वतंत्र इच्छा (FREE WILL) की भूमिका को नकार दिया जाता है। इसके बाद भी व्यवहारवादी सिद्धांत ने शिक्षा, परामर्श और मानसिक स्वास्थ्य के क्षेत्र में क्रांतिकारी परिवर्तन लाए हैं। यह सिद्धांत आज भी व्यवहार चिकित्सा (BEHAVIOR THERAPY) और व्यवहार संशोधन (BEHAVIOR MODIFICATION) के रूप में प्रयोग किया जाता है, जिससे लोगों के नकारात्मक व्यवहार को बदला और सकारात्मक व्यवहार को प्रोत्साहित किया जाता है।

व्यक्तित्व के संज्ञानात्मक दृष्टिकोण के अनुसार, व्यक्ति का व्यवहार उसकी सोचने की प्रक्रिया और उसकी मानसिक धारणाओं पर निर्भर करता है। इस दृष्टिकोण के प्रमुख मनोवैज्ञानिक आरोन बेख और एल्बर्ट बंदुरा हैं।

बंदुरा ने बताया कि व्यक्ति की अपनी क्षमताओं पर विश्वास (SELF-EFFICACY) उसके व्यक्तित्व के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। संज्ञानात्मक सिद्धांतों के अनुसार, व्यक्ति अपने व्यवहार को स्वयं नियंत्रित कर सकता है और अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए योजनाएँ बनाता है।

अब्राहम मैसलो और कार्ल रोजर्स जैसे मानववादी मनोवैज्ञानिकों ने व्यक्तित्व के संबंध में विचार दिया है। अब्राहम मैसलो 20वीं शताब्दी के प्रमुख मनोवैज्ञानिकों में से एक थे, जिन्होंने मानव व्यवहार और व्यक्तित्व के विकास को समझने के लिए आवश्यकता सोपान सिद्धांत प्रस्तुत किया। यह सिद्धांत मानवतावादी मनोविज्ञान का हिस्सा है, जो व्यक्ति के आत्म-विकास और संभावनाओं को पहचानने पर बल देता है। मैसलो के अनुसार, प्रत्येक व्यक्ति में आत्मविकास की प्रवृत्ति होती है, लेकिन इसे प्राप्त करने के लिए विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति आवश्यक है। इस सिद्धांत का आधार यह है कि मानव आवश्यकताओं को एक क्रम में रखा जा सकता है, और जब तक निम्न स्तर की आवश्यकताएँ पूरी नहीं होतीं, तब तक व्यक्ति उच्च स्तर की आवश्यकताओं की ओर अग्रसर नहीं होता। इस सिद्धांत को अक्सर एक पिरामिड के रूप में प्रस्तुत किया जाता है, जिसमें पाँच स्तर होते हैं। प्रत्येक स्तर मानव जीवन के विभिन्न पहलुओं को दर्शाता है। सबसे निचले स्तर पर शारीरिक आवश्यकताएँ होती हैं, जो व्यक्ति के अस्तित्व के लिए अनिवार्य हैं। इनमें भोजन, पानी, नींद, और आश्रय शामिल हैं। ये आवश्यकताएँ सबसे मूलभूत होती हैं और इनके बिना व्यक्ति का जीवन असंभव है। जब तक ये आवश्यकताएँ पूरी नहीं होतीं, तब तक व्यक्ति अन्य किसी चीज के बारे में नहीं सोच सकता। उदाहरण के लिए, यदि कोई व्यक्ति भूखा है, तो वह प्रेम, सम्मान या आत्मसाक्षात्कार की चिंता नहीं करेगा। दूसरे स्तर पर सुरक्षा और संरक्षा की आवश्यकताएँ आती हैं। इनमें भौतिक सुरक्षा, आर्थिक स्थिरता, स्वास्थ्य, और संपत्ति की सुरक्षा शामिल

होती है। व्यक्ति चाहता है कि उसका जीवन सुरक्षित हो और उसे किसी प्रकार का भय या अस्थिरता महसूस न हो। एक स्थायी नौकरी, बीमा योजना, और एक सुरक्षित आवास व्यक्ति की इस आवश्यकता को पूरा करने में मदद करते हैं। विशेष रूप से बच्चों और वृद्धों के लिए यह स्तर महत्वपूर्ण होता है। तीसरे स्तर पर सामाजिक आवश्यकताएँ होती हैं, जिसमें प्रेम, मित्रता, परिवार और समाज में जुड़ाव की भावना शामिल होती है। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है और उसे समाज में स्थान और संबंधों की आवश्यकता होती है। जब व्यक्ति को प्रेम और अपनापन मिलता है, तो वह मानसिक और भावनात्मक रूप से संतुलित रहता है। इसके विपरीत, अकेलापन और सामाजिक बहिष्कार मानसिक स्वास्थ्य पर नकारात्मक प्रभाव डालते हैं। इस स्तर पर व्यक्ति मित्रता, पारिवारिक संबंधों और सामाजिक मेलजोल की तलाश करता है। चौथे स्तर पर आत्म-सम्मान की आवश्यकताएँ आती हैं। इसमें व्यक्ति का आत्मविश्वास, मान्यता और समाज में सम्मान शामिल होता है। व्यक्ति चाहता है कि उसकी क्षमताओं को पहचाना जाए और उसे समाज में प्रतिष्ठा मिले। आत्म-सम्मान की आवश्यकता दो भागों में विभाजित होती है— एक, जो बाहरी मान्यता से जुड़ी होती है, जैसे पदोन्नति, पुरस्कार, और सामाजिक स्थिति; और दूसरी, जो आंतरिक होती है, जैसे आत्मविश्वास, स्वतंत्रता और आत्म-गौरव। जब व्यक्ति इस स्तर तक पहुँचता है, तो वह अधिक उत्पादक और आत्मनिर्भर बन जाता है। पाँचवें और अंतिम स्तर पर आत्मसाक्षात्कार की आवश्यकता होती है। यह स्तर व्यक्तित्व विकास का सर्वोच्च स्तर है, जिसमें व्यक्ति अपनी पूर्ण क्षमताओं और संभावनाओं को प्राप्त करने का प्रयास करता है। आत्मसाक्षात्कार का अर्थ है कि व्यक्ति अपने जीवन में अर्थ और उद्देश्य की खोज करता है और रचनात्मकता, नवाचार और व्यक्तिगत विकास की ओर अग्रसर होता है। सभी लोग इस स्तर तक नहीं पहुँचते, लेकिन जो लोग पहुँचते हैं, वे समाज के लिए प्रेरणा का स्रोत बनते हैं। आत्मसाक्षात्कार प्राप्त करने वाले व्यक्ति स्वतंत्र, रचनात्मक, और समस्याओं को सुलझाने में सक्षम होते हैं। वे समाज की भलाई के लिए कार्य करते हैं और स्वयं के भीतर संतोष का अनुभव करते हैं।

अब्राहम मैस्लो के अनुसार, आवश्यकताओं का यह क्रम कठोर नहीं है, और विभिन्न परिस्थितियों में आवश्यकताओं की प्राथमिकताएँ बदल सकती हैं। उदाहरण के लिए, किसी संकट की स्थिति में सुरक्षा की आवश्यकता सर्वोपरि हो जाती है, जबकि सामान्य परिस्थितियों में सामाजिक और आत्म-सम्मान की आवश्यकताएँ प्रमुख हो सकती हैं। इसके अलावा, व्यक्ति कभी-कभी एक ही समय में विभिन्न स्तरों की आवश्यकताओं को अनुभव कर सकता है। आत्मसाक्षात्कार प्राप्त करने वाले व्यक्तियों की कुछ विशेषताएँ होती हैं। वे वास्तविकता को यथार्थ रूप में देखते हैं और जीवन को स्वीकार करते हैं। वे रचनात्मक होते हैं, समस्याओं का समाधान करने में कुशल होते हैं और बाहरी दबावों से प्रभावित नहीं होते। आत्मसाक्षात्कारी व्यक्ति स्वतंत्र होते हैं और समाज के प्रति करुणा और सहानुभूति रखते हैं। यह सिद्धांत शिक्षा, व्यवसाय, प्रबंधन, और मानसिक स्वास्थ्य जैसे विभिन्न क्षेत्रों में लागू किया जाता है। शिक्षा के क्षेत्र में यह सिद्धांत छात्रों की प्रेरणा को समझने में सहायक है। जब शिक्षक छात्रों की बुनियादी आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं, तो छात्र बेहतर प्रदर्शन करते हैं। कार्यस्थल में प्रबंधक कर्मचारियों की आवश्यकताओं को समझकर उनके प्रदर्शन को बढ़ा सकते हैं। मानसिक स्वास्थ्य के क्षेत्र में चिकित्सक रोगियों की आवश्यकताओं की पहचान कर उनके जीवन की गुणवत्ता में सुधार कर सकते हैं। इस सिद्धांत की कुछ सीमाएँ भी हैं। आलोचकों का कहना है कि आवश्यकताओं का यह क्रम सभी व्यक्तियों पर समान रूप से लागू नहीं होता। विभिन्न संस्कृतियों और समाजों में आवश्यकताओं की प्राथमिकताएँ भिन्न हो सकती हैं। इसके अलावा, आत्मसाक्षात्कार की अवधारणा अमूर्त है और इसे मापना कठिन है। कुछ लोग आत्मसाक्षात्कार की ओर बढ़ने के बजाय आत्म-सम्मान या सामाजिक आवश्यकताओं पर अधिक ध्यान केंद्रित कर सकते हैं। फिर भी, मैस्लो का आवश्यकता सोपान सिद्धांत आज भी मानव प्रेरणा और व्यक्तित्व विकास को समझने के लिए एक महत्वपूर्ण उपकरण है। यह सिद्धांत इस विचार को सुदृढ़ करता है कि प्रत्येक व्यक्ति में विकास और आत्म-विकास की क्षमता होती है, और उचित परिस्थितियों में वह अपनी उच्चतम क्षमताओं को प्राप्त कर सकता है।

कार्ल रोजर्स ने कहा कि व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास तब होता है जब उसे बिना शर्त सकारात्मक सम्मान (UNCONDITIONAL POSITIVE REGARD) मिलता है।

व्यक्तित्व का लक्षण सिद्धांत उन स्थायी विशेषताओं और गुणों की पहचान करने का प्रयास करता है जो व्यक्ति के व्यवहार को प्रभावित करते हैं। व्यक्तित्व के लक्षण सिद्धांत का उद्देश्य यह समझना है कि हर व्यक्ति के व्यक्तित्व की विशिष्ट विशेषताएँ किस प्रकार विकसित होती हैं और ये विशेषताएँ किसी व्यक्ति के व्यवहार को प्रभावित कैसे करती हैं। लक्षण सिद्धांत का मानना है कि व्यक्तित्व के तत्वों का एक समूह होता है, जिन्हें 'लक्षण' कहा जाता है, और इन लक्षणों के आधार पर व्यक्तित्व का निर्माण होता है। यह सिद्धांत इस विचार पर आधारित है कि व्यक्ति के व्यवहार में निरंतरता और विशिष्टता होती है, जो लक्षणों के द्वारा परिभाषित की जाती है।

लक्षण सिद्धांत के प्रमुख प्रस्तावक गॉर्डन अलपोर्ट, रैयल्टी और कटकिंस हैं, जिन्होंने इस सिद्धांत को विस्तार से समझाया। लक्षण सिद्धांत के अनुसार, प्रत्येक व्यक्ति का व्यक्तित्व विभिन्न लक्षणों का संयोजन होता है, और इन लक्षणों के आधार पर हम किसी व्यक्ति के व्यवहार और मानसिक प्रक्रियाओं की भविष्यवाणी कर सकते हैं।

लक्षण वे स्थायी गुण होते हैं जो किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व के विभिन्न पहलुओं को परिभाषित करते हैं। ये लक्षण व्यक्ति के मानसिक, शारीरिक, और भावनात्मक पहलुओं को व्यक्त करते हैं। उदाहरण के लिए, कोई व्यक्ति आत्मविश्वासी, ईमानदार, संवेदनशील, या शर्मीला हो सकता है। इन गुणों के संयोजन से ही किसी व्यक्ति का व्यक्तित्व बनता है। लक्षण सिद्धांत के अनुसार, ये लक्षण अन्य लोगों से अलग होते हैं, इसलिए प्रत्येक व्यक्ति का व्यक्तित्व विशिष्ट और अनोखा होता है।

गॉर्डन अलपोर्ट को लक्षण सिद्धांत का प्रमुख प्रवर्तक माना जाता है। उन्होंने व्यक्तित्व के लक्षणों को तीन श्रेणियों में वर्गीकृत किया है: (1.) मुख्य लक्षण (CARDINAL TRAITS): मुख्य लक्षण वे लक्षण होते हैं जो किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व का केंद्रीय हिस्सा होते हैं। ये लक्षण व्यक्ति के व्यवहार और मानसिक प्रक्रियाओं को पूरी तरह से प्रभावित करते हैं। उदाहरण के लिए, एक व्यक्ति जो अत्यधिक निष्ठावान है, उसका यह मुख्य लक्षण उसके सभी व्यवहारों को प्रभावित करता है, जैसे उसकी काम के प्रति निष्ठा और व्यक्तिगत संबंधों में ईमानदारी। (2.) मनोदशात्मक लक्षण (CENTRAL TRAITS): ये लक्षण सामान्य होते हैं और व्यक्ति के व्यक्तित्व का प्रमुख हिस्सा बनते हैं, लेकिन ये मुख्य लक्षणों की तुलना में कम प्रभावी होते हैं। जैसे एक व्यक्ति जो सहायक,

धैर्यशील, या उदार हो सकता है, उसके मनोदशात्मक लक्षण होते हैं, जो उसकी अधिकांश क्रियाओं को प्रभावित करते हैं, लेकिन किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व का पूर्ण रूप नहीं होते। (3.) सतही लक्षण (SECONDARY TRAITS):

ये लक्षण व्यक्ति के व्यवहार के कुछ विशेष पहलुओं को परिभाषित करते हैं, लेकिन उनका प्रभाव व्यक्तित्व पर उतना गहरा नहीं होता। ये लक्षण व्यक्ति के जीवन की कुछ स्थितियों में प्रकट होते हैं, जैसे किसी विशेष परिस्थिति में व्यक्ति का व्यवहार। उदाहरण के लिए, किसी व्यक्ति का आहार संबंधी चुनाव या वह किस प्रकार की फिल्मों में रुचि रखता है, यह सतही लक्षणों का उदाहरण हो सकता है।

रैयल्टी और कटकिंस ने लक्षण सिद्धांत को और अधिक व्यावहारिक और वैज्ञानिक दृष्टिकोण से समझाने के लिए इसे संरचित किया। उन्होंने यह प्रस्तावित किया कि लक्षणों को मापने के लिए एक प्रणाली होनी चाहिए, जिससे व्यक्तित्व का विश्लेषण किया जा सके। इसके लिए उन्होंने 'विशिष्ट लक्षण सूची' का निर्माण किया, जिसमें 16 प्रमुख लक्षणों को परिभाषित किया गया, जैसे चिंता, उत्साह, आत्मविश्वास, परिश्रम, आदि। इन 16 लक्षणों को एक पैमाने पर मापा जा सकता है, ताकि किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व के विभिन्न पहलुओं को समझा जा सके। इस प्रणाली का उद्देश्य व्यक्तित्व के विभिन्न आयामों को अधिक सटीकता से समझना और मापना था।

लक्षण सिद्धांत ने व्यक्तित्व के अध्ययन को अधिक व्यवस्थित और मापने योग्य बनाया। इसके द्वारा, व्यक्ति के व्यवहार की भविष्यवाणी करना संभव हो गया, क्योंकि यह मानता है कि व्यक्ति के लक्षणों में स्थिरता होती है। उदाहरण के लिए, यदि किसी व्यक्ति को लगातार आत्मविश्वासी, ईमानदार, और सक्रिय पाया जाता है, तो हम यह अनुमान लगा सकते हैं कि वह व्यक्ति भविष्य में भी इस प्रकार का व्यवहार प्रदर्शित करेगा। इसके अलावा, लक्षण सिद्धांत ने व्यक्तित्व के विभिन्न पहलुओं को स्पष्ट रूप से विभाजित किया, जिससे यह समझना आसान हो गया कि किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व के किस पहलू का प्रभाव अधिक है। यह सिद्धांत व्यक्तिगत विकास, मानसिक स्वास्थ्य, और सामाजिक संबंधों को समझने में भी उपयोगी साबित हुआ है।

लक्षण सिद्धांत ने व्यक्तित्व के अध्ययन में महत्वपूर्ण योगदान दिया, लेकिन इसके कुछ आलोचक भी हैं। सबसे बड़ी आलोचना यह है कि यह सिद्धांत व्यक्तित्व की जटिलता को पूरी तरह से समझने में सक्षम नहीं है। मनोवैज्ञानिकों का मानना है कि लक्षणों के आधार पर व्यक्तित्व को समझना बहुत सीमित है, क्योंकि व्यक्ति का व्यवहार एक निश्चित स्थिति और परिवेश के अनुसार बदल सकता है। लक्षण सिद्धांत यह नहीं बताता कि एक व्यक्ति के व्यवहार में क्या कारण होते हैं या किसी विशेष परिस्थिति में व्यक्ति का व्यवहार कैसे बदल सकता है। इसके अलावा, इस सिद्धांत में लक्षणों की स्थिरता पर बहुत जोर दिया गया है, जबकि व्यवहारवाद और अन्य सिद्धांतों का मानना है कि व्यक्तित्व और व्यवहार परिवर्तनीय होते हैं और समय के साथ बदल सकते हैं।

सार रूप में, लक्षण सिद्धांत ने व्यक्तित्व के अध्ययन को एक नई दिशा दी है और यह हमारे जीवन के विभिन्न पहलुओं को समझने के लिए एक सटीक आधार प्रदान करता है। इस सिद्धांत के माध्यम से हम यह समझ सकते हैं कि किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व के विभिन्न तत्व उसे कैसे प्रभावित करते हैं, और वे किस प्रकार उसके व्यवहार, सोच और भावनाओं में प्रकट होते हैं। हालांकि इसके कुछ सीमाएँ हैं, फिर भी लक्षण सिद्धांत आज भी व्यक्तित्व के अध्ययन में एक महत्वपूर्ण सिद्धांत के रूप में लागू होता है।

निष्कर्ष:

व्यक्तित्व मनोविज्ञान का एक जटिल और बहुआयामी क्षेत्र है, जिसमें विभिन्न सिद्धांत और दृष्टिकोण व्यक्ति के विचारों, भावनाओं और व्यवहारों को समझने का प्रयास करते हैं। प्रत्येक सिद्धांत व्यक्ति के व्यक्तित्व विकास की एक अलग व्याख्या प्रस्तुत करता है, लेकिन यह स्पष्ट है कि व्यक्तित्व जैविक, सामाजिक और मनोवैज्ञानिक कारकों के संयोजन से निर्मित होता है। व्यक्तित्व का अध्ययन न केवल व्यक्तिगत विकास में सहायक है, बल्कि यह सामाजिक, व्यावसायिक और चिकित्सकीय क्षेत्रों में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. आर्थर जैम्स (2015), पर्सनालिटी थ्योरी एंड रिसर्च, विले एंड सन्स, न्यूयॉर्क
2. कैरोलिन लैंड्स (2017), पर्सनालिटी इन सोशल एंड पर्सनलिटी साइकोलॉजी, पियरसन, लंदन
3. जॉन डब्ल्यू. लार्सन (2012), डायनेमिक्स ऑफ पर्सनालिटी, हार्पर कॉलिंस, न्यूयॉर्क
4. गॉर्डन ऑलपोर्ट (1937), पर्सनालिटी: अ प्सिचोलॉजिकल इंटरप्रिटेशन, होल्ट, न्यूयॉर्क
5. रे ब्राउन (2009), ए सेंट्रल थ्योरी ऑफ पर्सनालिटी, रूटलेज, लंदन
6. जेनिफर लार्किन (2018), पर्सनालिटी एंड ह्यूमन बिहेवियर, पियरसन एजुकेशन, बOSTON
7. क्लारा रोड्रिगेज (2010), पर्सनालिटी एंड सोशल एटीट्यूड्स, नॉर्थवेस्टर्न यूनिवर्सिटी प्रेस, शिकागो
8. हेरमैन रॉस (2004), रॉस पर्सनालिटी थ्योरी, रूटलेज, लंदन
9. रेमंड कैटेल (1973), पर्सनालिटी स्टडी: एक साइकोलॉजिकल पर्सपेक्टिव, ए.वी. रॉयल्टी, न्यूयॉर्क
10. अर्नेस्ट क्रिस्टल (2011), थ्योरीज ऑफ पर्सनालिटी, विली, लंदन
11. डैनियल गोलमैन (1995), इमोशनल इंटेलिजेंस: क्यों यह सोच से अधिक महत्वपूर्ण है, बेंटम डेल, न्यूयॉर्क
12. कैरोल डेविस (2002), पर्सनालिटी थ्योरी एंड रिसर्च, बेलीमैन, शिकागो
13. पॉल टिगर (2015), द साइकोलॉजी ऑफ पर्सनालिटी: डायनामिक्स ऑफ पर्सनल ग्रोथ, ब्राउन एंड बेल, शिकागो

14. जॉर्ज जे. सिमोन (2017), साइकोलॉजिकल अडॉप्टिव पर्सनालिटी थ्योरी, विले एंड सन्स, न्यूयॉर्क
15. किट्टी हॉल (2020), थ्योरी ऑफ पर्सनालिटी और पर्सनल डिसऑर्डर, रूटलेज, लंदन
16. सिगमंड फ्रायड (1923), द ईगो एंड द आई, हॉपर एंड ब्रदर्स, न्यूयॉर्क
17. अब्राहम मैस्लो (1943), अ थ्योरी ऑफ ह्यूमन मोटिवेशन, हारपर एंड रो, न्यूयॉर्क
18. कार्ल जंग (1921), सिम्बोलिज्म इन द इंडिविजुएशन प्रोसेस, रूटलेज, लंदन
19. विलियम शेल्डन (1940), द वैरायटीज ऑफ ह्यूमन फिजिक, हरपर एंड ब्रदर्स, न्यूयॉर्क
20. एरिक एरिक्सन (1950), चाइल्डहुड एंड सोसाइटी, नॉर्टन एंड कंपनी, न्यूयॉर्क
21. क्लार्क हॉल (1953), थ्योरीज ऑफ पर्सनालिटी, वाइली, न्यूयॉर्क
22. कैरोलिन लैड्स (1970), द पर्सनालिटी थ्योरी ऑफ सिग्माड फ्रेड, पियरसन, लंदन
23. रॉल्फ गुंडर्सन (1975), थ्योरीज ऑफ पर्सनालिटी डेवलपमेंट, वाइली, न्यूयॉर्क
24. विक्टर फ्रैंकल (1946), मैन्स सर्च फॉर मीनिंग, बीकॉन प्रेस, बोस्टन
25. हैरी स्टैक सुलिवन (1953), इंटरपर्सनल थ्योरी ऑफ साइकोएटरी, नॉर्टन , न्यूयॉर्क

बाल अपराध के कारण तथा निवारण: एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

अनुजा कुमारी

शोधार्थी, गृह विज्ञान विभाग, जयप्रकाश विश्वविद्यालय छपरा, सारण (बिहार)

शोध आलेख का सारतत्व:

बाल अपराध एक जटिल सामाजिक समस्या है, जो तेजी से बढ़ते हुए समाज के लिए गंभीर चुनौती बन रही है। यह अध्ययन बाल अपराध के प्रमुख कारणों और उनके प्रभावी निवारण के उपायों का विश्लेषण करता है। बाल अपराध के पीछे पारिवारिक विघटन, आर्थिक असमानता, अशिक्षा, सामाजिक उपेक्षा और अनुचित संगति जैसे कई कारण होते हैं। इसके अतिरिक्त, मीडिया, इंटरनेट और डिजिटल प्रौद्योगिकी का बढ़ता प्रभाव भी बच्चों को अपराध की ओर प्रेरित कर रहा है। प्रस्तुत शोध आलेख से यह अपेक्षित है कि कमजोर पारिवारिक संरचना और उचित मार्गदर्शन की कमी बाल अपराध की संभावना को बढ़ाती है। किशोरावस्था में भावनात्मक अस्थिरता और समाज में स्वीकार्यता की खोज भी बच्चों को अपराध की ओर धकेल सकती है। इसके अलावा, आर्थिक तंगी के कारण बच्चों को जीविका के लिए अपराधिक गतिविधियों में शामिल होना पड़ता है। निवारण के उपायों में शिक्षा की भूमिका सबसे महत्वपूर्ण है। स्कूलों में नैतिक शिक्षा और जीवन कौशल कार्यक्रमों को अनिवार्य किया जाना चाहिए। समाज और परिवार के स्तर पर बच्चों के साथ संवाद और भावनात्मक जुड़ाव को बढ़ावा देना आवश्यक है। सरकार को किशोर न्याय प्रणाली को मजबूत बनाना चाहिए ताकि बाल अपराधियों का पुनर्वास प्रभावी रूप से हो सकता है। बाल अपराध की रोकथाम के लिए बहुआयामी दृष्टिकोण आवश्यक है जिसमें सरकार, समाज, परिवार और शिक्षा प्रणाली की संयुक्त भागीदारी हो। यदि इन बच्चों को सही मार्गदर्शन और सहयोग दिया जाए, तो वे समाज के जिम्मेदार नागरिक बन सकते हैं। इस शोध आलेख का उद्देश्य नीति निर्माताओं, शिक्षकों और सामाजिक संगठनों को इस समस्या की गहराई से समझ प्रदान करना है, ताकि एक सुरक्षित और संवेदनशील समाज की स्थापना हो सके।

प्रमुख शब्दावली: अपराध, मनोवृत्ति, प्रवृत्ति, ग्रहणशीलता, अनुकरण, अनुसरण, बाल मनोविज्ञान, मनोवैज्ञानिक कारण, सामाजिक कारण, आर्थिक कारण, संवेगात्मक अस्थिरता आदि।

प्रस्तावना:

बच्चों को ईश्वर का एक अनुपम उपहार कहा जा सकता है; अमूल्य ईश्वरीय कृति है तथा देश का भविष्य भी है। आज के बच्चा कल का भारत का भावी नागरिक है जिसके कंधे पर समाज निर्माण तथा राष्ट्र निर्माण का दायित्व है। यदि बालक का चरित्र ही खराब होगा, वह आपराधिक प्रवृत्तियों में लिप्त होगा-चोरी, डकैती, लूटपाट, आगजनी, ड्रग्स सेवन, मद्यपान, धूमपान आदि गंदी आदतों का शिकार होगा तो निश्चित ही राष्ट्र का विकास बाधित हो जाएगा। इसलिए यह जरूरी है कि बच्चों में आपराधिक प्रवृत्ति को रोका जाए।¹ वर्तमान में, बाल अपराध की समस्या न केवल माता-पिता एवं परिवारजनों के लिए ही एक विकट एवं गंभीर समस्या है, बल्कि सरकार के लिए भी एक चुनौति बनी हुई है। आए दिन समाचार पत्रों में कोई-न-कोई खबर बाल अपराध से संबंधित पढ़ने-सुनने को मिल ही जाता है। चाहे वह बलात्कार से संबंधित हो, ट्रेन डकैती एवं लूटपाट से संबंधित हो अथवा चौर सनैचिंग से। बालकों एवं किशोरों में बढ़ती आपराधिक प्रवृत्ति पर कैसे नियंत्रण किया जाए, उन्हें किस प्रकार रोका जाए, यह सम्पूर्ण विश्व के समक्ष एक ज्वलंत समस्या बनी हुई है। अभी तक यह देखने में आया है कि बाल अपराध को भी सामान्य अपराध की तरह हो देखा जाता है तथा इनके साथ भी उन अपराधियों की तरह ही व्यवहार किया जाता है। किशोर अपराधियों को दिग्गज व खूंखार अपराधियों के बीच उन्हीं के जेलों में बंद कर दिया जाता है जिसका परिणाम बहुत ही बुरा होता है। वहाँ ये किशोर इन खूंखार अपराधियों के साथ रहकर एक खतरनाक अपराधी बन जाते हैं और जेल से छूटने के बाद दुर्दान्त एवं वांटेड अपराधी बन जाते हैं। इसलिए आवश्यकता इस बात की है कि बाल अपराधियों के साथ प्रेमपूर्ण व्यवहार करके उनमें व्याप्त गंदी आदतों को सुधारा जाए न कि उन्हें खूंखार अपराधी बनाया जाए। आज मनोवैज्ञानिकों, विद्वानों एवं सरकार का ध्यान इस ओर गया है तथा बाल अपराध को एक महत्वपूर्ण विषय मानकर इस पर अध्ययन किया जा रहा है। मनोवैज्ञानिक इस बात पर जोर देते हैं कि बाल अपराध, वास्तव में, कोई अपराध नहीं है, बल्कि एक सामाजिक रोग है। इसलिए इस रोग के उचित इलाज एवं उपचार के लिए पुलिस, न्यायालय, मनोचिकित्सक आदि की व्यवस्था की गई है। कई सुधार गृह केन्द्र खोले गये हैं, और उन्हें सामान्य कैदियों के साथ जेलों में न रखकर सुधार गृहों/केन्द्रों में रखे जाते हैं। वहाँ इन पर विशेष ध्यान दिया जाता है। व्यावसायिक एवं औद्योगिक प्रशिक्षण देकर स्वावलम्बी एवं आत्म-निर्भर बनाया जाता है।²

बाल अपराध से आशय है कि जब कोई बालक सामाजिक नियमों को तोड़ता है, कानून को नहीं मानता है या नियम विरुद्ध कोई ऐसा कार्य/व्यवहार करता है जिससे समाज के लोगों को कष्ट होता है, दुख पहुँचता है, सरल शब्दों में, जाता है। “बालकों द्वारा किया जाने वाला अपराध ही बाल अपराध है। जैसे-अवारागर्दी, यौन दुराचार, झूठ बोलना, तोड़-फोड़ करना देर रात तक इधर-उधर घूमना, अश्लील व्यवहार करना, लूटपाट, चोरी, डकैती, आगजनी आदि में लिप्त रहना ड्रग्स एवं नारकोटिक्स का सेवन करना, किसी को चाकू मार देना, आदि अनेक ऐसे कुकृत्य हैं, जिसे बाल अपराध के अन्तर्गत रखा गया है। कई विद्वानों ने बाल अपराध को परिभाषित करने का प्रयास किया है। हीली ने कहा है कि “वह बालक जो समाज द्वारा निर्धारित व्यवहार के सामान्य प्रतिमान का अनुसरण नहीं करता है, बाल अपराध कहलाता है।” मॉर्टिन न्यूमर ने कहा है कि “बाल अपराध से तात्पर्य कोई ऐसा समाज विरोधी आचरण करने से है जो व्यक्तिगत तथा सामाजिक विघटन उत्पन्न करता है।” सिरिलबर्ट के अनुसार “उस बालक को अपराधी बालक कहना चाहिए जिसकी असामाजिक प्रवृत्तियाँ इतनी गंभीर हो जाएँ कि जिसके प्रति शासन कार्यवाही करे अथवा कार्यवाही करना आवश्यक हो जाए।” सेलिम एवं बुलफेंग के अनुसार “बाल अपराध एक निश्चित आयु सीमा के बालक का गैर कानूनी आचरण है। वह आचरण जो अपने गंभीरतम परिणामस्वरूप उस बच्चे को एक संस्था में तब तक रखने का कारण बन सकता है, जब तक कि वह बालक वयस्क नहीं हो जाता।” डॉ. सेठाना ने कहा है कि “बाल अपराध से तात्पर्य किसी स्थान विशेष के नियमों के अनुसार एक निश्चित आयु से कम के बच्चे अथवा किशोर के द्वारा किये जाने वाले अपराध हैं।” बाल अपराध पर दिए गए विद्वानों के इन परिभाषाओं के आधार पर स्पष्ट रूप में यह कहा जा सकता है कि “बालकों द्वारा किया जाने वाला ऐसा कोई भी कुकृत्य जो समाज विरोधी हो, कानून को भंग करता हो और जिससे समाज के लोगों को कष्ट पहुँचता हो, बाल अपराध कहलाता है।”

बाल अपराध के अर्थ के सम्बन्ध में कानूनविदों, समाजशास्त्रियों, शिक्षा शास्त्रियों, अपराध शास्त्रियों ने अपने अलग अलग मत प्रकट किये हैं। कानून के दृष्टिकोण से जब कोई बालक समाज के नियमों, कानूनों, आदर्शों व मूल्यों के विरुद्ध आचरण करता है, तब वह अपराध कहलाता है। भारत में 7 वर्ष से अधिक, किन्तु 12 वर्ष से कम आयु के ना समझ बच्चे को अपराधी नहीं माना गया है।¹ रिफॉर्मेटरी स्कूल एक्ट, 1897 (Reformatory School Act, 1897) के अनुसार, 16 वर्ष तक की आयु के बालकों द्वारा किया गया समाज विरोधी कार्य बाल अपराध के अन्तर्गत आता है। किन्तु यही उम्र सीमा सभी देशों में लागू नहीं है। विभिन्न देशों में किशोर बालकों के उम्र को लेकर भिन्न-भिन्न मत हैं।

भारत में “बाल अपराध” को एक निश्चित रूप प्राप्त हुआ है।² इस अधिनियम की धारा (2) के अन्तर्गत “किशोर”, ‘अपचारी किशोर’ तथा उपेक्षित किशोर आदि को स्पष्ट शब्दों में परिभाषित किया गया है। किशोर न्याय अधिनियम की धारा (2) (5) के अनुसार किशोर से अभिप्राय ऐसा लड़का जिसने 16 वर्ष की आयु प्राप्त नहीं की है अथवा ऐसी लड़की जिसने 18 वर्ष की आयु प्राप्त नहीं की है।³

किशोर न्याय अधिनियम के अनुसार “उपेक्षित किशोर” को भी परिभाषित किया गया है।⁴ इस अधिनियम की प्रमुख विशेषता है कि उपेक्षित किशोरों की देखभाल तथा संरक्षण की व्यवस्था की जाए। किशोर अधिनियम की धारा के अनुसार उपेक्षित किशोर से तात्पर्य है: (i) जो भीख मांगता हो, अथवा (ii) ऐसे किशोर जिसका कोई घर या निश्चित स्थान नहीं तथा जीवन निर्वाह के लिए कोई दृश्यमान साधन नहीं है, जो निराश्रित हैं (iii) जिसके माता-पिता या संरक्षक किशोर पर नियंत्रण रखने में असमर्थ हैं या अयोग्य हैं, अथवा (iv) जिसका अनैतिक या अवैध प्रयोजनों अथवा लोकात्मक विरुद्ध लाभ के लिए दुरुपयोग या शोषण किया जा रहा है, अथवा किये जाने की संभावना है, अथवा (v) जो वेश्या के साथ वेश्यागृह में रहता है या ऐसे स्थान पर पाया जाता है कि वह किसी वेश्या या किसी ऐसे अन्य व्यक्ति का संग करता है जो अनैतिक या दुराचारी जीवन व्यतीत करता है।⁵

बाल अपराध के प्रकार भी बताये जाते हैं। बाल अपराध के अन्तर्गत वे सभी प्रकार के कुकृत्य सम्मिलित किये गये हैं जो 12 वर्ष से अधिक उम्र के बालकों व किशोरों द्वारा किये जाते हैं तथा सामाजिक नियमों, प्रथाओं, परम्पराओं, रीति-रिवाजों आदि के प्रतिकूल होते हैं व कानून द्वारा निषिद्ध होते हैं। अतः बाल अपराध में यदि सामाजिक तथा कानून दोनों को ही दृष्टिकोणों को सम्मिलित कर लिया जाए तो निम्नानुसार व्यवहार करने वाले बालक बाल अपराध के अन्तर्गत आते हैं: चोरी करना, मारपीट व लड़ाई-झगड़ा करना, झूठ बोलना, यौन अपराध, अवज्ञाकारी होना, धोखा देना, विद्यालय से भागना, आवारागर्दी, विध्वंसात्मक कार्य करना, जुआ खेलना, शराब पीना, धूम्रपान, ड्रग्स, नारकोटिक्स आदि का सेवन करना, हड़ताल करना, आत्महत्या एवं दूसरों की हत्या करना, बेईमानी करना आदि।

बाल अपराध न केवल भारत की एक प्रमुख सामाजिक समस्या है, बल्कि विश्व के अनेक देश इस समस्या से गंभीर रूप से पीड़ित हैं। किशोरों में उद्वेगता, हिंसा, बलात्कार, चौरा स्नैचिंग विद्यालय से भागना, चोरी करना, तोड़-फोड़, ड्रग्स, अल्कोहल मद्यपान करना, आदि प्रवृत्तियाँ बढ़ती जा रही हैं। यद्यपि इन्हें रोकने के लिए कानूनी स्तर पर, सरकार द्वारा कई ठोस कदम उठाये गये हैं, परन्तु अब तक आशातीत सफलता नहीं मिल पायी है। चारों ओर आतंकवाद की दहशत है। यदि लूटपाट, आतंकवाद, नक्सलवादी गतिविधियों का अध्ययन किया जाए तो उसमें जो भी अपराधी लिप्त हैं, उनमें से अधिकांश किशोर ही होंगे। किशोरों को विध्वंसात्मक प्रशिक्षण देकर तैयार किया जाता है तथा इनसे बम विस्फोट, हत्या, लूटपाट, आतंक, आदि विनाशकारी कृत्य करवाये जाते हैं। इसी प्रकार नक्सलवादी गतिविधियों में किशोरों की महत्वपूर्ण भूमिका रहती है। अब प्रश्न यह उठता है कि आखिरकार बालक अपराध क्यों करते हैं? जिन हाथों में कलम-किताब होनी चाहिए, खेलने का गेंद, फुटबाल एवं अन्य सामान होना चाहिए उन हाथों में चाकू, बंदूक, बम, राइफल एवं अन्य विनाशकारी हथियार क्यों रहते हैं? किशोर अपराध की ओर क्यों प्रवृत्त हो रहे हैं? यह वास्तव में एक विचारणीय प्रश्न है। चिन्तन, मनन का विषय है। यह भी देखा गया है कि एक L.A.S., I.P.S. नामी-ग्रामी डॉक्टर इंजीनियर, दूसरे प्रतिष्ठित पदों पर आसीन अधिकारियों के पुत्र-पुत्रियाँ भी अपराध जगत की ओर प्रवृत्त हो रहे हैं। वहीं दूसरी ओर अभावों की दुनिया में में जी रहे माता-पिता के किशोर बालक भी ईमानदारी से काम करके मेहनत-मजदूरी करके, कृषि कार्य करके अपना तथा अपने परिवार का पालन-पोषण कर रहे हैं। आखिरकार इस प्रकार की विभिन्नता क्यों है? यह विभिन्नता व्यक्तिगत, वंशानुगत, पारिवारिक एवं वातावरणीय कारणों से सम्बन्धित हो सकती है।

बाल अपराध के कई कारण हैं, जिनमें प्रमुख कारणों की चर्चा आवश्यक है। बाल अपराध का एक प्रमुख कारण अनुवांशिक बताया जाता है। पहले लोगों का ऐसा मानना कि बाल अपराध जन्मजात प्रवृत्ति होती है अर्थात् अपराध वंशानुगत होते हैं। जिनके माता-पिता, दादा-दादी, नाना-नानी अथवा अन्य पूर्वज

अपराधी प्रवृत्ति के रहे हैं तो उनके पीढ़ियों में भी अपराधी प्रवृत्ति स्वतः ही समाहित हो जाती है। अतः ‘चोर की संतान चोर ही होगा’, ‘डाकू की संतान डाकू होगा’ आदि। डॉ. मंडल ने भी वंशानुक्रम को बाल-अपराध के लिए एक महत्वपूर्ण कारक माना है-” उनके अनुसार बाल अपराधी मानसिक रूप से दोषपूर्ण होते हैं तथा यह दोष जन्मजात होता है। यह अयोग्यता कुछ परिवारों में तेजी से पायी जाती है तथा अनुवांशिक हो जाती है। पीढ़ी-दर-पीढ़ी चली आ रही मानसिक बीमारियों से भी बाल अपराध विकसित होता है।” हैली ने अपने अनुसंधानों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला कि 15-30 प्रतिशत तक अपराध अनुवांशिक कारणों से होते हैं। वैलेन्टाइन का भी ऐसा ही मानना है कि “वंशानुक्रम गुण अपराधिक प्रवृत्तियों को प्रोत्साहित करते हैं।” अनुवांशिक कारणों के अन्तर्गत अन्तः स्त्रावी ग्रंथियों की कार्यप्रणाली में दोष, वयः संधि का जल्दी आगमन, शारीरिक रचना एवं बनावट, शारीरिक दोष आदि आते हैं, जो बालकों को अपराध प्रवृत्ति की ओर धकेलते हैं। अपराधी माता-पिता के जुड़वाँ बच्चों पर भी बाल अपराध से संबंधित अनेक अध्ययन हुए हैं तथा यह निष्कर्ष निकला है कि “यद्यपि उन्हें दो अलग-अलग वातावरण में पाला- पोषा गया था, मगर उन दोनों में समान रूप से आपराधिक प्रवृत्ति पायी गई। यह पूरी तरह सही नहीं है कि चोर का बेटा चोर ही होगा और डकैत का बेटा डकैत। इसके लिए वातावरण भी जिम्मेदार है। रामायण एवं महाभारत में भी इस बात की पुष्टि मिलती है। राक्षस कुल में जन्मे एवं पले-बढ़े रावण का भाई विभीषण भी अत्यंत ही सात्विक, धर्मात्मा एवं भगवद्भक्त निकला। इसी प्रकार राक्षस कुल का हिण्यकश्यप का पुत्र प्रह्लाद भी अत्यंत ही धर्मात्मा एवं भगवत् प्रेमी निकला। अतः यह पूर्ण रूप से सत्य नहीं है कि वंशानुगत कारक ही केवल बाल अपराध के लिए जिम्मेदार है बल्कि अनेक ऐसे कारण हैं जो बाल अपराध को बढ़ावा देते हैं।

द्वितीय, बाल अपराध के पीछे पारिवारिक कारण भी उत्तरदायी होता है।¹⁰ बालकों को बाल अपराध की ओर धकेलने में परिवार के सदस्यों एवं माता-पिता की प्रमुख भूमिका होती है जिसे कदापि नकारा नहीं जा सकता। बालक यकायक चोर, डकैत, भ्रष्ट या बलात्कारी नहीं बनता। उनमें आपराधिक प्रवृत्ति धीरे-धीरे ही विकसित होती है। ग्लूक्स ने अपने अध्ययन के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला कि प्वालक के भावी जीवन में आपराधिकता निश्चित करने में परिवार का सर्वोच्च स्थान होता है।” बालक अपने माता के आँचल में, पिता के गोद में तथा परिवार के सदस्यों की छत्र-छाया में पल-बढ़कर ही नैतिक मूल्यों को सीखता है। वे ही उनमें सच्चाई, मित्रता, कर्तव्यनिष्ठता, सहिष्णुता, सहानुभूति, दया, करुणा, त्याग आदि मानवीय गुणों को सिखाते हैं। उनके सर्वांगीण विकास में महत्वपूर्ण योगदान देते हैं। हैं। यदि वे अपने कर्तव्यों का सही ढंग से पालन करें तो कोई कारण नजर नहीं आता कि बालक अपराध की ओर अग्रसर होंगे।

पारिवारिक कारणों के अन्तर्गत अग्रलिखित स्थितियाँ काफी हद तक जिम्मेदार होती हैं: विघटित परिवार को उत्तरदायी माना जा सकता है। विघटित परिवार के अन्तर्गत वे परिवार आते हैं जिसमें माँ-बाप में से किसी एक की अथवा दोनों की मृत्यु हो गयी हो अथवा आपसी कलह-क्लेश के कारण उनमें सम्बन्ध विच्छेद हो गया हो तथा वे तलाक लेकर अलग रह रहे हों अथवा माँ बाप में से कोई एक घर छोड़कर चला गया हो। इसे कदापि नकारा नहीं जा सकता है कि बालकों के लालन-पालन, शिक्षा-दीक्षा में माता-पिता की महत्वपूर्ण भूमिका है। परन्तु टूटे परिवार के कारण बच्चे प्रेम, स्नेह, सहानुभूति से वंचित रह जाते हैं। उनमें माता-पिता की कमी निरंतर खलते रहती है, जो उनके मस्तिष्क में उलझनें एवं तनाव उत्पन्न करती है। फलतः उनमें द्वेष, ईर्ष्या, घृणा, उद्दण्डता आदि पनप जाती है। उनका मन घर में नहीं लगता है। वे ज्यादा-से-ज्यादा समय तक घर से दूर रहना पसंद करते हैं। ऐसी स्थिति में यदि उनकी दोस्ती अपराधिक प्रवृत्ति वाले लोगों से हो जाती है, तब वे भी अपराधी प्रवृत्ति के हो जाते हैं। होले एवं ब्रेनर-ने अपने अध्ययन के आधार पर यह पाया कि शिकागो में 4000 बाल अपराधियों में से 50 प्रतिशत बालक अर्थात् लगभग 2000 बालक विघटित परिवार के ही थे। अर्द्ध विघटित परिवार में माता- पिता दोनों ही नौकरी करते हैं तथा 12-14 घंटे घर से बाहर रहते हैं, वह परिवार अर्द्ध विघटित परिवार की श्रेणी में आता है। ऐसी स्थिति में माता-पिता अपने बालकों पर पूरा ध्यान नहीं दे पाते हैं। उन्हें पूरा प्यार-दुलार, स्नेह नहीं मिल पाता है। वे स्वयं थके होने के कारण बालकों को ही डाँटते-फटकारते रहते हैं। ऐसी स्थिति में बालकों के बिगड़ने की तथा उनके अपराधी बनने की संभावना प्रबल हो जाती है।

अपराधी परिवार भी एक उत्तरदायी कारण है। जिन परिवारों में माता-पिता दोनों ही अपराधी किस्म के हों अथवा उनमें से कोई भी एक अपराधी प्रवृत्ति के हों तो उस परिवार में पले-बढ़े बालकों के अपराधी होने की संभावना बढ़ जाती है। कई बार बिन ब्याही लड़कियाँ भी ‘माँ’ बन जाती हैं और अर्वाचित संतानों को जन्म देती हैं। ऐसी स्थिति में वह लाजवश अपने शिशु को कहीं फेंक आती हैं अथवा किसी निसंतान या गरीब परिवार को पालन-पोषण हेतु दे देती हैं, अथवा कहीं सस्ते दामों में बेच आती हैं। तब बालक का समुचित पालन-पोषण नहीं हो पाता है। उसे भरपूर प्यार-दुलार नहीं मिल पाता है। ऐसी स्थिति में बालक आपराधिक प्रवृत्ति का हो सकता है। जब माता-पिता में से कोई एक सौतेला हो तथा बालक के साथ बुरा व्यवहार करते हों, उन्हें अक्सर मारते-पीटते रहते हों, तब बालक अपने-आपको उपेक्षित महसूस करने लगते हैं तथा अपराधिक प्रवृत्तियों की ओर उन्मुख हो जाते हैं। परिवार विम्व आर्थिक स्थिति भी बालक को आपराधिक प्रवृत्ति की ओर ढकलतों निम्न आर्थिक स्थिति में पलने वाले बालकों को आवश्यक आवश्यकता की पूर्ति तकलता है। जिन है। ऐसी स्थिति में बालक खाने-पीने, रहने, सोने के लिए तरस जाता है। फलतः कहे जुनी अंगत में पड़कर अनैतिक आचरण करने वाला बन जाता है। जिन परिवारों का आकार बहुत ही बड़ा हो, आश्रित सदस्यों की संख्या अधिक हो। तब ऐसी स्थिति में बालकों पर बहुत अधिक ध्यान अगर्ने दिया जाता है। माता-पिता अपने-अपने कार्यों में लगे रहते हैं। परिणामतः बालक अपने- आपको उपेक्षित महसूस करता है तथा गलत दिशा में अपना कदम बढ़ा देता है। वे हीन भावना एवं कुंठा से ग्रसित हो जाते हैं तथा अपराधिक प्रवृत्ति की ओर उन्मुख हो जाते हैं। कुछ परिवारों में, माता-पिता जाने-अनजाने में ही कभी एक बालक-बालिका को बहुत अधिक प्यार दुलार करते हैं जबकि दूसरे बालक को इतना अधिक प्यार दुलार नहीं करते हैं। इतना ही नहीं, वे हर समय उनको कमियों को इँढते रहते हैं तथा डाँटते-फटकारते रहते हैं। ऐसी स्थिति में, परिवार में अनुशासन नहीं रहता है तथा बालकों के विपड़ने व अपराधिक होने की संभावना प्रबल हो जाती है। वर्तमान में, अन्तर्जातीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय विवाह का प्रचलन बढ़ने लगा है। ऐसी स्थिति में माता-पिता दोनों ही बालक को अपने- अपने तरीके से पालन-पोषण करना चाहते हैं, शिक्षा-दीक्षा देना चाहते हैं। इस कारण कभी- कभी उनमें आपस में ही टकराव व तनाव की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। बालक यह समझ नहीं पाता है कि वह क्या करें, क्या नहीं करे, किसकी बात माने, किसकी बात नहीं माने? इस उहापोह की स्थिति से बचने के लिए वह अधिकांश समय घर से दूर, अपने दोस्तों के साथ रहना चाहता है। फिर धीरे-धीरे गलत संगति में पड़कर अपराध की दुनिया में कदम रख देता है तथा अपराधी बन जाता है। कई परिवार के सदस्य स्वयं ही अनैतिक कार्यों में लिप्त रहते हैं। चोरी करना, जुआ खेलना, ड्रग्स् व शराब का सेवन

करना आदि उनकी आदत हो जाती है। ऐसी स्थिति में बालक के अपराधिक होने की संभावना काफी हद तक बढ़ जाती है, क्योंकि बालक अच्छे-बुरे गुणों को सबसे पहले अपने माता-पिता एवं परिवार के सदस्यों से ही सीखता है। किशोर-किशोरियाँ अपने दोस्तों की बातों को जितना अधिक मानते हैं, उतना वे अपने माता-पिता, भाई-बहनों की बातों को भी नहीं मानते हैं। मित्र ही उनके लिए आदर्श होते हैं। परन्तु यदि उनके यार-दोस्त, मित्र-मंडली ही अपराधिक प्रवृत्ति के हैं, तो बालक के अपराधी होने की संभावना बढ़ जाती है। एक सुप्रसिद्ध कहावत है यदि आप किसी व्यक्ति के बारे में जानना चाहते हैं, तो उनके दोस्तों से मिलिये। उनके दोस्त जिस प्रकार के होंगे, बालक की आदतें, स्वभाव आदि भी उसी प्रकार का होगा। यदि पड़ोस बुरा है, पड़ोसी बोरी, डकैती, बदमाशी, नशाखोरी, रिश्वतखोरी, लूटमार आदि गतिविधियों में लिप्त है तो शलक में भी इन बुरी प्रवृत्तियों का समावेश हो जाता है और धीरे-धीरे वह भी बुरी संगत में, पढ़कर अपराधी प्रवृत्ति का हो जाता है।

किशोरावस्था में तीव्र गति से शारीरिक विकास होता है। इस कारण वे शारीरिक दृष्टि से जल्दी ही परिपक्व हो जाते हैं परन्तु बौद्धिक वा मानसिक दृष्टि से वे अभी तत्र परिपक्व नहीं हो पाते हैं। ऐसी स्थिति में वे बुरी संगति में पड़कर बुरे आचरण करने वाले बन जाते हैं। एडॉल्फ क्वेहिलेह में इस सन्दर्भ में लिखा भी है, “किशोरावस्था में जब शारीरिक बल और जोश अपने चरम सीमा पर होते हैं, परन्तु विवेक इनके संयुक्त प्रभाव पर नियंत्रण रखने के लिए परिपक्व नहीं होता है, तब अपराध करने की प्रवृत्ति और बलवती हो जाती है।” सरलियोन रेडझिनोविक ने भी अपनी प्रतिक्रिया कुछ इसी प्रकार से व्यक्त की है- “किशोरों के निर्भीक स्वभाव, असीम उत्साह, शारीरिक बल, विलक्षण सहनशक्ति, दूरदर्शिता की कमी, तथा साहसिक प्रवृत्ति के कारण हिंसात्मक वारदातों में उनकी भागीदारी सबसे अधिक होती है।” जब बालकों में यौन ग्रंथियों का विकास तीव्रता से होता है, तब उसमें कामेच्छा की भावना बढ़ जाती है। वे यौन इच्छाओं की पूर्ति के लिए गलत कदम उठाते हैं तथा काम सम्बन्धी अपराध करने के लिए विवश हो जाते हैं। ऐसी स्थिति में वे हस्तमैथून करने लग जाते हैं। कई बार समलिंगी दुराचार करने लग जाते हैं। लड़के-लड़कियों के साथ छेड़छाड़ करते हैं। जिन किशोर-किशोरियों में अंतः स्त्रावी ग्रंथियों का विकास ठीक प्रकार से नहीं हो पाता है, उनमें कई प्रकार के शारीरिक दोष प्रकट हो जाते हैं। ऐसे बच्चे असामान्य रूप से, लम्बे, नाटे, मोटे, दुर्बल आदि होते हैं। उन्हें कोई भी अपना दोस्त बनाना नहीं चाहता है। फलतः वे हीन भावना, निराशा एवं कुंठा से ग्रस्त हो जाते हैं तथा अपराध की ओर उन्मुख हो जाते हैं। अतः स्पष्ट है कि शारीरिक विकृति अथवा दोष के कारण बच्चों में विभिन्न प्रकार की बीमारियाँ हो जाती हैं, जिससे उनमें हीन भावना उत्पन्न हो जाती है और वे अपराध की दुनिया में शरण लेने लग जाते हैं।

बाल अपराध के पीछे आर्थिक कारण भी होता है। निर्धनता एक अभिशाप है। यह सभी पापों व अपराधों की जड़ है। बर्ट नाम के विद्वान ने अपने अध्ययन के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला कि बाल अपराधियों में लगभग आधे बाल अपराधी निर्धन परिवार के होते हैं। भूख से तड़पते और बेहाल बालक कोई-सा भी पापकर्म करने लग जाते हैं। वे किसी भी तरह का दुराचार करने को उद्यत हो जाते हैं। वे दर-दर भीख मांगने को तैयार हो जाते हैं। परन्तु जब उनका पेट भीख मांगने से भी नहीं भरता है, तब वे दूसरी तरह के अपराधों में लिप्त हो जाते हैं। लड़कियाँ वेश्यावृत्ति में लिप्त हो जाती हैं तथा घिनौना जीवन जीने के लिए अभिशप्त होती हैं। लड़के चोरी, डकैती, पॉकेटमारी आदि गतिविधियों में लिप्त हो जाते हैं। रेलवे स्टेशन के किनारे, बस स्टैण्ड के पीछे, नदी-नाले के किनारे जो गरीबों की बस्तियाँ होती हैं, झुग्गी-झोपड़ियाँ होती हैं, जिनमें सामान्य सुविधाओं का भी अभाव होता है। एक छोटे से कमरे में पूरे परिवार को रहना पड़ता है। ऐसी स्थिति में माता-पिता तथा किशोर-किशोरियाँ एक ही कमरे में सोते हैं। वह अक्सर अपने माता-पिता को यौन संभोग करते हुए देख लेते हैं तथा उनमें भी यौन संभोग की इच्छा जागृत हो जाती है। अतः वे यौन दुराचार में लिप्त हो जाते हैं। इतना ही नहीं, झुग्गी-झोपड़ियों में। पले-बढ़े बालक दूसरे प्रकार के दुराचार व अपराध करने में अग्रसर होते हैं। यह सही है कि निर्धनता के कारण बालक अपराध प्रवृत्ति की ओर उन्मुख हो जाते हैं। वहीं अति सम्पन्नता एवं अमीरी भी उन्हें बिगाड़ कर रख देती है। इसका प्रमुख कारण है कि उन्हें माता-पिता द्वारा भी अधिक लाड़-प्यार मिलता है तथा अनाप-शनाप पैसे खर्च करने को मिलते हैं। माता-पिता स्वयं भी क्लबों में, सिनेमाघरों में, किटी पार्टी आदि में समय और धन व्यय करते हैं, और ऐय्याशी करते हैं। फलतः बालक भी माता-पिता का अनुसरण करते हुए धूम्रपान, मद्यपान, ड्रग्स, नारकोटिक्स, वेश्यावृत्ति आदि में लिप्त हो जाते हैं। आए दिन अखबारों में पढ़ने-लिखने को मिलता है कि ट्रेन डकैती, लूटपाट, बलात्कार, त्या, चोरी, अपहरण आदि अपराधिक गतिविधियों में आइ.ए.एस, आइ.पी.एस. के पुत्र संलिप्त हैं। अधिक धन-दौलत के कारण उनमें गलत आदतें विकसित हो जाती हैं। उन्हें ऐय्याशी करने के लिए धन चाहिए होता है मगर उन्हें इतना अधिक धन अपने माता-पिता से नहीं मिल पाता है। फलतः वे चोरी, डकैती, आदि क्रियाओं द्वारा आसानी से धन अर्जित करना चाहते हैं और इसी कारण अपराध की दुनिया में अपना कदम रख देते हैं।

बेकारी भी बाल अपराध का एक कारण है “खाली मन शैतान का अड्डा होता है।” खाली बैठे किशोर के मन में कई तरह की भ्रांतियाँ, विभिन्न प्रकार के अपराध करने की बातें मन-मस्तिष्क में झंकृत होते रहती हैं। बेकारी व बेरोजगारी इसका सबसे बड़ा कारण है। किशोरावस्था तक बालक यह अच्छी तरह से समझ जाता है कि उन्हें अब अपने पैरों पर खड़े होने की आवश्यकता है ताकि वे अपने दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु स्वयं धन अर्जित कर सकें। परन्तु रोजगार मिलना इतना आसान नहीं होता। यदि वे दुकानों पर, पोस्ट ऑफिस में, एल.आई.सी आदि में एजेंट बनकर या छोटे बच्चों को ट्यूशन पढ़ाकर धन अर्जित करते भी हैं तो इससे उन्हें इतना अधिक पैसा नहीं मिलता कि उनकी आवश्यक आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके। यह तो “कैंट के मुँह में जीरा” वाली कहावत को चरितार्थ करती है। उसे कोई दूसरा रोजगार व धंधा भी नहीं मिलता है जिससे कि वह अधिक-से-अधिक धन अर्जित कर सके। किशोर कम-से-कम समय में अधिक-से-अधिक धन कमाना चाहते हैं और इसी प्रयास में वे अपराध की दुनिया में कदम रख देते हैं।

पारिवारिक वातावरण ही नहीं, बल्कि सामाजिक व सांस्कृतिक वातावरण भी बालक को अपराध की दुनिया में धकेलने में सहायक सिद्ध होती है। बालक का आस-पड़ोस जैसा होता है, उसके मित्र जिस तरह के होते हैं, उन्हीं की तरह बालक आचरण व व्यवहार करने लगता है। सामाजिक कारणों के अन्तर्गत स्वस्थ मनोरंजन का अभाव प्रमुख कारण है। जब बालकों को स्वस्थ मनोरंजन के साधन उपलब्ध नहीं हो पाते हैं, तब उनका मन इधर-उधर भटकने लगता है। वे तरह-तरह की बातें सोचने लगते हैं। उनके मस्तिष्क में अपराधिक प्रवृत्तियाँ पनपने लगती हैं तथा वे अपराध की ओर उन्न ख हो जाते हैं। मार-धाड़, जासूसी आदि गंदी फिल्मों के देखने से बालक के मन में भी इसी तरह के कुकृत्य करने की इच्छा जागृत होती है। वे भी पिक्चर के नायक की तरह व्यवहार

करना चाहते हैं। अभी कुछ वर्ष पूर्व अखबारों में पढ़ने को मिला था कि एक किशोर ने बैंक में घुसकर, उसके लॉकर के ताले तोड़कर पैसे निकाले। मगर उसने लॉकर के ताले किस प्रकार तोड़े यह विस्मय की बात है। किशोर बालक ने लॉकर के ताले बिल्कुल ही फिल्मी अंदाज में तोड़े। वह ताले पर हथौड़ा तभी मारता जब घंटा घर की घड़ी रात्रि 1, 2, 3 बजाती और उससे आवाज निकलती। घड़ी की आवाज और हथौड़े की आवाज दोनों ही मिल जाते। इस बात की भनक वहाँ बाहर तैनात गार्ड तक को भी नहीं लग पाई। उस किशोर बालक ने स्वयं ही बैंक डकैती के बाद पुलिस के समक्ष आत्म समर्पण कर दिया तथा यह बताया कि उसने एक फिल्म में इसी तरह से बैंक के लॉकर के ताले तोड़ते हुए देखा है। अतः स्पष्ट है कि गंदी फिल्में किस हद तक किशोर के मन में छाप छोड़ती हैं।

बालक के कोमल मन-मस्तिष्क पर अश्लील फिल्मों के साथ ही अश्लील साहित्य का भी बुरा प्रभाव पड़ता है। अक्सर किशोर- किशोरियाँ अश्लील साहित्य को पढ़ते हैं और अपना मनोरंजन करते हैं। ये अश्लील साहित्य गंदे चित्रों, हिंसक वारदातों, यौन-संबंधों से भरे पड़े होते हैं। अतः बालक जब इस प्रकार के गंदे चित्रों को देखता है, तथा पढ़ता है तब उनके भीतर भी कुछ ऐसी ही करने की लालसा प्रकट हो जाती है और वे अपराध की दुनिया में अपना कदम रख देते हैं। इसलिए बालक को गंदे साहित्य को पढ़ने से रोकना चाहिए।

वर्तमान में किशोर किशोरियाँ पाश्चात्य संस्कृति, उनके वेश भूषा, पहनावे आदि को आँख मूँदकर अपनाने लगे हैं। वे भारतीय संस्कृति के मूल्यों, मान्यताओं, परम्पराओं, विश्वासों एवं रीति-रिवाजों पर भयंकर प्रहार करते हैं। उनके मन में भारतीय संस्कृति के प्रति कोई लगाव नहीं है, कोई चाहत नहीं है, अतः वे इसकी आलोचना करते हैं। पहले भारतीय संस्कृति में शादी से पूर्व लैंगिक सहवास किया जाना बिल्कुल ही खराब माना जाता था। परन्तु वर्तमान में, किशोर-किशोरियाँ इसे गलत नहीं मानती हैं, तथा वे शादी पूर्व केवल मनोरंजन के लिए यौन संभोग को अच्छा मानती हैं, जो पाश्चात्य संस्कृति की ही देन है। इसी प्रकार किशोर-किशोरियाँ शरीर से बिल्कुल ही सटे व चिपके हुए वस्त्र पहनना पसंद करने लगे हैं, जिसमें उनके अंगों का उभार स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। किशोरियाँ चटक चट रंगों की टी-शर्ट तथा कन्ट्रास्ट रंग के जीन्स पैट पहनने लगी हैं। इससे उनके बदन का एक-एक अंग बाहर की ओर झाँकता नजर आता है। ऐसी स्थिति में यदि कोई ऐसी घटनाएँ बटित भी हो जाएँ तो कोई आश्चर्य की बात नहीं होगी। क्योंकि लड़कियाँ स्वयं ही अपराध करने के लिए अपराधियों को खुला आमंत्रण देती हैं। इसलिए हमें अपना संस्कृति को अपनाकर, भारतीय वेशभूषा धारण कर शालीन वस्त्र पहनने चाहिए तथा अपराध की ओर प्रवृत्त होने से बचना चाहिए।

बालकों को घर-परिवार में तथा स्कूल में झूठ न बोलना, चोरी नहीं करना, सेवा कार्य करना आदि आदर्श बातें सिखायी जाती हैं। मगर वही समाज में इसके ठीक विपरीत होते देखता है। अतः वह भ्रमित हो जाता है तथा सोचता है कि झूठ बोलने से अपना काम आसानी से निकल जाता है, जबकि सच बोलने से काम अटक जाता है। अतः बालक झूठ बोलना प्रारंभ कर देता है। और यहीं से वह अपराध की दुनिया में कदम रखना शुरू कर देता है, जहाँ से लौटकर आना आसान नहीं होता।

विद्यालय का गंदा वातावरण भी बालक को अपराध की ओर ढकेलने में प्रमुख भूमिका निभाता है। इसके कई कारण हैं, जैसे घर से विद्यालय की दूरी होती है तथा बालक को रोज ही 2-3 किलोमीटर पैदल चलकर आना पड़ता है, तब ऐसी स्थिति में बालक गलत संगत में पड़कर अपराध की ओर प्रेरित हो सकता है, क्योंकि उसे पता होता है कि इतनी दूर तो उसके माता-पिता उसे देखने पैदल चलकर नहीं आएँगे। अतः बालक विद्यालय न जाकर किसी होटल, रेस्तरां डाले, पार्क, बगीचा आदि में चला जाता है तथा टिफिन खाकर, ऐश-मौज करके फिर शाम ढलने से पूर्व अपने घर लौट आता है। इस बीच यदि उनकी दोस्ती अपराधी प्रवृत्ति के बालकों के साथ होती है, तब बालक भी धीरे-धीरे इन्हीं आदतों को सीख लेता है और अपराधी बन जाता है। यदि बालकों की रुचियों, योग्यताओं व बुद्धि के अनुसार कार्य नहीं दिया जाता है तो उसके अपराधी बनने की संभावना प्रबल हो जाती है। वे सिगरेट, बीड़ी पीने लग जाते हैं। गुटखा खाने लग जाते हैं। वर्तमान शिक्षा पद्धति भी बालक को अपराध की ओर उन्मुख करने के लिए जिम्मेदार है। वर्तमान शिक्षा पद्धति बेरोजगारी को जन्म दे रही है। परीक्षा में वही घिसे पीटे 5 प्रश्नों के उत्तर लिखने होते हैं। इस पर भी बालक यही सोचता है कि वे प्रश्न-पत्र को किसी तरह से “आउट” (out) करवा दें। इसके लिए वे तरह-तरह के अनुचित साधनों का प्रयोग करते हैं, जो ठीक नहीं हैं। यदि बालक परीक्षा में असफल हो जाता है तब वह घर से भाग जाता है अथवा जहर को गोली खाकर या ट्रेन से कूदकर आत्महत्या कर लेता है।

बालक अपने अध्यापक को ही आदर्श मानते हैं। वह बड़ा होकर उन्हीं की तरह बनना चाहते हैं। परन्तु जब शिक्षक ही अनाचार में लिप्त हैं, कर्तव्य पालन में आनाकानी करते हैं, समय के पाबंद नहीं हैं, भ्रष्टाचार में लिप्त हैं, विद्यार्थियों से कक्षा में गंदी गंदी बातें करते हैं तब बालक में भी इन्हीं प्रवृत्तियों का अंकुर फूटने लग जाता है। वे भी उन्हीं की तरह आचरण करने लग जाते हैं तथा दुराचारी बन जाते हैं।

जब किशोर-किशोरियों को सही दिशा-निर्देश नहीं दिया जाता है, उचित प्रकार से मार्गदर्शन नहीं दिया जाता है, तब वे गलत विषयों का चुनाव कर लेते हैं तथा प्रतियोगी परीक्षा में असफल हो जाते हैं। बेकारी उनके सम्मुख सुरसा के मुँह की तरह निगलने को तैयार खड़ी रहती है। अतः वे उससे बचने के लिए आसान राह ढूँढ़ निकालते हैं तथा अपराध की दुनिया में कदम रख देते हैं।

विद्यालय में स्वस्थ मनोरंजन के साधनों का होना भी जरूरी है। मगर वर्तमान में कई स्कूल हैं जो गली-कूचों में खोल दिये गये हैं। 1-2 कमरे को ही स्कूल बना दिया गया है। वहाँ न तो खेल का मैदान होता है और न ही खेल सामग्री। अतः बालक खेलकूद में भाग नहीं ले पाता है। इस कारण उसके संवेग भीतर ही दबे रह जाते हैं। ये दबे हुए संवेग उनके व्यवहार को जटिल बना देते हैं। फलतः वे अप्रत्यक्ष रूप से अपराध वृत्ति को जन्म देने में सहायक सिद्ध होते हैं। बड़े-बड़े शहरों व महानगरों में व्यक्तिगत शिक्षा केन्द्र खोले गये हैं जहाँ बालक पढ़ने-लिखने व कोचिंग करने आते हैं। परन्तु यहाँ पढ़ाई कम और दूसरे गलत कार्य अधिक होते हैं। कई बार ये केन्द्र “सरस्वती का मंदिर” न होकर “गुंडा गर्दी का केन्द्र” हो जाते हैं। फलतः बालक अपराध प्रवृत्तियों की ओर प्रवृत्त हो जाता है।

बालक को अपराध की ओर धकेलने में राजनीति का भी बड़ा हाथ होता है। कई राजनैतिक पार्टियाँ छात्रों को चुनाव में घसीटने का प्रयत्न करती हैं। उनसे प्रचार-प्रसार करवाती हैं। विभिन्न प्रकार के राजनीतिक कार्यों में भाग लेने के लिए प्रोत्साहन देती हैं। महाविद्यालयों/विश्वविद्यालयों में छात्र पार्टी बनाकर

छात्र संघ का चुनाव लड़ते हैं तथा जीत जाने पर विश्वविद्यालय/महाविद्यालय की उन्नति के लिए तो कम काम करते करते हैं। हाँ! राजनीतिज्ञों के इशारे पर हड़ताल, तोड़-फोड़, आगजनी, सार्वजनिक सम्पत्ति को हानि पहुँचाने आदि अनेक कार्य अधिक करते हैं। 2-4 बार ऐसा करने से उनमें नेता बनने का मिथ्याभिमान उत्पन्न हो जाता है। फलतः वे महाविद्यालय में कमजोर छात्रों के साथ मारपीट करना, उनका सामान छेन लेना, परीक्षा में नकल की कोशिश करना, शिक्षकों के साथ दुर्व्यवहार करना, परीक्षक को धमकी देना, महाविद्यालय की संपत्ति को नुकसान पहुँचाना आदि कार्यों में लिप्त हो जाते हैं। जब बालकों की मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं हो पाती है, उन्हें पूरा लाड़, प्यार, स्नेह-दुलार नहीं मिल पाता है तो उनमें अपराध प्रवृत्ति जागृत हो जाती है। मनोवैज्ञानिक कारणों में से निम्न कारण अधिक जिम्मेदार हैं जो बाल अपराध को बढ़ावा देते हैं। अधिक तीव्र बुद्धि के बालक भी अपराधी प्रवृत्ति के हो जाते हैं, विशेषकर जब उनके लायक रोजगार नहीं मिलता है। इसी प्रकार मंद बुद्धि के बालक भी धूम्रपान, मद्यपान, वेश्यावृत्ति, पाकेटमारी आदि गलत कार्यों में संलिप्त हो जाते हैं। अधिक प्रभुत्वशाली वातावरण में पलने-बढ़ने वाले बालकों में अपराधी बनने की प्रवृत्ति प्रबल हो जाती है, क्योंकि वे माता-पिता के डर से अपने भीतर छिपे संवेगों को दबाये रखते हैं। परन्तु वे संवेग भीतर-ही-भीतर उनके व्यवहार को जटिल बना देते हैं। यद्यपि वे संवेगों को दबाकर रखते हैं, परन्तु उसकी चिनगारी अंदर-ही-अंदर भड़कती रहती है जो उचित मौका पाकर धधक उठती है। इसी प्रकार अधिक ढीले अनुशासन में पलने-बढ़ने वाले बालकों में भी अपराधी प्रवृत्ति के होने की संभावना अधिक रहती है। जब किशोर बालक-बालिकायें प्रेम-प्रसंगों में अथवा प्रतियोगी परीक्षाओं में असफल हो जाते हैं तो उनके भीतर हीन भावना एवं कुंठा पनपने लगती है। हीन भावना के कारण उनके व्यवहार में दब्युपन आ जाता है। वहीं वे कुंठा की स्थिति में आक्रामक एवं तीखे तेवर वाले हो जाते हैं। ऐसे बालकों में अपराधी होने की आशंका प्रबल हो जाती है। बालकों के तीव्र संवेग भी उन्हें बाल अपराध की ओर धकेलने में सहायक सिद्ध होते हैं। ईर्ष्या, क्रोध, घृणा आदि नकारात्मक संवेग के कारण बालक गाली-गलौज करने लग जाते हैं। यहाँ तक कि वे दूसरों की हत्या करने से भी नहीं चूकते हैं। इसी प्रकार अति तीव्र प्रेम संवेगों से उनमें बलात्कार की प्रबल इच्छा जागृत हो जाती है और वे घृणित कुकृत्य कर बैठते हैं। आए दिन पत्र-पत्रिकाओं व अखबारों में पढ़ने-सुनने को मिलता है कि एक किशोर बालक ने 16 वर्ष की किशोर बालिका के मुँह पर तेजाब फेंक दिया क्योंकि वह उससे मन-ही-मन प्रेम करता था और यौन संबंध स्थापित करना चाहता था। मगर लड़की ने उसके प्रेम संबंधों को ठुकरा दिया था। इसी प्रकार प्रेमिका ने अपने प्रेमी की हत्या केवल इसलिए कर दी कि क्योंकि वह अब उससे प्रेम न करके किसी दूसरी लड़की से प्रेम करने लगा था, आदि-आदि। बालक के जीवन में जब निरंतर असफलता ही हाथ लगती है तो वह निराशाओं के गहरे सागर में समा जाता है। ऐसी स्थिति में वह इन निराशाओं से मुक्ति पाने का प्रयत्न करता है और अपराध की दिशा में प्रवृत्त हो जाता है। जब बालक मानसिक रूप से विक्षिप्त होता है अथवा वह कोई मानसिक रोग से ग्रसित होता है, तब वह कई प्रकार के जघन्य अपराध कर बैठता है। यहाँ तक कि वह अपने ही माता-पिता, भाई-बहनों की हत्या कर देता है। कुछ बालक तुरंत इच्छा पूर्ति एवं निजी स्वार्थ के लिए भी अपराध की दुनिया में कदम रख देते हैं। उनके मन में धन कमाने की तीव्र लालसा होती है। वे एन-केन प्रकारेण धन कमाना चाहते हैं, क्योंकि वे यह भली-भाँति जानते हैं कि धन यदि ईश्वर नहीं है तो ईश्वर से किसी भी प्रकार से कम नहीं है। उसकी ऐसी धारणा तथा धन कमाने की उत्कट लालसा ही उसे अपराध की ओर धकेलती है और वह चोरी, डकैती, लूटपाट आदि करने लग जाता है।

क्रो एवं क्रो नाम के विद्वान का मानना है कि किशोर अपराध के पीछे आत्म चेतना एवं स्वार्थ जैसे कारक विद्यमान होते हैं। स्वार्थी बालकों में सुझाव ग्रहणशीलता तथा अनुकरणशीलता की प्रवृत्ति अधिक पायी जाती है। अतः वे दूसरे के बहकावे में आकर तथा प्रलोभन का शिकार होकर गलत आचरण एवं व्यवहार कर बैठते हैं।

बाल अपराध के समाधान के लिए एक समग्र और बहुआयामी दृष्टिकोण की आवश्यकता है जिसमें परिवार, समाज, सरकार और शिक्षा प्रणाली की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। बाल अपराध को रोकने के लिए सबसे पहले इसके मूल कारणों को समझना आवश्यक है। आर्थिक असमानता, अशिक्षा, पारिवारिक विघटन, भावनात्मक असंतुलन और सामाजिक उपेक्षा जैसी समस्याएं बच्चों को अपराध की ओर धकेलती हैं।

शिक्षा बाल अपराध की रोकथाम का एक महत्वपूर्ण माध्यम है। बच्चों के जीवन में शिक्षा का महत्व सिर्फ ज्ञान तक सीमित नहीं होता, बल्कि यह उन्हें नैतिक मूल्यों, अनुशासन और जिम्मेदारी का बोध कराती है। स्कूलों में नैतिक शिक्षा, जीवन कौशल और व्यक्तित्व विकास कार्यक्रमों को शामिल किया जाना चाहिए। बच्चों को यह सिखाया जाना चाहिए कि वे समाज के प्रति उत्तरदायी हैं और उनके कार्यों के परिणाम होते हैं। परिवार बच्चों के विकास का सबसे महत्वपूर्ण स्तंभ है। माता-पिता और अभिभावकों को बच्चों के साथ संवाद और भावनात्मक जुड़ाव बढ़ाने की आवश्यकता है। बच्चों की समस्याओं को समझकर और उन्हें प्यार और सुरक्षा का माहौल देकर बाल अपराध की संभावना को कम किया जा सकता है। अभिभावकों को चाहिए कि वे बच्चों को अच्छी संगति और सकारात्मक वातावरण में रखें। समाज को भी बाल अपराध रोकने में सक्रिय भूमिका निभानी चाहिए। सामाजिक संगठनों, गैर-सरकारी संस्थाओं और स्थानीय निकायों को ऐसे कार्यक्रम चलाने चाहिए जो बच्चों के लिए रचनात्मक गतिविधियों को प्रोत्साहित करें। खेल, कला, संगीत और अन्य रचनात्मक माध्यमों के जरिए बच्चों की ऊर्जा को सकारात्मक दिशा दी जा सकती है। सरकार को किशोर न्याय प्रणाली को अधिक संवेदनशील और प्रभावी बनाना चाहिए। किशोर न्याय अधिनियम के तहत बाल अपराधियों का पुनर्वास और सुधार पर ध्यान केंद्रित किया जाना चाहिए। इसके अलावा, कमजोर और आर्थिक रूप से पिछड़े बच्चों के लिए विशेष शिक्षा और पुनर्वास केंद्रों की स्थापना की जानी चाहिए। नशा, तस्करी और बाल श्रम जैसे मुद्दों पर कठोर कानूनों का पालन करवाना आवश्यक है ताकि बच्चे अपराध की ओर आकर्षित न हों। मीडिया और तकनीक के प्रभाव को नियंत्रित करना भी बाल अपराध की रोकथाम में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। बच्चों को साइबर अपराध और डिजिटल खतरों से बचाने के लिए जागरूकता अभियान चलाए जाने चाहिए। माता-पिता को चाहिए कि वे बच्चों के ऑनलाइन गतिविधियों पर नजर रखें और उन्हें इंटरनेट के सुरक्षित उपयोग की शिक्षा दें। आखिरकार, बाल अपराध का समाधान समाज में समावेशी विकास और समानता के माध्यम से ही संभव है। जब बच्चों को शिक्षा, सुरक्षा और प्यार मिलेगा, तो वे अपराध की ओर जाने के बजाय समाज के निर्माण में योगदान देंगे। सभी हितधारकों को मिलकर एक ऐसा वातावरण बनाना होगा जिसमें बच्चे स्वस्थ, सुरक्षित और आत्मनिर्भर बन सकें।

निष्कर्ष:

अब तक के शोध आलेख के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि बाल अपराध एक बहुआयामी समस्या है, जो सामाजिक, आर्थिक, मनोवैज्ञानिक और पारिवारिक कारकों के परिणामस्वरूप उत्पन्न होती है। पारिवारिक विघटन, गरीबी, अशिक्षा, मानसिक अस्थिरता और अनुचित संगति जैसे कारण बाल अपराध की प्रमुख जड़ें हैं। इसके अलावा, तकनीक और मीडिया का बढ़ता प्रभाव बच्चों को हिंसा और अपराध की ओर आकर्षित कर सकता है। बाल अपराध की रोकथाम के लिए शिक्षा, परिवार और समाज की सक्रिय भागीदारी आवश्यक है। नैतिक शिक्षा, जीवन कौशल कार्यक्रम और खेलकूद जैसी रचनात्मक गतिविधियाँ बच्चों के मानसिक और भावनात्मक विकास में सहायक सिद्ध होती हैं। परिवार के स्तर पर बच्चों के साथ संवाद और उनके मानसिक स्वास्थ्य का ध्यान रखना महत्वपूर्ण है। सरकारी स्तर पर किशोर न्याय प्रणाली को मजबूत बनाने और बाल अपराधियों के पुनर्वास पर ध्यान केंद्रित करने की आवश्यकता है। गैर-सरकारी संगठनों और सामुदायिक प्रयासों के माध्यम से बच्चों को सकारात्मक दिशा दी जा सकती है। बाल अपराध की समस्या का समाधान तभी संभव है जब समाज, सरकार और परिवार मिलकर एक ऐसा सुरक्षित वातावरण बनाएँ जहाँ बच्चों का संपूर्ण विकास हो सके और वे समाज के जिम्मेदार नागरिक बन सकें।

संदर्भ सूची:

1. शर्मा, डॉ. एन. के. (2015), जुवेनाइल डेलीक्वेंसी: कॉसेज एंड सॉल्यूशंस, पियरसन एजुकेशन इंडिया, नई दिल्ली, पृ- 240
2. तथैव, पेज 40 - 42
3. ग्लूक शेल्टन और ग्लूक एलेनर, 1950, यूनिरावेलिंग जुवेंइल डिलीक्वेसी, हार्वर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस अमेरिका, पृष्ठ- 41
4. सेठना डॉ. एम.जे., 1965 सोसाइटी एंड द क्रिमिनल, एन. एम. त्रिपाठी प्राइवेट लिमिटेड, मुंबई, पेज- 14- 17
5. आई.पी.सी. धारा - 83
6. किशोर अधिनियम 1986
7. तथैव
8. तथैव, अधिनियम 2 (6)
9. तथैव
10. यादव डॉ.राम निवास, 2010 बाल अपराध: कारण और निवारण, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ - 84-96

आधुनिक गृहों में फर्नीचर की प्रभावशाली व्यवस्था: एक अध्ययन

पूनम कुमारी

शोधार्थी, गृह विज्ञान विभाग, जयप्रकाश विश्वविद्यालय छपरा सारण (बिहार)

शोध आलेख का सारतत्व:

प्रस्तुत शोध आलेख में आधुनिक गृहों में फर्नीचर की प्रभावशाली व्यवस्था के महत्व और इसकी भूमिका का अध्ययन अपेक्षित है। फर्नीचर केवल एक सजावटी वस्तु नहीं है, बल्कि यह गृह की कार्यक्षमता, आराम, सौंदर्य और मानसिक शांति में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। शहरीकरण और बढ़ती जनसंख्या के कारण स्थान की कमी के चलते आधुनिक गृहों में फर्नीचर की व्यवस्था को अत्यधिक सोच-समझकर किया जाना आवश्यक है। प्रस्तुत शोध आलेख विभिन्न गृहों में फर्नीचर के वैज्ञानिक चयन, स्थान के अनुकूल व्यवस्था और उपयोगिता पर केंद्रित है। वर्तमान समय में छोटे तथा बड़े घरों में बहुउद्देशीय और मॉड्यूलर फर्नीचर की बढ़ती लोकप्रियता को देखा जा सकता है। इसके अलावा, गृह विज्ञान के सिद्धांतों के आधार पर फर्नीचर के स्थान निर्धारण और उपयोग की व्यावहारिक विधियों का अध्ययन भी महत्वपूर्ण हो गया है। इसलिए इस शोध आलेख में यह अध्ययन अपेक्षित है कि किस प्रकार फर्नीचर की सही व्यवस्था न केवल स्थान बचाती है, बल्कि गृह के सौंदर्य और आराम को भी बढ़ाती है। फर्नीचर के डिजाइन, सामग्री और रंग चयन के माध्यम से गृह का आंतरिक वातावरण किस प्रकार प्रभावित होता है? प्रस्तुत शोध आलेख गृह विज्ञान के छात्रों, इंटीरियर डिजाइनरों और गृहस्वामियों के लिए उपयोगी सिद्ध हो सकता है, जो अपने गृहों में अधिकतम सुविधा और सौंदर्य के लिए फर्नीचर की प्रभावशाली व्यवस्था की तलाश कर रहे हैं। अंत में, इस शोध आलेख से प्राप्त निष्कर्ष गृहों में समग्र संतुलन और सौंदर्यबोध के साथ-साथ कार्यक्षमता के महत्व को भी स्पष्ट कर सकते हैं।

महत्वपूर्ण शब्दावली: इंटीरियर डिजाइन, फर्नीचर अरेंजमेंट, अभिक्षमता विकास, आराम और सुकून, आधुनिक गृह सज्जा, फर्नीचर तथा शयन कक्ष अरेंजमेंट, सौंदर्य आदि।

प्रस्तावना:

गृह विज्ञान के अंतर्गत गृह सज्जा को अध्ययन का एक महत्वपूर्ण विषय माना जाता है। घर की सजावट में फर्नीचर का अत्यन्त हो महत्वपूर्ण स्थान है। आज फर्नीचर हमारे जीवन की अभिन्न अंग बन चुका है। फर्नीचर एक सजे-संवरे घर की महती आवश्यकता बन गई है। इसका उद्देश्य न केवल घर को सजाना होता है, बल्कि यह विभिन्न क्रियाओं को करने में सुविधा प्रदान करता है व व्यक्ति की क्रियाशीलता को बढ़ाता है। धकावट कम करता है तथा शक्ति की बचत करता है। उदाहरणार्थ-नीचे जमीन पर बैठकर वस्त्र धोने में अधिक ऊर्जा व्यय होती है। साथ ही शीघ्र थकान हो जाती है। परन्तु यदि वस्त्र धुलाई का कार्य बौकी या पीढ़ा पर बैठकर किया जाए तो कम ऊर्जा व्यय होती है। इसी तरह बैठकर प्रेस करने से अधिक थकान होती है। यदि प्रेस करने की क्रिया खड़े होकर की जाए तो कम ऊर्जा व्यय होती है, साथ ही थकान भी कम होती है। अतः फर्नीचर व्यक्ति की क्रियाशीलता में वृद्धि करता है।

फर्नीचर (Furniture) अंग्रेजी भाषा का शब्द है जिसका तात्पर्य है-मेज, कुर्सी, पलंग, बुकरैक, आलमारियाँ, तख्त (Hard Bed), चारपाई, सोफा, बेंच, मोढ़ा, डेस्क आदि। विभिन्न शब्दों में फर्नीचर का अर्थ घर के चलायमान उपकरणों से है जो सज्जा हेतु घर में, होटल में, निजी संस्थानों में अथवा सरकारी दफ्तरों में उपयोग में लिये जाते हैं, जैसे-मेज, कुर्सी, पलंग, सोफा सेट, डेस्क, आलमारियाँ, चारपाई आदि। यद्यपि प्रत्येक परिवार की आवश्यकता एक समान नहीं होती परन्तु अनिवार्य आवश्यकता सभी को लगभग एक जैसी ही होती है। निम्न आय वर्ग का व्यक्ति जहाँ केवल खाट, बेंच, स्टूल, पटरा, मोढ़ा से अपना काम चलाता है वहीं उच्च आय वर्ग का व्यक्ति सुन्दर, आकर्षक एवं नवीन डिजाइनों के फर्नीचर का उपयोग करते हैं। फर्नीचर का उपयोग अत्यन्त प्राचीन समय से, घरों में होता आया है। ऐसा माना जाता है आज से हजारों वर्ष पूर्व सबसे पहले इसका उपयोग मिस्र में होता था। फिर धीरे-धीरे इसको आवश्यकता, उपयोगिता एवं महत्ता को विश्व के अनेक देशों ने स्वीकारा। आज फर्नीचर निर्माण एवं विकास में काफी प्रगति हुई है। फर्नीचर के बगैर हमारा जीवन ही अधूरा लगता है।

फर्नीचर की आवश्यकता और महत्त्व को कई रूप में देखा जा सकता है: सर्वप्रथम, फर्नीचर की आवश्यकता तथा अरेंजमेंट व्यक्ति की कार्यक्षमता को बढ़ा देता है। फर्नीचर वाक़ि की कार्यक्षमता को बढ़ाने में अमूल्य भूमिका निभाता है। प्रेस करते समय यदि प्रेस करने वाली मेज का उपयोग किया जाए तो व्यक्ति को कम से कम थकान होती है तथा वह खड़े होकर अधिकाधिक वस्त्रों को प्रेस कर सकता है। इसी तरह अध्ययन कक्ष में अध्ययन मेज (Study Table) एवं कुर्सी होने से पढ़ने लिखने में सुविधा रहती है। अध्ययन में मन लगा रहता है। वहीं पढ़ने लिखने का कार्य जमीन पर बैठकर करने में कष्ट का अनुभव होता है। द्वितीय, इससे श्रम एवं समय की बचत (Saving of Labour and Time) भी होती है। फर्नीचर विविध कार्यों को करने में सुगम तो बनाता

ही है साथ ही समय एवं श्रम की भी बचत करता है। बार-बार नीचे (जमीन) पर उठने बैठने में अधिक श्रम लगता है। साथ ही कई ऐसे कार्य भी हैं जिन्हें जमीन पर बैठकर करने में अधिक समय लगता है तथा कई प्रकार की कठिनाइयाँ भी सहन करनी पड़ती हैं। शयन कक्ष में चारपाई, पलंग अथवा दीवान होने से बार-बार बिस्तर लगाने, प्रातः होते ही पलंग को बाहर निकालने फिर रात्रि को पलंग लगाने का झंझट नहीं रहता है। परिणामतः समय एवं शक्ति की बचत होती है। इसी तरह रसोईघर में उपयुक्त ऊँचाई पर आलमारी होने से सामान निकालने रखने के लिए बार-बार उठना नहीं पड़ता है। बैठक कक्ष में सोफा अथवा कुर्सी मेज लगे होने से आगंतुकों को बिठाने एवं स्वागत करने में परेशानी नहीं होती।

तृतीय, फर्नीचर की व्यवस्था से आरामदायक रहन-सहन की सुविधा प्राप्त होती है। फर्नीचर हमारे रहन-सहन को सुविधापूर्ण एवं आरामदायक बनाता है। प्रत्येक कक्ष में उचित फर्नीचर व्यवस्था से कार्यों को करने में सुगमता होती है। अतः व्यक्ति को क्रियाशीलता बढ़ती है। व्यक्ति उत्साहपूर्वक अपने कार्यों को शीघ्रता से सम्पन्न कर लेता है तथा उसे आनन्द, सुख एवं खुशी की अनुभूति होती है। उदाहरणार्थ- भोजन कक्ष में डाइनिंग टेबुल होने से परिवार के सदस्य आराम से भोजन कर लेते हैं। यदि घर में बूढ़े-बुजुर्ग हैं, तो उन्हें जमीन पर उठने-बैठने में काफी परेशानी आती है। ऐसी स्थिति में उचित फर्नीचर उन्हें आरामदायक जीवनयापन में मदद करता है। उदाहरण-गठिया के रोगी को जमीन पर बैठकर भोजन करने और फिर उठकर हाथ-मुँह धोने जाने में काफी परेशानी होती है। इसी तरह शयन कक्ष में पहले से पलंग बिछे होने तथा उस पर बिस्तर लगे होने से सोते समय असुविधा नहीं होती है और न ही सुबह जल्दी उठकर बिस्तर समेटने की आवश्यकता होती है। चतुर्थ, वस्तुओं के संग्रहण हेतु भी फर्नीचर की आवश्यकता तथा फर्नीचर व्यवस्था को महत्वपूर्ण माना जाता है। विभिन्न सामग्रियों को उचित स्थान पर सुरक्षित तरीके से संग्रहण में फर्नीचर का अमूल्य योगदान होता है, जैसे-किताब, कापियाँ, बर्तन, कपड़े, घरेलू उपकरण, खाद्य सामग्री आदि। इनके बिना चीजों को सुरक्षित रख पाना अत्यन्त ही कठिन काम होता है। वस्त्रों या किताबों के संग्रहण के उचित अभाव में दौमक, तिलचट्टे, चूहे, कोट आदि इन्हें नष्ट कर जाते हैं। कपड़ों को चूहे कुतर-कुतर कर बर्बाद कर देते हैं। जमीन पर वस्तुएँ पड़ी रहने से कई वस्तुओं में सौलन आ जाता है। अतः वस्तुओं की सुरक्षा होती है। आजकल फर्नीचर बहुपयोगी उद्देश्यों (Multipurpose) से बनायी जाती है। उदाहरण- पलंग या दीवान में ही बक्से की व्यवस्था करना, अध्ययन मेज में कई खाने/दराज बनाना, श्रृंगार मेज में कई खाने बनाकर कई सामानों को संग्रह करने के लिए स्थान बनाना, आलमारी में ही बनसे, उपकरण, वस्त्र आदि रखने हेतु विभिन्न आकार के खाने बनाना, सोफा सेट में हो वस्तुएँ रखने हेतु खाने बनाना आदि। पंचम, उत्तम स्वास्थ्य की प्राप्ति हेतु भी फर्नीचर को आवश्यक माना जाता है। फर्नीचर व्यक्ति को स्वस्थ रखने एवं उत्तम जीवनयापन में अमूल्य योगदान देते हैं। हम सभी ऐसा महसूस करते हैं कि फर्नीचर के बिना जीवन अत्यन्त ही नीरस, कष्टप्रद एवं कठिनाइयों से भरा हो जाता है। उठना, बैठना, पढ़ना, सोना, लेटना, आराम करना, सभी कुछ में कठिनाइयाँ ही कठिनाइयाँ उत्पन्न हो जाती हैं। इतना ही नहीं, बरसात में जमीन पर सोने से साँप, बिच्छ, कनगोजर, छिपकली एवं अन्य जहरीले कीड़ों को काटने का भय रहता है। निम्न आय वर्ग के लोग इन जहरीले कीड़ों का सबसे अधिक शिकार होते हैं। गरीबी के कारण, उनके पास खाट या चारपाई तक नहीं होती। फलतः जमीन पर वे टाट या पुवाल बिछाकर सोते हैं। जिसके कारण वे जहरीले जीवों के शिकार हो जाते हैं तथा असमय ही उनकी मृत्यु हो जाती है। अखबारों में आए दिन ऐसी घटनाएँ पढ़ने को मिलती हैं। गठिया के रोगी व्यक्तियों, वृद्धों, बच्चों के लिए तो बार-बार जमीन पर से उठना-बैठक बेहद ही कष्टकारक कार्य है। नवजात शिशु को जमीन पर लिटाने से उसे जल्दी ही सड़ों, जुकाम, बुखार, लू आदि लग जाती है। अतः फर्नीचर स्वास्थ्य की सुरक्षा में असीम योगदान देता है। षष्ठी, आधुनिक गृह सज्जा के लिए भी फर्नीचर को आवश्यक माना जाता है। फर्नीचर का उपयोग गृह सज्जा में किया जाता है। ये घर की सुन्दरता एवं आकर्षण वृद्धि में चार चाँद लगा देते हैं। फर्नीचर के बिना गृह सज्जा की कल्पना नहीं की जा सकती है। फर्नीचर से प्रत्येक कक्ष की भव्यता, शालीनता एवं अलंकरण में द्विगुणित वृद्धि हो जाता है। नक्काशीदार आलमारियाँ, आधुनिक डिजाइनों के शो केस, सोफा सेट, मेज आदि घर की सुन्दरता को अलौकिक एवं अद्भुत रूप प्रदान करते हैं। एक छोटा-सा घर भी इनके सुन्दर प्रयोग से खिल उठता है। अन्त में, वर्तमान समय में फर्नीचर की व्यवस्था सामाजिक प्रतिष्ठा बढ़ाने में भी सहायक बन गया है। कीमती व आधुनिक फर्नीचर व्यक्ति को समाज में मान-सम्मान एवं प्रतिष्ठा दिलाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। फर्नीचर एवं सजावट के माध्यम से परिवार के व्यक्तित्व तथा रुचि का पता चलता है। सुन्दर फर्नीचर वैभव एवं सम्पन्नता का प्रतीक होता है, जिसके कारण व्यक्ति को समाज में मान-सम्मान एवं प्रतिष्ठा मिलती है।

आधुनिक गृह में विभिन्न कमरे में फर्नीचर की व्यवस्था अलग-अलग रूप में किया जाता है, आज जिससे न केवल कमरे की सुंदरता बढ़ती है, बल्कि उसमें रहने वाले व्यक्ति को सुकून और सुख भी मिलता है। प्रस्तुत शोध आलेख में अलग-अलग कमरे में फर्नीचर व्यवस्था के स्वरूप को प्रस्तुत किया जा रहा है। सबसे पहले बैठक कक्ष (Drawing Room) में फर्नीचर को प्रभावशाली तरीके से व्यवस्थित करने पर चर्चा करना आवश्यक है। बैठक कक्ष में अतिथियों का स्वागत, आवभगत व मेहमानचाजी किया जाता है। परिवार के सदस्य फुर्सत के क्षणों में बैठकर बौत करते हैं, मनोरंजन करते हैं और कई बार गम्भीर मसले को भी सुलझाते हैं। रेडियो सुनने, टेपरिकार्ड पर संगीत का आनन्द लेने, टेलीविजन देखने, लूडो व कैरम खेलने, पत्र पत्रिकाएँ, अखबार आदि पढ़ने का कार्य भी बैठक कक्ष में ही किया जाता है। कई बार आवश्यकता पड़ने पर बैठक कक्ष का उपयोग ऑफिस अथवा क्लिनिक के रूप में भी किया जाता है। अतः बैठक कक्ष में फर्नीचर की व्यवस्था सुन्दर, आरामदायक, लुभावना, मनोहारी एवं सुविधाजनक होना चाहिए ताकि सौन्दर्यता के साथ ही कार्यात्मकता के उद्देश्यों की भी पूर्ति हो सके। बैठक कक्ष को सुव्यवस्थित एवं सुसज्जित करने के लिए सोफा सेट, पढ़ने-लिखने के लिए अध्ययन मेज व व कुर्सियाँ, व पुस्तक रखने के लिए आलमारियाँ जिसमें काँच लगा हो, बुक रैक, कोर्नर टेबुल, लकड़ी का तख्त या दीवान होनी चाहिए। इसके अतिरिक्त 7-8 आरामदायक कुर्सियाँ एवं सुन्दर व आकर्षक मूढ़े होने चाहिए। मेज में दराजें होनी चाहिए ताकि आवश्यक कागजातों को उसमें व्यवस्थित करके रखा जा सके। साथ ही टेबुल लैम्प, कोर्नर टेबुल, टेपरिकार्ड रखने हेतु उपसाधन आदि की भी व्यवस्था की जानी चाहिए। कुर्सियाँ हल्की परन्तु मजबूत एवं टिकाऊ होनी चाहिए ताकि आवश्यकता होने पर आसानी से उठाया जा सके। फर्नीचर की सज्जा इस तरह से किया जाना चाहिए कि वे आकर्षण का केन्द्र बनें। आमतौर पर बैठक कक्ष सभी कमरों से बड़ा होता है। अतः इसमें फर्नीचर को संख्या इतनी होनी चाहिए ताकि 6-8 व्यक्ति आराम से बैठ सकें। फर्नीचर सुन्दर, आकर्षक, मोहक एवं आरामदायक होना चाहिए। फर्नीचर का रंग इस तरह का होना चाहिए जो जल्दी गंदा नहीं हो। फर्नीचर यदि सजावटी है तो अन्य उपसाधन, यथा-पर्दे, कुशन, कालीन, दरी, बेड कवर आदि सादे डिजाइन के होने चाहिए। परन्तु यदि फर्नीचर सादे डिजाइन का है तब उपसाधन सजावटी होनी चाहिए। इससे सज्जा खिल जाती है। बैठक कक्ष में रेडियो, वी.सी.आर., बी.सी.डी., ग्रामोफोन, टेलीफोन आदि रखा गया है तब इन्हें रखने हेतु आवश्यक फर्नीचर की

व्यवस्था की जानी चाहिए। वे क्षेत्र जहाँ मनोरंजन के साधन हैं, उसके आस-पास 4-5 कुर्सियाँ अथवा मूढ़े रखे जाने चाहिए ताकि परिवार के सदस्य मनोरंजन का आनन्द उठा सकें। यदि फर्श पर बैठकर मनोरंजन का आनन्द उठाना है, तब कालीन, दरी, चटाई, पट्टियाँ बिछा देनी चाहिए। सुन्दर पुस्तकें, मैगजीनें मेज पर सुन्दरता की दृष्टि से रखे जा सकते हैं। सोफा सेट, कुर्सी, मेज आदि को हो सके तो खिड़की के पास लगाना चाहिए जहाँ से पर्याप्त सूर्य प्रकाश उपलब्ध हो सके। यदि खिड़की बाहर की ओर किसी सुन्दर प्राकृतिक दृश्य, यथा-बगोचा, लॉन आदि को और खुलता हो तो फर्नीचर को अवश्य ही खिड़की के पास लगाये जाने चाहिए। हाँ। इतना अवश्य ध्यान रखें, अध्ययन क्षेत्र मनोरंजन अथवा वार्तालाप क्षेत्र से दूर होना चाहिए, पढ़ने-लिखने में बाधा नहीं पहुँचे। बैठक में फर्नीचर व्यवस्था को 15 दिन या माह में एक बार अवश्य बदल देना चाहिए ताकि कमरे में आकर्षण ताजगी, नवीनता एवं विविधता बनी रहे।

शयन कक्ष (Bed Room) को किसी भी रूप ड्राइंग रूम से कम महत्वपूर्ण नहीं माना जा सकता है। शयन कक्ष पूर्ण विश्राम का कक्ष होता है। दिनभर का थका हारा व्यक्ति इसी कक्ष में आराम करके थकान दूर करता है तथा ताजगी प्राप्त करता है। गहरी निद्रा के लिए शयन कक्ष का आरामदायक एवं सुविधापूर्ण होना जरूरी है। पलंग, दीवान, चौकी, चारपाई जो कुछ भी सोने हेतु उपयोग में लिए जाएँ वे आरामदायक होनी चाहिए। उस पर गद्देदार बिस्तर बिछे होने चाहिए। पलंग उचित नाप एवं उचित ऊँचाई का होना चाहिए। पलंग को दीवार के सहारे अथवा कमरे के बीच में लगाया जाना चाहिए। बीच की अपेक्षा कोने में पलंग लगाने से रिक्त जगह की काफी बचत होती है जिसका उपयोग अन्य कार्यों हेतु किया जा सकता है। पलंग के सिरहाने पलंग के ऊँचाई के बराबर हो एक छोटी-सी मेज होनी चाहिए। यदि पलंग में बॉक्स बनवा दिए जाएँ तो इनका उपयोग बिस्तर, रजाई, कम्बल एवं अन्य घरेलू सामानों को रखने में किया जा सकता है। आजकल पलंग के सिरहाने में भी छोटी छोटी दराजें बनायी जाने लगी हैं जिसमें छोटे-मोटे घरेलू सामान रखे जा सकते हैं। पलंग के पास ही टेबुल लैम्प की व्यवस्था की जानी चाहिए ताकि पढ़ने-लिखने में सुविधा हो। शयन कक्ष में रोशनी की पर्याप्त व्यवस्था होनी चाहिए। पलंग के पास ही स्विच (बेड स्विच) होने से बल्ब जलाने बुझाने में सहूलियत होती है। शयन कक्ष में एक-दो कुर्सी एवं एक अध्ययन मेज होनी चाहिए। मेज में दराजें होनी चाहिए ताकि अत्यावश्यक चीजों को उसमें रखा जा सके। छोटे मकानों में, जहाँ स्थान की काफी कमी होती है, शयन कक्ष में ही श्रृंगार मेज की व्यवस्था की जाती है। वस्त्रों को संग्रहीत करने के लिए आलमारियाँ, कपड़े टाँगने के लिए एक-दो खुटियाँ आदि को व्यवस्था की जानी चाहिए। यदि आलमारियाँ नहीं हों तो बक्से में भी सामान को संग्रहीत किया जा सकता है। बड़े बड़े बक्सों को आपस में सटाकर तख्त का रूप दिया जा सकता है। उस पर बिस्तर बिछाकर उसका उपयोग सोने हेतु किया जा सकता है। गृहिणी चाहे तो जूते रखने की रैक, गंदे वस्त्रों को रखने हेतु लाउन्ड्री बैग (Laundry Bag) को व्यवस्था भी शयन कक्ष में कर सकती है। यह उल्लेखनीय है कि शयन कक्ष में बहुत अधिक फर्नीचर नहीं रखें, कमरा बहुत भरा-भरा नहीं हो क्योंकि इससे तनाव एवं उलझन उत्पन्न होता है जो चैन की नींद में बाधक होता है।

बच्चों का कमरा (Children's Room) में फर्नीचर को व्यवस्थित रखना बहुत ही आवश्यक तथा बुद्धिमत्ता पूर्ण कार्य है। बच्चों के कमरे में फर्नीचर व्यवस्था बालकों की उम्र के अनुसार होनी चाहिए। इनके लिए वैसे फर्नीचर का उपयोग किया जाना चाहिए जो उनके ऊँचाई एवं उम्र के अनुसार हो तथा जिससे उन्हें पूर्णतः आराम मिलता हो। बच्चों के खिलौने, किताबें, कॉपियाँ, वस्त्र आदि रखने हेतु कम ऊँचाई की आलमारी होनी चाहिए ताकि बच्चा अपने मनपसन्द वस्तुओं को रख-उठा सकें। बड़े बालकों के लिए कक्ष में अध्ययन हेतु कुर्सी एवं मेज होनी चाहिए। मेज में दराजें होनी चाहिए। कपड़े टाँगने की खूँटी एवं एक दर्पण होना चाहिए। दर्पण के पास ही एक मेज होनी चाहिए जिसमें कंधी, तेल, पाउडर एवं अन्य सौन्दर्य प्रसाधन रख सकें। अध्ययन मेज खिड़की के पास होनी चाहिए ताकि पर्याप्त मात्रा में प्राकृतिक प्रकाश पहुँच सके। अध्ययन कुर्सी एवं मेज को ऊँचाई बालक की ऊँचाई के अनुरूप होनी चाहिए ताकि पढ़ने-लिखने में सुविधा रहे। अनुपयुक्त कुर्सी, डेस्क, आसन में (Sitting Posture) आँखें खराब हो सकती हैं। मेज होने से बालकों में बैठने के में दोष व विकृति हो जाता है, जिससे उनका व्यक्तित्व व यदि बालकों को जमीन पर बैठकर पढ़ाने की व्यवस्था है तब फर्श पर बैठने के लिए पट्टियाँ, दरी या आसन की व्यवस्था की जानी चाहिए। किताबें, कॉपियाँ रखने के लिए, छोटी-सी चौकी जिसकी ऊँचाई 20 25 सेमी. हो, की व्यवस्था की जानी चाहिए। छोटे मकानों में, जहाँ जगह को काफी कमी है व बालकों को अध्ययन कक्ष में ही सोना है तब एक पलंग या तख्त को व्यवस्था की जानी चाहिए। पलंग पर बिछाने हेतु बिस्तर भी गद्देदार, मुलायम एवं कोमल होनी चाहिए।

भोजन कक्ष (Dinning Room) का फर्नीचर आधुनिक के गृह सज्जा में सबसे महत्वपूर्ण है। छोटे-छोटे फ्लैटों में भोजन कक्ष के साथ ही रहने का कमरा (Living Room) भी होता है। इसलिए भोजन कक्ष में फर्नीचर की व्यवस्था एक कोने में काफी सोच-समझकर की जानी चाहिए ताकि कक्ष में पर्याप्त स्थान मिल सके। यदि भोजन कक्ष की व्यवस्था देशी शैली से किया जाना है, तब आसन, चौकी, तख्त अथवा पीढ़ा का उपयोग किया जा सकता है। बैठने का आसन सुन्दर, स्वच्छ एवं आरामदायक होना चाहिए। चौकी एवं तख्त को सुन्दर कपड़े से ढँककर रखना चाहिए। वैसे आजकल मेज की भाँति पीढ़ा या चौकी पर भी सुन्दर रंगों एवं डिजाइनों की सनमाइका लगाये जाते हैं। परन्तु देशी शैली में, फर्श पर बैठकर आलसी-पालसी मारकर भोजन करने में कुछ कठिनाइयाँ आती हैं। सूती वस्त्र तुड़े मुड़े हो जाते हैं, साड़ियों पर सिलवटें पड़ जाती हैं। सलवार-कुर्ता पर भी सिकुड़नें पड़ जाती हैं। शर्ट-पैन्ट पहनकर भोजन करने में, पुरुषों को भी काफी परेशानी होती है। घुटने ठीक तरीके से मुड़ नहीं पाते हैं। वस्त्र पर सिलवटें पड़ जाती हैं। भोजन करते समय कभी-कभी असावधानीवश वस्त्र पर दाग-धब्बे भी लग जाते हैं। भोजन कक्ष को व्यवस्था यदि विदेशी शैली से की जानी है, तब एक बड़ी मेज को जरूरत होती है। मेज के चारों ओर बिना हत्ये को कुर्सियाँ लगायी जाती हैं। कुर्सियों संख्या 4-6 तक होती है। यदि परिवार में सदस्यों की संख्या अधिक है तब कुर्सियों की की संख्या बढ़ायी जा सकती है। डाइनिंग मेज को बीच में या खिड़की के पास लगाना चाहिए ताकि खाना खाते समय प्राकृतिक रोशनी सुलभ हो। यदि खिड़की बाहर की ओर लॉन या बगीचे में खुलता हो तो खाते समय प्राकृतिक दृश्यों का मजा भी लिया जा सकता है। मेज स्वच्छ, सुन्दर, मजबूत एवं आकर्षक होना चाहिए। मेज पर सनमाइका अथवा मोटा काँच का ग्लास भी लगाया जा सकता है। परन्तु काँच वाले मेज की देखभाल अत्यन्त सावधानीपूर्वक को जानी चाहिए अन्यथा इनके टूटने का भय रहता है। मेज पर सुन्दर रंग व आकर्षक डिजाइन का मेजपोश बिछा होना चाहिए। वैसे आजकल ग्लास फाइबर या प्लास्टिक के मेजपोश काफी लोकप्रिय है। भोजन कक्ष में यदि भोजन परोसने का कार्य दूसरा व्यक्ति करता है, तब भोजन करने हेतु बैठे व्यक्ति के दाये, बायें एवं पीछे 24" से

36" का स्थान रिक्त रखना चाहिए। मेज के चारों ओर कुर्सियों को इस तरह से व्यवस्थित करके रखना चाहिए ताकि भोजनकर्ता को बैठने हेतु पर्याप्त स्थान मिल सके। इस दृष्टि से गोल मेज की अपेक्षा चौकोर मेज ही अच्छे रहते हैं। कटलरी, खाने के बर्तन, क्राकरी, डिश आदि रखने हेतु लकड़ी अथवा स्टील की सुन्दर काँच वाली आलमारी होनी चाहिए। ऐसी आलमारियाँ देखने में सुन्दर लगती हैं तथा सज्जा के आकर्षण में अतिशय वृद्धि कर देती हैं।

रसोईघर (Kitchen) के अंतर्गत फर्नीचर की व्यवस्था न केवल सुंदरता के लिए आवश्यक है, बल्कि सुविधा और सुरक्षा के संदर्भ में भी आवश्यक है। रसोईघर में भोजन पकाने का कार्य किया जाता है। भोजन की तैयारी का केन्द्र बर्तन सफाई धुलाई के केन्द्र, सामान संग्रह के केन्द्र भी रसोईघर में ही होते हैं। गृहिणी का अधिकांश समय रसोईघर में ही व्यतीत होता है। परिवार के सभी सदस्यों के उत्तम स्वास्थ्य का निर्धारण करने में रसोईघर अमूल्य भूमिका निभाता है। इसलिए रसोईघर में फर्नीचर व्यवस्था को नजरअन्दाज नहीं किया जा सकता है। रसोई के कार्यों को सरल, सुगम व आसान बनाने के लिए जालीदार आलमारी, ऊँची स्टूल, पटरे, चौकी या पीढ़ा होना चाहिए। यदि रसोई का काम नीचे बैठकर किया जाना है तब एक चौकी या तख्त की व्यवस्था होनी चाहिए ताकि उस पर धुले हुए बर्तनों को रखा जा सके। बर्तनों एवं सामानों को रखने हेतु रैंक एवं आलमारियाँ होनी चाहिए जिसके किवाड़ अच्छी तरह से बन्द हो जाते हैं। स्टैंडिंग रसोईघर में प्लेटफार्म बने होते हैं तथा सामानों के भण्डारण हेतु रैंक एवं दीवार से लगी आलमारियाँ होती हैं। बर्तनों को रखने हेतु प्लेटफार्म बने होते हैं। रसोईघर का फर्नीचर इस तरह का होना चाहिए, जिसकी साफ-सफाई करना आसान हो। उस पर लगे घी, तेल, चिकनाई, हल्दी आदि के धब्बे को सुगमतापूर्वक छुड़ाया जा सके।

निष्कर्ष:

आधुनिक गृहों में फर्नीचर की प्रभावशाली व्यवस्था केवल सौंदर्य बढ़ाने का साधन नहीं है, बल्कि यह गृह की कार्यक्षमता, आराम और मानसिक स्वास्थ्य के लिए महत्वपूर्ण कारक है। इस शोध में यह स्पष्ट हुआ है कि सही फर्नीचर व्यवस्था के माध्यम से न केवल स्थान का समुचित उपयोग किया जा सकता है, बल्कि गृह का वातावरण अधिक सुव्यवस्थित और आकर्षक भी बनाया जा सकता है। शोध के दौरान यह पाया गया कि छोटे और सीमित स्थानों में बहुउद्देशीय तथा मॉड्यूलर फर्नीचर की मांग तेजी से बढ़ रही है। ऐसे फर्नीचर न केवल स्थान बचाते हैं, बल्कि गृह के विभिन्न भागों में लचीलापन भी प्रदान करते हैं। इसके अतिरिक्त, फर्नीचर के चयन में गुणवत्ता, सामग्री, आकार और रंगों का समन्वय गृह के आंतरिक सौंदर्य और आराम के लिए आवश्यक है।

इस अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि फर्नीचर की व्यवस्था करते समय गृह विज्ञान के सिद्धांतों का पालन किया जाना चाहिए। प्रकाश, वायु संचार और आवागमन के मार्ग को ध्यान में रखकर फर्नीचर की स्थिति निर्धारित की जानी चाहिए। सही तरीके से व्यवस्थित फर्नीचर न केवल गृह स्वामियों के दैनिक जीवन को सरल बनाता है, बल्कि उनके मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य पर भी सकारात्मक प्रभाव डालता है। अंततः, यह शोध दर्शाता है कि प्रभावशाली फर्नीचर व्यवस्था एक सुव्यवस्थित, आरामदायक और सुंदर गृह के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। यह अध्ययन गृह विज्ञान के क्षेत्र में योगदान देने के साथ-साथ इंटीरियर डिजाइनरों, गृह स्वामियों और छात्रों के लिए एक मार्गदर्शक के रूप में कार्य करेगा।

संदर्भ ग्रंथ सूची:

1. श्रीवास्तव डी. एन. और वर्तिका अग्निहोत्री, (2023), 'गृह विज्ञान, SBPD पब्लिशिंग हाउस, आगरा
2. अवस्थी सुधा, (2018), 'गृह विज्ञान शिक्षण', अमेजन किंडल डायरेक्ट पब्लिशिंग, नई दिल्ली
3. एनआईओएस, (2012), 'मॉड्यूल- गृह व्यवस्था', राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान, नई दिल्ली
4. SCERT दिल्ली, (2021), 'गृह विज्ञान', राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद, नई दिल्ली
5. एनआईओएस, (2013), 'गृह व्यवस्था', राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान, नई दिल्ली
6. मध्य प्रदेश उच्च शिक्षा विभाग, (2020), 'गृह विज्ञान, उच्च शिक्षा विभाग, भोपाल
7. एनआईओएस, (2013), 'गृह व्यवस्था', राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान, नई दिल्ली
8. पाटनी डॉ. श्रीमती मंजू, (2020), 'गृह प्रबंध (Home Management)', स्टार पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली
9. गोयल मीरा, (2021), 'गृह विज्ञान, SBPD पब्लिकेशन्स, आगरा
10. गोयल मीरा एवं सुनैना, (2022), 'गृह विज्ञान', SBPD पब्लिकेशन्स, आगरा

महात्मा गाँधी का असहयोग आन्दोलन विशेषतः बिहार के सन्दर्भ में: एक अध्ययन

किशोर कुमार पासवान

शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग, पी.पी.यू., पटना

शोध आलेख का सारतत्वः

महात्मा गाँधी द्वारा वर्ष 1920 में शुरू किया गया असहयोग आंदोलन भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का एक महत्वपूर्ण आंदोलन था, जिसने देशव्यापी ब्रिटिश शासन के विरुद्ध जनजागरण किया था। बिहार में असहयोग आंदोलन विशेष तौर पर प्रभावशाली रहा, जहाँ किसानों, मजदूरों और छात्रों ने इसमें बड़-चढ़कर भाग लिया था। गाँधी जी के नेतृत्व में, बिहार के नेताओं जैसे डॉ. राजेंद्र प्रसाद, अनुग्रह नारायण सिंह और ब्रजकिशोर प्रसाद ने असहयोग आंदोलन को जन-जन तक पहुंचाया। बिहार के ग्रामीण क्षेत्रों में इस आंदोलन ने नील की खेती करने वाले किसानों और जमींदारी व्यवस्था के खिलाफ आवाज उठाई। विद्यालयों और सरकारी संस्थाओं का बहिष्कार किया गया, विदेशी वस्त्रों की होली जलाई गई और खादी अपनाने पर जोर दिया गया। पटना, मुजफ्फरपुर और चंपारण जैसे क्षेत्रों में इस आंदोलन का व्यापक असर देखा गया। असहयोग आंदोलन ने बिहार के लोगों में राजनीतिक चेतना का संचार किया और स्वतंत्रता संग्राम में उनकी सक्रिय भागीदारी सुनिश्चित की। इस आंदोलन ने गांधीजी के सिद्धांतों— सत्याग्रह, अहिंसा और स्वदेशी ख को बिहार में मजबूत किया और स्वतंत्रता की दिशा में राज्य की भूमिका को अहम बनाया।

प्रमुख शब्दावली: स्वतंत्रता, समानता, न्याय, आंदोलन, शांतिपूर्ण, परिवर्तन, अहिंसा, सत्य, प्रभुत्व, सत्याग्रह, असहयोग, सविनय अवज्ञा, राष्ट्रवाद, अंतरराष्ट्रीयवाद आदि।

प्रस्तावना:

चम्पारण सत्याग्रह, 1917 ई. के बाद गाँधी जी ने प्रथम विश्व युद्ध के उपरान्त भारत की स्थिति, भारत के प्रति अंग्रेजों की नीति तथा जलियाँवाला बाग नृशंस हत्याकांड के परिप्रेक्ष्य में पूरे देश में असहयोग आन्दोलन का आह्वान किया। गाँधी जी ने कहा था “असहयोग का मूल उद्देश्य एक असत् दुराग्रही सत्कार से सहयोग विच्छिन्न करने के रूप में आत्मशुद्धि है। इसका गौण उद्देश्य सभी सरकारी नियंत्रण या अधीक्षण से स्वतंत्र होकर अर्थात् हर संभव मामले में अपना शासन करके और दोनों उद्देश्यों की प्राप्ति में किसी व्यक्ति या सम्पत्ति को क्षति पहुँचाने या हिंसा से अपने को अलग रखकर निस्सहायता की भावना से अपने आपको मुक्त कराना है।”¹ प्रथम विश्व युद्ध के समय भारतीय जनता ने तन-मन-धन से अंग्रेजों की सहायता की, जिससे भारतीयों को यह आशा हो गई कि युद्ध के पश्चात् अवश्य ही भारत को स्वशासन का अधिकार मिलेगा। अंग्रेजों द्वारा खिलाफत का आश्वासन² मिलने पश्चात् भारतीय मुसलमानों ने भी अंग्रेजों की पूरी सहायता की, यद्यपि उनकी धर्म भक्ति तुर्की के प्रति थी जो युद्ध में अंग्रेजों के खिलाफ लड़ रहा था। 23 अगस्त, 1917 को भारत मंत्री लॉर्ड मॉण्टेग्यू ने यह घोषणा की कि ब्रिटिश सरकार की नीति है कि प्रशासन की प्रत्येक शाखा में भारतीयों का प्रतिनिधित्व हो जिससे भारत में उत्तरदायी शासन प्रणाली को विकसित किया जा सके।³ वर्ष 1918 में मॉण्टेग्यू भारत के वायसराय चेम्सफोर्ड से मिलकर रिपोर्ट प्रकाशित की। रिपोर्ट के निकलने के बाद इसकी काफी आलोचना सारे देश में हुई। कुछ लोगों ने इसके पक्ष में वक्तव्य दिया और कुछ ने विपक्ष में। फिर भी कुछ संशोधन के साथ इसे स्वीकार कर लिया गया। राजेन्द्र प्रसाद ने लिखा है “मेरा अपना स्वभाव शुरू से ही नरम है। उग्र विचार जल्दी मेरे हृदय में उतरते ही नहीं हैं। मैं समझता हूँ कि अभी भी मुझे पूरा विश्वास नहीं है कि अभी देश के शासन का समस्त भार अगर हमारे ऊपर आ जाए तो हम उसका सुचारु रूप से वहन कर सकेंगे। इसलिए मैं उस रिपोर्ट को ठीक माना हूँ।”⁴ मॉण्टेग्यू चेम्सफोर्ड पर विचार करने के लिए 29 अगस्त 1918 को बिहार के सुप्रसिद्ध वैरिस्टर हसन इमाम की अध्यक्षता में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का एक विशेष अधिवेशन बम्बई में बुलाया गया। अधिवेशन में यह निर्णय भी लिया गया कि ब्रिटिश सरकार पर दबाव डालने के लिए सैय्यद हसन इमाम के ही नेतृत्व में एक शिष्ट मंडल इंग्लैंड भेजा जाए।⁵

सुधार योजना के साथ-साथ भारत सरकार ने क्रांतिकारियों की गतिविधियों की जाँच व षड्यंत्रों के दमन संबंधी कानून बनाने के लिए एक समिति नियुक्त की, जिसके अध्यक्ष लंदन उच्च न्यायालय के एक न्यायाधीश सिडनी रौलेट बनाये गये। 1918 ई० के अंत में रौलेट समिति ने अपनी रिपोर्ट प्रकाशित की, जिसमें भारतीय क्रांतिकारी आन्दोलन की कहानी बताते हुए इस बात की सिफारिश की गई थी कि भारतीय सुरक्षा अधिनियम को स्थायी कर दिया जाए, जिसके अनुसार बिना किसी कानूनी कार्यवाही के किसी भी व्यक्ति को नजरबंद किया जा सके। 6 फरवरी 1919 को सर्वोच्च धारा सभा में रौलेट समिति की सिफारिश के अनुसार दो विधेयक प्रस्तुत किए गए जिसके प्रकाशित होते ही विधेयक पारित होंगे, तब वे देश में आन्दोलन करेंगे। फिर भी मार्च 1919 ई० में सर्वोच्च द्वारा एक विधेयक पारित हो गया, सिजका नाम रौलेट कानून दिया गया।⁶

6 अप्रैल को पटना में एक जबर्दस्त हड़ताल हुई। सभी दुकानें बन्द हो गईं, परन्तु एक दुकानदार हड़ताल के लिए तैयार नहीं था। यह बात जब हसन इमाम को मालूम हुई तो राजेन्द्र प्रसाद के साथ वे उस दुकान के पास गए और दुकानदार के पैरों पर अपनी टोपी उतार कर रख दी। बड़ा दुकानदार अवाक् रह गया। कहने लगा “आपने यह क्या किया, आपका हुक्म ही मेरे लिए काफी होता।” नतीजा यह हुआ कि सारे शहर में हिन्दू हो या मुसलमान, सभी की दुकानें बन्द रही, चाहे वह सोने-चाँदी या साग-सब्जी की ही क्यों न हो।⁷ उस दिन हसन इमाम के नेतृत्व में पटना में एक विशाल जुलूस निकाला गया था, जिसमें एक मील तक लोगों की भीड़ थी। बाद में भीड़ इतनी बढ़ गई कि किला मैदासन तक पहुँचने पर सभा करने के लिए स्थान ही नहीं मिल पाया, जिससे गंगा किनारे रेत पर सभा की गई। सभा की अध्यक्षता हसन इमाम ने की, जिसमें राजेन्द्र प्रसाद, मजहरूल हक, चन्द्रवंशी सहाय, मित्रलाल, मौलवी खुशीद अहमद, पूर्णेन्दु नारायण सिन्हा तथा शंभुशरण आदि नेताओं के भाषण हुए।⁸ विहार के अन्य शहरों जैसे छपरा, मुजफ्फरपुर, मुंगेर, गया झरिया आदि स्थानों में भी पूर्ण हड़ताल तथा शांतिपूर्ण प्रदर्शन हुए।⁹

दिल्ली, पंजाब, अमृतसर, कसूर, गुजरावाला आदि स्थानों में सरकार का दमन-चक्र तेजी से चलता रहा, जिसमें अनगिनत लोग मौत के घाट उतारे गए। पंजाब के जनप्रिय नेता डॉ० किचलू तथा डॉ० सत्यपाल को गिरफ्तार कर पंजाब से बाहर भेज दिया गया। गाँधी जी को जब इस बात का पता चला तब वे पंजाब की ओर चल पड़े। परन्तु उन्हें भी रास्ते में गिरफ्तार कर बम्बई भेज दिया गया। इन घटनाओं के विरोध में 13 अप्रैल को अमृतसर निवासी जब जलियाँवाला बाग में शांतिपूर्वक एक सभा कर रहे थे, उसी समय नजरल डायर ने 100 भारतीय तथा 50 गोरे सैनिक के सिय वहाँ पहुँच गए। लोगों को बिना चेतावनी के ही गोली चलाने का आदेश दे दिया। 1650 चक्क गोलियों चलीं, जिसमें 379 आदमी मेरे तथा 1137 घायल हुए। कारतूस समाप्त होने पर ही गोलियाँ चलनी बंद हुई।¹⁰ सरकार ने इस समाचार के फैलने पर रोक लगा दी। इसकी जानकारी तब हुई जब रवीन्द्र नाथ टैगोर ने इस नृशंस हत्याकाण्ड के विरोध में अपनी ‘सर’ की उपाधि वापस कर दी तथा शंकरण नावर वायसराय की कार्यकारिणी परिषद् के त्याग पत्र दे दिए। पटना में 11 अप्रैल को महात्मा गाँधी के गिरफ्तारी के विरोध में हसन इमाम की अध्यक्षता में एक सभा हुई, जिसमें राजेन्द्र प्रसाद को भेजे गए महात्मा गाँधी के सत्याग्रह-पत्र के महत्व को समझाया गया। प्रतिज्ञा पत्र गाँधी जी ने वेसे सत्याग्रहियों के हस्ताक्षर के लिए भेजे थे, जो इस बात के लिए तैयार हों कि डे अहिंसा का पालन करते हुए सरकार के वैसे कानूनों की अवज्ञा करेंगे, जिन्हें तोड़ने की अनुमति एक मनोनीत समिति देगी तथा इसके लिए जाँ सभा होगी उसे प्रसन्नतपूर्वक स्वीकार करेंगे। सबसे पहले इस पर हसन इमाम नं, फिर मजहरूल हक, राजेन्द्र प्रसाद, चन्द्रवंशी सहाय आदि नेतागण ने हस्ताक्षर किए।¹¹

जलियाँवाला बाग हत्याकाण्ड की खबर बिहार में कुछ महीने बाद मिली, जिसकी भर्त्सना 18-19 अगस्त, 1919 को बिहार प्रदेश काँग्रेस में की गई। अनुग्रह नारायण सिंह के अनुसार, “रौलेट एक्ट आन्दोलन को लेकर जो हत्याकाण्ड अमृतसर और लाहौर में हुआ तथा जलियाँवाला बाग में जिस निर्दयता के साथ लोग मारे गए उसकी भयावहता का पता हमलोगों को अखबारों द्वारा मालूम होने लगा।¹² इधर प्रथम विश्वयुद्ध की समाप्ति के बाद अंग्रेजों ने युद्धकाल में मुसलमानों को दिए अपने वायदों को भंग कर दिया। युद्ध के दौरान भारतीय मुसलमानों को बचन दिया गया था कि ब्रिटिश सरकार खलीफा की रक्षा करेगी, किन्तु युद्ध के पश्चात् सेब्रे की संधि द्वारा तुर्की साम्राज्य का विघटन कर दिया गया। इस संबंध में 19 जनवरी, 1920 को अली बंधुओं तथा महात्मा गाँधी के नेतृत्व में एक शिष्टमंडल वायसराय से मिला और ब्रिटिश सरकार के वचन-भंग की तरफ उनका ध्यान आकृष्ट किया, परन्तु इसका कोई परिणाम नहीं निकला। 1 फरवरी 1920 ई० में मुहम्मद अली के नेतृत्व में दूसरा शिष्टमंडल इंग्लैंड गया और तत्कालीन प्रधानमंत्री लॉयड जॉर्ज के सामने शोध प्रदर्शित किया। परन्तु वह भी व्यर्थ साबित हुआ।¹³

इन्हीं सारी घटनाओं के परिप्रेक्ष्य में क्षुब्ध होकर महात्मा गाँधी ने निश्चय किया कि पंजाब के जलियाँवाला बाग हत्याकाण्ड और तुर्क साम्राज्य के विघटन के विरुद्ध वे देश भर में असहयोग तथा लिखाफत आन्दोलन चलायेंगे, जिसकी सूचना सभी जगह भेज दी गई। अप्रैल 1920 ई० में पटना की सार्वजनिक सभा में मौलवी शैकत अली का भाषण हुआ, जहाँ असहयोग का एक कार्यक्रम तैयार किया गया।¹⁴ असहयोग के समर्थकों में ब्रजकिशोर प्रसाद, राजेन्द्र प्रसाद, धरनीधर प्रसाद, मजहरूल हक, शाह मुहम्मद जुबैर, मौलवी मुहम्मद शफी तथा मौलाना नुरुल हसन थे। परन्तु हसन इमाम, नवाब सरफराज हुसैन खान तथा सच्चिदानन्द सिन्हा असहयोग के पक्षपाती नहीं थे। फिर भी विहार प्रदेश की यह खूबी थी कि मतभेदों के बावजूद आपस में प्रेम व्यवहार ज्यों का त्यों बना रहा। अगस्त 1920 ई० को विहार प्रान्तीय राजनीतिक सम्मेलन की बैठक भागलपुर में हुई, जिसके सभापति राजेन्द्र प्रसाद थे। इस अवसर पर गाँधी जी ने तार द्वारा यह सूचना दी थी कि सम्मेलन असहयोग आन्दोलन का समर्थन करें, जिसका कारण पंजाब हत्याकाण्ड तथा खिलाफत था। परन्तु ब्रजकिशोर प्रसाद के सुझाव पर असहयोग के कारणों में स्वराज भी जोड़ दिया गया। भागलपुर सम्मेलन के दो-तीन दिन पहले गुजरात प्रान्तीय राजनीतिक सम्मेलन ने भी असहयोग का समर्थन किया था। इस तरह पूरे देश में केवल बिहार और गुजरात ही ऐसे दो प्रान्त थे, जिन्होंने सम्मेलन में कलकत्ता अधिवेशन के पूर्व भी असहयोग का समर्थन किया था।¹⁵

सच्चिदानन्द सिन्हा तथा इमाम ने 1918 ई० से ही पटना सर्चलाईट निकालना प्रारंभ किया था, परन्तु चूँकि यह अखबार असहयोग का समर्थक नहीं था, इसलिए 1920 ई० में सर्चलाईट प्रेस से ही राजेन्द्र प्रसाद ने एक हिन्दी साप्ताहिक ‘देश’ का प्रकाशन किया, जिसके सम्पादक वे स्वयं थे। राजेन्द्रप्रसाद ने हसन इमाम और सच्चिदानन्द सिन्हा से यह समझौता किया था कि वे अपने संपादकीय लेखों में सर्चलाईट न तो असहयोग का सभधन करेगा न विरोध। फिर भी अन्य लोगों का लेख चाहे वह असहयोग के पक्ष में होगा या विपक्ष में प्रकाशित करेगा।¹⁶

असहयोग के प्रचार के लिए काँग्रेस का एक विशेष अधिवेशन 1920 ई० में कलकत्ता बुलाया गया, जिसके सभापति लाला लालपत राय थे। इस अधिवेशन में बहुत से नेताओं ने असहयोग का विरोध किया और अल्पबहुमत से असहयोग का प्रस्ताव स्वीकार किया गया।¹⁷ इस बीच बिहार के जनकधारी प्रसाद ने एक पत्र लिखा जिसमें उन्होंने असहयोग संबंधी चिन्ता व्यक्त की थी। जनकधारी प्रसाद की महत्वपूर्ण शंका यह थी कि अहिंसात्मक ढंग से चलाये गये असहयोग आन्दोलन में हिंसा की संभावना रह जाती है, क्योंकि भावावेश में आकर कोई भी आदमी हिंसा पर उतारू हो सकता है। गाँधी जी ने जनकधारी

प्रसाद के प्रश्नों के उत्तर को 15 सितम्बर के यंग इंडिया में प्रकाशित किया। अपनी सहमति व्यक्त करते हुए गाँधी जी ने जवाब दिया था कि निश्चय ही अहिंसात्मक आन्दोलन के हिंसात्मक होने की संभावना रहती है, परन्तु जिस तरह स्वाधीनता के दुरुपयोग के खतरे से डरकर स्वाध् गीनता आन्दोलन से पीछे नहीं हटा जा सकता, उसी प्रकार किसी अहिंसात्मक आन्दोलन के हिंसात्मक होने की संभावना से डरकर उसे बन्द नहीं किया जा सकता।¹⁸

दिसम्बर, 1920 में जब नागपुर में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ, जब जनकधारी प्रसाद के पुत्र तथा गाँधी जी के उत्तर “प्रश्नोत्तरी” काफी संख्या में वितरित किया गया। नागपुर कांग्रेस में असहयोग आन्दोलन को पूर्ण रूप से स्वीकार किया गया, जिसमें भारतीयों से निम्नलिखित मांगे की गई।

- (1). सरकारी उपाधियों तथा अवैतनिक पदों का त्याग,
- (2). स्थानीय संस्थाओं में मनोनीत सदस्यों का त्यागपत्र,
- (3). सरकारी दरवारों, स्वागत समारोहों तथा सरकारी अधिकारियों के सम्मान के लिए किए जाने वाले आयोजनों का बहिष्कार,
- (4). सरकार द्वारा चलित तथा सहायता प्राप्त शैक्षणिक संस्थाओं का बहिष्कार,
- (5). सरकारी अदालतों का बहिष्कार,
- (6). पुनर्गठित परिषदों के चुनाव का बहिष्कार,
- (7). विदेशी माल का बहिष्कार,
- (8). सैनिकों तथा लिपिकों तथा श्रमिकों को मेसोपोटामिया की नौकरी से मनाही।¹⁹

असहयोग आन्दोलन के दौरान विहार में मजहरूल हक, राजेन्द्र प्रसाद, ब्रजकिशोर प्रसाद, गोरख प्रसाद, धरनीधर प्रसाद तथा मुहम्मद सफी परिषद् की उम्मीदवारीसे हट गए। अपनी उम्मीदवारी वापस लेते हुए मौलाना मजहरूल हक ने कहा कि मुसलमान होने के नाते वे उस सरकार से सहयोग नहीं कर सकते जो इस्लाम को बर्बाद करने पर तुली हो तथा एक हिन्दू के रूप में भी वे उस सरकार से सहयोग नहीं करेंगे, जिसके हाथ पंजाबी भाईयों के खून से रंगे हों।²⁰

छपरा के अवैतनिक अधिकारी महेन्द्र प्रसाद ने अपने पद से त्याग-पत्र दे दिया। नागपुर के प्रस्ताव के अनुसार अनुग्रह नारायण सिंह तथा ब्रजनन्दन किशोर प्रसाद ने अपनी वकालत छोड़ दी। वकालत छोड़ने वाले अन्य लोगों में से पटना से मो० खुर्शीद हसनैन, गया से कृष्ण प्रकाश सेन सिंह, मुकुटधारी से गोरख आदि, भागलपुर से दीपनारायण सिंह, मुंगेर से श्रीकृष्ण सिंह, तेजेश्वर सिंह, नेमधारी सिंह, पुरलिया में अतुलचन्द्र घोष, हजारीबाग से रामनारायण सिंह तथा पलामू में शेख साहब थे।²¹

असहयोग आन्दोलन से प्रभावित होकर बहुत से छात्रों ने महाविद्यालयों का परित्याग कर दिया और इधर-उधर भटकने लगा। एक दिन मजहरूल हक ने राजेन्द्र प्रसाद से कहा कि सड़कों पर दस हजार विद्यार्थी पड़े हुए हैं। अब उनकी पढ़ाई का समुचित प्रबंध होना चाहिए। फलतः पटना-गया रोड पर एक राष्ट्रीय महाविद्यालय खोला गया। राजेन्द्र प्रसाद उसके प्राचार्य बने और बदरीनाथ वर्मा, जगन्नाथ प्रसाद तथा प्रेमशंकर गौस प्राध्यापक। उन लोगों ने क्रमशः बी० एन० कॉलेज, पटना कॉलेज, टी० एन० जुबली कॉलेज से त्यागपत्र देकर राष्ट्रीय महाविद्यालय का प्राध्यापक पद स्वीकार किया था। इसके अतिरिक्त जगतनारायण लाल, रामचरित्र सिंह तथा अब्दुल बारी जैसे लोग भी महाविद्यालय में आ गए। नागपुर कांग्रेस के बाद महात्मा गाँधी जब 6 फरवरी, 1921 को बिहार आये तब उन्हीं के हाथों राष्ट्रीय महाविद्यालय के भवन में ही बिहार विद्यापीठ का विधिवत उद्घाटन हुआ। मजहरूल हक को कुलपति और ब्रजकिशोर प्रसाद को उपकुलपति काफी उत्साहित हुए तथा एक दिन पटना महाविद्यालय के करीब साठ अच्छे-अच्छे छात्र भी राष्ट्रीय महाविद्यालय में पढ़ने आ गए। विद्यापीठ के छात्रों में जयप्रकाश नारायण, मृत्युंजय प्रसाद, विशेश्वर प्रसाद कोईराला, श्रीकांत ठाकुर विद्यालंकार, मातृका प्रसाद कोईराला, विश्वनाथ प्रसाद वर्मा, सुरेश्वर पाठक तथा अनिरुद्ध सिंह थे। करीब-करीब सभी जिलों में विहार विद्यापीठ से सम्बद्ध राष्ट्रीय पाठशालायें थी। इनमें करीब 50 हजार विद्यार्थी शिक्षा पाने लगे। इन विद्यालयों की स्थापना के बाद राष्ट्रीय शिक्षा का काम समुचित ढंग से चलने लगा।²² एक दिन पटना इंजीनियरिंग स्कूल के छात्रों की वहाँ के प्राचार्य से किसी बात पर अनबन हो गई। विद्यार्थियों ने स्कूल का बहिष्कार कर दिया। उन्होंने मजहरूल हक के पास जाकर कहा कि वे राष्ट्र की पुकार पर अपने विद्यालय की पढ़ाई छोड़ चुके हैं तथा उन्हें बतलाया जाए कि अब वे क्या करें। मजहरूल हक जो उस समय फ्रेजर रोड पर स्थित सिंकर मंजिल में रहते थे, उनसे काफी प्रभावित हुए। उन्होंने ऐशो-आराम की जिन्दगी छोड़कर विद्यार्थियों के साथ दानापुर स्थित अपने एक मित्र मियाँ खैरुश्रीन के एक खपरैल मकान में चले गए। वहाँ चरखे का एक कारखाना खोल दिया तथा लड़के चरखा बनाने लगे। मजहरूल हक उन लड़कों को स्वयं पढ़ाते थे तथा हिन्दू-मुस्लिम एकता की सीख देते थे। इसी जगह का नाम आगे चलकर सदाकत आश्रम पड़ा। मजहरूल हक के उज्ज्वल चरित्र पर इस बात से प्रकाश पड़ता है कि उन्होंने एक मुसलमान विद्यार्थी मुहम्मद खलील को आश्रम से निकाल दिया तथा राजेन्द्र प्रसाद के लाख कहने पर ही उसे पुनः रखा। मुहम्मद खलील ने भी असहयोग प्रारंभ होने पर महाविद्यालय का त्याग किया था तथा राष्ट्रीय गीत “भारत जननी, तेरी जय जय तेरी जय हो” से काफी प्रसिद्धि पाई थी।²³

30 सितम्बर, 1921 ई० को मजहरूल हक ने सदाकत आश्रम से ही ‘मदरलैंड’ नामक एक अखबार निकालना शुरू किया, जिसका उद्देश्य राष्ट्रीय भावना का प्रसार, असहयोग का प्रचार तथा हिन्दू-मुस्लिम एकता पर बल देना था।²⁴ 1921 ई० के नवम्बर में ब्रिटिश राजकुमार भारत आने वाले थे। कांग्रेस ने हड़तालें से उनका स्वागत करने का निश्चय किया। फलतः 17 नवम्बर को जब राजकुमार बम्बई उतरे, तब समस्त मुम्बई में हड़ताल हुए। विहार प्रान्तीय सम्मेलन में भी राजकुमार के आगमन के बहिष्कार का निर्णय हुआ। 6 अक्टूबर को हजारीबाग में बिहार विद्यार्थी परिषद् का 16वाँ अधिवेशन हुआ, जिसकी अध्यक्षता सरला देवी ने की। इस सभा में भी राजकुमार के स्वागत में किए गए समारोहों के बहिष्कार का निर्णय लिया गया।²⁵ पटना में सावित्री देवी, सी० सी० दास की पत्नी तथा उर्मिला देवी ने महिलाओं में जागरण का मंत्र फूँका। अनेक वकील भी कचहरी नहीं गए।²⁶ सिर्फ नरग दल वालों ने ही राजकुमार का स्वागत किया। जहाँ-जहाँ राजकुमार गए, वहाँ-वहाँ उनका बहिष्कार किया गया। इसी समय सरकार का दमन चक्र भी चालू हुआ और पूरे देश में वृहद् पैमाने पर गिरफ्तारियाँ शुरू हुईं। देश के प्रमुख नेता देशबंधु चित्तरंजन दास, लाल लाजपत राय, पं० मोतीलाल नेहरू, मौलाना अबुल कलाम आजाद, जलहर लाल नेहरू

तथा राजगोपालाचारी गिरफ्तारी कर लिए गए। पंजाब, दिल्ली, बंगाल, बिहार, संयुक्त प्रदेश आदि में सेवक-दल गैर कानूनी करार दिए गए। बिहार से मौलवी खुर्शीद हुसैन, जगतनारायण लाल, कृष्ण प्रसाद सेन सिन्हा, मौलवी मुहम्मद शफी, बिन्देश्वरी प्रसाद वर्मा, जनकधारी प्रसाद, लक्ष्मी नारायण सिंह, ध्वजा प्रसाद साहू, ठाकुर रामनन्दन सिंह, मथुरा प्रसाद सिंह, मंजूर हुसैन, मौलवी बदू, शाह मुहम्मद जुबैर, श्रीकृष्ण सिंह, धर्मनाथ सिंह, रामनारायण सिंह, ब्रजेन दत्त, रामशंकर, काजी हुसैन, माधव सिंह, भरत मिश्र आदि गिरफ्तार कर लिए गए थे। उनपर मुकदमा चला तथा सजा हुई। लोगों को गाँधी जी के नेतृत्व में पूरा विश्वास था। लोग समझने लगे थे कि 31 दिसम्बर, 1921 तक स्वराज अवश्य लिए मिल जाएगा। परन्तु 5 फरवरी 1922 ई० को उत्तर प्रदेश के गोरखपुर जिले के चौरी चौरा नामक स्थान पर जब लोगों ने उत्तेजित होकर थानेदार तथा 21 सिपाहियों को जिन्दा जला दिया, तब गाँधी जी ने आन्दोलन को तत्काल स्थगित करने का आदेश दे दिया। असहयोग के स्थगन पर मोतीलाल नेहरू, चित्तरंजन दास, लाला लाजपत राय, सुभाषचन्द्र बोस आदि नेताओं ने गहरा असंतोष व्यक्त किया। उनका विचार था कि सम्पूर्ण देश की नज्दा स्वशासन के लिए जागृत हो चुकी है, और ऐसे समय में असहयोग का स्थगन किसी भी प्रकार से उचित नहीं है। इस संबंध में जनकधारी प्रसाद ने लिखा है- सबों की दृढ़ धारणा थी कि 31 दिसम्बर, 1921 तक स्वराज अवश्य मिल जाएगा। इसकी पूरी संभावना भी हो गई थी। बुम्बई के तत्कालीन गवर्नर ने साफ-साफ कहा था कि स्वराज में केवल एक इंच ही कसर रह गई थी। मेरा भी यही ख्याल है कि दूरदर्शिता ते काम लिया गया होता और बातों की अकड़ नहीं दिखाई गई होती तो उस समय अवश्य ही मिल जाता और 1947 बाला खंडित स्वराज नहीं लेना पड़ता।²⁷

वर्ष 1922 में काँग्रेस का गया अधिवेशन चित्तरंजन दास की अध्यक्षता में हुआ। अधिवेशन के अंत में चित्तरंजन दास ने काँग्रेस के सभापति के पद से त्यागपत्र देकर मोतीलाल नेहरू तथा विठ्ठलभाई पटेल के साथ काँग्रेस के अन्दर ही स्वराज दल का गठन किया। विहार में भी स्वराज पार्टी का गठन, फरवरी 1923 में हुआ, जिसका अध्यक्ष नारायण प्रसाद बने, सचिव अब्दुल बारी तथा सहायक सचिव कृष्णवल्लभ सहाय और हरनंदन सहाय बनाये गये।²⁸ स्वराज दल ने अपने कार्यकलापों से लोगों की राजनीतिक चेतना को जगाए रखा, क्योंकि असहयोग आन्दोलन के स्थगन से लोगों में घोर निराशः व्याप्त हो गई थी। इसी समय 9 मई 1933 ई० को नागपुर में प्रसिद्ध झण्डा सत्याग्रह हुआ। राजेन्द्र प्रसाद ने बिहार से अनेक स्वयं सेवकों को वहाँ भेजा तथा स्वयं भी वे कई बार गए। विहार के सत्याग्रहियों में एक हरदेव सिंह की मृत्यु नागपुर जेल में ही हो गई।²⁹ इसी समय 9 मई, 1933 ई० को नागपुर में प्रसिद्ध झण्डा सत्याग्रह हुआ। राजेन्द्र प्रसाद ने विहार से अनेक स्वयं सेवकों को वहाँ भेजा तथा स्वयं भी वे कई बार गए। विहार के सत्याग्रहियों में एक हरदेव सिंह की मृत्यु नागपुर जेल में ही हो गई।”

वर्ष 1927 में मॉण्टेग्यू-चेम्सफोर्ड सुधार के कार्यों की जाँच के लिए ब्रिटिश सरकार ने साईमन कमीशन को नियुक्त किया, जो 1928 ई० के प्रारंभ में भारत पहुँचा। 7 फरवरी, 1928 को जब यह आयोग बम्बई उत्तरा, तब देशव्यापी प्रदर्शन तथा हड़ताल हुए। लाहौर में लाला लाजपत राय ने आयोग के विरुद्ध एक विराट प्रदर्शन का आयोजन किया। पुलिस ने उनपर अनगिनत लाठियाँ बरसाई, जिसका फलस्वरूप 17 नवम्बर, 1928 को उनकी मृत्यु हो गई। नेहरू को भी लाठी खानी पड़ी। पटना में 12 दिसम्बर को आयोग के आने का दिन था। लाला लाजपत राय पर लाठी के प्रहार के फलस्वरूप उनकी मृत्यु ने बिहार के लोगों में काफी रोष ला दिया था। ‘साईमान कमिशन वापस जाओ’ तथा ‘लाला जी की मृत्यु का बदला लेंगे’ इत्यादि नारा बिहार में काफी लोकप्रिय हो गया था। पटना युवक सम्मेलन में मुहम्मद आलम ने “खतरा मोल लो” (लिव डेन्जरसली) का नारा दिया, जिसकी हज़ारों प्रतियाँ छपवा कर दीवारों पर चिपका दी गई थी।³⁰ 9 दिसम्बर को इसी समय पटना में एक प्रादेशिक सम्मेलन हुआ, जहाँ आयोग के बहिष्कार संबंधी एक प्रस्ताव पारित हुआ। इस सम्मेलन के सभापति अनुग्रह नारायण सिंह और सच्चिदानन्द सिन्हा स्वागत समिति के अध्यक्ष थे। लाला लाजपत राय, जवाहर लाल नेहरू तथा गोविन्द वल्लभ पंत पर ढाये गये पुलिस जुल्म से काफी उत्तेजित होकर लोग पटना की तरफ बढ़ आये। पटना में सोनपुर मेले का दृश्य उपस्थित हो गया।³¹

साईमन कमीशन के साथ-साथ एक हिन्दुस्तानी समिति भी थी, जिसे सरकार ने भीषण परिस्थितियों को देखते हुए बनाया था। विहार में दोनों समितियों का बहिष्कार हुआ। “उठो जवानों सवेरा हुआ, साईमन कमीशन भागने का बेरा हुआ” के नारों से सारा पटना का वायुमंडल गूँज उठा था। प्रदर्शन का नेतृत्व राजेन्द्र प्रसाद, ब्रजकिशोर प्रसाद, अनुग्रह नारायण सिंह, रामदयालु सिंह तथा श्रीकृष्ण सिंह आदि नेतृओं ने किया।³² करीब तीन हजार लोगों ने प्रदर्शन में भाग लिया तथा साईमन कमीशन वापस जाओ के नारे लगाये। यद्यपि सच्चिदानन्द सिन्हा आयोग के बहिष्कार के पक्षपाती थे, फिर भी उन्होंने शंकर नायर तथा भारतीय समिति के अन्य सदस्यों को अपने घर पर भोज पर आमंत्रित किया।³³ इस तरह असहयोग आन्दोलन तथा बाद के घटनाचक्र ने विहारियों में एक नया जोश ला दिया, जो बाद में सविनय अवज्ञा आन्दोलन के क्रम में दृष्टिगोचर हुआ। असहयोग आन्दोलन का असर मौलाना मजहरूल हक के व्यवहारिक जीवन पर इतना अधिक पड़ा कि उन्होंने कीमती अंग्रेजी परिधियों का त्याग कर लम्बी दाढ़ी बढ़ा ली और सरल जीवन व्यतीत करना प्रारंभ कर दिया।³⁴

निष्कर्षः

असहयोग आंदोलन ने बिहार में स्वतंत्रता संग्राम की दिशा और दशा दोनों को बदलने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इस आंदोलन ने बिहार के किसानों, छात्रों और श्रमिकों को न केवल ब्रिटिश शासन के खिलाफ संगठित किया, बल्कि उन्हें आत्मनिर्भरता और स्वदेशी के महत्व का बोध भी कराया। गांधीजी के आह्वान पर बिहार के लोगों ने सरकारी संस्थाओं, अदालतों और विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार किया, जिससे ब्रिटिश प्रशासन को गहरा झटका लगा। बिहार में इस आंदोलन के नेतृत्वकर्ताओं जैसे डॉ. राजेन्द्र प्रसाद, अनुग्रह नारायण सिंह और ब्रजकिशोर प्रसाद ने जनता को संगठित कर असहयोग की भावना को व्यापक स्तर पर फैलाया। चंपारण सत्याग्रह के अनुभवों ने बिहार में असहयोग आंदोलन को अधिक ऊर्जा प्रदान की और किसानों की समस्याओं को राष्ट्रीय पटल पर लाया। हालांकि 1922 में चौरी-चौरा कांड के बाद यह आंदोलन स्थगित कर दिया गया, लेकिन बिहार में इस आंदोलन की गूँज लंबे समय तक सुनाई दी। इसने बिहार की जनता को राजनीतिक रूप से जागरूक किया और स्वतंत्रता संग्राम में उनकी भूमिका को और मजबूत किया। असहयोग आंदोलन ने बिहार को स्वतंत्रता आंदोलन के केंद्र में लाकर खड़ा कर दिया और भविष्य के आंदोलनों के लिए मजबूत नींव तैयार की।

सन्दर्भ:

1. यंग इंडिया, 6 अप्रैल, 1921.
2. दि टाइम्स, 7 जनवरी, 1918.
3. रिपोर्ट्स ऑन इंडियन कन्सटीट्यूशनल रिकॉर्ड्स, कलकत्ता, 1918, पृ० सं०-1.
4. राजेन्द्र प्रसाद, आत्मकथा, पृ० सं०-104.
5. के०के० दत्त, फ्रीडम मूवमेंट इन बिहार, बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी पटना, 1974, पृ० सं०-228.
6. दि स्टोरी ऑफ जलियाँवाला बाग, पब्लिकेशन डिविजन, नई दिल्ली, 1971, पृ० सं०-5.
7. राजेन्द्र प्रसाद, आत्मकथा, पृ० सं०-116.
8. राजेन्द्र प्रसाद, आत्मकथा, पृ० सं०-26.
9. राजेन्द्र प्रसाद, आत्मकथा, पृ० सं० 116.
10. दि स्टोरी ऑफ जलियाँवाला बाग, पृ० सं०-11. 11. राजेन्द्र प्रसाद, आत्मकथा, पृ० सं०-11.
12. अनुग्रह नारायण सिंह, मेरे संस्मरण, पृ० सं०-26.
13. फॉरेन एण्ड पॉलिटिकल डिपार्टमेंट, दिसम्बर, 1920, पृ० सं०-361, 403, एक्सटर्नल बी.
14. राजेन्द्र प्रसाद, आत्मकथा, पृ० सं०-120.
15. पूर्वोक्त, पृ० सं०-122.
16. पूर्वोक्त, पृ० सं०-138.
17. डी० जी० तेन्दुलकर, महात्मा, खण्ड-2, पृ० सं०-19.
18. जनकधारी प्रसाद, कुछ अपनी कुछ दो की, पृ० सं० 59-61.
19. पट्टाभि सीतारमैया, काँग्रेस का इतिहास (1885 1935), लखनऊ, 1939, पृ० सं०-205.
20. सर्चलाइट, 19 दिसम्बर, 1920.
21. अनुग्रह नारायण सिंह, मेरे संस्मरण, पृ० सं०-43.
22. राजेन्द्र प्रसाद, आत्मकथा, पृ० सं०-43.
23. पूर्वोक्त, पृ० सं०-132.
24. शिवाजी राव आपटे, मैसेज ऑफ आशियाना, छपरा, 1962, 1962, पृ० सं०-35.
25. शिवपूजन सहाय, (सम्पादित), बिहार की महिलायें, पटना, 1962, पृ० सं०-311.
26. अनुग्रह नारायण सिंह, मेरे संस्मरण, पृ० सं०-49.
27. जनकधारी प्रसाद, कुछ अपनी कुछ देश की, पृ० सं०-74.
28. के०के० दत्त, फ्रीडम मूवमेंट इन बिहार, खण्ड-1, पृ० सं०-449. 29. राजेन्द्र प्रसाद, आत्मकथा, पृ० सं०-212.
30. मणिन्द्र नारायण राय, दि अवेकेन्ड ऑफ बिहार, इंडियन नेशन, 28 सितम्बर, 1964.
31. पूर्वोक्त.
32. अनुग्रह नारायण सिंह, मेरे संस्मरण, पृ० सं०-130.
33. मणिन्द्र नारायण राय, डिवैल्यूएशन ऑफ वैल्यूज, इंडियन नेशन, 7 सितम्बर, 1964.
34. संत कुमार वर्मा, मौलाना मजहरुल हक, पृ० सं०-80

संसद सदस्य स्थानीय क्षेत्र विकास योजना में धनराशि प्रयोग में पारदर्शिता: हरियाणा राज्य का एक अध्ययन

दिनेश

शोधार्थी, लोक प्रशासन विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक (हरियाणा)

राजेश कुमार कुण्डू

शोध निर्देशक, सहायक प्रोफेसर, लोक प्रशासन विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक (हरियाणा)

सारांश

योजना का उद्देश्य सांसद को अपने निर्वाचन क्षेत्रों में स्थानीय आवश्यकताओं के आधार पर स्थायी, सामुदायिक परिसंपत्ति के सृजन पर जोर देते हुए विकासात्मक प्रकृति के कार्यों की अनुशंसा करने हेतु सक्षम बनाना है। शोध पत्र का उद्देश्य योजना के अंतर्गत प्रयोग की गई राशि के संदर्भ में पारदर्शिता का आकलन करना है। योजना के अंतर्गत सांसद सदस्य अपने क्षेत्र में 5 करोड़ रुपये के कार्यों की अनुशंसा कर सकते हैं। योजना के अंतर्गत 12 प्रकार के कार्य करवाने की अनुमति है तथा कार्यों का विवरण योजना पोर्टल पर पंजीकृत किया जाता है। योजना पोर्टल के माध्यम से आम जनता को योजना संबंधी जानकारी प्राप्त होती है। हरियाणा राज्य के भिवानी-महेन्द्रगढ़, रोहतक, करनाल, हिसार संसदीय क्षेत्रों को शामिल किया गया है। इन सभी संसदीय क्षेत्रों के नोडल जिलों के सभी नोडल अधिकारी व खंड विकास एवं पंचायत अधिकारी और कार्यालय कर्मचारियों को निदर्शन में शामिल किया गया है। सभी नोडल जिलों के दो खण्डों को ग्राम पंचायत अध्ययन के लिए दैव निदर्शन की लॉटरी विधि के माध्यम से चयनित किया गया है। ग्राम पंचायतों का चयन नियमित अंकन प्रणाली के माध्यम से किया गया है तथा चयनित ग्राम पंचायतों के ग्राम प्रतिनिधियों को निदर्शन में शामिल किया गया है। प्रशासनिक अभिकरणों में जिला नोडल अधिकारी, खंड विकास एवं पंचायत अधिकारी और कार्यालय कर्मचारी हैं। तथा ग्राम पंचायत प्रतिनिधियों में ग्राम सरपंच और पंच शामिल हैं।

मुख्य शब्द- एमपीलैड, प्रशासनिक अभिकरण, ग्राम पंचायत प्रतिनिधि।

भूमिका

तत्कालीन प्रधानमंत्री पी० वी० नरसिम्हा राव जी ने 23 दिसम्बर, 1993 को संसद में संसद सदस्य स्थानीय क्षेत्र विकास योजना की घोषणा की थी। वर्ष 1993-94 में जब योजना को लागू किया गया, प्रत्येक सांसद को 5 लाख रुपये की राशि आवंटित की गई थी। यह 1994-95 से प्रत्येक सांसद के निर्वाचन क्षेत्र के लिए एक करोड़ रुपये प्रति वर्ष हो गई थी। वर्ष 1998-99 में इसे बढ़ाकर 2 करोड़ कर दिया गया था तथा वर्तमान में वर्ष 2011-12 से इसे बढ़ाकर 5 करोड़ रुपये कर दिया गया है। इस योजना के माध्यम से सांसदों ने बहुत से सहायनीय कार्य किए हैं जैसे:- ब्लड प्यूरी फायरस का निर्माण जिसके परिणामस्वरूप सस्ता इलाज संभव हुआ, और ऊर्जा प्लेटों की स्थापना, कंप्यूटरस ऑन व्हीलस, कौशल विकास केंद्रों की स्थापना, भारत निर्माण व कूड़ा निपटान आदि।

निधियां जिलाधिकारी को दो समान किस्तों में क्रमशः 2.5-2.5 करोड़ के रूप में जारी की जाती हैं। पहली किस्त लोकसभा गठन व राज्यसभा सदस्य के निर्वाचन के समय जारी की जाती है। शेष वर्षों में किस्त इस आधार पर जारी की जाती है कि पहले वर्ष की दूसरी किस्त जारी की जा चुकी हो तथा पहली किस्त की 80 प्रतिशत निधि का व्यय प्रमाण-पत्र जमा करवा दिया गया हो। विज्ञाय वर्ष की दूसरी सभी किस्त तब जारी की जाएगी जब पहली किस्त की निधि के कम से कम 1.5 करोड़ रुपये के कार्यों को स्वीकृति मिल चुकी हो तथा बिना खर्च के 2.5 करोड़ से ज्यादा पैसा खाते में न हो। 31 मार्च तक पिछले वर्ष का लेखा-प्रमाण पत्र जमा करा दिया गया हो। योजना के अंतर्गत जिलाधिकारी को जारी की गई निधियां असमापक प्रकृति की होती हैं अर्थात् ये समाप्त न होने वाली प्रवृत्ति की होती हैं। इन निधियों को उपर्युक्त शर्तों को पूरा करने के पश्चात् आगामी वर्षों में प्रयोग किया जा सकता है।

अगर कोई सांसद 3 महीने या इससे पहले सीट रिक्त कर देता है या उसकी मृत्यु हो जाती है तो उसे विकास निधि नहीं मिलेगी। अगर कोई सांसद 3-9 महीने की अवधि में स्थान रिक्त कर देता है तो उसे वार्षिक आबंटन का 50 प्रतिशत निधि मिलेगी और 9 महीने से 12 महीने की अवधि तक वार्षिक आबंटन की 100 प्रतिशत विकास निधि मिलेगी। अगर किसी सांसद का स्थान रिक्त हो जाता है तो उसकी बची हुई निधि उसके उच्चारवर्ती सांसद को प्रेषित कर दी जाएगी। अगर किसी राज्य सभा सांसद का स्थान रिक्त हो जाता है अर्थात् कार्यकाल पूरा हो जाता है तो उसकी बची हुई निधि को राज्य के सभी राज्यसभा सांसदों में समान रूप से वितरित कर दिया जाता है। मृत्यु या त्यागपत्र के मामले में बची हुई निधि सिर्फ उच्चारवर्ती सांसद को दी जाएगी। लोकसभा के मनोनीत आंग्ल-भारतीय सांसदों के संबंध में भी नियम एकसमान है।²

राज्यसभा सांसद के कार्यकाल खत्म होने के तथा लोकसभा के विघटन की तारीख से 18 माह के भीतर अनुशंसित कार्यों को पूरा किया जाएगा। निधि की कमी होने से जिला प्राधिकारी राज्य की निधि से कार्यों को पूरा करेंगे तथा अगले 3 माह में खातों को समायोजित करके बंद कर देंगे। इसकी सूचना भारत सरकार को देंगे और मासिक प्रगति रिपोर्ट में इसकी जानकारी देंगे। अगर अनुशंसित कार्य पूरा नहीं होता है तो इसकी जिम्मेवारी जिला प्राधिकारी की होगी। किसी सांसद की मृत्यु या त्याग पत्र के पश्चात् उसके उच्चारवर्ती सांसद को शेष राशि दी जाएगी, यह राशि सभी में नहीं बांटी जाएगी। जिलाधिकारी राशि जारी हुए बिना भी उस वर्ष के कार्यों को राशि की सीमा तक स्वीकृति दे सकता है। जिला प्राधिकारी द्वारा रख-रखाव बैंक खाते को संबंधित मंत्रालय की अनुमति के बिना नहीं बदला जा सकता। क्रियान्वयन एजेंसी को निधि जारी करने का प्राधिकार जिला प्राधिकारी को है। निधियां जारी होने के जिला प्राधिकारी अर्जित ब्याज को सांसद द्वारा अनुशंसित कार्य के लिए प्रयोग कर सकते हैं। क्रियान्वयन एजेंसी ब्याज की गणना बचक के समय करेगी तथा बची हुई राशि को 1 माह में वापिस कर देगी। 1 अप्रैल 2023 से योजना के दिशा-निर्देशों में परिवर्तन किया गया है। अब जिला नोडल अधिकारी, क्रियान्वयन अभिकरण, ठेकेदार व संसद सदस्य सभी के बैंक खातों में डिजिटल धनराशि दिखाई जाती है परंतु अब धनराशि सीधे विक्रेता को खाते में जाती है। प्रशासनिक व्ययों के लिए वार्षिक निधि को 2 प्रतिशत राशि निर्धारित की गई है।³

तालिका 4.1: विकास कार्यों के आवंटन में राजनीतिक पक्षपात पर प्रशासनिक अधिकारणों का मत

Øe l; k	fo'k;	mPpre	mPp	fuEu	fuEur j	dly
1.	विकास कार्यों के आवंटन में कभी राजनीतिक भेदभाव	0	8 (17.39%)	38 (82.61%)	0	46 (100%)
2.	न्यास व सोसाइटियों के लिए अनुशंसित कार्यों में प्रशासनिक व राजनीतिक प्रभाव	4 (8.70%)	20 (43.48%)	15 (32.61%)	7 (15.21%)	46 (100%)

स्त्रोत: अनुसूची विधि द्वारा संकलित

उपरोक्त तालिका 4.1 से स्पष्ट है कि 82.61 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने कहा कि विकास कार्यों की अनुशंसा में किसी प्रकार राजनीतिक पक्षपात नहीं होता है। संपूर्ण संसदीय क्षेत्र में प्राथमिकता के आधार पर कार्यों की अनुशंसा की जाती है। इसी संदर्भ में 17.39 प्रतिशत उत्तरदाताओं का कथन है कि विकास कार्यों के आवंटन में राजनीतिक पक्षपात होता है। अधिकतर कार्य संसद सदस्यों के कार्यकर्ताओं व उनकी जीते हुए विधानसभा क्षेत्रों में किए जाते हैं।

उपरोक्त तालिका 4.1 से स्पष्ट है कि 43.48 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने बताया कि न्यास व सोसाइटियों के लिए कार्य अनुशंसा में अधिकतर राजनीतिक पक्षपात होता है। यह संगठन संसद सदस्यों से नजदीकी संबंध रखते हैं। इसी संदर्भ में 32.61 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने कहा कि न्यास व सोसाइटियों के लिए अनुदान में राजनीतिक हस्तक्षेप निम्न रहता है। इसी संदर्भ में 15.21 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने कहा कि न्यास व सोसाइटियों के लिए अनुदान में राजनीतिक हस्तक्षेप निम्नतर रहता है। योजना के दिशा-निर्देशानुसार वह न्यास व सोसाइटी जिसके लिए कार्य अनुशंसा की गई है, वह किसी भी रूप में संसद सदस्यों के संबंध अथवा रिश्तेदारी में नहीं हो। इसी संदर्भ में 8.70 प्रतिशत उत्तरदाताओं का कथन है कि न्यास व सोसाइटियों से संबंधित कार्यों की अनुशंसा में राजनीतिक पक्षपात उच्चतम होता है। अधिकतर कार्य संसद सदस्यों से किसी न किसी रूप में संबंधित न्यास व सोसाइटियों के होते हैं।

अतः उपरोक्त आँकड़ों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि योजना संबंधित विकास कार्यों में किसी भी प्रकार राजनीतिक पक्षपात नहीं होता है। लेकिन न्यास व सोसाइटी से संबंधित विकास कार्यों में राजनीतिक पक्षपात के संदर्भ में दोनों पक्षों का मत लगभग बराबर है। लगभग आधे उत्तरदाताओं का कथन है कि न्यास व सोसाइटी से संबंधित विकास कार्यों में राजनीतिक पक्षपात होता है और लगभग आधे उत्तरदाताओं ने राजनीतिक पक्षपात से मना किया।

तालिका 4.2: विकास कार्यों के आवंटन में राजनीतिक पक्षपात पर ग्राम पंचायत प्रतिनिधियों का मत

Øe l; k	fo'k;	gk	Ukgh	vU;	dly
1.	विकास निधि प्राप्ति में राजनीतिक पक्षपात	155(61.51%)	97(38.49%)	0	252(100%)

तालिका 4.2 में प्रस्तुत आंकड़े बताते हैं कि 61.51 प्रतिशत उत्तरदाताओं का मानना है कि विकास कार्यों के आवंटन में भेदभाव होता है। 38.49 प्रतिशत उत्तरदाताओं का मानना है कि विकास कार्यों के आवंटन में कोई भेदभाव नहीं होता है। संसद सदस्य प्रत्येक क्षेत्र के लिए कार्यों की अनुशंसा करते हैं।

उत्तरदाताओं का कथन है कि उनके गाँव में भी किसी भी प्रकार का कार्य नहीं हुआ है लेकिन प्रत्येक गाँव में योजना निधि से कार्य करवाना संभव नहीं क्योंकि प्रत्येक संसद सदस्य के संसदीय क्षेत्र में गाँवों की संख्या अधिक होती है और विकास निधि सीमित होती है। इसलिए प्रत्येक गाँव में कार्य नहीं हो सकता। अतः यह कहा जा सकता है कि योजना के अंतर्गत विकास कार्यों के आवंटन में राजनीतिक पक्षपात होता है।

तालिका 4.3: निरीक्षण के परिप्रेक्ष्य में प्रशासनिक अभिकरणों की स्थिति

Øe l; ;k	fo'k;	gk	Ukgh	vU;	dly
1.	कार्यों का निरीक्षण	46 (100%)	0	0	46(100%)
1.	निरीक्षण के लिए प्रशासनिक अभिकरणों से कर्मचारियों को शामिल किया जाना	46 (100%)	0	0	46(100%)

तालिका 4.3 के अनुसार शत प्रतिशत उत्तरदाताओं का मानना है कि जिला प्रशासन और संसद सदस्य कार्यों के निरीक्षण के लिए स्वयं जाते हैं और कुछ कार्यों का निरीक्षण तृतीय पक्ष के माध्यम से किया जाता है। इसी प्रकार शत प्रतिशत प्रशासनिक अभिकरणों का मानना है कि उन्हें भी निरीक्षण में शामिल किया जाता है और यह प्रक्रिया निष्पक्ष और पारदर्शिता के साथ संपूर्ण ईमानदारी के साथ की जाती है।

तालिका 4.4: निरीक्षण के परिप्रेक्ष्य में ग्राम पंचायत प्रतिनिधियों की स्थिति

Øe l; ;k	fo'k;	gk	Ukgh	vU;	dly
1	कार्यों का निरीक्षण	252 (100%)	0	0	252(100%)
1.	निरीक्षण के लिए पंचायत प्रतिनिधियों को शामिल किया जाना	0	252(100%)	0	252(100%)

उपरोक्त तालिका 4.4 के अनुसार शत प्रतिशत उत्तरदाताओं का कथन है कि कार्यों का निरीक्षण किया जाता है। प्रत्येक कार्य निरीक्षण के लिए एक प्रशासनिक समूह अवश्य आता है। परन्तु उन्हें कार्यों के लिए निरीक्षण में शामिल नहीं किया जाता।

तालिका 4.5: योजना की वार्षिक विकास निधि (पाँच करोड़) पर्याप्तता

Øe l; ;k	mUkj	lk'kk lfud vfkdkj.k	Xkke ipk; r ifrfuf/k
1.	हाँ	23 (50%)	252 (100%)
	नहीं	0	0
	इसको बढ़ाना चाहिए	23 (50%)	0
	तटस्थ	0	0
कुल		46 (100%)	252 (100%)

तालिका 4.5 के अनुसार 50 प्रतिशत प्रशासनिक अभिकरण उत्तरदाताओं का मानना है कि योजना की पाँच करोड़ विकास निधि पर्याप्त है जबकि 50 प्रतिशत का मानना है कि योजना की विकास निधि पाँच करोड़ कम है क्योंकि एक संसदीय क्षेत्र में बहुत सारे गाँव आते हैं और दो या दो से अधिक शहर आते हैं। पाँच करोड़ रुपये की वार्षिक निधि से सभी क्षेत्रों में विकास कार्य करना असंभव है। इसी संदर्भ में शत प्रतिशत ग्राम पंचायत प्रतिनिधियों का मानना है कि योजना की विकास निधि पाँच करोड़ कम है क्योंकि एक संसदीय क्षेत्र में बहुत सारे गाँव आते हैं, इससे सभी को विकास निधि मिलना संभव नहीं।

परिणाम एवं चर्चा

तालिका 4.1 व 4.2 के अध्ययन से ज्ञात होता है कि विकास कार्यों के आबंटन में राजनीतिक पक्षपात की संभावना रहती है क्योंकि 61.51 प्रतिशत ग्राम पंचायत प्रतिनिधियों व 17.39 प्रतिशत प्रशासनिक अधिकरणों ने कहा कि इसमें पक्षपात होता है। न्यास व सोसाइटियों के कार्यों के संदर्भ में भी राजनीतिक पक्षपात को मानने वाले आधे से ज्यादा (52.18 प्रतिशत) प्रशासनिक अधिकरण हैं।

शत प्रतिशत ग्राम पंचायत प्रतिनिधियों का कथन है कि वह निरीक्षण के समय कार्य स्थल पर अवश्य जाते हैं लेकिन निरीक्षण करने की पूरी प्रक्रिया प्रशासनिक अधिकारी स्वयं करते हैं और इस प्रक्रिया में उनके मत का कोई औचित्य नहीं होता। कार्यों का निरीक्षण अवश्य किया जाता है लेकिन इसमें सामाजिक अंकेक्षण की समस्या है। ग्राम पंचायत प्रतिनिधियों का तर्क था कि उन्हें ग्राम पंचायत कोष से अतिरिक्त कार्यों का निरीक्षण ही नहीं करने दिया जाता है।

तालिका 4.4 के आंकड़ों से ज्ञात होता है कि कार्यों का निरीक्षण अवश्य किया जाता है लेकिन इसमें सामाजिक अंकेक्षण की समस्या है। ग्राम पंचायत प्रतिनिधियों का तर्क था कि उन्हें ग्राम पंचायत कोष से अतिरिक्त कार्यों का निरीक्षण ही नहीं करने दिया जाता। उन्होंने बताया कि 21 लाख से ऊपर के कार्यों में ठेकेदार टेंडर के माध्यम से कार्य प्राप्त करता है और ऐसे कार्यों में वह ग्राम प्रतिनिधि की अनुशंसा को नहीं सुनता है, वह बहुत खराब कार्य करते हैं और इसकी जानकारी प्रशासनिक अधिकारियों को भी होती है। लेकिन सब कार्य दलाली के आधार पर किए जाते हैं। प्रत्येक कार्य में प्रशासनिक अधिकारियों की हिस्सेदारी होती है। एक उत्तरदाता ने बताया कि उसने किसी ठेकेदार के विरुद्ध शिकायत की कि वह अपना कार्य उचित प्रकार से नहीं कर रहा है। अतः इसके विपत्र (बिल) को पास नहीं किया जाए, लेकिन उस पर कोई कार्यवाही नहीं हुई और उसके सभी बिल पास हुए।

शोधकर्ता द्वारा चर्चा में सभी सरपंचों से पुछा गया कि प्रशासनिक हिस्सेदारी होती है, और क्या आपको भी कोई हिस्सा मिलता है। अधिकतर सरपंचों ने इसकी हामी दी लेकिन सबके हिस्सेदारी का प्रतिशत अलग-अलग था। कुछ सरपंच कार्य निधि से 20 प्रतिशत हिस्सा लेते हैं, कुछ सरपंचों की यह राशि 15 प्रतिशत होती है तथा अधिकतर सरपंचों की यह हिस्सेदारी 10 प्रतिशत होती है। इसके पश्चात् 12 प्रतिशत हिस्सेदारी प्रशासनिक अधिकारियों की होती है। अतः हमारा स्थानीय प्रशासन हिस्सेदारी पर कार्य कर रहा है, इसलिए कार्यों में गुणवत्ता आना काफी कठिन है और इसलिए कार्यों का निरीक्षण भी उचित नहीं है।

सुझाव

- संसद सदस्यों को कार्यों के साथ राशि की घोषणा नहीं करनी चाहिए। राशि की घोषणा जिला अधिकारी की सहमति से कर सकते हैं क्योंकि नोडल अधिकारी तकनीकी शाखाओं से कार्यों के खर्च का अनुमान लेते हैं। इससे कार्यों में होने वाली देरी और लोक विळा के गलत प्रयोग पर रोकथाम लगायी जा सकती है क्योंकि तकनीकी शाखा के अनुमान सटीक होंगे।
- न्यास व सोसाइटियों के लिए स्वीकृत कार्यों को दिशा-निर्देशों से हटाकर न्यास व सोसाइटियों से संबंधित योजनाओं में शामिल करना। यह भ्रष्टाचार को भी जन्म देता है। इसलिए इस योजना की सरल प्रणाली बनाने व भ्रष्टाचार को समाप्त करने के लिए योजना के अंतर्गत न्यास व सोसाइटियों के कार्यों पर प्रतिबंध लगाना।
- योजना की कुल धनराशि बहुत कम है, इससे संपूर्ण संसदीय क्षेत्र का विकास संभव नहीं है। इसलिए योजना की कुल धनराशि को प्रति संसद सदस्य 15 करोड़ रुपये प्रतिवर्ष बढ़ा कर स्थायी परिसंपत्ति के कार्यों को बढ़ा दिया जाना चाहिए।
- ग्राम पंचायत के अंतर्गत किये गए सभी कार्यों में ग्राम प्रतिनिधियों द्वारा निरीक्षण की बाध्यता होगी। ग्राम पंचायत प्रतिनिधियों के निरीक्षण प्रतिवेदन के अभाव में कार्य संपूर्ण नहीं मानना तथा उपयोग प्रमाण-पत्र प्राप्ति में वार्ड पार्षद/ग्राम पंचायत सरपंच के हस्ताक्षरों को अनिवार्य रूप से जोड़ना आवश्यक है।
- कार्यों के संचालन के समय तथा समाप्ति पर जियो-टैगिंग प्रक्रिया का प्रयोग करना।

निष्कर्ष

अतः इस शोध पत्र के अध्ययन से ज्ञात होता है कि संसद सदस्य स्थानीय क्षेत्र विकास योजना के कार्य आवंटन में राजनीतिक पक्षपात पाया जाता है और यह लोकतांत्रिक प्रक्रिया तथा स्थानीय विकास में बहुत बड़ी बाधा है। संसद सदस्यों को संपूर्ण संसदीय क्षेत्र का प्रतिनिधित्व करना चाहिए। योजना की वार्षिक निधि को बढ़ाना आवश्यक है क्योंकि एक संसदीय क्षेत्र में गांव की संख्या अधिक होती है। यह योजना निधि की राशि कम होने के कारण 'रेवड़ी' संस्कृति का रूप धारण किए हुए है। इसमें सांसद कम राशि में ज्यादा लोगों को प्रभावित करने की कोशिश करते हैं। योजना के अंतर्गत प्रमुख समस्या निरीक्षण की है क्योंकि इस प्रक्रिया में ग्राम पंचायत प्रतिनिधियों को नजरअंदाज किया जाता है। ग्राम पंचायत प्रतिनिधियों के निरीक्षण के बिना कार्यों में गुणवत्ता आना काफी कठिन है। अतः शोध पत्र में दिए गए सुझावों के माध्यम से योजना राशि प्रयोग में सुधार किए जा सकते हैं।

संदर्भ सूची

1. जैन अशोक कुमार (2019), इंपोर्टेंट रुरल डेवलेपमेंट प्रोग्रामस इन इंडिया, निति आयोग, नई दिल्ली पृ. संख्या 31-33
2. महेन्द्र पटेल (2014), रुरल डेवलेपमेंट स्कीमस-एन एसेसमेंट, कुरुक्षेत्र: ए जर्नल ऑन रुरल डेवलेपमेंट, वोल्युम 62 पृ० सं० 10
3. कटारिया सुरेन्द्र (2020), प्रशासनिक सिद्धांत एवं प्रबंध, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली
4. सी०आई०आई० फाउंडेशन (2014) "कॉमपेडियम ऑफ सक्सेसफुल डेवलेपमेंट इनिसेएटिवज बाई में बरस ऑफ पार्लियामेंट अंडर एमपीलैड स्कीम, नई दिल्ली
5. भारत सरकार (2016), संसद सदस्य स्थानीय क्षेत्र विकास योजना दिशा-निर्देश, सांख्यिकी और कार्यक्रम कार्यान्वयन मंत्रालय, नई दिल्ली, पृ० 19, 22
6. भारत सरकार (2016), संसद सदस्य स्थानीय क्षेत्र विकास योजना दिशा-निर्देश, सांख्यिकी और कार्यक्रम कार्यान्वयन मंत्रालय, नई दिल्ली, पृ० 23-24

नागर शैली में बने प्राचीन गुप्तकालीन मंदिरों की संरचना का समीक्षात्मक अध्ययन

ज्योति

शोधार्थी, इतिहास विभाग, बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय, अस्थल बोहर, रोहतक (हरियाणा)

डॉ० यशपाल सिंह

प्रोफेसर, इतिहास विभाग, बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय, अस्थल बोहर, रोहतक (हरियाणा)

डॉ० विवेक दांगी

असिस्टेंट प्रोफेसर, इतिहास विभाग, ए. आई. जाट एच. एम. कॉलेज, रोहतक

सारांश:

गुप्तकालीन मंदिर वास्तुकला भारतीय स्थापत्य कला के प्रारंभिक और विकासशील चरण का प्रतीक है, जिसने बाद के युगों में मंदिर निर्माण की परंपरा को दिशा दी। इस युग के मंदिरों की संरचना में सपाट छत वाला वर्गाकार गर्भगृह, उभरा हुआ चबूतरा, स्तंभयुक्त बरामदा, और चारों ओर प्रदक्षिणा-पथ जैसे विशिष्ट तत्व शामिल थे। पत्थर की बारीक चिनाई और गारे का प्रयोग किए बिना संरचनाओं को मजबूती प्रदान करना इस काल की प्रमुख तकनीकी उपलब्धि थी।

मंदिरों के द्वारों और स्तंभों पर अलंकरण में पुष्प डिजाइन, गंगा-यमुना की आकृतियाँ, और कमल की सजावट ने धार्मिक और कलात्मक सौंदर्य को अभिव्यक्त किया। सांची, तिगोवा, उदयगिरि, और देवगढ़ जैसे मंदिर इन नवाचारों के उत्कृष्ट उदाहरण हैं।

गुप्तकालीन स्थापत्य ने न केवल धार्मिक आस्था के केंद्रों के रूप में, बल्कि सांस्कृतिक और कलात्मक उन्नति के माध्यम से भारतीय इतिहास में अपनी अमिट छाप छोड़ी। यह युग मंदिर निर्माण में तकनीकी कुशलता और कलात्मक परिपक्वता का आदर्श उदाहरण प्रस्तुत करता है।

मुख्य शब्द: गुप्तकाल, शिल्प कला, वास्तुकला, स्थापत्य कला, धार्मिक कला।

परिचय

प्रारंभिक गुप्तकालीन वैष्णव मंदिर भारतीय इतिहास, कला और धर्म के महत्वपूर्ण प्रतीक हैं। ये मंदिर भगवान विष्णु की पूजा के लिए बनाए गए थे और उस समय की धार्मिक, सांस्कृतिक, और स्थापत्य परंपराओं का उत्कृष्ट उदाहरण हैं। गुप्त साम्राज्य के दौरान, लगभग तीसरी से चौथी शताब्दी ईस्वी में, वैष्णववाद को बढ़ावा मिला और इन मंदिरों का निर्माण उच्च शिखरों, विस्तृत पत्थर की नक्काशियों और जटिल मूर्तियों के साथ किया गया।

मंदिरों में गर्भगृह, मंडप, आंगन और सहायक संरचनाएँ शामिल थीं, जो भक्तों के लिए पूजा और अनुष्ठान के स्थल थे। गुप्त शासक समुद्रगुप्त ने इन मंदिरों के निर्माण में अहम भूमिका निभाई। अशोक जैसे सम्राटों ने भी वैष्णववाद सहित विभिन्न धर्मों का समर्थन किया, जिससे इनके निर्माण को बढ़ावा मिला।

इन मंदिरों ने न केवल आध्यात्मिक केंद्र के रूप में बल्कि सांस्कृतिक और शैक्षिक गतिविधियों के स्थल के रूप में भी योगदान दिया। इनकी नक्काशियों और मूर्तियों में हिंदू पौराणिक कथाओं और भगवान विष्णु से जुड़े दृश्यों को दर्शाया गया है। वैष्णव मंदिरों की स्थापत्य शैली ने भारतीय मंदिर वास्तुकला को आने वाले युगों के लिए मानक प्रदान किया।

पुरातत्वविदों और कला इतिहासकारों ने इन मंदिरों के इतिहास और सांस्कृतिक महत्व पर व्यापक शोध किया है। संरक्षण और संवर्धन के प्रयासों से यह सुनिश्चित किया जा रहा है कि ये स्मारक आने वाली पीढ़ियों के लिए सुरक्षित रहें। प्रारंभिक-गुप्तकालीन वैष्णव मंदिर न केवल वास्तुकला और धर्म के दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण हैं, बल्कि प्राचीन भारत की सामाजिक और सांस्कृतिक समृद्धि का भी प्रतिनिधित्व करते हैं।

अलेक्जेंडर कनिंघम, जॉन मार्शल और आर. डी. बनर्जी जैसे पुरातत्वविदों ने प्राचीन मंदिर स्थलों की व्यापक खुदाई और सर्वेक्षण किया, जिसमें बहुमूल्य कलाकृतियाँ, शिलालेख और वास्तुशिल्प अवशेष मिले, जो भारत में वैष्णव मंदिरों के इतिहास और महत्व पर प्रकाश डालते हैं।

गुप्त मंदिरों की संरचना

गुप्त काल के मंदिरों की संरचना भारतीय वास्तुकला में एक महत्वपूर्ण अध्याय है, जिसने मंदिर निर्माण की परंपराओं को नई ऊँचाई दी। सांची का मंदिर इस काल का एक प्रारंभिक उदाहरण है, जबकि देवगढ़ के मंदिर में पहली बार शिखर का उपयोग किया गया। भीतरी गाँव के मंदिर ने मेहराब के प्रयोग की शुरुआत की। गुप्तकालीन मंदिरों में पत्थर की नक्काशी और भव्य सजावट का विशेष महत्व था, और यह युग कला और स्थापत्य के व्यापक विकास के लिए जाना जाता है।

इस काल में मोर्टार के बिना पत्थरों को टेनन-एंड-ग्रूव विधि से जोड़कर मंदिर बनाए गए। इनमें प्रमुख उदाहरण सांची, तिगावा, एरण, नचना-कुथारा, देवगढ़, भितरगाँव और सिरपुर के मंदिर हैं। इन मंदिरों की योजना सरल थी, जिसमें गर्भगृह, मंडप, और प्रदक्षिणापथ शामिल थे। गर्भगृह में केवल एक मुख्य द्वार होता था, जिससे भगवान के दर्शन सीधे संभव हो सकें। मंदिरों की संरचना में शिखर का प्रयोग एक बड़ा नवाचार था, जो मंदिरों में लंबवतता और भव्यता लाता था। शिखरों और दीवारों पर अलंकरण में गोबलिन, उड़ने वाले देवदूत, द्वारपाल, और अप्सराओं की आकृतियाँ उकेरी जाती थीं, जो धार्मिक और आध्यात्मिक वातावरण को प्रभावशाली बनाती थीं।

गुप्त काल के शिल्पियों ने मंदिरों की संरचना को अधिक विशाल और भव्य बनाने के लिए नए आयाम जोड़े। मंडप के विस्तार के लिए महामंडप, अर्ध-मंडप, और मुख-मंडप की अवधारणाएँ विकसित की गईं। मंदिरों की बाहरी दीवारों को अत्यधिक सजाया गया, जिससे इनकी भव्यता और आकर्षण बढ़ा। स्तंभों में भी गुप्त शैली की छाप दिखती है। खंभे चौकोर आधार से शुरू होकर अष्टकोणीय और सोलह भुजाओं वाले शाफ्ट में विकसित होते थे। इनके शीर्ष पर पूर्ण-कलसा का रूप मौर्य परंपरा की शैली को प्रतिस्थापित करता था, जिससे मंदिरों को एक नई पहचान मिली। गुप्त काल के मंदिरों ने भारतीय वास्तुकला में स्थायित्व और सौंदर्य का समन्वय स्थापित किया। इन मंदिरों की संरचना और सजावट न केवल धार्मिक महत्व रखती है, बल्कि यह भारतीय स्थापत्य के विकास में मील का पत्थर साबित हुई।

नागर शैली में बने मंदिरों की मुख्य रूप से 8 प्रमुख अंग होते हैं।

1. मूल आधार - जिस पर सम्पूर्ण भवन खड़ा किया जाता है।
2. मसूरक - नींव और दीवारों के बीच का भाग
3. जंघा - दीवारें (विशेषकर गर्भगृह की दीवारें)
4. कपोत - कार्निज
5. शिखर - मंदिर का शीर्ष भाग अथवा गर्भगृह का उपरी भाग
6. ग्रीवा - शिखर का ऊपरी भाग
7. वर्तुलाकार आमलक - शिखर के शीर्ष पर कलश के नीचे का भाग
8. कलश - शिखर का शीर्षभाग

इस शैली के मंदिर मुख्यतः मध्य भारत में पाए जाते हैं जैसे -

- कंदरिया महादेव मंदिर (खजुराहो)
- लिंगराज मंदिर - भुवनेश्वर (ओड़िसा)
- जगन्नाथ मंदिर - पुरी (ओड़िसा)
- कोणार्क का सूर्य मंदिर - कोणार्क (ओड़िसा)
- मुक्तेश्वर मंदिर - (ओड़िसा)
- खजुराहो के मंदिर - मध्य प्रदेश
- दिलवाडा के मंदिर - आबू पर्वत (राजस्थान)
- सोमनाथ मंदिर - सोमनाथ (गुजरात)

हिंदू मंदिरों के प्रमुख अवयव:

कलश: यह मंदिर का सबसे ऊपर का हिस्सा होता है। यह मुख्य रूप से उत्तर भारतीय शैलियों में देखा जाता है।

आमलक: ऊर्ध्वाधर शीर्ष एक क्षैतिज नालियुक्त चक्र जो मंदिर के शीर्ष पर होता था। ज्यादातर उत्तर भारतीय मंदिरों में देखा जाता है।

शिखर/विमान: 5वीं शताब्दी में इसका निर्माण शुरू हुआ। यह शीर्ष पर एक पर्वत जैसा शिखर होता है। उत्तर भारत में इसे शिखर कहा जाता है और आकार में वक्ररेखीय होता है। दक्षिण में, यह एक पिरामिड मीनार की तरह होता है जिसे विमान कहा जाता है।

गर्भगृह: इसका शाब्दिक अर्थ गर्भ गृह होता है। यह एक गुफा की तरह दिखने वाला गर्भगृह होता है जिसमें मंदिर के प्रमुख देवता को स्थापित किया जाता है। पहले के समय में, यह एक छोटा सा कक्ष होता था जिसमें एक प्रवेश द्वार होता है। बाद की अवधि में, इसके कक्ष के आकार में वृद्धि होती चली गई।

अंतराल: यह गर्भ-गृह और मंडप के बीच एक गलियारा होता था।

मंडप: मंदिर का प्रवेश स्थल। यह कोई द्वार मंडप या सभा भवन हो सकता है और इसे सामान्य रूप से बड़ी संख्या में पूजा करने वाले लोगों को स्थान प्रदान करने के लिए बनाया जाता है।

जगती: यह उत्तर भारतीय मंदिरों में साधारण है और यह एक उठा हुआ मंच होता है जहां श्रद्धालु बैठकर कर सकते हैं।

वाहन: यह मुख्य देवता का आसन या वाहन होता है, जिसे स्तम्भों या ध्वज के सामने स्थापित किया जाता था।

गुप्त काल भारतीय स्थापत्य, मूर्तिकला और सांस्कृतिक विकास के स्वर्ण युग के रूप में प्रसिद्ध है। इस काल में मंदिर निर्माण की परंपरा ने नई ऊँचाइयों को छुआ। वास्तुकला को सात भागों में विभाजित किया गया था: क्राजप्रासाद, आवासीय गृह, गुफाएँ, मंदिर, स्तूप, विहार और स्तंभ। गुप्तकालीन आवासीय भवनों में कई कमरे, आँगन, दालान और वातायन (रोशनदान) बनाए जाते थे। गुप्तकाल में ब्राह्मण धर्म के गुहा मंदिरों का निर्माण हुआ, जिनका प्रमुख उदाहरण उदयगिरि की गुफाएँ हैं। ये चट्टानों काटकर बनाई गई थीं। इसी काल की कुछ अन्य प्रसिद्ध गुफाएँ अजन्ता, एलोरा, औरंगाबाद और बाघ में स्थित हैं। मूर्तिकला में गुप्त काल ने अनुपम सौंदर्य और मौलिकता को स्थान दिया। मथुरा, सारनाथ और पाटलिपुत्र मूर्तिकला के मुख्य केंद्र थे। मूर्तियों में शालीनता, भद्रता, सरलता और आध्यात्मिकता के भाव स्पष्ट दिखाई देते हैं। कलाकारों ने मूर्ति निर्माण में स्वाभाविकता, प्रभामंडल और भव्यता को विशेष रूप से ध्यान में रखा।

वैष्णव धर्म इस काल में अत्यधिक लोकप्रिय था। विष्णु को सर्वोच्च देवता मानते हुए उनके मंदिरों का निर्माण व्यापक रूप से हुआ। गुप्त शासकों ने अन्य धार्मिक धाराओं के प्रति सहिष्णुता दिखाई, लेकिन वैष्णववाद का उत्थान इस काल की प्रमुख विशेषता रहा। मंदिर निर्माण में लकड़ी की जगह पाषाण का प्रयोग इस काल की सबसे बड़ी उपलब्धि थी, जिससे मंदिरों को स्थायित्व और भव्यता मिली। मंदिरों की संरचना में चौकोर गर्भगृह, वक्राकार शिखर और मंडप प्रमुख विशेषताएँ थीं। सिरपुर (मध्य प्रदेश) का लक्ष्मण मंदिर गुप्त काल के प्रमुख उदाहरणों में से एक है। यह मंदिर ईंटों से निर्मित है और सातवीं सदी ईस्वी के प्रारंभ का माना जाता है।

गुप्त काल के मंदिरों ने धार्मिक और सांस्कृतिक जीवन को गहराई से प्रभावित किया। इन मंदिरों में भगवान विष्णु के विभिन्न अवतारों जैसे वासुदेव, बलराम, वराह और नरसिंह की आराधना की जाती थी। इस काल में भक्ति आंदोलन ने जनमानस को प्रेरित किया और सगुणोपासना की परंपरा को मजबूत किया। इस युग की वास्तुकला और मूर्तिकला ने भारतीय कला और संस्कृति के विकास में एक स्थायी योगदान दिया।

गुप्तकालीन मंदिरों की निम्नलिखित विशेषताएँ उल्लेखनीय हैं -

1. भीतरगांव मंदिर और सिरपुर के लक्ष्मण मंदिर को छोड़कर सभी पत्थर से बने हैं। ये पत्थर से बने ब्राह्मण मंदिरों के सबसे पुराने उदाहरण हैं।
2. शिखरयुक्त मंदिरों के निर्माण की परम्परा भी इसी समय प्रारम्भ हुई। अभिलेखीय साक्ष्यों से पता चलता है कि गुप्त काल में मुख्य शिखर के अतिरिक्त द्वितीय शिखरों का भी निर्माण प्रारम्भ हुआ। मंदसौर (472 ई०) के कार्यों से ज्ञात होता है कि दशपुर मंदिर अनेक प्रभावशाली शिखरों (मनोहरै: शिखरै:) से सुसज्जित था।
3. इनकी छतें प्रायः सपाट होती हैं।
4. इनका निर्माण एक चबूतरे (जगतीपीठ) पर होता है जिसके चारों ओर ऊपर चढ़ने के लिए सीढ़ियाँ (सोपान) बनी होती हैं।
5. इन मंदिरों का आंतरिक भाग साधारण है, परंतु बाहरी भाग अलंकृत एवं सुसज्जित है।
6. मंदिर के प्रवेश द्वार की चौखट (देहली), शीर्ष पड़ाव (शिखरपट्टी) और किनारे (द्वार-शाखा) महान और शुभ प्रतीकों से सजाए गए हैं। उदाहरण के लिए, द्वारपाल (प्रतिहारी), उड़ने वाले हंसों की जोड़े (मांगल्य विहग), शुभवृक्ष (श्रीवृक्ष), स्वस्तिक, कलश (पूर्ण घाट), मिथुन, पत्रवल्ली, मकरवाहिनी गंगा और कर्मवाहिनी यमुना। कभी-कभी देहलीज पर शंख और कमल की आकृतियाँ प्रदर्शित की जाती हैं। वराहमिहिर ने मंदिर के प्रवेश द्वार (द्वार शाखा) के किनारों को ऐसी भव्य आकृतियों से सुशोभित करने का भी उल्लेख किया है।
7. मंदिर के अंदर एक गर्भगृह है जिसमें देवता की मूर्ति स्थापित है। गर्भगृह के सामने एक मंडप (मुखमंडप) है।
8. इनमें कुछ शुभ एवं गौरवशाली प्रतीक मिलते हैं। उदाहरण के लिए, गवाक्षवातायान और पूर्णकलश।
9. मंदिर के चारों ओर एक वृत्ताकार पथ था।

गुप्तकालीन मंदिर कुछ उदाहरण विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं-

(1) नागोद राज्य में स्थित भूमरा का शिव-मन्दिर, (2) जबलपुर जिले के तिगवा नामक स्थान पर निर्मित विष्णु-मन्दिर, (3) नचनाकुठारा का पार्वती मन्दिर, (4) देवगढ़ का दशावतार मन्दिर, (5) खोह का मन्दिर, (6) भीतरगाँव का मन्दिर, (7) सिरपुर का लक्ष्मण मन्दिर, (8) लाड़खान का मन्दिर तथा (6) दर्रा का मन्दिर।

प्रारंभिक गुप्त मंदिरों की विशेषताएं

प्रारंभिक गुप्त काल के मंदिर भारतीय वास्तुकला के प्रारंभिक चरणों की बेमिसाल झलक प्रस्तुत करते हैं। इन मंदिरों को ऊँचे चबूतरों पर बनाया गया, जिन तक पहुँचने के लिए सीढ़ियाँ बनाई गई थीं। इनमें गर्भगृह, देवता की मूर्ति और एक मुख्य प्रवेश द्वार के साथ खंभों पर टिका बरामदा शामिल था। गर्भगृह के चारों ओर प्रदक्षिणा पथ था, जो अक्सर ढका हुआ होता था। मंदिरों की छतें सपाट थीं, और पत्थरों की चिनाई इतनी बारीकी से की गई थी कि उनमें जोड़ों का कोई निशान नहीं दिखाई देता था। दरवाजों और चौखटों को फूलों और देव आकृतियों से सजाया गया था, जिनमें मकरवाहिनी गंगा और कूर्मवाहिनी यमुना की प्रतिमाएँ विशेष थीं। मंदिरों के स्तंभ भी विशिष्ट थे। कुछ स्तंभ चौकोर आकार के होते थे, और उनके शीर्ष पर चार शेरों की मूर्तियाँ बनाई जाती थीं, जो पूरे मंदिर का भार संभालती थीं। ये वास्तुशिल्प विशेषताएँ गुप्त काल की कला की परिष्कृत तकनीकों और सौंदर्य दृष्टिकोण को दर्शाती हैं।

प्रारंभिक गुप्त शैली के मंदिरों में तिगावा मंदिर, सांची का मंदिर, भुमरा का मंदिर, नाचनाकुठारा में पार्वती मंदिर, और उदयगिरि के मंदिर प्रमुख उदाहरण हैं। इन मंदिरों में वर्गाकार अभयारण्य और छोटे बरामदे थे, जो अधिकतर केवल देवता की छवि के लिए बनाए गए थे, न कि बड़े समुदायों की पूजा सभाओं के लिए। गुप्त काल के अंत में मंदिर वास्तुकला में बदलाव की शुरुआत हुई, जो देवगढ़ के दशावतार मंदिर में स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है। यह मंदिर लगभग 40 फीट ऊँचे शिखर और चार बरामदों के साथ बनाया गया था, जो उपासकों के लिए अधिक स्थान प्रदान करता था। पत्थरों को डॉवल्स से सुरक्षित किया गया था, जिससे संरचना की मजबूती और स्थायित्व में वृद्धि हुई।

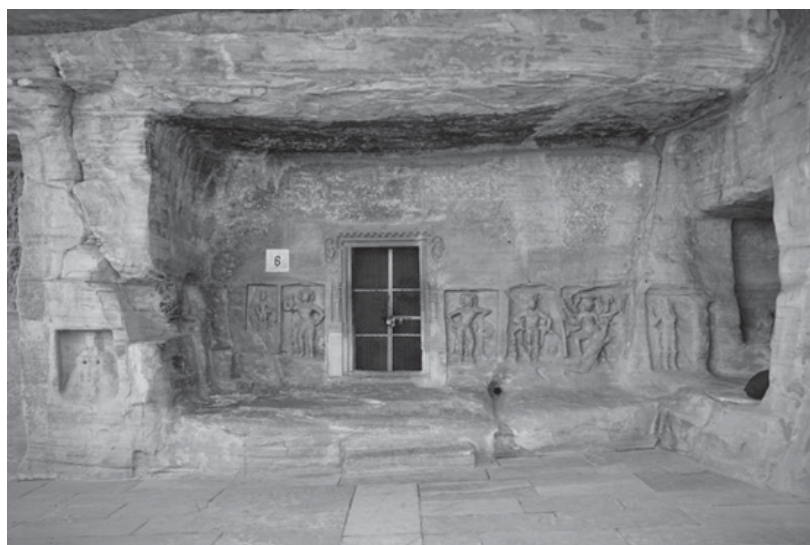
गुप्त कालीन मंदिर वास्तुकला ने हिंदू मंदिरों के ऊँचे शिखरों और व्यापक मंडपों की परंपरा के लिए एक आधार तैयार किया। इस काल के मंदिर न केवल धार्मिक आस्था के प्रतीक थे, बल्कि स्थापत्य नवाचार और कलात्मक उत्कृष्टता के महत्वपूर्ण प्रमाण भी हैं।

गुप्त काल के प्रारंभिक मंदिर भारतीय वास्तुकला के विकास में एक महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। इनका सबसे प्राचीन उदाहरण उदयगिरि की गुफा संख्या 6 है, जिसमें चंद्रगुप्त द्वितीय के शासनकाल (गुप्त वर्ष 82 = 401 ई.) का एक तिथि-युक्त शिलालेख है। यह गुफा मंदिर प्रारंभिक गुप्त शैली का प्रतिनिधित्व करता है और इसकी संरचना आंशिक रूप से चट्टान को काटकर और आंशिक रूप से पत्थर से निर्मित है। इसके सामने उथले स्तंभयुक्त बरामदे का निर्माण किया गया है, जो गुफा मंदिरों से संरचनात्मक मंदिरों की ओर संक्रमण का संकेत देता है। खंभों पर पूर्ण-घट (फूलदान) की आकृति और नक्काशीदार द्वार इस शैली की प्रमुख विशेषताएँ हैं।

सांची का गुप्त मंदिर भी इसी अवधारणा को प्रस्तुत करता है। यह चौथी शताब्दी के अंत का एक सपाट छत वाला सुंदर मंदिर है। इसमें गर्भगृह के सामने चार स्तंभों वाला एक छोटा बरामदा है। हालाँकि, इस मंदिर में प्रदक्षिणा पथ का विकास अभी प्रारंभिक अवस्था में था। पोर्टिको की कंगनी की ढलाई और गर्भगृह की सादी दीवारें इसकी विशिष्ट स्थापत्य शैली को दर्शाती हैं।

तिगावा का विष्णु मंदिर, जिसे स्थानीय रूप से कंकाली देवी मंदिर कहा जाता है, भी इसी शैली का अनुसरण करता है। इसमें सपाट छत है, जो ओवरलैपिंग ग्रूव्स द्वारा जोड़े गए पत्थरों से बनी है। इन मंदिरों में गुप्त शैली की सरलता और भव्यता स्पष्ट रूप से झलकती है, जो संरचनात्मक मंदिर निर्माण की नींव रखने में सहायक रही। ये मंदिर न केवल धार्मिक आस्था के प्रतीक थे, बल्कि भारतीय स्थापत्य में नवाचार और परिवर्तन का भी द्योतक थे, जिन्होंने बाद की शताब्दियों में मंदिर वास्तुकला के विकास को गहराई से प्रभावित किया।

चित्र: उदयगिरि में खोदा गया गुफा मंदिर (संख्या 6)



source : <https://photodharma.net/India/Udayagiri-Caves/index.htm>

गुप्त शैली के इस प्रारंभिक मंदिर समूह की विशिष्ट विशेषताओं का इस प्रकार विश्लेषण किया जा सकता है—

गुप्त शैली के प्रारंभिक मंदिरों की वास्तुकला सरलता और सौंदर्य का अनूठा मिश्रण है। इन मंदिरों की सबसे प्रमुख विशेषता वर्गाकार गर्भगृह है, जिसकी छत सपाट होती है। गर्भगृह का आंतरिक भाग सादा और बारीक पत्थर की चिनाई से निर्मित होता था, लेकिन किसी भी प्रकार के गारे का उपयोग नहीं किया गया। मंदिर एक ऊँचे चबूतरे पर बनाया गया था, जिसकी योजना वर्गों में विभाजित होती थी और इसका केंद्रीय वर्ग गर्भगृह को आधार प्रदान करता था।

इन मंदिरों के द्वार विशेष रूप से सजावट के लिए प्रसिद्ध थे। द्वारों पर पत्तों के पैटर्न, मानव आकृतियाँ, और ऊपरी कोनों पर गंगा और यमुना की प्रतिमाएँ उकेरी जाती थीं। गंगा और यमुना की ये आकृतियाँ गुप्त शैली की विशिष्ट विशेषता थीं, जिनकी उत्पत्ति सलभंजिका-आकृतियों से हुई मानी जाती है। ये बौद्ध तोरणों के वास्तुशिल्प की छवि को दर्शाती थीं।

गर्भगृह के सामने उथला बरामदा होता था, जो बाद में स्तंभयुक्त बरामदा और फिर पूर्ण मुखमंडप के रूप में विकसित हुआ। स्तंभों की संरचना भी गुप्त शैली का महत्वपूर्ण पहलू थी। स्तंभ चौकोर आधार, कई-तरफा शाफ्ट और शीर्ष पर पूर्ण-कलसा डिजाइन के साथ बनाए जाते थे। भवन के चारों ओर एक

सिंद्ग-कोर्स (अलंकरणीय पट्टी) चलती थी, जो वास्तुशिल्प को एक सुंदर समग्र रूप देती थी। खिड़कियों और वातायनों की सजावट भी गुप्त शैली में महत्वपूर्ण थी। इन खिड़कियों को चौत्य-खिड़की या गवाक्ष-वातायन के रूप में जाना जाता था। इन पर देवी-देवताओं की आकृतियाँ या झाँकते हुए पुरुष और स्त्रियों की मूर्तियाँ बनाई जाती थीं। सपाट छत की विशेषता के लिए मुकुंदरा का उदाहरण दिया जा सकता है। यहाँ छत के स्लैब पर कमल के बोल्ट पैटर्न उकेरे गए हैं। यह शैली बौद्ध गंधकुटी मंदिरों से प्रेरित मानी जाती है, जहाँ कमल-छत्र के साथ बोधिसत्व की छवियाँ उकेरी जाती थीं।

गुप्त काल के ये प्रारंभिक मंदिर न केवल भारतीय स्थापत्य के विकास को दर्शाते हैं, बल्कि उनमें धार्मिक, सांस्कृतिक और कलात्मक नवाचारों की अद्वितीय झलक भी दिखाई देती है। यह शैली बाद के कालखंडों में मंदिर निर्माण की परंपरा के लिए नींव साबित हुई।



source : <https://puratattva.in/tigawa-a-hidden-jewel/>

दर्रा और मुकुंदरा के मंदिर प्रारंभिक गुप्त काल की वास्तुकला की बुनियादी संरचना और विशेषताओं को दर्शाते हैं। यह मंदिर एक उभरे हुए चबूतरे (44 × 74 फीट) पर स्थित है, जिसमें बाईं और दाईं ओर सीढ़ियाँ हैं। मंदिर का मुख पूर्व दिशा की ओर है और यह चबूतरे के पश्चिमी किनारे के पास बनाया गया है।

गर्भगृह में चार वर्गाकार खंभे हैं, जो एक-दूसरे से 5.5 फीट की दूरी पर खड़े हैं। इन खंभों के शीर्ष पर वर्गाकार आकार की संरचना है, जिसके उभार स्कॉल-वर्क (नक्काशी) से सुसज्जित हैं। खंभों के ऊपर एक लिंटल रखा गया है, जो एक मध्यम आकार के सपाट पत्थर से ढका हुआ है। इस पत्थर पर केंद्र में पूर्ण विकसित कमल बना हुआ है, जिसके चारों ओर दो पंखुड़ी वाले बैंड और पुष्प स्कॉल-वर्क का एक बैंड है। कोनों पर चार छोटे कमल भी उकेरे गए हैं, जो सजावटी सौंदर्य को और बढ़ाते हैं।

गर्भगृह के तीनों किनारों पर स्तंभ 3 फीट 9 इंच की दूरी पर बनाए गए हैं। इन स्तंभों पर तीन उभरे हुए शिखर हैं, जिन पर लिंटल रखे गए हैं। इन लिंटल्स को सपाट पत्थरों से ढका गया है, जिनके अंदर की ओर पाँच कमल बने हैं। मंदिर के प्रवेश भाग में, गर्भगृह के स्तंभों से 5.5 फीट की दूरी पर, दो अतिरिक्त वर्गाकार स्तंभ खड़े किए गए हैं, जो लिंटल्स का समर्थन करते हैं। ये स्तंभ मंदिर के चारों ओर एक प्रदक्षिणा पथ प्रदान करते हैं। प्रदक्षिणा पथ के बाहर, मंदिर के तीन किनारों पर जमीन से 16 इंच ऊँचा एक पत्थर का रास्ता है, जो स्तंभों से लगभग 2 फीट 12 इंच की दूरी पर स्थित है। यह संरचना मंदिर की प्रदक्षिणा के लिए एक व्यवस्थित मार्ग बनाती है।

मंदिर की समग्र संरचना बुनियादी लेकिन सुव्यवस्थित है। मुख्य मंदिर में चार स्तंभों पर आधारित वर्गाकार सपाट शीर्ष का डिजाइन महोली और मथुरा में मिली बोधिसत्व छवियों के वर्गाकार छत्र से प्रेरित प्रतीत होता है। इन छवियों में छत्र मूर्तियों के ऊपर रखे जाते थे, जो छोटी और अस्थायी संरचनाओं में स्थापित थीं। यह मंदिर गुप्त कालीन वास्तुकला के प्रारंभिक चरणों का एक सटीक उदाहरण है, जिसमें बौद्ध स्थापत्य प्रभाव और भारतीय मंदिर निर्माण के शुरुआती नवाचारों का संयोजन देखने को मिलता है। इसकी साधारण लेकिन सुव्यवस्थित संरचना गुप्तकालीन कला और वास्तुकला की सूक्ष्मता को रेखांकित करती है।

निष्कर्ष

गुप्तकालीन मंदिर वास्तुकला भारतीय इतिहास में मंदिर निर्माण की प्रारंभिक और स्वर्णिम परंपराओं का आधारभूत चरण है। इस युग के मंदिरों ने स्थापत्य कला में तकनीकी नवाचारों और कलात्मक सौंदर्य का समावेश करते हुए धार्मिक आस्था को मूर्त रूप दिया। गुप्त मंदिरों की विशेषताओं में वर्गाकार गर्भगृह, सपाट छत, स्तंभों पर आधारित संरचनाएँ, उभरे हुए चबूतरे, नक्काशीदार द्वार और चारों ओर प्रदक्षिणा पथ शामिल थे।

गुप्तकाल में पत्थर की चिनाई में गारे के बिना पत्थरों को जोड़ने की तकनीक और उभरे हुए चबूतरों पर मंदिर निर्माण जैसी विधियाँ विकसित हुईं। मंदिरों की सजावट में पुष्प आकृतियाँ, गंगा, यमुना की प्रतिमाएँ और कमल के विशिष्ट डिजाइन जैसे अलंकरण प्रमुख थे। यह शैली जैसे सांची और तिगोवा के मंदिरों में देखी जाती है, न केवल धार्मिक भावना को व्यक्त करती है बल्कि भारतीय स्थापत्य के विकास की दिशा में मील का पत्थर साबित हुई।

उदयगिरि, सांची, तिगोवा और देवगढ़ जैसे मंदिरों ने संरचनात्मक और अलंकरणाय दृष्टिकोण से गुप्तकालीन स्थापत्य को नई पहचान दी। इन मंदिरों में प्रदक्षिणा पथ और मंडप जैसे तत्वों का समावेश बाद के मंदिरों में विकसित शिखर और मुखमंडप परंपराओं का प्रारंभिक रूप था।

गुप्तकालीन मंदिर न केवल धार्मिक आस्था के केंद्र थे, बल्कि सांस्कृतिक और कलात्मक नवाचार के भी प्रतीक थे। यह युग भारतीय स्थापत्य शैली के विकास का वह चरण है जिसने बाद के कालखंडों में भव्य हिंदू मंदिरों की परंपरा की नींव रखी। इन मंदिरों की सादगी और सौंदर्य, तकनीकी कुशलता और धार्मिक समर्पण का अद्वितीय समन्वय है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. कुमारस्वामी, आनंद के. "ललिता कला." मार्ग, वॉल्यूम IV, नंबर 2, पृष्ठ 9-10।
2. अग्रवाल, वी. एस. "ए न्यू गुप्ता टेम्पल एट दारा इन मालवा," जे.यू.पी.एच.एस., वॉल्यूम XIII (1950), पृष्ठ 196-197; स्टडीज इन इंडियन आर्ट, पृष्ठ 226-227।
3. परमेश्वरीलाल गुप्त, भारतीय वास्तु कला, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 1989, पृ० 80
4. जोशी, एन. पी. भारतीय मूर्ति शास्त्र. 1st संस्करण, नाग पब्लिशर्स, 2000, पृष्ठ 364।
5. मजुमदार, आर. सी. "द टेम्पल एट देवगढ़: ए स्टडी ऑफ नागर स्टाइल आर्किटेक्चर," इंडियन हिस्टोरिकल रिव्यू, वॉल्यूम 34, नंबर 2, 1967
6. त्रिवेदी, एस. डी. "आर्किटेक्चरल फीचर्स ऑफ गुप्ता पीरियड वैष्णव टेम्पल्स," इंडियन जर्नल ऑफ आर्कियोलॉजी, वॉल्यूम 24, नंबर 3, 2000
7. स्मिथ, जॉन, "द गुप्ता पीरियड वैष्णव टेम्पल्स: ए स्टडी ऑफ आर्किटेक्चरल फीचर्स," जर्नल ऑफ इंडियन हिस्ट्री, वॉल्यूम 24, नंबर 2, 2010
8. पी. के. गोडे, "भारतीय विद्या", भारतीय विद्या, अंक 5, पृष्ठ 62।
9. पटेल, अन्ना, "सिंबोलिज्म एंड आइकोनोग्राफी ऑफ वैष्णव टेम्पल्स इन द गुप्ता पीरियड," आर्ट हिस्ट्री क्वार्टरली, वॉल्यूम 12, नंबर 3, 2012
10. रॉय, एस, "आर्किटेक्चरल फीचर्स ऑफ गुप्ता पीरियड वैष्णव टेम्पल्स इन द नागरा स्टाइल," जर्नल ऑफ इंडियन आर्ट एंड आर्किटेक्चर, वॉल्यूम 30, नंबर 3, 2018

प्राथमिक शाला के पर्यावरण पाठ्यपुस्तक में निहित अधिगम प्रतिफल का NEP 2020 के सन्दर्भ में अध्ययन

डॉ० हेमन्त कुमार खटकर

सहायक प्राध्यापक, पं. रविशंकर विश्वविद्यालय रायपुर (छ.ग.)

सारांश:-

किसी भी राष्ट्र का विकास वहां की शिक्षा प्रणाली पर निर्भर करती है। विकसित शिक्षण प्रणाली, अधोसंरचना, संसाधनों की उपलब्धता, मानव संसाधन, अधुनिक तकनीकी इत्यादि राष्ट्र के शिक्षा व्यवस्था को प्रभावित करती है। शिक्षा समाज का दर्पण है। शिक्षा व्यक्ति के सर्वांगीण विकास के साथ-साथ समाज एवं राष्ट्र के विकास का मार्ग प्रशस्त करती है। शासन सभी शैक्षिक कार्यक्रमों में 3-6 वर्ष के बच्चों के शिक्षा पर बल देता है। विद्यालय का शिक्षा केवल सैद्धांतिक आधार पर संभव नहीं है सैद्धांतिक पत्र से अवधारणाओं को स्पष्ट किया जाता है। व्यवहारिक पत्र से विद्यार्थियों में कई कौशलों का विकास होता है। प्रारंभिक स्तर की पाठ्यचर्या ऐसी होनी चाहिए, कि शिक्षा की उपलब्धियों को विद्यार्थियों के व्यवहार में परिवर्तन के रूप में बताया जा सके प्राथमिक स्तर पर पर्यावरण अध्ययन के अंतर्गत यह सोच विचार किया जाता है कि बच्चों को उनके परिवेश की वास्तविक परिस्थितियों से अनुभव दिए जाए, जिससे विद्यार्थी पर्यावरण से जुड़े और उनके प्रति जागरूक हो।

प्रस्तावना:-

शिक्षा ही मानव को मानव के प्रति मानवीय भावनाओं से पोषित करती है, शिक्षा से मनुष्य अपने परिवेश के प्रति जागृत होकर कर्तव्याभिमुख हो जाता है, शिक्षा का लक्ष्य बच्चों का सर्वांगीण विकास करना है। पर्यावरण शिक्षा यह सिखाने के सुनियोजित प्रयास की ओर संकेत करती है कि किस प्रकार मनुष्य चिरस्थायी अस्तित्व के लिए स्वाभाविक वातावरण की क्रियाओं और विशेषतः अपने व्यवहार और पारिस्थितिक तंत्र में सामंजस्य स्थापित कर सकता है। प्राथमिक स्तर की पाठ्यचर्या ऐसी होनी चाहिए कि शिक्षा की उपलब्धियों को विद्यार्थियों के व्यवहार में परिवर्तन के रूप में बताया जा सके। शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर विद्यार्थी के सीखने के तरीके व आवश्यकताएं बदलती है। हमारी राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा N. CF. 2005 कहता है कि पाठ्यचर्या एवं पाठ्यपुस्तकें शिक्षक को इस बात के लिए सक्षम बनाएँ कि वे बच्चों की प्रकृति और वातावरण के अनुरूप कक्षा आयोजित करें, ताकि सभी बच्चों को अनुभव मिल पाएँ। हमारी कक्षाओं का वातावरण सक्रिय और उत्साह से भरा हो, ताकि बालक अपनी स्वभाविक हिचक को तोड़कर प्रत्येक क्रिया में सहभागी बन सके। पर्यावरण अध्ययन विषय इन बातों से ओर अधिक महत्वपूर्ण हो जाता है कि यह बच्चों की विद्यालयी दुनिया को उनकी बाहरी दुनिया यानी उनके परिवार के अनुभवों को कक्षा में साक्षात् करे। पर्यावरण अध्ययन के सीखने सिखाने की प्रक्रिया को प्रभावी बनाने के लिए हमें शिक्षण की अपेक्षा अधिगम का माहौल बनाना आवश्यक है, इसके लिए हमें स्थानीय सक्रिय, क्रियाकलापों, परियोजनाओं, फील्ड विजिट व अन्य उत्पादों को अपनाना होगा। पुस्तक में दी गई गतिविधियाँ हमें अपने आवश्यकताओं के अनुसार गतिविधियों और प्रेक्षण पहचान और वर्गीकरण करने के कौशल विकसित करने जैसे उद्देश्यों को पूरा कर पाएगा। NEP 2020:- NEP 2020 एक भारत केंद्रित शिक्षा प्रणाली की कल्पना करती है, जो सभी को उच्च गुणवत्ता की शिक्षा प्रदान करके, हमारे राष्ट्र को एक न्यायसंगत और जीवंत ज्ञापन समाज में लगातार बदलन में योगदान देती है, यही राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 का विजन है। प्राथमिकशिक्षण की महत्ता को देखते हुये NEP 2020 में उल्लेख किया गया है कि हमारी सर्वोच्च प्राथमिकता 2025 तक प्राथमिक और उससे आगे सार्वभौमिक मूलभूत साक्षरता पर प्राप्त होती है जिससे उभरते पर्यावरणीय मुद्दों, भौतिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक के प्रति संवेदनशील बने। NEP 2020 नेशनल करिकुलम फ्रेमवर्क का संशोधन बेहतर, रचनात्मक किस्म के सीखने को सुनिश्चित करने के लिए बेहतर रणनीतियों को रेखांकित करता है और आज भी प्रासंगिक है। इसमें स्कूली शिक्षाक्रम में विषय वस्तु भार को कम करना, इससे अधिक लचीलापन ला, रहने के स्थान पर रचनात्मक एप्रोच के मुताबिक सीखने, सिखाने पर जोर देना आदि सभी आग्रहों के साथ-साथ हमें पाठ्यपुस्तकों को भी बदलने की जरूरत होगी। तभी हम सही मायनों में बदलाव की ओर बढ़ पायेंगे। इसमें छव्त्त की पाठ्यपुस्तकों का संशोधन किया जाएगा और राज्य स्तर पर पाठ्यपुस्तकों का निर्माण जिसमें पाठ्यपुस्तकों में निम्न चीजे शामिल की जाएगी।

- (1) NCERT की मूल सामग्री।
- (2) कोई भी ऐसी सप्लीमेंट्री सामग्री जो छम्त्त ने विकसित की हो और वह राज्य के अपने संदर्भ में प्रासंगिक हो।
- (3) अन्य कोई सामग्री जो SCERT की या स्थानीय जिलों ने तैयार की हो जिसमें जरूरत के मुताबिक स्थानीय सन्दर्भों को जगह मिली हो।

अध्ययन के उद्देश्य:-

निम्नलिखित उद्देश्य निर्धारित किए गए हैं:-

इस तरह इसमें अतिरिक्त विषयों के लिए पाठ्यपुस्तक और सामग्री विकसित की जायेगी। स्कूलों में पाठ्यपुस्तकों के चुनाव को अधिक लचीला और समृद्ध करने के लिए कुछ नए तरीकों से पाठ्यपुस्तकों को बनाना इसमें खेल, व्यायाम योग, नैतिक शिक्षा, व्यावसायिक शिक्षा, भारतीय समाज, साहित्य से प्रेरणादायी पाठों को शामिल करना, स्वास्थ्य और सुरक्षा का प्रशिक्षण, डिजिटल साक्षरता और कम्प्यूटेशनल चिंतन, पहेलियाँ, तार्किक चिंतन पर बल देना है

1. कक्षा पाँचवीं हेतु निर्धारित पर्यावरण विषय के अधिगम प्रतिफल का अध्ययन।

2. कक्षा पाँचवीं के पर्यावरण विषय की

पाठ्यपुस्तक में निर्धारित प्रतिफल के प्रति शिक्षकों के अभिमत जानना।

शोध प्रश्न:-

1. कक्षा पाँचवीं के पर्यावरण विषय के अधिगम प्रतिफल कौन-कौन से हैं?

2. कक्षा पाँचवीं का पर्यावरण विषय के अधिगम प्रतिफल के प्रति शिक्षकों के अभिमत क्या है?

शोध विधि:-

प्रस्तुत शोध सर्वेक्षण विधि पर आधारित है।

जनसंख्या एवं न्यादर्श:-

गुणात्मक प्रकृति का है अतः जनसंख्या एवं न्यादर्श के स्थान पर छ.ग. पाठ्यपुस्तक निगम द्वारा प्रकाशित एवं राजधानी प्रिंटर्स रायपुर द्वारा मुद्रित प्रकाशन वर्ष 2021 कक्षा पाँचवीं के पर्यावरण पाठ्यपुस्तक को लिया गया है। चूँकि स्टै के बारे में शिक्षकों के अभिमत जानने हेतु कोरबा जिले के कोरबा ब्लॉक के 50 शिक्षकों को न्यादर्श के रूप में लिया गया है।

शोध उपकरण:-

इस शोध हेतु स्वनिर्मित शिक्षक अभिमततावली का निर्माण किया गया है।

विश्लेषण एवं व्याख्या:-

प्रस्तुत शोध में सर्वेक्षण विधि विधिके साक्षात्कार प्रश्नावली द्वारा प्राप्त आंकड़ों को शोध प्रश्न के अनुसार आंकड़ों का विश्लेषण किया गया है।

परिकल्पना:-

Ho1:- पशु-पक्षियों की अतिसंवेदी इंद्रियों और असाधारण लक्षणों के आधार पर ध्वनि के प्रति उनकी प्रतिक्रिया की व्याख्या करते हैं।

Ho2:- दैनिक जीवन की आधारभूत आवश्यकताओं तथा उन्हें उपलब्ध कराने की प्रक्रिया तथा तकनीक को समझते हैं।

Ho3:- दैनिक जीवन में उपयोगी विभिन्न संस्थाओं (बैंक, पंचायत, पुलिस थाना, अस्पताल) की भूमिका तथा कार्यों का वर्णन करते हैं।

Ho4:- पेड़ पौधों, जीव जन्तुओं तथा मनुष्यों परस्पर निर्भरता का वर्णन करते हैं।

Ho5:- भू-क्षेत्रों जलवायु संसाधनों तथा सांस्कृतिक जीवन में आपसी संबंध स्थापित करते हैं।

निष्कर्ष:-

कक्षा पाँचवीं के पर्यावरण विषय हेतु एनसीआरटी द्वारा कुल 21 अधिगम प्रतिफल निर्धारित किए गए हैं। इन्हे तालिका 1 के अनुसार मुख्य चार भागों में 1. जैविक पर्यावरण 2. भौतिक पर्यावरण 3. मनो- सामाजिक पर्यावरण 4. गणित और कम्प्यूटर के आधार पर क्षेत्रीय विश्लेषण में सबसे अधिक जैविक एवं भौतिक में 30.80 प्रतिशत और गणित कम्प्यूटर में सबसे कम 15.40 प्रतिशत निर्धारित किये हैं।

प्रेमचंद के उपन्यासों में सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक पृष्ठभूमि

सुनील कुमार

(JRF) शोधार्थी, हिंदी विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना

शोध सार-

हिंदी साहित्य के “उपन्यास सम्राट” कहे जाने वाले प्रेमचंद (1880-1936) का साहित्य सामाजिक यथार्थ का आईना है। उनके उपन्यासों में भारतीय समाज के सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक परिवर्तनों का चित्रण मिलता है। प्रेमचंद ने उस युग के भारतीय समाज के विभिन्न वर्गों, विशेषतः ग्रामीण जीवन, किसानों, मजदूरों, महिलाओं और दलितों की समस्याओं को केंद्र में रखा। वह साहित्य को समाज के दर्पण के रूप में देखते हैं और उनकी रचनाएं केवल साहित्यिक मनोरंजन तक सीमित नहीं रही, बल्कि समाज सुधार और जागरूकता का माध्यम बनी। उनके उपन्यासों में भारतीय समाज की सच्चाई, ग्रामीण और शहरी जीवन की समस्याएं, गरीबों और किसानों की आर्थिक दुर्दशा, तथा औपनिवेशिक शासन के प्रभाव को देखा जा सकता है।

मूल शब्द- उपन्यास, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, साम्राज्यवाद, जातिवाद, शोषण।

प्रस्तावना-

प्रेमचंद का साहित्य साम्राज्यवाद, जातिवाद, शोषण और सामाजिक कुरीतियों के खिलाफ आवाज उठाता है। उनके उपन्यासों में सामाजिक न्याय, सामूहिकता, और लोकतांत्रिक मूल्यों की अवधारणा स्पष्ट रूप से उभरकर सामने आती है। यह आलेख उनके उपन्यासों में सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक पृष्ठभूमि का विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत करता है।

प्रेमचंद का लेखन और उद्देश्य:-

प्रेमचंद का उद्देश्य साहित्य के माध्यम से समाज में व्याप्त बुराइयों को दूर करना और उसे सही दिशा में प्रेरित करना था। उनके उपन्यासों की विशिष्टता यह थी कि उन्होंने जीवन के हर पहलू को, चाहे वह सामाजिक हो, आर्थिक हो या राजनीतिक हो, बहुत गहराई से चित्रित किया।

प्रेमचंद के उपन्यासों का परिचय-

प्रेमचंद ने कुल 12 उपन्यास लिखे, जिनमें गोदान, कर्मभूमि, गबन, रंगभूमि, निर्मला, और सेवासदन जैसे प्रसिद्ध उपन्यास शामिल हैं। उनके उपन्यास समाज के विभिन्न पहलुओं को गरीबी, शोषण, महिला सशक्तिकरण, जाति-भेद, भ्रष्टाचार और स्वतंत्रता संग्राम को केंद्रित करते हैं।

मुख्य उपन्यास-

गोदान (1936) - “गोदान” प्रेमचंद का अंतिम और सबसे प्रसिद्ध उपन्यास है, जिसे भारतीय साहित्य का एक महान कृति माना जाता है। यह होरी और उनकी पत्नी धनिया की कहानी है, जो ग्रामीण जीवन के संघर्ष, गरीबी और सामाजिक अन्याय का प्रतिनिधित्व करते हैं। प्रेमचंद ऐसे प्रथम भारतीय उपन्यासकार हैं। जिन्होंने उपन्यासों का उपयोग समाज और जीवन की आलोचना के लिए किया है। उन्होंने अपने उपन्यासों में उन समस्याओं को चित्रित किया है। जो वर्तमान युग से जुड़ी हुई है। और जिन्हें हर व्यक्ति अनुभव करता है। प्रेमचंद एक ऐसे समाज का निर्माण करना चाहते थे। जहां भेदभाव के अभिशाप से मानवता पीड़ित न हो, किसी प्रकार का शोषण न हो, और आदमी की पहचान संपत्ति और जाति के पैमाने से न हो, गोदान में उनका यही उद्देश्य प्रमुखता से व्यक्त हुआ है। इस उपन्यास का प्रधान उद्देश्य है कृषक जीवन की समस्याओं का चित्रण करना। उसके शोषण का चित्र प्रस्तुत करना और उसकी दीन-हीन स्थिति से समाज को परिचित कराना। किसान का शोषण कौन करता है तथा उनका शोषण कितने मुहानों पर होता है? और उसे शोषण के लिए समाज में कौन-कौन लोग उत्तरदाई हैं? इसका सजीव चित्र गोदान में किया गया है। उपन्यास मनोरंजन की वस्तु नहीं है। अपितु वह जीवन की सच्चाइयों को उजागर कर हमें सोचने विचारने को विवश करता है और संघर्ष के प्रेरणा प्रदान करता है। अपने उपन्यासों के उद्देश्य पर प्रकाश डालते हुए मुंशी प्रेमचंद लिखते हैं- “हम साहित्य को मनोरंजन और विलासिता की वस्तु नहीं समझते। हमारी कसौटी पर वही साहित्य खरा उतरेगा जिसमें चित्रण की स्वाधीनता का भाव हो, सौंदर्य का सार हो, सृजन की आत्मा हो, और जीवन की सच्चाई का प्रकाश हो, जो हममें गति, संघर्ष और बेचौनी पैदा करें, सुलावे नहीं।”

कृषक जीवन की विसंगतियों का चित्रण:- गोदान के रचना कृषक जीवन से जुड़ी हुई समस्याओं का चित्रण करने के लिए की गई है। होरी कृषक वर्ग का प्रतिनिधित्व पत्र है। उसके जीवन की “ट्रेजडी” हर किसान के जीवन को प्रस्तुत करती है। जबकि भारत में जमींदारी प्रथा थी। तो किसान उनके

शिकंजे में कसा हुआ था। जमींदार, कारकुन, पटवारी, सूदखोर महाजन आदि तो उसका शोषण करते ही हैं। इनके अतिरिक्त पुलिस, व्यापारी, चौकीदार, जमींदार, कारकुन, धर्म के ठेकेदार भी किसान का शोषण करते हैं। यह कैसा विरोधाभास है कि जो किसान सारे संसार के लिए अन्न उपजाता है वही खुद भूखा है। यह भी विडंबना है कि अपने शोषकों के बारे में होरी जैसा किसान अच्छी तरह जानता जानता है फिर भी रूढ़ियों और संस्कारों से बंधा हुआ होने के कारण वह उनके प्रति क्रोधाभीभूत नहीं हो पता, इस क्षण के लिए वह अपने भाग्य को दोषी मानता है।

शोषण के विविध रूपों का चित्रण:- किसान का शोषण जमींदार हो तो करता ही है किंतु इस क्षण चक्र में और भी कई लोग शामिल हैं। गांव के महाजन और साहूकार भी किसान की मजबूरी का लाभ उठाकर ऊंची दर पर ब्याज वसूलते हैं। साहूकार के सूद की दर एक आना रुपए से लेकर दो आना रुपए तक है। किंतु किसान मजबूर है कर्ज लेने को विवश है। कभी खाद के लिए, कभी बीज के लिए, कभी बैल के लिए, तो कभी लगान चुकाने के लिए, इस पर होरी कहता है:- “कितना चाहता हूं कि किसी से एक पैसा कर्ज न लूं, लेकिन हर तरह का कष्ट उठाने पर भी गला नहीं छूटता।”

प्रेमचंद को यह स्पष्ट दिख रहा है कि यह शोषण अब अधिक दिनों तक चलने वाला नहीं है। राय साहब को भी इसका आभास हो गया था की जमींदारी प्रथा अब समाप्त होने वाली है।

सामाजिक क्रांति में नारी का योगदान:-

प्रेमचंद जी की मान्यता है कि समाज में परिवर्तन करने के लिए नारी को अपनी भूमिका का निर्वाह सही ढंग से करना होगा। नारी की सहायता लिए बिना सामाजिक क्रांति असंभव है। मेहता जी ने नारी संबंध में जो विचार गोदान में व्यक्त किए हैं वह इसी धारण को पुष्ट करते हैं। प्रेमचंद जी ने गोदान में धनिया के रूप में एक ऐसे नारी पात्र की परिकल्पना की है जो अपनी दृढ़ता, साहस, और कर्मठता से समाज को हिला देती है। वह एक साथ सामाजिक रूढ़ियों से, अन्याय से, और शोषण से जूझती है और अपने लौह व्यक्तित्व पर आंतरिक मृदुता के कारण गोदान की सर्वाधिक जीवन नारी पात्र बन जाती है।

सामाजिक पृष्ठभूमि:-

- किसान जीवन की त्रासदी और संघर्ष का यथार्थवादी चित्रण।
- जातिवाद और सामाजिक भेदभाव का यथार्थ चित्रण।
- महिलाओं की स्थिति और उनकी सहनशीलता।
- धार्मिक परंपराओं और प्रखंड का पर्दाफाश।

आर्थिक पृष्ठभूमि:-

- किसानों की गरीबी और कर्ज की समस्या।
- साहूकारों और जमींदारों द्वारा शोषण।
- ग्रामीण अर्थव्यवस्था की दुर्दशा।

राजनीतिक पृष्ठभूमि:-

- स्वतंत्रता संग्राम की छाया।
- ग्रामीण जनता की राजनीतिक उदासीनता।

“गोदान” उपन्यास में यह दिखलाया गया है कि सामाजिक व्यवस्था में सुधार और शोषण के खिलाफ संघर्ष ही सच्ची मुक्ति का मार्ग है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि गोदान में प्रेमचंद की दृष्टि अत्यंत व्यापक रही है। कृषक जीवन से जुड़ी हुई समस्याओं का निरूपण करने के लिए साथ-साथ उन्होंने समाज की अन्य समस्याओं पर भी दृष्टि डाली है। उद्देश्य की दृष्टि से यह सफल उपन्यास है।

कर्मभूमि (1932) – “कर्मभूमि” उपन्यास में गांधीवादी आंदोलन और भारतीय स्वतंत्रता संग्राम से प्रेरित उपन्यास है। जिसमें अमरकांत की कहानी है जो व्यक्तिगत सुख और समाज सेवा के बीच संघर्ष करता है।

“कर्मभूमि” उपन्यास में हिंदू और मुसलमान एकता, अछूतोंद्वारा एवं दलित किसानों के उत्थान की कथा को भी दिखलाया गया है।

राजनीतिक आंदोलनों और सामाजिक सुधारों की गाथा।

प्रेमचंद का उद्देश्य सर्वहारा वर्ग के सर्वग्रासी संघर्ष को चित्रित करना नहीं बल्कि धर्म और अत्याचार पर आधारित समाज व्यवस्था का विरोध कर एक ऐसे समाज की स्थापना करना है, जो जीवन के मिथ्या आदर्शों का अंत कर एक नए युग का परिवर्तन कर सके।

कर्मभूमि उपन्यास के मूल समस्याएं:-

- जमीन की समस्या।
- लगन काम करने की समस्या।
- खेतिहर मजदूरों की समस्या।

- अछूतों के मंदिर में प्रवेश की समस्या।
- नारी की असुरक्षा की समस्या।
- पत्नी के समान अधिकार की समस्या।

गबन (1931) – “गबन” उपन्यास में मध्यवर्गीय परिवारों की महत्वाकांक्षाओं, दिखावे और नैतिक पतन को दर्शाता है। यह कहानी है रमानाथ और जालपा की है। जिसमें रामनाथ अपनी पत्नी की इच्छाओं को पूरा करने के लिए गबन करता है।

“गबन” उपन्यास मध्यवर्गीय जीवन की असंगति का यथार्थ मनोवैज्ञानिक चित्रण है। गबन प्रेमचंद के एक विशेष चिन्ताकुल विषय से संबंधित उपन्यास है। यह विषय है, गहनों के प्रति पत्नी के लगाव का पति के जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ता है। गबन में टूटते मूल्यों के अंधेरे में भटकते मध्य वर्ग का वास्तविक चित्रण किया गया। इन्होंने समझौतापरस्त और महत्वाकांक्षा से पूर्ण मनोवृत्ति तथा पुलिस के चित्रण को बेबाकी से प्रस्तुत करते हुए कहानी को जीवंत बना दिया गया है।

इस उपन्यास में प्रेमचंद ने पहली नारी समस्या को व्यापक भारतीय परिप्रेक्ष्य में रख कर देखा है, और उसे तत्कालीन भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन से जोड़कर देखा है, सामाजिक जीवन और कथा साहित्य के लिए यह एक नई दिशा की ओर संकेत करता है। यह उपन्यास जीवन की असलियत की छानबीन अधिक गहराई से करता है, भ्रम को तोड़ता है। नए रास्ते तलाशने करने के लिए पाठक को नई प्रेरणा देता है।

रंगभूमि (1924) – रंगभूमि उपन्यास मुंशी प्रेमचंद द्वारा लिखा गया है जिसमें पूंजीवाद के साथ जन संघर्ष व बदलाव की महान गाथा है। रंगभूमि उपन्यास एक ऐसी कृति है जो नौकरशाही तथा पूंजीवाद के साथ जन संघर्ष का तांडव, सत्य, निष्ठा और अहिंसा के प्रति आग्रह, ग्रामीण जीवन तथा स्त्री दुर्दशा का भयावह चित्र अंकित है। यह उपन्यास सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और धार्मिक समस्याओं के बीच राष्ट्रीयता की भावना से ऊपर उठ कर निस्वार्थ भाव से देश की सेवा पर बोल देता है।

रंगभूमि उपन्यास में औद्योगीकरण के दोष, पूंजीपतियों की शोषण नीति, अंग्रेजों के अत्याचार एवं भारतीय शिक्षितों की चरित्र-हीनता का विश्लेषण किया गया है।

निर्मला (1925) – इस उपन्यास में महिला केंद्रित साहित्य के इतिहास में इस उपन्यास का विशेष स्थान है। इस उपन्यास की कथा का केंद्र और मुख्य पात्र “निर्मला” नाम की 14 वर्षीय सुंदर और सुशील लड़की है। निर्मला का विवाह एक अंधेड़ उम्र के व्यक्ति से कर दिया जाता है। जिसके पूर्व पति से तीन बेटे हैं। निर्मला का चरित्र निर्मल है। परंतु फिर भी समाज में उसे अनदर एवं अवहेलना का शिकार होना पड़ता है। उसकी पति परायणता काम नहीं आती। उस पर संदेह किया जाता है, उसे परिस्थितियों उसे दोषी बना देता है। इस प्रकार निर्मला विपरीत परिस्थितियों से जूझती हुई मृत्यु को प्राप्त करती है।

निर्मला में अनमेल विवाह और दहेज प्रथा की दुखांत व मार्मिक कहानी है। उपन्यास का लक्ष्य अनमेल विवाह तथा दहेज प्रथा के बुरे प्रभाव को अंकित करता है। निर्मला के माध्यम से भारत के मध्यवर्गीय युवतियों की दयनीय हालत का चित्रण हुआ है। उपन्यास के अंत में निर्मला की मृत्यु इस कुत्सित सामाजिक प्रथा को मिटा डालने के लिए एक भारी चुनौती है। प्रेमचंद ने भालचंद्र और मोटे राम शास्त्री के प्रसंग द्वारा उपन्यास में हास्य की सृष्टि की है।

सेवा सदन (1916) – सेवा सदन उपन्यास में समझ में वेश्यावृत्ति और नारी स्वतंत्रता के मुद्दों पर आधारित है। इसमें सामाजिक बंधनों से मुक्त होने की महिला की आकांक्षा को दर्शाया गया है। प्रेमचंद के उपन्यास भारतीय समाज के जातिवादी ढाँचे, धार्मिक पाखंड, महिला उत्पीड़न, और बाल विवाह जैसी कुरीतियों का पर्दाफाश करते हैं। वह सामाजिक सुधार के पक्षधर थे। और अपने उपन्यासों में सामाजिक अन्याय के खिलाफ आवाज उठाई है।

प्रेमचंद के उपन्यासों में किसानों की गरीबी, साहूकारों का शोषण, और मध्यवर्गीय जीवन की आर्थिक समस्याओं का यथार्थवादी चित्रण मिलता है। “गोदान” और “गबन” में यह समस्या प्रमुखता से उठाया गया है।

“सेवासदन” प्रेमचंद का पहला हिंदी उपन्यास है। जिसमें उन्होंने वेश्यावृत्ति और नारी स्वतंत्रता जैसे गंभीर मुद्दों को उठाया है। यह कहानी एक स्त्री की है जो सामाजिक बंधनों को तोड़ने और स्वाभिमान से जीने का प्रयास करती है।

- नारी शोषण और सामाजिक बंधन।
- गरीबी और आर्थिक स्वतंत्रता की आवश्यकता।
- औपनिवेशिक शासन की छाया।
- नारी स्वतंत्रता और आत्मसम्मान।
- समाज सुधार और महिला अधिकारों का महत्व।

सामाजिक पृष्ठभूमि:

जातिवाद और सामाजिक भेदभाव-

- प्रेमचंद के उपन्यासों में जातिगत भेदभाव और सामाजिक असमानता की तीव्र आलोचना मिलती है।
- गोदान में होरी और गोबर जैसे पात्र ग्रामीण समाज में जातिगत संघर्ष को उजागर करते हैं।
- रंगभूमि का सूरदास एक दलित है, जो सामंतवाद और साम्राज्यवाद के विरुद्ध संघर्ष करता है।

महिला सशक्तिकरण और दहेज प्रथा

- सेवासदन में प्रेमचंद ने दहेज प्रथा और वेश्यावृत्ति जैसी कुरीतियों का विरोध किया है।

- निर्मला में उन्होंने महिला उत्पीड़न और सामाजिक पाखंड को दर्शाया है।
- कर्मभूमि में सुधा जैसी पात्र महिलाओं की शिक्षा और सशक्तिकरण की ओर संकेत करती हैं।

शिक्षा और सामाजिक सुधार

- प्रेमचंद के उपन्यासों में शिक्षा को सामाजिक परिवर्तन का मुख्य माध्यम माना गया है।
- कर्मभूमि में शिक्षा के माध्यम से समाज को सुधारने की प्रेरणा दी गई है।

आर्थिक पृष्ठभूमि

किसानों की स्थिति

- प्रेमचंद के साहित्य में किसानों की समस्याओं का सजीव चित्रण मिलता है।
- गोदान में होरी के माध्यम से किसानों के शोषण और उनकी बेबसी को दिखाया गया है।
- जमींदारी प्रथा और महाजनी शोषण को प्रेमचंद ने विस्तार से चित्रित किया है।

शहरी और ग्रामीण आर्थिक अंतर

- गबन में शहरी मध्यवर्गीय समाज की महत्वाकांक्षाओं और भ्रष्टाचार को दर्शाया गया है।
- प्रेमचंद ने ग्रामीण जीवन की सादगी और शहरी जीवन की दिखावेबाजी के बीच अंतर स्पष्ट किया है।

मजदूर वर्ग का संघर्ष

- रंगभूमि में सूरदास के माध्यम से प्रेमचंद ने मजदूरों की समस्याओं को उठाया है।
- उन्होंने औद्योगिकरण और उसके दुष्प्रभावों पर भी प्रकाश डाला है।

राजनीतिक पृष्ठभूमि

- स्वतंत्रता संग्राम
- प्रेमचंद ने भारतीय स्वतंत्रता संग्राम और उसमें जनता की भूमिका को अपने उपन्यासों में उकेरा है।
- कर्मभूमि में सत्याग्रह और अहिंसा जैसे गांधीवादी आदर्शों का प्रभाव दिखता है।
- रंगभूमि में औपनिवेशिक शासन और भारतीय जनमानस के बीच टकराव को रेखांकित किया गया है।

साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद

- रंगभूमि में सूरदास और ब्रिटिश अधिकारियों के संघर्ष के माध्यम से साम्राज्यवादी शोषण का विरोध किया गया है।
- प्रेमचंद ने भारतीय जनजीवन में विदेशी शासन के दमनकारी प्रभाव को स्पष्ट किया है।

सामाजिक न्याय और समानता

- कर्मभूमि और गोदान में समाजवादी विचारधारा का प्रभाव देखा जा सकता है।
- प्रेमचंद ने सामाजिक न्याय और समानता के लिए संघर्षरत पात्रों की रचना की।

भाषा और शैली

प्रेमचंद की भाषा सरल, सहज और यथार्थवादी है। उन्होंने अपने उपन्यासों में खड़ी बोली और आंचलिक शब्दों का प्रयोग किया है। उनकी शैली वर्णनात्मक और पात्र-प्रधान है, जो पाठक को सामाजिक यथार्थ से जोड़ती है।

प्रेमचंद के साहित्य की प्रमुख विशेषताएं:-

यथार्थवाद:- प्रेमचंद ने समाज की वास्तविक समस्याओं और घटनाओं का सजीव चित्रण किया है उनके उपन्यास आदर्शवाद और यथार्थवाद का अद्भुत समन्वय है।

सामाजिक समस्याओं का चित्रण:- उन्होंने दहेज प्रथा, जातिवाद, वेश्यावृत्ति, बाल विवाह और महिला उत्पीड़न जैसे मुद्दों पर प्रकाश डाला है।

आर्थिक विषमता का प्रदर्शन:- प्रेमचंद के उपन्यासों में गरीबी साहूकारी प्रथा, और किसानों की आर्थिक दुर्दशा का प्रभावी चित्रण मिलता है।

राजनीतिक चेतना:- प्रेमचंद के उपन्यासों में गांधीवादी विचारधारा और स्वतंत्रता संग्राम की झलक स्पष्ट रूप से दिखाई देती है।

सरल भाषा और शैली:- प्रेमचंद की भाषा अत्यंत सरल और सहज है। पाठकों के मन पर गहरा प्रभाव डालता है। प्रेमचंद कैसे कथाकार हैं जिन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से दलित, शोषित, व पीड़ित व्यक्ति का यथार्थ चित्रण किया है। उन्होंने सरल भाषा शैली में अपनी रचनाओं को ढाल कर उसे जन-जन में लोकप्रिय बना दिया है।

निष्कर्ष-

प्रेमचंद के उपन्यास भारतीय समाज का दस्तावेज हैं। उन्होंने समाज के हर पहलू के सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक को गहराई से चित्रित किया। उनके पात्र और कथानक आज भी प्रासंगिक हैं। प्रेमचंद के उपन्यास भारतीय समाज संस्कृति, और मानवीय समस्याओं का दर्पण है। उन्होंने अपने लेखनी से समाज की उन गहराइयों को उजागर किया, जिन्होंने प्रायः उपेक्षित किया जाता था। उनके उपन्यास सामाजिक जागरूकता के अद्भुत साधन हैं। जो न केवल साहित्य को समृद्ध करते हैं, बल्कि समाज को दिशा देने का कार्य भी करते हैं। उनकी रचनाएं आज भी प्रासंगिक हैं और हमें मानवीय मूल्यों और समाज सुधार की प्रेरणा देती है। प्रेमचंद का साहित्य हमें न केवल भारतीय समाज के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य को समझने में मदद करता है, बल्कि सामाजिक बदलाव की प्रेरणा भी देता है।

संदर्भ सूची

1. प्रेमचंद, गोदान, हंस प्रकाशन, 1936, पृष्ठ 1-300।
2. प्रेमचंद, कर्मभूमि, साहित्य भंडार, 1932, पृष्ठ 1-250।
3. प्रेमचंद, गबन, राजकमल प्रकाशन, 1931, पृष्ठ 1-220।
4. प्रेमचंद, रंगभूमि, लोकभारती प्रकाशन, 1924, पृष्ठ 1-350।
5. प्रेमचंद, निर्मला, वाणी प्रकाशन, 1925, पृष्ठ 1-180।
6. प्रेमचंद, सेवासदन, साहित्य अकादमी, 1916, पृष्ठ 1-200।
7. डॉ. नामवर सिंह, प्रेमचंद और उनका युग, राजकमल प्रकाशन, 1982, पृष्ठ 50-75।
8. रामविलास शर्मा, प्रेमचंद: विचार और शैली, साहित्य भंडार, 1956, पृष्ठ 30-60।
9. गोपाल राय, हिंदी उपन्यास का इतिहास, वाणी प्रकाशन, 1992, पृष्ठ 120-140।
10. कमलेश्वर, उपन्यास के नए आयाम, साहित्य अकादमी, 1975, पृष्ठ 80-100।
11. अमृत राय, कलम का सिपाही, राजकमल प्रकाशन, 1963, पृष्ठ 100-130।
12. त्रिलोचन शास्त्री, प्रेमचंद की सामाजिक दृष्टि, प्रभात प्रकाशन, 1990, पृष्ठ 40-70।
13. विद्यानिवास मिश्र, प्रेमचंद और हिंदी समाज, साहित्य अकादमी, 1985, पृष्ठ 90-120।
14. निर्मला जैन, हिंदी उपन्यास की परंपरा, लोकभारती प्रकाशन, 1980, पृष्ठ 200-230।
15. सत्यनारायण, प्रेमचंद और यथार्थवाद, वाणी प्रकाशन, 2005, पृष्ठ 50-70।
16. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, साहित्य प्रकाशन, 1929, पृष्ठ 300-320।
17. धर्मवीर भारती, गांव और उपन्यास, राजकमल प्रकाशन, 1984, पृष्ठ 20-50।
18. महावीर प्रसाद द्विवेदी, आधुनिक साहित्य और समाज, साहित्य भंडार, 1918, पृष्ठ 45-70।
19. भीष्म साहनी, साहित्य का समाजशास्त्र, वाणी प्रकाशन, 1978, पृष्ठ 60-90।
20. शंकराचार्य द्विवेदी, प्रेमचंद: एक अध्ययन, प्रभात प्रकाशन, 1995, पृष्ठ 50-80।

जनजातीय समाजशास्त्र

डॉ० शशि गुप्ता

सहायक प्राध्यापक (समाजशास्त्र) शासकीय बिलासा कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बिलासपुर (छ.ग.)

हमारा देश भारतवर्ष अत्यन्त विशाल एवं प्राचीन देश है। इसकी विशालता का परिदृश्य हिमालय से कन्याकुमारी तक विस्तृत है। हमारे देश भारतवर्ष का क्षेत्रफल 32,87,263 वर्ग किलोमीटर है। हमारा देश क्षेत्रफल की दृष्टि से विश्व में सातवें स्थान पर स्थित है। हमारे देश भारतवर्ष का क्षेत्रफल विश्व के कुल क्षेत्रफल का 2.4 प्रतिशत है। भारतवर्ष की जमीनी सतह की कुल लम्बाई लगभग 15,200 किमी. है। भारत की मुख्य भूमि लक्षद्वीप, और अंडमान निकोबार द्वीपसमूह की तटरेखा की कुल लम्बाई लगभग 7,516.6 किमी. है।

“हमारे देश की जलवायु को मोटे तौर पर उष्ण कटिबंधीय मानसून के रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है। हमारे देश भारतवर्ष को सीमाएँ इस प्रकार हैं-

- उत्तर में हिमालय पर्वत शृंखला
- पूर्व में बंगाल की खाड़ी
- पश्चिम में अरब सागर
- दक्षिण में हिन्द महासागर।”

भारतवर्ष का क्षेत्रफल हिमाच्छादित हिमालय की पर्वत शृंखलाओं से प्रारम्भ होकर दक्षिण के विषुवतीय वर्षा वनों तक फैला हुआ है। यह एशिया महाद्वीप में अपनी अनेक विशेषताओं के कारण पृथक दृष्टिगोचर होता है। इसकी विशेषता को निर्धारित करने में हिमालय पर्वत तथा अरब सागर है जो इसे विशिष्ट पहचान दिलाने में अपनी अहं भूमिका प्रदत्त करते हैं। स्वतंत्रता के पश्चात् इसने आशातीत प्रगति की है। उत्तर दिशा में हिमालय की वृहत् पर्वत शृंखला से घिरा होने के बावजूद भी यह कर्क रेखा से आगे सँकरा होता जाता है। पूर्व में बंगाल की खाड़ी, पश्चिम में अरब सागर तथा दक्षिण में हिन्द महासागर भारतवर्ष की सीमा को निर्धारित करते हैं।

यह पूरी तरह उत्तरी गोलार्द्ध में स्थित है। इसकी मुख्य भूमि 8 डिग्री 4 मिनट और 37 डिग्री 6 मिनट उत्तरी अक्षांश तथा 68 डिग्री 7 मिनट तथा 97 डिग्री 25 मिनट पूर्वी देशान्तर के मध्य स्थित है। उत्तर से दक्षिण तक इसकी अधिकतम लम्बाई 3,214 किमी. तथा पूर्व से पश्चिम तक अधिकतम चौड़ाई 2933 किमी. है। जमीनी सीमाओं की अधिकतम चौड़ाई 2933 किमी. है। जमीनी सीमाओं की अधिकतम लम्बाई लगभग 15,200 किमी. है। हमारे देश का टेलीफोन कोड 91 है। कुल क्षेत्रफल लगभग 3.3 मिलियन वर्ग किमी. है। समुद्र तटीय क्षेत्रफल लगभग 7516.6 किमी. है। “हमारे देश की कुल जनसंख्या 1.03.2011 के अनुसार लगभग 1,210,193,422 है। जिसमें से पुरुष संख्या 623.7 मिलियन तथा महिला संख्या 586.4 मिलियन के लगभग है। लिंग अनुपात 940 है।”

“यहाँ पर पाँच प्रकार की मानव प्रजातियाँ आस्टेलियाड, मोगोलायड, यूरोपॉयड, कोकोसिन तथा नीग्रोड प्रतिनिधित्व करती हैं। देश की साक्षरता दर 70.4 प्रतिशत है जिसमें से 82.14 प्रतिशत पुरुष तथा 65.46 प्रतिशत महिला साक्षरता दर है। इसमें 28 राज्य तथा 8 संघ राज्य हैं। हमारे देश का राष्ट्रीय झण्डा आयताकार तिरंगा है। केसरिया रंग ऊपर, बीच में सफेद पट्टी और बराबर भाग में नीचे गहरा हरा रंग है। सफेद पट्टी के केन्द्र में गहरा नीला चक्र सारनाथ स्थित अशोक चक्र को दर्शाता है। हमारे देश भारतवर्ष में लगभग 22 भाषाओं को मान्यता प्रदान की गयी है। हिन्दी को राष्ट्रभाषा का दर्जा प्रदत्त है।”

हमारे देश भारतवर्ष के विभिन्न प्रदेशों में विविध प्रजातीय समुदायों के तथा विविधतापूर्ण सामाजिक, सांस्कृतिक परम्पराओं से युक्त मानव समुदाय निवास करते हैं। इसमें से कुछ मानव समुदाय ऐसे भी हैं जो अभी भी आदिम अवस्था का प्रतिनिधित्व करते हुए अत्यल्प सुविधाओं से सुविधाओं से भी रहित हैं।

आदिकाल से ही भारतवर्ष ही नहीं बल्कि विश्व के प्रत्येक कोने में अविकसित समाज से सुदूर कुछ मानव समुदाय पर्वत शृंखलाओं, निर्जन वनों, कन्दराओं, पर्वतों की गुफाओं तथा पर्वत घाटियों में अपने सीमित परिवार के साथ वन्य जीवों एवं वनस्पतियों (फल-फूल-कन्द) आदि पर आश्रित जीवन यापन करते आ रहे हैं। इनका जीवन एकान्त एवं निर्जन में होने के कारण शान्त था तथा ये आदिम जातियाँ अपनी संस्कृति को सँजोए सांस्कृतिक विरासत एवं परम्परागत रीति-रिवाजों के अनुसार ही जीवन को गति प्रदान कर रहे हैं। कुछ काल पूर्व उनके जीवन में समस्याएँ ने जन्म ले लिया। समस्या थी विकसित समाज द्वारा उने स्वच्छन्द जीवन में हस्तक्षेप। हस्तक्षेप में अनेक विकृतियाँ विद्यमान थीं, जैसे उनकी वनोपज पर गिद्ध दृष्टि। वनस्पतियों एवं अमूल्य लकड़ी के संग्रह एवं विक्रय हेतु अंधाधुंध वनों की कटाई। उनकी खेती पर जबरन अधिकार करके उनको बेदखल करना। अत्याधुनिक आग्नेयास्त्रों की शक्ति पर उनका उत्पीड़न एवं महिलाओं के साथ जबरन बलात्कार। उनको आवासीय स्थलों से बाहुबल एवं गुण्डागर्दी करके पलायन पर मजबूर करना। यहाँ तक कि आदिम जाति की महिलाओं का व्यापार करना आदि। इसके अतिरिक्त सरकार द्वारा निर्धारित आरक्षित वर्गों में उनको लाभ नहीं दिया गया। ये उपरोक्त समस्याएँ आदिम जाति के जीवन में ‘कोढ़ में खाज’ जैसी बीमारी के रूप में सिद्ध हो रही हैं।

आदिम जनजातियाँ, प्रायः शिक्षा से वंचित हैं। इसके अतिरिक्त उनका जीवन प्राचीन एवं परम्परागत रुढ़ियों से ग्रस्त है। गम्भीर से गम्भीर बीमारी का इलाज उनके लिए केवल वनस्पतियों पर ही निर्भर है। वे अस्पतालों (सरकारी-व्यक्तिगत दोनों) से परहेज करते हैं। कुछ जनजातियाँ ईसाई मिशनरियों के माध्यम से शिक्षित तो गयीं, परन्तु उनके ही समुदाय ने उनको अपनी जमात से पृथक कर दिया है। यहाँ तक कि उनसे अपने पारिवारिक रिश्ते एवं सम्बन्ध विच्छेद भी कर लिये हैं। ऐसी स्थिति में शिक्षित आदिम समुदाय भी समस्याग्रस्त है क्योंकि उनको विवाह आदि की जटिल समस्या उत्पन्न हो गयी है। इस संदर्भ में योगेश अटल जी का कथन इस प्रकार है—

“वास्तव में नवीन प्रजातांत्रिक व्यवस्था ने जनजातीय समाज में जहाँ राजनीतिक चेतना उत्पन्न करके उन्हें अपने अधिकारों और कर्तव्यों के प्रति सजग और प्रयत्नशील किया है, वहीं उनकी परम्परागत जनजातीय राजनैतिक व्यवस्था को ध्वस्त करके और विदेशी तत्वों के द्वारा उन्हें राष्ट्र-विरोधी चिन्तन और पृथकतावादी गतिविधियों में सक्रिय बनाकर राष्ट्रीय एकीकरण में बाधाएँ उत्पन्न की हैं। यह कृत्य न्यायोचित नहीं है।”⁴

विकास की कल्पना शिक्षा के बिना नहीं हो सकती है। शिक्षा के माध्यम से व्यक्ति समाज में अपना स्थान निर्धारित कर सकता है तथा इसके साथ-ही-साथ वह शोषण से भी मुक्ति पा सकता है। विद्वत्जनों का कथन है कि— “शिक्षा ही वह सूर्य है जिसकी ज्ञानरूपी किरणों के उदय होते ही अज्ञानरूपी समस्त तिमिर अर्थात् विकार स्वयं ही शनैः-शनैः भागने लगता है।”⁵

सरकारी योजनाओं के माध्यम से इन आदिवासी समुदायों अर्थात् जनजातीय समाज के उत्थान के लिए निरन्तर प्रयास जारी हैं। खेद की बात यह है कि जनजातियों में पूर्ण साक्षरता की बात तो दूर साधारण साक्षरता दूर तक पहुँचने के लिए अनुसूचित जनजातियों को शिक्षा के मद्देनजर अभी लम्बी मंजिल तय करना शेष है। यह जनजातीय समाज अभी तक राष्ट्र की मुख्य धारा से नहीं जुड़ पाया है। स्त्री और पुरुष रूपी ये दोनों गाड़ी के पहिए के समान हैं। यदि इनमें से एक पहिया धुरी की कील गिर जाने के कारण पृथक हो जाये तो गाड़ी की गतिशीलता में रुकावट उत्पन्न हो जाती है। अतः स्त्री रूपी गाड़ी के पहिए को भी शिक्षित करना समाज की अनिवार्य आवश्यकता है।

निष्कर्ष

प्रथम पंचवर्षीय योजनाओं से लेकर अभी तक की समस्त योजनाओं में जनजातियों के विकास के लिए अतिरिक्त योजनाएँ भी सम्मिलित की गयी हैं। शिक्षा में तथा नौकरियों में आरक्षण व्यवस्था तथा छात्रवृत्ति आदि के माध्यम से इन जनजातीय समाज को विकसित करने में कठोरतम प्रयास किये गये हैं। केवल सरकारी योजनाओं की सहायता से ही इस समाज का विकास असम्भव है अतः हम सभी का परम कर्तव्य है कि इस जनजातीय विकास में भरपूर सहयोग प्रदान करें। समाज के अन्य घटकों के दृष्टिकोण में भी परिवर्तन लाना अति आवश्यक है। हमें यह कार्य अनिच्छापूर्वक नहीं बल्कि स्वेच्छा से सहृदयपूर्वक करना होगा तभी इस जाति का उद्धार सम्भव है अन्यथा नहीं। यह जनजातीय समाज मानव प्रजाति का आदिम स्वरूप है हम इसी समाज की सन्तान हैं अतः इनके प्रति सहयोग करना हमारा परम कर्तव्य है।

संदर्भ

1. भारत का भूगोल-इन्द्रा सिंह संस्करण 2016, पृ. 215, विश्वभारती पब्लिकेशन, नई दिल्ली
2. भारतीय जनगणना निदेशालय वर्ष 2011 नई दिल्ली
3. सामान्य ज्ञान-डॉ. आर.के. बंसल, संस्करण 2011 पृ. 325 विकास प्रकाशन दिल्ली
4. समकालीन भारतीय समाज समस्याएँ और समाधान, डॉ. मीनाक्षी व्यास, संस्करण 2012, पृ. 54, विकास प्रकाशन कानपुर
5. वही, पृ. 54

कश्मीर पर डॉ० भीमराव अम्बेडकर के विचारः अनुच्छेद 370 के संदर्भ में

प्रदीप कुमार

शोध छात्र, स्नातकोत्तर इतिहास विभाग, तिलकामांझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर, बिहार

भूमिका:- भारतीय संविधान का अनुच्छेद 370 भारतीय संविधान की विवादास्पद एवं चर्चित प्रावधानों में से एक है। देश के संघीय ढांचे व लोकतांत्रिक व्यवस्था को कमजोर करने के लिए 356 जैसी अनुच्छेद की दुरुपयोग की तरह, इसके दुरुपयोग से भी भारतीय अखंडता व संप्रभुता पर आघात पड़ने की बात प्रारंभ से ही कही जा रही थी। भारतीय संविधान निर्माताओं में से डॉ० भीमराव अम्बेडकर ने अनुच्छेद के दुरुपयोग व देश की अखंडता पर उसके दुष्प्रभावों की भविष्यवाणी पहले ही कर दी थी। और जैसा कि सर्वविदित है कि 5 अगस्त 2019 तथा 6 अगस्त 2019 के राष्ट्रपति आदेश से 351 तथ अनुच्छेद 370 के खण्ड-1 को छोड़कर सभी खण्डों को निष्क्रिय कर दिया तथा भारतीय संविधान के प्रावधानों को जम्मू-कश्मीर पर लागू कर दिया। इसके अलावा जम्मू-कश्मीर पुनर्गठन अधिनियम 2019 को संसद द्वारा पारित किया गया, जिससे जम्मू-कश्मीर राज्य को दो केन्द्रशासित प्रदेशों जम्मू और कश्मीर तथा लद्दाख में विभाजित किया गया। तत्कालीन गृहमंत्री श्री अमित शाह ने अनुच्छेद 370 के प्रावधानों को बाबा साहेब के स्वप्नों पर आघातकारी बताया और अनुच्छेद 370 को निष्क्रिय करने की सरकारी कवायद को बाबा साहेब के स्वप्नों को पूरा करने की दिशा में उठाया गया कदम। उनके इस वक्तव्य के पीछे कश्मीर की परिस्थिति एवं बाबा साहेब का तत्संबंधी विचार उत्तरदायी था जिसमें बाबा साहेब ने अनुच्छेद 370 के प्रावधान से देश की अखंडता-संप्रभुता पर नकारात्मक प्रभाव पड़ने, कश्मीर में गैर-मुस्लिमों यथा कश्मीरी-हिन्दू, कश्मीरी बौद्ध, सिख, जनजाति एवं महिलाओं के साथ हकमारी व अन्याय सी अशंका जताई थी। मेरा यह शोध-पत्र अनुच्छेद 370 पर डॉ० भीमराव अम्बेडकर के विचारों का अध्ययन कर उसे प्रस्तुत करना है।

देश की एकता एवं अखण्डता के प्रहरी के रूप में डॉ० भीमराव अम्बेडकर:- भारत के बंटवारे के संदर्भ में डॉ० भीमराव अम्बेडकर के विचार स्पष्ट थे, जिसे उन्होंने अपनी पुस्तक 'थाट्स आन पाकिस्तान' में विस्तार से लिपिबद्ध किया है। डॉ० अम्बेडकर गाँधीजी के उस विचार के विरुद्ध थे जिसमें गाँधी जी चाहते थे कि देश को अविभाजित रहने के लिए मुस्लिम लीग को सरकार बनाने का अधिकार दे दिया जाय जबकि डॉ० भीमराव अम्बेडकर मुस्लिम लीग की शर्तों को देश के लिए घातक मानते थे। मुस्लिम लीग यह चाहती थी कि हिन्दू बहुसंख्यक प्रांतों में मुसलमान अल्पसंख्यक की सुरक्षा का कानूनी प्रावधान हो, जबकि इसके विपरीत मुसलमान बाहुल प्रांतों में अल्पसंख्यक हिन्दुओं को वैसी ही सुरक्षा देने से इन्कार करती थी। एक और बात थी कि मुस्लिम लीग एक मुस्लिम सेना का निर्माण करना चाहती थी इस शर्त के साथ कि अगर हिन्दुस्तान की लड़ाई किसी मुसलमान देश से होता है तो यह सेना तटस्थ होगी। डॉ० भीमराव अम्बेडकर की राय में इन शर्तों को मान लेने का अर्थ होता

1. मुस्लिम बहुसंख्यक क्षेत्रों में हिन्दुओं एवं अन्य गैर-मुस्लिमों का असुरक्षित होना।
2. ऐसी स्वतंत्र सेना के निर्माण की अनुमति राष्ट्रघाती कदम होगी।

इस संदर्भ में डॉ० भीमराव अम्बेडकर ने कहा कि "ऐसा अविभाजित हिन्दुस्तान विभाजित हिन्दुस्तान से भी कमजोर होगा।" डॉ० भीमराव अम्बेडकर की दृष्टि में विभाजन ही देश के हित में था।

जिस प्रकार डॉ० भीमराव अम्बेडकर देश के विभाजन से पहले देश के लोगों के लिए व देश हेतु चिंतित थे उसी प्रकार विभाजन के बाद कश्मीर में अल्पमत हिन्दुओं, बौद्धों को लेकर चिंतित थे। डॉ० भीमराव अम्बेडकर चाहते थे कि कश्मीर के हिन्दू और बौद्ध बहुल क्षेत्र भारत में रहे और मुस्लिम बहुल कश्मीर घाटी को पाकिस्तान को दे दिया जाय। डॉ० भीमराव अम्बेडकर मुस्लिम बहुसंख्यक क्षेत्रों में अल्पसंख्यकों की सुरक्षा के लिए स्पष्ट संवैधानिक प्रावधान चाहते थे। इसी प्रकार वे कहा करते थे कि कश्मीर का जो हिस्सा पाकिस्तान में है उसे पाकिस्तान को दे देना चाहिए। लेकिन इस मसले पर दोनों देशों में आम राय आवश्यक थी। इससे भविष्य में आपसी संबंधों में सुधार हेतु आधार होता। बाबा साहेब डॉ० भीमराव अम्बेडकर पाकिस्तान में बचे दलित अल्पसंख्यकों के हिन्दुस्तान में आ जाने के हिमायती थे, क्योंकि उनका मानना था कि संकीर्ण एवं सांप्रदायिक पाकिस्तानी नेतृत्व उन्हें पर्याप्त सुरक्षा नहीं दे सकेगा।

देश के भीतरी मसलों पर भी डॉ० भीमराव अम्बेडकर के विचार उतनी ही प्रखर और स्पष्ट थी। उदाहरणस्वरूप यहाँ यह देखने की जरूरत है कि एक बार जब चक्रवर्ती राजगोपालाचारी ने एक भारतीय महासंघ की रूपरेखा तैयार की थी जिसमें भारत में दो संघ होने की बात की, एक उत्तर भारत के राज्यों को मिलाकर, दूसरा दक्षिण भारत के राज्यों को मिलाकर तथा दोनों संघों की दो राजधानियाँ बनाये जाने की बात रखी तो डॉ० भीमराव अम्बेडकर को राजाजी के इस प्रस्ताव में भारत के पुनः बंटवारे की योजना का आभास हुआ, तब डॉ० भीमराव अम्बेडकर ने खुलकर कहा था कि "अब मैं श्री राजगोपालाचारी को भारत को उत्तर और दक्षिण में बाँटने की भविष्यवाणी करने वाले मसीहा के रूप में देखता हूँ, श्री राजगोपालाचारी की इस भविष्यवाणी को झुठलाने के लिए हमें हर संभव प्रयास करना ही होगा।" इसलिए डॉ० भीमराव अम्बेडकर देश की सांस्कृतिक एवं भाषाई विविधता तथा क्षेत्रीय एवं सामाजिक असंतुलन

को ध्यान में रखते हुए शासन की एकात्मक प्रणाली को उचित ठहराया था।

मंत्रिमंडल से त्यागपत्र एवं पार्टी घोषणा-पत्र में वर्णित कश्मीर समस्या:- डॉ० भीमराव अम्बेडकर ने 1951 ई० में मंत्रिमंडल से इस्तीफा देने के कई कारण बताए उन कारणों में एक प्रमुख कारण कश्मीर का विभाजन नहीं मानना बताया, बाबा साहेब ने कश्मीर विभाजन का फार्मूला भी दिया था। इस्तीफा देने के बाद सन् 1952 में जब डॉ० भीमराव अम्बेडकर चुनाव लड़े तो शिङ्गूल्ड कास्ट्स फेडरेशन के चुनावी घोषणा-पत्र में यह घोषणा की कि उनकी पार्टी कश्मीर के विभाजन का पक्षधर रहेगा। उनकी पार्टी कश्मीर विभाजन का मुद्दा उठाकर उसकी पक्षधर बन गई थी। डॉ० भीमराव अम्बेडकर अपने पुस्तक 'थाट्स ऑन पाकिस्तान' में लिखे थे कि वर्तमान स्थिति में भारत और पाकिस्तान का विभाजन ही अस्थायी हल है, परंतु आगे चलकर पाकिस्तान को यह अनुभव होगा कि उसने अलग होकर गलती की थी उसे वह गलती सुधारनी होगी।

कश्मीर पर डॉ० भीमराव अम्बेडकर के भाषण के अंक:- 10 अक्टूबर 1951 के डॉ० भीमराव अम्बेडकर के भाषण से कश्मीर समस्या एवं भारतीय विदेश नीति विषय पर एक दस्तावेजी स्रोत मिलते हैं जिसे अम्बेडकर लेखन, खण्ड 14, भाग दो (पृष्ठ 1317-1327) में पुनः वर्णित किया गया है। देश की विदेश नीति के संदर्भ में डॉ० भीमराव अम्बेडकर कहते हैं कि आजादी के समय दुनिया का हर देश हमारा दोस्त था परंतु चार साल बाद ही हमारे सभी दोस्त हमें छोड़कर चले गये, संयुक्त राष्ट्रसंघ में भी हमारे प्रस्तावों का समर्थन करने वाला कोई नहीं है। डॉ० भीमराव अम्बेडकर कहते हैं कि जब मैं अपनी विदेश नीति के बारे में सोचता हूँ तो मुझे बिस्मार्क और बर्नार्ड शॉ की कही बातें याद आती हैं। बिस्मार्क का मानना था कि "राजनीतिक आदर्श को साकार करने का खेल नहीं है, राजनीति संभव का खेल है।" वहीं बर्नार्ड शॉ ने कहा था कि "अच्छे आदर्श अच्छे होते हैं, लेकिन हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि बहुत अच्छा होना अक्सर खतरनाक होता है।" हमारी विदेश नीति दोनों महान व्यक्तियों द्वारा कहे गये व्यक्तव्य से बिल्कुल विपरीत है। डॉ० भीमराव अम्बेडकर का मानना था कि पाकिस्तान के साथ हमारा विवाद हमारी विदेश नीति का एक हिस्सा है, जिसे लेकर बाबा साहेब बहुत असंतुष्ट महसूस करते थे। बाबा साहेब कहते हैं कि पाकिस्तान के साथ हमारा विवाद दो कारणों से है- एक कश्मीर और दूसरा पूर्वी बंगाल। दोनों में हमारे लोगों की स्थिति को लेकर। उनका मानना था कि कश्मीर की तुलना में हमें पूर्वी बंगाल के बारे में ज्यादा चिंतित होना चाहिए, बाबा साहेब डॉ० भीमराव अम्बेडकर का हमेशा से मानना रहा है कि कश्मीर समस्या का समाधान कश्मीर का विभाजन करना है। इस विभाजन हेतु बाबा साहेब कहते हैं कि हिन्दू और बौद्ध भाग भारत को दे दो और मुस्लिम भाग पाकिस्तान को, जैसा कि हमने भारत के मामले किया था। हमें वास्तव में कश्मीर के मुस्लिम भाग से कोई सरोकार नहीं है। यह कश्मीर और पाकिस्तान के मुसलमानों के बीच का मामला है। वे इस मुद्दे को अपनी मर्जी से तय कर सकते हैं, या फिर चाहें तो इसे तीन भागों में बाँट दे, युद्ध विराम क्षेत्र, घाटी और जम्मू-लद्दाख क्षेत्र और केवल घाटी में जनमत संग्रह करवाएं। मुझे डर है कि प्रस्तावित जनमत संग्रह में जो कि एक समग्र जनमत संग्रह होगा, कश्मीर के हिन्दुओं और बौद्धों को उनकी इच्छा के विरुद्ध पाकिस्तान में घसीटा जा सकता है और हमें उन्हीं समस्याओं का सामना करना पड़ सकता है जिसका सामना हम आज पूर्वी बंगाल में कर रहे हैं।

निष्कर्ष:- बाबा साहेब डॉ० भीमराव अम्बेडकर भारतीय विदेश नीति, पाकिस्तान एवं कश्मीर समस्या पर अपने विचार स्पष्टता से रखें हैं। कश्मीर समस्या पर समाधान भी उन्होंने बताया और कश्मीर के लोगों यथा कश्मीरी हिन्दू, कश्मीरी बौद्ध, सिख, जनजाति एवं कश्मीरी महिलाओं के अधिकार की रक्षा हेतु हमेशा अपनी आवाज बुलंद की है। निःसंदेह बाबा साहेब डॉ० भीमराव अम्बेडकर कश्मीरियत पहचान के प्रति समर्पित थे।

संदर्भ ग्रंथ सूची:-

1. अम्बेडकर, बी० आर०, थाट्स ऑन पाकिस्तान, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 16 जनवरी 2020।
2. भटनागर, डॉ० राजेन्द्र मोहन, डॉ० अम्बेडकर चिंतन और विचार, जगत राम एण्ड संस प्रकाशक, दिल्ली, 2008।
3. सिंह, पी० एन०, अम्बेडकर चिंतन और हिन्दी दलित साहित्य (उपलब्धियाँ और अपेक्षाएँ), आधार प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, पंचकूला (हरियाणा), 2009।
4. शाह, अमित, पार्लियामेंट स्पीच, प्रेस इनफार्मेशन ब्यूरो गवर्नमेंट ऑफ इंडिया, डब्ल्यूडब्ल्यूडब्ल्यूपीआईबी.एनआईसी.इन, नई दिल्ली 2019

वैदिक काल में नारी शिक्षा: एक समीक्ष

डॉ० रंजीत कुमार

पीएचडी (विश्वविद्यालय इतिहास विभाग), तिलकामांझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर

किसी भी समाज का आदर्श उसकी शैक्षणिक-व्यवस्था एवं परम्पराओं में ही प्रतिबिम्बित होती है। अतः समाज के किसी विशेष कालावधि के संस्कृति का ज्ञान उस समाज के शैक्षणिक परंपरा एवं शिक्षण- संस्थाओं से सहज ही प्राप्त होता है। प्राचीनकाल में शिक्षा का अपेक्षाकृत विशेष महत्व रहा होगा, क्योंकि अद्यावधि की अपेक्षा उस समय उदीयमान संतति को सामाजिक परंपराओं में ढालने एवं तदनुरूप आचरण हेतु प्रोत्साहित करने के प्रधान एवं संभवतः एकमात्र साधन शिक्षण-संस्था ही थी। प्राचीन भारतीय इतिहास एवं संस्कृति के समयक अध्ययन हेतु यहाँ के शैक्षणिक परंपराओं का ज्ञान आवश्यक है। एवं इस क्रम में 'वैदिक शिक्षा-व्यवस्था' का विशेष ज्ञान अत्यावश्यक है क्योंकि 'वैदिक युग' एवं 'वैदिक वाङ्मय' संभवतः सहस्राब्दियों के सांस्कृतिक परंपराओं के साक्षात् गवाह हैं। शिक्षा शब्द की उत्पत्ति 'शिक्ष्' धातु से हुई है, जिसका अर्थ है- 'देना'। शिक्षा के माध्यम से आचार्य शिष्य को 'वेद' (ज्ञान) उच्चारित कर देते थे एवं इस प्रकार से शिष्य, आचार्य से शिक्षित होकर स्वयं को सभ्य एवं सुसंस्कृत बनाने के लिए सतत प्रयत्नशील रहते। वास्तव में 'शिक्षा' मनुष्य के जीवनपर्यंत चलने वाली एक सतत प्रक्रिया है। इस संदर्भ में एक किंवदन्ती भी है कि, 'विप्र आजीवन अध्ययनार्थी ही रहता है।'¹

भारतवर्ष में शिक्षा को मानवजीवन को संपूर्ण रूप से आलोकित करनेवाली प्रकाशस्त्रोत के रूप में स्वीकार किया गया है। ज्ञान मनुष्य का तीसरा नेत्र है, जो समस्त तत्वों के मूल को समझने में समर्थ बनाता है। महाभारत का कथन है कि, "विद्या के समान कोई अन्य नेत्र नहीं है।"² वास्तव में विद्या वह है, जो हमें मुक्ति का मार्ग प्रदान करती है।³ शिक्षा से जो हमें परिज्ञान प्राप्त होता है, उससे हमारा व्यक्तित्व पूर्णतः परिष्कृत हो जाता है।

इस संदर्भ में ऋग्वेद के एक मंत्र में ऋषि कहते हैं कि, 'यदि कोई किसी से श्रेष्ठ है, तो इसका कारण यह नहीं उसके पास अतिरिक्त हाथ-पैर या आँख होते हैं, अपितु श्रेष्ठतम होने के लिए बुद्धि एवं मस्तिष्क का अधिकाधिक प्रखर होना ही आवश्यक है, जो कि शिक्षा के द्वारा ही संभव हो सकता है।'⁴ वैदिक शिक्षा के उद्देश्यों में से एक व्यक्ति को धार्मिक अर्थात् 'न्यायप्रिय' बनाना था। आचार्य, पुरोहित का कार्य भी संपादित करने थे। 'साहित्यिक' एवं 'वृत्तिक', 'प्रार्थिक' एवं उच्च कोटि के शिक्षाओं के आरंभ में जिन संस्कारों एवं कृत्यों की व्यवस्था की गई थी, अध्ययनकाल में जिन नियमों का पालन शिष्य हेतु आवश्यक था उनमें दैनिक संध्यापूजन, धार्मिक समारोह जो प्रायः आचार्य के कुल में या आश्रम में हुआ करते थे: उस सबों का एकमात्र उद्देश्य ब्रह्मचारी को ईश्वरभक्ति एवं धार्मिकता की भावना से अनुप्राणित करना ही था। इस आध्यात्मिक पृष्ठभूमि का उद्देश्य छात्र को जीवन के प्रलोभनों के प्रति निस्पृह बनाना भी था। जिस वातावरण में अन्तेवासी रहते थे, वह ऐसा था जो उनके मानस पर पारलौकिक जगत की वास्तविकता की छाप लगा देता था और उसे विश्वास दिला देता था कि, यद्यपि हमारा पार्थिव शरीर प्रकृति के विभिन्न तत्वों से निर्मित है पर हमारे अन्तर्यामी 'आत्मतत्त्व' ही हैं, जो आध्यात्मिक जगत की वस्तु हैं। अतः उसी जगत के नियमों से हमारे आचरण, चरित्र एवं आदर्शों का निर्माण होना चाहिए।

वैदिक शिक्षा ईश्वरभक्ति एवं धार्मिकता का वातावरण तो प्रदान करती थी, किन्तु उसका उद्देश्य ब्रह्मचारी को पलायनवादी बनाना नहीं था। ब्रह्मचारी द्वारा आचार्य के पास शिक्षा समाप्त करने के उपरांत उन्हें 'स्नातक' से संबोधित किया जाता था। स्नातकों से प्रायः गृहस्थ होने की आशा की जाती थी एवं अधिकांश ब्रह्मचारी आचार्य से सम्यक् शिक्षा प्राप्त करने के उपरांत गृहस्थ-जीवन का ही पालन करते थे। ऐसे बहुत कम ही शिष्य होते थे, जो आजीवन ब्रह्मचारी रहकर आध्यात्मिक शोध में संलग्न रहते थे। संपूर्ण शिक्षा चाहे वह साहित्यिक हो अथवा व्यावहारिक, का मुख्य उद्देश्य ब्रह्मचारी को समाज का एक धर्मनिष्ठ एवं न्यायप्रिय नागरिक के रूप में प्रस्तुत करना था।

व्यक्ति में ज्ञान केवल सैद्धांतिक रूप तक ही सीमित नहीं रहती थी। वैदिककाल में शिक्षा व्यक्ति को व्यवहारवादी बनाती थी। शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति को अपनी आजीविका चलाने हेतु सुयोग्य बनाना भी था। एक किंवदन्ती है कि, यदि कुछ शब्दों के कंठाग्र एवं जिह्वाग्र कर लेने से ही 'शुक' भी भोजन प्राप्त कर लेता है, तो एक विद्वान भला अपनी आजीविका क्यों नहीं चला सकता है।⁵

नैतिक भावनाओं के सम्यक् विकास से चरित्र निर्माण वैदिक शिक्षा का अन्य उद्देश्य था। वेदों (ज्ञान) का संरक्षण सामाजिक एवं राष्ट्रीय स्तर से सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य था, लेकिन इस सबसे अधिक महत्वपूर्ण कार्य चरित्र निर्माण था। मनु ने भी कहा है कि, मात्र वेदों में पांडित्य प्राप्त विद्वान से वह सुचरित्र व्यक्ति श्रेष्ठतर है, जिसे केवल 'सावित्री' का ज्ञान है।⁶

शिक्षण-विषय के चुनाव की स्वतंत्रता थी। उस समय तक व्यवसाय एवं जीविका के साधन स्वयं निर्धारित करने की सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक दोनों स्वतंत्रता थी। कालांतर में जाति-व्यवस्था के विकास के कारण अधिकांश व्यक्ति अपने पैतृक व्यवसाय का ही वरण करने थे, परन्तु व्यवहार में इस नियम के अपवाद भी थे।

वैदिक शिक्षा-पद्धति के उद्देश्यों में संस्कृत के संरक्षण तथा उनका प्रचार-प्रसार भी विशेष उल्लेखनीय है। यदि शिक्षा उदीयमान संतति को उत्तम प्राचीन परंपराओं को स्वीकार कराकर तदनुरूप आचरण करना नहीं सिखाती, तथा अगली पीढ़ी तक इस परंपरा को नहीं बढ़ा देती तो अपने मुख्य उद्देश्य में वह असफल है। वैदिक ग्रंथों का स्थूल दृष्टि से अध्ययन करने वाले पाठक भी इस बात से अप्रभावित नहीं रहे होंगे कि, वैदिक विचारक एवं मनीषी संपूर्ण साहित्यिक, सांस्कृतिक, और व्यावसायिक परंपराओं के तथा उसके अविच्छेद संचरण के लिए कितनी गंभीरतापूर्वक चिंतित थे।

वैदिक युग में शिक्षा को अंतर्ज्योति का साधन माना गया था एवं आशा की जाती थी कि, शिक्षा व्यक्ति को जीवन की कठिनाइयों एवं समस्याओं को पार करने हेतु सुयोग्य बनाएगी। अतः उस समय यह सामाजिक आग्रह था कि, शिक्षा ठोस एवं कार्यसाधक हो। वैदिक शिक्षा का उद्देश्य अनेक विषयों का केवल साधारण ज्ञान मात्र करा देना ही न था, अपितु इसका आदर्श विभिन्न क्षेत्रों में उच्च कोटि के विशेषज्ञ निर्माण करना भी था। संभवतः मुद्रण सामग्री के समुचित प्राप्ति न होने के कारण इस बात पर विशेष ध्यान दिया जाता था कि, ब्रह्मचारी के स्मृति को इस ढंग से शिक्षित एवं विकसित किया जाय कि, वह अपने आचार्य से जो भी शिक्षा ग्रहण करे, ताकि आजीवन उसे स्मरण रहे।

शिक्षा के उद्देश्य की प्राप्ति हेतु वैदिक युग में शिक्षा का सामान्य जन में व्यापक प्रचार-प्रसार सहज ही अभीष्ट था। मनुस्मृति से ज्ञात होता है कि अध्ययन मुख्य रूप से ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य वर्ग तक ही सीमित था।⁷ किन्तु ऋग्वेद से ज्ञात होता है कि, 'पंचजनों' (आम व्यक्ति) ने अग्निहोत्र में भाग लिया था।⁸ यास्क के निरुक्त से ज्ञात होता है कि 'पंचजनों' में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र के अतिरिक्त निषाद की भी गणना की जाती थी।⁹ संभवतः निषाद ऋग्वेदकाल में समाजिक यप से वयवस्थित नहीं हुए थे। 'पंचजनों' जिनमें अनु, द्रुह्यु, तुर्वसु, पुरु एवं यदु जन थे से भी ज्ञान होता है कि उस समय शिक्षा संभवतः सबों को प्राप्त करने का अधिकार था, न कि, किसी खास वर्ण एवं जाति के लिए। कालांतर में 'पंचजन' के अंतर्गत भरत, त्रित्सु एवं श्रृंजय जनों की भी गणना की जाती थी एवं तदन्तर आमजन के लिए संभवतः 'पंचजन' शब्द प्रयुक्त किये जाते थे। वाजसनेयि संहिता में शिक्षा के अधिकारी सभी वर्ण के लोग माने गए हैं।¹⁰ ऐतरेय ब्राह्मण के प्रवक्ता महिदास ऐतरेय, जो 'इतरा' नामक शूद्र का पुत्र था, ने भी शिक्षा प्राप्त की थी। सत्यकाम जाबाल जिसका अज्ञात गोत्र था, ने भी शिष्यत्व ग्रहण किया था।

इस प्रकार हम पाते हैं कि वैदिक विचारकों की सामान्य धारणा थी कि, उन सभी व्यक्तियों के लिए, जो शिक्षा ग्रहण करने योग्य हो, शिक्षा मिलनी चाहिए। स्मरणीय है कि, मातंग भी अपने समय में वैदिक वाङ्मय के विशिष्ट विद्वान माने जाते थे, जो चांडाल समूह से थे। वास्तव में वैदिक युग में समाज में साक्षरता का प्रतिशत अधिकतम नहीं तो कम-से-कम संतोषजनक अवश्य रहा होगा, क्योंकि उपनिषद् कालीन एक राजा गर्व से घोषित करता है कि उसके जनपद में कोई भी मूर्ख नहीं है।¹¹ अर्थात् जनपद में शैक्षणिक प्रचार-प्रसार के प्रति शासक वर्ग भी सचेष्ट रहते थे। शिक्षा-शास्त्रियों ने यहाँ तक नियम प्रतिपादित किया कि, केवल संतति उत्पादन से ही पितृ-ऋण से मुक्ति नहीं मिल सकती अपितु पितृऋण-मुक्ति हेतु संतति सम्यक् रूपेण शिक्षित करना भी परामावश्यक है।¹² अर्थात् प्रत्येक आर्यजन इस काल में कुछ न कुछ शिक्षा अवश्य प्राप्त करते थे। भले ही उनका स्वरूप धार्मिक हो, साहित्यिक हो अथवा लौकिक।

स्त्री शिक्षा

स्त्रियों की महत्ता वैदिक युग में काफी थी। वे जीवन रथ के एक पहिए के सदृश थीं, जिसके बिना मानव जीवन अपेक्षित गति को पाने में असफल थीं। माँ ही बच्चे की प्रथम आचार्या एवं प्राथमिक विद्यालय है। माता की इस महत्ता का गुणगान वैदिक विचारकों ने काफी उदार भाव से किया है।¹³ माँ की महत्ता वैदिक युग में इतनी अधिक थी कि, बच्चे मातृ उपनास से भी जाने जाते थे।¹⁴ विद्वान आचार्यों की वंश सूचियों में भी अनेक आचार्य के मातृ उपनाम प्राप्त होते हैं।¹⁵ माताएँ वैदिक युग में केवल 'जननी' ही न थी, बल्कि अपेक्षित स्तर तक पढ़ी-लिखी, पंडिता, ऋषिका एवं आचार्या भी हुआ करती थीं। वैदिक युग में नारी की महत्ता एवं आवश्यकता के कारण इसका नाम 'कन्या' अर्थात् सबके द्वारा वांछनीया कहा गया है।¹⁶ ऋग्वैदिक पिता जहाँ पुत्रों के साथ सम्पूर्ण आयु व्यतीत करने में सुख का अनुभव करता है, वहीं वह पुत्री की भी उपेक्षा न करके इसके साथ भी सम्पूर्ण आयु व्यतीत करना चाहता है और दोनों को सुवर्णवत मानता है।¹⁷ मनु भी पुत्र एवं पुत्री को समान महत्त्व प्रदान करते हैं।¹⁷

ब्रह्मचर्य अर्थात् अध्ययन का विधान बालक एवं बालिका पर समान रूप से व्यवहृत था।¹⁸ आश्वलायन के अनुसार पुत्र और पुत्री दोनों का ब्रह्मचर्यकाल समान ही है।¹⁸ अनुपनीत कन्या अयोग्य समझी जाती थी। उनका जीवन उत्साह-रहित होता था। ऋग्वेद के अनुसार, उपनीत स्त्रियाँ अनेक कठिन कार्यों का सम्पादन समुचित ढंग से कर सकती हैं।¹⁹ धर्मसूत्रकारों ने कन्या के पननयन संदर्भित कर्मकाण्डों का भी विधान किया है। हारीत धर्मसूत्र ने ब्रह्मवादिनियों के लिए उपनयन संस्कार का विधान करते हुए कहा है कि, वे वेदों का अध्ययन तथा अग्निहोत्र कर्म के साथ-साथ अपने घर से भिक्षा भी प्राप्त करें।²⁰ गोभिल के अनुसार यज्ञोपवीत धारण कर चुकी नारी ही यज्ञ के आचमन आदि कार्यों को सम्पन्न करे।²¹ वे विवाह काल में यज्ञोपवीत धारण की गई नारी से मंत्रोच्चार भी करवाते हैं।²² यम स्मृति के अनुसार, पुत्र के सदृश उनका भी मेखलाबंधन विहित था।²³ पारस्कर गृह्यसूत्र में स्त्रियाँ उपनीत एवं अनुपनीत दोनों प्रकार में उल्लिखित हैं।²⁴

हारीत धर्मसूत्र भी दो प्रकार की नारी यथा-ब्रह्मवादिनी एवं सद्योवधू का उल्लेख करते हैं।²⁵ सद्योवधू नारियाँ शैशवावस्था से ही संस्कारशून्य, अशिक्षित एवं शूद्रवत होती थीं, जबकि 'ब्रह्मवादिनी' अपेक्षित स्तर तक पढ़ी-लिखी होती थी। हारीत के अनुसार, जिस प्रकार शूद्र आजीवन अशिक्षित एवं संस्कारशून्य रहता है, उसी प्रकार स्त्रियों के लिए ऐसा अनुचित है।²⁶ यदि स्त्रियाँ अपनी शैशवावस्था में यथेष्ट शिक्षा प्राप्त करने में असमर्थ रही हों, तो भी विवाह के समय में उपनयन करवा कर उन्हें उत्तम संस्कार से युक्त कर देना चाहिए।²⁷ अर्थात् विवाह योग्य स्त्रियों को अपेक्षित स्तर तक ज्ञानवान होने की अपेक्षा समाज द्वारा की जाती थी। नारी की शिक्षा-दीक्षा को 'हारीत' ने पुरुषों से अधिक महत्त्व देते हुए कहा है कि, 'क्योंकि उसके गर्भ से ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य गुण से सम्पन्न संतति प्राप्त होते हैं। अतः नारी का सभी संस्कारों से अवश्य सम्पन्न होना चाहिए।'²⁸ बृहदारण्यकोपनिषद् से ज्ञात होता है कि, वैदिक युग में माता-पिता भावी संतति के रूप में कन्या के जनन हेतु तथा उसमें दीर्घायु एवं पंडिता गुण आरोपित करने हेतु गर्भाधान काल से ही प्रयासतर रहते थे।²⁹

अथर्ववेद से भी ज्ञात होता है कि, गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने वाली स्त्रियाँ अपेक्षित काल तक अध्ययन अवश्य करती थीं।³⁰ ऋग्वेद से ज्ञात होता है कि, विवाह के समय तक सूर्या नामक कन्या 'रैभी' एवं 'नाराशंसी' नामक ऋचाओं के ज्ञान से सम्पन्न थी एवं उस पर उनका पूर्ण अधिकार था।³¹ स्त्रियाँ सभी

में संभाषण करने में भी निपुण होती थीं।³² अनेक महिलाएँ वैदिक मंत्रों की द्रष्टा भी थीं। लोपामुद्र ने वैदिक मंत्रों का दर्शन किया था। अपाला-आत्रेयी³³, विश्ववारा-आत्रेयी³⁴, घोष-काक्षीवती³⁵, सूर्यसावित्री³⁶, दक्षिणा³⁷, जुहू³⁸, यमी³⁹, शची-पौलोमी⁴⁰, सारपराज्ञी⁴¹ नामक विदुषी ने भी मंत्रों का दर्शन किया था। इन्द्राणी, सरमा, रोमशा, उर्वशी, लोपामुद्रा, श्री, वाक्, श्रद्धा, मेधा, रात्रि आदि ऋग्वैदिक विदुषियों का उल्लेख शौनक ने भी किया है।⁴² उपनिषद् काल में गार्गी एवं मैत्रेयी की विद्वत्ता सर्वज्ञात तथ्य है। जनक के विद्वत्सभा में वाचकनवी-गार्गी ने अपने तर्कपूर्ण प्रश्नों से याज्ञवल्क्य की कठिन परीक्षा ली थी, जिससे याज्ञवल्क्य काफी असमंजस में पड़ गए थे।⁴³ कई ऐसे प्रसंग भी मिलते हैं, जिससे ज्ञात होता है कि वैदिक युग में महिलाएँ अध्ययन कार्य भी संपादित करती थी। वैदिक-वाङ्मय में इनके विद्यांश के भी साक्ष्य मिलते हैं। वागम्भूणी नामक विदुषी ने शुक्ल यजुर्वेद के आदि प्रवक्ता विवस्वान-आदित्य से इसका नियमित अध्ययन किया था, जिसे बाद में उसने कश्यप-नैध्रुवि आदि शिष्यों को नियमित रूप से अध्यापन करवाई। बाद में आचार्य वंश परम्परा से शुक्ल यजुर्वेद का ज्ञान क्रमशः शिल्प कश्यप, असित वार्षगण, जिह्वावान बाध्योग, वाजश्रवा कुश्रि, उपवेशि, अरूण एवं उद्दालक से वाजसनेय याज्ञवल्क्य को प्राप्त हुई।⁴⁴

अनेक महिलाओं का वेद ज्ञान इतना अधिक विस्तृत था कि, उनके शिष्यों-प्रशिष्यों का भी नाम उनसे ही जाना जाता था। उनके नाम से वैदिक शिक्षण संस्था तो प्रचलित हुई ही साथ ही उनके नाम से ब्राह्मण आदि ग्रंथों का भी प्रचलन हुआ। सुलभा नामक ऋषिका, जिनका जनक के साथ ब्रह्मविद्या विषयक संवाद का उल्लेख महाभारत, शांतिपर्व में भी हुआ है, के नाम से वैदिक शाखा भी प्राचलित हुई थी। सौलभ ब्राह्मण नामक ग्रंथ का उल्लेख भाष्य में है।⁴⁵ आवश्यकतानुसार गृह्यसूत्रों के ऋषितर्पण में भी सुलभा का नाम आया है।⁴⁶

विवेच्य युग में स्त्री शिक्षा की जो सामान्य प्रथा थी, उसके प्रमाण वैदिकेतर साहित्यों से भी प्राप्त होते हैं। पाणिनी और पतंजलि दोनों ने वैदिक चरणों में अध्ययन करनेवाली स्त्रियों का उल्लेख किया है।⁴⁷ इस संदर्भ में पाणिनी ने सूत्र भी प्रतिपादित किये हैं,⁴⁸ जिसमें जाति की परिभाषा के अन्तर्गत महाभाष्यकार ने 'गोत्र' और 'चरण' दोनों का ग्रहण किया है।⁴⁹ कठचरण में अध्ययन करनेवाली छात्रा 'कठी' और ऋग्वेद के बह्वच-चरण की 'बह्वची' कहलाती थी।⁵⁰ अर्थात् छात्रों के नामकरण के जो नियम थे, वही छात्राओं के लिए लागू थे, जिससे सहज ही अनुमान होता है कि, 'स्त्री-अध्येतृ' की संख्या नाममात्र की ही न थी, क्योंकि अगर ऐसा होता, तो उनके नामकरण संबंधी सूत्र के उल्लेख नहीं मिलते। पतंजलि ने नियमित अध्ययन करनेवाली इन छात्राओं को 'अध्येतृ' कहा है।⁵¹

पतंजलि के महाभाष्य में छात्राओं के नामकरण के प्रकरण से ज्ञात होता है कि, तत्कालीन समाज में स्त्रियों की उच्च शिक्षा आम बात थी एवं जिसकी पृष्ठभूमि काफी प्राचीन थी। पाणिनी ने तो इन अध्येत्रियों के रहने के संदर्भ में भी संकेत दिए हैं, जिसे 'छात्रीशाला' (Girls Hostel) कहा जाता था।⁵² 'कठीवृन्दारिका' जैसा शब्द कठशाखा की उस छात्रा के लिए भाषा में प्रयुक्त होता था, जो अपने 'चरण' में विशेष कीर्ति या अग्रपद प्राप्त करती थी।⁵³ स्त्री-शिक्षा की सुलभता वैदिक युग में नहीं होती तो गीत, वाद्य, नृत्य आदि चौंसठ कला⁵⁴, जिसमें निष्णात होने की अपेक्षा कुलीन स्त्रियों से सहज ही की जाती थी, का विकास कोई आकस्मिक घटना नहीं रहें होगी, बल्कि इसके विकास की एक युग-युगीन प्रक्रिया वर्तमान होगी। वेश-विन्यास से आजीविका चलानेवाली, स्मर दीप्त करनेवाली⁵⁵ धोबिन, रंगरेजिन⁵⁶, नेत्रांजन लगानेवाली, मृतवत्सा⁵⁷, युवती, शिथिल देहवाली⁵⁸ श्वेतकशिनी, अस्थिमात्र शरीर वाली⁵⁹ स्त्रियों को विशिष्ट कार्यों में नियोजित करने का जो निर्देश है, उससे भी ज्ञात होता है कि वैदिक युग में स्त्रियों के लिए प्रयुक्त होनेवाली विभिन्न कलाओं की शिक्षा विशेष रूप से प्रदान की जाती होगी। स्त्रियों द्वारा वस्त्र-निर्माण कला की सूचना हमें अथर्ववेद से प्राप्त होती है।⁶⁰ स्त्रियाँ अपने संतान के लिए ऋग्वैदिक युग में स्वयं कपड़े तैयार करती थीं।⁶¹ विवेच्य युग वस्त्र-निर्माण कला की इतनी महत्ता थी कि, उनकी इस कार्य-तकनीक की तुलना ऋषियों के मनन-कार्य से भी की जाती थी।⁶²

वैदिक युग में समाज के सभी वर्ग शिक्षा के अधिकारी थे।⁶³ सत्यकाम जाबाल के प्रसंग,⁶⁴ महिदास ऐतरेय के आख्यान⁶⁵ तथा कवष ऐलूष के योगदान⁶⁶ दर्शाते हैं कि, शिक्षा-विषयक योगदान में दलितों का भी अवदान उल्लेखनीय स्तर तक था। सुधन्वा के पुत्र ऋभु, विश्वा एवं वाज के तकनीकी कौशल वैदिक वाङ्मय के अक्षुण्ण अध्याय हैं।⁶⁷ महाभारत से भी ज्ञात होता है कि विवेच्य युग में दासीपुत्र महात्मा विदुर अपने न्याय संबंधित विशेष ज्ञान के बल पर ही महामंत्री के पद पर आसीन थे। स्वयं कृष्णद्वैपायन वेदव्यास भी धीवरकन्या के गर्भ से उत्पन्न थे एवं आचार्य परम्परा से शिक्षा प्राप्त कर कालजयी हुए। शूद्र आचार्यों के उल्लेख धर्मसूत्रों में भी मिलते हैं।⁶⁸ यजुर्वेद से भी ज्ञात होता है कि विभिन्न शिल्पों एवं व्यवसायों के विशेषज्ञ मुख्यतः निम्न वर्णोत्पन्न ही थे।⁶⁹

विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संबंधित शिक्षा भी वैदिक युग में चरमोत्कर्ष पर थी। विज्ञान और प्रौद्योगिकी की शिक्षा वैदिक साहित्य एवं अन्य साहित्य में प्राप्त होती है। इनमें पाठ्यक्रम, वैज्ञानिक आचार्य के विवरण दिए गए हैं। ऐसा लगता है कि विज्ञान एवं तकनीकी के शायद ही कोई पक्ष हो, जिसकी चर्चा इन ग्रंथों में नहीं हुई हो। आधुनिक वैज्ञानिक चिन्तक भी वेदों को साधन स्रोत के रूप में प्रयुक्त कर रहे हैं। भूगर्भ, भूतल एवं खगोलीय विज्ञानों के पृष्ठभूमि वैदिक साहित्य से प्रमाणित हो रहे हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि, वैदिक साहित्यों में जो ज्ञान-विज्ञान का उल्लेख सूत्रबद्ध रूप में हुआ है, वह आज भी प्रासंगिक है।

सन्दर्भ-सूची

1. अनंत सदाशिव अलतेकर, प्रचीन भारतीय शिक्षण पद्धति, पृ० 2, पादटिप्पणी-याज्जीववमधीते विप्रः।
2. महाभारत, 12/339/6, नास्ति विद्या समं चक्षुः।
3. विष्णुपुराण, 1/19/41, सा विद्या या विमुक्तये।
4. ऋग्वेद, 10/7/17, अक्षण्वन्तः कर्णवन्तः
5. अनंत सदाशिव अलतेकर, प्रचीन भारतीय शिक्षण पद्धति, पृ० 6-पादटिप्पणी-सद्विद्या यदि का चिन्ता वरोकोदरपूरणे। शुकोऽप्यशन-माप्नोति राम रामेति ब्रुवन्॥
6. मनुस्मृति, 2/118, सावित्रीमात्रसारोऽपि वरं विप्रः सुर्यात्रित। नार्यात्रितस्त्रिवेदोपि सर्वाशी सर्वविक्रयो॥
7. मनुस्मृति, 1/88-91,
8. ऋग्वेद, 1045/6, विश्वस्य केतुर्भुवनस्य गर्भ आ रोदसी अपृणाज्जायमातः। वीलुं चिदद्रिमभीनत पराज्जा यदग्निमयजन्त पञ्च॥

9. निरुक्त, 6/7
10. वाजसनेयिसंहिता, 26/2, यथेमांवाच कल्याणीमावादानि जनेभ्यः ब्राह्मराजन्यामे। शूद्राय। चार्याय च स्वाय चारणाय च॥
11. छांदोग्योपनिषद्, 5/11/5, न में स्तनोजनपदे..... नानाहिताग्निर्नाविद्वान्।
12. बृहदारण्यकोपनिषद्, 1/5/7, तस्मात् पुत्रमनुशिष्टं लोक्यमाहुः तस्मादेननुशास्ति।
13. बृहदारण्यकोपनिषद्, 4/1/3, यथा मातृमान् पितृमान् आचार्यवान् ब्रूयात् तथा तच्छैल्वायनोऽब्रवीत्।
14. छांदोग्योपनिषद्, 4/4, (सत्यकाम जाबाल की कथा)
15. शतपथब्राह्मण, 14/9/4/30-32, तदिदं वयं भारद्वाजीपुत्राद् भारद्वाजीपुत्रो वात्सीमांडवीपुत्राद्, वात्सीमांडवीपुत्रः पराशरीपुत्रात् कार्षकेयीपुत्र प्राशनीपुत्रात्। : बृहदारण्यकोपनिषद्, 6/5/1-2, अथ वंशः। पौतीमाषीपुत्रः कात्यायनीपुत्रात् प्राशनीपुत्रादासुरिवासितः।
16. निरुक्त, 4/2, कन्या कमनीया भवति।
17. ऋग्वेद, 8/31/8, पुत्रिणा तु कुमारिणा विश्वमायुर्व्यश्नुतः। उभा हिरण्यपेशसा॥
- 17.1. मनुस्मृति, 9/130, यथैवात्मा तथा पुत्राः पुत्रेण दुहिता समा।
18. वही, 7/152, कन्यानां सम्पन्नानं च कुमारणां च रक्षणम्।
- 18.1. प्रशांत कुमार, वैदिक साहित्य में नारी, पृ० 19-सामनं ब्रह्मचर्यम्।
19. ऋग्वेद, 10/109/8, भीमा जाया ब्राह्मणस्योपनीता दुर्धा तद्याति परमे व्योमन्।
20. हारीत धर्मसूत्र, 21/22, तत्र ब्राह्मवादिनीनाम् उपनयनं अरिनीधम् वेदाध्ययनम् स्वगृहे भिक्षा चर्यति।
21. गोभिल गृह्यसूत्र, 1/1/2, यज्ञोपवीतिनाचान्तोदकन कृत्यम्।
22. वही, 2/1/9, प्रावृतां यज्ञोपवीतिनीम् अभ्युदानयन्जपत् सामाऽददत्।
23. प्रशांत कुमार, वैदिक साहित्य में नारी, पृ० 20-पुराकल्पेषु नारीनां मौजीबन्ध-नमिष्यते।
24. वही, स्त्रिय उपनीता अनुपनीताश्च।
25. वही, द्विविधाः स्त्रियो ब्राह्मवादिन्यः सद्योवध्वश्च।
26. प्रशांत कुमार, वैदिक साहित्य में नारी, पृ० 20-न शूद्रसमाः स्त्रियः।
27. हारित धर्मसूत्र, 21/20/24, सद्योवधूनां तूपस्थिते विवाहकाले कथंचिदुपनयनं कृत्वा विवाहकार्यः।
28. प्रशांत कुमार, वैदिक साहित्य में नारी, पृ० 21-न हि शूद्रयोनौ ब्राह्मणक्षत्रियवैश्या जायन्ते तस्माच्छन्दसा स्त्रियः संस्कार्याः।
29. बृहदारण्यकोपनिषद्, 6/4/17, अथ च इच्छेद् दुहिता में पंडिता जायेत सर्वमायुरियादिति तिलौदनं पाचयित्वा सर्पिष्मन्त मशनीयातामीश्वरौ जनयितवै॥
30. अथर्ववेद, 11/5/18, ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्।
31. ऋग्वेद, 10/85/6, रैश्यासीदनुदेयी नाराशंसी न्योचनी।
32. वही, 1/167/3, गुहा चरन्ती मनुषो न योषा सभावती विदथ्येव सं वाक्॥
33. ऋग्वेद, 18/91
34. वही, 5/28
35. वही, 10/39, 10/40
36. वही, 10/85
37. वही, 10/107
38. वही, 10/109
39. वही, 10/154
40. वही, 10/159
41. वही, 10/189
42. बृहद्देवता, 2/85-86, इन्द्राणी चन्द्रमाता च सरमा रोमशोर्वशी। लापामुद्रा च नद्यश्च, यमी नारी च शश्वती॥ श्रीः लक्ष्मी सर्पराज्ञी वाक् श्रद्धा मेधा च दक्षिण। रात्री सूर्या सावित्री ब्रह्मवदितन्य इरिताः॥
43. बृहदारण्यकोपनिषद्, 3/8, अथ ह वाचनव्युनाच ब्राह्मणा भगवन्तो हन्ताहमिमं द्वौ प्रश्नौ प्रक्ष्यामि...
44. शतपथ ब्राह्मण, 14/9/4/33, याज्ञवल्क्य उद्दालकाद् उद्दालकोऽरूणादरूण उपवेशेरूपवेशिः कुश्रेः कुश्रिर्वाजश्रवसो वाजश्रवा जिह्वावतो बाध्योगात् हरितः कश्यपः शिल्पात् कश्यपाछिल्लपः कश्यपः कश्यपानैध्रुवेः कश्यपोनैध्रुविर्वाचो वाग्भिषण्या आम्भिषण्यादित्यादित्यानीमानि शुक्लानि यजूंषि वाजसनेयेन याज्ञवल्क्येनाख्यायन्ते॥: बृहदारण्यकोपनिषद्, 6/5
45. प्रभुदयाल अग्निहोत्री, पतंजलिकालीन भारत पृ० 442
46. वही, पृ० 458
47. वासुदेवशरण अग्रवाल, पाणिनीकाल भारतवर्ष, पृ० 278
48. अष्टाध्यायी सूत्रपाठ, 4/1/63, जातेरस्त्रीविषयादयोपधात्।
49. वासुदेवशरण अग्रवाल, पाणिनीकाल भारतवर्ष, पृ० 278
50. वही

51. वही
52. अष्टाध्यायी सूत्रपाठ, 6/2/86, छात्र्यादयः शालायाम्।
53. वासुदेवशरण अग्रवाल, पाणिनीकाल भारतवर्ष, पृ० 278
54. कामसूत्र, 1/3रू16
55. यजुर्वेद, 30/9, निष्कृत्यै पेशस्कारीं प्रकामोद्यायोपसदं.....
56. वही, 30/12 मेधायवासः पल्पूलीं प्रकामाय रजयित्रीम्॥
57. वही, 30/15, शीलजाञ्जनीकारी..... यमायासूम॥
58. वही, 30/15
59. वही
60. अथर्ववेद, 14/1/45, या अकृतन्नवयन् याश्च तलिरे या देवीरन्ताँ अभितोऽददन्त। तास्वा जरसे सं व्ययन्त्वायुष्मतीदं परि धत्स्व वासः।
61. ऋग्वेद 5/47/8 वि तन्बते द्यिया अस्मा अपांसि वस्त्रा पत्राय मातरोवयन्ति
62. वही, 10/5/3, ऋतायिनी मायिनी सं दधाते मित्वा शिशुं जज्ञतुर्वर्धयन्ती। विश्वस्य नाभिं चरतो ध्रुवस्य क्वेशिचत् तन्तुं मनसा वियन्तः॥
63. वाजसनेयी संहिता, 26/2, यथेमां वाच कल्याणीमावदानि जनेभ्यः ब्रह्मराजन्यामो शूद्राय। चयार्य च स्वाय चरणाय च॥
64. छांदोग्योपनिषद् 4/4
65. वही, 3/16
66. ऋग्वेद, 10/30, 10/31 : ऐतरेय ब्राह्मण, 3/1
67. ऋग्वेद, 1/20, 1/110, 1/111
68. आपस्तंब धर्मसूत्र, 1/2/40/1, अब्राह्मणदध्यायमनापदि। सुश्रूषाऽनुब्रज्या च यावदध्ययनम्॥ : बौधायन धर्मसूत्र, 1/1/2/43, अब्राह्मणद् अध्ययनमापदि
69. यजुर्वेद, अध्याय 30

मौर्यकालीन शासन: प्रशासन के विविध पक्ष

डॉ० सुप्रिया कुमारी

पी-एच.डी., (विश्वविद्यालय इतिहास विभाग) तिलका मांझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर

चन्द्रगुप्त मौर्य ने एक विशाल एवं शक्तिशाली साम्राज्य की स्थापना की। मौर्य सम्राट चन्द्रगुप्त जहाँ एक ओर अपने पराक्रम के लिए इतिहास में प्रसिद्ध है, वहीं दूसरी ओर सुव्यवस्थित तथा सुसंगठित शासन-प्रणाली को जन्म देने के परिणामस्वरूप भारतीय इतिहास में विशेष महत्व रखता है। चन्द्रगुप्त के सलाहकार मंत्री चाणक्य का मौर्य प्रशासनिक व्यवस्था की स्थापना में विशेष योगदान रहा। चाणक्य के अर्थशास्त्र से हमें मौर्य प्रशासनिक व्यवस्था की विस्तृत जानकारी मिलती है। मौर्य साम्राज्य की स्थापना के साथ केंद्रीकृत प्रशासनिक व्यवस्था का आविर्भाव हुआ। अशोक के अभिलेखों से साम्राज्य के पाँच प्रांतों में विभक्त होने का संकेत मिलता है एवं केंद्रीय प्रशासन का प्रांतों पर नियंत्रण होने का उल्लेख पाया जाता है।

लिच्छवी, वज्जि, मल्लवी, कुरु, पांचाल को अर्थशास्त्र में संघ गणराज्यों में सम्मिलित किया गया है। यद्यपि इन्हें राजनीतिक विशेषाधिकार दिये गये थे, तथापि इनको साम्राज्य का एक अभिन्न अंग माना जाता था। विशाल साम्राज्य पर सम्राट के लिए सीधा नियंत्रण रखा जाना संभव नहीं था। अतः मौर्य साम्राज्य को पाँच प्रांतों में विभक्त किया गया। यद्यपि संपूर्ण मौर्य-साम्राज्य की राजधानी पाटलिपुत्र थी, पर वहाँ से कम्बोज, बंग और आंध्र तक विस्तृत साम्राज्य का शासन सुचारु रूप से नहीं किया जा सकता था। अतः शासन की दृष्टि से मौर्यों के अधीन संपूर्ण 'विजित' को पाँच भागों में बाँटा गया था, जिनकी राजधानियाँ क्रमशः पाटलिपुत्र, तोसाली, उज्जयिनी, तक्षशिला और सुवर्णगिरि थीं। हम इन राजधानियों को दृष्टि में रखकर यह सहज में अनुमान कर सकते हैं कि विशाल मौर्य साम्राज्य पाँच चक्रों में विभक्त था।

- (1) उत्तरापथ: जिसके अंतर्गत कम्बोज, गांधार, कश्मीर, अफगानिस्तान, पंजाब आदि के प्रदेश थे। इसकी राजधानी तक्षशिला थी।
- (2) अवन्तिपथ या पश्चिम प्रांत: इसमें काठियावाड़-गुजरात से लेकर राजपूताना, मालवा आदि के सब प्रदेश शामिल थे। इसकी राजधानी उज्जैनी थी।
- (3) दक्षिणापथ: विंध्याचल के दक्षिण का सारा प्रदेश इस चक्र में था, इसकी राजधानी सुवर्णगिरि थी।
- (4) प्राच्यपथ: अशोक ने अपने नये जीते हुए प्रदेश का एक पृथक् चक्र बनाया था, जिसकी राजधानी तोसाली थी।
- (5) मध्य देश या केंद्रीय प्रांत (मगध): इसमें वर्तमान बिहार, उत्तर प्रदेश और बंगाल सम्मिलित थे, इसकी राजधानी पाटलिपुत्र थी। यह संपूर्ण साम्राज्य की भी राजधानी थी।

प्रायः इन पाँचों चक्रों का शासन करने के लिए राजकुल के व्यक्तियों को नियत किया जाता था, जिन्हें कुमार कहते थे। कुमार अनेक महामात्यों की सहायता से अपने-अपने चक्र का शासन करते थे। राजा बनने से पूर्व अशोक और कुणाल उज्जयिनी, तक्षशिला आदि के 'कुमार' रह चुके थे। इन पाँच चक्रों के अंतर्गत अनेक छोटे शासन-केंद्र या मंडल भी थे, जिसमें 'कुमार' के अधीन 'महामात्य' शासन करते थे। उदाहरण के लिए तोसाली के अधीन समापा में, पाटलिपुत्र के अधीन कौशाम्बी में और सुवर्णगिरि के अधीन इसिला में महामात्य रहते थे।

सौराष्ट्र या काठियावाड़ का एक पृथक् 'देश' उज्जयिनी के अधीन था, जिसका शासक चन्द्रगुप्त के समय में वैश्य पुष्यगुप्त था। अशोक के समय में वहाँ का शासन यवन तुषास्फ के अधीन था। मगध सम्राट की ओर से जो आज्ञाएँ प्रचारित की जाती थीं, वे चक्रों के 'कुमारों' के महामात्यों के नाम होती थीं। अशोक ने जो आदेश भेजे, वे सुवर्णगिरि के कुमार या आर्यपुत्र के द्वारा भेजे गये थे। इसी प्रकार कलिंग में समापा के महामात्यों और तोसाली के कुमार की नियुक्ति नहीं होती थी, उसका शासन सीधा सम्राट के अधीन था। अतः उसके अंतर्गत कौशाम्बी के महामात्यों को अशोक ने सीधे ही अपने आदेश दिये थे। प्रांतीय शासक कुमार या आर्यपुत्र की सहायता के लिए प्रांतीय मंत्रिपरिषद् होती थी।

इस बात का दिव्यावदान में उल्लेख है कि प्रांतीय परिषद् का सम्राट से सीधे संपर्क होता था। इसके माध्यम से सम्राट प्रांतीय शासकों की स्वेच्छाचारिता पर अंकुश लगाता था। वस्तुतः पूरा मौर्य प्रशासन रोक और संतुलन की अवधारणा पर आधारित था। कुमार की सहायतार्थ चक्रों के शासन के लिए, जो महामात्य नियुक्त होते थे, उन्हें शासन-संबंधी बहुत अधिकार प्राप्त थे। अतएव अशोक ने चक्रों के शासकों के नाम जो आज्ञाएँ प्रकाशित कीं, उन्हें केवल कुमार या आर्यपुत्र के नाम से नहीं भेजा गया, अपितु कुमार और महामात्य दोनों के नाम प्रेषित किया गया। जब कुमार भी इसी प्रकार अपने अधीनस्थ महामात्यों को कोई आज्ञा भेजते थे तो उन्हें वे अपने नाम से नहीं, अपितु महामात्य सहित कुमार के नाम से भेजते थे। मौर्य-साम्राज्य के मुख्य पाँच चक्र या विभाग थे, ये चक्र अनेक मंडलों में विभक्त थे। प्रत्येक मंडल में बहुत-से जनपद होते थे। ये जनपद संभवतः, प्राचीन युग के जनपदों के प्रतिनिधि थे। शासन की दृष्टि से जनपदों के भी विविध विभाग होते थे, जिन्हें कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में स्थानीय, द्रोणमुख, खार्वटिक, संग्रहण और ग्राम कहा है। ग्राम शासन की सबसे छोटी इकाई थी। दस ग्रामों के समूह को संग्रहण कहते थे। बीस संग्रहणों (या 200 ग्रामों) से एक खार्वटिक बनता था। दो खार्वटिकों (या 400 ग्रामों) से एक द्रोणमुख और दो द्रोणमुखों (800 ग्रामों) से एक स्थानीय बनता था। संभवतः स्थानीय, द्रोणमुख और खार्वटिक शासन की दृष्टि से एक ही विभाग को सूचित करते हैं। स्थानीय में लगभग 800 ग्राम हुआ करते थे। पर कुछ स्थानीय आकार में छोटे होते थे, या कुछ प्रदेशों में आबादी घनी न होने के कारण 'स्थानीय' में गाँवों की संख्या कम रहती थी। ऐसे ही स्थानीयों को द्रोणमुख या खार्वटिक कहा जाता था। ग्राम का शासक ग्रामिक, संग्रहण का गोप और स्थानीय का स्थानिक कहलाता था। संपूर्ण जनपद के शासक को 'समाहर्ता' कहते थे। मंगल-महामात्य, समाहर्ता के ऊपर होते थे, जो चक्रों के अंतर्गत विविध

मंडलों का शासन करने के लिए केंद्रीय सरकार की ओर से नियुक्त किये जाते थे। इन मंडल-महामात्यों के ऊपर कुमार और उसके सहायक महामात्य रहते थे। सबसे ऊपर पाटलिपुत्र का मौर्य सम्राट था।

शासक वर्ग: शासन कार्य में सम्राट की सहायता करने के लिए एक मंत्रि-परिषद् होती थी। कौटिल्य अर्थशास्त्र में इस मंत्रिपरिषद् का विस्तार से वर्णन किया गया है। राजा द्वारा मुख्यमंत्री तथा पुरोहित का चयन उनके चरित्र की भली-भाँति जाँच करके किया जाता था। इस प्रक्रिया को उपधा-परीक्षण कहा जाता था। अशोक के शिलालेखों में भी उसकी परिषद् का बार-बार उल्लेख है। चक्रों के शासक कुमार भी जिन महामात्यों की सहायता से शासनकार्य करते थे, उनकी भी एक परिषद् होती थी। जो राज-कर्मचारी साम्राज्य में केंद्रीय सरकार की ओर से शासन के विविध पदों पर नियुक्त थे, उन्हें पुरुष कहते थे। ये पुरुष उत्तम, मध्यम और हीन तीन दर्जों के होते थे। जनपदों के समूहों (मंडलों) के ऊपर शासन करने वाले महामात्यों की संज्ञा संभवतः प्रादेशिक या प्रदेशीय थी। उनके अधीन जनपदों के शासक समाहर्ता कहलाते थे। निःसंदेह, ये उत्तम 'पुरुष' होते थे। 'युक्त' आदि विविध कर्मचारी इनके अधीन मध्यम व हीन दर्जों में रखे जाते थे।

स्थानीय स्वशासन: जनपदों के शासन का संचालन करने के लिए जहाँ केंद्रीय सरकार की ओर से समाहर्ता नियत थे, वहाँ जनपदों की अपनी आंतरिक स्वतंत्रता भी अक्षुण्ण रूप से कायम थी। अर्थशास्त्र में उल्लिखित 'प्रदेष्टा' नामक अधिकारी मंडल का प्रधान होता था। प्रदेष्टा, समाहर्ता के प्रति उत्तरदायी था।

कौटिल्य के अर्थशास्त्र बार-बार इस बात पर में जोर दिया गया है कि जनपदों, नगरों व ग्रामों के धर्म, चरित्र और व्यवहार को अक्षुण्ण रखा जाय। इसका अभिप्राय यह हुआ कि इसमें अपना स्थानीय स्वशासन पुरानी परंपरा के अनुसार जारी था। एक ही प्रकार की स्थानीय स्वतंत्रता सब जनपदों में नहीं थी। हम जानते हैं कि मगध-साम्राज्य के विकास से पूर्व कुछ जनपदों में गणशासन और कुछ में राजाओं का शासन था। उनके व्यवहार और धर्म अलग-अलग थे। जब वे मगध के साम्राज्यवाद के अधीन हो गये, तब भी उनमें अपनी पुरानी परंपरा के अनुसार स्थानीय शासन जारी रहा और ग्रामों में पुरानी ग्रामसभाओं और नगरों में नगरसभाओं (पौरसभा) के अधिकार कायम रहे। जनपद सभा की सत्ता ग्रामों के समूहों या जनपदों में भी विद्यमान रही। साथ ही केंद्रीय सरकार की ओर से भी विविध करों को एकत्र करने तथा शासन का संचालन करने के लिए 'पुरुष' नियुक्त किये जाते रहे।

सम्राट-विविध जनपदों और गणराज्यों को जीतकर जिस विशाल मगध-साम्राज्य का निर्माण हुआ था, उसका केंद्र राजा या सम्राट था।

चाणक्य के अनुसार राज्य के सात अंगों में केवल दो राजा और देश की प्रधानता है, प्राचीन परंपरा के अनुसार राज्य के सात अंग माने जाते थे—राजा, अमात्य, जनपद, दुर्ग, कर या कोष, सेना और मित्र। पुराने युग में जब छोटे-छोटे जनपद होते थे और उनमें एक ही 'जन' का निवास होता था तो राजा की उनमें विशेष महत्ता नहीं होती थी।

आचार्य भारद्वाज की दृष्टि में राजा की अपेक्षा अमात्य की अधिक महत्ता थी। अन्य आचार्यों की दृष्टि में अमात्य की अपेक्षा जनपद, दुर्ग या कोष आदि का महत्व अधिक था।

प्राचीनकाल के ऐसे जनपदों में जिनमें एक ही 'जन' का निवास था, राजा की अपेक्षा अन्य अंगों या तत्वों की प्रमुखता सर्वथा स्वाभाविक थी। जनपदों को जीतकर जिन साम्राज्यों का निर्माण किया जा रहा था, उनका केंद्र राजा ही था, वे एक महाप्रतापी महत्वाकांक्षी व्यक्ति के ही कृत थे। उसी ने कोष, सेना, दुर्ग आदि का संगठन कर अपनी शक्ति का विस्तार किया था। कौटिल्य के शब्दों में, 'मंत्री, पुरोहित आदि भृत्य वर्ग की और राज्य के विविध अध्यक्षां व अमात्यों की नियुक्ति राजा ही करता है। जब साम्राज्य में राजा का इतना अधिक महत्व हो तो राजा को भी एक आदर्श व्यक्ति होना चाहिए। कोई साधारण पुरुष राज्य में कूटस्थानीय नहीं हो सकता।

चाणक्य के अनुसार राजा में निम्नलिखित गुण आवश्यक हैं—“वह ऊँचे कुल का हो, उसमें दैवी बुद्धि और दैवी शक्ति हो, वह वृद्ध (Elders) जनों की बात को सुनने वाला हो, धार्मिक हो, सत्य भाषण करने वाला हो, परस्पर-विरोधी बातें न करे, कृतज्ञ हो, उसका लक्ष्य बहुत ऊँचा हो, उसमें उत्साह अत्यधिक हो, वह दीर्घसूत्री न हो, सामंत राजाओं को अपने वश में रखने में वह समर्थ हो, उसकी बुद्धि दृढ़ हो, उसकी परिषद् छोटी न हो और वह विनय (नियंत्रण) का पालन करने वाला हो।” इनके अतिरिक्त अन्य भी बहुत-से गुणों का चाणक्य ने विस्तार से वर्णन किया है, जो राजा में अवश्य होने चाहिए।

मंत्रिपरिषद्: इसका उल्लेख चौथे और छठे शिलालेख में मिलता है। पातंजलि द्वारा रचित महाभाष्य में 'चन्द्रगुप्त सभा' का उल्लेख किया गया है।

आचार्य चाणक्य के अनुसार राजवृत्ति तीन प्रकार की होती है—प्रत्यक्ष, परोक्ष और अनुमेय। जो अपने सामने हो, वह प्रत्यक्ष है। जो दूसरे बतायें, वह परोक्ष है। किये हुए कर्म के बिना, किये का अनुमान लगाना अनुमेय कहलाता है। सब काम एक साथ नहीं होते। राजकर्म बहुत-से स्थानों पर होते हैं। अतः एक राजा सारे राजकर्म अपने आप नहीं कर सकता। इसलिए उसे अमात्यों की नियुक्ति करने की आवश्यकता होती है। मंत्रियों और पुरोहितों का चुनाव एक विस्तृत प्रक्रिया के अनुसार किया जाता था। चारित्रिक जाँच की यह प्रक्रिया उपधा-परीक्षण कहलाती थी।

परिषद् में कितने मंत्री हों, इस विषय में विविध आचार्यों के विविध मत थे। मानव (मनु) बार्हस्पत्य (बृहस्पति), औशनस (उरानश) आदि संप्रदायों के मत में मंत्रि परिषद् में क्रमशः बारह, सोलह और बीस मंत्री होने चाहिए। पर चाणक्य किसी निश्चित संख्या के पक्ष में नहीं थे। उनका मत था कि जितनी सामर्थ्य हो जितनी आवश्यकता हो, उतने ही मंत्री परिषद् में रख लिए जायें। अत्यधिक गुप्त बातों पर राजा मंत्रिपरिषद् में सलाह नहीं करते थे। वे एक-एक मंत्री से अलग-अलग परामर्श करते थे। इस संबंध में चाणक्य का यह आदेश था कि जिस बात पर सलाह लेनी हो, उससे उलटी बात इशारे से पूछी जाय, ताकि किसी मंत्री को यह मालूम न पड़े कि राजा के मन में क्या योजना है और वह वस्तुतः किस बात पर सलाह लेना चाहता है। बड़ी मंत्रिपरिषद् के अतिरिक्त एक छोटी उपसमिति भी होती थी, जिसमें तीन या चार खास मंत्री रहते थे। इसे 'मंत्रिण' कहा जाता था। जरूरी मामलों पर इसकी सलाह ली जाती थी। राजा प्रायः अपने 'मंत्रियों' और 'मंत्रिपरिषद्' के परामर्श से ही राजकार्य का संचालन करता था। वह भली-भाँति समझता था कि मंत्रिसिद्धि कभी अकेले नहीं हो सकती। जो बात मालूम नहीं है उसे मालूम करना, जो मालूम है उसका निश्चय करना, जिस बात में दुविधा है, उसके संशय को दूर करना, और जो बात केवल आंशिक रूप से ज्ञात है, उसे पूर्णता में जानना, यह सब कुछ मंत्रिपरिषद् के 'मंत्रणा' द्वारा ही हो सकता है।

जनपदों का शासन—धीरे-धीरे मगध के साम्राज्यवाद ने भारत के सभी पुराने जनपदों को अपने अधीन कर लिया था। पर इन जनपदों की अपनी भाषाएँ होती थीं। जनपद की राजधानी या पुर की सभा को 'पौरा' और शेष प्रदेश की सभा को 'जनपद सभायें' कहा जाता था। प्रत्येक जनपद के अपने धर्म, व्यवहार और चरित्र भी होते थे। मगध के सम्राटों ने इन विविध जनपदों को जीतकर इनकी आंतरिक स्वतंत्रता को कायम रखा। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में एक प्रकरण

जिसका शीर्षक 'लब्धप्रश्नम्' है, इसमें यह निरूपित किया गया है कि नये जीते हुए प्रदेश के साथ क्या व्यवहार किया जाय और उसमें किस प्रकार शांति स्थापित की जाय। इसके अनुसार नये जीते हुए प्रदेश में राजा को चाहिए कि वह अपने को जनता का प्रिय बनाने का प्रयत्न करे। जनता के विरुद्ध आचरण करने वाले का विश्वास नहीं जम सकता, अतः राजा जनता के समान ही अपना शील, वेश, भाषा और आचार बना ले। देश के देवताओं, समाजों, उत्सवों और विहारों का आदर करे और वहाँ के धर्म, व्यवहार आदि का उल्लंघन न करे।

जनपदों का शासन करने के लिए सम्राट की ओर से समाहर्ता नामक राजपुरुष की नियुक्ति की जाती थी। पर, वह जनपद के आंतरिक शासन में हस्तक्षेप नहीं करता था। जो जनपद देर से मगध साम्राज्य के अधीन थे, उनकी अपेक्षा नये जीते हुए जनपदों की पृथक् सत्ता अधिक सुरक्षित थी। अशोक के अभिलेख में जिला स्तर के अधिकारियों का क्रम इस प्रकार है: युक्त, रज्जुक (राजुक) और प्रादेशिक। प्रादेशिक अपने जिले से होने वाली आय की देख-रेख करता था तथा कानून-व्यवस्था को बनाये रखना उसका उत्तरदायित्व था। अभिलेखों से इस बात के संकेत मिलते हैं कि अशोक ने प्रति पाँचवें वर्ष इन्हें निरीक्षण पर जाने का निदेश दिया। रज्जुक, राजस्व प्रशासक था। इसका काम ग्रामीण क्षेत्र तक सीमित था। यह भूमि का सर्वेक्षण करता था तथा उसकी कीमत निर्धारण करता था। अपने शासनकाल के सत्ताइसवें वर्ष में अशोक ने रज्जुकों को दंड और अभिहार की स्वतंत्रता देते हुए न्यायिक कार्य भी सौंपा।

चौथे स्तंभ अभिलेख में इसका उल्लेख मिलता है तथा तीसरे शिलालेख में इनको निरीक्षाटन पर जाने का आदेश दिया गया। प्रादेशिक रज्जुक के प्रशासनिक और अदालती कार्य का निरीक्षण करेगा तथा युक्त उसकी रिपोर्ट तैयार करेगा। तीसरे शिलालेख में जिला स्तर के एक और अधिकारी युक्त का जिक्र आता है, जो न केवल शीर्ष स्तर पर न्याय का काम देखता था, वरन् सचिव और लेखाकार्य भी संपन्न करता था। यहाँ समाहर्ता, प्रादेशिक और स्थानिक के अंतर्संबंध को लेकर होने वाले भ्रम का निराकरण जरूरी है।

समाहर्ता को अगर हम चीफ कलक्टर मानें, तो प्रादेशिक कलक्टर होता था और स्थानिक डिप्टी कलक्टर। स्थानिक प्रादेशिक के अधीन काम करता था तथा उसका प्रमुख काम कर वसूली था। मौर्य प्रशासन में स्थानीय स्तर के उन अधिकारियों की भूमिका महत्वपूर्ण थी, जो केंद्रीय प्रशासन और स्थानीय प्रशासन के बीच कड़ी का काम करता थे। पुलिसा अर्थात् पुरुष, युक्त की तरह का निम्न अधिकारी होता था तथा वह जनमत की सूचना राजा को देता था।

छठे वृहद् शिलालेख में प्रतिवेदिक का उल्लेख मिलता है, जो कानून-व्यवस्था से संबंधित विशेष रिपोर्टर होता था। अर्थशास्त्र में प्रतिवेदिक की तुलना चर्चित गुप्तचरों से की गयी है तथा इन्हें इस बात की छूट होती थी कि बेधड़क राजा से कहीं भी मिल सकते थे, अर्थात् उनकी सम्राट के पास सीधी पहुँच थी। एक अन्य कनिष्ठ अधिकारी होता था, जो राजा के फरमानों को जनता के समक्ष पढ़ता था। इसी प्रकार आयुक्तिक राजा द्वारा नियुक्त विशिष्ट अधिकारी था और इसका काम महामाव्यों की सहायता करना था।

सैन्य प्रशासन: कौटिल्य सेना के तीन भागों का उल्लेख करता है—पुश्तैनी सेना, किराये की सेना और नगरपालिका से संबंधित सेना। पिलनी ने मौर्य सैनिकों की संख्या छह लाख, मेगास्थनीज ने चार लाख तथा प्लूटार्क ने दो लाख बतलायी है। मेगास्थनीज पाँच-पाँच सदस्यों वाली छह उप-समिति का उल्लेख करता है, जिसके माध्यम से सैन्य प्रशासन को विनियमित किया जाता था। ये समितियाँ पैदल, घुड़सवार, हाथी, रथ, नौ तथा रसद विभाग से संबंधित थीं।

कौटिल्य नावाध्यक्ष का उल्लेख करता है, जो नौसेना विभाग का अधिकारी था और इसे युद्ध से संबंधित समस्याओं पर विचार करना था। सिकंदर के अभियान के क्रम में सर्वप्रथम एक जहाज का प्रयोग किया गया था। एरियन उत्तर-पश्चिम में ज़ब्रोई जाति के पास जहाज होने का उल्लेख करता है। स्ट्रैबो के अनुसार पोत-निर्माण पर राज्य का एकाधिकार था।

नगरों का शासन: मेगास्थनीज ने पाटलिपुत्र के नगर-शासन का विस्तार में वर्णन किया है। उसके अनुसार पाटलिपुत्र की नगर सभा छः उप-समितियों में विभक्त थी और प्रत्येक उप-समिति में पाँच-पाँच सदस्य होते थे। इन उप-समितियों के कार्य निम्नलिखित थे:

पहली उप-समिति का कार्य औद्योगिक तथा शिल्प-संबंधी कार्यों का निरीक्षण करना था। इसी उप-समिति का कार्य मजदूरी की दर तथा मजदूरों के कार्य का समय निश्चित करना था और इस बात पर विशेष ध्यान देना कि शिल्पी लोग शुद्ध तथा पक्का माल ही काम में लाते हैं या नहीं। चन्द्रगुप्त मौर्य के समय में शिल्पज्ञों का समाज में बड़ा आदर था। प्रत्येक शिल्पी राष्ट्र की सेवा में नियुक्त माना जाता था। यही कारण था कि यदि कोई मनुष्य किसी शिल्पी के ऐसे अंग को विकल कर दे, जिससे कि उसके हस्त-कौशल में न्यूनता आ जाय, तो उसके लिए मृत्यु-दंड की व्यवस्था थी।

दूसरी उप-समिति विदेशियों का सत्कार करने का कार्य थी। आज कल जो काम विदेशों के दूतमंडल करते हैं, उनमें से अनेक कार्य यह समिति किया करती थी। यह उप-समिति पाटलिपुत्र में आनेवाले विदेशियों पर भी निगाह रखती थी। साथ ही विदेशियों के निवास, सुरक्षा और समय-समय पर औषधोपचार का कार्य भी इस उप-समिति के सुपुर्द था। यदि किसी विदेशी की पाटलिपुत्र में मृत्यु हो जाय, तो उसके देश के रिवाज के अनुसार उसे दफनाने का प्रबंध भी इसी उप-समिति के द्वारा किया जाता था। मृत परदेशी की जायदाद व संपत्ति का प्रबंध भी यही करती थी।

तीसरी उप-समिति का कार्य मर्दुमशुमारी (जनगणना) करना काम था। मृत्यु और जन्म की सूची रखना इसी उप-समिति का कार्य था। कर लगाने के लिए यह सूची बड़ी उपयोगी होती थी।

चौथी उप-समिति क्रय-विक्रय के नियमों का निर्धारण करती थी। इस उप-समिति का कार्य, भार और माप के परिमाणों को निश्चित करना, व्यापारी लोग उनका शुद्धता के साथ और सही-सही उपयोग करते हैं या नहीं, इसका निरीक्षण करना था।

संदर्भ

A. Sen : *Asoka's Edicts*, Calcutta, 1956.

A. Seneviratna : *King Asoka and Buddhism*, Kandy. Scheduled for 1993.

Aitken, Robert : *New Mahayana: Buddhism for the Postmodern World*, Berkeley, CA: Asian Humanities Press, 1991.

Armstrong, Karen : *Buddha*, New York: Penguin Books, 2001.

Arnold, Edwin : *The Light of Asia*, Wheaton, 1969.

Basham, A. L. : *The Wonder That Was India*, New York, 1954.

Birnbaum, Raoul : *The Healing Buddha*, Boston, MA: Shambhala, 1989.

ब्रिटिश शासन के तहत भारत में प्रशासनिक संगठन: एक समीक्षा

डॉ० अरविन्द कुमार

स्नातकोत्तर इतिहास विभाग, वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा

सारांश

इस शोध का उद्देश्य भारत में ब्रिटिशों की सामाजिक और सांस्कृतिक नीतियों का अध्ययन करना और उनके न्यायिक प्रणाली तथा स्थापित नागरिक सेवाओं की संरचना के बारे में अधिक जानकारी प्राप्त करना था। 31 दिसंबर, 1600 को स्थापित होने पर, ईस्ट इंडिया कंपनी एक एकाधिकार व्यापार निगम थी, जिसे एशिया में व्यापार करने के लिए ब्रिटिश क्राउन से विशेष अधिकार प्राप्त थे। सरकारी अधिकारियों की नियुक्ति, नामकरण और उन्हें निजी क्षेत्र के समान रोजगार शर्तें और लाभ प्रदान किए गए। यह शोध केवल द्वितीयक स्रोतों पर आधारित है। शोध से यह स्पष्ट होता है कि ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी ने भारत के राजनीतिक परिदृश्य में महत्वपूर्ण परिवर्तन किया।

सांकेतिक शब्द:- सामाजिक, सांस्कृतिक नीतियाँ, न्यायिक प्रणाली, ब्रिटिश ईस्ट इंडिया।

परिचय

31 दिसंबर 1600 को स्थापित, ईस्ट इंडिया कंपनी एक एकाधिकार व्यापार निगम था जिसे एशिया में व्यापार करने के लिए ब्रिटिश क्राउन से विशेष अधिकार प्राप्त थे। “फैक्टरी” शब्द का उपयोग एक बहु-कारक व्यापार केंद्र को वर्णित करने के लिए किया गया था। एक एजेंट एक नगर (उद्यमों का संग्रह) पर शासन करता था। वाणिज्यिक लेन-देन में, “फैक्टर” एक ऐसा एजेंट था जो किसी अन्य पक्ष का प्रतिनिधित्व करता था। प्रत्येक कर्मचारी को चार श्रेणियों में से एक में वर्गीकृत किया गया— अपरेंटिस, लेखक, फैक्टर, या व्यापारी। अधिकारियों को नियुक्त किया गया, उन्हें पद दिए गए, और कॉर्पोरेट दुनिया में प्रचलित मानकों और प्रथाओं के अनुसार रोजगार अनुबंध प्रदान किए गए। भर्ती और पदोन्नति के मामले में संरक्षण सामान्य था। कंपनी के मालिक या निदेशक इस संरक्षण के लिए जिम्मेदार थे। कंपनी के नियंत्रण के प्रारंभिक वर्षों में अधिकारियों को विभिन्न क्षेत्रों के बीच स्थानांतरित करना सामान्य प्रथा थी। उन्हें किसी प्रकार का ऑन-द-जॉब प्रशिक्षण नहीं दिया गया और उन्हें कठिनाई से चीजों को समझना पड़ा। उन्हें स्थानीय लोगों के जीवन या उनसे संवाद करने के तरीके की कोई जानकारी नहीं थी। कंपनी के कर्मचारियों की खराब वेतन के कारण बेईमानी की छवि बन गई थी।

अध्ययन का महत्व

भारत का प्रशासनिक तंत्र मूलतः उपनिवेशी युग का एक अवशेष है। स्थानीय प्रशासन, जिला प्रशासन, बजट, लेखा परीक्षा, केंद्रीकरण की प्रवृत्ति, पुलिस प्रशासन, राजस्व प्रशासन, और भारतीय प्रशासन के कई अन्य पहलुओं की जड़ें उस समय में हैं जब भारत ब्रिटिश शासन के अधीन था। इसलिए, पाठकों, शोधकर्ताओं और सभी शैक्षणिक व्यक्तियों को वर्तमान अध्ययन से काफी लाभ होगा।

उद्देश्य

यह अध्ययन निम्नलिखित उद्देश्यों के साथ किया गया है—

- ब्रिटिश द्वारा स्थापित नागरिक सेवाओं की संरचना का अध्ययन करना।
- ब्रिटिश द्वारा निर्धारित न्यायिक संरचना का पता लगाना।
- भारत में ब्रिटिश की सामाजिक और सांस्कृतिक नीति पर चर्चा करना।

विश्लेषण

लॉर्ड कॉर्नवॉलिस को सिविल सेवा की स्थापना का श्रेय दिया जाता है। जैसा कि हमने पिछले अध्याय में देखा, ईस्ट इंडिया कंपनी का व्यापार हमेशा कम वेतन वाले श्रमिकों द्वारा संचालित होता था, जिन्हें कंपनी के खर्च पर निजी व्यापार करने की स्वतंत्रता दी गई थी। जब कंपनी ने अन्य क्षेत्रों में विस्तार किया, तो मूल सेवकों को प्रशासनिक पदों पर पदोन्नत किया गया। अब वे भ्रष्टाचार के नए स्तरों तक पहुँच चुके हैं। उन्होंने स्थानीय बुनकरों और कारीगरों, व्यापारियों और जमींदारों, राजाओं और नवाबों से रिश्तों और ‘उपहारों’ के माध्यम से, और अवैध निजी व्यापार के जरिए विशाल संपत्ति अर्जित की, और फिर इंग्लैंड लौट गए। उनके भ्रष्टाचार को समाप्त करने के प्रयास में, क्लाइव और वॉरेन हेस्टिंग्स को बहुत कम सफलता मिली।

1786 में, जब कॉर्नवॉलिस को भारत का गवर्नर-जनरल नियुक्त किया गया, तो वह प्रशासन को सुधारने के प्रति दृढ़ थे। हालांकि, उन्हें यह पता था कि कंपनी के कर्मचारी तब तक ईमानदारी और कुशलता से अपने कार्य नहीं करेंगे जब तक उन्हें पर्याप्त वेतन नहीं दिया जाता। इसलिए, उन्होंने उन कानूनों के प्रति कड़ा रुख अपनाया जो अधिकारियों को निजी व्यापार में संलग्न होने या उपहार या रिश्वत स्वीकार करने से रोकते थे। साथ ही, उन्होंने कंपनी के कर्मचारियों का वेतन बढ़ाया। उदाहरण के लिए, एक जिला कलेक्टर को प्रति माह 1,500 रुपये और उसके जिले की आय का 1 प्रतिशत प्राप्त करने का प्रावधान था। अंततः, कंपनी के सिविल सेवकों ने दुनिया के किसी अन्य समूह की तुलना में अधिक कमाई की। यह सुनिश्चित करने के लिए कि सिविल सेवा राजनीतिक हस्तक्षेप से मुक्त रहे, कॉर्नवॉलिस ने पदोन्नति को वरिष्ठता के आधार पर निर्धारित किया।

सिविल सेवा के नए सदस्यों के प्रशिक्षण के उद्देश्य से, लॉर्ड वेल्सली ने 1800 में कोलकाता में फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना की। उनके इस निर्णय का विरोध कंपनी के निदेशक मंडल ने किया, जिन्होंने 1806 में इंग्लैंड के हैलीबरी में अपना पूर्वी भारतीय कॉलेज स्थापित किया। पूर्वी भारत कंपनी के निदेशकों ने नियंत्रण बोर्ड के सदस्यों को सिविल सेवा के लिए कुछ नामांकन करने की अनुमति देकर उन्हें संतुष्ट किया, जो 1853 तक जारी रहा। जब निदेशकों के अन्य आर्थिक और राजनीतिक अधिकारों को संसद द्वारा छीन लिया गया, तो उन्होंने इस लाभदायक और प्रिय विशेषाधिकार को बनाए रखने के लिए कड़ी लड़ाई लड़ी। अंततः, 1853 में, उन्हें हार का सामना करना पड़ा जब चार्टर अधिनियम ने सिविल सेवा में प्रवेश के लिए परीक्षाओं की आवश्यकता निर्धारित की। समय के साथ, भारतीय सिविल सेवा को अंतरराष्ट्रीय स्तर पर इसकी गुणवत्ता और प्रभाव के लिए मान्यता प्राप्त हुई। इसके सदस्यों का महत्वपूर्ण प्रभाव था और वे अक्सर नीति निर्माण में योगदान देते थे। व्यक्तिगतता, ईमानदारी और कठिन परिश्रम की परंपराओं को बढ़ावा दिया गया, हालांकि ये मूल्य स्पष्ट रूप से ब्रिटिशों को भारतीयों की तुलना में अधिक लाभान्वित करते थे। उन्होंने अंततः इस धारणा को आत्मसात कर लिया कि उन्हें भारत पर शासन करने का दिव्य अधिकार प्राप्त है। भारत में ब्रिटिश साम्राज्य की स्थापना और रखरखाव सिविल सेवा द्वारा किया गया, यही कारण है कि इसे साम्राज्य का “स्टील-फ्रेम” कहा जाता है। जैसे-जैसे भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन मजबूत हुआ, यह भारतीय समाज के भीतर आधुनिकता और प्रगतिशीलता के खिलाफ मुख्य दुश्मन बन गया।

सेना

भारतीय सेना ब्रिटिश उपनिवेशी सरकार की रीढ़ की हड्डी थी। इसका चार महत्वपूर्ण उद्देश्यों के लिए उपयोग किया गया। यह ब्रिटिशों के लिए एशिया और अफ्रीका में अपने साम्राज्य का विस्तार करने का मुख्य साधन था, साथ ही यह संभावित आंतरिक खतरों से रक्षा का भी माध्यम था। इसके अलावा, भारतीय शक्तियों को पराजित करने का साधन भी यही था।

कंपनी की सेना में भारतीय सैनिकों की संख्या अधिक थी, और ये मुख्यतः वर्तमान उत्तर प्रदेश और बिहार के राज्यों से थे। उदाहरण के लिए, 1857 में भारतीय सेना की कुल संख्या 311,400 थी, जिसमें से 265,900 भारतीय थे। हालांकि, कॉर्नवॉलिस के समय से सभी अधिकारी ब्रिटिश थे। 1856 में, सबसे उच्च रैंक वाला भारतीय अधिकारी एक सुभेदार था, और केवल तीन भारतीयों को 300 रुपये मासिक वेतन मिलता था। ब्रिटिश बलों के उपयोग की लागत इतनी अधिक थी कि भारतीय सैनिकों की एक बड़ी संख्या को भर्ती करना आवश्यक था। इसके अलावा, ब्रिटेन की जनसंख्या शायद इतनी कम थी कि वह भारत को सफलतापूर्वक जीतने के लिए आवश्यक सेना को जुटा सके।

ब्रिटिशों ने भारतीय सैनिकों पर नियंत्रण रखने के लिए एक निश्चित संख्या में पुरुषों को रखा और सेना का संचालन शीर्ष से नीचे तक किया। फिर भी, यह विचार कि एक छोटी सी यूरोपीय समूह भारतीयों की एक बड़ी सेना के साथ भारत को अधीन कर सकता है, आज के समय में अविश्वसनीय लगता है। इसके पीछे दो कारण थे। सबसे पहले, देश में आधुनिक राष्ट्रवाद की कमी थी। एक बिहारी या अवध के सैनिक ने कंपनी की मदद करना भारतीयता के खिलाफ नहीं समझा। हालांकि, भारतीय सैनिकों के बीच नमक के प्रति वफादारी की एक पुरानी संस्कृति थी। अर्थात्, भारतीय सैनिक एक भाड़े के सैनिक के रूप में उत्कृष्ट थे, और कंपनी ने एक वेतनदाता के रूप में प्रशंसनीय कार्य किया। भारतीय राजाओं और सरदारों ने अपने योद्धाओं को वेतन देना बंद कर दिया था, लेकिन ब्रिटिशों ने ऐसा नहीं किया।

पुलिस

एक बार फिर, कॉर्नवॉलिस को ब्रिटिश पुलिस बल की स्थापना का श्रेय दिया जाता है, जो ब्रिटिश संप्रभुता का तीसरा स्तंभ है। उन्होंने जमींदारों के अधिकार को समाप्त कर दिया और उनके स्थान पर एक नियमित पुलिस बल की स्थापना की, जिसका कार्य व्यवस्था बनाए रखना था। इस संदर्भ में उन्होंने पारंपरिक भारतीय थाने के प्रणाली को पुनर्स्थापित और अद्यतन किया। इस प्रकार, भारत ने ब्रिटेन को पीछे छोड़ दिया, जहाँ उस समय कोई संगठित पुलिस बल नहीं था। कॉर्नवॉलिस ने एक भारतीय-नेतृत्व वाला सर्कल प्रणाली (जिसे थाने कहा जाता है) बनाई, जिसे एक दारोगा द्वारा संचालित किया जाता था। इसके बाद, एक निश्चित क्षेत्राधिकार के भीतर पुलिस संचालन की निगरानी के लिए जिला पुलिस अधीक्षक का पद स्थापित किया गया। फिर से, भारतीयों को उच्च स्तर की पदों तक पहुँच से वंचित रखा गया। पुलिस कार्य अभी भी गाँव के चौकीदारों द्वारा किए जाते थे, जिन्हें स्थानीय समुदायों द्वारा भुगतान और समर्थन प्राप्त था। समय के साथ, पुलिस ने बड़े अपराधों को कम किया। चोरी के लिए पुलिस ने बड़े पैमाने पर विरोध की योजनाओं को विफल किया। जब राष्ट्रीय आंदोलन विकसित हुआ, तो पुलिस को विदेशी शासन के खिलाफ बड़े पैमाने पर साजिश को दबाने के लिए तैनात किया गया। भारतीय पुलिस बल ने जनता के साथ अपने इंटरैक्शन में बहुत कम सहानुभूति दिखाई। 1813 की एक संसदीय समिति की रिपोर्ट में कहा गया है कि पुलिस “शांत निवासियों पर डाकुओं द्वारा किए गए हमलों के समान ही आक्रमण करती है, जिन्हें उन्हें दबाने के लिए नियुक्त किया गया था।” इसके अलावा, गवर्नर-जनरल विलियम बेंटिंक ने 1832 में लिखा “इसके अलावा, शहाल ही में एक नियम की लोकप्रियता को कोई नहीं पार कर सकता है, जिसके अनुसार, यदि चोरी की गई है, तो पुलिस को इसकी जांच करने से रोका गया है, सिवाय इसके कि चोरी के शिकार व्यक्तियों की मांग पर; दूसरे शब्दों में, भेड़पालक भेड़िये से अधिक भक्षक है।”

न्यायिक संगठन

ब्रिटिशों ने एक न्यायिक ढांचा स्थापित किया जिसमें अलग-अलग आपराधिक और दीवानी अदालतें शामिल थीं। हालांकि वॉरेन हेस्टिंग्स ने इसे शुरू करने में मदद की, लेकिन चीजें 1793 में कॉर्नवॉलिस के आने के बाद ही व्यवस्थित होने लगीं। प्रत्येक जिले में एक दीवानी अदालत, या दीवानी अदालत, जो सिविल सेवा के एक न्यायाधीश द्वारा संचालित होती थी, स्थापित की गई। कॉर्नवॉलिस ने इस प्रकार सिविल जज और कलेक्टर की भूमिकाओं को विभाजित किया। सदर दीवानी अदालत जिला अदालत और चार प्रांतीय दीवानी अपील अदालतों के बाद सबसे उच्च अपील अदालत थी। कई निचली अदालतें, जिन्हें मुनिफी और अमीन कहा जाता था, भारतीय न्यायाधीशों द्वारा संचालित होती थीं और जिला अदालत के नीचे आती थीं, जो यूरोपीय न्यायाधीशों द्वारा संचालित होती थी। कॉर्नवॉलिस ने प्रत्येक बंगाल के चार प्रभागों में आपराधिक मामलों को संभालने के लिए सिविल अधिकारियों द्वारा संचालित एक सर्किट अदालत बनाई। कम गंभीर मुद्दों को सुनने के लिए कई निचले स्तर की भारतीय अदालतें, जिन्हें मजिस्ट्रेसी कहा जाता था, स्थापित की गई। सदर निजामत अदालत ने सर्किट अदालतों से सभी अपीलों की निगरानी की। अंगों के काटने और अन्य बर्बर दंडों से बचने के लिए, आपराधिक अदालतों ने मुस्लिम आपराधिक कानून का एक मध्यम और कम कठोर संस्करण लागू किया। दीवानी अदालतों ने उस क्षेत्र में या किसी विशेष जनसंख्या के बीच प्रचलित पारंपरिक कानून को लागू किया जो किसी को भी याद था। प्रांतीय अपील और सर्किट अदालतों को 1831 में विलियम बेंटिक द्वारा भंग कर दिया गया। जिला जजों और जिला कलेक्टरों से पहले, आयोगों को उनके कर्तव्यों के लिए जिम्मेदार ठहराया गया था। बेंटिक ने उप मजिस्ट्रेट, अधीनस्थ जज और प्रधान सदर अमीन के रूप में भारतीयों को अधिकार के पदों पर नियुक्त करके न्यायिक प्रणाली में भारतीयों को भी ऊंचा किया।

ब्रिटिशों ने पूर्ववर्ती कानूनी मानदंडों को विधायित और संहिताबद्ध करके एक नया कानूनी ढांचा स्थापित किया। भारत में न्याय ऐतिहासिक रूप से समय के साथ विकसित होने वाले प्रथागत कानून पर आधारित रहा है, हालांकि कई कानून धार्मिक ग्रंथों जैसे शास्त्रों और शरीयत से तथा साम्राज्यिक आदेशों से भी प्रेरित थे। ब्रिटिशों ने प्रथागत कानून के प्रति मूलभूत निष्ठा बनाए रखी, लेकिन समय के साथ उन्होंने अपना स्वयं का कानूनी प्रणाली विकसित की। नियम स्थापित किए गए, और पूर्ववर्ती कानूनों को संहिताबद्ध किया गया और कई मामलों में न्यायिक व्याख्या के माध्यम से आधुनिक बनाया गया। चार्टर अधिनियम 1833 के तहत गवर्नर जनरल इन काउंसिल को पूर्ण विधायी अधिकार प्राप्त था। इसका अर्थ था कि भारतीयों को मानव निर्मित नियमों के प्रति अधिक से अधिक समर्पण करना होगा, चाहे वे कितने भी अच्छे या बुरे क्यों न हों, क्योंकि उन्हें पवित्र माना जाता था और इसलिए उन पर प्रश्न नहीं उठाए जा सकते थे।

भारतीय कानून को औपचारिक रूप देने के लिए, सरकार ने 1833 में लॉ कमीशन का नेतृत्व करने के लिए लॉर्ड मैकाले को नियुक्त किया। भारतीय दंड संहिता, दीवानी और फौजदारी प्रक्रिया संहिता, और पश्चिम से अपनाए गए अन्य कानूनी संहिताएँ इसके कार्यों के फलस्वरूप हैं। देश के सभी कानूनों को मानकीकृत किया गया और इन्हें एक ही सेट के न्यायाधीशों द्वारा लागू किया जा रहा था। परिणामस्वरूप, हम कह सकते हैं कि भारत का कानूनी प्रणाली एकीकृत है।

कानून का शासन

कानून के शासन का विचार, जैसा कि हम आज जानते हैं, ब्रिटिशों द्वारा विकसित किया गया था। इसका अर्थ था कि, कम से कम सिद्धांत में, उनकी प्रशासनिक गतिविधियाँ उन कानूनों के अनुसार संचालित की जाएंगी जो उनके लोगों के विशेष अधिकारों, विशेषाधिकारों और कर्तव्यों को निर्धारित करते हैं, न कि शासक की इच्छानुसार। वास्तविकता में, नौकरशाहों और पुलिस अधिकारियों ने अपनी विवेकाधीन शक्तियों का दुरुपयोग किया और नागरिकों की स्वतंत्रताओं को सीमित किया। व्यक्तिगत स्वतंत्रता को, कम से कम सैद्धांतिक रूप से, कानून के शासन द्वारा संरक्षित किया गया था। यह सच है कि भारत के सम्राटों को अतीत में सामान्यतः परंपरा और रीति-रिवाजों द्वारा सीमित किया गया था। हालाँकि, वे कभी भी उन प्रशासनिक कार्यों को करने से नहीं रोके गए जो वे उचित समझते थे, और कोई उच्चतर प्राधिकरण नहीं था जिसके समक्ष उनके निर्णयों को चुनौती दी जा सके। कभी-कभी भारतीय राजा और प्रमुख अपनी इच्छानुसार कार्य करने के लिए अपनी शक्ति का उपयोग करते थे। इसके विपरीत, ब्रिटिश शासन के तहत प्रशासन मुख्यतः उन कानूनों के अनुसार संचालित किया गया जो अदालतों द्वारा व्याख्यायित किए गए, हालाँकि ये कानून अक्सर दोषपूर्ण थे, “ये लोगों द्वारा लोकतांत्रिक प्रक्रिया के माध्यम से नहीं बनाए गए थे, बल्कि विदेशी शासकों द्वारा तानाशाही रूप से बनाए गए थे, और नागरिक सेवकों और पुलिस के हाथों में बहुत अधिक शक्ति छोड़ दी थी। दुर्भाग्यवश, यह परिणाम शायद एक विदेशी प्रशासन के तहत अनिवार्य था जो परिभाषा के अनुसार न तो लोकतांत्रिक था और न ही स्वतंत्रतावादी।”

सामाजिक और सांस्कृतिक नीति

ब्रिटिश सरकार ने भारत की अर्थव्यवस्था को पुनर्गठित किया और इसे ब्रिटिश वाणिज्य और उद्योग के लाभ के लिए नियंत्रित किया, साथ ही सार्वजनिक सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए एक अत्याधुनिक प्रशासनिक ढांचा स्थापित किया। उन्होंने 1813 तक राष्ट्र के धार्मिक, सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन में हस्तक्षेप न करने की नीति बनाए रखी; हालाँकि, उस वर्ष के बाद, उन्होंने भारतीय समाज और संस्कृति को संशोधित करने के लिए सक्रिय प्रयास करना शुरू कर दिया। यह विक्टोरियन ब्रिटेन में नए विचारों और गतिविधियों के उदय का परिणाम था। अठारहवीं सदी के मध्य से, औद्योगिक क्रांति और औद्योगिक पूंजीवाद का विस्तार ब्रिटिश जीवन के हर पहलू को तेजी से बदल रहा था। उभरती औद्योगिक शक्तियों ने भारत को एक बड़े उपभोक्ता बाजार के रूप में देखा। केवल शांति बनाए रखना पर्याप्त नहीं था; भारत को इस प्रक्रिया के लिए कुछ आधुनिकीकरण और विकास की भी आवश्यकता थी। दूसरे शब्दों में, थॉम्पसन और गैरेट के अनुसार, “पुराने डाकूगिरी के मूड और तरीकों का परिवर्तन आधुनिक औद्योगिकीकरण और पूंजीवाद के तरीकों में हो रहा था।”

शिक्षा का आधुनिकीकरण

1835 के निर्णय के बाद, भारतीय सरकार ने तेजी से अंग्रेजी को अपने स्कूलों और विश्वविद्यालयों में अनिवार्य शिक्षण भाषा बना दिया, विशेष रूप से बंगाल में। प्राथमिक स्कूलों की बड़ी संख्या के बजाय, उसने अंग्रेजी भाषा के कुछ संस्थानों और विश्वविद्यालयों की स्थापना की। इस दृष्टिकोण की आलोचना की गई क्योंकि यह शिक्षा के मामले में आम जनता की आवश्यकताओं के प्रति असंवेदनशील था। नए उच्च शिक्षा केंद्रों की स्थापना का प्रयास गलत नहीं

था। आवश्यक प्राथमिक विद्यालय के शिक्षकों की आपूर्ति के लिए विश्वविद्यालयों और संस्थानों की एक महत्वपूर्ण संख्या की स्पष्ट आवश्यकता थी। हालांकि, जैसे-जैसे उच्च शिक्षा का विस्तार हुआ, आम जनता की शिक्षा पर ध्यान केंद्रित करना भी महत्वपूर्ण था। सरकार ऐसा नहीं करेगी क्योंकि वह स्कूलों पर बहुत अधिक निवेश नहीं करना चाहती थी। अधिकारियों ने शिक्षा के लिए धन की कमी को पूरा करने के लिए “नीचे से ऊपर तक की छानबीन सिद्धांत” का सहारा लिया। उपलब्ध संसाधनों के साथ केवल कुछ चुनिंदा भारतीयों को ही शिक्षित किया जा सकता था, इसलिए यह तय किया गया कि शीर्ष और मध्य वर्ग के कुछ लोगों की शिक्षा में निवेश किया जाए, जो फिर बाकी जनसंख्या को शिक्षित करेंगे और उन्हें आधुनिक विचारों से परिचित कराएंगे। इसलिए, निम्न वर्ग को उच्च वर्गों से विचारों और शिक्षा का प्रसार होने की उम्मीद थी। यह प्रक्रिया ब्रिटिश शासन के अंत तक जारी रही। यह ध्यान देने योग्य है कि हालांकि साक्षरता दर में सुधार नहीं हुआ, आधुनिक विचारों का प्रसार हुआ- लेकिन जिस तरह से अभिजात वर्ग चाहता था, वैसा नहीं। शिक्षित भारतीयों या बौद्धिकों ने राजनीतिक दलों, प्रेस, पत्रों, साहित्य और सार्वजनिक मंचों के माध्यम से ग्रामीण और शहरी जन उन्हे के बीच लोकतंत्र, राष्ट्रवाद, साम्राज्यवाद विरोधी, और सामाजिक एवं आर्थिक समानता और न्याय के विचार फैलाए, लेकिन स्कूलों और पाठ्यपुस्तकों के माध्यम से नहीं। यदि शैक्षिक प्रणाली इन विचारों का वाहक थी, तो यह अप्रत्यक्ष रूप से भौतिक और सामाजिक विज्ञानों और मानविकी में कुछ मौलिक साहित्य के निर्माण के माध्यम से किया गया।

सरकारी वित्त पोषण की कमी और 1844 के एक उद्घोषणा के कारण, जिसने सभी सरकारी नौकरी के उम्मीदवारों के लिए अंग्रेजी दक्षता अनिवार्य कर दी, पुरानी भारतीय शिक्षा प्रणाली धीरे-धीरे कमजोर होने लगी और अंततः समाप्त हो गई। इस उद्घोषणा के परिणामस्वरूप, अंग्रेजी माध्यम के स्कूलों ने तेजी से प्रमुखता प्राप्त की, जबकि पारंपरिक संस्थानों से छात्रों का पलायन होने लगा। इस प्रणाली की सार्वभौमिक शिक्षा को प्राथमिकता न देने के कारण, भारत में वयस्क साक्षरता की दर 1921 और 1821 के बीच लगभग अपरिवर्तित रही। 1911 में, 94% भारतीय पढ़ना नहीं जानते थे, लेकिन 1921 तक यह केवल 92% रह गया। शिक्षा के लिए एक और बाधा यह थी कि अंग्रेजी को भारतीय भाषाओं पर प्राथमिकता दी गई, जिससे शिक्षित और सामान्य जनसंख्या के बीच भाषा और संस्कृति के मामले में अंतर बढ़ गया। इसके अलावा, छात्रों को स्कूलों और विश्वविद्यालयों में शुल्क का भुगतान करना पड़ता था, जिससे उच्च शिक्षा बहुत महंगी हो गई और यह मुख्य रूप से उच्च वर्ग और शहरी लोगों के लिए आरक्षित रह गई। इसके गंभीर सीमाओं के कारण, यह लगभग एक सदी तक पारंपरिक शिक्षा प्रणाली के पतन की भरपाई करने में असमर्थ रही।

निष्कर्ष

इस समय पर यह महत्वपूर्ण है कि यह ध्यान में रखा जाए कि ऐसे ईमानदार और दयालु अंग्रेजों की संख्या अल्प थी और उन्होंने कभी भी भारतीय प्रशासन में महत्वपूर्ण शक्ति नहीं रखी। ब्रिटिश-भारतीय सरकार द्वारा साम्राज्यवाद और शोषण जारी रहा। वे केवल नए विचारों और सुधारात्मक उपायों के प्रति खुले थे, बशर्ते कि ये ब्रिटिश साम्राज्य की भारत में आर्थिक पैठ और उपमहाद्वीप पर अपनी पकड़ को कमजोर न करें। भारत का आधुनिकीकरण सरल और व्यापक संसाधन निष्कर्षण की इच्छा से सीमित था। इस प्रकार, कई अंग्रेज अधिकारी, व्यापारी और राजनीतिज्ञ भारत के आधुनिकीकरण के विचार के प्रति खुले थे, यह उम्मीद करते हुए कि इससे भारतीय ब्रिटिश शासन के प्रति अधिक ग्रहणशील होंगे और ब्रिटिश उत्पादों के बेहतर खरीदार बनेंगे। जब भारतीय नीति पर चर्चा की बात आई, तो कई उग्रवादियों ने अपने पूर्व सिद्धांतों को छोड़ दिया। वे ब्रिटेन की तरह लोकतांत्रिक प्रशासन के लिए लड़ने के बजाय एक पितृसत्तात्मक अधिनायकवादी प्रणाली की चाह रखते थे। उन्होंने इस दृष्टिकोण को उन रूढ़िवादियों के साथ साझा किया, जो भी भारतीयों को बच्चों के रूप में देखने और उन्हें राजनीतिक पदों पर बैठने से रोकने के लिए पितृसत्तात्मकता का समर्थन करते थे। जबकि भारत में ब्रिटिश हितों को आगे बढ़ाने के लिए कुछ हद तक आधुनिकीकरण आवश्यक था, इसका पूर्ण रूप से कार्यान्वयन उन शक्तियों को जन्म देगा जो इन लक्ष्यों के विपरीत होंगी और दीर्घकाल में ब्रिटिश प्रभुत्व को खतरे में डालेंगी। इसलिए, आंशिक आधुनिकीकरण का एक कार्यक्रम आवश्यक था, जिसमें कुछ क्षेत्रों में आधुनिकीकरण को पेश किया जाए लेकिन अन्य क्षेत्रों में इसे रोका और प्रतिबंधित किया जाए। अर्थात्, उपनिवेशीय आधुनिकीकरण भारत के लिए एक योजना थी, जिसे उपनिवेशवाद की सीमाओं के भीतर लागू किया गया और इसके प्रचार को ध्यान में रखा गया। कंपनी का प्रबंधन भी तकनीकी और वैज्ञानिक प्रशिक्षण के लिए धन की अनदेखी करता रहा। 1857 तक, देश में केवल तीन शहर- कलकत्ता, बंबई और मद्रास- ही चिकित्सा विद्यालयों के साथ थे।

संदर्भ

1. अर्नोल्ड, डी. (1991). अकाल: सामाजिक संकट और ऐतिहासिक परिवर्तन (अतीत पर नए दृष्टिकोण). वाइली-ब्लैकवेल प्रकाशन. 213-19.
2. बागची, ए. के. (2000). भारत में निजी निवेश 1900-1939. कैम्ब्रिज: कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस. 285.
3. bardhan, पी. के. (1984). भूमि, श्रम और ग्रामीण गरीबी: विकास अर्थशास्त्र में निबंध. दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस. 137-40.
4. बीयर, जी. एल. (1962). ब्रिटिश उपनिवेशी प्रणाली की उत्पत्ति. लंदन: केसिंजर प्रकाशन. 194-98.2
5. बनर्जी, ए. और एल. अय्यर (2005). इतिहास, सामाजिक विभाजन और ग्रामीण भारत में सार्वजनिक वस्तुएं. स्विट्जरलैंड: यूरोपीय आर्थिक संघ का जर्नल 3 (2-3). 639-47.
6. सकलेश, (2016) भारत में ब्रिटिश शासन का प्रभाव, जेटिर मार्च 2016, वॉल्यूम 3, अंक 3.

बिहार में अविकसित वर्गों की राजनीतिक भागीदारी और सशक्तिकरण की समीक्षा: एक समग्र दृष्टिकोण

आफजल इकबाल

शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग, जय प्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा

सारांश

यह लेख बिहार में दलितों की राजनीतिक भागीदारी और सशक्तिकरण की समग्र समझ को उजागर करने का प्रयास है। लेख मुख्य रूप से दलितों (अनुसूचित जातियों) की राजनीतिक चेतना और जागरूकता, उनके अन्य लोगों के साथ राजनीतिक भागीदारी और राज्य स्तर पर सामाजिक-राजनीतिक पदानुक्रम के संदर्भ में उनकी राजनीतिक स्थिति का विश्लेषण करेगा। इस संदर्भ में, यह इस बात पर ध्यान केंद्रित करेगा कि कैसे राजनीतिक भागीदारी ने उनके शक्ति-साझाकरण और निर्णय लेने की प्रक्रिया में उनकी भागीदारी के माध्यम से सशक्तिकरण की भावना को लाया है, विशेष रूप से राज्य स्तर की राजनीतिक संगठनों में आरक्षित सीटों पर।

सांकेतिक शब्द:- दलित, राजनीतिक जागरूकता, सशक्तिकरण, राजनीतिक भागीदारी, निर्णय लेने की प्रक्रिया।

परिचय

दलित, जिन्हें संविधान के अनुसार अनुसूचित जातियाँ कहा जाता है, भारतीय समाज में जनसंख्या का एक महत्वपूर्ण हिस्सा हैं। भारत की स्वतंत्रता से पहले, इन जनसंख्या समूहों को सामान्यतः “अविकसित वर्ग” के रूप में संदर्भित किया जाता था (जो ब्रिटिश अधिकारियों द्वारा उपयोग किया जाता था)। “दलित” शब्द का पहला उपयोग 1931 में पत्रकारिता में किया गया था, जिसका अर्थ अछूत था, और इसे 1970 के दशक की शुरुआत में महाराष्ट्र में दलित पैथर आंदोलन के साथ लोकप्रिय बनाया गया। वर्तमान में, यह उन लोगों की स्थिति को दर्शाता है जो अपने निम्न जन्म के कारण वंचित और मूलभूत अधिकारों से वंचित हैं। ये जातियाँ सभी राज्यों में फैली हुई हैं, सिवाय नागालैंड, अंडमान निकोबार द्वीप समूह और लक्षद्वीप के। बिहार दलित जनसंख्या के मामले में सबसे अधिक जनसंख्या वाला राज्य है, यहां तक कि 2000 में झारखंड के नए राज्य के गठन के बाद भी। पुरातात्विक दृष्टि से, दलित भारत में सामान्यतः और विशेष रूप से बिहार में सबसे अधीनस्थ समुदाय रहे हैं। वे सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक और राजनीतिक दृष्टि से अन्य जातियों और समुदायों की तुलना में सबसे पिछड़े हैं। उन्हें कलंकित किया गया है और वे कई विकलांगताओं का सामना करते हैं, जो धार्मिक विश्वास और प्रथा के माध्यम से नियंत्रित होती हैं। इनमें से अधिकांश का आर्थिक स्तर निम्न है, राजनीतिक शक्ति की कमी है, शिक्षा का स्तर कम है और सामाजिक गतिशीलता भी सीमित है।

इस संदर्भ में, वर्तमान लेख एक प्रयास है कि बिहार में राजनीतिक भागीदारी और दलितों या अनुसूचित जातियों के सशक्तिकरण की एक समग्र समझ को अन्वेषण किया जाए, विशेष रूप से उनकी राजनीतिक जागरूकता, नीति निर्माण प्रक्रिया, मतदान व्यवहार और राज्य विधानमंडल, संसद और स्थानीय स्तर के संगठनों में भागीदारी के माध्यम से सशक्तिकरण के संदर्भ में। प्रारंभ में, यह कहना उचित होगा कि विद्वानों के बीच यह सामान्य सहमति है कि विभिन्न दलित समुदायों में व्यापक वैचारिक जागरूकता हुई है।

यह कहा गया है कि इस वैचारिक परिवर्तन को मापने के लिए मानदंड एक नई पीढ़ी और आत्म-सम्मान की जागरूकता से संबंधित हैं, जो विभिन्न सामाजिक-राजनीतिक आंदोलनों में अधिक सक्रिय भागीदारी की ओर ले जाते हैं। इस विषय पर हाल की लेखन सामग्री समान संकेतकों का सुझाव देती है जो पहचान में परिवर्तन को दर्शाते हैं। उदाहरण के लिए, माइकल (1999, 113) स्वीकार करते हैं कि उभरती हुई दलित पहचान और सामाजिक जागरूकता ने गरीब ग्रामीण दलितों के बीच एक नई राजनीतिक चेतना का निर्माण किया है। इसी प्रकार, बेतेल (2000) असमान विकास की प्रक्रिया के बारे में बात करते हैं और यह प्रश्न उठाते हैं कि क्या राजनीतिक सक्रियता के कारण पहचान के वैचारिक और प्रतीकात्मक घटकों में तेजी से परिवर्तन ने संसाधनों के स्वामित्व के पैटर्न में संरचनात्मक परिवर्तनों में अनुवाद किया है। इस संदर्भ में, हमें राजनीतिक भागीदारी के परिभाषात्मक अर्थ को समझने की आवश्यकता है। कॉनवे (2000) के अनुसार, राजनीतिक भागीदारी को “उन नागरिक गतिविधियों के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जो सरकार की संरचना, सरकारी अधिकारियों के चयन या सरकारी नीतियों को प्रभावित करने का प्रयास करती हैं”। यह एक संक्षिप्त विवरण है कि संदर्भ एक पदानुक्रमित सामाजिक व्यवस्था और एक लोकतांत्रिक राजनीतिक प्रणाली के बीच का विरोधाभास है। वह आगे कहते हैं कि “सशक्तिकरण का विचार लगभग किसी भी संदर्भ में शामिल हो सकता है— मानव अधिकारों, बुनियादी आवश्यकताओं, आर्थिक सुरक्षा, क्षमता निर्माण, कौशल विकास या गरिमापूर्ण सामाजिक अस्तित्व की परिस्थितियों के बारे में बात करते समय”। लेकिन जोगदंड (2003) का मानना है कि सशक्तिकरण को उनके कमहंतकमक सामाजिक स्थिति, वास्तविक गरीबी और वंचना से दलितों को बाहर लाने के संदर्भ में समझा जाना चाहिए। दूसरे शब्दों में, कमजोर वर्गों का सशक्तिकरण उनके समग्र सामाजिक-आर्थिक स्थितियों

में प्रगति और उनके स्थिति में ऊपर उठाने का अर्थ है, साथ ही उनके वास्तविक मुद्दों को अधिक संगठित तरीके से संबोधित करना और भविष्य में प्रभावी हस्तक्षेप के लिए राज्यों पर दबाव डालना। यहाँ, हम बिहार राज्य में विकास के विभिन्न चरणों के माध्यम से दलितों के बीच राजनीतिक जागरूकता और सशक्तिकरण की भावना का विश्लेषण करेंगे।

बिहार राज्य में दलितों के बीच राजनीतिक जागरूकता के संदर्भ में, यह सत्य है कि स्वतंत्रता से पूर्व बिहार में दलितों के बीच कोई स्पष्ट राजनीतिक संगठन नहीं था। प्रत्येक दलित जाति में जाति पंचायत थी, जो कुछ हद तक एक परिभाषित रूप और संरचनात्मक आकार में दिखाई देती थी। फिर भी, इसमें न तो पारंपरिक पदाधिकारी थे और न ही उनके बीच कोई स्पष्ट पदानुक्रम था। विशेष जाति के वृद्ध व्यक्ति सामाजिक और धार्मिक मामलों का निर्णय लेते थे। गांव में प्रश्नों पर चर्चा करने या मतभेदों को सुलझाने के लिए एक पारंपरिक गांव पंचायत भी थी। इस प्रकार, विद्यार्थी और मिश्रा (1977) ने देखा कि विभिन्न जाति समूहों से संबंधित अनुसूचित जातियाँ गांव पंचायत के साथ निकट संपर्क में थीं। यही एकमात्र तरीका था जिसके माध्यम से अनुसूचित जातियाँ सभी गांव गतिविधियों में सक्रिय भाग ले रही थीं। गांव पंचायत की लोकतांत्रिक संरचना और कार्यप्रणाली के संदर्भ में, सिंह (1996) ने बताया कि बिहार में पंचायत चुनाव अधिनियम, 1993 के कार्यान्वयन के बाद इसमें परिवर्तन हुआ, जिसके बाद बिहार पंचायत चुनाव नियम 1995 लागू हुए। उनका मानना है कि बिहार में आगामी पंचायत चुनाव सामाजिक न्याय के लिए एक निर्णायक लड़ाई होनी चाहिए। बिहार के ग्रामीण समाज में शक्ति वितरण के पैटर्न में परिवर्तन लाना निश्चित रूप से आवश्यक था। शक्ति का स्थानांतरण अनुसूचित जातियों (SCs) और अन्य पिछड़ी जातियों (OBCs) के निर्वाचित नेताओं की ओर होने की संभावना थी। इस प्रकार, उन्होंने यह अनुमान लगाया कि कमजोर वर्गों की शक्ति में वृद्धि का तात्पर्य मजबूत वर्गों की शक्ति में कमी से है। इसी तरह, लाई (1997) बिहार में राजनीतिक पुनर्जागरण और शक्ति संरचना का विश्लेषण करते हैं। पहले, जाति पदानुक्रम में निम्न जातियों को आगे बढ़ने की अनुमति नहीं थी। ऊपरी जातियों के साथ एक संरक्षक-ग्राहक संबंध में निम्न जातियाँ हमेशा ऊर्ध्वाधर रूप से बंधी रहती थीं। भेदभाव के खिलाफ किसी आंदोलन की अनुपस्थिति में यह अस्वाभाविक प्रभुत्व लंबे समय तक बना रहा। उनके शब्दों में, “सब कुछ खोया हुआ प्रतीत होता था। लेकिन अंततः एक विशाल उथल-पुथल हुई जिसने अब तक वंचित शक्तियों के बीच एकजुटता को जन्म दिया। उभरती हुई शक्ति संरचना निम्न जातियों के पक्ष में है। यह नए सामाजिक स्तर को राजनीतिक प्रतिनिधित्व सुनिश्चित करने में प्रभावी रही है। हाल ही में राजनीतिक क्षेत्र में शामिल हुए, पहले से बाहर रखे गए लोगों ने अब उस शक्ति संरचना में स्थान प्राप्त कर लिया है जो पहले उन्हें अस्वीकार की गई थी।”

इस प्रकार, बिहार राज्य का राजनीतिक परिदृश्य बदल रहा है। अनुसूचित जातियाँ अब राजनीतिक रूप से जागरूक हो गई हैं। यह देखा गया है कि वे अपने राजनीतिक अधिकारों को समझती हैं और किसी भी स्थिति को सहन नहीं करतीं। वे कांग्रेस, भाजपा, सीपीआई, जदयू, राजद, एलजेपी आदि जैसे कई राजनीतिक दलों में विभाजित हैं। यह भी देखा गया है कि वे एक राजनीतिक पार्टी की गुणात्मक विशेषताओं से भली-भाँति परिचित हैं। उन्हें यह भी पता है कि कौन-सी राजनीतिक पार्टी उनकी सहायता कर सकती है। दूसरे शब्दों में, वे एक ही राजनीतिक नेता पर विश्वास नहीं करते, बल्कि विभिन्न राजनीतिक दलों और नेताओं पर विश्वास करते हैं। अन्य राज्यों में भी दलितों की स्थिति इसी प्रकार की है। उदाहरण के लिए, पाई (2000) और कुमार (2002) ने 1984 में कांशीराम द्वारा बहुजन समाज पार्टी के गठन के बाद उत्तर प्रदेश में दलितों के राजनीतिक विकास का उल्लेख किया है। हालांकि, बिहार और देश के अन्य राज्यों में दलित, उत्तर प्रदेश में प्रमुख जातियों के रूप में उभरे हैं। इस विकास के पीछे के कारण हैं- सुरक्षात्मक भेदभाव, पार्टी का तेजी से लोकतंत्रीकरण, जिसके परिणामस्वरूप सामाजिक जागरूकता और राजनीतिकरण में वृद्धि हुई, और राज्य में आर्थिक विकास। लेकिन बिहार में दलितों के बीच ऐसा विकास नहीं हुआ है। स्वतंत्रता के बाद, भारतीय संविधान ने यह प्रावधान किया कि राज्य किसी भी सामाजिक और शैक्षणिक रूप से पिछड़े वर्गों के नागरिकों के लिए विशेष प्रावधान कर सकता है, विशेष रूप से अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिए। इसके अतिरिक्त, संविधान शिक्षा, सेवाओं और राजनीतिक संस्थानों में अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के विकास और प्रगति के लिए आरक्षण का प्रावधान करता है। संविधान के प्रावधानों के अनुसार, अनुसूचित जातियों और जनजातियों के विकास और कल्याण के लिए देशभर में बड़े पैमाने पर विशेष उपाय किए गए हैं। कुछ कानून भी बनाए गए हैं। इसके परिणामस्वरूप, बिहार में भी स्वतंत्रता के बाद दलित समुदायों के बीच राजनीतिक जागरूकता का निरंतर विकास हुआ है।

यह पहले ही उल्लेख किया जा चुका है कि बिहार में उच्च पिछड़ी जातियाँ एक राजनीतिक रूप से जागरूक शक्ति के रूप में उभरी हैं। 1970 के दशक के अंत में, करूपुरी ठाकुर की आरक्षण नीति बिहार की राजनीतिक अर्थव्यवस्था में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन का संकेत देती है। बिहार में सामाजिक परिवर्तन पर टिप्पणी करते हुए, ब्लेयर (1980) लिखते हैं, “स्वतंत्रता के बाद और उससे पहले बिहार में प्रमुख रही ‘आगे’ या ‘द्वितीय जन्म’ जातियाँ अब ‘पिछड़ी जातियों’ द्वारा प्रतिस्थापित की जा रही हैं।” इसके अतिरिक्त, द्वितीय जन्म जातियों की प्रभुत्व और वर्चस्व अब उभरती हुई उच्च पिछड़ी जातियों द्वारा चुनौती दी जा रही है। यहां तक कि दलित भी बिहार में सामाजिक रूप से जागरूक और राजनीतिक रूप से सक्रिय हो गए हैं। वे विभिन्न राजनीतिक दलों द्वारा संगठित होने लगे हैं। उनकी मांगें ग्रामीण जाति और वर्ग संरचना के विभिन्न मुद्दों पर केंद्रित हैं, जैसे कि सम्मान का खाता, उत्पीड़न और शोषण के खिलाफ विरोध, न्यूनतम वेतन कानूनों का प्रवर्तन, फसल साझेदारों के अधिकारों की मान्यता, बंधुआ श्रम का उन्मूलन आदि। सचिदानंद (2001) के अनुसार, राजनीतिक साधन एक और अमदनीय है जिसके माध्यम से निम्न जातियों ने अपने आर्थिक और सामाजिक स्थिति को उठाने का प्रयास किया है। निम्न जातियों के लिए दुविधा यह रही है कि वे उच्च जातियों के साथ मिलकर काम करें या अनुसूचित जाति पार्टियों के बैनर के तहत उनसे अलग हों। आर्थिक मांगें जो वंचित समूहों द्वारा की जाती हैं, उनके राजनीतिक परिणाम होते हैं। बिहार की राजनीति में अनुसूचित जातियों के लिए राजनीतिक प्रतिनिधित्व और नौकरियों में आरक्षण कोटा ने जाति चेतना को मजबूत किया है। दूसरी ओर, यह भी सत्य है कि वंचित जाति समूह सामाजिक बाधाओं को तोड़ने में सफल हुए हैं और राजनीतिक क्षेत्र में प्रवेश कर रहे हैं। इस प्रकार, वे सामाजिक उन्नति के मार्ग में कई कठिनाइयों का सामना करते हैं, लेकिन यह मुख्य रूप से लोकतांत्रिक राजनीति और उसके दबावों के समतलीकरण प्रभाव के कारण है। यह स्वयं इस बात का संकेत है कि वे राजनीतिक रूप से सक्रिय हैं और अपने अधिकारों के प्रति अधिक जागरूक हैं।

राजनीतिक भागीदारी

राजनीतिक भागीदारी के विवरण में जाने से पहले, यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि राजनीतिक भागीदारी का संदर्भ दलितों के शक्ति-साझाकरण और उनके निर्णय-निर्माण प्रक्रिया में भागीदारी के संदर्भ में है, विशेष रूप से राज्य स्तर की राजनीतिक संगठनों में आरक्षित सीटों के माध्यम से। स्वतंत्रता से पूर्व और स्वतंत्रता के बाद, दलितों के बीच राजनीतिक भागीदारी का विकास हुआ है, जिसका विश्लेषण इस संदर्भ में किया जाएगा। जैसा कि हम जानते हैं, भारत में स्वतंत्रता से पूर्व राजनीतिक भागीदारी केवल कुछ उच्च जातियों तक सीमित थी। ब्रिटिशों ने पश्चिमी शिक्षा को प्रोत्साहित किया और संचार के तेज साधनों की स्थापना की, जिससे भारत में लोगों की बढ़ती संख्या को मताधिकार का विस्तार किया गया। राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान राजनीतिक स्वतंत्रता के लिए दलितों द्वारा प्रदान की गई नेतृत्वता इन जातियों की राजनीति में बढ़ती भागीदारी का प्रमाण थी। हालांकि, स्वतंत्रता के बाद सभी जातियों और समुदायों के लोगों की भागीदारी की दर और संख्या में वृद्धि हुई। वर्तमान में, जाति प्रणाली राजनीति में प्रतिनिधित्वात्मक प्रक्रिया के प्रति प्रतिक्रिया दे रही है। यह कहा जा सकता है कि वयस्क मताधिकार के प्रभाव के तहत जाति संरचना मजबूत हुई है। यह एक नए आत्म-सम्मान और शक्ति की भावना के विकास का परिणाम है, विशेष रूप से निम्न जातियों, खासकर दलितों के बीच, जिन्हें गांव से लेकर संघीय संसद तक सभी निर्वाचित निकायों में आरक्षित सीटें मिली हैं। इसके अतिरिक्त, यह उल्लेख किया गया है कि ग्रामीण भारत के कई हिस्सों में शक्ति बढ़े संख्या वाले भूमि-स्वामी किसान जातियों के हाथों में चली गई है; यह संभावना है कि यह कुछ समय तक वहीं बनी रहेगी, सिवाय उन गांवों के जहां दलित संख्या में मजबूत हैं और हाल ही में उपलब्ध कराई गई नई शैक्षिक और अन्य अवसरों का लाभ उठा रहे हैं। इसके कारण, वे जाति की राजनीतिकरण के लाभ प्राप्त कर रहे हैं, जिसने उनके सामाजिक उत्थान में मदद की है। पहले, उनके पास राज्य में राजनीतिक प्रतिनिधि नहीं थे, लेकिन 1947 के बाद, सुरक्षात्मक भेदभाव नीति के कारण, उनके बीच राजनीतिक जागरूकता आई है, और उन्होंने राज्य के राजनीतिक क्षेत्र में भाग लेना शुरू कर दिया है।

बिहार में दलितों का उदय

विभिन्न दलित जातियों के बीच राजनीतिक भागीदारी के विश्लेषण के बाद, अब हम बिहार राज्य में सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्रों के संदर्भ में दलितों के उदय का संक्षेप में अवलोकन करेंगे। अनुसूचित जातियों की सामाजिक और राजनीतिक जागरूकता 20वीं सदी के मोड़ पर आकार लेने लगी। कहा जाता है कि बिहार में अनुसूचित जातियों में से दुषाधों ने अपने राजनीतिक स्थिति को सुधारने के लिए सामूहिक प्रयासों के महत्व को सबसे पहले समझा। उन्होंने 1911 में पहली दुषाध सभा का गठन किया, जो कई जाति सभाओं जैसे कायस्थ महासभा (1887), प्रधान भूमिहार ब्राह्मण सभा (1905), राजपूत सभा (1906), और संभवतः पहली पिछड़ी जातियों की सभा रावणी काहर सभा (1906) से प्रेरित थी। इसके बाद 1928 में श्री जगजीवन राम द्वारा रवीदास सभा का गठन किया गया, जो समय के साथ एक महत्वपूर्ण नेता बन गए। 1930 में “एंटी-अनटचेबिलिटी एसोसिएशन” का नाम बदलकर हरिजन सेवक संघ रखा गया और जगजीवन राम को भागलपुर में एक सम्मेलन में इसका सचिव नियुक्त किया गया। रवीदास महासभा की पहली वार्षिक बैठक 1934 में कलकत्ता में आयोजित की गई। इसके बाद, जगजीवन राम ने “डिप्रेस्ड क्लासेज लीग” की स्थापना की, जिसे 1935 में कानपुर में आधिकारिक रूप से स्थापित किया गया, जिसमें रसिकलाल बिस्वास अध्यक्ष और जगजीवन राम तथा पी.एन. राजभोज सचिव के रूप में कार्यरत थे।

स्वतंत्रता से पहले, 1937 में जब कांग्रेस पार्टी ने बिहार में सत्ता संपाली, तब जाति से पासी जगलाल चौधरी को कैबिनेट मंत्री बनाया गया और जगजीवन राम को संसदीय सचिव नियुक्त किया गया। स्वतंत्रता के बाद, जगजीवन राम केंद्र में श्रम मंत्री बने। 1977 में, वे भारत के उप प्रधानमंत्री बने। वे 1952 से 1984 तक संसद के लिए चुने गए। दो अन्य दलित नेता, भोलापासवान शास्त्री और राम सुंदर दास भी अनुसूचित जातियों के प्रतिनिधि थे। भोलापासवान शास्त्री ने मार्च 1968 से जून 1971 के बीच बिहार के मुख्यमंत्री के रूप में तीन बार कार्य किया। राम सुंदर दास ने भी अप्रैल 1979 से फरवरी 1980 तक बिहार के मुख्यमंत्री के रूप में कार्य किया। कांग्रेस पार्टी के शासन के दौरान राजनीतिक अस्थिरता और विघटन के समय, बिहार से एक नए दलित नेता रामविलास पासवान का उदय हुआ। उन्होंने हाजीपुर से लोकसभा की सीट रिकॉर्ड मतों से जीती और मोरारजी देसाई के प्रधानमंत्री बनने के बाद पहले गैर-कांग्रेस सरकार में मंत्री बने।

बैकवर्ड और दलितों को जनता दल के मंच के तहत एकजुट किया गया। इस चुनाव में, राजनीतिक शासन के पहले चरण ने लालू यादव को बैकवर्ड, अल्पसंख्यकों और दलितों के बीच जनता दल के लिए सामाजिक समर्थन को मजबूत करने में मदद की। उन्होंने उच्च जातियों द्वारा राज्य में उत्पीड़ित होने के कारण उनका समर्थन किया। यह पहली बार शूद्रों (बैकवर्ड और दलितों) की राजनीतिक प्रभुत्व को स्थापित करने में सहायक रहा। दलितों के संदर्भ में, लालू प्रसाद यादव ने मुख्यमंत्री के रूप में बिहार में ब्राह्मणवादी जाति व्यवस्था के खिलाफ एक दोधारी तलवार अपनाई। दूसरी ओर, उन्होंने इंदिरा आवास योजना के तहत बजटीय आवंटन की शुरुआत की, जिसे जिला प्रशासन की मदद से लागू और पूरा किया गया। इसके अतिरिक्त, उन्होंने दलितों को बौद्ध धर्म अपनाने के लिए प्रोत्साहित किया, जो अंबेडकर के एजेंडे का मुख्य बिंदु था। उन्होंने बिहार विश्वविद्यालय का नाम डॉ. बाबासाहेब भीमराव अंबेडकर बिहार विश्वविद्यालय रखा, जो भूमिहार जाति के केंद्र में स्थित है। इसके बाद, वह बिहार में दलितों के मसीहा बन गए। अब, यादव, कुर्मी और कोइरी राज्य में अनुसूचित जातियों या दलितों के समर्थन के साथ सत्ता का आनंद ले रहे हैं। वर्तमान में, यदि हम राज्य में दलित समुदाय के मुख्यमंत्री की राजनीतिक भागीदारी का पता लगाएं, तो भोला पासवान शास्त्री और राम सुंदर दास के बाद, जाति “मुसहर” के जितन राम मांझी, नीतीश कुमार के समर्थन से बिहार के अंतिम मुख्यमंत्री बने। लेकिन यह राजनीतिक साझेदारी लंबे समय तक विफल रही और अंततः उन्होंने नेतृत्व के मुद्दों के कारण मुख्यमंत्री पद से इस्तीफा दे दिया।

निष्कर्ष

स्वतंत्रता के बाद, बिहार राज्य में राजनीतिक परिदृश्य में राजनीतिक संरचना, राजनीतिक जागरूकता, राजनीतिक भागीदारी और नीति निर्माण प्रक्रिया में भागीदारी के संदर्भ में तेजी से परिवर्तन आया है। नीति निर्माण प्रक्रिया में पहले दलितों की संख्या बहुत कम थी। यहां तक कि उन्हें उन प्रक्रियाओं में भाग लेने की अनुमति नहीं थी, जहां कुछ नीतियों को लागू किया जाता था, जो कि हाशिए पर पड़े समूहों के “कल्याण” के लिए थीं। लेकिन स्वतंत्रता के बाद, राजनीतिक जागरूकता और आरक्षण के प्रभाव के कारण, वंचित वर्ग के लोगों ने बिहार राज्य से संबंधित कुछ मामलों पर चर्चा में अपनी भूमिका निभाना शुरू कर दिया है। यह भी सत्य है कि आरक्षण नीति ने बिहार में कुछ दलितों की राजनीतिक स्थिति को बढ़ाया है। इसके अलावा, आरक्षण नीति ने अनुसूचित जातियों को भी प्राचीन सामाजिक अपमान और उत्पीड़न से बाहर निकलने में मदद की है और उन्हें राज्य और केंद्र दोनों में सामाजिक-आर्थिक और राजनीतिक गतिविधियों में भाग लेने की सुविधा प्रदान की है। यह दर्शाता है कि दलितों ने राजनीतिक भागीदारी के माध्यम से विभिन्न क्षेत्रों में सशक्तिकरण प्राप्त किया है।

संदर्भ

बारिक, आर. के. (2006). बिहार में भूमि और जाति राजनीति. नई दिल्ली, शिप्रा प्रकाशन।

बेटेल, ए. (1999). सशक्तिकरण. आर्थिक और राजनीतिक साप्ताहिक 34 (10-11): 589-90।

अनुसूचित जातियाँ: एक अंतर-क्षेत्रीय दृष्टिकोण. भारतीय राजनीतिक अर्थशास्त्र पत्रिका 12 (3-4): 367-79।

भारती, आई. (1990). दलितों को नई इज्जत मिली. आर्थिक और राजनीतिक साप्ताहिक 25 (18-19): 980-981।

ब्लेयर, एच. डब्ल्यू. (1980). बिहार में उभरते कुलक और पिछड़ी जातियाँ: 1970 के दशक के अंत में सामाजिक परिवर्तन. आर्थिक और राजनीतिक साप्ताहिक 15 (2): 67-74।

चौहान, ए.पी.एस. और सिंह, के. डी. (1980). बिहार में कृषि आंदोलन की राजनीतिक अर्थव्यवस्था. भारतीय राजनीतिक विज्ञान पत्रिका 65 (7): 521-522।

काँवे, एम. एम. (2000). संयुक्त राज्य अमेरिका में राजनीतिक भागीदारी, तीसरा संस्करण. वाशिंगटन: सीक्यू प्रेस।

फ्रैंको, एफ. (सं.) (2002). दर्द और जागरूकता: बिहार, गुजरात और उत्तर प्रदेश में दलित पहचान की गतिशीलता. नई दिल्ली, भारतीय सामाजिक संस्थान।

ह्यूमन राइट्स वॉच (1999). टूटे लोग: भारत के अछूतों के खिलाफ जाति हिंसा. न्यूयॉर्क, वाशिंगटन और लंदन, ब्रुसेल्स।

जोगदंड, पी.जी. (2003). दलितों का सामाजिक विकास: कुछ प्रचलित प्रवृत्तियाँ. पी.जी. जोगदंड और माइकल, एस.एम. (सं.) में. वैश्वीकरण और सामाजिक आंदोलन: एक मानव समाज के लिए संघर्ष, पृष्ठ 153-62. नई दिल्ली, रावत प्रकाशन।

राजस्थान राज्य के आर्थिक विकास में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश का योगदान

भगवान सहाय सैनी

सहायक आचार्य, अर्थशास्त्र (विद्या संबल योजना) राजकीय महाविद्यालय कटूमर (राजसेस) अलवर (राज.)

सार

राजस्थान राज्य में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश के आर्थिक विकास में उसके योगदान को विश्लेषण करना। यह पत्र विभिन्न क्षेत्रों में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश के प्रभाव को समझने के लिए साकारात्मक और आकलनात्मक दृष्टिकोण प्रदान करेगा। इस शोध पत्र का उद्देश्य औद्योगीकरण और आर्थिक गतिविधियों के मामले में भारत के अग्रणी राज्यों में से एक, राजस्थान के आर्थिक विकास में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (एफडीआई) के योगदान का पता लगाना है। अध्ययन राजस्थान के विभिन्न क्षेत्रों पर एफडीआई के रुझान, पैटर्न और समग्र प्रभाव का विश्लेषण करता है, रोजगार सृजन, बुनियादी ढांचे के विकास, प्रौद्योगिकी हस्तांतरण और समग्र आर्थिक विकास में इसकी भूमिका का मूल्यांकन करता है। मात्रात्मक डेटा विश्लेषण और गुणात्मक केस अध्ययन सहित मिश्रित-तरीकों के दृष्टिकोण को नियोजित करके, अनुसंधान राजस्थान में एफडीआई और आर्थिक विकास के बीच संबंधों की व्यापक समझ प्रदान करना चाहता है।

मुख्य शब्द: राजस्थान राज्य, आर्थिक विकास, प्रत्यक्ष, विदेशी निवेश, योगदान

प्रस्तावना

उत्तरी भारत में राजस्थान जैसे उभरते राज्यों के लिए अपरिचित प्रत्यक्ष सट्टेबाजी प्रत्यक्ष विदेशी निवेश धन का एक बड़ा स्रोत है। राजस्थान अपने संपन्न औद्योगिक और सेवा क्षेत्रों के लिए प्रसिद्ध है, और एफडीआई ने इसकी अर्थव्यवस्था के विस्तार में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। एफडीआई ने राजस्थान के आर्थिक विकास को कैसे प्रभावित किया है, इसकी जांच करने के कई तरीके हैं, जिसमें रोजगार की अधिक संभावनाएं, उत्पादन क्षमता में वृद्धि और तकनीकी हस्तांतरण शामिल हैं। जब अंतर्राष्ट्रीय कंपनियां राजस्थान में निवेश करती हैं, तो वे अपने साथ अत्याधुनिक ज्ञान, प्रबंधन क्षमताएं और नई तकनीक लेकर आती हैं, जो सभी उत्पादन क्षमता को बढ़ाती हैं और रोजगार की संभावनाओं के विस्तार में योगदान करती हैं।

आर्थिक विकास प्रक्रिया में एफडीआई की भूमिका भारत सहित कई देशों में बहस का एक ज्वलंत विषय रही है। एफडीआई विश्व अर्थव्यवस्था के वैश्वीकरण प्रयासों का एक महत्वपूर्ण घटक है। अंतर्राष्ट्रीय उत्पादन की वृद्धि आर्थिक और तकनीकी ताकतों द्वारा संचालित होती है। यह प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (एफडीआई) और व्यापार नीतियों के चल रहे उदारीकरण से भी प्रेरित है।

विशेष रूप से 1990 के दशक से विकासशील देशों में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (एफडीआई) के रूप में निजी पूंजी प्रवाह का प्रचलन आज की दुनिया की एक उत्कृष्ट विशेषता रही है। 1980 के दशक से, बहुराष्ट्रीय निगम (एमएनसी) वैश्वीकरण के संदर्भ में प्रमुख अभिनेताओं के रूप में सामने आए हैं।

इस संदर्भ में, वैश्वीकरण व्यापार और निवेश के माध्यम से भारत जैसे विकासशील देशों को तेजी से आर्थिक विकास प्राप्त करने के लिए एक समानांतर अवसर प्रदान करता है। 1970 के दशक की अवधि में, अंतर्राष्ट्रीय व्यापार एफडीआई की तुलना में अधिक तेजी से बढ़ा, अब तक अंतर्राष्ट्रीय सहयोग के लिए अंतर्राष्ट्रीय व्यापार सबसे महत्वपूर्ण आर्थिक गतिविधि थी।

उदारीकरण और सुधारों के बाद भारतीय बैंकिंग में एक बड़ा बदलाव आया है। उदारीकरण और सुधारों ने भारतीय बैंकिंग क्षेत्र में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश का मार्ग प्रशस्त किया। अब एक दशक से अधिक समय हो गया है जब हमने बैंकिंग में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (FDI) प्राप्त किया है, और इसलिए भारतीय बैंकिंग पर प्रभाव देखना महत्वपूर्ण है।

वर्तमान अध्ययन उदारीकरण के बाद के युग में भारतीय एफडीआई और गैर-एफडीआई बैंकों के प्रदर्शन का विश्लेषण और मूल्यांकन करने के लिए समर्पित है। एफडीआई को एलडीसी के विकास के वित्तपोषण का महत्वपूर्ण स्रोत माना जाता है। भारत में नीति निर्माताओं द्वारा यह सलाह दी गई थी कि एफडीआई के लिए दरवाजे व्यापक रूप से खोल दें, जो कि 'बहुत कम या कोई नकारात्मक पक्ष नहीं' लाने वाला माना जाता है।

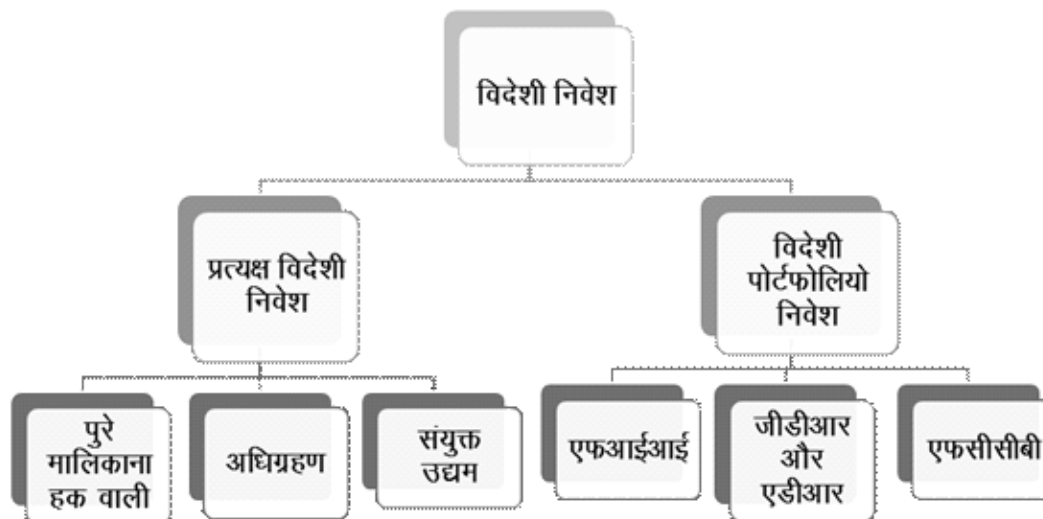
एफडीआई प्रवाह सकल घरेलू उत्पाद की वृद्धि को महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित करता है और इसका प्रभाव भारत में अपेक्षाकृत अधिक है। एफडीआई ने निर्यात को बढ़ावा दिया है और एफडीआई के साथ निर्यात और आयात में वृद्धि के लिए एफडीआई की प्रवृत्ति में कोई महत्वपूर्ण अंतर-देश अंतर नहीं है, लेकिन आनुपातिक रूप से कम है जिसके लिए कोई अंतर-देश अंतर नहीं है।

फर्मों के प्रदर्शन में एफडीआई का अहम योगदान माना जाता है। इसके अलावा, कंपनियों का प्रदर्शन गैर-एफडीआई कंपनियों की तुलना में बेहतर है और हालांकि निर्यात में एफडीआई कंपनियों का योगदान बहुत अच्छा नहीं है और उनकी आयात प्रवृत्ति काफी अधिक है। इस पर चर्चा की गई और अब

एफडीआई प्रतिबंधों को और अधिक विनियमित करने की अनुमति दी गई, उदा। खुदरा व्यापार आदि में एफडीआई की अनुमति देकर भारत में नीति निर्माताओं के साथ-साथ बाहरी पर्यवेक्षक भी एफडीआई से उच्च अपेक्षाएँ रखते हैं। “एफडीआई ने चीन में चमत्कार किया और भारत में ऐसा कर सकता है”।

विदेशी निवेश के प्रकार:-

विदेशी निवेश का वर्गीकरण निवेश के इरादे, निवेश फर्म की दीर्घकालिक या अल्पावधि की प्रतिबद्धताओं की प्रकृति, निवेश के लिए उपयोग किए जाने वाले साधन, सरकार की नीति जिसके तहत निवेश को नियंत्रित किया जाता है और निवेश पर नियंत्रण रखने में प्रबंधन के हितों पर आधारित है। मोटे तौर पर विदेशी निवेश का वर्गीकरण चित्र संख्या 1.1 में प्रदर्शित किया गया है।



आकृति 1.1 विदेशी निवेश के प्रकार

उपरोक्त आंकड़ा विदेशी निवेश के दो प्रमुख माध्यमों पर केंद्रित है जो निवेशकों द्वारा उनकी प्राथमिकताओं और इरादों के आधार पर उपयोग किए जाते हैं। दोनों अवधारणाओं के बीच बुनियादी अंतर नीचे जैसा है।

विश्लेषण और परिणाम

अनुसंधान को आमतौर पर ज्ञान की खोज के रूप में जाना जाता है। इसे किसी विशिष्ट विषय पर प्रासंगिक जानकारी या वैज्ञानिक जांच के लिए वैज्ञानिक और प्रणालीगत खोज के रूप में परिभाषित किया गया है। शोध का उद्देश्य वैज्ञानिक तरीकों और प्रक्रियाओं के अनुप्रयोग के माध्यम से प्रश्नों के उत्तर या छिपी हुई सच्चाई की खोज करना है। अनुसंधान का विशिष्ट उद्देश्य इसमें नई अंतर्दृष्टि प्राप्त करना (खोजपूर्ण अनुसंधान), किसी विशेष व्यक्ति, स्थिति या समूह की विशेषताओं को चित्रित करना (वर्णनात्मक अनुसंधान), उस आवृत्ति को निर्धारित करना जिसके साथ कोई चीज किसी चीज से जुड़ी होती है (नैदानिक अनुसंधान) और चरों के बीच कारण-कारण संबंध की परिकल्पना का परीक्षण करें (परिकल्पना परीक्षण अनुसंधान)।

अनुसंधान के विभिन्न प्रकार होते हैं, जैसे खोजपूर्ण अनुसंधान, वर्णनात्मक अनुसंधान, व्यावहारिक अनुसंधान, मौलिक अनुसंधान, आकस्मिक अनुसंधान, गुणात्मक अनुसंधान, मात्रात्मक अनुसंधान, विश्लेषणात्मक अनुसंधान। वैचारिक अनुसंधान, अनुभवजन्य अनुसंधान, प्रयोगात्मक अनुसंधान आदि, अनुसंधान कार्य में विभिन्न चरण शामिल होते हैं, अनुसंधान समस्या का चयन करना, व्यापक साहित्य सर्वेक्षण, परिकल्पना बनाना, अनुसंधान डिजाइन तैयार करना, नमूना डिजाइन, डेटा संग्रह, डेटा कोडिंग और विश्लेषण करना, परिकल्पना का परीक्षण करने के लिए परिणामों की व्याख्या करना और अंत में रिपोर्ट तैयार करना। अनुसंधान विधियाँ या तकनीकें उन विधियों को संदर्भित करती हैं जिनका उपयोग अनुसंधान कार्यों को करने में करते हैं। जबकि अनुसंधान पद्धति अनुसंधान समस्या को व्यवस्थित रूप से हल करने का एक तरीका है। इसमें विभिन्न चरण शामिल हैं और इसके पीछे का तर्क भी। इसके कई आयाम हैं, अनुसंधान पद्धति का दायरा अनुसंधान विधियों की तुलना में व्यापक है। शोध कार्य में शोध डिजाइन सबसे महत्वपूर्ण कदम है, यह अनुसंधान समस्या को परिभाषित करने और अनुसंधान परियोजना का डिजाइन तैयार करने का कार्य है। एक शोध डिजाइन डेटा के संग्रह और विश्लेषण के लिए स्थितियों या सेटिंग की व्यवस्था है, जिसका उद्देश्य प्रक्रिया में मितव्ययिता के साथ अनुसंधान उद्देश्य की प्रासंगिकता को एकजुट करना है।

यह वैचारिक ढांचा है जिसके भीतर अनुसंधान किया जाता है और यह डेटा के माप, संग्रह और विश्लेषण का एक खाका है। डिजाइन में परिकल्पना और डेटा के अंतिम विश्लेषण और व्याख्या के लिए इसके परिचालन निहितार्थ के संबंध में एक शोधकर्ता की भविष्य की कार्यवाही की रूपरेखा शामिल है। अनुसंधान कार्यों को सुचारू रूप से चलाने और अनुसंधान को यथासंभव कुशल बनाने के लिए अनुसंधान डिजाइन की आवश्यकता होती है। एक अच्छे शोध डिजाइन की विशेषता स्पष्टता, लचीलापन, उपयुक्तता, दक्षता, किफायती और विश्वसनीय है। इसमें अनुसंधान समस्या, डेटा और सूचना संग्रह के लिए प्रक्रिया और तकनीकों, जनसंख्या या ब्रह्मांड के आकार और डेटा प्रसंस्करण और विश्लेषण के तरीकों का स्पष्ट विवरण शामिल है। शोध निर्णयों की दृष्टि से शोध अभिकल्प को निम्नलिखित भागों में वर्गीकृत किया गया है।

राजस्थानराज्य के विभिन्न क्षेत्रों में एफडीआई पर ध्यान केंद्रित करने के इच्छुक हैं। अनुसंधान अवधि के दौरान एफडीआई के प्रवाह का रुझान विश्लेषण एफडीआई के परिदृश्य को प्रस्तुत करने में मदद करेगा और यह एफडीआई को आकर्षित करने में राज्य के प्रदर्शन के प्रति नया और व्यापक दृष्टिकोण देगा। यह द्वितीयक डेटा विश्लेषण और व्याख्या के आधार पर मजबूत सिफारिशें देने में भी मदद करेगा।

वर्ष 2019 से 2024 तक राजस्थानराज्य में चयनित क्षेत्रों में एफडीआई के प्रवाह का अवलोकन किया। राज्य में एफडीआई के प्रवेश के दो मार्ग हैं, स्वचालित मार्ग और सरकारी मार्ग। अध्ययन के उद्देश्य से मार्गवार और समग्र डेटा का विश्लेषण किया। डेटा वित्तीय वर्ष के अनुसार प्रस्तुत किया जाता है। निष्कर्ष निकालने और परिकल्पना का परीक्षण करने के लिए विभिन्न सांख्यिकीय उपकरणों, आरेखों, ग्राफ आदि का उपयोग किया। डेटा विश्लेषण के लिए सारणीकरण, प्रतिशत, माध्य, मानक विचलन, भिन्नता के गुणांक, सहसंबंध और प्रतिगमन विश्लेषण और चलती औसत विधियों का उपयोग किया है। इस अध्याय में प्रत्येक चयनित क्षेत्र में 2019 से 2024 के दौरान एफडीआई के प्रवाह, इसके परिचय और वर्ष, मार्ग और देशवार, डेटा तालिका, ग्राफ, व्याख्या, विश्लेषण और औचित्य को शामिल किया गया है। अनुसंधान अवधि के दौरान एफडीआई के प्रवाह के समग्र डेटा का भी विश्लेषण और व्याख्या की।

तालिका 1 संकेतक चुनें- वैश्विक बाजारों के साथ भारत का एकीकरण

यह तथ्य दिखाता है कि दशकों के संघ के दौरान भारत का व्यापार कैसे विकसित हुआ है, यह सामग्री आयात और निर्यात का प्रतिशत जो GDP में योगदान करता है, समय के साथ बढ़ गया है, जैसा कि सारणी 3 में दिखाया गया है।

वस्त्र निर्यात का हिस्सा वर्ष 2019 में GDP में	2019&20	2020&21	2021&22	2022&23	2023&24
वस्त्र निर्यात का हिस्सा वर्ष 2019 में GDP में	61.47	184.76	226.79	647.749	1878.29
वस्त्र निर्यात का हिस्सा वर्ष 2019 में GDP में	3.3	4.65	5.9	9.66	13.49
वस्त्र निर्यात का हिस्सा वर्ष 2019 में GDP में	3.45	8.04	7.21	11.01	20.87
वस्त्र निर्यात का हिस्सा वर्ष 2019 में GDP में	3.45	8.04	7.21	11.01	20.87
वस्त्र निर्यात का हिस्सा वर्ष 2019 में GDP में	3.45	8.04	7.21	11.01	20.87
वस्त्र निर्यात का हिस्सा वर्ष 2019 में GDP में	3.45	8.04	7.21	11.01	20.87
वस्त्र निर्यात का हिस्सा वर्ष 2019 में GDP में	3.45	8.04	7.21	11.01	20.87
वस्त्र निर्यात का हिस्सा वर्ष 2019 में GDP में	3.45	8.04	7.21	11.01	20.87
वस्त्र निर्यात का हिस्सा वर्ष 2019 में GDP में	3.45	8.04	7.21	11.01	20.87
वस्त्र निर्यात का हिस्सा वर्ष 2019 में GDP में	3.45	8.04	7.21	11.01	20.87

तालिका 2 भारत और वैश्विक अर्थव्यवस्था में एफडीआई प्रवाह

n'k leg	2019&20	2020&21	2021&22	2022&23	2023&24
विश्व	13.35	54.07	207.36	1413.17	1408.54
विकासशील अर्थव्यवस्थाएँ	3.85	7.47	34.76	264.54	437.06
भारत	0.045	0.079	0.237	3.59	21.13
कुल एफडीआई प्रवाह में भारत की हिस्सेदारी (%)	0.34	0.15	0.11	0.25	1.5

सारणी 2 में दिखाई गई है भारत के विश्वभर में विदेशी सीधे निवेश (एफडीआई) प्रवाह का तुलनात्मक विश्लेषण। 2019 में भारत में लाए गए विदेशी सीधे निवेश (एफडीआई) की राशि एक मामूली +45 मिलियन थी। यह राशि वैश्विक अर्थतंत्र में लाए गए कुल एफडीआई का 0.34% और सभी विकसित देशों में लाए गए कुल FDI का 10: से कम को प्रतिष्ठानित करती थी। यहां तक कि विदेशी सीधे निवेश (एफडीआई) का प्रवाह भारत में ने 2022 में मामूली से बढ़कर +79 मिलियन कर दिया, देश का कुल एफडीआई प्रवाह 0.15% तक कम हो गया।

2024 में लिए गए आर्थिक नीति उपायों के परिणामस्वरूप महत्वपूर्ण परिवर्तन हुआ। अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष (आईएमएफ) और उन देशों ने भी भारत की मान्यता की जो निवेश कर रहे थे, उन्होंने भारत की उत्साहपूर्ण इच्छा को सकारात्मक रूप से वैश्विक समाहित की कमी की। इसके सीधे परिणामस्वरूप,

1990 में विदेशी सीधे निवेश (एफडीआई) का प्रवाह US +237 मिलियन तक बढ़ा, जिसमें विश्व एफडीआई प्रवाहों का 0.11% हिस्सा था। उसके बाद से, भारत ने विभिन्न उद्योगों में महत्वपूर्ण विदेशी सीधे निवेश (एफडीआई) को आकर्षित करने में सफल रहा है। 2021 तक, विदेशी सीधे निवेश (एफडीआई) का प्रवाह +3.59 अरब था, जबकि विश्वभर में कुल एफडीआई प्रवाह +1413.17 अरब था, जिसमें उन सभी विकसित अर्थव्यवस्थाएं शामिल थीं, जिन्होंने उस कुल का +264.54 अरब प्राप्त किया था।

जबकि भारत ने अपने मार्गदर्शन प्रयासों को बढ़ाया और खुद को एक निवेश स्थल के रूप में प्रमोट करने के लिए अपने विदेशी सीधे निवेश (एफडीआई) प्रवाह में वृद्धि हुई। भारत ने 2020 में +21.13 अरब की मात्रा में विदेशी सीधे निवेश (एफडीआई) प्राप्त किया, जिसमें विश्वभर में कुल एफडीआई प्रवाहों का 1.5% शामिल था। लेकिन जब व्यापारिक प्रवाहों और उन प्रवाहों की बात आती है जो गरीब देशों को जाते हैं, तो भारत को अभी भी दूसरे देशों के साथ समान माना जाने से पहले बहुत दूर जाना है।

निष्कर्ष

एफडीआई ने भारत और राजस्थान के लोगों के सामाजिक-आर्थिक जीवन में बहुत सारे सकारात्मक बदलाव लाए हैं, लेकिन चूंकि हर सिक्के के दो पहलू होते हैं, इसलिए इसका राज्य की अर्थव्यवस्था पर कुछ नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। इसने सुविकसित शहरों पर ध्यान केंद्रित करके क्षेत्रीय अंतर को चौड़ा किया। इसने उनकी विकास दर और पैटर्न को बदलकर क्षेत्रीय संतुलन को बिगाड़ दिया। इसने विभिन्न क्षेत्रों में लगे लोगों की आय के अंतर को बढ़ा दिया। सेवा क्षेत्र के अंतर्गत आने वाले श्रमिक, कुशल श्रमिक, शिक्षित और प्रशिक्षित श्रमिक अत्यधिक लाभान्वित होते हैं। सेवा क्षेत्र के मजदूर विशेषाधिकार प्राप्त स्थिति में हैं, दूसरी ओर कृषि क्षेत्र के मजदूर दयनीय स्थिति में हैं।

शहरी लोग वैश्वीकरण का आनंद ले रहे हैं और ग्रामीण लोग अपनी स्थानीयकरण पहचान भी खो रहे हैं। राजस्थान में कई क्षेत्र और जिले बाहरी निवेश के जरिये विकास के लाभ से कोसों दूर हैं। नीति निर्माताओं और राज्य सरकार के लिए अब समय आ गया है कि वे अधिक मात्रा में निवेश आकर्षित करने के बजाय एफडीआई की गुणवत्ता, प्रवाह के क्षेत्रीय और क्षेत्रीय विविधीकरण, एफडीआई प्रवाह की राशनिंग को अधिक महत्व दें। अंत में निष्कर्ष निकालना चाहता है कि सरकार और उद्योगपतियों को घरेलू पूंजी जुटाने की गतिविधि में सुधार पर ध्यान केंद्रित करना होगा और एफडीआई को एक उचित सहायक भूमिका के रूप में पेश करना होगा।

संदर्भ

1. देसाई, एम.ए.य.सी.एफ. फॉले और जे. हाइन्स (2005) प्रत्यक्ष विदेशी निवेश और घरेलू पूंजी स्टॉक: एनबीईआर वर्किंग पेपर, संख्या 11075। मैसाचुसेट्स एवेन्यू, कैम्ब्रिज।
2. येपल, स्टीफन आर. (2003) अमेरिका के बाह्य विदेशी प्रत्यक्ष निवेश की संरचना में कौशल बंदोबस्ती की भूमिका, अर्थशास्त्र और सांख्यिकी की समीक्षा।
3. बंगा रश्मी, (2004), “उत्पादकता वृद्धि पर जापानी और अमेरिकी एफडीआई का प्रभाव, एक फर्म-स्तरीय विश्लेषण”, इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली, वॉल्यूम। 39, संख्या 5, जनवरी 2004।
4. ब्रूक्स डगलस एच. और हैल हिल, (2004), “एफडीआई और उसके शासन पर भिन्न एशियाई विचार”, एशियाई विकास समीक्षा
5. केव्स रिचर्ड ई., (1971), इंटरनेशनल कॉर्पोरेशनय विदेशी निवेश का औद्योगिक अर्थशास्त्र। इकोनॉमिका, हार्वर्ड यूनिवर्सिटी फरवरी 1971।
6. चौधरी सुदीप, (1995), गवर्नमेंट, ट्रांसनेशनल्स एंड न्यू इकोनॉमिक पॉलिसीज सिंस 1991, इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली, वॉल्यूम। 30, मई 1995.
7. देशपांडे सी.एस., (1999), राजस्थानरुझानों और संभावनाओं में निवेश, मासिक आर्थिक डाइजैस्ट, राजस्थानआर्थिक विकास परिषद, वॉल्यूम। 29, संख्या 11, सितंबर 1999।
8. धर विश्वजीत और सैकत सिन्हा रॉय, (1996), एफडीआई और विकासशील देशों के अनुभव का घरेलू बचत निवेश व्यवहार, इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली, वॉल्यूम। 31 नंबर 35.
9. फडुनवीस मृणालिनी, (2000), भारत में उदारीकरण और प्रत्यक्ष विदेशी निवेश, अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा बाजार और भारतीय आर्थिक सुधार, कनिष्क प्रकाशक, नई दिल्ली।
10. घोष जयति, (1991), भ्रम के बिना विदेशी निजी निवेश, इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली, वॉल्यूम। ग्टए, क्रमांक-42, अक्टूबर 1991

भारतीय साहित्य में किसान पक्षधरता एवं आंदोलन

डॉ० नूरुद्दीन मुहम्मद परवेज

हिन्दी विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

साहित्य अपने युग और समाज से गहरे जुड़ा होता है। स्वाभाविक तौर से उससे अपेक्षा होती है कि वह अपने युग और समाज के महत्वपूर्ण सवालों से टकराए, उन्हें रचनात्मक अभिव्यक्ति दें। प्रसिद्ध मार्क्सवादी समीक्षक राल्फ फॉक्स ने कभी यह सवाल किया था- “क्या कोई साहित्यकार इस दुनिया की समस्याओं से जिसमें कि वह रहता है, बेखबर रह सकता है? क्या वह अपने देश की स्थिति की तैयारियों के शोर-शराबे की ओर से अपना कान बंद कर सकता है? क्या वह अपने देश की स्थिति की ओर से अपनी आँखें मूँद सकता है? क्या वह अपना मुँह बंद रख सकता है जबकि चारों ओर विभीषिका मँडरा रही हो और व्यक्तिगत लालसा को अक्षुण्ण रखने के लिये वचनबद्ध राज्य के नाम पर दो जून की रोटियों से वंचित किया जा रहा हो।” आशय स्पष्ट है, कोई भी साहित्यकार अपने आसपास की हलचलों से बेखबर होकर नहीं रह सकता। इस दृष्टि से किसानों की समस्याओं के प्रति आज के साहित्यकारों की उदासीनता कम विस्मयकारी नहीं है। इन साहित्यकारों की उदासीनता का इससे बड़ा प्रमाण और क्या होगा कि किसानों की आत्महत्या जैसे संवेदनशील विषय पर भी इधर भारतीय साहित्यों में- हिन्दी मराठी बांग्ला, तेलगू पंजाबी, उड़िया, कन्नड़, कश्मीरी, मलयालम इत्यादि में ऐसा कोई साहित्य नहीं आया जिसने पाठकों- समीक्षकों का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किया हो। यह स्थिति निश्चय ही अत्यंत शोचनीय है।

किसान भारतीय समाज और संस्कृति की रीढ़ रहा है, इसलिए स्वाभाविक है कि उसकी आशाएँ-आकांक्षाएँ, सुख-दुःख उपन्यास में प्रमुखता से दर्ज हों। प्रेमचंद, रेणु, राहुल, नागार्जुन, पाश, चेराबंडा राजू, को कू, के०वी० रेड्डी, सत्यमूर्ति, निखिलेश्वर, वरवर राव, ज्वालामुखी, अशोक टंकसाला कवि सच्चिदानंदन, कडम्म निट्टारामकृष्ण, के०जी० शंकर पिल्लई, आट्टर रवि वर्मा, बालचंद्रन चुल्लीकाड, ए० अय्यपन, एन० सुकुमारन, यू०जी० जयराज और सिविक चंद्रन आदि ऐसे ही रचनाकार थे जिन्होंने इस सच्चाई को बहुत पहले पहचान लिया था और किसान जीवन को अपने साहित्य का आधार बनाया था। आज जबकि साहित्य में किसानों की उपेक्षा हो रही है, जरूरत है इस जीवंत परंपरा को फिर से स्थापित करने की। इससे न सिर्फ हमारी विरासत सुदृढ़ होगी बल्कि वर्तमान परिदृश्य में भी बदलाव आयेगा। जब भी गाँव, किसान की बात की जाती है, तो हिन्दी साहित्य के रचनाकार प्रेमचंद के साहित्य में वर्णित किसान की याद आती है और यह सोचने को विवश हो जाता हूँ कि क्या गाँव व किसानों के विकास के बारे में कुछ सोचा जा रहा है या सिर्फ ढिंढोरा ही पीटा जाता है।

समाज की जो चिंताएँ उस समय थीं आज और भी वीथत्स रूप में हमारे समक्ष प्रस्तुत हैं। हालांकि समाज पिछले दो दशकों से वहीं का वहीं नहीं है, तीव्रता से बदल रहा है, नए युग का नया अर्थशास्त्र आमूल चूल बदल गया है। यह अर्थशास्त्र हमारे जीवन को नियंत्रित, संचालित व रूपायित भी करता है। बदलाव की गति की तीव्रता भी अपने आप में ऐसी मजबूत शक्ति के रूप में उभरी है, जहाँ मानवता व संवेदना को एक सिरे से खारिज करती है, यही कारण है कि सांप्रदायिकता, संकीर्णतावाद और साम्राज्यवाद तीनों भयावह रूप ले रहे हैं।

भारतीय सामाजिक जीवन में ‘आजादी के मायने क्या? यह कोई किसान क्या जाने। वे तो आज भी दाने-दाने को मोहताज हैं। खलिहान में फसल आने के बाद भी खुशी नहीं है क्योंकि सब तो महाजनों का है। प्रेमचंद ने किसानों की दुर्दशा को उजागर करते हुए लिखा है कि “जेठ के दिन हैं। अभी तक खलिहान में ही तुल कर महाजनों और कारिंदों की भेंट हो चुका है और जो कुछ बचा है वह भी दूसरों का है, भविष्य अंधकार की भाँति उनके सामने है। उन्हें कोई रास्ता नहीं सूझता। उनकी सारी चेतनाएँ शिथिल हो गयी हैं। सामने जो कुछ मोटा-झोटा आ जाता है, वह खा लेते हैं, उसी तरह जैसे इंजन कोयला खा लेता है उनके बैल चूनी चोकर के बगैर नांद में मुँह नहीं डालते; मगर उन्हें केवल पेट में कुछ डालने को चाहिए, स्वाद से उन्हें कोई प्रयोजन नहीं। उनकी रसना मर चुकी है। उनके जीवन में स्वाद का लोप हो गया है। उनके धेले-धेले के लिए बेइमानी करवा लो मुट्ठी भर अनाज के लिए लाठियाँ चलवा लो। पतन की यह इंतहा है; जब आदमी शर्म और इज्जत को भूल जाता है।” प्रेमचंद आजादी की लड़ाई में आर्थिक-सामाजिक सवालों को जोड़ना चाहते थे, सामंती मानसिकता से अलग देश और जनता को आधुनिक संस्कार देना चाहते थे। शासक वर्ग ने आजादी मिलने के बाद भी आर्थिक-सामाजिक सवालों को हाशिए पर रखा क्यों कि पिछड़ी हुई, अज्ञानी गरीब और जाहिल जनता के चलते ही, वे अपनी कुर्सी को बरकरार रख सकते थे। वही उन्होंने किया। सांप्रदायिक दंगे व रक्तपात आज के जीवन की वास्तविकताएँ हैं।¹

“अर्थशास्त्र में दो शब्द हैं- ‘किसान’ (पेजेंट) और ‘खेतिहर (फार्मर)। यद्यपि आम बोलचाल में उनमें फर्क नहीं किया जाता फिर भी वे एक दूसरे के उसी तरह पर्यायवाची नहीं हैं जैसे ‘मूल्य’ और ‘कीमत’। किसी भी गंभीर और वैज्ञानिक विमर्श में इनमें अंतर करना बेहद जरूरी है। किसान मानव सभ्यता के साथ तब से जुड़ा है, जबकि खेतिहर का आगमन पूँजीवादी उत्पादन अर्थात् बाजार में उत्पादन बेचकर मुनाफा कमाने की प्रवृत्ति के हावी होने के साथ हुआ। साधारणतः किसान का अपनी जोत पर अधिकार होता है और वह अपने परिवार के सदस्यों या रिश्तेदारों के श्रम के आधार पर कृषि कार्य सम्पन्न करता है। उसके उत्पादन का उद्देश्य अपने परिवार की उपभोग-संबंधी आवश्यकताओं को पूरा करने के साथ मवेशियों का पालन व अगली बुवाई के लिए बीज का प्रबंध करना होता है, जबकि 19वीं सदी के अंतिम दशकों में पैसेवालों ने कृषि भूमि खरीदकर भाड़े के मजदूरों के आधार पर बाजार के लिए उत्पादन करना शुरू किया। भ्रष्टाचारी ब्यूरोक्रैट्स, नौकरीपेशा व अन्य लोगों ने अचल संपत्ति के रूप में जमीन खरीदकर जमींदार के रूप में समाज के समक्ष उभरे।

“आजादी के बाद भूमि सुधार कानूनों में छोड़े गए चोर-दरवाजों का इस्तेमाल कर अनेक पूर्व जमींदारों, ताल्लुकदारों और जागीरदारों ने अपने को बड़े खेतिहरों में बदल दिया। छोटे विशेषकर सीमांत किसानों ने खेती से गुजारा न होने की स्थिति में शहर का रुख किया और उनकी जमीन ले दूसरे खेतिहर आने लगे।”

किसानों की समस्याओं पर विमर्श करते समय प्रेमचंद के समक्ष प्रस्तुत होना पड़ेगा, क्योंकि उनके किसान कागज पर उतारे गए, काल्पनिक किसान नहीं हैं, अपितु भारत देश की धरती पर रोते हैंसते बोलते-बतियाते किसानों का चित्रण है। किसानों की स्थिति पर चिंता जाहिर करते हुए वे लिखते हैं कि “वही जो राष्ट्र के अन्न और वस्त्रदाता हैं भरपेट अन्न को तरसते हैं, जाड़े-पाले में ठिठुरते हैं और मक्खियों की तरह मरते हैं। आप किसी गाँव में निकल जाइये, आपको खोजने से भी हृष्ट-पुष्ट आदमी न मिलेगा। न किसी के देह पर माँस है न कपड़ा। मानो चलते-फिरते कंकाल हों। उनकी जिंदगी में खुशहाली आये, यही बात प्रेमचंद के जेहन में थी, जिसकी उपलब्धि के लिए वे जीवन पर्यंत पूरे समर्पण भाव से साहित्य-सृजन करते रहे। आज भी हिन्दुस्तान के कोने-कोने से यह खबर आती रहती है कि किसानों की स्थिति दयनीय है कि, वे कर्ज के बोझ तले दबे हुए हैं कि, वे अपने परिवार का पेट भरने में असमर्थ हैं कि अन्न उगानेवाले ही आज अन्न के लिए मोहताज हैं और दर-दर की ठोकें खा रहा है। इस तरह की खबरों से अखबार के पृष्ठ भरे रहते हैं कि अमुक राज्य के किसान भुखमरी से तंग आकर आत्महत्या के लिए प्रेरित हो रहे हैं। उस समय जो स्थिति थी किसानों की, आज भी बहुत हद तक वही की वही है। इसलिए यह कहा जा सकता है कि “प्रेमचंद आधुनिक हैं वे अपने समय की समस्याओं के लिए समाधान ढूँढने न वेदों में जाते हैं, न पुराणों में, न दर्शन में जाते हैं न इतिहास में। वे अपने समय की समस्याओं के समाधान अपने समय के बीच से ही लाते और ढूँढते हैं। आनेवाले समय को वे मजदूर-किसानों का समय घोषित करते हैं, वे न राम-राज्य में पनाह लेते हैं न गीता में। वे अपने समय से मुखातिब होते हैं उसी में जीते और संघर्ष करते हैं।”⁶ “इसलिए तो ‘होरी के जीवन की अनुभूतियों से प्रेमचंद ने अपनी अनुभूतियों को ऐसा एकाकार कर लिया था कि उसके जीवन की अंतिम बेला स्वयं प्रेमचंद के जीवन की अंतिम बेला में रूपांतरित हो गयी थी।

प्रेमचंद कहते हैं कि “इस महाजनी सभ्यता ने दुनिया में जो नयी रीतियाँ-नीतियाँ चलायी हैं, उनमें सबसे अधिक रक्त-पिपासु यह व्यवसाय वाला सिद्धांत है। मियाँ-बीबी में बिजनेस, गुरु-शिष्य में बिजनेस, बाप-बेटे में बिजनेस, सारे मानवीय, आध्यात्मिक और सामाजिक नेह-नाते समाप्त। आदमी-आदमी के बीच बस कोई लगाव है, तो बस बिजनेस का। लानत है इस बिजनेस पर, दिखावे की आवश्यकता हर एक की गरदन पर सवार है, कोई हिल नहीं सकता।”⁷ होरी की मृत्यु और किसानों की आत्महत्या समाज और राजनीति पर गंभीर चिंतन और विमर्श के लिए हमें बाध्य करती है।

नागार्जुन ने भी शोषितों-पीड़ितों, जिसमें किसान-मजदूर शामिल हैं, की मुक्ति के लिए साहित्य रचे हैं। इस वर्ग के साथ उनकी वैचारिक प्रतिबद्धता स्पष्ट है। इसकी घोषणा करते हुए वे लिखते हैं-

“प्रतिबद्ध हूँ, जी हाँ, प्रतिबद्ध हूँ

बहुजन समाज की अनुपल प्रगति के निमित्त ⁸

नागार्जुन का यह ‘बहुजन समाज’ इस देश का बहुसंख्यक किसान मजदूर है। वह किसान मजदूर जो सदियों से शोषित-पीड़ित रहा है और जो आज भी मुक्ति की राह देख रहा है। इस दृष्टि से इस वर्ग के साथ उनकी गहरी प्रतिबद्धता बेहद प्रशंसनीय है उनके संबंध में रोचक तथ्य यह है कि किसानों मजदूरों से उनकी प्रतिबद्धता उनके साहित्य तक सीमित नहीं है बल्कि वह उनके सार्वजनिक जीवन में भी दिखायी देती है। एक सक्रिय राजनीतिक, सामाजिक कार्यकर्ता के रूप में विभिन्न आंदोलनों से न सिर्फ जुड़ना बल्कि जरूरत पड़ने पर जेल तक की यात्रा करना उसकी इसी प्रतिबद्धता के ज्वलंत उदाहरण हैं।

नागार्जुन के उपन्यासों में किसानों के ऐतिहासिक शोषण और दमन की बड़ी मार्मिक अभिव्यक्ति हुई है। उनके किसान इस देश के उन किसानों का प्रतिनिधित्व करते हैं जो या तो भूमिहीन श्रमिक हैं या फिर छोटी जोत वाले गरीब किसान। उल्लेखनीय है कि इस देश में बड़ी आबाद इन्हीं किसानों की है। “एक आकलन के अनुसार 85 प्रतिशत से अधिक ग्रामीण परिवार या तो भूमिहीन, उपसीमांत, सीमांत किसान हैं या छोटे किसान हैं।”⁹ ध्यातव्य है कि नागार्जुन का आदर्श चरित्र ‘बलचनमा’ किसानों के इसी वर्ग से आता है। उसके पास जमीन नहीं के बराबर है और 14 वर्ष की उम्र में वह मालिकों (जमींदारों) की बेगारी करने को बाध्य हो जाता है। नागार्जुन के शब्दों में वह ‘आधा किसान आधा मजदूर’ है। कहना न होगा कि ऐसे ही किसान शोषण के सर्वाधिक शिकार रहे हैं। नागार्जुन के उपन्यासों में ऐसे अनेक संदर्भ विद्यमान हैं जो इन गरीब किसानों के शोषण व दमन की करुण कहानी कहते हैं। किसानों के सशक्त प्रतिरोध का बड़ा दिलचस्प नमूना ‘वरुण के बेटे’ उपन्यास में भी दिखायी देता है। यह लड़ाई वस्तुतः मछुओं की है, जिन्हें नागार्जुन किसानों से अलग नहीं मानते।

नागार्जुन का मानना है कि किसानों के संघर्ष की सफलता उनकी मजबूत एकता पर निर्भर करती है। इसलिए जरूरी है कि किसानों के बीच वर्गीय हित के आधार पर मजबूत एकता कायम हो। इस तरह की एकता के अनेक उदाहरण उनके उपन्यासों में देखने को मिलते हैं। उनके किसान जाति, धर्म यहाँ तक कि लिंग-भेद से भी मुक्त हैं। ‘किसान सभा’ से जुड़नेवाले उनके किसान सभी जातियों, धर्मों के स्त्री-पुरुष हैं। जाहिर है, इसी तरह की संगठित एकता किसानों की ताकत का आधार हो सकती है। आज किसान यदि कमजोर दिख रहे हैं जो इसका बड़ा कारण है उनके बीच एकता का अभाव। इस बात का एहसास नागार्जुन को भी हो गया था कि किस प्रकार बढ़ते जातिवादी संगठन किसानों की एकता पर बुरा असर डाल रहे हैं। ‘वरुण के बेटे’ उपन्यास का मार्क्सवादी किसान नेता मोहन माँझी कहता है; मैथिली महासभा, राजपूत महासभा, यादव महासभा, दुसाध महासभा आदि जो भी सांप्रदायिक संगठन हैं, सभी का बायकाट होना चाहिए। ये स्वार्थी लोगों के संगठन हैं।¹⁰ ‘मोहन माँझी’ का यह कथन आज और अधिक प्रासंगिक हो गया है। जाति आधारित संगठनों के बढ़ने से किसानों की एकता कैसे प्रभावित हो रही है, यह बताने की जरूरत नहीं है। आज जरूरी है कि किसानों में मजबूत एकता कायम हो जो जाति आधारित संगठनों के कमजोर हुए बिना संभव नहीं है।

हिन्दी के कवि ‘धूमिल’ की ‘पटकथा’ कविता में इतनी ऊर्जा के साथ नई दिशा के स्वतः स्फूर्त बोध का संकेत आकस्मिक नहीं है। आंध्र, बिहार, उत्तर प्रदेश, पंजाब, केरल, असम और उत्तर-पूर्व के क्षेत्र में तड़ित गति से किसान आंदोलन भड़क उठे। बांग्ला देश (उस समय पूर्व पाकिस्तान), नेपाल तथा लंका की राजनीति में भी इसके प्रभाव से क्रांतिकारी तत्त्व ने प्रवेश किया। उस दौर की बेहतरीन युवा-प्रतिभाएँ स्कूल कालेज छोड़कर किसान आंदोलन में शरीक

होने गाँव जाने लगी थी। कृषि क्रांति के नारों से शहरों की दीवारें भर गई थीं। नई जनवादी क्रांति के जलजले ने झूठ का उत्पादन और प्रचारवाले बुर्जुआ प्रचार-माध्यमों को एक हद तक पंगु बना दिया था। इस महान किसान संघर्ष ने शोषित पीड़ित जनता के भीतर से इतनी भारी ऊर्जा का विस्फोट किया लगता था कि अब क्रांति आसन्न है, अब इसे रोका नहीं जा सकता।

बांग्ला, तेलुगू, मलयालम, हिन्दी, पंजाबी और मराठी इन छः भाषाओं के साहित्य का कायापलट हो गया। इनके अलावा असमिया, उत्तरपूर्वी क्षेत्र की भाषा कश्मीरी, उड़िया तथा कन्नड़ पर भी इसका प्रभाव पड़ा। नेपाली के साहित्य में क्रांतिकारी बदलाव आया। अनेक पुराने प्रगतिशील कवियों की रचनात्मकता फिर से जाग उठी और सबसे महत्वपूर्ण यह कि इन कई भाषाओं में लेखकों की एक नई और प्राणवान पीढ़ी अस्तित्व में आई। इस पीढ़ी के क्रांतिकारी कवियों लेखकों में अधिकांश किसानों और मजदूरों के आंदोलन में सीधे शरीक हुए। कइयों ने जनता की मुक्ति के लिए कलम और बंदूक के साथ लड़ते हुए अपने प्राणों की बलि दी।

पंजाबी के सारे चर्चित नए कवि इस आंदोलन के असर में थे। तत्कालीन संघर्ष के मिजाज की पहचान 'पाश' की कविता 'हम लड़ेंगे साथी' में लिखते हैं-

हम लड़ेंगे साथी उदास मौसम के लिए

हम लड़ेंगे साथी गुलाम इच्छाओं के लिए

हम चुनेंगे साथी जिंदगी के टुकड़े

.....

बंदूक न हुई तो तलवार होगी

तलवार न हुई तो लड़ने की जरूरत होगी

और हम लड़ेंगे साथी

हम लड़ेंगे कि लड़ने के बगैर कुछ नहीं मिलता

हम लड़ेंगे कि अब तक लड़े क्यों नहीं।।

अमरजीत चंदन, पाश, लालसिंह दिल, सुरजीत पातर, संतराम उदासी गुरुशरण आदि तमाम कवि गीतकार और नाटककार इस आंदोलन की देन रहे हैं। हिन्दी में चल रहा अकविता और अकहानी का अराजक आंदोलन धराशायी हो गया और कुछ को छोड़कर सार अकवि और अकहानीकार रचना जगत से गायब हो गए। धूमिल, आलोक धन्वा, कुमार विकल, लीलाधर जगूड़ी, आदि कवियों की रचनाओं में अंतर्वस्तु और प्रभाव की दृष्टि से बुनियादी बदलाव आया, जिसके स्रोत की ओर संकेत करते हुए 'गोली दागो पोस्टर' में आलोकधन्वा ने लिखा-

यह गोली दागने की समझ है

जो तमाम कलम चलाने वालों को

तमाम हल चलाने वालों से मिल रही है।

काशीनाथ सिंह, महेश्वर, विजयकांत, नीरज सिंह आदि अनेक कथाकार इस आंदोलन के पक्ष में हो गए और कहानी लेखन में एक नई शक्ति का उदय हुआ। प्रेमचंद के बाद पहली बार किसान फिर अपने बिवाई फटे पैर और सख्त मुट्टियों के साथ साहित्य की जमीन पर आया।

बांग्ला में रचनाकारों की एक नई पीढ़ी का उदय हुआ और अकविता के समानांतर चल रहा वहाँ का 'क्षुधित पीढ़ी' आंदोलन ठप पड़ गया। समीर राय, सृजन सेन, अजित मुखोपाध्याय, द्रोणाचार्य घोष आदि युवा कवियों की रचनाएँ किसान-क्रांति का जलता दस्तावेज बन गईं। 'प्रियतमासु' शीर्षक कविता में सृजन सेन ने लिखा-

उसके बाद एक दिन चौंक कर देखा

धान के खेतों के सीने में धधकता दावानल

मेड़ों पर खून की बौछार

तुमने देखा- धान के पत्ते लाल हैं

मैंने देखा- धान की बालियाँ लाल हैं

हमने देखा- आग-सा धधकता किसान का कलेजा

.....

मुझे लगा यादगार झूठी है, प्यार झूठा है

सच

आज किसान के कलेजे में

धधकते आक्रोश में हैं।

तेलुगू में आधुनिक कविता के जनक महाकवि श्री श्री नए क्रांतिकारी आंदोलन के समर्थन में उठ खड़े हुए। अकविता और क्षुधित पीढ़ी जैसा तेलगू का दिगम्बर कवलय आंदोलन खत्म हो गया और एक-दो को छोड़कर उसके सारे कवियों ने इस आंदोलन से जुड़कर अपना क्रांतिकारी पुनः संस्कार किया। चेराबंडा

राजू, को कू, के०वी० रेड्डी, सत्यमूर्ति, निखिलेश्वर, वरवर राव, ज्वालामुखी, अशोक टंकसाला आदि, अनेक नए-पुराने कवि लेखकों ने क्रांतिकारी साहित्य के विकास के लिए संगठित आंदोलन चलाया। उस समय कविता और नाटक की क्रांतिकारी शुरुआत महान क्रांतिकारी और जन-कलाकार सुब्बाराव पाणिग्रही ने की। इस मुक्ति योद्धा कलाकार ने संघर्ष के दौरान अपनी शहादत दी, लेकिन इनके द्वारा निर्देशित पथ पर चलकर गद्दर जैसे सृजनशील गीतकारों तथा नाट्यकर्मियों ने आज आंध्र के सांस्कृतिक मंच पर जनवादी सांस्कृतिक आंदोलन को स्वीकृत और प्रभावी तथ्य बना दिया है। यह जनता के साथ घुल-मिल जाने से ही संभव हुआ है। जनता को समझने और उसकी प्रश्नाकूल चेतना को स्वर देने का सबूत चेराबंडा राजू के लिए एक लोकप्रिय गीत की ये पंक्तियाँ देती हैं-

पर्वतों को तोड़कर पत्थरों को फोड़कर
बनाई योजनाएँ ईंट लोह से जोड़कर
श्रम किसका है?
धन किसका है?
जंगलों को काटकर धरती को जोतकर
फसलें उगाईं स्वेद लहरों से सींचकर
भात किसका है?
माड़ किसका है?

इसी तरह मलयालम में आधुनिकतावादी और अराजकतावादी साहित्य प्रभावहीन हो गया और अनेक नए-पुराने कवि लेखकों ने जनवादी सांस्कृतिक धारा को फिर से उभारा। इनमें से कुछ प्रमुख नाम ये हैं- कवि सच्चिदानंदन, कडम्म निट्टारामकृष्ण, के०जी० शंकर पिल्लई, आट्टर रवि वर्मा, बालचंद्रन चुल्लीकाड, ए० अय्यपन, ए० सुकुमारन, यू०जी० जयराज और सिविक चंद्रन।

मराठी के दलित साहित्य-आंदोलन में किसान-आंदोलन का ताप महसूस किया जा सकता है। नामदेव ढसाल, राजा ढाले, दया पवार आदि का लेखन किसान-आंदोलन के प्रभाव में एक नया अर्थ और विस्तार पाता है, जो जाति की संकीर्ण विचारधारा से संभव नहीं है। दलित साहित्य में वर्ग-चेतना का विकास हुआ है, हालांकि जाति-चेतना अभी भी एक धारा के रूप में मौजूद है।

इसके अलावा उड़िया, उर्दू, कन्नड़ और कश्मीरी में इससे प्रेरित लेखन की शुरुआत हो चुकी है। मणिपुर, नागालैंड और मिजोरम में चल रहे राष्ट्रीय मुक्ति के आंदोलन और उसके साथ विकसित हो रहे साहित्य पर भी क्रांतिकारी किसान-आंदोलन की सफ़ट छाया देखी जा सकती है। मणिपुर के कवि प्रकाश सिंह की रचनाएँ क्रांतिकारी सृजन की मिसाल बन गई हैं। इसने प्रेमचंद के बाद पहली बार भारतीय समाज की रीढ़ किसान जनता को साहित्य के केंद्र में ला दिया और रचना, विचार तथा व्यवहार के स्तर पर उस अंतर्विरोध को हल करने के लिए फिर से प्रेरित किया, जिसे हल किए बिना हमारा समाज आगे नहीं बढ़ सकता। इस आंदोलन ने साहित्य पर प्रतिक्रियावादी और संशोधनवादी विचारों के प्रभाव को एक झटके के साथ तोड़ दिया और मजदूर-वर्ग की क्रांतिकारी विचारधारा को स्थापित किया। इसने आम जनता और साहित्य सृजन के बीच बढ़ती दरार को पाटने में मदद की। इसने लोक साहित्य और कला की ओर रचनाकारों का ध्यान खींचा और नए रचनाओं को लोकप्रिय बनाने के लिए प्रेरित किया।

संदर्भ-सूची

1. उपन्यास और लोक जीवन: राल्फ फॉक्स, पृ० 15
2. तद्भव, सं० अखिलेश, अंक 11, अगस्त 2004
3. गुप्ता, डॉ० सुशीला, 'प्रेमचंद की रचना संसार (पुनर्मूल्यांकन)', हिंदुस्तानी प्रचार सभा प्रकाशन, प्रथम संस्करण, पृष्ठ-176
4. बहुवचन, सं० प्रो० ए० अरविन्दाक्षन, अंक 26-27 (संयुक्तांक), पृ० 72
5. गुप्ता, डॉ० सुशीला, 'प्रेमचंद की रचना संसार (पुनर्मूल्यांकन)', हिंदुस्तानी प्रचार सभा प्रकाशन, प्रथम संस्करण, पृष्ठ-प्रस्तावना।
6. गुप्ता, डॉ० सुशीला, 'प्रेमचंद की रचना संसार (पुनर्मूल्यांकन)', हिंदुस्तानी प्रचार सभा प्रकाशन, प्रथम संस्करण, पृष्ठ- 37
7. गुप्ता, डॉ० सुशीला, 'प्रेमचंद की रचना संसार (पुनर्मूल्यांकन)', हिंदुस्तानी प्रचार सभा प्रकाशन, प्रथम संस्करण, पृष्ठ- 74
8. नागार्जुन की प्रतिनिधि कविताएँ- पृ० 15
9. समयांतर-पी० साईनाथ, पृ० 13
10. वरुण के बेटे: नागार्जुन, पृ० 31

धर्मवीर भारती कृत उपन्यास 'गुनाहों का देवता' एवं 'सूरज का सातवां घोड़ा': एक अनुशीलन

कृष्ण देव

असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, एस आर के (पीजी) कॉलेज फिरोजाबाद, उ०प्र०

धर्मवीर भारती स्वातंत्र्योत्तर युग के लब्ध प्रतिष्ठ साहित्यकार हैं। इनकी रचनाओं में बहुआयामी प्रतिभा और विलक्षण अभिव्यक्ति क्षमता का मणिकांचन योग है। भारती की कृतियों की संख्या अधिक नहीं है फिर भी गुणात्मक वैशिष्ट्य की अलग प्रत्यभिज्ञेयता रहती है। इनका कथा साहित्य पाठकों के हृदय को अनुरजित करता हुआ, उन्हें सोचने पर विवश कर देता है। धर्मवीर भारती ने केवल दो उपन्यासों को लिखकर परम्परा एवं नवीन दृष्टि का सम्यक् परिचय दिया। धर्मवीर भारती के दोनों उपन्यास 'गुनाहों का देवता' तथा 'सूरज का सातवां घोड़ा' अत्यधिक प्रसिद्धि को प्राप्त कर चुके हैं, पहला अपनी आध्यात्मिक मनोरम एवं करुणा-सजल प्रेमकथा के कारण और दूसरा नितान्त नूतन शिल्प के कारण। एक नहीं, अनेक सुसंस्कृत रुचि वाले सहृदय पाठकों को कहते सुना गया है कि उन्होंने जितनी बार 'गुनाहों का देवता' को पढ़ा, हर बार आँसुओं के रस में डूब गये। आज के युग में जब उपन्यास के कथानक-सौष्ठव एवं रमणीयता के गुण निकलते जा रहे हैं और वह केवल यथार्थ जीवन का विशुद्ध चित्र सा बनता जा रहा है, तब भारती के इन उपन्यासों को देखकर सन्तोष प्राप्त होता है। उनके उपन्यास नवीनता, सरसता और भावुकता की त्रिवेणी हैं। भारती के इन मात्र दो ही उपन्यासों में चिर-जाग्रत, चिर-निर्माणशील कल्पना, देशकाल या युगसत्य के प्रति सतर्कता और साथ ही अपनी भारतीय परम्परा का ज्ञान एवं उसमें निहित शाश्वत सत्य एवं कल्याण को आयत्त करने का आग्रह है।

यशस्वी कथाकार धर्मवीर भारती ने अपने प्रसिद्ध उपन्यासों (गुनाहों का देवता, सूरज का सातवां घोड़ा) के द्वारा अत्यधिक ख्याति अर्जित की है, इनके कथा साहित्य में परम्परागत मूल्यों और आधुनिक भौतिकतावादी मूल्यों का द्वन्द्व स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है।

'गुनाहों का देवता' सन् 1949 ई० में धर्मवीर भारती द्वारा रचित एक दुःखान्त प्रेमकथा है। यह उपन्यास युवा मानस के ऐकान्तिक प्रेम की सफल अभिव्यक्ति है, जिसमें नायक स्वयं वासना एवं माँसलता के समुद्र में गोते खाता रहता है और उसकी प्रेमिका उसके ही समक्ष आदर्श प्रेम की वेदी पर बलि चढ़ जाती है। 'गुनाहों का देवता' का नायक चन्दर (चन्द्रकुमार कपूर) प्रयाग विश्वविद्यालय में प्रथम श्रेणी का विद्यार्थी रहा है और अब रिसर्च स्कॉलर है। अपनी प्रतिभा के कारण वह केवल विश्वविद्यालय का ही नहीं, वरन् अपने वरिष्ठ अध्यापक डॉ० शुक्ला का भी प्रिय पात्र बन जाता है। उसकी सज्जनता, नम्रता एवं शिष्टता उसे डॉ० शुक्ला के परिवार का भी प्रिय बना देती है। डॉ० शुक्ला की एकमात्र कन्या सुधा आठवीं कक्षा से ही चन्दर के स्नेह शासन में रही है और वह अनायास उसके अनुराग में रंग जाती है। चन्दर के साथ हँसते-खेलते, लड़ते-झगड़ते, रीझते-खीझते, उसके दिन बीतते हैं। उसका सम्पूर्ण हृदय, सारा व्यक्तित्व चन्दरमय हो जाता है। चन्दर भी सुधा को बहुत प्यार करता है और डॉ० शुक्ला एवं सुधा के निश्छल विश्वास एवं सहज स्नेह से एक गौरव का अनुभव करता हुआ अपने प्रेम को बहुत ऊँचाई पर रखता है। जाति व्यवस्था, कुल मर्यादा, विवाह सम्बन्ध आदि के विषय में डॉ० शुक्ला के विश्वास पुराने हैं। सुधा के विवाह की बात चलती है तो वह इसका बड़ा विरोध करती है, किन्तु चन्दर की दृष्टि में प्रेम केवल प्रणय, विवाह या तृप्ति नहीं अपितु आत्मा की वस्तु है, जिसे केवल मन के स्तर पर पाया जा सकता है, तन के स्तर पर नहीं। सच्चा प्रेम त्यागरूपी होता है और अपनी इसी त्यागमयी एवं आदर्शवादी धारणा के कारण भावनाओं का गला घोटकर वह अपनी सुधा की शादी कैलाश से जबरदस्ती करवा देता है। सुधा कैलाश के साथ शारीरिक संबंध तो रख पाती है, परन्तु मानसिक रूप से वह चन्दर की होकर ही रह जाती है। तथाकथित नैतिक मान्यताओं की हामी भरने वाला चन्दर भी जीवन से तंग आ जाता है, इसलिये अपने अकेलेपन को समाप्त करने के लिये पम्मी को अपने बाहुपाश में आबद्ध करना चाहता है और पम्मी भी उसे चाहने लगती है पर चन्दर वहाँ भी नहीं टिक पाता। उसे अब कोरे भटकाव एवं सुधा के अभाव में जीवन व्यर्थ प्रतीत होता है। इसलिये सुधा जब कैलाश के साथ वापस मायके आती है तो कैलाश की अनुपस्थिति में दोनों के अन्तर की सुप्त एवं गुप्त ज्वाला प्रस्फुटित हो उठती है। चन्दर सुधा से शारीरिक संपर्क करने की चेष्टा करता है। पर उसे आत्मग्लानि एवं धिक्कार के अतिरिक्त कुछ नहीं मिलता। अपने देवता के ऐसे रूप को देखकर उसकी आँख से चिनगारियाँ झरने लगीं- "चन्दर, तुम जानवर हो गए हो, मैं आज कितनी शर्मिन्दा हूँ, इसमें मेरा कसूर है चन्दर! मैं अपने को दण्ड दूँगी चन्दर, मैं मर जाऊँगी-लेकिन तुम्हें इन्सान बनना पड़ेगा चन्दर।" चन्दर की स्थिति अब और भी खिन्न हो जाती है। वह सुधा को यहाँ तक कह देता है कि अब उसका उससे कोई सम्बन्ध नहीं है। सुधा का अवलम्ब खण्डित हो जाता है और वह अन्दर ही अन्दर जीवन को नष्ट करती रहती है। गेसू के जीवन एवं चरित्र से चन्दर में पुनः आदर्शों का लावा खौलने लगता है और वह अपने कृत्यों के प्रति ग्लानियुक्त हो जाता है। सुधा के चरित्र की महत्ता उसे तब ज्ञात होती है, जब वह उसे स्टेशन पर लेने के लिए जाता है, सुधा चन्दर के कृत्यों को दृष्टि से ओझल करती रहती है और अन्दर ही अन्दर चन्दर के बतलाये मार्ग में दृढ़ता से पग बढ़ाती रहती है, स्थिति यहाँ तक आ जाती है कि सुधा मरणासन्न अवस्था में डॉ० शुक्ला के पास पहुँचा दी जाती है तथा चन्दर को तार के द्वारा बुलाया जाता है। मृत्यु के पूर्व सुधा की दयनीय स्थिति का चित्रण बहुत हृदय विदारक है। मरने से कुछ ही क्षण पूर्व सुधा चन्दर को बुलवाती है और कहती है, मैं झुक नहीं सकती विनती यहाँ आ-हों चन्दर के

पैर छू अरे अपने माथे में नहीं पगली मेरे माथे में लगा दे। मुझ से झुका नहीं जाता।” सुधा के प्राण पखेरु उड़ जाते हैं और सभी देखते रहते हैं- खिन्न उदास एवं लुटे हुये। अस्थिर एवं राख को प्रवाहित कर चन्द्र ने विनती को अपना लिया। इसी के साथ उपन्यास की समाप्ति हो जाती है। मुख्य कथा के साथ-साथ कुछ प्रासंगिक कथायें भी इस उपन्यास में समायोजित की गई हैं, जिनमें विनती, गेसू और पम्मी की कथायें हैं।

उपन्यास में प्रेम के उदात्त रूप का चित्रण है। इस कथा से यह सहज ही ध्वनित होता है कि प्रेम वही सार्थक है, जिससे व्यक्ति के विकास में सहायता मिले। उसका देवत्व जाग्रत हो। जो समाज की उपेक्षा करके नितान्त ऐकान्तिक न हो उठे, वरन् समाज के कल्याण में उसका योगदान हो। जो प्रेम मनुष्य की शक्ति न बनकर उसकी दुर्बलता बने और देवत्व की ओर न ले जाकर पशुता की ओर ले जाये, उसमें कहीं कोई कमी है, दुर्बलता है।

प्रेम के इस उदात्त स्वरूप को इतनी मार्मिकता, मर्मस्पर्शिता, पूर्णता एवं प्रभविष्णुता से निरूपित करने तथा नयी भाषिक चारुता से सम्पन्न करने के कारण ही ‘गुनाहों का देवता’ इतना लोकप्रिय बन गया है।

‘सूरज का सातवां घोड़ा’ सन् 1952 ई0 में धर्मवीर भारती द्वारा रचित एक प्रयोगात्मक लघु उपन्यास है। ‘गुनाहों के देवता’ उपन्यास के पश्चात् इस प्रकार की कथाकृति लेखक की प्रतिभा एवं सामर्थ्य की द्योतक है। प्रस्तुत उपन्यास में भारती ने भारतीय कथा-साहित्य के एक ऐसे अतीत को शैली के रूप में पुनर्योजित करने की चेष्टा की है जो जातक-कथा पंचतंत्र से शुरू होकर ‘रानी केतकी की कहानी’ के युग तक पाठकों के एक विशेष वर्ग के मनोरंजन की वस्तु थी। प्रस्तुत उपन्यास के नायक मणिक मुल्ला सात दोपहरों में कथा कहते हैं। सात दोपहरों तक चलने वाला यह क्रम बहुत कुछ धार्मिक पाठ-चक्रों के समान है, जिनमें किसी सन्त के वचन या धर्मग्रन्थ का एक सप्ताह तक प्रवचन होता है और रोज प्रसाद बँटता है। उसी प्रकार मणिक ने प्रतिदिन लोगों को एक कहानी सुनायी, अन्त में निष्कर्ष का प्रसाद बाँटा (यद्यपि इसमें आंशिक सत्य था क्योंकि कई कहानियों में उन्होंने निष्कर्ष बतलाया ही नहीं)। मणिक के कथा-चक्र में सात दिन की संख्या रखने का कारण भी शायद बहुत कुछ सूरज के सात घोड़ों पर आधारित था। भारती ने कथा को व्यक्त करने का यह ढंग इसलिये अपनाया कि वे बात को सीधे और खुले ढंग से कह सकें। यह प्रयत्न केवल फुरसत का वक्त काटने या दिल बहलाने वाला नहीं है, हृदय को कचोटने, बुद्धि को झकझोर कर रख देने वाला है। भारती के अनुसार “बहुत छोटे से चौखटे में काफी लम्बा घटनाचक्र और काफी विस्तृत क्षेत्र को चित्रण करने की विवशता के कारण यह ढंग अपनाया पड़ा है।”³

प्रारम्भिक उपोद्घात में घटनाओं के दृष्टा एवं वक्ता मणिक मुल्ला का परिचय दिया गया है। मणिक मुल्ला मुहल्ले के प्रसिद्ध व्यक्ति थे और पूरे घर में अकेले रहते थे। वहाँ दोपहर को मुहल्ले के लड़कों का अड्डा जमता था, जिनके लिये ‘पहली दोपहर’ की बैठक में मणिक ने जो कहानी सुनायी उसका शीर्षक है: ‘नमक की अदायगी’ अर्थात् जमुना का नमक मणिक ने कैसे अदा किया। इसमें बीस वर्षीया जमुना का पन्द्रह वर्ष के मणिक को नमकीन पुए खिलाकर अपने पास बुलाने तथा बातचीत का वर्णन है। बातचीत से दोनों के माध्यम से दोनों में घनिष्टता बढ़ जाती है, जो कि प्रेम में बदल जाता है, लेकिन इस कहानी का अंत भी अन्य प्रेम कहानियों की भाँति होता है। जमुना का किसी और से विवाह हो जाता है। इस संक्षिप्त कथावस्तु के साथ धर्मवीर भारती ने अन्ततः निष्कर्ष मणिक मुल्ला से कहलवाया है कि अगर हरेक के पास गाय होती तो यह स्थिति पैदा नहीं होती, सम्पत्ति की विषमता ही इस प्रेम का मूल कारण है। उदाहरण द्रष्टव्य है- “न उनके घर गाय होती, न मैं उनके वहाँ जाता, न नमक खाता, न नमक अदा करना पड़ता।”⁴ प्रत्येक के पास गाय होनी चाहिये। इस निष्कर्ष के उपरान्त मुल्ला की प्रथम प्रेम कहानी समाप्त हो जाती है।

‘दूसरी दोपहर’ में मणिक ने जो कहानी कही, उसका शीर्षक था ‘घोड़े की नाल’ अर्थात् किस प्रकार घोड़े की नाल सौभाग्य का लक्षण सिद्ध हुई? इसमें एक वृद्ध किन्तु सम्पन्न पति से जमुना के विवाह, उसकी ऊपरी पतिनिष्ठा तथा पूजापाठ तथा रामधन तांगे वाले के साथ गुप्त सम्बन्ध एवं पुत्र प्राप्ति, पति की मृत्यु, जमुना का रोना-धोना तथा अन्त में वैधव्य-वेश, रामधन का कोठी में रहने लगना तथा रामधन के टाट-बाट का वर्णन है। ‘अनध्याय’ शीर्षक में जमुना की जीवन-गाथा पर बातचीत तथा वाद-विवाद का नाटकीय विवरण प्रस्तुत किया गया है। लेखक, ओंकार तथा प्रकाश अपने-अपने ढंग से जमुना की इस कहानी का अर्थ लगाते हैं। मार्क्सवाद का अर्थ लेखक द्वारा प्रस्तुत किया गया है, जिसमें जमुना मानवता का प्रतीक है, मणिक मुल्ला मध्यमवर्ग के तथा जमींदार सामन्तवर्ग के प्रतीक है, जो उसका उद्धार करने में असमर्थ रहे हैं अन्ततः रामधन जो कि श्रमिक वर्ग का प्रतीक है, के द्वारा उसे नई दिशा सूझती है।

‘तीसरी दोपहर’ को जो कहानी कही गयी, उसका शीर्षक मणिक मुल्ला ने बताया नहीं। इसमें जमुना के प्रिय साथी तन्ना के दुःखद जीवन की कहानी कही गयी है। किस प्रकार तन्ना के पिता महेसर दलाल ने पत्नी की मृत्यु के बाद एक रखैल रख ली है और उसके प्रभाव से लड़के-लड़कियों पर शासन कितना कठोर हो गया, भूखे रहकर, मार खाकर तन्ना किस प्रकार जमुना की सहानुभूति से अपना दुःख भुलाते, किस प्रकार दोनों के विवाह की बात टूट गयी और तन्ना का विवाह एक इन्टर पास लड़की लीला से हो गया। महेसर दलाल पुलिस से बचने के लिये भाग गया और किस प्रकार सारी गृहस्थी का भार आर0एम0एस0 के साधारण क्लर्क तन्ना पर पड़ गया। बेचारे सूखकर काँटा हो गये, बीमार पड़ गये और नौकरी से बर्खास्त हो गये तो तन्ना की सास उनकी स्त्री को आकर लिवा ले गयी। बाद में जब यूनिन वालों के प्रयत्न से फिर नौकरी लगी तो एक बार कंकाल-शेष तन्ना टंकी की झूलती हुई बाल्टी से टकराकर ट्रेन से गिर गये। उनकी दोनों टांगें कट गयी और अस्पताल में उनकी मृत्यु हो गयी।

‘चौथी दोपहर’ के अन्तर्गत मणिक मुल्ला ने जिस कहानी का बखान किया उसका शीर्षक है- ‘मालवा की युवराणी देवसेना की कहानी’। इसमें मणिक ने लिली (लीला) के इन्द्रधनुषी रूमानी प्रेम को अत्यन्त सहज रूप में वर्णित किया है। इसमें तन्ना के लीला (लिली) से विवाह के कारण एवं विवाहोपरान्त उसके दुःखपूर्ण जीवन का वर्णन भी हुआ है।

‘पाँचवी दोपहर’ को मणिक मुल्ला ने ‘काले बेंट का चाकू’ नामक कहानी सुनाई। इसमें पहिया छाप साबुन के मालिक चमन ठाकुर की पोषिता कन्या सत्ती के साथ मणिक की घनिष्टता का वर्णन है। सत्ती-मणिक को अत्यधिक प्यार करने लगी थी और चमन ठाकुर और महेसर दलाल की काम-लोलुपता से बचने के लिये एक रात अपना सब कुछ लेकर मणिक के घर चली आई किन्तु मर्यादा भीरु मणिक ने भाई को इसकी खबर दे दी, जिसने सत्ती को चमन के हवाले कर दिया। लोगों में यह झूठा समाचार फैलाया गया कि चमन और महेसर दलाल ने मिलकर रात को सत्ती का गला घोट दिया था।

‘छठी दोपहर’ को यही कहानी आगे चलती है। सत्ती की तथाकथित मृत्यु से मणिक बेहद व्यथित हुये। उनका स्वास्थ्य बुरी तरह गिर गया और उनका स्वभाव बहुत असामाजिक, उच्छृंखल और आत्मघाती हो गया। एक दिन जब वह चाय घर से निकल रहे थे तो उन्होंने देखा कि एक लकड़ी की गाड़ी में चमन ठाकुर बैठा था और सत्ती गोद में भिनकता बच्चा लिये गाड़ी खींचते चली आ रही थी। ‘मणिक को नजदीक से देखते ही सत्ती चौंककर दो कदम पीछे हट गई, फौरन उसका हाथ कमर पर गया शायद चाकू की तलाश में, पर चाकू न पाकर उसने फिर प्याला उठाया और खून की प्यासी दृष्टि से मणिक की ओर देखती हुई आगे बढ़ गई।’⁵ सत्ती को जीवित देखकर मणिक के हृदय का बोझ उतर गया और उन्होंने तन्ना के रिक्त स्थान पर आर0एम0एस0 में नौकरी कर ली।

‘सातवीं दोपहर’ की जो कहानी मणिक मुल्ला ने सुनाई उसका शीर्षक था ‘सूरज का सातवां घोड़ा’ अर्थात् वह जो सपने भेजता है। इसमें मुख्य रूप से मणिक ने सात घोड़ों का तात्पर्य स्पष्ट किया है। लेखक के पूछने पर मणिक उपर्युक्त कहानियों की सार्थकता पर प्रकाश डालते हुए सूर्य को बढ़ाने वाले सात घोड़ों के विषय में कहते हैं- “वास्तव में सूर्य के रथ को आगे बढ़ाना ही है। हुआ यह है कि हमारे वर्ग विलगित, अनैतिक, भ्रष्ट और अंधेरे जीवन की गलियों में चलने से सूर्य का रथ काफी टूट गया है और बेचारे घोड़ों की तो यह हालत है कि किसी की दुम कट गई है, तो किसी का पैर उखड़ गया है तो कोई सूखकर ठठरी हो गया है, तो फिर किसी के खुर घायल हो गये हैं। अब बचा है सिर्फ एक घोड़ा, जिसके पंख अभी भी जीवित हैं, जो सीना ताने, गरदन उठाये आगे चल रहा है, वह घोड़ा है भविष्य का, तन्ना, जमुना और सत्ती के नन्हें, निष्पाप बच्चों का घोड़ा, जिनकी जिन्दगी हमारी जिन्दगी से ज्यादा अमन चैन की होगी, ज्यादा पवित्रता की होगी, इसमें ज्यादा प्रकाश होगा, ज्यादा अमृत होगा। वही सातवां घोड़ा हमारी पलकों में भविष्य के सपने और वर्तमान के नवीन आकलन भेजता है, ... यद्यपि बाकी छह घोड़े दुर्बल, रक्तहीन और विकलांग हैं पर सातवां घोड़ा तेजस्वी और शौर्यवान है और हमें अपना ध्यान और अपनी आस्था उसी पर रखनी चाहिये।”⁶ उपन्यास की समाप्ति इस स्पष्टीकरण के साथ होती है कि यह कथाकृति मणिक मुल्ला की है तथा इसकी अच्छाई-बुराई का उत्तरदायित्व भी उन्हीं का है।

स्पष्ट है कि इस उपन्यास के कथांश विविध मुखी होकर भी अंततः मूल कथासूत्र से जुड़ जाते हैं। ‘ये कथांश अपने आप में विविध भाषी हैं ही, कहानियों के बाद आने वाले अध्याय भी विविध शिल्प रूपात्मक हैं, एक में वर्णनात्मक पद्धति से प्रभाववादी आलोचना है, दूसरे में पारस्परिक विवाद का (अनुभवों और आवश्यक रंगमंचीय संकेतों के साथ) नाटकीय विवरण है, तीसरे में दारुण दुःखान्त को सुनकर बेचौनी की अवस्थानुकूल अर्थसुप्त मन में असम्बद्ध स्वप्न विचारों का सिलसिला है और चौथे में प्रतीकात्मक स्वप्न पद्धति के माध्यम से सभी कहानियों के प्रभाव का पंजीयन हुआ है।”

‘सूरज का सातवां घोड़ा’ उपन्यास में जहाँ धर्मवीर भारती ने हमारे समाज की आर्थिक विषमता, अतृप्त वासना एवं प्रेम की विभिन्न समस्याओं को चित्रित किया है।⁸

‘गुनाहों का देवता’ और ‘सूरज का सातवां घोड़ा’ में उतना ही अन्तर है, जितना प्रतिमा और प्राण में होता है। ‘गुनाहों का देवता’ स्वच्छन्दतावादी सृष्टा धर्मवीर भारती की कृति है और ‘सूरज का सातवां घोड़ा’ का लेखक व्यंग्यकार है। सृष्टा और व्यंग्यकार में अन्तर तो होता ही है, सृष्टा को तो किसी भी वस्तु को जन्म देकर पालना पोसना होता है, जबकि व्यंग्यकार किसी भी कमी को झट से दिखाकर कर्तव्य मुक्ति पा लेता है। इसीलिये ‘गुनाहों का देवता’ का लेखक हर चोट को सहन करता चला है और ‘सूरज का सातवां घोड़ा’ का लेखक विष से बुझी व्यंग्य की हंसी हंसता चला है। कुल मिलाकर ‘गुनाहों का देवता’ चाहे अपने उद्देश्य में सफल हो पर युग परिप्रेक्ष्य में अपना अधिक महत्त्व नहीं रखता और ‘सूरज का सातवां घोड़ा’ निःसंदेह अपने पूरे आयामों में सफल होने के साथ शिल्प की दृष्टि से अद्वितीय प्रयोग है और इस प्रयोग में रोचकता भी कम नहीं है, हंसी भी कम नहीं है और रुदन तो सीमाहीन है।

आज के युग में घोर और नग्न यथार्थवाद के नारे हर तरफ सुनाई पड़ते हैं, हर तरफ घुटन और संत्रास का जाल फैला हुआ है। मशीनी जिन्दगी में साहित्य ढलता चला जा रहा है। ऐसे में भी धर्मवीर भारती को आस्थावान देखकर कुछ संतोष जरूर होता है। आज के युग में साहित्य में नूतन शिल्प-प्रयोगों का नारा बुलन्द है, लेकिन उभरकर सामने आने वाले शिल्पगत प्रयोगों में केवल शिल्प ही शिल्प रह गया है और कथ्य पीछे छूटता चला गया है। ‘सूरज का सातवां घोड़ा’ में डॉ० भारती ने कथ्य और शिल्प का बहुत ही उत्तम समन्वय किया है जो इस समय तक अपने क्षेत्र में अनुपम है।

निष्कर्षतः धर्मवीर भारती को भारतीय संस्कृति एवं मानवता से आन्तरिक लगाव था, वे अपने उच्च कोटि के कथा साहित्य के कारण आज भी अमर है और हिन्दी साहित्य के अजेय योद्धा है।

संदर्भ सूची

1. गुनाहों का देवता, धर्मवीर भारती, पृ० 212
2. गुनाहों का देवता, धर्मवीर भारती, पृ० 256
3. सूरज का सातवां घोड़ा, धर्मवीर भारती, पृ० 11
4. सूरज का सातवां घोड़ा, धर्मवीर भारती, पृ० 29
5. सूरज का सातवां घोड़ा, धर्मवीर भारती, पृ० 93
6. सूरज का सातवां घोड़ा, धर्मवीर भारती, पृ० 100-101
7. प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों की शिल्प विधि, डॉ० सत्यपाल चुष, पृ० 856
8. डॉ० धर्मवीर भारती की गद्य कृतियों का अनुशीलन, डॉ० चन्द्रकांता वर्मा, पृ० 42

गर्भवती महिलाओं में स्वास्थ्य पोषण: एक अध्ययन

वन्दना सिंह

शोध छात्रा - गृह विज्ञान विभाग, भगवन्त विश्वविद्यालय, अजमेर, राजस्थान, भारत

डॉ० सुषमा श्रीवास्तव

भगवन्त विश्वविद्यालय, अजमेर, राजस्थान, भारत

प्रस्तावना-

पोषण का इतिहास काफी पुराना है। पोषण विज्ञान के जन्मदाता एण्टोनी लेवाइजर कहलाते हैं। इन्होंने ही पोषण को सर्वप्रथम विज्ञान के रूप में परिचय कराया था। पोषण एक कला के साथ-साथ विज्ञान भी है, जो कई सुरक्षित आधारभूत तथ्यों पर आधारित है। केवल बीसवीं शताब्दी से सरकार द्वारा इस ओर ध्यान दिया गया और समाज के निर्धन एवं अभावग्रस्त वर्गों को उचित प्रकार से भोजन प्राप्त कराने का उत्तरदायित्व लिया गया। इस समस्या को हल करने के लिए पोषण विज्ञान के ज्ञान की आवश्यकता बढ़ी जिससे इसकी महत्ता और बढ़ गयी।

किसी राष्ट्र की उन्नति तथा अवनति उसकी जनता के पोषण स्तर पर निर्भर करती है। पौष्टिक तत्वों की कमी से शरीर में अनेक बीमारियाँ हो जाती हैं, जिसके कारण कार्यक्षमता कम हो जाती है। प्रत्येक व्यक्ति को अपने जीवन में अनेक महत्वपूर्ण कार्य करने पड़ते हैं, जिसमें उनकी शक्ति, क्षमता, हिम्मत, स्वास्थ्य एवं निरोग शरीर की भूमिका उनकी सफलताओं एवं उपलब्धियों की दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण होती है। उचित पोषण पर ही स्वस्थ एवं सशक्त शरीर का निर्माण निर्भर करता है। आहार एवं पोषण विज्ञान का व्यक्ति के स्वास्थ्य से घनिष्ठ सम्बन्ध है। इसलिए प्रत्येक व्यक्ति को प्रतिदिन आहार में उचित पौष्टिक तत्वों को ग्रहण करना चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति को पोषण सम्बन्धी विस्तृत जानकारी आवश्यक है। आज पोषण विज्ञान जैसे विषय का विकास इन तथ्यों से सम्बन्धित व्यवस्थित एवं क्रमबद्ध ज्ञान प्रदान करने के लिए ही हुआ है। प्रत्येक व्यक्ति को उचित मात्रा में उपयुक्त आहार ग्रहण करने हेतु आहार एवं पोषण विज्ञान के विभिन्न सिद्धान्तों की जानकारी आवश्यक है, क्योंकि भोजन पोषण तथा स्वास्थ्य हमारे जीवन का अभिन्न पहलू है।

पोषण को परिभाषित करते हुए डॉ० पी० वर्मा एवं डॉ० के० पाण्डेय ने कहा है कि भोजन केवल जीवन के अस्तित्व को बनाये रखने के लिए ही नहीं, बल्कि अधिक से अधिक उत्तम स्वास्थ्य, शरीर का निर्माण, वर्धन, सुगठन क्षतिग्रस्त अवयवों एवं उनकी कोशिकाओं की क्षतिपूर्ति एवं ऊर्जा एवं उष्मा प्राप्ति के लिए आवश्यक है। इस प्रकार पोषण की परिभाषा करते हुए हम कह सकते हैं कि पोषण वह विज्ञान है जो आहार द्वारा मानव शरीर के लिए आवश्यक पोषण तत्वों की मात्रा को पूर्ण करता है जिससे व्यक्ति का शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, सांवेगिक एवं नैतिक विकास समुचित ढंग से होता है।

भारत लगभग एक अरब जनसंख्या वाला एक विशाल देश है, जहाँ विभिन्न धर्मों एवं संस्कृतियों को मानने वाले लोग रहते हैं। इस देश में धार्मिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक प्रथाओं, परम्पराओं एवं रीति-रिवाजों की बाहुल्यता है। भारत का विकासशील देशों में प्रमुख स्थान है, परन्तु यह कई यूरोपीय देशों की तुलना में आर्थिक रूप से काफी पिछड़ा हुआ है। यही नहीं भारत बहुत सारे अंधविश्वासों, भ्रान्तिपूर्ण धार्मिक एवं सांस्कृतिक परम्पराओं तथा मान्यताओं की जंजीर से जकड़ा हुआ है जिसके कारण यहाँ बहुत सारी आहारिय समस्यायें उत्पन्न हो गई हैं। फलस्वरूप यहाँ की आबादी के लिए संतुलित आहार की व्यवस्था करना कठिन काम हो गया है।

आहार मानव जीवन की तीन मूल आवश्यकताओं रोटी, कपड़ा और मकान में से प्रथम एवं सर्वाधिक प्रमुख है। इसके द्वारा मनुष्य के लिए शारीरिक, मनोवैज्ञानिक, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक आदि जैसे महत्वपूर्ण काम निष्पन्न होते हैं। यह शरीर की पोषण सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। यह पेट भरने पर मिलने वाले एक विशेष प्रकार के संतोष की अनुभूति कराता है। सामूहिक भोज-भात के माध्यम से आहार व्यक्ति और समाज के बीच गहरा सम्बन्ध स्थापित करता है।

भोजन हमारे जीवन की प्राथमिक आवश्यकताओं में से एक महत्वपूर्ण आवश्यकता है। बिना भोजन के व्यक्ति जीवित नहीं रह सकता। एक बार भोजन करने के कुछ समय पश्चात पुनः भूख लगने लगती है जिसे केवल भोजन द्वारा ही संतुष्ट किया जा सकता है। भोजन व्यक्ति को न केवल जीवित रखने के लिए आवश्यक है वरन् व्यक्ति को स्वस्थ रखने के अतिरिक्त वह उसे कार्य करने की शक्ति भी प्रदान करता है। 10 प्रत्येक व्यक्ति को स्वस्थ रहने के लिए आहार की आवश्यकता होती है। मनुष्य का आहार ऐसा होना चाहिए कि वह शरीर की न्यूनतम पोषण आवश्यकता पूर्ण कर सके। सामान्यतः हम जो भोजन ग्रहण करते हैं, वह हमारे व्यक्तित्व का भी परिचायक होता है। भोजन द्वारा हमारे धार्मिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि की भी जानकारी मिलती है। यह हमारी पसन्द एवं नापसन्द, आहारिय आदतों एवं आसक्तियों को भी दर्शाता है। साथ ही साथ हम जिस वातावरण एवं परिस्थितियों में रह रहे होते हैं उससे हमारा भोजन जुड़ा हुआ होता है।

अतः पोषण समस्याओं, विशेषकर भारतीय पोषण समस्याओं पर विचार करने के लिए पोषण के उचित विभिन्न पक्षों पर ध्यान देना आवश्यक है विशेष रूप से गर्भिणी महिलाओं के समायोजन की दृष्टि से भारत जैसे विशाल एवं विभिन्न धर्मावलम्बी जनसंख्या वाले देश में पोषण समस्याओं की अधिकता है। वैसे पोषण हुई हैं। भारत की जनसंख्या का एक बड़ा भाग आज भी गरीबी रेखा से नीचे अपना जीवन-यापन करता है गरीबी रेखा के नीचे रहने वाले लोग यदि प्रतिदिन एक बार भी पेट भर भोजन प्राप्त कर लेते हैं तो यह उनके लिए सौभाग्य की बात होती है। गरीबी रेखा के नीचे जीवन यापन करने वाले लगभग शत-प्रतिशत लोग कुपोषण के शिकार होते हैं। ऐसे लोगों का भोजन प्रायः दूसरे की दया पर निर्भर करता है जिसके कारण ये कभी सन्तुलित आहार जैसी किसी बात की कल्पना नहीं करते। अधिकांशतः जब जो मिले उसे खाकर भरपेट पानी पीकर ही अपना जीवन गुजर-बसर करते हैं। इनके भोजन की समस्या का निवारण राज्यों एवं केन्द्र सरकार के द्वारा ही किया जा सकता है, परन्तु इसके लिए जरूरी है कि हमारा राष्ट्र आर्थिक रूप से समृद्ध एवं सम्पन्न हो जाय ।

भारत में स्वास्थ्य पोषण की समस्या का दूसरा पहलू निरक्षरता, अशिक्षा एवं अज्ञानता भी है, क्योंकि यहाँ की जनसंख्या का एक बड़ा वर्ग आज भी निरक्षर, अशिक्षित एवं अनभिज्ञ हैं तथा यह वर्ग जीवन में आहार के महत्त्व, संतुलित आहार के विभिन्न तत्त्व, वजन, शारीरिक डील-डौल, आदि के अनुसार संतुलित आहार के उन तत्त्वों की मात्रा आदि जैसे तथ्यों से अनभिज्ञ होता है। जब जो मिले, जितना मिले वही खा लो और सन्तोष करों वाले सिद्धान्त पर चलने वाला यह वर्ग अनेक आहारिय समस्याओं से ग्रसित होता है तथा इन्हीं कारणों से इस वर्ग के लोग प्रायः आहारिय अभावजनित रोगों के शिकार होते रहते हैं।

अतः इनके निराकरण हेतु यह आवश्यक है कि इनके बीच आहार एवं पोषण सम्बन्धी ज्ञान का प्रचार-प्रसार किया जाय। क्योंकि व्यक्ति को स्वस्थ रहने के लिए उचित पोषण की आवश्यकता होती है। पर्याप्त पोषण तथा स्वास्थ्य का निकट का सम्बन्ध है तथा पर्याप्त पोषण संतुलित आहार से मिलता है। व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक, सामाजिक तथा नैतिक विकास के लिए उचित पोषण अनिवार्य होता है। भारत में पोषण की समस्या का तीसरा पहलू यह है कि भोजन से सम्बन्धित-गलत आदतों भ्रान्तियों एवं आसक्तियों से जुड़े होने के कारण सम्पन्न परिवार के लोग आहार तथा पाचन सम्बन्धी रोगों एवं विकारों से ग्रस्त होते हैं। ये साधन सम्पन्न एवं शिक्षित होने के कारण जानते हैं कि ऐसा करना स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है परन्तु आदतन ऐसा करने के लिए मजबूर रहते हैं, जैसे बिस्तर पर चाय पीना, अत्यधिक शराब पीना, धूम्रपान करना आदि।

यही नहीं हमारे देश में एक प्रमुख आहारिय समस्या अपमिश्रण की है। भारत में देशी घी में डालडा, दूध में पानी, अनाज में कंकड़-पत्थर, सरसो के तेल में रेपसीड आयल गोल मिर्च में पपीते का बीज, जीरा में सोआ, चने के बेसन में मक्का एवं प्रतिबन्धित खेसारी का चूर्ण आदि। भोज्य पदार्थों में मिलावट से अनेक हानियाँ होती हैं जिससे भोजन की पौष्टिकता कम होने के साथ ही साथ भोजन करने वाले का स्वास्थ्य भी प्रभावित होता है। यही नहीं भारत में आहारिय समस्या में कच्चे एवं पक्के खाद्य पदार्थों की बर्बादी भी शामिल है जो चूहों एवं कीड़ों द्वारा खेत में फसल को व्यापक पैमाने पर नुकसान पहुँचाने तथा खलिहान में गरीब किसानों द्वारा प्राकृतिक प्रकोपों से बचाव का समुचित उपाय न करने के कारण खाद्य पदार्थ व्यापक रूप से बर्बाद हो जाते हैं। भारत में ग्रामीण महिलाओं द्वारा खाना बनाने में प्राचीन विधियों को अपनाने तथा होटलों एवं सामूहिक भोज भात आदि अवसरों पर भी खाद्य पदार्थों की बर्बादी होती है। उपरोक्त आहारिय समस्याओं के समुचित निराकरण द्वारा भी हम पोषण समस्याओं में कमी लाने के साथ ही देश को विकसित एवं समृद्ध बनाने में अपना योगदान कर सकते हैं।

हमारे भोजन की पौष्टिकता या यूँ कहें पौष्टिक भोजन का सम्बन्ध केवल हमारे शरीर के शारीरिक विकास तथा शारीरिक स्वास्थ्य से ही नहीं है बल्कि इसके साथ-साथ इसका सम्बन्ध हमारे मानसिक विकास तथा मानसिक स्वास्थ्य से भी है, क्योंकि स्वस्थ मस्तिष्क स्वस्थ शरीर में ही निवास करता है। कुछ विचारकों की। यह धारणा है कि बालक या बालिका के शारीरिक स्वास्थ्य पर ही उसके सामाजिक, नैतिक, संवेगात्मक तथा सांवेदिक अनुभूतियों का स्वास्थ्य निर्भर होता है। और उचित शारीरिक स्वास्थ्य उचित पोषण पर निर्भर करता है। प्रायः यह देखा गया है कि जो गर्भवती महिलाएं खराब स्वास्थ्य के कारण क्षीणकाय हो जाती हैं उनके स्वभाव में चिड़चिड़ा आ जाता है।

शारीरिक विकास के अन्तर्गत व्यक्ति के शारीरिक अंगों में होने वाली वृद्धि तथा उसके शरीर के आकार प्रकार का अध्ययन किया जाता है, मुख्य रूप से शरीर की लम्बाई, वजन, विभिन्न शारीरिक अंगों का अनुपात, हड्डियों के विकास, मांसपेशियों के विकास, स्नायु मण्डल के विकास आन्तरिक अवयवों के विकास तथा सामान्य शारीरिक स्वास्थ्य आदि का अध्ययन शारीरिक विकास के अन्तर्गत किया जाता है तथा इसके अतिरिक्त उन तत्त्वों का भी अध्ययन किया जाता है जो - शारीरिक विकास को प्रभावित करते हैं। गर्भिणी महिलाओं और उनके गर्भ में पल रहे बच्चे का विकास बहुत कुछ उनके स्वास्थ्य और शारीरिक रचना पर निर्भर करता है तथा उनका उत्तम स्वास्थ्य और शारीरिक रचना उनके द्वारा लिए जाने वाले. आहार से प्राप्त उचित पोषण पर निर्भर करता है। यदि पोषण में जरा सी भी असावधानी हुई तो वे पोषणात्मक समस्या की शिकार हो जाती हैं और उनका स्वास्थ्य स्तर गिर जाता है तथा शारीरिक विकास भी बाधित होता है।

भारत की स्वतंत्रता के 77 वर्ष बाद भी बच्चों एवं किशोरियों खासकर गर्भवती महिलाओं को कुपोषण से नहीं बचा पाये हैं। इस सम्बन्ध में प्रयास किये गये लेकिन संतोषजनक परिणाम नहीं मिल सका है। हालत यह है कि आज भारतीय किशोर एवं किशोरियों का पोषण स्तर विश्व में सबसे कम है। जब महिलायें बार-बार गर्भधारण को बाध्य होती हों और बचपन, किशोरावस्था तथा गर्भावस्था में लगातार उपेक्षा और कुपोषण की शिकार होती हैं तो जाहिर है कि उनके बच्चे औसत से कम वजन के पैदा होंगे। वे भी स्तनपान के साथ पौष्टिक खुराक न मिलने के कारण छह महीने से दो साल के बीच धीरे-धीरे कुपोषण के शिकार हो जाते हैं। जिस तरह माँ और शिशु के स्वास्थ्य में सम्बन्ध है, उसी तरह माँ और शिशु के मृत्युदर में भी सम्बन्ध है। ये दोनों एक दूसरे से इतने जुड़े हुए हैं कि अब शिशु मृत्युदर को कुपोषण का सूचकांक माना जाने लगा है।

कुपोषित बच्चों का बाजार सम्बन्धी एक सर्वेक्षण के अध्ययन से यह हैरानी होती है कि आज भी विश्व के 8.40 करोड़ लोग ऐसे हैं, जिन्हें पर्याप्त भोजन, नसीब नहीं होता। दो अरब से ज्यादा लोग ऐसा भोजन खाने को मजबूर हैं, जिसमें वह विटामिन और खनिज नहीं होते, जो आमतौर पर सामान्य विकास के लिए जरूरी हैं। खराब भोजन और गंदे पानी से लाखों लोग बीमारियों के शिकार हो रहे हैं। जाहिर है कि कुपोषण का सीधा असर आने वाली पीढ़ियों पर

पड़ता है। बच्चे कमजोर होंगे तो कल के युवा कमजोर रहेंगे और कमजोर लोगों के सहारे राष्ट्र की प्रगति सम्भव नहीं है इसलिए समाज एवं राष्ट्र का विकास ठीक तरीके से तभी होगा जब किशोरियों एवं महिलाओं का स्वास्थ्य अच्छा होगा।

गर्भिणी महिलाओं में स्वास्थ्य पोषण के सम्बन्ध में बहुसंख्य अध्ययन हुए हैं। सर्बर्नलता साहू और वासुमती पान्डा (2006) ने गर्भवती महिलाओं पर अपने अध्ययन में पाया कि जापान की गर्भवती महिलाएँ में स्वास्थ्य पोषण एवं समायोजन के प्रति जागरूकता देखी गयी इसीलिए वे इस अवस्था में मदिरापान एवं धूम्रपान कम करती हैं और ज्यादा से ज्यादा दूध अथवा दुग्ध उत्पाद का सेवन अधिक करती थी। गर्भावस्था में प्लाजा विस्तार के कारण एनिमिया के हल्के लक्षण गर्भवती महिलाओं में दिखाई पड़े। इसी तरह अल्मेडा एवं उनके सहयोगियों (2001) ने जन्मोत्तर प्रोटीन कमी का प्रभाव बालक के खेलकूद, कौशल एवं सामाजिक व्यवहार पर पाया है। इनके अनुसार प्रोटीन की कमी से खेलकूद, कौशल एवं सामाजिक व्यवहार का सामाजिकता के अधिगम में कमी आती है।

निष्कर्ष-

विगत कुछ वर्षों में महिलाओं के विषय में बहुत सारे अध्ययन हुए हैं जिसमें अधिकांश अध्ययन गलत पोषण की आदतों के विषय में हुए हैं। महिलाओं वही गर्भिणी महिलाओं के स्वास्थ्य के सम्बन्ध में अध्ययन गृह विज्ञान में कम हुए हैं। इस दिशा में चिकित्सा विज्ञान में तथा आहार विज्ञान (डाइटेटिक्स) के क्षेत्र में काफी अध्ययन हुए हैं। देश में पोषण स्तर को सुधारने के लिए तमाम सरकारी एवं गैर सरकारी अभिकरण क्रियाशील हैं और इनकी क्रियाशीलता के परिणामस्वरूप इस क्षेत्र में बहुत सुधार हुआ है, परन्तु आज भी ग्रामीण क्षेत्रों में गर्भिणी महिलाओं को स्वास्थ्य एवं पोषण तथा स्वास्थ्य संबंधी सजगता के लिए उन्हें शिक्षित करने की आवश्यकता है।

संदर्भ

1. यादव, राजेन्द्र - औरत की निगाह में औरत, पृ० 33।
2. शर्मा, नासिरा, औरत के लिए औरत, पृ० 57।
3. अम्बेडकर, भीमराव हिन्दू नारी का उत्थान और पतन, पृ० 129।
4. वर्मा, डॉ० रुषा आहार, पोषण एवं आहारिकी, पृ० 9।
5. हरपालानी, बी० डी० आहार विज्ञान एवं उपचारात्मक पोषण, पृ० 11।
6. सिंह, डॉ० अनीता स्वास्थ्य एवं आरोग्य शास्त्र, पृ० 6।
7. बख्शी, श्रीमती भूपिन्दर कौर, आहार एवं पोषण विज्ञान, पृ० 113।
8. बख्शी, बी० के० आहार एवं पोषण विज्ञान, पृ० 16।

किशोरावस्था में मादक पदार्थों का बढ़ता प्रचलन: कारण और प्रभाव का अध्ययन

प्रीती सिंह

शोध छात्रा - गृह विज्ञान विभाग, भगवन्त विश्वविद्यालय, अजमेर, राजस्थान, भारत

डॉ० सुषमा श्रीवास्तव

भगवन्त विश्वविद्यालय, अजमेर, राजस्थान, भारत।

प्रस्तावना-

मादक द्रव्य दुरुपयोग एक गंभीर चिंता बनकर उभरा है जो देश के भौतिक, सामाजिक-आर्थिक दशा को बुरी तरह से प्रभावित कर रहा है। आधुनिक जीवन के तनाव और परेशानियों ने व्यक्तियों को मादक द्रव्य दुरुपयोग की समस्या से ग्रसित होने के लिए अधिक असुरक्षित बना दिया है। मादक द्रव्य की आदत न केवल इसके आदी व्यक्तियों को प्रभावित करती बल्कि परिवार और समाज को भी बड़े पैमाने पर नुकसान पहुंचाती है।

ऐसे कौन से अभिभावक होंगे जो अपने बच्चों को मादक पदार्थों का सेवन करते देख खुश होंगे। बच्चे में मादक पदार्थों के सेवन को लेकर आज प्रत्येक अभिभावक चिन्तित है, परेशान है। उनका दिल दहल जाता है जब उनके छोटे छोटे बच्चे या किशोर होते बच्चे नशे में धुत होकर घर में दाखिल होते हैं।

किशोरावस्था, जीवन का सबसे कठिन और नाजुक काल है। इस अवस्था में बालक का झुकाव जिस ओर हो जाता है, उसी दिशा में वह जीवन में आगे बढ़ता है। वह धार्मिक या अधार्मिक, देश-प्रेमी या देश-द्रोही, कर्मण्य या अकर्मण्य-कुछ भी बन सकता है। इसी अवस्था में संसार के सब महान पुरुषों ने अपने भावी जीवन का संकल्प किया है। महात्मा गाँधी ने अपने जीवन में सत्य का अनुसरण करने की प्रतिज्ञा इसी अवस्था से की थी। अतः बालकों के भावी भाग्य और उत्कृष्ट जीवन के निर्माण में इस अवस्था की गरिमा से अपने ध्यान को एक क्षण के लिए भी विचलित न करके अध्यापकों और अभिभावकों को उनकी शिक्षा का सुनियोजन और संचालन करना अपना परम पुनीत कर्तव्य समझना चाहिए। उन्हें वैलेन्टाइन के इस वाक्य को अपना आदर्श सूत्र मनाना चाहिए - “मनोवैज्ञानिक द्वारा बहुत समय तक उपदेश दिये जाने के बाद अन्त में यह बात व्यापक रूप से स्वीकार की जाने लगी है कि शैक्षिक दृष्टिकोण से किशोरावस्था का अत्यधिक महत्व है।”

वर्तमान में मादक द्रव्य दुरुपयोग के बदलते परिदृश्य और घटनाक्रम किशोरों के बीच मादक द्रव्यों के उपयोग में वृद्धि दर्शाते हैं और औषधि मादक द्रव्यों का दुरुपयोग और विशेषकर घूमने वाले बच्चों में सांस से खींचकर मादक द्रव्यों के उपयोग में वृद्धि भी अब गंभीर चिंता का विषय है।

मादक द्रव्य-

बुद्धिं लुम्पति यद्-द्रव्यं मदकारी तदुच्यते।

तमोगुणप्रधानं च यथा-मद्यसुरादिकम्।

जो द्रव्य सेवन करने के पश्चात् तमोगुण की शरीर में वृद्धि करके बुद्धि का लोप कर देते हैं-उन्हें मदकारी या मादक कहते हैं, यथा मद्य व सुरा आदि।

इस परिभाषा में जो बुद्धि का लोप करने वाले द्रव्यों को मादक बतलाया गया है, इसका तात्पर्य यह समझना चाहिए कि 'बुद्धि शब्दस्तु-मेधा-धृति-स्मृति-मति-प्रति-पत्तिषु वर्तते' के अनुसार बुद्धि का क्षेत्र मेधा, धृति, स्मृति, मति और प्रतिपत्ति के हृदय तक होने से जो इन सबकों दुष्ट कर दे वह मदकारी है। अंग्रेजी में इन द्रव्यों को डिलेरिमेंट्स नानकोटिक्स, डेलिरिफेसियन्ट्स कहते हैं।

भारत में मुख्य रूप से प्रचलित मादक द्रव्यों को निम्न प्रकार से वर्गीकृत किया जा सकता है:-

- (1) मदिरा (अल्कोहल), कच्ची शराब, ताड़ी।
- (2) चरस, हसीस, गांजा भांग।
- (3) अफीम, गोली, चड़ना शराब (टेबलेट), मारफीन, पेथाडीन, कोडीन, हिरोइन, ब्राउन शुगर, वाइट शुगर, पेन्टाजोसीन।
- (4) शान्तिदायक द्रव्य बारबीट्यूरेट्स, इक्वैलिब्रियम, डायजेपेम, मैन्ड्रक्स।

- (5) एमफेटामाइन, (वर्तमान में भारत में अनुपलब्ध)
- (6) हालूसिनोजेन एल.एस.डी. (मतिभ्रामक द्रव्य) वर्तमान में अनुपलब्ध।
- (7) अन्य - बोल्टाइल साल्वेन्ट्स, पेट्रोल पेट्रोल, थिनर इत्यादि।

समाज में अत्यधिक प्रचलित मादक द्रव्य

मादक द्रव्य एक ऐसा क्रमबद्ध विष है जो शरीर के विभिन्न अंगों को प्रभावित करता है। मादक द्रव्यों के अंतराल हिस्की, रम, जिन, बीयर, स्पिट, पैरी, वाइन, ताड़ी, ब्रान्डी, साइडर को हम पेय पदार्थों के रूप में शामिल करते हैं। 'इन पेय पदार्थों में एल्कोहल या मद्यार्क नामक उत्तेजक पदार्थ रहता है जिसे बहुत से पदार्थों में खमीर पैदा करके तैयार किया जाता है। गुड़, आलू, धान, अंगूर, महुआ, जौ, मक्का आदि पदार्थों से मादक द्रव्य तैयार किये जाते हैं।' इनसे तैयार होने वाले प्रमुख मादक द्रव्य निम्न प्रकार हैं-

1. ताड़ी-नारियल और ताड़ के पेड़ से निकलने वाले रस में खमीर पैदा कर यह सस्ता पेय तैयार किया जाता है। इसमें 5 प्रतिशत एल्कोहल रहता है।
2. वाइन-यह अंगूर के रस के बनाई जाती है जिसमें 15 प्रतिशत एल्कोहल या मद्यार्क होता है।
3. साइडर व पैरी-सेव के साइडर और पैरी नाशपाती के रस की शर्करा से बनाई जाती है।
4. ब्रान्डी-वाइन के उर्ध्व पतन से बनाई जाती है।
5. बियर-5 प्रतिशत एल्कोहल वाली बियर जौ में खमीर पैदा कर बनाई जाती है।
6. रम-50-60 प्रतिशत एल्कोहल की मात्रा वाली रम गुड़ या गन्ने से तैयार की जाती है।
7. व्हिस्की-यह अंकुरित वाली से तैयार की जाती है। इसमें 47 से 53 प्रतिशत तक मद्यार्क होता है।
8. जिन- गेहूँ, आदि अनाजों से तैयार किये वाले इस पेय पदार्थ में 43 से 50 प्रतिशत मद्यार्क रहता है।
9. स्पिट-20 से 50 प्रतिशत मद्यार्क वाली स्पिट विभिन्न शराबों के उर्ध्वपातन से बनाई जाती है।
10. ठरी-देशी शराब-महुआ से बनाई जाती है।

किशोरावस्था में नशा करने के कारण

भारत की विभिन्न समस्याओं में आज नशाखोरी एक सर्वाधिक चिंतनीय और ज्वलंत समस्या है। भारत की 71 प्रतिशत आबादी 35 वर्ष से कम आयु की है अर्थात् एक युवा राष्ट्र की जनसंख्या का, रचनात्मक कार्यों की अपेक्षा नशे के भ्रमजाल में उलझने से इस बात का भय पैदा हो गया कि कहीं भविष्य में भारतीय समाज नशेखोरों का समाज न बज जायें।

डॉ. हीरासिंह (डायरेक्टर, मिनिस्ट्री ऑफ सोशल वेलफेयर, नई दिल्ली) कहते हैं कि 'मादक द्रव्य व्यसन, एक नई समस्या नहीं हैं, वरन् इसके मूल में भारतीय सामाजिक ढाँचे में होने वाला परिवर्तन छिपा हुआ है, पूर्व में हमारा समाज बहुत संगठित था। व्यक्ति एक-दूसरे के प्रति काफी लगाव और दिलचस्पी रखते थे, परन्तु भौगोलिक विषमताओं के कारण आज हालात बदल चुके हैं। आज हम जहाँ रहते हैं, कोई जरूरी नहीं कि वहाँ हमारे मित्र व रिस्तेदार भी रहते हों। इसीलिये हमारे आसपास क्या हो रहा है? हम इसकी अनदेखी कर देते हैं, लेकिन पहले गाँव, मुहल्लों में रहने वाला प्रत्येक व्यक्ति एक दूसरे से परिचित रहता था। ऐसी स्थिति में यदि कोई व्यक्ति किसी भी तरह के नशे का सेवन करता भी था तो उसे पकड़े जाने का खतरा बना रहता था, जबकि आज गाँव-शहरों में ऐसा नहीं है, आज तो किसी को किसी की परवाह ही नहीं है।

भारत में बढ़ती नशाखोरी के क्या कारण हैं? इन्हें जानने के लिए समय-समय पर किये गये सर्वेक्षण और समाज कल्याण - मंत्रालय द्वारा दिल्ली में 'आशियाना उपचार केन्द्र के मरीजों से ज्ञात हुआ कि नशे के प्रति लोगों के बढ़ते हुये झुकाव के निम्नलिखित प्रमुख कारण हैं-

- अपरिपक्व उम्र के युवाओं में हमेशा कुछ नया ज्ञान प्राप्त करने की एक तीव्र उत्कंठा होती है और तीव्र उत्कंठा के फलस्वरूप ही यदि कभी उन्हें कोई मादक पदार्थ मिल जाता है तो वे उसके दुष्परिणाम जानते हुए भी स्वयं पर नियंत्रण नहीं रख पाते और उस पदार्थ के प्रति अपनी उत्सुकता दूर करने के लिये, एक बार चखने की गलती कर बैठते हैं, फिर बार-बार इसकी पुनरावृत्ति करते हैं।
- पलायनवादी प्रकृति भी युवाओं में नशे का एक पहलू है क्योंकि बढ़ते पारिवारिक तनाव व कुंठा, असफल प्रेम, पारिवारिक उपेक्षा, भविष्य की अनिश्चितता के कारण व्यक्ति का जीवन के प्रति मोह भंग हो जाता है और वह पलायन कर नशे में सब कुछ भुला देना चाहता है।
- नशीले पदार्थों के सेवन के प्रति बौद्धिक आनंद, सृजनशील विचार, कलात्मक अभिरूचि जागृत करने एवं ज्ञानेन्द्रियों से प्राप्त ज्ञान को तीव्र करने की मिथ्या धारण से भ्रमित होकर भी व्यक्ति इनकी ओर आकर्षित होते हैं। वर्तमान परिवेश में शिक्षण संस्थायें कमजोर नियमों के कारण नशाखोरी एवं असामाजिक क्रियाकलापों के अड्डे बनते जा रहे हैं जहाँ विद्या - अध्ययन का उद्देश्य लेकर आने वाले भोले - भाले विद्यार्थी बुरी संगत एवं दिखावे के साथ ही साथ सामाजिक दबाव का शिकार बनकर नशा संस्कृति से जुड़ जाते हैं।

किशोरावस्था में मादक द्रव्य दुरुपयोग के व्यापक दुष्परिणाम

मादक द्रव्य सेवन की आदत अथवा इन द्रव्यों के दुरुपयोग से जीवन के सभी क्षेत्रों में व्यापक दुष्परिणाम होते हैं:-

(1) मादक द्रव्य का स्वास्थ्य पर प्रभाव

मादक द्रव्य सेवन से व्यक्ति के स्वास्थ्य पर कोई अच्छा प्रभावच तो होता नहीं बल्कि शारीरिक व मानसिक रूप से बुरा प्रभाव बहुत अधिक पड़ता है। जब समाज में मादक द्रव्य का दुरुपयोग करने वालों की संख्या बढ़ जाती है तब व्यक्ति का निज का स्वास्थ्य बिगड़ने के साथ ही धीरे-धीरे इसका दुष्प्रभाव पूरे समाज एवं राष्ट्र पर पड़ने लगता है।

(2) मादक द्रव्य सेवन और अपराध

मादक द्रव्य सेवन और अपराध का विशेष सम्बन्ध है। प्रायः देखा गया है कि व्यक्ति मादक द्रव्य के प्रभाव में किसी अपराध को करता है। यदि वह नशे में न होकर तो ऐसे जघन्य नहीं कर सकता है। मादक द्रव्य के प्रभाव में मानसिक सन्तुलन ठीक न रहने के कारण वह पशविक कर्म में प्रवृत्त होता है और समाज में रहने वाले अन्य सामान्य लोगों पर भी इसका बुरा प्रभाव पड़ता है।

(3) मादक द्रव्य सेवन और वैयक्तिक विघटन

विश्व स्वास्थ्य संगठन की विशेषज्ञ समिति ने मादक द्रव्य व्यसन के सम्बन्ध में कहा है कि यह स्थायी या पुनरावर्तनशील रूप से नशाखोरी की वह दशा है जो व्यक्ति और समाज के लिए हानिप्रद है और इसकी उत्पत्ति स्वाभाविक या कृत्रिम रूप से मादक द्रव्य की जिज्ञासा या आकर्षण इनके प्रभावों के कारण भी होती है। इसके प्रभाव में उत्तेजना, निद्रा या मूर्छा आती है। मादक द्रव्य के लती लोग इनसे होने वाली शारीरिक, मानसिक और नैतिक हानि की परवाह किये बिना इसका उपयोग निरंतर करते रहते हैं। मादक द्रव्य का सेवन व्यक्ति की एक बड़ी कमजोरी है। कभी-कभी तो कुछ परेशानियों के कारण मन को शान्त करने के लिए व्यक्ति इसका सेवन करने लगता है। किन्तु बाद में मादक द्रव्य सेवन से उत्पन्न परेशानियों से छुटकारा पाना कठिन होता है, तो पुनः उसका सेवन करता है। क्रमशः उसका शारीरिक व मानसिक सन्तुलन बिगड़कर अस्त-व्यस्त हो जाता है। धीरे-धीरे ऐसी स्थिति आती है कि समाज से उसका विशेष सम्बन्ध नहीं रहता और यही स्थिति उसके वैयक्तिक विघटन का कारण बन जाती है।¹

(4) मादक द्रव्य सेवन और पारिवारिक विघटन

मादक द्रव्यों के सेवन का परिवार पर भी बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। मादक द्रव्य के प्रभाव में व्यक्ति का व्यवहार अनियन्त्रित हो जाता है और धीरे-धीरे वह अपना मानसिक संतुलन खो बैठता है। उसके स्वभाव में चिड़-चिड़ापन आ जाता है। परिणाम स्वरूप परिवार के अन्य सदस्य उसकी उपेक्षा करने लगते हैं। इसके अतिरिक्त मादक द्रव्य सेवन एक खर्चीला व्यसन है, इस कारण अन्य पारिवारिक आवश्यकताओं की पूर्ति में कठिनाई होने से गड़बड़ी होने लगती है। बच्चों की पढ़ाई, उनके मनोरंजन के साधन या अनरू आवश्यकताओं की पूर्ति में बाधा पड़ने लगती है। परन्तु ऐसी स्थिति में मादक द्रव्य का व्यसनी अपनी लत को छोड़ भी नहीं सकता है। फलस्वरूप परिवार में आर्थिक कठिनाई के कारण तनाव की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। कभी-कभी तो आत्महत्या तथा ऐसा ही गम्भीर घटनायें भी हो जाती हैं। अतएव मादक द्रव्य का व्यसन पारिवारिक विघटन का कारण भी बन जाता है।

(5) मादक द्रव्य व्यसन का कार्य-कुशलता पर प्रभाव

मादक द्रव्य सेवन से व्यक्ति का स्वास्थ्य बिगड़ने के साथ ही उसका स्वभाव भी प्रमाद और आलस्य आदि दुर्गुणों से ग्रसित हो जाता है। फलतः उसकी कार्यकुशलता में भी बाधा उत्पन्न हो जाती है और वह किसी भी कार्य को ठीक प्रकार से सम्पन्न करने में असमर्थ हो जाता है। मादक द्रव्य के व्यसनी में कार्यकुशलता की क्षमता समाप्त हो जाती है और अनेक प्रकार की समस्यायें उठ खड़ी होती हैं।

(6) मादक द्रव्य व्यसन का सामाजिक परिस्थिति पर प्रभाव

मादक द्रव्य के प्रभाव में व्यक्ति को पीड़ा से मुक्ति, शान्ति परेशानियों या कुंठाओं से मुक्ति अथवा विभिन्न प्रकार की भ्रामक अनुभूतियाँ होती हैं। जब मादक द्रव्य का प्रभाव समाप्त हो जाता है तब उस पर आलस्य या तन्द्रा छा जाती है। मादक द्रव्य का आदी व्यक्ति किसी प्रकार के उत्तरदायित्व का निर्वाह करने में असमर्थ हो जाता है और उसके जीवन में अनेक प्रकार की कठिनाइयाँ उपस्थित हो जाती हैं। व्यक्ति अपने पारिवारिक और सामाजिक दायित्व से दूर भागने लगता है।

वास्तव में आज मादक द्रव्यों के दुरुपयोग की समस्या इतनी व्यापक हो गयी है कि इनके घातक प्रभाव से ग्रसित लोगों के निदान के साथ ही यह एक गंभीर सामाजिक समस्या बन गयी है। समाज ने सदा ही मद्यपान आदि को हेय दृष्टि से देखा है। नैतिकता की दृष्टि से भी देखा जाय तो कोई व्यक्ति अपनी स्वतंत्र इच्छा से मदिरा आदि का सेवन करता है, परन्तु उसके इस कार्य से उसे अथवा समाज को कोई हानि पहुँचते हैं तो उसका यह कार्य नैतिकता की दृष्टि से भी बुरा कहा जाएगा। चिकित्सा के क्षेत्र में मादक द्रव्य सेवन को आदत से ग्रसित व्यक्ति को एक रोगी माना जाता है। व्यक्ति का जीवन मादक द्रव्य के दुरुपयोग से घातक स्थिति में पड़ जाता है।⁴

किशोरावस्था में मादक द्रव्य व्यसन के लक्षण

विष जिस प्रकार जीवन का अंत कर देता है उसी प्रकार मादक द्रव्य का व्यसन भी धीरे-धीरे जीवन का अन्त कर देता है। किशोरावस्था में इस प्रकार के दुर्व्यसन में पड़ जाने की आशंका अधिक होती है। इस आयु में वह अपने मित्रों की गलत संगति में पड़कर नशीले पदार्थों या मद्यपान की लत का शिकार हो सकता है। जीवन को अंततः मृत्यु की ओर ले जाने वाली यह एक बहुत बुरी और खतरनाक आदत है। इस आदत के शिकार नवयुवक के व्यवहार आदि पर निगरानी रखना बहुत ही आवश्यक है। निम्नलिखित लक्षण अधिक समय तक दिखायी दें तो हो सकता है कि नवयुवक मादक द्रव्य का आदी हो गया है:-

1. खेलकूद और दिनचर्या में मन न लगना।
2. स्कूल या कालेज जाने से जी चुराना, एकान्त चाहना।

3. पुराने मित्रों को छोड़ देना, अचानक नये मित्र बना लेना।
4. माता-पिता से बिना किसी कारण के अधिक जेब खर्च की मांग करना।
5. घर से सामान या पैसा गायब हो जाना।
6. तीव्र उद्विग्नता होना, घबराहट होना, चिड़चिड़ा और तुनकमिजाजी होना, शरीर से अधिक पसीना आना।
7. स्मरण-शक्ति व एकाग्रता में कमी होना।
8. भूख व वजन में कमी, बेढंगी चाल, कँपकपी होना।
9. लाल और बोझिल आँखें, धुँधली दृष्टि होना, जबान लड़खड़ाना।
10. उल्टी होना, शरीर में पीड़ा होना, नींद न आना।
11. शरीर पर नये इंजेक्शन के धब्बे व कपड़ों पर खून के दाग होना।
12. घर में सूझ्यों व दवाइयों के नये प्रकार के पैकेट आदि दिखलायी देना।

यदि इस प्रकार के लक्षण दिखलायी दें तो संभव है कि नवयुवक मादक द्रव्य का व्यसनी हो गया है। यदि ऐसा हो तो अभिभावक को बहुत सोच-विचार कर अपने उत्तरदायित्व का पालन करना चाहिए। युवक के प्रति सहानुभूति रखते हुए उसे सहारा व सहयोग प्रदान किया जाना चाहिए। नशीली दवाओं की आदत एक जानलेवा रोग है, किन्तु इसका इलाज संभव है। अतः बिना किसी रोग अथवा क्रोध के यथाशीघ्र विशेषज्ञ की सलाह के लिए नशानिवारण व परामर्श केन्द्र से सम्पर्क करना चाहिए।⁵

किशोरावस्था में मादक द्रव्यों का दुरुपयोग और वैधानिक व्यवस्था

सामाजिक दृष्टिकोण से मादक द्रव्य के दुरुपयोग को एक विकृत आचरण या कदाचार माना जाता है। नैतिक आदर्श के अनुसार यदि कोई मद्यपान करता है तो वह स्वेच्छा से ऐसा करता है पर यदि उसके मादक द्रव्य सेवन में स्वयं उसे या समाज को हानि पहुँचाती है तो उसका आचरण अनैतिक है। मदिरा की भाँति ही अन्य मादक द्रव्य भी व्यक्ति व समाज के लिए हानिकारक होते हैं। इन मादक द्रव्यों की जब व्यक्ति को आदत पड़ जाती है तो वह उसे आसानी से छोड़ नहीं पाता। मनुष्य की इस अनुचित प्रवृत्ति का एक उपचार है-मादक द्रव्य के दुरुपयोग पर दंड-व्यवस्था। यह सुधारवादी दृष्टिकोण मादक द्रव्य के दुरुपयोग को अपराध मानता है अतः विधि द्वारा दंडनीय है।⁶

विश्व के अनेक देशों में शासन की ओर से मादक द्रव्य के दुरुपयोग पर अर्थदंड या कारावास अथवा दोनों की वैधानिक व्यवस्था की गयी है। परन्तु अब बहुत से अधिकारी यह मानने लगे हैं कि यह पद्धति कठोर और अवांछित है क्योंकि दंड का सद्प्रभाव मादक द्रव्य का दुरुपयोग करने वाले व्यक्ति पर पड़ता है - इसके प्रमाण न्यून हैं। चिकित्सा पक्ष की मान्यता है कि लत एक रोग है जो कि मादक द्रव्य के प्रभाव से उत्पन्न होता है। उसकी यह भी मान्यता है कि अन्य संबंधित समस्याएँ भी इसी का दुष्परिणाम हैं। इस प्रकार की अवधारणा के कारण मादक द्रव्य के व्यसनी व्यक्तियों के प्रति नम्रतापूर्ण भावना का दृष्टिकोण अपनाने पर बल दिया जा रहा है। एक बात यह भी है कि मादक द्रव्य पर व्यक्ति की निर्भरता का एक सामान्य कारण ही मान्य नहीं हो सकता। नशे की आदत का विशेष संबंध मादक द्रव्यों के उपलब्ध होने की सुलभता से भी है। इसके साथ ही मादक द्रव्यों की विविधता और प्रसार अनेक सामाजिक, राजनीतिक तथा सांस्कृतिक कारणों पर भी आधारित है।

निष्कर्ष-

आज हमारा भारतीय इन भयानक मादक द्रव्यों के जिस व्यापक दुरुपयोग के दौर से गुजर रहा है उसमें एक प्रधान कारण यह भी है कि इनकी परिपूर्ण जानकारी के अभाव में हमारा विशाल युवावर्ग मादक द्रव्यों के मकड़जाल में फँस कर अपना और अपने देश का भविष्य नष्ट कर रहा है। इसके साथ ही संस्कृत के एक श्लोक में मनुष्य मात्र को सचेत करते हुए कहा गया है कि वह - 'अपने द्वारा अपना संसार -समुद्र से उद्धार करे और अपने को अधोगति में न डाले, क्योंकि यह मनुष्य आप ही तो अपना मित्र है और आप ही अपना शत्रु।'

संदर्भ

1. (शार्ङ्गधर संहिता 1/4)।
2. वाजपेयी, ऋतुः स्मारिका, महिला अध्ययन विकास और अनुसंधान केन्द्र रानी दुर्गावती वि. वि. जबलपुर, अक्टूबर 96, पृष्ठ 30 -31।
3. भट्ट, श्रीकृष्णदत्त, सामाजिक विघटन और भारत पृष्ठ 54।
4. शर्मा, डॉ. अवधेश, नशीली दवाओं का मायाजाल साप्ताहिक हिन्दुस्तान, अप्रैल, 1990 पृष्ठ-31।
5. E.H. Starting, The Action of Alcohol on Man, P.54.
6. Planning Commission, Plans and Prospects of Social Welfare in India 1963, P. 146.

बालकों का बौद्धिक विकास पर पारिवारिक एवं विद्यालीय वातावरण के प्रभाव का अध्ययन

नीतू सिंह

शोध छात्रा - गृह विज्ञान विभाग, भगवन्त विश्वविद्यालय, अजमेर, राजस्थान, भारत

डॉ० सुषमा श्रीवास्तव

भगवन्त विश्वविद्यालय, अजमेर, राजस्थान, भारत

प्रस्तावना-

बच्चे राष्ट्र की अमूल्यनिधि होते हैं। उनके विकास से ही राष्ट्र का विकास सम्भव है। बालक ही भविष्य का पिता और राष्ट्र का निर्माता होता है। इसलिए उसके सही विकास के लिए परिवार की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। परिवार के महत्वपूर्ण योगदान को सभी विद्वानों ने एकमत से स्वीकार किया है। परिवार वह स्थान है जहाँ बालक विभिन्न प्रकार के अनुभव प्राप्त करता है जो आगे चलकर उसमें सहयोग सहकारिता, निर्णय लेने की क्षमता, स्वयं को व दूसरों को नियंत्रित करने की क्षमता प्रदान करता है। परिवार का बालक पर जो प्रभाव पड़ता है वह सबसे स्थाई और महत्वपूर्ण होता है। परिवार का प्रभाव बालक के विकास पर एक जटिल प्रक्रिया के रूप में होता है।

बालक का प्रथम समाज परिवार होता है। समाज की अपेक्षाएं, आकांक्षाएं और नियम बालक को परिवार द्वारा ही प्राप्त होते हैं। परिवार बालक की प्रथम पाठशाला है। परिवार समाज की इकाई है तथा समाज के नियम बालक को सिखाने की एजेसी के रूप में कार्य करता है। बच्चों का क्रियात्मक विकास भी पारिवारिक वातावरण से प्रभावित होता है। शिक्षा हो या खेलकूद किसी भी क्षेत्र में प्रोत्साहन प्रेरणा स्रोत का कार्य करता है। प्रोत्साहन से कार्य के प्रति रुचि जागृत होती है तथा उत्साह बना रहता है। ये प्रोत्साहन माता-पिता से ही प्राप्त होता है। बुद्धि अनुवांशिकता से ही प्राप्त होती है। लेकिन उसका विकास किस सीमा तथा किस सीमा में होगा? यह परिवार के वातावरण पर निर्भर करता है। यदि बच्चों का विकास सुन्दर, स्वस्थ और उपयुक्त वातावरण में होता है तो निश्चय ही उसका बौद्धिक विकास साधारण और निम्न स्तरीय वातावरण में पलने वाले बच्चे की तुलना में अच्छा होता है। उच्च स्तरीय परिवार के बच्चे बौद्धिक क्षमताओं का अधिक प्रदर्शन करते हैं।

बालकों के बौद्धिक योग्यता में भिन्नता पायी जाती है। जिसमें कुछ प्रतिभाशाली होते हैं, कुछ अल्पबुद्धि के एवं कुछ औसत बुद्धि के होते हैं। इसका पूरा-पूरा उत्तरदायित्व उनके वातावरण का होता है। जन्म लेने के बाद बालक जिस वातावरण के सम्पर्क में आता है, उसके किसी वस्तु का उसे कोई पूर्व ज्ञान नहीं होता है। जन्म लेने के पूर्व उसमें कुछ उसमें कुछ चेतना का विकास अवश्य हो जाता है। परन्तु वह इतनी कम होती है कि उसके द्वारा किसी वस्तु को समझना सम्भव नहीं होता है। वह जन्म के समय कुछ प्रवृत्तियाँ, अविकसित बुद्धि तथा अंग-प्रत्यंग अवश्य लाता है, जिसके आधार पर उसका भविष्य में विकास होता है।

आयु में बुद्धि के साथ-साथ उसमें संवेदनशीलता, प्रतिमान, स्मृति, कल्पना और चिन्तन की शक्ति बढ़ती जाती है। इन मानसिक क्रियाओं के कारण वह अपने जीवन से सम्बन्धित वस्तुओं का अर्थ ग्रहण करने लगता है। बालक के जन्म के पश्चात् उसका सम्पर्क सर्वप्रथम पारिवारिक वातावरण से होता है। इसलिए:

"Family is the first environment of the child."

व्यक्ति को जैसा वातावरण मिलता है, उसी प्रकार का प्रभाव उसके व्यक्तित्व पर, आदतों एवं उसके व्यवहार पर पड़ता है। यदि वातावरण अनुचित है, तो निश्चित ही बच्चे पर उसका प्रभाव भी उसी प्रकार होगा। इसके विषय में प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक वाटसन ने कहा है कि, "मुझे नवजात शिशु दे दो, मैं उसे जो चाहूँ बना सकता हूँ।"

इसी प्रकार अनाथ बच्चों पर परीक्षण कर वुडवर्थ ने भी यह निष्कर्ष निकाला कि, "वातावरण अच्छा मिलने पर बच्चों का विकास अपने माता-पिता के घरों की तुलना में अच्छा होता है।"

क्षमदमल ने ग्रामीण एवं शहरी बालकों का बुद्धि परीक्षण किया। उनके अनुसार, "शहरी बालकों की बुद्धि ग्रामीण बालकों की बुद्धि की तुलना में अधिक थी। इसका मुख्य कारण वह वातावरण था, जो शहरी बालकों को मिला, किन्तु ग्रामीण बालकों को नहीं। इसके आधार पर निष्कर्ष निकाला गया कि वातावरण

न केवल व्यवहार को प्रभावित करता है, बल्कि बौद्धिक क्षमताओं पर भी प्रकाश डालता है। बालकों के शारीरिक विकास के साथ-साथ उनका मानसिक, संवेगात्मक, क्रियात्मक, सामाजिक, सांस्कृतिक, नैतिक व्यक्तित्व का विकास उनके उम्र बढ़ने के साथ-साथ क्रमशः होता है। जिनमें बालक के सीखने की प्रक्रिया उन्हें क्षमताओं, योग्यताओं तथा प्रेरणाओं के साथ-साथ उनकी वृद्धि में सहायता प्रदान करती है। बालक के सीखने की प्रक्रिया में शारीरिक, मानसिक, प्रेरणात्मक तथा वातावरणीय तत्व उनके विकास को प्रभावित करते हैं। जैसे- प्रेरणा, रुचि, बालक की बुद्धि परिपक्वता, स्वास्थ्य एवं ज्ञानेन्द्रियाँ घर व विद्यालय का वातावरण आदि।

बालकों का बौद्धिक विकास पर पारिवारिक एवं विद्यालयी वातावरण के प्रभाव

मानव के विकास के इतिहास में शिक्षण एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। मानव ने अपने और दूसरे प्राणियों के बीच में यह अन्तर पाया कि उनका सीखना स्वतः चलता रहता है, जबकि मानव को सीखने के लिए शिक्षण की आवश्यकता होती है। मानव- बालक असहाय होता है। उसे जीने के लिए सीखने की आवश्यकता होती है। माँ सबसे पहले इस ओर प्रयास करती है और माँ की गोंद में ही बालक का शिक्षण प्रारम्भ होता है। इस प्रकार माँ प्रथम शिक्षिका होती है, आदिकाल में मानव माँ से ही जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु शिक्षण लेता रहा था। फिर पिता भी अपना योगदान देने लगा और परिवार की रूपरेखा बनने पर यह परिवार के सदस्यों का कार्य हो गया। जब समाज के ढाँचे का निर्माण हुआ तो शिक्षण समाज का एक महत्वपूर्ण कार्य बन गया। शिक्षा प्रदान करने के लिए विशिष्ट व्यक्तियों को उत्तरदायित्व दे दिया गया, जिन्हें शिक्षक अथवा अध्यापक कहा जाने लगा है। साथ ही शिक्षण के लिए विशेष स्थान का चुनाव किया जाने लगा। इस स्थान पर शिक्षक विद्यार्थियों को शिक्षा प्रदान करने लगे, जिसे विद्यालय कहा जाने लगा। संस्कृति के विकास ने शिक्षण देने की विधियों, विद्यालय के संगठन, शिक्षक के प्रशिक्षण एवं शिक्षण देने के उद्देश्यों में बहुत परिवर्तन ला दिये। यह परिवर्तन शृंखलाबद्ध सिद्ध हुए और प्रत्येक काल एवं समय में होते रहे तथा आशा है कि भविष्य में भी होते रहेंगे।

मानव ने इस ओर भी खोज की कि उसमें ऐसी क्या विचित्रता है कि उसे। शिक्षण एवं शिक्षक की आवश्यकता है। उसने पाया कि उसके मस्तिष्क का विकास दूसरे प्राणियों से कहीं अधिक है। दूसरे प्राणी सीखने की क्षमता तो रखते हैं, किन्तु यह मानव से बहुत कम है। एक बात में उसमें और दूसरे प्राणियों में और भी बड़ा अन्तर पाया गया। दूसरे प्राणी जो उससे निम्न स्तर के हैं, जन्म के साथ ही अथवा उसके कुछ ही दिन बाद पूर्ण परिपक्व हो जाते हैं। उसके अंग जीवन-चक्र को पूरा करने के लिए विकसित हो जाते हैं और इस प्रकार उनमें यह गुण जन्मजात हो जाता है कि वह वातावरण से अपने को अनुकूलित करके अपना जीवन-चक्र पूरा करें। मानव यद्यपि बहुत से जन्मजात गुणों से युक्त होता है फिर भी वह अपना जीवन बिना वातावरण से व्यतीत नहीं कर पाता। उसके अंगों को परिपक्व होने में समय लगता है और इस समय उसे सहायता एवं शिक्षण की आवश्यकता होती है। इस शिक्षण का प्रबन्ध, जैसा कि कहा गया है समाज करता है।

शिक्षण प्रदान करना शिक्षक का कार्य है। कैसे वह शिक्षण प्रदान करे? क्या सिखाये? बालकों को सिखाने में क्या बातें वह ध्यान में रखे, इत्यादि प्रश्न हैं, जिनका उत्तर उसे ज्ञात होना आवश्यक है। इन उत्तरों की खोज में उसे मनोविज्ञान का ज्ञान, जो मानव-व्यवहार के ज्ञान से सम्बन्धित है, बहुत सहायता पहुँचाता है।

बालकों के शारीरिक वृद्धि के साथ-साथ उनका मानसिक, संवेगात्मक, क्रियात्मक, सामाजिक, सांस्कृतिक, नैतिक व्यक्तित्व विकास उनके उम्र बढ़ने के साथ-साथ क्रमशः होता है, जिसमें बालक के सीखने की प्रक्रिया उन्हें अनेक क्षमताओं, योग्यताओं तथा प्रेरणाओं के साथ उनकी वृद्धि में सहायता प्रदान करती है। बालक के सीखने की प्रक्रिया में शारीरिक, मानसिक, प्रेरणात्मक तथा वातावरणीय तत्व उनके विकास को प्रभावित करते हैं, जैसे- प्रेरणा, रुचि, बालक की बुद्धि, परिपक्वता, स्वास्थ्य एवं ज्ञानेन्द्रियाँ घर व विद्यालय का वातावरण आदि।

प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक जमतउवद के अनुसार-“एक व्यक्ति उसी अनुपात में बुद्धिमान है जिसमें वह अभूति चिन्तन के योग्य नहीं है।”

प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक जमतउवद के अनुसार, “एक व्यक्ति उसी अनुपात में बुद्धिमान है, जिसमें वह अभूति चिन्तन के योग्य नहीं है।”

स्टोडर्स महोदय ने स्पष्ट किया है कि, “बुद्धि वह मानसिक योग्यता है, जिसके द्वारा इस प्रकार की क्रियाओं को क्रियान्वित किया जाता है, जिसमें कठिनाई, जटिलता, अमूर्तता, मितव्ययिता, सोद्देश्यता, सामाजिक महत्ता, भौतिकता होती है और इन क्रियाओं का सम्पादन उन स्थितियों में जारी रहता है, जिसमें व्यक्ति केन्द्रीकरण एवं संवेगात्मक क्रियाओं का विरोध अपेक्षित रहता है।”

दो वातावरणीय कारण जो बालक के बौद्धिक विकास को प्रभावित करते हैं, उनमें प्रमुख है - पोषण एवं प्रेरणा। अपर्याप्त पोषण द्वारा उनकी वृद्धि एवं विकास उचित ढंग से नहीं हो पाता, जिसका प्रभाव उनकी सीखने की प्रक्रिया पर पड़ता है, जिसके परिणामस्वरूप साधारण बच्चों की अपेक्षा उनका बौद्धिक विकास सही ढंग से नहीं हो पाता है और गलत वातावरण में रहने वाले बच्चे जो स्कूल नहीं जा पाते या परिस्थितिवश शारीरिक रूप से अस्वस्थ होते हैं, उनका बौद्धिक स्तर पर निम्न होता है। बालक के व्यवहार और अभिवृत्तियों के निर्माण के महत्व को प्रारम्भ से ही स्वीकार किया जा रहा है। बालक के बौद्धिक विकास के क्षेत्र में परिवार का महत्व है। बालक के विकास पर प्रारम्भिक पारिवारिक अनुभवों का महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। जन्म के बाद बालक का पहला वातावरण परिवार ही है। यही वातावरण विकास में सर्वप्रथम कुछ अभिवृत्तियों का निर्माण करता है। अतः यह स्पष्ट है कि उत्तर बाल्यावस्था के बौद्धिक विकास में पारिवारिक सम्बन्धों का महत्वपूर्ण स्थान है।

संरक्षकों व बालक के सम्बन्ध बहुत कुछ संरक्षकों की अभिवृत्तियों से भी प्रभावित होते हैं। जैसे:

- (1) परिवार का आकार
- (2) परिवार की अन्तःक्रियात्मक व्यवस्था

- (3) परिवार की बनावट
- (4) माता-पिता की व्यवस्था
- (5) परिवार का अनुशासन

बालक के बौद्धिक विकास में परिवार का महत्वपूर्ण स्थान होता है। इस अवस्था में बालक का शारीरिक, मानसिक, गत्यात्मक एवं भाषा आदि का विकास हो जाता है। वह अपनी इच्छाओं एवं विचारों को भाषा के माध्यम से व्यक्त करने लगता है।

उत्तरबाल्यावस्था के बौद्धिक विकास में विद्यालय का योगदान भी काफी महत्वपूर्ण है। विद्यालय में बच्चा अच्छी आदतों को ग्रहण कर नए-नए खेल, पढ़ाई तथा अनुशासन में रहकर शिक्षा ग्रहण करता है।

बालक व अध्यापक का सम्बन्ध भी अच्छा होना चाहिए। बहुधा कक्षा का वातावरण अध्यापक की अभिवृत्तियों को अभिव्यक्त करता है। एक अध्यापक कक्षा में यदि डरा-धमकाकर या मार-पीटकर शिक्षा देता है, तो कक्षा के विद्यार्थी भी कठोर स्वभाव के हो जाते हैं। उनके व्यवहार में लचीलापन समाप्त हो जाता है।

बी० कुपूस्वामी का विचार है कि, “जब बालक निम्न वर्ग से सम्बन्धित होते हैं, तो बालकों और अध्यापकों के मूल्य में खाई होती है। ऐसा बालक या तो शिक्षकों की आज्ञा का पालन नहीं करता या आक्रामक रवैया अपना लेता है या उदासीन हो जाता है अथवा कक्षा में अनुपस्थित रहता है। ऐसे विद्यार्थी धीमी गति से सीखते हैं। इस प्रकार अध्यापक व विद्यार्थी दोनों एक दूसरे को स्वीकार नहीं करते।”

विद्यालय जाने के बाद बालक, शिक्षक और दोस्तों के सम्पर्क में आता है। इसलिए यह ध्यान देना आवश्यक है कि जिस विद्यालय में बालक पढ़ रहा है, वह विद्यालय कैसा है? पढ़ाई का स्तर कैसा है? उस विद्यालय में कार्यरत शिक्षक की योग्यता क्या है? बच्चे की दोस्ती का दायरा कैसा है? क्योंकि ये सब बालक के बौद्धिक विकास को प्रभावित करता है। विद्यालय के बहुत से तथ्य ऐसे हैं, जो बालक के बौद्धिक विकास को प्रभावित करते हैं। जैसे:

- (क) विद्यालय का वातावरण।
- (ख) विद्यालय में कार्यरत शिक्षक की योग्यता।
- (ग) शिक्षक का व्यवहार।
- (घ) विद्यालय में पाठ्यक्रम।
- (ङ) विद्यालय में आयोजित पाठ्यक्रम के अतिरिक्त अन्य पाठ्येतर क्रिया कलाप।

जैसे- भाषण प्रतियोगिता, क्विज डिबेट, सामान्य ज्ञान, कम्प्यूटर आदि सारी क्रियाएँ बालक के बौद्धिक स्तर को प्रभावित करती हैं। क्योंकि इन सब क्रियाओं में बच्चे अपनी बुद्धि का प्रयोग करते हैं, सोचत-समझते हैं और विचारों को व्यक्त करते हैं। इसी तरह बच्चे का बौद्धिक स्तर उच्च होता है।

उत्तर बाल्यावस्था में 6 वर्ष से लेकर 12 वर्ष तक के बच्चे आते हैं। इस उम्र में सामान्यतः वे स्कूल जाने लगते हैं, उनका सम्पर्क विद्यालय के वातावरण से होता है, जिनमें उनके व्यवहार, कल्पना, चिन्तन, कृतियों जिज्ञासा एवं भाषा का विकास होता है।

Obson & Hughen (1940) ने अपने अध्ययन में यह देखा कि अच्छे परिवारों एवं पर्यावरण से आये बालकों के आई० क्यू० की वृद्धि पर नर्सरी स्कूल का प्रभाव नगण्य है। जबकि उन बच्चों का आई० क्यू० अधिक है, जो सामान्य से कम स्तर के परिवारों एवं वातावरण से सम्बन्धित होते हैं।

विद्यालय में शिक्षक एवं सहपाठियों के सम्पर्क में बालक सीधा आता है। जिससे उसका बौद्धिक विकास प्रभावित होता है। जैसे विद्यालय में शिक्षक की योग्यता, शिक्षकों का व्यवहार, कक्षा का पाठ्यक्रम व विद्यालय में पाठ्यक्रम के अतिरिक्त होने वाले सांस्कृतिक क्रिया-कलाप एवं खेल बालक के बौद्धिक विकास पर प्रभाव डालते हैं।

उत्तरबाल्यावस्था में बौद्धिक विकास सबसे अधिक भाषा विकास से प्रभावित होता है, क्योंकि इस अवस्था में बालक पढ़ाई में रुचि लेने लगता है और उनकी जिज्ञासा की प्रवृत्ति बढ़ जाती है। इस उम्र में उनकी याददाश्त, कल्पनाशक्ति, प्रत्यय विकास, मानसिक, बौद्धिक स्तर में भिन्नता पाई जाती है। रचनात्मक क्षमता विकसित होती है। इसलिए इस उम्र के बच्चों पर सर्वेक्षण करना है कि उनका बौद्धिक विकास किस प्रकार का है। इसी को ज्ञात करने के लिए निम्नलिखित उद्देश्य निर्धारित किया गया है।

- (1) बालक की बौद्धिक योग्यता को ज्ञात किया गया, जो उसके वातावरण द्वारा प्राप्त होती है।
- (2) बालकों के बौद्धिक योग्यता को जानना, जिसे वह अपने सीखने की प्रक्रिया, कल्पनाशीलता एवं मानसिक व बौद्धिक स्तर से भिन्नता से सम्बन्धित होती है।

अतः कह सकते हैं कि बालक की बौद्धिक योग्यता, जो उसे वातावरण द्वारा प्राप्त होती है तथा जिसके सीखने की प्रक्रिया रचनात्मकता, सृजनात्मकता, ग्रहणशीलता बच्चों के विकास पर प्रभाव डालती है।

परिवार का आकार, परिवार की बनावट, माता-पिता का अनुशासन, परिवार की अन्तःक्रियाएँ बालक के शारीरिक, मानसिक, गत्यात्मक एवं भाषा आदि का विकास करती हैं। इसी के साथ-साथ विद्यालय का वातावरण, विद्यालय में कार्यक्रम, शिक्षक की योग्यता, व्यक्तित्व, विद्यालय का पाठ्यक्रम ये सभी बालक के बौद्धिक विकास को प्रभावित करते हैं, जिससे बालकों में अपनी बुद्धि का प्रयोग करने, सोचने-समझने व विचारों को व्यक्त करने की प्रवृत्ति आती है, जिससे उनका बौद्धिक स्तर ऊँचा हो जाए।

निष्कर्ष-

अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि जैसा वातावरण मिलता है, व्यक्ति का व्यक्तित्व व व्यवहार पर प्रभाव पड़ता है। इस विषय में मनोवैज्ञानिक वाटसन का यह कथन है कि, “मुझे नवजात शिशु दे दो, मैं जो चाहूँ बना सकता हूँ।” निश्चय ही सत्य है।

संदर्भ

1. Bemstein, A. C. : “How children learn about sex and brith.” Psychology today 1976, 9 (8), 31-35, 66.
2. Buck, R. : “Non Verbal Communication of affect in children” Journal of Personality & Social Psychology 1975, 31, 644, 653.
3. Peautsch, F. : Observational and Socio-metric measures of Peer Popularity and their relationship to egountic communication in female Preschoolers. Developmental Psychology. 1976, 10. 745-747.
4. Fogat, B. I. and I. Litman : “Stability of sex roles and play interests from Pre.school to Elementary Scohool”. Journal of Psychology. 1975, 89, 285-292.
5. Ford, F. R. and J. Herrick : “Family rules, Family life style”. American Journal of Orthosychidatory. 1974, 44, 61-69.
6. Haskett, C. J. : “The exploratory nature of children social relations” Merill Palmer Quantity 1977, 23, 101-113.
7. Jennige, K. B. : “People Versus object orientation social behavior and intellectual activities in pre-school children” Developmental Psychology 1975, 11, 511-519.
8. Moerk, E. L. : “Piaget’s research as applied to the explanation of language Development” Merrit-Palmer Quarterly 1975, 21, 151-169.
9. Rulin, K. H. & T. L. Raioni : “Play preference and its relationship to egocentris popularity and classification skills in Pre-schools” Merill Quarterly 1975, 171-179.
10. Vincent-Smeth, L. D. Bricker and W Bricker : “Acquistion of receptive Vocalualary in the toddlerage child Development” 1975. 45, 189-193.

वाराणसी साड़ी वस्त्र उद्योग में महिला श्रमिक और उनके स्वास्थ्य से सम्बन्धित समस्याएँ

लक्ष्मी सिंह

शोध छात्रा - गृह विज्ञान विभाग, भगवन्त विश्वविद्यालय, अजमेर, राजस्थान, भारत

डॉ० सुषमा श्रीवास्तव

भगवन्त विश्वविद्यालय, अजमेर, राजस्थान, भारत

प्रस्तावना-

हथकरघा बुनाई एक विशिष्ट पारंपरिक कला है जो हमेशा से ही आकर्षक रही है। ऐसा ही एक बुना हुआ पारंपरिक कपड़ा है वाराणसी की साड़ियाँ। प्राचीन काल से ही वाराणसी में बड़ी संख्या में हथकरघे अस्तित्व में थे। वर्तमान शोध भारत के उत्तर प्रदेश राज्य के वाराणसी जिले में वाराणसी के बुनकरों द्वारा इस्तेमाल किए जाने वाले डिजाइनों और रूपांकनों के प्रकार का अध्ययन करने के लिए किया गया था। तैयार किए गए डिजाइन मुख्य रूप से प्रकृति से प्रेरित होते हैं जो एक बहुत पुराना और कालातीत चलन है। इसकी सुंदरता बेजोड़ है और निस्संदेह इंद्रियों को आकर्षित करती है और इसलिए हर किसी के दिल में जगह बना लेती है। वनस्पतियों और जीवों से प्रेरित डिजाइन वाराणसी की रेशमी साड़ियों और अन्य पहनने योग्य रेशमी वस्तुओं जैसे ड्रेस मटीरियल, लहंगे और दुपट्टों में बहुत लोकप्रिय हैं।

बुनाई मानव जाति के ज्ञात सबसे पुराने कौशल में से एक है, जो प्रागैतिहासिक काल से चली आ रही है। तब से, भारत का हाथ से बुना हुआ कपड़ा उद्योग दुनिया के सबसे बड़े और बुने हुए वस्त्र बनाने के लिए सबसे प्रसिद्ध उद्योगों में से एक रहा है। सभ्यता की शुरुआत से ही, वाराणसी में व्यापार और वाणिज्य आकर्षण का मुख्य केंद्र रहा है और रेशमी वस्त्रों के उत्पादन में बहुत अच्छी तरह से विकसित हुआ है। वाराणसी लाखों बुनकरों का घर है जिसका इतिहास में एक लंबा सफर है और वस्त्रों के उत्पादन में इसका गौरवशाली अतीत है। यह हथकरघा उद्योग मुख्य रूप से अपने सौंदर्यशास्त्र, विशिष्टता और शिल्प कौशल पर जीवित रहा। आकर्षक रूपांकनों और कपड़े के बेहतरीन डिजाइन ने इस क्षेत्र को विशेष महत्व दिया। कारीगर प्राकृतिक परिवेश में पुष्प डिजाइन को प्रस्तुत करने का प्रयास करते हैं ताकि प्राकृतिक भावना पैदा हो सके। वाराणसी की साड़ियों में अतीत से लेकर आज तक कपड़े को सुंदर बनाने के लिए विभिन्न प्राकृतिक रूपांकनों का उपयोग किया जाता रहा है।

भारत में वर्तमान समय के संदर्भ में भारतीय अर्थव्यवस्था में सूती वस्त्र उद्योग का एक महत्वपूर्ण योगदान है। सूती वस्त्र उद्योग मुख्य दो भागों में विभाजित है। हथकरघा सूती वस्त्र उद्योग और विद्युतकरघा सूती वस्त्र उद्योग। विद्युतकरघा सूती वस्त्र उद्योग, हथकरघा सूती वस्त्र उद्योग का आधुनिकीकरण और विद्युतीकरण का परिणाम है। हथकरघा सूती वस्त्र उद्योग का विद्युतीकरण होने के बाद सूती वस्त्र उद्योग में लागत में कमी और उत्पादन में अत्यधिक तेजी से वृद्धि हुई और साथ ही मजदूरों के मजदूरी में भी कमी हो गयी जिसके कारण परिवार की आय में वृद्धि के लिए महिलाओं को भी अपने परिवार की सहायता के लिए इस उद्योग में आना पड़ा ताकि उनका जीवन स्तर अन्य दूसरों की तरह बेहतर रहें लेकिन सामाजिक और सांस्कृतिक कारकों के कारण महिलाओं की भागीदारी बाजार तक न हो करके केवल घरेलू श्रमिक के रूप में ही सीमित है। विद्युतकरघे का सूती वस्त्र उद्योग में प्रवेश के बाद महिला श्रमिकों की भागीदारी इस उद्योग में घट रही है। क्योंकि हथकरघे में महिलाएं मुख्यतः बुनाई का कार्य नहीं करती थी लेकिन बुनाई के पहले और बुनाई के बाद का कार्य महिलाओं द्वारा ही किया जाता था। क्योंकि हथकरघे में शारीरिक बल का अत्यधिक उपयोग करना पड़ता था। और महिलाओं को शारीरिक रूप से कमजोर समझा जाता है। लेकिन विद्युतकरघे में शारीरिक बल की जगह कौशल कार्य करता है।

वर्तमान में मशीनीकरण ने महिलाओं से संबंधित सभी कार्यों का मशीनीकरण कर दिया है। वर्तमान समय में बुनाई मुख्य रूप से विद्युतकरघे से ही हो रही है। हथकरघा द्वारा वस्त्रों की बुनाई पहले की अपेक्षा बहुत कम हो गयी है। महिलाओं का विद्युतकरघे में आने का मुख्य कारण आर्थिक और वित्तीय आवश्यकता, बेरोजगारी, गरीबी और हथकरघे की अपेक्षा चलाने में आसानी लेकिन महिलाओं की साक्षरता और परिवार का छोटा आकार महिलाओं की इस उद्योग में भागीदारी का प्रमुख दोष है। आंकड़ों के विश्लेषण से यह पता चलता है कि अधिकांश महिलाएं इस उद्योग में होने वाले ध्वनि प्रदूषण से सिरदर्द और विद्युतकरघे के चलने के दौरान उससे निकलने वाले धांगों के छोटे-छोटे टुकड़े से सांस से सम्बन्धित समस्याओं से पीड़ित हैं। पिछले 4 से 5 वर्षों में विद्युतकरघा क्षेत्र बिजली आपूर्ति, बाजार गिरावट और बुनकरों के पलायन और अन्य राजनैतिक कारणों और 2016 में जब से विमोदिकरण और जी.एस.टी

लागू हुआ है। तब से वाराणसी के बुनकरों की स्थिती और खराब होती गयी। साथ ही यह व्यवसाय अन्य राजनैतिक कारकों से भी पीड़ित है। वाराणसी शहर विश्व के सबसे प्राचीनतम शहरों में से एक है।

वाराणसी साड़ी वस्त्र उद्योग में महिला श्रमिक और उनका स्वास्थ्य-

वाराणसी शहर का नाम गंगा की दो सहायक नदियों वरूणा और अस्सी के नाम पर पड़ा है। इससे पहले वाराणसी को बनारस और काशी के नाम से भी जाना जाता था। यह हिन्दू धर्म में सर्वाधिक पवित्र नगरों में से एक नगर के रूप में उल्लेखित है। क्योंकि यहाँ हिन्दू धर्म के बारह ज्योतिर्लिंगों में से एक ज्योतिर्लिंग श्री काशी विश्वनाथ स्थापित है। वाराणसी संगीत, कला, शिक्षा और शिल्प के कामों, जरी और बूटी के लिए पूरे विश्व में विख्यात है। वाराणसी जिले का मुख्य उत्पाद बनारसी शिल्प की साड़ीयाँ हैं। बनारसी शिल्प की साड़ीयों ने बनारस को एक अलग पहचान विश्वीक स्तर पर दिलायी है। परन्तु वर्तमान में इस कला का महत्व घटता जा रहा है। जिसका मुख्य कारण हथकरघे की जगह विद्युतकरघे का आ जाना है क्योंकि हाथ से बनी बनारसी साड़ी में असली सोने और चांदी के तारों का उपयोग किया जाता था। जिससे इसकी एक अच्छी मजदूरी बुनाई करने वाले मजदूर को मिलती थी। परन्तु विद्युतकरघे के आ जाने से इस व्यवसाय में चीन के द्वारा बनायी गयी नकली जरी का प्रयोग होने लगा जिससे लागत में कमी और मुनाफे में वृद्धि होने लगी लेकिन यह मुनाफा केवल पूंजीपति को ही मिलता है। मजदूर को उसकी मजदूरी उसके द्वारा किये गये कार्य पर ही निर्भर रहती है।

बुनाई में प्रत्यक्ष रोजगार से अलग अप्रत्यक्ष रोजगार भी शामिल है जैसे: बुनाई से पहले इसके विभिन्न चरणों जैसे कपास का उत्पादन धागों को बनाने के लिए उसके बाद तैयार धागों को रंगने में साथ ही साथ उन्हें कोन में भरने व बुनाई करने से पहले उन्हें कांटी में भरने के विभिन्न कामों में लाखों लोग लगे हुए हैं। मध्यकाल में पश्चिम एशियाई देशों के कुशल मुस्लिम बुनकर मुगलों के साथ भारत आये। भारत में मुख्य रूप से विद्युतकरघा उद्योग में महाराष्ट्र, गुजरात और उत्तर प्रदेश के वाराणसी के आस-पास के कुछ जिले भदोही, मउ, मिर्जापुर, टांडा, अकबरपुर, फैजाबाद, जौनपुर आजमगढ़ बुनाई के लिए उपयुक्त जलवायु वाले क्षेत्र हैं।

जब से इस व्यवसाय का विद्युतीकरण हुआ है। तब से हथकरघे से साड़ी बुनाई का काम कम हो गया है। जबकि इस व्यवसाय में प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से लाखों लोग जुड़े हुए हैं। महिलाओं का योगदान भी इस उद्योग में प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से बहुत महत्वपूर्ण है। इस उद्योग में महिलाओं के शामिल होने के बाद उनमें उपजी स्वास्थ्य से सम्बन्धित समस्यायें बढ़ती जा रही हैं।

महिलायें प्रत्येक स्वस्थ समाज के व्यवस्था की धुरी होती हैं और एक स्वस्थ समाज की निर्माणकर्ता भी इन्हीं से राष्ट्र का निर्माण होता है। अतः इनका स्वस्थ रहना अत्यन्त आवश्यक है। एक स्वस्थ महिला ही एक स्वस्थ राष्ट्र का निर्माण करती है। वर्तमान में महिलायें अपने दिन-प्रतिदिन में दोहरे दायित्व से जुझ रही हैं। जिससे उनके स्वस्थ पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है। महिलाओं के निरंतर कार्य करने के कारण उत्पन्न होने वाले तनावों और महिलाओं के सामान्य रोग और अन्य रोग को जांच करने की आवश्यकता है। वाराणसी जिले में बुनकरों में पायी जाने वाली बीमारियों में अस्थमा, टीबी, साँस सम्बन्धित समस्यायें, मानसिक तनाव, सिरदर्द, त्वचा सम्बन्धित समस्यायें आँख से सम्बन्धित तथा माँसपेशियों व पीठ दर्द सम्बन्धित समस्यायें हैं।

जिनका किसी भी अन्य प्रकार का आय का साधन न होने के कारण इस व्यवसाय को आय के रूप चुना है, जिससे वो अपने बाल-बच्चों का भरण-पोषण कर उन्हें एक अच्छी शिक्षा दे सकें उनसे 46 प्रतिशत महिलाएं अपने घर के कार्यों के अलावा प्रतिदिन 8 से 10 और उससे भी अधिक घंटों तक बुनाई के कामों में लगी रहती हैं। 40 प्रतिशत महिलाएं प्रतिदिन लगभग 6 से 8 घंटों तक व 14 प्रतिशत महिलाएं प्रतिदिन कम से कम 6 घंटों तक बुनाई के कामों में लगी रहती हैं। जिससे उनके स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। वो अपने सेहत का ख्याल नहीं रख पाती क्योंकि वो दोहरे चरित्र का शिकार हो जाती हैं। जिसके कारण उनको आराम करने का समय नहीं मिल पता और वो दिन के अलावा देर रात तक काम करती रहती हैं। देर रात काम करते वक्त उनको पर्याप्त रोशनी नहीं मिल पाती और उनको आँख से संबंधित समस्याओं का सामना करना पड़ता है। सबसे ज्यादा 31 प्रतिशत महिलाएं माँसपेशियों व पीठ दर्द/जोड़ों का दर्द से पीड़ित हैं। 27 प्रतिशत महिलायें साँस से सम्बन्धित समस्यायें टी0 बी0 से पीड़ित हैं। जो कि एक बड़ा कारण कोरोना काल में मरने वालों की संख्या में हुआ। धागे को रंगने के कारण त्वचा सम्बन्धित रोगों से 8 प्रतिशत महिलायें पीड़ित हैं। 14 प्रतिशत महिलायें सिरदर्द और मानसिक रोगों से पीड़ित हैं। 15 प्रतिशत महिलायें लगातार काम के दौरान आँख में पड़ने वाली रोशनी के कारण आँख से सम्बन्धित समस्याओं से पीड़ित हैं तथा 5 प्रतिशत महिलायें कान के द्वारा कम सुनाई देने का भी शिकार हैं। जिससे उन्हें सुनने से सम्बन्धित समस्याओं का सामना करना पड़ता है क्योंकि एक विद्युतकरघे की ध्वनि 94-99 dBA तक होती है और एक सामान्य मनुष्य की सुनने की क्षमता 10-15 dBA तक होती है।

पिछले कई वर्षों में साड़ी के क्षेत्र में महिलाओं की भागीदारी घट रही है। क्योंकि विद्युतीकरण ने सभी कार्यों का मशीनीकरण कर दिया है। महिलाओं के हाथ से करने वाले कार्यों को लगभग समाप्त ही कर दिया है। हालांकि धीरे-धीरे कुछ महिलायें विद्युतकरघे के कार्यों को सीख रही हैं। लेकिन वे अभी वर्तमान में कम वेतन और ज्यादा काम के बोझ के मामले में भेदभाव का शिकार हैं। अशिक्षा के कारण इन्हें इस बात का ज्ञान भी नहीं हो पाता की पूँजीपति उनका शोषण कर रहा है क्योंकि पूँजीपति कम से कम मजदूरी देकर अधिक से अधिक मुनाफा कमाना चाहता है। वह अपने से नीचे शोषितों का शोषण दिन-प्रतिदिन करता रहता है।

वैसे भी वर्तमान समय में भी जब सरकार द्वारा महिलाओं को समान कार्य के लिए समान वेतन देने का अधिकार दे दिया गया है। तब पर भी आज उन्हें पुरुषों के समान वेतन नहीं दिया जा रहा है। जबकि वे पुरुषों के समान ही कार्य करती हैं। कार्य के अतिरिक्त बोझ के कारण उनका स्वास्थ्य बराबर खराब ही रहता है। खराब स्वास्थ्य में भी वे निरन्तर कार्य करती रहती हैं। क्योंकि वह जानती है कि अगर वह समय पर कार्यों को पुरा नहीं करेंगी तो आगे उन्हें पूँजीपति द्वारा काम मिलना बंद हो जायेगा और वह बेरोजगार हो जायेंगी। आस-पास के सरकारी व अर्ध-सरकारी अस्पतालों (मण्डलीय अस्पताल कबीरचौरा व जामिया तथा मौलाना आजाद बुनकर अस्पतालों) में अवलोकन से पता चलता है कि यहाँ पर साँस से सम्बन्धित समस्याओं व टी0 बी0 के मरीज अत्यधिक मात्रा में बुनकर समुदाय से प्रतिदिन आते हैं। एक मरीज से बात करने से यह पता चलता है कि जब वे बुनकारी का काम करते हैं। तो

विद्युतकरघे से रेशम के धागों से छोटे-छोटे कण निकलते हैं। वही कण नाक व मुख से होकर फेफड़े तक पहुँच जाता है। जिससे साँस से सम्बन्धित समस्याएँ उत्पन्न होने लगती हैं। जो कि बाद में टी0 बी0 का एक रूप ले लेती हैं। ज्यादातर मरीज सिरदर्द और मानसिक रोगों से भी जुझ रहे हैं। क्योंकि जब विद्युतकरघा चलता है, तो उसकी गति के कारण आवाज उत्पन्न होती है, जिसके कारण ध्वनि प्रदूषण होने से सिरदर्द और मानसिक तनाव सम्बन्धित विकार व्यक्ति के अन्दर उत्पन्न होने लगता है। साथ ही साथ लगातार कई घंटों तक खड़े होने की वजह से माँसपेशियों में दर्द व पीठ दर्द तथा जोड़ों का दर्द से सम्बन्धित समस्याओं का सामना भी कई बुनकर महिलाओं को करना पड़ रहा है।

निष्कर्ष-

अतः भारतीय अर्थव्यवस्था में महिलाओं के योगदान को बढ़ाने के लिए उनकी स्वास्थ्य के लिए उचित व्यवस्था सरकार को करनी चाहिए क्योंकि भारतीय अर्थव्यवस्था में पुरुषों का जितना योगदान है। उतना योगदान महिलाओं का भी है। इसलिए महिलाओं की भागीदारी भी हमें ही तय करना है। नीति निर्माताओं को महिलाओं की स्थिति में सुधार के लिए एक बेहतर नीति का निर्माण करना चाहिए। जिससे वह एक स्वस्थ समाज का निर्माण कर सकें और आने वाले समय में अपने को बुनाई तक ही सिमित न रखें बल्कि वे अपने को बाजार तक ले जायें।

संदर्भ

1. Raman, Vasanthi. The warp and the weft: Community and Gender Identity Among Banaras weavers. Routledge, 2010.
2. Bismillah, Abdul. Jheeni Jheeni Beeni Chandaria, New Delhi Rajkamal Prakashan, 1987.
3. Shoaib M. A Study of socio- economic problems of weavers. Varanasi, Ganga Kaveri Publishing House, 1994.
4. Shoaib M. The Julahas: An Ethnographic and socioeconomic of madanpuria weavers of Banaras, 2004-05.
5. Bose Tarun Kanti. Globalization pushes Varanasi weavers to Hunger and Death, 2007.
6. Raman, Vasanthi. Entangled yarns: Banaras weavers and social crisis. Indian Institute of Advanced Study. Rashtrapati Nivas Shimla, Kirti Nagar, New Delhi, 2013.
7. Sinha R. Status of women and Economic Development-Some Econometric, Evidence, RBSA Publishers, 2005.
8. Meher, Raj Kishor. The Handloom industry and the socio-economic conditions of weavers in Orissa, Internal Research Project, NCDS, Bhubaneshwar, 1995.

भारतीय इतिहास में नारी शिक्षा

आरती राय

शोध छात्रा - शिक्षाशास्त्र विभाग, भगवन्त विश्वविद्यालय, अजमेर, राजस्थान, भारत

डॉ० पी० पी० गोस्वामी

भगवन्त विश्वविद्यालय, अजमेर, राजस्थान, भारत

प्रस्तावना-

विश्व में सभ्यता का इतिहास जब से माना जाता है, तब से किसी न किसी रूप में नारी का महत्व पाया जाता है। मानव जीवन में नर और नारी दो मौलिक आधार हैं, जिनके सहयोग से ही संसार में मानव सामाजिक और उसका विकास हुआ है। इसमें कोई संदेह नहीं कि समाज में ऐसे युग भी आये हैं जब नारी की सामाजिक स्थिति बड़ी हीन रही है और साथ ही समाज ने अपने इतिहास के हर मोड़ पर उसे देवी का स्थान भी दिया है। संसार की सृष्टि के संबंध में जो कहानियाँ हमारी देवमालाओं में उपलब्ध हैं उनके अध्ययन से भी हम इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं कि नारी का स्थान सदा से महत्वपूर्ण रहा है। संसार के सम्पूर्ण साहित्य में सृष्टि की जननी द्वारा ही मानी जाती है और यह जननी किसी भी साहित्य में पुरुष या नर नहीं है। यह नारी ही है।¹ यही कारण है कि मैत्री, माता, माँ सारे संसार में एक ऐसा विचार है जिसका आरम्भ अगर ढूँढ़ा भी जाय तो निश्चित नहीं किया जा सकता कि कब से हुआ यह माँ या माता चाहे भारत की प्रकृति हो या धरती माता हो चाहे सीता हो, चाहे कुँवारी माँ मरियम हो, सम्पूर्ण मानवी विचारधारा की नींव हैं और सारे सामाजिक संगठनों और उनके विकास का आधार है। समाज सृष्टि के जिस सामाजिक समझौते की नींव में भी नारी के ही सहयोग का विचार पाया जाता है। हमारी संस्कृति सभ्यता एवं सामाजिक विकास की जड़ यहाँ नारी है।²

यह बात तो स्पष्ट है कि बिना उचित शिक्षा के मानव धन ऐसा ही है जैसे कि खान में पड़ा हुआ सोना शिक्षा द्वारा इस धन को विभिन्न कार्यों के लिए लाभदायक बनाया जाता है। अब जहाँ तक मानव शिक्षा का प्रश्न है, माँ की गोद से ही शिक्षा का कार्य आरम्भ हो जाता है। शिक्षित माताएँ अपने बच्चों को उचित ढंग से प्राथमिक स्तर से ही तैयार करा देती हैं। इस प्रकार नारी का महत्व वर्तमान आर्थिक आधार पर भी विशिष्ट है।

यह बात स्वामी विवेकानन्द जी ने 24 जनवरी 1868 में महाप्रभू चौतन्य पर बात करते हुए कही थी। उन्होंने कहा था कि हमें नारियों को शिक्षा देना चाहिए नहीं तो समाज में तबाही आयेगी और भ्रष्टाचार आ जायेगा। उन्होंने कहा था कि शिक्षा से मेरा अर्थ वह शिक्षा नहीं है जो आजकल दी जा रही है। यह ऐसी शिक्षा है जिसे हम भावनात्मक शिक्षा कह सकते हैं। केवल कुछ पुस्तकों के अध्ययन से नारियाँ शिक्षित नहीं हो सकती। उन्होंने कहा “हम ऐसी शिक्षा चाहते हैं जिससे मानव चरित्र का निर्माण हो जिससे मानव शक्ति बढ़े और जिसकी छत्र छाया में हर व्यक्ति अपने पाँव पर खड़ा हो सके। ऐसी शिक्षा प्राप्त करके नारियाँ अपनी समस्याओं का समाधान स्वयं कर सकेंगी। शताब्दियों से चली आ रही प्रणाली ने हमारी नारियों को विवश और मजबूर बना दिया है वे स्वयं विवश और मजबूर नहीं हैं यह मनोवैज्ञानिक प्रभाव है, जिसके कारण वे अपने को कमजोर और विवश समझने लगी हैं। इन्हीं नारियों में तो झाँसी की रानी भी थी। हमें पूरी चेष्टा करनी चाहिए कि हमारी नारियाँ पवित्रता और धार्मिक प्रवृत्ति के आधार पर अपनी शिक्षा प्राप्त करें क्योंकि उनका शिक्षित होना हमारे देश की उन्नति और विकास के लिए अति आवश्यक है।” मानवी साधन के उपनिवेश का काम तभी पूरा हो सकेगा जब नारी सम्पूर्ण रूप में जागृत और शिक्षित हो जायेगी क्योंकि मानव मुद्रा Culturally generated होने के कारण अगर बचपन ही से संभाली नहीं जायेगी तो उसका उचित उपयोग संभव नहीं हो सकेगा।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भारतवर्ष में भी 19 वीं शताब्दी से नारी शिक्षा के धार्मिक एवं सामाजिक स्तरों पर हमारे विचारकों ने अपने विचार प्रकट किये विशिष्टतः स्वामी विवेकानन्द जी, श्री महर्षि दयानन्द सरस्वती, महात्मा गाँधी और अन्य दूसरे शिक्षाशास्त्रियों एवं समाज सेवियों ने नारी के महत्व को समझा और समझने की चेष्टा की।

प्राचीन काल

ऐसा नहीं है कि यह पद्धति भारत में पश्चिमी प्रभाव से चली। भारत में प्राचीन काल से ही नारी का महत्व माना गया है।³ हमारे यहाँ लक्ष्मी, सरस्वती और काली लाक्षणिक रूप से शिक्षा और शक्ति के मूल्य को प्रकट करती हैं और ये सबकी सब देवियाँ हैं अथवा नारियाँ हैं। शिक्षा और शक्ति मिलकर ही मानव निर्माण का आधार हो सकती है।

भारत एक धर्म प्रधान देश है अतः हम भारतवासी आदि काल से ही देवी-देवताओं की आराधना करते रहे हैं। धर्म में विशेष अभिरूचि रखने के कारण हमारा जीवन, परिवार, समाज, शिक्षा-दीक्षा, सभी धर्म पर ही अवलम्बित हो गया। वास्तव में, भारतीय शिक्षा पर भी धर्म का विशेष प्रभाव पड़ा। जिसके कारण प्रारम्भिक शिक्षा में धार्मिक ग्रन्थों का अध्ययन ही प्रमुख विषय बन गया। जन साधारण के बीच यह धारणा बन गयी थी कि वेद ही सभी धर्मों का मूल है, जो वेदों का अध्ययन नहीं करता था उसे अज्ञानी अथवा अधर्मी का जाता था एवं वेदों के ज्ञाता को पंडित कहा जाता था। प्रारम्भिक समाज में न तो जाति भेद था और न स्त्री पुरुष की स्थिति में कोई विशेष अंतर था। विशेष रूप से शिक्षा के क्षेत्र में तो दोनों को पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त थी। बालक एवं बालिकाएँ दोनों गुरुकुलों में शिक्षोपार्जन करते थे और दोनों के अध्ययन के विषयों में समानता थी। आश्रमों में सह-शिक्षा की व्यवस्था होने के कारण स्त्री एवं पुरुष दोनों ने शिक्षा के क्षेत्र में सम्मान प्राप्त किया था।⁴ यह कहना कि धर्म ने नारियों को नर के बराबर स्तर नहीं दिया मान्य नहीं है, क्योंकि हम जानते हैं कि उपनिषद् में भी मैत्री नायिका नारी मौजूद है। शिक्षा के क्षेत्र में वैदिक काल से ही नर और नारी दोनों के साथ बराबरी का व्यवहार पाया जाता है।

शिक्षा मानव बुद्धि के विकास के लिए आवश्यक है। शिक्षा से ही चरित्र का निर्माण होता है शिक्षा से ही जीवन अनुशासित बनता है। शिक्षा से ही दूषित प्रवृत्ति का अन्त होता है जिससे उज्ज्वल भविष्य बनता है। वास्तव में पूर्व वैदिक काल में भी भारतवासियों ने शिक्षा के महत्व को समझा और उसके प्रचार के लिए अथक प्रयत्न किया। संभवतः इसी कारण स्त्री-पुरुष दोनों को शिक्षा प्राप्त करने की स्वतंत्रता दी गई। शिक्षण संस्थानों में सह-शिक्षा की भी व्यवस्था कर दी गई। कालान्तर में सामाजिक जटिलताओं के बढ़ने के कारण नारी शिक्षा के महत्व में कमी नहीं आई। वास्तव में महाकाव्य काल में भी नारी शिक्षा का महत्व बना रहा और इसका उत्तरोत्तर विकास होता रहा। बौद्ध काल में भी नारी शिक्षा का महत्व पूर्णतः बना रहा, जिस कारण अनेक महिलाओं ने गृह त्याग कर शिक्षा अर्जित किया।⁵ वास्तव में शिक्षा जीवन का एक महत्वपूर्ण अंग है।

ऋग्वैदिक काल

ऋग्वैदिक काल में शिक्षा पर इतना बल दिया गया कि मानव जीवन को चार भागों में विभक्त कर दिया गया। जीवन के प्रथम भाग में प्रत्येक बालक एवं बालिका को ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए वेद का अध्ययन करना था। वास्तव में ऋग्वेद में वैसे सभी विषयों का विश्लेषण है जिसकी आवश्यकता प्रत्येक मानव के लिए थी। उस समय के सभी बालक-बालिकाओं ने इसका अध्ययन किया। गुरु कुलों में रहकर वे वेदों का ज्ञान तो अर्जित करते ही थे साथ-साथ अनुशासित जीवन व्यतीत करने की शिक्षा भी उन्हें दी जाती थी। वेदों के अध्ययन से उनके मस्तिष्क एवं चरित्र दोनों का विकास होता था। संभव है इसलिए पूर्व वैदिक काल में नारी को विद्योपार्जन करने की स्वतंत्रता दी गई। इन धार्मिक ग्रन्थों के अध्ययन से उनमें धार्मिक भावना का समावेश होता था। इस कारण उन्हें कुशल पारिवारिक जीवन व्यतीत करने में बड़ी सहायता मिलती थी। महिलाओं ने भी ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए वेदों का अध्ययन किया और कुशल गृहस्थी के रूप में अवतरित हुई। अधिकांश विद्वानों का मत है कि वैदिक युग में नारी शिक्षा चरम सीमा पर थी। महिलाएँ बुद्धि और ज्ञान के क्षेत्र में अग्रणी थीं।⁶ दर्शन और तर्कशास्त्र में भी उन्होंने निपुणता प्राप्त की थी। ऋग्वेद से ज्ञात होता है कि अनेक विदुषियों ने ऋग्वेद की अनेक ऋचाओं के प्रणयन में योगदान किया। ऐसी अनेक महिलाओं के नाम भी ऋग्वेद की ऋचाओं में मिलते हैं जिन्होंने इसके ऋचाओं की रचना की उनमें रोमशा, अपाला, उर्वशी, विश्ववारा, सिकता, निवावरी, लोपामुद्रा आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इन महिलाओं ने शिक्षा प्राप्त कर समाज में विशेष सम्मान प्राप्त किया।

उत्तर वैदिक काल

उत्तर वैदिक काल में नारी शिक्षा पतनोन्मुख हुई नारी के लिए निंदनीय शब्दों का प्रयोग होने लगा। उनके द्वारा वेदों के अध्ययन पर प्रतिबन्ध लगाया दिया गया। पूर्व वैदिक काल में उन्हें यज्ञ अनुष्ठान सम्पादित करने की स्वतंत्रता थी। किन्तु उत्तर वैदिक काल में उन्हें यज्ञ अनुष्ठान सम्पादित करने की स्वतंत्रता थी किन्तु उत्तर वैदिक काल में इस पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। परिणामस्वरूप अनेक महिलाओं को गुरुकुल आश्रमों में प्रवेश नहीं दिया जाने लगा। उन्हें परिवार में रहकर ही अध्ययन करने का आदेश समाज ने दिया ऐसी स्थिति में ये माता-पिता भाई-बन्धु और मित्रों से शिक्षा अर्जित करने लगी। ऐसा प्रतीत होता है कि उस स्थिति में उनके लिए विद्या के क्षेत्र में विशिष्टता प्राप्त करना कठिन हो गया होगा। फिर भी सूत्र काल तक अनेक स्त्रियाँ यज्ञ सम्पादित करती रही राम के युवराज पद पर अभिषेक के समय तक कौशल्या ने यज्ञ सम्पादित किया। महाभारत से ज्ञात होता है कि पाण्डवों की माता कुन्ती अर्धवेद में पारंगत थी।

वास्तव में ऐसे अनेक उदाहरण उत्तर वैदिक कालीन ग्रन्थों में उपलब्ध है जिनसे प्रमाणित होता है कि समाज में नारी शिक्षा की परम्परा कायम थी इस तथ्य की पुष्टि इस बात से भी होती है कि बालकों की भाँति बालिकाओं का भी उपनयन संस्कार होता था। अर्धवेद में कन्याओं द्वारा ब्रह्मचर्य के पालन का स्पष्ट उल्लेख है। सामाजिक प्रतिबन्धों के कारण शिक्षा शिक्षाविदों ने उत्तर शिक्षाविदों ने उत्तर वैदिक कालीन महिलाओं की दो समूहों में विभक्त किया है। प्रथम समूह में उन महिलाओं को रखा गया है जो साधौवधू थी, अर्थात् वे विद्याध्ययन के पश्चात् विवाह करती थी और गृहस्थ जीवन में प्रवेश कर परिवार का सुख प्राप्त करती थी। वे पति की सेवा करती थी और संतान को प्रारम्भिक शिक्षा देती थी। उत्तर वैदिक काल में भी अनेक विदुषियों का उल्लेख मिलता है। गार्गी, मैत्रेयी, सुलमा आदि अनेक नारियों ने इस युग में भी शिक्षा के क्षेत्र में सम्मान प्राप्त किया था। महाकाव्य कालीन विदुषियों में कौशल्या, मदोदरी, सीता, शबरी, कुन्ती, द्रोपदी, गांधारी आदि अपनी उल्लेखनीय कार्यों और विद्वता के लिए आज भी अमर है।

महाकाव्य काल

महाकाव्य काल के बाद हम बौद्ध काल में प्रवेश करते हैं। इस काल में पुनः नारियों को स्वतंत्रता प्रदान की गई। भगवान बुद्ध ने तो सर्वप्रथम अनेक संघ में प्रवेश पर प्रतिबन्ध लगा दिया था। किन्तु प्रिय शिष्यों के अनुरोध पर बाद में नारियों को संघ में प्रवेश की अनुमति प्रदान की। इससे सामन्तों, श्रेष्ठवर्ग की नारियों से शिक्षा और दर्शन के प्रसार में बड़ी सहायता मिली। ब्रह्मवादिनीकी भाँति बौद्धमठों में भी अनेक नारियों ने धर्म और दर्शन के आर्य सत्य के साक्षात्कार हेतु ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करने लगी। इनमें से कुछ तो सिंहल जैसे दूर देशों में भी गई और बौद्ध धर्म की महान् शिक्षिका के रूप में सम्मान

प्राप्त किया। इस युग में भी ब्रह्मचारिणी के रूप में रहते हुए अनेक महिलाओं ने विभिन्न विषयों का अध्ययन कर विशिष्टता प्राप्त की। इनमें शुभा, अनुपमा, सुमेदा आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।⁷

भारतवर्ष इस प्रकार प्राचीन काल से ही नारी शिक्षा के संबंध में प्रगतिशील रहा है।

निष्कर्ष

वर्तमान युग में जब शिक्षा की आवश्यकता सारे संसार में जानी और मानी जा रही है। यह कैसे हो सकता है कि भारतवर्ष जो स्वयं प्रगतिशील देश है, नारी शिक्षा की ओर ध्यान नहीं देगा यह बात अब स्पष्ट हो चुकी है कि नारी भी सामाजिक जीवन में उतनी ही महत्वपूर्ण है जितना की पुरुष साथ ही किसी भी विकासशील देश को आज के युग में अपनी सम्पूर्ण शक्ति को देश की उन्नति में और विकास में लगाना आवश्यक है तभी हम यह सोच सकते हैं कि हम दुनिया के दूसरे देशों की तुलना में तेजी के साथ तरक्की के रास्ते पर चल सकेंगे।

नारियाँ हमारे देश की वो धन है जिनपर हमारी आने वाली पीढ़ियाँ निर्भर करती हैं, अगर हम उनको वर्तमान आवश्यकतों के लिए तैयार न कर सकें तो हम देश की भलाई के और उन्नति के उद्देश्य को पूरा नहीं कर पायेंगे।

संदर्भ

1. कणे, पी०बी० धर्मशास्त्र का इतिहास, हिन्दी समिति विभाग, लखनऊ-1965।
2. उपाध्याय, भागवत शरण प्राचीन भारतीय का इतिहास, वीमेन इन ऋग्वेद, नई दिल्ली, 1874।
3. चकलदार, एच०बी०: सोशल लाइफ इन एन्सियेण्ट इण्डिया, पृ. 199।
4. सिंह, हरिशंकर (2015) 'स्त्री शिक्षा' मेरठ: आर० लाल० बुक डिपो, पृ. 199-200।
5. आदम स्मिथ: दी वेल्थ ऑफ नेशन्स, 1937
6. वर्मा, कीर्ति (2015), 'स्त्री शिक्षा का इतिहास', कानपुर: रोशनी पब्लिकेशन्स प्रथम संस्करण पृ. 27।
7. लीला, कुमारी, (1984) 'डेवलपमेंट ऑफ वूमने एजुकेशन इन उत्तर प्रदेश सिन्स इंडिपेंडेंस विथ स्पेशल रिफ्लेन्स टू वाराणसी', वाराणसी: पी-एच०डी० एजुकेशन, बी०एच०यू०।

भोटिया जनजाति एवं आधुनिकीकरण

डॉ० अनीता बिष्ट

शोध निर्देशिका, समाजशास्त्र विभाग, राजकीय महाविद्यालय, दोषापानी, नैनीताल

श्री नरेश सिंह ग्वाल

शोध छात्र, समाजशास्त्र विभाग, पं० ब०द० पाण्डे पिरसर, बागेश्वर, उत्तराखण्ड

प्रस्तावना-

भारतीय समाज बहुत पुराना और अत्यधिक जटिल है। प्रचलित अनुमान के अनुसार पांच हजार वर्ष पूर्व की पहली ज्ञात सभ्यता के समय से आज तक लगभग पांच हजार वर्षों की अवधि इस समाज में समाहित है। इस लंबी अवधि में विभिन्न प्रजातीय लक्षणों वाले और विविध भाषा-परिवारों के आप्रवासियों की कई लहरें यहां आकर इसकी आबादी में घुलमिल गयीं और इस समाज की विविधता, समृद्धि और जीवंतता में अपना-अपना योगदान दिया।¹

समकालीन भारत में सामाजिक क्रमविकास के कई अलग-अलग स्तर साथ-साथ मौजूद हैं जैसे आदिकालीन शिकारी और भोजन संग्राहक, झूम खेती करने वाले किसान, विभिन्न प्रकार के घुमंतू (बकरी-भेड़ और मवेशी पालक, एक जगह से दूसरी जगह घूम-घूमकर व्यापार करने वाले और कारीगर तथा शिल्पी) एक ही जगह बसे किसान, दस्तकार और प्राचीन वंश परंपरा वाले भूस्वामी तथा अभाजात वर्ग। दुनिया के अधिकतर प्रमुख धर्म-हिंदू, इस्लाम, ईसाई और बौद्ध यहां हैं और इनके साथ आस्था और कर्मकांड की दृष्टि से अलग-अलग ढंग के संप्रदाय और पंथ भी यहां हैं। इन सबके साथ आधुनिक अकादमिक, अफसरशाही, औद्योगिक और वैज्ञानिक अभिजन को भी जोड़ देने से हम देखते हैं कि यहां अतीत, वर्तमान और भविष्य तीनों साथ-साथ रह रहे हैं। अपने क्रमविकास की प्रक्रिया में भारतीय समाज ने एक मिली-जुली संस्कृति विकसित की है² जिसकी विशेषता है बहुलतावाद के कुछ स्थायी संरूप।

उत्तराखण्ड में मुख्यतः पांच जनजातियाँ (जौनसारी, थारू, बोक्सा, राजी एवं भोटिया) पाई जाती हैं। जिनमें जौनसारी जनजाति देहरादून के चकराता, त्यूनी, कालसी, लाखामण्डल क्षेत्र, उत्तरकाशी के परग क्षेत्र तथा टिहरी के जौनपुर क्षेत्र में निवास करती है। थारू जनजाति उधमसिंह नगर जिले के खटीमा, किच्छा, नानकमत्ता और सितारगंज क्षेत्र में निवास करती है। बोक्सा जनजाति उधमसिंह नगर जिले के बाजपुर, गदरपुर तथा काशीपुर, नैनीताल जिले के रामनगर एवं पौड़ी जिले के कोटद्वार क्षेत्र में निवास करती है। राजी जनजाति के पिथौरागढ़ जिले के धारचुला, डीडिहाट विकासखण्ड में निवास करती हैं। भोटिया जनजाति पिथौरागढ़ (दारमा, ब्यास एवं चौदास घाटी), उत्तरकाशी (हरसिल एवं डुण्डा) एवं चमोली (नीति एवं माणा घाटी) में निवास करती हैं। पिथौरागढ़ जनपद के भोटिया जनजाति को 'रं' (शौका) के नाम से जाना जाता है, उत्तरकाशी की भोटिया जनजाति को 'रोंग्बा' (जाड़) के नाम से जाना जाता है एवं चमोली जनपद की भोटिया जनजाति को 'रोंग्पा' (तोलछा-मारछा) के नाम से जाना जाता है।

भारतीय जनजाति

भारतीय संस्कृति को समृद्ध करने में जनजातियों का विशेष योगदान रहा है। उनके शांत एवं सरल सौम्य जीवन में परिवर्तनों का सिलसिला तब शुरू हुआ जब 1962 ई० में भारत-चीन का युद्ध हुआ और इनका तिब्बत के साथ व्यापार बंद हो गया जिसके फलस्वरूप इनका मुख्य व्यवसाय चौपट हो गया। इससे इनके जीवन-शैली में परिवर्तन आना स्वाभाविक था और रोंग्पा जनजाति पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ना सहज ही था।³

समाज को सभ्य और असभ्य-हिंसक, जंगली या बर्बर (क्रूर) में विभक्त किया जाता था। समस्त असभ्य समाज निरक्षर थे और उनमें लेखन का अभाव था। इसलिए आने वाली पीढ़ी में संस्कृति का हस्तांतरण मौखिक परम्परा से होता था, और इसलिए उस समाज का इतिहास उतना ही होता था जितना उसके सदस्यों की स्मृति में होता था। इतिहास की अनुपस्थिति, युवा पीढ़ी में समाज के ज्ञान कोष का मौखिक हस्तांतरण, सीधी-सादी यांत्रिकी, उत्तरजीविता के लिए प्रकृति पर निर्भरता, और अति-प्राकृतिक दैवी शक्तियों पर आस्था ही उनकी जीवन-शैली होती थी। छोटे-छोटे झुंडों में रहते हुए, अपने समुदाय की संकीर्ण सीमाओं से बाहर के संसार से अनभिज्ञ और बेखबर, तथा भौगोलिक और सामाजिक दृष्टि से अलग-थलग, ये समुदाय अपने को एक निश्चित क्षेत्र का वासी मानते थे, और एक ही प्रजातीय मूल से अपने को जोड़ते थे।

देश के 30 राज्यों तथा संघ शासित क्षेत्रों में कुल मिलाकर ऐसे 705 जातीय समूह इत्यादि हैं, जिन्हें अनुसूचित जनजातियों के रूप में अधिसूचित किया गया है। वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार, इनकी कुल आबादी 10.43 करोड़ की है तथा वे देश की कुल आबादी के 8.60 प्रतिशत भाग का गठन करते हैं। कुल जनजातीय आबादी में से 5.24 करोड़ पुरुष हैं तथा 5.19 करोड़ महिलाएं। इसी प्रकार से, जनजातीय लोगों का सबसे बड़ा भाग ग्रामीण क्षेत्रों में निवास

करता है, जबकि कुछ (अर्थात् 10 प्रतिशत) शहरी क्षेत्रों में भी निवास करते हैं। ऐसा कहा जाता है कि भारत पूरे विश्व की जनजातीय आबादी के आधे से भी अधिक भाग का घर है। अनुसूचित जनजातियों के अनुपात के मामले में 'सबसे निचले स्तर पर आने वाले पांच राज्यों/संघ शासित प्रदेश में उत्तराखण्ड (2.90 प्रतिशत) अंतिम पायदान पर है। ये लोग विकास एवं आधुनिक समाज से अब कटे हुए नहीं हैं।⁴ जनजातीय समुदाय में समय के साथ काफी परिवर्तन हुआ है जिसका युवाओं पर गहरा प्रभाव हुआ है। जनजातियों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति, परिवार, महिलाओं एवं युवाओं तथा पारम्परिक विवाह व संस्कृति पर आधुनिकीकरण का प्रभाव पड़ा है।

भारत एक कृषि प्रधान देश है जिसमें परिणामस्वरूप संयुक्त परिवार प्रथा जीवित है। विगत वर्षों में कृषि पर जनसंख्या का दबाव बढ़ता जा रहा है। भूमि सीमित होती है और सीमित भूमि को बढ़ती हुई जनसंख्या का पेट पालना होता है। नगरीकरण एवं प्रौद्योगिकी के विकास के फलस्वरूप पूरे देश में कृषि के स्थान पर अन्य व्यवसायों की ओर व्यक्ति उन्मुख होने लगे हैं। शिक्षा के प्रसार के साथ-साथ ग्रामीण युवक भी प्रशासनिक, पुलिस, सेना, शिक्षा, बैंक एवं अन्य सरकारी नौकरियाँ आदि प्राप्त करने लगे हैं। फलस्वरूप उनमें ग्रामों से नगरों की ओर अप्रवासन प्रवृत्ति में वृद्धि हुई है।

भोटिया (२) जनजाति

भोटिया (२) जनजाति के लोग पहले तिब्बत व्यापार पर निर्भर थे लेकिन वर्तमान में वह अब बाजार-अर्थव्यवस्था पर निर्भर रहने लगे हैं। भोटिया जनजाति के लोग अब पारम्परिक ज्ञान को पूँजी के रूप में उपयोग करने लगे हैं। जैसे- जड़ी बूटियाँ एवं दन, चुटका, थुलमा, पंखी (ऊन से बने वस्त्र) को वह सीधे बाजार में बेचने लगे हैं जिससे उनको पूँजी की बचत होने लगी है। भोटिया जनजाति के लोग अब पारम्परिक वस्तुओं का ही उपभोग नहीं करते हैं बल्कि आधुनिक वस्तुओं का भी अधिकतम उपभोग करने लगे हैं। जैसे- टी०वी०, मोबाइल, इंटरनेट, कपड़े धोने की मशीन, नहाने एवं कपड़े धोने के साबुन, सैम्पू, एवं मेकअप के सामान का भी अधिकतम उपभोग करने लगे हैं जिससे उनकी जीवन शैली भी बदल रही है।⁵ भोटिया जनजाति के लोग वर्तमान में विज्ञापन की चमक-दमक के कारण वस्तुओं के पीछे भाग रहे हैं, उनकी निगाह पारम्परिक वस्तुओं पर अब कम होने लगी है। भोटिया जनजाति में भी सम्पन्न और अभिजन वर्ग द्वारा प्रदर्शनपूर्ण जीवन शैली अपनाई जा रही है, जिसे सामान्य जन (भोटिया परिवार) भी ललचाई निगाहों से देखते हैं। यह भोटिया जनजाति की सभ्यता के लिए एक चिंताजनक प्रश्न है जिसको उपभोक्तावाद ने परोसा है, जैसे-जैसे यह दिखावे की संस्कृति फैलेगी भोटिया जनजाति में भी सामाजिक अशांति और विषमता भी बढ़ेगी।

मानवीय गतिशीलता आधुनिकीकरण को प्रभावित करती है। अधिक मानवीय गतिशीलता आधुनिकीकरण की प्रक्रिया में वृद्धि करती है एवं न्यून मानवीय गतिशीलता आधुनिकीकरण प्रक्रिया को प्रभावित कर रही है। भोटिया (२) जनजाति के लोगों में 'सामाजिक गतिशीलता बढ़ी है। वह अब एक स्थान पर रहने के बजाए नगरों में भी निवास कर रहे हैं। भोटिया जनजाति के लोग वर्ष में छः माह उच्च हिमालयी क्षेत्र एवं छः माह निचले हिमालयी क्षेत्र में प्रवास करते हैं। इनका यह गतिशील जीवन आधुनिकीकरण के आयामों को शिथिल करते है। भोटिया जनजाति के लोग अब पारम्परिक रोजगार के स्थान पर नये तरह के रोजगारों को अपना रहे हैं। जैसे-होमस्टे, होटल, रेस्टोरेंट, पर्यटन एवं सरकारी क्षेत्र में नौकरी भी कर रहे हैं। भोटिया जनजाति के पारम्परिक खान-पान एवं वेशभूषा में भी काफी परिवर्तन आया है। जैसे-मैगी, चिप्स, मोमो, कोल्ड ड्रिंक्स, चोकलेट, चाउमीन आदि तथा जींस, टी-शर्ट, कोट-पैट आदि का उपयोग भी बढ़ा है।

भोटिया जनजाति के लोग पारम्परिक तरीके से विवाह तो कर रहे हैं लेकिन उसके स्वरूप में परिवर्तन आया है। जैसे-विवाह के खान-पान के तरीकों में बदलाव, तथा पारम्परिक रस्मों में बदलाव। भोटिया जनजाति के लोगों में शिक्षा के प्रति पहले की अपेक्षा रूची बढ़ी है तथा भोटिया समाज शिक्षा के प्रति जागरूक हो रहा है। जैसे-रोंगा समुदाय के लोग वर्तमान में उच्च पदों पर कार्यरत हैं और अपनी काबलियत से देश हित में सहयोग कर रहे हैं। भोटिया (२) जनजाति के लोगों में साक्षरता तथा आधुनिक शिक्षा के क्षेत्र में वृद्धि हुई है।

भौगोलिक परिस्थितियों रोंगा जनजाति की स्वतंत्रता को प्रभावित करती हैं। भोटिया (२) जनजाति में व्यक्तिवादिता की भावना में वृद्धि हो रही है। रोंगा जनजाति में पुरुषों की तरह महिलाएं भी पंचायतों में प्रतिभाग करने लगी हैं एवं निर्णय लेने की क्षमता भी प्रबल है। भोटिया जनजाति के लोगों की सार्वजनिक कार्यक्रमों में आज भी सहभागिता बरकरार है।

भोटिया (२) जनजाति के लोगों पर आज भी अपने हितों के प्रति बड़ा मनोवैज्ञानिक दबाव है। रोंगा जनजाति के लोग आज भी भावनात्मक रूप से एक दूसरे के साथ जुड़े हैं। पर्यावरण के क्षेत्र में गौरा देवी के कार्य आज भी रोंगा जनजाति को मनोवैज्ञानिक तौर पर पर्यावरण के प्रति लगाव रखने की प्रेरणा देते हैं। भोटिया जनजाति के लोगों में परानुभूति की भावना आज भी बनी हुई है। प्रौद्योगिकी भोटिया जनजाति के लोग ऊर्जा के निर्जीव स्रोतों का उपयोग करने लगे हैं। जैसे-बिजली, पानी, सोलर ऊर्जा आदि। भोटिया जनजाति के लोग आधुनिक प्रौद्योगिकी का उपयोग कर रहे हैं।⁶ रोंगा जनजाति के लोग कृषि में आधुनिक उपकरणों का उपयोग कर रहे हैं। भोटिया जनजाति के लोग आधुनिक उपकरणों का भी प्रयोग करने लगे हैं। भोटिया जनजाति के लोग अब अपने हथकरघा के कार्यों में भी आधुनिक मशीनों का भी उपयोग करने लगे हैं।

केन्द्र सरकार तथा राज्य सरकारों द्वारा भोटिया (२) जनजातीय समुदाय की आर्थिक स्थिति की ओर ध्यान देने की आवश्यकता है, क्योंकि आधुनिकीकरण का भोटिया जनजाति पर केवल प्रभाव हुआ है न कि वह पूर्णरूप से उनका विकास हुआ है। आधुनिकता के दौर में वह शिक्षित अवश्य हुए हैं लेकिन पूर्णता का अभाव है। आधुनिकीकरण के कारण वह अब डॉक्टर से परामर्श आवश्यक करने लगे हैं लेकिन उनके क्षेत्र में कोई भी सरकारी चिकित्सालय नहीं है। आधुनिकीकरण के कारण भोटिया जनजाति के लोगों के रहन-सहन में परिवर्तन आवश्यक हुआ है लेकिन घरों की स्थिति वहीं की वहीं है। आधुनिकीकरण के कारण भोटिया जनजातियों के मध्य गलत धारणाओं पर प्रभाव पड़ा है लेकिन उनको इन धारणाओं के प्रति पूर्णतः जागरूक करने की आवश्यकता है। भोटिया जनजाति के पारंपरिक ज्ञान के संरक्षण की दिशा में सरकार को कार्य करना चाहिए। भोटिया जनजाति की संस्कृति आधुनिकीकरण के कारण विलुप्त हो रही है। इसे संरक्षित करने का उपाय सरकार को करना चाहिए। भोटिया जनजाति के पारंपरिक भवनों एवं ऐतिहासिक धरोहरों को भारत सरकार के

पुरातात्विक विभाग के अधीन संरक्षित करने की आवश्यकता है। भोटिया जनजाति की पारंपरिक कृषि/खेती को प्रोत्साहित कर संरक्षित एवं रोजगारपरक बनाने की आवश्यकता है। भोटिया जनजाति क्षेत्र में अच्छे सरकारी माइग्रेशनल विद्यालय खोलने की आवश्यकता है ताकि ये क्षेत्र प्रारम्भिक एवं माध्यमिक शिक्षा से भी जुड़ सकें।

भोटिया (२) जनजाति क्षेत्र में उच्च शिक्षण संस्थान खोलने की आवश्यकता है ताकि ये लोग उच्च शिक्षा से भी जुड़ सकें। भोटिया जनजाति क्षेत्र के केन्द्र बिन्दु में एक केन्द्रीय विद्यालय खोलने की आवश्यकता है ताकि भोटिया जनजाति के लोग केन्द्रीय शिक्षा से भी जुड़ सकें। भोटिया जनजाति क्षेत्र में एक जनजातीय विश्वविद्यालय या संस्थान की स्थापना करनी चाहिए जो यहां की संस्कृति, परम्परा ऐतिहासिक एवं पुरातात्विक अध्ययन, भोटिया जनजाति के आर्थिक-सामाजिक एवं प्रौद्योगिकी अध्ययन एवं संरक्षित करें। भोटिया जनजाति के हस्तशिल्प कार्य को संरक्षित कर रोजगारपरक बनाने के लिए सरकार को योजना बनानी चाहिए। भोटिया जनजाति मूलतः तिब्बत बॉर्डर पर निवाश करती है, इन्हें द्वितीय रक्षापंक्ति के लोग भी कहा जाता है। आधुनिकीकरण के कारण इनका पलायन अत्यधिक हो रहा है, सरकार को इनका पलायन रोकने के लिए जनकल्याणकारी योजना बनाकर पलायन पर अंकुश लगाने का प्रयास करना चाहिए।

निष्कर्ष-

जनजातीय क्षेत्र अंतर्राष्ट्रीय सीमा से लगा हुआ है। यहाँ पर सरकार को यातायात के साधनों में वृद्धि एवं सुगम बनाने की ओर ध्यान देना चाहिए। भोटिया जनजातीय क्षेत्र को संचार एवं नेटवर्क से जोड़ने की पहल सरकार को करनी चाहिए। पर्यटन की दृष्टि से यह क्षेत्र बहुत सुंदर एवं रमणिक है। सरकार को इस क्षेत्र को पर्यटन से जोड़कर एवं रोजगारपरक योजना बनाना चाहिए। इस क्षेत्र में साहसिक पर्यटन एवं हिम क्रीडा के लिए संस्थान खोलने की दिशा में भी सरकार को कदम उठाना चाहिए। भोटिया जनजाति के पारंपरिक जड़ीबूटियों के ज्ञान को संरक्षित करने के लिए जड़ीबूटी शोध संस्थान भी सरकार को खोलने की आवश्यकता है। भोटिया जनजाति के सर्वांगीण विकास के लिए सामुदायिक विकास केन्द्र खोलने के लिए सरकार को प्रयास करने चाहिए।

संदर्भ

1. दुबे, श्यामाचरण (2009), 'भारतीय समाज', हिन्दी अनुवाद, वंदना मिश्र, नेशनल बुक ट्रस्ट, इडिया, पृ० 11
2. अटल, योगेश (2015), 'समाजशास्त्र: समाज की समझ', (हिन्दी संस्करण), पियर्सन, दिल्ली, पृ० 303।
3. आहूजा, राम (2019), 'सामाजिक समस्याएँ', तृतीय संस्करण, रावत पब्लिकेशन, जयपुर, पृ० 149।
4. धुर्ये, जी० एस० (2018), 'भारत में जाति एवं प्रजाति', सजे पब्लिकेशन, नई दिल्ली, पृ० 92।
- 5- Gilline and Gilline (1956) "Cultural sociology" New York: MacMillian CO.
- 6- Gilline and Gilline (1956) "Cultural sociology" New York: MacMillian CO.

भारत-चीन संबंध, एवं सीमा विवाद

डॉ० संतोष कुमार सिंह

असिस्टेंट प्रोफेसर, राजनीतिशास्त्र विभाग, डी०ए०वी पी०जी० कालेज, आजमगढ़

प्रस्तावना-

हजारों वर्षों तक तिब्बत ने एक ऐसे क्षेत्र के रूप में काम किया जिसने भारत और चीन को भौगोलिक रूप से अलग और शांत रखा, परंतु जब वर्ष 1950 में चीन ने तिब्बत पर आक्रमण कर वहाँ कब्जा कर लिया तब भारत और चीन आपस में सीमा साझा करने लगे और पड़ोसी देश बन गए। 20वीं सदी के मध्य तक भारत और चीन के बीच संबंध न्यूनतम थे एवं कुछ व्यापारियों, तीर्थयात्रियों और विद्वानों के आवागमन तक ही सीमित थे। वर्ष 1954 में नेहरू और झोउ एनलाई (Zhou Enlai) ने “हिंदी-चीनी भाई-भाई” के नारे के साथ पंचशील सिद्धांत पर हस्ताक्षर किये, ताकि क्षेत्र में शांति स्थापित करने के लिये कार्ययोजना तैयार की जा सके।

वर्ष 1959 में तिब्बती लोगों के आध्यात्मिक और लौकिक प्रमुख दलाई लामा तथा उनके साथ अन्य कई तिब्बती शरणार्थी हिमाचल प्रदेश के धर्मशाला में बस गए। इसके पश्चात् चीन ने भारत पर तिब्बत और पूरे हिमालयी क्षेत्र में विस्तारवाद और साम्राज्यवाद के प्रसार का आरोप लगा दिया। वर्ष 1962 में सीमा संघर्ष से द्विपक्षीय संबंधों को गंभीर झटका लगा तथा उसके बाद वर्ष 1976 में भारत-चीन राजनयिक संबंधों को फिर से बहाल किया गया।

राजनैतिक तथा राजनयिक संबंध

भारत तथा चीन के शीर्ष नेताओं द्वारा दो अनौपचारिक शिखर सम्मेलन आयोजित किये गए तथा वैश्विक एवं क्षेत्रीय महत्त्व के मुद्दों पर गहन विचारों का आदान-प्रदान किया। दोनों देशों के बीच उच्च-स्तरीय यात्राओं का लगातार आदान-प्रदान, अंतर-संसदीय मैत्री समूह स्थापना, सीमा प्रश्न पर विशेष प्रतिनिधियों की बैठक आदि का आयोजन समय-समय पर किया जाता रहा है। भारत तथा चीन के बीच द्विपक्षीय, क्षेत्रीय और वैश्विक चिंताओं के विभिन्न विषयों पर विचारों के आदान-प्रदान के लिये लगभग 50 संवाद तंत्र हैं।¹

आर्थिक संबंध

21 वीं सदी के प्रारंभ से अब तक भारत और चीन के बीच होने वाला व्यापार 3 बिलियन डॉलर से बढ़कर लगभग 100 बिलियन डॉलर (32 गुना) हो गया है। वर्ष 2019 में भारत तथा चीन के बीच होने वाले व्यापार की मात्रा 92.68 बिलियन डॉलर थी। भारत में औद्योगिक पार्कों, ई-कॉमर्स तथा अन्य क्षेत्रों में 1,000 से अधिक चीनी कंपनियों ने निवेश किया है। भारतीय कंपनियाँ भी चीन के बाजार में सक्रिय रूप से विस्तार कर रही हैं। चीन में निवेश करने वाली दो-तिहाई से अधिक भारतीय कंपनियाँ लगातार मुनाफा कमा रही हैं। 2.7 बिलियन से अधिक लोगों के संयुक्त बाजार तथा दुनिया के 20 प्रतिशत के सकल घरेलू उत्पाद के साथ, भारत और चीन के लिये आर्थिक एवं व्यापारिक सहयोग के क्षेत्र में व्यापक संभावनाएँ विद्यमान हैं। भारत में चीनी कंपनियों का संचयी निवेश 8 बिलियन अमेरिकी डॉलर से अधिक का है।²

1976 में भारत तथा चीन संबंध में कुछ सुधार भी आरंभ हुए। 1976 में भारत तथा चीन में राजदूत संबंधों को बहाल किया गया। 1979 में चीन की विदेश नीति में आर्थिक मुद्दों पर बल दिया गया इसका कारण यह था कि चीन द्वारा इस समय तक उदारीकरण आर्थिक सुधार अपनाए जा चुके थे। इस दौरान चीन ने यह कहा कि सीमा विवाद जैसे मुद्दों को आगामी पीढ़ी के लिए छोड़कर हमें आर्थिक सुधारों की तरफ ध्यान देना चाहिए। 1988 में श्री राजीव गांधी द्वारा चीन की यात्रा की गई जो 34 वर्ष उपरांत किसी भारतीय प्रधानमंत्री की चीन यात्रा थी। 1992 में भारत के राष्ट्रपति श्री आर वेंकटरमन ने चीन का दौरा किया ऐसा करने वाले वे भारतीय गणराज्य के प्रथम राष्ट्रपति बने। 1991 के उपरांत भारत ने भी आर्थिक सुधारों को अपनी नीति का हिस्सा बना लिया तथा दोनों ही देश आर्थिक सुधारों की ओर सहमत हुए। 1998 से 2001 के दौर में एक बार फिर से भारत तथा चीन के मध्य तनाव बढ़ा। 1998 में भारत द्वारा परमाणु परीक्षण किया गया तथा चीन द्वारा इस परमाणु परीक्षण की कड़ी आलोचना की गई। जहां एक तरफ चीन ने संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद में भारत के विरुद्ध प्रस्ताव लाने का प्रयास किया वहीं भारतीय रक्षा मंत्री श्री जॉर्ज फर्नांडिस ने चीन को भारत का सबसे बड़ा शत्रु घोषित कर दिया।

वर्ष 2000 से 2014 के दौर में सम्बन्ध

वर्ष 2001 के उपरांत भारत तथा चीन के संबंध पुनः सामान्य होने लगे 2003 में भारतीय प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेई ने चीन का दौरा किया। दौरे के दौरान दोनों पक्षों ने संबंधों में व्यापक सहयोग की घोषणा पर हस्ताक्षर किए। इसी दौरान सीमा विवाद को शांत करने के लिए एक विशेष प्रतिनिधि

बैठक तंत्र स्थापित करने पर चर्चा हुई। 2005 में भारत तथा चीन के मध्य सामरिक संबंध स्थापित हुए तथा दोनों देशों के बीच में संयुक्त सैन्य अभ्यास आयोजित किया गया। 2010 में एक बार पुनः कश्मीर के निवासियों को चीन के द्वारा स्टेपल वीजा प्रदान करने के संदर्भ में विवाद आरंभ हो गया। इसी के साथ भारत में चीन के सामानों का भी विरोध आरंभ हुआ। इस दौरान भारत तथा चीन के संबंध और कटु हो गए।

वर्तमान में भारत तथा चीन

2014 में चीन के राष्ट्रपति की भारत यात्रा तथा 2017 में शंघाई सहयोग संगठन के सम्मेलन में प्रधानमंत्री मोदी तथा चीन के राष्ट्रपति शी जिनपिंग के मुलाकात हुई। 2018 तथा 2019 में राष्ट्रपति शी जिनपिंग ने बुहान चीन तथा महाबलीपुरम भारत में भारत के प्रधानमंत्री के साथ अनौपचारिक बैठक की। भारत तथा चीन पर्यावरण में साझा परन्तु विभेदीकृत उत्तरदायित्व के सिद्धांत पर एक दुसरे का सहयोग करते हैं। 2020 के आरंभ में भारत तथा चीन का सीमा विवाद बढ़ गया तथा दोनों ही देशों के बीच झड़पें हुई। 2017 में ही डोकलाम विवाद³ में भारत तथा चीन एक-दूसरे के आमने-सामने आ गए। चीन द्वारा भारत की एनएसजी सदस्यता का विरोध किया गया। भारत ने चीन द्वारा प्रस्तावित बेल्ट एंड रोड इनिशिएटिव के चीन-पाक आर्थिक गलियारे का विरोध किया, क्योंकि यह गलियारा पाक अधिकृत कश्मीर (पीओके) से गुजर रहा था तथा यह भारतीय सम्प्रभुता का उल्लंघन भी कर रहा था।⁴

भारत-चीन सीमा विवाद की पृष्ठभूमि

भारत चीन का मौजूदा सीमा विवाद चीन के पूर्व प्रधानमंत्री वेन जियाबाओ की 2010 की भारत यात्रा के बाद ही गहराता गया था। चीनी प्रधानमंत्री की उक्त यात्रा के दौरान दोनों देशों के बीच पारस्परिक महत्व के अनेक मुद्दों पर सहमति बनने की उम्मीद की जा रही थी। पर हुआ इसका ठीक उल्टा। समस्या सुलझने के बजाए उलझ गई और दोनों देश तकरीबन 3,500 कि.मी. की सीमा रेखा को लेकर कोई सार्थक बातचीत नहीं कर सके। चीन के सरकारी पत्रा ने यहां तक कह दिया था कि भारत और चीन की सीमा महज 2,000 किमी. तक सिमटी हुई है। पीपुल्स डेली समाचार पत्र ने भारतीय प्रमाण को गलत और बेबुनियाद बताया। यह सब कुछ चीन के सरकारी पत्रा में उसी समय प्रकाशित किया गया जब चीन के प्रधानमंत्री भारत के दौरे पर थे। चीन में तत्कालीन भारतीय राजदूत श्री एस. जयशंकर ने चीन की दलील को एक खतरे का संकेत माना है। सितंबर 2010 में भारत के प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने भी यह कहा था कि चीन जानबूझकर भारत के उन संवेदनशील क्षेत्रों में अतिक्रमण कर रहा है जो भारतीय सुरक्षा के लिए अत्यंत ही महत्वपूर्ण हैं।⁵

चीन की सोच में सीमा विवाद को लेकर बुनियादी बदलाव देखा जा सकता है। चीन ने बड़ी ही कुटिलता के साथ सीमा विवाद को अपने सामरिक विस्तार के मोहरे की तरह प्रयोग किया है। सीमा विवाद का हल ढूँढने का प्रयास दोनों देशों के बीच 1981 से ही किया जा रहा है। अब तक सीमा विवाद को लेकर 14 सत्रों की वार्ता दोनों देशों के बीच हो चुकी है। लेकिन बात सुलझने के बजाय और उलझती ही जा रही है। क्योंकि चीन जान बूझकर ऐसा कर रहा है। चीन जम्मू-कश्मीर को विवादास्पद क्षेत्रा कहता है, तो उसका कारण सिर्फ पाकिस्तान को खुश करना नहीं है, बल्कि चीन इस क्षेत्र में अपनी पैठ बनाकर भारतीय सुरक्षा को हर तरह से कमजोर करने की कोशिश में है।

उल्लेखनीय है कि अक्सर चीन में सड़क निर्माण के कारण ही चीन ने सीमा विवाद को 1960-62 के बीच विस्फोटक बनाया था। इसी मार्ग से लौकनोर में परमाणविक अस्त्रों के परीक्षण स्थल तक उसकी पहुंच बनती है। दरअसल यहीं से पाक-अधिकृत कश्मीर के रास्ते चीन ग्वाटर के बंदरगाह तक पहुँच सकता है।

चीन भारत की सीमाओं के इर्द-गिर्द सामरिक जाल बुनने का काम पिछले कई वर्षों से कर रहा है। हिमालय की तराई में बसे देशों के बीच सड़क और रेल संपर्कों का निर्माण चीन की चाल है। चीन के काश्गर और पाकिस्तान की राजधानी इस्लामाबाद को जोड़ने वाले काराकोरम हाइवे की लंबाई 1300 किमी. है। इस राजमार्ग को 'फ्रेंडशिप हाइवे' का नाम दिया गया है। पिछले कुछ वर्षों से चीन द्वारा इस सड़क की चौड़ाई 10 मी. से 30 मी. तक बढ़ाई जा चुकी है। चीन ऐसा इसलिए कर रहा है कि युद्ध या संघर्ष की स्थिति में उसकी सेना और सैन्य सामान को एक जगह से दूसरे जगह द्रुत गति से पहुंचाया जा सके।

हाल के कुछ वर्षों में चीन के सामरिक विस्तार को समझते हुए आसानी से कहा जा सकता है कि भारत ही उसका प्रमुख लक्ष्य है। दरअसल मौजूदा हालात 1960-62 से भी बदतर है। सितम्बर 1962 को चीन की सेना ने 'यागलारिज' पर आक्रमण कर दिया था और भारत की सेना पीछे हट गई थी। पुनः पूर्वी सीमा के भीतर तक पी.एल.ए. की सेना जा घुसी थी। पश्चिमी सीमा पर चीन ने तकरीबन 13 भारतीय सैनिक ठिकानों पर कब्जा कर लिया था। लेकिन अंतर्राष्ट्रीय दबाव के कारण 24 घंटे के भीतर चीन की सेना उन जगहों को छोड़कर अपने बैरक में वापस लौट गई थी।

मौजूदा हालात और चीन की नीयत दोनों ही समीकरण 1962 से भी खतरनाक है। इस बार चीन ने भारत की संप्रभुता को चुनौती दी है। पूर्वी और पश्चिमी सीमा पर नए सिरे से विवाद को जन्म देकर चीन ने भारत की अखंडता पर प्रश्न उठाया है। कश्मीर का भौगोलिक ढांचा तीन भागों में बंटा हुआ है। 45 प्रतिशत हिस्सा भारत के पास है। 35 प्रतिशत चीन के पास शेष 20 प्रतिशत पाकिस्तान ने हड़प रखा है। चीन सुनियोजित ढंग से पाक-अधिकृत कश्मीर में अपना सैनिक विस्तार कर भारत की सुरक्षा को और कमजोर करना चाहता है।

चीन भारत को अपने गंभीर प्रतिद्वंदी के रूप में देखता है। इसलिए वह हर कीमत पर भारत को कमजोर करने की कोशिश में है और इसके लिए हर प्रकार की जोर आजमाईश कर रहा है। चीन के सरकारी पत्रा 'पीपुल्स डेली' में यह कहा गया कि "भारत किसी भी तरह चीन का मुकाबला नहीं कर सकता।

भारत तथा चीन सीमा विवाद के मुख्य मुद्दे भारत तथा चीन सीमा विवाद के मुख्य मुद्दे के निम्नलिखित हैं-

1. भारत तथा चीन की पश्चिमी सीमा जॉनसन लाइन से विभाजित है। 1860 में हुए इस निर्धारण के अनुसार अक्सर चीन को तत्कालिक जम्मू कश्मीर रियासत में रखा गया था। परन्तु चीन इस रेखा को नहीं मानता है।
2. मध्य क्षेत्र में भारत तथा चीन का सीमा विवाद नहीं है। यह एकमात्र ऐसा क्षेत्र है जहां दोनों देशों ने एक दूसरे के साथ मानचित्र साझा किए हैं।

3. पूर्वी क्षेत्र में विवाद मैक मोहन लाइन से संबंधित है। इस मैक मोहन लाइन का निर्धारण 1913-14 में तिब्बत के प्रतिनिधियों, ब्रिटिश भारत साम्राज्य तथा चीन के प्रतिनिधियों के बीच हुए शिमला समझौते में किया गया था। चीन के प्रतिनिधियों ने इसे प्रारंभ में मान्यता दी परंतु बाद में इसे स्वीकार करने से इंकार कर दिया।
4. 1962 की लड़ाई में चीन द्वारा मैक मोहन लाइन तथा जॉनसन लाइन पर आक्रमण किया गया था। चीन द्वारा अरुणाचल प्रदेश के लगभग 85000 वर्ग किलोमीटर तथा हिमाचल प्रदेश व उत्तराखंड की कुछ भूभाग पर अपना दावा किया जाता रहा है।
5. वर्तमान में चीन ने विश्व के अधिकांश देशों के साथ सीमा विवाद को सुलझा लिया है परंतु वह भारत के साथ सीमा विवाद को नहीं सुलझा रहा है।
6. चीन का यह नया कानून भारत तथा भूटान पर क्लेम किए गए चीनी क्षेत्र के लक्षण तथा उन्हें अधिकृत करने के संदर्भ में चीन की सेना तथा राज्य को विधिक सहायता प्रदान करेगा जिससे विवाद की स्थिति भी उत्पन्न हो सकती है।¹⁶

निष्कर्ष

विश्व में चीन तथा भारत ऐसे देश हैं जिनकी जनसंख्या एक अरब से अधिक है तथा ये दोनों देश राष्ट्रीय कायाकल्प के ऐतिहासिक मिशन के साथ ही विकासशील देशों की सामूहिक उत्थान प्रक्रिया को गति देने में महत्वपूर्ण प्रेरक की भूमिका निभा सकते हैं। भारत और चीन के बीच की समस्याओं को अल्पावधि में हल किया जाना कठिन है, लेकिन मौजूदा रणनीतिक अंतर को न्यूनतम करने, मतभेदों को कम करने और यथास्थिति बनाए रखने जैसे उपायों से समय के साथ आपसी संबंधों को और बेहतर बनाया जा सकता है।

संदर्भ

1. <https://web.archive.org/web/20200608204832/https://indianexpress.com/article/opinion/columns/india-china-ladakh-lac-border-dispute-c-rajamohan-6449294/lite/>.
2. <https://economictimes.indiatimes.com/news/defence/india-china-latest-news-and-updates-7-6-2020/liveblog/76804903.cms>.
3. विदेश मामलों की स्थायी समिति द्वारा 4 सितंबर, 2018 को “डोकलाम, सीमा-स्थिति और अंतर्राष्ट्रीय संगठनों में सहयोग सहित चीन-भारत सम्बन्ध” पर रपट।
4. “भारत चीन संबंध: एक नजर में” current-affairs. 27 फरवरी 2021।
5. के. सुब्रमन्यम, ‘चीन से सावधानी की जरूरत’ टाइम्स ऑफ इंडिया 23 सितंबर 2010।
6. भारत चीन सीमा विवाद: भारत और चीन मध्य संबंध आजादी से लेकर अब तक। 2022-11-07।

“एक जिला एक उत्पाद” (ODOP) योजना: सहारनपुर के सन्दर्भ में विश्लेषण

डॉ० पूजा जैन

प्रोफेसर, श्री गुरु राम राय विश्वविद्यालय, देहरादून

डॉ० देवेन्द्र नाथ दास

सहायक निदेशक (MGNCRE), शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार, हैदराबाद

ODOP योजना का अवलोकन- “एक जिला एक उत्पाद” (ODOP) योजना, जिसे उत्तर प्रदेश सरकार ने अगस्त 2018 में शुरू किया था, प्रत्येक जिले के विशिष्ट उत्पादों और हस्तशिल्प को बढ़ावा देने के उद्देश्य से लागू की गई। इस योजना का लक्ष्य आर्थिक विकास को गति देना और रोजगार के अवसरों में वृद्धि करना है। इसकी सफलता को देखते हुए, भारत सरकार ने मार्च 2021 में इस पहल को राष्ट्रीय स्तर पर अपनाया, जिससे स्थानीय विकास को सशक्त करने और ‘आत्मनिर्भर भारत’ के दृष्टिकोण को साकार करने की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम उठाया गया।

उत्तर प्रदेश हस्तशिल्प का केंद्र- उत्तर प्रदेश, जो जनसंख्या और क्षेत्रफल की दृष्टि से भारत का चौथा सबसे बड़ा राज्य है, सांस्कृतिक और भौगोलिक विविधता का एक अद्वितीय संगम है। यह राज्य ऐतिहासिक रूप से विभिन्न प्रकार के हस्तशिल्पों का केंद्र रहा है, जिनमें हाथ से बुने हुए कालीन, धातु की मूर्तियां और लकड़ी के बर्तन प्रमुख हैं। इन हस्तशिल्पों में, सहारनपुर की लकड़ी की कारीगरी अपने समृद्ध विरासत और जटिल डिजाइनों के कारण विशेष पहचान रखती है।

भदोही, मिर्जापुर, मुगदाबाद और सहारनपुर जैसे कारीगरी केंद्र राज्य की अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। उत्तर प्रदेश में 18 लाख से अधिक कारीगर कार्यरत हैं, जो भारत के कुल हस्तशिल्प निर्यात में लगभग 60 प्रतिशत का योगदान देते हैं। नेशनल सेंटर फॉर एप्लाइड इकोनॉमिक रिसर्च (NCAER) के एक अध्ययन के अनुसार, सहारनपुर की लकड़ी की कारीगरी राज्य के सबसे महत्वपूर्ण आर्थिक योगदानकर्ताओं में से एक है।

सहारनपुर की लकड़ी की कारीगरी उद्योग- उत्तर प्रदेश के उत्तरी क्षेत्र में स्थित सहारनपुर अपनी बेहतरीन लकड़ी की कारीगरी के लिए प्रसिद्ध है। इस क्षेत्र के कारीगर सदियों से उत्कृष्ट कृतियों का निर्माण कर रहे हैं, जिनमें बारीक नक्काशीदार फर्नीचर से लेकर सजावटी वस्तुएं तक शामिल हैं। सहारनपुर के घने शहरी इलाकों, जैसे मंडी समिति रोड, दिल्ली रोड, अली की चुंगी और चिलकाना रोड, में कई लघु उद्योग और कार्यशालाएं हैं, जो लकड़ी की कारीगरी के लिए समर्पित हैं।

शोध उद्देश्य- यह सहारनपुर में लकड़ी की कारीगरी से जुड़े कारीगरों की व्यवसायिक स्थिति पर वृष्ट योजना के प्रभाव का विश्लेषण करती है। इस शोध के मुख्य उद्देश्यों में शामिल हैं:

1. बाजार उपलब्धता: कारीगरों की बड़े बाजारों तक पहुंच में हुए सुधार का मूल्यांकन।
2. कौशल विकास: प्रशिक्षण और क्षमता निर्माण पहलों की प्रभावशीलता का विश्लेषण।
3. वित्तीय सशक्तिकरण: अनुदान और वित्तीय सहायता तक पहुंच का मूल्यांकन।
4. सतत विकास: पर्यावरण अनुकूल और स्थायी प्रथाओं को अपनाने की जांच।

सहारनपुर की लकड़ी की कारीगरी उद्योग पर केंद्रित यह अध्ययन ODOP योजना की परिवर्तनकारी क्षमता पर महत्वपूर्ण अंतर्दृष्टि प्रदान करने का प्रयास करता है, साथ ही इसमें और सुधार की संभावनाओं को भी रेखांकित करता है। इस शोध के निष्कर्ष एक तेजी से आधुनिकीकरण होती अर्थव्यवस्था में पारंपरिक हस्तशिल्प को बढ़ावा देने पर व्यापक विमर्श में योगदान देंगे।

ODOP योजना में व्यावसायिक कारकों का अवलोकन- ODOP योजना कई व्यावसायिक कारकों पर आधारित है, जो स्थानीय उद्यमों को सशक्त बनाने और उनके उत्पादों को वैश्विक बाजार में बढ़ावा देने के लिए डिजाइन किए गए हैं। ये कारक कारीगरों और उद्यमियों द्वारा सामना की जाने वाली चुनौतियों, जैसे सीमित बाजार पहुंच, पारंपरिक उत्पादन तकनीकों और वित्तीय प्रतिबंधों को दूर करने में सहायक हैं। सहारनपुर की लकड़ी की कारीगरी उद्योग के संदर्भ में, वे व्यावसायिक कारक संचालन दक्षता और बाजार प्रतिस्पर्धात्मकता को बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

इस लेख में विश्लेषण किए गए प्रमुख व्यावसायिक कारक निम्नलिखित हैं -

1. बाजार पहुंच और विस्तार।
2. वित्तीय सहायता और ऋण सुविधाएं।

3. क्षमता निर्माण और कौशल विकास।
4. प्रौद्योगिकी अपनाने और नवाचार।
5. सतत विकास और पर्यावरण अनुकूल प्रभाएं

बाजार पहुंच और विस्तार- सहारनपुर के लकड़ी कारीगरों के लिए बाजार तक पहुंच बनाना एक महत्वपूर्ण चुनौती बनी हुई है। ODOP योजना इस चुनौती को दूर करने के लिए कई रणनीतियाँ अपनाती है।

- स्थायी विशेषताओं का प्रचार: व्यापार मेलों और प्रदर्शनियों में सहारनपुर की लकड़ी की कारीगरी को बढ़ावा देना, जिससे इन उत्पादों की मांग बढ़े।
- डिजिटल मार्केटिंग रणनीतियाँ: कारीगरों को ई-कॉमर्स और डिजिटल प्लेटफार्मों पर प्रशिक्षण देकर उन्हें वैश्विक ग्राहकों से जोड़ना, जिससे उनकी बिक्री और प्रतिस्पर्धात्मकता में वृद्धि हो।
- निर्यात केंद्रों की स्थापना: सहारनपुर को एक निर्यात केंद्र के रूप में विकसित करना, जिससे अंतरराष्ट्रीय बाजारों तक पहुंच आसान हो और लॉजिस्टिक्स एक आपूर्ति श्रृंखला को सुगम बनाया जा सके।

इस प्रयासों के कारण कारीगरों के उत्पादों की दृश्यता में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है, जिससे वे विविध ग्राहक समूहों तक पहुँचने और अपनी आय के स्रोतों को विस्तार देने में सक्षम हुए हैं।

वित्तीय सहायता और ऋण सुविधाएं- ODOP योजना के तहत कारीगरों को निम्नलिखित वित्तीय लाभ प्रदान किए जाते हैं -

- ऋण-संबंधित अनुदान: स्वयं सहायता समूहों (SHGs), उत्पादक सहकारी समितियों और व्यक्तिगत कारीगरों को छंटाई, पैकेजिंग और प्रसंस्करण जैसी गतिविधियों के लिए 35 प्रतिशत तक की अनुदान सहायता।
- सब्सिडी युक्त ऋण की सुविधा: वित्तीय संस्थानों के साथ साझेदारी के माध्यम से कच्चे माल और आधुनिक उपकरणों की खरीद के लिए कम ब्याज दर पर ऋण उपलब्ध कराना। इस वित्तीय सहायता से कारीगरों को निम्नलिखित लाभ प्राप्त हुए हैं।
- आधुनिक मशीनरी की खरीद, जिससे उत्पादन की गुणवत्ता और मात्रा में सुधार हुआ है।
- उत्पाद विविधीकरण, जिससे विभिन्न बाजार आवश्यकताओं को पूरा किया जा सके।
- नकदी प्रवाह (कैश फ्लो) को स्थिर करना, जिससे बाजार में उतार-चढ़ाव से होने वाले जोखिमों को कम किया जा सके।

क्षमता निर्माण और कौशल विकास- ODOP योजना के तहत प्रशिक्षण कार्यक्रम निम्नलिखित क्षेत्रों पर केंद्रित है:

- उद्यमिता विकास: संचालन, विपणन, लेखांकन और टैप् जैसे गुणवत्ता मानकों के अनुपालन पर पाठ्यक्रम प्रदान करना।
- कारीगर में सुधार: पारंपरिक और समकालीन तकनीकों पर कार्यशालाएँ आयोजित करना, जिससे विरासत संरक्षित रहे और आधुनिक उपभोक्ताओं की पसंद के अनुरूप बदलाव किया जा सके।
- प्रमाणीकरण सहायता: जैविक (ऑर्गेनिक) याफेयर-ट्रेड लेबल जैसे प्रमाण पत्र प्राप्त करने में सहायता, जिससे उत्पाद की विश्वसनीयता और बाजार क्षमता बढ़े।

प्रौद्योगिकी अपनाना और नवाचार- आज के वैश्वीकृत बाजार में प्रतिस्पर्धा करने के लिए कारीगरों को नवीनतम तकनीकों को अपनाना आवश्यक है।

ODOP योजना इस दिशा में निम्नलिखित सहायता प्रदान करती है:

- प्रौद्योगिकी उन्नयन: उत्पादन प्रक्रियाओं को आधुनिक बनाने के लिए औजार और मशीनरी उपलब्ध करना।
- डिजिट प्लेटफॉर्म: उत्पादों की व्यापक पहुंच के लिए ई-कॉमर्स प्लेटफॉर्म के उपयोग को बढ़ावा देना।
- अनुसंधान एवं विकास (R&D) सहायता: बाजार अनुसंधान और उत्पाद नवाचार के लिए समर्पित निधि प्रदान करना।

इन पहलों के माध्यम से कारीगर उच्च गुणवत्ता वाले उत्पादों का कुशलतापूर्वक उत्पादन कर रहे हैं और घरेलू एवं अंतरराष्ट्रीय दोनों बाजारों में प्रतिस्पर्धा कर पा रहे हैं।

सतत विकास और पर्यावरण अनुकूल प्रथाएं- सतत विकास ODOP योजना का एक महत्वपूर्ण पहलू है। सहारनपुर में कारीगरों को निम्नलिखित पर्यावरण अनुकूल उपाय अपनाने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है-

- पर्यावरण: अनुकूल कच्चे माल का उपयोग।
- अपशिष्ट प्रबंधन तकनीकों को अपनाना।
- वैश्विक पर्यावरणीय मानकों का अनुपालन सुनिश्चित करना।

ये प्रथाएँ न केवल वैश्विक बाजार की मांगों के अनुरूप हैं, बल्कि दीर्घकालिक संसाधन संरक्षण और समुदाय की भलाई में भी योगदान देती हैं।

समावेशन और नेटवर्किंग के अवसर- ODOP योजना समावेशिता को बढ़ावा देने के लिए विभिन्न उपायों को अपनाती है, जैसे:

- दिव्यांग उद्यमियों के लिए विशेष प्रोत्साहन।
- सामान्य सुविधा केंद्रों (CFCs) के माध्यम से नेटवर्किंग अवसर प्रदान करना, जिससे संचालन लागत कम हो और कारीगरों के बीच सहयोग को बढ़ावा मिले।

इन पहलों ने कारीगर समुदाय के भीतर सामूहिक विकास और नवाचार के लिए एक मजबूत आधार तैयार किया है। ODOP योजना में शामिल व्यावसायिक कारकों ने सहारनपुर के लकड़ी कारीगरों को महत्वपूर्ण रूप से सशक्त बनाया है, जिससे उनकी संचालन और रणनीतिक चुनौतियों का समाधान हुआ है। बाजार पहुंच बढ़ाने के लेकर सतत विकास को प्रोत्साहित करने तक, इस योजना की पहलों ने दीर्घकालिक विकास और मजबूती की नींव रखी है।

अनुभवजन्य विश्लेषण का परिचय- ODOP योजना के तहत सहारनपुर के लकड़ी कारीगरों पर इसके प्रभाव का अनुभवजन्य विश्लेषण इस योजना की प्रभावशीलता को समझने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इस अध्याय में सर्वेक्षणों, साक्षात्कारों और द्वितीयक स्रोतों से एकत्रित डेटा का मूल्यांकन किया गया है। मुख्य विश्लेषणात्मक कारकों में बाजार पहुंच, वित्तीय वृद्धि, कौशल विकास, प्रौद्योगिकी अपनाने और सतत विकास को शामिल किया गया है।

अनुसंधान पद्धति-

डेटा संग्रह तकनीकें

1. प्राथमिक डेटा:

- लकड़ी कारीगरों के साथ संरचित साक्षात्कार।
- पॉच-बिंदु लिंकर्ट स्केल (Five-Point Likert Scale) पर आधारित सर्वेक्षण ।

2. द्वितीयक डेटा:

- उत्तर प्रदेश के उद्योग विभाग की रिपोर्ट
- हस्तशिल्प और ODOP योजनाओं पर आधारित अध्ययन ।
- सैंपलिंग पद्धति
- नमूना आकार: 200 लकड़ी कारीगर (सहारनपुर से)।
- सैंपलिंग तकनीक स्ट्रैटीफाइड रैंडम सैंपलिंग (विभिन्न कारीगर समूहों का संतुलित प्रतिनिधित्व सुनिश्चित करने के लिए)।
- डेटा विश्लेषण उपकरण
- वर्णनात्मक (Descriptive) और अनुमानात्मक (Inferential) विश्लेषण के लिए SPSS जैसे सांख्यिकीय उपकरणों का उपयोग।
- क्रोनबाख का अल्फा (Cronbach's Alpha) के माध्यम से विश्वसनीयता
- (Reliability) विश्लेषण।
- प्रमुख व्यावसायिक कारकों पर निष्कर्ष
- बाजार पहुंच और विस्तार।
- बढ़ी हुई भागीदारी: 70 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने व्यापार मेलों और डिजिटल प्लेटफार्मों तक बेहतर पहुंच की सूचना दी।
- राजस्ववृद्धि: ई-कॉमर्स का उपयोग करने वाले कारीगरों ने पारंपरिक बिक्री की तुलना में औसतन 30 प्रतिशत अधिक राजस्व में वृद्धि दर्ज की।
- वित्तीय सहायता और स्थिरता
- ऋण तक पहुंच 60 प्रतिशत कारीगरों को कम-ब्याज वाले ऋण मिले, जिससे उन्हें बेहतर उपकरण खरीदने में सहायता मिली।
- अनुदान का उपयोग: 50 प्रतिशत से अधिक कारीगरों ने ODOP अनुदानों का उपयोग अपने उत्पादन केंद्रों को उन्नत करने के लिए किया।
- क्षमता निर्माण और कौशल विकास।
- प्रशिक्षण भागीदारी: 80 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने कौशल विकास कार्यशालाओं में भाग लिया।
- उत्पाद गुणवत्ता सुधार: ग्राहक प्रतिक्रिया के अनुसार कारीगरों ने अपने उत्पादों की गुणवत्ता में 25 प्रतिशत सुधार देखा।
- प्रौद्योगिकी अपनाना और नवाचार
- आधुनिक उपकरणों का उपयोग 65 प्रतिशत कारीगरों ने आधुनिक मशीनरी को अपनाने की सूचना दी।
- उत्पाद विविधीकरण: वैश्विक बाजार की मांग के अनुसार 10+ नए उत्पाद डिजाइन विकसित किए गए।
- सतत विकास और पर्यावरण अनुकूल प्रथाएँ।
- पर्यावरण अनुकूल सामग्रियों का उपयोग: 40 प्रतिशत कारीगरों ने सतत कच्चे माल का उपयोग करना शुरू किया।
- अपशिष्ट प्रबंधन तकनीकें: 30 प्रतिशत कारीगरों ने प्रभावी अपशिष्ट प्रबंधन तकनीकों को अपनाया।

परिकल्पना परीक्षण (Hypothesis Testing)-

परिकल्पना:

H1 : ODOP योजना का लकड़ी कारीगरों की व्यावसायिक स्थितियों पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है।

परीक्षण किया गया: T-VsLV विश्लेषण

परिणाम: P-मूल्य 0.000 ($p < 0.05$) दर्शाता है कि योजना का सकारात्मक प्रभाव पड़ा ।

व्याख्या- आँकड़ों से पता चलता है कि ODOP योजना के कारण कारीगरों की व्यावसायिक स्थितियों में उल्लेखनीय सुधार हुआ, जिसमें राजस्व वृद्धि बाजार दृश्यता और संचालन दक्षता शामिल हैं।

केस स्टडीज

केस स्टडी 1: कारीगर।

- पृष्ठभूमि: एकलघु-स्तरीय कारीगर जो पारंपरिक लकड़ी के फर्नीचर का उत्पादन करता है।
- हस्तक्षेप: ODOP प्रशिक्षण और वित्तीय सहायता प्राप्त हुई।
- परिणाम: व्यवसाय 50 प्रतिशत तक विस्तारित हुआ और अंतरराष्ट्रीय बाजार में प्रवेश मिला।

केस स्टडी 2: कारीगर।

पृष्ठभूमि- कारीगर, सहारनपुर का एक लघु-स्तरीय उद्यमी, पारंपरिक लकड़ी के फर्नीचर के उत्पादन में विशेषज्ञता रखता है। यह कला पीढ़ियों से हस्तांतरित होती आ रही है। ODOP योजना से पहले, कारीगर को कई चुनौतियों का सामना करना पड़ा, जैसे कि:

- सीमित बाजार पहुंच
- पुराना उपकरण और तकनीक
- आधुनिक व्यावसायिक प्रथाओं का अपर्याप्त ज्ञान।

हस्तक्षेप& ODOP योजना के तहत, कारीगर को विभिन्न क्षेत्रों में गहन प्रशिक्षण मिला, जिनमें शामिल हैं:

1. उत्पाद डिजाइन
2. डिजिटल मार्केटिंग
3. निर्यात तत्परता (Export Readiness)

इसके अलावा कारीगर को वित्तीय सहायता प्राप्त हुई, जिससे उपकरणों को अपग्रेड किया जा सका, जिससे उत्पादन दक्षता में वृद्धि हुई। ODOP योजना द्वारा प्रदान किए गए नेटवर्किंग अवसरों की मदद से कारीगर अंतरराष्ट्रीय खरीदारों से जुड़ सका।

परिणाम-

1. व्यवसाय विस्तार- 50 प्रतिशत वृद्धि के साथ उत्पादन क्षमता बढ़ी। नए उपकरण और सुव्यवस्थित संचालन ने इस वृद्धि को संभव बनाया।
2. बाजार पहुंच- अंतरराष्ट्रीय व्यापार मेलों और ई-कॉमर्स प्लेटफॉर्मों पर भागीदारी से कारीगर ने अमेरिका और जर्मनी जैसे देशों से ऑर्डर प्राप्त किए।
3. राजस्व वृद्धि: वार्षिक राजस्व 70 प्रतिशत बढ़ा, जिससे वित्तीय स्थिरता सुनिश्चित हुई। अतिरिक्त कर्मचारियों की भर्ती संभव हुई।
4. सतत विकास प्रथाएँ- ODOP योजना की पर्यावरण अनुकूल उत्पादन पर जोर देने से कारीगर ने सतत कच्चे माल को अपनाया। ग्रीन सर्टिफिकेशन प्राप्त किया, जिससे अंतरराष्ट्रीय बाजार में उत्पादों की अपील बढ़ी।
5. समुदाय पर प्रभाव- कारीगर की सफलता से प्रेरित होकर, आस पास के अन्य कारीगर भी ODOP प्रशिक्षण कार्यक्रमों में शामिल होने लगे, जिससे पूरे समुदाय में विकास की लहर फैल गई।

निष्कर्ष- कारीगर की यात्रा दर्शाती है कि हब ODOP योजना के लक्षित हस्तक्षेपों को सही तरीके से लागू किया जाता है, तो वह पारंपरिक कारीगरों के लिए परिवर्तनकारी अवसर प्रदान कर सकती है। वह सफलता इस बात को रेखांकित करती है कि निरंतर समर्थन और नवाचार कैसे पारंपरिक हस्तशिल्प उद्योगों को सुदृढ़ और टिकाऊ बना सकते हैं।

केस स्टडी 2: कारीगर B

पृष्ठभूमि: लकड़ी की खिलौनों के निर्माण पर केंद्रित।

हस्तक्षेप: ODOP योजना के तहत आधुनिक मशीनरी और पर्यावरण अनुकूल तकनीकों को अपनाया।

परिणाम: 20 प्रतिशत उत्पादन क्षमता वृद्धि और 15 प्रतिशत राजस्व वृद्धि प्राप्त हुई।

केस स्टडी 2: कारीगर B

पृष्ठभूमि: कारीगर B सहारनपुर के एक समर्पित कारीगर है, जो लकड़ी के खिलौनों के निर्माण में विशेषज्ञता रखते हैं। हालांकि उनके पास हस्तशिल्प का समृद्ध पारंपरिक ज्ञान था, लेकिन कम उत्पादन क्षमता, पुरानी निर्माण तकनीकें, और सीमित राजस्व वृद्धि जैसी समस्याएँ उनके व्यवसाय को सीमित कर रही थी।

हस्तक्षेप: ODOP योजना के तहत, कारीगर B को वित्तीय सहायता प्रदान की गई, जिससे वे लकड़ी के खिलौनों के उत्पादन के लिए विशेष रूप से डिजाइन की गई आधुनिक मशीनरी में निवेश कर सके। प्रशिक्षण सत्रों में निम्नलिखित महत्वपूर्ण पहलुओं पर जोर दिया गया:

1. पर्यावरण - अनुकूल तकनीकें: टिकाऊ कच्चे माल का उपयोग।
गैर विषाक्त (Non-Toxic) पेंट के उपयोग को प्रोत्साहित किया गया।
2. नए विपणन चैनल: ऑनलाइन प्लेटफॉर्म और निर्यात अवसरों से परिचय कराया गया।

परिणाम-

1. उत्पादन दक्षता- आधुनिक मशीनरी अपनाने के बाद, कारीगर B की उत्पादन क्षमता में 20 प्रतिशत की वृद्धि हुई। इस सुधार ने कारीगर को गुणवत्ता से समझौता किए बिना बढ़ती ग्राहक मांग को पूरा करने में सक्षम बनाया।

- राजस्व वृद्धि: हस्तक्षेप के पहले वर्ष में ही 15 प्रतिशत की वृद्धि हुई। उत्पाद की बढ़ी हुई आकर्षकता और व्यापक बाजार पहुंच ने इस वृद्धि को संभव बनाया।
- पर्यावरण अनुकूल प्रथाएँ: टिकाऊ सामग्रियों और प्रक्रियाओं को अपनाने से उत्पादन लागत में कमी आई। पर्यावरण के प्रति जागरूक ग्राहकों, विशेष रूप से अंतरराष्ट्रीय बाजार में, बढ़ती मांग देखी गई।
- बाजार विस्तार: ODOP योजना के विपणन समर्थन का लाभ उठाकर, कारीगर B ने राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय व्यापार मेलों में अपने उत्पादों का प्रदर्शन किया। इससे यूके और कनाडा जैसे देशों से बढ़े हुए ऑर्डर प्राप्त हुए।
- सामुदायिक लाभ: कारीगर B की सफलता से प्रेरित होकर, अन्य लकड़ी के खिलौने बनाने वाले कारीगर भी इसी तरह के उन्नयन की खोज करने लगे। इससे पूरे समुदाय में आधुनिकीकरण और स्थिरता की दिशा में सामूहिक गति उत्पन्न हुई।

निष्कर्ष- कारीगर B का मामला दर्शाता है कि लक्षित निवेश और प्रशिक्षण पारंपरिक हस्तशिल्प को प्रतिस्पर्धी व्यवसायों में कैसे बदल सकते हैं। ODOP योजना द्वारा आधुनिकीकरण और स्थिरता पर दिया गया जोर न केवल कारीगर B के जीवन को बेहतर बना सका बल्कि पूरे कारीगर समुदाय के लिए एक मिसाल भी कायम कर सका।

पहचानी गई चुनौतियाँ- हालांकि ODOP योजना के सकारात्मक परिणाम देखने को मिले हैं, लेकिन कारीगर अभी भी कुछ चुनौतियों का सामना कर रहे हैं, जैसे-

सीमित डिजिटल साक्षरता: अधिकांश कारीगरों के पास ई-कॉमर्स प्लेटफॉर्मों का प्रभाव उपयोग करने के लिए आवश्यक ज्ञान और प्रशिक्षण नहीं है।

गुणवत्तापूर्ण कच्चे माल की असंगत आपूर्ति: लकड़ी और अन्य आवश्यक सामग्रियों की अनियमित आपूर्ति उत्पादन प्रक्रिया को प्रभावित करती है।

सरकारी संसाधनों की सीमित जानकारी: कई कारीगरों को उपलब्ध सरकारी योजनाओं और संसाधनों की जानकारी नहीं होती, जिससे वे उनके लाभ से वंचित रह जाते हैं।

सुधार हेतु सिफारिशें-

- डिजिटल साक्षरता को बढ़ावा देना-कारिगरों के लिए लक्षित प्रशिक्षण सत्र आयोजित किए जाएँ ताकि ई-कॉमर्स प्लेटफॉर्मों, डिजिटल भुगतान और ऑनलाइन विपणन को प्रभावी रूप से अपना सकें।
- कच्चे माल की आपूर्ति श्रृंखला को मजबूत करना: केंद्रीकृत खरीद प्रणाली (Centralized Procurement System) विकसित की जाए जिससे कारीगरों को गुणवत्तापूर्ण और सस्ती दरों पर कच्चा माल सुनिश्चित किया जा सके।
- जागरूकता अभियानों का विस्तार- ODOP योजना के संसाधनों और लाभों के बारे में जागरूकता बढ़ाने के लिए कार्यशालाओं, सूचना पुस्तिकाओं और ऑनलाइन वेबिनार का आयोजन किया जाए।

निष्कर्ष- यह अनुभव जन्य विश्लेषण (Empirical Analysis) यह दर्शाता है कि ODOP योजना सहारनपर के लकड़ी कारीगरों के लिए एक परिवर्तनकारी पहल रही है। प्रमुख व्यावसायिक कारकों को संबोधित करके, इस योजना ने उनके आर्थिक अवसरों और बाजार की पहुंच को बेहतर बनाया है।

सन्दर्भ सूची-

- Denpaiboon, C., & Amatasawatdee, K. (2012). Similarity and Difference of One Village One Product (OVOP) for Rural Development Strategy in Japan and Thailand.
- Fund, I.M. (2020), world Economic Outlook April 2020: The Great Lockdown. <https://www.imf.org/en/Publications/WEO/Issues/2020/04/14/weo-april-2020>
- Issa, F., & Lawal O.A. (n.d.) ONE-Village One-Product (OVOP) :A tool for Sustainable rural transformation in nigeria 2014 Retireved March 6, 2023 from <https://www.researchgate.net/publication./353103625> ONE. Village_oneproduct_Ovop_a_tool_for_sustainable_Rural_transformation_In=Nigeria.
- Joseph Segal, N., & Kanichiro, S. (2018). The OVOP as a Tool to Develop Small and Medium-Sized Enterprises : Insights from OVOP Entrepreneurial Experiences in Senegal. International Journal of Education and Research 6(3). www.ijern.com.
- Kader, R.A., Mohamad, M.R. Bin, & Ibrahim, A.A.H.C. (2009) Success Factors for Small Rural Entrepreneurs under the One-District-One-Industry Programme in Malaysia. Contemporary Management Research 5(2). <https://doi.org/10.7903/CMR.1173>
- Khan, W.A., & Amir, A. (2013) Study of Handicraft Marketing Strategies of Artisans in Uttar Pradesh and Its Implications. Research Journal of Management Sciences ISSN, 2(2), 22-126. www.isca.in.
- Pradhan, K.C. (2017) Unacknowledged urbanisation : The new census towns in India. Exploring urban Change in South Asia, 39-66. https://doi.org/10.1007/978-81-322-3616-0_2/COVER.
- Sarder, J.H. (1997), "The importance of support services to small enterprises in Bangladesh", Journal of Small Business Management, Vol. 35 No. 2, pp-26-36, Sarkar, T., (2011) Artisanal Cluster towards a bright future, Yojana.
- Uma Shankar Yadav, Ravindra Tripathi, Manoj Ashish Tripathi. (2022). One district one product (ODOP) of Uttar Pradesh : New initiative for developing Global Handicraft Index. Int. J. Adv. Multidiscip. Res. 9(2): 1-23, DOI <http://dx.doi.org/10.22192/ijamr.2022.09.02.001>
- UNDP. (2017). One Village One Product : How a Japanese Idea is Changing Lives and Helping Rural Communities. <https://reliefweb.int/report/afghanistan/one-village-one-product-how-japanese-idea-is-changing-lives-and-helping-rural>.

बाढ़ आपदाओं का दुष्प्रभाव एवं प्रबंधन: महाराजगंज जनपद के सन्दर्भ में

दिवाकर सिंह

असिस्टेंट प्रोफेसर, भूगोल विभाग, जवाहरलाल पी0जी0 कालेज महाराजगंज, उ0प्र0।

प्रो० रेखा विश्वकर्मा

भूगोल विभाग, एम0 एल0 के0 पी0जी0 कालेज, बलरामपुर, उ0प्र0।

प्रस्तावना-

किसी भी भौगोलिक क्षेत्र में घटित होने वाली प्राकृतिक एवं मानव जनित आपदा की भीषणता का आंकलन उसके द्वारा विभिन्न क्षेत्रों पर पड़ने वाले प्रभावों से किया जाता है। अध्ययन क्षेत्र में हर साल वर्षा ऋतु में काफी क्षेत्र में वर्षा के कारण बाढ़ आ जाती है। बाढ़ों की विभीषिका से सदा ही लाखों लोगों को कष्ट उठाने पड़ते हैं। विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्रों में। जब विस्तृत क्षेत्र एक सप्ताह अथवा अधिक समय के लिए बाढ़ ग्रस्त हो जाते हैं तो बहुत से मकान जो अधिकतर कच्चे होते हैं गिर जाते हैं जिससे भंडार किए हुए खाद्यान्न तथा चारा नष्ट हो जाते हैं तथा फसलें बर्बाद हो जाती हैं। सड़कें तथा रेल लाइनें अनेक स्थानों पर टूट जाती हैं। कुछ मार्गों पर यातायात बहुत दिनों तक रूका रहता है। रेलवे तथा बस ट्रांसपोर्ट कंपनियों को आर्थिक हानि उठानी पड़ती है।

यदि बाढ़ नगरों में आती है तो मल संयंत्रों को भारी क्षति पहुंचती है तथा जलपूर्ति पर बुरा प्रभाव पड़ता है। ऐसी स्थिति में गंभीर बीमारियों जैसे कि मलेरिया तथा हैजा के फैलने का खतरा पैदा हो जाता है। गांवों में जहां कुएं पेयजल का एकमात्र स्रोत है बाढ़ के जल से भर जाते हैं जिससे पीने के जल को भारी कमी हो जाती है। कभी-कभी बाढ़ का जल एक महीने से भी अधिक तक खड़ा रहता है जिससे रबी की फसलों को बोने में भी कठिनाई होती है। कहीं-कहीं पर खरीफ की फसल की बरबादी तथा रबी की फसल के भी न होने से अकाल जैसी परिस्थितियाँ पैदा हो जाती हैं। जनपद महाराजगंज में समय-समय पर आने वाले बाढ़ तथा उसके प्रभावों का निम्नवत् रूप से विश्लेषण किया गया है¹:-

मानव क्षति-

कोई भी घटना या प्राकृतिक खतरा तब तक आपदा नहीं मानी जाती है जब तक वह मानव जीवन तथा उस क्षेत्र के जन समुदाय को प्रभावित नहीं करती है। जब प्राकृतिक खतरा मानव जीवन को क्षति पहुंचाता है तब वह आपदा का स्वरूप माना जाता है। जनपद महाराजगंज भी बाढ़ के प्रति अधिक संवेदनशील क्षेत्र माना जाता है। यहां पर लगभग प्रत्येक वर्ष बाढ़ आती रहती है। जिससे मानव जीवन को अत्यधिक क्षति होती है तथा अनेक लोग इन आपदाओं में घायल व लापता हो जाते हैं। पिछले कुछ वर्षों में जनपद महाराजगंज में आपदाओं के कारण हुई मानव क्षति का विवरण निम्नवत है -

सारणी संख्या - 1²: बाढ़ से हुई मानव क्षति का विवरण

मानव क्षति			
वर्ष	मृतक	घायल	लापता
2015	35	20	00
2017	16	30	13
2019	06	12	00
2021	02	10	00
2024	0	05	00
योग	59	67	13

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट होता है कि पिछले कुछ वर्षों में बाढ़ ने क्षेत्र के मानव जीवन को अत्यधिक मात्रा में क्षति पहुंचायी है, जिससे यह स्पष्ट होता है कि बाढ़ ने इन वर्षों में कुल 59 लोगों की मृत्यु हुई और 67 लोग घायल, 13 लोग लापता हैं।

सड़क मार्गों की क्षति -

सड़क मार्ग परिवहन तन्त्र का एक प्रमुख साधन है। इसके बिना हम किसी क्षेत्र का विकास नहीं कर सकते हैं। जो क्षेत्र के विकास की एक प्रमुख सुविधा है। सड़क मार्ग के द्वारा मानव विकास के अतिरिक्त उस क्षेत्र के कृषि तथा उद्योग धन्धों का विकास भी एक सुविकसित सड़क जाल पर निर्भर करता है, जिस प्रकार से मानव शरीर के विकास में धमनियां कार्य करती हैं उसी प्रकार से क्षेत्र के विकास के लिए सड़क मार्ग भी उतना ही आवश्यक है। यदि शरीर में धमनियां अपना कार्य करना बंद कर दे तो शरीर का विकास नहीं हो पाता है उसी प्रकार से यदि किसी क्षेत्र में सड़क मार्ग का विकास नहीं है। तो क्षेत्र विकास की दृष्टि से पिछड़ा माना जाता है। इसलिए क्षेत्र के विकास के लिए सड़क मार्ग अत्यधिक आवश्यक माना जाता है।

सारणी संख्या - 2: जनपद महाराजगंज में बाढ़ से सड़कों की क्षति का विवरण

क्र.सं	सड़क मार्गों का प्रकार	सड़कों की क्षति (किमी० में)
1	राष्ट्रीय राजमार्ग	54
2	राज्य मार्ग	10
3	मुख्य जिला सड़क मार्ग	81
4	अन्य जिला सड़क मार्ग	12
5	ग्रामीण सड़क मार्ग	440
6	प्रधानमंत्री ग्रामीण सड़क मार्ग	50

जनपद महाराजगंज में बाढ़ के स्वरूप में वृद्धि होने के कारण सड़क मार्गों को अत्यधिक मात्रा में क्षति पहुंची है। जिससे यहां पर राष्ट्रीय राजमार्गों, सीमा सड़क संगठन, राज्य राजमार्गों, जनपद सड़को, प्रधानमंत्री ग्रामीण सड़क मार्गों तथा ग्रामीण सड़कों को अत्यधिक प्रभावित किया है। राष्ट्रीय राजमार्गों, 54 किमी० तथा 10 किमी. राज्यराजमार्गों को क्षति पहुंचाई है। 81 किमी० मुख्य जिला सड़क, 12 किमी० अन्य मुख्य सड़क, 440 किमी० ग्रामीण सड़कों (राज्य लोक निर्माण विभाग) 50 किमी० प्रधानमंत्री ग्रामीण सड़क मार्गों की क्षति हुई है जिसमें सबसे अधिक 440 किमी० ग्रामीण सड़क मार्गों तथा सबसे कम 12 किमी० अन्य सड़क मार्गों को क्षति हुयी है।

पेयजल आपूर्ति पर दुष्प्रभाव-

शुद्ध पेयजल की आपूर्ति भी मानव की ढांचागत सुविधाओं में एक मुख्य सुविधा मानी जाती है। इसकी आपूर्ति के बिना मानव का विकास रूक जाता है तथा मानव को स्वास्थ्य से सम्बन्धित अनेक समस्यायें उत्पन्न होने लगती हैं जिसका सामना करना आसान कार्य नहीं है। जनपद महाराजगंज में बाढ़ ने स्वच्छ पेयजल की आपूर्ति को भी अधिक क्षति पहुंचाई है।⁴

कृषि कार्य पर प्रभाव -

विभिन्न प्रकार की फसलों का उत्पादन करने के लिए मिट्टी को तैयार करने की प्रक्रिया को कृषि कार्य कहते हैं इसमें पृथ्वी के धरातल पर अनेक प्रकार की फसलों को बोया व उगाया जाता है तथा उनका उत्पादन करके मानव अपने भोजन तथा आय की आवश्यकता की पूर्ति करता है इन कृषि कार्य से मानव का आय प्राप्त होती है इस आय से मानव अपनी अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। बाढ़ कृषि क्षेत्र पर प्रतिकूल प्रभाव डालती है। बाढ़ के कारण खेत जलमग्न हो जाते हैं और फसल नुकसान की ओर जाती है जिससे किसानों की ऋणग्रस्तता बढ़ जाती है। नुकसान केवल कृषक समुदाय के लिए ही नहीं है, बल्कि आम आदमी पर भी लगातार महंगाई की मार पड़ी है। इसके अलावा, दुधारू पशुओं के जीवन के लिए खतरा कृषि समुदाय पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है। जनपद महाराजगंज के लोगों का मुख्य व्यवसाय कृषि कार्य माना जाता है। पिछले वर्षों में बाढ़ ने यहां के कृषि कार्य पर बहुत गहरा घाव किया है। बाढ़ का प्रभाव स्पष्ट रूप से क्षेत्र में दिखाई देता है जनपद महाराजगंज में कृषि योग्य भूमि को निम्न प्रकार से प्रभावित किया है-

सारणी संख्या - 3: जनपद महाराजगंज में कृषि योग्य भूमि का क्षति का विवरण

क्र.सं.	वर्ष	कृषि योग्य भूमि की क्षति(हे० में)
1	2017	71.288
2	2019	48.491
3	2021	38.552
4	2024	05.100

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट होता है कि जनपद महाराजगंज में 2017 से 2024 तक के वर्षों में बाढ़ द्वारा कुल 163,431 हे० कृषि योग्य भूमि की क्षति हुयी है, जिससे सबसे अधिक क्षति वर्ष 2017 में 71,288 हे० कृषि भूमि की हुयी। इसके बाद वर्ष 2019 में कुल 48,491 हे० कृषि भूमि की क्षति हुई है। इसके अतिरिक्त वर्ष 2024 में कुल 05,100 हे० कृषि भूमि की क्षति हुई है।

बाढ़ आपदा प्रबंधन

बाढ़ एक गंभीर समस्या है जो लोगों के बुनियादी ढांचे को नष्ट करती है, विकास प्रक्रिया में बाधा डालती है और निवासियों के बजट को प्रभावित करती है। इसलिए, बाढ़ प्रबंधन महत्वपूर्ण हो गया है। भारत बाढ़ के प्रति संवेदनशील देश है, जहां की भौगोलिक और जलवायु स्थितियाँ चार करोड़ हेक्टेयर क्षेत्र को बाढ़ संभावित बनाती हैं। जनसंख्या वृद्धि, अव्यवस्थित विकास, बदलती सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियाँ और जलवायु परिवर्तन से बाढ़ की तीव्रता और आवृत्ति बढ़ रही है, जिससे इसकी गंभीरता में वृद्धि हो रही है।

बाढ़ प्रबंधन में दो मुख्य भाग होते हैं: बाढ़ की तैयारी और बाढ़ राहत। बाढ़ से पहले की तैयारी को भी उतना ही महत्व दिया जाना चाहिए, जितना कि राहत को। यदि बाढ़ के लिए उचित तैयारी की जाए तो इससे जीवन और सम्पत्तियों की रक्षा की जा सकती है, और राहत लागत में भी कमी लायी जा सकती है। बाढ़ प्रबंधन तीन चरणों में कार्य करता है: बाढ़ से पहले, बाढ़ के दौरान और बाढ़ के बाद।

बाढ़ के पूर्व, संभावित नुकसान को कम करने के लिए तैयारियाँ की जाती हैं। लोगों को प्रशिक्षित किया जाता है और उन्हें अपने कर्तव्यों का पालन करने के लिए सक्षम बनाया जाता है। बाढ़ के दौरान, मुख्य रूप से पीड़ितों की सुरक्षा और उनकी आवश्यकताओं को पूरा करने पर ध्यान दिया जाता है, क्योंकि प्रभावित लोग पहले राहत कार्य करते हैं।

बाढ़ के बाद, पुनर्प्राप्ति के लिए प्रयास किए जाते हैं ताकि प्रभावित समुदाय को जल्द से जल्द सामान्य स्थिति में लाया जा सके। इस दौरान, जख्मों का उपचार, पुनर्वास और सुविधाओं का फिर से निर्माण किया जाता है। इसका उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि प्रभावित क्षेत्र फिर से आपदा का सामना करने की स्थिति में लौट सकें। बाढ़ प्रबंधन की गतिविधियों में अत्यावश्यक राहत प्रदान करना, चिकित्सा सहायता, आश्रय सुनिश्चित करना और पुनर्निर्माण शामिल होता है। बाढ़ रोकने के लिए दीर्घकालिक उपायों का भी ध्यान रखा जाता है, जैसे कि बांध बनाना और भूमि उपयोग योजना। इसके लिए सरकार, समुदाय और व्यक्तियों के लिए तैयारी के उपाय भी आवश्यक हैं, जिसमें आपातकालीन योजनाओं का निर्माण और चेतावनी प्रणाली का विकास शामिल हैं। इस तरह, बाढ़ प्रबंधन एक समग्र प्रणाली है जो सभी चरणों में तैयारियों और प्रतिक्रियाओं को सुनिश्चित करती है, ताकि बाढ़ के प्रभावों को कम किया जा सके और समुदायों को पुनः सशक्त किया जा सके।

चित्र संख्या - 1^९



स्रोत: मैनुअल ऑन नेचुरल डिजास्टर मैनेजमेण्ट इन इण्डिया, एन०सी०डी०एम०, नई दिल्ली।

सरकार की बाढ़ प्रबंधन नीतियाँ

भारत में बाढ़ प्रबंधन नीतियों को स्वतंत्रता के बाद से लागू किया गया है। 1954 में, पहली बार बाढ़ नीति का प्रस्ताव पेश किया गया, जिसका लक्ष्य बाढ़ से प्रभावित लोगों की सुरक्षा सुनिश्चित करना था। इसके अंतर्गत बाढ़ नियंत्रण के लिए तीन योजनाएँ बनाई गईं: तात्कालिक, अल्पकालिक और दीर्घकालिक, जिनका उद्देश्य बाढ़ के प्रभाव को कम करना था। 1964 में एक मंत्रियों की समिति का गठन किया गया, जिसने बाढ़ से निपटने के लिए गैर-भौतिक उपायों, जैसे बाढ़ चेतावनी प्रणालियाँ और बाढ़ बीमा पर ध्यान दिया। 1972 में एक अन्य समिति ने जलाशयों की स्थापना और कड़े कानूनों की सिफारिश की। 1980 में राष्ट्रीय बाढ़ आयोग ने 207 सिफारिशें कीं, जिसमें बाढ़ के सामाजिक-आर्थिक प्रभावों का आकलन और जल संसाधनों के प्रभावी प्रबंधन पर जोर दिया गया। 1987 में प्रस्तावित राष्ट्रीय जल नीति ने बाढ़ प्रबंधन के लिए मास्टर प्लान बनाने की आवश्यकता को उजागर किया। 1996 में

राष्ट्रीय आयोग ने बाढ़ प्रबंधन के विभिन्न पहलुओं पर जोर दिया और इसे रोकने के लिए उपायों की सिफारिश की। 2002 की राष्ट्रीय जल नीति ने पूर्वानुमान और चेतावनी प्रणालियों को मजबूत बनाने का भी सुझाव दिया।

2005 में आपदा प्रबंधन अधिनियम पारित हुआ, जिसने आपदा प्रबंधन के लिए कानूनी ढाँचा स्थापित किया। इसके तहत राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन प्राधिकरण का गठन किया गया। राज्य स्तर पर, राज्य आपदा प्रबंधन प्राधिकरण ने नीतियाँ बनाई हैं और जिला स्तर पर जिला आपदा प्रबंधन प्राधिकरण इसे लागू करता है। राज्य सरकारों की जिम्मेदारी होती है कि वे बाढ़ प्रबंधन उपायों को प्रभावी रूप से लागू करें, जबकि जिला स्तर पर जिला मजिस्ट्रेट राहत कार्यों के प्रभारी होते हैं। आकस्मिक योजनाएँ तैयार की जाती हैं, जिन्हें राज्य सरकार को अनुमोदन के लिए भेजा जाता है। जिला स्तर पर नियंत्रण कक्ष स्थापित किया जाता है, जो बाढ़ की चेतावनी पर सावधानी बरतता है। इस प्रकार भारत में बाढ़ प्रबंधन की संस्थागत संरचना विभिन्न स्तरों पर कार्यरत है, जिसमें केंद्र, राज्य और जिला स्तर पर प्राधिकरण शामिल हैं जो बाढ़ से निपटने और राहत कार्यों का संचालन करते हैं।

महाराजगंज जनपद में बाढ़ प्रबंधन व्यवस्था

महाराजगंज जनपद में बाढ़ प्रबंधन से सम्बन्धित निम्नलिखित कार्य किये गये हैं-

बाढ़ चौकी

बाढ़ चौकी राहत एवं बचाव कार्य में एक महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करती है। बाढ़ सम्बन्धी पूर्व सूचना बाढ़ निवासियों को देने व बाढ़ चौकी क्षेत्र में बाढ़ की स्थिति सम्बन्धी सूचना नियंत्रण कक्ष को उपलब्ध कराने में महत्वपूर्ण सहयोग रहता है। इसके अन्तर्गत सामान्यतः बाढ़ क्षेत्र के 6-7 गाँव रखे जाते हैं। इन ग्रामों के केन्द्र बिन्दु के रूप में यह चौकियाँ बाढ़ राहत, बचाव व सूचनाओं के सम्प्रेषण का भी कार्य करती हैं। स्थानीय नावें भी इन चौकियों से सम्बद्ध रखी जाती हैं जहाँ से आवश्यकतानुसार प्रभावित क्षेत्रों को उपलब्ध कराई जाती हैं। अध्ययन क्षेत्र के बाढ़ प्रभावित क्षेत्रों में बाढ़ चौकियाँ स्थापित की गयी हैं जो नदी के खतरे के बिन्दु पर पहुँचने की सूचना के साथ ही कार्यरत व सक्रिय हो जाती हैं। ये बाढ़ सम्बन्धी दैनिक सूचना का तहसील नियंत्रण कक्ष को प्रेषण करती हैं।

सारणी संख्या - 4.⁶ अध्ययन क्षेत्र में बाढ़ चौकियों की संख्या

क्रमांक	तहसील	बाढ़ चौकियों की संख्या
1	सदर	06
2	फरेन्दा	09
3	निचलौल	07
4	नौतनवां	07
योग:-		29

राहत केन्द्र

बाढ़ के समय राहत सहायता में खाद्यान्न, आवश्यक वस्त्र और धनराशि का वितरण राहत केन्द्रों से किया जाता है। कुछ स्थानों पर बाढ़ चौकियों की जगह अलग राहत केन्द्र भी स्थापित किए गए हैं।

राहत शिविर

घाघरा-राप्ती दोआब में बाढ़ के कारण लोग और पशु सुरक्षित स्थानों पर जाते हैं। राहत शिविरों में पानी, सफाई, शौचालय, खाना, रेशमी, और स्वास्थ्य सेवाएँ उपलब्ध कराई जाती हैं। हैंडपंप जल निगम द्वारा लगाए जाते हैं। खाद्य और चिकित्सा व्यवस्थाएँ राजस्व विभाग और स्वास्थ्य कर्मियों द्वारा की जाती हैं।

सारणी संख्या - 5: अध्ययन क्षेत्र में राहत शिविर की संख्या

क्रमांक	तहसील	राहत शिविर की संख्या
1	सदर	05
2	फरेन्दा	04
3	निचलौल	05
4	नौतनवां	05
योग:-		19

सारणी संख्या - 6⁸: अध्ययन क्षेत्र में खाद्यान्न वितरण स्थल की संख्या

क्रमांक	तहसील	खाद्यान्न वितरण स्थल की संख्या
1	सदर	04
2	फरेन्दा	09
3	निचलौल	05
4	नौतनवां	06
योग:-		24

सारणी संख्या - 7⁹: अध्ययन क्षेत्र में पशु शरणालय की संख्या

क्रमांक	तहसील	पशु शरणालय की संख्या
1	सदर	05
2	फरेन्दा	03
3	निचलौल	03
4	नौतनवां	06
योग:-		17

इस प्रकार महाराजगंज जनपद में बाढ़ चौकी राहत एवं बचाव कार्य में एक महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करती है। बाढ़ सम्बन्धी पूर्व सूचना बाढ़ निवासियों को देने व बाढ़ चौकी क्षेत्र में बाढ़ की स्थिति सम्बन्धी सूचना नियंत्रण कक्ष को उपलब्ध कराने में महत्वपूर्ण सहयोग रहता है। अध्ययन क्षेत्र में 29 बाढ़ चौकियाँ, उपलब्ध नावों की संख्या 123, राहत शिविर की संख्या 19, खाद्यान्न वितरण स्थल की संख्या 24, पशु शरणालय की संख्या 17, स्थापित की गयी है। बाढ़ के दौरान बाढ़ पीड़ितों को आवागमन इत्यादि की सुविधा रहती है। अध्ययन के दौरान यह महसूस किया गया कि बाढ़ क्षेत्र में बाढ़ की रोकथाम के लिए आवंटित धन की प्रतिवर्ष निगरानी करनी चाहिए तथा समुदाय की सहभागिता सुनिश्चित करनी चाहिए।

निष्कर्ष

जनपद महाराजगंज में हर साल बाढ़ आती है, जिससे मानव जीवन को काफी नुकसान होता है। पिछले वर्षों में बाढ़ के कारण 59 लोग मृतक, 67 लोग घायल और 13 लोग लापता हुए हैं। सड़कें विकास के लिए बहुत महत्वपूर्ण हैं। यदि सड़कें खराब हो जाएं, तो किसी क्षेत्र का विकास प्रभावित होता है। महाराजगंज में बाढ़ ने हाल के वर्षों में सड़क मार्गों को काफी नुकसान पहुंचाया है, जिसमें 54 किमी राष्ट्रीय राजमार्ग, 10 किमी राज्य मार्ग, 81 किमी मुख्य जिला सड़क और 440 किमी ग्रामीण सड़कों को नुकसान हुआ है। स्वच्छ पेयजल की आपूर्ति भी बाढ़ से प्रभावित हुई है, जिसके बिना मानव स्वास्थ्य में समस्याएं आ सकती हैं। कृषि कार्य को भी बाढ़ से बहुत नुकसान हुआ है। बाढ़ के कारण खेत जलमग्न हो जाते हैं, जिससे फसलें खराब होती हैं और किसान ऋणग्रस्त हो जाते हैं। 2017 से 2024 तक बाढ़ ने कुल 163.431 हेक्टेयर कृषि योग्य भूमि को प्रभावित किया।

1954 में भारत की पहली राष्ट्रीय बाढ़ नीति बनाई गई, जिससे बाढ़ प्रभावित क्षेत्रों को सुरक्षा मिले। केंद्रीय मंत्री गुलजारी लाल नंदा ने लोकसभा में बाढ़ पर चर्चा की। बाढ़ नियंत्रण कार्यक्रम तीन चरणों में विभाजित किया गया: तात्कालिक, अल्पकालिक और दीर्घकालिक योजना। 1964 में एक समिति ने गैर-भौतिक उपायों पर जोर दिया। 1972 में सख्त कानूनों की सिफारिश की गई। 1980 के राष्ट्रीय बाढ़ आयोग ने 207 सिफारिशें दीं। आपदा प्रबंधन विधेयक-2005 ने सरकार के दृष्टिकोण में बदलाव किया। 2012 की राष्ट्रीय जल नीति में कई सुझाव दिए गए, जैसे प्राकृतिक जल निकास प्रणाली की पुनर्स्थापना। आपदा प्रबंधन अधिनियम, 2005 ने एक कानूनी ढांचा स्थापित किया, जिसमें राष्ट्रीय और राज्य स्तर पर प्राधिकरण शामिल हैं। राज्य सरकारों की जिम्मेदारी बाढ़ प्रबंधन उपाय और पुनर्वास योजनाएं बनाना है। महाराजगंज जनपद में बाढ़ चौकियाँ राहत और बचाव कार्य में महत्वपूर्ण हैं। यहाँ 29 बाढ़ चौकियाँ, 123 नावें, 19 राहत शिविर, 24 खाद्यान्न वितरण स्थल, और 17 पशु शरणालय हैं। बाढ़ के दौरान पीड़ितों की सहायता के लिए सुविधाएँ उपलब्ध कराई गई हैं।

संदर्भ

1. अजय, आर. (2022). बाढ़ और उसके प्रभाव: महाराजगंज का अध्ययन. भारतीय कृषि विकास जर्नल, 34(2), 145-160।
2. सर्वेक्षण द्वारा संकलित तथ्यों के आधार पर प्रस्तुत सारिणी।
3. स्रोत: राज्य लोक निर्माण विभाग।
4. श्रीवास्तव, पी. (2021). बाढ़ के दौरान स्वास्थ्य चुनौतियाँ और प्रबंधन. स्वास्थ्य और जीवन विज्ञान, 12(3), 78-84।
5. स्रोत: मैनुअल ऑन नेचुरल डिजास्टर मैनेजमेण्ट इन इण्डिया, एन०सी०डी०एम०, नई दिल्ली।
6. स्रोत - जिला आपदा प्रबंधन प्राधिकरण महाराजगंज वर्ष - 2024।
7. स्रोत - जिला आपदा प्रबंधन प्राधिकरण महाराजगंज वर्ष - 2024।
8. स्रोत - जिला आपदा प्रबंधन प्राधिकरण महाराजगंज वर्ष - 2024।
9. स्रोत - जिला आपदा प्रबंधन प्राधिकरण महाराजगंज वर्ष - 2024।

म्यांमार की सामरिक स्थिति के परिप्रेक्ष्य में भारत-म्यांमार संबंध

डॉ० पूनम सिंह

असिस्टेंट प्रोफेसर, राजनीतिशास्त्र विभाग, मर्यादा पुरुषोत्तम पी0जी0 कालेज, भुडुसुरी, रतनपुरा, मऊ

भारत और म्यांमार के संबंध 1948-1962 के बीच सौहार्दपूर्ण और मैत्रीपूर्ण थे। प्रधानमंत्री यू नू और प्रधानमंत्री नेहरू के बीच एक बहुत स्वस्थ और दोस्ताना संबंध था। म्यांमार में भारतीयों की काफी बड़ी उपस्थिति ने दो पड़ोसियों को और भी घनिष्ठ संबंधों में बुन दिया था। म्यांमार भारत के साथ गुट निरपेक्ष आंदोलन (एनएएम) का भी एक सक्रिय सदस्य था, लोकतांत्रिक प्रक्रिया और लोकतांत्रिक संस्थाओं को अक्सर विवाद, राजनीतिक प्रतिद्वंद्विता, जातीय और सांप्रदायिक संघर्ष द्वारा बाधित किया गया। जब जनरल ने विन ने एक सैन्य तख्तापलट के माध्यम से सैन्य सरकार स्थापित की तो आंतरिक स्थिति खराब और जटिल हो गई।

1962-1988 तक दोनों पड़ोसियों के बीच संबंध ज्यादातर, जनरल ने विन की विविविक्तवादी नीति के कारण, तनावपूर्ण रहे। इस अवधि के दौरान म्यांमार ने, न केवल राष्ट्रमंडल की सदस्यता से इनकार कर दिया बल्कि गुटनिरपेक्ष आंदोलन से खुद को अलग कर लिया। विन की मूल-भारतीयों की ओर दमन और अत्याचार की नीति के कारण भारत के साथ उसके संबंधों में खटास पैदा हो गई। म्यांमार के सोवियत विरोधी और चीन समर्थन रूख (विशेष रूप से 1962 में भारत-चीन युद्ध में भारत की हार के बाद), सोवियत समर्थक भारत के लिए एक और अड़चन था। इस चरण में, इस प्रकार, भारत और उसके पूर्वी पड़ोसी के बीच मुख्य रूप से संबंध ठंडे रहे हैं।

1988 में म्यांमार में स्थिति आगे और बिगड़ी जब जनरल ने विन की सरकार को एक और सैन्य सरकार “राज्य के कानून एवं व्यवस्था की बहाली परिषद (एसएलओआरसी)” द्वारा बदल दिया गया था जिसने म्यांमार में मार्शल लॉ लगाया था, इस अवधि के दौरान एक और अत्यंत महत्वपूर्ण विकास, सुश्री आंग सान सू की, लोकतंत्र के लिए नेशनल लीग (एनएलडी) की करिश्माई नेता के नेतृत्व में एक मजबूत लोकतांत्रिक आंदोलन की शुरुआत थी। भारत ने एसएलओआरसी विरोधी आंदोलन का समर्थन किया और म्यांमार के कार्यकर्ताओं के लिए सुरक्षित अभ्यारण्य प्रदान किया, 1990 में सैन्य राज्य ने सुश्री सू को नजरबंद कर दिया। और 1995 और 2000 की संक्षिप्त अवधि को छोड़कर, लोकतांत्रिक आंदोलन को दबाने के लिए अभी तक उनका घर में नजरबंद किया जाना जारी है, भारत सुश्री सू की की रिहाई की वकालत करता रहा है, इसके अलावा 1991 में भारत ने शू मिन्ट, एक बर्मी नागरिक को रिहा कर दिया जिस पर 1990 में कोलकाता जाने वाले एक थाई जेट के अपहरण का आरोप लगाया गया था। फिर जुलाई 1992 में, म्यांमार की विपक्षी बर्मा संघ की राष्ट्रीय गठबंधन सरकार (एनसीजीयूबी) को भारतीय धरती पर अपना कार्यालय खोलने के लिए अनुमति दी गई थी।

जाहिर है इन चरणों ने संबंधों को और खराब कर दिया। भारत ने 1988-1991 के दौरान न केवल सैन्य शासन की एवं लोकतंत्र समर्थक आंदोलन के खिलाफ उसके दमनकारी तंत्र को आलोचना की बल्कि लोकतांत्रिक नेताओं एवं राजनीतिक-कार्यकर्ताओं के लिए राज्यों की सीमा पर शरणार्थी शिविरों की स्थापना करके जमकर बहुत खुले तौर पर सामग्री और वित्तीय मामले में समर्थन किया। भारत के ऑल इंडिया रेडियो ने सैन्य शासकों (जुंटा) के खिलाफ यू नू की लोकतंत्र समर्थक अपील और संदेश को प्रसारित किया। ‘यंगून ने इसे म्यांमार के अंदरूनी मामलों में घोर हस्तक्षेप के रूप में देखा’ और भारतीय नीति से इस अवधि के दौरान म्यांमार में सबसे अधिक नफरत हो गई। भारत और वेस्ट से भयंकर आलोचना और निंदा का सामना करने के कारण म्यांमार चीन की तरफ समर्थन के लिए झुका जो भारत के लिए एक स्पष्ट असुविधा थी।

म्यांमार और भारत की ‘पूर्व की ओर देखो नीति’

म्यांमार पूर्व, दक्षिण पूर्व एशिया और दक्षिण एशिया के त्रिमुहानी पर स्थिति है। दक्षिण पूर्व एशिया वास्तव में म्यांमार के साथ शुरू होता है। यह दक्षिण पूर्व एशिया में भारत के प्रवेश के लिए इकलौता भू-सेतु है। भारत की ‘पूर्व की ओर देखो नीति’ को म्यांमार को शामिल किए बिना सफलतापूर्वक आगे बढ़ाया नहीं जा सकता है।

भारत की लुक ईस्ट नीति के ढांचे में 10 आसियान के देशों के साथ-साथ तीन ऐसे महत्वपूर्ण देश शामिल हैं जो इनके न केवल पड़ोसी हैं बल्कि अंतर्राष्ट्रीय राजनीतिक धारा को बदलने में भी इनका सहयोग रहा है। ये तीन देश हैं चीन, जापान, और दक्षिण कोरिया। दस आसियान देशों के नाम इस तरह हैं: ब्रूनी, कंबोडिया, इंडोनेशिया, लाओस, मलेशिया, म्यांमार, फिलिस्तिन, सिंगापुर, थाईलैंड और वियतनाम। पूर्वी एशिया के तकरीबन सभी देशों में आपसी सूझ-बूझ और सहयोग की मजबूत प्रवृत्ति है। यह क्षेत्र आपसी रेल और सड़क मार्गों से जुड़ा हुआ है। इसलिए यहां आर्थिक व्यापार की गति अत्यंत तेज है। यह घरोंदा आज भारत का सबसे बड़ा व्यापारिक अड्डा बन गया है। भारत के कुल व्यापार का 35 प्रतिशत हिस्सा पूर्वी एशिया के देशों के साथ होता है।

यह प्रतिशत अमेरिका और यूरोप से भी ज्यादा है। पिछले कुछ वर्षों में इन देशों के साथ भारत का पारस्परिक संबंधों का दायरा तेजी से बढ़ने के साथ-साथ उच्च स्तर पर राजनीतिक संपर्क भी बढ़ा है।

पूर्वी एशिया के साथ भारत के संपर्क कमजोर क्यों हो गए थे और उसे अपनी विदेश नीति में नए सिरे से लुक-ईस्ट नीति की शुरुआत क्यों करनी पड़ी। दरअसल, शीत युद्ध के दौरान पूर्वी एशिया के महत्वपूर्ण देश भारत के साथ गुटनिरपेक्ष संगठन के मंच पर एक साथ जुड़े हुए जरूर थे लेकिन सामरिक रूप से वे भारतीय समीकरण के विपरीत खड़े थे। जहां भारत पूर्व सोवियत संघ के नजदीक था, वहीं पूर्वी एशिया के अधिकांश देश भारत-म्यांमार से कटे हुए थे। इसका एक कारण भारतीय विदेश नीति में दृष्टि दोष था ब्रिटिश राज के दौरान भी भारत के पश्चिमी मुहानों को विशेष महत्व दिया गया था। आजादी के उपरान्त यह सोच निरंतर बनी रही। इसलिए पूर्वी सीमाओं से सटे हुए देशों को विशेष महत्व नहीं दिया गया।

शीत युद्ध की समाप्ति, पूर्व सोवियत संघ का विघटन और भूमंडलीकरण के तत्वों ने मिलकर भारतीय सोच को बदलना शुरू कर दिया। अंतर्राष्ट्रीय मुद्दों की कमी ने भारत के समक्ष नई चुनौतियों को जन्म दिया। इस तंग हालत ने भारत को अपने आर्थिक ढांचे में बुनियादी बदलाव के लिए प्रेरित किया। इसका असर यह हुआ कि भारत ने अपने बूते अपना आर्थिक जाल फैलाना शुरू कर दिया। पूर्वी एशिया के आर्थिक संगठन आसियान से चार कदम दूर खड़ा भारत अब उसके साथ जुड़ने के लिए लालायित हो गया।²

दूसरा महत्वपूर्ण कारण बना चीन का डर। अभी तक दक्षिण एशिया और पूर्वी एशिया अलग-अलग घाँसे बनाकर एक-दूसरे से कटे हुए थे। लेकिन बदलते हालात में यूरेशिया ने एक नई चुनौती पैदा कर दी। अब पूर्वी एशिया और मध्य एशिया के देशों का मुख्य मसौदा था आर्थिक उन्नति। इस पूरे परिवर्तन का पुरोधा चीन बन गया। चीन ने इन देशों के साथ न केवल व्यापारिक संबंध जोड़े बल्कि उन्हें अपने गले का हार भी बनाना शुरू कर दिया। चीन की अधिनायकवादी प्रवृत्तियों ने इन देशों के मन में खटास और संघर्ष की भावना पैदा कर दी। दूसरी तरफ, चीन की छाया भारतीय हिंद महासागर के तट तक पहुंच गई। म्यांमार में चीन के विस्तार ने भारत के पूर्वोत्तर राज्यों की सुरक्षा को खतरे में डाल दिया। ऐसी स्थिति में भारत को पूर्वी एशिया के देशों के साथ नए सेतु का निर्माण एक महत्वपूर्ण कारण बन गया। इस तरह भारत की लुक ईस्ट नीति का ढांचा तैयार हुआ।

लुक ईस्ट नीति का महत्व

आसियान के साथ भारत का संबंध लुक ईस्ट नीति का मुख्य आधार बना। आसियान के साथ विधिवत संबंध की स्थापना सेक्टरल डायलाग के रूप में 1992 से शुरू की गई। भारत 1996 में आर्थिक से पूर्ण सहयोगी दश बन गया साथ ही एआरएफ और एशिया-यूरोप घटक का भी सदस्य बन गया। यह सिलसिला निरंतर आगे बढ़ता गया। इन संगठनों के जरिए व्यापार को मजबूती से आगे बढ़ाने की कवायद की गई। अब भारत, म्यांमार और थाईलैंड को रेल मार्ग से जोड़ने की बात चल रही है। उल्लेखनीय है कि 2004 में भारत-आसियान कार रैली का आयोजन किया गया था जो गुवाहाटी होते हुए पूर्वी एशिया के तकरीबन आधा दर्जन देशों से गुजरी थी। इंडोनेशिया का अधिक लाभ भारत के उत्तरी-पूर्वी राज्यों को मिलेगा। पूर्वोत्तर क्षेत्र न केवल विकास की धारा से पीछे छूट गया है बल्कि अलगाववादी उग्रवादियों की चपेट में भी आ गया है। भारत मणिपुर के जीरोबाम और म्यांमार के मांडेलया के बीच रेल मार्ग निर्माण की योजना बना रहा है। भारत को उम्मीद है कि भविष्य में दिल्ली और म्यांमार के बीच रेल दौड़ेगी।³

भारत ने पहली बार 2005 में कुआलालम्पुर, मलेशिया में ईस्ट एशिया सम्मेलन में भाग लिया। दरअसल ईस्ट एशिया सम्मेलन में भारत को आसानी से सदस्यता नहीं मिली थी। इस संगठन की सदस्यता ने भारत की ईस्ट एशिया नीति को काफी मजबूत बना दिया। इतना ही नहीं, भारत की पहचान दुनिया में एक महत्वपूर्ण शक्ति के रूप में होने लगी। भारत ने न केवल संगठन के मंच से लुक ईस्ट नीति का मजबूत बनाया बल्कि हर देश के साथ द्विपक्षीय संबंध के आधार का भी विस्तार किया। मंकांग-गंगा सहयोग और बिम्स्टेक के जरिए भी सांस्कृतिक और आर्थिक संबंधों को मजबूत बनाने की कोशिश की गई।⁴

म्यांमार पिछले कुछ वर्षों से सामरिक केन्द्रबिंदु बना हुआ है। विशेषकर भारत की सुरक्षा म्यांमार से बहुमुखी रूप से प्रभावित हो रही है। चीन की छाया प्रतिदिन भारतीय हितों को चुनौती दे रही थी लेकिन म्यांमार के नए राष्ट्रपति थीन सेन ने कई क्रांतिकारी कदम उठाकर अपने देश के कठोर राजनीतिक ढांचे को उदारवादी व्यवस्था में तब्दील कर दिया है। म्यांमार न केवल आंग सून सू की की रिहाई की, बल्कि उनकी बहुचर्चित राजनीतिक पार्टी नेशनल लीग ऑफ डेमोक्रेसी (एनएलडी) को चुनाव लड़ने की छूट भी दे दी। इसके साथ, हजारों एनएलडी कार्यकर्ताओं को भी जेल से रिहा कर दिया गया। नए राष्ट्रपति ने चीन से एक सुनिश्चित दूरी बनाने का मन भी बना लिया। चीन के विवादास्पद डैम पर, जो इरावदी नदी पर बनाया जाना था, रोक लगा दी गई। यह बदलाव म्यांमार की विदेश नीति में बुनियादी परिवर्तन का सूचक है।

म्यांमार में राजनीतिक परिवर्तन से लोकतंत्र की बहाली का मसला सुलझने लगा है। ट्रेड यूनियन पर लगाए गए प्रतिबंध भी उठा लिए गए हैं। राजनीतिक विरोध और प्रेस की स्वतंत्रता को बहाल करने की कोशिश की जा रही है। अमेरिकी आर्थिक प्रतिबंध को हटाने की कोशिश की जा रही है। अमेरिकी आर्थिक प्रतिबंध को हटाने की महत्वपूर्ण शर्तें भी यही थी। इसलिए अमेरिकी शर्तों के पूरा होने से आर्थिक नाकेबंदी खत्म होने वाली है। अमेरिका पिछले कुछ वर्षों से मन बना चुका था कि म्यांमार में माकूल राजनीतिक परिवर्तन हो, और एक नई व्यवस्था के तहत म्यांमार और अमेरिका के बीच टूटे हुए तार को जोड़ा जाए। भारत इस कड़ी को जोड़ने की पूरी कोशिश कर रहा था और उसे इसमें सफलता भी मिली।⁵

भारत की एक्ट ईस्ट पॉलिसी

2014 में प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने 'लुक ईस्ट पॉलिसी' को 'एक्ट ईस्ट पॉलिसी' के रूप में दोबारा परिभाषित किया। इस पॉलिसी के तीन मुख्य उद्देश्य हैं। पहला, भारत और आसियान देशों के बीच व्यापार, निवेश और सांस्कृतिक संबंध बढ़ाना। दूसरा, भारत के संघर्षग्रस्त पूर्वोत्तर इलाके में शांति और स्थिरता लाना। तीसरा, आसियान देशों के साथ मिलकर म्यांमार में चीन की बढ़ती सैनिक और आर्थिक ताकत का मुकाबला करना। अपने इन उद्देश्यों का हासिल

करने के लिए भारत ने कलादान मल्टी मॉडल प्रोजेक्ट (KMMP) और भारत-म्यांमार-थाईलैंड के बीच त्रिपक्षीय समझौते (IMTTP) के तहत म्यांमार के साथ अपना सम्पर्क बढ़ाया।

कलादान परियोजना का मकसद बांग्लादेश और म्यांमार के जरिए भारत के पूर्वोत्तर इलाकों तक संपर्क को बेहतर करना था। इसके लिए कोलकाता बंदरगाह को म्यांमार के सितवे बंदरगाह से जोड़ा गया। म्यांमार में राष्ट्रीय राजमार्ग के जरिए ये रास्ता मिजोरम तक जाता है। इसी तरह आईएसटीटीपी के जरिए भारत के सीमावर्ती मोरे शहर को म्यांमार के तामू नगर के रास्ते थाईलैंड के मेई सोत शहर से जोड़ा गया। इसके जरिए इन तीनों देशों में सड़क मार्ग से व्यापार, पर्यटन और शिक्षा के क्षेत्र में सहयोग बढ़ सकता है।

27 अक्टूबर 2023 के ब्रदरहुड अलायंस के तीन संगठनों, अराकान आर्मी, ताआंग नेशनल लिबरेशन आर्मी और म्यांमार नेशनल डेमोक्रेटिक आर्मी ने म्यांमार

विज्ञान और तकनीक

विज्ञान और तकनीक के अन्तर्गत अन्य योजनाएँ जैसे – म्यांमार सूचना प्रौद्योगिकी संस्थान (MIIT)। IIITB ने MIIT को i. कंप्यूटर विज्ञान और इंजीनियरिंग में बीई (ऑनर्स), पप. इलेक्ट्रॉनिक्स और संचार इंजीनियरिंग में बीई (ऑनर्स) और पप. कंप्यूटर विज्ञान में एमई पाठ्यक्रम विकसित करने में सहायता प्रदान की। इसे 31 मार्च 2022 को लॉन्च को सौंप दिया गया। IIITB ने मई 2023 में डिजिटल माध्यमों से सहायता प्रदान की।⁷

म्यांमार में दूरसंचार परियोजनाओं में नई दिल्ली पहले से ही संलग्न है जिसके लिए भारत ने म्यांमार को लगभग 1 करोड़ डॉलर देने का वचन दिया। एनटीपीसी लिमिटेड, भारत की बड़ी विद्युत उत्पादक कंपनी, ने म्यांमार के बिजली क्षेत्र के पेशेवरों को पांच प्रशिक्षण सत्र दिए हैं। ये सत्र भारतीय तकनीकी और आर्थिक सहयोग (आईटीईसी) कार्यक्रम के तहत आयोजित किए जा रहे हैं, जो भारत और म्यांमार सरकार के बीच सहयोग को बढ़ावा देता है।

पहले चार सत्र सफल रहे, जिसमें विषय जैसे माइक्रोग्रिड, इलेक्ट्रिक वाहन, और स्मार्ट ग्रिड शामिल थे। अंतिम सत्र “सौर ऊर्जा और फोटोवोल्टिक प्रणाली” पर है और इसकी समाप्ति 23 जून, 2023 को हुई। उद्घाटन समारोह में उच्च अधिकारियों ने बिजली क्षेत्र में सहयोग और कौशल विकास के महत्व पर जोर दिया। कार्यक्रम का उद्देश्य ज्ञान का आदान-प्रदान करना और भारत-म्यांमार के बीच द्विपक्षीय संबंधों को मजबूत बनाना है।⁸

निष्कर्ष-

इन पहलों के माध्यम से, भारत ने अपनी ‘एक्ट ईस्ट’ और ‘नेबरहुड फर्स्ट’ नीतियों को मजबूत किया है, जो क्षेत्रीय स्थिरता और सहयोग को बढ़ावा देती है। जैसा जैसा प्राकृतिक आपदाएँ जलवायु परिवर्तन के कारण बढ़ती और गंभीर होती चली जा रही हैं, भारत का मजबूत मानवीय ढांचा अंतर्राष्ट्रीय सहायता प्रयासों के लिए एक आदर्श स्थापित करता है।

संदर्भ

1. Devare Sudhir “India and southeast Asia: Towards security convergence” institute of southeast Asian studies 2006, pages 88-91.
2. Santhanam k and Srikanth Kondpalli, “Asian security and China, 2000-2010” Delhi: Shipra Publication.
3. Dutt, V.P. “India’s Foreign policy since Independence” NBT, 2007 pages 88-92.
4. Muni, S.D “India’s Foreign policy” IDSA, Asian strategic review, 2007.
5. Saran Shyam “the pivot of change in Asia” The Indian express, 2 december, 2011.
6. www.sanskritias.com 2023.
7. <https://translate.google.com/2023translate?u=https://embassyofindia.angon.gov.in/pages/MTUz&hl=hi&sl=en&tl=hi&client=srp&prev=search>.
8. <https://www.eprmagazine.com> 2023.

गौरेला-पेण्ड्रा-मरवाही जिला के भैना जनजाति की शैक्षणिक समस्याओं का अध्ययन

लोक सिंह

सहायक प्राध्यापक, समाजशास्त्र, वी.रा.दु.शा. महाविद्यालय मरवाही, जिला- गौरेला-पेण्ड्रा-मरवाही (छ.ग.)

सारांश-

जनजातियों में शिक्षा का अभाव है और वे अज्ञानता के अहंकार में पल रहे हैं। अशिक्षा के कारण वे अनेक अधविश्वासों, कुरीतियों एवं संस्कारहीनता से घिरे हुये हैं। आदिवासी लोग वर्तमान शिक्षा के प्रति उदासीन हैं, क्योंकि यह शिक्षा उनके लिये अनुत्पादक है जो लोग आधुनिक शिक्षा ग्रहण कर लेते हैं वे अपनी जनजातिय संस्कृति से दूर हो जाते हैं और अपनी मूल संस्कृति को घृणा के दृष्टि में देखते हैं। आज की शिक्षा जीवन निर्वाह का निश्चित साधन प्रदान नहीं करती। अतः शिक्षित मिशनरियों ने जनजातियों में शिक्षा प्रसार का कार्य किया। अधिकांश आदिवासी प्राथमिक शिक्षा ही ग्रहण कर पाते हैं उच्च शिक्षा में वे अधिक रुचि नहीं रखते। इस शोध में जनजातियों में शिक्षा के प्रति रुचि जगाने हेतु यह शोध किया जा रहा है।

मूल शब्द- अज्ञानता, शिक्षा का अभाव, भैना जनजाति, शैक्षिक समस्या।

प्रस्तावना-

भैना जनजाति अल्पसंख्यक जनजाति है, जो सतपुड़ा पर्वतमाला एवं छोटा नागपुर पठार के बीच सघन वन क्षेत्र के मध्य बिलासपुर, जांजगीर-चांपा, रायगढ़, रायपुर, बस्तर एवं नवीन जिला गौरेला-पेण्ड्रा-मरवाही में रहते हैं। किवदन्ती के अनुसार ये भैना और कंवर की वर्ण संकर संताने हैं। भैना जनजाति के लोग किसी समय महासमुंद के फूलझर जमींदारी में थे। बाद में इनको हराकर इनकी जमींदारी छीन ली गयी। भैना जनजाति की उत्पत्ति के संबंध में कोई भी लिखित व प्रमाणित दस्तावेज उपलब्ध नहीं है। भैना लोगो के आजीविका का साधन शिकार एवं जंगली कंदमूल इकट्ठा करना था, लेकिन अब मूल व्यवसाय खेती, मजदूरी, पशुपालन व वनोपज संग्रहण है। इनमें अनेक गोत्र पाये जाते हैं जैसे नाग, करायत, करसाल, जाता, गिरगांट, सूठी, लोधा, मराई, मौदहा, अमलिहा, तेन्दुआ, टण्डिया, गोनहा आदि। इनकी देवी देवताओं में बूढ़ादेव, ठाकुरदेव, गारइयादेव, भैसासुर, शीतलामाता, नकटीदेवी इत्यादि।

भारत के विभिन्न राज्यों के जंगलों, पहाड़ियों, घाटियों आदि क्षेत्रों में आदिम अवस्था में रहने वाले लोगों को जनजाति, आदिवासी, वन्य जाति आदि विभिन्न नामों से संबोधित किया जाता है। भारतीय जनजातियां सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक एवं शैक्षणिक समस्याओं से ग्रसित हैं। भैना जनजाति अशिक्षा के कारण दूसरे जनजातियों की अपेक्षा सरकारी नौकरी एवं अन्य सेवाओं में इनका अल्प योगदान है। राष्ट्रीय स्तर पर इस जनजाति के बारे में बहुत कम लोगों को जानकारी है तथा इस पर शोध भी नहीं हुये हैं। इसका अध्ययन संभवतः इनके अस्तित्व पर प्रकाश डालने में सहायक सिद्ध होगा।

प्रस्तुत अध्ययन में भैना जनजाति महिला साक्षरता दर की कमी ज्ञात करना एवं उनके सामाजिक आर्थिक एवं राजनैतिक स्थितियों का आकलन किया जायेगा एवं उससे संबंधित आवश्यक सुझाव प्रस्तुत किये जायेंगे ताकि उनकी प्राथमिक शिक्षा एवं उच्च शिक्षा हेतु अग्रसर हो सके। यह अध्ययन महिलाओं में अपने अधिकारों के प्रति, शिक्षा के प्रति जागरूक करने से संबंधित व्यवहार का एक सामाजिक चित्रण है।

भारतीय जनगणना 2011 के अनुसार भारत में जनजाति लगभग 10.43 करोड़ है जो कि सम्पूर्ण जनसंख्या का 9 प्रतिशत है। छत्तीसगढ़ की कुल जनसंख्या लगभग 25545198 है जिसमें अनुसूचित जनजाति की संख्या 7822902 है जो कुल जनसंख्या का लगभग 31.76 प्रतिशत है। यहां 42 विभिन्न जनजातियाँ हैं, जिसमें अबूझमारिया, भैना, बिरहोर एवं कमार आदि जनजाति समूह से हैं। बाद में राज्य सरकार ने पण्डों और भुंजिया समुदाय को पिछड़ी जनजाति में शामिल किया गया है।

छत्तीसगढ़ की कुल आबादी में आदिवासी और अनुसूचित जाति के लोगो की संख्या लगभग आधी होने के बावजूद राज्य में साक्षरता प्रतिशत का औसत राष्ट्रीय औसत के मुकाबले बेहतर यानी 65 प्रतिशत है। इसमें और भी अच्छी बात यह है कि पिछड़े समझे जाने वाले राज्य में महिलाओं की साक्षरता दर भी खासी प्रगतिशील यानी 52.40 प्रतिशत है। उनके मुकाबले बाकी देश के अनुरूप पुरुषों की साक्षरता दर ज्यादा 81.45 प्रतिशत है। वे स्कूली शिक्षण संस्थानों में विद्यार्थियों के नामांकन सरकारी आंकड़ों के अनुसार जहां प्राथमिक स्कूलों में जनजाति छात्रों की संख्या 541281 है वहीं लड़कियों की संख्या भी खासी उत्साहवर्धक यानी 419739 है, लेकिन करीब 20 प्रतिशत का यह फासला आठवीं कक्षा तक पहुंचते-पहुंचते घटकर लगभग 40 प्रतिशत हो जाता है। शिक्षा में आंकड़ों के अनुसार मिडिल स्कूलों में नामांकित लड़कों की संख्या 169709 है, वहीं लड़कियों की संख्या उससे काफी कम 103782 है। इसी प्रकार हाई स्कूल स्तर पर नामांकित छात्रों की संख्या 58226 है, जबकि लड़कियों की संख्या उनसे करीब आधी यानी 29679 है। हायर सेकेंड्री स्तर पर जनजाति लड़कियों के नामांकन की यह संख्या घटकर 40 प्रतिशत यानी 12972 ही रह गयी है, जबकि लड़कों की संख्या 26476 है।

आदिवासी और जनजातियाँ जंगलों, नदी, नालों और जंगली जानवरों के बीच सदियों से सहचर करते आ रहे हैं। यदि कोई इनके क्षेत्रों में अतिक्रमण करें तो ये सीधे-सादे आदिवासी भी उग्र हो उठते हैं। ये आदिवासी समुदाय जो सदियों से जंगलों में रहते आ रहे हैं। इन जनजातियों में सामाजिक आर्थिक विकास की कोई खास होड़ भी नहीं है, इसी कारण इस समुदाय में सदियों बाद भी विकासोन्मुख परिवर्तन देखने को नहीं मिलता है। ये जनजाति अपने परिवार, समाज में ही खुश या सुखी सम्पन्न है। ऐसा लगता है कि ये दूसरे समुदाय या समाज के लोगों से मिलना ही नहीं चाहते हैं, और कोई समाजशास्त्री इसके बारे में कथन करना चाहता है, तो ये अपने इतिहास के बारे में जानते ही नहीं हैं या अपने बारे में कुछ बताना ही नहीं चाहते हैं। वर्तमान में ये जनजाति अतांति पिछड़ी, गरीब, अभावग्रस्त और मुख्यधारा से विमुख है।

साहित्य का पुनरावलोकन-

अनेक समाजशास्त्रियों, जनसंख्याविदों, शिक्षाविदों ने जनजाति महिला की शैक्षणिक स्थिति के संबंध में अध्ययन किये हैं, जिसमें इनके अध्ययन के निष्कर्षों का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया गया है।

पांडे सरोज (1993) ने Education of Sc~ and St~ Girls in Orisa A Study पर शोध कार्य किये जिसमें यह निष्कर्ष पाया कि अनुसूचित जाति तथा जनजाति की बच्चियों में इनके बच्चों की तुलना में शिक्षा का स्तर निम्न होता है। यद्यपि ऐसे लड़कियों की संख्या बहुत कम होती है परन्तु समाज में अग्रणी भूमिका के लिए लड़कियों का शिक्षित होना अति महत्वपूर्ण होता है। प्राथमिक विद्यालयों में इन समुदायों की कन्याओं का पंजीयन भी अन्य समुदाय की तुलना में कम होता है क्योंकि शिक्षा के प्रति कम जागरूकता और रोजी रोटी की समस्या बाधा उत्पन्न करती है।

ओरान पी.सी (1993) ने बिहार के छोटा नागपुर जनजाति क्षेत्र का अध्ययन किया जिसमें जनजाति के आर्थिक स्तर को इनके बच्चों के शिक्षा के स्तर पर आधारित बताया। श्री ओरान के अनुसार खानाबदोषी जनजाति महिलाये तो अपने बच्चों के प्राथमरी शिक्षा प्राप्त करने पर ही संतुष्ट है जबकि कारीगर जनजाति महिलाये तो अपने बच्चों के प्राथमरी शिक्षा प्राप्त करने पर ही संतुष्ट है जबकि मैट्रिक तक शिक्षा प्राप्त करने पर संतुष्ट होती है। लेकिन वे जनजाति महिलाये जो कृषि का कार्य करती हैं वे अपने बच्चों इन्टरमीडिएट उत्तीर्ण चाहती हैं। सर्विस क्षेत्र में नियोजित महिलाये तो अपने बच्चों को स्नातक तथा स्नातकोत्तर तक शिक्षा देना चाहती हैं। अतः शिक्षा और इनके जीवन स्तर के मध्य सीधा संबंध परिलक्षित होता है।

प्रो. जगदीश भगवती ने अपने अध्ययन में यह निष्कर्ष निकाला है कि अत्यधिक खर्चीली शिक्षा भी महिलाओं की शिक्षा में बाधा खड़ी करती है। गरीब परिवारों में यह और भी अधिक व्यय साध्य होती है, क्योंकि लड़कियाँ गृहकार्य में मदद करती हैं तभी वयस्क सदस्यों को उत्पादन कार्य करने का समय मिल पाता है।

गीथा एवं रेवथी (2012) के अध्ययन में, भारत की जनजातियों की अपनी संस्कृति व पारिस्थितिक तंत्र है। सामान्य विकास प्रक्रिया द्वारा आदिवासी समुदाय को संविधान में पारित कर दिया गया है और सरकार उनके उत्थान के लिए विशेष योजनाएं क्रियान्वित कर रही है। विशेषतः शिक्षा संबंधी, जिसमें भारतीय आदिवासी शिक्षा और आदिवासी विकास नीति परख है। आदिवासी शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए एक नई सोच और नई दिशा में नए सिरे से प्रयास की जरूरत है। यह नीति और प्रशासनिक पहल के साथ ही आदिवासी के पहलुओं पर ध्यान केन्द्रित करना चाहिये ताकि इन्हें समाज की मुख्य धारा में लाया जा सके।

अध्ययन की आवश्यकता-

भारत के विभिन्न प्रदेशों में ग्रामीण तथा नगरीय अंचलों से दूर जंगलों, पहाड़ियों, घाटियों आदि क्षेत्रों में आदिम अवस्था में रहने वाले लोगों को जनजाति आदिवासी, वन्य जाति आदि विभिन्न नामों से सम्बोधित किया जाता है, भारतीय जनजातियों सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, शैक्षणिक आदि अनेक प्रकार की समस्याओं से ग्रस्त है।

जनजातीय समाज सरल समाजों की श्रेणी में आते हैं, अतः इनमें वे तमी विशेषताएँ पायी जाती हैं। जो एक सरल समाज में पायी जाती हैं। जनजातीय समाज कम विभेदीकृत होते हैं। इनमें परम्परा एवं रूढ़िवाद का बोल-बाला होता है तथा धर्म की प्रधानता होती है। आकार की दृष्टि से ये छोटे होते हैं जिनमें वैयक्तिक सम्बन्धों की प्रधानता होती है। ये समष्टिवादी होते हैं, इनमें गतिशीलता का अभाव पाया जाता है तथा भिन्नता के स्थान पर समानताएँ अधिक पायी जाती हैं। इनमें प्राथमिक समूह की प्रधानता होती है और सामाजिक नियंत्रण के लिए अनौपचारिक साधनों जैसे प्रथा, परम्परा, रीति-रिवाज, नैतिकता तथा धर्म का प्रयोग अधिक प्रचलित है। प्रस्तुत अध्ययन में जनजाति के शैक्षिक समस्याओं को जानकर उनके समस्याओं का निराकरण करने के लिए सुझाव प्रस्तुत कर सकते हैं। जिसमें उनको प्राथमिक शिक्षा एवं उच्च शिक्षा हेतु अग्रसर हो सके। इसलिए शोधकर्ता ने जनजातियों के शैक्षिक समस्या को ज्ञात करने के लिए इस शोध विषय को चुना है।

अध्ययन का उद्देश्य-

इस अध्यागमन का मुख्य उद्देश्य यह है कि “गौरेला-पेण्ड्रा-मरवाही जिला के भैना जनजाति की शैक्षिक समस्याओं का अध्ययन” इस अध्ययन के उद्देश्य को निम्न बिन्दुओं के द्वारा व्यक्त किया जा सकता है-

1. भैना जनजाति परिप्रेक्ष्य में शिक्षा संबंधी समस्याओं का अध्ययन करना।
2. भैना जनजातियों के शिक्षा के अधिकारों से सम्बन्धित समस्याओं का अध्ययन प्राप्त करना।
3. भैना जनजातियों के बच्चों पर उनकी पारिवारिक स्थिति के प्रभाव का अध्ययन करना।
4. भैना जनजातियों के बच्चों की शिक्षा पर उनकी जाति एवं सामाजिक स्थिति के प्रभाव का अध्ययन करना।

- शिक्षा एवं स्वास्थ्य संबंधी साहचर्य का संबंध स्थापित करना।
- शिक्षा एवं आर्थिक स्थिति में सहसंबंध स्थापित करना।
- राजनैतिक चेतना एवं शिक्षा में सहसंबंधों की स्थिति का पता लगाना।
- निर्णय लेने की क्षमता एवं शिक्षा के चरों का पता लगाना।

शोध अभिकल्प-

अनुसंधान प्रक्रिया केवल समस्या का चयन करने संबंधित साहित्य का संकलन करने परिकल्पना का निर्धारण करने आदि तक ही सीमित नहीं बल्कि अनुसंधान के प्रश्नों का सही हल ढूँढ़ने एवं अनुसंधान प्रक्रिया के दौरान उठने वाले प्रश्नों के निराकरण की प्रक्रिया के लिए यह आवश्यक है कि अनुसंधान के पद या चरण पर योजनानुसार नियंत्रण भी रहे इसके अंतर्गत अनुसंधान की समस्त कार्य योजना आता है।

अनुसंधान विधि-

प्रस्तुत शोध पत्र में शोधार्थी द्वारा सर्वेक्षण विधि एवं निदर्शन का उपयोग किया गया है।

न्यादर्श-

प्रस्तुत शोध में शोधार्थी ने अपने अध्ययन के लिए गौरेला-पेण्ड्रा-मरवाही विकासखण्ड क्षेत्र के आसपास के 100 भैना जनजातियों के उत्तरदाताओं को न्यादर्श के रूप में चयन किया गया है।

प्रयुक्त उपकरण-

अध्ययन हेतु शोधार्थी द्वारा स्वनिर्मित उपकरण का प्रयोग किया गया है।

उपकरण का विवरण-

प्रयुक्त उपकरण में कुल 40 प्रश्न हैं जो कि चार अलग-अलग कारक है

- आर्थिक स्थिति से संबंधित प्रश्न- 10
- पारिवारिक स्थिति से संबंधित प्रश्न- 10
- जाति एवं सामाजिक स्थिति से संबंधित प्रश्न- 10
- शिक्षा एवं सरकारी नीति से संबंधित प्रश्न- 10

तथ्यों का विश्लेषण-

प्रथम कारक- “आर्थिक स्थिति से संबंधित”

प्रथम कारक के प्रश्नों के उत्तरों में पायी गयी, हाँ एवं नहीं का प्रतिशत निम्न प्रकार है।

तालिका- 1

हाँ	नहीं
68%	32%

विश्लेषण-

प्रथम कारक के 10 प्रश्नों के विश्लेषण करने पर 68 प्रतिशत का जवाब हाँ में एवं 32 प्रतिशत का नहीं में जवाब प्राप्त हुआ है।

द्वितीय कारक- “पारिवारिक स्थिति से संबंधित”

द्वितीय कारक के 10 प्रश्नों के उत्तरों में पायी गयी, हाँ एवं नहीं का प्रतिशत निम्न प्रकार है।

तालिका- 2

हाँ	नहीं
63%	37%

विश्लेषण

द्वितीय कारक के आठों प्रश्नों के उत्तरों में 63 प्रतिशत ने हाँ में जवाब दिया और 37 प्रतिशत ने नहीं में जवाब दिया। अतः हमारे द्वारा यह कहा जा सकता है कि यह कारक भैना जनजातियों के बच्चों की शैक्षिक समस्या को प्रभावित करती है।

तृतीय कारक

“जाति एवं सामाजिक स्थिति से संबंधित

तृतीय कारक के प्रश्नों के उत्तरों में पायी गयी है, एवं नहीं का प्रतिशत निम्न प्रकार से है।

तालिका- 3

हाँ	नहीं
41%	59%

विश्लेषण

तृतीय कारक के 10 प्रश्नों के विश्लेषण करने पर 41 प्रतिशत भैना जनजाति का जवाब हाँ एवं 59 प्रतिशत का नहीं में प्राप्त हुआ है।

चतुर्थ कारक

“शिक्षा एवं सरकारी नीति से संबंधित”

चतुर्थ कारक के प्रश्नों के उत्तरों में पायी गयी हाँ एवं नहीं का प्रतिशत निम्न प्रकार है।

तालिका- 4

हाँ	नहीं
66%	34%

विश्लेषण

चतुर्थ कारक के 10 प्रश्नों के उत्तरों में 66 प्रतिशत हाँ एवं 34 प्रतिशत नहीं में जवाब दिए हैं।

अध्ययन का निष्कर्ष-

उपरोक्त आँकड़ों के आधार पर हम यह निश्चित रूप से कह सकते हैं कि भैना जनजाति के आर्थिक स्थिति उनके बच्चों में शैक्षिक समस्या उत्पन्न करती है।

शिक्षा की आज महत्व को कभी अनदेखा नहीं किया जा सकता है और शिक्षा में आर्थिक स्थिति का अच्छा होना आवश्यक है। क्योंकि बिना किसी शिक्षण सामग्री के एवं आधुनिक शिक्षा सर्वत्र महंगी है आज भैना जनजाति के लोग अपने बच्चों के लिए शिक्षा दिलाने में, शिक्षण सामग्री दिलाने में शाला फीस दे पाने में, असमर्थ मानते हैं तथा इस शोध में हमने यह भी देखा कि 68 प्रतिशत भैना जनजाति ने यह भी माना कि अच्छी शिक्षण सुविधाएँ प्राप्त होने पर उनके बच्चों के द्वारा और अच्छे से शिक्षा में एवं ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं तथा 32 प्रतिशत का यह मानना है कि वे आर्थिक रूप से परेशान होने पर इसका प्रभाव उनके बच्चों पर पड़ना यह निश्चित कर देता है कि आर्थिक स्थिति भैना जनजाति के बच्चों की शैक्षिक समस्या उत्पन्न करने में सहायक है। भैना जनजाति के बच्चों में पढ़ाई के साथ-साथ घर की खर्च हेतु अन्य कार्य, एवं मजदूरी भी करने होते हैं अतः वे अपनी शिक्षा में पर्याप्त समय नहीं दे पाते हैं क्या मानसिक रूप से दबाव में होते हैं। अतः यह भी देखा गया है कि आर्थिक रूप से सुदृढ़ परिवार के बच्चों का शिक्षा स्तर उच्च एवं निम्न आर्थिक स्थिति वाले बच्चों का निम्न पाया गया है।

भैना जनजाति की पारिवारिक स्थिति उनके बच्चों के लिए शैक्षिक समस्याएँ उत्पन्न करने में सहायक है।

प्रायः हम देखते हैं कि भैना जनजाति की पारिवारिक स्थिति में भैना प्रायः निरक्षर, नशे में लिप्त और उनकी माताओं को भी नशे की लत में होने के प्रश्न पर अधिकतर भैना जनजाति का जवाब हमें हाँ में प्राप्त हुआ है। इस बात का विवेचना करने पर हम निश्चित रूप कह सकते हैं कि पारिवारिक वातावरण बच्चों को प्रभावित करता है, तथा वे जिस वातावरण में रहते हैं उनका प्रभाव निःसंदेह होना आवश्यक है। नशे के आदी माता-पिता अपने बच्चों का सही मार्गदर्शन नहीं कर पाते हैं जिससे उनके बच्चों में नशाखोरी सामाजिक बुराईयों, अशिक्षा, एवं पढ़ाई बीच में रोक दी जाती है। अतः हम कह सकते हैं कि भैना जनजाति की पारिवारिक स्थिति उनके बच्चों की शैक्षिक समस्या उत्पन्न करने में सहायक पाया गया है।

उक्त शोध से यह निष्कर्ष निकलता है कि जाति तो प्रभाव नहीं डालती एवं सामाजिक स्थिति निश्चित रूप से व भैना जनजाति के बच्चों के शैक्षिक समस्या उत्पन्न करने वाले कारकों में नहीं पाया गया है।

भारतीय समाज में सामाजिक स्थिति गुरु से ही, जाति के साथ प्रभावी रहा है लेकिन प्रस्तुत शोध में शोधार्थी के प्रश्नों के जवाब में जाति के प्रश्न पर अधिकतर भैना जनजाति के लोग अपने बच्चों को शिक्षा पर प्रभाव को अस्वीकार किया गया है। अतः इस बात पर यह सिद्ध होता है कि जाति उनके बच्चों की शैक्षिक समस्या में किसी भी प्रकार की बाधा उत्पन्न नहीं करती है। परंतु सामाजिक स्थिति के प्रश्न निरक्षर होने, मोहल्ले के अधिकतर लोगों निरक्षर होना। हमेशा शोरगुल होना, शैक्षिक समस्या उत्पन्न करने में सहायक है। सभी पदों की तुलना करने एवं इसकी विवेचना करने पर हम कह सकते हैं कि जाति एवं सामाजिक स्थिति भैना जनजाति के बच्चों की शैक्षिक समस्या उत्पन्न नहीं करती है।

इस शोध के आधार पर कहा जा सकता है कि शिक्षा एवं सरकारी नीति शैक्षिक समस्या उत्पन्न नहीं करती है।

शोधार्थी द्वारा प्रस्तुत आँकड़ों के विवेचना करने पर हमारे द्वारा यह पाया गया कि शिक्षा एवं सरकारी नीतियों से संबंधित प्रश्नों पर भैना जनजाति के द्वारा सहमत एवं असहमत में थोड़ा ही अंतर पाया गया है। प्रायः सभी सरकारी नीतियों बनायी तो जाती है पर जमीनी हकीकत अलग पायी जाती है तथा उनका सही रूप से क्रियान्वयन नहीं किया जाता है। स्वास्थ्य केन्द्रों में मुफ्त चिकित्सा, छात्रवृत्ति निःशुल्क गणवेश, स्कूलों में पर्याप्त शिक्षकों की पर्याप्त सुविधाओं के प्रश्न पर मामूली ही अंतर पाया गया है। निश्चित रूप से यह चिंता का विषय है, सबसे बड़ी बात यह है कि अधिकांश भैना जनजाति सरकारी नीतियों की जानकारी से असहमत है फिर भी प्राप्त आंकड़े यह सिद्ध करते हैं कि शिक्षा एवं सरकारी नीतियों की जानकारी से असहमत है फिर भी प्राप्त आंकड़े यह सिद्ध करते हैं कि शिक्षा एवं सरकारी नीतियों भैना जनजाति के बच्चों की शैक्षिक समस्या उत्पन्न करने कारकों में नहीं पाया गया है।

सुझाव

प्रस्तुत शोध में हमें जो निष्कर्ष प्राप्त हुए हैं उसके आधार पर भैना जनजाति के बच्चों के लिए निम्नलिखित सुझाव दिया जा सकता है-

1. बालक का परिवार उसकी प्रथम पाठशाला होती है अतः माता-पिता को चाहिए कि वह बालकों में शुरू से ही अच्छी भावना का विकास करें, जिससे उनमें हीन भावना विकसित न हों।
2. माता-पिता को शिक्षित होना चाहिए ताकि वह बालक को समय-समय पर उचित मार्गदर्शन प्रदान कर सकें।
3. प्राथमिक एवं मिडिल शिक्षा को रोचक और सरल बनाना चाहिए जिससे स्कूलों में शाला छोड़ने वाले बच्चों में कमी आ सके।
4. भैना जनजाति को निःशुल्क शिक्षण सामग्री उपलब्ध करानी चाहिए एवं छात्रवृत्ति प्रदान की जाए साथ ही कमजोर छात्रों को निःशुल्क ट्यूशन की व्यवस्था की जानी चाहिए जिससे शाला त्यागी बच्चों की दर में कमी आये।
5. बच्चों द्वारा बाल श्रम न किया जाए, बाल श्रम से बच्चों को दूर रखा जाए।
6. भैना जनजाति के बच्चों को निःशुल्क व्यवसायिक शिक्षा प्रशिक्षण एवं जानकारी प्रदान होना चाहिए।
7. सरकारी, गैर सरकारी संगठनों एवं समाजिक कार्यकर्ताओं को भैना जनजाति के बच्चों की शिक्षा, व्यवसाय, प्रशिक्षण, एवं स्वास्थ्य की देखरेख तथा पोषण की जिम्मेदारी लेनी चाहिए।
8. भैना जनजाति के बच्चों के लिए विशेष आवासीय विद्यालयों की व्यवस्था की जानी चाहिए जिससे बच्चों में समग्र शिक्षा का विकास हो सके।

संदर्भ

1. Pandey's Education of S.C. and S.T. girls in Orissa Social change. December 1993, Vol 23 No. 4 Page 71-73.
2. Oran P.C. Education of Tribe woman- Attitude and dynamics social change- December 1993 Vol. 23, No 4, Page 78-85.
3. Bhagwati Jagdish "Education class structure and Income Equality" World development (No.5, May 1973)
4. Geeta, R. & Revati. K (2012) A study on tribal education and development research Journal of Social science and Management 2:8.
5. आहूजा, राम सामाजिक समस्याएँ रावत पब्लिकेशन जयपुर।
6. मदन, जी.आर. समाज कार्य विवेक प्रकाशन नई दिल्ली 2004
7. गोयल एण्ड गोयल समाज शास्त्र मध्य प्रदेश संस्करण।
8. पाण्डेय, डॉ. जयनारायण भारत का संविधान सेन्ट्रल लॉ एजेन्सी इलाहाबाद।
9. खुराना, उषा, ध्यान अधिकार शिक्षा दिल्ली। समानान्तर प्रकाशन नई
10. त्रिपाठी डॉ. टी. पी. ध्यान अधिकार इलाहाबाद। इलाहाबाद लॉ एजेन्सी
11. प्रो. श्रीवास्तव ए.आर.एल. भारत का जनजातीय संदर्भ आर.पी. यूनीफाइड भारतीय समाज इलाहाबाद।
12. शिक्षा अनुसंधान लावल बुक डिपो, मेरठ शर्मा आर. ए.

घरेलू महिलाओं में रसोई बागवानी के प्रति जागरूकता का अध्ययन

प्रो० (डॉ०) शबनम तिवारी

शोध-निर्देशिका, गृह विज्ञान विभाग, जयप्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा

कुमारी अनुपमा

शोधार्थी, गृह विज्ञान विभाग, जयप्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा

सारांश

रसोई घर बाग या आंगनबाड़ी उस बाग को कहा जाता है जो घर के पिछवाड़े या बगल में या घर के आंगन में अवस्थित खुली जगह में लगाया जाता है, ऐसी वाटिका जहां पारिवारिक श्रम से परिवार के उपयोग हेतु विभिन्न मौसम में, विभिन्न सब्जियां तथा मौसमी फल प्राप्त किये जा सकें। यह वाटिका बड़ी भी हो सकती है तथा छोटी अर्थात् दो क्यारियें वाली भी हो सकती है। आधुनिक समय में गृहणी रसोई वाटिका के लिए थोड़ा स्थान घर के पिछवाड़े प्रयोजनवस छुड़वाती है। प्राचीन काल से ही घर के पिछवाड़े या अगल-बगल या आंगन में रसोईघर बाग लगाने का शौक होता है।

मुख्य शब्द:- गृहणी, रसोई वाटिका, आंगन, बाग, कृषि, वैज्ञानिक, वैष्विक, जनसंख्या।

प्रस्तावना

कृषि की भूमिका पोषण को बढ़ाने में अत्यधिक मान्यता प्राप्त है, हालांकि इसके योगदान के साक्ष्य कमजोर और मिश्रित हैं। खेतों पर उत्पादन विविधता को बढ़ाना छोटे किसानों के आहार विविधता और पोषण में सुधार के लिए एक प्रभावी दृष्टिकोण के रूप में देखा जाता है।

वैज्ञानिकों का तर्क है कि वर्तमान वैश्विक जनसंख्या वृद्धि और इसके साथ संसाधनों की खपत में वृद्धि, विश्व के पारिस्थितिकी तंत्र को खतरे में डाल रही है और मानवता की आत्म-भोजन की क्षमता पर दबाव डाल रही है। अनुसंधान से पता चलता है कि बढ़ती जनसंख्या, घटती ऊर्जा भंडार और खाद्य संकट 2030 तक एक 'संपूर्ण तूफान' उत्पन्न कर सकते हैं। 2009 में खाद्य भंडार पचास वर्षों के न्यूनतम स्तर पर थे और अनुमान लगाया गया था कि 2030 तक विश्व को 50 प्रतिशत अधिक ऊर्जा, खाद्य और पानी की आवश्यकता होगी। FAO की 2009 की रिपोर्ट के अनुसार, 2050 तक विश्व को 2.3 अरब अतिरिक्त लोगों को भोजन कराने के लिए 70 प्रतिशत अधिक खाद्य उत्पादन करना होगा। खाद्य की इस कमी के कारण कई लोग कुपोषण के विभिन्न रूपों के संकेत दिखा रहे हैं। कुपोषण आमतौर पर ग्रामीण समुदायों में देखा जाता है और यह मानव और आर्थिक विकास के लिए एक प्रमुख चुनौती है। अनुमान है कि लगभग एक अरब लोग वैश्विक स्तर पर भूख का सामना कर रहे हैं और अपनी आहार संबंधी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए पर्याप्त भोजन प्राप्त नहीं कर पा रहे हैं।

वास्तव में, "रसोई के बाग" का तात्पर्य उन खाद्य पदार्थों से है जो घर के भीतर या उसके आस-पास घरेलू उपयोग के लिए उगाए जाते हैं। घरेलू बागान रसोई के बाग, मिश्रित बाग, या पिछवाड़े, खेत के बाग और आवासीय बागों के रूप में हो सकते हैं। रसोई या घरेलू बागवानी खाद्य उत्पादन की सबसे पुरानी और व्यापक प्रणाली है, जो विश्वभर में पाई जाती है।

सामूहिक सामुदायिक बागवानी का अभ्यास कई विकसित देशों जैसे ऑस्ट्रेलिया में एक उपयोगी गतिविधि के रूप में अपनाया जाता है, लेकिन दक्षिण एशियाई देशों जैसे भारत में यह कम प्रचलित है, जहां भूमि स्वामित्व के पैटर्न और उपयोग इन देशों की तुलना में व्यक्तिगत प्राथमिकताओं और मौजूदा भूमि उपयोगों के संदर्भ में काफी भिन्न हैं। इन देशों में, लोग आमतौर पर व्यक्तिगत रूप से या घरेलू स्तर पर अपने स्वामित्व वाले स्थानों में सब्जियाँ उगाते हैं, बजाय कि किसी निर्धारित स्थान पर सामूहिक प्रयास के। इसलिए, घर पर सब्जी बागवानी को प्रोत्साहित करना विकासशील देशों में संसाधन-गरीब ग्रामीण और शहरी परिवारों के लिए खाद्य सुरक्षा में सुधार करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है, जिससे ताजे और पोषण से भरपूर खाद्य स्रोतों की उपलब्धता बढ़ती है। मलेशिया के शहरी पेनांग के निम्न-आय आवास क्षेत्रों में, रसोई के बाग स्थानीय कम लागत वाले फ्लैट निवासियों के लिए स्थान, पहचान और संबंध की भावना का प्रतीक बन गए हैं।

किचन गार्डनिंग प्रथाओं से उत्पन्न विभिन्न सामाजिक लाभों में स्वास्थ्य और पोषण, आय में वृद्धि, आत्म-रोजगार, घरेलू और सामुदायिक खाद्य सुरक्षा शामिल हैं। फलों और सब्जियों का उत्पादन परिवारों को महत्वपूर्ण पोषण तक सीधी पहुंच प्रदान करता है, जिसे वे खरीदने के लिए अपने बजट में नहीं

रख सकते। किचन गार्डनिंग ने फूलगोभी, मूली और शलजम जैसी जैविक सब्जियों के उत्पादन के लिए लागत-कुशल और टिकाऊ तरीकों को भी साबित किया है।

स्वास्थ्य एक अनमोल संपत्ति और व्यक्ति, परिवार, समुदाय और यहां तक कि राष्ट्र के लिए एक महत्वपूर्ण संसाधन है। केवल स्वस्थ लोग ही अपने और राष्ट्र के सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक विकास के लिए प्रयास और क्षमताएं लगा सकते हैं। स्वास्थ्य एक स्थिर स्थिति नहीं है; यह एक गतिशील अवस्था है जो सर्वोत्तम स्वास्थ्य से मृत्यु तक के एक निरंतरता पर विद्यमान है। यह मानव जीवविज्ञान, जीवनशैली, पर्यावरण और संसाधनों से संबंधित विभिन्न कारकों द्वारा प्रभावित होता है। लोगों को संतुलन की स्थिति बनाए रखने के लिए विभिन्न कारकों को अपनाने और संशोधित करने की आवश्यकता है, ताकि वे अपने स्वास्थ्य को बढ़ावा, सुरक्षा, पुनः प्राप्ति बनाए रख सकें।¹

शहरी क्षेत्रों में किचन गार्डन अब एक महत्वपूर्ण पहलू बन गया है। यह शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक स्वास्थ्य में सुधार करता है। एक किचन गार्डन ताजे सब्जियों की सस्ती, नियमित और सुविधाजनक आपूर्ति सुनिश्चित करता है, जो पोषण के लिए आवश्यक है। हरी सब्जियों में ऐसे विटामिन और खनिज होते हैं जो हमें बीमारियों से बचाते हैं। लोग अपनी सब्जियाँ जैविक रूप से उगा सकते हैं, जो बिना किसी प्रदूषण के होंगी। किचन गार्डन को पोषण की समस्या को हल करना चाहिए, जो दुनिया में एक बड़ा मुद्दा है। लोग 100 प्रतिशत जैविक सब्जियाँ उगा सकते हैं, जो उच्च पोषण और स्वास्थ्य गुणवत्ता वाली होती हैं, और उन्हें स्वस्थ सब्जियों की नियमित और सुविधाजनक आपूर्ति मिलती है। आजकल अधिकांश लोग स्वास्थ्य के प्रति जागरूक हो गए हैं और उन्हें जैविक सब्जियों की मांग है; इसलिए किचन गार्डनिंग के माध्यम से ताजे और जैविक सब्जियों की आपूर्ति का यह सबसे आसान तरीका है। अधिकांश परिवारों के पास विभिन्न आकार के किचन गार्डन हैं। किचन गार्डनिंग प्रथाओं से कई सामाजिक लाभ सामने आए हैं; बेहतर स्वास्थ्य और पोषण, आय में वृद्धि, रोजगार, रसोई खाद्य सुरक्षा, और सामुदायिक सामाजिक जीवन। परिवार और छोटे समुदाय खाली भूमि का लाभ उठाते हैं और न केवल अपने रसोई खाद्य आवश्यकताओं को पूरा करते हैं, बल्कि अपने निवास शहर की आवश्यकताओं में भी योगदान करते हैं।

बुनियादी रसोई की वस्तुओं, फलों और सब्जियों की लगातार बढ़ती कीमतों के कारण गरीब और निश्चित आय वाले समूह वास्तविक आय और क्रय शक्ति में कमी का सामना कर रहे हैं। गरीब लोगों की आय में मामूली वृद्धि, ताकि वे खाद्य सामग्री तक पहुंच प्राप्त कर सकें और अपने पोषण में सुधार कर सकें, वर्तमान समय की आवश्यकता है। शहरों और शहरी क्षेत्रों में, जहां कृषि के लिए भूमि की कमी और जनसंख्या का अधिक दबाव है, रसोई के चारों ओर की बेकार, जंगली घास से भरी और कचरे के ढेर में तब्दील हो चुकी भूमि का सही उपयोग करके रसोई खाद्य सुरक्षा और पोषण सुनिश्चित किया जा सकता है। बढ़ती सभ्यता और पश्चिमी शिक्षा के साथ, आधुनिक घरों में ताजे खाद्य उत्पादों और सामग्रियों तक आसान और त्वरित पहुंच के लिए रसोई के बागों को शामिल किया जा रहा है। इसलिए, इस अध्ययन का उद्देश्य शहरी महिलाओं द्वारा रसोई बागवानी के प्रति जागरूकता और अपनाने की स्थिति को जानना था।

रसोई बागवानी के संबंध में ज्ञान को किसी स्थिति की व्याख्या का दृष्टिकोण माना जाता है। यह समझने की क्रिया या अवस्था है; तथ्यों या सत्य की स्पष्ट धारणा, जो किसी व्यक्ति को भविष्य में सामना करने वाली संभावित परिस्थितियों का पूर्वानुमान लगाने में सहायता करती है। यह व्यक्तियों को संबंधित क्षेत्र के प्रति विवेकशील और जागरूक बनाता है।

बुनियादी रसोई की वस्तुओं, फलों और सब्जियों की लगातार बढ़ती कीमतों के कारण गरीब और निश्चित आय वाले समूह वास्तविक आय और क्रय शक्ति में कमी का सामना कर रहे हैं। गरीब लोगों की आय में मामूली वृद्धि, ताकि वे खाद्य सामग्री तक पहुंच प्राप्त कर सकें और अपने पोषण में सुधार कर सकें, वर्तमान समय की आवश्यकता है। शहरों और शहरी क्षेत्रों में, जहां कृषि के लिए भूमि की कमी और जनसंख्या का दबाव है, रसोई के चारों ओर की बेकार, जंगली घास से भरी और कचरे के ढेर में तब्दील हो चुकी भूमि का सही उपयोग करके रसोई खाद्य सुरक्षा और पोषण सुनिश्चित किया जा सकता है। बढ़ती सभ्यता और पश्चिमी शिक्षा के साथ, आधुनिक घरों में ताजे खाद्य उत्पादों और वस्तुओं तक आसान और त्वरित पहुंच के लिए रसोई के बागों को शामिल किया जा रहा है।

क्रिस्टेंसन (2011)² के अनुसार एक रसोई बाग की कई परिभाषाएँ हैं। यह एक सामान्य फ्रांसीसी शब्द है; ये बाग रसोई के लिए कुछ सब्जियाँ, फल या जड़ी-बूटियाँ प्रदान करने के उद्देश्य से बनाए जाते हैं। जब “रसोई बाग” शब्द सुना जाता है, तो एक शेल्फ पर छोटे फूलदानों में कुछ जड़ी-बूटियों की कल्पना करना आसान होता है। इसमें सब्जियाँ, फल, बेरी, जड़ी-बूटियाँ और फूल शामिल हो सकते हैं। रसोई बाग को रसोई के पिछवाड़े में उपलब्ध खाली स्थान में उगाया जा सकता है या महिलाएँ एकत्र होकर एक सामान्य स्थान या भूमि की पहचान कर सकती हैं और उन सब्जियों, फलों, अनाज आदि को उगा सकती हैं जो महिलाओं और समुदाय के लिए लाभकारी हो।

Drescher et al. (2000)³ के अनुसार किचन गार्डनिंग प्रथाओं से कई सामाजिक लाभ उत्पन्न हुए हैं; जैसे कि बेहतर स्वास्थ्य और पोषण, आय में वृद्धि, रोजगार, रसोई खाद्य सुरक्षा, और सामुदायिक सामाजिक जीवन। परिवार और छोटे समुदाय खाली भूमि का लाभ उठाते हैं और न केवल अपने रसोई खाद्य आवश्यकताओं को पूरा करते हैं, बल्कि अपने निवास स्थान की आवश्यकताओं में भी योगदान करते हैं।

स्टेफंस (2003)⁴ के अनुसार विकसित देशों में अधिकांश सफल रसोई बागवानी कर रहे हैं, जो संयोगवश नहीं हैं। ये योजनाबद्धता, निरंतर देखभाल और चीजों को उगाने की इच्छा का परिणाम हैं। एक सब्जी बाग के कई लाभों में ताजा हवा, व्यायाम, धूप, ज्ञान, अतिरिक्त आय, मानसिक चिकित्सा और ताजे खाद्य पदार्थ शामिल हैं, जो विटामिन और खनिजों से भरपूर होते हैं और परिपक्वता के सर्वोत्तम चरण में काटे जाते हैं।

रसोई बागवानी के महत्व को देखते हुए, खाद्य उत्पादन में लागत बचत और उत्पादकता वृद्धि के लिए प्रभावी नीतियों, कृषि अनुसंधान और प्रौद्योगिकी की आवश्यकता है। इस संदर्भ में, छत और बर्तन बागवानी का विचार एकीकृत दृष्टिकोण को बढ़ावा देने के लिए एक गतिविधि के रूप में कार्य कर सकता है, जो कम लागत और पारिस्थितिकीय रूप से उचित फसल प्रणाली को प्रोत्साहित करता है। यह गतिविधि विशेष रूप से झुग्गियों में रसोई खाद्य आपूर्ति और पोषण में सुधार करने में मदद कर सकती है।

NARC⁵ का जैविक कृषि और बागवानी संस्थान भी इस गतिविधि को बढ़ावा देने का प्रयास कर रहा है। वे पौधों की रोपाई, मौसमी बीज, हाइब्रिड बीज, जैविक खाद और कंपोस्ट, रोगों के लिए सावधानियों, कीट नियंत्रण और महिलाओं को बर्तन और छत के बागों की स्थापना और रखरखाव के लिए प्रशिक्षण देने के संबंध में तकनीकी सहायता प्रदान करेंगे। इस संबंध में, NARC के सामाजिक वैज्ञानिकों ने इस्लामाबाद के पॉश क्षेत्रों में रसोई बागवानी के सामाजिक दृष्टिकोण और स्वीकृति का विश्लेषण करने के लिए एक अध्ययन भी तैयार किया है। रसोई के बागानों में रसोई खाद्य सुरक्षा को सुधारने और सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी को दूर करने की बड़ी संभावनाएँ हैं। ये सीधे तौर पर रसोई स्तर पर खाद्य सुरक्षा को बेहतर बनाते हैं, क्योंकि ये पौष्टिक और विविध खाद्य पदार्थों तक पहुँच सुनिश्चित करते हैं, परिवारों की खरीदने की क्षमता को बढ़ाते हैं और सूखे के मौसम में एक बैकअप योजना प्रदान करते हैं (FAO – FHI 360, 2016)।⁶ अनुसंधान से पता चला है कि रसोई के बागानों का संबंध बेहतर आहार विविधता स्कोर, विटामिन ए से भरपूर फलों, अन्य फलों, विटामिन ए से भरपूर सब्जियों, अन्य सब्जियों, दालों और बेहतर पूरक खाद्य उपलब्धता के साथ है (Girard et al- 2012)।⁷ रसोई के बागानों का रसोई खाद्य उपभोग पैटर्न पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है; ये ग्रामीण निम्न-आय वाले परिवारों में आहार विविधता में समग्र वृद्धि से जुड़े होते हैं (Ruel और Alderman 2013)।⁸ इसके अतिरिक्त, हालाँकि अप्रत्यक्ष रूप से, रसोई के बागान परिवार को अनाज प्रदान कर सकते हैं, ऐसा वे उन पैसों का उपयोग करके कर सकते हैं जो फलों और सब्जियों की खरीद में खर्च होने वाले थे, अनाज और अन्य खाद्य पदार्थ खरीदने के लिए।

रसोई का बाग दुनिया की प्राचीन कृषि प्रथाओं में से एक है। रसोई का बाग न केवल खाद्य और पोषण सुरक्षा प्रदान करते हैं, बल्कि वे आय बढ़ाने और पर्यावरण को लाभ पहुंचाने में भी सहायक होते हैं। सामान्यतः, रसोई बागवानी का तात्पर्य परिवार के प्लॉट के चारों ओर या रसोई के निकट एक छोटे भूखंड की खेती से है। ये एक मिश्रित फसल प्रणाली का हिस्सा होते हैं, जिसमें सब्जियाँ, फल, वृक्षारोपण फसलें, मसाले, जड़ी-बूटियाँ, सजावटी और औषधीय पौधे, और ऐसे जानवर शामिल होते हैं जो खाद्य और आय प्रदान कर सकते हैं।

कुमार और नायर (2004)⁹ के अनुसार, होम गार्डन “विभिन्न पेड़ों और फसलों का एक अंतरंग, बहु-स्तरीय मिश्रण है, जो अक्सर रसोई जानवरों के साथ मिलकर रसोई के चारों ओर होता है,” जिसमें सब्जियों, फलों और जड़ी-बूटियों का उत्पादन प्राथमिकता रखता है। रसोई का बाग अक्सर सुरक्षा, सुविधा और विशेष ध्यान के लिए रसोई के निकट स्थित होते हैं। रसोई का बाग की विशेषता कम वित्तीय निवेश और सरल तकनीक है, साथ ही यह पारिस्थितिक रूप से उपयुक्त और पूरक प्रजातियों से भरे होते हैं। रसोई बाग एक उत्पादन प्रणाली है जिसे सभी आय समूहों के लोग आसानी से स्थापित कर सकते हैं, क्योंकि इसकी लागत बहुत कम होती है और यह अक्सर प्राकृतिक आवास के पौधों, खाद/कम्पोस्ट, और स्वदेशी कीट नियंत्रण विधियों का उपयोग करता है। यह न केवल लोगों की पोषण स्थिति में सुधार करता है, बल्कि अतिरिक्त रसोई आय का स्रोत प्रदान करके उनके जीवनयापन में भी योगदान करता है, जिससे विशेष रूप से महिलाओं की स्थिति में सुधार होता है।

एक रसोई के बाग को परिभाषित करने वाले कई कारक होते हैं, जिनमें उगाए जाने वाले सब्जियों/फलों का प्रकार, सिंचाई के लिए जल आपूर्ति और उपलब्ध स्थान शामिल हैं। जिन सब्जियों को उगाना है, उन्हें उपयुक्त जलवायु और मौसम के अनुसार निर्धारित किया जाना चाहिए। उनके मूल खाद और सिंचाई की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर संसाधनों का उपयोग कम किया जा सकता है। वर्षा जल संग्रहण प्रणाली बागवानी के लिए लाभकारी हो सकती है, क्योंकि यह सिंचाई से पानी एकत्रित कर उसे खाद में परिवर्तित कर सकती है।

उद्देश्य

1. सारण जिला के छपरा क्षेत्र में रसोई बागवानी करने वाले और न करने वाले परिवारों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति की स्थापना करना।
2. सारण जिला के छपरा क्षेत्र में रसोई बागवानी करने वाले और न करने वाले परिवारों के आहार विविधता का निर्धारण करना।
3. ASAL क्षेत्रों में रसोई बाग के स्वामित्व और परिवारों की आहार विविधता के बीच संबंध का निर्धारण करना।
4. ASAL क्षेत्रों में रसोई बागवानी को एक हस्तक्षेप के रूप में स्थिरता का मूल्यांकन करना।

परिकल्पना

इन अध्ययनों से स्पष्ट है कि भारत वर्ष की भौगोलिक विशालता तथा सामाजिक विविधता की दृष्टि से देश के विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रों और सामाजिक वर्गों के भोजन के अवयव स्वरूप आदि का अध्ययन अत्यन्त महत्वपूर्ण है। आहार के अवयव व्यवसायिक आवश्यकता, क्षेत्रीय उत्पादकता आदि से भी अत्यधिक प्रभावित है। साक्षरता और शिक्षा में वृद्धि तथा सामाजिक गतिशीलता के कारण भी आहार प्रबंधन में परिवर्तन होते हैं। क्षेत्रीय तथा समाज के वर्गीय संदर्भ इसके संबंध में ज्ञान का अभाव है। प्रस्तुत शोध कार्य इस कमी को दूर करने का प्रयास है। प्रत्येक अध्ययन का स्वरूप, प्रकृति तथा क्षेत्र मूलतया उसके उद्देश्य पर निर्भर है। प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में घरेलू महिलाओं में किचन गार्डन के प्रति ज्ञान, दृष्टिकोण और व्यवहार का अध्ययन करना है।

निष्कर्ष

किचन गार्डनिंग एक हस्तक्षेप के रूप में स्थायी है, क्योंकि यह श्रम की उपलब्धता, पौधों की सामग्रियों की उपलब्धता और सस्ती कीमत, और मालिकों पर इसके सकारात्मक आर्थिक प्रभाव को ध्यान में रखता है। सबसे बड़ी चुनौती जल के स्रोत और उसकी उपलब्धता है।

संदर्भ

1. आर्मस्ट्रॉंग-ए, डोना (2000) “उप-राज्य न्यूयॉर्क में सामुदायिक बागों का सर्वेक्षण: स्वास्थ्य संवर्धन और सामुदायिक विकास के लिए निहितार्थ।” स्वास्थ्य और स्थान 6: 319-327।

2. क्रिस्टेंसन, टी. ई. (2011) रसोई बाग क्या है? एलसीडब्ल्यू में रसोई बागवानी प्रौद्योगिकी का परिचय। पाकिस्तान शैक्षिक समाचार केडको वाई। पृष्ठ 1-2।
3. चीमा, जे. के. (2011) एलसीडब्ल्यू में रसोई बागवानी प्रौद्योगिकी का परिचय। पाकिस्तान शैक्षिक समाचार केडको वाई। (1998)।
4. डेविस, के., एकबोइर, जे., मेकशा, डब्ल्यू., ओचिएंग, सी., स्पीलमैन, डी., और जेरफू, ई. (2007), उप-सहारा अफ्रीका में कृषि शिक्षा और प्रशिक्षण को मजबूत करना: नवाचार प्रणाली के दृष्टिकोण से। आईएफआरपीआई। चर्चा पत्र। 00736।
5. ड्रेस्चर एट अल। 2000। “शहरी खाद्य सुरक्षा: शहरी कृषि, संकट का एक उत्तर?” यूए पत्रिका (2000)
6. गॉस, सी.एफ.(1821/-3/-6)। थ्योरी कॉम्बिनेशनिस ऑब्जर्वेशनरम एररिबस मिनिमर ओब्जॉक्सियस, दो भागों में और एक अनुपूरक के साथ। जी.डब्ल्यू. स्टीवर्ट द्वारा अंग्रेजी अनुवाद और टिप्पणियों के साथ पुनर्मुद्रित (1995)।
7. हेजेर, एन और सेन, जी। 1994। लिंग, आर्थिक विकास, और गरीबीरू एशिया और प्रशांत में बाजार विकास और राज्य योजना। काली फॉर विमेन और इंटरनेशनल बुक्स द्वारा प्रकाशित।
8. जोन्स एट अल., (2013)। “विश्व स्वास्थ्य संगठन के शिशु और युवा बच्चों के भोजन संकेतक और उनके बच्चे के शारीरिक माप के साथ संबंधरू हाल के निष्कर्षों का संश्लेषण”।
9. जोशी एट अल., (2011)। “नेपाल में युवा बच्चों में अनुपयुक्त पूरक भोजन प्रथाओं के निर्धारक: जनसांख्यिकी और स्वास्थ्य सर्वेक्षण 2006 के द्वितीयक डेटा विश्लेषण”।

स्वराज पार्टी में एस. सत्यामूर्ति की भूमिका

मोना कुमारी

शोधार्थी, इतिहास विभाग, मगध विश्वविद्यालय, बोध-गया

सारांश

एस. सत्यामूर्ति दक्षिण भारत के प्रमुख और प्रभावशाली राष्ट्रीय नेताओं में से एक थे। उन्होंने नागरिक अवज्ञा और भारत छोड़ो आंदोलन में सक्रिय भाग लिया। वे एक कुशल वक्ता थे और मद्रास कांग्रेस सत्र में एक बहुआयामी व्यक्तित्व के रूप में कार्य किया। 1921 में, सत्यामूर्ति ने गांधी के असहयोग के सिद्धांत के प्रति अपनी चिंताओं और आपत्तियों को व्यक्त किया, जिससे उन्होंने ब्रिटिश वस्तुओं के पूर्ण बहिष्कार के प्रति एक व्यक्तिगत प्रतिक्रिया दिखाई। वे तमिलनाडु से स्वराज पार्टी के एक प्रमुख सदस्य और सचिव थे। उन्हें प्रारंभिक स्वराजिस्ट उम्मीदवार के रूप में मद्रास विधान परिषद के लिए चुना गया। एक समिति, जिसमें सी. राजगोपालाचारी, वी. जे. पटेल और कस्तूरीरंगैय्यन जैसे सदस्य शामिल थे, ने इस प्रश्न पर एक विभाजित रिपोर्ट प्रस्तुत की। जबकि समिति ने सर्वसम्मति से यह सुझाव दिया कि प्रांतीय कांग्रेस समितियों को अपनी जिम्मेदारी पर सीमित जन आंदोलन शुरू करने की अनुमति दी जाए, यह सुझाव भी विभाजित था कि परिषद के प्रवेश को आंतरिक रूप से सुधारों को नष्ट करने के एक साधन के रूप में अनुमति दी जाए।

मुख्य शब्द:- नागरिक अवज्ञा आंदोलन, भारत छोड़ो आंदोलन, असहयोग आंदोलन, मद्रास विधान परिषद, स्वतंत्रता आंदोलन

प्रस्तावना

गैर-सहयोग आंदोलन के निलंबन के बाद, एक और राजनीतिक पार्टी-स्वराज पार्टी ने राजनीतिक परिदृश्य पर राज किया। यह कांग्रेस के भीतर एक पार्टी के रूप में कार्यरत थी। इसने विधान परिषद के भीतर गैर-सहयोग में विष्वास किया। इसे देश के सभी राष्ट्रवादियों द्वारा समर्थित किया गया और इसने खुले द्वार के संघर्ष के लिए देश को संगठित किया।

स्वराज पार्टी की स्थापना 1 जनवरी 1923 को प्रगति समर्थक नेताओं जैसे कि सी.आर. दास और जवाहरलाल नेहरू द्वारा की गई थी। इस नई पार्टी में कांग्रेसी नेता कस्तूरी रंगा अयंगर, वरराजुलु नायडू, श्रीनिवास अयंगर, विजयाराघवाचार्य और ए. रंगास्वामी अयंगर शामिल हुए। 13 नवंबर 1923 को केंद्रीय विधानमंडल के लिए हुए चुनाव में, स्वराजिस्ट ए. रंगास्वामी अयंगर, एन. श्रीनिवास अयंगर और आर.के. शंमुगम चेट्टी को तमिलनाडु से चुना गया। स्वराजिस्टों ने सत्यामूर्ति द्वारा संचालित विधानमंडल के चुनाव में 41 सीटें जीतीं।¹ तमिलनाडु के स्वराजिस्ट विधायकों ने सभी सरकारी समर्थित कानूनों के खिलाफ कठोर विरोध किया। उन्होंने सी.आर. रेड्डी द्वारा पेश किए गए अविश्वास प्रस्ताव का समर्थन किया। अपने लगातार विधानमंडल के व्यवहार के माध्यम से, मद्रास स्वराजिस्टों ने स्वराज पार्टी की अपेक्षाओं को पूरा किया।

स्वराज पार्टी का जन्म

1922 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का गया सत्र चित्तरंजन दास द्वारा संचालित किया गया, जिन्होंने परिषद अनुभाग का प्रस्ताव रखा, लेकिन इसे सी. राजगोपालाचारी द्वारा पारित प्रस्तावों के कारण अस्वीकृत कर दिया गया, जिन्होंने कहा कि परिषद का प्रवेश गांधी के असहयोग के सिद्धांत के खिलाफ था। सी. आर. दास ने अपनी अध्यक्षता से इस्तीफा दे दिया और 1 जनवरी 1923 को कांग्रेस के भीतर एक अलग पार्टी का गठन किया, जिसमें सी. आर. दास अध्यक्ष और जवाहरलाल नेहरू सचिव बने।² गया में स्थापित कांग्रेस-खिलाफत स्वराज्य पार्टी को 20 से 22 फरवरी 1923 तक इलाहाबाद के आनंद भवन में पार्टी की एक व्यापक सभा में स्वराज्य पार्टी के नाम और शैली के तहत उचित रूप से संगठित किया गया।

इलाहाबाद सम्मेलन के बाद, सी.आर. दास ने भारत के दक्षिणी क्षेत्रों की यात्रा शुरू की। उनकी यात्रा ने यह प्रदर्शित किया कि लोगों के लिए यह आवश्यक है कि वे अपने लक्ष्य को ध्यान में रखें और चौरी-चौरा की दुखद घटना के बाद गैर-सहयोग आंदोलन के निलंबन से उत्पन्न अवसाद, निराशा और हताशा को दूर करें। मद्रास प्रेसीडेंसी में, ए. रंगास्वामी अयंगर, सत्यामूर्ति, ए. कालेप्पर राव, वी. रामदास पंतुलु, बी. वेंकटरत्नम, के.वी. सामी और अन्य ने जनवरी 1923 में स्वराज्य पार्टी के तत्वावधान में प्रांतीय और केंद्रीय शासकीय विधानसभाओं के चुनावों में भाग लेने के लिए संगठन विकसित किया।³

एस. सत्यामूर्ति ने स्वराजिस्ट संघर्ष में परिषद पारित करने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। वह 1923 से 1926 के बीच मद्रास विधान परिषद में विपक्षी पार्टी के नेता थे। उन्होंने नॉन-ब्राह्मण मंत्रालय और गैर-सहयोग आंदोलन के दौरान सरकारी दमन की नीति पर हमला किया। स्वराजिस्टों ने मंत्रियों और प्रमुख परिषद सदस्यों को फंसाने के लिए प्रणाली के बिंदुओं का सफलतापूर्वक उपयोग किया और परिषद के कार्यों को स्थगित कर दिया। सरकार ने परिषद प्रणाली को सख्त कर दिया। संविधान को नष्ट करने के बजाय, स्वराजिस्टों और संयुक्त राष्ट्रवादियों ने ब्रिटिश संसदीय परंपराओं की भाषा और रीति-रिवाजों में सक्रियता से समय बिताया। स्पष्ट कारण यह था कि स्वतंत्रता सेनानियों, जो किसी पार्टी से संबंधित नहीं थे, मध्यमार्गियों और खिलाफतियों ने स्वराजिस्टों

के साथ सहयोग नहीं किया। जब स्वराजिस्टों ने प्रांतीय विधानसभा में 11 सीटें जीतीं, तो राष्ट्रवादी समाचार पत्रों ने उन्हें पहले से अधिक सहानुभूति और समर्थन के साथ देखा।

पार्टी के उद्देश्य

स्वराज पार्टी ने अपने राजनीतिक कार्यक्रम को भारत के अधिकांश हिस्सों में परिषदों और कार्यक्रमों के माध्यम से व्यवस्थित किया। इसे स्वराजियों द्वारा एक सुनियोजित तरीके से महत्वपूर्ण व्यक्तियों के रूप में पूरा किया जाना था, जिसमें उनके सहयोगियों और परिषद में अन्य राजनीतिक दलों के समान विचारधारा वाले व्यक्तियों की सहायता शामिल थी। इसके तहत निम्नलिखित योजनाएँ थीं⁴—

- सरकार द्वारा प्रस्तावित आपूर्ति और वित्तीय योजनाओं को अस्वीकार करें,
- विधायी संस्थानों के प्रस्तावों का विरोध करें,
- प्रशासन के प्रवासन के लिए कदम उठाएं और देश के विकास के लिए प्रस्ताव पारित करें,
- स्पष्ट आर्थिक दृष्टिकोण अपनाकर देश की सार्वजनिक संपत्ति की रक्षा करें,
- देश के औद्योगिक और वाणिज्यिक हितों की सुरक्षा करें,
- औद्योगिक और कृषि श्रम के कानूनी अधिकारों की रक्षा करें और निवासियों और जमींदारों के बीच बेहतर संबंध स्थापित करें।

इसके अतिरिक्त, पार्टी श्रमिकों पर यह आरोप लगाया गया कि वे किसी भी कार्यालय को सार्वजनिक प्राधिकरण का उपहार मानने से इनकार करें, चाहे वह मुआवजे या किसी अन्य प्रकार के मुआवजे के रूप में हो। व्यक्तियों को पार्टी के आदेश में निहित कठोर नियंत्रण के अनुसार विभिन्न परिषदों के लिए राजनीतिक चुनावों की तलाश करने की अपेक्षा की गई।⁵

स्वराज पार्टी की गतिविधियाँ

मद्रास विधान परिषद के लिए दूसरा राजनीतिक चुनाव 31 अक्टूबर 1923 को होना था। परिषद खंड विवाद का समाधान एक समझौते के तहत हुआ, जब अखिल भारतीय कांग्रेस समिति ने 26 मई 1923 को मुंबई में एक प्रस्ताव पारित किया, जिसमें कांग्रेसियों से 'कोई वोट नहीं' प्रचार को मतदाताओं के बीच न करने का आग्रह किया गया, जिससे स्वराजियों को चुनावों में प्रतिस्पर्धा करने का अवसर मिला। इसके अलावा, 17 सितंबर को कांग्रेस ने दिल्ली में एक सत्र में एक समझौता प्रस्ताव पारित किया, जिसमें कांग्रेसियों को चुनावों में भाग लेने और चुनाव लड़ने की अनुमति दी गई, साथ ही अहिंसक असहयोग में अपनी विश्वास को फिर से पुष्टि की। इस प्रकार, स्वराजियों की दृढ़ता को काफी समर्थन मिला। उस पार्टी ने, जो संविधान को नष्ट करने की योजना बना रही थी, चुनावों में भाग लेने और कार्यालय स्वीकार करने की घोषणा की। परिणामस्वरूप, इसने न्याय पार्टी के खिलाफ मजबूत उद्देश्यपूर्ण प्रचार जारी रखा। हालांकि, 1923 के चुनाव में 11 सीटों की वृद्धि असाधारण नहीं थी। फिर भी, इसका न्याय पार्टी की किस्मत पर प्रभाव पड़ा।

1926 में आयोजित तीसरे राजनीतिक चुनाव में, स्वराजिस्टों ने जानबूझकर प्रचार के प्रभावी तरीकों को अपनाया। उन्होंने सार्वजनिक प्रदर्शन, सभाएँ और घर-घर जाकर प्रचार किया, जिसमें कांग्रेस द्वारा 1921 में किए गए असहयोग आंदोलन के दौरान आयोजित भजन परेड जैसी गतिविधियाँ शामिल थीं। इस चुनावी रणनीति ने 'राजनीति को गोखले हॉल से समुद्र तट तक, क्लब से चौराहे तक' पहुँचाया।⁶ हालांकि, न्याय पार्टी ने गांवों और कस्बों में प्रभावशाली व्यक्तियों से संपर्क करने की पारंपरिक विधि को अपनाया। स्वराजिस्टों का प्रचार उतना प्रभावी नहीं था क्योंकि ई.वी. रामासामी ने साम्प्रदायिक हमले किए थे। उनके हमलों का मुकाबला करने के लिए पार्टी ने अधिक गैर-ब्राह्मणों को शामिल किया। परिणामों ने स्वराजिस्टों की स्थिति को दर्शाया, क्योंकि उन्होंने न्याय पार्टी के 21 सीटों के मुकाबले सीटें सुरक्षित कीं।

पार्टी की विधान परिषद में भागीदारी

स्वराजियों ने विधायी प्रक्रिया में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई, जिसका मुख्य उद्देश्य यह प्रदर्शित करना था कि द्वैध शासन असंभव है। दूसरे परिषद में, सी. आर. रेड्डी, एक प्रमुख गैर-ब्राह्मण नेता, ने न्याय पार्टी छोड़ दी और न्याय मंत्रालय के खिलाफ अविश्वास प्रस्ताव पेश किया। स्वराजियों ने, जिनका नेतृत्व सत्यामूर्ति कर रहे थे, सबसे मुखर समूह का गठन किया और इस आंदोलन का समर्थन किया। सत्यामूर्ति ने कहा कि इस आंदोलन को स्वीकार किया जाएगा और समर्थन दिया जाएगा क्योंकि यह मान लिया गया है कि इस प्रेसीडेंसी के सर्वोत्तम हित में, इस राजनीतिक दल के रूप में मौजूद सच्चे शिकारी समूह को एक गैर-साम्प्रदायिक और उत्साही मंत्रालय द्वारा प्रतिस्थापित किया जाना चाहिए। हालांकि स्वराजियों, कांग्रेस और स्वतंत्रों ने इस आंदोलन का समर्थन किया, यह असफल रहा क्योंकि गवर्नर ने मंत्रालय का समर्थन किया।

तीसरे विधान परिषद में, स्वराजिस्टों ने परिषद में सरकार के बाहरी संबंधों से संबंधित मुद्दों पर चर्चा करने का प्रयास किया, यह बताते हुए कि राष्ट्रपति की इस प्रकार की समस्याओं में योगदान था, अन्यथा उन्हें संभवतः गवर्नर द्वारा यह कहते हुए अस्वीकृत किया जा सकता था कि ये मद्रास सरकार के क्षेत्राधिकार में नहीं आते। इसका एक उदाहरण 27 जनवरी 1927 को सत्यामूर्ति द्वारा उठाए गए निलंबन प्रस्ताव में देखा गया, जिसमें श्मशान सरकार द्वारा चीन में भारतीय सैनिकों को भेजने की कार्यवाही पर चर्चा करने का अनुरोध किया गया। सत्यामूर्ति ने मांग की कि मद्रास विधान परिषद मद्रास सरकार से यह अनुरोध करे कि वह भारत सरकार को सूचित करे कि वह चीन में भारतीय सैनिकों को भेजने के निर्णय का समर्थन नहीं करती। जैसे ही सत्यामूर्ति ने यह प्रस्ताव उठाया, अध्यक्ष ने इसे कानून सदस्य सी.पी. रामास्वामी अय्यर को संदर्भित किया, जिन्होंने अवकाश के बाद परिषद को सूचित किया कि गवर्नर ने प्रस्ताव को अस्वीकृत कर दिया था। अक्टूबर 1927 में परिषद में चर्चा का एक अन्य महत्वपूर्ण विषय एक अंग्रेजी जनरल नील की मूर्ति का निष्कासन था।

सत्यामूर्ति ने समझाया कि 'यह जनरल 1857 की महान विद्रोह के दौरान और बाद में भारतीयों के खिलाफ कुछ उल्लंघनों के जोखिम में था। कहा जाता

है कि उसने कुछ शहरों को जलाया और कई निर्दोष पुरुषों, महिलाओं और बच्चों को मार डाला, जब ईस्ट इंडिया कंपनी की सेना ने विद्रोह को दबा दिया था।" ये जनरल द्वारा ब्रिटिश सत्ता की रक्षा के लिए किए गए जानबूझकर वंदलज्म और आतंकवाद के कार्य थे, सत्यामूर्ति ने टिप्पणी की। यह निर्णय एक सत्याग्रह आंदोलन का परिणाम था जो कुछ महीनों से प्रतिमा के निष्कासन के लिए चल रहा था।

सार्वजनिक प्राधिकरण ने कई ड्राइविंग पुरुषों को पकड़ा, जिन्होंने सत्याग्रह में भाग लिया, उन्हें मद्रास की खुली सड़कों पर खादी के कपड़े पहनाकर चलाया, और उन्हें अदालतों में ले जाने की धमकी दी। निश्चित रूप से, प्राधिकरण के सदस्यों ने कुछ चर्चा के बाद अंततः इसके विरोध में वोट डाले। परिषद के कुछ चुने हुए सदस्यों ने इस मांग पर लोगों की भावनाओं का सम्मान करने के लिए उनसे संपर्क किया। जब प्रस्ताव को खारिज कर दिया गया, तो परिषद में जेलों में नील मूर्ति सत्याग्रहियों की स्थिति के बारे में कुछ प्रश्न पूछे गए। यही सब किया जा सका, जबकि मूर्ति वहीं खड़ी रही और सत्याग्रहियों ने अपनी सजा जेल में काटी। इस प्रकार, मद्रास स्वराजियों ने विधायी परिषद में प्रमुख भूमिका निभाई, फिर भी उन्होंने मंत्रालय का गठन नहीं किया।

स्वराज पार्टी और एस. सत्यामूर्ति

स्वराज पार्टी और एस. सत्यामूर्ति सत्यामूर्ति एक उत्कृष्ट सांसद थे जिन्होंने विशेष रूप से अपने भाषणों के संग्रह में 'श्री अध्यक्ष, महोदय' को उजागर किया। उन्होंने 1926 के मद्रास विधान परिषद के चुनाव में दूसरी बार जीत हासिल की। हालांकि, परिषद में उनका कार्यकाल स्वराज पार्टी द्वारा उत्पन्न सक्रिय राष्ट्रीय प्रतिबद्धता के संदर्भ में नहीं आया, जैसा कि भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने स्वयं को कहा।

जनवरी 1924 में, श्रमिक पार्टी ने रामसे मैकडोनाल्ड के नेतृत्व में अद्भुत ब्रिटेन में नियंत्रण प्राप्त किया। यह एक अल्पसंख्यक सरकार थी, जिसमें श्रमिक पार्टी सबसे बड़ी एकल पार्टी थी। सत्यामूर्ति ने मैकडोनाल्ड और अपने पुराने साथी कर्नल जोसियाह वेजवुड के साथ संपर्क बनाए रखा, जिन्हें उन्होंने भारत के लिए श्रमिक सचिव के रूप में नियुक्त होने की उम्मीद की। हालांकि, इस पद के लिए लॉर्ड ओलिवियर को नामित किया गया था और सत्यामूर्ति ने उनके साथ संपर्क बनाए रखा, जैसा कि उनके श्रमिक साथी बेंजामिन स्पूर ने प्रेरित किया। लॉर्ड ओलिवियर का सत्यामूर्ति को 26 अप्रैल 1924 को दिया गया उत्तर, विशेष रूप से अंतिम वाक्य, सत्यामूर्ति को इतना उत्साहित किया कि उन्होंने इसे प्रेस में जारी किया। क्या उन्होंने यह जानबूझकर मद्रास में निर्णय न्याय पार्टी पर एक अंक प्राप्त करने के लिए किया या क्या उन्होंने ब्रिटिश सरकार में एक मनोवृत्ति में अंतर को पहचाना जिसे वह लोगों के समक्ष प्रस्तुत करना चाहते थे? इसने प्रेस में एक घोषणा में हलचल मचाई कि उन्होंने पत्र को प्रकाशित करने की जिम्मेदारी ली, जिसे उन्होंने उठाया, यह कहते हुए कि यह निजी नहीं था, एक दृष्टिकोण जिसे लॉर्ड ओलिवियर ने स्वीकार किया, जिन्होंने इंग्लैंड में अपने आप को इस बात से बचाया कि उन्होंने पत्र में जो कहा था, वह उनके ज्ञात सार्वजनिक विचार थे। फिर भी, श्रमिक पार्टी भारत नीति में कंजर्वेटिव्स से बेहतर नहीं हुई और वास्तव में, श्रमिक सरकार को 1924 के अंत में कार्यालय से हटा दिया गया और अगले आम चुनाव में हार गई, जो कि, पार्टी के अनुसार, उस कुख्यात जिक्र दृष्टि पत्र के कारण थी।⁸

स्वराज पार्टी की गतिविधियाँ लगातार सुचारू रूप से नहीं चल रही थीं, न ही केंद्रीय स्तर पर। मद्रास में, एस. श्रीनिवास अयंगर, जो स्वराजिस्टों में शामिल हुए थे, ने अपनी पूर्व धारणाओं में से एक महत्वपूर्ण हिस्सा छोड़ दिया था, जिसके लिए उन्होंने कुछ वर्षों तक समर्थन किया था और पार्टी के प्रमुख बने थे, वे सत्यामूर्ति और अन्य के साथ संतुष्ट नहीं थे। सत्यामूर्ति और स्वराज पार्टी ने मद्रास विधान परिषद में संयुक्त राष्ट्रीय पार्टी (एक गैर-ब्रह्मण पार्टी, जो न्याय पार्टी के खिलाफ है, जो भी एक गैर-ब्रह्मण पार्टी है) के साथ एक गठबंधन बनाया था, जिसमें सी. नटेसा मुदालियार और सी.आर. रेड्डी शामिल थे। एस. श्रीनिवास अयंगर ने इसका समर्थन नहीं किया और चुनावों में लड़ने के लिए एक संयुक्त राजनीतिक मंच को स्वीकार नहीं किया। श्रीनिवास अयंगर और ए. रंगास्वामी अयंगर (जो सत्यामूर्ति के समर्थक थे) के पत्रों ने इन मुद्दों को संबोधित किया।⁹ जयकर, केलकर, और अनेय मंत्री पद स्वीकार करने के पक्ष में थे, जिसे पार्टी ने अस्वीकार कर दिया और जिसे सत्यामूर्ति भी फरवरी 1924 में जेल से रिहा होने के बाद स्वीकार नहीं कर सके। इस समय, गांधी ने सी.आर. दास और जवाहरलाल नेहरू के साथ एक समझौते पर हस्ताक्षर किए थे कि जबकि वे असहयोग आंदोलन को निर्लंबित कर रहे थे; वे स्वराज पार्टी को 'कांग्रेस के हित में' परिषदों में काम करने की अनुमति देंगे।

तब सत्यामूर्ति ने इंग्लैंड में कांग्रेस पीआर ब्यूरो की संभावना पर विचार किया। गांधीजी इसके खिलाफ थे, फिर भी स्वराजिस्टों को इसे करने की अनुमति देने के लिए चिंतित थे। प्रस्ताव अंततः इंग्लैंड के लिए एक छोटे स्तर की नियुक्ति के रूप में सामने आया। पार्टी के नेता जवाहरलाल नेहरू इस विचार के प्रति झुकाव रखते थे, लेकिन पार्टी को किसी भी रूप में प्रतिबद्ध करने के खिलाफ सलाह दी। सत्यामूर्ति ने सी.आर. दास को अपने साथ आने के लिए मनाने की कोशिश की। दास का मजबूत उत्तर, जो 19 अप्रैल 1925 को आया, इस अद्भुत राष्ट्रवादी के हर प्रशंसक की आंखों में आंसू ला देगा। वह जून में निधन हो गए जब सत्यामूर्ति इंग्लैंड में थे। जून से अगस्त 1925 तक इस यात्रा से संबंधित कोई पत्र नहीं हैं, लेकिन सत्यामूर्ति ने कई बैठकों पर ध्यान दिया, जिनमें से अधिकांश स्वतंत्र श्रमिक पार्टी की सुरक्षा में थीं (फेनर ब्रॉकवे ने बहुत मदद की)। वह श्रमिक पार्टी के सदस्यों के प्रदर्शन से बहुत प्रभावित हुए (जो अब विपक्ष में हैं) जिसमें रैमसे मैकडोनाल्ड और उनके पुराने मित्र जोसियाह वेजवुड शामिल थे, जो कॉमन्स के स्थान पर भारत पर चर्चा कर रहे थे। दिलचस्प बात यह है कि सत्यामूर्ति और उनके एक बार और भविष्य के प्रतिद्वंद्वी ए. रामास्वामी मुदालियार ने विभिन्न बैठकों में सामान्य कारण बनाया, जिससे घर पर मनोरंजन और चिंता का माहौल बना।¹⁰

स्वराज पार्टी ने सी.आर. दास के निधन के बाद विभाजन का सामना किया, जिसमें जयकर, केलकर और अन्य लोग पार्टी छोड़ गए। लाला लाजपत राय और मोहन मालवीय ने परिषद खंड और कार्यालय की स्वीकृति को बनाए रखा। कांग्रेस ने सभी कार्यों को विधानसभाओं में स्वराज पार्टी को सौंप दिया, जबकि 'संविधानात्मक कार्यक्रम' पर विचार करने के लिए एक स्वतंत्र संगठन, अखिल भारतीय सूत कातने वालों संघ, का गठन किया गया। जल्द ही यह स्वीकार किया गया कि परिषदों और केंद्रीय विधानसभा में स्वराज पार्टी कांग्रेस पार्टी थी। राजाजी को मद्रास प्रशासन के मतदाताओं से स्वराज पार्टी के लिए मतदान करने के लिए मनाने के लिए राजी किया गया, जो नवंबर 1926 के चुनाव में परिषद के लिए था। उन्होंने इस प्रकार एक अनिच्छुक सत्यामूर्ति को परिषद में निषेध के लिए प्रेरित किया, जो उनके दिल के करीब का कारण था। मद्रास में स्वराज पार्टी के प्रमुख एस. श्रीनिवास अयंगर ने 1926 के गुवाहाटी कांग्रेस

का प्रबंधन किया। सत्यामूर्ति को 1926 के पुनर्गठन में मद्रास विधान परिषद में फिर से नियुक्त किया गया। वह मद्रास और कांग्रेस राजनीति में सक्रिय रहे, जैसा कि 1925-1926 में राजाजी के पत्रों और 1927 में सी.पी. रामास्वामी अय्यर के पत्रों से स्पष्ट होता है। वह पार्टी के भीतर और आपसी विवादों में व्यस्त रहे, लेकिन दुर्भाग्यवश; इस अवधि के साक्ष्य के रूप में कोई पत्र उपलब्ध नहीं हैं।

स्वराज पार्टी का समर्थन करने के लिए, 18-19 जनवरी 1923 को मद्रास में बैठकें आयोजित की गईं, जिसमें तमिलनाडु स्वराज पार्टी का औपचारिक रूप से गठन किया गया, जिसमें ए. रंगास्वामी अय्यंगर अध्यक्ष और एस. सत्यामूर्ति सचिव बने। 1923 के लिए इसके मुख्य कार्यक्रमों में कांग्रेस को स्वदेशी, खादी, संयम, अछूतता, और राष्ट्रीय शिक्षा तथा मध्यस्थता अदालतों के विकास के संदर्भ में समर्थन देना शामिल था। यह कांग्रेस के रजिस्ट्रेशन में सदस्यों की संख्या बढ़ाने का प्रयास भी करेगा। पार्टी का उद्देश्य स्थानीय बोर्डों और क्षेत्रों में चुनावों में भाग लेना था, ताकि क्षेत्रीय और शहरी मामलों पर राष्ट्रवादियों का नियंत्रण सुनिश्चित किया जा सके। एक अन्य कार्यक्रम ब्राह्मण और गैर-ब्राह्मण समुदायों के बीच समझौते के लिए प्रयास करना था। हालांकि, पार्टी का तात्कालिक लक्ष्य अक्टूबर 1923 में होने वाले प्रांतीय और केंद्रीय परिषदों के चुनावों में भाग लेना था।

इस प्रकार, सितंबर 1923 में दिल्ली का विशेष कांग्रेस सत्र ने परिषद में प्रवेश पर प्रतिबंध हटा दिया। फिर भी, यह स्पष्ट किया गया कि कांग्रेस स्वराजियों द्वारा चलाए गए किसी भी कार्य के लिए जिम्मेदार नहीं थी। जनवरी 1924 में इलाहाबाद में हुई ए.आई.सी.सी. की बैठक ने स्वराज पार्टी को विपक्ष के साथ गठबंधन में काम करने की अनुमति दी, जिसका अंतिम उद्देश्य सरकार को मउइतते करना था। 6 नवंबर 1924 को कोलकाता में आयोजित एक बैठक में, स्वराज पार्टी को कांग्रेस के एक महत्वपूर्ण हिस्से के रूप में प्रांतीय और केंद्रीय परिषदों में काम करने की अनुमति दी गई। कांग्रेस ने विदेशी वस्त्रों के उपयोग से इनकार करने से संबंधित होने की स्थिति को छोड़कर, राष्ट्रीय कार्यक्रम के रूप में असहयोग कार्यक्रम को भी निलंबित कर दिया। 22 सितंबर 1925 को पटना में हुई ए.आई.सी.सी. की बैठक ने यह निर्णय लिया कि कांग्रेस को स्वराज पार्टी की योजना के अनुसार काम करना चाहिए। यह दिसंबर 1925 में कानपुर कांग्रेस सत्र द्वारा स्वीकार किया गया। इस प्रकार, यह पूरी तरह से स्वराजियों के प्रति समर्पित हो गया और स्वराज पार्टी का आह्वान एक आधिकारिक निर्णय था। तुरंत, स्वराजियों ने खुद को कांग्रेस के सदस्य कहा और कांग्रेस के रूप में चुनाव लड़ा।

निष्कर्ष

स्वराज्य पार्टी ने साधारण शुरुआत से उठकर कांग्रेस के भीतर और बाहर राजनीतिक प्रभाव हासिल किया। पार्टी के नेताओं ने दूरदर्शिता और राजनैतिक कौशल का प्रदर्शन किया, साथ ही भारतीय राष्ट्रवाद को एक नया दिशा और मार्ग प्रदान किया। गांधी ने स्वराजियों का समर्थन किया, भले ही उनके विचारों में भिन्नता थी। उन्होंने उन्हें अपने कार्यक्रम का परीक्षण करने दिया, लेकिन कांग्रेस संगठन को भी उनके हाथों में सौंप दिया। इसके परिणामस्वरूप, स्वराजियों ने कांग्रेस पर नियंत्रण प्राप्त किया। तमिलनाडु में, उन्होंने न्याय पार्टी के खिलाफ पूरी ताकत से संघर्ष किया। जैसे कि एस. सत्यामूर्ति ने न्याय पार्टी को नष्ट करने का वादा किया। स्वराजियों ने गैर-ब्राह्मणों का समर्थन किया और न्याय पार्टी की वैधता को कमजोर किया। कई न्यायाधीशों ने अपनी पार्टी छोड़ दी, जिससे कांग्रेस की संख्या बढ़ी। श्रीमान अध्यक्ष, सत्यामूर्ति की टिप्पणियों का संग्रह उनकी राजनीतिक क्षमता का उदाहरण प्रस्तुत करता है। 1926 के मद्रास विधान परिषद चुनावों में, उन्होंने दूसरी बार जीत हासिल की। हालांकि, परिषद में उनका कार्यकाल उन्हें राष्ट्रीय सेवा में सक्रिय भागीदारी से नहीं रोक सका, विशेष रूप से भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्वराज पार्टी की गतिविधियों में। कोई भी व्यक्ति या प्रशासक अचानक निधन हो सकता है, लेकिन उनका नाम हमेशा याद रखा जाएगा। 1930 से 1934 तक, सत्यामूर्ति स्वराज पार्टी की प्रांतीय शाखा के अध्यक्ष रहे, और 1936 से 1939 तक, वे तमिलनाडु कांग्रेस समिति के अध्यक्ष रहे। 1934 से 1940 तक, उन्होंने साम्राज्य विधान परिषद में सेवा की और मेयर के रूप में कार्य किया।

संदर्भ

1. आयासुब अली, 'चुनावों के पाठ', भारतीय समीक्षा, 1924, पृष्ठ 23।
2. ई.एफ. इर्शिक, दक्षिण भारत में राजनीति और सामाजिक संघर्ष: गैर-ब्राह्मण आंदोलन और तमिल पृथकतावाद 1916-1929, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, बंबई, 1969, पृष्ठ 312।
3. एम.जॉन, परिवार और विवाह पर नारीवादी दृष्टिकोण: एक ऐतिहासिक दृष्टि। आर्थिक और राजनीतिक साप्ताहिक, 2005, पृष्ठ 40।
4. मद्रास विधान परिषद की कार्यवाही, खंड 35, मार्च 1927, पृष्ठ 52।
5. मद्रास विधान परिषद की कार्यवाही, खंड-37, अक्टूबर 1927, पृष्ठ 367।
6. डॉ. पी. राजारामन, द जस्टिस पार्टी: एक ऐतिहासिक दृष्टिकोण, 1916-37, पूमपोजिल प्रकाशन, मद्रास, 1988, पृष्ठ 222।
7. रंगास्वामी पार्थसारथी, (1978)। 'हिंदू के सौ वर्ष: भारतीय राष्ट्रवाद की एक महाकाव्य कहानी', मद्रास, पृष्ठ 30।
8. डी. सदासिवन, मद्रास प्रेसीडेंसी में जनमत का विकास (1858 दृ 1909), मद्रास, 1974, पृष्ठ 18।
9. बी. पट्टाभि सीतारामैया, भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का इतिहास, खंड 1, पृष्ठ 260।
10. आर.सुंदरलिंगम, राजनीति और दक्षिण भारत में राष्ट्रवादियों का जागरण, 1852-1891, एरिजोना: एरिजोना प्रेस 1974, पृष्ठ 38।

गांधी और अम्बेडकर के साहित्य में दलित विमर्श: एक विश्लेषण

डॉ० उपासना

प्रवक्ता, राजकीय बालिका उच्च विद्यालय, शाहदरा, दिल्ली

महात्मा गांधी एवं डॉ० भीमराव अम्बेडकर 20वीं सदी के भारत के दो महान चिंतक हैं। दोनों ने अपने-अपने ढंग से भारतीय राजनीति एवं सामाजिक विकास की प्रक्रिया को प्रभावित किया। जिस समय गांधीजी देश में पूर्ण स्वराज्य का राष्ट्रीय आंदोलन संचालित कर रहे थे एवं एक चर्चित व्यक्ति तथा दलितों का हितैषी माने जाते थे, उस समय डॉ० अम्बेडकर वायसराय के कार्यकारी परिषद् के श्रम सदस्य थे। उस समय देश विश्वयुद्ध की छाया में एवं अराजकता में जा रहा था। दलित, मजदूर, किसान एवं शिल्पी जैसे गरीबों की स्थिति अत्यंत भयावह थी।

1945 ई. में डॉ० अम्बेडकर ने कांग्रेस एवं गांधीजी के अछूतोंद्वारा संबंधी विचारों एवं कार्यों का आलोचनात्मक विश्लेषण 'व्हाट काँग्रेस एंड गाँधी हैं इन टू दि अनटचेबिल्स' नाम से लिखा एवं प्रकाशित करवाया। दलित आंदोलन के अध्येताओं ने इसे एक महत्वपूर्ण दस्तावेज बताया।¹ इसके अंतर्गत डॉ० अम्बेडकर ने 1885 से 1945 तक, कांग्रेस के समाज सुधारों एवं अछूतोंद्वारा के कार्यक्रमों की आलोचना करते हुए उन्हें खोखला, सतही एवं दिग्भ्रमित करने वाला और केवल दिखावे का कार्यक्रम बताया।

राष्ट्रीय जागरण एवं स्वतंत्रता आंदोलन के दरम्यान इसमें लगभग आधी शताब्दी से अधिक (1885 से 1945 तक) ऊंची जातियों की दलितों के प्रति छोटी उपेक्षा की जानकारी मिलती है। डॉ० अम्बेडकर की कृति भारत के संक्रांतिकाल में दलित आंदोलन को समझने वाली एक तथ्यपूर्ण ऐतिहासिक शोधपूर्ण गाथा है और यह दलित इतिहास की एक कड़ी है। इस पुस्तक में अम्बेडकर ने अपने धर्म-युद्ध तथा गांधीजी एवं कांग्रेस के सम्पूर्ण विचारों को दर्शाया है।

दलित आंदोलन की इस गांधीवादी कृति में जानकारी मिलती है कि डॉ० अम्बेडकर, कांग्रेस एवं गांधीजी के प्रति किस सीमा तक जाकर तार्किक रूप से विरोध कर सकते थे। एक प्रकार से डॉ० अम्बेडकर की इस कृति में उनके कार्यों की सामाजिक एवं राजनीतिक स्वरूप की स्पष्ट झलक मिलती है। अम्बेडकर की इस कृति के प्रति उत्तर में कांग्रेस के वरिष्ठ नेता एवं अध्यक्ष डॉ० पट्टाभि सीतारमैया ने जबाबी पुस्तकें लिखीं।

दलितों के उत्थान के संदर्भ में गांधी जी एवं अम्बेडकर में मौलिक मतभेद था। गांधीजी का विचार था कि दलितों का उद्धार कांग्रेस के कार्यक्रमों से होगा। लेकिन अम्बेडकर, दलितों का उद्धार अपने बलबूते पर करने के हिमायती थे। केवल उन्हें सहारा और सुरक्षा की जरूरत थी।

20 अगस्त 1932 में ब्रिटिश सरकार ने साम्प्रदायिक निर्णय की घोषणा की जिसमें दलितों के प्रथम निर्वाचन को स्वीकार कर लिया गया तथा दलितों को आम चुनाव में मतदान करने और उम्मीदवार बनने का अधिकार दिया गया लेकिन गांधीजी ने ब्रिटिश प्रधानमंत्री द्वारा घोषित साम्प्रदायिक निर्णय के विरुद्ध आमरण अनशन कर दिया और उसे रद्द करवा दिया।² यहाँ सबसे महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि गांधीजी ने कभी भी देश की आजादी के लिए अंग्रेजों के विरुद्ध आमरण अनशन नहीं किया लेकिन पृथक् निर्वाचन के प्रश्न पर आमरण अनशन शुरू किया। इसलिए अम्बेडकर ने कहा, “देश की आजादी के लिए गोलमेज, सभा में गांधी ने अथक परिश्रम किया, यदि इसके लिए उन्होंने आमरण अनशन किये होते तो उनके इस कदम की पूरी सराहना की जाती।”

यह भी अत्यंत दुखदायी एवं आश्चर्यजनक बात है कि गांधीजी ने आमरण अनशन केवल दलितों को मिले पृथक् निर्वाचन के विरुद्ध किया, जबकि साम्प्रदायिक घोषणा में पृथक् निर्वाचन का अधिकार दलितों के अतिरिक्त भारतीय ईसाई, एंग्लोइंडियन, यूरोप के मुसलमान तथा सिखों को भी मिला था। 1935 के भारतीय शासन अधिनियम के अंतर्गत 1937 में कांग्रेस चुनाव लड़ी। दलितों को पहली बार चुनाव में प्रतिनिधि चुनने का अवसर प्राप्त हुआ। पूना पैक्ट के अनुसार यह उम्मीद की गयी थी कि कांग्रेस का नेतृत्व अछूतों के प्रतिनिधि चुनने में बाधा नहीं डालेगी। लेकिन विपरीत हुआ। अछूतों के लिए आरक्षित सीटों पर कांग्रेस ने अपनी विचारधारा के अनुकूल प्रतिनिधि चुनवाए जिससे डॉ० अम्बेडकर का स्वप्न टूट गया।³

डॉ० अम्बेडकर ने अपनी पुस्तक में गोलमेज सम्मेलन के क्रम में लंदन में गांधीजी के प्रलाप, अपनी ओर से प्रस्तुत दलित वर्गों के हित संरक्षण के लिए ज्ञापन, मैकनाल्ड अवार्ड पूना पैक्ट, हरिजन सेवक संघ की स्थापना एवं उसके कारनामे, 1935 के भारतीय शासन अधिनियम, 1937 के चुनावों में दलितों के प्रतिनिधित्व की समीक्षा, भारत में सत्ता हस्तारण की तैयारियों तथा वेवल योजना का जिक्र किया है। यह संदर्भ उस समय का है जब अम्बेडकर ने दलितों के लिए अकेले ही संघर्ष किया था एवं दलित आंदोलन को दिशा प्रदान किया। इसी कारण इसे दलित आंदोलन का महत्वपूर्ण कृति समझा जाता है।

गांधी जी एवं डॉ० अम्बेडकर में कभी-भी पूर्ण मतैक्य नहीं हो सका। गांधी जी सनातन हिन्दू धर्म के पक्षपाती थे, अम्बेडकर मानवता एवं राष्ट्रीयता के पक्षपाती थे। गांधीवाद की समीक्षा करते हुए डॉ० अम्बेडकर ने कहा था “गांधीवाद थोथी एवं काल्पनिक मान्यताओं पर टिका हुआ है। गांधीवाद से कोई आशा नहीं की जा सकती है। क्योंकि गांधीवाद आदिम युग की ओर जाने का लक्ष्य रखकर मनुष्य को पशु के स्तर तक ले जाकर छोड़ देना चाहता है जिससे मनुष्य की आवश्यकता न्यूनतम हो एवं वह अधिक से अधिक प्रकृति पर निर्भर करे”।

गाँधीजी वर्ण व्यवस्था को समाज के लिए आवश्यक मानते थे। उन्होंने वर्ण व्यवस्था को हिन्दू धर्म का प्राण कहा तथा समाज की आवश्यक आवश्यकता कहा। वे वर्ण व्यवस्था को बनाये रखकर समाज सुधार करना चाहते थे। इसके विपरीत डॉ० अम्बेडकर वर्ण-व्यवस्था के कट्टर विरोधी थे। वे वर्ण-व्यवस्था को भारतीय समाज के लिए विनाशकारी तत्व मानते थे एवं राजनीतिक अधिकारों के माध्यम से समाज सुधार करना चाहते थे। गाँधीजी इसी राजनीतिक अधिकारों का विरोध पूना पैक्ट के पहले करते थे और बाद में भी करते रहे। अम्बेडकर का मानना था कि गाँधी जी वर्ण-भेद को इतिहास की वस्तु ही नहीं मानते हैं बल्कि इसे आधुनिक आवश्यकता भी समझते हैं। वर्ण संरचना गाँधीवाद का आधारभूत सिद्धांत है।

अम्बेडकर दलितों के मानवीय, सामाजिक और राजनीतिक अधिकारों की प्राप्ति के लिए देश-विदेश के विरोधियों से भी जुझ रहे थे। भारत की उपेक्षित जनता उनके इशारे पर अपने जीवन समर्पण करने के लिए तैयार थी लेकिन गाँधीवादी नहीं चाहते थे कि डॉ० अम्बेडकर दलितों के मसीहा बने। इसलिए गाँधी के समर्थक गाँधी जी को दलितों का मसीहा सिद्ध करने के लिए अम्बेडकर के विरुद्ध उल्टी-सीधी बातें किया करते थे। अम्बेडकर ने भारत में राजनीतिक परिवर्तन से अधिक महत्व सामाजिक परिवर्तन को दिया है। उनके अनुमान के अनुसार सामाजिक परिवर्तन के लिए किसी सामाजिक सुधार के तानाशाह के द्वारा ही भारत में सामाजिक क्रांति सम्भव है। सामाजिक परिवर्तन के लिए प्रजातंत्र पर्याप्त नहीं है। डॉ० अम्बेडकर ने कहा “भारत को सामाजिक एवं धार्मिक मामले में मुसोलिनी या कमालपाशा जैसे तानाशाह की आवश्यकता है। लोकतंत्र भारत के लिए योग्य नहीं है। मेरी उम्मीद है कि गाँधीजी सामाजिक मामलों में तानाशाह जैसा काम करेंगे।”

गाँधी जी का जैसा विचार दलितों के प्रति था लगभग वैसा ही विचार किसानों के प्रति भी था। गाँधी जी मशीन के विरोधी थे। वे मशीन के स्थान पर चर्खा स्थापित करना चाहते थे तथा हाथ से सूत कातकर स्वयं वस्त्र का निर्माण कर पहनना पसंद करते थे। यदि खेती आधुनिक तकनीक के माध्यम से होता तो किसान कम मेहनत में अधिक पैदा प्राप्त करता और खुशहाल होता। गाँधी जी की इस मनोभावना पर डॉ० अम्बेडकर ने कहा – गाँधीजी श्रमिकों और गरीबों का हित चाहने वाला व्यक्ति नहीं हैं। चूँकि उनके अनुसार “किसान हल में जुतने वाला तीसरा पशु है”।⁵

अम्बेडकर एक पूर्ण वैज्ञानिक विचारधारा के व्यक्ति थे। गाँधीवाद एवं गाँधीजी दोनों को विज्ञान से दुराव है। विज्ञान के साथ यही दुराव गाँधीवाद की असफलता तथा अव्यावहारिकता है। गाँधीवाद पुरातन पंथों के विचारधारा के पोषक एवं प्रशंसक है, साथ ही ब्राह्मणवाद का पोषक एवं प्रशंसक है। गाँधीवाद हीनता को आदर्श का आवरण देकर मन बहलाना चाहता है। अम्बेडकर सामाजिक क्रांति के प्रवर्तक थे। उन्होंने आधुनिकता को प्रगति का मापदण्ड ठहराया। उनके सिद्धांत भौतिकता पर आधारित है।

इस प्रकार अम्बेडकर ने गाँधीवाद को दो कौड़ी के मोल के बराबर भी महत्व नहीं दिया है। जहाँ प्रत्येक व्यक्ति को सुख, सुविधा, सम्मान, सुरक्षा मिले वही धरातल, वही सिद्धांत अम्बेडकर को मान्य है। इस परिप्रेक्ष्य में अम्बेडकर सामाजिक इंजिनियर थे जबकि गाँधी पुरातन के प्रतीक हैं।⁶ गाँधीजी के चिंतन में साध्य एवं साधनअभेद था। वे इसकी तुलना बीज एवं वृक्ष से करते थे और कहते थे, जैसा बीज वैसा वृक्ष जैसा साधन वैसा साध्य। बबूल के पेड़ से आम नहीं मिल सकता है।

अम्बेडकर ने साध्य एवं साधन की एकता के प्रश्न को गाँधी जी की तरह अति तक नहीं पहुँचाया। उनका मत था कि जहाँ तक सम्भव हो हमें अहिंसा से काम चलाना चाहिए लेकिन जहाँ आवश्यक हो वहाँ हिंसा का सहारा लिया जा सकता है। डॉ० अम्बेडकर ने अपने सामाजिक एवं राजनीतिक आंदोलन में हिंसा का समर्थन नहीं किया है। उन्होंने अपने लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए सत्याग्रह का प्रयोग किया। महाड सत्याग्रह (1927) एवं नासिक सत्याग्रह (1930) जैसे सत्याग्रह चलाए जिसमें शांतिपूर्ण एवं अहिंसात्मक तरीके का प्रयोग किया गया। गाँधीजी आधुनिक सभ्यता के उग्र अलोचक थे। वे आधुनिक औद्योगिक सभ्यता को एक रोग एवं आवश्यक बुराई मानते थे।

उनका मत था कि भौतिक सुख सुविधा की प्रगति से नैतिक वृद्धि नहीं होती है। गाँधी जी ने मशीनों की तुलना साँप के बिल से की है जिसके अन्दर एक नहीं अनेक साँप होते हैं। एक के पीछे दूसरा निकलता ही जाता है। जहाँ कल कारखाने होंगे, वहाँ बड़े शहर होंगे और जहाँ शहर होगा वहाँ रेल एवं ट्राम होनी चाहिए। बिजली की रोशनी भी वहाँ आवश्यक है। आप किसी वैद्य या डॉक्टर से पूछें, व आपको बताएँगे कि जहाँ रेल ट्राम आदि बढ़े हैं, वहाँ लोगों की स्वास्थ्य खराब हो गया है।

अम्बेडकर आधुनिकता के पक्षपाती थे। वे मशीनों के उपासक थे। इनकी दृष्टि में मशीन एवं आधुनिक सभ्यता एक दूसरे से अभिन्न थे। मशीनों ने मनुष्य को बर्बरता के जीवन से बाहर किया है तथा उन्हें अवकाश एवं संस्कृति पूर्ण जीवन व्यतीत करने के लिए प्रेरित किया है।

गाँधी जी ब्रिटिश सरकार से अवश्य लड़ते रहे, परन्तु वे ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध नहीं थे। *गाँधी जी सम्पूर्ण देश के नेता थे*, उनके सामने सबसे बड़ी समस्या देश को अंग्रेजों से आजाद कराना था। उनका विचार था कि शेष प्रश्नों पर स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भारतीय आपस में मिल बैठकर तय कर लेंगे।⁷

डॉ० अम्बेडकर मुख्य रूप से दलितों के नेता थे। वे स्वतंत्रता आंदोलन की मुख्यधारा में कभी भी शामिल नहीं हुए। उनका विचार था कि स्वतंत्रता आंदोलन का नेतृत्व ऊंची जातियों के हाथों में है। अंग्रेजों को भारत से जाने के पश्चात् सत्ता उन्हीं लोगों के हाथों में होगी जिससे दलितों की स्थिति पहले जैसी ही बनी रहेगी। उनका विचार था कि-सर्वण हिन्दुओं के साथ ही यदि अंग्रेजों से घृणा करेंगे तो हमें दो मोर्चे पर लड़ना होगा। अंग्रेजों और सर्वणों, इसी कारण वे अंग्रेजों का सहयोग देते रहे।

जाति के संदर्भ में गाँधी जी एवं अम्बेडकर में वही अन्तर है जो तुलसी दास एवं कबीर में था। कबीर एवं अम्बेडकर समाज को नये सिरे से संगठित करना चाहते थे। परन्तु दोनों वर्ण-व्यवस्था के पोषक थे। गाँधी जी का एक महात्मा एवं एक राजनीतिक व्यक्ति के रूप में मुख्य उद्देश्य यह था कि अस्पृश्यता जैसी कुरीतियों को दूर कर तथा समाज सुधार के माध्यम से ब्रिटिश समाज्यवाद के विरुद्ध भारतीयों की एकता को मजबूत किया जाय। यद्यपि गाँधी जी ने अपने समकालीन जाति व्यवस्था को धिक्कारा है, लेकिन अंतिम समय तक यह विश्वास था कि प्राचीनकाल से चली आ रही वर्णाश्रम व्यवस्था, सामाजिक

समरूपता, आत्मा के विकास एवं परम्परागत कर्तव्यों को निर्वाह के लिए आवश्यक है। गाँधी जी के संदर्भ में सबसे महत्वपूर्ण बात यह थी कि गाँधी जी के विचारानुसार सभी वर्णों को समान प्रतिष्ठा मिलनी चाहिए भले ही उन्हें अवसरों की समानता प्राप्त न हो।

गाँधी जी ने कहा था कि यदि कोई व्यक्ति भंगी परिवार में जन्म लिया है तो अपनी अजीबिका का भंगी बनाकर ही कमानी चाहिए, उसके बाद चाहे जो भी कार्य करे। गाँधी जी अस्पृश्यता और जाति प्रथा को अलग-अलग मानते थे। जबकि डॉ० अम्बेडकर का मानना था कि जब तक जाति प्रथा चलती रहेगी तब तक अस्पृश्यता भी विद्यमान रहेगी।⁸

उपरोक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि अम्बेडकर वर्ण-व्यवस्था का मूल कारण श्रम-विभाजन नहीं मानते थे, जैसा गाँधी जी मानते थे। अम्बेडकर ने प्रश्न किया कि यदि इसका मुख्य उद्देश्य श्रम-विभाजन था तो यह व्यवस्था अन्य देशों में स्वीकार क्यों न की गई। उनके ख्याल में जाति प्रथा कुछ चालाक लोगों विशेषकर ब्राह्मणों का पड्यंत्र है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि गाँधी एवं अम्बेडकर ऐसे दो महापुरुष थे, जिनका लक्ष्य एक था परन्तु कार्यशैली भिन्न थी। आज अम्बेडकरवादी गाँधी जी के कटु आलोचक हैं। अपने जीवन काल में गाँधी एवं अम्बेडकर अस्पृश्यता एवं जातिवाद की समस्या के बारे में बहुत ही जूझते दिखाई दिए हैं। डॉ० अम्बेडकर अपनी विचार शैली और कार्य-संस्कृति बदलते हुए दलितों को संवैधानिक अधिकार दिलाने का मोर्चा खोल दिया था, जिसमें वे शत-प्रतिशत सफलता प्राप्त किये भले ही अपने राजनीतिक जीवन में असफलताओं का सामना करना पड़ा। गाँधी जी एवं नेहरू ऐसे प्रावधानों के विरुद्ध थे। नेहरू के पिता मोतीलाल ने 1928 में अपनी रिपोर्ट में जो भारतीय संवैधानिक इतिहास एवं स्वतंत्रता संग्राम का अंग माना गया। साफ-साफ उन्होंने उल्लेख किया कि 'दलितों का राजनीतिक - संवैधानिक अधिकार नहीं दिए जाने चाहिए' लेकिन उनकी आवाज नक्कार खाने में तूती की आवाज सिद्ध हुई। अम्बेडकर ने इसका पूर्ण विरोध किया दूसरी तरफ गाँधी जी ने इस रिपोर्ट की तारीफ की।

अम्बेडकर जीवनपर्यन्त गाँधी जी के कटु आलोचक बने रहे। अम्बेडकर को गाँधी जी से कोई व्यक्तिगत संघर्ष नहीं था, बल्कि वैचारिक मतभेद था। गाँधी जी शब्दों एवं अश्वासनों के मायाजाल से दलित समस्या का हल खोजते, हृदय परिवर्तन की बात करते थे, वर्ण व्यवस्था को हिन्दु धर्म का आधार मानते थे और दलितों को अपने परम्परागत पेशों में कार्यरत रहने की वकालत करते थे।

अम्बेडकर शिक्षा एवं सत्ता में भागीदारी के पोषक थे एवं राजनीतिक अधिकारों के लिए संवैधानिक गारंटी के पक्षधर थे। स्वतंत्रता संग्राम में गाँधी जी ने देश की सम्पूर्ण जनता की भागीदारी एवं बढ़-चढ़ कर भाग लेने की बात की। अम्बेडकर ने इसे व्यर्थ की बात माना एवं अपने दलित अनुयायियों को इससे दूर रहने की बात की।⁹

अम्बेडकरवादियों ने गाँधी जी को हमेशा शंका की दृष्टि से देखा है और दलित मुक्ति आंदोलन में अम्बेडकर को प्रमुखता प्रदान किया है।

निष्कर्ष

आधुनिक भारतीय इतिहास में गाँधी जी और अम्बेडकर दोनों का महत्वपूर्ण स्थान है। गाँधी जी के सामाजिक कार्यों एवं रचनात्मक सोच की जिसमें अस्पृश्यता निवारण, जाति भेद मिटाने एवं समतामूलक समाज स्थापित करना भी सम्मिलित है जिसकी एक तरफ प्रशंसा होती रही है तथा दूसरी तरफ आलोचना। ठीक इसी तरह अम्बेडकर ने भारत में दलित आंदोलन को गति बनाया एवं अछूतों, शूद्रों और शोषित वर्गों की मुक्ति का मार्ग प्रशस्त किया। इसलिए उन्हें दलितों का मसीहा एवं मुक्तिदाता माना जाता है।

राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान दोनों की भूमिका बिना किसी पूर्वाग्रह के स्वीकार किया जाना चाहिए।

संदर्भ सूची

1. आर चन्द्रा और कन्हैया लाल चंचरीक - आधुनिक भारत का दलित आंदोलन, यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन, दिल्ली, पृ.-198
2. विश्वगुप्त मोहिनीगुप्त, भीमराव अम्बेडकर, व्यक्ति और विचार, राधा पब्लिकेशन्स नई दिल्ली-2006, पृ.-159
3. आर. चन्द्रा, उपरोक्त, पृ.-202
4. बुद्ध शरण हंस, डॉ. अम्बेडकर के विचार, डॉ. अम्बेडकर मार्ग चितकोहरा, अनीशावाद पटना, 14 अप्रैल 1990 पृ.-26
5. वही, पृ.-28
6. वही, पृ.-29
7. विश्वगुप्त मोहिनी गुप्त, उपरोक्त, पृ.- 159-160
8. आर0 चन्द्रा उपरोक्त पृ. - 249
9. वही पृ - 229-230

भोगवादी आत्मकेन्द्रित जीवन जीने का सच और कहानी 'कब्र'

प्रोफेसर मनोज कुमार पाण्डेय

हिन्दी विभाग, कालीचरण पी0जी0 कालेज, लखनऊ

जब जीवन स्वयं को केन्द्र में रखकर जिया जाता है तो स्वयं को बड़ा अच्छा लगता है। आत्मसंतुष्टि भी होती है और सुख भी मिलता है। ऐसा लगता है जैसे स्वर्ग मिल गया हो, पर ये तभी तक अस्तित्व में रहता है जब तक सबकुछ अच्छा हो रहा हो, हमारे अनुकूल चल रहा हो। लेकिन जैसे ही जीवन की गाड़ी सुख-सुविधाओं की पटरी से उतरती है सब धरा का धरा रह जाता है। जीवन गुड़-गोबर हो जाता है, जिन्दगी नरक बन जाती है और हम धीरे-धीरे अपने जीवन के अन्त की ओर चल पड़ते हैं, कब्रगामी हो जाते हैं।

राजकुमार गौतम की कहानी 'कब्र' ऐसे ही किरदारों की जिन्दगी उजागर करती है। कहानी का मुख्य पात्र कहानी की नायिका शैलजा है और कहानी उसी की जिन्दगी के इर्द-गिर्द घूमती है। शैलजा की आत्मकेन्द्रित जीवन जीने की वृत्ति कैसे उसकी जिन्दगी दिन-ब-दिन खोखली करती जाती है ये शैलजा तब जान पाती है जब उसका सब कुछ खत्म हो जाता है। हरी-भरी उसकी जिन्दगी वीरान रेगिस्तान में तब्दील हो जाती है। लेखक कहानी का प्रारम्भ ही इसी भाव से करता है-

“घर को कब्र होने में कुछ समय लगा था। समय मतलब कुछ वर्ष। वर्ष भी बहुत नहीं। यही कोई पच्चीस-छब्बीस। घर के बनने में जिनको काम आना था, वे सब इसे कब्र बनाने में काम आए।

मिसेज रस्तोगी आज उस नौकरी को जरूर कोसती होंगी जिसके पाने पर उन्होंने सत्यनारायण की कथा करवाई थी। मुहल्ले-भर में मिठाई बांटी थी।”

छोटे शहर की साधारण परिवार की लड़की शैलजा का सरकारी नौकरी पाना उसे एकाएक बड़ा बना देती है और उसे अपना क्लास और कैडर ओछा लगने लगता है। यहीं से उसके भीतर की आत्मकेन्द्रित महत्ता और विकास की वृत्ति उभार लेना शुरू करती है और नए कलेवर के संवरण की ओर गतिशील हो जाती है। लेखक इसी भाव भावित हो कहानी को आगे बढ़ाते हुए लिखता है-“उन दिनों नौकरी में थीं ही कितनी लड़कियाँ। नौकरीशुदा लड़की का मतलब था-शहर-भर का अजूबा। शहर छोटा हो तो लड़की का दफ्तर आना-जाना भी मानो सरकस का कोई दर्शनीय आइटम हो जाता। यही सब तब की शैलजा और आज की मिसेज रस्तोगी के साथ होता था। धूप का काला चश्मा चढ़ाए, लेडीज साइकिल से शैलजा जब दफ्तर से लौटती तो घर उसे निहायत गंदी जगह लगता। हाय राम! कैसी जगह उसे रहना पड़ रहा है? पिता के दांतों पर चढ़ा मैल और माँ की एड़ियों की बिवाई शैलजा के भीतर घिन का पहाड़ खड़ा कर जाते। माता-पिता को शैलजा फटकारना चाहती मगर उनकी गऊ ‘हें’-‘हें’ के सामने वैसा न कर पाती।

डांटने-फटकारने और कभी-कभार हाथ चलाने का मौका शैलजा को मिलता केवल अपने छोटे भाई-बहन पर। कमाऊ बहन का दर्दनाक व्यवहार भाई-बहन हंसते-हंसते झेल जाते हैं।” नौकरी लगने से शैलजा ने खुद को तो आमूल-चूल बदल ही डाला था अब तो घर को अपने हिसाब से बदलने लगी थी। इस संदर्भ को कहानी में लेखक कुछ इस तरह बयान करता है-“परिवारजनों पर ही नहीं, शैलजा की नौकरी का प्रभाव घर में भी दिखाई देने लगा था। घर के एक कमरे को ड्राइंग रूम कहा जाने लगा था, जिसकी सफा-सफाई का विशेष ध्यान रखा जाता। सम्पन्न सहेलियों के घर में शैलजा जो कुछ देखती, उसे पाने की रट अपने मन में लगा लेती। एक सोफा और एक सेंटर टेबल ड्राइंग रूम के लिए वांछित थे, जिन्हें खरीदने के लिए शैलजा ने जमीन-आसमान एक कर डाला था।.....पीढ़ियों से चला आ रहा घरेलू तख्त, मूढ़ा, संदूक, लोटा, पतीला, कटोरदान, पीढ़ा, चूल्हा, सिलबट्टा और छाज-छलनी-जैसे सामान फूटी आँख न सुहाते। वह इन्हें जल्दी से घर से विदा कर देना चाहती।”

शैलजा द्वारा लाये गए आमूल-चूल परिवर्तनकारी इस तूफान ने घर की चूल ही हिला डाली, उसके पिता परेशान रहने लगे और उन्हें अपने परिवार की प्रतिष्ठा ही खतरे में पड़ी दिखाई देने लगी। पिता की इस मनोवृत्ति को बड़े सार्थक शब्दों में उजागर करते हुए लेखक लिखता है-“जब घर में कहीं बैठने-उठने, खांसने-थूकने और किसी चीज को छूने आदि में शैलजा की दखलअंदाजी शुरू हो गई तो पिता का माथा कुछ ठनका, ‘यह आखिर हमें क्या बनाकर, कहाँ ले जाना चाहती है।.....पिता परेशान रहने लगे। उन्हें लगा कि शैलजा का रंग-ढंग ठीक नहीं रहा।.....‘कहीं यह लड़की हमारी नाक ही न कटवा दे।’ पिता की यह आशंका हर समय उनके दिमाग में फुंफकारती रहती। शैलजा पर अब वे निहाल न होते बल्कि किसी निहायत शक्की बाप की नजर से उसकी हरकतों को ताड़ते रहे।”

माँ-बाप के स्वभाव में आये बदलाव से शैलजा और भी मुखर होकर अपनी वाली करने लगी-“अगर मेरी मर्जी का यहाँ कोई मतलब नहीं तो फिर मेरी कमाई से भी इस घर का कोई वास्ता नहीं-शैलजा के ऐसे मन को परिवारवालों ने शीघ्र ही जान लिया था। अपनी अल्प और सीमित कमाई से, शैलजा, किसी जानवर की तरह मात्र अपने-आपको ही पालने लगी थी। पेइंग गेस्ट की तरह वह खाने-पीने-रहने भर का कुछ दाम चुकाती और बाकी सारी कमाई का वह क्या करती है, किसी को हवा न लगने देती।”?

अति साधारण परिवार में जब कोई नौकरीशुदा लड़की दिनों-दिन अपनी मनमानी बढ़ाती जाती है और घर के सभी बड़े-बच्चे उसके इस स्वतंत्र-स्वच्छंद आचरण से आतंकित हो उठते हैं तो कैसे घर के बड़े उसके शादी-ब्याह के लिए सजगता से प्रयत्नशील हो जाते हैं और लड़की अपनी मनमानियों से बाज नहीं आती है-ये सारे प्रकरण लेखक ने बड़ी सार्थकता के साथ कहानी में वर्णित किए हैं। नौकरी करने वाली लड़कियों के ब्याह की दुशवारियाँ बताना भी लेखक नहीं भूला है खासकर छोटे शहरों की कमासुत लड़कियों की.....“पिता को गुपचुप यह पता लगा था कि एक दोपहर शैलजा को शहर के बिगड़े रईस की कार में कम्पनीबाग की ओर जाते हुए देखा गया है। तब से वे परेशान रहने लगे थे और युद्ध-स्तर पर शैलजा के लिस सुयोग्य वर की तलाश कर रहे थे। लड़की का नौकरीशुदा होना मानो कलंकित होना है, ऐसा समझकर उसके प्रस्ताव को ठुकरा दिया जाता। बहू की कमाई खाकर खुद को नीचा दिखाने का साहस उस शहर के लोगों में नहीं था। दिन तेजी से बीत रहे थे और शैलजा के लिए सुयोग्य कोई वर मिल नहीं रहा था। रिश्ते के कहीं आसार बनते भी तो शैलजा उस प्रस्ताव को इस या उस कमी के बहाने ठुकरा देती। माँ-पिता को लगता कि शैलजा को पढ़ाना और फिर उससे नौकरी करा लेना, उनके गले का सांप बन गया है जो न पहनते बनता है न उतारते। ऊपर से कोढ़ में खाज यह कि शैलजा के रहन-सहन में दिनों-दिन फैशन की नई-नई कॉपलें फूट रही थीं।”⁶

एक नौकरीशुदा आत्मनिर्भर, स्वतंत्र, स्वच्छन्द, जवान, बनी-ठनी लड़की के पिता का हर महीने का मानसिक द्वंद का विश्लेषण करना भी लेखक नहीं भूला है कि शैलजा के पिता हर महीने उसकी माँ के एक अर्द्धवाक्य ‘आज हो गई है’ को सुनकर राहत की सांस लेते हैं और अगले महीने भी इसी अर्द्धवाक्य को सुनने की हौंस लिए वक्त गुजारते हैं।

शैलजा का विवाह कहानी की गति को नया आयाम देता है जो लेखक को उसके लक्ष्य की ओर शनैः-शनैः अग्रसर करता है। शैलजा की शादी के संदर्भ में राजकुमार गौतम लिखते हैं-“शैलजा की ही एक सहेली ने रस्तोगी परिवार के बारे में उसे बताया था। रस्तोगी परिवार दिल्ली में रहता था और वे नौकरीशुदा बहू की तलाश में थे। छोटे शहर में सपने भी छोटे होते हैं, यह बात शैलजा जानती थी। वह यह भी समझती थी कि दिल्ली जैसे बड़े शहर में रहते हुए सपनों को आसानी से न केवल छुआ जा सकता है, बल्कि उन्हें जिया और भोगा भी जा सकता है। शैलजा ने बढ़-चढ़कर अपनी भूमिका निबाही और शादी तय हो गई।”⁷

सामान्य रूप से भारतीय परिवेश में पली-बढ़ी लड़कियाँ अपनी शादी में माँ-बाप पर पड़े दबावों से दुखी होती हैं और उनकी स्थिति-परिस्थिति के बारे में लगातार सोचकर चिंतित रहती हैं लेकिन आत्मकेन्द्रित शैलजा इस स्थिति में भी केवल अपने बारे में सोचती है, लेखक बयान करता है-

“शैलजा की शादी के वक्त उसके माँ-बाप लगातार यह महसूस करते रहे कि वर-पक्ष को शायद उतना दान-दहेज नहीं चाहिए था जितना कि स्वयं शैलजा को। इस गरीब घर से सारे सच्चे ‘हीरे-मोती’ वह चुनकर साथ ले जाना चाहती थी। माँ-पिता शैलजा के इस व्यवहार से अत्यंत क्षुब्ध थे मगर उनके दुख के प्रति वह मानों उदासीन थी। अपनी निजी अटैची तो वह ले ही गई थी, साथ ही ले गई पिता की पेट काट-काटकर जुड़ी तमाम पूँजी भी। शैलजा ने माँ की नाक का मोती तक झटक लिया था।”⁸

स्वभाव के बारे में कहा जाता है कि ‘देह छूट जाती है मगर स्वभाव नहीं छूटता’ शैलजा के स्वभाव पर भी यही बात लागू रही, वह मैके से विदा होकर ससुराल तो आ गई मगर उसका स्वभाव उसकी सोच वही रही। छोटे शहर से बड़े शहर आने के पश्चात भी उसकी सोच बड़ी न हो सकी, संकुचित, आत्मकेन्द्रित, स्वार्थपरक ही बनी रही। जो कालान्तर में उसकी ससुराल वालों के सामने उद्घाटित हुई। शैलजा की इस सोच में सहायक बनी उसके पति मिस्टर रस्तोगी की सोच, फिर क्या था? दोनों अपनी सोच के स्वनिर्मित आसमान की ओर उड़ चले और ऊँचा आकाश छूने का संकल्प लिये। इस संदर्भ में लेखक लिखता है-“शैलजा की तरह मिस्टर रस्तोगी भी स्वप्नबाज आदमी निकले। उन्हें एक ऐसी दुनिया पसंद थी जहाँ केवल वह और शैलजा हों-तीसरा कोई न हो। उस दुनिया में तमाम ऐशो-आराम हों। खाने को सुस्वादु व्यंजन हों, सुनने को भीना संगीत हो, निहारने को अलौकिक सौन्दर्य हो और भोगने को एकांतवास हो। यह सारा स्वप्न एक निजी घर में ही पूरा हो सकता था, इस सार्वजनिक स्थल पर नहीं।”⁹

शैलजा और मिस्टर रस्तोगी जैसे लोगों की सोच में माँ-बाप-संयुक्त परिवार के साथ रहना सार्वजनिक स्थल पर रहने जैसा होता है, उसे घर में रहना नहीं माना जाता। घर में रहने का मतलब तो अपने निजी घर में रहना होता है न कि माँ-बाप के घर में उनके साथ।

फिर क्या था? शैलजा मिस्टर रस्तोगी के लिए अगला निर्धारित लक्ष्य था अपना निजी गृह निर्माण और सार्वजनिक स्थल स्वरूपी परिवारिक गृह का त्याग और उन्होंने वही किया। पुराना माता-पिता का घर छोड़ा और अपने द्वारा खरीदे गये नये घर में प्रवेश किया जो मिस्टर और मिसेज रस्तोगी का घर था किसी के माँ-बाप का नहीं था न मिसेज रस्तोगी के बाप का न मिस्टर रस्तोगी के पिता का। इस संदर्भ को आगे बढ़ाते हुए लेखक कहानी में लिखता है-“उधर शैलजा महसूस करती कि दोनों की कमाई और स्वस्थ काया के बावजूद वे कुठित और अतृप्त हैं। छद्म रिश्तों का बंधन उनके लिए असह्य नहीं, घातक है। भाई-बहनों और माँ-बाप के मध्य विभाजित पति, मात्र उसका नहीं है। इस ससुराल नामक घर में एक कमरा, कमरे में भी मात्र पलंग पर भी मात्र चंद घंटे उनके अपने हैं, बाकी तो सारा कुछ उनका या उसका नहीं है। कैसा घनघोर कलयुग। नहीं, इस व्यवस्था को सहते जाना पाप है। वे इस व्यवस्था के षड्यंत्र से बाहर निकलेंगे। दोनों कमाते हैं। दोनों की मानसिकता एक-सी है। दोनों के सपने एक-से हैं। दोनों का जीवन-दर्शन एक है। फिर बाधा क्या है? शैलजा ने पहल की और पति को मंशा बताई। पति तैयार था। दोनों ने मिलकर अलग रहने का प्रस्ताव किया तो ससुराल नामक सार्वजनिक स्थल की चूलें हिल उठीं।”¹⁰

और फिर वही हुआ जो आज की आत्मकेन्द्रित, सुख-सुविधाभोगी पीढ़ी के नवदम्पति कर रहे हैं। सार्वजनिक स्थल से मुक्त हो पहले किराये के अपने मकान में मिस्टर-मिसेज रस्तोगी आए, वहाँ एक विशिष्ट पहचान बनाई और फिर जुगति के सारे इन्तजाम करके नवदम्पति ने अपना मकान खरीद लिया। इन दोनों संदर्भों को लेखक ने कुछ विशिष्ट अंदाज में इस तरह लिखा है-“दोनों परिवार अपना-सा मुँह लेकर रह गये और ये दोनों अपना सामान लेकर नए मकान में आ गए। इस नए मकान में आकर ही शैलजा पहली बार मिसेज रस्तोगी बनीं। मिसेज और मिस्टर रस्तोगी ने इस अपने मकान के कण-कण में अपनी मोहर जड़ी। यह मिस्टर और मिसेज रस्तोगी का मकान है। यहाँ मिस्टर और मिसेज रस्तोगी रहते हैं। मिस्टर रस्तोगी के स्कूटर का कलर बहुत चार्मिंग है।

मिसेज रस्तोगी बहुत सॉफ्ट-स्पोकेन हैं। मिस्टर और मिसेज रस्तोगी 'मेड फॉर इच अदर' की शानदार मिसाल हैं।.....दफ्तर में, ब्लॉक में, सोसायटी में.. इतना मिस्टर-मिसेज हो गए कि वे हमेशा रोमांचित ही रहते। मिस्टर-मिसेज रस्तोगी के रूप में अपना पुनर्जन्म वे स्वयं देख रहे थे।¹¹

अगले संदर्भ को स्पष्ट करते हुए लेखक आगे कहता है—“बरसों की मेहनत, विभागीय परीक्षा पास करके पाई गई पदोन्नति तथा अपना पेट काटने के अलावा, यार-दोस्तों से कर्ज लेकर मिस्टर-मिसेज रस्तोगी ने एक मकान खरीद लिया। मकान खरीदने की खुशी में वे मोर की तरह नाचे, हिरणों की तरह दौड़े और हवा की तरह यहाँ से वहाँ तक पूरे मकान में भर गए। उन्होंने शहनाई सुनी और एक-दूसरे में पानी की तरह बहे। उन्होंने बगीचों की सैर की और फूल-भंवरे की तरह पेश आए। उन्होंने पश्चिमी फिल्मों देखीं और जानवराना अंदाज में प्यार किया। उन्होंने जीवन जिया नहीं खाया। और इसी धमाचौकड़ी में मिसेज रस्तोगी माँ बन गई अखिल की।”¹²

संतान को लेकर आज की पीढ़ी की क्या सोच है इसे लेखक ने मिसेज-मिस्टर रस्तोगी की संतान सम्बन्धी सोच को उजागर करते हुए कुछ इस तरह बताया है—“अखिल के आ जाने पर दोनों को लगा कि इस मकान को घर होना चाहिए। यह भी लगा कि अखिल को लाकर उन्होंने गलती की है। उनके जीवन-दर्शन के अनुसार शायद अखिल का प्रवेश वर्जित था, मगर उन्हें यह भी लगता था कि ‘अखिल’ को अब जा जाना चाहिए। उनके इस द्वन्द में जीता था अखिल का आना।”¹³ अखिल के जन्म के तीन साल बाद बेटी रूबी का जन्म हुआ।

जो लोग अपनी शर्तों पर जीवन जीना चाहते हैं वे कुदरत का कोई निजाम नहीं मानते, लेकिन वे भूल जाते हैं कि प्रकृति ही हमारी निर्मात्री है और वो अपने नियमों पर अडिग हैं। वर्ना परिवर्तन प्रकृति का स्वभाव न हुआ होता। रस्तोगी दम्पति के साथ भी ऐसा ही हुआ। जीवनभर भोगमयी जीवन जीने का संकल्प लिये मिस्टर-मिसेज रस्तोगी भी परिवर्तन के इस प्रकोप का शिकार हुए पर उन्होंने प्रकृति से भी अपनी अदावत की दावेदारी नहीं छोड़ी और उम्र को पीछे छोड़ने वाले वो सारे उपाय किये जो भोगलोलुप करते हैं। लेखक इस संदर्भ का बयान कुछ इस तरह करता है—“भयानक जट्टोजहद के बाद बच्चे स्कूल जाने लायक हुए। मिस्टर-मिसेज रस्तोगी ने थोड़ी-सी राहत महसूस की। इस तमाम भागदौड़ी में पता ही नहीं लगा कि समय ने कब मिसेज रस्तोगी को थुलथुला बना दिया और मिस्टर रस्तोगी के बालों में सफेदी का स्प्रे कर दिया।

“अरे! यह क्या?” अपनी ऐसी हालत जानकर मानो मिस्टर-मिसेज रस्तोगी दोनों चौंक पड़े, “नहीं, हमें यह मंजूर नहीं।” उन्होंने एक-दूसरे को दिलासा दी। यह जीवन मोम की तरह गलकर बह जाए, ऐसा उन्हें मंजूर नहीं था।”¹⁴

फिर क्या था उन्होंने ढलती जवानी और कम होते हुए भोग को वापस लाने के सारे उपाय शुरू कर दिये जो अपेक्षित ही नहीं अति आवश्यक थे। लेखक लिखता है—“बाजार बन-ठन कर घर में आता रहा और कुत्ते की मौत मरकर कबाड़ी के हाथों जाता रहा। ‘मैं-मैं-मैं-मेरा-मेरा-मेरा-तेरा-तेरा-तेरा।’ इस घर में होता रहा। बच्चे किशोर हुए और फिर जवान हो गए। इस बीच घर भी ‘भरा पूरा’ हो गया। घर मात्र घर न रहकर फर्नीचर हाउस, आडियो-वीडियो शॉप, इंस्टैंट रेंस्तरां, राउंड द क्लाक म्यूजिक हाउस तथा डांसिंग फ्लोर में तब्दील हो गया। मिस्टर-मिसेज रस्तोगी ने हेयर डाई, स्लिम एण्ड ट्रिम, मसाज पार्लर तथा इंस्टीट्यूट फार योगा आदि का सहारा लेकर कुछ दिनांक तक इंड्र-अप्सरा, एडम-ईव का खेल किया।”¹⁵

पर समय तो आखिर समय ठहरा, एक बार गुजरा तो फिर गुजर ही गया। कहाँ वापस आया? और खुद के लिए जीवन जीने वाले को कौन पूछता है। फिर मिस्टर-मिसेज रस्तोगी को किसी अपने द्वारा पूछे जाने का सवाल ही नहीं उठता था। इन लोगों ने अपनी निजता भरी जिन्दगी में कब किसे पूछा था? बल्कि जो अपने थे उन्हें दुत्कार कर खदेड़ दिया था। गुजरी जवानी और पचासा की करीबी ने मिस्टर-मिसेज रस्तोगी की जो स्थिति बना दी थी लेखक उसे इस प्रकार हमारे समक्ष रखता है—“मिस्टर-मिसेज रस्तोगी दोनों पचासा छूने को आए। अब एक दूसरे को बहला सकने की भी स्थिति नहीं है। बाजार में उपलब्ध कैप्सूल और टॉनिक भी छलावा निकले। डबल डोज लेने पर भी झुरझुरी तक नहीं।.....मिस्टर रस्तोगी बहुत परेशान हो आते। महानगर में एक तो वैसे ही दोस्ती निभाना सम्भव नहीं, ऊपर से वे मानो सारे समाज के लिए दूध की मक्खी होकर रह गए। अकेलापन दूर करने के लिए वे खूद ही दो जगह ताश बिछा लेते या फिर पूरे घर में चमगादड़ की तरह चक्कर काटा करते।”¹⁶

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। उसे स्वभावतः समाज से अपेक्षा रहती है, भले ही क्यों न वो समाज की उपेक्षा करता रहा हो। कोई भी वृक्ष अपनी जड़ों से कटकर बहुत समय तक स्वस्थ नहीं रह सकता फिर मिस्टर रस्तोगी तो मनुष्य थे। उम्र का नशा उतरने पर उनका समाज से कुछ अपेक्षित करना सहज स्वाभाविक ही था तभी वो मिसेज रस्तोगी से कहते हैं—“अब यहाँ कोई नहीं आता।” और मिसेज रस्तोगी के कर्कश जवाब से आपे से बाहर होकर आत्मनियंत्रण खो देते हैं और जुनूनी हो उठते हैं। इसी आक्रोश में वे अपने बेटे अखिल के कमरे में जाते हैं और अपने बेटे-बेटी को आपत्तिजनक स्थिति में देखका मूर्छित हो जाते हैं—चीखते हुए। लेखक इस स्थिति को कुछ इस तरह कहानी में दर्शाता है—

“आप्फो! तुम्हें क्या हो गया है?.....रुको।” मिसेज रस्तोगी चीखीं। वे फुफकारते हुए कमरे के बाहर दौड़ गये। वे चीखते हुए जा रहे थे, “घर नहीं है, ये कब्र है, कब्र! यहाँ कोई नहीं आता। यहाँ कोई नहीं आएगा।”

वे धड़धड़ाते हुए अखिल के कमरे में घुस गये। उनका चीखना जारी था। “मैं दिखाता हूँ तुम्हें और कितने लोग हैं इस कब्र में। इन सैकड़ों कैसेटों में लाखों लोग हैं....भूत....प्रेत!....”

इसी बीच आशीष के कमरे की बत्ती जली और अगले ही क्षण मिस्टर रस्तोगी ऐसे चीखे मानो किसी ने उबलते तेल के कड़ाते में फेंक दिया हो। मिसेज रस्तोगी ने उन्हें समझाने की कोशिश की मगर तब तक वे गश खाकर औंधे मुँह गिर चुके थे। अखिल ने झपटकर कमरे की बत्ती गुल कर दी थी। निर्वस्त्र रूबी दौड़कर अपने कमरे में समा गई थी।

चौकीदार की मदद से मिस्टर रस्तोगी को लेकर शैलजा नर्सिंग होम पहुँची। आपातकालीन वार्ड में उन्हें आक्सीजन पर ले लिया गया। डाक्टरों ने उनका परीक्षण शुरू किया। कुछ इंजेक्शन देकर ग्लूकोज देना शुरू कर दिया गया।”¹⁷

अपनो को छोड़कर सिर्फ अपने लिए जीने वाले मिस्टर-मिसेज रस्तोगी का ऐसा हथ्र तो होना ही था, इन्तेहा तो तब हो जाती है जब चौकीदार दो सिपाहियों के साथ नर्सिंग होम पहुँचकर शैलजा उर्फ मिसेज रस्तोगी को ये खबर देता है-“मेम साब.....!” चौकीदार का सांस उखड़ा हुआ था, “मेम साब.....छोटी मेम साब.....और बाबा साब.....दोनों ने मिलकर फांसी लगा ली.....पंखा से लटककर जान दे दी, मेम साब.....खूब तेज म्यूजिक बजाया.....हमने तभी सोचा, गरबर है.....दरोगा साब लोगों से दरवाजा तुड़वाया.....मगर तब तक.....। शैलजा को लगा, चौकीदार घर की नहीं, कब्र की दुर्घटना सुना रहा है।”¹⁸

भोगवादी आत्मकेन्द्रित जीवन जीने की जिद शैलजा की थी जिसके लिए उसने सबकुछ छोड़ दिया पर इस आत्मकेन्द्रित जीवन जीने की सनक ने उसके हंसते-खेलते, हरे-भरे जीवन में कब्रिस्तान की वीरानी और मनहूसियत फैला दी। लेखक इस कहानी में ये बताना नहीं भूला है। वस्तुतः यही लेखक का मन्तव्य रहा है कि जहाँ भी हम प्रकृति से हटकर अप्राकृतिक होंगे, गैरकुदरताना जिन्दगी जिएंगे हम कब्रगती ही होंगे। ईश्वर द्वारा प्रदत्त इस सदाहरित जीवन को कब्र में तब्दील कर देंगे।

संदर्भ सूची-

1. कब्र, राजकुमार गौतम, स्वातंत्र्यात्तर हिन्दी कहानियाँ, संपादक कमलेश्वर, नेशनल बुक ट्रस्ट इण्डिया, चौथी आवृत्ति 2011, पृ0 387
2. वही पृ0 387
3. वही पृ0 387-388
4. वही पृ0 388
5. वही पृ0 388
6. वही पृ0 389
7. वही पृ0 389
8. वही पृ0 389
9. वही पृ0 390
10. वही पृ0 390
11. वही पृ0 390
12. वही पृ0 390
13. वही पृ0 390-391
14. वही पृ0 391
15. वही पृ0 392
16. वही पृ0 392
17. वही पृ0 393
18. वही पृ0 393

बुंदेली लोककथाओं में नारी विमर्श

डॉ० तानाबाई पाटिल

शोलापुर, महाराष्ट्र

“यह वह कथा है, जो गीतों में कही गई हो”

लोकगीत आकार में छोटे होते हैं तथा इनमें लयात्मकता प्रधान होती है, जबकि लोकगाथा का स्वरूप प्रबन्धात्मक होता है, इसकी दीर्घता महाकाव्य के सदृश भी हो सकती है, इसमें गेयता होती है, परन्तु प्रधानता कथा की होती है। अंग्रेजी में लोकगाथा को ‘बैलेड’ कहा जाता है गाथा को गीत की श्रेणी में रखने का कारण उसकी गेयता है, इसलिये पाश्चात्य विद्वानों ने कहा है – “यह वह कथा है, जो गीतों में कही गई हो।” लोकगाथा को परिभाषित करते हुए लोकविदों ने उसकी कुछ लाक्षणिक विशिष्टताओं की ओर इंगित किया है—

1. रचयिता का अज्ञात होना
2. मूलपाठ की प्रामाणिकता संदिग्ध
3. संगीत और नृत्य का सामंजस्य।
4. स्थानीय संस्कृति व जीवन का उल्लेख
5. मौखिकता
6. प्रवचन शैली या उपदेशात्मकता का न होना
7. आलंकारिकता का अभाव
8. रचयिता की वैयक्तिक पहचान का न होना।
9. दीर्घता
10. टेक पदों की पुनरावृत्ति

जिस तरह लोकगीत में निजत्व एवं वैयक्तिकता का अभाव होता है, उसी तरह गाथाओं में भी किसी निश्चित लेखक/रचनाकार का नाम उल्लेख नहीं होता, यद्यपि गीत, गाथा, कथा किसी एक व्यक्ति की ही अभिव्यक्ति होती है, जो सहज ही अनायास सामुदायिकता का अभिन्न हिस्सा बन जाती है, यहां पर ध्यान देने की बात यही है कि लेखक या रचनाकार के लिये वैयक्तिक पहचान/प्रतिष्ठा या कीर्ति/लाभ की आकांक्षा इससे नहीं जुड़ी होती, न ही यहां कोई अहंवादी नजरिया होता है। यही कारण है कि लोक अभिव्यक्तियां निरंतर समूह-दर-समूह, पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलती हुई परिष्कृत होती रहती हैं और उनकी सामयिकता बनी रहती है। भारतीय लोक आल्हा, हीर-रांझा, पंडवानी, लोरकी-गोपीचंद भरथरी आदि अनेक गाथाओं से सम्पन्न हैं। इन गाथाओं के रचनाकारों का कहीं नामोल्लेख नहीं मिलता। ये प्रबंधाबद्ध अभिव्यक्तियां काव्य की संवर्द्धनशील यात्रा के प्रतीक हैं, जो एक व्यक्ति से उद्भूत हो, स्थिर-नहीं होती, बल्कि समुदाय का हर सृजनात्मक सदस्य उसे पोषित करता हुआ आगे बढ़ता है, यही जातीय रचना का वैशिष्ट्य है।

इन गाथाओं का वैयक्तिक दावेदार नहीं है। सम्भवतः यही कारण है कि इनका कोई प्रामाणिक मूल पाठ नहीं मिलता। समय और स्थान के अनुसार इन गाथाओं के साथ जातीय और स्थानीय सांस्कृतिक शिल्प, भाव जुड़ते/छूटते गये। अतः किसी गाथा के मूल पाठ तक पहुंचना लगभग असंभव है। गाथाओं में वर्णित विभिन्न घटनाक्रम, चरित्र, लोक जीवन में निहित विविधताओं को रेखांकित करते हैं। इस तरह एक ही गाथा के अनेक पाठ तैयार हो जाते हैं। किसी स्थान/काल एवं जाति के अतीत को जानने का क्षैतिज आधार हो सकता है। गाथा के रचनाकार के अज्ञात होने का यह वैशिष्ट्य किसी पूर्व निर्धारित योजना का परिणाम नहीं है, बल्कि यह तत्व उन रचनाकारों के उदार मानस का प्रतीक हैं, जिनके समक्ष लेखक होने या न होने की पहचान का कोई अहमवादी या अर्थ राजनीतिक प्रश्न था ही नहीं। यह हमारे आधुनिक मानस की वैयक्तिक सोच से उपजे पहचान के संकट के प्रश्न हैं, सही मायने में हर रचना किसी लोक कवि की ही रचना होती है, किन्तु उसकी अभिव्यक्ति सामुदायिक होती है और समुदायों में ही उसका पुनर्गठन होता है। रचनाकार का अज्ञात होना लोक गाथा की कोई अपरिहार्य शर्त नहीं है, बल्कि वह लोकमुख और लोक मानस में कितनी बसी हैं, यह महत्वपूर्ण है।

लोकगाथाओं की लोकप्रियता के पीछे उनके कथानक की सम सामयिकता, स्थानीय चरित्र, संगीतात्मकता, सम्प्रेषणीयता, गेयता, भाव आदि तत्वों की समग्रता है, साथ ही गाथाओं के कथानक तथा उनकी प्रभावोत्पादक प्रस्तुति है। ‘आल्हा’ बुंदेलखंड की एक ऐसी ही प्रिय गाथा है, जिसके सशक्त चरित्रों की ओजपूर्ण लयात्मक प्रस्तुति दर्शकों को लम्बे समय तक बांधे रखती हैं। इसके अतिरिक्त कारसदेव की गाथा, गहनई गाथा इत्यादि भी बुंदेली भाषा शिल्प की अनूठी अभिव्यक्तियां हैं, किन्तु वे आल्हा के समान लोकप्रिय नहीं हो पायीं। लोकचरित्र, लोक परिवेश और लोकधुन लोकत्व को जीवित रखते हैं, शास्त्रीयता से इनका कोई सम्बन्ध नहीं, बल्कि इनकी सहजता, गेयता ही इन्हें प्रभावशाली बनाती है।

गाथाओं की प्रस्तुति सीधे खड़े होकर या एक स्थान पर बैठकर नहीं होती, बल्कि इनका प्रस्तोता कुशल अभिनेता भी होता है। अपनी भाव-भंगिमाओं, प्रभावोत्पादक मुद्राओं से वह अभिनीत चरित्र को जीवंत बना देता है और इस जीवंत अभिव्यक्ति की आत्मा है लोक धुन और लोक राग। लोक गाथायें गा-गा कर सुनाई जाती हैं, अभिनीत की जाती हैं। अतः कथा एवं संगीत में साहचर्य आवश्यक है। बुंदेलखंड की 'आल्हा' गायकी में गीत-संगीत और अभिनय को चित्राकर्षक तरीके से संगुणित किया गया है। गाथाओं में स्थानीय संस्कृति, भाषा, शिल्प के साथ स्थानीय प्रसंगों एवं चरित्रों को समाहित किया जाता है। उदाहरणार्थ 'आल्हा' की रचना बुंदेलखंड में हुई। अतः इसमें कजरीबन, कालिजर का किला तथा महोत्सव नगर (महोबा) का वर्णन मिलता है। इसे कलाकार पूरी सज-धज के साथ अंगरखा पहन ओज में डूब पूरी भाव-भंगिमा के साथ प्रस्तुत करता है। भोजपुर अंचल में गले में ढोल बांधकर उसे जोर-जोर से पीटते हुए गायक आल्हा गाते हैं।

लयात्मकता लोकगाथाओं का प्राणतत्व है जो लोक गाथाओं में यह गेयता लोक के नैसर्गिक जीवन प्रवाह से आती है जो शास्त्रीय सैद्धांतिक मतवादों, कारकों, व्याकरण के बंधन से मुक्त होती है। इस तरह इनकी अन्तर्निहित लय इन्हें विशिष्ट पहचान देती है। इनके कथानक में बदलाव होते रहते हैं, जबकि लोक धुनों में बहुत कम परिवर्तन होते हैं। इस तरह जहां जड़ता आने लगती है, वहां स्वतःस्फूर्त रूप से सृजनात्मक स्फोट भी होते हैं और गाथाओं को नया रूप देते हैं। 'आल्हा गाथा' इस बात का प्रमाण है। स्त्रियां ने गीत, गाथाओं, कथाओं के पारंपरिक रूप को जीवित बनाये रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई हैं, क्योंकि स्त्रियां इनका व्यावसायिक तथा धनोपार्जन हेतु उपयोग नहीं करती, बल्कि सुख-दुःख के क्षणों को परस्पर बांटने, सामाजिक परंपराओं का निर्वाह वे इन अभिव्यक्तियों के माध्यम से करती हैं और इस तरह विशिष्ट अवसरों, अनुष्ठानों और पर्वों को रसमय बना देती हैं।

लोक अभिव्यक्तियों (गाथा, गीत, कथा) की जीवंतता उनकी मौखिकता में ही निहित है। जैसे ही ये किताबों में सुरक्षित कर ली जाती हैं, इनका जीवन जैसे समाप्त हो जाता है। इस साहित्य की मौखिकता का मर्म ही उसकी संवादशीलता में परस्पर जीवंत रिश्तों में सक्रिय सृजनात्मकता में अन्तर्भुक्त है दुःख-पीड़ाएँ, सुख और रंजन सब कुछ समुदाय दर समुदाय पीढ़ी-दर-पीढ़ी हस्तांतरित होते हैं, यह प्रक्रिया जैसे ही खंडित होती है ये अभिव्यक्तियां भी मृतप्रायः होने लगती हैं। पाश्चात्य लोक-कला विद्वान् सिजविक ने कहा है- "कि यदि कोई गाथा लिपिबद्ध कर ली गई तो निश्चय ही समझिये कि उसकी हत्या करने में आपने सक्रिय योगदान किया है।" सिजविक की यह टिप्पणी लोक साहित्य की जीवन में जीवंत उपस्थिति एवं हस्तक्षेप को व्यक्त करती है। इस साहित्य की मौखिकता लोक के गहन एवं सतत संबंधों की प्रमाण है। निश्चय ही जीवन से इसकी दूरी इसे जीवित नहीं रख सकती।

लोकविद् राबर्ट गेम्स अन्य पहलू को प्रकट करते हैं "कोई गाथा नीति या सदाचार की शिक्षा नहीं देती और न पृथक्ता की भावना का प्रचार करती है। यदि गाथा में उपदेश की यह भावना पायी जाय, तब यह समझना चाहिये कि इसका रचयिता अपने को समुदाय से बाहर समझता है।"²

गाथायें लोक की आत्म-पीड़ाएँ हैं, सामाजिक घटनाक्रमों का बखान है, रंजन का माध्यम हैं। इन गाथाओं के केन्द्र में मूलतः संवेदनाएँ हैं, जनमानस हैं राष्ट्रीयताएँ हैं। अतः गाथाकार स्वतः को इन प्रासंगिकताओं से परे रख प्रवचनकर्ता की भूमिका में कैसे आ सकता है? क्योंकि गाथाकार की यह भूमिका उसे अपने समुदाय से पराया कर देती है। लोक गाथायें यथार्थ जीवन की अनुभवात्मक अभिव्यक्तियां हैं। अतः इनकी जीवंतता, प्रभावोत्पादकता एवं रंजन ही इनका अलंकरण है। अति-अलंकारिता, व्याकरणिक सज्जा, अभिव्यक्तियों की आत्मा को संभवतः खंडित कर दें, किन्तु छन्दात्मक गेयता प्रस्तुति को चित्ताकर्षक और मन-भावन बना देती है।

कहने का आशय यह कि काव्य अलंकार एवं छन्द योजना इन गाथाओं को सुन्दर बनाने हेतु सायास थोपी नहीं जानी चाहिये, बल्कि अनायास ये प्रभाव यदि आते हैं तो ये सम्प्रेषणीयता एवं प्रभावोत्पादकता सहायक होते हैं। पं. राम-नरेश त्रिपाठी ने संभवतः इसलिये कहा है कि "लोक-गीतों/गाथाओं में रस होता है अलंकार नहीं। यदि कोई रस अनायास या संयोग से चला भी आया तो उसकी सृष्टि विभाव, अनुभाव और स्थायी भावों का सन्निवेश कर नहीं की जाती। 'गाथा' को अनन्त माना जाता है, जिसका कहीं कोई अंत नहीं, जिस बिन्दु पर एक कलाकार आज समाप्त करता है अगले दिन वही पाठ उस बिन्दु से बहुत आगे बढ़ जाता है। गायक, प्रस्तोता दर्शकों की मनःस्थिति एवं परिवेश के अनुसार इसमें बहुत कुछ घटा-बढ़ा सकता है। महत्वपूर्ण तथ्य है, क्योंकि इतनी लम्बी होने के बाद भी इनमें कहीं बोझिलता नहीं आती बल्कि गायक है टेक पदों की पुनरावृत्ति सामयिक घटनाओं पर टिप्पणियाँ श्रोताओं में और उत्साह एवं उत्तेजना पैदा कर देती है। इस तरह गायक लम्बे समय तक समा बांधे रखने में सफल रहता है। अनन्त काल से संसार के सभी जन-समुदायों में लोक-गाथायें प्रचलित रहीं हैं। ये गाथायें बरसाती नदी-सी उफनाती-हरहराती जन-जीवन को आप्लावित और आह्लादित कर रसमय बनाती हैं।

वेगमय कथा, आवृत्तिमूलक संगीत आदिम उद्देग और सहज भाषा व भाव इनका वैशिष्ट्य है। इन गाथाओं को सुने बिना इनकी रोचकता एवं प्रभावोत्पादकता को अनुभव नहीं किया जा सकता। रतजगों का आनन्द इन गाथाओं में छुपा है। पहले लोक गायकों की टोलियां गांव-गांव घूम कर, सामंतों के, जजमानों (उच्च वर्ग) के घरों पर जाकर खिंजड़ी, चमीटा, इकतारा बजाकर गाथायें सुनाया करते थे तथा दान-दक्षिणा प्राप्त करते थे अब गाथाओं की प्रस्तुतियां मंचीय हो गयी हैं और कलाकारों की वैयक्तिक पहचान स्थापित हो गयी है।

गाथा की उत्पत्ति के सम्बन्ध में विद्वानों के अलग-अलग मत हैं। गाथा शब्द गै धातु से बने गाथ शब्द से बना है और गै शब्द का अर्थ है सस्वर वर्णन करना, पाठ करना। "गाथा यानी कहानी से बड़े आकार की कथा, प्राचीनकाल में धार्मिक पात्रों पर आधारित कथा विन्यास को गाथा कहा जाता था। कुछ विद्वानों का मत है कि गाथा और उन्हें गाने वाले के लिये 'गाथिन' शब्द ऋग्वेद में मिलता है। बाल्मीकि रामायण में लव-कुश द्वारा गाथा गाने का वर्णन मिलता है, पंडवानी गायक स्वतः को कुशील वंशीय मानते हैं। कहा जा सकता है कि यह गाथा परंपरा कुशीलव, मागध, चारण हरबोलों से होती हुई वर्तमान रूप में पहुंची है। भारत के प्राचीनतम महाकाव्य महाभारत, रामायण आदि लोक गाथाओं का ही विस्तार लगते हैं। ये महाकाव्य भारत की प्राचीन संस्कृतियों का खजाना है।"³

गाथा शब्द को 19वीं सदी के अंत से संभवतः लोक गाथा कहा जाने लगा। विस्तार और संक्षिप्तीकरण इसका स्वभाव है। जैसे रामायण यानी रामकथा ने भारत से निकल कर तिब्बत, तुर्किस्तान, इंडोनेशिया आदि सुदूर देशों तक विस्तार पायी, इसी तरह फ्रेंच मूल का बैलेड (वीरगीत) स्कॉटलैंड से विकसित

हो अमेरिका और ऑस्ट्रेलिया तक पहुंचा। गाथा की उत्पत्ति के सन्दर्भ में पाश्चात्य विद्वानों द्वारा स्वीकृत आठ सिद्धांत माने गये हैं, जिनका उल्लेख प्रथम अध्याय में विस्तार से किया जा चुका है।

‘गाथा’ शब्द अर्थ भाव की दीर्घता को व्यंजित करता है। लोक में प्रचलित ये उक्तियां “काये खौं गाथा गा रये”? या जा गाथा तो चार दिना लौं नई बड़ाने” इत्यादि। इन उक्तियों में छुपी व्यंजकता गाथा की अंतहीनता की ओर ही संकेत कर रही है। इन अभिव्यक्तियों का रचनाकार राज्याश्रय से मुक्त हैं। फलतः जनमानस के प्रति पूर्वाग्रही नहीं है, न जाति के प्रति, न सम्प्रदाय के प्रति, बल्कि जो जैसा है, उसे वैसा ही व्यंजना में अभिव्यक्त करता है, यह रचनात्मकता की अनिवार्य शर्त भी है। इन लोकगाथाओं में निहित लोकत्व ही उनका प्राण है, जैसे रामायण का प्रत्येक प्रसंग श्रोता/दर्शक का अपना प्रसंग बन जाता है। यही सहृदय भाव गाथा का भावनात्मक पक्ष है, जो प्रत्येक व्यक्ति को उससे गहन रूप से आबद्ध कर देता है।

बुंदेलखंड में प्रचलित लोक गाथाएं किसी एक काल या स्थान में निर्मित नहीं हैं, बल्कि कुछ आदिकालीन हैं। कुछ मध्यकालीन। गाथाओं की कथावस्तु के आधार पर यह पता लगाया जा सकता है, कि वे किस काल में रची गईं।

गाथायें पीढ़ी-दर-पीढ़ी विकसित होती हैं अतः उनके ‘पाठ’ के विश्लेषण एवं ऐतिहासिक साक्ष्य की तुलना के द्वारा इनके समय और स्थान की पड़ताल की जा सकती है। लोकप्रिय लोक गाथायें एक जनपद तक सीमित नहीं रहतीं, बल्कि इनका निरंतर विस्तार होता है तथा पाठान्तर बनते जाते हैं, इन पाठान्तरों के आधार पर कभी-कभी यह तय कर पाना कठिन हो जाता है कि मूल गाथा की उत्पत्ति का केन्द्र कौन सा है? किसी भी सृजनात्मक अभिव्यक्ति का यह विस्तार निश्चय ही सकारात्मक है, क्योंकि यहां क्षेत्र, जाति, सम्प्रदाय के प्रश्न समाप्त हो जाते हैं।

बुंदेलखंड में प्रचलित लोक गाथाओं को स्थूलतः हम भक्ति संबंधी, पौराणिक, वीरता परक, चरगाही आदि भागों में वर्गीकृत कर सकते हैं, किन्तु समग्र रूप से देखा जाये तो इस तरह की सीमा रेखायें नहीं खींची जा सकती, क्योंकि हर भाव हर गाथा में विद्यमान है बस कहीं गौण रूप में है तो कहीं मुख्य रूप में गाथाओं की विषय वस्तु के आधार पर इनका संक्षिप्त विवेचन प्रस्तुत है-

सुरहिन की गाथा

यह नीतिपरक आख्यान है, जिसमें पंचतंत्र की कथा एवं जातक कथाओं का मिला-जुला शिल्प मिलता है, इस गाथा में गाय-बछड़े और शेर के मध्य संवाद बताया गया है, जो पंचतंत्र की कथाओं के सादृश्य है, वहीं सिंह द्वारा क्षमा मांगने का दृश्य जातक कथाओं के समान प्रतीत होता है। गाथा में एक गाय कथा है, जो देवी के चन्दन बिरछ को चर लेती है। सिंह जो देवी की सवारी है, यह देख लेता है, सिंह आक्रामक और हिंसक है। उसके जातीय चरित्र के अनुसार वह गाय को कठोर दंड देना चाहता है, किन्तु चूंकि वह देवी की सवारी है, अतः वह गाय को क्षमा कर देता है यानी देवी की भक्ति उसे उदार बना देती है, इस तरह हिंसक पशु की उदारता का चित्रण कर इस गाथा के माध्यम से नीतिपरक सोच जन-मानस के सामने कथाकार रखता है। पूरी कथा देवी भक्ति पर आधारित है, इसलिये देवी गाथा या भक्तिपरक गाथा माना गया है।

दानौ की गाथा

इस गाथा की प्रेरणास्रोत शिवपुराण की पौराणिक कथा है। यह कथा बहुत रोचक है, इसमें ब्रह्मा पत्र लिखकर असुरों के संहार हेतु देवी दुर्गा का आह्वान करते हैं, शंकर महादेव, विष्णु सभी दल-बल समेत देवी दुर्गा के नेतृत्व में असुरों से लड़ने चलते हैं। दुर्गा अपनी सवारी को खोजने स्वयं जाती है, न मिलने पर डमरू बजाती हैं, तब सिंह प्रकट होते हैं, इस तरह यह काफिला आगे बढ़ता है, किन्तु जैसे ही दानौ (दानव) घनघोर गर्जना करता है। सभी देवता भाग खड़े होते हैं, तब दुर्गा त्रिशूल का वार करती है, जिसके आघात से दानौ के लहू की जितनी बूंदें गिरती हैं इतने और दानौ प्रकट हो जाते हैं। तब दुर्गा अपनी देह के मैल से चौंसठ पुतरियां बना खड़ी कर देती हैं, जिन्हें चौंसठ योगिनी कहा जाता है। ये योगिनियां लहू की बूंदों को अपने खप्पर में ले लेती और दानौ का बनना रूक जाता है और दुर्गा खड्ग के एक वार से दानौ का वध कर देती हैं।

यह कथा देवी भक्ति पर आधारित मात्र कथा नहीं कही जा सकती है, इसमें कुछ ऐसे तथ्य अंतर्निहित हैं, जो इसे अपने समय से बहुत आगे का बना देती हैं, जैसे इस कथा में स्त्री देवता का नेतृत्व में होना, पुरुष देवताओं का डर कर पलायन करना और अन्ततः स्त्री देवता द्वारा आतताईयों के मर्दन का वर्णन इत्यादि पुराणों की उस प्रच्छन्न सोच का प्रतीक है, जहां स्त्री की क्षमताओं को, उसके विवेक को, उसके निर्णयों को सम्मान और स्वीकृति प्राप्त थी। ये कथायें वे सांस्कृतिक औजार हैं, जिनके माध्यम से हम इतिहास की बेहतर समझ हाजिर कर सकते हैं। दूसरे ऐसी गाथायें जब संकीर्ण सामंतीय समाज के बीच व्याख्यायित होती हैं, तो विसंगति मूलक समाज के मध्य थोड़ी संभावनायें जगा देती है। यह हमारे सामंतीय सोच की सीमा है कि हम त्याग-बलिदान, पराक्रम को देवत्व की श्रेणी में लाये बिना सम्मान नहीं देते। विद्वानों का मत है कि यह एक दीर्घगीत है इसे गाथा नहीं कहा जा सकता। मेरे विचार से यह आकार लोक कलाकारों द्वारा तय किया गया है, इसमें गाथा में उल्लेखित घटना एक प्रतीक मात्र है, जिसमें अनेकानेक घटनाओं, सन्दर्भों को जोड़ उसे दीर्घ ही नहीं सामयिक भी बनाया जा सकता है। अतः दीर्घता और लघुता तकनीकी प्रश्न है, जिन्हें हल किया जा सकता है।

राजा भोज की गाथा: राजा भोज एक ऐतिहासिक चरित्र है, जिन्हें धार के परमार नरेश के रूप में जाना जाता है, कहा जाता है कि भोज ने ऐसा राज्य ही नहीं किया, एक मजबूत सत्ता स्थापित की, उदारता के साथ दान दिये, शास्त्रों का गहन अध्ययन किया। जैसा किसी राजा ने नहीं किया। इस गाथा में राजा भोज के जीवनकाल का वर्णन है। कहा जाता है कि अपने पिता को भोज ने युद्ध में करारी मात दी थी, जिसका बदला लेते हुए कर्ण ने जय सिंह यानी भोज के पुत्र को पराजित कर मालवा को अपने राज्य में मिला लिया था।

गाथा के एक प्रसंग का वर्णन मिलता है जिसमें पिता अपने पुत्र को चौथी दिशा में जाने से रोकता है। पुत्र जैसे ही जाने की तैयारी करता है, पिता को छींक आ जाती है, इसके बाद भी राजकुमार उसी दिशा में जाता है और सकुशल वापस लौट आता है। इसे देख राजदरबार में पंडित भविष्यवाणी करते हैं कि राजा के अच्छे दिन आ गये हैं, किन्तु तभी एक पंडित भविष्यवाणी करता है कि राजा भोज की मृत्यु कल निश्चित है। यह सुनते ही उस ज्योतिष को बंदी बना लिया जाता है, क्योंकि उसने राजा के प्रति अशुभ सत्य बोला था। राजा को भी तालों में बंद रखा जाता है। सैकड़ों सैनिक तैनात कर दिये जाते हैं। राजा अपनी निष्क्रियता को छोड़ सजीव हो जाता है और अपने मैल से सांड बनाता है और उसे अपना पहरूआ बना कर खड़ा कर देता है। यह वर्णन

दो संकेत देता है, प्रथम इन घटनाओं के पीछे कोई देवी चमत्कार था, जो तर्कातीत है, दूसरा राजा की तीव्र सजगता का जन्म ले लेना है, जिसमें उसका रोम-रोम अपने जीवन को सुरक्षित रखने हेतु प्रयासरत हो उठता है।

गाथा के अंत में लाख सुरक्षाओं के बाद भी राजा की मृत्यु हो जाती है और राज्य राजकुमार पालन्दर यानी जय सिंह के हाथ आ जाता है, जो अपनी निष्क्रियताओं के कारण बहुत जल्द पदच्युत हो जाता है।

राजा भोज का यशगान और उनके जाते ही राज्य का नष्ट होने का वर्णन इस गाथा में है। गाथा में यह प्रश्न किया जाता है कि प्रजा के प्रति राजा का रवैया कैसा होना चाहिये? प्रश्न का उत्तर गाथा में इस प्रकार मिलता है- “रख्यत तो तोरी ऐसे कै राखों जैसे चोलन में पलोटे पान हो मांय।” यह प्रश्न गाथा को स्थानीय संस्कृति से भी जोड़ता है। इस क्षेत्र में पान की उपज होती है। पान चुलिया में रखे जाते हैं, जिन्हें सड़ने से बचाने के लिये बार-बार पलटना पड़ता है। यानी जिस तरह एक-एक पान की देख-रेख ध्यान से करनी पड़ती है, वैसे ही राजा को भी अपनी प्रजा का ध्यान रखना चाहिये। पूरी गाथा अपनी गेयता के साथ आगे बढ़ती है। अभिधा शैली की यह गाथा अनेक व्यंजनायें अपने में छुपाये हैं।

धांदू की गाथा

धांदू एक सामान्य लोक चरित्र है, जो देवी का भक्त हैं, इस गाथा में धांदू का जीवन, उसके जीवन के अभाव तथा देवी भक्ति के प्रति उसके चरम समर्पण को वर्णित किया गया है अपनी भक्ति की एक निष्ठता को दिखाने हेतु धांदू अपना सिर काटकर देवी को अर्पित कर देता है, उसका मृत शरीर नदी में डाल दिया जाता है, परन्तु कोई जीव-जन्तु उसे नहीं खाता, न वह सूखता है न कुम्हलाता है। अन्त में लुंगारा (देवी का सेवक) के कहने पर, देवी अंगुली चोरकर इमरत (अमृत) छिड़कती है, जिससे धांदू जीवित हो जाता है और वह उठकर देवी के चरण पकड़ लेता है।

अब न चरन छुड़ाव मोरी मांय हौं।

हौं चरनन् की धूल हो मांय।।

भक्ति आधारित गाथाओं में अधिकांशतः देवी भक्ति की प्रमुखता है, ये गाथायें संवाद शैली या प्रश्नोत्तर शैली में हैं। लोकधुन इन्हें प्रभावोत्पादक बना देती है, इन गीतों के साथ स्त्री वेश में प्रमुख नर्तक नृत्य करते चलते हैं। इन गीतों में आलंकारिकता और व्यंजना को लाने हेतु कोई सचेतन प्रयास नहीं किया जाता, न ही इस बात पर जोर दिया जाता है, भक्ति की सघनता को व्यक्त करने के लिये कहीं-कहीं आलंकारिता एवं व्यंजना अनायास आ जाती है।

चंदेलवंश के शासन के दौरान साहित्य और कलाओं ने विकास के नये सोपान तय किये गीत, गाथा कथा की समृद्ध परंपरा इस काल में मिलती है। भक्ति के अलावा युद्धों पर आधारित वीरता मूलक गाथाओं का विस्तार इस काल में हुआ। वीर रस परक गाथाओं के अलावा इस युग में विकसित ‘चरागाही’ लोकगाथा, गीत महत्वपूर्ण है, जो जनमानस के अभिव्यक्ति रूप थे। ये गाथायें पशुपालकों, पशुओं को चराने वाले यानी अहीर और यादव जाति की जीविका और जीवन शैली के मध्य निर्मित हुई। अतः लोक दृष्टि से ये महत्वपूर्ण अभिव्यक्तियां हैं।

चरागाही लोक गाथायें

चरागाही संस्कृति बुंदेलखंड की प्राचीनतम लोक संस्कृति है इतिहास ग्रन्थों से ज्ञात होता है कि महाभारत काल में यह जनपद यादवों का गढ़ रहा है। विद्वान एफ. ई. पार्जीटर ने महाभारत के चेदि जनपद की तुलना बुंदेलखंड से की है। इस जनपद में पशुपालन प्रमुख जीविका थी। फलतः पशुपालकों का समाज में महत्वपूर्ण स्थान था। गोपगिरि यानी ग्वालियर पशुपालकों का केन्द्र स्थान था। इस क्षेत्र में अहीरों की संख्या अधिक थी, उनके द्वारा गाये गये दीवारी गीत चरागाही संस्कृति के प्रतिनिधि गीत हैं। ये गीत-गाथायें, जन-जीवन से उद्भूत हुईं और वहीं उन्हें गाया गया। इनमें निहित लोकत्व, लोकभाव और अनुभूति को सहज ही सम्प्रेषित कर देता है। चंदेलकाल का प्रमुख लोकादर्श युद्ध में खेत रहना था- “जो मर जैहें रन खेतन मां, साका चलो अंगारू जाय” (आल्हा)। इसके बावजूद लोक चेतना, लोक संस्कृति और लोक अभिव्यक्तियों का झुकाव सत्ताओं की अपेक्षा जनमानस की ओर अधिक दिखाई देता है।

इन गाथाओं में वर्णित स्त्री चरित्रों से उस काल में स्त्रियों की स्थिति को समझा जा सकता है। इस युग में विवाह को एक हथियार की तरह इस्तेमाल किया जा रहा था, स्त्रियां मानवीय काया नहीं! बल्कि जीती गई वस्तु के रूप में हस्तारित की जाती थीं। युद्धों में पराजित राजा के घर की अविवाहित स्त्रियों (बहन-बेटी) पर विजित राजा संपत्ति की तरह अपना अधिकार समझते थे। वत्सराज कृत रूपकषटकम्। हिन्दी महाकाव्य पृथ्वीराज रासो तथा लोक काव्य आल्हा में ऐसे उद्धरण मिलते हैं। पराजित राजा की बेटी का अपहरण कर विजयी राजा उन्हें हमेशा के लिये अपना आश्रित बना लेते थे। कारसदेव की गाथा में गढ़राज्ञौर का राजा राजू गूजर की कन्या एलादी का विवाह अपने पुत्र से करने का हठ करता है, अन्यथा जबरदस्ती उठवा लेने की धमकी देता है, राजू गूजर इस विवाह को डांड यानी दंड कहता है। इस तरह ये कथायें इस बात का प्रमाण हैं कि मुगल आक्रान्ताओं से स्त्रियां जितनी असुरक्षित थीं उतनी ही वे देसी राजाओं से भी असुरक्षित थीं, इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता। देसी सांमत राजाओं ने अपनी अहंता एवं एकाधिकार के चलते स्त्रियों को घृष्ट में रहने को बाध्य किया था, जबकि इतिहास ग्रन्थ मुगल शासकों को पर्दे के लिये, स्त्रियों की असुरक्षा के लिये जिम्मेदार बताते हैं।

कारसदेव एवं धर्मासांवरी की गाथा

ऐसा माना जाता है कि ये गाथायें 12वीं से 13वीं सदी में लिखी गईं, दोनों ही कथाएं चरागाही पृष्ठभूमि पर आधारित हैं, गाथाओं के नायक वीर भाव से ओत-प्रोत संघर्षशील युवक हैं। कारसदेव लोक देवता हैं, अतः इस गाथा का केन्द्रीय भाव भक्ति है। जबकि धर्मासांवरी आम स्त्री चरित्र है जिसमें थोड़ी चात्मकारिकता है। इन दोनों गाथाओं के कथानक, शिल्प एवं शैली भिन्न हैं। कारसदेव को भिंड, मुरैना, ग्वालियर, दतिया, झांसी, जालौन, हमीरपुर, महोबा, बांदा आदि जनपदों में लोकदेव के रूप में पूजा जाता था संभवतः इसलिये इन क्षेत्रों में कारसदेव के चबूतरे/मंदिर अधिक मिलते हैं। कारसदेव की गोठों को एक सुर में, एक साथ गाया जाता है, इन के आरम्भ में ही पृथ्वीराज चौहान का नामोच्चार किया जाता है। जिसके आधार पर कहा जा सकता है कि इसका रचनाकाल 112वीं से 12वीं सदी के पूर्व का है।

कारसदेव की पूरी गाथा खंडों में विभक्त है, जिसे गोट कहा जाता है, ऐसा माना जाता है कि गोटों के एकचित्त गायन से भक्तों के सिरों पर कारसदेव आ जाते हैं। जिसे धुल्ला कहते हैं यदि एक टुकड़ा गाने से ही देवता आ जाते हैं तो अगली कड़ी नहीं गाई जाती। एक गोट में एलादी द्वारा शिव की आराधना का वर्णन किया गया है, चूँकि पूरी गोटों को सामान्यतः एक साथ नहीं गाया जाता गाथा कई टुकड़ों में विभक्त है, फलतः इसके पाठान्तर भी मिलते हैं।

इस गाथा की केन्द्र बिन्दु 'एलादी' नामक युवती है, जिसने बाध्य हो राजा के हाथी को रास्ते से हटाने के लिये उसे पछाड़ दिया और अपना रास्ता साफ कर पूरे आत्म-सम्मान से आगे बढ़ गई लड़की की यह हिमाकत राजा को बर्दाश्त नहीं हुई और उसने लड़की को जबरदस्ती अपनी पुत्र वधु बनाने का आदेश दिया। तब एलादी का पिता राजू गूजर कहता है कि एलादी मेरी नाक का बाल है यानी मेरी पूरी सामाजिक प्रतिष्ठा उस पर निर्भर है। राजू गूजर स्पष्ट रूप से विवाह के लिये मना नहीं कर पाता, परन्तु उसे पता था राजा उसे छोड़ेगा नहीं। अतः वो रातों रात घर छोड़कर चला जाता है। इस गाथा का जो पाठान्तर मिलता है, वह और भी रोमांचक तथा विस्मयकारी है, किन्तु इस कथा में भी 'एलाद' का दुःसाहसी वीर चरित्र उभरता है। इस पाठान्तर में 'एलादी' का पिता राजा के पुत्र को चुनौती देता है कि लड़ते हुए 'दो पड़ा' को यदि राजा का पुत्र सींग पकड़कर अलग कर देगा, तो एलादी से उसका विवाह कर दिया जायेगा, लेकिन राजा का पुत्र पराजित हो जाता है, जबकि एलादी ने दोनों पड़ों को आसानी से अलग कर देती है।

कै भये कनैया कै कारस भये,
जिन्ने गइयन की राखी लाज हो ओ.....
धान-धान झांझ की गइयां,
धान-धान झांझ की खोड़
धान-धान कारस महाराज हो ओ.....

इसी कथा में एलादी शक्ति पाने के लिये बारह वर्ष तक शिव की आराधना करती है, जिसके फलस्वरूप उसे बलशाली भाई के अवतरण का वरदान मिलता है-

राजन के उड़वैया,
भूतन के भगवैया, भैंसन के चरवैया
बाहुबल भैय्या भोला जू मोखों,
ऐसो वर दइयो, हो ओ...।

यह गाथा का विरोधाभास है 'एलादी' स्वतः निर्भीक, दुःसाहसी एवं वीर है, तब बलशाली भाई पाने के लिये साधना की आवश्यकता क्यों? दरअसल ये अन्तर्विरोध समाज संरचना के हैं। स्त्री के ये गुण समाज स्वीकार नहीं करते हैं। सामंती ठसक वाले उस समाज में एक आम स्त्री को दुस्साहसी, बलशाली और आत्मसम्मान से भरी हुई नायकी के रूप में प्रस्तुत करना गाथा की उल्लेखनीय विशेषता है। बहरहाल, यह सनातन सत्य है कि समाजों में दमन/उत्पीड़न मौजूद होता है। वह प्रतिकार के स्वर उतने अधिक उठते हैं। अकड़ आत्म-सम्मान, लड़ाकूपन, स्वाभिमान और सहजता बुन्देलखण्ड का बुनयादी चरित्र है-

चामल सी बये दूद की नदियां
बाजै दुहनियं कछार,
दूदन-पूतन गोरी धान फलतै,
हार-पहारन करै सिंगार
कारस तोरी जै-जेकार, हो,
ओ-ओ.....।

इन पंक्तियों के साथ गाथा एक सांस्कृतिक उत्सव में बदल जाती है, जहां सबके मंगल की कामना है। गाथा में पराजित राजा से दंड स्वरूप उनकी बेटियों, बहनों पर जबरदस्ती कब्जा करने की सामंतीय-अमानवीय परंपरा का सामुदायिक प्रतिरोध है कहीं समझौता या पराजय नहीं है।

डॉ. नर्मदा प्रसाद गुप्त की टिप्पणी अवलोकनीय है- "प्रस्तुत गाथा की प्रमुख विशेषता वह समन्वय है, जो कि धार्मिक, सामाजिक और राजनीतिक चेतना को संघटित करता है। एक ओर उसमें एलादी की साधना, कारसदेव का अवतरण और उनके चमत्कार धार्मिकता को व्यक्त करते हैं, तो दूसरी ओर झांझ में रहने वाले गूजर परिवार ने पशुओं के रहने का वर्णन, बिटिया को जबरन ब्याहने की समस्या और जन्मभूमि छोड़ने के बाद मिली निर्धनता जैसी पारिवारिक, सामाजिक स्थितियों का वर्णन मिलता है, कारस देव एक पशु पालक का पुत्र होते हुए भी राजा से संघर्ष करता है और सत्ता को चुनौती देता है। यह राजनीतिक जागरूकता इस गाथा में छोटे-बड़े के बीच समता का आग्रह करती है। लोक कथाओं में अक्सर राजा-रानी की कथा आती है, जिसमें समुदाय का छोटे से छोटा आदमी राज-काज में हस्तक्षेप करने की शक्ति रखता है। यह हस्तक्षेप लोक गाथाओं में ही घटित हुआ है, जो राजतंत्र के युग में प्रजातांत्रिक प्रतिक्रिया का प्रामाणिक साक्ष्य है, यह समन्वय की क्रिया चारागाही भूमि पर घटित होती है, इसलिये यह गाथा चारागाही लोक संस्कृति के स्वरूप का प्रामाणिक दस्तावेज बन गई है।"⁷

धर्मासंवरी की गाथा

धर्म संवारी की गाथा को दाम्पत्य जीवन की समस्या पर केन्द्रित कथा माना गया है। गाथा में स्त्री के मूलभूत अधिकार को बहुत स्पष्ट रूप से उठाया गया है, इस गाथा का कथानक इस तरह है-

चिड़वा और चिड़िया का विवाद संतति के बंटवारे को लेकर है चिड़िया का तर्क है कि जंगल में आग लगने पर चिड़वा भाग खड़ा होता है, जबकि चिड़िया आग की परवाह न कर अंडों की सुरक्षा में पंख फैलाये भूखी-प्यासी बैठी रहती है, इसलिये संतति पर चिड़िया का हक है चिड़वा का नहीं, लेकिन तमाम तर्कों के बाद भी राजा भोज और बाणासुर की कचहरी में यह निर्णय लिया जाता है कि पुरुष बच्चे चिड़वा के पास और महिला बच्चे चिड़िया को दे दिये जायें। चिड़िया को यह निर्णय मान्य नहीं अतः वह निर्णय ताम्रपत्र पर लिखवा देती है और दुखी होकर, आत्महत्या कर लेती है। चिड़वा भी अपने प्राण त्याग देता है।

गाथा के इस भाग का मानवीकरण यदि किया जाये तो यह हमारे समाज का जीवंत सच है स्त्रियां हर हाल में बच्चों पर आंचल रखती हैं, जबकि पुरुष बहुत से आकर्षणों, चाहतों, सुविधा- असुविधाओं और नफे-नुकसान में उलझे रहते हैं, यह पूरे समाज की आधी आबादी का अनुभव है, यहां महत्वपूर्ण बात यह है कि इस कथा के माध्यम से उस सामंती समाज में स्त्री अधिकार की बात भर नहीं उठाई गई उसे बड़े ही मानवीय संवेदनात्मक तर्कों के साथ पुष्ट भी किया गया है। गाथाकार यथार्थ चित्र के साथ अनेक कल्पनायें, पुनर्जन्म, अंध-विश्वासों, जादू-टोनों, भविष्यवाणियों के माध्यम से कथा को और रोमांचकारी, चमत्कारी बनाता हुआ आगे बढ़ाता है, जहां कथा अपना यथार्थ विजन खो देती है, किन्तु लोक गाथाओं के यही उपांग जैसे प्रतीक और चमत्कार कथा को विस्तार भी देते हैं।

गाथा के दूसरे भाग में चिड़िया का पुनर्जन्म होता है। अब उसका नाम धर्मा संवारी तथा चिड़वा का नाम दंग रिछारिया है। धर्मा बाणासुर की पुत्री है, किन्तु वह अपने पिछले जन्म के अनुभव को भूल नहीं पाती और घोड़ा से नगर की घोड़ियों के घोड़ा-बच्चों को अपने बाड़े में बंधवा लेती है। जब घोड़ियों के स्वामी राजा से शिकायत करते हैं तो वही ताम्रपत्र दिखलाती है, जो उसे पिछले जन्म में दिया गया था।

बच्चों से विलग होने की टीस और अन्यायपूर्ण निर्णय को वह भूल नहीं पाती, यह स्त्री वेदना है। दूसरे जन्म तक उसकी स्मृति में इस अनुभव के बने रहने के अनुभव को वर्णित कर लोक कलाकार ने स्त्री के साथ होने वाली असमानता से उठी टीस की तीव्रता को अभिव्यक्ति दी है। इस तरह अनेक छोटी-छोटी घटनायें गाथा का हिस्सा बनती चलती हैं बहुत से चमत्कार, जादू-टोना इत्यादि जुड़ते जाते हैं और कथा को विस्तार देते हैं, यही लोक रंग है। नायिका के सौन्दर्य को चित्रित करती ये पंक्तियां द्रष्टव्य हैं-

सहजई हे धर्मा को रूप,
सूरज की किरन सी दमक रई रे।
भौहन चढ़ी है कमान,
हिरनी सी आंखियां डोल रई रे॥

यह सहज और अबोध भावबोध प्रकृति के गहन सान्निध्य का परिणाम है। गाथा का अंत संभावनाओं के साथ होता है-

पुन हो गई आनन्दी चारऊं खूंट।
सुक की मुरलिया बज रयी रे॥

यह लोकगाथा अन्य गाथाओं से भिन्न है, इसमें राजाओं के युद्ध वर्णन नहीं है, जीतने-हारने की जद्दोजहद नहीं है, बल्कि एक सामान्य परिवार की स्त्री का सीधा-सा प्रश्न है कि अपने द्वारा जन्म दिये गये बच्चे, जिनका पूरा संरक्षण स्त्री करती है, उनके पोषण का अधिकार उसे क्यों नहीं है? साथ ही मां के लिये बेटा-बेटी अलग नहीं है, फिर ऐसा अन्यायपूर्ण निर्णय क्यों? परन्तु यह निर्णय पूरे सामंतीय समाज का निर्णय है, किसी एक राजा या न्यायधीश का निर्णय नहीं।

गहनई लोक गाथा

डॉ. नर्मदा प्रसाद गुप्त का मानना है कि इस गाथा का पाठ सागर विश्वविद्यालय के भाषा-विज्ञान के अध्यक्ष डॉ. भगवानदीन मिश्र द्वारा संकलित है। गहनई लोकगाथा मूलतः चरवाहों के मध्य निर्मित हुई गाथा है। अहीर समुदाय के लोग समूह में जानवरों को चराने के लिये चार माह के लिये घरों से दूर निकल जाते हैं। घरों से इतने लम्बे समय तक दूर रहते हुए ये समूह कथाओं, गाथाओं, गीतों के मध्य ही अपना समय व्यतीत करते हैं। संभवतः इसलिये इस अवधि में गाये गीतों को 'बिरहा गीत' कहा जाता है। कृष्ण ग्वालों के मित्र हैं, वे भी गाय चराते हैं, अतः चरवाहों के गीतों का नायक भी कृष्ण है, किन्तु इस गाथा में कृष्ण की छवि भिन्न है। यह गाथा कालिंजर युद्ध पर आधारित है, जिसमें गुमान बैल तथा नाचनी गाय को छोड़कर बाकी सभी पत्थर के हो गये थे, इन दोनों ने पूरा हाल गौरा को सुनाया और गौरा ने कन्हैया की पत्नी को। गौरा ने उससे अपने पति, अन्य चरवाहे, गायों तथा पशुधन को जीवित करने के लिये कहा, देवी के वरदान से ग्वालिन ने अपनी छिगुरी चीरकर पत्थरों पर छिड़क दी, जिससे वे सब जीवित होकर सुख-पूर्वक रहने लगे।

दरअसल यह गाथा घाटी के राजा तथा चरवाहों के बीच हुए संघर्ष में हुई अहीरों की मौतों और उनकी विधवाओं की वेदना की गाथा है। गाथा के बीच अनेक प्रसंग जुड़ते चलते हैं जैसे ग्वालिन का अपने पति के वियोग में प्रलाप और उसे पाने के लिये प्रयास, गुमान और नाचनी गाय की पूजा करना इत्यादि। इन सब घटनाक्रमों को वर्णित करती हुई गाथा आगे बढ़ती है और अंत में युद्ध में मारे गये लोग जीवित हो उठते हैं। युद्ध में मारे गये लोगों की विधवाओं की वेदना तथा कारुणिक संवेदना की धारा के किनारे उगी चरागाही लोक संस्कृति से जुड़ी उक्तियां इस गाथा की प्राण हैं-

जेतिन पात पतारे
उतनी अहिर के गाय।
अगहर पावै पानी
पछहर कांदौ खाय॥

(अर्थात् जितनी घास-पात है उतनी ही अहीर की गाथें होती हैं, आगे की गाथें तो पानी पा लेती हैं) यह लोकगाथा, विशेष रूप से स्त्रियों की वेदना को व्यक्त करती हैं, जिसमें कुछ दैवीय चमत्कारों को अवश्य जोड़ा गया है, किन्तु इनसे गाथा के अन्तर में प्रवाहित स्त्रियां की पीड़ा को और बल मिलता है, यह गाथा इन अर्थों में अन्य गाथाओं से भिन्न भर नहीं विशिष्ट है, क्योंकि यह दैवीय चमत्कारों या भक्ति पर आधारित नहीं, बल्कि साक्षात् स्त्री काया की कथा है।

परसा लोक गाथा

परसा कथा धर्मा सांवरी का ही एक हिस्सा है, जिसे संकलन कर्ताओं तथा कलाकारों ने अलग नाम दे दिया है। इस गाथा का आरम्भ देवी के सुमिरन से होता है। 'रिछारिया माल' देवी से बंगाल जाने की आज्ञा मांगता है, परन्तु देवी उसे वहां रहने वाली हेमा धोबिन और जादुगरनी के कारण वहां जाने से रोकती हैं, इसी तरह उसकी माता भी उसे बंगाल जाने की अनुमति नहीं देती, तब वह 'नकला दानों' को पहरे पर बैठाकर बंगाल चला जाता है, वहां धोबिन उसे जादू से बांध देती है और दिन में सुआ तथा रात में मनुष्य बनाकर रखती है सात माह उससे काम करवाकर उसे छोड़ देती है। आगे जाकर उसका सामना हेमा जादुगरनी से होता है, जहां गाड़ीवानों से उसका झगड़ा होता है, वह इन बावन गाड़ीवानों को पराजित कर देता है और अकेले बावन गाड़ियां खींचकर ले आता है। हेमा जादुगरनी उसकी वीरता देख प्रसन्न हो जाती है और उसे 'पड़ा' बना देती है और राजकुमारी धर्मा को इसकी सूचना देती है। धर्मा राजा नेमू की सुपुत्री थी, जिस पर मुगल शासक सुल्तान की कुदृष्टि है, वह उसे उठा ले जाना चाहता है, जिसके लिये वह आक्रमण करता है और महल में पहुंच जाता है। धर्मा को मुस्लिम बनना स्वीकार करना पड़ता है, किन्तु वह छह माह का समय मांगती है, उसका डोला उठाया जाता है। रास्ते में वह अपनी ननद से मिलती है अपनी पूरी बात सुनाती है, परसा यह सब सुनता है और वहां परसा देवी की मदद से 'सांग' लेकर सुल्तान पर आक्रमण कर देता है। देवी की कृपा से वह जीत जाता है। धर्मा का डोला फिर निमनापुर पहुंच जाता है।

कथा के तीसरे हिस्से में अकबर के निमनापुर पर आक्रमण का वर्णन है, जहां परसा पुनः युद्ध वीर की भूमिका निभाता है। यहां उसके पास शेषनाग से मिले मुरली और महुंदा दो वरदान थे, जिनके साथ है, वह निमनापुर पहुंचता है। वहां उसे धर्मा सांवरी तथा रिछारिया माल भी मिल जाते हैं, गाथा के अगले प्रवाह में बहुत से घटनाक्रम जुड़ते जाते हैं तथा अंतर में सागरताल की सुन्दरी गोपीचंदा से अपनी वीरता के प्रदर्शन के बाद परसा विवाह करने में सफल होता है। इस पूरी कथा में अनेक स्त्री चरित्र हैं और सभी के पास जादुई ताकत है। संभवतः गाथाकार यहां उस सामाजिक धारणा को व्यक्त करना चाह रहा है, जिसमें यह माना जाता है कि स्त्रियों के पास सम्मोहनी शक्ति होती है जिसके वश में पुरुष आ जाते हैं। गाथा में हर एक स्त्री के पास जादू की ताकत है जिसके बल पर वे जैसा चाहती है वैसा पुरुषों को बना देती है।

इस गाथा में स्त्रियों के बलात् अपहरण, युद्ध में स्त्रियों पर कब्जा तथा वीरता के प्रदर्शन द्वारा ही विवाह संभव होना आदि मान्यताओं के, प्रचलनों को पुष्ट किया गया है। गाथाओं को प्रभावी या वर्णनात्मक बनाने के लिये ही जादू, चमत्कार, दैवीय शक्ति का सहारा नहीं लिया है यानी ये सिर्फ कवि की कल्पना नहीं है, बल्कि ये तमाम बातें उस सामंतीय समाज में रची बसी थीं। यही कारण है कि हर गाथा में ये तत्व किसी न किसी रूप में अवश्य वर्णित हुए हैं।

अन्ततः उपर्युक्त चारों गाथायें चारागाही संस्कृति की उपज हैं। ये इनका सर्वाधिक सकारात्मक जनवादी पक्ष है, जिन्हें लोगों ने सृजा है, जो राज दरबार में नहीं रची गई, न ही किसी विशिष्ट कवि द्वारा रची गई और संभवतः रची भी नहीं जा सकती थी और नहीं किसी विशिष्ट राजा के मनोरंजनार्थ रची गई। यही लोक है चरवाहे जो जन-मानस के प्रतिनिधि हैं। उनकी वीरता/निर्भीकता को सामंत और राजा पचा नहीं पाते। उनके आत्मनिर्णय की योग्यता को यह वर्ग बर्दाश्त नहीं कर पाता। अतः निरंतर उनके मार्ग में बाधाएं उपस्थित की जाती हैं या उनके घर की स्त्रियों को आघात पहुंचा इनकी एकजुटता तथा साहस को तोड़ने का प्रयास किया जाता है, तब गाथाकार दैवीय चमत्कारों का आश्रय लेता है, क्योंकि इसके अलावा कोई विकल्प बचता भी नहीं। देवी भक्ति से मिली मनोवैज्ञानिक ताकत से ये वर्ग पुनः संघर्ष करता है और विजयी होता है, इन गाथाओं का मूल सारतत्व यही है।

कारसदेव की गाथा में राजू गूजर राजा से आक्रान्त होकर अपना घर छोड़ देता है। 'एलादी' अपने आत्मबल और ताकत से अपने आप को बचाती है। धर्मा सांवरी गाथा पति-पत्नी के रिश्ते में निहित असमानता की कथा है, जो प्रश्न आधुनिक विमर्श में चर्चा में आये हैं। लोक उन प्रश्नों से पहले से जूझ रहा था तथा उन्हें प्रश्नांकित भी कर रहा था। गहनई एकदम ठोस धरातल पर बनी गाथा है, जिसमें स्त्रियों के अकेलेपन, समाज का उनके प्रति नकारात्मक रवैया एकल महिला की पीड़ाओं की करुण अभिव्यक्ति हुई है। इन गाथाओं की स्त्री छवियां कहीं भी पराजित या निराश नहीं दिखाई देती, बल्कि आश्चर्यजनक रूप से सामंतीय समाज की सीमाओं को तोड़ती हुई अपने अस्तित्व को स्थापित करने में सफल होती है। ये गाथायें किसी सोच, विमर्श या सैद्धांतिकी की सोची-समझी, पूर्व नियोजित योजना का हिस्सा नहीं, बल्कि 'लोक' में रहने वाली कर्मठ, कद्दावर, प्रतिकूलताओं से जूझती चलती-फिरती स्त्री काया की छवियां हैं, यानी वो वैसी ही हैं इन गाथाओं ने उन्हें सराहा है। इन गाथाओं के अतिरिक्त बुंदेलखंड में अनेक पौराणिक ऐतिहासिक गाथायें भी प्रचलित हैं। पौराणिक गाथाओं के अन्तर्गत डॉ. नर्मदा प्रसाद गुप्त ने समुद्र मंथन एवं महिषासुर की गाथाओं को सम्मिलित किया है। ऐतिहासिक गाथाओं के अन्तर्गत 'जगदेव का पुंआरा' इसके दो पाठ हैं, अकबर की गाथा तथा 'तुमरे गढ़ मुगलन घेरियों हो मां' को सम्मिलित किया है।

समुद्र मंथन गाथा में देवी जालपा स्नान हेतु समुद्र में जाती हैं। समुद्र उनके कपड़े बहा ले जाता है, तब जालपा देवी कुम्हार से मटकी, बर्दई से मथानी और पटवा से रस्सी लाकर समुद्र मंथन करती है। दो बार के मंथन में ही समुद्र आधा रह जाता है। समुद्र देवी के सम्मुख नतमस्तक हो जाता है और देवी के मंदिर की परिक्रमा करता है, इस तरह इस गाथा के माध्यम से देवी की शक्ति की उपासना की गई है। एक और गाथा है, जिसमें देवता देवी को आमंत्रित करते हैं और देवी सिंह की सवारी पर वहां पहुंचती है। देवता उनसे महिषासुर दानव को मारने की प्रार्थना करते हैं, दानव जैसे ही आक्रमण करता है, देवता वहां से भाग जाते हैं। देवी त्रिशूल से दानव का वध करना चाहती है, किन्तु जितनी खून की बूंदें गिरती हैं, उतने ही दानव पैदा हो जाते हैं। तब देवी अपनी देह के मैल से पुतरियां बनाती हैं, जो लहू की बूंदें धरती पर नहीं गिरने देती और देवी दानव का वध करने में सफल हो जाती है।

यह गाथा वस्तुतः उन आक्रान्ताओं की ओर संकेत करती है, जिन्होंने पूरे राज्य पर कब्जा कर लिया था और उसके समर्थकों एवं चाटुकारों की संख्या निरंतर बढ़ती ही जाती थी, जिसका सामना शक्ति की प्रतीक और स्वामिनी स्त्रियां ही कर सकती थीं, क्योंकि वे न पौरुष के अहं में डूबी थीं, न साम्राज्य विस्तार की कोई विकृत चाहत उनके अंदर थी।

जीते राजा जगात जालपा के वरदान।

लाज बचा लई बुंदेलन की, देकें बलिदान।
राजा जगत रन को चढ़े हो ओ.....।

ऐतिहासिक गाथाओं में 'अकबर' प्रमुख पात्र की तरह आये हैं। इन गाथाओं में युद्ध, साम्राज्य विस्तार, कब्जा तो वर्णित हुए हैं, इनके अतिरिक्त लगभग सभी गाथाओं में युद्ध में विजित राज्य से उसकी कन्या पर बल-पूर्वक कब्जे, जबरदस्ती विवाह करने का दबाव आदि घटनाओं का वर्णन मिलता है और पराजित राजा अपनी बेटी का जबरदस्ती विवाह कर संघर्ष करता है, भले ही अपने सम्मान की रक्षा में वह बलिदान हो जाता है। 'अकबर की गाथा' कर की वसूली से आरम्भ होती है। 'देवी' का सेवक (लंगुरा) वसूली की गई राशि छीन लेता है। सैनिक दिल्ली जाकर अकबर को सूचित करते हैं।

अकबर देवी की सैन्य ताकत का पता लगाता है, वहां उसे एक लंगुरा और सिंह ही मिलते हैं, तब अकबर देवी के पास जाता है, जहां उनके मध्य विवाद होता है। अकबर देवी के पूजन स्थल के वृक्ष कटवा देता है, मढ़िया नष्ट कर देता है तथा उस भूमि पर धान की खेती की आज्ञा देता है। देवी ज्वालामुखी को आज्ञा देती है फलतः मुगलों के तम्बू से बने सभी ठिकाने जल जाते हैं, उनके परिवार भी खत्म हो जाते हैं, अकबर पर्वत पर चढ़ जाता है, वहां भी दावाग्नि लग जाती है, समुद्र में कूदता है तो वहां बड़वाग्नि लग जाती है। अतंतः अकबर देवी की शक्ति के सम्मुख झुक जाता है और मढ़िया की परिक्रमा करता है।

यह गाथा राजाओं द्वारा किये जा रहे प्रजा के शोषण को व्यक्त करती है, किन्तु उससे निपटने के लिये कथाकार देवीय ताकत को आश्रय बताता है, यही से गाथा की शक्ति कमजोर पड़ जाती है, यह गाथा शासन की नीतियों को तो बखानती है, किन्तु इसका मूल उद्देश्य देवी की आराधना है, उसकी शक्ति के प्रति समर्पण का भाव ही है—

पत रखो री मइया,
परों तोरे पांव, पत राखौ।
अरे कौना ने चढ़ाई पान सुपारी
सौ कौना ने चढ़ाई कपूर बाती
अरे राजा ने चढ़ाई पान सुपारी
सो रानियों ने चढ़ाई कपूर बाती
पत रखो री मइया,
परों तोरे पांव, पत राखौ।

तुमरे गढ़ मुगलन घेरियों हो मां

यह गाथा भी अकबर गाथा के सदृश ही है। इसमें अकबर मढ़िया की जगह भांग बुआना चाहता है। देवी क्रोधित होकर चौसठ योगनियों को आज्ञा देती है और वे मुगलों के पूरे तम्बू जला देती हैं और मुगल अल्ला-अल्ला कर भाग जाते हैं।

ये गाथायें मुगल आक्रान्ताओं के प्रतिरोध में रची गई हैं। अकबर यद्यपि हिन्दुओं के प्रति उदार था, परन्तु इन गाथाओं में उसकी चर्चा मुगल प्रतिनिधि के रूप में हुई है। यहां अकबर समस्त मुगल आक्रान्ताओं का प्रतीक है। गाथा प्रतिरोध का, गुस्से का, विरोध का एक रचनात्मक रूप है। पौराणिक गाथाओं के अन्तर्गत पार्वती को जन्म और तप, कर्ण की गाथा, राजा हरिश्चन्द्र की गाथा, राजा नल की गाथा तथा श्रवण कुमार की गाथा आदि बुंदेलखंड में बहुप्रचलित हैं। दरअसल ये चरित्र लोकजीवन का अभिन्न हिस्सा बन गये हैं। बात-बात में चरित्रों के उदाहरण दिये जाते हैं। ये गाथायें वर्णन प्रधान है, इनकी गेयता इन्हें रोचक बनाये रखती हैं।

माता-पिता मिले न मोल।
बिटिया जाय, तिरिया मिल जाय।
चार दिना कौ जौ सिन्सार।
अबके लरका ऐसे भये,
लैंके लुगइयां विलग भये।

इन गाथाओं में तत्कालीन उस समय की लोक संस्कृति तथा राजनीतिक वातावरण के चित्र देखे जा सकते हैं। जन मानस में चेतना का, आक्रान्ताओं के विरुद्ध एकजुट होने की अलख जगाने का महत् कार्य इन गाथाओं ने किया है।

संदर्भ ग्रंथ

1. डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय लोक संस्कृति की रूप रेखा (द इंग्लिश बैलेड) पृष्ठ सं. 81
2. डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय लोक संस्कृति की रूप रेखा (द इंग्लिश बैलेड) पृष्ठ सं. 81
3. दैनिक भास्कर, 14 मई 2011
4. लोक साहित्य परम्परा और इतिहास, पृष्ठ सं. 129
5. समस्त गाथायें-बुंदेली संस्कृति और साहित्य डॉ. नर्मदा प्रसाद गुप्त।

डॉ. भीमराव आंबेडकर के आर्थिक चिंतन का विश्लेषणात्मक अध्ययन

नवल किशोर बैठा

विभागाध्यक्ष, स्नातकोत्तर अर्थशास्त्र विभाग, एमजेके कॉलेज, बेतिया

सारांश

आर्थिक विचारकों के मन में हमेशा आर्थिक विकास का प्रश्न होता है। उन्होंने समसामयिक परिस्थितियों से उबरने के लिए आर्थिक समस्याओं पर कुछ विचार और समाधान रखे हैं। इसका अर्थ यह नहीं है कि वे विचार और समाधान आज पुराने हो चुके हैं। उन विचारों में वर्तमान अर्थव्यवस्था को सही दिशा में निर्देशित करने की क्षमता है। भारत के मामले में अनेक विशेषज्ञों ने सामाजिक-आर्थिक क्षेत्र से संबंधित अपने बहुमूल्य विचार रखे हैं। हालांकि उनके विचार सिद्धांत के रूप में नहीं हैं लेकिन आर्थिक विकास के लिए बहुत महत्वपूर्ण हैं।

जब हम डॉ. बी.आर. अम्बेडकर के आर्थिक विचारों पर गौर करते हैं तो हमने उन्हें बहुत महत्वपूर्ण आर्थिक विचारकों में पाया है। डॉ. बी.आर. अम्बेडकर को 'बाबासाहेब' के नाम से जाना जाता है। वह एक भारतीय विधिवेत्ता, राजनीतिज्ञ, दार्शनिक, मानवविज्ञानी, इतिहासकार और अर्थशास्त्री थे। डॉ. अम्बेडकर भारत के संविधान के महान शिल्पकार थे। आर्थिक चिंतन में डॉ. अम्बेडकर का योगदान बहुत महत्वपूर्ण है।

उन्होंने भारत में लोगों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति के संबंध में कुछ मुद्दों और विकल्पों पर प्रकाश डाला। उन्होंने कृषि, केंद्र और राज्य सरकार के बीच संबंध, औद्योगीकरण, मुद्रा, वित्त प्रणाली, बीमा, शिक्षा, मिश्रित अर्थव्यवस्था, समाजवाद, आर्थिक असमानता, गरीबी एवं बेरोजगारी आदि पर अपने आर्थिक विचार व्यक्त किए हैं। उनके आर्थिक विचार आज भी प्रासंगिक हैं। प्रस्तुत पत्र उनके कुछ महत्वपूर्ण आर्थिक विचारों को उजागर करने का एक प्रयास है।

मुख्य शब्द: मिश्रित अर्थ व्यवस्था, औद्योगिकरण, समाजवाद, आर्थिक असमानता

प्रस्तावना

डॉ. बी.आर. अम्बेडकर 20 वीं शताब्दी में भारत के सबसे उत्कृष्ट बुद्धिजीवियों में से थे। डॉ. बी. आर. अम्बेडकर को 'बाबासाहेब' के नाम से जाना जाता है। वह एक भारतीय विधिवेत्ता, राजनीतिज्ञ, दार्शनिक, मानवविज्ञानी, इतिहासकार और अर्थ शास्त्री थे। डॉ. अम्बेडकर भारत के संविधान के महान शिल्पकार थे। आर्थिक चिंतन में डॉ. अम्बेडकर का योगदान बहुत महत्वपूर्ण है। डॉ. अम्बेडकर विदेशी विश्वविद्यालय से अर्थशास्त्र में डॉक्टरेट की डिग्री प्राप्त करने वाले पहले भारतीय थे। उनका तर्क था कि औद्योगिकीकरण और कृषि विकास से भारतीय अर्थव्यवस्था बढ़ सकती है।

उन्होंने भारत में प्राथमिक उद्योग के रूप में कृषि में निवेश पर बल दिया। शरद पवार के अनुसार, अम्बेडकर के दर्शन ने सरकार को अपने खाद्य सुरक्षा लक्ष्य हासिल करने में मदद की।

अम्बेडकर ने राष्ट्रीय आर्थिक और सामाजिक विकास की वकालत की, शिक्षा, सार्वजनिक स्वच्छता, समुदाय स्वास्थ्य, आवासीय सुविधाओं को बुनियादी सुविधाओं के रूप में जोर दिया।

डॉ. बी.आर. अम्बेडकर के प्रमुख अर्थशास्त्र प्रकाशन हैं "द प्रॉब्लम ऑफ रुपी" (पी एस किंग एंड सन लिमिटेड, लंदन 1923), और "द इवोल्यूशन ऑफ प्रोविशियल फाइनेंस इन ब्रिटिश इंडिया" (पी एस किंग एंड सन) लिमिटेड, लंदन 1925)। उनका एक अन्य महत्वपूर्ण अकादमिक पेपर 'स्मॉल होल्डिंग्स इन इंडिया एंड देयर रेमेडीज' है जिसे उन्होंने 1918 में लिखा था। यह पेपर जर्नल ऑफ द इंडियन इकोनॉमिक सोसाइटी के खंड 1, 1918 में प्रकाशित हुआ।

इन अकादमिक आर्थिक लेखों के अलावा, उनके ज्ञापन और विभिन्न सरकारी आयोगों को दिए गए साक्ष्य, विभिन्न विधायी निकायों में भाषण, और पुस्तक समीक्षाएं हैं जिनमें सभी में कुछ आर्थिक सामग्री है। डॉक्टर अम्बेडकर के आर्थिक विचारों का अध्ययन हम कृषि, उद्योग, श्रम, मुद्रा वित्तीय स्थिति बिंदुओं के अंतर्गत विभाजित करके कर सकते हैं।

कृषि व्यवस्था

डॉ. अम्बेडकर कृषि को महत्व देते हैं। क्योंकि भारतीय अर्थव्यवस्था इसी क्षेत्र पर आधारित है। अम्बेडकर के अनुसार भारतीय अर्थव्यवस्था के पिछड़ेपन का मूलभूत कारण भूमि व्यवस्था में परिवर्तन में देरी है।

उनका विचार था कि कृषि और अंततः भारतीय अर्थ व्यवस्था के विकास के बिना ग्रामीण समाज का विकास असंभव है। उन्होंने मजदूरों के लिए न्यूनतम मजदूरी का समर्थन न किया। उन्होंने भारतीय कृषि का राष्ट्रीयकरण सामूहिक खेती के साथ अपनाने का सुझाव दिया। उन्होंने भारतीय कृषि समस्याओं के समाधान के लिए कृषि पर निर्भर भूमिहीन मजदूरों पर जोर दिया। उन्होंने खेत के आकार को कभी महत्व नहीं दिया। उनके अनुसार पूंजी और अन्य संसाधन, छोटे आकार के खेत की तुलना में भारतीय कृषि क्षेत्र की मुख्य समस्याएं हैं। मशीनीकरण की मदद से कृषि के आधुनिकीकरण पर भी उन्होंने अपने विचार व्यक्त किए हैं। आधुनिकीकरण से उत्पादन बढ़ेगा और इस क्षेत्र का विकास होगा। वे सामूहिक खेती में विश्वास करते थे। उनके अनुसार खेत के आवंटन का आधार जाति नहीं होनी चाहिए और सरकार को खेती और पानी की आपूर्ति के उपकरण उपलब्ध कराने चाहिए।

सरकार को कृषि आय पर कर नहीं लगाना चाहिए और खेती से होने वाली आय को बिना किसी जाति के भेदभाव के किसानों के बीच वितरित किया जाना चाहिए।

अंबेडकर ने कृषि सुधार को औद्योगिकरण के साथ जोड़ा ताकि ग्रामीण व शहरी प्रगति में एक प्रकार का संपर्क बना रहे। वास्तव में उन्होंने कृषि उद्योग दोनों को एक दूसरे का पूरक क्षेत्र माना है। यही कारण है कि जो बात अंबेडकर ने 1918 में कहीं उसे ही हमारे विशेषज्ञों ने 1950 के पश्चात स्वीकार कर यह महसूस किया कि भारत की आर्थिक प्रगति के लिए न केवल कृषि सुधार बल्कि साथ ही समूचे भारत में औद्योगिकरण की भी परम आवश्यकता है।

श्रम

डॉ. बाबासाहेब अंबेडकर के अनुसार समाज में भेदभाव विशेष रूप से शोषण पर आधारित था और उन्होंने इस बात की पुष्टि की कि प्रत्येक श्रम को मनुष्य के रूप में माना जाना चाहिए, उन्होंने सभी के लिए समानता और स्वतंत्रता का परिचय देने की आवश्यकता का सुझाव दिया। 1937 में उन्होंने लेबर पार्टी की स्थापना की।

लेबर पार्टी की मान्यता थी कि किसान की जमीन के निरंतर टुकड़े होना और उन पर जनसंख्या का दबाव होना किसानों की गरीबी का मुख्य कारण है, इसका समाधान यह है कि पुराने लघु उद्योगों को बहाल किया जाए और नए उद्योग शुरू किए जाएं। लोगों की योग्यता और उत्पादन शक्ति बढ़ाने के लिए उन्हें तकनीकी शिक्षा दी जाए। इसके लिए सरकार की ओर से उद्योग चलाने और प्रबंध करने का सुझाव दिया गया। कारखाने के कामगारों के रोजगार तथा कल्याण के लिए बेहतर कानून बनवाना भी पार्टी का एक लक्ष्य था। काम के घंटे तय करना, प्रमोशन के अवसर देना, वेतन, छुट्टियां, आवास की उपयुक्त सुविधा आदि के लिए प्रभावी कानून बनवाने के लिए सरकार को बाध्य करना दल के अन्य लक्ष्य थे।

अंबेडकर के अनुसार जो सुविधाएं औद्योगिक श्रमिकों को दी जाती हैं वहीं सुविधाएं कृषि श्रमिकों की जानी चाहिए क्योंकि कृषि श्रम भी इससे अलग नहीं है। उनके अनुसार कार्य की दशाएं प्रावधानों निधि, नियोक्ता के दायित्व, कार्य की क्षति पूर्ति, स्वास्थ्य बीमा, पेंशन आदि के लाभ सभी प्रकार के श्रम को प्राप्त होने चाहिए। चाहे वह औद्योगिक श्रमिक हो या कृषि श्रमिक।

औद्योगिकीकरण

अंबेडकर सभी उद्योगों के राष्ट्रीयकरण के पक्ष में नहीं थे। वे केवल महत्वपूर्ण उद्योगों का ही स्वामित्व और कार्यप्रणाली राज्य के अधीन करने के पक्ष में थे। वह यह भी सुझाव देते थे कि जो उद्योग महत्वपूर्ण उद्योग नहीं हैं परंतु जो मूल उद्योग हैं उन्हें या तो राज्य चलाएं या राज्य द्वारा स्थापित निगम संचालित करें।

डॉक्टर अंबेडकर ने निजी क्षेत्र का कभी भी विरोध नहीं किया। उनका यह निश्चित मत था कि मूलभूत उद्योगों के अतिरिक्त उत्पादन के क्षेत्र निजी उद्यमियों के स्वामित्व में होने चाहिए परंतु साथ ही साथ उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि निजी उद्यमियों को समाज के वृहत्त हितों को ध्यान में रखना होगा। सरकार को स्वयं निश्चित करना होगा कि कौन से उद्योग राज्य के द्वारा चलाए जाएं या निजी क्षेत्र के द्वारा या निजी क्षेत्र तथा राज्य दोनों के नियंत्रण में हों।

वित्त का विकेन्द्रीकरण

अंबेडकर ने अर्थव्यवस्था के राष्ट्रीयकरण पर जोर दिया। उनका विचार था कि राज्य को अर्थ व्यवस्था का प्रबंधन करना चाहिए ताकि उत्पादन इष्टतम स्तर तक पहुंच सके और पूंजीपति द्वारा लाभ नहीं लिया जाना चाहिए। लाभ समान रूप से वितरित किया जाना चाहिए। वह पूंजीवादी व्यवस्था के कारण होने वाली स्पष्ट सामाजिक और आर्थिक असमानताओं को दूर करते हुए समाज के प्रगतिशील परिवर्तन के लिए खड़े थे। अंबेडकर समाजवाद के दृढ़ विश्वासी थे। उद्योगों के राष्ट्रीयकरण और जीवन बीमा पर उनके विचार ने भारत के सामने आने वाली आर्थिक समस्याओं के प्रति उनकी बड़ी चिंता को दर्शाया। सार्वजनिक क्षेत्र के गठन और जीवन बीमा निगम की स्थापना से पता चला कि वह अन्य प्रमुख अर्थशास्त्रियों के साथ सहमत थे। उन्होंने टिप्पणी की कि भारत का औद्योगिकीकरण एक आवश्यक चीज थी। लेकिन साथ-साथ राज्य प्रबंधन और उद्योग के राज्य स्वामित्व के सिद्धांत को अपनाया जाना चाहिए। सामाजिक बीमा और रोजगार पर नियंत्रण, बर्खास्तगी जैसी सुविधाएं उद्योग की प्रगति के लिए महत्वपूर्ण थीं। इन उपायों के बारे में निम्न मध्यम वर्ग की रक्षा की जानी चाहिए। उनका दृढ़ विश्वास था कि शोषण को समाप्त करके, श्रम कल्याण और अनुकूल औद्योगिक संबंध के माध्यम से औद्योगिक सद्भाव स्थापित किया जा सकता है। उन्होंने टिप्पणी की “हमने राजनीतिक स्वतंत्रता और समानता प्राप्त की है लेकिन आर्थिक और सामाजिक समानता के बिना यह काफी अपर्याप्त है”।

अंबेडकर ने आर्थिक और सामाजिक स्वतंत्रता और समानता पर अधिक जोर दिया। समाज और समाजवाद की उनकी अवधारणा का उद्देश्य गरीब वर्गों के कल्याण के लिए आधारित असमानता को समाप्त करना था। जन्म पर सामाजिक व्यवहार पैटर्न में भेदभावपूर्ण प्रथाओं को समाप्त करना, सभी के लाभ के लिए राजनीतिक अर्थव्यवस्था का पुनर्गठन करना, पूर्ण रोजगार और शिक्षा बनाए रखना, कमजोर और बीमारों के लिए सामाजिक सुरक्षा प्रदान करना।

मुद्रा के संबंध में विचार

डॉ. अम्बेडकर के विचार वर्तमान भारतीय नकदी ढांचे को बहुत प्रभावित करते हैं। ब्रिटिश मानक के तहत जब भारत सरकार भारतीय रुपये के गिरते अनुमान से जूझ रहे थे, डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर ने 1923 में 'रुपये का मुद्रा, इसकी जन्मस्थली और व्यवस्था' की रचना की। उन्होंने ब्रिटिश भारत के दौरान भारतीय धन की स्थिति पर अपनी जांच और शोध को केंद्रित किया।

उन्होंने इस पर शोध प्रस्ताव तैयार किया। अपने सिद्धांत में, उन्होंने तर्क दिया कि सोने के व्यापार मानक में स्थिरता नहीं है। भारत जैसे निर्माण करने वाले देश सोने के व्यापार मानकों की लागत का प्रबंधन नहीं कर सकते हैं, इससे अधिक यह मूल्य वृद्धि के खतरे को भी बढ़ाता है। उन्होंने अंतर्दृष्टि की जानकारी और कारणों के साथ प्रदर्शित किया कि कैसे भारतीय रुपये ने अपना मूल्य खो दिया है और इस प्रकार रुपये की खरीद तीव्रता गिर रही है। उन्होंने सुझाव दिया कि सरकारी कमी को दूर किया जाना चाहिए और पैसे का एक वृत्ताकार प्रवाह होना चाहिए। उन्होंने यह भी प्रस्तावित किया कि रूपांतरण पैमाने पर निर्भरता की तुलना में मूल्य ठोसता पर अधिक ध्यान दिया जाना चाहिए यह पुस्तक अनिवार्य रूप से भारतीय रिजर्व बैंक की नींव को प्रेरित करती है।

समान कार्य के लिए समान वेतन

डॉ. अम्बेडकर प्रमुख व्यक्ति थे जिन्होंने वायसराय आधिकारिक सभा में श्रम मंत्री के रूप में औद्योगिक विशेषज्ञों के रूप में भारत में "समान कार्य के लिए समान वेतन" कानून लाया। भारतीय संविधान का मसौदा तैयार करते समय, डॉ. अम्बेडकर ने अनुच्छेद 39 (डी) को समाहित करने के लिए महत्वपूर्ण प्रतिबद्धता निभाई, जो राज्य को समकक्ष के लिए समान वेतन की पुष्टि करने के लिए एक निर्णय लेने के लिए संबंधित है।

उनके द्वारा इंगित किया गया है, महिलाओं की सामाजिक स्थिति और निष्पक्षता के निर्माण के बिना वित्तीय सुधार में समर्थन की कल्पना नहीं की जा सकती है। जो भी हो, भारत में महिलाओं की भयानक आर्थिक स्थिति का कारण भारत की आर्थिक उन्नति बाधित है। इस प्रकार, महिलाओं की आर्थिक स्थिति में सुधार करना और उन्हें समान अधिकार और व्यवसाय का अवसर देना महत्वपूर्ण है।

गरीबी एवं बेरोजगारी

डॉ. अंबेडकर यह मानते थे कि परिवार में भूमि के विभाजन और उस पर जनसंख्या के दबाव की वजह से ही किसान गरीब है। इसका समाधान हेतु पुराने उद्योगों को बहाल करने के साथ नये उद्योग चालू किये जाने चाहिये। उन्हें तकनीकी शिक्षा प्रदान की जाय। स्पष्ट है कि अम्बेडकर गरीबी एवं बेरोजगारी समाप्त करने के लिए कृषि क्षेत्र में सामूहिक कृषि को अपनाने तथा उद्योग क्षेत्र में नये उद्योग लगाने एवं पुराने उद्योगों को बहाल करना मुख्य उपचार मानते थे। उन्होंने बताया कि किसानों और मजदूरों को बिना किसी जाति भेद के एक मजदूर संगठन कायम करना चाहिए और विधानसभाओं में योग्य वक्ता चुनकर भेजना चाहिए। जो उनका प्रतिनिधित्व कर सके। आर्थिक असमानता के बारे में उन्होंने लिखा है कि जब तक समाज में आर्थिक समानता के साथ सामाजिक समानता स्थापित नहीं हो जाती देश का सम्पूर्ण विकास नहीं हो सकता।

अन्य विचार

बी. आर. अंबेडकर ने नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक के कार्यों की चर्चा करते हुए 1949 में हमारे संविधान के निर्माण के दौरान कहा था कि सरकारों को जनता से प्राप्त संसाधनों को नियमों, कानूनों और विनियमों के अनुसार खर्च करने के साथ यह भी देखना चाहिए कि अधिकारियों के भ्रष्टाचार में न खर्च हो जाये। इसलिए सरकार के लिए मूल इरादों के प्रति वफादार होना और भी आवश्यक हो जाता है।

डॉ. अंबेडकर ने दामोदर-महानदी बेसिन पर बहुआयामी परियोजना विकसित करने के लिए बिजली उत्पादन करने, बाढ़ रोकने, सिंचाई के लिए पानी की आपूर्ति, जलमार्ग के रूप में और उन सभी उद्देश्यों के लिए औद्योगिक उपयोग के लिए परियोजनाओं को पूरा किया। उन्होंने बिजली उत्पादन को भी दिशा दी। बिजली की निरंतर और समृद्ध उपलब्धता बहुत महत्वपूर्ण है। उन्होंने नई जल नीति, जलमार्ग, जल निकासी व्यवस्था आदि मुद्दों पर भी अपने विचार व्यक्त किये।

निष्कर्ष

विभिन्न आर्थिक विषयों पर, जिनसे अम्बेडकर का संबंध था, उनके निष्कर्षों का मूल्य काफी सटीक है क्योंकि उनका विश्लेषण अनुभवजन्य और ऐतिहासिक नींव पर आधारित था। उनके अनुसार प्रमुख उद्योग राज्य के स्वामित्व में संचालित होंगे। बुनियादी लेकिन गैर-महत्वपूर्ण उद्योग राज्य के स्वामित्व में होंगे और राज्य या उसके द्वारा स्थापित निगमों द्वारा संचालित होंगे। कृषि एक राज्य उद्योग होगा, और सामूहिक कृषि को प्राथमिकता दी जायेगी।

उन्होंने औद्योगीकरण की आवश्यकता पर भी जोर दिया ताकि अधिशेष श्रम को कृषि से अन्य उत्पादक में स्थानांतरित किया जा सके।

उपर्युक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि डॉ. अंबेडकर के आर्थिक दर्शन सिद्धांत महत्वपूर्ण होने के साथ व्यवहार में भी लागू किये गये।

उनका दर्शन मानवतावादी था जो सीधा मनुष्य के कल्याण से जुड़ा हुआ था। उनके महत्वपूर्ण विचारों का स्वतंत्रता, समानता, प्रजातंत्र, समाजवाद आदि में महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

संदर्भ सूची

1. डॉ. एम.एल. परिहार, बाबा साहेब अम्बेडकर लाइफ एंड मिशन 14 अप्रैल 2017
2. अंबेडकर, "स्टेट एंड माइनॉरिटीज", 1947

3. डॉ एम.एल. छीपा, शंकर लाल शर्मा, जे.के. सिद्ध, “भारतीय आर्थिक चिंतन”
1. IEA.”Dr. B.R. Ambedkar’s Economic and Social Thoughts and Their Contemporary Relevance”. IEA Newsletter-The Indian Economic Association (IEA) (PDF). India: IEA publications, 2013, 10.
2. Mishra, edited by S.N. (2010). Socio-economic and political vision of Dr. B.R. Ambedkar. New Delhi: Concept Publishing Company, 2018, 173-174. ISBN 818069674X
3. “Ambedkar had a vision for food self-sufficiency’ “. The Times of India, 2013.
4. Hiralal Vaman Chavan,”The Economic Thought of Dr. Babasaheb Ambedkar “ (article 22) The Indian Economic Journal, 2013, 155
8. Om Prakash Ram, Satya Ratna Singh and Shiv Shankar. The Indian Economic Journal, 2013, 61-63 11. MR Singariya “Dr. BR Ambedkar: As an Economist”. International Journal of Humanities and Social Science Invention. 2013; 2(3):24-27. academia.edu
9. Nageswari R, “Economic vision of Dr. B.R. Ambedkar, Shanlax. International Journal of Economics, 2019, researchget.net

प्रथम स्वतंत्रता आंदोलन और दिल्ली उर्दू अखबार की भूमिका

विष्णु प्रभाकर उपाध्याय

डॉक्टरल कैंडिडेट, हिंदी विभाग, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय

हिन्दोस्तान में दौलत ओ हशमत जो कुछ की थी
काफिर फिरगियों ने ब-तदबीर खींच ले

— गुलाम हमदानी “मुसहफी”

गुलाम हमदानी मुसहफी के इस शेर से हम अठारहवीं सदी के हिंदुस्तान, खास तौर से उत्तर भारत की तस्वीर का कुछ कुछ अंदाजा लगा सकते हैं। शायरों के यहाँ बहुत पहले ही कंपनी राज की मुखालिफ़त दिखलाई पड़ती है। मिसाल के तौर पर बहादुर शाह ‘जफ़र’ के ये शेर –

गाज़ियों में बू रहेगी, जब तलक ईमान की
तख़्ते लंदन तक चलेगी तेग हिन्दुस्तान की

अंग्रेज़ों के खिलाफ़ लोकवृत्त के निर्माण में पत्र-पत्रिकाओं की बड़ी भूमिका रही है। यही कारण है कि समय समय पर अंग्रेज़ अपने खिलाफ़ पैदा हो रहे आक्रोश को दबाने के लिए पत्र-पत्रिकाओं पर पाबंदी आयद करते रहे थे। 1857 के पहले भी अंग्रेज़ों के खिलाफ़ विद्रोह होता रहा था लेकिन 1857 में पहली बार हिंदुस्तानियों ने अंग्रेज़ों के खिलाफ़ संगठित (हालांकि ये भी बहुत संगठित नहीं था) होकर मोर्चा लिया। असल मायने में यही भारत की आजादी के लिए पहला स्वतंत्रता संग्राम था। इस संग्राम में उर्दू के अखबारों की अहम भूमिका थी। उर्दू के अखबारों ने खुलकर अंग्रेज़ों के खिलाफ़ मोर्चा लिया था। ‘सिराज-उल-अखबार’, ‘सादिक-उल-अखबार’ और ‘दिल्ली उर्दू अखबार’ दिल्ली से प्रकाशित होने वाले प्रमुख साप्ताहिक अखबार थे। इसमें सबसे पहले दिल्ली से प्रकाशित होने वाले अखबार ‘दिल्ली उर्दू अखबार’ का नाम आता है।

दिल्ली उर्दू अखबार

दिल्ली उर्दू अखबार दिल्ली से प्रकाशित होने वाला एक साप्ताहिक अखबार था जिसके संपादक मौलवी मोहम्मद बाक़र (उर्दू के सुप्रसिद्ध शायर और आलोचक मौलाना मोहम्मद हुसैन आजाद के पिता) थे। यह अखबार सन् 1837 में दिल्ली के पंजाब शरीफ के निकट गुज़र एतिकाद खान में संपादक मौलवी मोहम्मद बाक़र के घर से होता था। यह अखबार हर रविवार को 4 पन्नों पर 12*8 के साइज में दो कालमों में छपता था। दिल्ली उर्दू अखबार के सबसे ऊपर इसका नाम बड़े अक्षरों में फिर इसके नीचे छोटे छोटे अक्षरों में इसका क़ीमत लिखा होता था। 10 जनवरी 1841 के अंक पर लिखा है – “क़ीमत माहवारी दो रुपया और जो पेशगी दें तो ग्यारह रुपये शशमाही और बीस रुपये सालाना।” इसके नीचे कौन सा अंक है ये लिखा होता था, 10 जनवरी 1841 के ही अंक में लिखा हुआ है – “10 जनवरी 1841, यौमे यकशंबा।” अखबार के आखिरी पन्ने पर प्रिंटर और पब्लिशर का नाम होता था, यथा – बाएहतमाम मोतीलाल प्रिंटर और पब्लिशर के छपा हुआ। बाद को इसके प्रिंटर और पब्लिशर बदलते रहे थे, जैसे 17 मई 1857 के अंक में प्रिंटर और पब्लिशर का नाम सैयद अब्दुल्ला छपा हुआ है, यथा – “बाएहतमाम..... सैयद अब्दुल्ला प्रिंटर पब्लिशर दिल्ली उर्दू अखबार में छपा।”

यह अखबार लगभग 21 साल तक छपता रहा। प्रकाशन के वक्त इस अखबार का नाम “अखबार-ए दिल्ली” था, 10 मई सन् 1840 से ये ‘दिल्ली उर्दू अखबार’ के नाम से प्रकाशित होने लगा। इस अखबार के संपादक मौलवी मोहम्मद बाक़र का शुमार उन चंद लोगों में था जो बादशाह के बेहद क़रीब थे। उनके काम से बहादुर शाह ज़फ़र बहुत खुश थे। 1857 की बगावत के बाद बादशाह बहादुर शाह ज़फ़र के समर्थन का इजहार करते हुए 12 जुलाई 1857 को मौलवी मोहम्मद बाक़र ने ‘दिल्ली उर्दू अखबार’ का नाम ‘अखबार-उल-ज़फ़र’ कर दिया। इस नाम से इस अखबार के मात्र दस शुमार ही मंजरे आम पर आए।

दिल्ली उर्दू अखबार उर्दू ज़बान में छपने वाला उत्तर भारत का पहला अखबार था और इन उपमहाद्वीप का दूसरा अखबार था। उर्दू का पहला अखबार ‘जामे जहानुमा’ था। इस अखबार के सन् 1857 के 17 अंक दिल्ली स्थित राष्ट्रीय अभिलेखागार में सुरक्षित हैं। इस पेपर में मेरा मकसद दिल्ली उर्दू अखबार का प्रथम स्वतंत्रता आंदोलन में क्या भूमिका थी, को देखना है। इस्लामिक कल्चर (Islamic Culture) पत्रिका में “Delhi Urdu Akhbar and its importance” शीर्षक से एक लंबा लेख प्रो. कासिम अली सज़नलाल ने दिल्ली उर्दू अखबार पर तफ़सील से लिखा है लेकिन इस लेख में प्रो. सज़नलाल ने दिल्ली उर्दू अखबार के 1852 तक के शुमारों का ही अध्ययन पेश किया है। प्रो. सज़नलाल ने एक और आलेख “Delhi Urdu Akhbar and freedom struggle” शीर्षक से लिखा है लेकिन वो मिल नहीं सका हालांकि उसका उल्लेख कई अन्य आलेखों में हुआ है।

दिल्ली उर्दू अखबार का प्रथम स्वतंत्रता संघर्ष में भूमिका

सालों से किसानों, काश्तकारों और सैनिकों के दिलों में जो गुस्सा उबाल मार रहा था, अचानक ज्वालामुखी की तरह फट गया। 11 मई 1857 दिल्ली की सड़कों पर सवेरा उतर ही रहा था। जिंदगी की हलचल शुरू नहीं हुई थी। तभी मेरठ से आए सिपाहियों का एक दस्ता यमुना पार कर शहर में पहुँचा। उन्हें सामने दिखाई दिया चुंगी का दफ्तर उन्होंने उसमें आग डाला दी और फिर लाल किले की तरफ बढ़ गए। इन सिपाहियों ने एक दिन पहले ही मेरठ में अपने अंग्रेज अफसरों का आदेश मानने से इनकार कर दिया था और उनकी हत्या कर दी थी।¹

10 मई को मेरठ छावनी से जब विद्रोह की चिंगारी दिल्ली पहुँची तो बहुत कम लोगों को ये गुमान रहा होगा कि देखते ही देखते ये चिंगारी जंगल में आग की तरह फैल जाएगी और उत्तर भारत को अपने जद में ले लेगी। कुछ ऐसी ही तोहमत दिल्ली उर्दू अखबार के संपादक मौलवी मोहम्मद बाक़र के मन में भी थी। इसका अंदाजा दिल्ली उर्दू अखबार के 17 मई 1857 के अंक को देखने के बाद होता है।

“11 मई 1857 को गर्मी के कारण कचहरी का काम बहुत सवेंरे ही शुरू हो गया था। मैजिस्ट्रेट साहब अदालत के काम में व्यस्त थे और सभी हुक्काम अपने अपने महकमों में आदेश देने में व्यस्त थे। कैद, जिस्मानी सजा और अपराधियों को तलब करने का आदेश जारी हो रहा था कि क़रीब सुबह 7 बजे मीर बहरी यानी दारोगा पुल ने आ कर ख़बर दी कि सुबह को चंद तुर्क सवार छावनी मेरठ के पुल से उतर कर आए और हम लोगों पर जुल्म ज्यादाती करने लगे और महसूल मुजतमा (टैक्स की इकट्टी राशि) को लूटना चाहा। मैंने उनको इधर उधर की बातों में उलझाया और कशती-ए-लब पुल की कुफ़ली (जिससे नाव बाँधी गई थी) खोल दी कि आगे ना जा सकें। वो लोग जो आए थे सड़क के राजस्वघर और सीलमपुर की सड़क पर स्थिति साहब के बंगले को फूंक दिया है। साहब सुनकर मुतअम्मिल (दुविधा) हुए और उठकर जेनेट मजिस्ट्रेट के पास के दूसरे कमरे में इजलास करता था, चले गए और कुछ गट पट करके खजाने के कमरे में गए और साहबे खजाना से मस्लहत करके खजाना की रखवाली कर रहे गार्ड को तैयार रहने का हुक्म दिया। हुक्म मिलते ही उन्होंने गोलियाँ बंदूकों में भर लिया और तैयार हो गए। और एक एक पहरा जंगी दरवाजा कचहरी पर भी खड़ा हो गया। और तमाम कचहरी और अहले अमला में खलबली पड़ गई। साहब मजिस्ट्रेट मालूम हुआ कि कमिश्नर के पास गए। इस दौरान में सुना गया कि वो तुर्क सवार अब जेरे क़िला मुबारक पेशे झरोका जमा हैं और हुजूर वाला हजरत जिल्ले सुबहानी से मुसजई ख्वास्तगार हैं कि अर्क माला (अर्क ए मोअल्ला) में बार पावें। इस अरसा में साहब मजिस्ट्रेट भी आ गए और अपनी मेम और बच्चों को कोठी से कि जेरे दीवार कचहरी है तलब कर लिया और बाद थोड़ी देर के नीम गार्ड कश्मीरी दरवाजा में कि वहाँ भी कमरबंदी थी भिजवा दिया। इसी दौरान में लिबास साहब सेशन जज भी आ गए और कुछ देर तक गिर्द कचहरी के गर्दिश करके कोठी में चले गए और कचहरी को बर्खास्त का हुक्म दिया। और उधर क़िलादार ख़िदमत हजरत-ए-जिल्ले सुबहानी में हस्ब अल तलब हाज़िर हुआ। तमाम हाल वहाँ का भी सुनकर और हुजूम-ए-सवारान ओ सिपाहियान देखकर चाहा कि उन लोगों को जेरे क़िला जाकर फहाइश करे। मगर हुजूर अक्दस अज राहे रहम ओ करम कि मिनजुमला (including) सफात (pages) अत्तिया आला से है नीचे जाने को माना आए। अंजाम कार क़िलादार रुख़सत हुआ और थोड़ी देर में सुना कि क़िलादार व बड़े साहब व डॉक्टर साहब व मेम साहब वगैरह दरवाजे में मारे गए और सवार क़िले में चले आए। हुजूर अक्दस (बहादुर शाह जफर) भी दस्तार मुबारक जेब सर और शमशीर जेब कमर फरमाकर दरबार में तशरीफ लाए और आगे कुछ सवार शहर में आए और दरियागंज में अंग्रेजों को मारते हुए और दो बंगला जलाते हुए क़िले के नीचे अस्पताल में आए और चमनलाल डॉक्टर को भी दारुल सफा-ए-असली में पहुँचा दिया (जान से मार दिया)। कहते हैं कि बड़े साहब व क़िलेदार डॉक्टर वगैरह अंग्रेज कलकत्ता दरवाजे पर खड़े हुए दूरबीन लगाए सड़क मेरठ का हाल दरयाफ्त कर रहे थे कि दो सवार आए। उनमें से एक ने तमंचा झाड़ा और एक अंग्रेज को मार गिराया और लिखी हुई तहरीर के मुताबिक़ जो अंग्रेज बचकर दरवाजा क़िला में आए, मारे गए और फिर और सवार भी आ पहुँचे और शहर में गुल (शोरगुल) हो गया कि फ़लाँ अंग्रेज वहाँ मारा गया और फ़लाँ अंग्रेज वहाँ पड़ा है। राक़िम (writer) आशिम भी ये चर्चा देखकर और आवाज बंदूकों की सुनकर वापस दीन ओ हमायत अपने क़ल्ब-ए-अहजा से बाहर निकला तो बाज़ार में अजीब आलम देखा कि जानिब बाज़ार कश्मीरी दरवाजे से लोग बेहताशा भागे चले आते हैं मगर चूँकि हकीर को तफरीह तब'आ और पास ख़ातिर अपने नाज़रीन का जाने अजीज से अजीजतर था। लिहाजा बेतकल्लुफ़ वास्ते दरयाफ्त हाल के सीधा इसी तरफ़ रवाना होकर हुआ कि जेरे कोठी सिकंदर साहब पहुँचकर एक आवाज बंदूकों की बाड़ की सामने से सुनाई दी। आगे चला तो देखा कि साहब बहादुर जियो पैदल शमशीर बरहना दर कफ सरसीमा ओ बदहवास बेहताशा भागे चले आते हैं और पीछे पीछे उनके चंद तिलंगे बन्दूकें सर करते चले आते हैं और आवाम ए शहर भी किसी के हाथ में लकड़ी और किसी के हाथ में पलंग की पट्टी किसी के हाथ में बाँस का टोटा उसके दर पे चले आते हैं।”³

“दिल्ली पर कब्ज़ा करने के एक महीने के भीतर ही विद्रोह देश के विभिन्न इलाकों में फैल गया: कानपुर, लखनऊ, बनारस, इलाहाबाद, बरेली, जगदीशपुर और झांसी। इस विद्रोह में तीव्र ब्रिटिश विरोधी भावनाएँ थीं और प्रशासन को उखाड़ फेंका। अपने रैंक से किसी भी नेता की अनुपस्थिति में, विद्रोहियों ने भारतीय समाज के पारंपरिक नेताओं – क्षेत्रीय अभिजात वर्ग और सामंतों की ओर रुख किया, जिन्होंने अंग्रेजों के जेर ओ जबर को झेला था।”⁴

जब सिपाही मेरठ से दिल्ली पहुँचे तब दिल्ली उर्दू अखबार का रवैया बिल्कुल मुखतलिफ़ था जैसे जैसे विद्रोह बढ़ता गया और इसके साथ ही समय बीतता गया वैसे वैसे इस अखबार के संपादक को भी ये यकीन होने लगा था कि अंग्रेज़ अब हिंदुस्तान में चंद दिन के ही मेहमान हैं। शुरुआत में इस क्रांति की कोई ठोस शकल नजर नहीं आ रही थी लिहाजा दिल्ली उर्दू अखबार के संपादक की तोहमत भी जायज ही थी। अखबार के अप्रैल (1857) अंक को देखते हैं तो हम पाते हैं कि ये अखबार भी अन्य अखबारों की तरह सिर्फ़ ख़बरें प्रकाशित करता था। “ये काम है गौर और कयास का कि आवाम और बाजारी लोग जो गप्प हाँकते थे और शहर में लोगों की जबान पर था कि बेहतरी सिपाह बरगुश्ता हो रही है और मुक़ाबिला को मौजूद है। सरासर वो बातें लगू और बेअसल थीं। इस किस्म की बेहतरी ख़बरें दरबाब लखनऊ और जंगे ईरान वगैरह अमूर हर रोज़ नई नई तरह के सुने जाते थे बल्कि लिखे आते हैं लेकिन असल हकीक़त क़ाबिले हुक्म ओ तस्दीक नहीं होते।”⁵

पहले ये अखबार सिपाहियों को तिलंगा आदि कहकर संबोधित करता था लेकिन मई के बाद इस अखबार के तेवर बदलने के साथ ही इसकी भाषा में भी फर्क़ पैदा हुआ और ये सिपाहियों को ऐ सिपाह-ए-दिलेर! ऐ तिलंगान-ए-नौहशेर! (14 जून 1857 के अंक में अखबार सिपाहियों को ऐसे ही संबोधित

त किया है) आदि कहकर संबोधित करने लगा और खुलकर सिपाहियों और बहादुर शाह जफर की तरफदारी करने लगा। जो कि इसके अन्य शुमार (अंक) देखने के बाद पता चलता है।

1857 के इंकलाब के बाद ही जब दिल्ली पर बागियों का कब्जा हो गया तो इस अखबार ने सिपाहियों का खुलकर समर्थन करना शुरू कर दिया। सिपाहियों की हौसलाअफजाई के लिए अखबार के २४ मई के अंक में एक नज़्म मौलाना हुसैन आजाद की छपी थी। इसके कारण मौलाना हुसैन आजाद को भी अंग्रेजों के कोप भाजन का शिकार होना पड़ा था। मौलवी मोहम्मद बाक़र के बेटे और उर्दू अदब के बड़े शायर और आलोचन मौलाना हुसैन आजाद की मशहूर नज़्म “तारीख़-ए इंकलाब-ए इब्रत अफजा” प्रकाशित हुई। इस नज़्म के चंद अशआर देखें। इस नज़्म को पढ़ने के बाद ये अंदाजा लगाना मुश्किल नहीं होगा कि ये अखबार उस वक़्त कैसा रुख़ अख़्तियार किए हुआ था-

“कू मुल्क सुलेमान ओ कूजा हुक्मे सिकंदर
शाहाने अवलुल अज़्म सालतीन जहांदार
कू सतवते हेजाज ओ कूजा सोलते चंगेज
कू ख़ान हलाकू ओ कूजा नादरे ख़ूँख़्वार
ना शौकतो हशमत है ना वो हुक्म ना हासिल
किस जा है जहांदार और कहाँ है वो जहांदार”⁶

‘दिल्ली उर्दू अख़बार’ को पढ़ने के बात ग्राउंड रिपोर्टिंग का नमूना देखने को मिलता है। हर साल बादशाह रमजान के आखिरी जुमा (शुक्रवार) को जामा मस्जिद में आते थे। 1857 के बाद दिल्ली में सियासी सरगर्मी बढ़ गई थी। लिहाजा वो जामा मस्जिद ना आ सके। शाहजादे 1857 की इस जंग में अंग्रेजों से मोर्चा लेने के लिए तैयारियां कर रहे थे इसलिए वो भी जामा मस्जिद ना आ सके। इस घटना की रपट अखबार प्रकाशित की कि “गुजिश्ता साल की निस्बत इस साल रमजान की आखिरी जुमा को जामा मस्जिद में बहुत कम लोग आए। हुजूरवाला मस्जिद न आकर अपनी मुबारक उपस्थिति से चार चाँद नहीं लगा पाये, सबब बेतहाशा गर्मी और घमस। और बेश्तर शाहजादे भी फौज और तुलबा वगैरह की तैयारी में व्यस्त होने की वजह से शिकरत न कर सके।”

दिल्ली पर बहादुर शाह जफर के नेतृत्व में सिपाहियों ने दिल्ली पर कब्जा कर लिया और महीने दिन से ज्यादा तक उनका कब्जा बरकरार रहा तो दिल्ली उर्दू अख़बार ने अपने ख़ास अंदाज में लिखा कि “ये मेयार कि तुम्हारा भी तवारीखों में याद रहेगा कि किस बहादुरी और जवाँमर्दी से तुमने ऐसी ओलवा अल अजीम और मुतकब्बर सल्तनत के किन्न ओ गुरूर को तोड़ा है और उनकी नुखुत फिरौनी और गुरूर शदादी को यक्सर ख़ाक में मिला दिया है और हिंदुस्तान की सल्तनत को जिस पर बड़े बड़े बादशाहों का दानत था और उनसे (अंग्रेजों से) ना ले सके थे। तुमने उनके कब्जा-ए अक़दार से निकाल लिया और रियाया-ए हिंदुस्तान को कि बुलाए ना कहानी में आ गई थी इस मुसीबत से निजात दी।”⁸

अंग्रेजों ने जब बादशाह बहादुर शाह जफर की सारी शक्ति छीन ली और उनको लाल क़िले तक महदूद कर दिया तो इस अखबार के संपादक मौलाना मोहम्मद बकर ने लिखा कि “बादशाह को नाक़ाबिले एतमाद समझा गया और कोई मौक़ा उनकी तौहीन का हाथ से नहीं जाने दिया गया। बादशाह सलामत को इतना मजबूर बेबस कर दिया गया कि उन्हें दिल्ली से बाहर जाने तक की इजाजत न थी। वो रेजिडेंट के बगैर राह रास्त गवर्नर जनरल और मलिक से ख़त ओ क़िताबत तक नहीं कर सकते थे। कोई राजा या रईस बादशाह से सिर्फ मुलाक़ात हासिल नहीं कर सकता था।”⁹

अंग्रेजों ने हिंदू-मुस्लिम एकता में दरार डालने के लिए जामा मस्जिद की दीवारों पर पोस्टर चस्पा किया तो इस अखबार ने उस भ्रामक पोस्टर द्वारा फैलाए जा रहे भ्रम का न सिर्फ भंडाफोड़ किया बल्कि किताबचा छपवाकर बँटवाया भी। अखबार ने लिखा कि “नाकाबिले गौर बात ये है कि अंग्रेजों के मकरूह प्रोपगेंडे पर मबनी मजकुरा इश्तेहार का तोड़ करने के लिए इसे सिर्फ अखबार तक ही महदूद नहीं रखा गया बल्कि ज्यादा से ज्यादा लोगों तक पहुँचाने के लिए किताबचा की सूत्र में शाया करके फी किताबचा चार आना फरोख्त किया गया। किताबचे के इश्तेहार में इसे दिल्ली के बाहर अरसाल करने की ख्वाहिश जाहिर की गई और इसकी अशायत का मकसद बयान करते हुए बताया गया कि कोई शख्स किसी नसारा के धोके में ना आवे और उनपर जिहाद फर्ज जाने।”¹⁰

दिल्ली उर्दू अख़बार इसपर भी अफसोस जाहिर करता है कि अब तक डाक का कोई इंतजाम नहीं हो पाया है कि सही खबरें हर जगह से आयें इसीलिए “सुबह से शाम एक जगह की खबर ख़ास शहर और क़िला-ए-मुअल्ला के जितने आदमी बयान करते हैं मख़्तलिफ़ तौर से सुनेंगे।”¹¹

मौलाना मोहम्मद बाक़र कर क़दम पर क्रांतिकारियों का हौसलाअफजाई करते हैं। वो क्रांतिकारियों को बताते हैं कि इस आजादी की लड़ाई में खुदा तुम्हारे साथ है। “खुदा बंद तआला को अपना हामी और मददगार जाने और गौर करें कि इस नौबत को किसने उन्हें पहुँचाया क्योंकि जिसने इस नौबत को पहुँचाया वो मौजूद है और क़ादिर-ओ-तवाना है। ये साहब ये बतौर अज़्द (assistant) ओ नसीहत जो बयान करते थे, ऐसी ऐसी कलाम ताशीर उनकी जवान गोया थी कि हर एक सामा बेसाख़्ता गोश बर आदाज था। और हर शख्स को जरायत ईमान और जो शश-ए-धर्म चहरा से नुमायां थी।”¹²

दिल्ली उर्दू अख़बार अंग्रेजों के खिलाफ लोगों को गोलबंद करने और हौसलाअफजाई के लिए धर्मशास्त्रों और पौराणिक कथाओं का सहारा ले रहा था। हिंदू और मुसलमान, दोनों धर्मों के मानने वालों से अपील करते हुए अखबार लिखता है कि “ऐ अहले वतन अजीजों की अक्ल-ओ-तदबीर और हिंदुस्तान-ओ-इंतजाम और बुसअत-ओ-सल्तनत और कशरत जेरे ख़जाना-ओ-आमदनी देख कर शायद तुम्हारी हिम्मतपस्त होती है कि ऐसी सल्तनत क्योंकि वफाआत तबाह हो सकती है। लेकिन जो लोग मुसलमान बिरादरे-इमानी है उन्हें चाहिए कि अगर बा मक्तजा-ए-बशरीयत कुछ भी अजतर और फिक्र-ओ-अंग्रेज ख़ातिर हो तो अपनी कुतुब दीनी कुरआन-ओ- तआगीर ओ हदीश की तरफ रजू करें और जो लोग हिंदू धर्म हैं वो अपने ज्ञान और धर्म के प्रकाश से दिल रौशन करके अव्वल यकीन करें कि सिवाये ऊपर से यानी जात-क़दीम जनाब आला किसी को क़ुदरत-ए-कामिला और हमेशा बक़ा नहीं है। अपने धर्म कथा की किताबें देखें कि इसी हिंदुस्तान की सल्तनत में कैसी कैसी जबरदस्त आलीशान सल्तनत हुई और क्योंकि फना हो गई। रावण

संगलदीप का राजा कि राक्षस यानी दिलवजारों की फौज अपने साथ रखता था, यहाँ तक कि राजा रामचन्द्र को कि चश्म-ओ-चराग खानदान सूरजवंश (सूर्यवंश) के साथ शिकस्त दी और गालिब आया लेकिन गौर करो कि कूदरते इलाही सब पर गालिब है। वीसियों की फौज से राजा रामचंद्र ने उसका और उसकी फौज का नाम सफहा आलम से मिटा दिया। कंस मथुरा(पुर) का राजा क्या जबरदस्त हुआ कि तमाम दुनिया को फतह करके इंद्रलोक (इंद्रलोक) तक चढ़ जाने का इरादा किया। यदुकुल और सुरसेन के खानदान में एक श्री कृष्ण (सीरी किशन) महाराज ऐसे पैदा हुए सिवाय नाम के निशान भी न छोड़ा।¹³

न सिर्फ हिंदुओं के पौराणिक ग्रंथों और पात्रों का उल्लेख कर हिम्मत देते हैं बल्कि मुसलमानों के धार्मिक ग्रंथों और उनका भी जिक्र करता जिन पर मुसलमान अक़ीदत रखते हैं। इस अख़बार की भाषा सिपाहियों में जोश पैदा करती है कि “ऐ सिपाह-ए-दिलेर! ऐ तिलंगान-ए-नौहशेर! तवारीखों में जिस तरह से कि सल्तनत हाए साबकाई कारनामा हाए शाजा आन जमान-ए-गुजिश्ता यादगार है कि तवारीख-ए-हिन्द में खानदान यदुवंशी (यदुवंसी) में भीम ओ अर्जुन वगैरह बहादुरी में यादगार हैं और अली हज अलक़यास तवारीख-ए-फारसी में शजायत रुस्तम-ओ-साम और सल्तनत-ए-अहले इस्लाम में फतवहात हजरत साहबे क़च्चान अमीर तैमूर गोरकान और दिलेराने फौज चंगेज खान ओ हादराने हलाकू खान ओ अफवाज नादिरिया (नादिरशाह) तवारीखों में लिखी चली आती है और आखिर जमाने के लोगों की हिम्मत को बढ़ाते हैं और जुरात को तरक्की देते हैं। इसी तरह से ये मआर कि तुम्हारा भी तवारीखों में यादगार रहेगा कि किस बहादुरी और जवांमदी से तुमने ऐसी ओलवा अल अजीम और मुतक़ब्बर (घमंडी, अभिमानी) सल्तनत के कब्र-ओ-गुरूर को तोड़ा है और उनकी नखवत (अहंकारी) फिरौनी और गुरूर शदादी को एक सर खाक में मिला दिया है और हिंदुस्तान की सल्तनत को कि जिसपर बड़े बड़े बादशाहों का दानत था और उनसे [अंग्रेजों से] ना ले सकते थे। तुमने उनके क़ब्जा इक़तदार (हुकूमत, सत्ता) से निकाल लिया और रियाया-ए-हिंदुस्तान को कि बला-ए-ना-गहानी (आकस्मिक विपत्ति, अचानक आनेवाली मुसीबत) में आ गई थी। इस मुसीबत से निजात दी। खुदा को अपना मददगार समझो और उसी से हर वक्त डरते रहो और खाइफ (भयभीत) होकर मदद चाहते रहो कि वही तुम्हारा ‘हाफिज-ओ-नासिर’(रक्षा और सहायता करने वाला) है।”¹⁴

जाहिर सी बात है कि इस संग्राम में ऐसे भी लोग थे जो ब्रिटिश सरकार की न सिर्फ तरफदारी करते थे बल्कि अंग्रेजों के एजेंट की तरह काम करते थे। खुफिया जानकारी अंग्रेजों तक पहुँचाते थे। जब सिपाहियों को ये बात पता चल जाती थी तो वो उसकी हत्या कर देते थे। ऐसे ही अंग्रेजों की मदद करने वाले कोई सिपाहियों ने मार डाला तो इस अख़बार ने लिखा कि “ये काम बहुत खूब किया फौज ने कि एक रसद पहुँचाने वाले को मार डाला और कोतवाली में लटका दिया गया। इस तरह जो इस किस्म के लोगों को सजा हो जाएगी तो कोई ऐसा काम न करेगा बल्कि बेरो निजात में इसी तरह लटकाना चाहिए। अगर दो तीन पलटन और कुछ रिसाला ए सवारान अलीपुर की तरफ सोहनीपत (सोनीपत) पानीपत के रस्ते में तआईन हों। और एक एक रसद रसान ओ मददगार गिरफ्तार ओ सजायाब हो [तो] सबको इबरत हो जाये। तहसीलदार लोग इलाकों पर मुतमइन हों [जो] रसद फौज सदरा को दें। जमीनदारों को दबागत (warning) हो। सब जमीनदार काँप उठेंगे और सब काम दुरुस्त हो जावेंगे। अबकी हमला में इशाल्लाह तमाम लोगों को सुबह-ओ-शाम में गोर किनारा पहुँचा दिया जाता है।”¹⁵

अख़बार आह्वान करता है कि ऐ सिपाहियों तुम हक़ की लड़ाई लैड रहे हो इसलिए खुदा तुम्हारे साथ है। अख़बार लिखता है- “सिपाह-ए-मंसूरा को लाजिम है कि वो बदस्तूर दिल कोई अददकश शुजात (वीरता, बहादुरी) पेशा रहें कि दिन-ओ-दुनिया में सब जगह सुखरूई अल्लाह ताला ने उनको नसीब की है। मैदान में पाये शबात हमेशा कायम रखें। सिपाह को याद रहे [और] खयाल रखें कि तुम ताईद-ए-आला हमराह रखते हैं। जिस वक्त मैदान में मुख़ालिफान-ए-दीन मुकाबला हुआ और कुछ उनका क़दम अह्दा बढ़ता भी देखें तो हरगिज खौफ दिल में ना लावें। ये जानें कि गोरे अपने पाँव गोर किनारे आते हैं कि अल्लाह ताला ने फतह-ओ- फिरोजी उनसे ल ली है। एक नहीं दो तोपें अगर हमारी बालफर्ज वो पेशकदमी करके ले भी लें तो याद रहे कि अल्लाह ताला जल जला ला कि क़ादिर क़हार है बा तफील रसूल मक़बूल के ज्यादा बढ़ने की जुरत कभी गोर को हरगिज नहीं देगा। तुम याद करो बदर की लड़ाई लड़ाई कि किस तरह फरिश्तों की मदद लश्करे इस्लाम के लिए भेजी और कैसा रअब कुफ़ार के दिल में डाल दिया।”¹⁶

जामा मस्जिद की दीवार पर अंग्रेजों की सिपाहियों के बीच फुट डालने के लिए एक इश्तेहार चप्पा किया गया था। इस इश्तेहार में मुसलमानों से ये आग्रह किया गया था कि वो (मुसलमान) हिंदुओं के खिलाफ जिहाद छेड़ दें। इस इश्तेहार का खंडन इस अख़बार ने बिंदुवार छापा था। और स्पष्ट किया था कि “देखने वाले जो खुद आक़िल ओ हालिम साहबे उस्ताद और कामिल हैं वो तो खुद जान सकते हैं कि मजामीन उसी के बेअसल महज फरेब और सिर्फ धोकाबाजी के है। बेचारे नावाक़िफ अवाम के बहकाने और फुसलाने के लिए (अंग्रेज) ये जालसाजियाँ कर रहे हैं। लेकिन वास्ते बेइल्म ओ नावाक़िफ लोगों के हर साहबे इल्म ओ इस्ताद को चाहिए कि तहरीर ओ तक्ऱीर से हाल इस दरोग ओ मकर और जाल-ओ फरेब उन दुश्मनाने धर्म ओ ईमान का वाजेह व आशकार करें। हर हिंदू-ओ मुसलमान को चाहिए कि इसके जारी करने में दिल ओ जान से साई हो कि ये नतीजा और निशान है दिन ओ ईमान का।”¹⁷

12 अगस्त 1840 के अंक से ये स्पष्ट होता है कि मौलवी मोहम्मद बाक़र दिल्ली उर्दू अख़बार के संस्थापक संपादक नहीं थे। और नवंबर 1843 तक वो इस अख़बार के संपादक नहीं थे। 1844-48 के ऑफिसियल रिपोर्ट से ये पता चलता है कि मौलवी मोहम्मद बाक़र और मोतीलाल कश्मीरी दिल्ली उर्दू अख़बार के संयुक्त संपादक थे।

विलियम डेलरिम्पल ने दिल्ली उर्दू अख़बार के संपादक मौलवी मोहम्मद बाक़र के बारे में अपनी किताब ‘द लास्ट मुगल’ में लिखा है कि “एक बार जब अंग्रेज दीवारों के अंदर घुस आए, तो वह बड़े इत्मीनान से अपने सब समर्थकों और मददगारों को भूल गए। उनके बहुत से वफादार जासूस भी सुरक्षित नहीं थे, जैसा कि मौलवी मुहम्मद बाक़र को 15 सितंबर को पता चला, जब उनको बगैर कोई वजह बताए पकड़कर गिरफ्तार कर लिया गया।”¹⁸

विलियम साहब ने बहुत ही चालाकी से मौलवी मोहम्मद बाक़र को अंग्रेजों का जासूस बताने की कोशिश की है लेकिन उन्हीं की किताब के शुरुआत में मौलवी मोहम्मद बाक़र के संबंध में कुछ और ही कहा गया है जो उनके उपर्युक्त बयान के खिलाफ है। अतः खुद ही इसका खंडन हो जाता है। विलियम ने लिखा है कि “मई 1857 में जब बगावत की शुरुआत हुई तो वह बहुत जोश से इसके समर्थक थे और अपने अख़बार में लिख रहे थे कि यह खुदा की तरफ से काफ़िरों पर क़हर ढहाने के लिए भेजी गई है और उनके हिंदुस्तान के मजहबों को ख़त्म कर देने के घमंडी मंसूबों की सजा है।”¹⁹ विलियम डेलरिम्पल ने दिल्ली उर्दू अख़बार को मुगलों का तरफदार²⁰ बताया है। और जाहिर सी बात है कि मुगल अंग्रेजों के खिलाफ इस जंग की अगुवाई कर रहे थे। असल

मायनों में “देहली उर्दू अखबार के सच बोलने वाले एडिटर मौलवी मोहम्मद बाक़र हमेशा दरबार में, उलमा में, और यहाँ तक कि अंग्रेज हुकूमत में बदचलनियों का जिक्र करते थे।”²¹

संदर्भ

1. 12 जुलाई 1857, राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली में सुरक्षित प्रति जिसमें अख़बार का नाम अख़बार-उल-ज़फ़र है
2. भारत का स्वतंत्रता संघर्ष, बिपिन चंद्र, मृदुला मुखर्जी, आदित्य मुखर्जी, के.एम. पनिकर, सुचेता महाजन, पृष्ठ संख्या 1, हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली, सितंबर, 2015, 40वाँ पुनर्मुद्रण)
3. पृष्ठ संख्या 1-2, दिल्ली उर्दू अख़बार, 17 मई 1857, राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली में सुरक्षित
4. India's struggle for independence, Bipin chandra p.p. 30-31)
5. दिल्ली उर्दू अख़बार, 12 अप्रैल 1857
6. पृष्ठ संख्या 1, दिल्ली उर्दू अख़बार, 24 मई 1857, राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली में सुरक्षित
7. पृष्ठ 1, दिल्ली उर्दू अख़बार, 24 मई 1857, राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली में सुरक्षित
8. दिल्ली उर्दू अख़बार, 21 जून 1857, राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली में सुरक्षित
9. दिल्ली उर्दू अख़बार, 5 जुलाई 1857, राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली में सुरक्षित
10. अख़बार-उल जफ़र, 12 जुलाई 1857
11. पृष्ठ 1, दिल्ली उर्दू अख़बार, नंबर 24, 14 जून 1857
12. दिल्ली उर्दू अख़बार, 14 जून 1857)
13. दिल्ली उर्दू अख़बार, 14 जून 1857, राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली में सुरक्षित
14. दिल्ली उर्दू अख़बार, 14 जून 1857, राष्ट्रीय अभिलेखागार में सुरक्षित
15. दिल्ली उर्दू अख़बार, 14 जून 1857, राष्ट्रीय अभिलेखागार में सुरक्षित
16. दिल्ली उर्दू अख़बार, 21 जून 1857, राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली में सुरक्षित
17. पृष्ठ 1, दिल्ली उर्दू अख़बार, 5 जुलाई 1857, राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली में सुरक्षित
18. पृष्ठ संख्या 372, आख़िरी मुग़ल, विलियम डेलरिम्पल ब्लूमसबरी पब्लिशिंग इंडिया प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, हिन्दी का प्रथम संस्करण 2015
19. पृष्ठ 19, वही
20. (वही, पृष्ठ संख्या 61
21. वही, पृष्ठ संख्या 80

चिंता व तनाव नियंत्रण में संगीत चिकित्सा की भूमिका

रूचिका श्रीवास्तव

शोध छात्रा, संगीत विभाग, श्री अग्रसेन महिला पी0जी0 कालेज, आजमगढ़

डॉ0 निशा कुमारी

शोध निर्देशिका, प्रोफेसर, संगीत विभाग, श्री अग्रसेन महिला पी0जी0 कालेज, आजमगढ़

प्रस्तावना

मानसिक स्वास्थ्य एक संतुलित व्यक्तित्व की क्रियाशीलता है। समस्त रोगों का मूल कारण मनोरोगों से जुड़ा होता है। संगीत आत्मशांति देता है जिससे कई रोगों का ईलाज बड़ी आसानी से हो जाता है। मानव के आंतरिक शक्ति को जागृत करने का एकमात्र उपाय संगीत ही है। संगीत चिकित्सा का प्रावधान प्राचीन काल से ही प्रचार में है। संगीत द्वारा चिकित्सा हेतु नये-नये प्रयोग हो रहे हैं। संगीतज्ञ, मनोवैज्ञानिक एवं चिकित्सा शास्त्री आज इस बात को स्वीकारने में लगे हैं कि संगीत मनुष्य के संपूर्ण शरीर पर चिकित्सीय प्रभाव डालता है। संगीत की चिकित्सा पद्धति आत्मा से जुड़ी हुई है। आज भारत ही नहीं पूरे विश्व में यह अध्ययन किया जा रहा है कि मानव का मस्तिष्क किस हद तक संगीत से प्रभावित होता है तथा विभिन्न प्रकार के मानसिक रोगों में संगीत चिकित्सा कहां तक उपयोगी सिद्ध हो रहा है।

चिंता एक सामान्य क्रिया है, जो प्रत्येक व्यक्ति में पाई जाती है, चिंता संज्ञानात्मक, शारीरिक, भावनात्मक और व्यवहारिक विशेषता वाले घटकों की मनोवैज्ञानिक और शारीरिक दशा है। यह घटक एक अप्रिय भाव बनाने के लिए जुड़ते हैं जो बेचौनी, आशंका, डर और क्लेश से सम्बंधित हैं। चिंता मस्तिष्क के अंदर से ही उत्पन्न होती है। चिंता रोग का रूप तब लेती है जब चिंता की अधिकता से कई तरह के शारीरिक एवं मानसिक दोष पैदा हो जाते हैं। “मनोरोग विज्ञान में इस रोग को कई नामों से जाना जाता है- एफर्ट सिंड्रोम, अथवा प्रयास विकार चिड़चिड़ा दिल इरीटेबल हार्ट, हाइपरकाइनेटिक हार्ट, चंचल दिल, न्यूरोसरक्यूलेटरी ऐसथीनिया इत्यादि।” अनेक संतुलित व्यक्तित्व वाले लोग भी शारीरिक अथवा मानसिक तनाव के कारण इस रोग से अकस्मिक रूप से ग्रस्त हो जाते हैं।

संगीत चिकित्सा का अर्थ, स्वरूप एवं परिभाषा

संगीत एक कला है और चिकित्सा एक विज्ञान! ‘कला एवं विज्ञान के समन्वय से संगीत चिकित्सा का प्रचलन सम्भव हो पाया। सामान्य अर्थों में कह सकते हैं कि किसी भी रोगी के रोग का निदान संगीत के माध्यम से किया जाए; यही संगीत - चिकित्सा है।

जिस प्रकार किसी चिकित्सक द्वारा किसी रोग के लक्षण के आधार पर दवा की शक्ति को परिलक्षित कर ही किसी रोगी को दी जाती है। शिशु, किशोर, युवा, वृद्ध एवं अतिवृद्धावस्था के रोगियों की शारीरिक एवं मानसिक अवस्था के अनुरूप ही कुशल चिकित्सक औषधि का निर्धारण करता है। उसी प्रकार संगीत को औषधि के रूप में प्रयोग करने के लिए रोगियों की शारीरिक एवं मानसिक क्षमता एवं रुचि को दृष्टिगत रखते हुए किस प्रकार के संगीत का प्रयोग किया जाए, जिससे रोगी के मन-मस्तिष्क पर वांछित प्रभाव पड़े। अर्थात् ध्वनि अथवा स्वरों के प्रभाव द्वारा उत्पन्न शारीरिक क्रियाओं का परिवर्तन एवं मानसिक स्तर पर सार्थक परिवर्तन ही ‘सांगीतिक चिकित्सा प्रणाली’ अथवा ‘संगीत चिकित्सा’ (MusicTherapy) है।

संगीत के अन्तर्गत ‘राग’ द्वारा चिकित्सा का प्रावधान है। जिसके अन्तर्गत व्यक्ति की प्रकृति एवं राग की प्रकृति का सामन्जस्य कर भावनाओं को चित्त को शान्त करने की प्रक्रिया की जाती है। जिसके सार्थक परिणाम प्राप्त हुए हैं। भारतीय संगीत की राग पद्धति जो कि पांचजन्य एवं वेद पर आधारित है एवं Improvisation Action - Reaction (पारिस्थितिकीय विकल्प, क्रिया एवं प्रतिक्रिया) द्वारा रचनात्मक परिणाम जन्य है। संगीत चिकित्सा में तथा (स्वरबद्ध) दोनों रचनात्मक विधियाँ हैं। किसी भी संगीत चिकित्सक के लिए वह गतिविधि है जिसके द्वारा रोगी एवं उपचारक दोनों में तारतम्य अथवा आपसी सामन्जस्य स्थापित हो जाता है। चिकित्सक की चेतना और समझ के धरातल पर केन्द्रित होती है जहाँ वह कई विकल्पों में से अपनी समझ से श्रेष्ठ विकल्प चुनकर चिकित्सा करता है।

मनुष्य पर संगीत का प्रभाव पूर्णतः पड़ना स्वाभाविक है, जिसे नकारा नहीं जा सकता। मनुष्य शरीर पर पड़ने वाले सांगीतिक प्रभावों को हम भलीभांति व बड़ी आसानी से समझ सकते हैं। चूँकि हम देखते हैं कि मानव शरीर यदि संगीत में पूर्णरूप से लीन भी नहीं हो तब भी वह संगीत के प्रति अपनी प्रतिक्रिया अवश्य दर्शाता है जो कि हमें मानव द्वारा की जा रही क्रियाओं से ज्ञात होता है, जैसे - सिर का हिलाना, पैरों का थपथपाना, उंगलियों का लयानुसार चलना। इस प्रकार हम पाते हैं कि मांसपेशियों में संकुचन तथा शिथिलन यह प्रक्रिया संगीत के श्रवण द्वारा ही होती है।

अर्थात्, पैर समय पर थपकते हैं, सिर का हिलना या फिर उंगलियों का लय में हिलना। मनुष्य शरीर पर संगीत किस तरह से अपना प्रभाव उत्पन्न करता है। इस विषय से संबंधित कई विद्वानों, वैज्ञानिकों, शरीर शास्त्रियों एवं विशेषज्ञों ने अपने – अपने मत प्रस्तुत किये, जिसमें से कुछ के मत दार्शनिक आधार पर हैं तो कुछ ने वैज्ञानिक आधार पर अपने मतों को प्रस्तुत किया –

डॉ0 जॉर्ज स्टीवंशन और डॉ0 विंसेंट पॉल ने संगीत को सभी मानसिक तनावों के निराकरण की अचूक औषधि कहा है।

डॉ0 बी0सी0 देव ने भी संगीत चिकित्सा को मानसिक रोग की अचूक मनोवैज्ञानिक दवा बताया है। इंग्लैण्ड के चिकित्सक डॉ0 एडविना मीड व कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय के शरीर शास्त्री एडवर्ड पॉडीलोस्की का ऐसा मानना है कि संगीत की तरंगों से स्नायु स्थान में एक विशेष हलचल होती है, जो कि चिंतन व भावना क्षेत्र की विकृतियों को दूर करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

पं० विश्वमोहन भट्ट जी के अनुसार² – “Indian Music has emotions and it unites us with an unseen divine power- Though Indian artists follow an ancient rag they are free to innovate.”

डॉ0 जे0 पी0 बुरेट के मतानुसार – 'By repeated shocks given by atmospheric vibration to the nerves, music brought about its curative effect' अर्थात् वातावरण में उत्पन्न हो रहे कम्पनों के बार – बार नाड़ियों (नसों) पर आघातों के द्वारा संगीत अपना उपचारपूर्ण प्रभाव उत्पन्न करता है।

विशेषज्ञ पिकस मिरान्डेल के अनुसार संगीत आत्मा तथा शरीर में जोश उत्पन्न करके रोग को ठीक करता है यथा – 'Picus Mirandale stated that music cures illness by moving spirits act on the soul and body'. अर्थात् पिकस मिरान्डेल ने वर्णित किया कि संगीत गतिमान जीवन तत्व को आत्मा तथा शरीर पर कार्य कर रोगों को सुधारता है।

संगीत तंत्रिकाओं को उनका जीवन प्रदान कर, जो कि कुछ धुनों में दबे हुए या अवरोधित होते हैं। जीवन शक्ति के कार्य को नसों तथा कोशिकाओं में पुनः स्थापित करता है। इसका श्रवण तथा उत्सर्जन पर शक्तिशाली प्रभाव होता है तथा सुधार करने वाली धुनों का स्थायी मध्य बिन्दु बन जाता है। मनुष्य की सूक्ष्म भावनाओं को जाग्रत करने, क्लान्त मन को उल्लासित करने व चेतना को प्रदीप्त करने में संगीत एक प्रभावोत्पादक भूमिका निभाता है, साथ ही संगीत हमारे मनोभावों को भी प्रभावित करता है।

चिंता व तनाव नियंत्रण में संगीत चिकित्सा की भूमिका

प्राचीन काल से संगीत साधना मानसिक व आत्मिक शुद्धि के लिए एक विशिष्ट प्रणाली के रूप में कार्यरत रहे है। चिंता से निजात पाने के लिए मनोचिकित्सकों ने ध्यान को प्राथमिकता दी है। संगीत का संबंध मनोभावों से है, और मनुष्य की समस्त शारीरिक क्रियाएं मन से जुड़ी है। तनाव से जीवनी शक्ति का हास होता है। अधिक समय तक तनाव ग्रस्त रहने पर व्यक्ति की एंडीनल व पिट्यूटरी जैसी अंतस्त्रावी ग्रंथियां असामान्य रूप से उल्लोजित हो उठती है, और लाभकारी सामान्य रसायनों के स्थान पर विषैले हार्मोन्स का स्राव करने लगती है। संगीत तनाव अभिनियंत्रण का सफ़क्त माध्यम है। संगीत विचारों का शमन करके रोगी को एक नई सकारात्मक दृष्टि प्रदान करने एवं उसकी तमाम आन्तरिक शक्तियों एवं क्षमताओं का केन्द्रीकरण करके उसे मानसिक रूप से तुष्ट व तृप्त करता है।³

संगीत चिकित्सा के माध्यम से किसी भी रोगी की प्रवृत्ति अनुसार उसे संगीत की मधुर ध्वनियों का श्रवण करवाया जाता है। जैसे जैसे रोगी संगीत की स्वर लहरियों में डूबता जाता है, उसका ध्यान नाकारात्मक व निराशाजनक घटनाओं से हट जाता है और उसका मन संगीत की ओर केन्द्रित हो जाता है, और वह चैनदारी व शान्ति अनुभव करने लगता है। आज चुनौती भरे दौर से गुजर रहे हर व्यक्ति के लिए संगीत रामबाण की तरह कार्य करता है। मानव की अनकही वेदना तनाव और मानसिक क्लिष्टों का सरलीकरण करने में सहायक सिद्ध होते हैं। इसके अतिरिक्त मानव मस्तिष्क का शुद्धिकरण करते हैं और निद्रा की ओर उन्मुख करते हैं। मानव शरीर में जो तनाव व विकृति उत्पन्न होती है, उसका सीधा संबंध मस्तिष्क के ज्ञान तंतुओं है। संगीत के मधुर श्रवण के माध्यम से कानों पर लगी नैसर्गिक झिल्ली कम्पित हो कर मस्तिष्क को प्रभावित करती है।

इस क्रिया के फलस्वरूप तनाव आदि विकारों का शमन होता है। इस क्रिया के दौरान अगर संगीत का संयोग किया जाए तो जहां आलौकिक आनन्द की अनुभूति होती है वही तनाव नियंत्रण में भी लाभ मिलता है। “संगीत मन को सुकुन व प्रसन्नता का अहसास व अनुभव दिलाकर तनाव को न्यूनतम करता है। साकारात्मक ऊर्जा का संचार, संगीत श्रवण से सांस सामान्य होती है, और बेचौनी खत्म होती है। तंत्रिका तंत्र पर प्रभाव पड़ता है। मांस पेशियों और नाड़ी संस्थान की अव्यवस्थता को निश्चित रूप से अन्य चिकित्सा विधियों की अपेक्षा संगीत द्वारा अधिक सफलतापूर्वक शीघ्र स्वस्थ किया जा सकता है।”⁴

तनाव का उपचार संगीत द्वारा संभव है। इसके प्रभाव से नैराष्य आत्म –घृणा, आत्मरोप व आत्म – दण्डात्मक वृत्तियां समाप्त हो जाती है। तनाव की उपचारात्मक विधि संगीत में कण्ठ संगीत की महत्ता को स्वीकार किया है, तथा तनाव के निवारण में वाद्य संगीत की महत्ता को बताया है। मानसिक अस्पतालों में रोगियों के उपचार के साथ ही मनोरंजन के माध्यम से उन्हें सबल बनाने की कोशिश की जाती है। मानसिक रोगों की उपचारात्मक प्रणाली में संगीत की भूमिका के विषय में पं० विजय शंकर मिश्र लिखते हैं कि “संगीत में मात्र सुप्त और निष्क्रिय भावनाओं को जाग्रत करने की ही नहीं बल्कि उन्हें संतुलित एवं परिष्कृत करने की पूर्ण क्षमता है। मानसिक रोगों के उपचार की संपूर्ण प्रणाली को विधिवत विकसित करने में निरंतर सफलता प्राप्त की जा रही है, क्योंकि भावनाओं से भरे मस्तिष्क तंत्र पर संगीत का अत्यंत अनुकूल प्रभाव पड़ता है।”⁵

इस प्रकार संगीत का प्रयोग विभिन्न रोगियों के उपचार के लिए किया जाता है। विशेष रूप से संगीत के द्वारा मानसिक व्याधियों जैसे – चिंता एवं तनाव सम्बन्धी रोग आदि समस्याओं का समाधान किया जाता है।⁶

निष्कर्ष

संगीत का मानसिक व्याधियों पर साकारात्मक प्रभाव पड़ता है। मानसिक रोगों के उपचार में संगीत एक सशक्त माध्यम है। भारतीय संगीत रागों के माध्यम से रस-भाव के सौन्दर्य की अपरिमित, अलौकिक आनंद की अभिव्यंजना जहां करता है। मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से मानव को स्वस्थ, दीर्घायु तथा निरोग रखने की असीम क्षमता रखता है। विश्व के समस्त प्राणी जन संगीत की चमत्कारिक, उपचारात्मक एवं रोगनिदानात्मक, शक्तियों से भलीभाँति परिचित हो चुके हैं। संगीत चिकित्सा एक पोषक तत्व बनकर चिंता एवं तनाव ग्रस्त रोगियों के लिए एक विशेष औषधि समान है।

संदर्भ

1. भाटिया, सिंह मनजीत, मनोरोग गलत धारणाएं और सही पहलू पृ०स० 63।
2. पं० विश्व मोहन भट्ट - साक्षात्कार, पुणे।
3. श्रीवासन डॉ. एस, संगीत चिकित्सा सेमिनार रिपोर्ट पृ०स० 172।
4. पं० काव्यलय कुमार के साथ किए गए साक्षात्कार पर आधारित सूचना।
5. शंकर, मिश्र,पं० विजय, तबला पुराण, पृ०स० 108,199।
6. पोडोलस्की डॉ. एडवर्ड, म्यूजिक फार हेल्थ पृ०स० 47।

झारखंड में शैक्षणिक स्थिति और जनजातियों समुदाय

डॉ० गौतम रंजन दास

आलेख का सार

शिक्षा ही किसी भी समाज, क्षेत्र विशेष के विकास व लोगों के रहन-सहन-सोच की मानक होती है। शिक्षा ही मनुष्य को गर्व एवं सम्मानपूर्वक जीने का संबल प्रदान करती है। शिक्षा का अर्थ स्कूल कॉलेज की कक्षाओं से प्राप्त सूचनाओं तक ही सीमित नहीं है, बल्कि यह तो मानवीय क्रियाकलापों को अपने में समाविष्ट करते हुए मानवीय मूल्यों के संवर्द्धन में योग देती है। दूर्भाग्य से नवगठित राज्य झारखंड शिक्षा की दृष्टि से अभी तक काफी पिछड़ा हुआ है। यहाँ की आबादी का एक बहुत बड़ा हिस्सा आदिवासियों का है जिनके बीच शिक्षा की स्थिति अभी भी दयनीय है। सरकार को इस ओर विशेष ध्यान और सुधार की जरूरत है; सरकार इस दिशा में प्रयास कर भी रही है।

भूमिका

झारखंड भारत का एक जनजाति-बहुल राज्य है, जिसकी स्थापना 15 नवंबर, 2000 को हुई थी। यह राज्य खनिज संपदा से समृद्ध है, परंतु सामाजिक व शैक्षणिक दृष्टि से अनेक चुनौतियों का सामना कर रहा है। विशेष रूप से जनजातीय समुदाय की शैक्षणिक स्थिति चिंता का विषय रही है। शिक्षा, जो सामाजिक व आर्थिक उन्नति की कुंजी है, झारखंड में विशेष रूप से आदिवासी समाज के लिए सशक्तिकरण का प्रमुख साधन बन सकती है। 1991 की जनगणना के मुताबिक झारखंड राज्य की 2.18 करोड़ की जनसंख्या में सिर्फ 73.52 लाख लोग ही साक्षर थे। यह आँकड़ा कुल आबादी का लगभग 34 प्रतिशत है।¹ स्त्री पुरुष के अनुपात पर गौर करें तो झारखंड की पुरुष आबादी में 46 प्रतिशत लोग साक्षर हैं तो स्त्रियों की आबादी का सिर्फ 21 प्रतिशत ही शिक्षित व साक्षर है। 2011 की गणना के अनुसार झारखण्ड में साक्षरता का अनुपात 75 प्रतिशत से 50 प्रतिशत के बीच है। यह आँकड़ा किसी भी दृष्टि से स्तरीय और प्रोत्साहित करने वाला नहीं है। राज्य के सभी 24 जिलों को अगर उच्च, मध्यम और निम्न साक्षरता श्रेणी में रखा जाय तो निम्न प्रकार की स्थिति चित्रित होती है-

उच्च साक्षरता (70प्रतिशत से अधिक)

राज्य में केवल 5 जिले ऐसे हैं जहाँ 70 प्रतिशत से अधिक साक्षरता दर्ज की जाती है। ऐसे जिले हैं। राँची (76.06%), पूर्वी सिंहभूम (75.49%), धनबाद (74.52%), रामगढ़ (73.17%) और बोकारो (72.01%)। निश्चय ही उच्च साक्षरता इन जिलों के नगरीय क्षेत्रों के कारण ही दर्ज की जा रही है।² ग्रामीण साक्षरता का दृश्य कुछ अलग ही होगा। यह गहन शोध का विषय है।

मध्यम साक्षरता (60प्रतिशत से अधिक)

राज्य के 14 जिलों में मध्यम साक्षरता का आंकड़ा दृष्टिगत होता है। इसमें हजारीबाग (69.75%), सिमडेगा (67.99%), सरायकेला-खरसावाँ (67.70%), लोहरदगा (67.61%), कोडरमा (66.84%), गुमला (65.73%), देवघर (64.88%), जामताड़ा (64.59%), खटो (63.86%), पलामू (63.63%), गिरिडीह (63.14%), दुमका (61.02%), गढ़वा (60.33%) और चतरा (60.18%)³ आदि जिलों को जाना जाता है।

निम्न साक्षरता (60 प्रतिशत से कम)

साक्षरता राज्य में केवल 5 जिले ऐसे हैं जहाँ साक्षरता दर 60% से भी कम देखी जाती है। ऐसे जिले हैं लातेहार (59.5%), प० सिंहभूम (58.63%), गोड्डा (56.40%), साहेबगंज (52.04%) और पाकुड़ (48.82%)⁴ गौर करने से स्पष्ट होता है कि इन पाँच जिलों में से तीन जिले संथाल परगना क्षेत्र के हैं जबकि एक-एक जिला कोलहान एवं पलामू से संबद्ध है। साक्षरता का आधार मानकर अगर झारखण्ड को दो हिस्सों में बाँटा जाय तो यह साफ देखा जा सकता है कि पलामू प्रमंडल तथा संथाल परगना प्रमंडल में साक्षरता कम है जबकि अन्य क्षेत्रों में अपेक्षाकृत अधिक है।

जनजातीय समुदाय आर्थिक विपन्नता की वजह से ही उनका जीवन शोषित और पीड़ित रहा। ऐसी दशा में शिक्षा उनके जीवन को आलोकित कर पाने में असमर्थ रही। आजादी के पूर्व जनजातीय समुदाय को शिक्षित और समुन्नत करने में जिन संस्थानों और जनसेवी संस्थाओं का अमूल्य योगदान है उनमें ईसाई मिशनरियों की भूमिका अग्रगण्य है। स्वाधीनता के बाद शिक्षा में काफी प्रगति हुई है। सन् 2001 की जनगणना में पुरुष साक्षरता सबसे अधिक केरल में 94% और सबसे कम बिहार में पुरुष साक्षरता सिर्फ 49% है। महिला साक्षरता सबसे अधिक केरल में ही 88% और बिहार-झारखंड में सबसे कम 35% है। झारखंड में 1991 की जनगणना के अनुसार जनजातियों की साक्षरता दर 27.5% थी, जबकि 41.39% कुल साधारण जनसंख्या की थी। गैर-आदिवासियों की तुलना में आदिवासियों में साक्षरता दर कम है और यही स्थिति महिलाओं के मामले में भी है। ग्रामीण आदिवासी महिलाओं में साक्षरता दर सबसे कम है (13.40%)। ऐसा ही दर राष्ट्रीय सेम्पल सर्वे के सर्वेक्षण, 1994 भी देता है। तत्कालीन बिहार के ग्रामीण जनजातीय क्षेत्र में प्रति हजार व्यक्ति में आदिवासी 776 तथा

गैर-आदिवासी 680 व्यक्ति निरक्षर हैं और प्रति हजार आदिवासी व्यक्तियों में 893 महिला और 662 पुरुष निरक्षर हैं और ऐसा ही क्रमशः गैर आदिवासी में 806 महिला और 564 पुरुष निरक्षर हैं।⁵

झारखंड की जनजातियों में साक्षरता संतोषप्रद नहीं है। आदिम जनजातियों में साक्षरता दर सबसे कम है। उनमें यह दर 4.22 से 7.58 तक है। खड़िया में साक्षरता दर 24.86, उराँव में 23.28 और मुंडा में 22.16 है। 1981 की जनगणना के अनुसार एन.एस.एस. के 44वाँ चक्र का सर्वेक्षण (अप्रैल-जून 1994) प्रति हजार व्यक्ति में 900 महिलाएँ और 682 पुरुष निरक्षर हैं। झारखंड के चार बड़े जनजाति समूह संताल, उराँव, मुंडा और हो की शैक्षणिक स्थिति पर दृष्टिपात करे तो सबसे बड़ी जनजाति झारखंड में संताल है लेकिन इनकी प्रति हजार निरक्षरता 87.2 है जो प्रति हजार मुंडा, उराँव और हो की तुलना में सबसे अधिक है। इसी प्रकार मुंडा, उराँव और हो की तुलना में स्कूल में कभी नामांकन नहीं करने वालों की संख्या इसके ऊपर पढ़ाई करने वाले प्रति हजार व्यक्ति मात्र 67 हैं। इन जनजातियों में उराँव की शैक्षणिक स्थिति सबसे अच्छी है।⁶ कुल मिलाकर शिक्षा की स्थिति अच्छी नहीं है। शिक्षा के बिना विकास संभव नहीं है। शिक्षा ही विकास का मूल स्रोत है। शिक्षा को बढ़ाकर जनसंख्या वृद्धि, खासकर जन्म दर, को कम किया जा सकता है। मृत्यु दर और शिशु मृत्यु दर को भी कम किया जा सकता है।

झारखंड की महिला साक्षरता देखें, तो जनगणना 2001 के अनुसार कुल व्यक्तियों की साक्षरता दर 54.13 है एवं पुरुषों की 67.94 है, जबकि महिलाओं की साक्षरता दर 39.38% है। झारखंड की साक्षरता को देखा जाए तो 2001 की जनगणना के अनुसार झारखंड में 11970177 लोग साक्षर हैं। साक्षर पुरुषों की संख्या महिलाओं से अधिक है। कुल साक्षर लोगों में कुल साक्षर पुरुष 7759966 हैं, जबकि महिला साक्षर 4210211 हैं।⁷ इसका अर्थ यह हुआ कि सौ साक्षर पुरुषों में 54 साक्षर महिलाएँ हैं। झारखंड में साक्षरता दर 2001 की जनगणना दर 41.39 से अधिक है। झारखंड में साक्षरता दर में लगभग 13% की वृद्धि हुई है। जिससे यह स्पष्ट होता है कि 1991 से 2001 में साक्षरता दर में बढ़ोतरी हुई है परन्तु यह भारत की साक्षरता दर 65.38% की तुलना में कम ही है। लेकिन यह कहा जा सकता है कि इस दशक में महिलाओं की साक्षरता दर में जरूर वृद्धि हुई है।

पढ़ाई के बीच में ही स्कूली शिक्षा बंद कर देना आदिवासी समाज के लिए एक गंभीर चुनौति है। आदिवासी बच्चों में 'ड्राप-आउट दर' ज्यादा होने के मूल में कई कारण हैं, जिनमें पाठ और पुस्तकों की भी प्रमुख भूमिका है। अब तक जो पाठ्यक्रम जारी है, उससे आदिवासी बच्चे लगाव महसूस नहीं कर पाते। प्राथमिक स्तर की शिक्षा तो कम से कम क्षेत्रीय भाषाओं में ही दी जानी चाहिए। ऐसा प्रयोग उत्तर-पूर्व के राज्यों में सफल रहा है। इसे देखते हुए मुंडारी, संताली, नगपुरिया तथा हो में पाठ्य पुस्तकें तैयार करने का काम चल रहा है। यदि यह संभव हो जाता है तो ऐसी उम्मीद की जा सकती है कि आदिवासी क्षेत्रों में ड्राप आउट की दर में कमी आएगी। शोध-निष्कर्षों ने यह साबित किया है कि बच्चों में पढ़ाई के प्रति अरुचि का एक कारण पाठ्यक्रम का जमीन से नहीं जुड़ा होना है। कक्षाओं के का तरीका और उबाऊ माहौल बच्चों को आकर्षित करने के बजाय उन्हें स्कूल से दूर ले जाता है। एक आदिवासी बच्चा तब और ज्यादा चकित रह जाता है, जब वह आदिवासियों के बारे में ऐसी बातें पढ़ता सुनता है जिसकी कल्पना तक नहीं करता है। एक आदिवासी सामाजिक कार्यकर्ता का इस संदर्भ में कहना है कि आदिवासियों का परिचय देते हुए एक पुस्तक में यह लिखा गया है कि आदिवासी उन्हें कहते हैं जो जंगल में रहते हैं, कपड़े नहीं पहनते, उनकी नाक चिपटी होती है आदि-आदि। जाहिर है यह परिचय तो नहीं ही है आदिवासियों का। इस बिन्दु पर जो आवश्यकता महसूस की जा रही है वह यह कि पठन-पाठन के तरीके को सामूहिक भागीदारी वाला और सृजनात्मकता को बढ़ावा देने वाले पाठ्यक्रम लागू किए जाएँ, जिससे छात्रों को पढ़ाई रुचिकर लगे तथा ड्राप आउट की समस्या से निजात पाया जा सके। सर्वशिक्षा अभियान में भी एक खामी दिख रही है कि पुरानी गलतियों से सीखने का कोई संकेत नहीं है। शैक्षणिक व्यवस्था में उन्मुखीकरण या नई कोशिश का अभाव है। एक बात अवश्य है कि ग्रामीणों को शिक्षा व्यवस्था की जिम्मेवारी सौंपने का प्रावधान है, पर यह मात्र जिम्मेवारी भर है, अधिकार नहीं। सरकार ने सुदूर गाँवों के बच्चों को स्कूल के प्रति आकर्षित करने के लिए प्रतिदिन एक रुपया देने का प्रावधान किया है। साथ-साथ पोशाक व दोपहर का भोजन आदि भी दिए जाने हैं। लेकिन यह कदम कितना फलदायी होगा नहीं कहा जा सकता। जरूरत है कि स्थानीय निकायों और स्वैच्छिक संगठनों के साथ महिला संगठनों को भी शिक्षा प्रसार में शामिल किया जाए।⁸ लेकिन झारखंड में स्थानीय निकायों के चुनाव अब तक नहीं हो पाए हैं। इसके साथ ही उच्च शिक्षा की स्थिति और जर्जर है। आदिवासी बहुल इलाकों में जो कॉलेज चल रहे हैं, उनकी स्थिति जर्जर हो गई है। सरकारी प्रस्ताव के मुताबिक कॉलेजों में स्व वित्त पोषित 'वोकेशनल कोर्स' आरंभ किए जा रहे हैं, लेकिन यह किनके लिए हैं? क्या वह आदिवासी बालक बालिका जिसके माता-पिता किसी तरह उसका पेट भर पा रहे हैं, इनकी ऊँची फीस दे पाएगा? कल्याण विभाग से इन व्यावसायिक पाठ्यक्रमों की फीस देने का भी प्रावधान नहीं है। फिर ऐसे कोर्स क्या परिणाम देंगे? खगोलीकरण और उदारीकरण की प्रक्रिया ने निजीकरण की हवा को तेज किया है। इसी के तहत 'वोकेशनल कोर्स' को प्राथमिकता देते हुए आंतरिक स्रोत की व्यवस्था की जिम्मेवारी कॉलेजों- वि.वि. पर डाली जा रही है। साथ ही निजी विश्वविद्यालयों के लिए दरवाजे खोले जा रहे हैं। अब साधन-संपन्न निजी संस्थानों से जर्जर विश्वविद्यालय कैसे मुकाबला करेंगे? वोकेशनल कोर्स और तकनीकी शिक्षा को झारखंड के संसाधनों, कौशल और स्थानीय रोजगार की संभावनाओं के मद्देनजर विकसित नहीं किया गया है। राष्ट्रीय सोच से विकसित यह शिक्षा (व्यावसायिक व तकनीकी) व्यापक लाभ दे पाएगी-इसमें संदेह है। आदिवासियों के बीच शिक्षा की स्थिति के मद्देनजर यह सोचना पड़ता है कि आखिर इनके बीच शिक्षा कैसे फैले? अब तक जो लोग शिक्षित हुए हैं, उनकी वर्गीय स्थिति भिन्न हो गई। सरकारी सुविधाओं का लाभ पूर्व से लाभान्वित समुदाय ही उठा पा रहा है। जंगल पहाड़ों का आदिवासी अब भी गैटी-टेना-महुआ में अपना भविष्य ढूँढ़ रहा है। जंगल भी कट चुके हैं। उसका तकनीकी कौशल आज के सूचना तकनीकी युग में अप्रासंगिक हो चुका है। उसको अनौपचारिक शिक्षण संस्थाएँ (धुमकुड़ियाँ, गीतिओडा आदि) मृतप्रायः हो चुकी हैं।⁹ आदिवासी बुद्धिजीवी भी शिक्षा को लेकर अपनी चिंताएँ निरंतर प्रकट कर रहा है, लेकिन उसे कोई सही रास्ता नहीं दिख पा रहा। तात्कालिक तौर पर जो किया जाना अत्यावश्यक प्रतीत होता है वह यह कि शिक्षण संस्थानों को आधारभूत ढाँचे से संपन्न करते हुए आदिवासी छात्र-छात्राओं के लिए और अधिक छात्रावासों सहित अन्य सुविधाओं को बहाल करने तथा आदिवासी मन को समझते हुए उनकी अस्मिता को बरकरार रखने वाली शिक्षा पद्धति अपनाने की जरूरत है। मातृभाषा में प्रारंभिक शिक्षा तो दी ही जानी चाहिए। आदिवासी छात्रों के विद्यालय छोड़ने के कारणों का समुचित विश्लेषण करते हुए उन्हें दूर करने के उपाय ढूँढ़ने होंगे। अन्यथा आदिवासियों के बीच व्याप्त अशिक्षा उन्हें प्रतिक्रियावादी और सांप्रदायिक शक्तियों का खिलौना बना देगी।

देखा जाए तो झारखंड में शिक्षा व्यवस्था दो तरह की समस्याओं से जूझ रही है - पहली, आधारभूत और दूसरी, संस्थागत। अभी भी इस राज्य के दस प्रतिशत प्राथमिक विद्यालय भवनहीन हैं। लगभग 17 प्रतिशत प्राथमिक विद्यालय केवल एक कमरे में चल रहे हैं। स्थानाभाव के कारण बच्चे नामांकन नहीं करवाते और यदि करवाते भी हैं तो बीच में ही स्कूल जाना बंद कर देते हैं। ऐसी दशा में यथाशीघ्र अतिरिक्त कमरों का निर्माण किया जाना जरूरी है। साथ ही शिक्षकों का संस्थागत तौर पर हास हुआ है, जो शिक्षा के लिए नकारात्मक स्थिति उत्पन्न करता है। शिक्षक महज सरकारी सेवक बन कर रह गए हैं। इसका दुष्परिणाम यह हुआ है कि शिक्षण के अन्य पक्षों में भी संस्थागत गिरावट दिखती है। यथा शिक्षकों की उपस्थिति, शिक्षा कार्य में कर्मठता, विद्यालय प्रबंधन, शिक्षक-छात्र संबंध, शिक्षक-अभिभावक संबंध तथा इनसे बढ़कर शिक्षकों की नियुक्ति की व्यवस्था विद्यालयों के सरकारीकरण के पश्चात् नियुक्ति से लेकर अनुशासन तक सब कुछ राज्य सरकारों की देखरेख में संचालित होता है। इससे माहौल सुधरने के बजाय बिगड़ता है। कारण यह कि शिक्षा विभाग के अधिकारी शिक्षकों के शोषक के रूप में चिन्हित किए जाते हैं। इस व्यवस्था में बदलाव जरूरी है, जिससे संबंध शोषक-शोषित का न होकर, सहकर्मी का बने। आधारभूत सुविधाओं में विद्यालय भवन सबसे अहम है। एक अनुमान के मुताबिक पूरे राज्य में जरूरत के हिसाब से लगभग सवा लाख कमरे बनवाने होंगे। एक आकलन के अनुसार एक कमरा लगभग 25x15 फीट का बनता है जिसके निर्माण में तकरीबन 468.75 लाख वर्ग फीट भूमि उपयोग में लानी होगी। वार्षिक औसत के हिसाब से सरकार को प्रतिवर्ष 93.75 लाख वर्ग फीट भूमि पर निर्माण करने की जरूरत है।¹⁰ लेकिन यहाँ प्रश्न यह उठता है कि राज्य में निर्माण के पर्याप्त साधन कैसे उपलब्ध होंगे? इसके निदान की पहली जरूरत यह है कि सरकार उचित एवं सस्ते निर्माण कार्यों पर अपना ध्यान केन्द्रित करे। शिक्षकों में शिक्षण-कौशल विकसित करने के लिए शिक्षाविदों की संस्तुति है कि दो वर्ष के मूल प्रशिक्षण के अतिरिक्त संपूर्ण सेवाकाल में एक माह का प्रशिक्षण प्रतिवर्ष दिया जाए। क्रमानुसार शिक्षकों के लिए महीने तय किए जाएँ। प्रशिक्षण केन्द्र साल भर चलें, जिसमें व्यवस्थापक पूर्णकालिक हों परन्तु प्रशिक्षक अंशकालिक प्रत्येक माह उच्च विद्यालय केन्द्र पर एक दिन के लिए दैनिक प्रशिक्षण की व्यवस्था हो। इसमें जिले की ओर से हर बार अलग-अलग वैसे प्रशिक्षक भेजे जाएँ जिनका जीवन त्याग एवं कर्म का हो, जिनकी वाणी और विचार शिक्षकों में शिक्षण के प्रति श्रद्धा विकसित करने में सहायक हो। यह भी ख्याल रखा जाना चाहिए कि प्रशिक्षण मात्र पाठ्यक्रम समझाने वाला न होकर शिक्षण के प्रति नैतिक आदर्श का बोध कराने वाला हो। शिक्षकों की नियुक्ति के संदर्भ में यह ध्यान देने की जरूरत बताई गई है कि प्राथमिक स्तर के विद्यालयों में शिक्षकों की नियुक्ति प्रखंड स्तर पर संबद्ध प्रखंड के नागरिकों के बीच से की जाए। अभ्यर्थी का पद स्थापन उसके गाँव को छोड़कर अन्य निकटतम ग्राम में किया जाए। नियुक्ति में शैक्षणिक योग्यता से अधिक महत्त्व सामाजिक एवं सेवा कार्यों में अभिरुचि रखने वाले को दिया जाए। इसी तरह माध्यमिक विद्यालयों में शिक्षकों की नियुक्ति जिला स्तरी पर की जाए। प्राथमिक एवं माध्यमिक विद्यालयों के संचालन एवं उनकी देखरेख के लिए स्थानीय स्तर पर समितियाँ बनाई जाएँ जो शिक्षा व्यवस्था के सुचारु रूप से संचालन में अपना दायित्व निभाएँ। माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों के लिए विद्यालय परिसर में आवास की व्यवस्था की जाए जिससे उनकी उपस्थिति सुनिश्चित हो। इसके साथ ही शहरी क्षेत्र में गरीबी और अमीरी की खाई दिनोंदिन बढ़ती ही जा रही है। शहरों में सरकारी शिक्षा की स्थिति अत्यंत दयनीय है। शहरी सरकारी विद्यालयों में केवल निम्नवर्गीय या निम्न-मध्यवर्गीय बच्चे पढ़ते हैं जबकि पढ़ाने वाले आर्थिक रूप से मध्यवर्ग में शामिल हो गए हैं। सरकारी विद्यालयों में गुणवत्ता का घोर अभाव हो गया है। इसका मुख्य कारण सरकारी शिक्षा व्यवस्था के शिक्षक, निरीक्षक से कर्मचारी तक की संतानें सरकारी विद्यालयों में शिक्षा न प्राप्त कर किसी पब्लिक स्कूल में शिक्षा प्राप्त करती हैं। शहरों में बढ़ते झुग्गी-झोंपड़ी प्रक्षेत्रों में रहने वाले मजदूरों एवं अन्य लोगों के बच्चे तो निरक्षर रहने को मानों अभिशप्त हैं। सेवा भारती राँची द्वारा किए गए सर्वेक्षण के अनुसार लगभग 40 हजार बच्चे विद्यालय नहीं जाते। वे या तो अपने माता-पिता का सहयोग करते हैं या स्वतंत्र बाल श्रमिक का काम करते हैं।¹¹ ऐसे बच्चों में शहरों के होटल में काम करने वाले बच्चे से लेकर घरों में नौकर-नौकरानी तक का काम करने वाले बच्चे भी शामिल हैं। अब तक विद्यालय नहीं जाने वाले बच्चों को साक्षर बनाने हेतु कुछ उपाय सुझाए जा सकते हैं-

1. समान काम एवं समान क्षेत्र में निवास करने वाले बच्चों के लिए दोपहर के बाद के समय के लिए आसपास की समान पृष्ठभूमि वाले पढ़े-लिखे युवक या युवतियों द्वारा तीन घंटे के लिए विद्यालय की व्यवस्था की जा सकती है।
2. घरों में काम करने वाले बाल नौकर या नौकरानी का निबंधन कराना अनिवार्य किया गया एवं मालिक से नौकर को साक्षर बनाने की जिम्मेवारी वहन करने की आवश्यकता को अनिवार्य किया जाए।
3. होटलों में काम करने वाले बच्चों का होटल-समूह बनाकर बच्चों का मंच बनाया जाए एवं प्रतिदिन होटलों की सुविधानुसार समय निर्धारित कर दो घंटों की अल्पकालीन शिक्षा दी जाए।

इसके अतिरिक्त अन्य अनेक श्रेणियों में विभक्त कर साक्षर बनाने का काम किया जा सकता है।

निष्कर्ष

शिक्षा समाज की प्राथमिक जरूरत है। शिक्षा के समुचित उन्नति बिना प्रगतिशील और आधुनिक समाज का निर्माण संभव नहीं है। शिक्षा ही ऐसा मंत्र है जिससे व्यक्ति, समाज और राष्ट्र का निर्माण होता है; विकास संभव होता है। दुर्भाग्य से राज्य के जनजातियों की शैक्षणिक स्थिति बेहद सोचनीय है। यह एक बुनियादी वजह बना हुआ है जनजाति वर्गों के पिछड़ेपन के लिए। सच्चाई है कि शिक्षा के अप्रसार के कारण आज भी समाज की मुख्यधारा से जनजातीय लोग बेहद दूर और दयनीय अवस्था में जीने के लिए मजबूर हैं। सरकार, चाहे राज्य में किसी भी दल का हो, इससे अच्छी तरह वाकिफ है। अतः सरकार ने पिछड़े व शोषित वर्गों - अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति एवं पिछड़े वर्गों के लिए अनेक शैक्षणिक योजनाएं चला रही हैं, ताकि इन वर्गों में शिक्षा में व्यापक प्रचार-प्रसार हो। इसके साथ ही अनेक ऐसे कार्यक्रम भी हैं जो सिर्फ जनजातीय समुदाय को लक्षित कर उनके लिए शैक्षणिक योजनाएं क्रियान्वित की जा रही है, ताकि उन्हें मुख्यधारा में शामिल होने के लिए तैयार किया जा सके और समाज के सबसे निम्न हाशिए पर जो रह रहे हैं उनसे मुक्त किया जाए।

संदर्भ सूची

1. भारत सरकार, जनगणना, 1991ण
2. भारत सरकार, जनगणना, 2011.
3. वही.
4. वही.
5. झारखण्ड का राजकीय वेबसाइट.
6. वही
7. भारत सरकार, जनगणना, 2001
8. दैनिक भाष्कर,11/09/ 2019.
9. झारखण्ड का राजकीय वेबसाइट.
10. वही.
11. जगरण, 21/09/2019.

भारत में सामाजिक न्याय प्राप्त करने के साधन और बाबासाहेब डॉ० अंबेडकर

डॉ० अनीता सुमन

आलेख का सार

सामाजिक न्याय किसी भी व्यक्ति और समाज के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है। भारत एक बहुवर्णीय, बहुधार्मिक और बहुसांस्कृतिक देश है, जहाँ सामाजिक असमानता लंबे समय से एक गहरी जड़ें जमाए हुई समस्या रही है। जाति, लिंग, धर्म, और आर्थिक स्थिति के आधार पर उत्पन्न सामाजिक विषमता ने सदियों तक एक बड़े वर्ग को अन्याय और शोषण का शिकार बनाया। ऐसे परिप्रेक्ष्य में सामाजिक न्याय न केवल एक संवैधानिक आदर्श है, बल्कि एक नैतिक आवश्यकता भी है, जो प्रत्येक नागरिक को समान अधिकार, अवसर और गरिमा प्रदान करने की वकालत करता है। इस दिशा में डॉ० भीमराव अंबेडकर का योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण रहा है। वे न केवल भारत के संविधान निर्माता थे, बल्कि एक महान समाज सुधारक, विचारक और मानवाधिकारों के पक्षधर भी थे। डॉ० अंबेडकर ने जीवनभर दलितों, पिछड़ों और वंचित वर्गों के अधिकारों के लिए संघर्ष किया और सामाजिक न्याय को व्यवहारिक रूप देने हेतु अनेक उपायों को प्रस्तावित और स्थापित किया।

भूमिका

डॉ० अंबेडकर ने सामाजिक न्याय को केवल विचार तक सीमित नहीं रखा, बल्कि उसे समाज में व्यावहारिक रूप से लागू करना चाहा। इसके लिए उन्होंने संविधान, कानून, आरक्षण, समाजवाद और न्यायपालिका जैसे प्रभावी साधनों की व्यवस्था की। उनका उद्देश्य जातिवाद, ब्राह्मणवाद और रूढ़िवादी परंपराओं का अंत कर एक प्रगतिशील और समतामूलक समाज की स्थापना करना था। वे मानते थे कि सामाजिक न्याय की प्राप्ति के लिए केवल नीतियाँ पर्याप्त नहीं, बल्कि शोषक और शोषित दोनों की मानसिकता में बदलाव जरूरी है। जब हर व्यक्ति को समान अधिकार, अवसर और स्वतंत्रता मिलेगी, तभी वास्तविक सामाजिक न्याय संभव होगा। सामाजिक न्याय के साधन के अधिकरण हैं।

भारतीय संविधान/कानून

भारतीय संविधान सभी नागरिकों को समान अधिकार की गारंटी देता है, साथ ही दलितों और पिछड़ों को विशेष अधिकार देकर उनके सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक सशक्तिकरण का मार्ग प्रशस्त करता है। समाज के वंचित वर्गों को मुख्यधारा से जोड़ने और उनके जीवन स्तर को उठाने हेतु संविधान में अनुच्छेद 14 से 24, 32, 38, 39, 46, 48 आदि के माध्यम से सामाजिक न्याय सुनिश्चित करने की दिशा में ठोस प्रावधान किए गए हैं। ये उपबंध न केवल शोषण और भेदभाव से रक्षा करते हैं, बल्कि शिक्षा व आर्थिक हितों को भी संरक्षण प्रदान करते हैं। ये प्रावधान डॉ० अंबेडकर के सामाजिक न्याय के स्वप्न की साकार अभिव्यक्ति हैं।

भारत में सदियों तक पिछड़े वर्गों और दलितों को सामाजिक रूप से हाशिए पर रखा गया तथा उन्हें कुछ विशेष वर्गों द्वारा उनके मौलिक अधिकारों से भी वंचित किया गया। किंतु आज उन्हें वयस्क मताधिकार, विचार, भाषण और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, बिना भेदभाव के सार्वजनिक पदों पर नियुक्ति और समान अवसर जैसे अधिकार प्राप्त हैं, जिससे उन्हें राजनीतिक न्याय सुनिश्चित हो रहा है। भारतीय संविधान में समाजवादी, धर्मनिरपेक्ष और लोकतांत्रिक गणराज्य की स्थापना की घोषणा, धर्म और पूजा की स्वतंत्रता तथा बंधुत्व की भावना के माध्यम से सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय को बल मिला है। डॉ० अंबेडकर ने स्पष्ट रूप से देखा कि सामाजिक न्याय की सबसे बड़ी बाधा जाति और वर्ण व्यवस्था है। उनका मानना था कि मानवता सर्वोपरि है और मानव धर्म से बड़ा कोई अन्य धर्म नहीं हो सकता। उनके अनुसार जाति, वर्ण और संप्रदाय केवल माध्यम हैं, जिन्हें समयानुसार बदला जा सकता है; असली उद्देश्य लोकहित है। संविधान निर्माण के दौरान डॉ० अंबेडकर ने मानवता को केंद्र में रखा। वे किसी भी प्रकार के सामाजिक या राजनीतिक एकाधिकार के विरोधी थे। उन्होंने इस बात पर बल दिया कि सभी को न्याय मिले, किसी के साथ भेदभाव न हो, समाज में प्रेम और समरसता बनी रहे, और प्रत्येक व्यक्ति को स्वतंत्र रूप से कार्य और जीविकोपार्जन का अधिकार मिले। उनका मानना था कि स्वतंत्रता से पहले सामाजिक असमानता को समाप्त करना जरूरी है, क्योंकि जब तक दलित वर्ग सामाजिक शोषण और अपमान का शिकार रहेगा, तब तक स्वतंत्रता का कोई वास्तविक अर्थ नहीं होगा।¹ स्वतंत्रता तभी सार्थक है जब प्रत्येक व्यक्ति को भूख, वस्त्र और आवास जैसी मूलभूत आवश्यकताओं से मुक्ति मिले और समान अवसर मिलें। उन्होंने अस्पृश्यता के दर्द को स्वयं अनुभव किया और इसके निवारण को अपने संघर्ष का मूल उद्देश्य बनाया। अपने बौद्धिक, तार्किक, सामाजिक और राजनीतिक प्रयासों के माध्यम से उन्होंने दलितों की समस्याओं को पहली बार राष्ट्रीय स्तर पर उठाया और संविधान में उनके कल्याण के लिए विशेष प्रावधान करवाए। वर्ष 1950 में संविधान के लागू होने के साथ ही अस्पृश्यता को कानूनी रूप से समाप्त कर दिया गया। इसके बाद 1953 का अस्पृश्यता उन्मूलन अधिनियम और 1989 का अनुसूचित जाति एवं जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम बनाकर भारत सरकार ने सामाजिक न्याय की दिशा में मजबूत कदम उठाए।

वस्तुतः हमारे संविधान के दर्शन में ही जनता को सर्वोपरी मानते हुए शासन व्यवस्था को आम भारतीयों का, आम भारतीयों के लिए और आम भारतीयों के द्वारा घोषित किया गया है। सरकार द्वारा प्रशासन और जनता के बीच फासला को घटाना, सामाजिक न्याय से प्रेरित होकर कार्य करना, सामाजिक नीति के क्रियान्वयन पर विशेष बल देना, सामाजिक विधान के क्रियान्वयन पर विशेष बल, सामाजिक नियोजन पर विशेष बल, जन सहयोग की आकांक्षा: चुनाव में हिस्सेदारी, भारत में सामाजिक न्याय को स्थापित करने में कानून, विशेष अदालत की व्यवस्था आदि के माध्यम सामाजिक न्याय प्राप्त करने हेतु प्रयत्नशील रहता है।

अनु.जा. एवं अनु.जन. अत्याचार निवारण अधिनियम 1989

अनुसूचित जाति और जनजाति अत्याचार निवारण अधिनियम, 1989, दलितों एवं आदिवासियों पर होने वाले अत्याचारों को रोकने हेतु भारतीय संसद द्वारा पारित एक महत्वपूर्ण कानून है। यह अधिनियम उन्हें उच्च जातियों और राज्य अधिकारियों द्वारा होने वाले अपमानजनक एवं हिंसात्मक व्यवहार से कानूनी संरक्षण प्रदान करता है। हालांकि, प्रभावशाली वर्गों के दबाव और न्यायपालिका की निष्क्रियता के कारण यह कानून पूरी तरह प्रभावी नहीं हो पाया है। प्रशासनिक और न्यायिक संस्थानों पर ऊँची जातियों का वर्चस्व दलितों को न्याय से वंचित करता है। फिर भी, दलितों में आई जागरूकता और इस कानून की मौजूदगी से उनकी सामाजिक स्थिति में उल्लेखनीय सुधार हुआ है।

शिक्षा

शिक्षा ही वह सबसे प्रबल माध्यम है जो जाति के जकड़न से समाज को उबारकर शैक्षिक, राजनीतिक और आर्थिक दृष्टि से पिछड़े लोगों में नये आत्मविश्वास लाकर सामाजिक असंतुलन को दूर कर सकता है। एक कर्मकांडी वर्ग व्यवस्था में किसी जाति की ऊँची या नीची श्रेणी के अंतर को कोई कम कर सकता है तो वह शिक्षा ही है। तभी तो डॉ. भीमराव अंबेडकर का मानना था कि समतामूलक समाज की स्थापना का सबसे प्रभावी साधन शिक्षा है, विशेषकर दलितों के लिए। उन्होंने शिक्षा को सर्वसुलभ बनाने पर बल दिया और इसके प्रसार हेतु कई संगठनों की स्थापना की जैसे “भारतीय समाज शिक्षा प्रसार समिति” और “पीपुल्स एजुकेशन सोसायटी”। उन्होंने सरकार से निःशुल्क, अनिवार्य, व्यावसायिक तथा उच्च शिक्षा की व्यवस्था की माँग की। स्वतंत्रता के बाद शिक्षा के क्षेत्र में सुधार हुए, आरक्षण, छात्रवृत्ति और अन्य सुविधाओं के माध्यम से वंचित वर्गों को मुख्यधारा में लाने का प्रयास किया गया।² इन प्रयासों से दलित छात्रों में शिक्षा के प्रति रुचि बढ़ी, वे उच्च शिक्षा और विभिन्न क्षेत्रों में सफलता पा रहे हैं, हालांकि अभी भी गरीबी, सामाजिक भेदभाव और संसाधनों की कमी के कारण उनका प्रतिनिधित्व अपेक्षाकृत कम है।

आरक्षण

भारत में आरक्षण एक सकारात्मक और संवैधानिक उपाय है, जिसका उद्देश्य समाज में व्याप्त ऐतिहासिक सामाजिक असमानताओं को दूर कर सामाजिक न्याय और समता की स्थापना करना है। यह विशेष रूप से उन वर्गों के लिए लागू किया गया जो सदियों से शोषण और भेदभाव का शिकार रहे हैं। डॉ. अंबेडकर ने इसे परस्पर सम्मान और करुणा आधारित समाज की नींव बताया। आरक्षण की ऐतिहासिक जड़ें ब्रिटिश शासन काल तक जाती हैं। सबसे पहले ज्योतिबा फुले ने हंटर आयोग (1882) के सामने आरक्षण की माँग की। 1908 से अंग्रेजों ने इसे लागू किया और साहूजी महाराज जैसे प्रगतिशील शासकों ने इसे बढ़ावा दिया। 1932 के पूना समझौते में दलितों को पृथक निर्वाचन के बजाय आरक्षित सीटें दी गईं। संविधान में अनुच्छेद 15 और 16 के अंतर्गत आरक्षण को विधिक मान्यता प्राप्त हुई। हालांकि कुछ वर्ग इसे योग्यता के खिलाफ मानते हैं, तथ्यों से स्पष्ट होता है कि आरक्षण का दायरा सीमित है। यह सिर्फ सरकारी नौकरियों तक सीमित है जो कुल रोजगार का मात्र 2% है। बाकी 98% रोजगार क्षेत्र जैसे निजी, कृषि, सेना और विदेशों में आरक्षण का कोई स्थान नहीं है।³ आज आरक्षण केवल पिछड़े वर्गों का हक नहीं बल्कि समानता की ओर बढ़ता एक कदम है। यह समाज में समरसता लाने और हाशिये पर रहे वर्गों को मुख्यधारा में लाने का सशक्त माध्यम है। उच्च वर्गों को भी 10% आर्थिक आधार पर आरक्षण दिया गया है, जो यह दर्शाता है कि इसका उद्देश्य सभी वर्गों को न्याय दिलाना है। आरक्षण, सामाजिक न्याय की दिशा में एक व्यावहारिक और आवश्यक उपाय है। वस्तुतः आरक्षण के द्वारा निम्न उद्देश्यों की प्राप्ति हो रही है -

- समाजवाद जो भारतीय लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था का आदर्श है उसकी प्राप्ति होती है।
- वर्ग भेद का अंत होता है।
- समाज में समरसता की स्थापना होती है।
- दलित आदिवासियों पिछड़ों शोषित वर्गों को इतिहास में किए जाने वाले व मानवीय एवं भेदभाव पूर्ण व्यवस्था पर एक तरह से मरहम लगता है।
- देश का समग्र रूप से उत्थान होना, क्योंकि समाज, अर्थ एवं राजनीति में इनके भागीदारी से राज्य को अधिक से अधिक मानव संसाधनों की उपलब्धता होगी।

वर्ण व्यवस्था

वर्ण व्यवस्था भारत की पारंपरिक सामाजिक संरचना रही है, जिसने सामाजिक न्याय, समावेश और समानता के मार्ग में बाधा डाली। मूलतः यह व्यवस्था कर्म आधारित और वैज्ञानिक थी, परंतु बाद में इसे जन्म और जाति पर आधारित कर दिया गया, जिससे भेदभाव, छुआछूत और सामाजिक विषमता को बढ़ावा मिला। इससे निचली जातियाँ सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक और राजनीतिक रूप से पिछड़ गईं, जबकि उच्च जातियाँ विशेषाधिकारों का लाभ उठाती रहीं।⁴ डॉ. भीमराव अंबेडकर ने इस व्यवस्था की तीव्र आलोचना की और इसके उन्मूलन को अपने जीवन का लक्ष्य बनाया। उन्होंने कहा कि जाति व्यवस्था समाज को विभाजित, असंगठित और कमजोर बनाती है। उन्होंने सभी के लिए समानता, बंधुत्व और सामाजिक न्याय की वकालत की।⁵ आज भले ही वर्ण व्यवस्था

की पकड़ कुछ हद तक कमजोर हुई है, परंतु इसकी मानसिकता अब भी समाज में विद्यमान है। इसके समाधान के लिए केवल कानून पर्याप्त नहीं है, बल्कि समाज को मानसिक, वैचारिक और व्यवहारिक बदलाव की जरूरत है। वर्ण एवं जाति व्यवस्था के नकारात्मक प्रभावों से समाज को मुक्त कर, एक समतामूलक और न्यायपूर्ण भारत का निर्माण ही सच्ची सामाजिक प्रगति का मार्ग है, इसके लिए आवश्यक है कि -

- परंपरागत सोच का त्याग कर प्रगतिशील और लोकतांत्रिक दृष्टिकोण अपनाना।
- नियुक्तियों और नीतियों में जातिगत पूर्वाग्रह से बचना।
- योग्यता को प्राथमिकता देना।
- संविधान में दिए गए विशेष प्रावधानों को प्रभावी ढंग से लागू करना।
- कार्यों को जाति से जोड़ने की सोच से ऊपर उठना।
- सभी कार्यों और वर्गों को समान महत्व देना।
- शारीरिक श्रम को सम्मान देना।
- गांवों में सामंजस्यपूर्ण सामाजिक ताना-बाना बनाना।
- व्यक्ति की पहचान उसके हुनर और गरिमा से होनी चाहिए।
- लोकतांत्रिक मूल्यों और मौलिक अधिकारों की रक्षा सुनिश्चित हो।

संगठन

जब कोई लक्ष्य व्यक्तिगत न होकर सामूहिक हो जाता है, तो उसे पाने के लिए संगठन की आवश्यकता होती है। संगठन बिखरी हुई शक्तियों को एकजुट कर लक्ष्य की प्राप्ति का माध्यम बनता है। इसमें नेतृत्व की भूमिका महत्वपूर्ण होती है, परंतु हर सदस्य का भी विशिष्ट महत्व होता है। सामाजिक संगठन में प्रत्येक अवयव की एक निश्चित भूमिका होती है जो समाज में स्थायित्व और संतुलन बनाए रखती है। संविधान में समतामूलक समाज की स्थापना और भागीदारी की बात की गई है, लेकिन जातिवाद और भेदभाव ने इसे प्रभावित किया। बाबा साहेब डॉ. भीमराव अंबेडकर ने दलितों और पिछड़ों को संगठित करने पर विशेष बल दिया। उन्होंने 'मूकनायक' पत्रिका के माध्यम से अस्पृश्यता के खिलाफ संगठित संघर्ष का आह्वान किया। उन्होंने 1924 में 'बहिष्कृत हितकारिणी सभा', 1936 में 'इंडिपेंडेंट लेबर पार्टी', और 1942 में 'अनुसूचित जाति संघ' की स्थापना कर दलितों के अधिकारों के लिए कानूनी व राजनीतिक लड़ाई लड़ी।⁶ उन्होंने सामाजिक सुधारों जैसे मंदिर प्रवेश, पानी तक पहुंच और हिन्दू कोड बिल के माध्यम से समानता का प्रयास किया। जब उनके प्रयासों को सहयोग नहीं मिला तो उन्होंने नेहरू सरकार से इस्तीफा दे दिया और विपक्ष में रहकर संघर्ष जारी रखा। बाबा साहेब का मानना था कि दलितों का सशक्तिकरण 'शिक्षा, संगठन और संघर्ष' से ही संभव है। वे सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक रूप से दलितों को जागरूक करना चाहते थे और इसके लिए उन्होंने एक वैकल्पिक राजनीतिक शक्ति बनाने की कोशिश की। उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि केवल आरक्षण से नहीं, बल्कि आत्म-सम्मान, संघर्ष और संयुक्त राष्ट्रियता की भावना से ही दलितों की स्थिति सुधर सकती है।⁷ डॉ० बाबासाहेब अंबेडकर ने अपने अनुयायियों का अगाह किया था-

- याद रखो, दुनिया में जबरदस्त संघर्ष के बाद ही श्रेष्ठ उपलब्धियां संभव हुई हैं।
- गुलाम को यह बोध करा दो कि वह दास है, वह विद्रोह कर देगा।
- छिने हुए अधिकार अनुनय-विनय से नहीं कड़े संघर्ष करने पर ही हासिल होती हैं।
- खबरदार! आग में इसलिए मत कूद पड़ो कि मैं कहता हूँ। आप खूब सोचो, मनन करो और अपनी अंतरात्मा की आत्मा से संघर्ष की ज्वाला के राही बनो।
- आज सबसे बड़ी जरूरत यह है कि लोगों में संयुक्त राष्ट्रियता की भावना का उदय हो।
- अपना सम्मान खोकर कोई जाति तरक्की नहीं कर सकती।
- धर्म और दासता की कोई मेल नहीं है।
- दलितों के लिए आरक्षण-सुविधा की व्यवस्था हो।

समाजवाद

डॉ. भीमराव अंबेडकर राज्य समाजवाद के प्रबल समर्थक थे। उनका विश्वास था कि भारत में सामाजिक एवं आर्थिक न्याय केवल राज्य द्वारा नियंत्रित समाजवादी व्यवस्था से ही संभव है। वे पूंजीवाद को अमीरों का दर्शन मानते थे और मानते थे कि समाजवाद ही गरीबों, वंचितों और दलितों के उत्थान का माध्यम बन सकता है। अंबेडकर ने उद्योग, भूमि और बीमा के राष्ट्रीयकरण और खेती के सामूहिकीकरण की वकालत की। उनका मानना था कि संसाधनों का उपयोग सामाजिक कल्याण हेतु हो और निजी स्वामित्व सीमित हो। उन्होंने संविधान सभा में संविधान को समाजवादी स्वरूप देने की मांग की, जिससे आर्थिक विषमता, शोषण और वर्ग संघर्ष को समाप्त कर सामाजिक न्याय की स्थापना की जा सके।⁸ डॉ. अंबेडकर ने समाजवाद को लोकतांत्रिक, मानवतावादी और समावेशी विकास का आधार माना। उनकी इन्हीं मान्यताओं के चलते 42वें संविधान संशोधन द्वारा प्रस्तावना में 'समाजवाद' जोड़ा गया।

ज्ञातव्य है कि उन्नीसवीं सदी से अनेक समाज सुधारकों ने भारत में व्याप्त सामाजिक कुरीतियों, जातिवाद, अशिक्षा, धार्मिक आडंबरों और महिलाओं की दयनीय स्थिति को सुधारने का प्रयास किया, लेकिन आज भी दलित और शोषित वर्ग इन समस्याओं से प्रतिदिन जूझ रहा है। शिक्षा, रोजगार और कानूनी सुविधाएं उनकी पहुँच से दूर हैं और समाज में उनके साथ भेदभाव, छुआछूत और अमानवीय व्यवहार जारी है।⁹ संविधान प्रदत्त अधिकारों के बावजूद व्यावहारिक स्तर पर दलितों को समानता नहीं मिल पाई है। अभी भी उन्हें समाज में अलग-थलग रखा जाता है स्कूल, मंदिर, श्मशान, त्योहार, यहां तक कि पानी के स्रोतों और मतदान तक में भेदभाव होता है। आर्थिक स्थिति भी अत्यंत दयनीय है, जिससे भूख, बीमारी और अशिक्षा का दुश्चक्र बना रहता है, विशेषकर दलित महिलाओं की स्थिति चिंताजनक है।¹⁰ सच्चे सामाजिक न्याय के लिए जरूरी है कि दलितों में आत्मविश्वास पैदा हो, शिक्षा का प्रसार हो,

और उनकी आर्थिक स्थिति में सुधार किया जाए। साथ ही, सर्वण समाज को अपनी जातिवादी मानसिकता बदलनी होगी और सरकार को अपने कार्यक्रमों को वास्तविक धरातल पर उतारना होगा। दलितों को भी अपनी रूढ़िवादी सोच छोड़कर शिक्षा और सुधार की दिशा में आगे बढ़ना होगा। तभी एक समतामूलक और न्यायपूर्ण समाज की कल्पना साकार हो सकेगी। वस्तुतः दलितों को सही मायने में सामाजिक न्याय मिले इसके लिए चहुंमुखी सुधार की जरूरत है, जो आज की जरूरतों के अनुरूप भी हो, इसके लिए आवश्यक है कि -

- सदियों से ढाये जुल्म और उपेक्षा कि कारण उनमें जो हीनता की भावना घर कर गई है उससे उन्हें बाहर निकालना होगा और उनमें आत्मविश्वास जगाना होगा। उन्हें यह बताना होगा कि उनके ऊपर जो भी अत्याचार हुआ है उससे उबरने के लिए वह अपने संवैधानिक अधिकारों का प्रयोग करते हुए सामाजिक समता की भावना के साथ आगे बढ़ें।
- दलित समुदाय में शिक्षा का व्यापक प्रचार प्रसार करना होगा, क्योंकि शिक्षा ही वह माध्यम है जिसके दम पर वह अपनी वर्तमान दशा में सकारात्मक और बेहतर सोच के साथ बदलाव ला सकता है।
- उच्च वर्ण और खुद दलित समुदाय को यह समझना होगा कि धार्मिक रूप से उन पर जो पाबंदियां अभी भी लगाया जाता है अथवा झेला जाता है, उसे इस विश्वास के साथ दूर करना होगा कि कोई भी सच्चा धर्म मानव मानव में अंतर नहीं करता। धर्म व्यक्ति को जोड़ता है न कि अलगाव पैदा करता है। यदि ऐसा होता है तो वह धर्म नहीं हो सकता अपितु कुछ स्वार्थी लोगों का मानसिक विकृति जो उन्हें धर्म का चोला पहना कर दलित समुदाय को अपने अधीन करना चाहता है हिंदुत्व को नकारता है।
- आर्थिक पहलू किसी भी व्यक्ति के रहन सहन विचार एवं आत्मविश्वास को सबसे ज्यादा प्रभावित करता है। दलितों की आर्थिक स्थिति भारतीय समाज में सबसे निम्न स्तर और सोचनीय है। देश में बीमारी और भुखमरी से मरने वाले लोगों में 90 प्रतिशत दलित समुदाय से आता है। पहली प्राथमिकता सरकार के लिए होनी चाहिए कि उनकी आर्थिक स्थिति में सृजनात्मक बदलाव लाया जाए। कम से कम बुनियादी जरूरतें रोटी, कपड़ा, मकान, शिक्षा एवं स्वास्थ्य सेवा आसानी से उन्हें सुलभ हो।
- सरकार अपनी कथनी और करनी के अंतर को खत्म करते हुए दलितों के कल्याण, उनके अधिकारों का संरक्षण तथा उन्हें सभी प्रकार के भेदभाव एवं सामाजिक उत्पीड़न से सुरक्षा देने के लिए जो कार्यक्रम एवं प्रावधान किए गए हैं उसे अमलीजामा पहनाये। सरकार सिर्फ उनके लिए योजना और मीठी-मीठी बातें कर अपने दायित्व को इतिश्री न समझे और न ही उनका राजनीतिक इस्तेमाल हो।
- दलितों को भी अपनी परंपरागत और रूढ़िवादी मानसिकता को बदलना होगा। उन्हें यह समझना होगा कि अपने बच्चों का भविष्य बनाना उनकी पहली प्राथमिकता है, ताकि फिर कभी असमानता, भेदभाव आदि का शिकार आने वाली पीढ़ी न हो। इसके लिए उन्हें नशा मुक्त होना पड़ेगा, घर में महिलाओं पर सारा बोझ देकर अपने को दायित्व से मुक्त करने की प्रवृत्ति को त्यागना होगा। उन्हें बाबा साहेब के बताए मार्ग और निर्देशों को पालन करना होगा।

निष्कर्ष

भारत में सामाजिक न्याय की स्थापना एक लंबी और सतत प्रक्रिया रही है, जिसमें संविधान, कानून, शिक्षा, राजनीतिक प्रतिनिधित्व और सामाजिक जागरूकता जैसे अनेक साधनों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। सामाजिक असमानताओं को समाप्त करने के लिए कानूनी अधिकारों के साथ-साथ सामाजिक चेतना का विकास भी आवश्यक रहा है। इस दिशा में बाबासाहेब डॉ. भीमराव अंबेडकर का योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण और प्रेरणास्पद रहा है। उन्होंने न केवल दलितों और वंचित वर्गों के अधिकारों के लिए संघर्ष किया, बल्कि एक समतामूलक समाज की आधारशिला भी रखी। भारत के संविधान निर्माता के रूप में उन्होंने समानता, स्वतंत्रता, बंधुत्व और न्याय को संविधान के मूल स्तंभों के रूप में स्थापित किया। डॉ. अंबेडकर ने यह स्पष्ट किया कि सामाजिक न्याय केवल कानूनी या राजनीतिक अधिकारों से ही प्राप्त नहीं होता, बल्कि उसके लिए सामाजिक सोच और व्यवहार में भी बदलाव अनिवार्य है। उनके विचार आज भी भारत में सामाजिक सुधार और समानता की दिशा में पथप्रदर्शक हैं। भारत में सामाजिक न्याय की प्राप्ति के लिए आवश्यक है कि हम डॉ. अंबेडकर के विचारों को न केवल समझें, बल्कि उन्हें व्यवहार में उतारें। शिक्षा, संवैधानिक अधिकारों का ज्ञान, सामाजिक समरसता और सक्रिय भागीदारी के माध्यम से ही एक न्यायपूर्ण और समतामूलक समाज की स्थापना संभव है। वस्तुतः बाबा साहेब का क्षेत्र केवल दलित राजनीति तक सीमित नहीं था, बल्कि वे संविधान निर्माता, विधि मंत्री और सामाजिक क्रांति के अग्रदूत के रूप में भी राष्ट्र निर्माण में सक्रिय रहे।

संदर्भ सूची

1. संसदीय बहस अंक, भाग-6, पृष्ठ 728
2. इंडिया टुडे वार्षिकांक, 2016-11-29.
3. मैस्नर, जे., सोशल एथिक्स, 1975, पृष्ठ 3.
4. अंबेडकर, डॉ०, बहिष्कृत भारत, 3 फरवरी, 1928 पृष्ठ 21.
5. द टाइम्स ऑफ इंडिया, 18 जनवरी, 1943.
6. 1952 में प्रथम आम चुनाव की पूर्व संध्या पर 27 अक्टूबर, 1952 को जालन्धर नगर के मोहल्ला रामदासपुरा (बूटा मंडी) में दिया गया भाषण का अंश.
7. बाबासाहेब का 17 दिसम्बर 1946 को संविधान सभा दिया गया भाषण.
8. आंबेडकर, डॉ. भीमराव राइटिंग्स एण्ड स्पीचेस, वाल्यूम, 13, पृष्ठ 396-97
9. दलित न्यूज, 29/01/ 2008.
10. भारत का संविधान, धा. (38(1)).

सुभाष चंद्र बोस एवं गांधी जी के वैचारिक मतभेद और 1939 कांग्रेस का अध्यक्षीय चुनाव

गोविन्द कुमार

शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग, तिलका मांझी भागलपुर, विश्वविद्यालय भागलपुर

शोध आलेख का सार

1939 का कांग्रेस अधिवेशन त्रिपुरी (मध्यप्रदेश) में आयोजित हुआ था, जहाँ अध्यक्ष पद के लिए सुभाष चंद्र बोस ने गांधी जी के पसंदीदा उम्मीदवार पट्टाभि सीतारमैया को हराया। यद्यपि बोस की यह जीत कांग्रेस कार्यकर्ताओं के एक बड़े वर्ग में उनकी लोकप्रियता को दर्शाती थी, परंतु गांधी जी ने इस हार को “अपनी नहीं, बल्कि सिद्धांतों की हार” बताया। इसके बाद कांग्रेस कार्यसमिति के प्रमुख सदस्यों, जो गांधी जी के समर्थक थे, ने सामूहिक रूप से इस्तीफा दे दिया और सुभाष चंद्र बोस को संगठनात्मक स्तर पर अलग-थलग कर दिया गया। यह टकराव केवल व्यक्तिगत नहीं था, बल्कि दो विचारधाराओं की टक्कर थी – एक ओर गांधी जी का नैतिकता पर आधारित जनांदोलन और दूसरी ओर बोस का तीव्र, सशस्त्र, और वैश्विक सहयोग की ओर झुकाव वाला राष्ट्रवाद। इसके परिणामस्वरूप, सुभाष चंद्र बोस ने “फॉरवर्ड ब्लॉक” की स्थापना की और बाद में भारत के बाहर जाकर आजाद हिंद फौज का गठन किया।

भूमिका

1926 के बाद देश में जो सबसे उत्साहजनक परिवर्तन देखने को मिला, वह युवाओं के बीच बढ़ती हुई राजनीतिक जागरूकता थी। वे अब पुरानी पीढ़ी की तंग दृष्टिकोण से ऊब चुके थे। युवाओं की नई पीढ़ी एक ऐसे सार्वजनिक जीवन की कल्पना कर रही थी जिसमें राष्ट्रवाद की शुद्ध और जीवंत भावना बह रही हो। उन्होंने संकल्प लिया था कि वे इस विकृत व्यवस्था को बदलकर एक नए और न्यायसंगत समाज की स्थापना करेंगे। युवा आंदोलन देश के विभिन्न हिस्सों में अलग-अलग नामों से शुरू हुए, लेकिन इन सभी के पीछे जो भावना थी, वह एक जैसी थी – विद्रोह, आत्मबल और राष्ट्र के प्रति गहरी निष्ठा। वे व्यवस्था से उपजी अन्याय और अपमानजनक परिस्थितियों से आहत थे, और इसी बेचौनी ने उनके भीतर विद्रोह की चिंगारी भड़का दी थी। उनमें आत्मविश्वास पनप रहा था और यह विश्वास जाग रहा था कि देश की दिशा बदलने में उनकी एक महत्वपूर्ण भूमिका हो सकती है।

यद्यपि 1930 में सविनय अवज्ञा आंदोलन महात्मा गांधी के नेतृत्व में भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का एक महत्वपूर्ण चरण था, जिसका उद्देश्य अंग्रेजों के अन्यायपूर्ण कानूनों का अहिंसात्मक विरोध करना था। इस आंदोलन के अंतर्गत नमक कानून का उल्लंघन करते हुए गांधी जी ने ऐतिहासिक दांडी यात्रा की, जिसने सम्पूर्ण देश में जनजागरण पैदा किया। इस आंदोलन ने ब्रिटिश शासन की नींव हिला दी, परंतु इस पर भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के भीतर विभिन्न नेताओं की प्रतिक्रियाएं भी देखने को मिलीं, जिनमें सुभाष चंद्र बोस की प्रतिक्रिया विशेष रूप से उल्लेखनीय है।¹ सुभाष चंद्र बोस ने सविनय अवज्ञा आंदोलन की भावना और उद्देश्य का समर्थन तो किया, परंतु उनके विचारों में इससे जुड़ी कुछ आलोचनाएं भी थीं। उनका मानना था कि यह आंदोलन जनांदोलन के रूप में प्रभावशाली है, किंतु इसकी रणनीति और गति अत्यधिक संयमित और सीमित है। वे गांधीजी के अति-अहिंसावादी दृष्टिकोण से पूरी तरह सहमत नहीं थे। बोस का मत था कि स्वतंत्रता एकमात्र लक्ष्य होना चाहिए और इसके लिए अधिक निर्णायक, क्रांतिकारी एवं तीव्र उपायों की आवश्यकता है। बोस ने गांधी जी की नेतृत्व शैली की सराहना तो की, परंतु यह भी कहा कि केवल नैतिक दबाव और शांतिपूर्ण अवज्ञा से ब्रिटिश साम्राज्य को झुकाया नहीं जा सकता। उन्होंने आंदोलन के दौरान कांग्रेस की नीतियों में अस्पष्टता और निर्णायकता की कमी को भी उजागर किया। उनके अनुसार, यह आंदोलन जनता की भावनाओं को जगाने में सफल तो रहा, परंतु इसके राजनीतिक परिणाम अपेक्षानुरूप नहीं रहे। इसके अतिरिक्त सुभाष बाबू यह भी मानते थे कि भारत को यदि वास्तविक स्वतंत्रता प्राप्त करनी है, तो कांग्रेस को केवल गांधीवादी विचारधारा से आगे बढ़कर एक अधिक संगठित और व्यावहारिक नीति अपनानी होगी। उनके अनुसार युवाओं को अधिक सक्रिय भूमिका में लाना होगा और आवश्यकता पड़ने पर सशस्त्र संघर्ष को भी नकारा नहीं जा सकता। इस प्रकार, सुभाष चंद्र बोस ने सविनय अवज्ञा आंदोलन को एक महत्वपूर्ण पड़ाव के रूप में तो स्वीकार किया, परंतु वे इसे अंतिम समाधान नहीं मानते थे। उनके विचार अधिक उग्र, क्रांतिकारी और तत्काल स्वतंत्रता प्राप्ति की दिशा में केंद्रित थे, जो उन्हें गांधीवादी रास्ते से अलग रखते थे।² नेताजी और गांधीजी के विचारों में भिन्नता आगे चलकर उन्हें अलग राह पर ले गया, जो 1938 और 1939 में कांग्रेस अध्यक्ष के रूप में योगदान और हरिपुरा और त्रिपुरी अधिवेशन में उनके विचारों में दिखा ओर अंततः जहाँ उन्होंने आजाद हिंद फौज का गठन कर सशस्त्र संघर्ष द्वारा स्वतंत्रता प्राप्ति का मार्ग अपनाया।

स्वतंत्रता आंदोलन के प्रति सुभाष चंद्र बोस का समर्पण इतना गहरा था कि वे जल्द ही इसके एक सक्रिय और प्रभावशाली नेता बन गए। अपने ओजस्वी व्यक्तित्व और राष्ट्रवादी विचारों के कारण वे भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस से जुड़े और संगठन की युवा शाखा के अध्यक्ष के रूप में चुने गए। 1920 और 1930 के दशक के दौरान वे कांग्रेस के भीतर एक क्रांतिकारी युवा धारा के प्रमुख नेता के रूप में उभरे। सुभाष चंद्र बोस ने कलकत्ता के छात्रों, युवाओं और मजदूरों को जागरूक करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। वे भारत को एक स्वतंत्र, संघीय और गणतान्त्रिक राष्ट्र के रूप में देखने के लिए प्रतिबद्ध थे और इसी लक्ष्य की प्राप्ति के लिए निरंतर प्रयासरत रहे। उनकी नेतृत्व क्षमता और संघर्षशील प्रवृत्ति को देखते हुए 1938 में उन्हें सर्वसम्मति से भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का अध्यक्ष चुना गया।³ यह उनकी लोकप्रियता और दृढ़ संकल्प का प्रमाण था, जिसे उन्होंने अपने लंबे कारावास और निर्वासन के दौरान अर्जित किया था।

सुभाष चंद्र बोस की 1938 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अध्यक्ष के रूप में नियुक्ति उनके जीवन और देश के स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास में एक महत्वपूर्ण मोड़ साबित हुई। इस भूमिका में उनके सबसे अहम योगदानों में से एक राष्ट्रीय योजना समिति का गठन था, जिसके अध्यक्ष जवाहरलाल नेहरू थे और स्वयं वे इसके संयोजक थे। इस समिति का उद्देश्य भारत के आर्थिक और औद्योगिक विकास की रूपरेखा तैयार करना था, जो स्वतंत्रता के बाद देश के पुनर्निर्माण की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम था।¹⁴ हालांकि, कांग्रेस के भीतर सदैव दक्षिणपंथी और वामपंथी धड़े मौजूद रहे, जिनमें से कई नेता ब्रिटिश शासन के साथ समझौते के लिए तैयार थे। इसका प्रभाव युवा पीढ़ी की सोच पर पड़ा और स्वतंत्रता के उपरांत राष्ट्र के पुनर्निर्माण को भी जटिल बना दिया। अपने कार्यकाल के दौरान, बोस संगठन की आंतरिक समस्याओं में अधिक रुचि नहीं ले पाए और कई नीतिगत मामलों में कार्यकारिणी समिति को स्पष्ट दिशा-निर्देश नहीं दे सके। इस पृष्ठभूमि में, उन्हें यह एहसास हुआ कि कांग्रेस अध्यक्ष के रूप में मात्र एक वर्ष उनके बहुआयामी कार्यक्रम को लागू करने के लिए पर्याप्त नहीं है। इसलिए, उन्होंने 1939 में दूसरे कार्यकाल के लिए चुनाव लड़ने का निर्णय लिया, जो उस समय की परंपरा के विरुद्ध था। जबलपुर के निकट त्रिपुरी में आयोजित कांग्रेस के बावनवें अधिवेशन से पहले उन्होंने कट्टरपंथी और उग्रवादी धारा के प्रवक्ता के रूप में अपने अभियान की शुरुआत की। इस चुनाव में उन्होंने सरदार पटेल और अन्य वरिष्ठ नेताओं का खुलकर विरोध किया, जिन्हें उन्होंने दक्षिणपंथी विचारधारा का समर्थक माना। बोस ने आरोप लगाया कि कांग्रेस का “पुराना नेतृत्व” ब्रिटिश सरकार के साथ गुप्त समझौते की दिशा में काम कर रहा था और वे राष्ट्रीय हितों से समझौता करने के लिए तैयार थे। उन्होंने यह भी दावा किया कि इन नेताओं ने संभावित केंद्रीय मंत्रियों की एक सूची तैयार कर ली थी और इसीलिए वे किसी वामपंथी विचारधारा वाले व्यक्ति को कांग्रेस अध्यक्ष बनने से रोकना चाहते थे। बोस ने अपने समर्थकों को यह समझाने का प्रयास किया कि यदि कोई ऐसा नेता अध्यक्ष बनता है, जो समझौते के मार्ग में बाधा बन सकता है, तो वह स्वतंत्रता संग्राम की गति को और तेज कर सकता है।¹⁵ इस संघर्ष में, उनकी विचारधारा और कांग्रेस के वरिष्ठ नेताओं के दृष्टिकोण के बीच टकराव स्पष्ट रूप से उभरकर सामने आया।¹⁶ यह वही दौर था, जब कांग्रेस के भीतर दो ध्रुव बन गए—एक, जो ब्रिटिश शासन से समझौते के माध्यम से स्वतंत्रता की दिशा में बढ़ना चाहता था, और दूसरा, जिसका नेतृत्व बोस कर रहे थे, जो पूरी तरह से संघर्ष और आंदोलन के मार्ग पर चलकर पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त करने के पक्षधर थे।

कांग्रेस के भीतर यह एक अत्यंत कटु और विभाजनकारी समय था, जो संगठन में गहरी दरारें पैदा कर रहा था, खासकर जब देश पर युद्ध के बादल मंडरा रहे थे। सुभाष चंद्र बोस और उनके समर्थकों ने कांग्रेस के कुछ वरिष्ठ नेताओं, विशेष रूप से दक्षिणपंथी माने जाने वाले व्यक्तियों के खिलाफ कई आरोप लगाए। स्वयं सुभाष चंद्र बोस ने यह स्वीकार किया था कि उनकी विचारधारा महात्मा गांधी से मेल नहीं खाती थी। यह केवल दृष्टिकोण का अंतर नहीं था, बल्कि एक व्यापक वैचारिक विभाजन था।¹⁷ इसके विपरीत, जवाहरलाल नेहरू भी कई मामलों में महात्मा गांधी से असहमत रहते थे, लेकिन उनके बीच आपसी समझ और गहरी आत्मीयता थी। महात्मा गांधी ने नेहरू को लिखे पत्र में स्पष्ट रूप से कहा था कि वे दोनों एक-दूसरे के बिना नहीं रह सकते, क्योंकि उनके बीच भावनात्मक और वैचारिक संबंध इतने मजबूत थे कि कोई भी मतभेद उसे तोड़ नहीं सकता था। लेकिन सुभाष चंद्र बोस के साथ गांधीजी का ऐसा कोई संबंध नहीं था। जब 1939 में सुभाष चंद्र बोस ने पुनः कांग्रेस अध्यक्ष पद के लिए चुनाव लड़ने की घोषणा की, तो इससे गांधीजी असहज हो गए। उन्होंने बोस के विरोध में एक अन्य उम्मीदवार को समर्थन देने का फैसला किया।¹⁸ सुभाष चंद्र बोस बिना शर्त स्वराज के समर्थक थे और इसके लिए अंग्रेजों के खिलाफ बल प्रयोग को भी आवश्यक मानते थे। यह उनकी विचारधारा को गांधीजी की अहिंसक नीति से बिल्कुल अलग कर देता था। गांधीजी ने स्पष्ट रूप से उनकी अध्यक्षता का विरोध किया, जिससे कांग्रेस के भीतर गहरा विभाजन उत्पन्न हो गया। सुभाष चंद्र बोस ने संगठन की एकता बनाए रखने का प्रयास किया, लेकिन गांधीजी ने उन्हें अपनी अलग कार्यकारिणी बनाने की सलाह दी, जिससे कांग्रेस के भीतर मतभेद और गहरा गए। इस स्थिति ने न केवल सुभाष चंद्र बोस और गांधीजी को, बल्कि सुभाष चंद्र बोस और जवाहरलाल नेहरू को भी अलग कर दिया। कांग्रेस के भीतर यह एक गंभीर वैचारिक टकराव का दौर था। सुभाष चंद्र बोस का चुनावी अभियान हताशा और असंतोष की अभिव्यक्ति बन चुका था। उन्होंने खुद को “नए विचारों, विचारधाराओं, समस्याओं और कार्यक्रमों” का प्रतिनिधि बताया और कहा कि भारत में साम्राज्यवाद विरोधी संघर्ष को देखते हुए कांग्रेस अध्यक्ष पद के चुनाव केवल व्यक्तियों के बीच नहीं, बल्कि ठोस मुद्दों और कार्यक्रमों के आधार पर लड़े जाने चाहिए। उनके इस विचार ने कांग्रेस के भीतर गहरे मतभेदों को और उजागर कर दिया।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के 1939 के अध्यक्षीय चुनाव में सुभाष चंद्र बोस और पट्टाभि सीतारमैया के बीच ऐतिहासिक मुकाबला हुआ। महात्मा गांधी की पहली पसंद मौलाना अबुल कलाम आजाद थे, क्योंकि वे मानते थे कि उनके नेतृत्व से सांप्रदायिक सौहार्द स्थापित करने में मदद मिलेगी। हालांकि, जैसे ही यह स्पष्ट हुआ कि चुनाव होगा, मौलाना आजाद ने अपनी उम्मीदवारी वापस ले ली।¹⁹ इसके बाद, गांधीजी ने पट्टाभि सीतारमैया को उम्मीदवार बनाने का प्रस्ताव रखा और उनके समर्थन के लिए राजेंद्र प्रसाद से संपर्क किया।

पट्टाभि सीतारमैया स्वयं इस विचार के थे कि सुभाष चंद्र बोस का दोबारा कांग्रेस अध्यक्ष बनना अनुचित नहीं है। लेकिन गांधीजी उन्हें अध्यक्ष के रूप में देखना नहीं चाहते थे। जब चुनाव हुआ, तो सुभाष चंद्र बोस ने 29 जनवरी 1939 को 1580 मत प्राप्त कर पट्टाभि सीतारमैया को 1377 मतों के मुकाबले हरा दिया। बंगाल से उन्हें सर्वाधिक 404 मत प्राप्त हुए। इस चुनाव में यू. मुथुरामलिंगम थेवर ने सुभाष चंद्र बोस का खुलकर समर्थन किया और दक्षिण भारत से उनके लिए बड़ी संख्या में वोट जुटाए। गांधीजी ने इस चुनाव परिणाम को व्यक्तिगत रूप से अपनी हार के रूप में देखा। उन्होंने जनवरी 1939 में एक सार्वजनिक बयान जारी किया, जिसमें उन्होंने कहा, “श्री सुभाष बोस ने अपने प्रतिद्वंद्वी डॉ. पट्टाभि सीतारमैया पर निर्णायक जीत हासिल की है। मुझे यह स्वीकार करना चाहिए कि मैं शुरू से ही उनके दोबारा चुने जाने के खिलाफ था और इसके पीछे कई कारण थे, जिन पर चर्चा करना आवश्यक नहीं है। मैं उनके विचारों और घोषणापत्र में प्रस्तुत तर्कों से सहमत नहीं था। मुझे लगता है कि उन्होंने अपने सहयोगियों के बारे में जो बातें कहीं, वे अनुचित और अयोग्य थीं।”²⁰ गांधीजी ने आगे कहा कि जब मौलाना आजाद ने अपनी उम्मीदवारी वापस ले ली, तो उन्होंने स्वयं पट्टाभि सीतारमैया को चुनाव में बने रहने के लिए प्रेरित किया। इसलिए, उन्होंने माना कि यह हार वास्तव में सीतारमैया की नहीं, बल्कि उनकी स्वयं की थी।

राजेंद्र प्रसाद ने इस मुद्दे को वैचारिक टकराव के रूप में देखा। उनके अनुसार, यह महात्मा गांधी की विचारधारा में आस्था रखने वालों और उसका विरोध करने वालों के बीच संघर्ष था। उन्हें चिंता थी कि परिस्थितियाँ इतनी तेजी से बदल सकती हैं कि कांग्रेस को एक नया अध्यक्ष मिल जाए, जो अपनी नीतियाँ और कार्यक्रम निर्धारित कर संगठन को अपने अनुसार दिशा दे सके। उनके लिए यह अत्यंत निराशाजनक था कि पट्टाभि सीतारमैया गांधीवादी विचारधारा के

प्रभावी प्रतिनिधि के रूप में स्वीकार नहीं किए जा सके। उन्होंने इसे अपने समूह की हार के रूप में देखा, भले ही यह प्रतीकात्मक ही क्यों न हो। उनका मानना था कि यदि मौलाना अबुल कलाम आजाद चुनाव लड़ने के लिए सहमत हो जाते, तो उन्हें कांग्रेसजनों का व्यापक समर्थन प्राप्त होता, क्योंकि अधिकांश कार्यकर्ता गांधीवादी सिद्धांतों से भटकना नहीं चाहते थे। लेकिन पट्टाभि सीतारमैया को लोग महात्मा गांधी का प्रतीक नहीं मान सके, जिसके परिणामस्वरूप कांग्रेस का नेतृत्व करने के लिए सुभाष चंद्र बोस भारी बहुमत से विजयी हुए।¹¹ यह घटनाक्रम कांग्रेस पार्टी के भीतर गहरे संकट की शुरुआत थी, जिसने संगठन को वैचारिक और नेतृत्व संबंधी चुनौतियों के भंवर में धकेल दिया।

सुभाष चंद्र बोस ने भारत में रहते हुए कांग्रेस को पूर्ण स्वतंत्रता की मांग करने और एक बड़े पैमाने पर आंदोलन शुरू करने के लिए प्रेरित किया। बोस स्पष्ट रूप से मानते थे कि राजनीतिक मुक्ति केवल प्रभावी साधनों से ही संभव है, चाहे वह सशस्त्र संघर्ष हो या पूर्ण युद्ध। इसके विपरीत, महात्मा गांधी ने स्वराज की अपनी अवधारणा को जनता के बीच लोकप्रिय बनाया, जो उनके व्यक्तित्व में धार्मिकता को प्रमुख रूप से स्थापित करता था। महात्मा गांधी का विश्वास था कि भारत को स्वतंत्रता अवश्य प्राप्त होगी, परंतु उनकी स्वतंत्रता की परिभाषा समय के साथ बदलती रही। 1908 में, उन्होंने “आध्यात्मिक स्वराज” को अपने लक्ष्य के रूप में पहचाना। उनकी इस अवधारणा ने राजनीतिक स्वराज की ठोस मांग को अपेक्षाकृत कमजोर कर दिया। फरवरी 1939 में, जब कांग्रेस अध्यक्ष के रूप में सुभाष चंद्र बोस ने ब्रिटिश सरकार को भारत छोड़ने का अल्टीमेटम देने की मांग की, तो गांधीजी ने कांग्रेस को इसके विरोध में राजी कर लिया। इसके परिणामस्वरूप, बोस को कांग्रेस अध्यक्ष पद से इस्तीफा देने के लिए मजबूर होना पड़ा, जबकि उन्होंने यह पद लोकतांत्रिक रूप से जीता था। इसके बाद, गांधीजी ने ब्रिटिश राष्ट्रमंडल के भीतर रहकर डोमिनियन स्टेट्स (आंशिक स्वतंत्रता) की मांग रखी, हालांकि उनकी आध्यात्मिक स्वराज की अवधारणा अब भी बरकरार रही। 1942 में, जब उन्हें लगा कि द्वितीय विश्व युद्ध में ब्रिटेन पराजित हो सकता है, तो उन्होंने पूर्ण स्वतंत्रता की मांग करते हुए भारत छोड़ो आंदोलन का आह्वान किया। लेकिन जैसे ही युद्ध की परिस्थितियाँ बदलीं, वे पुनः डोमिनियन स्टेट्स की मांग की ओर मुड़ गए। हालांकि, भारत छोड़ो आंदोलन को छोड़कर गांधीजी द्वारा शुरू किए गए अधिकतर आंदोलनों का मुख्य उद्देश्य सामाजिक सुधार, विशेष शिकायतों के समाधान, मुस्लिम खिलाफत और वित्तीय सुधार रहा। गांधीजी और सुभाष चंद्र बोस के दृष्टिकोण भारत की राजनीति और उसके विकास की दिशा को लेकर भिन्न थे। गांधीजी “जड़ों की ओर वापसी” के पक्षधर थे और उन्होंने स्वदेशी, खादी, कताई और ग्राम-आधारित आत्मनिर्भरता को बढ़ावा दिया। इसके विपरीत, सुभाष चंद्र बोस आधुनिक औद्योगीकरण और विज्ञान-आधारित राजनीति के समर्थक थे, जो तर्कसंगत और धर्मनिरपेक्ष हो। इस प्रकार, दोनों नेताओं के विचारधारात्मक मतभेदों ने भारतीय स्वतंत्रता संग्राम की दिशा को विभिन्न मार्गों में मोड़ दिया, जिससे देश की स्वतंत्रता की राह जटिल किंतु समृद्ध हो गई।

निष्कर्ष

1939 का कांग्रेस चुनाव स्वतंत्रता संग्राम की दिशा बदलने वाला एक निर्णायक मोड़ था, जिसने न केवल कांग्रेस के अंदर की राजनीति को प्रभावित किया, बल्कि स्वतंत्रता आंदोलन में विचारधारात्मक विविधता और रणनीतिक मतभेदों को भी उजागर किया। यह वैचारिक मतभेद भारतीय राजनीति में लोकतांत्रिक बहस की परंपरा को भी रेखांकित करते हैं। संक्षेप में इसके समग्र प्रभाव रहा –

1. बोस और गांधी के बीच बढ़ते मतभेदों के कारण कांग्रेस में दो विचारधाराओं का टकराव और अधिक गहरा गया।
2. गांधीजी और वरिष्ठ नेताओं के विरोध के कारण बोस ने अध्यक्ष पद से इस्तीफा दे दिया।
3. बोस ने कांग्रेस के भीतर ही “फॉरवर्ड ब्लॉक” नामक गुट की स्थापना की, जो अधिक क्रांतिकारी और समाजवादी विचारों का समर्थन करता था।
4. यह घटनाक्रम दर्शाता है कि भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन केवल गांधीवादी अहिंसा तक सीमित नहीं था, बल्कि उसमें क्रांतिकारी, समाजवादी और सैन्य दृष्टिकोण भी मौजूद थे।
5. कांग्रेस में विचारधारात्मक बहस को बल मिला।
6. स्वतंत्रता संग्राम का मार्ग अधिक विविध हुआ गांधीजी के नेतृत्व में जनांदोलन और बोस की राह में सशस्त्र क्रांति का प्रयोग।
7. यह घटना भारतीय राजनीति में लोकतांत्रिक प्रक्रिया और वैचारिक स्वतंत्रता का उदाहरण बनी।

संदर्भ सूची:-

1. आर. सी. मजूमदार, स्वतंत्रता के लिए संघर्ष, भारतीय विद्या भवन, बॉम्बे, 1969, पृष्ठ 58.
2. सुभाष चंद्र बोस, भारत का संघर्ष 1920-42, अनुवाद श्रीमती नरेश कौशिक, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली 2023, पृष्ठ 69-70.
3. वही, पृष्ठ 98-99.
4. एस. गोपाल, जवाहरलाल नेहरू: एक जीवनी, खंड ५, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, बॉम्बे, 1976, पृष्ठ 242.
5. सुभाष चंद्र बोस, सुभाष चंद्र बोस के चयनित भाषण, पृष्ठ 17.
6. एच. एन. मित्रा (संपादक), भारतीय वार्षिक रजिस्टर 1919-1947, खंड 1, जियान पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, जनवरी-जून 1939, पृष्ठ 316.
7. डी. जी. तेंदुलकर, महात्मा: मोहनदास करमचंद गांधी का जीवन, खंड ८, प्रकाशन विभाग, टाइम्स ऑफ इंडिया प्रेस, फोर्ट, बॉम्बे, 1952, पृष्ठ 115.
8. भगवान जोश, भारत में आधिपत्य के लिए संघर्ष (1920-1947): औपनिवेशिक राज्य, वामपंथ और राष्ट्रीय आंदोलन, 1934-41, सेज प्रकाशन, नई दिल्ली, 1992, पृष्ठ 75.
9. आर. सी. अग्रवाल, भारत में संवैधानिक विकास और राष्ट्रीय आंदोलन, एस. चंद एंड कंपनी, नई दिल्ली, 1994, पृष्ठ 89.
10. एच. एन. मित्रा (संपादक), भारतीय वार्षिक रजिस्टर 1919-1947, खंड 1, पृष्ठ 321.
11. राजेंद्र प्रसाद, आत्मकथा, एशिया पब्लिशिंग हाउसस मुंबई 1957, पृष्ठ 481.

गांधी दर्शन की साम्प्रतिक उपादेयता: एक समीक्षात्मक अध्ययन

दीपिका कुमारी

शोधार्थी, विश्वविद्यालय दर्शनशास्त्र विभाग, कोल्हान विश्वविद्यालय, चाईबासा, झारखण्ड

क्या सचमुच गांधीवाद वाद है ? यह प्रश्न विवादास्पद है। अगर मोटे तौर पर देखा जाए तो गांधीवाद को वाद की संज्ञा प्रदान करना उचित प्रतीत नहीं होता। स्वयं गांधी भी अपने विचारों एवं कार्य पद्धति को किसी वाद जैसी आदर्श सीमा में बांधना नहीं चाहते थे। गांधी जी प्लेटो, अरस्तू, हॉब्स, लॉक, हीगेल, मार्क्स आदि की तरह शब्द के सामान्यतः स्वीकृत अर्थ में, राजनीतिक विचारक अथवा सामाजिक सिद्धांतकार नहीं हैं, किन्तु उन्होंने सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक विषयों पर अपने विचार प्रस्तुत किए हैं जो 'गांधीवाद' की सामग्री का सृजन करते हैं। दूसरे, गांधीजी संसार में एकमात्र सुविख्यात विभूति हैं जिन्होंने स्वयं को व्यावहारिक आदर्शवादी (कर्मयोगी) सिद्ध किया। अर्थात् उन्होंने जो कहा, उसे किया और इस तरह उच्च तथा भद्र सिद्धांतों को व्यवहार में प्रयोग करने के तथ्य का प्रदर्शन किया जिनके आधार पर इस संसार में एक अच्छे समाज की स्थापना हो सकती है। उनके विचारों की विचित्रता इस तथ्य में निहित है कि वे विशुद्ध रूप में भारतीय हैं जिन्हें उन्होंने पवित्र धर्म ग्रंथों तथा अतीत के महान संतों व नेताओं के कथनों से लिया है। उनकी मृत्यु के उपरांत बड़ी संख्या में उनके अनुयायियों (जैसे विनोबा भावे तथा जयप्रकाश नारायण) ने इन सिद्धांतों का पुनर्कथन एवं उनका विकास किया जिनसे सर्वोदय की चिंतनधारा का विकास हुआ है।

राम-राज्य यानि खुशहाल समाज को स्थापित करने के लिए गांधी द्वारा जिन सिद्धांतों का प्रतिपादन किया गया है तथा उनके द्वारा जिन कार्यों को सम्पादित किया गया है उसे ही गांधीवाद के नाम से जानते हैं। इस तरह गांधीवाद सिर्फ विचारों का पुलिन्दा न होकर व्यावहारिक कार्यों का भी नाम है। अत्यधिक विवेकपूर्ण, आध्यात्मिक तथा तत्वमीमांसक होने के बावजूद राजनीतिक सिद्धांत के क्षेत्र में गांधीजी का अद्वितीय स्थान है। उनके सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक विचारों का मूल्य उन संस्थागत युक्तियों को प्रस्तावित करने में निहित नहीं है जो सामाजिक संघर्षों तथा तनावों को कम करने में सहायक हो सकती हैं, बल्कि यह उन लोगों के लिए स्पष्ट नैतिक लक्ष्यों का प्रावधान करने में निहित है जिन्हें साकार करने की वे आकांक्षा करते हैं। उनका सामाजिक तथा राजनीतिक दर्शन उनके संतों जैसे जीवन के साथ अभिन्न रूप से जुड़ा है और इसी कारण यह कहा जा सकता है कि गांधी जी संतों में राजनीतिज्ञ तथा राजनीतिज्ञों में संत हैं। यह ठीक कहा गया है : “हिन्दू धर्म के समान गांधीवाद एक भावना है, कोई अंधविश्वास नहीं, यह एक मनोवृत्ति है, कोई मतमतांतर नहीं, यह सोचने तथा जीने की एक प्रक्रिया है, न कि एक कसकर बंधा हुआ संगठन। गांधीजी स्वयं गांधीवाद के तृटिपूर्ण अनुयायी हैं, चिंतन रूप में धर्म के श्रद्धालु पुजारी हैं, और फिर भी वह ईश्वर-प्रेम तथा सत्य-प्रेम की निरंतर मृगतृष्णा जैसे आदर्श हैं। अतः गांधीवाद कोई सूत्र नहीं है, यह गांधी का, उनके विशिष्ट उपायों द्वारा मानव जाति तथा भारत की उसकी सेवा में 'ब्रह्म' की प्राप्ति के लिए दिशा निर्देशन करने वाला ईश्वर के प्रति जीवन भर का लगाव है।”

अहिंसा

गांधीजी अहिंसा की धारणा को व्यापक अर्थ प्रदान किया है। इसे महात्मा बुद्ध या महावीर जैसे महापुरुषों के व्यक्तिगत प्रेरक तत्व तथा कार्य का सिद्धांत मानने के स्थान पर, उन्होंने इसे प्रत्यक्ष सामूहिक कार्यवाही की एक सफल तकनीक में परिवर्तित किया। यहाँ हम अहिंसा के व्यक्तिवादी संदेश को दोहरे परिवेश-व्यक्तिगत व संस्थागत-में परिवर्तित हुआ देखते हैं। बुरे विचार, बदले की भावनाएँ, निर्दयता, मौखिक झगडालूपन, अनावश्यक वस्तुओं का संग्रह, असत्य, जालसाजी, षड्यंत्र, छल-कपट, धोखेबाजी, आर्थिक शोषण तथा दूसरों का गला दबाना, आवश्यकता से अधिक स्पर्धा तथा विनाशकारी प्रतियोगिता आदि व्यक्तिगत स्तर पर हिंसा के उदाहरण हैं। इसी प्रकार, शारीरिक दण्ड, अनिवार्य सैनिक सेवा, सशस्त्र सेनाओं में अनिवार्य भर्ती, युद्ध आदि संस्थागत स्तर पर हिंसा अर्थात् राज्य द्वारा की गई हिंसा के उदाहरण हैं। गांधीजी की अहिंसा की धारणा की महत्वपूर्ण विशेषताओं को इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है:

1. अहिंसा का अर्थ है दूसरों को हानि अथवा चोट न पहुँचाना। परन्तु व्यापक अर्थ में इसका निहितार्थ है बुरा काम करने से बचने की बजाय दूसरों का भला करने का सकारात्मक गुण होना। इसका लक्ष्य है शत्रु से प्रेम करना तथा शत्रु पर बलपूर्वक अपनी इच्छा थोपने के स्थान पर उसे प्रेम से जीतना। इसका आशय है सक्रिय रूप में सभी के प्रति सद्भावना रखना।
2. मानव को सामान्यतया हिंसा करने से बचना चाहिए, किन्तु कभी ऐसी स्थिति हो सकती है जिसमें हिंसा करना अहिंसा के पालन करने की तरह हो सकता है। अपना जीवन व मान बचाने का हर व्यक्ति को अधिकार है। यदि कोई पागल व्यक्ति अपने हाथ में तलवार लेकर अन्य लोगों को चोट पहुँचाने या उनकी हत्या करने लगे तो उसे पीटना या उसे मार देना अहिंसा का काम होगा। यही बात देश पर लागू होती है। हर देश को यह अधिकार प्राप्त है कि वह अपने अस्त्रों-शस्त्रों के प्रयोग से अपने शत्रु से निपटे और उसे पराजित करे।
3. इसी तरह अहिंसा का मतलब है कि किसी अन्य व्यक्ति के शरीर को चोट न पहुँचाए, लेकिन अगर कोई ऐसी स्थिति आ जाए तब किसी जीव को बचाने या उसके असहनीय कष्ट का उपचार करने का कोई संभव तरीका न हो तो उस जीव को मार डालना ही अहिंसा का काम होगा। अहिंसा की कोटि में यदि मानव के किसी काम को रखना है तो उसके मन्तव्य तथा कृत्य दोनों को ध्यान में रखना जरूरी है।

4. अहिंसा निर्बल का यंत्र नहीं है, यह सबल का यंत्र है। तलवार लेकर चलना कायरता का प्रतीक है, अहिंसा का पालन करना वीरता की पराकाष्ठा है। कायर अपने जीवन को कभी खतरे में नहीं डालना चाहता। मनुष्य अपने जीवन को जितना अधिक समर्पित करेगा, उतनी अधिक वह उसकी सुरक्षा कर सकेगा।
5. उस हिंसा को त्यागने का प्रयास अहिंसा है जो मानव के जीवन में अपरिहार्य है। अहिंसा की विशेषता जो हमें मार्ग पर आगे बढ़ा सकती है, वह स्वतः पैदा होनी चाहिए, यथासंभव न्यूनतम होनी चाहिए, उसकी जड़ें सहानुभूति में गढ़ी होनी चाहिए, और हमें सदैव भलाई के मार्ग पर ले जाने वाली होनी चाहिए।

इस तरह यद्यपि महात्मा बुद्ध, महावीर स्वामी तथा ईसा मसीह ने अहिंसा के सिद्धांत पर बल दिया है, गांधीजी की व्याख्या सभी से भिन्न है। चाहे कोई भी स्थिति हो, ईसाई धर्म हर प्रकार के प्रतिरोध को अमान्य ठहराता है, किंतु गांधीजी की अहिंसा का सिद्धांत विनयशील स्वभाव है। इसके पक्ष में हम निम्न कारण प्रस्तुत कर सकते हैं :

1. हिंसा से अहिंसा को उत्तम माना जाता है क्योंकि यह प्रेम की अभिव्यक्ति है जो दण्ड को विरोधी पर आरोपित करने की अपेक्षा उसे अपने लिए स्वीकार कर लेती है। ऐसा आत्म-बलिदानी प्रेम विवाद में त्रस्त दोनों पक्षों—नैतिक व मनोवैज्ञानिक दृष्टि से कष्ट पीड़ित के लिए तथा विरोधी को मनाने व उसका हृदय जीतने के लिए—की मुक्ति का साधन बन जाता है।
2. यह व्यक्ति को उसकी इच्छा के विरुद्ध दबाने की अपेक्षा उसकी आत्मा तथा बेहतर संवेगों को आकर्षित करके उसे मनाने का प्रयास करती है। इस प्रकार, विरोधी की स्वतंत्रता तथा प्रतिष्ठा के प्रति सम्मान दिखाया जाता है तथा हिंसा की शृंखला-घृणा से उत्पन्न होने वाली घृणा, हिंसा का बदला लेने के लिए हिंसा—हट जाती है।
3. क्योंकि यह भौतिक बल की अपेक्षा आध्यात्मिक अथवा आत्मा का बल है, अतः पूर्वोक्त को बर्बरों की विधि जबकि उत्तरोक्त को सभ्य मानवों की विधि माना जाता है।
4. अहिंसा के पालन को अधिकतर पवित्र आदेश अथवा धार्मिक विश्वास माना जाता है।

जिस रूप में गांधीजी ने उसका प्रचार किया तथा उस पर आचरण किया, इसे इस प्रकार सार रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है : “एक नेता तथा विचारक के रूप में गांधीजी की महानता उनके द्वारा अहिंसा के व्यक्तिवादी संदेश को प्रत्यक्ष सामूहिक कार्यवाही की एक सफल तकनीक में परिवर्तित करने में निहित है। अहिंसा केवल दूसरों का मन दुखाने या हानि पहुंचाने या चोट पहुंचाने से दूर रहने का नकारात्मक कार्य नहीं, बल्कि वास्तव में यह सकारात्मक आत्म-त्याग तथा रचनात्मक कष्ट सहने के प्राचीन नियम का प्रतिनिधित्व करती है। अहिंसा परमावश्यक रूप में ईश्वर के सत्य का अभिन्न अंग है।...अहिंसा का सामाजिक प्रयोग आध्यात्मिक तत्त्वज्ञान तथा सामाजिक दयालुता में वृद्धि की निहित आवश्यकता की स्वीकृति के आधार पर स्वतः सिद्ध है। जीवन के प्रति प्रेम तथा सम्मान के नियम को यदि साहसपूर्वक व्यवहार में लाया जाए तो अनिवार्य रूप में इसके राजनीति तथा सभ्यता के स्वर, गुणवत्ता तथा चरित्र उन्नत होंगे। .. अतः राजनीति का गांधीवादी दर्शन एक महत्वपूर्ण घटक के रूप में प्रेम की आग्रहपूर्ण, वश में करने वाली, दृढ़ शक्ति पर बल देने में निहित है जो बल-रहित परिवर्तन के माध्यम से समूहगत तथा राष्ट्रीय तनावों व संघर्षों का समाधान कर सकती है।”

निम्न आधारों पर गांधीजी की अहिंसा की धारणा की आलोचना की जा सकती है :

1. दरअसल अहिंसा की धारणा इतनी आध्यात्मिक है कि राजनीति के क्षेत्र में वह अर्थपूर्ण नहीं हो सकती जहां हिंसा का सहारा लेना प्रायः एक आवश्यकता बन जाती है। केवल इसे सीमित क्षेत्र तक व्यवहार में लाया जा सकता है। राजनीति के सैद्धांतिक क्षेत्र में गांधी जी की धारणा अधिक प्रासंगिक है, राजनीति के व्यावहारिक क्षेत्र में मेक्यावेली तथा हॉब्स के नियम अपनी प्रासंगिकता रखते हैं और इस यथार्थ का खण्डन नहीं किया जा सकता।
2. अहिंसा का सिद्धांत यद्यपि इतना व्यापक है कि वह अनेक दिशाओं को समाहित कर सकता है परन्तु यह इतना संकुचित भी है कि यह उन्हें आकर्षित नहीं कर सकता जिन्हें ईश्वर में विश्वास नहीं है अथवा जो किसी धर्म में विश्वास नहीं रखते। नास्तिकों को भी यह प्रभावित नहीं कर सकता जो धर्म को ‘लोगों की अफीम’ कहकर अस्वीकार करते हैं, ईश्वर के अस्तित्व को अस्वीकार करते हैं, तथा व्यक्ति को धर्म के फंदे से मुक्त करना चाहते हैं।
3. गांधीजी का यह कहना है कि अहिंसा की उनकी धारणा राष्ट्रीय व अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्रों में प्रासंगिकता रखती है, यह कहा जाता है कि अंतर्राष्ट्रीय राजनीति के क्षेत्र में इसकी कोई सार्थकता नहीं है। 1940 में ब्रिटिश शासन ने गांधीजी के इस सुझाव को रद्द कर दिया कि विश्व युद्ध अहिंसात्मक साधनों से लड़ा जाए। यहां तक कि गांधी जी के एक प्रशंसक का कहना है : “विश्व कूटनीति में अहिंसा के प्रयोग के सुझावों में से कुछ सुझाव मुझे अयथार्थवादी तथा असंतोषजनक दिखायी देते हैं।”

सत्याग्रह

सत्याग्रह का शाब्दिक अर्थ होता है—सत्य पर आग्रह। इस सत्याग्रह का प्रयोग अत्याचार के विरोध के लिए किया जाता है। असत्य को सत्य से जीतने के लिए तथा घृणा को प्रेम में बदलने के लिए इसका प्रयोग किया जाता है। गांधी के अनुसार—सत्याग्रह वह सुधार का माध्यम या तरीका है जिससे हर प्रकार के सुधार किये जा सकते हैं। अहिंसा की तरह, सत्याग्रह की धारणा के भी अत्यधिक व्यापक निहितार्थ हैं। यह सत्य के लिए नैतिक दबाव है। यदि सत्य

अन्तिम वास्तविकता है तो इसके समर्थन के लिए इसके सभी अतिक्रमणों का प्रतिरोध करना चाहिए। गांधीजी के अनुसार, अहिंसा द्वारा सत्य की प्राप्ति के लिए अथक प्रयास करना सत्याग्रही का परमावश्यक कर्तव्य है। जैसा प्रो. वर्मा का मत है : “यह सत्य, जो ईश्वर है, की वास्तविकता, गंभीर तथा निष्ठापूर्ण खोज का प्रतीक है। इसका अर्थ राजनीतिक व आर्थिक प्रभुत्वशाली के विरुद्ध मानवीय आत्मा की शक्ति की प्रबल अभिव्यक्ति है। सत्याग्रह मानवीय आत्मा की महिमा की पुनः स्थापना है। अन्तःकरण भीतरी भावना चक्र अथवा विश्व से पलायन का प्रतीक नहीं है। अन्तःकरण सामाजिक भलाई के लिए संघर्ष को नया बल प्रदान करता है। सत्याग्रह ईश्वरीय न्याय तथा औचित्य की अंतिम विजय के अभेद्य विश्वास पर आधारित है।”

सत्याग्रह के सिद्धांत के प्रमुख लक्षण निम्न हैं :

1. गांधी के अनुसार जब कोई व्यक्ति किसी निरंकुश सत्ता का विरोध सत्य व अहिंसा के नियमों का पालन करते हुए करता है तो वह कोई साधारण व्यक्ति नहीं बल्कि सत्याग्रही होता है। सत्याग्रह अन्याय तथा दमन के सभी रूपों के विरुद्ध आत्मा की शक्ति की कार्यवाही का प्रतीक है। यह विरोधी के प्रति ईर्ष्या या घृणा की अनुमति नहीं देता क्योंकि विरोधी का हृदय परिवर्तन किया जाना है, उसका दमन करना नहीं। वीरतापूर्ण विनम्र व्यक्ति का सक्रिय अहिंसात्मक प्रतिरोध मन को छू लेता है, क्योंकि यह प्रेम द्वारा हृदय परिवर्तन की सौम्य प्रक्रिया का निर्माण करता है। इस कारण यह व्यक्ति का अन्तर्निहित जन्मसिद्ध अधिकार है। परन्तु इसका प्रयोग आत्म-अनुशासन तथा सभी प्रकार के कष्टों को सहने के लिए तैयार रहने की अपेक्षा करता है।
2. इसका संचालन दोमुखी वरदान है। यह दो धारों वाली तलवार के समान है जो हत्यारे तथा जिसकी हत्या की जाए दोनों के लिए कल्याणकारी है। यदि यह विधि याचक के चरित्र को ऊपर उठाती है, तो यह विरोधी के हृदय को भी परिवर्तित करती है। यदि यह कष्ट सहने वाले की आत्मा का शुद्धिकरण करती है, तो यह अनुकूल जनमत को भी अपने अनुरूप बनाती है। यह दमनकारी की आत्मा पर प्रत्यक्ष प्रभाव डालती है।
3. सत्याग्रह शक्तिशाली का अस्त्र है, निर्बल का नहीं। अत्याचार का मूक दर्शन बने रहना तथा असत्य को सत्य पर विजय पाने की अनुमति देना सत्याग्रह की शक्ति का निषेध करना है। कायरता के लिए इसमें कोई स्थान नहीं है तथा यदि कायरता व हिंसा में से एक को चुनना पड़े, तो गांधीजी हिंसा को पसंद करेंगे क्योंकि हिंसा का प्रयोग कायरता की स्थिति को हटा देता है।
4. अप्रत्यक्ष प्रतिरोध के उपाय का समरूपी सत्याग्रह की धारणा को नहीं मानना चाहिए जैसा क्वैकर्स ने कहा तथा श्री अरबिंद ने वर्तमान शताब्दी के प्रथम दशक में बंग-भंग (बंगाल के विभाजन-विरोधी आंदोलन) के दिनों में सुझाव दिया। अप्रत्यक्ष प्रतिरोध शत्रु का सामना करने का अस्त्र है, परन्तु यह न तो शुद्ध व पवित्र हृदय रखने की आवश्यकता पर बल देता है, न राजनीति के अतिरिक्त किसी अन्य स्तर पर इसकी कल्पना की जा सकती है। परन्तु सत्याग्रह पवित्र हृदय के अस्तित्व की पूर्व-कल्पना करके चलता है तथा इसका प्रयोग सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक किसी भी स्तर पर किया जा सकता है। जैसा गांधी जी ने कहा है : अप्रत्यक्ष प्रतिरोध से सत्याग्रह उतना ही भिन्न है जितना दक्षिणी ध्रुव उत्तरी ध्रुव से। उपरोक्त की कल्पना कमजोरों के अस्त्र के रूप में की गयी है तथा यह लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए भौतिक बल अथवा हिंसा के प्रयोग से मुक्त नहीं, जबकि पूर्वोक्त की कल्पना अधिकतम शक्तिशालियों के अस्त्र के रूप में की गयी है तथा यह हर रूप में हिंसा के प्रयोग को बहिष्कृत करता है।
5. कोई भी रूप सत्याग्रह का प्रयोग ले सकता है जैसे हड़ताल, असहयोग, धरना, उपवास, सविनय अवज्ञा, ‘काले करों’ का भुगतान न करना, अवैतनिक पदों तथा उपाधियों का त्याग करना, सरकारी उत्सवों व कार्यों में भाग न लेना, विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार तथा हिकारत अथवा चरम अन्याय के स्थान का त्याग करना। परन्तु आवश्यक यह है कि सत्याग्रह के सभी रूपों को अहिंसा के प्रयोग में समर्थित होना चाहिए।

कुछ आधारों पर गांधीजी के सत्याग्रह संबंधी मत की आलोचना की जा सकती है। यह अत्यधिक आध्यात्मिक यहाँ तक कि तत्त्वमीमांसीय है जिसके सभी निहितार्थों को औसत बुद्धि का व्यक्ति शायद नहीं समझ सकता। सी.एम. कैस ने इस बात की ओर संकेत किया है कि सैद्धांतिक रूप में सत्याग्रह एक श्रेष्ठ विधि हो सकता है। यह व्यवहार में अत्यधिक आदर्शवादी है क्योंकि यह प्रबल आत्म-नियंत्रण, प्रयोजन की अधिक स्थायी एकता, मूक कष्ट सहन की उच्चतर क्षमता और जितना मानवों ने अब तक प्राप्त किया है उससे अधिक उच्च नैतिक विकास की मांग करता है। किसी प्रकार का बल प्रयोग गांधीजी नहीं चाहते, परन्तु कोई सत्याग्रही ऐसी स्थिति उत्पन्न कर सकता है जिसमें दूसरा पक्ष ऐसा अनुभव करे। टकराव की उस स्थिति में क्या होगा जब ‘न्याय’ के लिए दोनों पक्ष सत्याग्रह करने लगे तथा दोनों यह दावा करें कि उनका पक्ष सत्य तथा आत्मा के बल पर आधारित है। अतः कैस ने सत्याग्रह के विभिन्न उपायों को बल प्रयोग का उदाहरण माना है, “क्योंकि उनमें कष्ट सहन, स्व-आरोपित होने पर भी, विरोधी के मन में दुविधा उत्पन्न करने का लक्ष्य रखता है। दोनों में से कोई भी विकल्प उसकी इच्छाओं अथवा उसकी निर्णय बुद्धि को अच्छा नहीं लगता, फिर भी स्थिति से विवश होकर उसे उनमें से एक को चुनना पड़ता है।

न्यास का सिद्धांत

सापेक्षिक आर्थिक समानता तथा निजी सम्पत्ति पर अंकुश के लिए गांधी जी न्यास का सिद्धांत प्रतिपादित करते हैं। गांधीवाद न तो पूंजीवाद है, न समाजवाद, यह दोनों का मिश्रण भी नहीं है। दोनों व्यवस्थाएँ जिस रूप में पश्चिमी देशों में विकसित हुई, उनकी अपनी-अपनी सीमाएँ हैं। ऐसी स्थिति में कोई तीसरी विधि होनी चाहिए। न्यास की व्यवस्था यह चाहती है कि संपत्ति व्यक्ति के निजी नियंत्रण में रहे, परन्तु वह स्वयं को उसका संरक्षक माने, उसका स्वामी नहीं। यह ईशोपनिषद् में प्रस्तुत अपरिग्रह के आदर्श पर आधारित है। यह ‘भागवत’ के आदर्श के भी अनुकूल है जिसकी यह मान्यता है कि हमारा दावा केवल उतने पर ही हो जो हमारी भूख शांत करे, अन्यथा उससे अधिक की इच्छा रखना चोरी के समान है जो दण्डनीय है। ‘भगवद्गीता’ के प्रति अपने ऋण को

स्वीकार करते हुए गांधीजी ने एक बार कहा : “मैं गीता के अपरिग्रह के उपदेश का यह अर्थ समझता हूँ कि जो मुक्ति की कामना करते हैं उन्हें न्यासियों की भांति आचरण करना चाहिए, जो महान संपत्तियों पर नियंत्रण रखते हुए भी उनमें से लेशमात्र को भी अपनी वस्तु न समझे।” कुछ महत्वपूर्ण निहितार्थ न्यास के इस सिद्धांत के हैं। प्रथम, यह व्यक्ति की आवश्यकताओं से अधिक धन तथा कमाई के अर्जन पर लागू होता है। यह चाहता है कि अतिरिक्त धन-वैभव को न्यास की धरोहर समझा जाए। आदर्श राज्य में आर्थिक समानता का आदर्श भी इसका निहितार्थ है। दूसरे, इसका आशय पुरस्कारों की समानता नहीं, बल्कि अधिकारों की समानता है। अधिक क्षमता सम्पन्न लोगों को अधिक धनराशि रखने का अधिकार है। गांधीजी लोगों की बौद्धिक उपलब्धियों को कुठित नहीं करना चाहते तथा उन्होंने समाज के हित में अपनी क्षमता का पूरा उपयोग करने की अनुमति दी है। तीसरे, यह निजी सम्पत्ति के राष्ट्रीयकरण अथवा उसके उन्मूलन को अस्वीकार करता है। इसके स्थान पर वह हृदय या मनोवृत्ति का परिवर्तन चाहता है। सम्पत्ति स्वामियों को जो कुछ उनके पास है उस का परम स्वामी नहीं समझना चाहिए, इसके स्थान पर उन्हें स्वयं को सामाजिक सम्पत्ति का संरक्षक अथवा अपनी सम्पत्ति का समग्र समाज के लिए उपयोग करने वाला न्यासी मानना चाहिए। चौथे, गांधीजी आधुनिक पूंजीवादी व्यवस्था के पक्ष में नहीं हैं क्योंकि उन्होंने उत्तराधिकार के नियम को अस्वीकार किया है। न्यासी अथवा उसके उत्तराधिकारी के चुनाव को समाज का अंतिम अनुमोदन प्राप्त होना चाहिए। न्यासी की सम्पत्ति का दुरुपयोग होने पर राज्य की कार्यवाही द्वारा उसे ठीक किया जाना चाहिए। निजी संपत्ति की व्यवस्था के विनियमन के लिए राज्य कोई कानून बना सकता है, अथवा वह हिंसा के न्यूनतम प्रयोग से उसका उन्मूलन भी कर सकता है।

समसामयिक समाज में गांधीजी की न्यास संबंधी धारणा अव्यावहारिक एवं अप्रासंगिक लगती है। कोई आलोचक यह कह सकता है कि गांधीजी की न्यास व्यवस्था की धारणा स्वप्नलोकीय है। मानव में धन के प्रति इतना गहरा लगाव है कि मैक्यावली के शब्दों में, वह यह भूल सकता है कि उसके पिता की हत्या किसने की, परन्तु यह नहीं भूल सकता कि उसकी सम्पत्ति को किसने हड़प लिया। इसे निजी सम्पत्ति की व्यवस्था का आदर्शवादी समर्थन माना जा सकता है। इस प्रकार के विचार का प्रजातांत्रिक समाजवादी उपहास करेगा तथा वह, लास्की की तरह, स्पष्ट रूप में सार्वजनिक सम्पत्ति पर राज्य के नियंत्रण के उपाय का समर्थन करेगा, जबकि एक साम्यवादी इसे स्वप्नलोकीय समाजवाद के सूत्र के रूप में अस्वीकार करेगा।

साध्य तथा साधन

साधन तथा साध्य आंगिक रूप में गांधीजी की दृष्टि में एक दूसरे के साथ इस सीमा तक जुड़े हैं कि उत्तरोक्त पूर्वोक्त में से ही उत्पन्न होते हैं। उन्होंने मैक्यावलीवादियों तथा मार्क्सवादियों की इस धारणा को अस्वीकार किया है कि ‘साध्य साधनों का औचित्य निर्धारित करते हैं’। इसके स्थान पर उन्होंने इस पर बल दिया है कि ‘जैसे साधन वैसा साध्य’। उनके शब्दों में, “साधनों की तुलना बीज से की जा सकती है, साध्य की पेड़ से तथा साधनों व साध्य के बीच वैसा ही अभेद्य संबंध है जैसा बीज व पेड़ में है।”

इसी कारण उन्होंने फरवरी 1922 के प्रारंभ में असहयोग आंदोलन को उस समय तत्काल स्थगित कर दिया जब सत्याग्रह करने वालों ने चौरी-चौरा के पुलिस थाने को जलाने का कार्य किया जिसमें कुछ हत्याएं हो गईं। इस बात पर गांधी जी बल देते हैं कि राज्य अपने आदर्श चरित्र को तब तक प्राप्त नहीं कर सकता जब तक कि उसके साधन हिंसा से दूषित हैं। उन्होंने कहा : ‘मेरे विचार में अहिंसा स्वराज से पहले हैं। दोनों के बीच संबंध इतना घनिष्ठ है कि यदि कोई व्यक्ति साधनों का ध्यान रखता है तो साध्य अपना ध्यान स्वयं रखेगा। लक्ष्य की प्राप्ति का अनुपात साधनों के अनुपात में ही होता है। उन्होंने कहा है कि ‘स्वराज को पाने का प्रयास ही स्वयं स्वराज है।’

इसका अभिप्राय है कि गांधीजी की व्यवस्था में साध्य तथा साधन अंतःसंबंधित और अन्तःपरिवर्तनशील शब्द हैं। ‘जिन साध्यों की मानवीय मामलों में इच्छा की जाती है वे विकास के विषय हैं तथा अपरिहार्य रूप में उन साधनों को समाहित तथा अंगीकार करते हैं जिनका प्रयोग उन्हें उत्पन्न करने के लिए किया जाता है, ठीक उसी प्रकार जैसे पौधा, जल, खनिजों तथा सूर्य की धूप की शक्ति को समाहित करता है जो स्वयं उसके विकास के साधन हैं।

अन्तर्राष्ट्रवाद

गांधी जी का राष्ट्रवाद संकीर्ण एवं उग्र राष्ट्रवाद न होकर व्यापक एवं सहिष्णु राष्ट्रवाद है। वे अन्तर्राष्ट्रीयवाद में राष्ट्रवाद को शामिल करना चाहते थे। इस तरह गांधीजी केवल सच्चे राष्ट्रवादी ही नहीं, वे अंतर्राष्ट्रवादी भी हैं। उनके आंदोलन के पीछे त्याग की यह भावना निहित है कि मानव को अपने राज्य (राष्ट्र) से आगे जाकर संपूर्ण मानव जाति से प्यार करना चाहिए। आत्म-बलिदान का तार्किक निष्कर्ष यह है कि व्यक्ति को समुदाय के लिए, समुदाय को जिले के लिए, जिले को प्रांत के लिए, प्रांत को देश के लिए, तथा देश को सम्पूर्ण विश्व के लिए बलिदान करना चाहिए। अतः व्यक्ति अपने पड़ोसियों तथा मानवता की एक साथ सेवा कर सकता है बशर्ते कि पड़ोसियों की सेवा किसी भी प्रकार से स्वार्थपूर्ण या एकांतिक न हो। आत्म-बलिदान की भावना का यह निहितार्थ है कि विपत्ति के समय अन्य राष्ट्रों की सहायता करना राष्ट्र के लिए अनिवार्य है। गांधीजी ने अंध व उग्र राष्ट्रवाद के विषय को अस्वीकार किया है जो विश्व के विभिन्न लोगों के बीच दीवारें खड़ी करता है तथा जो शस्त्रबल द्वारा उन्हें अपने मतभेदों का समाधान करने के लिए प्रेरित करता है। अतः उन्होंने कहा है : ‘राष्ट्रवाद बुराई नहीं, यह तो संकीर्णता, स्वार्थ तथा पृथक्वाद का आधुनिक राष्ट्रों का विषय है जो बुराई है।’

धर्म तथा राजनीति

गांधीजी द्वारा सत्य, अहिंसा, ईमानदारी, नैतिकता, परोपकार, सादगी, सदाचार इत्यादि मानवीय मूल्यों का राजनीति में समावेश करना राजनीति का आध्यात्मिकरण है क्योंकि गांधीजी का सत्य व अहिंसा में विश्वास था, अतः उन्होंने राजनीति को अभिन्न रूप में धर्म की शक्ति से जुड़ा हुआ देखा है। गांधी का कहना है : “मेरी दृष्टि में धर्म के बिना कोई राजनीति नहीं। धर्म के बिना राजनीति मौत का जाल है जो आत्मा की हत्या कर देता है।” इसी कारण,

उन्होंने नास्तिकवाद की नीति पर आधारित सभी समकालीन दर्शनों की निन्दा की है। परन्तु इस दिशा में गांधीजी के आशय को ठीक प्रकार से समझना चाहिए। उनका चिंतन धर्म के प्रति रूढ़िवादी नहीं है जैसा हम कट्टरपंथियों के बारे में देखते हैं। उनके विचार में सच्चे धर्म का निहितार्थ अडिग रूप में मानव के नैतिक मूल्यों पर बल देना है। धर्म का अर्थ है ईश्वर के अस्तित्व में दृढ़ विश्वास तथा सम्पूर्ण मानव जाति के प्रति प्रेम। कोई व्यक्ति हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, अथवा किसी भी धर्म अथवा किसी भी संप्रदाय का हो सकता है, परन्तु उसका ईश्वर में विश्वास तथा मानवमात्र के प्रति प्रेम अडिग होना चाहिए। अतः मानव का व्यवहार सच्चे धर्म के सिद्धांतों द्वारा प्रेरित होना चाहिए। एक अवसर पर उन्होंने कहा : “स्वयं धर्म को इस समाज से उखाड़ फेंकने का प्रयास जंगली हंस का पीछा करने की तरह है। यदि ऐसा प्रयास सफल हो जाए तो उसका अर्थ होगा समाज का विनाश।”

स्पष्टतया, गांधीजी धार्मिक धर्मनिरपेक्षवादी हैं। धर्म उनके विचार में एक पवित्र शक्ति का पर्यायवाची है जिससे मानव के सारे कार्य प्रेरित होना चाहिए। धर्म की शक्ति से तीक्ष्ण हुए बिना अहिंसा तथा सत्याग्रह की तकनीकों का सफलतापूर्वक प्रयोग नहीं किया सकता। सच्ची धार्मिक अभिवृत्ति का अर्थ है स्वधर्म की स्वेच्छापूर्वक स्वीकृति तथा उसकी उत्साहपूर्ण पूर्ति।

स्वराज

तिलक ने नारा दिया- ‘स्वराज हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है’। दूसरों ने अनेक बार इसे दोहराया। परन्तु गांधीजी के विषय में स्वराज का सम्पूर्ण अर्थ अहिंसा तथा सत्याग्रह के साधनों से स्वतंत्रता की प्राप्ति के साथ जुड़ा हुआ है। यही कारण है कि उन्होंने 1922 के असहयोग आंदोलन को एकदम स्थगित कर दिया। दूसरे, गांधीजी ने भी स्वराज की व्याख्या ‘यदि संभव हो तो ब्रिटिश साम्राज्य के भीतर तथा आवश्यक हो तो उससे बाहर’ स्वतंत्रता के रूप में की। इसका अर्थ था कि 1920 में उन्होंने विदेशी शासन को स्पष्ट रूप में ‘शैतान का शासन’ कहा, परन्तु यदि ब्रिटिश शासन तथा भारत की स्वाधीनता के बीच सम्मानपूर्ण साझेदारी का कोई रूप निर्मित किया जा सकता तो अंग्रेज लोगों से सुलह करने में उन्हें कोई संकोच नहीं होता। उन्होंने एक अवसर पर कहा : “इस (स्वराज) का अर्थ है ऐसी दशा जिसमें हम अंग्रेजों की उपस्थिति के बिना अपना पृथक अस्तित्व बनाए रह सकते हैं। यदि यह साझेदारी होनी है तो यह साझेदारी सहमति पर निर्भर होनी चाहिए।” परन्तु गांधीजी की व्यवस्था में ‘स्वराज’ शब्द का एक तत्त्वमीमांसीय निहितार्थ भी है। यह एक आदर्श समाज में मानव जीवन की परिकल्पित दशा का नाम है जिसमें हर व्यक्ति सत्ता के दुरुपयोग का प्रतिरोध करने की क्षमता से युक्त है अर्थात् स्वराज रामराज का समरूपी बन जाता है।

स्वदेशी

तिलक आदि कई नेताओं ने विदेशों में बनी वस्तुओं का बहिष्कार करने का आंदोलन चलाया तथा उनके स्थान पर देश में बनी वस्तुओं के प्रयोग का आग्रह किया। शुरू के राष्ट्रवादी नेताओं द्वारा ब्रिटिश साम्राज्यवाद की अर्थव्यवस्था अथवा उसकी रीढ़ की हड्डी को तोड़ने के लिए प्रयोग में लाया गया यह अत्यधिक शक्तिशाली यंत्र था। परन्तु गांधीजी ने इसे असहयोग की विधियों में से एक विधि के रूप में अपनाया जिसमें स्वदेशी तथा बहिष्कार आंदोलन के मूल तत्व शामिल हैं। चरखा चलाने तथा खादी पहनने पर उनका बल स्वदेशी आंदोलन की भावना के अनुकूल था। परन्तु यहां जो बात वास्तव में महत्वपूर्ण है वह यह है कि गांधीजी ने इस शब्द को इस रूप में विकसित किया कि वह उससे कहीं अधिक अर्थपूर्ण हो गया जो हम उनके पूर्ववर्तियों के बारे में नहीं देखते। यह उनके इस कथन से स्पष्ट है : “बहुत सोचने के बाद मैं स्वदेशी की एक परिभाषा तक पहुंचा हूँ जो शायद मेरे अभिप्राय को सबसे अच्छे रूप में प्रदर्शित करती है। स्वदेशी हमारे भीतर वह भावना है जो हमें अपने तत्काल निकट के परिवेश का उपयोग करने व उसकी सेवा करने किंतु अधिक दूर की वस्तुओं को त्यागने पर जोर देती है। अतः जहां तक धर्म का संबंध है, इस परिभाषा की आवश्यकताओं को संतुष्ट करने के लिए मुझे अपने पैतृक धर्म तक स्वयं को सीमित रखना चाहिए। यही मेरे तत्काल निकट धार्मिक परिवेश का उपयोग है। यदि मैं इसे दोषपूर्ण पाता हूँ तो मुझे इसके दोषों को दूर करके उसकी सेवा करनी चाहिए। राजनीति के क्षेत्र में मुझे स्वदेशी संस्थाओं का उपयोग करना चाहिए तथा उनके प्रभावित दोषों से उन्हें मुक्त कर उनकी सेवा करनी चाहिए। आर्थिक क्षेत्र में, मुझे केवल उन वस्तुओं का उपयोग करना चाहिए जो मेरे निकट पड़ोसियों द्वारा पैदा की जाती हैं तथा उन उद्योगों को कार्यकुशल व पूर्ण बनाकर उनकी सेवा करनी चाहिए जहां उनमें इनका अभाव दिखाई देता हो।”

संदर्भ

1. चम्पारण में महात्मा गांधी, लेखक - राजेन्द्र प्रसाद।
2. महामानव महात्मा गांधी, लेखक - चन्द्रशेखर शास्त्री।
3. महामानव महात्मा गांधी एक विमर्श, लेखक - ज्ञानेन्द्र रावत।
4. राष्ट्रपिता महात्मा गांधी, लेखक - लालबहादुर सिंह चौहान।
5. महात्मा गांधी और अहिंसा, लेखक- रविन्द्र कुमार।
6. महात्मा गांधी और हिन्द स्वराज, लेखक - ज्ञानेन्द्र रावत।
7. महात्मा गांधी एक अवलोकन, लेखक - मनोज कुमार सिंह।
8. महात्मा गांधी जीवन चरित कोश, लेखक - उषा दत्त।
9. महात्मा गांधी एक विचार, लेखक - आर. के. प्रभु।

शैक्षिक नीतिशास्त्र का स्वरूप और विचार

रसीदा खातुन

शोधार्थी, विश्वविद्यालय दर्शनशास्त्र विभाग, कोल्हान विश्वविद्यालय, चाईबासा, झारखण्ड

शोध सारांश

जीवन के चक्र को सुचारू रूप से चलाने के लिए शिक्षण व प्रशिक्षण अतिआवश्यक है, बिना शिक्षा के जीवन अन्धकारमय है, शिक्षा ही हमारे जीवन को प्रकाशित करती है और प्रवाहमान बनाती है। किन्तु शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जो मानव के लोक जीवन को प्रकाशित और खुशहालमय बनाते हुए परम पुरुषार्थ मोक्ष की प्राप्ति में भी सहायक हो। शिक्षा मनुष्य के आत्मिक व वाह्य शक्तियों को प्रगतिशील और सुव्यवस्थित करती है और तन, मन और इच्छाओं को उचित स्थान देती है। शिक्षा व्यक्ति के समग्र व सर्वांगिक विकास में सहायक होती है। यह व्यक्ति को क्लेशों से मुक्ति दिलाती है। शिक्षा व्यक्ति के जीवन की अमूल्य धरोहर है, जिसका इस्तेमाल वह स्वयं को व दुनिया को बदलने के लिए कर सकता है। शिक्षा हमारे जीवन में सत्यम् शिवम् सुन्दरम् जैसे सद्गुणों का विकास करती है। जिससे मानव कल्याण के साथ विश्व का कल्याण भी हो सके, अर्थात् मानव का मानवीयकरण ही शिक्षा का ध्येय है।

प्रमुख शब्द-शैक्षिक नीतिशास्त्र, अमूल्य धरोहर, मूल्यों में प्रासंगिक, नैतिक मुद्दों, सत्यम् शिवम् सुन्दरम्, मानवीयकरण।

प्रस्तावना

शिक्षा एक जीवन पर्यन्त चलने वाली प्रक्रिया है इसका उद्देश्य ज्ञान व विश्वास में स्थिरता को रोकना नहीं है, बल्कि इसमें गतिशीलता लाकर व्यक्ति के व्यक्तित्व को समग्र व सन्तुलित विकास करना है। शिक्षा के माध्यम से हम निरन्तर शिक्षित होते रहते हैं। यह प्रक्रिया अन्त की ओर चलती रहती है, परन्तु अन्त का कोई अन्त नहीं होता, यह जीवन प्रक्रिया को संचालित करती है, जिससे व्यक्ति के व्यक्तित्व का समग्र और सन्तुलित विकास हो सके। यह व्यक्ति को चरित्रवान व स्वावलम्बी, मूल्यवान व आदर्शमय बनाती है। मानवीयकरण ही शिक्षा का ध्येय है। यह मानव में शुभत्व व शिवत्व का उदय करके जन कल्याण, विश्व कल्याण, जीव जगत व वनस्पति जगत कल्याण का ध्येय है।

शैक्षिक नीतिशास्त्र पर सार्थक चर्चा तभी हो सकती है जब हम यह जान ले कि शिक्षा क्या है? नीतिशास्त्र क्या है? शिक्षा शब्द को परिभाषा की सीमा में बांधना उतना ही कठिन है जितना कि वेगवती नदी के प्रवाह को, तटों से बांधना, फिर भी इसके अर्थस्वरूप परिभाषा का एक संक्षिप्त विवरण यहाँ प्रस्तुत कर रहा हूँ। शिक्षा शब्द संस्कृत के 'शिक्ष' धातु से बना है जिसका अर्थ सीखना और सिखाना है अर्थात् सीखने और सिखाने की क्रिया को शिक्षा कहते हैं। शिक्षा अपने आप में एक व्यापक तथा अविरल प्रक्रिया है। शिक्षा का अंग्रेजी प्रयोग एजुकेशन लैटिन भाषा के एजुकेटम या एजुकेयर से निकलता है। एजुकेटम में दो शब्द हैं ए और डूको ए, का अर्थ है अन्दर और डूको का अर्थ है बाहर लाना। स्वामी विवेकानन्द के शब्दों में कहें तो "व्यक्ति के अन्दर निहित पूर्णता का उद्घाटन ही शिक्षा है।" अर्थात् शिक्षा आन्तरिक जन्मजात सुषुप्तः आस्था में विद्यमान शक्तियों को प्रस्फुटित व प्रकाशित करने का साधन है। संकुचित या संकीर्ण अर्थ में शिक्षा एक निश्चित समय, एक निश्चित स्थान, निश्चित व्यक्तियों, पाठ्यक्रमों व निश्चित लोगों को दी जाती है। इसे औपचारिक शिक्षा कहते हैं। स्कूल, कालेज व विश्वविद्यालय जैसे शैक्षणिक संस्थान इसी के अन्तर्गत आते हैं। व्यापक अर्थ में शिक्षा जीवन पर्यन्त चलने वाली प्रक्रिया है। अर्थात् जन्म से मृत्यु तक यहाँ हम प्रशिक्षण नवीन अनुभव प्राप्त करते हैं, और कुछ न कुछ सीखते रहते हैं, जिससे हमारे व्यवहारों और संस्कारों का प्रशिक्षण, परिशोधन एवं परिमार्जन होता रहता है। इसे हम अनौपचारिक शिक्षा कहते हैं।

शिक्षा निर्वाण प्राप्ति का साधन है, यह मनुष्य को आत्मविश्वास व स्वार्थहीन बनाती है। यह व्यक्ति के आन्तरिक और वाह्य कौशल को निखारती है, साथ ही साथ उसे अपने कर्तव्यों व दायित्वों के लिए तैयार करती है। यह व्यक्ति में उचित ज्ञान, आत्मज्ञान के साथ ही साथ, मानवीय मूल्यों, सद्गुणों व चरित्रों का निर्माण करती है अर्थात् मानव का मानवीयकरण ही शिक्षा का ध्येय है। शिक्षा का एक अन्य कार्य व्यक्ति की वाह्य शक्तियों को निखारना भी है अर्थात् शारीरिक शिक्षा। शारीरिक शिक्षा के बिना व्यक्ति का समग्र विकास नहीं हो सकता, इसका समर्थन अरस्तू भी करते हैं तो वे (अरस्तू) कहते हैं। "स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मस्तिष्क का निर्माण होता है।"

नीतिशास्त्र को अंग्रेजी में एथिक्स या मॉरल फिलॉसफी कहते हैं। एथिक्स शब्द ग्रीक भाषा के एथॉस से लिया गया है। जिसका अर्थ चरित्र होता है। अर्थात् नीतिशास्त्र मानव के चरित्र का अध्ययन है। नीतिशास्त्र को मॉरल शब्द लैटिन मोर्स से लिया गया है। जिसका अर्थ रीति-रिवाज और आदत होता है। इस प्रकार नीतिशास्त्र को रीति-रिवाज और आदत का शास्त्र कहते हैं। नीतिशास्त्र मनुष्य के चरित्र, व्यवहार और आचरण का उचित, अनुचित, शुभ-अशुभ के सन्दर्भ में मूल्यांकन करता है यह मानव के आचरण एवं ऐच्छिक कर्मों पर निष्पक्ष व व्यवस्थित रूप से विचार करके एक शैक्षिक मापदण्ड प्रस्तुत करता है, और इस मापदण्ड के आधार के लिए कुछ मूल सिद्धान्तों अथवा मानकों या आदर्शों की स्थापना करता है, साथ ही साथ यह भी बताता है कि शुभ-अशुभ

क्या है? मानव होने के नाते हमारा क्या कर्तव्य है। मानव जीवन का परम लक्ष्य व साध्य क्या है? इस परम साध्य की प्राप्ति हेतु कौन से साधन उचित है, कौन सा अनुचित है। मानव कौन सा कर्म करने के लिए स्वतंत्र व उत्तरदायी है, आदि नैतिक प्रश्नों का उत्तर नैतिक नियमों व सिद्धान्तों के आधार पर खोजा जाता है। यह उन नैतिक विधियों की खोज करता है जो व्यक्ति और समाज के बीच होने वाले नैतिक टकराव को कम करती है, और इनके बीच संतुलन बनाने का आधार व उपाय क्या होना चाहिए का भी खोज करता है। नैतिक नियम व सिद्धान्त सामान्य मनुष्यों के संकल्प स्वतंत्र कर्मों पर लागू होता है न कि पागलों बच्चों व पशुओं के कर्मों पर।

तार्किक प्रत्यक्षवादियों के युग में नीतिशास्त्र के स्वरूप में परिवर्तन आ गया। पहले जहाँ नीतिशास्त्र का उद्देश्य मनुष्य और उसके कर्मों के लिए कुछ विशेष नियमों, सिद्धान्तों या आदर्शों का युक्ति संगत प्रतिपादन करना और कर्मों को उचित-अनुचित, शुभ-अशुभ बताना व मूल्यांकन करना था इसे मानकीय नीतिशास्त्र या आदर्शमूलक नीतिशास्त्र कहते हैं लेकिन अब इनका कार्य क्षेत्र नैतिक मानकों व सिद्धान्तों का विश्लेषण करना व अर्थ का स्पष्टीकरण करना हो गया है, इसी कारण इसे अधिनीतिशास्त्र, विश्लेषणात्मक नीतिशास्त्र या आलोचनात्मक नीतिशास्त्र कहते हैं। सामान्यतः दोनों विधाओं में कोई भिन्नता नहीं है, बल्कि एक दूसरे के पूरक है।

शैक्षिक नीतिशास्त्र के स्वरूप को भलीभाँति समझने के लिए हमें जानना चाहिए कि शिक्षा क्या है जिसकी चर्चा हम आगे कर चुके हैं। यहाँ शैक्षिक नीतिशास्त्र के साथ नैतिक शिक्षा की चर्चा करना जरूरी है। ताकि शैक्षिक नीतिशास्त्र के स्वरूप को कुछ हद तक स्पष्ट किया जा सके। सामान्तः लोग नैतिक शिक्षा एवं शैक्षिक नीतिशास्त्र को एक समझते हैं नैतिक शिक्षा में नैतिकता की चर्चा होती है और इसका विषय क्षेत्र नैतिक विद्या है। जो व्यक्तियों को नैतिक बनाने की चेष्टा करती है। जबकि शैक्षिक नीतिशास्त्र, नीतिशास्त्र की एक शाखा है। जिसका कार्य क्षेत्र शिक्षा के समस्त कार्यों, विधियों, सिद्धान्तों का नैतिक मानकों के आधार पर विमर्शात्मक, आलोचनात्मक, समीक्षात्मक अध्ययन करना होता है। किन्तु ये दोनों एक दूसरे से सम्बन्धित भी हैं, जब हम नैतिक शिक्षा की बात करते हैं तो इस विषय की भी चर्चा करते हैं कि नैतिक शिक्षा देकर व्यक्ति को नैतिक बनाने की चेष्टा करना नैतिक रूप से वांछनीय है।

ध्यातव्य है कि हम शिक्षा की नैतिकता की चर्चा जब करते हैं तो उसे शैक्षिकनीति शास्त्र नहीं समझना चाहिए। क्योंकि शिक्षा की नैतिकता की चर्चा करना शैक्षिक नीतिशास्त्र का एक अंश है न कि उसकी समग्रता। शैक्षिक नीतिशास्त्र का यह दायित्व है कि शिक्षा की अवधारणाओं के अर्थों को स्पष्ट करें ताकि शिक्षा, शिक्षण, प्रशिक्षण, अध्ययन, अध्यापन के अर्थों को समझा जा सके। हम यहाँ शिक्षा के उद्देश्य एवं विधियों के पक्ष में नैतिक युक्तियों की चर्चा करते हैं।

शैक्षिक नीतिशास्त्र का एक दायित्व भाषा की सार्थकता से भी सम्बन्धित है तभी तो आर०एम० हेयर के लेख “लैंग्वेज अन्ड मोरल एजुकेशन” में उन्होंने यह स्पष्ट किया है कि शैक्षिक नीतिशास्त्र एक सार्थक अध्ययन है। इसके अन्तर्गत हम शिक्षा में प्रयुक्त होने वाले सार्वलौकिक परामर्शात्मक भाषा के स्वरूप का अध्ययन करते हैं और समझते हैं कि शिक्षा की प्रक्रिया में परामर्शात्मक ध्वनि युक्त भाषा का प्रयोग किन सन्दर्भों में कब, कौन, क्यों करता है। इसी तरह शैक्षिक नीतिशास्त्र के अन्तर्गत हम मानकीय नैतिक सिद्धान्तों और उनके सार्थकता की चर्चा शिक्षा के परिदृश्य में करते हैं जिससे शैक्षिक नीतिशास्त्र का स्वरूप स्पष्ट होता है। मानकीय नैतिकता का सम्बन्ध मानकीय नीतिशास्त्र के साथ है। शिक्षा मानव का स्वतन्त्र संकल्पित प्रयास है। जिससे वह निरन्तर मूल्यवान कर्म करने में समर्थ होता है। तब हमें अवश्य इस बात की चर्चा करनी चाहिए कि मूल्यवान कर्मों के मूल्यांकन के आधारभूत सिद्धान्त क्या है और उनमें सर्वापेक्षाग्रहणी सिद्धान्त क्या है? इन बातों की चर्चा तभी सम्भव है जब मैं शिक्षा द्वारा मानव के कर्मों के उत्कर्ष के ज्ञान हेतु तीन सिद्धान्तों में से किसी एक की मदद लूँ। ये तीन सिद्धान्त प्राधिकार, प्रकृतिवाद एवं बौद्धिक सिद्धान्त है। प्रथम सिद्धान्त मुख्यतः आध्यात्मिक सिद्धान्त है, द्वितीय के अन्तर्गत परिणामवादी सिद्धान्त आते हैं। तो तृतीय के अन्तर्गत परिणामनिर्पेक्ष।

ध्यातव्य है कि सद्गुण भी एक मूल्य है मानवीय सद्गुण अच्छे लक्षणों एवं स्वावृत्तियों के परिचालक है। उससे उनके शुभत्व व शिवत्व का ज्ञान होता है। शैक्षिक नीतिशास्त्र का दायित्व है कि वह शिक्षा के उस स्वरूप व प्रणाली की व्यवस्था करे जिससे शिवत्व का उदय हो और सृष्टि का कल्याण हो।

प्रश्न यह भी है कि शिक्षा के नैतिक कार्यों का औचित्यीकरण किन-किन नैतिक आधारों पर हो सकती है। सर्वप्रथम यह कहा जा सकता है कि शिक्षा के नैतिक कार्यों का औचित्यीकरण नैतिक शुभत्व पर आधारित है। कारण की शिक्षा के नैतिक कार्य में समाज जन्य में नैतिक में नैतिक शुभत्व उत्पन्न करने में एक महत्वपूर्ण कारक है। क्योंकि यह नैतिक शुभत्व नैतिक कर्ता में नैतिक संहिताओं में एवं सिद्धान्तों का तार्किक समझ उत्पन्न करता है और उसे समझ के योग बनाती है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि शैक्षिक नीतिशास्त्र या शिक्षा व शिक्षा के कार्य एक दूसरे से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित है, शिक्षा व्यक्तियों में नैतिक शुभत्व उत्पन्न करती है और गैर नैतिक शुभों व गैर नैतिक मूल्यों का ज्ञान कराती है। उदाहरण के लिए- जैसे भ्रूणहत्या नैतिक रूप से उचित है या अनुचित, नैतिक कर्ता को इस व्यवहारिक समस्या पर निर्णय तभी उचित होगा जब वह भ्रूणहत्या से सम्बन्धित और नैतिक चर्चा जैसे- यह क्या है? इसके होने से समाज पर क्या प्रभाव पड़ेगा। आदि तथ्यात्मक जानकारी होनी चाहिए तभी वह इस प्रश्न का उत्तर देने में समर्थ होगा की भ्रूणहत्या नैतिक रूप से उचित है या अनुचित। डब्लू० के० फ्रैंकेना अपनी पुस्तक एथिक्स (1980) में सद्गुण आधारित नैतिकशास्त्र में पूछते हैं कि क्या सद्गुण होना उतना महत्वपूर्ण नहीं है, जितना की कुछ मानवीय नैतिक सिद्धान्तों को स्वीकार करना और उसके आधार पर कुछ कर्म करना?'' यहाँ हमें गलतफहमी में नहीं पड़ना चाहिए कि किसी व्यक्ति का सद्गुणी होना महत्वपूर्ण नहीं है बल्कि सद्गुणी व्यवहार करना महत्वपूर्ण है। जोकि शिक्षा देने की प्रक्रिया का ही एक भाग है। जब ऐसे कार्य नागरिक समाज में अनौपचारिक शिक्षा के रूप में प्रदर्शित होता है या नैतिक होना या नैतिक रूप में सद्गुणी होना कठिन शैक्षिक प्रयत्नों की उपेक्षा रखता है लेकिन जो लोग औपचारिक शिक्षा नहीं प्राप्त करते वे नैतिकतः भ्रष्ट है, ऐसा नहीं समझना चाहिए क्योंकि ऐसा हो सकता है कि औपचारिक शिक्षा को बिना प्राप्त किए कोई व्यक्ति उसी रूप में उतना नैतिक मूल्यों का धारक हो सकता है, जितना कोई औपचारिक शिक्षा प्राप्त किया हो।

निष्कर्ष

सामान्यतः यह कहा जा सकता है कि शिक्षा के वास्तविक अर्थ में शैक्षिक नीतिशास्त्र नहीं आती वरन् इसकी परिधि से अत्यधिक व्यापक है। यह निष्कर्ष इसलिए क्योंकि नीतिशास्त्र वह सभी अनिवार्य एवम् पर्याप्त नैतिक सिद्धान्तों, मूल्यों में प्रासंगिक नैतिक मुद्दों एवं चिन्ताओं को समाधान कर सकें। शैक्षिक नीतिशास्त्र कई प्रकार के अधिनैतिक, नियामक सद्गुण एवं मूल्यपरक चर्चाओं का अध्ययन करता है। जो कि नीतिशास्त्र के अन्तर्गत आता है न कि शिक्षाशास्त्र। शैक्षिक नीतिशास्त्र अध्ययन की अलग शाखा है, जो शिक्षा (शैक्षिक चर्चा) से सम्बन्धित है क्योंकि शैक्षिक नीतिशास्त्र के जितने भी विषय होते हैं वे सब शिक्षा से ही निकलकर आते हैं। चूँकि इसका संबंध नीतिशास्त्र से भी है। इसलिए यह भी कहा जा सकता है कि शैक्षिक नीतिशास्त्र का अंग है तो नीतिशास्त्र अंगी है। शैक्षिक नीतिशास्त्र का व्यवहारिक एवं पेशेवर नीतिशास्त्र से है जो अधिनैतिक नीतिशास्त्र का ही रूप है। इसलिए इसे व्यवहारिक नीतिशास्त्र कहते हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. जटाशंकर, नैतिक दर्शन के विविध आयाम, श्री भुवनेश्वरी विद्या प्रतिष्ठान 117 ए सी, टैगोर टाउन इलाहाबाद - 211002, 2003।
2. गुप्त लक्ष्मी नारायण, शिक्षा दर्शन, शारदा पुस्तक भवन -2008।
3. दूबे सत्यनारायण सरतेन्द - मूल्य शिक्षा, शारदा पुस्तक भवन -2009।
4. लोढ़ा महावीर भल, नैतिक शिक्षा, विविध आयोग, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी -2011।
5. गुहा देवाशीष, प्रैक्टिकल एण्ड प्रोफेशनल एथिक्स वैल्यूम-4 एजुकेशनल एथिक्स, कंसेप्ट पब्लिशिंग कम्पनी, 2007।
6. वर्मा वेद प्रकाश, नीतिशास्त्र के मूल सिद्धान्त एलाइड पब्लिशर्स प्रा0लि0,1994।

हाड़ौती क्षेत्र में नहरी तंत्र का विश्लेषण

देवेन्द्र मीना

शोधकर्ता, भूगोल विभाग, राजकीय कला महाविद्यालय, कोटा

डॉ० एल.सी. अग्रवाल

शोध पर्यवेक्षक, भूगोल विभाग, राजकीय कला महाविद्यालय, कोटा

लेख सार

हाड़ौती की जीवनदायिनी नदी चर्मण्यवती नदी अर्थात् चम्बल नदी एवं इस पर बने बाँध कोटा बैराज और उससे निकलने वाली दाँयी-बाँयी मुख्य नहर क्षेत्र के आर्थिक विकास की धुरी हैं। भारत की स्वतन्त्रता के साथ ही उपलब्ध जल संसाधनों का जनहित में अधिक से अधिक लाभ देने की दिशा में कार्य प्रारम्भ करते हुए बड़े-बड़े बाँधों का निर्माण आरम्भ हुआ था। तदनुसार चम्बल घाटी विकास परियोजना का सूत्रपात सन् 1953 में किया गया। चम्बल घाटी विकास परियोजना दो राज्यों राजस्थान एवं मध्य प्रदेश की सम्मिलित परियोजना है। इस परियोजना के अन्तर्गत चम्बल नदी पर गाँधी सागर बाँध, राणा प्रताप सागर बाँध, जवाहर सागर बाँध एवं कोटा बैराज का निर्माण किया गया। चम्बल घाटी विकास परियोजना एक बहु-उद्देशीय परियोजना है, जिसके मुख्य उद्देश्य राज्य में बाँधों एवं नहरों के निर्माण द्वारा राज्य में सिंचाई की सुविधाओं को बढ़ाना, कृषि के विकास को स्थायी स्वरूप प्रदान करना, मिट्टी अपरदन की समस्या का समाधान करना, बाढ़ नियन्त्रण करना, जल-विद्युत आपूर्ति में वृद्धि कर राज्य की विद्युत सम्बन्धी आवश्यकताओं को पूर्ण करना, मछली पालन को प्रोत्साहन देना, चम्बल कमाण्ड क्षेत्र में जनजातियों के जीवन स्तर में सुधार लाना, शुद्ध पेयजल की आपूर्ति करना, उद्योगों को जलापूर्ति करना, भूगर्भीक जल स्तर ऊँचा उठाना, वन एवं वन्य-जीव संरक्षण करना आदि अनेक उद्देश्यों की पूर्ति होने के कारण यह एक बहु-उद्देशीय परियोजना कहलाती है।

प्रस्तावना -

वर्तमान युग में बदलते वैश्विक पर्यावरण, आर्थिक व अस्थिर राजनैतिक परिदृश्यों ने जल को न केवल एक संसाधन अपितु भविष्य की मूलभूत आवश्यकता के रूप में प्रस्तुत किया है। देश में लगभग 141 मिलियन हेक्टेयर कुल बुवाई क्षेत्र में से वर्तमान में लगभग 65 मिलियन हेक्टेयर (45 प्रतिशत) सिंचाई के तहत कवर है। वर्षा पर अत्यधिक निर्भरता गैर-सिंचित क्षेत्रों में कृषि को जोखिम भरा और कम उत्पादक व्यवसाय बनाती है।

राजस्थान में देश की 11% क्षेत्र कृषि योग्य भूमि मौजूद है और राज्य में केवल 50 प्रतिशत सकल सिंचित क्षेत्र उपलब्ध है जबकि 30 प्रतिशत शुद्ध सिंचित क्षेत्र क्षेत्र है। राज्य में 14 परिभाषित नदी बेसिन हैं लेकिन चंबल और माही एकमात्र बारहमासी नदियाँ हैं। स्वतंत्रता के समय सिंचाई सुविधाएं सीमित थी और राज्य में केवल 4 लाख हेक्टेयर की सिंचाई क्षमता वाली 1 बड़ी, 43 मध्यम और 2272 छोटी परियोजनाएँ थी। वर्तमान में राज्य में 104 बड़ी और मध्यम सिंचाई परियोजनाएँ और 4786 लघु सिंचाई परियोजनाएँ हैं और सृजित सिंचाई क्षमता बढ़कर 28.12 लाख हेक्टेयर हो गई है।

हाड़ौती प्रदेश में सिंचाई के लिए प्रचलित सभी साधनों का उपयोग होता है। सिंचाई के प्रमुख साधन नहरें, नदियाँ, तालाब, कुएँ, ट्यूबवैल आदि हैं। क्षेत्र में सर्वाधिक सिंचाई नहरों द्वारा की जाती है। कुओं, तालाबों, ट्यूबवैलों तथा डीजल इंजनों से भी पर्याप्त सिंचाई की जाती है। इस क्षेत्र की सर्वाधिक महत्वपूर्ण सिंचाई योजना चम्बल घाटी परियोजना है।

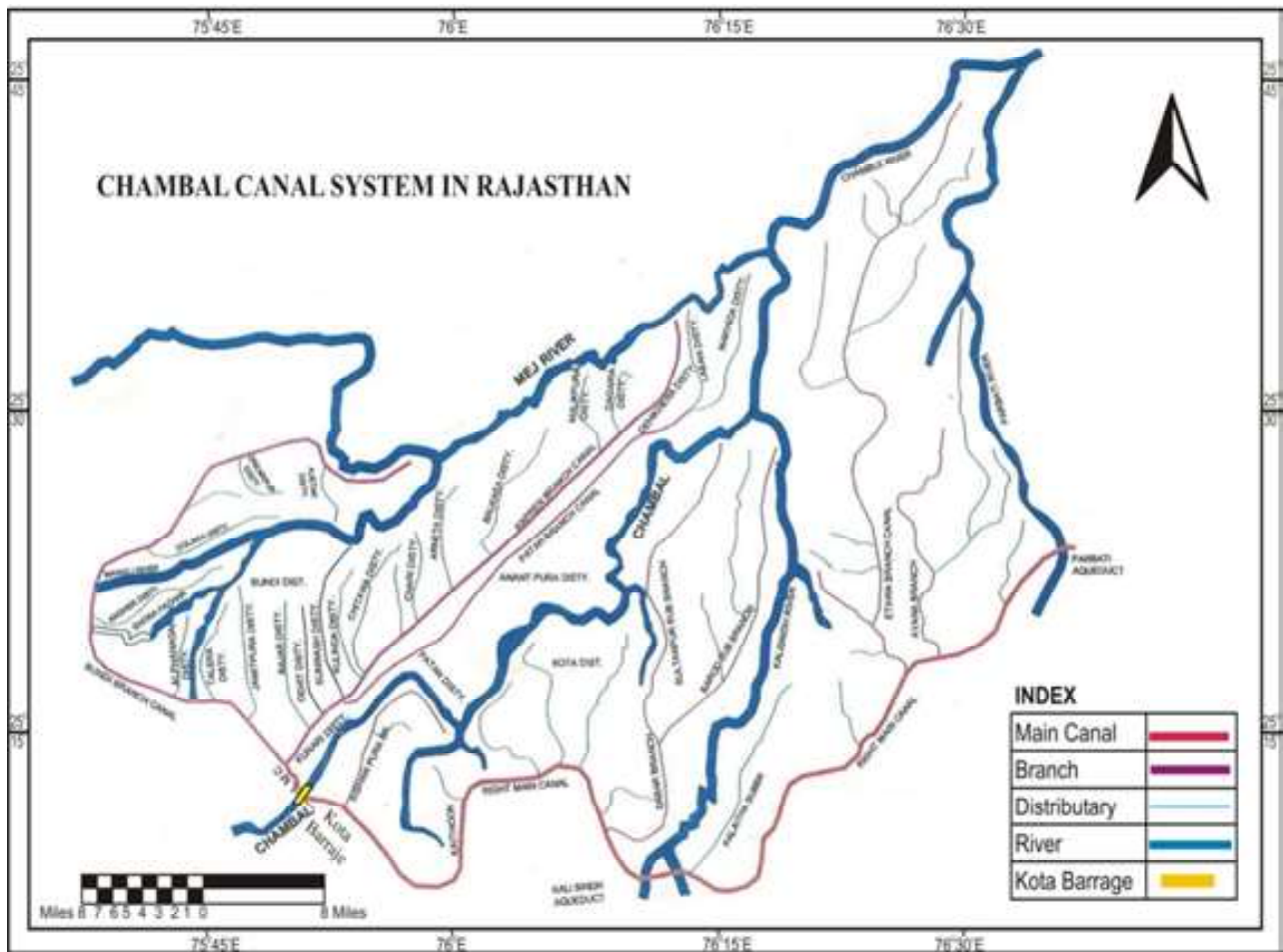
कोटा बैराज चंबल नदी घाटी परियोजना पर बने बांधों की श्रृंखला में निर्मित चौथा बांध है, जो राजस्थान में कोटा शहर से लगभग 0.8 किमी. ऊपर की ओर स्थित है। गांधी सागर बांध, राणा प्रताप सागर बांध और जवाहर सागर बांधों में बिजली उत्पादन के बाद छोड़े गये अतिरिक्त पानी का उपयोग कोटा बैराज से जल आपूर्ति और सिंचाई के लिए होता है। कोटा बैराज 25°10' उत्तरी अक्षांश तथा 75°50' पूर्वी देशांतर पर स्थित है। कोटा बैराज जल आपूर्ति और सिंचाई के लिए एक जल भंडारण जलाशय है। राजस्थान में 2.29 लाख हेक्टेयर और मध्य प्रदेश में 4.5 लाख हेक्टेयर क्षेत्र में सिंचाई की सुविधा के लिए चंबल नदी के दाएँ और बाएँ किनारे से निकलने वाली दो नहरों को पानी देने के लिए तथा चंबल नदी के जल स्तर को बढ़ाने के लिए इसका निर्माण किया गया।

राजस्थान और मध्य प्रदेश में सिंचाई के लिए कोटा बैराज से दो नहरे निकाली गई हैं। बाएँ किनारे से बांयी मुख्य नहर (L.M.C.) और दाएँ किनारे से दांयी मुख्य नहर (R.M.C.) निकलती हैं। आरएमसी और एलएमसी में क्रमशः 6656 क्यूसेक (188 क्यूसेक) और 1500 क्यूसेक (42 क्यूसेक) की जल

डिस्चार्जिंग क्षमता प्रमुख विशेषता हैं। पार्वती नदी जलसेतु पर अंतर्राज्यीय संपर्क बिंदु पर आरएमसी में मध्य प्रदेश की हिस्सेदारी 3900 क्यूसेक है, जबकि एलएमसी केवल राजस्थान राज्य की पानी की आवश्यकताओं को पूरा करती है। राजस्थान में मुख्य नहर, शाखा नहरों एवं वितरण प्रणाली की कुल लम्बाई लगभग 2728 किमी. है। मूल कार्यों की लागत, रखरखाव और संचालन लागत और ऐसे कार्यों की लागत जो सामान्य लाभ के लिए आवश्यक हैं और चंबल घाटी परियोजना से होने वाले लाभों को राजस्थान और मध्य प्रदेश द्वारा दाहिनी मुख्य नहर की लागत को साझा किया जाता है।

दाँयीं मुख्य नहर (R.M.C.)- इस नहर की सम्पूर्ण लम्बाई 372 किलोमीटर है जो राजस्थान की 124 कि.मी. एवं मध्य प्रदेश की 248 किलोमीटर की भूमि में बहती है। यह नहर उद्गम से लगभग 2.42 किमी. लंबी गहरी कटान से होकर गुजरती है। इसके किनारों को चिनाई से पक्कितबद्ध किया गया है और आसानी से प्लास्टर किया गया है। इस गहरे कटान के बाद नहर कोटा शहर में स्थित छत्र बिलास (सी.बी.) टैंक में प्रवेश करती है। सी.बी. टैंक से निकलने के बाद नहर क्रमिक रूप से कोटड़ी, किशोर सागर, रायपुरा और उम्मेदगंज टैंक से होकर गुजरती है। इसके बाद, यह आम तौर पर समोच्च रेखाओं के साथ चलती है। कुछ कमजोर हिस्सों को छोड़कर, नहर खंड आरेखित है। मुख्य नहर से कुल आठ लिफ्ट नहरें निकाली गयी हैं जिनकी कुल लम्बाई 198 किलोमीटर है जिनके द्वारा दीगोद, पीपल्दा, लाड़पुरा, अन्ता, माँगरोल (बारां) तहसीलों में सिंचाई की जाती हैं।

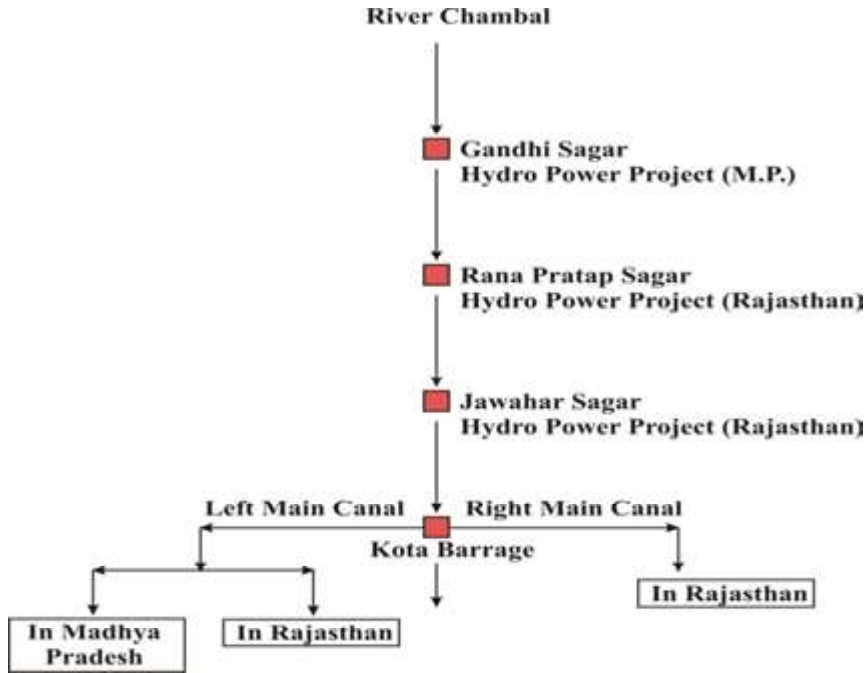
बाँयीं मुख्य नहर (L.M.C.) - यह कोटा बैराज के बायें किनारे से निकलती है। बाँयीं मुख्य नहर की कुल लम्बाई 168 किलोमीटर है। इस नहर से 1500 क्यूसेक जल की निकासी होती हैं। मुख्य नहर की कुल लम्बाई 2.59 किमी. है। इसके पश्चात मुख्य नहर दो भागों में विभाजित हो जाती है बूंदी और कापरन शाखाएँ। कुछ संवेदनशील क्षेत्रों को छोड़कर यह नहर प्रणाली आरेखित है।



अध्ययन क्षेत्र-

हाड़ौती प्रदेश राजस्थान के दक्षिण-पूर्वी भाग में स्थित एक पठारी भू-भाग है। यह प्रदेश 23°05'1" से 25°02'0" उत्तरी अक्षांश एवं 75°01'5" से 77°02'5" पूर्वी देशान्तर के मध्य कोटा, बारां, बूंदी व झालावाड़ जिलों में विस्तृत है। यह प्रदेश मालवा के पठार का उत्तरी भाग है जिसे "हाड़ौती का पठार" भी कहते हैं और इसका क्षेत्रीय विस्तार 24185 वर्ग किमी. है जो राजस्थान के 9.6 प्रतिशत भू-भाग को घेरे हुए है। इस क्षेत्र की पूर्वी, दक्षिणी एवं दक्षिण-पश्चिम सीमाये मध्य प्रदेश से मिलती है। इस क्षेत्र की औसत ऊँचाई 500 मीटर है। यह पठार चम्बल नदी के सहारे पूर्वी भाग में विस्तृत है चम्बल इस क्षेत्र की प्रमुख नदी और इसकी सहायक काली सिंध, परवन और पार्वती नदियाँ हैं।

चित्र -1: नहरी तंत्र



तलिका -1: हाड़ोती प्रदेश की दांयी-बांयी मुख्य नहरों का विवरण

विवरण	दांयी मुख्य नहर	बांयी मुख्य नहर
उद्गम स्थान	कोटा बैराज के दांये किनारे से	कोटा बैराज के बांये किनारे से
जल निस्सारण क्षमता	6656 क्यूसेक	1500 क्यूसेक
सिंचाई योग्य सिंचित क्षेत्र	127000 हेक्टेयर	102000 हेक्टेयर
प्रस्तावित सिंचाई क्षमता	रबी-55 खरीफ-21	रबी-55 खरीफ-21
मुख्य नहर की कुल लम्बाई	124	259
मुख्य नहर से निकल रही ब्रांच नहर की संख्या एवं उनकी कुल लम्बाई	8(198)	3 (163)
वितरिकाओं की संख्या एवं उनकी कुल लम्बाई	27 (268)	27 (343)
लघु वितरिकाओं की संख्या एवं उनकी कुल लम्बाई	356 (910)	180 (605)
कुल नहरों की संख्या	390 (1500)	210 (1113.59)
कुल आउटलेट की संख्या	3802	3211
लाभान्वित जिले	कोटा एवं बारां (02)	कोटा एवं बूंदी (02)
लाभान्वित तहसील	लाड़पुरा, दीगोद, अंता, मांगरोल, पीपल्दा (05)	लाड़पुरा, केशोरायपाटन, बूंदी, इन्द्रगढ़ (04)
लाभान्वित ग्रामों की संख्या	473	284
कार्यरत खण्डों की संख्या	कोटा मुख्यालय, अन्ता मुख्यालय, इटावा मुख्यालय	बूंदी मुख्यालय, के.पाटन मुख्यालय
कार्यरत उपखण्डों की संख्या	9	6
जल उपयोक्ता संगमों की संख्या	159	123

स्रोत - कृषि विभाग, राजस्थान सरकार

नहरों के निर्माण के उद्देश्य

- मानव व पशुओं के लिए पीने का पानी, पशुपालन, वृक्षारोपण, मण्डी विकास, पशु चारा विकास, राष्ट्रीय शुष्क उद्यान आदि कार्य रखे गये हैं।
- दाँयी व बाँयी नहरों के निर्माण का मुख्य लक्ष्य इस प्रदेश के कृषकों को सिंचाई सुविधाएँ प्रदान करना है एवं स्थानीय जल स्रोतों एवं ट्यूबवेल इत्यादि सिंचाई स्रोतों पर निर्भरता को कम करना है।
- नहर निर्माण का अन्य मुख्य उद्देश्य उद्योगों को उनकी आवश्यकतानुसार पानी की आपूर्ति करना है। सिंचित क्षेत्र विकास चम्बल, कोटा द्वारा राजस्थान में दोनों मुख्य नहरों के निर्माण एवं उद्देश्यों से सम्बन्धित सभी कार्य किये जाते हैं।

सुझाव -

हाड़ौती में सिंचित क्षेत्र में भूमि सुधार कार्यों के क्रियान्वयन के बाद कृषकों की आवाप्त भूमि का पुनः आवंटन का कम होना, धोरों ड़ेनों, सड़कों का उचित रख-रखाव न होना, भूमि सुधार कार्यों का समय पर पूर्ण न होना, सिंचाई हेतु पानी का टेल तक नहीं पहुँचना जैसी समस्याओं से कृषकों को निजात मिली है। परियोजना के कैचमेन्ट क्षेत्रों में भूमि सुधार के कार्यों से कृषकों की फसल उत्पादन क्षमता में वृद्धि, फसल चक्र में परिवर्तन, प्रति हेक्टेयर उत्पादन में वृद्धि, खेतों का समतलीकरण व आयताकार तथा खेतों में आवागमन हेतु रास्तों का निर्माण होने से आपसी विवादों में कमी हुई है। जिसके परिणामस्वरूप कृषकों के आर्थिक एवं सामाजिक जीवन स्तर में सुधार होना परिलक्षित हुआ है तथापि निर्माण कार्यों हेतु समयावधि, प्रयुक्त मशीनों, कार्यों के रख-रखाव का अभाव तथा वित्तीय स्वीकृति निर्धारित समय पर जारी न होना जैसी समस्याएँ देखने को मिली है।

- दाँयी-बाँयी मुख्य नहरों के किनारे-किनारे अधिक से अधिक वृक्ष लगाये जाये।
- भू-सुधार और लवणीयता नियंत्रण में भूमिगत जल निकास पद्धति की व्यावस्था तभी स्थायी रूप से प्रभावी हो सकती है जबकि भूमि, जल एवं सिंचाई प्रबन्धन के समन्वित उपाय व्यावहारिक स्तर पर अपनाये जाये।
- भूमिगत जल निकास पद्धति की व्यवस्था फसल में सिंचाई की आवश्यकता को बढ़ाती है। अतः पर्याप्त उपज प्राप्त करने के लिए सिंचाई प्रबन्धकों द्वारा इस तथ्य को मद्देनजर रखते हुए आवश्यकता अनुरूप जल की मात्रा को बढ़ाया जाना चाहिए।
- हाड़ौती प्रदेश के नहरी सिंचित भूमि के अलावा खेती योग्य उपजाऊ भूमि जो बारिश पर निर्भर है, उसे सिंचाई की सुविधाएँ उपलब्ध करवानी चाहिए। इस क्षेत्र का शीघ्र लाभ उठाने के लिए लघु योजनाओं को अपनाना लाभकारी रहेगा क्योंकि यह जल्दी ही पूर्ण होकर छोटे कृषकों को लाभ देती हैं। बहुउद्देशीय सिंचाई योजनाओं को भी पूर्ण करने के प्रयत्न तीव्र किये जाने चाहिए। इस सुझाव से खेती की प्रगति शीघ्रता से होगी। यह न केवल कृषकों की बल्कि सभी व्यवसाय के लोगों की आर्थिक सम्पन्नता में वृद्धि करेगा तथा साथ ही नहरी सिंचाई क्षेत्र भी प्रगति की ओर अग्रसर होगा।
- अध्ययन क्षेत्र में मृदा अपरदन की मुसीबत एक भीषण समस्या है जिसका प्रभाव स्पष्ट रूप में इस प्रदेश की आर्थिक समृद्धता पर पड़ता है। दाँयी-बाँयी मुख्य नहरों के किनारे पौधारोपण करना चाहिए एवं इस भूमि में पशुचारण पर नियंत्रण करना चाहिए। मृदा संरक्षण हेतु पट्टीदार खेती, फसल चक्र, जैविक खादों का प्रयोग, रक्षक मेखला, वनस्पति आवरण, वेदिका निर्माण, अवनलिका नियंत्रण, खेत को परती छोड़ना और मृदा को जकड़े रहने वाली फसलों को उगाना आदि विधियाँ अपनानी चाहिए।

संदर्भ-

- Sharma, H.S. (1979) "The Physiography of the Lower Chambal Valley and its Agricultural Development". Concept Publishing Company, New Delhi
- Barla, C.S. (1988) "Economic and Financial Analysis of Sub- Surface Drainage in Black Soil of Chambal Command Area" Keynote papers, National seminar on socio-economical aspects of surface drainage and water management, RAJAD, Kota (Raj)
- RAJAD (1995) "Analysis of Sub-Surface Drainage Design Criteria" Rajasthan Agriculture drainage Research project, Kota (Raj)
- Srivastava, H.S. (1996) "Managing Irrigation Project", A Study of Chambal Valley Project, Rawat Publications, Jaipur
- Saxena, O.P. (2014) "Chambal Valley Development Salient Features" key note papers, All India seminar on development and management of multipurpose river valley projects in India, Kota (Raj)

भारत एवं दक्षिणी पूर्वी एशियाई देशों के सामाजिक-सांस्कृतिक समन्वय सम्बन्धी अभिलेख

डॉ० सुमन कुमारी

वरिष्ठ शोध अध्येता, समाज विज्ञान अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली

सार:- भारत एवं दक्षिणी-पूर्वी एशियाई देशों के बीच सामाजिक-सांस्कृतिक समन्वय में संस्कृत का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। संस्कृत एक प्राचीन भाषा होने के कारण इन दोनों क्षेत्रों के बीच सामाजिक सांस्कृतिक परम्पराओं के आदान-प्रदान में एक सेतु का कार्य करती है। संस्कृत ने रामायण महाभारत, पुराण व अन्य अनेक महाकाव्यों ने द.पू. एशिया के साहित्य पर गहरा प्रभाव डाला है।

मुख्य शब्द:- प्राचीनतम, भाषागत अवदान, जीवनीशक्ति, गीर्वाणवाणी, अनवरत।

समानो मन्त्रः समिति समानी समानं मनः सहचित्तमेषाम्।

समानं मन्त्रम् अभिमन्त्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि।

संसार की प्राचीनतम रचना ऋग्वेद के दसवें मण्डल का यह मन्त्र संस्कृत साहित्य के माध्यम से संसार के सभी मनुष्यों को मन, विचार व चित से एकरूप होकर कार्य करने का उपदेश देता है। इसी क्रम में संस्कृत साहित्य ने अपनी साहित्यिक सम्पत्ति व भाषागत अवदान के कारण सम्पूर्ण विश्व को सांस्कृतिक एकता के सूत्र में निबद्ध रखा है। इसे नष्ट करने तथा इसे दूर भगाने की नाना चेष्टाएं भारतीय इतिहास में प्राप्त होती हैं। किन्तु इसकी स्वाभाविक जीवनी शक्ति ने इसे कभी नष्ट नहीं होने दिया। इस भाषा की जीवनी शक्ति के कारण ही इसे देवभाषा, अमरवाणी, गीर्वाणवाणी इत्यादि प्रशस्तियों से विभूषित किया गया। ये प्रशस्तियाँ संस्कृत के अनवरत प्रयोग को सूचित करती हैं।¹

संस्कृत कवियों ने ऐसा अवश्य कहा है कि स्वर्ग और भूतल पर समान रूप से समझी जाने वाली कोई भाषा है तो वह संस्कृत ही है।²

संस्कृत की यह महता इसमें निहित इसकी विशिष्टताओं के कारण ही है। जिसमें वेदों से लेकर आधुनिक काल तक लिखी गई रचनाएं पत्थर पर लिखे गये शिलालेख, अभिलेख व अन्य प्रशस्तियाँ शामिल हैं। भारतीय संस्कृत साहित्य की अनेक रचनाएँ, प्रशस्तियाँ, अभिलेख, शिलालेख, ताम्रपत्र आदि भी लोककल्याण का मार्ग प्रशस्त करते हैं जिनका विदेशों ने भी अनुसरण किया है। भारतीय संस्कृत साहित्य की रचनाओं व शिलालेखों का दक्षिणी पूर्वी एशियाई देशों ने भी अनुसरण किया है। दक्षिणी पूर्वी एशिया के अन्तर्गत कम्बोडिया, चम्पा, बर्मा, स्याम (थाइलैण्ड) मलय प्रायद्वीप जिन्हें सामूहिक रूप से हिन्द चीन कहा जाता है तथा पूर्वी द्वीप समूह के सुमात्रा, जावा, बेर्नियो और बाली सम्मिलित हैं।³

प्राचीन संस्कृत साहित्य व सम्बन्धित अभिलेखों से हमें स्थान-स्थान पर दक्षिणी पूर्वी एशिया की यात्रा करने वाले व्यापारियों के साहस की कहानियाँ मिलती हैं।

क्लासिकल विवरणों से भी हमें सुदूरपूर्व के द्वीपों के साथ भारत के व्यापारिक सम्बन्धों का पता चलता है। अरबी लेखक अलबरूनी भी सुवर्णदीप का उल्लेख करता है जहाँ भारतीय व्यापारी जाया करते थे। हुएन-सांग तथा इक्सिंग जैसे चीनी यात्रियों ने भी सुवर्णदीप का उल्लेख किया है। इस प्रकार विभिन्न साहित्यिक साक्ष्यों से यह स्पष्ट हो जाता है कि भारत तथा दक्षिणी पूर्वी एशिया के बीच सम्पर्क का मुख्य प्रेरक व्यापार ही था।⁴

यद्यपि भारत और दक्षिणी पूर्वी एशिया के बीच सम्बन्ध प्रागैतिहासिक काल से ही हैं तथा इन सम्बन्धों के परिणामस्वरूप एक निश्चित अवधि में दक्षिण पूर्व एशिया में भारतीय राज्यों की स्थापना हुई। ये सम्बन्ध व्यापारियों व प्रवासियों द्वारा भारतीय कला, रीति-रिवाजों, भारतीय धर्म तथा भाषा के रूप में संस्कृत के प्रयोग का परिणामी प्रभाव था।

HCiQ वेल्स के अनुसार दक्षिण पूर्व एशिया में भारतीय राज्यों का अस्तित्व या तो भारतीय लोगों द्वारा खुद को स्थानीय लोगों पर थोपने के परिणामस्वरूप आया या फिर स्थानीय आबादी द्वारा विदेशी सभ्यता को अपनाने के माध्यम से हुआ।⁵

धीरे-धीरे यह व्यापार- वाणिज्य सम्बन्ध राजनीतिक, सामाजिक व सांस्कृतिक सम्पर्क में परिणत हो गया और द.पू. एशिया का समाज भारत से विशेष रूप से प्रभावित हुआ।

कुछ हद तक यह कहना उचित होगा कि व्यापारी, पुरोहित व विद्वान को बड़ी संख्या में भारतीय संस्कृति को विभिन्न रूपों में दक्षिण-पूर्व एशिया में लेकर आये। जहाँ स्थानीय निवासियों ने भारतीय समाज व संस्कृति के मूलभूत तत्वों से प्रभावित होकर इसे स्वीकार किया और इसका पालन किया। भारतीयों ने वहाँ के लोगों को अपने रंग में रंग लिया। इन्होंने वहाँ के लोगों को भारतीय सामाजिक अवधारणाओं, वर्णाश्रम व्यवस्था, पुरुषार्थ विचार, धर्म, कला, वास्तुकला, संगीतकला, मूल्य, शिष्टाचार, भाषा व साहित्य से परिचित करवाया।

द.पू. एशिया से प्राप्त अभिलेखों से भी भारतीय साहित्य व संस्कृति के बारे में जानकारी मिलती है। वहाँ से प्राप्त अभिलेखों के निर्माण का आधार भारतीयों की तरह राजाओं की वंशावलियाँ, मन्दिर निर्माण, मूर्तियों की प्रतिष्ठा, सामाजिक अवधारणाओं आदि पर केन्द्रित होता है। द. पू. एशिया में भारतीय भाषाओं और लिपियों में लिखे गये शिलालेख प्रचुर मात्रा में मिले हैं। म्यांमार के सबसे पुराने शिलालेखों में हमिंगभाव से बाहरी लिपि में लिखी हुई एक पत्थर की स्लेब मिली है। चौथी या पांचवी शताब्दी पूर्वार्द्ध की तात्कालिक गतिविधियों की जानकारी देती है। जिसमें स्थानीय मुद्रांकन शामिल है जो भारतीय मुद्राशास्त्र और भारतीय मापतौल पर आधारित था तथा जिसे अराकान के राजाओं द्वारा म्यांमार के पश्चिमी तट पर लागू किया गया था।

पांचवी शताब्दी ई. का प्राचीनतम संस्कृत शिलालेख जावा द्वीप के पश्चिमी भाग से प्राप्त हुआ है।

बोर्नियो से 400 ई का एक शिलालेख प्राप्त हुआ है जो एक ऐसे शासक का वर्णन करता है जो ब्राह्मणों को गायों की पेशकश करता है तथा शिव पूजा का संकेत देता है। इसके साथ ही पश्चिमी बोर्नियो से छठी शताब्दी के आठ संस्कृत शिलालेख भी प्राप्त हुए हैं जो बौद्ध प्रभाव को दिखाते हैं।⁶

द. पू. एशिया में अनेक स्थानों पर भारतीय ब्राह्मणों द्वारा वहाँ के राजाओं को राजकाज में सहायता करने के उल्लेख प्राप्त होते हैं चम्पा में तो शासनकार्य पूर्णरूप से संस्कृत में किये जाने का उल्लेख प्राप्त होता है। थाइलैण्ड के राजाओं द्वारा तो शपथ ग्रहण समारोह भी संस्कृत में किये जाने का उल्लेख मिलता है।

द. पू. एशियाई क्षेत्रों में बोर्नियो का चौथी सदी का कुताई शिलालेख मलय प्रायद्वीप का 775 ई. का लिगोर का शिलालेख, मलाया में कंदाह का 1086 ई का शिलालेख, राजा पूर्णबर्मा का तुगु का शिलालेख विशेष उल्लेखनीय है। अंकोर में 1250 संस्कृत अभिलेख मिले हैं। बर्मा, थाई जावी, लाओ, व कंबोडिया भाषा में भारतीय अक्षरों व शब्दावलियों में समानताओं के उल्लेख भी मिलते हैं।

तब्बू मजूमदार ने भारत व द.पू. एशिया के सामाजिक-सांस्कृतिक समन्वय के स्त्रोतों की जानकारी दी है। तब्बू मजूमदार के अनुसार इन्डो चाइना का सबसे पुराना संस्कृत शिलालेख वो कान्ह शिलालेख उत्तरी भारत में स्थित कुषाण साम्राज्य के लेखन से लिया गया है।⁷

चम्पा से प्राप्त अभिलेखों से ज्ञात होता है कि कानून प्रधानतया मनु, नारद तथा भार्गव स्मृतियों या धर्मशास्त्रों पर आधारित थे। चम्पा में वोचन के अभिलेख से प्राप्त आसापितं सदसि राजवरेण से ज्ञात होता है कि चम्पा में परामर्श देने के लिए सभा ही सत्ता थी। उत्तर वैदिक काल में भारत में भी सभा और समिति का उल्लेख मिलता है। अथर्ववेद में सभा और समिति को प्रजापति की दो पुत्रियाँ कहा गया है।

सभा च मां समितिष्वावतां प्रजापते दुहितरौ सविधाने।⁸

यद्यपि चम्पा और भारत के समाज में काफी अन्तर था पर वहाँ के भारतीय या भारतीय संस्कृति को अपनाये हुए राजा वर्णाश्रम व्यवस्था की स्थापना के आदर्श को अपने सम्मुख रखते थे। 899 ई के राजा इन्द्रवर्मा प्रथम के अभिलेख में उसकी राजधानी के सम्बन्ध में यह लिखा गया कि उसकी अपनी शक्ति के प्रभाव के कारण वह निरुपद्रव थी। वहाँ वर्ण तथा आश्रम भली-भाँति सुव्यवस्थित थे और वह सुरनगरी के समान थी। चम्पा से प्राप्त 658 ई. के माइसोन अभिलेख से चम्पा के तत्कालीन समाज पर भारतीय प्रभाव व समाज में ब्राह्मणों व क्षत्रियों की स्थिति का वर्णन किया गया है। प्रस्तुत अभिलेख में चम्पा के राजा की जो वंशावली दी गई है उसके अनुसार राजा रुद्रवर्मा का पिता एक श्रेष्ठ ब्राह्मण था और उसकी माता मनोरथवर्मा क्षत्रिय की दौहित्री थी। (तस्य कीर्ति यशोऽश्रीमनोरथवर्मणः दोहित्रीतनयो योऽभूत् दिजात्म प्रवरात्मजः) इसी प्रकार राजा प्रकाश धर्मा जो क्षत्रिय था उसकी बहिन का विवाह सत्यकोशिक स्वामी नामक ब्राह्मण के साथ हुआ था। इस अभिलेख में इस विवाह की उपमा अनुसूया और अत्रिमुनि के विवाह से की गई है। सत्यकौशाम्बी का पुत्र भद्रस्वामी था। इस अभिलेख के अनुसार भद्रस्वामी ने क्षत्रियकुल और ब्राह्मणकुल दोनों को प्रकाशमान किया था।

स्वशक्ति प्रभार्वेज्जित निरुपद्रव वर्णाश्रम व्यवस्थिति - स्सुरनगरीव राजधान्यासीत्

इस अभिलेख में इस सम्बन्ध में तीनों श्लोक उद्धरण के योग्य हैं-

प्रभासधर्म नृपतेस्सोदर्या यस्य यानुजा सम्भूत्।

जगतां हितार्थ जननी विश्वसुजः कर्मसिद्धिरिव।

जन्माच्छन्दस्य सत्यकौशिक स्वामी

तस्याः पतित्वमागादनुसूयाया इवात्रिमुनिः।

पत्यं किल यो बभूव प्रख्यात वीर्यं श्रुति रूप कान्तिः।

क्षत्रकुलं ब्राह्मण्यथद्वयं हि निस्तर यः प्रकटीचकार।¹⁰

889 ई का बो-नंग अभिलेख जो चम्पा से प्राप्त हुआ है। इससे भारतीय सामाजिक-सांस्कृतिक प्रभाव के बारे में जानकारी मिलती है। प्रस्तुत अभिलेख में दासों की सत्ता के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त होती है। दासों के बारे में प्रस्तुत अभिलेख (बो-नंग) में शास्त्रज्ञ और लोकधर्मवित्त राजा जयइन्द्रवर्मा द्वारा श्री महालिंगदेव के मन्दिर के लिये दासों सहित कृषियोग्य भूमि के दान का उल्लेख है। इसी अभिलेख में राजा इन्द्रवर्मा द्वितीय को शास्त्रक्ष के साथ-साथ लोकधर्मवित्त कहा गया है।

द.पू. एशिया के मुअरा कामङ् (बोर्नियो) नामक स्थान से 1876 ई. के शिलालेख प्राप्त हुए हैं। इसी स्थान से प्रस्तर स्तम्भों पर यक्ष स्तम्भ के रूप में बनाये गये अभिलेख भी उत्कीर्ण हैं। अभिलेखों का सम्बन्ध हिन्दू शासक मूलवर्मा से है। ये अभिलेख शुद्ध संस्कृत में हैं और इनकी लिपि से अनुमान लगाया जा सकता है कि इन्हें पांचवी सदी के प्रारंभिक भाग में उत्कीर्ण करवाया गया था। बोर्नियो से प्राप्त एक अभिलेख में राजा मुलवर्मा के वंश का परिचय दिया गया है। जो इस प्रकार है-

श्रीमत श्रीनरेन्द्रस्य कुण्डुनास्थ महात्मनः

पुत्रोऽखवम्मी विख्यातः वंशकर्ता यथाशुमान्।

तस्य पुत्राः महात्मानः त्रयस्त्रय इवाग्नयः।
 तेषां त्रयानां प्रवरः तपोबल दमान्वितः।
 श्री मूलवर्मा राजेन्द्रोः यष्ट्वा बहुसुवर्णकम
 तस्य यज्ञस्य चूपोडय द्विजेन्द्रः सम्प्रकल्पितः॥

जावा में बटाविया से संस्कृत में उत्कीर्ण अभिलेख प्राप्त हुए हैं जिनसे वहाँ के शासक पूर्णवर्मा के बारे में जानकारी मिलती है। इसमें राजा पूर्णवर्मा के पितामह को राजर्षि और पिता को राजाधिराज कहा गया है। ये दोनों उपाधियाँ भारतीय राजाओं के समान थी।

दक्षिणी पूर्वी एशिया के मलाया प्रायद्वीप से भी अनेक ऐसे अभिलेख प्राप्त हुए हैं जिनसे ज्ञात होता है कि वहाँ भारतीय धर्म, भाषा व संस्कृति का व्यापक रूप से प्रचार-प्रसार था।

गुनोंग जरई (केड्डा पर्वत शिखर) की उपत्यका में एक हिन्दू मंदिर के अवशेष उपलब्ध हुए हैं। इस मंदिर के पास केट्टा में एक ऐसे बौद्ध विहार के अवशेष विद्यमान हैं जिसके निर्माण के लिए ईंटों का प्रयोग किया गया था। जिससे ज्ञात होता है कि वे सभी भारतीयों की तरह बौद्ध धर्म से प्रभावित थे। केड्डा में मिले संस्कृत अभिलेख की कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

ये धर्मा हेतु प्रमवा तेषां हेतु तथागतो (अवदत्)
 तेषां च यो निरोध एववादी महाश्रमणः।
 असानाच्चीयते कर्म जन्मनः कर्मकारणम्
 ज्ञानान् क्रियते कर्म कर्मभावान् जायते।

इसके साथ ही मलाया प्रायद्वीप के पूर्वी तट पर वकुआपा के सामने चेया, नखोन स्त्री चम्मरत (नखोन श्री धर्मराह) और विएन स्त्रा के प्राचीन अवशेष विशेष महत्व के हैं। चौया के भग्नावशेषों में एक स्तम्भ भी है जिस पर संस्कृत का एक लेख उत्कीर्ण है। चौया से वास्तुकला के अनेक ऐसे अवशेष प्राप्त हुए हैं जो पूर्णतः भारतीय हैं। इससे पता चलता है कि उन्होंने भारतीय वास्तुकला का भी अनुसरण किया था।

इन सबके अतिरिक्त द.पू. एशिया के अन्य देशों में भारतीय सभ्यता, संस्कृति, रीति-रिवाज आदि के प्रमाण मिलते हैं। अन्य स्थानों पर प्राप्त अभिलेखों, शिलालेखों व अन्य प्रमाणों से भी भारत व द.पू. एशिया के सम्बन्धो व समन्वय का पता चलता है।

सन्दर्भ:-

1. ऋग्वेद, 10.
2. ऋषि, उमा शंकर शर्मा, संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ.सं. 16.
3. श्रीवास्तव, के. सी., प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति, पृ.सं.899
4. उपरोक्त
5. वेल्स, H.C.Q प्री हिस्ट्री एण्ड रिलीजन इन साउथ ईस्ट एशिया, लंदन, 1957, पृ.सं. 110-111
6. Mobbelt I.M. द इंडियनाइजेशन ऑफ साउथ ईस्ट एशिया रिपब्लिकेशन्स ऑन द हिस्टोरिकल सोर्सेज जर्नल ऑफ साउथ ईस्ट एशियन स्टडीज, वॉल्यूम न.VII नं.2 सितम्बर 1977, पृ.सं. 143-161
7. मजूमदार आर.सी., एनसिएंट इण्डिया कॉलोनाइजेशन इन साउथ ईस्ट एशिया, बडोदा, 1955 पृ. 47
8. अथर्ववेद 7.
9. विद्यालंकार, सत्यकेतु, दक्षिण पूर्वी और दक्षिण एशिया में भारतीय संस्कृति, पृ.सं. 253
10. उपरोक्त
11. उपरोक्त, पृ.सं. 255

ਸਿੱਖ ਸਟੇਟ ਸਰਹੰਦ ਦੇ ਗਵਰਨਰ ਸ਼ਹੀਦ ਭਾਈ ਬਾਜ਼ ਸਿੰਘ ਜੀ : ਜਜ਼ਬਾ ਤੇ ਸ਼ਹਾਦਤ

ਡਾ. ਸੁਖਜਿੰਦਰ ਕੌਰ

ਧਰਮ ਇਖ਼ਲਾਕ, ਸਚਿਆਰ, ਸਦਾਚਾਰ, ਨੈਤਿਕ ਕਦਰਾਂ-ਕੀਮਤਾਂ 'ਤੇ ਉਸਰਿਆ ਹੁੰਦਾ ਹੈ ਅਤੇ ਇਹਨਾਂ ਗੁਣਾਂ ਦੇ ਨਾਲ-ਨਾਲ ਸਿੱਖ ਧਰਮ ਦੀ ਨੀਂਹ ਸ਼ਹਾਦਤ 'ਤੇ ਰੱਖੀ ਗਈ ਹੈ ? ਇਸ ਤੋਂ ਪਹਿਲਾਂ ਸਦੀਆਂ ਦੀ ਸਿੱਖਿਆ ਨੇ ਹਿੰਦ-ਵਾਸੀਆਂ ਨੂੰ ਇਨ੍ਹਾਂ ਨਿਤਾਣਾ ਬਣਾ ਦਿੱਤਾ ਸੀ ਕਿ ਸ਼ਹੀਦੀ ਜਾਂ ਕੁਰਬਾਨੀ ਦਾ ਨਾਂ ਤੱਕ ਮੌਜੂਦ ਨਹੀਂ ਸੀ। ਲੋਕਾਂ ਦਾ ਖਿਆਲ ਸੀ ਕਿ ਸਭ ਦੁੱਖ ਮੰਦੇ ਕਰਮਾਂ ਦਾ ਸਿੱਟਾ ਹੁੰਦੇ ਹਨ, ਚੰਗੇ ਕਰਮਾਂ ਵਾਲੇ ਆਦਮੀ ਕਦੇ ਦੁੱਖ ਨਹੀਂ ਸਹਿੰਦੇ। ਇਸ ਕਰਮ-ਫਲ ਦੇ ਅਸਲ ਨੇ ਮਹਾਂ ਪੁਰਸ਼ਾਂ ਦੇ ਵੱਡੇ-ਵੱਡੇ ਕਾਰਨਾਮਿਆਂ ਦੇ ਗੁਣਾਂ ਉੱਤੇ ਪਾਣੀ ਫੇਰ ਦਿੱਤਾ ਸੀ। ਇਹੀ ਕਾਰਨ ਹੈ ਕਿ ਸਿੱਖ ਜ਼ਿੰਦਗੀ ਅਤੇ ਮੌਤ ਨੂੰ ਇੱਕ ਹੀ ਸਿੱਕੇ ਦੇ ਦੋ ਪਾਸੇ ਸਮਝ ਕੇ ਆਪਾ ਕੁਰਬਾਨ ਕਰਨ ਜਾਣਦੇ ਹਨ? ਭਾਵੇਂ ਅਜੋਕੇ ਸਮੇਂ ਵਿਗਿਆਨ ਤੇ ਤਕਨੀਕ ਨੇ ਕਾਫੀ ਤਰੱਕੀ ਕਰ ਲਈ ਹੈ ਪਰ ਮੌਤ ਦੀ ਅਟੱਲ ਸਚਾਈ ਨੂੰ ਰੋਕਣਾ ਅਤੇ ਇਸ ਦੇ ਰਹੱਸ ਦਾ ਭੇਦ ਪਾਉਣਾ ਸੰਭਵ ਨਹੀਂ ਹੋ ਸਕਿਆ? ਜੇ ਲੋਕ ਆਪਣੀ ਜ਼ਿੰਦਗੀ ਵਿਚ ਅਣਖ, ਸੱਚ, ਸਵੈਮਾਨ, ਇਖ਼ਲਾਕ ਦੇ ਰਸਤੇ 'ਤੇ ਚਲਦਿਆਂ ਜ਼ੁਲਮ ਦਾ ਵਿਰੋਧ ਕਰਦਿਆਂ, ਕੁਦਰਤੀ ਮੌਤ ਦੀ ਉਡੀਕ ਨਾ ਕਰਦਿਆਂ ਮੌਤ ਨੂੰ ਆਪ ਗਲੇ ਜਾ ਮਿਲਦੇ ਹਨ ? ਅਜਿਹੇ ਲੋਕਾਂ ਨੂੰ ਉਸ ਕੌਮ ਦੇ ਇਤਿਹਾਸ ਵਿਚ "ਸ਼ਹੀਦ" ਦੇ ਨਾਮ ਨਾਲ ਯਾਦ ਕੀਤਾ ਜਾਂਦਾ ਹੈ ਅਤੇ ਉਸਦੀ ਕੁਰਬਾਨੀ ਨੂੰ "ਸ਼ਹਾਦਤ" ਦੇ ਨਾਮ ਨਾਲ ਸਤਿਕਾਰਿਆ ਜਾਂਦਾ ਹੈ ? ਸਿੱਖ ਆਪਣੇ ਸ਼ਹੀਦਾਂ ਨੂੰ ਰੋਜ਼ਾਨਾ ਸਵੇਰੇ-ਸ਼ਾਮ ਅਰਦਾਸ ਵੇਲੇ ਯਾਦ ਕਰਦੇ ਹਨ :

"ਪੰਜਾਂ ਪਿਆਰਿਆਂ, ਚੌਹਾਂ ਸਾਹਿਬਜ਼ਾਦਿਆਂ, ਚਾਲੀਆਂ ਮੁਕਤਿਆਂ, ਹਠੀਆਂ ਜਪੀਆਂ, ਤਪੀਆਂ, ਜਿਹਨਾਂ ਨਾਮ ਜਪਿਆ, ਵੰਡ ਛਕਿਆ, ਦੇਗ ਚਲਾਈ, ਤੇਗ ਵਾਹੀ, ਦੇਖ ਕੇ ਅਣਡਿੱਠ ਕੀਤਾ, ਤਿਨ੍ਹਾਂ ਪਿਆਰਿਆਂ, ਸਚਿਆਰਿਆਂ ਦੀ ਕਮਾਈ ਦਾ ਧਿਆਨ ਧਰ ਕੇ, ਖਾਲਸਾ ਜੀ ! ਬੋਲੇ ਜੀ ਵਾਹਿਗੁਰੂ!"

ਜਿਨ੍ਹਾਂ ਸਿੰਘਾਂ ਸਿੰਘਣੀਆਂ ਨੇ ਧਰਮ ਹੇਤ ਸੀਸ ਦਿੱਤੇ, ਬੰਦ ਬੰਦ ਕਟਾਏ, ਖੋਪਰੀਆਂ ਲੁਹਾਈਆਂ, ਚਰਖੀਆਂ ਤੇ ਚੜੇ, ਆਰਿਆਂ ਨਾਲ ਚਿਰਾਏ ਗਏ, ਗੁਰਦਵਾਰਿਆਂ ਦੀ ਸੇਵਾ ਲਈ ਕੁਰਬਾਨੀਆਂ ਕੀਤੀਆਂ, ਧਰਮ ਨਹੀਂ ਹਾਰਿਆ, ਸਿੱਖੀ ਕੇਸਾਂ ਸੁਆਸਾਂ ਨਾਲ ਨਿਬਾਹੀ, ਤਿਨ੍ਹਾਂ ਦੀ ਕਮਾਈ ਦਾ ਧਿਆਨ ਧਰ ਕੇ ਖਾਲਸਾ ਜੀ ! ਬੋਲੇ ਜੀ ਵਾਹਿਗੁਰੂ!"

'ਸ਼ਹੀਦ' ਅਰਬੀ ਭਾਸ਼ਾ ਦਾ ਸ਼ਬਦ ਹੈ, ਜਿਸ ਦੇ ਅਰਥ ਭਾਈ ਕਾਨ੍ਹ ਸਿੰਘ ਨਾਭਾ ਦੇ ਅਨੁਸਾਰ ਹਨ "ਸ਼ਹੀਦ- ਵਿ-ਸ਼ਹਾਦਤ ਦੇਣ ਵਾਲਾ, ਗਵਾਹ. ਸਾਖੀ (ਸਾਖੀ) ੨ ਸੰਗਤ-ਅਜੇਹਾ ਕੌਮ ਕਰਨ ਵਾਲਾ ਜਿਸ ਦੀ ਲੋਕ ਸਾਖੀ ਦੇਣ? ਧਰਮਯੁੱਧ ਵਿੱਚ ਜਿਸ ਨੇ ਜੀਵਨ ਅਰਪਿਆ ਹੈ ।

ਸ਼ਹੀਦੀ. ਸੰਗਤ-ਸ਼ਹੀਦਪਨ, ਸ਼ਹਾਦਤ, ਗਵਾਹੀ । ੨ ਸ਼ਹਾਦਤਪ੍ਰਾਪਤ ਕਰਨ ਦੀ ਕ੍ਰਿਯਾ. ? ਧਰਮਹਿਤ ਪ੍ਰਾਣ ਅਰਪਣ ਦੀ ਕ੍ਰਿਯਾ.

ਸ਼ਹਾਦਤ ਸੰਗਤਾ -ਸੱਚੀ ਗਵਾਹੀ. ੨ ਸ਼ਹੀਦੀ, ਧਰਮਯੁੱਧ ਵਿੱਚ ਮੌਤ."^੨

ਪੰਜਾਬੀ ਯੂਨੀਵਰਸਿਟੀ ਫ਼ਾਰਸੀ-ਪੰਜਾਬੀ ਕੋਸ਼ ਦੇ ਅਨੁਸਾਰ ਸ਼ਹੀਦ ਤੇ ਸ਼ਹਾਦਤ ਦੇ ਅਰਥ ਹਨ, "ਸ਼ਹੀਦ : ਖ਼ੁਦ ਦੇ ਰਾਹ 'ਤੇ ਮਾਰਿਆ ਜਾਣ ਵਾਲਾ; ਗਵਾਹ, ਸਾਖੀ; ਉਹ ਵਿਅਕਤੀ ਜਿਸ ਤੋਂ ਕੋਈ ਗੱਲ ਲੁਕੀ ਛੁਪੀ ਨਾ ਹੋਵੇ; ਅੱਲਾਹ ਦਾ ਇਕ ਨਾਮ ।

ਸ਼ਹਾਦਤ : ਗਵਾਹੀ, ਸਚੀ ਗਵਾਹੀ; ਗਵਾਹੀ ਦੇਣਾ, ਸਾਖੀ ਭਰਨਾ; ਸਚੀ ਖ਼ਬਰ; ਸ਼ਹੀਦ ਹੋਣਾ, ਰਬ ਦੇ ਰਾਹ ਮਾਰੇ ਜਾਣਾ, ਬੇਗੁਨਾਹ ਕਤਲ ਹੋਣਾ, ਖ਼ੁਦ ਦੀ ਏਕਤਾ ਅਤੇ ਹਜ਼ਰਤ ਮੁਹੰਮਦ ਸਾਹਿਬ ਦੀ ਰਿਸਾਲਤ (ਰਸੂਲ ਹੋਣਾ) ਨੂੰ ਸਚੇ ਦਿਲੋਂ ਮੰਨਣਾ, ਸ਼ਹਾਦਤ ਦਾ ਕਲਮਾ।"^੩

ਸਿੱਖ ਇਤਿਹਾਸ ਅਨੇਕਾਂ ਅਣਖੀਲੇ ਸੂਰਬੀਰਾਂ, ਯੋਧਿਆਂ, ਅਮਰ ਸ਼ਹੀਦਾਂ ਦੀਆਂ ਅਕੱਥ ਗਾਥਾਵਾਂ ਨਾਲ ਭਰਿਆ ਪਿਆ ਹੈ ? ਇਸ ਇਤਿਹਾਸ ਵਿਚ ਇਕ ਤੋਂ ਇਕ ਯੋਧੇ ਦੀ ਵੀਰਤਾ ਤੇ ਕੁਰਬਾਨੀ ਸੁਣਨ ਵਾਲੇ ਹਰ ਵਿਅਕਤੀ ਨੂੰ ਟੁੰਬਦੀ ਤੇ ਉਸ ਦੇ ਰੋਮ-ਰੋਮ ਵਿਚ ਜੋਸ਼ੀਲੇ ਖ਼ੂਨ ਦਾ ਵਹਾਅ ਤੇਜ਼ ਕਰ ਦਿੰਦੀ ਹੈ ? ਇਹਨਾਂ ਸ਼ਹੀਦਾਂ ਵਿਚੋਂ ਹੀ ਇਕ ਅਣਖੀਲਾ ਯੋਧਾ, ਸੂਰਬੀਰ, ਅਮਰ ਸ਼ਹੀਦ ਭਾਈ ਬਾਜ਼ ਸਿੰਘ ਜੀ ਸਨ ਜਿਨ੍ਹਾਂ ਦੀ ਦੇਣ ਨੂੰ ਸਿੱਖ ਜਗਤ ਵਿਚ ਕਦੇ ਵੀ ਨਹੀਂ ਭੁਲਾਇਆ ਨਹੀਂ ਜਾ ਸਕਦਾ ?

ਹਥਲੇ ਖੋਜ ਪੇਪਰ ਵਿਚ ਭਾਈ ਬਾਜ਼ ਸਿੰਘ ਦੀ ਸ਼ਹਾਦਤ ਤੇ ਜਜ਼ਬੇ ਤੇ ਵਿਚਾਰ ਕੀਤਾ ਜਾਵੇਗਾ । ਭਾਈ ਬਾਜ਼ ਸਿੰਘ ਬਲ ਗੋਤ ਦਾ ਇਕ ਜੱਟ ਸੀ ਜਿਸ ਨੇ ਅੰਮ੍ਰਿਤਸਰ ਜ਼ਿਲ੍ਹੇ ਦੇ ਪਿੰਡ 'ਮੀਰਪੁਰ ਪਟੀ' ਵਿਚ ਜਨਮ ਲਿਆ ? ਇਹਨਾਂ ਨੇ ਆਨੰਦਪੁਰ ਸਾਹਿਬ ਵਿਚ ਗੁਰੂ ਗੋਬਿੰਦ ਸਿੰਘ ਜੀ ਪਾਸੋਂ ਅੰਮ੍ਰਿਤ ਛਕਿਆ ਅਤੇ ਗੁਰੂ ਜੀ ਦੁਆਰਾ ਲੜੀਆਂ ਗਈਆਂ ਜੰਗਾਂ ਵਿਚ ਯੋਗਦਾਨ ਪਾਇਆ ? ਨਾਂਦੇੜ ਤਕ ਇਹ ਗੁਰੂ ਜੀ ਦੇ ਅੰਗ-ਸੰਗ ਰਹੇ ? ਸੰਨ 1708 ਈ. ਵਿਚ ਜਦੋਂ ਗੁਰੂ ਜੀ ਨੇ ਬਾਬਾ ਬੰਦਾ ਬਹਾਦਰ ਨੂੰ ਪੰਜਾਬ ਵਿਚ ਜ਼ੁਲਮ ਨੂੰ ਖ਼ਤਮ ਕਰਨ ਲਈ ਭੇਜਿਆ ਤਾਂ

"ਗੁਰੂ ਸਾਹਿਬ ਨੇ ਬੰਦਾ ਬਹਾਦਰ ਨੂੰ ਸੰਸਾਰਕ ਸੱਤਾ ਦੀ ਨਿਸ਼ਾਨੀ ਵੱਜੋਂ ਇੱਕ ਨਗਾਰਾ ਅਤੇ ਇੱਕ ਝੰਡਾ ਪ੍ਰਦਾਨ ਕੀਤਾ ਅਤੇ ਨਾਲ ਹੀ ਆਪਣੇ ਭਾਤੋਂ ਵਿੱਚੋਂ ਵਿਜੈ ਦੇ ਇਕਰਾਰ ਵਜੋਂ ਪੰਜ ਤੀਰ ਅਤੇ ਕੁਝ ਹੋਰ ਹਥਿਆਰ ਵੀ ਬਖ਼ਸ਼ੇ

‘ਪੰਜ ਪਿਆਰਿਆਂ ਦੇ ਰੁਪ ਵਿੱਚ ਪੰਜ ਸਿੰਘ-ਭਾਈ ਬਿਨੋਦ ਸਿੰਘ, ਭਾਈ ਕਾਹਨ ਸਿੰਘ, ਭਾਈ ਬਾਜ਼ ਸਿੰਘ, ਭਾਈ ਦਇਆ ਸਿੰਘ ਅਤੇ ਭਾਈ ਰਣ ਸਿੰਘ - ਉਸ ਦੀ ਸਹਾਇਤਾ ਲਈ ਅਤੇ ਉਸ ਦੇ ਸਲਾਹਕਾਰਾਂ ਦੇ ਰੁਪ ਵਿੱਚ ਉਸ ਦੇ ਨਾਲ ਭੇਜੇ ਗਏ।’⁴

ਸਰਹਿੰਦ ਫਤਿਹ ਕਰਨ ਲਈ ਚੱਪੜਚੜੀ ਦੀ ਲੜਾਈ ਸਮੇਂ ਜਦੋਂ ਬੰਦਾ ਸਿੰਘ ਜੀ ਨੇ ਸਿੰਘਾਂ ਦੇ ਦਲ ਦੀ ਕਮਾਨ ਭਾਈ ਫਤਹਿ ਸਿੰਘ, ਕਰਮ ਸਿੰਘ, ਧਰਮ ਸਿੰਘ, ਆਲੀ ਸਿੰਘ ਤੇ ਸ਼ਾਮ ਸਿੰਘ ਦੇ ਹਵਾਲੇ ਕੀਤੀ ਤੇ ਖੁਦ ਇਕ ਉੱਚੇ ਟਿੱਬੇ ਤੋਂ ਸਿੱਖ ਫੌਜ ਦੀ ਨਿਗਰਾਨੀ ਕਰਨ ਲੱਗੇ ਤਾਂ ਭਾਈ ਬਾਜ਼ ਸਿੰਘ ਨੇ ਵੀ ਪੁਰੀ ਲੜਾਈ ਅਤੇ ਮੁਗਲਾਂ ਤੇ ਬਾਜ਼ ਅੱਖ ਰੱਖੀ ਹੋਈ ਸੀ।

“ਸਰਹਿੰਦ ਤੋਂ ੧੦-੧੨ ਕੋਹ ਦੀ ਵਿੱਥ ਉਤੇ, ਚਾਪੜ ਚੜੀ ਦੇ ਮੈਦਾਨ ਵਿੱਚ, ਜੇਠ ਸੂਦੀ ੧੪ ਸੰਮਤ ੧੭੬੭ (੧੨ ਮਈ ਸੰਨ ੧੭੧੦) ਨੂੰ ਬੜੀ ਸਖ਼ਤ ਲੜਾਈ ਹੋਈ। ਤੋਪਾਂ ਜੰਬਰਿਆਂ ਦੀ ਪਹਿਲੀ ਮਾਰ ਅਤੇ ਫੌਜ ਦਾ ਪਹਿਲਾ ਹੱਲਾ ਹੁੰਦਿਆਂ ਹੀ ਖਾਲਸੇ ਦੇ ਉਹ ਸਾਥੀ ਹਰਨ ਹੋ ਗਏ, ਜਿਹੜੇ ਕੇਵਲ ਲੁਟ-ਮਾਰ ਦੀ ਖਾਤਰ ਆ ਰਲੇ ਹੋਏ ਸਨ। ਉਨ੍ਹਾਂ ਨੂੰ ਸੌਦਾ ਮਹਿੰਗਾ ਪੈਂਦਾ ਜਾਪਿਆ? ਉਸ ਵੇਲੇ ਸੁੱਚਾ ਨੰਦ ਦਾ ਭਤੀਜਾ ਆਪਣੇ ਇਕ ਹਜ਼ਾਰ ਸਾਥੀਆਂ ਸਮੇਤ ਨੱਠ ਉਠਿਆ? ਬਾਬਾ ਬੰਦਾ ਸਿੰਘ ਜੀ ਨੂੰ ਇਸ ਕਰਾੜ ਦੀ ਨੀਯਤ ਦਾ ਪਹਿਲਾਂ ਹੀ ਪਤਾ ਸੀ। ਉਨ੍ਹਾਂ ਨੇ ਪਹਿਲਾਂ ਹੀ ਭਾਈ ਫਤਿਹ ਸਿੰਘ ਤੇ ਭਾਈ ਬਾਜ਼ ਸਿੰਘ ਨੂੰ ਇਸ ਦਾ ਧਿਆਨ ਰੱਖਣ ਲਈ ਕਿਹਾ ਹੋਇਆ ਸੀ? ਸਿੰਘਾਂ ਨੇ ਛੇਤੀ ਉਸ ਨੂੰ ਜਾ ਘੇਰਿਆ ਅਤੇ ਸਾਥੀਆਂ ਸਮੇਤ ਪਾਰ ਬੁਲਾਇਆ।”⁵

ਜਦੋਂ ਲੜਾਈ ਹਥੇ-ਹੱਥੀ ਹੋਣ ਲੱਗੀ ਤਾਂ

“ਸਾਰੀ ਮੁਸਲਿਮ ਸੈਨਾ ਤਬਾਹ ਕਰ ਦਿਤੀ ਗਈ। ਵਜ਼ੀਰ ਖਾਂ ਬਾਜ਼ ਸਿੰਘ ਦੇ ਸਾਹਮਣੇ ਆਇਆ। ਉਸ ਨੇ ਬਾਜ਼ ਸਿੰਘ ਨੂੰ ਲਲਕਾਰ ਕੇ ਕਿਹਾ ਕਿ ‘ਓ ਗੰਦੇ ਕੁੱਤੇ ਹੁਸ਼ਿਆਰ ਹੋ ਜਾ।’ ਇਹ ਕਹਿੰਦਿਆਂ ਉਸ ਨੇ ਨੇਜੇ ਨਾਲ ਵਾਰ ਕੀਤਾ। ਬਾਜ਼ ਸਿੰਘ ਨੇ ਨੇਜਾ ਆਪਣੇ ਹੱਥ ਨਾਲ ਪਕੜ ਲਿਆ। ਫਿਰ ਵਜ਼ੀਰ ਖਾਂ ਨੇ ਇਕ ਤੀਰ ਬਾਜ਼ ਸਿੰਘ ਦੀ ਬਾਂਹ ਵਿਚ ਮਾਰਿਆ। ਫਿਰ ਉਹ ਆਪਣੀ ਤਲਵਾਰ ਨਾਲ ਬਾਜ਼ ਸਿੰਘ ਉਤੇ ਝਪਟਿਆ। ਫਤਿਹ ਸਿੰਘ ਵਜ਼ੀਰ ਖਾਂ ਦੇ ਪਿੱਛੇ ਆ ਗਿਆ ਸੀ। ਉਸ ਨੇ ਪੁਰੇ ਜ਼ੋਰ ਨਾਲ ਤਲਵਾਰ ਵਜ਼ੀਰ ਖਾਂ ਦੇ ਮੋਢੇ ਵਿਚ ਮਾਰੀ ਅਤੇ ਤਲਵਾਰ ਉਸ ਦੇ ਮੋਢੇ ਨੂੰ ਚੀਰਦੀ ਹੋਈ ਕਮਰ ਤੱਕ ਚਲੀ ਗਈ ਸੀ। ਵਜ਼ੀਰ ਖਾਂ ਮਾਰਿਆ ਗਿਆ ਸੀ।”⁶

ਜੰਗ ਜਿੱਤਣ ਤੇ ਬਾਅਦ ਸਰਹਿੰਦ ਫਤਹਿ ਕਰਕੇ ਬੰਦਾ ਸਿੰਘ ਬਹਾਦੁਰ ਨੇ

“ਅਮਨ-ਅਮਾਨ ਕਰਕੇ ਖਾਲਸਾ ਦਰਬਾਰ ਲਗਾਇਆ। ਸਰਹਿੰਦ ਦੀ ਧਰਤੀ ਤੇ ਖਾਲਸਾ ਰਾਜ ਦੀ ਸਥਾਪਨਾ ਦਾ ਐਲਾਨ ਕੀਤਾ ਗਿਆ। ਪਹਿਲੇ ਦਰਬਾਰ ਵਿਚ ਹੀ ਐਲਾਨ ਕੀਤਾ ਗਿਆ ਕਿ ਜ਼ਮੀਨ ਉਸੇ ਦੀ ਹੈ ਜਿਹੜਾ ਇਸ ਨੂੰ ਵਾਹੁੰਦਾ ਹੈ। ਇਸ ਤਰ੍ਹਾਂ ਜਾਗੀਰਦਾਰੀਆਂ ਤੋੜ ਕੇ ਹਲ ਵਾਹੁਣ ਵਾਲੇ ਕਿਸਾਨਾਂ ਨੂੰ ਹੀ ਜ਼ਮੀਨ ਦੀ ਮਾਲਕੀ ਦੇ ਹੱਕ ਦਿੱਤੇ ਗਏ? ਜਿਹੜਾ ਵੀ ਕਿਸਾਨ ਜਿੰਨੀ ਖੇਤੀ ਨੂੰ ਵਾਹੁੰਦਾ-ਬੀਜਦਾ ਸੀ ਉਹ ਉਤਨੀ ਖੇਤੀ ਦਾ ਮਾਲਕ ਬਣ ਗਿਆ ਸੀ। ਇਸੇ ਹੀ ਦਰਬਾਰ ਵਿਚ ਭਾਈ ਬਾਜ਼ ਸਿੰਘ ਨੂੰ ਸਰਹਿੰਦ ਪਰਾਂਤ ਦਾ ਗਵਰਨਰ (ਸੁਬੇਦਾਰ) ਨਿਯੁਕਤ ਕੀਤਾ ਗਿਆ। ਭਾਈ ਬਾਜ਼ ਸਿੰਘ ਬੰਦਾ ਸਿੰਘ ਦੀ ਸੱਜੀ ਬਾਂਹ ਸੀ। ਇਹ ਬਲ ਗੋਤ ਦਾ ਜੱਟ ਸੀ ਅਤੇ ਬਹਾਦੁਰੀ ਵਿਚ ਮੰਨਿਆ-ਪਰਮੰਨਿਆ ਸੀ? ਭਾਈ ਆਲੀ ਸਿੰਘ ਨੂੰ ਉਸ ਦਾ ਨਾਇਬ ਸੁਬੇਦਾਰ ਨਿਯੁਕਤ ਕੀਤਾ ਗਿਆ। ਭਾਈ ਫਤਿਹ ਸਿੰਘ ਨੂੰ ਸਮਾਣੇ ਦੇ ਗਵਰਨਰ ਦੇ ਤੌਰ ਤੇ ਪੱਕਾ ਕੀਤਾ ਗਿਆ ਸੀ। ਭਾਈ ਬਾਜ਼ ਸਿੰਘ ਦੇ ਛੋਟੇ ਭਰਾ ਭਾਈ ਰਾਮ ਸਿੰਘ ਨੂੰ ਥਾਨੇਸਰ ਦਾ ਗਵਰਨਰ ਨਿਯੁਕਤ ਕੀਤਾ ਗਿਆ ਅਤੇ ਬਾਵਾ ਬਿਨੋਦ ਸਿੰਘ ਨੂੰ ਵੀ ਥਾਨੇਸਰ ਵਿਖੇ ਰੱਖੀ ਗਈ ਸਿੱਖ ਰਜਮੈਂਟ ਦਾ ਕਮਾਂਡਰ ਨਿਯੁਕਤ ਕੀਤਾ ਗਿਆ ਸੀ। ਇਸ ਦੀ ਡਿਊਟੀ ਸੀ ਕਿ ਦਿੱਲੀ ਵਲੋਂ ਆਉਂਦੀ ਜਰਨੈਲੀ ਸੜਕ ਉਪਰ ਆਪਣੀ ਸਿੱਖ ਸੈਨਾ ਤਾਇਨਾਤ ਕਰਕੇ ਰੱਖੇ ਅਤੇ ਉਧਰੋਂ ਆਉਣ ਵਾਲੀ ਕਿਸੇ ਵੀ ਸੈਨਾ ਨੂੰ ਰੋਕ ਕੇ ਰੱਖੇ।”⁷

ਇਸ ਤਰ੍ਹਾਂ ਭਾਈ ਬਾਜ਼ ਸਿੰਘ ਨੇ ਸਰਹਿੰਦ ਦਾ ਗਵਰਨਰ ਬਣ ਸਿੱਖ ਰਾਜ ਵਿਚ ਆਪਣਾ ਯੋਗਦਾਨ ਦਿੱਤਾ।

ਦਸੰਬਰ, 1715 ਈ. ਨੂੰ ਬੰਦਾ ਸਿੰਘ ਬਹਾਦੁਰ ਅਤੇ ਉਸ ਦੇ ਜੰਗੀ ਸਾਥੀ ਸਿੰਘ ਗੁਰਦਾਸ ਨੰਗਲ ਦੇ ਘੇਰੇ ਦੌਰਾਨ ਪਕੜੇ ਗਏ ਸਨ। ਉਹਨਾਂ ਨੂੰ ਜਲੂਸ ਦੇ ਰੁਪ ਵਿਚ ਦਿੱਲੀ ਲਿਜਾਇਆ ਗਿਆ ਜਿਨ੍ਹਾਂ ਵਿਚ ਭਾਈ ਬਾਜ਼ ਸਿੰਘ ਵੀ ਸ਼ਾਮਲ ਸਨ। ਫਰਵਰੀ, 1716 ਈ. ਨੂੰ ਇਹ ਸਾਰਾ ਜਲੂਸ ਫੌਜ ਦੇ ਸਖ਼ਤ ਪਹਿਰੇ ਹੇਠ ਦਿੱਲੀ ਦੀ ਜੁਹ ਵਿਚ ਜਾ ਦਾਖ਼ਲ ਹੋਇਆ। ਬਾਦਸ਼ਾਹ ਨੂੰ ਖ਼ਬਰ ਭੇਜੀ ਗਈ। ਬਾਦਸ਼ਾਹ ਨੇ ਇਕ ਤਕੜੀ ਸੈਨਿਕ ਟੁਕੜੀ ਇਹਤਮਾਦ-ਉਲ-ਦੌਲਾ ਮੁਹੰਮਦ ਅਮੀਨ ਖਾਨ ਦੀ ਅਗਵਾਈ ਹੇਠ ਇਨ੍ਹਾਂ ਕੈਦੀ ਸਿੰਘਾਂ ਨੂੰ ਤਕੜੇ ਪਹਿਰੇ ਹੇਠ ਲਿਆਉਣ ਲਈ ਭੇਜੀ। ਫੌਜ ਦਾ ਸਖ਼ਤ ਪਹਿਰਾ ਤਾਂ ਪੁਰੋਂ ਹੀ ਸੀ ਕਿਉਂਕਿ ਹਕੂਮਤ ਨੂੰ ਡਰ ਸੀ ਕਿ ਕਿਤੇ ਕੋਈ ਛੁਪਿਆ ਹੋਇਆ ਸਿੰਘ ਜੱਥਾ ਅਚਾਨਕ ਹਮਲਾ ਕਰਕੇ ਇਨ੍ਹਾਂ ਕੈਦੀ ਸਿੰਘਾਂ ਨੂੰ ਛੁਡਵਾ ਨਾ ਲਵੇ।

ਆਖਿਰ 9 ਜੂਨ 1716 ਨੂੰ ਬਾਬਾ ਬੰਦਾ ਸਿੰਘ, ਉਨ੍ਹਾਂ ਦੇ ਸਪੁੱਤਰ ਅਜੈ ਸਿੰਘ, ਉਨ੍ਹਾਂ ਦੇ ਸਾਥੀ ਜਥੇਦਾਰ ਬਾਜ਼ ਸਿੰਘ, ਸਰਦਾਰ ਰਾਮ ਸਿੰਘ, ਫਤਿਹ ਸਿੰਘ, ਆਲੀ ਸਿੰਘ, ਗੁਲਾਬ ਸਿੰਘ ਬਖ਼ਸ਼ੀ ਤੇ ਬਾਕੀ ਸਾਥੀਆਂ ਸਮੇਤ, ਸਰਬਰਾਹ ਖਾਨ ਦੀ ਨਿਗਰਾਨੀ ਹੇਠਾਂ, ਕੈਦ ਵਿਚੋਂ ਕੱਢ ਕੇ ਫਿਰ ਇਕ ਵਾਰੀ ਬਾਜ਼ਾਰਾਂ ਵਿਚ ਫਿਰਾਇਆ? ਸਾਰੇ ਸ਼ਹਿਰ ਦਾ ਚੱਕਰ ਲੁਆ ਕੇ ਕੁਤਬ ਮੀਨਾਰ ਲਾਗੇ ਖ਼ਵਾਜਾ ਕੁਤਬਉਦੀਨ ਬਖ਼ਤਿਆਰ ਕਾਕੀ ਦੀ ਮਸਜਿਦ ਵਿਚ ਲਿਆ ਕੇ ਬਿਠਾਇਆ ਗਿਆ। ਉਥੇ ਬਹਾਦੁਰ ਸ਼ਾਹ ਦੀ ਕਬਰ ਦੁਆਲੇ ਇਸ ‘ਜਲੂਸ’ ਨੂੰ ਫਿਰਾਇਆ ਗਿਆ। ਸਤਿਬੀਰ ਸਿੰਘ ਮਹਿਮਾ ਪ੍ਰਕਾਸ਼ ਦੇ ਹਵਾਲੇ ਨਾਲ ਭਾਈ ਬਾਜ਼ ਸਿੰਘ ਦੀ ਫੁਰਤੀ, ਬਹਾਦੁਰੀ ਅਤੇ ਜਜ਼ਬੇ ਬਾਰੇ ਲਿਖਦੇ ਹਨ “ਭਾਈ ਬਾਜ਼ ਸਿੰਘ ਦੀ ਚੜ੍ਹਦੀ

ਕਲਾ : ਬਾਕੀ ਸਾਥੀਆਂ ਨੂੰ ਤਲਵਾਰ ਨਾਲ ਮੌਤ ਦੇ ਘਾਟ ਉਤਾਰਿਆ ਗਿਆ । ਮਹਿਮਾ ਪ੍ਰਕਾਸ਼ ਦਾ ਲਿਖਾਰੀ ਲਿਖਦਾ ਹੈ ਕਿ ਜਦ ਭਾਈ ਬਾਜ ਸਿੰਘ ਦੀ ਵਾਰੀ ਆਈ ਤਾਂ ਫ਼ਰਖਸੀਅਰ ਨੇ ਮਜ਼ਾਕ ਵਜੋਂ ਕਿਹਾ :

"ਮੈਂ ਸੁਣਿਆ ਹੈ. ਕਿ ਬਾਜ ਸਿੰਘ ਨਾਮ ਦੇ ਸਿੱਖ ਦੇ ਟਾਕਰੇ ਦਾ ਕੋਈ ਬਹਾਦਰ ਸੰਸਾਰ ਵਿਚ ਨਹੀਂ, ਉਹ ਕਿੱਥੇ ਹੈ ?" ਭਾਈ ਬਾਜ ਸਿੰਘ ਨੇ ਕਿਹਾ, "ਉਹ ਬਾਜ ਸਿੰਘ ਮੈਂ ਹੀ ਗੁਰੂ ਦਾ ਨਿਮਾਣਾ। ਸੇਵਕ ਹਾਂ।" ਤਾਂ ਫ਼ਰਖਸੀਅਰ ਨੇ ਕਿਹਾ ਕਿ ਹੁਣ ਤੇਰੀ ਬਹਾਦਰੀ ਕਿੱਥੇ ਹੈ? ਬਾਜ ਸਿੰਘ ਨੇ ਜੁਆਬ ਦਿੱਤਾ : "ਬੇੜੀਆਂ ਤਾਂ ਹਟਾ, ਫੇਰ ਤਮਾਸ਼ਾ ਦੇਖ।" ਬਾਦਸ਼ਾਹ ਦੇ ਕਹਿਣ ਉੱਤੇ ਬੇੜੀਆਂ ਹਟਾਈਆਂ ਗਈਆਂ ਤਾਂ ਬਾਜ ਸਿੰਘ ਨੇ ਸੱਚਮੁੱਚ ਬਾਜ ਵਾਂਗੋ ਝਪਟ ਕੇ ਬਾਦਸ਼ਾਹ ਦੇ ਅਹਿਲਕਾਰਾਂ ਨੂੰ ਜਾ ਲਿਆ ਤੇ ਦੇਖਦੇ-ਦੇਖਦੇ ਤਿੰਨਾਂ ਨੂੰ ਮਾਰ ਮੁਕਾਇਆ। ਅਜੇ ਇਕੋ ਹੱਥਕੜੀ ਖੁੱਲ੍ਹੀ ਸੀ, ਬਾਕੀ ਹੱਥਕੜੀਆਂ ਬਾਜ ਸਿੰਘ ਨੂੰ ਪਈਆਂ ਹੋਈਆਂ ਸਨ । ਜੇ ਉਸ ਸਮੇਂ ਸਾਰੇ ਸਿਪਾਹੀ ਨੱਠ ਕੇ ਬਾਜ ਸਿੰਘ ਨੂੰ ਨਾ ਪਕੜਦੇ ਤਾਂ ਅਮੀਨ ਖ਼ਾਨ ਦੀ ਵੀ ਅਲਖ ਮੁੱਕ ਜਾਣੀ ਸੀ । ਫ਼ਰਖਸੀਅਰ ਜਜ਼ਬਾ ਦੇਖ ਕੇ ਹੈਰਾਨ ਹੋਇਆ ਤੇ ਉਸ ਸਵੀਕਾਰ ਕੀਤਾ ਕਿ ਨਿਰਾਲੇ ਤੇ ਵੱਖ ਜਜ਼ਬੇ ਵਾਲੀ ਇਹ ਕੌਮ ਹੈ।"⁸

ਬਾਜ ਸਿੰਘ ਨੂੰ ਝੱਟ-ਪੱਟ ਕਾਬੂ ਕਰਕੇ ਉਸ ਦੀਆਂ ਬਾਹਾਂ ਕੱਟ ਦਿੱਤੀਆਂ ਗਈਆਂ ਸਨ। ਫਿਰ ਕਿਸੇ ਵੀ ਸਿੰਘ ਨੂੰ ਕਿਸੇ ਅਧਿਕਾਰੀ ਨੇ ਇਸ ਤਰ੍ਹਾਂ ਦੀ ਟਕੌਰ ਨਹੀਂ ਕੀਤੀ । ਬਾਜ ਸਿੰਘ ਤੋਂ ਬਾਅਦ ਸਭ ਨੂੰ ਹੀ ਸੰਗਲਾਂ ਵਿਚ ਜਕੜਿਆਂ ਪਿਆਂ ਨੂੰ ਹੀ ਕਤਲ ਕਰ ਦਿੱਤਾ ਗਿਆ ਸੀ। ਕਿਸੇ ਵੀ ਸਿੰਘ ਨੇ ਕਤਲ ਹੋਣ ਦੇ ਡਰੋਂ ਆਪਣਾ ਸਿਦਕ ਨਹੀਂ ਹਾਰਿਆ। ਉਸੇ ਦਿਨ 9 ਜੂਨ, 1716 ਨੂੰ ਬੰਦੀ ਬਣਾਏ ਸਾਰੇ ਸਿੰਘ ਸ਼ਹੀਦ ਕਰ ਦਿੱਤੇ ਗਏ? ਇਸ ਤਰ੍ਹਾਂ ਭਾਈ ਬਾਜ ਸਿੰਘ ਜੀ ਤੇ ਉਨ੍ਹਾਂ ਦੇ ਤਿੰਨ ਭਰਾਵਾਂ ਦੀ ਸ਼ਹਾਦਤ ਨਾਲ ਸਿੱਖ ਇਤਿਹਾਸ ਦਾ ਇਕ ਕਾਂਡ ਸਮਾਪਤ ਹੋਇਆ? ਇਹ ਕਾਂਡ ਜਿੱਤਾਂ, ਜਜ਼ਬਿਆਂ, ਕੁਰਬਾਨੀਆਂ ਦਾ ਸੁਮੇਲ ਸੀ ?ਜਿਸ ਸਦਕਾ ਸਾਰੀ ਸਿੱਖ ਕੌਮ ਇਸ ਪਰਿਵਾਰ ਦੀ ਸ਼ਹਾਦਤ ਨੂੰ ਕੋਟਿਨ-ਕੋਟ ਪ੍ਰਣਾਮ ਕਰਦੀ ਹੈ।

ਹਵਾਲੇ ਤੇ ਟਿੱਪਣੀਆਂ

1. ਪ੍ਰਿੰਸੀਪਲ ਨਿਰੰਦਰ ਪਾਲ ਸਿੰਘ, ਅਰਦਾਸ, ਸਿੱਖ ਫਾਊਂਡੇਸ਼ਨ, ਦਿੱਲੀ, ਪੰਨਾ 10 ਤੋਂ 16
2. ਭਾਈ ਕਾਨ੍ਹ ਸਿੰਘ ਨਾਭਾ, ਗੁਰੂਸ਼ਬਦ ਰਤਨਾਕਰ ਮਹਾਨ ਕੋਸ਼, ਨੈਸ਼ਨਲ ਬੁਕ ਸ਼ਾਪ, ਦਿੱਲੀ, ਪੰਨਾ- 138,39,40
3. ਡਾ ਰਾਜਿੰਦਰ ਸਿੰਘ ਲਾਂਬਾ (ਸੰਪਾ), ਸੰਕਲਨਕਰਤਾ ਡਾ. ਜੀਤ ਸਿੰਘ ਸੀਤਲ, ਸੰਸ਼ੋਧਕ ਪ੍ਰੋ. ਗੁਲਵੰਤ ਸਿੰਘ, ਪੰਜਾਬੀ ਯੂਨੀਵਰਸਿਟੀ ਫਾਰਸੀ-ਪੰਜਾਬੀ ਕੋਸ਼ ,ਪਬਲੀਕੇਸ਼ਨ ਬਿਊਰੋ ਪੰਜਾਬੀ ਯੂਨੀਵਰਸਿਟੀ, ਪਟਿਆਲਾ, ਪੰਨੇ 552-53
4. ਡਾ. ਹਰਚਰਨ ਸਿੰਘ ਸਰਹਿੰਦੀ, ਬਾਬਾ ਬੰਦਾ ਸਿੰਘ ਬਹਾਦਰ, ਲੋਕਗੀਤ ਪ੍ਰਕਾਸ਼ਨ,ਚੰਡੀਗੜ੍ਹ, ਪੰਨੇ 19-20
5. ਪ੍ਰੋ: ਕਰਤਾਰ ਸਿੰਘ ਐਮ. ਏ., ਸਿੱਖ ਇਤਿਹਾਸ (ਭਾਗ ਦੂਜਾ), ਪ੍ਰੋ. ਸ਼੍ਰੋਮਣੀ ਗੁਰਦੁਆਰਾ ਪ੍ਰਬੰਧਕ ਕਮੇਟੀ, ਸ੍ਰੀ ਅੰਮ੍ਰਿਤਸਰ, ਪੰਨੇ 47, 48
6. ਗੰਡਾ ਸਿੰਘ, ਬੰਦਾ ਸਿੰਘ ਬਹਾਦਰ, ਸ਼੍ਰੋਮਣੀ ਗੁਰਦੁਆਰਾ ਪ੍ਰਬੰਧਕ ਕਮੇਟੀ, ਅੰਮ੍ਰਿਤਸਰ, 1964, ਪੰਨਾ- 55
7. ਡਾ. ਸੁਖਦਿਆਲ ਸਿੰਘ, ਖਾਲਸਾ ਰਾਜ ਦਾ ਬਾਨੀ ਬੰਦਾ ਸਿੰਘ ਬਹਾਦਰ (1708-1716), ਪਬਲੀਕੇਸ਼ਨ ਬਿਊਰੋ ਪੰਜਾਬੀ ਯੂਨੀਵਰਸਿਟੀ, ਪਟਿਆਲਾ, ਪੰਨਾ-50
8. ਸਤਿਬੀਰ ਸਿੰਘ, ਸਾਡਾ ਇਤਿਹਾਸ ਭਾਗ-ਦੂਜਾ (1708-1799) ਬਾਬਾ ਬੰਦਾ ਸਿੰਘ, ਸ਼ਹੀਦੀਆਂ ਤੇ ਘੱਲੂਘਾਰੇ, ਦਸਵਾ ਐਡੀਸ਼ਨ 2010,ਨਿਊ ਬੁੱਕ ਕੰਪਨੀ, ਜਲੰਧਰ, ਪੰਨੇ 74-75

ਮਾਤਾ ਸਾਹਿਬ ਕੌਰ ਖਾਲਸਾ ਕਾਲਜ,
ਤਲਵੰਡੀ ਭਾਈ, ਫਿਰੋਜ਼ਪੁਰ।

हरियाणा की लोक संस्कृति के संवाहक

डॉ० सौरभ वर्मा

सहायक प्रोफेसर, संगीत विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक (हरियाणा)

हरियाणा की सरस्वती सिंचित धरती साहित्यिक दृष्टि से चिर-उर्वरा है। इसे वेद, पुराण, महाभारत, गीता आदि पवित्र ग्रंथों की रचना-स्थली होने का गौरव प्राप्त है। इसने महाराजा हर्ष और बाणभट्ट जैसे महान सरस्वती पुत्रों को अपनी गोद में खिलाया है। वात्सल्य रस की अजस्र स्रोतस्विनी के भागीरथ महाकवि सूरदास की काव्य-कला भी इस पवित्र भूमि पर पुष्पित सुष्मिता हुई है। इसके अतिरिक्त यहाँ लोक भाषा की हरियाणवी में भी विपुल साहित्य का सृजन हुआ है। हरियाणा प्रदेश के असंख्य सांगियों, लोक-गायकों और लोक-कवियों ने इस प्रादेशिक लोक साहित्य को समृद्ध करने के भरपूर प्रयास किए हैं।

लोक साहित्य समाज की ऐसी अनमोल धरोहर है, जो समाज को एकता के सूत्र में पिरोए रखने में सक्षम है। लोक साहित्य पीढ़ी-दर-पीढ़ी हस्तांतरित होती रही है और यही कारण है कि उनके स्वरूप में भी निरन्तर परिवर्तन होता रहा है। लोक कलाकारों ने समाज को विकलांग करने वाली कुरीतियों का खंडन, सृजनात्मक मानवीय मूल्यों का मंडन, आदर्शों की स्थापना और देश-प्रेम की भावना का प्रसार करने के लिए अपने कवि धर्म को निभाने का प्रयास किया है। इनकी रचनाओं में कल्पना की ऊँची उड़ान एवं अलंकारों का समुचित विधान चाहे न मिले, किंतु संयम, सदाचार, संवेदना, परोपकार एवं राष्ट्र के प्रति समर्पण की भावना से यह मालामाल हैं। मानवीय मूल्यों की स्थापना का जो स्वर इनमें मुखरित हुआ है, उसका कोई जवाब नहीं।¹

वर्तमान हरियाणा प्रदेश मूल रूप से विशाल पंजाब राज्य से निकलकर बना है। इसके साथ हिमाचल प्रदेश, उत्तर प्रदेश, पंजाब और राजस्थान के भू-भागों का व्यापक स्तर पर सांस्कृतिक प्रभाव रहा है। इन्हीं के परिणामस्वरूप यहाँ का जनमानस बांगरू, कौरवी, अहिरवाटी, मेवाती, ब्रज और बागड़ी शैलियों का उच्चारण और अनुसरण करता आया है। यही कारण है कि प्रदेश के लोकगीतों में उपरोक्त सभी बोलियों के लोक रंग सहज ही दृश्यमान होते हैं। “हरियाणा की पाचन-शक्ति प्रशंसनीय है। इसमें संस्कृत, उर्दू, फारसी, पंजाबी, राजस्थानी आदि अन्य अनेक भाषाओं के शब्दों को पचाकर अपनी काया को पुष्ट किया है।”²

हरियाणा प्रदेश का लोक साहित्य यहाँ के मेलों और महोत्सव की भाँति बहुत समृद्ध और बहुरंगी है। इसका पल्लवन अनेक काव्य विधाओं तथा रूपों में वृक्ष की शाखा-प्रशाखाओं की तरह स्वतः लोकमेधा के संसर्ग द्वारा हुआ है। अनेक छोटी-बड़ी विधाओं में यह साहित्य जनपद के कोने-कोने में पीपल के महाकार पेड़ में से रात्रि में उमड़ते-चमकते जुगनुओं की पंक्ति के समान चमकता और टिमटिमाता सा देखा और सुना जा सकता है। “बारा कोस पर बदलै वाणी, चार कोस पै पाणी की हरियाणवी लोकोक्ति के अनुसार इन साहित्य की रंगत भी क्षेत्र परिवर्तन के कारण परिवर्तित होती रहती है। यहाँ की बोली पंचमुखी का मिश्रण है – ब्रज, राजस्थानी, पंजाबी, कौरवी (खड़ी बोली) तथा बांगरू।³

किसी भी प्रदेश को लोक साहित्य तद्युगीन सांस्कृतिक साहित्यिक प्रभावों व दृष्टिकोण से प्रभावित होकर ही नूतन कलेवर और फलेवर से प्रकाशित होकर अपना रंग दिखाता है। हरियाणवी लोक साहित्य भी युगीन संदर्भों का ही जीवंत दस्तावेज है। इसके शब्द-शब्द में प्रदेश की माटी की सौँधी-सौँधी गंध तो विद्यमान रहती ही है वहीं सामान्य जनमानस की युगीन परिस्थितियों का भी आंकलन होता है। देश में घटने वाली प्रत्येक घटना से जब एक साधारण प्राणी कहीं न कहीं प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता तो फिर एक साहित्यकार भला उससे कैसे अछूता रह सकता है। वह समकालीन घटनाक्रमों से ही अपने लोक रंगों का संगठन करता है और फिर वही अनुपम शब्दों से बहुआयामी लोकगीतों का सृजन होता है।⁴

लोकगीत, लोक-साहित्य के महत्वपूर्ण घटक है। हरियाणवी लोक गीतों का सांस्कृतिक अध्ययन करने के लिए लोकगीतों के स्वरूप एवं परिभाषा पर विचार करना अनिवार्य है। लोकगीतों के संबंध में भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों के विचार भिन्न-भिन्न हैं। कुछ एक प्रमुख एवं महत्वपूर्ण बातों को यहाँ उद्धृत किया जाता है। यथा

- (क) “लोकगीत उस जनसमूह की संगीतमयी काव्य रचनाएं हैं जिनका साहित्य लेखनी अथवा छपाई से नहीं, वरन मौलिक परंपरा से अविरल प्रवाहमान रहता है।”⁵
- (ख) “अज्ञात कलाकार द्वारा चित एवं मौलिक-परंपरा से संप्रेषित गीत ही लोकगीत हैं।”⁶
- (ग) ग्राम्यगीत प्रकृति के उद्गार हैं। इनमें अलंकार नहीं केवल रस है, दंद नहीं केवल लय है, लालित्य नहीं केवल माधुर्य है।”⁷
- (घ) लोकगीत विद्या देवी के बौद्धिक उद्यान के कृत्रिम फूल नहीं, वे मानो अकृत्रिम निःसर्ग के श्वास-प्रश्वास हैं। सहजानंद से सच्चिदानंद में विलीन हो आने वाली आनंदमयी गुम्फाएं हैं।”⁸
- (ङ) “लोकगीत किसी संस्कृति के मुंह बोलते चित्र हैं।”⁹
- (च) “लोकगीत उन लोगों के जीवन की स्वतः स्फूर्त अभिव्यक्ति है, जो अधिकतर आदिम अवस्था में रहते हैं।”¹⁰

इनके अतिरिक्त भी अनेक विद्वानों ने लोकगीतों पर कहासुनी की है। सभी मतों के आधार पर हम निष्कर्ष निकाले तो लोकगीतों के सामान्यतः लक्षण स्वतः ही उभर कर हमारे सामने आती हैं, जिनको आधार बनाकर हम कह सकते हैं कि –

- लोकगीत संगीतमयी रचना होते हैं, जिनमें 'लय' की प्रधानता रहती है।
- लोक गीत के रचयिता प्रायः अज्ञात होते हैं।
- लोकगीत मौखिक परंपरा के अविरल प्रवाहमान रहते हैं।
- लोकगीतों में लोकजीवन की प्राचीनतम सभ्यता और संस्कृति का अस्तित्व छुपा रहता है।
- लोक गीत 'लोक-साहित्य' की नारी प्रधान विद्या है, जिसमें जननी के सृजनात्मक रूप का परिचय मिलता है।

हरियाणा प्रदेश का लोक-साहित्य भी अपने मौलिक लोकगीतों का विपुल आगाज है। प्रदेश में अनेक जातियों का हरियाणवी संस्कृति के उत्थान में युग-युगों से बहुमूल्य योगदान रहा है। इनमें कुछ जातियों के लोक कलाकारों ने अपनी जातिगत हैसियत से अलग होकर अपनी विशिष्ट पहचान बनाई है तो कुछ ऐसी भी जातियों के लोग हैं जिनका जीवन-यापन हरियाणवी लोक संस्कृति को विभिन्न स्वरूपों के भव्य प्रस्तुतियों के संपादन से ही होता रहा है। यह कलाकार लोक-गायन कला का पोषण करते हुए इनके प्रचार-प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करते आ रहे हैं। अब इन्हीं लोक कलाकारों की विभिन्न जातियों पर चर्चा करते हैं जो लोकगीतों को नए आयाम देने पर निस्तर प्रयासरत हैं।

निर्विवाद सत्य है कि लोक-गायन कला किसी व्यक्ति, जाति, वर्ग, समुदाय अथवा धर्म विशेष की बपौती नहीं है। कुछ जातियाँ जहाँ इस लोकमत को परंपरागत रूप से अपना पेशा बना लेती हैं, वहीं कुछ कलाकार अपनी जातिगत विशेषताओं के प्रभाव से पूर्णरूपेण अछूते रह कर अपनी नैसर्गिक सोच और बौद्धिक कौशल के आधार पर इसे नए आयाम प्रदान करते हैं। हरियाणा प्रदेश में ऐसी अनेक जातियाँ हैं जिनका हरियाणवी संस्कृति के उत्थान में अमूल्य योगदान रहा है।

पीढ़ियों से ब्राह्मण जाति को समाज में सर्वोच्च स्थान प्राप्त है। यह उसे उनके तर्क की ज्ञान और समयानुसार पथ-प्रदर्शक होने के कारण मिला है। लोग रंगों को संजोने में इस जाति का योगदान अक्षुण्ण है। गायन, वादन, लेखन और अभिनय सभी विद्याओं में इस वर्ग का सदैव वर्चस्व रहा है। भले ही यह वर्ग धनाभाव से जूझता रहा हो लेकिन बौद्धिक संपदा से यह वर्ग सदैव लबरेज रहा है। दूसरी और अन्य उच्च जातियाँ लोक कलाओं को प्रायः हेय दृष्टि से देखती रही हैं लेकिन समय-समय पर ब्राह्मण वर्ग से जुड़े असंख्य लोक कलाकारों की कला से हरियाणा प्रदेश और हरियाणवी लोक कला गौरवान्वित होता रहा है।

हरियाणवी लोक गायन संस्कृति के उत्थान में यहाँ के मीरासियों का भी विशेष योगदान रहा है। गाने-बजाने वालों को यहाँ प्रायः मिरासी अथवा डूम कहकर पुकारा जाता है। पेशेवर होने के कारण इनका अपना अलग स्थान है। इनके पूर्वज गौड़ ब्राह्मण बताए जाते हैं। सुरताल के एकदम पक्के इन लोक कलाकारों को गायकी के साथ-साथ सारंगी, नक्कारा, ताशा, ढोलक, शहनाई जैसे पारंपरिक वाद्य यंत्रों पर कुशलता हासिल रही है। इनकी स्त्रियाँ भी बहुत कर्णप्रिय गायिका होती हैं। शायद इसीलिए जनमानस में एक कहावत भी प्रचलित है कि - "डोमनी रोवैगी, तो भी सुर में रोवैगी।"¹¹ सामंती दौर में कुछ भी मीरासियों को जागीरें भी बक्शी गई थी।

हरियाणवी लोक गीतों की सुमधुर स्वर लहरियों से जनमानस को आल्हादित करने वाली एक अन्य जाति है - जोगी। इसके मुख्यतः दो स्वरूप दिखाई पड़ते हैं, जिनमें पहला है सारंगी वाले जोगी और दूसरे जंगम जोगी। सारंगी वाला जोगी अपने यजमानों के यशोगान के साथ-साथ गाँव-गाँव, घर-घर की ड्योही पर जाकर भगवान शिव की स्तुति करते हैं। इनका मुख्य वाद्य यंत्र सारंगी होता है। जंगम जोगी हाथों में पीतल की घंटियाँ लिए सिर पर मोर पंख के साथ पीतल की टाली से सुसज्जित होकर शिव की स्तुति करते हैं। इसीलिए इन्हें 'टाली आल्णे जंगम जोगी' कहा जाता है।¹²

हरियाणवी लोक कला की श्री वृद्धि करने से अभूतपूर्व योगदान रहा है सपेरा जाति के वंशजों का। गुरु गोरखनाथ के इन नाग वंशजों द्वारा छेड़ी जाने वाली सुमधुर तान, कर्णप्रिय लय और मदमान्त कर देने वाला नृत्य बरबस ही किसी को भी आकर्षित कर लेने में सक्षम है। ठेठ हरियाणवी वाद्य यंत्रों बीन, तुंबा, ढपली, डेस, चिमटा और घुंघरूओं का सम्मेलन स्वर ज्यों ही छेड़ते हैं, चलते राहगीर भी मंत्रमुग्ध होकर इन्हें देखने का मोह नहीं त्याग पाते। हरियाणा प्रदेश में वैवाहिक संस्कार अवसरों एवं अन्य धार्मिक, अनुष्ठानों, राजनीतिक रैलियों और किसी भी सुखद अवसर पर इन ठेठ कलाकारों की कला का आनंद वर्षों से लिया जाता रहा है।¹³

प्रदेश की भाट जाति के लोग भी गा-बजाकर अपना जीवन यापन करते आए हैं। चारण वर्ग के यह लोक-कर्मि सारंगी का सहारा लेकर आल्हा-उदल, गोरा-बादल जैसे शूरवीरों के जीवन से जुड़े वीरता के किस्सों से समाज में देशभक्ति की भावना का संचालन करने के साथ-साथ अपने यजमानों के वंशजों का यशोगान करने का दायित्व भी पूर्ण करते आए हैं। वहीं प्रदेश में महत्वपूर्ण धानक और वाल्मीकि समुदाय के लोगों को भी हरियाणवी लोक संस्कृति को बुलंदियों तक ले जाने के लिए जाना जाता है। इनकी आवाज का सुरीलापन प्रकृति की देन है तो नगाड़ा, शहनाई, ढोल, ताशा, ढोलक और डेरू जैसे पारंपरिक वाद्य यंत्रों पर सुघड़ पकड़ इनकी कड़ी मेहनत और सतत अभ्यास का परिणाम है। गांवों और शहरों में सभी बैंड पार्टीयाँ इससे ही मुखर हो रहे हैं।

उपरोक्त जातियों के अतिरिक्त नाई जाति के लोगों को अपनी कुशाग्र बुद्धि के कारण बहुत चतुर माना गया है। इस जाति के अनेक लोक कलाकारों के योगदान से हरियाणवी संस्कृति सदैव फलती-फूलती रही है। साथ ही नट-बाजीगर जाति के लोग खेल तमाशों के साथ-साथ लोक गायकी से जनमानस का मनोरंजन करते आए हैं। ये लोग जहाँ हैरतअंगेज करतब में सिद्धहस्त होते हैं वही गायन वादन में भी अपना प्रभुत्व रखते हैं। बहुरूपिया जाति के लोग भी हरियाणवी जनसमुदाय में अपना पहचान बनाने में सफल रहे हैं। आधुनिकता की अंधी दौड़ में भले ही पारंपरिक लोक कलाएं पीछे छूटती जा रही हैं लेकिन उपरोक्त जातियों के अमूल्य और समयानुकूल योगदान से हरियाणवी लोक संस्कृति सदैव महकती और जनमानस को आल्हादित करती आई है। भविष्य में भी देश-विदेश में हरियाणवी लोक गायकी का झंडा बुलंद रहेगा इन्हीं नैसर्गिक प्रतिभा की धनी जातियों के लोक गायकों के कर्णप्रिय स्वरों से।

"हरियाणा में लोकगीतों की समृद्ध परंपरा है दिलचस्प बात यह है कि यहाँ पर अनेक गांवों के नाम भी शास्त्रीय रागों पर पाए गए हैं। यथा - नंदगांव, सारंगपुर, बिलावाला, वुंदावन, तोड़ी, आशावरी, जपश्री, मालकोंश, हिंडोला, भैरवी, गोप कल्याण, जैजैवंती, मालवी आदि।"¹⁴ यह तथ्य इस सोच का द्योतक है कि इस प्रदेश की माटी में सदैव संगीत की सुरलहरियाँ गुंजायमान रही है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. डॉ० पूर्ण चंद शर्मा, 'हरियाणा के लोक कवि', गीतिका प्रकाशन, 16 साहित्य विहार, बिजनौर, उत्तर प्रदेश, 2016
2. डॉ० पूर्ण चंद शर्मा, 'हरियाणवी और उसकी बोलियों का अध्ययन', हरियाणा पब्लिकेशन ब्यूरो, अंबाला छावनी, 2002
3. डॉ० भीम सिंह मलिक, 'हरियाणा लोक साहित्य-सांस्कृतिक संदर्भ', हरियाणा साहित्य अकादमी, चंडीगढ़, 1990
4. डॉ० आनंद शर्मा, उपन्यासकार कमलेश्वर, मेधा बुक्स, दिल्ली, 2002
5. हिन्द स्टैंडर्ड डिक्शनरी ऑफ फॉकलोर, मैथोलॉजी एंड लीजेण्ड, Vol-II, पृष्ठ 1032
6. कोलंबिया एनसाइक्लोपीडिया, अमेरिका, Vol-III
7. पंडित, नरेश त्रिपाठी, 'कविता कौमुदी: ग्राम जीतराम भाग पांच प्रयाग संस्करण 1946
8. डॉ० सदाशिव फड़के, सम्मेलन पत्रिका, लोक संस्कृति अंक, प्रयाग, संस्करण 2010
9. देवेंद्र सत्यार्थी, आजकल (पत्रिका), दिल्ली, नवंबर 1951
10. डॉ० कुंज बिहारी दास, ए स्टडी ऑफ ओरिजन फोकलोर, पटना, 1950
11. हरियाणवी गीत लोक विश्वास और परंपराएं, मनीष पब्लिकेशंस, दिल्ली, 2015
12. किरण ख्यालिया, धरोहर, म्हारी रीत म्हारे गीत, इंटेलेक्चुअल फाउंडेशन (इंडिया), मॉडल टाऊन, रोहतक, 2010
13. डॉ० आनंद शर्मा, दैनिक जागरण (सांझी), मंगलवार, 10 जुलाई 2004
14. डी०सी० वर्मा, हरियाणा, नेशनल बुक ट्रस्ट, बसंत कुंज, नई दिल्ली, 2005

फुटनोट

1. डॉ० पूर्ण चंद शर्मा, 'हरियाणा के लोक कवि', पृ० आमुख
2. डॉ० पूर्ण चंद शर्मा, 'हरियाणवी और उसकी बोलियों का अध्ययन', पृष्ठ 2
3. डॉ० भीम सिंह मलिक, 'हरियाणा लोक साहित्य-सांस्कृतिक संदर्भ', पृष्ठ संख्या 77
4. डॉ० आनंद शर्मा, उपन्यासकार कमलेश्वर, पृ० 56
5. हिन्द स्टैंडर्ड डिक्शनरी ऑफ फॉकलोर, मैथोलॉजी एंड लीजेण्ड, Vol-II, पृष्ठ 1032
6. कोलंबिया एनसाइक्लोपीडिया, अमेरिका, Vol-III, पृ० 737
7. पंडित, नरेश त्रिपाठी, 'कविता कौमुदी: ग्राम जीतराम, पृष्ठ दो
8. डॉ० सदाशिव फड़के, सम्मेलन पत्रिका, पृष्ठ 251
9. देवेंद्र सत्यार्थी, आजकल (पत्रिका), पृ० 7
10. डॉ० कुंज बिहारी दास, ए स्टडी ऑफ ओरिजन फोकलोर, पृष्ठ 1
11. हरियाणवी गीत लोक विश्वास और परंपराएं, पृष्ठ 145
12. किरण ख्यालिया, धरोहर, म्हारी रीत म्हारे गीत, इंटेलेक्चुअल फाउंडेशन (इंडिया), पृष्ठ 179
13. डॉ० आनंद शर्मा, दैनिक जागरण (सांझी), मंगलवार, 10 जुलाई 2004, पृ० 8
14. डी०सी० वर्मा, हरियाणा, नेशनल बुक ट्रस्ट, पृ० 112

सूचना प्रौद्योगिकी: महिला सशक्तिकरण का सशक्त माध्यम

डॉ० श्वेता

असिस्टेंट प्रोफेसर, समाज शास्त्र विभाग, महात्मा गान्धी केन्द्रीय विश्वविद्यालय, मोतिहारी, बिहार

भूमिका

महिला सशक्तिकरण एक प्रक्रिया का नाम है, जिसमें महिलाओं को स्वरोजगार के अवसर उपलब्ध कराने के प्रयासों का पुनर्बलन किया जाता है, ताकि वे अपने दबबू प्रकृति के आवरण से बाहर निकलकर आत्मनिर्भर एवं स्वावलम्बी बन सकें। यह प्रयास उनकी योग्यता का चतुर्दिक सशक्तिकरण करता है, ताकि उनकी अभिरुचि स्पष्ट हो सके, संसाधनों का समुचित उपयोग किया जा सके और परिवार एवं समुदाय में सहभागी संबंधों का पूरा लाभ उठाया जा सके।

सशक्तिकरण का अर्थ किसी कार्य को करने या रोकने की क्षमता से है, जिसमें महिलाओं को जागरूक करके उन्हें आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक, शैक्षिक और स्वास्थ्य संबंधित साधनों को उपलब्ध कराया जाये। ताकि उनके लिए सामाजिक न्याय और पुरुष महिला समानता का लक्ष्य हासिल हो सके।

यह सच है कि आज महिलाओं ने अपने आप मुख्यधारा में शामिल होने का प्रयत्न कर रही हैं। परन्तु उनके इस विकास में उनकी दृढ़ इच्छाशक्ति के साथ सूचना प्रौद्योगिकी का भी अत्यंत योगदान है जिसने मानसिक तौर पर नारी को निरन्तर विकास की ओर प्रगतिशील किया है और वह परस्पर अपने साक्ष्य की ओर बढ़ते हुए सम्पूर्ण भूमंडल को अपनी मुट्ठी में बंद करने हेतु उत्सुक हो सकी है। लेकिन रुकावटें अब भी हैं और उसे नित्य समकालीन समस्याओं से संघर्ष कर अपना अस्तित्व कायम करना है तथा विकास की ओर अग्रसर रहना है।

उद्देश्य

प्रस्तुत शोध-पत्र का महत्वपूर्ण उद्देश्य यह बतलाना है कि महिला सशक्तिकरण में सूचना प्रौद्योगिकी ने किस प्रकार महत्वपूर्ण योगदान दिया है। सूचना प्रौद्योगिकी का सम्पूर्ण उपयोग कर महिला को सबल एवं आत्मनिर्भर बनाने के उपाय भी खोजने का प्रयत्न किया गया और यह भी दर्शाया गया है कि भारत सरकार को अपनी विभिन्न योजनाओं को क्रियान्वयन कर महिलाओं तक खास कर ग्रामीण महिलाओं तक सूचना प्रौद्योगिकी को पहुँचाया जाए जिसमें उनका सबलीकरण हो सके।

विश्लेषण

महिला सशक्तिकरण की शुरुआत संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा 08 मार्च 1975 को अन्तर्राष्ट्रीय महिला दिवस से माना जा सकता है। पुनः महिला सशक्तिकरण की पहल 1985 में महिला अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन नौरोबी में की गई। 1975 से 1985 के दशक को महिला दशक, 1974 को महिला सशक्तिकरण वर्ष के रूप में मानाया गया। भारत ने भी महिला सशक्तिकरण के लिए अनेक कदम उठाएँ। 31 जनवरी 1992 को राष्ट्रीय महिला आयोग का गठन हुआ जिसके माध्यम से सदियों से पिछड़े, शोषित, एवं उपेक्षित नारी वर्ग के विकासार्थ विशेष ध्यान दिया जा रहा है। वर्ष 2001 में भारत सरकार ने “महिला सशक्तिकरण वर्ष” घोषित किया तथा राष्ट्रीय महिला शक्ति सम्पन्न नीति 2001 की घोषणा की।

सूचना प्रौद्योगिकी एक वृहद अवधारणा है, जिसमें सूचना प्रक्रिया और उसके प्रबंध सभी पहलू शामिल हैं। भारत में यूरופियों के आगमन से विज्ञान और प्रौद्योगिकी की नई अवधारणा का सूत्रपात हुआ। ब्रिटिश सरकार ने यूरोप में हो रहे वैज्ञानिक एवं तकनीकी अविष्कारों का प्रयोग भारत में ब्रिटेन के हितार्थ किया, लेकिन अपरोक्ष रूप से भारत में अंग्रेजों के माध्यम से ही यूरोप में होने वाले विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी का प्रवेश प्रारम्भ हो गया। महिला सशक्तिकरण में सूचना एवं प्रौद्योगिकी ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। आज शिक्षा के क्षेत्र में, स्वास्थ्य के क्षेत्र में रोजगार के क्षेत्र में, महिला आन्दोलन के क्षेत्र में, सामाजिक उत्थान आदि के क्षेत्र में महिलाओं के विकास में सूचना प्रौद्योगिकी महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है।

दिखने में चाहें सशक्तिकरण की बात कितनी भी आकर्षक क्यों न लगे, एक कड़वी सच्चाई यह है कि अधिकांश स्त्रियों के लिए अपनी क्षमता और प्रतिभा के विकास की सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियाँ अनुकूल नहीं हैं। महिला आन्दोलन के प्रारंभिक दौर में मीडिया लगातार स्त्रियों के खिलाफ समाज के विविध अपराधों के प्रति ध्यान आकर्षित करता रहा। 1980 के दशक में इस प्रकार के अपराधों की खबरें रोजमर्रा की बात बन गई। सार्वजनिक जीवन और सूचना प्रौद्योगिकी के माध्यम से स्त्रियों के समानता की चर्चा जोर-शोर से होती रही है। दुर्भाग्य की बात यह है कि आज सूचना प्रौद्योगिकी युग में भी

महिला शिक्षा के सम्पूर्ण मुद्दे एकदम उदासीन हैं। क्योंकि स्वतंत्रता के पचास वर्ष बाद केवल 54 प्रतिशत स्त्रियाँ साक्षर हैं जबकि पढ़े-लिखे पुरुषों का प्रतिशत 75 है। शिक्षा प्रणाली का आज जो स्वरूप है, दरअसल वह गरीबों, जनजातियों, दलितों और अल्पसंख्यक समूहों को अशक्त बनाने का जरिया बन गया है। इस वर्ग में शिक्षा की दृष्टि से सबसे अधिक वंचित स्त्रियाँ और लड़कियाँ रही हैं दूसरी ओर बुनियादी शिक्षा संबंधी सार्वजनिक रिपोर्ट में प्रकाशित 17 समाचार-पत्रों के सर्वेक्षण से पता चला कि 1998-99 में समाचार पत्रों में विदेशी निवेश और प्रौद्योगिकी हस्तांतरणों पर 8549 लेख, विदेश व्यापार पर 3431, रक्षा पर 2652 और शिक्षा पर केवल 988 लेख छपे। इस बात से यह प्रमाणित होता है कि सूचना एवं प्रौद्योगिकी का उपयोग शिक्षा के प्रसार में कम योगदान था। मगर आज इसका प्रयोग इस क्षेत्र में ज्यादा हो रहा है।

हालांकि भारत में हार्डवेयर और साफ्टवेयर की भारी कीमतों की वजह से कम्प्यूटर का व्यापक उपयोग नहीं हो पा रहा है। लेकिन इंटरनेट से दूर शिक्षण के जगत में क्रांतिकारी बदलाव आ रहा है। 80 के दशक में जब तत्कालीन प्रधानमंत्री स्वर्गीय राजीव गाँधी ने स्कूलों में कम्प्यूटर क्रांति का आह्वाहन किया था। फलतः इसका कहीं न कहीं प्रभाव लड़कियों की शिक्षा पर पड़ा और इस प्रकार महिला सशक्तिकरण के मार्ग में आगे की ओर बढ़ी हैं। आज तो महिलाएँ धड़ल्ले से इस का प्रयोग कर अपना चहुमुखी विकास कर रही हैं। मगर आवश्यकता इस बात की है कि इसे गाँवों तक पहुँचाया जाए जिससे गाँवों की महिलाओं का भी विकास हो सके।

महिला आन्दोलन के इतिहास पर नजर डाली जाए तो इसके विकास में मीडिया की अहम भूमिका रही है। यह मात्र संयोग नहीं है कि सामयिक महिला आन्दोलन उभरने और मजबूत होने के दौरान ही महिला पत्रकारों की संख्या में तेजी से वृद्धि हुई है। लेकिन अगर महिलाओं से जुड़े मुद्दों के कवरेज को मात्रा की दृष्टि से देखा जाए तो स्थिति उत्साहपूर्वक नहीं लगती। सोनिया वथला ने पाँच अंग्रेजी समाचार-पत्रों का अध्ययन किया, जिसके लिए 1981ए 1975ए 1959 व 1993 वर्षों के एक-एक नमूने को शामिल किया था। इस अध्ययन का निष्कर्ष था कि स्त्रियों से संबंधित 57% समाचार अपराध और हिंसा की खबरों के थे। नमूनों में शामिल किए गए 584 संपादकीयों में से केवल 8 ही महिलाओं के मुद्दों के बारे में थे। दिलचस्प बात यह थी कि 1981 से 1993 तक हिंसा की खबरों में भी कमी आई। 1980 के दशक में जब महिला संगठनों ने हिंसा का मुद्दा उठाया और दहेज मौतों और बलात्कार के खिलाफ आवाज उठानी शुरू की थी, तब मुकाबले हिंसा की खबरों में अब कोई नई बात नहीं रह गई।

पिछले लगभग डेढ़ दशक में यह अवधारणा जोर पकड़ने लगी है कि सूचना प्रौद्योगिकी ने महिला आन्दोलन को अधिक प्रखर बनाया तथा महिला के आन्दोलन को सफल बनाकर अपनी माँग को मनवाने की भूमिका अदा की। अतः महिला सशक्तिकरण में सूचना प्रौद्योगिकी का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। चाहे वह महिला आन्दोलन को आगे बढ़ाकर या ज्ञान का द्वीप महिलाओं में जलाकर।

मध्यवर्गीय परिवारों की दिन-प्रति-दिन की दुनिया को दर्शाने वाले धारावाहिकों की शुरुआत से महिलाओं के लिए एक सुखद परिणाम निकला था। इन्होंने हिन्दी फिल्मों की स्त्रियों को दी जाने वाली संकीर्ण उबाऊ भूमिकाओं से हटकर नायिका, खलनायिका, सास-बहू के झगड़ों से दूर, स्त्री को नई छवि और पहचान दी है। अब कॉलेज की लड़कियों, कामकाजी महिलाओं, कठोर माताओं, कारोबारी महिलाओं, तड़क-भड़क वाली युवतियों और अन्य की भूमिकाएँ अधिक दिखने लगी हैं।

आजकल महिला चरित्रों पर आधारित कई धारावाहिक तेजी से हो रहे सामाजिक परिवर्तन में जीवनशैली के चयन का धर्मसंकट प्रदर्शित कर रहे हैं जिसमें विवाह पर स्त्री/पुरुष गमन, तलाक, पुनर्विवाह की समस्याओं को उच्च सामाजिक ड्रामा के रूप में पेश किया जाता है। कुछ अन्य धारावाहिक बदलती परिस्थितियों से झूझते परिवारों को दिखा रहे हैं। अब चाहे ये परिवर्तन कमाऊ बेटी के नौकरी से या बहू के विद्रोही स्वभाव के कारण हो। महत्वपूर्ण बात तो यह है कि अभी भी कई महिला सशक्तिकरण के लिए प्रयास करते नजर आते हैं। फलतः ये धारावाहिक या मनोरंजन के साधन भी महिला सशक्तिकरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं।

इंटरनेट का विशाल कौतूहलपूर्ण संसार भी दुनिया के साथ जुड़ने और संपर्क स्थापित करने की असीम संभावनाएँ पेश करता है। नेट पर भी स्त्री-पुरुष भेद परिलक्षित हो रहा है, क्योंकि नेट पर संपर्क स्थापित करने वालों में पुरुषों की अधिकता है। इसका एक भयावह परिणाम इंटरनेट पर अश्लीलता के प्रसार के रूप में सामने आया है। नेट उन्नत प्रौद्योगिकियों के इस्तेमाल में साइबर सेक्स के प्रसार के लिए स्त्रियों का शोषण, उन्हें वस्तु बनकर पेश करने का चलन है।

परंतु सिर्फ इंटरनेट महिलाओं का शोषण ही मात्र नहीं करते बल्कि इस माध्यम से महिलाओं का चहुमुखी विकास भी होता है। आज महिलाएँ अपने ज्ञान का विकास इस माध्यम से कर रही हैं, पश्चिम के अच्छे प्रभावों का अपने पर उतार रही हैं तथा महिला सशक्तिकरण के लिए विदेशों में हो रहे प्रयासों को समझ रही हैं। अतः इंटरनेट महिलाओं को उत्पाद की वस्तु बनाकर बेच रहा है तो दूसरी ओर महिलाओं को अनेक ज्ञान प्रदान कर उसे सबलीकरण भी कर रहा है।

यदि स्त्रियों व लड़कियों के सशक्तिकरण के लिए जन संचार माध्यमों का इस्तेमाल करना है तो यह जरूरी हो जाता है कि सबसे पहले तो महिला विकास के दृष्टिकोण से मीडिया के कार्य का विवरण एकत्र किया जाए और फिर उसका आकलन किया जाए। ऐसे दृष्टिकोण से मीडिया का अध्ययन एक अनवरत प्रक्रिया बन जानी चाहिए। ऐसे अध्ययनों के निष्कर्षों का प्रसार किया जाना चाहिए तथा मीडिया और उसके काम काज को जनसाधारण के लिए पारदर्शी और स्पष्ट बनाया जाना चाहिए। वृत्त चित्र निर्माताओं में महिलाओं की एक अच्छी खासी संख्या है। ये लोग जनसाधारण और महिलाओं को ध्यान में रखकर

कई क्रांतिकारी सामाजिक फिल्में बना रहे हैं। इन लोगों की फिल्मों के प्रदर्शन के लिए दूरदर्शन पर स्थान उपलब्ध कराने से देश में लोकतंत्र और विकास की बहस को आगे ले जाने में मदद मिलेगी।

आज अनेक ज्ञान के माध्यमों की वृद्धि से अशिक्षित महिलाएँ भी कैमरे का संचालन कर रही हैं, जिससे उनको रोजगार मिल रहा है और महिलाएँ सबलीकृत हो रही हैं। अहमदाबाद में सेवा संगठन ने ऐसी कामकाजी महिलाओं को अपने ही यथार्थ को दर्शाने के लिए वीडियो फिल्में बनाने का प्रशिक्षण दिया था। तिलोनिया में एस. डब्ल्यू. आर. सी. में ग्रामीण महिलाओं को कम्प्यूटर का कुशल इस्तेमाल सिखाया जा रहा है।

जहाँ तक इंटरनेट का सवाल है तौली-कार्पुज जैसे आर. टी. सी. विशेषज्ञों का कहना है कि विकासशील विश्व के सामने ऐसी सस्ती बुनियादी नेट सेवाएँ विकसित करने की चुनौती मौजूद है, जो साइबर कैफे, लाइब्रेरियों आदि के माध्यम से लोगों को तत्काल उपलब्ध हो। तौली कार्युज ऐसी अन्तर्राष्ट्रीय संचार नीतियाँ और मानकों के निर्धारण पर जोर देता है, जो स्त्रियों की और उनसे जुड़े मुद्दों की मीडिया कवरेज की गुणवत्ता व मात्रा पर ध्यान दे सके।

संचार माध्यमों ने भी महिलाओं को उनके अधिकारों के प्रति जागरूक किया है। महिलाएँ अब अपने आप को स्वतंत्र एवं पुरुषों के बराबर अगर महसूस कर रही हैं, तो उसके पीछे सबसे बड़ा कारण है— संचार माध्यम। कहानी घर-घर की, क्योंकि सास भी कभी बहू थी, देश में निकला होगा चाँद आदि सीरियलों ने सारी चेतना के साथ उसकी संवेदना और सोच को भी अवसरवादी बना दिया है। परिणामतः विवाहेतर संबंधों का प्रचलन भारतीय समाज में भी बढ़ता जा रहा है।

“ब्यूटी कांटेस्टों” में महिला परिधानों में तकनीकी बदलाव ला दिया है। मानसिक रूप से भले ही न, पर शारीरिक रूप से सुंदर दिखने की चाहत ने महिलाओं को सूचना और प्रौद्योगिकी ने अपनी ओर खींचा है। इसके अलवा दहेज, बेरोजगारी, समय पर विवाह न होना आदि भी महिलाओं के जीवन में तीव्रगामी परिवर्तन कर उन्हें स्वावलंबी बना दिया है जो निःसन्देह एक अच्छी उपलब्धि है। इसी स्वावलंबन की वजह से महानगरीय महिलाओं ने पराधीनता या फिर रिश्तों की गुलामी से मुक्ति के लिए प्रतीकात्मक विरोधस्वरूप चूड़ी-कंगना, नथ, झुमके आदि पहनना लगभग बंद कर दिया है, जो नारीवादी चेतना को उग्र अधिकारिता परक जीवन जीने को प्रेरित कर रहा है। वैसे भी संक्रमणकालीन समाज में यदि अच्छाइयाँ होती हैं, तो कुछ बुराइयाँ भी। लेकिन बुराइयों को देखकर प्रयोग आविष्कार या परिवर्तन बंद कर दिया जायेगा तो समाज बिल्कुल ठहर जायेगा। क्योंकि परिवर्तन प्रकृति का गहना है।

सूचना प्रौद्योगिकी और इंटरनेट ने विश्व महिलाओं को बहुत सुंदर और विशिष्ट नागरिक बनाने में महत्वपूर्ण योग दिया है। व्यक्तियों के मध्य संचार तात्कालिक हो गया है। इधर-उधर फैली तमाम सूचनाएँ प्रसंस्करण के बाद ज्ञान में तब्दील हो रही है। इंटरनेट पर बुलेटिन बोर्ड की और चर्चा कक्ष तथा इंटरनेट ब्राउसर्स नागरिकों के मध्य सूचना के आदान-प्रदान, परिचर्चा और संपर्क प्रोत्साहित कर रहे हैं। महिलाएँ अब अधिक बुद्धिमान और स्वस्थ के रूप में विकसित हो रही हैं। पर्याप्त सुविधा और विश्राम के लिए साधनों का निर्माण किया जा रहा है। ताकि महिलायें सृजनात्मक कार्यों की ओर अधिकाधिक ध्यान दे सकें और कला तथा समृद्धि को पुष्ट कर सकें।

सूचना प्रौद्योगिकी ने एक ओर तो सशक्तिकरण हेतु सम्पूर्ण प्रयास किया है जो कहीं न कहीं सफल होता प्रतीत भी हो रहा है। मगर सूचना एवं प्रौद्योगिकी ने महिलाओं के शोषण एवं उसके उत्पीड़न को भी बढ़ावा दिया है। आज महिलाएँ उपभोग की वस्तु बनी हुई हैं। इंटरनेट, पत्र-पत्रिका, संचार, मीडिया, मनोरंजन के साधन आदि पर महिलाओं के अश्लील चित्र या भद्दी बातों को प्रसारित किया जा रहा है। महिलाएँ आज अपने को अधिक सुरक्षित नहीं महसूस कर रही हैं। कारण साइबर स्पेस ने साइबर अपराध तथा व्यक्ति नागरिक की हिफाजत को दांव पर लगा दिया है। सॉफ्टवेयर चोरी, हैकिंग, धोखाधड़ी, बौद्धिक, शोषण, आदि के माध्यम से महिलाओं का कहीं न कहीं शोषण हो रहा है। फलतः महिलाएँ सूचना, प्रौद्योगिकी के विकास को अपने ऊपर अभिशाप भी मान रही हैं। अतः स्पष्ट है कि 20वीं शताब्दी की सूचना समाज के समक्ष महिलाओं के लिए चुनौतीपूर्ण दस्तक दे रही है।

निष्कर्ष

उपरोक्त तथ्यों के अवलोकनोपरांत हम कह सकते हैं कि सूचना प्रौद्योगिकी ने महिला सशक्तिकरण में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। स्त्रियों से सम्बन्धित बहुत सी मान्यताएँ आज टूट रही हैं। कल तक स्त्री को मात्र कोख की सामग्री माना जाता था मगर आज वह समाज को चलाने वाली शक्तिशाली स्त्री बनने के तरफ बढ़ रही है। ठीक है, रास्ते बहुत आसान नहीं हैं मगर सूचना प्रौद्योगिकी ने उन सभी मान्यताओं को तोड़ने का प्रयत्न किया है, जो कभी इतने कठोर हुआ करते थे कि उसके विषय में सोचना भी पाप था। आज महिलाएँ परिवार की चहारदीवारी को लांघ रही हैं तो उसमें कहीं न कहीं सूचना प्रौद्योगिकी का महत्वपूर्ण भूमिका है। यह सच है कि आज महिलाओं ने अपने आप को मुख्य धारा में शामिल कर लिया है, परन्तु उनके इस विकास में उनकी दृढ़ इच्छाशक्ति के साथ सूचना प्रौद्योगिकी का भी अत्यंत महत्वपूर्ण योगदान रहा है। जिसने मानसिक तौर पर नारी को निरंतर विकास की ओर गतिशील किया है और वह परस्पर अपने लक्ष्य की ओर बढ़ते हुए सम्पूर्ण भूमंडल को अपनी मुट्ठी में बंद करने हेतु उत्सुक हो सकी। लेकिन रुकावटें अब भी हैं और उसे नित्य समकालीन समस्याओं से संघर्ष कर अपना अस्तित्व कायम करना है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. भारतीय समाज की संरचना – एन. सी. ई. आर. टी.।
2. द चेंजिंग पोजीशन ऑफ इंडियन वूमेन— एम. एन. श्रीनिवास।
3. भारतीय महिलाएँ : दशा एवं दिशा – सुभाष शर्मा।
4. वीमेन एण्ड सोसायटी इन इंडिया – नीरा देसाई।
5. वीमेन वेलफेयर एंड डेवलपमेंट – डी. चौधरी।
6. कुरुक्षेत्र – दिसम्बर 2001 एवं दिसम्बर 2007।
7. योजना – मार्च 2004 व अक्टूबर 2008।
8. बदलते भारत की समस्याएँ – जे. पी. सिंह।
9. भारत – 2001 तथा भारत . 2008।
10. प्रतियोगिता दर्पण— दिसम्बर 2005ए सितम्बर 2008 तथा नवम्बर 2008।

रामानुज दर्शन में ईश्वर-एक अनुशीलन

रंजना मिश्रा

असिस्टेंट प्रोफेसर, दर्शनशास्त्र, श्री मुरली मनोहर टाउन स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बलिया, उत्तर प्रदेश

मानव प्राकृतिक स्वरूप में जिज्ञासु प्रवृत्ति का प्राणी है। पृथ्वी पर मानव जीवन के साथ ही मनुष्य ने अपने मन में रहस्योद्घाटन में रत रहा है। इसी रहस्योद्घाटन के क्रम में मनुष्य ने अपने मन में विद्यमान भय को दूर करने वाले और अपने प्रेम के आधार के रूप में ईश्वर के अस्तित्व का रहस्योद्घाटन किया है। इस सम्पूर्ण संसार में चाहे हिन्दूस्तान हो अथवा अन्य कोई देश हो, चाहे दार्शनिक हो या धार्मिक व्यक्ति हो, चाहे अध्यात्मिकता में विश्वास करने वाला व्यक्ति हो, या कर्मकाण्डीय मनुष्य हो, सभी किसी न किसी रूप में उस परमात्मा को अस्तित्व में विश्वास करते हैं।

ईश्वर के अस्तित्व व अनस्तित्व को लेकर भारतीय दर्शन परम्परा में दो तरह की विचारधाराएँ पायी जाती हैं। एक है नास्तिक चिन्तन परम्परा और दूसरी है आस्तिक चिन्तन परम्परा। नास्तिक चिन्तन परम्परा वो है, जो वेदों की विचारधारा में विश्वास नहीं रखते अथवा वेदों की निन्दा करते हैं और आस्तिक चिन्तन परम्परा वो है जो वेदों में आस्था रखती है। रामानुज नास्तिक दर्शन से इतर आस्तिक दर्शन के शिरोमणि वेदान्त चिन्तन परम्परा के एक सर्वलोकप्रिय सम्प्रदाय विशिष्टाद्वैत दर्शन के प्रवर्तक आचार्य हैं।

रामानुज का ईश्वर में अटूट आस्था थी। रामानुज के दर्शन में ईश्वर के व्यवहारिक पक्ष अथवा जागतिक पक्ष एवं सैद्धान्तिक पक्ष या परमार्थिक पक्ष दोनों स्वरूपों का बहुत ही सुन्दर समन्वय पाया जाता है। रामानुज ने प्रपञ्चात्मक जगत एवं अद्वैत ईश्वर में समन्वय स्थापित कर उत्तमीमांसा दर्शन में नई परम्परा का आगाज किया।¹

रामानुज के दर्शन में ईश्वर के सगुण स्वरूप को स्वीकार किया गया है जो कि पाश्चात्य ईश्वरवाद से कुछ हद तक समरूपता रखता है, परन्तु इसे पूर्णतः पाश्चात्य ईश्वरवाद के समरूप समझना रामानुज के दर्शन के प्रति सीमित समझ का परिचायक होगा। रामानुज ईश्वरवादी होते हुए भी ईश्वर के विशिष्ट स्वरूप को स्वीकार करते हैं। इनका ईश्वर अद्वैत तो है किन्तु वह शंकर के ब्रह्म से बिल्कुल ही पृथक् अवधारणा है। शंकर का ब्रह्म निर्गुण निर्विशेष अद्वैत है। शंकर के अनुसार समस्त जागतिक प्रपञ्च एवं विविधता आभास मात्र है। ब्रह्म की ही एकमात्र वास्तविक सत्ता है जबकि रामानुज का ईश्वर चित् एवं अचित्त विशेषणों से युक्त सत्ता है।²

रामानुज के अनुसार ईश्वर चित और अचित्त तीनों की वास्तविक सत्ता है। ईश्वर निरपेक्ष सत्ता है, जबकि चित् और अचित्त सापेक्ष सत्ता हैं। चित् और अचित्त अपने अस्तित्व के लिए ईश्वर पर निर्भर हैं, चित् और अचित्त शरीर हैं तो ईश्वर उनकी आत्मा। अतः रामानुज का ईश्वर रूपावयव भेद से युक्त है। उसमें निहित चित् और अचित्त उसे एक विशेष स्वरूप एवं व्यक्तित्व प्रदान करते हैं।³

रामानुज के दर्शन में ईश्वर अपने आपको दो रूपों में अभिव्यक्त करता है। कारणावस्था एवं कार्यावस्था। कारणावस्था ब्रह्म की अव्यक्त अवस्था है। इस अवस्था में जीव एवं अजीव ब्रह्म में सूक्ष्म रूप में विद्यमान रहते हैं। ये शुद्ध अविकृत स्वरूप में होते हैं। ब्रह्म की व्यक्त अवस्था कार्यावस्था है जिसमें जीव और अजीव एक दूसरे से संयुक्त होकर विविध नाम रूपों में अभिव्यक्त होता है। यह ब्रह्म की स्थूल अवस्था है, यह ब्रह्म की सृष्टि की अवस्था है।⁴

रामानुज ईश्वर का जीव एवं जगत से अभिन्ननिमित्तोपादान सम्बन्ध स्वीकार करते हैं। ईश्वर ही जगत का निमित्त एवं उपादान कारण दोनों हैं। सृष्टि का उद्भव, स्थिति एवं विनाश। ईश्वर की क्रीड़ा का ही परिणाम है। इस प्रकार सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड उसी ईश्वर के स्वतः स्फूर्ण से उत्पन्न होता है। उसके लिए किसी अन्य साधन की आवश्यकता नहीं होती। ईश्वर से स्फूर्त प्रकृति जीवात्माओं के कर्मों के फल के संयोग से विविध रूपात्मक जगत् प्रपञ्च के रूप में विकसित होता है। जीवात्मा शरीर धारण करके कर्मों को करता है और सुख-दुःख आदि फलों को भोक्ता है। सृष्टि की अवस्था में ईश्वर जीव एवं जगत में अन्तर्यामी स्वरूप में विद्यमान रहता है।⁵

सृष्टि के उद्भव, विकास व विनाश के क्रम में रामानुज ईश्वर की भूमिका का उल्लेख करते हुए बताते हैं कि इस अवस्था में ईश्वर दो अर्थों में अभिव्यक्त होता है। पहले अर्थ में वह परमतत्त्व के रूप में और दूसरे अर्थ में अन्तर्यामी रूप में। ईश्वर की परम तत्त्व की अवस्था कारणावस्था है उसमें सम्पूर्ण जगत् (जिसमें चेतन और जड़ तत्त्व समाहित हैं) अव्यक्त रूप में ईश्वर में विद्यमान रहते हैं। यही रामानुज का परमतत्त्व है। रामानुज ईश्वर के अन्तर्यामी स्वरूप के माध्यम से सृष्टि की उत्पत्ति की व्याख्या करते हैं। रामानुज का मानना है कि ईश्वर स्वतन्त्र है, निरपेक्ष है एवं समस्त सृष्टि उसके अन्दर है। किन्तु यहाँ प्रश्न यह उठता है कि यदि ईश्वर स्वतन्त्र और निरपेक्ष है तो बिना किसी बाह्य साधन के सृष्टि का विकास कैसे होगा? और यदि सृष्टि के विकास के लिए किसी बाह्य साधन को माना जाए तो ईश्वर स्वतन्त्र नहीं रह जायेगा, वह विकारी हो जायेगा, जो कि उपनिषदों की विचारधारा के विरुद्ध है। अतः इसकी व्याख्या के लिए रामानुज ईश्वर के विकारित्व को गौण रूप में मानते हैं। उनके अनुसार सृष्टि के उद्भव के लिए ईश्वर में कोई परिवर्तन नहीं होता है, बल्कि उसके साकल्य में शामिल तत्त्वों के द्वारा ही होता है जिसमें ईश्वर अन्तर्यामी रूप में रहता है। “अर्थात् जड़ एवं चेतन तत्त्वों द्वारा ही परिवर्तन की प्रक्रिया प्रारम्भ होती है। अतः इस तरह रामानुज परिवर्तनशील जगत् के अपरिवर्तनशील कारण के रूप में ईश्वर के अन्तर्यामी स्वरूप को स्वीकार करते हैं।⁶

शंकराचार्य ब्रह्म को निर्गुण मानते हैं, जबकि रामानुज ब्रह्म के सगुण स्वरूप को स्वीकार करते हैं। रामानुज का ब्रह्म सगुण होते हुए भी साधारण प्रत्यक्ष द्वारा नहीं जाना जा सकता है। उपनिषदों में ब्रह्म को पर एवं अपर दो रूपों में स्वीकार किया गया है। पर ब्रह्म असीम, निर्गुण व निरपेक्ष है, पर ब्रह्म का वर्णन, 'नेति नेति' कह कर की गई है। शंकराचार्य ने उपनिषदों के 'नेति नेति' शब्द की व्याख्या निर्गुण ब्रह्म के रूप में की है जिसके अनुसार ब्रह्म गुणों से रहित है। किन्तु रामानुज ने 'नेति नेति' की व्याख्या अलग तरह से की है। इनके अनुसार निर्गुण ब्रह्म का तात्पर्य गुण रहित ब्रह्म न होकर एक ऐसी सत्ता जो प्रकृति के गुणों (सत्, रज, तम) से रहित हो, जो जरा-मरण, भूख-प्यास, गर्मी, सर्दी आदि निम्न कोटि के गुणों से रहित हो, जबकि सत्य, ज्ञान, आनन्द आदि उच्च कोटि के गुणों से युक्त हो। तैत्तरीय उपनिषद् में ब्रह्म को "सत्यम ज्ञानमनन्तम् ब्रह्म" कहा गया है।⁷

श्रुतियों में ब्रह्म को अनन्तैश्वर्य से युक्त माना गया है। रामानुज ने विष्णु पुराण के षडैश्वर्य ब्रह्म के गुणात्मक स्वरूप को ही सगुण ब्रह्म के रूप में स्वीकार किया।

“ऐश्वर्यस्य समग्रस्य वीर्यस्य यशसःश्रियः।

ज्ञानवैराग्योश्चैव षण्णांभग इतीरण”॥ विष्णुपुराण 6/5/72

विष्णु पुराण में यश, श्री बल, वीर्य, ज्ञान वैराग्य आदि गुणों को संयुक्त रूप से भग कहा गया है।⁸

ज्ञान शक्तिबलै श्वर्यवीर्य तेजास्यशेषतः

भगवच्छब्दवाटयानि, बिना हैयैर्गुणादिभिः विष्णुपुराण 6/5/79

इसलिए यश, श्री, बल, वीर्य, ज्ञान, वैराग्य आदि गुणों को धारण करने वाले ईश्वर को ही भगवान कहा गया है। उपर्युक्त गुणों को रामानुज ईश्वर का स्वाभाविक गुण स्वीकार करते हैं एवं भगवान के इसी स्वरूप को रामानुज नारायण से सम्बोधित करते हैं।⁹

रामानुज का ईश्वर षडैश्वर्य (बल, श्री, यश, ज्ञान, वीर्य, वैराग्य) के साथ ही उपनिषदों के परमसत्ता में निहित सत्यसंकल्पत्व एवं अपहृतपाप्मत्व का गुण भी धारण करता है, इन्हीं कारणों से रामानुज के ब्रह्म को गुणाष्टक के नाम से भी जाना जाता है। यहाँ सत्यसंकल्पत्व ब्रह्म का वह गुण है जो ब्रह्म के संकल्प को कभी व्यर्थ नहीं जाने देता। ईश्वर के अपहृतपाप्मत्व गुण से तात्पर्य है कि ईश्वर जो भी करता है वह पाप पुण्य आदि से अछूता रहता है।¹⁰

रामानुज ने अपने ईश्वर विचार में उपनिषदों में वर्णित ब्रह्म के साथ पुराणों, आगम ग्रन्थों एवं तमिल प्रबन्धों में उल्लिखित ईश्वर के स्वरूप को भी समाहित करते हैं। इस प्रकार रामानुज का ईश्वरवाद उपनिषदों के ब्रह्मवाद के साथ ही अन्य श्रेष्ठ वैयक्तिक गुणों को भी धारण करता है। वास्तव में लोकोपकार, जीवों के प्रति अपार करुणा, अगाध प्रेम व वात्सल्य आदि वैयक्तिक गुण ईश्वर के आवश्यक गुण हैं। रामानुज के ईश्वर के इस स्वरूप में भागवत धर्मों से लिए हुए अंश मौजूद है। रामानुज ईश्वर के इस स्वरूप को नारायण या वासुदेव कहते हैं। नारायण भक्तों की विविध धार्मिक अनुभूति की पूर्ति के लिए अपने आपको पाँच रूपों में अभिव्यक्त करता है—जैसे परा, व्यूह, विभव, अन्तर्यामी, अर्चावतार आदि। इसमें सर्वप्रमुख रूप 'परा' रूप है। यह वैकुण्ठ निवास करने वाले नारायण का अपरिणामी स्वरूप है। द्वितीय मुख्य रूप 'व्यूह' रूप है। ईश्वर का यह स्वरूप सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति व संहार का कारण है। इसके लिए ईश्वर अपने को चार व्यूहों में व्यक्त करता है। ये व्यूह हैं:—(1) वासुदेव (2) संकर्षण (3) प्रद्युम्न (4) अनिरुद्ध। ईश्वर का तृतीय रूप 'विभव' रूप है। इसमें ईश्वर अपने भक्तगणों को सम्बल प्रदान करने तथा दुष्टजनों से उसकी रक्षा करने के लिए अवतार रूप में पृथ्वी पर प्रगट होता है। ईश्वर का चतुर्थ रूप अन्तर्यामी रूप है इस रूप में ईश्वर जीवों के हृदय में रहता है। ईश्वर का अन्तिम रूप-अर्चावतार' रूप है। इसमें ईश्वर भक्त की आस्था के वशीभूत होकर मूर्तियों में भी प्रगट होता है।¹¹

अतः इस तरह से हम देखते हैं कि रामानुज के ईश्वरवाद में उपनिषदों के ब्रह्मवाद और धर्मग्रन्थों के ईश्वरवाद का समन्वय मिलता है और इस प्रयास में रामानुज धर्म के अन्तिम सत्य एवं दर्शन के परमतत्त्व में समानता स्थापित करने में तो सफल रहे, किन्तु इस प्रक्रिया में धर्म की बहुत सी ऐसी ऐतिहासिक एवं व्यवहारिक तथ्य जो कि अतार्किक हैं वे भी रामानुज के दर्शन में कुछ सैद्धान्तिक विसंगतियों के रूप में समाहित हो जाता है जो उनके दर्शन को तार्किक दृष्टि से असन्तोषजनक बना देता है। इन कुछ असंगतियों के अतिरिक्त रामानुज का ईश्वरवाद उस समय विद्यमान वैष्णव धर्म के प्रभाव का अधिक विस्तार करने एवं जनसमुदाय के ऊपर उसका सकारात्मक प्रभाव बढ़ाने में महत्वपूर्ण योगदान देता है।

संदर्भ:-

1. बलदेव उपाध्याय (संपा0), संस्कृत-वाङ्मय का बृहद इतिहास, दशम् खण्ड वेदान्त, उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान, लखनऊ, 2018, पृष्ठ-202
2. वहीं, पृ0-203
3. सर्वदर्शन संग्रह, 1.1.2
4. वेदार्थ संग्रह, पृ0-17
5. वेदार्थ संग्रह, पृ0-22
6. हिरियन्ना, भारतीय दर्शन की रूपरेखा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1965, पुनर्मुद्रण 2000, पृ0-404
7. तैत्तरीय उपनिषद्
8. विष्णु पुराण, 6.5.74
9. वहीं, 6.5.79
10. नन्द किशोर देवराज, भारतीय दर्शन, उत्तर प्रदेश, हिन्दी संस्थान, लखनऊ, 2002, पृ0-569
11. हिरियन्ना, वहीं, पृ0-404-405

भारतीय प्राचीन विज्ञान का इतिहास: एक दृष्टि

अखिलेश कुमार द्विवेदी

असिस्टेंट प्रोफेसर, प्राचीन इतिहास विभाग

प्रस्तावना-

मानव सर्जना के साथ विज्ञान का विकास भी हुआ है। भारतीय संस्कृति का विकास विभिन्न सामग्रियों जैसे पत्थर, धातु, और अन्य प्राकृतिक वस्तुओं के माध्यम से हुआ। भारतीय विद्वानों ने प्राचीन काल से ही विज्ञान में कई नए आविष्कार किए हैं। भारत की प्राचीन सभ्यताएँ, जैसे सिन्धु घाटी और मौर्य-गुप्त काल, विज्ञान और तकनीकी में कई नई ऊँचाइयों तक पहुँचीं। पं० नेहरू ने भारत को विज्ञान के क्षेत्र में अग्रणी बताया है।¹

विज्ञान और तकनीकी का विकास तब बेहतर होता है जब राजनीतिक व्यवस्था मजबूत होती है। प्राचीन भारत में विज्ञान के विकास से सामाजिक और आर्थिक संरचना में बड़ा परिवर्तन आया। हालाँकि, इसका लाभ सभी वर्गों को नहीं मिला। वर्तमान में, विज्ञान का अतीत समझना जरूरी है ताकि हम भविष्य की दिशा तय कर सकें। भारतीय विज्ञान की प्राचीनता की खोज जारी है, और कई विद्वानों ने इसे विश्व स्तर पर पेश किया है।

भारत में आए विदेशी यात्री और विद्वान भी भारतीय ज्ञान का अध्ययन कर इसके महत्व को समझने में मददगार रहे।² प्राचीन भारत के वैज्ञानिक विचारों को आज के वैज्ञानिक मानकों पर परखने का प्रयास किया जा रहा है। भारतीय वैज्ञानिकों ने प्रयोगों के माध्यम से अपने कार्यों का सत्यापन किया।³

हालाँकि, भारतीय समाज में जाति व्यवस्था के कारण विज्ञान का विकास धीरे-धीरे रुक गया। बौद्ध धर्म के पतन के बाद, ब्राम्हण धर्म की पुनः बढ़ती आस्था और उच्च वर्गों का वर्चस्व विज्ञान और तकनीकी प्रक्रियाओं में अवरोध बन गया। विभिन्न जातियों के बीच भेदभाव ने विज्ञान के क्षेत्र में बाधा पैदा किया।

विज्ञान और तकनीकी एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं। भारतीय वैज्ञानिकों ने परीक्षण को ज्ञान का आधार माना। वहीं, कुछ पुरानी दार्शनिक धाराओं ने विज्ञान की प्रगति में बाधा डाली। डॉ. पी.सी. रे ने बताया कि कुछ दार्शनिक ऐसे थे जिन्होंने विज्ञान में मदद की, जबकि अन्य ने इसके विकास में रुकावटें पैदा कीं।⁴

इस प्रकार, भारतीय विज्ञान का इतिहास एक समृद्ध और जटिल यात्रा है, जिसमें कई उतार-चढ़ाव आए हैं। इसके उत्थान में राजनीतिक, सामाजिक और दार्शनिक कारकों का गहरा प्रभाव रहा है, जिससे विज्ञान के क्षेत्र में प्रगति बाधित हुई है।

भारतीय विज्ञान पर विदेशी दृष्टिकोण

यूरोपीय इतिहासकारों ने अक्सर भारत की वैज्ञानिक उपलब्धियों को नजरअंदाज किया है और उन्हें अपने नाम से स्थापित किया है। भारत के अधीनस्थ होने के कारण, इन वैज्ञानिक योगदानों का स्वतंत्र मूल्यांकन नहीं किया गया। मेघनाथ साहा ने बताया कि आधुनिक विज्ञान की कई उपलब्धियाँ दरअसल प्राचीन भारतीय वैदिक संस्कृति से हैं। उन्होंने भारतीय विज्ञान की उपलब्धियों को यूरोप से कहीं अधिक महत्वपूर्ण माना। हड़प्पा सभ्यता के उत्खनन ने यह साबित किया कि भारत के प्राचीन निवासी, जिन्हें आर्य पराजित करने से पहले बहुत विकसित माना जाता था, आर्यों से विज्ञान में आगे थे, हालाँकि उनके बारे में लिखित साक्ष्य नहीं मिले हैं।

जाति प्रथा ने भारत में हस्त कौशल और बौद्धिक विकास के बीच दूरी बना दी, जिससे भारत में बौद्धिक विकास अधिक हुआ और भौतिक विकास कम। भारतीय विद्वानों ने अपने ज्ञान से दुनिया को प्रभावित किया, लेकिन उनका व्यापार या उद्योग में कोई खास रुचि नहीं रहा। इसके विपरीत, कई यूरोपीय इतिहासकारों का दावा है कि भारतीय विज्ञान की नींव यूरोप में रखी गई थी, खासकर यूनान में।

यद्यपि भारतीय और चीनी विज्ञान ने पश्चिमी विज्ञान को प्रभावित किया, पश्चिमी देशों ने भारत और चीन की उपलब्धियों को नजरअंदाज करने की कोशिश की। इसके कारण, भारत में ज्ञान का भंडार होने के बावजूद, इसे कभी पूरी तरह से स्वीकार नहीं किया गया। कुछ विद्वानों ने भारतीय गणित में पिछले युगों में की गई खोजों का उल्लेख किया है, लेकिन फिर भी वे इसे यूनानी का बताया गया।⁵ इसके अलावा, भारतीय चिकित्सा विज्ञान और रसायन विज्ञान की उपलब्धियाँ भी अक्सर नजरअंदाज की गई हैं।

हालाँकि, कुछ बाहरी विद्वानों ने भारतीय ज्ञान के महत्व को स्वीकार किया है और इसे उच्च आदर्शों और गहरे विज्ञान की खोज का केंद्र माना है। उदाहरण के लिए, 1068 ई. में एक स्पेनिश विद्वान ने कहा था कि भारत में ज्ञान का आधार था, और उनकी गणितीय समझ और आकाशीय गतिविधियों का ज्ञान उल्लेखनीय था।

भारत में आने वाले विदेशी यात्रियों, जैसे इत्सिंग और अल्बेरूनी, ने भारतीय विज्ञान की जानकारी को अरब देशों तक पहुँचाया, जहाँ इसे अनुवादित किया गया। भारतीय वैज्ञानिकों ने हमेशा से अपने ज्ञान को रहस्यपूर्ण ढंग से प्रस्तुत किया है।⁶

इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि भारत में विज्ञान की गहरी जड़ें हैं, लेकिन यूरोपीय दृष्टिकोण ने इसे अक्सर छिपाने की कोशिश की है। भारतीय वैज्ञानिकों ने अपनी खोजों के जरिए ज्ञान के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान दिया है, जिसे आज भी सही तरीके से मान्यता नहीं मिली है।

भारतीय विज्ञान के इतिहास का काल विभाजन-

भारत में पुरातात्विक ज्ञान का अध्ययन लगभग बीसवीं शती के तीसरे दशक से शुरू हुआ। इससे पहले, भारतीय इतिहास का ज्ञान वैदिक साहित्य पर आधारित था। 1922 में हड़प्पा सभ्यता के उत्खनन ने एक नई क्रांति पैदा की, जिससे हमारी संस्कृति की जड़ें ईसा पूर्व 3000 साल तक पहुंच गईं। यह खोज हमें मित्र और मेसोपोटामिया जैसी सभ्यताओं के साथ खड़ा करती है, और दिखाती है कि हमारी सभ्यता अत्यंत विकसित और नगरीय थी।

हड़प्पा और मोहनजोदड़ो मुख्य केंद्र थे, लेकिन बाद में कई और केंद्र भी खोजे गए। यहां की नगर नियोजन की प्रणाली अन्य समकालीन सभ्यताओं में नहीं दिखाई देती। हड़प्पा सभ्यता की योजनाबद्धता यह दर्शाती है कि इसके पीछे लंबे समय की सोच और वैज्ञानिक तकनीक का विकास हुआ था। डॉ. राव और मार्शल ने इसे अन्य महान नगरीय सभ्यताओं के साथ तुलना की है, परंतु यहां की तकनीकी जानकारी अत्यंत उन्नत थी।

हालांकि, यह जानने के लिए कि इस सभ्यता के निर्माता कौन थे और इसका अंत क्यों हुआ, किसी स्पष्ट उत्तर की आवश्यकता है। इन प्रश्नों के उत्तर अनुमान और तर्क पर आधारित हैं, और इस सभ्यता को पहली नगरीय सभ्यता माना जाता है। इसके बाद का समय वैदिक युग है, जिसमें पहले केवल वैदिक साहित्य पर निर्भरता थी। लेकिन हाल के उत्खनन से वैदिक काल की सभ्यताओं की जानकारी मिली है।⁷

वैदिक काल को 1750 ईसा पूर्व से 600 ईसा पूर्व तक का माना गया है। इस दौरान ग्रामीण सभ्यताओं का विकास दिखाई देता है, इसके उल्लेख वेदों, ब्राम्हण और आरण्यक ग्रंथों में हैं। यह काल 'अंधकार युग' कहलाता है, क्योंकि इसकी पुरातात्विक उपलब्धियां कम थीं। इसके बाद 600 ईसा पूर्व में महाजनपदों का उदय हुआ, जिससे नगरीय सभ्यता का दूसरा चरण शुरू हुआ।

विज्ञान और प्रौद्योगिकी का इतिहास तीन खंडों में विभाजित किया गया है: हड़प्पा सभ्यता, अंधकार काल, और द्वितीय नगरीकरण का काल। प्रागैतिहासिक काल के समय लोगों के जीवन का ज्ञान केवल खुदाई द्वारा प्राप्त सामग्री से होता है, जैसे उपकरण, आवास और चित्र। इस काल में भी वैज्ञानिक प्रवृत्तियाँ दिखाई देती हैं, जैसे औजारों का निर्माण और आवास बनाने की तकनीक।

कुछ इतिहासकारों ने वैदिक काल को अंधकार युग कहा है, लेकिन इस नामकरण का औचित्य समय के साथ बदल गया है। स्वतंत्रता के बाद कई स्थलों के उत्खनन से इस काल की समृद्धि सामने आई। वैदिक साहित्य में भी वैज्ञानिक उपलब्धियों के संकेत हैं, फिर भी उस समय की सामग्रियों की कमी की वजह से इसे अंधकार युग कहा गया था।

इस तरह, अध्ययन के लिए काल विभाजन चार चरणों में उचित है: पूर्व-ऐतिहासिक काल, आद्यैतिहासिक काल, वैदिक काल, और द्वितीय नगरीय सभ्यता का काल। पूर्व-ऐतिहासिक काल में कुछ भी लिखित साहित्य उपलब्ध नहीं है, जबकि आद्यैतिहासिक काल में हड़प्पाकालीन मुहरों पर अंकित लेख हैं, जिन्हें सही तरीके से पढ़ा नहीं जा सका है।

निष्कर्ष

मानव सर्जना के साथ विज्ञान का विकास हुआ और भारतीय संस्कृति ने पत्थर, धातु, और अन्य प्राकृतिक वस्तुओं से आकार लिया। प्राचीन भारतीय विद्वानों ने कई महत्वपूर्ण विज्ञान संबंधी आविष्कार किए हैं, खासकर सिन्धु घाटी और मौर्य-गुप्त काल में, जब विज्ञान और तकनीकी में महत्वपूर्ण प्रगति हुई। पं. नेहरू ने भारत को विज्ञान के क्षेत्र में अग्रणी बताया है।

विज्ञान और तकनीक का विकास एक मजबूत राजनीतिक व्यवस्था पर निर्भर करता है। प्राचीन भारत में विज्ञान के विकास से सामाजिक और आर्थिक संरचना में बड़े परिवर्तन आए, लेकिन इसका लाभ सभी वर्गों को नहीं मिला। इस समय का विज्ञान आज के संदर्भ में समझना जरूरी है, ताकि भविष्य की दिशा स्थापित की जा सके। भारतीय विज्ञान की समृद्धि की खोज आज भी जारी है और इसे वैश्विक स्तर पर पेश किया गया है।

विदेशी यात्री और विद्वान भारतीय ज्ञान के महत्व को समझने में मददगार रहे। प्राचीन भारत के वैज्ञानिक विचारों का आज के मानकों पर परीक्षण हो रहा है। भारतीय वैज्ञानिकों ने अपने कार्यों का सत्यापन प्रयोगों के माध्यम से किया। हालांकि, जाति व्यवस्था के कारण विज्ञान का विकास धीमा हो गया। ब्राम्हण धर्म में विश्वास की वृद्धि और उच्च वर्गों का वर्चस्व विज्ञान में बाधा बनी।

विज्ञान और तकनीक एक-दूसरे से जुड़े हैं, और कुछ पुरानी दार्शनिक धारणाएं विज्ञान की प्रगति में अवरोध पैदा करती हैं। डॉ. पी.सी. रे ने बताया कि कुछ दार्शनिकों ने विज्ञान में मदद की, जबकि अन्य ने उसमें रुकावटें पैदा कीं। भारतीय विज्ञान का इतिहास एक जटिल यात्रा है, जिसमें कई उतार-चढ़ाव आए हैं, और इस पर राजनीतिक, सामाजिक और दार्शनिक कारकों का गहरा प्रभाव पड़ा है।

यूरोपीय इतिहासकारों ने भारतीय वैज्ञानिक उपलब्धियों को अक्सर नजरअंदाज किया और उन्हें अपने नाम के साथ जोड़ लिया। मेघनाथ साहा ने बताया कि कई आधुनिक वैज्ञानिक उपलब्धियां दरअसल प्राचीन भारतीय वैदिक संस्कृति से आई हैं। हड़प्पा सभ्यता के उत्खनन ने यह साबित किया कि प्राचीन भारतीय विज्ञान में आर्य संस्कृति से पहले अधिकतम विकास हुआ था, हालांकि इसके लिखित साक्ष्य नहीं हैं।

जाति प्रथा ने भारत में बौद्धिक और भौतिक विकास के बीच दूरी बढ़ाई। भारतीय विद्वानों ने ज्ञान का संचार किया, लेकिन उनका व्यापार या उद्योग में कोई विशेष रुचि नहीं रही। बहुत से यूरोपीय इतिहासकारों का कहना है कि भारतीय विज्ञान की नींव यूरोप में रखी गई थी, विशेषकर यूनान में।

हालांकि, कुछ बाहरी विद्वानों ने भारतीय ज्ञान को उच्च आदर्शों और गहन अध्ययन के मूल केंद्र के रूप में मान्यता दी है। भारतीय यात्रियों, जैसे इत्सिंग और अल्बेरूनी, ने भारतीय विज्ञान की जानकारी को अरब देशों में पहुंचाया है। भारतीय वैज्ञानिकों ने हमेशा अपने ज्ञान को रहस्यपूर्ण तरीके से प्रस्तुत किया है।

भारत में विज्ञान की गहरी जड़ें हैं, मगर यूरोपीय दृष्टिकोण ने इसे छिपाने की कोशिश की है। भारतीय वैज्ञानिकों ने अपनी खोजों के जरिए महत्वपूर्ण योगदान दिए हैं, जो आज भी पूरी तरह से मान्यता नहीं मिली है।

भारतीय विज्ञान का इतिहास बीसवीं शताब्दी के तीसरे दशक में पुरातात्विक अध्ययन के शुरू होने से बदल गया। 1922 में हड़प्पा सभ्यता के उत्खनन ने भारतीय संस्कृति की जड़ों को ईसा पूर्व 3000 वर्षों तक पहुंचाया, जिससे यह साबित हुआ कि यह सभ्यता अत्यधिक विकसित और नगरीय थी।

हड़प्पा और मोहनजोदड़ो जैसे स्थलों ने नगर नियोजन की एक अद्वितीय प्रणाली पेश की। हालांकि, इस सभ्यता के निर्माता कौन थे और इसका अंत क्यों हुआ, इसके बारे में स्पष्ट उत्तर की आवश्यकता है। वैदिक काल को 1750 ईसा पूर्व से 600 ईसा पूर्व तक का माना गया है, जिसमें ग्रामीण सभ्यताओं का विकास दिखता है।

विज्ञान और प्रौद्योगिकी का इतिहास तीन भागों में बांटा गया है: हड़प्पा सभ्यता, अंधकार काल, और द्वितीय नगरीकरण का काल। प्रागैतिहासिक काल में वैज्ञानिक प्रवृत्तियाँ दिखाई देती हैं। कुछ इतिहासकारों ने वैदिक काल को अंधकार युग कहा, लेकिन स्वतंत्रता के बाद के उत्खनन ने इस काल की समृद्धि को उजागर किया।

इस प्रकार, इतिहास को चार चरणों में विभाजित किया जा सकता है: पूर्व-ऐतिहासिक काल, आद्यैतिहासिक काल, वैदिक काल, और द्वितीय नगरीय सभ्यता का काल। पूर्व-ऐतिहासिक काल में लिखित साहित्य उपलब्ध नहीं है, जबकि आद्यैतिहासिक काल में हड़प्पा कालीन मुहरों पर अंकित लेख हैं।

संदर्भ

1. नेहरू, जवाहरलाल, डिस्कवरी ऑफ इंडिया, कलकत्ता, 1956।
2. D. Chattopadhyaya, Studies in the History of Science in India.
3. P.C. Ray, History of Hindu Chemistry. Vol. I. Preface.
4. P.C. Ray, Studies in the History of Science in India, p. 195-97.
5. A. Reymond, Science in Greek Roman Antiquity, Quoted for B. Farrington, Greek Science, p. 16.
6. Dr. Radhakrishnan, Hindu View of Life, p. 127-33.
7. Devi Prasad Chattopadhyay, Science & Technology in Ancient India, p. 74.

प्राकृतिक आपदा, प्रबंधन व फसल संरक्षण संबंधित सरकारी योजनायें: जौनपुर जनपद के विशेष संदर्भ में

अनुपम कुमार यादव

असिस्टेंट प्रोफेसर, अर्थशास्त्र विभाग, गाँधी स्मारक त्रिवेणी पी0जी0 कालेज बरदह, आजमगढ़।

सारांश

आपदा एक अप्रत्याशित घटना है, जिसे राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन अधिनियम-2005 के तहत दैवी या मानवजनित बड़ी दुर्घटना माना जाता है, जिसमें जन-धन की हानि होती है। भारत प्राकृतिक आपदाओं, विशेषकर भौगोलिक और जलवायु कारणों से, के प्रति संवेदनशील है। जौनपुर जिला, उत्तर प्रदेश में बाढ़ और सूखे जैसी समस्याएँ आम हैं, जो किसानों की कृषि पर निर्भर आजीविका को प्रभावित करती हैं। सरकार किसानों को वित्तीय सहायता और आपदा प्रबंधन की योजनाएँ प्रदान करती है, जैसे व्यापक फसल बीमा और मौसम आधारित फसल बीमा योजनाएँ, जिससे उन्हें आर्थिक सुरक्षा और प्राकृतिक आपदाओं के प्रति मजबूती मिल सके।

मुख्य शब्द- आपदा, आपदा प्रबंधन, मौसम, आर्थिक सुरक्षा, योजनाएँ, फसल बीमा योजना।

प्रस्तावना-

सामान्य तौर पर आपदा का तात्पर्य किसी ऐसी दुर्घटना से लगाया जाता है, जिसका सामना करने के लिये कोई व्यक्ति या समूह अपने आप में तैयार एवं समर्थ न हो। राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन अधिनियम-2005 में आपदा को दैवी, मानव जनित दुर्घटना अथवा लापरवाही से हुई किसी ऐसी बड़ी दुर्घटना के रूप में परिभाषित किया गया है, जिसमें व्यापक जन-धन की हानि, पर्यावरण की क्षति कारित हो तथा प्रभावित क्षेत्र के लोग उसका सामना करने में असमर्थ हों। परम्परागत रूप से दैवी आपदा जैसे बाढ़, सूखा, अग्निकाण्ड, आकाशीय बिजली, ओलावृष्टि आदि है। भारत ने बड़ी संख्या में प्राकृतिक आपदाओं जैसे भूकंप, बाढ़, सूखा और कीट आक्रमणों के धक्कों को झेल रहा है। इन आपदाओं के प्रति अतिसंवेदनशील होने का मुख्य कारण भारत की भौगोलिक अवस्थिति, जलवायु तथा अन्य भौतिक कारण हैं।

देश की बढ़ती हुई आबादी ने किसानों को बाढ़ ग्रस्त इलाकों, सूखा प्रभावित क्षेत्रों, चक्रवात प्रभावित क्षेत्रों और भूकंप प्रभावित क्षेत्रों जैसे जोखिम पूर्ण क्षेत्रों में बसने के लिए मजबूर किया है। फसलों के नष्ट होने के लिए उत्तरदायी प्राकृतिक आपदाएँ देश की अर्थव्यवस्था को तबाह कर देती हैं। कीमती अत्यधिक उच्चस्तर तक बढ़ जाती हैं और गरीब भूखे मरते हैं। ऐसी आपदाओं से जूझने का सर्वोत्तम तरीका है किसी भी संभाव्यता के लिए तैयार रहना। सरकार ने किसानों के लिए प्राकृतिक आपदाओं से निपटने के लिए आकस्मिकता योजनाएँ तैयार की हैं। सरकार प्राकृतिक आपदाओं से ग्रस्त किसानों को क्षतिपूर्ति और अन्य वित्तीय सहायता भी प्रदान करती है। ऐसा उन्हें योग्य वस्तुओं में निवेश करने और उनका उत्पादन करते रहने के लिए प्रोत्साहित करने हेतु किया जाता है।

जनपद जौनपुर - एक परिचय -

जनपद जौनपुर पूर्वी उत्तर प्रदेश में लखनऊ से लगभग 235 कि0मी0 दूरी पर स्थित है। इसकी सीमाये पूरब में गाजीपुर, वाराणसी, दक्षिण में संत रविदास नगर भदोही, पश्चिम में इलाहाबाद, प्रतापगढ़ और सुल्तानपुर तथा उत्तर में आजमगढ़ को छूती हैं। गोमती, सई मुख्य नदियाँ तथा छोटी नदिया पीली, बरना व बसुही नदी हैं। जनपद सड़क एवं रेल मार्ग से जुड़ा हुआ है। जनपद में वर्तमान में कुल 3442 राजस्व ग्राम, 6 तहसीलें 21 विकास खण्ड, 28 थाने, 6 नगर पंचायतें एवं 3 नगर पालिकायें हैं। जनपद का कुल भौगोलिक क्षेत्रफल 399713 हे० है, इसमें से 278381 हे० कृषि अयोग्य क्षेत्रफल है तथा 31831 हे० पर कृषि कार्य किया जा रहा है, 121332 हे० नवीन/पुरानी परती, बाग, बन इत्यादि हैं। जनपदवासियों के जीविकोपार्जन का मुख्य साधन कृषि है। जनपद की जमीन बहुत उपजाऊ है। रबी की मुख्य फसल गेहूँ तथा खरीफ की मुख्य फसल धान व मक्का का अधिकतर उत्पादन होता है।

जौनपुर में आपदा का इतिहास-

जनपद जौनपुर में बाढ़, सूखा, अग्निकाण्ड, ओधी तूफान, ओलावृष्टि, शीत लहरी जैसी परम्परागत दैवी आपदायें आती रही हैं। जनपद जौनपुर में बीसवीं शताब्दी में 1955, 1970 1971, 1976 तथा 1980, 1985 के वर्ष बाढ़ के प्रति अविस्मरणीय हैं। वर्ष 1955 में बाढ़ की शुरुआत 18 जुलाई से हुई 23 जुलाई तक गोमती नदी का जलस्तर निरन्तर निरन्त बढ़ता रहा और 36 फुट 2 इंच हो गया। वर्ष 1971 की बाढ़ 1 सितम्बर से प्रारम्भ हुई थी 12 सितम्बर को गोमती नदी का जलस्तर 18 फुट से बढ़कर एकाएक 28 फुट हो गया था।

इस प्रकार एकाएक जलस्तर में वृद्धि हो जाने के कारण प्रभावित क्षेत्र का जन समूह अत्यन्त आतंकित हो उठा था परन्तु सुरक्षा एवं पर्याप्त राहत व्यवस्था होने के कारण कोई कठिनाई नहीं होने नहीं पाई थी। 23 सितम्बर 1971 को जलस्तर में गिरावट प्रारम्भ होकर 5 अक्टूबर 1971 को गोमती नदी सामान्य स्थिति में आ गयी थी। वर्ष 1976 में गोमती नदी का जलस्तर 29 फुट 6 इंच तक पहुँच गया था। इन वर्ष भी बाढ़ की अवधि में बचाव के लिए पर्याप्त नाव एवं राहत सामग्री की व्यवस्था की गई थी जिससे किसी प्रकार की कठिनाई नहीं होने पाई। वर्ष 1980 में गोमती नदी का जलस्तर स्थानीय वर्षा तथा गोमती नदी के उपरी क्षेत्र ममें जुलाई पक्ष में अत्यधिक वर्षा होने के कारण निरन्तर बढ़ जाने से 28 जुलाई को शाहीपुल पर जलस्तर 28 फीट तक पहुँच गया जो खतरे के निशान से 2 फुट उपर था। सई नदी जो तहसील मछलीशहर, मड़ियाहूँ तथा केराकत की प्रभावित करती है वह भी 31 जुलाई को अपने खतरे के निशान से 88 फीट पर रामदयाल गंज पर पहुँच गई थी।

वर्ष 1985 में प्रारम्भ में मौसम सूखा रहा किन्तु माह जुलाई में विगत वर्षों की अपेक्षा सबसे अधिक वर्षा 275 एम. एम. (औसत) रिकार्ड की गई। किन्तु बाढ़ की स्थिति नहीं उत्पन्न हुई। माह सितम्बर में प्रदेश के पश्चिमी क्षेत्रों में भीषण वर्षा होने के कारण दिनांक 16.9.85 को प्रातः गोमती नदी का जल स्तर शाही पुल जौनपुर में एकाएक 7 फीट बढ़ जाने से 13 फीट हो गया उसके बाद क्रमशः 1 फीट रफतार से प्रतिदिन जल स्तर में वृद्धि होती गयी। सूखा अनावृष्टि के कारण वर्ष 2004 व 2005 एवं 2015 में जनपद सूखाग्रस्त घोषित हुआ है। वर्ष 2015 में सामान्य से कम वर्षा होने के कारण जनपद को सूखाग्रस्त घोषित किया गया यद्यपि फसलों की क्षति 33.00 प्रतिशत से कम हुई है। सूखे से खरीफ की फसल को पहुँचने का इतिहास जनपद का रहा है।²

प्राकृतिक आपदा, प्रबंधन व फसल संरक्षण संबंधित सरकारी योजनायें-

प्राकृतिक आपदा, प्रबंधन व फसल संरक्षण संबंधित सरकारी योजनायें निम्नलिखित है -

बाढ़-

यह निर्धारित करने में कि किसी भी वर्ष में फसल प्रचुर होगी, सामान्य होगी अथवा खराब होगी, मानसून महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। अत्यधिक वर्षा नदियों, दरियाओं और झीलों के उमड़ाव में परिवर्तित होती है। यह अतिरिक्त जल निचले क्षेत्रों को पानी से भर देता है और बाढ़ की स्थिति पैदा करता है। बाढ़ न केवल जान और माल को नष्ट करती है बल्कि ग्रीष्म में किया गया संपूर्ण फसल उत्पादन कार्य भी नष्ट हो जाता है। कुछ फसलें अत्यधिक पानी सहन नहीं कर पाती और नष्ट हो जाती हैं। राष्ट्रीय बाढ़ आयोग ने भारत में बाढ़ प्रभावित क्षेत्र का मूल्यांकन संपूर्ण क्षेत्र के लगभग 12 प्रतिशत तक किया है। जब बाढ़ आती है, तो केन्द्र और राज्य सरकारें दोनों इस नुकसान को कम करने के लिए विभिन्न योजनाओं की घोषणा करते हैं किसानों को सरकार की योजनाओं में शामिल किया जाता है सरकार के कार्यकलापों में आवास, खाद्य आपूर्ति, मलबे की सफाई और व्यावसायिक प्रशिक्षण के प्रावधान शामिल हैं।

सूखा-

मुख्य मानसून के न होने अथवा अपर्याप्त होने की स्थिति को 'सूखा पड़ना' कहा जाता है। अपर्याप्त सिंचाई के कारण यह फसल के न होने, पेय जल की कमी और ग्रामीण तथा शहरी समुदाय के लिए अकारण कष्ट में परिणामित होता है। भारत सरकार द्वारा सूखे की घोषणा करने का कोई प्रावधान नहीं है। राज्य सरकारों द्वारा प्रत्येक राज्य अथवा राज्य के किसी एक भाग के लिए सूखा घोषित किया जाता है। भारत में सूखे को नियंत्रित करने और स्थिति को संभालने के लिए किए जाने वाले मुख्य उपाय निम्नानुसार हैं -

निगरानी और शीघ्र चेतावनी: भारतीय मौसम विज्ञान विभाग-

सूखा संबंधी निगरानी का कार्य करता है। कृषि विभाग ऐसी आपातकालीन योजनाएं तैयार करता है जो किसानों को सूखा जैसी स्थिति उत्पन्न होने की स्थिति में उनकी फसलों को बचाने में सहायता करती हैं। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद द्वारा तैयार अद्यतन मौसम स्थिति और फसल संबंधी वेबसाइट पर उपलब्ध है।

सूखे की घोषणा-

राज्य मंडल अथवा तहसील के स्तर पर वर्षा की निगरानी करते हैं और दूरस्थ संवेदी अभिकरणों से सूचना एकत्र करते हैं। यदि सूचना से यह प्रमाणित होता है कि सूखा पड़ा है तो राज्य सरकार सूखे की स्थिति की घोषणा कर सकती है। फिर केन्द्र सरकार सूखे से प्रभावित लोगों को राहत देने के लिए वित्तीय और संस्थागत प्रक्रियाओं को सहायता प्रदान करती है।

सूखे के प्रभावों की निगरानी और प्रबंधन-

केन्द्र सरकार वित्त आयोग द्वारा तैयार किए गए सहायता मानदण्डों के अनुसार वित्तीय सहायता प्रदान करता है। राज्यों को सहायता आपदा राहतकोश के रूप में दी जाती है, जो राज्यों को दो किस्तों में निर्मुक्त की जाती है, एक मई में और दूसरी अक्टूबर में।

आपदा प्रबंधन-

आपदा प्रबंधन के विचार में एक महत्वपूर्ण मोड़ तब आया जब 26 दिसम्बर, 2004 को हिन्द महासागर में सुनामी ने दस्तक दी। इसका भारत पर जबरदस्त असर पड़ा और सात राज्य प्रभावित हुए। उसी समय महसूस किया गया कि चेतावनी, तालमेल और आपदा प्रबंधन के कामों में भारी अन्तर है। 9 जनवरी, 2005 को एक सर्वदलीय बैठक बुलाई गई, जिसमें राष्ट्रीय स्तर पर प्राकृतिक और मानवकृत आपदाओं से निपटने की जरूरत पर जोर दिया गया।

राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन अधिनियम, 2005 उन घटनाओं को परिभाषित करता है जिसमें जीवन, संपत्ति और पर्यावरण का बड़े स्तर पर नुकसान होता है। इसमें लिखा है, आपदा का मतलब है तबाही, दुर्घटना, आपदा या किसी भी इलाके में बड़ी दुर्घटना, प्रकृति या मानव निर्मित कारणों से उत्पन्न होने वाली, या दुर्घटना या लापरवाही के चलते जिससे जीवन में पर्याप्त नुकसान, मानवीय पीड़ा या क्षति, ध्वंस, पर्यावरण में क्षरण, और यह इस हद तक बढ़ा होता है जिसे प्रभावित क्षेत्रों के समुदाय के मुकाबले की क्षमता से परे हो जाता है। आपदा प्रबंधन अधिनियम, 2005 आपदा प्रबंधन को परिभाषित करते हुए कहता है कि एक सतत चक्र और योजना की एकीकृत प्रक्रिया, नियोजन, आयोजन, समन्वय और लागू करने, समन्वय और उपाय है जिसे लागू किया जाना बहुत आवश्यक है।

जौनपुर जिले के लिए विशेष रूप से प्रासंगिक बाढ़ सूखा, अग्निकाण्ड जैसी परम्परागत आपदाओं के समय भी इस प्रकार के निरोधात्मक उपाय राहतकारी साबित हुए हैं। जनपद के विभिन्न भागों में अग्निकाण्ड, आकाशीय बिजली, सूखा एवं सदर, बदलापुर, शाहगंज, मछलीशहर एवं मडियाहूँ एवं केराकत तहसील में गोमती नदी, सई, पीली, बसुही एवं वरुणा नदी से प्रभावित 437 गांवों में बाढ़ की समस्या विशेष रूप से प्रासंगिक है। भूकम्परोधी मकान, बिल्डिंग बनाकर तथा लोगों को पर्याप्त जागरूक, प्रशिक्षित कर इससे होने वाली क्षति को कम किया जा सकता है। इसी प्रकार जैव, रासायनिक, आणविक खतरे की स्थिति में पूर्व से प्रशिक्षित राहत एवं बचाव दल, स्वास्थ्य सम्बन्धी तैयारियां, जागरूकता व प्रशिक्षण, ऐसे हमलों का आसानी से सामना कर सकता है।³

फसल संरक्षण संबंधित सरकारी योजनायें-

व्यापक फसल बीमा योजना-

1985 में, इस योजना को व्यापक फसल बीमा योजना (CCIS) द्वारा प्रतिस्थापित किया गया, जो भारत में लागू की गई पहली राष्ट्रव्यापी फसल बीमा योजना थी। यह योजना समरूप क्षेत्र दृष्टिकोण पर आधारित थी, और यह योजना ऋणी किसानों के लिए अनिवार्य थी। बीमा योजना को 15 राज्यों और 2 केंद्र शासित प्रदेशों में अपनाया गया था और बीमा को क्रेडिट संस्थानों से जोड़ा गया था (मिश्रा 1994)। अनाज (चावल, गेहूँ) और बाजरा के लिए प्रीमियम दर 2 प्रतिशत और दलहन और तिलहन के लिए 1 प्रतिशत थी। छोटे और सीमांत किसानों के लिए, इस योजना के तहत 50 प्रतिशत सब्सिडी प्रदान की गई थी और सभी किसानों के लिए दावे और प्रीमियम को केंद्र सरकार और राज्य सरकारों द्वारा 2:1 के अनुपात में साझा किया गया था।

मौसम आधारित फसल बीमा योजना-

2007-2008 में शुरू की गई मौसम आधारित फसल बीमा योजना में एक मौसम सूचकांक शामिल था, जो अप्रत्याशित मौसम, यानी उच्च या निम्न तापमान, अधिक या कम वर्षा से होने वाले नुकसान को कवर करता था। यह योजना 2016 तक जारी रही। 2007-2008 से 2015-2016 तक 886.62 लाख हेक्टेयर क्षेत्र के कुल 720.2 लाख किसानों को 122,941.03 करोड़ रुपये की राशि का बीमा किया गया था। सकल प्रीमियम 12,161.4 करोड़ रुपये था, जबकि दावे की राशि 9665.47 करोड़ रुपये थी। इस योजना से कुल 511.04 लाख किसान लाभान्वित हुए।⁴

संशोधित राष्ट्रीय कृषि बीमा योजना-

संशोधित राष्ट्रीय कृषि बीमा योजना (एमएनएआईएस) 2010 में शुरू की गई थी और इसने एनएआईएस की जगह ली, हालांकि कई राज्यों ने एनएआईएस योजना और एमएनएआईएस को रबी 2015-2016 तक जारी रखा। नई योजना का मुख्य उद्देश्य अधिसूचित क्षेत्र में किसी भी अधिसूचित फसल की फसल विफलता की स्थिति में किसानों को बीमा कवरेज और वित्तीय सहायता प्रदान करना था। इस योजना ने किसानों को कृषि में सर्वोत्तम नवीन तकनीक और उच्च मूल्य वाले इनपुट अपनाने के लिए प्रोत्साहित किया। इस योजना के तहत ऋणी और गैर-ऋणी दोनों किसानों का बीमा किया गया था और इसने बुवाई से पहले की अवधि से लेकर कटाई के बाद की अवधि तक फसल के नुकसान को कवर किया। 2010-2011 से 2015-2016 की अवधि में कुल 276.62 लाख किसानों और 297.59 लाख हेक्टेयर क्षेत्र को 62,079.32 करोड़ रुपये की राशि का बीमा किया गया था। इस योजना से कुल 99.26 लाख किसान लाभान्वित हुए।⁵

निष्कर्ष-

इस प्रकार किसान को देश का अन्नदाता कहा जाता है, किसान अगर काम करना बंद कर दें तो देश की आधी से ज्यादा अर्थव्यवस्था धरी की धरी रह जाएगी। भारत एक कृषि प्रधान देश है और यहां की 60 फीसदी आबादी गांव में निवास करती है। गांव में कमाई का सबसे बड़ा जरिया सिर्फ खेती होती है। अब किसानों की आय बढ़ाने के लिए और उन्हें प्रोत्साहन देने के लिए सरकार अलग-अलग तरह की योजनाएं लाती रहती है, जो किसानों को लाभ पहुंचाता है।

संदर्भ

1. जिला सांख्यिकी पत्रिका 2023।
2. Wikipedia.
3. जिला आपदा प्रबन्ध योजना जनपद- जौनपुर 2019 - 20।
4. कृषि सांख्यिकी एक नजर 2019।
5. कृषि सांख्यिकी एक नजर 2019।

परिवार के समर्थन की भूमिका: स्कूल जाने वाले बच्चों में सर्जनात्मकता को बढ़ावा देने पर एक समीक्षा

सोनी कुमारी

शोध-छात्रा, मनोविज्ञान विभाग, जय प्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा

सारांश

यह पत्र यह विश्लेषण करने का प्रयास करता है कि परिवार स्कूल के छात्रों के सर्जनात्मक विकास को कैसे प्रभावित करता है। विधि में एक व्यापक साहित्य समीक्षा, सैद्धांतिक विश्लेषण, और केस स्टडी के माध्यम से अनुभवजन्य परीक्षा शामिल है। हमारे निष्कर्ष बताते हैं कि परिवार छात्रों के सर्जनात्मक विकास में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इसके अलावा, विभिन्न पालन-पोषण शैलियाँ छात्रों की सर्जनात्मकता पर अलग-अलग प्रभाव डालती हैं। उम्मीद भरे पहलुओं के बावजूद, अध्ययन कुछ पारिवारिक चुनौतियों की पहचान करता है जो सर्जनात्मक विकास को प्रभावित करती हैं। अंत में, यह शोध माता-पिता के लिए कुछ सिफारिशों को रेखांकित करता है ताकि वे अपने बच्चों की सर्जनात्मकता को बढ़ावा दे सकें।

मुख्य शब्द: परिवार का समर्थन; सर्जनात्मकता; स्कूल जाने वाले बच्चे

परिचय

आज की ज्ञान आधारित अर्थव्यवस्था में, सर्जनात्मकता वैश्विक प्रतिस्पर्धात्मक लाभ प्राप्त करने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है क्योंकि यह मानव मस्तिष्क की बुद्धि और ज्ञान का प्रदर्शन है, जो सर्जनात्मकता को आर्थिक मूल्य में बदल सकता है और लोगों और संगठनों को एक स्थायी प्रतिस्पर्धात्मक लाभ प्रदान कर सकता है। किसी को परिवर्तन का सामना करना चाहिए और सकारात्मक रूप से उस पर फल-फूलना चाहिए। इस प्रकार, सर्जनात्मकता मानव मस्तिष्क का एक अनमोल संपत्ति मानी जाती है, 21वीं सदी में एक आवश्यक मानव संसाधन और जीवन की गुणवत्ता में सुधार करने का एक शक्तिशाली साधन है क्योंकि सर्जनात्मकता हमें दुनिया को अलग तरीके से देखने की अनुमति देती है। इसलिए, बच्चों के लिए आवश्यक संज्ञानात्मक क्षमताओं का होना महत्वपूर्ण है ताकि वे दुनिया के लिए वैकल्पिक संभावनाओं को देख सकें और उन परिवर्तनों को सक्रिय रूप से लाने के लिए आत्मविश्वास और प्रेरणा रख सकें। सफल होने के लिए, व्यक्तियों को जोखिम लेने और असफलता की संभावना को स्वीकार करने का साहस दिखाना चाहिए।¹ सर्जनात्मक बच्चे मेहनत करने और समस्याओं के समाधान खोजने की क्षमता रखते हैं। परिणामस्वरूप, सर्जनात्मक प्रक्रिया अक्सर नवाचार, समस्या समाधान, उत्पादन और योग्य परिणामों पर केंद्रित होती है। ये लक्ष्य तब प्राप्त किए जा सकते हैं जब माता-पिता शैक्षिक सुधारों का मजबूत समर्थन करें जो अगली पीढ़ी को समाज की चुनौतियों के लिए बेहतर ढंग से तैयार करने का लक्ष्य रखते हैं, जैसे कि महत्वपूर्ण सोच कौशल को प्राथमिकता देना।

सर्जनात्मक शिक्षा पर जोर देना वर्तमान और भविष्य की पीढ़ियों के बच्चों के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है। सर्जनात्मकता विकसित करने में शामिल संज्ञानात्मक प्रक्रियाएँ सभी के लिए समान होती हैं, लेकिन कुछ बच्चे दूसरों की तुलना में अधिक सर्जनात्मक होते हैं। यह अंतर उनके व्यक्तिगत लक्षणों, अनुभवों, ज्ञान, दृष्टिकोण और रुचियों से संबंधित प्रतीत होता है। परिवार प्राथमिक सामाजिककरण संस्थान होते हैं। उनके चारों ओर के वयस्क बच्चों की प्रवृत्तियों को प्रभावित करते हैं; माता-पिता बच्चों की सर्जनात्मकता को बढ़ा या बाधित कर सकते हैं।

माता-पिता की मान्यताएँ बच्चों की सर्जनात्मक क्षमताओं पर महत्वपूर्ण प्रभाव डालती हैं। यदि माता-पिता अपने बच्चों की संभावनाओं को पहचानते हैं, तो वे कला कक्षाओं में उन्हें नामांकित करके या उनके समस्या-समाधान और समस्या-खोजने के कार्यों को सामान्य से अधिक प्रोत्साहित करके इन क्षमताओं के विकास में योगदान देंगे। सर्जनात्मक लोग आमतौर पर उन परिवारों से आते हैं जहाँ का वातावरण मानसिक क्षमताओं के विकास के लिए अनुकूल माना जाता है। माता-पिता अपने बच्चों को पालते और उनकी देखभाल करते हैं। माता-पिता की एक उचित भूमिका यह है कि वे प्रोत्साहन, समर्थन और उन गतिविधियों तक पहुँच प्रदान करें जो बच्चों को विशिष्ट कार्यों में महारत हासिल करने में सक्षम बनाती हैं। जीवन भर, माता-पिता को अपने बच्चों की सर्जनात्मकता को बढ़ावा देना चाहिए क्योंकि वे उनके प्राथमिक शिक्षक होते हैं। परिवार की भूमिका बच्चों की सर्जनात्मक सोच के विकास को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण है। माता-पिता को अपने बच्चों की अंतर्निहित गुणों को विकसित करना चाहिए और उन्हें भावनात्मक स्वायत्तता प्रदान करनी चाहिए, बिना अत्यधिक मांगों या अपेक्षाओं को थोपे। माता-पिता अपने बच्चों की सर्जनात्मकता को आकार देने और उन्हें समाज में सक्षम व्यक्तियों बनने के लिए आवश्यक कौशल प्रदान करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।² वे अपने बच्चों की वृद्धि और प्रगति को आकार दे सकते हैं, जैसे एक मूर्तिकार मिट्टी को आकार देता है।

पिछले विश्लेषण के आधार पर, यह स्पष्ट है कि सर्जनात्मकता मानव स्वभाव का एक अनिवार्य तत्व है, और परिवार की भूमिका एक छात्र की सर्जनात्मक वृद्धि पर महत्वपूर्ण प्रभाव डालती है। इसलिए, यह आवश्यक है कि समकालीन समय में परिवार के बच्चों की सर्जनात्मकता पर विविध प्रभावों का अध्ययन

किया जाए। यह अध्ययन स्कूल जाने वाले बच्चों की सर्जनात्मकता और परिवार के समर्थन के बीच जटिल संबंध का एक व्यापक अवलोकन प्रदान करता है। यह सर्जनात्मकता के वैचारिक ढांचे, छात्रों की सर्जनात्मकता को विकसित करने में परिवार की भूमिका, विभिन्न पालन-पोषण शैलियों के छात्र सर्जनात्मकता पर प्रभाव, सर्जनात्मकता को बढ़ावा देने वाले विशिष्ट पारिवारिक अभ्यास, और परिवारों के भीतर उन बाधाओं की भी जांच करता है जो सर्जनात्मक वृद्धि में बाधा डालती हैं। इसके अतिरिक्त, यह पत्र माता-पिता के लिए सिफारिशों के साथ समाप्त होता है ताकि वे अपने बच्चों की सर्जनात्मकता का समर्थन और संवर्धन कर सकें।

बच्चों के विकास में परिवार की भूमिका

परिवार बच्चों के बड़े होने में अत्यंत महत्वपूर्ण है; यह उनके सोचने, महसूस करने और दूसरों के साथ संबंध बनाने के तरीके को प्रभावित करता है। माता-पिता और वे अपने बच्चों को कैसे पालते हैं, परिवार का एक साथ काम करना, और सभी के बीच संबंध कैसे होते हैं, ये सभी बच्चे के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

परिवार का बच्चों के विकास पर सामान्य प्रभाव

जब एक बच्चा परिवार में जन्म लेता है, तो वह अपने प्रारंभिक अनुभवों और जीवन के दर्शन को अपने परिवार से बनाना शुरू करता है। एक स्वस्थ पारिवारिक वातावरण बच्चे की भविष्य की सफलता के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है क्योंकि यह उसके सामाजिक और भावनात्मक विकास का समर्थन करता है। यह माता-पिता के महत्व को उजागर करता है कि वे बच्चों के सामाजिक और भावनात्मक कौशल को समझें और उन्हें पोषित करें। परिवार बच्चे के सोचने और दूसरों के साथ बातचीत करने के तरीके के प्राथमिक प्रभावक होते हैं, और यह प्रभाव तब भी मजबूत रहता है जब बच्चे बड़े होते हैं और स्कूल जाना शुरू करते हैं। Bowlby के (1969) अटैचमेंट सिद्धांत के अनुसार, एक देखभाल करने वाला और सुरक्षित भावनात्मक बंधन बच्चे के स्वस्थ भावनात्मक विकास के लिए आवश्यक है। एक देखभाल करने वाला और प्रेमपूर्ण परिवार बच्चों की शारीरिक आवश्यकताओं के लिए सुरक्षा और भावनात्मक समर्थन प्रदान करता है, जिससे सुरक्षा और आत्मविश्वास बढ़ता है। जेवउचेवद (2008) आधुनिक सिद्धांतों जैसे अटैचमेंट सिद्धांत पर जोर देते हैं, जो यह मानते हैं कि देखभाल करने वालों के साथ एक मजबूत प्रारंभिक बंधन बच्चों में बेहतर भावनात्मक नियंत्रण और सामाजिक कौशल के विकास की ओर ले जाता है। दूसरी ओर, Conger और Donnellan (2007) ने अपने अध्ययन में यह दृष्टिकोण किया कि पारिवारिक बातचीत और एक सहायक परिवार हमेशा बच्चे की आत्म-सम्मान और समग्र कल्याण को बढ़ाने में सकारात्मक भूमिका निभाते हैं। परिवार बच्चों को पहला वातावरण प्रदान करते हैं जिसमें बच्चे अपने भावनाओं को सीखते या समझते हैं और उन्हें नियंत्रित करना सीखते हैं, जबकि यह बच्चों के विचारों, भावनाओं और संबंधों को आकार देने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।³ बच्चों की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए, परिवारों को स्वस्थ, मजबूत और आवश्यक व्यक्तित्व के निर्माण में तात्कालिक और प्रभावी योगदान देना चाहिए। जैसे-जैसे बच्चे भावनात्मक बुद्धिमत्ता विकसित करते हैं, उनके परिवार भी उनके निर्माण, भावनात्मक सुरक्षा और कल्याण पर प्रभाव डालते हैं।

पालन-पोषण शैलियों और उनके प्रभाव का अवलोकन

बॉमरिंड ने पालन-पोषण शैली की परिभाषा दी, जिसे बाद में मैकोबी और मार्टिन द्वारा विस्तारित किया गया, यह दर्शाते हुए कि यह एक बच्चे के व्यवहार और भावनाओं को आकार देने में क्या भूमिका निभाता है। चार मुख्य प्रकार की पालन-पोषण शैलियाँ हैं- प्राधिकृत, अधिनायकवादी, अनुमति देने वाली, और अनियोजित। प्राधिकृत पालन-पोषण सकारात्मक परिणामों से जुड़ा हुआ है जैसे कि बेहतर शैक्षणिक प्रदर्शन और कम व्यवहारिक समस्याएँ, जो गर्मजोशी को उचित अपेक्षाओं के साथ जोड़ता है, तार्किक संचार, मध्यम नियंत्रण, और स्वतंत्रता पर ध्यान केंद्रित करना, सकारात्मक भावनात्मकता को बढ़ावा देता है। दूसरी ओर, अधिनायकवादी पालन-पोषण शैलियाँ और अनुमति देने वाली शैलियाँ कठोर नियमों और कम गर्मजोशी को शामिल करती हैं, जो बच्चों में उच्च चिंता और कम आत्म-सम्मान का कारण बन सकती हैं, बच्चों की समग्र भलाई को प्रभावित करती हैं। इसी तरह, पिनक्वार्ट (2017) का कहना है कि अधिनायकवादी और अनुमति देने वाली पालन-पोषण शैलियाँ नकारात्मक परिणामों से जुड़ी हुई हैं जैसे कि बड़ी हुई आक्रामकता और बच्चों में कम शैक्षणिक उपलब्धि। इसलिए, पालन-पोषण शैलियों और उनके प्रभावों को समझना स्वस्थ बच्चे के विकास के लिए आवश्यक है।⁴

परिवार की गतिशीलता और बाल विकास

परिवार की गतिशीलता यह है कि परिवार के सदस्य एक-दूसरे के साथ कैसे बातचीत करते हैं, संघर्षों को कैसे हल करते हैं, और भावनाओं को कैसे व्यक्त करते हैं। ये गतिशीलताएँ बच्चों के सामाजिक-भावनात्मक और संज्ञानात्मक विकास में मदद करती हैं। बार्नेट एट अल (2018) ने अपने शोध में यह उजागर किया कि खुली संचार और सहायक संबंधों के साथ परिवारों की भूमिका बच्चों की भावनात्मक लचीलापन और सामाजिक कौशल विकसित करने में अविष्वसनीय है। दूसरी ओर, जब संघर्ष का स्तर उच्च होता है या पालन-पोषण में असंगति होती है, तो बच्चे पर नकारात्मक या बुरा प्रभाव पड़ता है।⁵ एक सहायक पारिवारिक वातावरण बच्चों को तनाव और विपरीत परिस्थितियों के नकारात्मक प्रभावों को कम करके लचीलापन और प्रभावी मुकाबला कौशल विकसित करने में मदद करता है। कर्मिंग और डेविस (2018) ने संघर्ष और उपेक्षा की विशेषता वाले क्लेनिदबजपवर्दस पारिवारिक गतिशीलता को दोहराया, जो बच्चे की भावनात्मक और सामाजिक कल्याण को बाधित कर सकती है। एक परिवार हमेशा बच्चे के प्राथमिक शिक्षक की भूमिका निभाता है, बच्चे के मूल्यों, विषासों और मानदंडों को स्थापित करता है, और यह उस वातावरण को प्रस्तुत करता है जो उसके भावनात्मक और व्यवहारिक विकास को आकार देता है। सामाजिक-आर्थिक स्थिति भी एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है, जिसमें मध्यवर्गीय परिवार भी बच्चों को उनकी सक्रिय भागीदारी के माध्यम से बेहतर शैक्षणिक परिणाम प्राप्त करने में मदद करते हैं। हसनवा का (2021) अध्ययन बताता है कि पारिवारिक समर्थन बच्चों की समग्र भलाई और भविष्य की

सफलता के लिए महत्वपूर्ण है। पारिवारिक गतिशीलता को समझना और लक्षित सामाजिक-भावनात्मक कौशल को लागू करना महत्वपूर्ण है, जो विभिन्न संस्कृतियों में सकारात्मक प्रभाव को बढ़ावा देने और विकसित करने में सहायक होते हैं। बच्चों के साथ पढ़ने और खेलने जैसी गतिविधियाँ प्रारंभिक संख्यात्मकता, साक्षरता, सामाजिक भावनाओं, प्रेम, मोटर, और गैर-कार्य प्रदर्शन में सकारात्मक परिणामों की भविष्यवाणी करती हैं और उन व्यवहारों के माध्यम से गतिशीलता को प्रभावित करती हैं जो बच्चे अपने माता-पिता से सीखते हैं। पारिवारिक शैक्षणिक प्रथाएँ बच्चों के संचार को आकार देती हैं।⁶

विशिष्ट पारिवारिक प्रथाएँ जो सर्जनात्मकता को बढ़ावा देती हैं

पारिवारिक अनुष्ठान और परंपराएँ सर्जनात्मकता को पोषित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं, क्योंकि ये साझा कलात्मक अभिव्यक्ति के लिए एक मंच प्रदान करती हैं, पारिवारिक बंधनों को मजबूत करती हैं, और सांस्कृतिक जागरूकता को बढ़ावा देती हैं। बचपन में अतिरिक्त कलात्मक गतिविधियों में भाग लेना वयस्कता में सांस्कृतिक कार्यक्रमों के प्रति अधिक सकारात्मक दृष्टिकोण से जुड़ा हुआ है, जो कलात्मक प्रयासों में माता-पिता की भागीदारी के प्रभाव को उजागर करता है। इसके अतिरिक्त, पारिवारिक मूल्यों और सांस्कृतिक प्रथाओं का एकीकरण, जैसे कि कहानी सुनाना और सांस्कृतिक उत्सवों में भाग लेना, कल्पना, कथा कौशल, और विविध सर्जनात्मक प्रथाओं के प्रति जागरूकता के विकास में योगदान करता है, जो अंततः बच्चों की सर्जनात्मकता और सांस्कृतिक जागरूकता को उत्तेजित करता है। इसके अलावा, शैक्षणिक सेटिंग्स में कला का उपयोग छात्रों के दृष्टिकोण, कौशल, और सर्जनात्मक सीखने की क्षमता को बढ़ाने के लिए जाना जाता है, जो कक्षा में सर्जनात्मकता को बढ़ावा देने के महत्व को रेखांकित करता है। कुल मिलाकर, पारिवारिक परंपराएँ और अनुष्ठान एक समृद्ध वातावरण का निर्माण करते हैं जो बच्चों को अपनी सर्जनात्मक क्षमता का अन्वेषण और विकास करने में मदद करता है, जबकि सांस्कृतिक और पारिवारिक संबंध की एक मजबूत भावना को बढ़ावा देता है।

विद्यालय जाने वाले बच्चों में सर्जनात्मकता को प्रोत्साहित करना उनके समग्र विकास के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है। बच्चे शैक्षणिक और अतिरिक्त पाठ्यक्रम सर्जनात्मक प्रयासों का समर्थन करके अपनी क्षमताओं को विकसित और प्रदर्शित कर सकते हैं, जैसे कि नाटकीय क्लबों, संगीत पाठों या चित्रकला कक्षाओं में भाग लेना। सकारात्मक प्रोत्साहन और उनकी सर्जनात्मक उपलब्धियों की मान्यता उनके आत्मविश्वास और क्षमताओं की खोज के लिए प्रेरणा को बढ़ाती है। शैक्षणिक जिम्मेदारियों और सर्जनात्मक गतिविधियों के बीच संतुलन बनाना एक समग्र शिक्षा के लिए आवश्यक है, जो बौद्धिक विकास और कलात्मक अभिव्यक्ति दोनों को बढ़ावा देता है। परिवार सर्जनात्मक मानसिकता को पोषित करने और बच्चों में स्थायी सर्जनात्मकता को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, शैक्षणिक और अतिरिक्त पाठ्यक्रम सर्जनात्मक प्रयासों का सक्रिय समर्थन करके। यह समर्थन बच्चों को आलोचनात्मक सोच, समस्या-समाधान कौशल और नवाचार क्षमताओं को विकसित करने में मदद करता है, जिससे वे भविष्य की चुनौतियों के लिए तैयार होते हैं।⁷

पालन-पोषण शैलियाँ और उनकी सर्जनात्मकता पर प्रभाव

पालन-पोषण शैलियाँ उन दृष्टिकोणों और तरीकों को संदर्भित करती हैं, जिनका उपयोग देखभाल करने वाले बच्चों को बढ़ाने और पोषित करने के लिए करते हैं, जिसमें गर्मजोशी, प्रतिक्रिया, नियंत्रण और बच्चों के प्रति अपेक्षाएँ शामिल हैं। यह समझना महत्वपूर्ण है कि कैसे पालन-पोषण के व्यवहार जैसे कि कठोरता और गर्मजोशी बच्चों में नवोन्मेषी सोच को प्रभावित कर सकते हैं।

पालक की कठोरता/निगरानी और इसकी सर्जनात्मकता पर प्रभाव

पालक की कठोरता या निगरानी विभिन्न तरीकों से एक बच्चे की सर्जनात्मक क्षमताओं को प्रभावित कर सकती है। फिर से, सॉयर (2012) के शोध ने यह स्थापित किया कि एक संरचित और निगरानी वाला वातावरण जो स्थिरता और ध्यान प्रदान करता है, अत्यंत महत्वपूर्ण है। यह दिखाया गया है कि जब माता-पिता स्पष्ट नियम और अपेक्षाएँ निर्धारित करते हैं, तो बच्चे अधिक सुरक्षित महसूस करते हैं और कला और शिल्प या सर्जनात्मक परियोजनाओं जैसी सर्जनात्मक गतिविधियों में भाग लेने की अधिक संभावना रखते हैं। फिर से, अत्यधिक कठोरता, जोखिम उठाने और अन्वेषण से सर्जनात्मकता को दबाया जा सकता है। बच्चे गलतियाँ करने या कुछ गतिविधियों से भटकने से डर सकते हैं, जो उनकी क्षमताओं को बाधित या सीमित कर सकता है।⁸ एक ओर, स्वतंत्र सोच और नवाचार एक व्यक्ति की समस्या-समाधान क्षमताओं को बढ़ाते हैं, जबकि दूसरी ओर, अत्यधिक कठोरता और नियंत्रित वातावरण इस स्वायत्तता को दबाते हैं।

परिवार से संबंधित चुनौतियाँ छात्रों के सर्जनात्मक विकास में

परिवार का समर्थन स्कूल जाने वाले बच्चों में सर्जनात्मकता को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है, फिर भी चुनौतियाँ और बाधाएँ मौजूद हैं। परिवार और स्कूल के बीच प्रभावी संबंध अकादमिक सफलता को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण है, विशेष रूप से गणित जैसे विषयों में, जहाँ नकारात्मक माता-पिता के दृष्टिकोण बच्चों की धारणाओं और प्रदर्शन को प्रभावित कर सकते हैं। प्रतिभाशाली छात्रों की पहचान और समावेश, जो अक्सर कक्षाओं में छिपे रहते हैं, उनके विशेष आवश्यकताओं को पूरा करने और उनकी सर्जनात्मकता को बढ़ावा देने के लिए विशेष सेवाएँ प्रदान करने के लिए आवश्यक है।⁹

सांस्कृतिक भिन्नताएँ माता-पिता की शैलियों को आकार देने और बच्चों की सर्जनात्मकता पर उनके प्रभाव में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने के लिए जानी जाती हैं। विभिन्न अध्ययनों ने दिखाया है कि माता-पिता की स्वीकृति और स्वायत्तता समर्थन का समर्थन बच्चों की सर्जनात्मकता पर सकारात्मक प्रभाव डाल सकता है। इसके विपरीत, अनुशासन की कमी और अत्यधिक नियंत्रण सर्जनात्मक प्रक्रिया में बाधा डाल सकते हैं। चीनी पालन-पोषण, जो कन्फ्यूशियस विचारधाराओं में निहित है, सर्जनात्मकता को पोषित करने के बजाय शैक्षणिक उपलब्धियों को प्राथमिकता देने की प्रवृत्ति रखता है, जबकि अमेरिकी पालन-पोषण व्यक्तिगत रुचियों के विकास पर जोर देता है ताकि सर्जनात्मकता को बढ़ावा मिल सके। हाल के शोध ने यह उजागर किया है कि माता-पिता

के व्यवहार जैसे स्वायत्तता समर्थन और व्यवहारिक नियंत्रण चीनी किशोरों की सर्जनात्मकता को महत्वपूर्ण रूप से बढ़ा सकते हैं, जिसमें स्वायत्तता समर्थन और व्यवहारिक नियंत्रण स्वायत्त प्रेरणा के माध्यम से सर्जनात्मकता को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। विभिन्न क्षेत्रों के विष्वविद्यालय के छात्रों पर किए गए एक अध्ययन ने विभिन्न सांस्कृतिक संदर्भों में छात्रों की प्रेरणा और सर्जनात्मक उपलब्धियों को पोषित करने में माता-पिता की प्रतिक्रियाशीलता की महत्वपूर्ण भूमिका को उजागर किया, इस प्रकार सर्जनात्मकता को बढ़ावा देने में माता-पिता की भागीदारी के महत्व पर जोर दिया।¹⁰ ताइवान में किए गए अध्ययनों ने दिखाया है कि कम सामाजिक-आर्थिक स्थिति का सामना करने के बावजूद, द्वि-राष्ट्रीय परिवारों के युवा किशोर सर्जनात्मकता के आकलनों में एकल-सांस्कृतिक परिवारों की तुलना में बेहतर प्रदर्शन करते हैं, जो एक सकारात्मक संकेत है।

निष्कर्ष

परिवार के समर्थन और स्कूल जाने वाले बच्चों में सर्जनात्मकता के विकास के बीच का संबंध महत्वपूर्ण है, फिर भी इसे कम आंका जाता है। बच्चों में सर्जनात्मकता, जो उपयोगी और नवीन विचार उत्पन्न करने की क्षमता के साथ एक बहुआयामी निर्माण है, एक सहायक वातावरण के माध्यम से पोषित होती है जो अन्वेषण, जोखिम लेने और मौलिक विचारों की अभिव्यक्ति को प्रोत्साहित करती है। इस प्रक्रिया में परिवारों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। यह उनके संभावनाओं की खोज, आत्मविश्वास का विकास और भावनात्मक समर्थन, प्रोत्साहन और मान्यता के माध्यम से सर्जनात्मक प्रयासों का पीछा करने के लिए आधार प्रदान करता है। विशेष पारिवारिक प्रथाएँ जैसे कि एक उत्तेजक घरेलू वातावरण बनाना, खुली-मदकमक खेल में संलग्न होना, जिज्ञासा को प्रोत्साहित करना, और बच्चों को विभिन्न अनुभवों के संपर्क में लाना विशेष रूप से सर्जनात्मकता को बढ़ावा देने में प्रभावी हैं। प्राधिकृत पालन-पोषण, जो उच्च गर्मजोशी और उच्च अपेक्षाओं की विशेषता है, सर्जनात्मकता के लिए सबसे अनुकूल है, संतुलित मार्गदर्शन और स्वतंत्रता के साथ, जबकि अधिनायकवादी, अनुमति देने वाले, और लापरवाह पालन-पोषण शैलियाँ सर्जनात्मक विकास में बाधा डाल सकती हैं। इस संभावितता के बावजूद, सामाजिक दबाव, संसाधनों तक सीमित पहुंच, माता-पिता की जागरूकता की कमी, और सांस्कृतिक दृष्टिकोण जैसे चुनौतियाँ शैक्षणिक उपलब्धियों में बाधाएँ उत्पन्न कर सकती हैं। इन चुनौतियों को पार करने के लिए, माता-पिता और शिक्षकों को सहयोग करना चाहिए और सर्जनात्मक गतिविधियों को दैनिक दिनचर्या में एकीकृत करके, सकारात्मक पुनर्बलन प्रदान करके, और पाठ्यक्रम में सर्जनात्मक सोच को शामिल करके एक समग्र दृष्टिकोण अपनाना चाहिए। माता-पिता और शिक्षकों के बीच नियमित संवाद और साझा रणनीतियाँ बच्चों के सर्जनात्मक विकास को और अधिक समर्थन दे सकती हैं। इस प्रकार, परिवार के समर्थन की भूमिका सर्जनात्मकता को बढ़ावा देने में बहुआयामी और महत्वपूर्ण है, जो बच्चों की सर्जनात्मक क्षमता को पोषित और विकसित करने के लिए घर और स्कूल के बीच सहयोगात्मक प्रयास की आवश्यकता है, अंततः एक ऐसी पीढ़ी का निर्माण करना जो नवोन्मेषी विचारकों की हो, जो आधुनिक जटिलताओं का सामना करने में सक्षम हो।

संदर्भ

1. अर्चेंसियो, एल. पी. ई., कॉर्डेरो, ए. आई. एच., और क्रूज, ए. सी. एच. (2023). माता-पिता की शैलियाँ और उनका प्रभाव प्रारंभिक बचपन में भावनात्मक विकास पर। *इबेरो-अमेरिकन एजुकेशन जर्नल*, 7(1)।
2. एडम्स, के. (2005). 'नवाचार और सर्जनात्मकता के स्रोत', सितंबर 2005। राष्ट्रीय शिक्षा और अर्थव्यवस्था केंद्र (NJ1), सितंबर 2005, 1-59।
3. अमाबिले, टी. एम. (1996). संदर्भ में सर्जनात्मकता: सर्जनात्मकता की सामाजिक मनोविज्ञान का अध्ययन। *वेस्टव्यू प्रेस*।
4. अंग्रैनी, एल., और युवोनो, एच. (2022). कला गतिविधियों के साथ प्रारंभिक बच्चों की उम्र की सर्जनात्मकता में सुधार करें। *प्रारंभिक बचपन अनुसंधान पत्रिका (ECRJ)*, 5(1), 42-56।
5. बार्नेट, एम. ए., डेंग, एम., मिल्स-कूनसे, डब्ल्यू. आर., विलौघबी, एम., और कॉक्स, एम. (2008). शिशुओं के माताओं और पिता की पालन-पोषण की आपसी निर्भरता। *परिवार मनोविज्ञान जर्नल*, 22(4), 561-573।
6. बासादुर, एम., और गिलेड, जी. (2002). जानना और सोचना: सर्जनात्मकता का एक नया सिद्धांत। *नवाचार और नई प्रौद्योगिकी का प्रबंधन*, 11।
7. बाउमरिंड, डी. (1991). प्रारंभिक किशोर संक्रमण के दौरान प्रभावी पालन-पोषण। *परिवार संक्रमण*, 2(1), 11।
8. बाउमरिंड, डी. (1991). पालन-पोषण की शैली का किशोर क्षमता और पदार्थ उपयोग पर प्रभाव। *प्रारंभिक किशोरावस्था जर्नल*, 11(1), 56-95।
9. बेडू-आडो, पी. के. ए., महामा, आई., अमोको, बी. एम., अमोस, पी. एम., और अंतवी, टी. (2023). गाफिल पालन-पोषण और व्यक्तित्व लक्षणों के रूप में घानाई उच्च शिक्षा के छात्रों में दुष्ट सर्जनात्मकता के पूर्वानुमान। *सर्जनात्मक शिक्षा*, 14(2), 232-244।
10. बेनेआ-पोपुशोई, ई., और डुका, एस. (2023). ज्ञान अर्थव्यवस्था में सर्जनात्मकता कौशल का विकास और सर्जनात्मक मानव पूंजी का निर्माण: सैद्धांतिक मानक। 154-159।

સમયસંકલના અને કથનકેન્દ્રની કલાત્મક ગૂંથણી: ‘તાકું: બાપદાદા વારીનું’

આશકા દેવમુરારી

રિસર્ચ સ્કોલર, એચ.એન.જી.યુનિવર્સિટી, પાટણ. માગદર્શક: ડૉ. પ્રભુદાસ પટેલ શેઠ શ્રી બી.સી.શાહ આર્ટ્સ કોલેજ, વડાલી.

નવનીત જાની અનુઆધુનિક ગુજરાતી સાહિત્યના મહત્વના વાર્તાકાર છે. તેમની પાસેથી ‘તિરાડનો અજવાસ’, ‘સામા કાંઠાની વસ્તી’, ‘રિઆલિટી શો’ અને ‘કાલની ઘડી ને આજનો દિ’ આ ચાર વાર્તાસંગ્રહો મળે છે. ચુસ્ત સમયસંકલના, કથનકેન્દ્રની ચોચ પસંદગી, પરિવેશની ગૂંથણી તથા વિષયવસ્તુને અનુરૂપ ભાષાશૈલી એમની વાર્તાઓની ખાસિયત છે. અહીં તેમની પ્રખ્યાત વાર્તા ‘તાકું: બાપદાદા વારીનું’ની સમયસંકલના અને કથનકેન્દ્રના આધારે વિગતે તપાસવાનો પ્રયાસ કર્યો છે. આ વાર્તા તેમના વાર્તાસંગ્રહ ‘કાલની ઘડી ને આજનો દિ’માં (ઈ૨૦૧૯) સંગ્રહિત છે.

‘તાકું: બાપદાદા વારીનું’ વાર્તામાં પેઢી વચ્ચેના અંતર, દાદાજીનું પાત્રાલેખન અને કૌટુંબિક પરિવેશના વાસ્તવિક ચિત્રણના લીધે આસ્વાદ્ય બની છે. દાદાજી અને પૌત્ર-પ્રપૌત્રના પાત્રો વડે બે જુદાં જ સમયને એક જ ફ્રેમમાં ગૂંથી લેવાની વાર્તાકાર નવનીત જાનીની કુશળતાને લીધે ભાવકને અતીત અને વર્તમાન બંનેની એક સાથે અનુભૂતિ થાય છે.

‘તાકું: બાપદાદા વારીનું’માં કથક ભનુ પોતાના ચોરાણું વર્ષના દાદાજી જયસુખ વિશે અને તાકા વિશે વાત કરે છે. વિદેશી જોન (ભનુનો ફ્રેસબુક ફ્રેન્ડ) ભનુના ઘરે આવે છે. તેની ડાયરીની નોંધરૂપે તાકું, દાદાજીની વાત આવે છે. એટલે અહીં બે કથક છે: એક ભનુ અને બીજો જોન. જોનની ડાયરીમાં નવ ઓગસ્ટથી તેર ઓગસ્ટ એમ પાંચ દિવસની નોંધ છે. આ ડાયરી ભનુ વાંચતો હોય તે રીતે નોંધના ઉદ્દેશ આવે. ડાયરી વાંચતાં વાંચતાં ભનુ પ્રતિક્રિયારૂપે ટિપ્પણીઓ કરે. આ રીતની કથનરીતિ વાર્તાને ઉપકારક બની છે. ભનુ દાદા જયસુખભાઈ, બાપા માવજીભાઈ તથા મોટાભાઈ-ભત્રીજા વિશે વાત કરે. દાદા પોતાની સ્મૃતિઓમાંથી પોતાના બાપા-નાનજીબાપાની વાતો ખોળી લાવે. એ રીતે સર્જક ચાર પેઢીની વાત વણી લે છે. જોન અને ભનુ વડે બે જુદી સંસ્કૃતિના ‘ઈતિહાસ’ વિશેના દષ્ટિકોણને ગૂંથી લીધો છે. વાર્તાના આરંભે ભનુ તાકુંનું વર્ણન નીચેના શબ્દોમાં કરે છે.

‘વર્ષો જૂનું તાકું, આડાંઊભાં ખપાટિયાંના ટેકે ઊભું થયેલું. છત, દીવાલો અને પાચો ખપાટિયાંનો. માટી, પાણી અને વિવિધ ધાન્યનાં ફૂંવળ-ભૂસાં ભળતાં એનું મૂળ રૂપ ઢંકાઈ ગયેલું. માટીની ભીંતોએ તાકાને પોતાના રંગમાં એવું રંગી નાંખેલું કે ભાત્યે જ કોકને ખ્યાલ આવે કે એનાં ઊર્ધ્વમૂળ ખપાટિયાંના બનેલાં છે અને એ ખપાટિયાં હવા, પાણી અને ઉજાસથી સીંચાયા છે.’ (પૃ-૯૭)

તાકુંનું જોનની નજરે થયેલું ડાયરીની પ્રથમ દિવસની નોંધરૂપે આવતું (૯ ઓગસ્ટ, સમય- રાત્રિના ૧૦:૨૦) વર્ણન જુઓ.

‘વર્ષો જૂનું એટલે... બાપદાદા વારીનું. મજબૂત લાકડાની ફ્રેમવાળું. કલાત્મક નક્શીકામ. ફૂલબુટ્ટા, વેલ, વૃક્ષ, પાન બેસુમાર, બે નકુચાવાળું એનું બારણું. એની ઉપરેય નક્શીકામ, કેટલુંક ખંડિત. હાથીઘોડા, છત્ર. ખાસ દરકારના અભાવે એક નક્કૂચો ઢીલો પડી ગયો છે. બારણું જરા ત્રાંસુ. આંકડી ઓરિજિનલ નથી જણાતી. લીખંડનો સળિયો આંકડીની જગ્યાએ લાગેલો છે, સળિયો સેરવી લઈએ તો તાકું આપમેળે ખૂલી જાય. એમ લાગે કે ખોલારનો આધાર પામવા એના તરફ ઢળી પડ્યું છે. ભીંત પર ગાર-માટી-ઘોળ કરતાં ધ્યાન નથી રખાયું. એથી એના રેલા તાકા પર ઊતરી આવ્યા છે. એ રેલા-ડાઘને ભીંતનો જ એક ભાગ ગણી એની ઉપર લીંપણના થર થતા ગયા છે. એ લીંપણને સિફતથી ઉખાડવામાં આવે તો તાકાનો ખરો નક્શો મળે. એની લંબાઈ-પહોળાઈનું માત્ર અનુમાન જ કર્યું છે... ત્રણ બાય બે ફૂટ... કોણે બનાવ્યું એ અલગ સંશોધનનો મુદ્દો છે. પણ કોઈ એની ઐતિહાસિકતા સ્વીકારવા તૈયાર નથી. સ્વીકારની વાત છોડો; સમજવાનો પ્રયાસ નથી.’ (પૃ-૧૦૪,૧૦૫)

તાકાને જોવાનો બંનેનો દષ્ટિકોણ કેટલો જુદો છે તેનો ખ્યાલ આવી જાય. ભનુનું વર્ણન સાવ શુદ્ધ અને નીરસ છે. જે પોતાના વારસા વિશેનું તેનું અજ્ઞાન દર્શાવે છે. જોનનું વર્ણન કલાપ્રેમી અને સંશોધકની નજરે થયું છે. એ જ તાકાની વાતે દાદાજી પોતાના બાપા વિશે વાત કરે છે. ઓગસ્ટ ૧૧, રાત્રિના ૧૦:૪૦ની નોંધમાં જોન દાદાજીની સ્મૃતિઓ નોંધી લે છે.

‘દાદાજીની સ્મૃતિને હજી કાટ નથી લાગ્યો. આંખો ગઈ છે પણ દષ્ટિ જાણે સ્મૃતિ સાથે જોડાઈ ગઈ હોય એવું લાગે. અંધારું એમના માટે ભૂતકાળનો વિશાળ પટ છે. ક્યાંય અથડાયા વગર સ્વૈરવિહાર કરી શકે. એમનું તાકા વિશે એવું કહેવું છે કે એમણે લાઈફમાં બે વાર તાકાને ઉઘાડબંધ થતાં જોયું છે. પહેલી વાર જોયું ત્યારે એમના પિતાજી નાનજીબાપા એ તાકામાં રાણીછાપ રૂપિયાનો સિક્કો મૂકવાનો પ્રયત્ન કરતા હતા. આખું તાકું સિક્કાઓથી ભરાઈ ગયું હતું અને એમાં એક પણ સિક્કો સમાવવાની જગ્યા નહોતી. બીજી વાર એ તાકાને જોયું ત્યારે નાનજીબાપાએ તાકામાંથી બચેલો છેલ્લો સિક્કો કાઢી દાદાજીના હાથમાં આપતા કહેતા હતા: જયસુખ, આ બચેલા સિક્કામાં તારે ભણવાનું-ગણવાનું-પૈણવાનું ને ચરવાનું છે. આ બધું કરવું નિર્વિકલ્પ છે, સિક્કાની બેચ બાજુ જેમ. સિક્કો આપીને નાનજીબાપા હાથ ધોઈ નાંખ્યા હોય એમ હળવા થઈ ગયેલા. ખાલી તાકની શી ચિંતા? ન ચિંતા અશરફીની, ન કોરીની, ન મહોરની, ન પંચમ જ્યોર્જની, ન એલિઝાબેથની, ન વિક્ટોરિયાની... મોડું મોડું સમજાયેલું કે એ સમયે નાનજીબાપા હળવા નહોતા થયા પણ રાંક થયા હતા.’ (પૃ-૧૦૭)

આટલું ઓછું હોય તેમ દાદાને માનસિક સંતુલન ગુમાવી બેઠેલા નાનજીબાપા જે જોડકણું ગાતા તે પણ શબ્દશઃ યાદ છે. એ સમયે ભનુને લાગે છે કે દાદા નકામો બબડાટ કરી રહ્યાં છે. જો તાકામાં સિક્કો હોત તો પોતે જાહોજલાલીમાં ન જીવ્યો તોય એમ ભનુ કહે છે. તાકું ઊઘડતાંની સાથે દાદાની સ્મૃતિઓનો પટારો પણ ખૂલે છે. નજર સામે તાકું હોવા છતાં ભનુનો ભત્રીજો ગૂગલમાં તેનો કોઈ અર્થ ન મળવાથી બોલી ઊઠે છે, કે તાકા જેવું કશું જ ઓલ વર્લ્ડમાં નથી. જવાબમાં દાદા કહે છે, ‘અલ્યા, તારી જેવા ઊગીને ઊભા થનારને શું ખબર કે પહેલાં આખા ભારતમાં આવા તાકાંઓ હતાં. જૂનાં ઘર-સ્થળને ખોતરો જરા, પત્તો લાગશે.’ (પૃ-૧૦૬) જેની જેવા યુવાનને પણ તાકામાં રસ નથી એ વાતે જોનને આઘાત લાગે છે. એક તાકા વિશેની ભનુ, જોન, દાદાજી, જેની અને ભનુના બાપાની વાતચીત વડે સર્જક ભૂતકાળ અને વર્તમાન, એક વેળાની સમૃદ્ધિ અને ભવ્યતા તથા વર્તમાનની અવદશા; ઇતિહાસ અને વારસા પ્રત્યેની ક્રમશઃ કેળવાતી ઉદાસીનતા - આ બધું જ સૂચવી દે છે. સૌથી વિશેષ તો જોવા મળે છે દષ્ટિકોણ. આ દષ્ટિકોણ પણ કેવો? રજોલ્ફ અર્નહેમના શબ્દોમાં કહીએ તો,

"However, Perception cannot be confined to what the eyes record of the outer world A perceptual act is never isolated; it is only the most recent phase of a stream of innumerable similar acts. Performed in the past and surviving in memory." (પૃ-૮૦)

દાદાને તાકામાં માત્ર એક સિક્કો વારસારૂપે મળ્યો હતો. માવજીભાઈને તો ખબર જ નથી કે તાકામાં શું હતું? તેમની પત્ની અને ભનુની મા લક્ષ્મીબેને તાકામાં પુસ્તકો જોયા હતા. થોડું ઘણું ભણેલી લક્ષ્મી એ પુસ્તકો વાંચવા મથે છે ત્યારે માવજીભાઈ ‘મે’તી બનવું છે? મૂકી દે બધું. તારા કામનું નથી.’ કહીને પુસ્તકો પાછા મુકાવી દે છે. લક્ષ્મીએ ચરકસંહિતા, રામાયણ, મહાભારત, ગીતા, કામસૂત્ર જેવાં ગ્રંથો તાકામાં જોયા હતા એમ જોન નોંધે છે. સુજા ભાવક સમજી જાય કે આ પુસ્તકોનો વાચક દાદાજી છે. અહીં ખ્યાલ આવે કે દાદા જોનની સાથે કડકડાટ અંગ્રેજીમાં કેવી રીતે વાત કરી શક્યા. બાપા અને ભાઈને વેપાર-ધંધો, શેરબજાર સિવાય કશામાં રસ નથી. આ સૂક્ષ્મ સંકેતોને સમજીએ તો ખ્યાલ આવે કે નવી પેઢી દાદાજી અને તાકાની સાથે સાથે ઇતિહાસ, સંસ્કૃતિ, વારસાને પણ ભૂલી રહી છે. તાકું અને દાદાજી બંને ખૂલે છે. એ રીતે અતીત વર્તમાન સાથે જોડાય છે. કહો કે, ઇતિહાસના પાનાં ફરી ખુલે છે. ભનુના બાપા, ભાઈ, ભત્રીજાને ભલે ઇતિહાસમાં રસ ન હોય પણ જોનની મુલાકાત ભનુના સંવેદનતંત્રને દાદાજી, તાકું વિશે (અને એ દ્વારા ઇતિહાસ વિશે) ઝંકૂટ કરી દે છે. એ રીતે નિજીવ તાકું અને સજીવ દાદાજી બંને એકરૂપ થઈ જાય છે. વિદાય લઈ રહેલા જોનને દાદાજી તાકું ખુલ્લું રાખવા કહે છે. જોન ૧૩ ઓગસ્ટની અંતિમ નોંધમાં દાદાજી સાથેની છેલ્લી મુલાકાત વિશે વાત કરે છે અને તેમાં જ તે લખે છે,

‘આ તાકામાં હવે કશુંય નથી. કોઈએ કશું રહેવા નથી દીધું. ખાલી અને ખોખલું બનાવી ખૂણામાં છોડી દેવામાં આવ્યું છે. નજરની અડકેટે ચડે છે પણ લોહીની આંચ પહોંચતી નથી. હૃદયનો ધબકાર તો દૂરની વાત છે.’ (પૃ-૧૦૯, ૧૧૦)

આ વર્ણન દાદાજી સાથેના વર્તનને પણ લાગુ પડે છે. જોનના આગમનથી ભનુ અને દાદાજી વચ્ચેનું અંતર કઈંક અંશે ઘટતું અનુભવાય છે. ભનુ પોતે જ પોતાના બાપા, ભાઈ અને ભત્રીજાને અનુક્રમે થડાવાળા, બજારવાળા અને નેટવાળા કહીને ઓળખાવે છે. મોટોભાઈ ‘મેક ઈન ઈન્ડિયા’ની અને ભત્રીજો ‘ડિજિટલ ઈન્ડિયા’ની ભૂમો પાડે છે, પણ બેમાંથી એકેયને ઈન્ડિયાના તો દૂર પોતાના જ ઇતિહાસમાં રસ નથી. ભનુ થોડો જુદો છે. કથક તરીકે ભનુની ભાષામાં વ્યંગનો પુટ અનુભવાય. એકાદ-બે ઉદાહરણો જોઈએ. ભનુ બાપા અને ભાઈની ઓળખાણ આપતા કહે છે,

‘હું જાણું છું કે પિતાજીને ઇતિહાસ પ્રત્યે કોઈ ભાવ નહીં. હસી પડે. ધૂળ-ઢેંફામાં શું લેવાનું? નામું શીખો... એમની આગળ ઇતિહાસની વાત કરવી નકકામી, કેમ કે એમની તાસીર ત્રાજવાં-કાટલાંની... મોટાભાઈ તો એમનાથીય બેટ. શબ્દોના લવિંગિયા ફોકે.... બાપ-દીકરો પાકા વેપારી. હરીફરીને પૈસાના ઈન્વેસ્ટમાં ઈન્ટરેસ્ટ દેખાડે.’ (પૃ-૧૦૧)

આવા બાપા-ભાઈને જોનનો પરિચય ભનુ શી રીતે કરાવે છે?

‘એ અંગ્રેજ છે પણ વેપારી નથી. એના ફાધર કોઈ મલ્ટિનેશનલ કંપનીના માલિક નથી. એને ચા-તેજાના સાથે કોઈ નાતો નથી. એ કોન્સ્ટેટિનોપલથી આવ્યો નથી કે એને કોઈ પરવાનો લેવાનો નથી. એને તમારી લેવાલી-વેચાલી કે પાશર-અધશરમાં કોઈ ગતાગમ નથી.’ (પૃ-૧૦૧)

જોનના થેલામાંથી ખજૂરાહોના ચિત્રોવાળું પુસ્તક પડી જાય ત્યારે કથક ઘરનાં સભ્યોની પ્રતિક્રિયા પણ કટાક્ષમય વાણીમાં જ વર્ણવે છે. પોતાના જ વારસાથી અભાન બાપુજીનું તતડી ઊઠવું, વહુઓના ખિખિયાટા અને ટેણિયાઓની જિજ્ઞાસા કથક જુએ છે. ઘરનો પરિવેશ પણ ચાર પેઢીના અંતરને સૂચવી દે છે. ઘરનાં ચાર ઓરડાનું વર્ણન જુઓ.

‘એક ઓરડામાં સરસ ઠંડી લાદી હતી અને હવે એના સ્થાને કોટાસ્ટોન જેવું સમયની માંગ પ્રમાણેનું તળિયું નાંખવાની તજવીજ ચાલતી હતી. બીજા ઓરડામાં મોટી મોટી જસતની તિજોરીઓ હતી. ત્યાં લાકડાના બે’એક કબાટોય હતા. ત્રીજા ઓરડામાં સોફાસેટ હતો અને ટી.વી. હતું. મોટાભાઈના મોટા દીકરા જૈનિત ઉર્ફે જેનીએ વધારાનું પ્લગબોર્ડ ઈચ્છેલું એટલે એક જગ્યાએ કમ્પ્યુટરનું ટેબલ પણ આવી ગયેલું... આ ચોથા ઓરડામાં તાકું હતું; બાપદાદાની મીંચાયેલી આંખ જેવું અદ્દલ... એમાં જૂની ઘરવખરી અને જૂનાં ગાભાં-ગોદાં રહેતાં.’ (પૃ-૯૮)

ભનુ પોતે જ દાદા માટેના ઓછા લગાવ વિશે વાત કરતાં કહે છે કે,

‘પાછળવાળા માટે માનબાન, મમતા-બમતા, લગાવ-બગાવ એવું બધું થોડું થોડું ને આઘુંપાણું ને ઉપરછણું મૂળ તો, પાછળવાળા પાછળ ટાઈમ ક્યાં બગાડવો એવી સમજ.’ (પૃ-૧૦૨)

ફોરવર્ડ ગણાતા જેની, માવજીભાઈની સામે બેકવર્ડ દાદાજી અંગ્રેજી અને ઇતિહાસના જાણકાર છે! એ જોઈ ભાવક સમજી જાય કે કોણ બેકવર્ડ છે અને કોણ ફોરવર્ડ? ચાર પેઢીનું નિરૂપણ, બેવડી કથનરીતિ, ચુસ્ત સમયસંકલના, ભનુની વ્યંગવાણી, દાદાજીનું ઊપસતું, જીવંત થતું પાત્ર, તાકુંના બહાને ઇતિહાસ અને વર્તમાનને ગૂંથી લેવાની કુશળતા, ઘરનો પરિવેશ અને એ બધાં વડે તાકું અને દાદાજીની એકરૂપતા - આ બધી વિશેષતાઓને લીધે આ વાર્તા અવિસ્મરણીય બની રહે છે.

સંદર્ભ:

૧. ‘કાલની ઘડી ને આજનો દિ’, નવનીત જાની, લટ્ટ પ્રકાશન, પ્ર.આ.૨૦૧૯.

૨. "Visual Thinking", Rudolf Arnheim, University of California Press, London, 1969.

बुंदेली लोकगाथाओं में नारी विमर्श

डॉ० देवेन्द्र शुक्ल

स्नातकोत्तर विभागाध्यक्ष, हिन्दी, जे०एल०एन० कॉलेज, सक्ती, जिला-जांजगीर, चांपा (छत्तीसगढ़)

“यह वह कथा है, जो गीतों में कही गई हो”

लोकगीत आकार में छोटे होते हैं तथा इनमें लयात्मकता प्रधान होती है, जबकि लोकगाथा का स्वरूप प्रबन्धात्मक होता है, इसकी दीर्घता महाकाव्य के सदृश भी हो सकती है, इसमें गेयता होती है, परन्तु प्रधानता कथा की होती है। अंग्रेजी में लोकगाथा को ‘बैलेड’ कहा जाता है गाथा को गीत की श्रेणी में रखने का कारण उसकी गेयता है, इसलिये पाश्चात्य विद्वानों ने कहा है – “यह वह कथा है, जो गीतों में कही गई हो।” लोकगाथा को परिभाषित करते हुए लोकविदों ने उसकी कुछ लाक्षणिक विशिष्टताओं की ओर इंगित किया है—

1. रचयिता का अज्ञात होना
2. मूलपाठ की प्रामाणिकता संदिग्ध
3. संगीत और नृत्य का सामंजस्य।
4. स्थानीय संस्कृति व जीवन का उल्लेख
5. मौखिकता
6. प्रवचन शैली या उपदेशात्मकता का न होना
7. आलंकारिकता का अभाव
8. रचयिता की वैयक्तिक पहचान का न होना।
9. दीर्घता
10. टेक पदों की पुनरावृत्ति

जिस तरह लोकगीत में निजत्व एवं वैयक्तिकता का अभाव होता है, उसी तरह गाथाओं में भी किसी निश्चित लेखक/रचनाकार का नाम उल्लेख नहीं होता, यद्यपि गीत, गाथा, कथा किसी एक व्यक्ति की ही अभिव्यक्ति होती है, जो सहज ही अनायास सामुदायिकता का अभिन्न हिस्सा बन जाती है, यहां पर ध्यान देने की बात यही है कि लेखक या रचनाकार के लिये वैयक्तिक पहचान/प्रतिष्ठा या कीर्ति/लाभ की आकांक्षा इससे नहीं जुड़ी होती, न ही यहां कोई अहंवादी नजरिया होता है। यही कारण है कि लोक अभिव्यक्तियां निरंतर समूह-दर-समूह, पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलती हुई परिष्कृत होती रहती हैं और उनकी सामयिकता बनी रहती है। भारतीय लोक आल्हा, हीर-रांझा, पंडवानी, लोरकी-गोपीचंद भरथरी आदि अनेक गाथाओं से सम्पन्न हैं। इन गाथाओं के रचनाकारों का कहीं नामोल्लेख नहीं मिलता। ये प्रबंधाबद्ध अभिव्यक्तियां काव्य की संवर्द्धनशील यात्रा के प्रतीक हैं, जो एक व्यक्ति से उद्भूत हो, स्थिर-नहीं होती, बल्कि समुदाय का हर सृजनात्मक सदस्य उसे पोषित करता हुआ आगे बढ़ता है, यही जातीय रचना का वैशिष्ट्य है।

इन गाथाओं का वैयक्तिक दावेदार नहीं है। सम्भवतः यही कारण है कि इनका कोई प्रामाणिक मूल पाठ नहीं मिलता। समय और स्थान के अनुसार इन गाथाओं के साथ जातीय और स्थानीय सांस्कृतिक शिल्प, भाव जुड़ते/छूटते गये। अतः किसी गाथा के मूल पाठ तक पहुंचना लगभग असंभव है। गाथाओं में वर्णित विभिन्न घटनाक्रम, चरित्र, लोक जीवन में निहित विविधताओं को रेखांकित करते हैं। इस तरह एक ही गाथा के अनेक पाठ तैयार हो जाते हैं। किसी स्थान/काल एवं जाति के अतीत को जानने का क्षैतिज आधार हो सकता है। गाथा के रचनाकार के अज्ञात होने का यह वैशिष्ट्य किसी पूर्व निर्धारित योजना का परिणाम नहीं है, बल्कि यह तत्व उन रचनाकारों के उदार मानस का प्रतीक है, जिनके समक्ष लेखक होने या न होने की पहचान का कोई अहमवादी या अर्थ राजनीतिक प्रश्न था ही नहीं। यह हमारे आधुनिक मानस की वैयक्तिक सोच से उपजे पहचान के संकट के प्रश्न हैं, सही मायने में हर रचना किसी लोक कवि की ही रचना होती है, किन्तु उसकी अभिव्यक्ति सामुदायिक होती है और समुदायों में ही उसका पुनर्गठन होता है। रचनाकार का अज्ञात होना लोक गाथा की कोई अपरिहार्य शर्त नहीं है, बल्कि वह लोकमुख और लोक मानस में कितनी बसी हैं, यह महत्वपूर्ण है।

लोकगाथाओं की लोकप्रियता के पीछे उनके कथानक की सम सामयिकता, स्थानीय चरित्र, संगीतात्मकता, सम्प्रेषणीयता, गेयता, भाव आदि तत्वों की समग्रता है, साथ ही गाथाओं के कथानक तथा उनकी प्रभावोत्पादक प्रस्तुति है। ‘आल्हा’ बुंदेलखंड की एक ऐसी ही प्रिय गाथा है, जिसके सशक्त चरित्रों की ओजपूर्ण लयात्मक प्रस्तुति दर्शकों को लम्बे समय तक बांधे रखती हैं। इसके अतिरिक्त कारसदेव की गाथा, गहनई गाथा इत्यादि भी बुंदेली भाषा शिल्प की अनूठी अभिव्यक्तियां हैं, किन्तु वे आल्हा के समान लोकप्रिय नहीं हो पायीं। लोकचरित्र, लोक परिवेश और लोकधुन लोकत्व को जीवित रखते हैं, शास्त्रीयता से इनका कोई सम्बन्ध नहीं, बल्कि इनकी सहजता, गेयता ही इन्हें प्रभावशाली बनाती है।

गाथाओं की प्रस्तुति सीधे खड़े होकर या एक स्थान पर बैठकर नहीं होती, बल्कि इनका प्रस्तोता कुशल अभिनेता भी होता है। अपनी भाव-भंगिमाओं, प्रभावोत्पादक मुद्राओं से वह अभिनीत चरित्र को जीवंत बना देता है और इस जीवंत अभिव्यक्ति की आत्मा है लोक धुन और लोक राग। लोक गाथायें गा-गा कर सुनाई जाती हैं, अभिनीत की जाती हैं। अतः कथा एवं संगीत में साहचर्य आवश्यक है। बुंदेलखंड की 'आल्हा' गायकी में गीत-संगीत और अभिनय को चित्राकर्षक तरीके से संगुफित किया गया है। गाथाओं में स्थानीय संस्कृति, भाषा, शिल्प के साथ स्थानीय प्रसंगों एवं चरित्रों को समाहित किया जाता है। उदाहरणार्थ 'आल्हा' की रचना बुंदेलखंड में हुई। अतः इसमें कजरीबन, कालिजर का किला तथा महोत्सव नगर (महोबा) का वर्णन मिलता है। इसे कलाकार पूरी सज-धज के साथ अंगरखा पहन ओज में डूब पूरी भाव-भंगिमा के साथ प्रस्तुत करता है। भोजपुर अंचल में गले में ढोल बांधकर उसे जोर-जोर से पीटते हुए गायक आल्हा गाते हैं।

लयात्मकता लोकगाथाओं का प्राणतत्व है जो लोक गाथाओं में यह गेयता लोक के नैसर्गिक जीवन प्रवाह से आती है जो शास्त्रीय सैद्धांतिक मतवादों, कारकों, व्याकरण के बंधन से मुक्त होती है। इस तरह इनकी अन्तर्निहित लय इन्हें विशिष्ट पहचान देती है। इनके कथानक में बदलाव होते रहते हैं, जबकि लोक धुनों में बहुत कम परिवर्तन होते हैं। इस तरह जहां जड़ता आने लगती है, वहां स्वतःस्फूर्त रूप से सृजनात्मक स्फोट भी होते हैं और गाथाओं को नया रूप देते हैं। 'आल्हा गाथा' इस बात का प्रमाण है। स्त्रियों ने गीत, गाथाओं, कथाओं के पारंपरिक रूप को जीवित बनाये रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है, क्योंकि स्त्रियां इनका व्यावसायिक तथा धनोपार्जन हेतु उपयोग नहीं करती, बल्कि सुख-दुःख के क्षणों को परस्पर बांटने, सामाजिक परंपराओं का निर्वाह वे इन अभिव्यक्तियों के माध्यम से करती हैं और इस तरह विशिष्ट अवसरों, अनुष्ठानों और पर्वों को रसमय बना देती है।

लोक अभिव्यक्तियों (गाथा, गीत, कथा) की जीवंतता उनकी मौखिकता में ही निहित है। जैसे ही ये किताबों में सुरक्षित कर ली जाती हैं, इनका जीवन जैसे समाप्त हो जाता है। इस साहित्य की मौखिकता का मर्म ही उसकी संवादाशीलता में परस्पर जीवंत रिश्तों में सक्रिय सृजनात्मकता में अन्तर्भुक्त है दुःख-पीड़ाएँ, सुख और रंजन सब कुछ समुदाय दर समुदाय पीढ़ी-दर-पीढ़ी हस्तांतरित होते हैं, यह प्रक्रिया जैसे ही खंडित होती है ये अभिव्यक्तियां भी मृतप्रायः होने लगती हैं। पाश्चात्य लोक-कला विद्वान् सिजविक ने कहा है- "कि यदि कोई गाथा लिपिबद्ध कर ली गई तो निश्चय ही समझिये कि उसकी हत्या करने में आपने सक्रिय योगदान किया है।" सिजविक की यह टिप्पणी लोक साहित्य की जीवन में जीवंत उपस्थिति एवं हस्तक्षेप को व्यक्त करती है। इस साहित्य की मौखिकता लोक के गहन एवं सतत संबंधों की प्रमाण है। निश्चय ही जीवन से इसकी दूरी इसे जीवित नहीं रख सकती।

लोकविद् राबर्ट गेम्स अन्य पहलू को प्रकट करते हैं "कोई गाथा नीति या सदाचार की शिक्षा नहीं देती और न पृथक्ता की भावना का प्रचार करती है। यदि गाथा में उपदेश की यह भावना पायी जाय, तब यह समझना चाहिये कि इसका रचयिता अपने को समुदाय से बाहर समझता है।"²

गाथायें लोक की आत्म-पीड़ाएँ हैं, सामाजिक घटनाक्रमों का बखान है, रंजन का माध्यम हैं। इन गाथाओं के केन्द्र में मूलतः संवेदनाएँ हैं, जनमानस हैं राष्ट्रीयताएँ हैं। अतः गाथाकार स्वतः को इन प्रासंगिकताओं से परे रख प्रवचनकर्ता की भूमिका में कैसे आ सकता है? क्योंकि गाथाकार की यह भूमिका उसे अपने समुदाय से पराया कर देती है। लोक गाथायें यथार्थ जीवन की अनुभवात्मक अभिव्यक्तियां हैं। अतः इनकी जीवंतता, प्रभावोत्पादकता एवं रंजन ही इनका अलंकरण है। अति-अलंकारिता, व्याकरणिक सज्जा, अभिव्यक्तियों की आत्मा को संभवतः खंडित कर दें, किन्तु छन्दात्मक गेयता प्रस्तुति को चित्ताकर्षक और मन-भावन बना देती है।

कहने का आशय यह कि काव्य अलंकार एवं छन्द योजना इन गाथाओं को सुन्दर बनाने हेतु सायास थोपी नहीं जानी चाहिये, बल्कि अनायास ये प्रभाव यदि आते हैं तो ये सम्प्रेषणीयता एवं प्रभावोत्पादकता सहायक होते हैं। पं. राम-नरेश त्रिपाठी ने संभवतः इसलिये कहा है कि "लोक-गीतों/गाथाओं में रस होता है अलंकार नहीं। यदि कोई रस अनायास या संयोग से चला भी आया तो उसकी सृष्टि विभाव, अनुभाव और स्थायी भावों का सन्निवेश कर नहीं की जाती। 'गाथा' को अनन्त माना जाता है, जिसका कहीं कोई अंत नहीं, जिस बिन्दु पर एक कलाकार आज समाप्त करता है अगले दिन वही पाठ उस बिन्दु से बहुत आगे बढ़ जाता है। गायक, प्रस्तोता दर्शकों की मनःस्थिति एवं परिवेश के अनुसार इसमें बहुत कुछ घटा-बढ़ा सकता है। महत्वपूर्ण तथ्य है, क्योंकि इतनी लम्बी होने के बाद भी इनमें कहीं बोझिलता नहीं आती बल्कि गायक है टेक पदों की पुनरावृत्ति सामयिक घटनाओं पर टिप्पणियाँ श्रोताओं में और उत्साह एवं उत्तेजना पैदा कर देती है। इस तरह गायक लम्बे समय तक समा बांधे रखने में सफल रहता है। अनन्त काल से संसार के सभी जन-समुदायों में लोक-गाथायें प्रचलित रहीं हैं। ये गाथायें बरसाती नदी-सी उफनाती-हरहराती जन-जीवन को आप्लावित और आह्लादित कर रसमय बनाती हैं।

वेगमय कथा, आवृत्तिमूलक संगीत आदिम उद्देग और सहज भाषा व भाव इनका वैशिष्ट्य है। इन गाथाओं को सुने बिना इनकी रोचकता एवं प्रभावोत्पादकता को अनुभव नहीं किया जा सकता। रतजगों का आनन्द इन गाथाओं में छुपा है। पहले लोक गायकों की टोलियां गांव-गांव घूम कर, सामंतों के, जजमानों (उच्च वर्ग) के घरों पर जाकर खिंजड़ी, चमीटा, इकतारा बजाकर गाथायें सुनाया करते थे तथा दान-दक्षिणा प्राप्त करते थे अब गाथाओं की प्रस्तुतियां मंचीय हो गयी हैं और कलाकारों की वैयक्तिक पहचान स्थापित हो गयी है।

गाथा की उत्पत्ति के सम्बन्ध में विद्वानों के अलग-अलग मत हैं। गाथा शब्द गै धातु से बने गाथ शब्द से बना है और गै शब्द का अर्थ है सस्वर वर्णन करना, पाठ करना। "गाथा यानी कहानी से बड़े आकार की कथा, प्राचीनकाल में धार्मिक पात्रों पर आधारित कथा विन्यास को गाथा कहा जाता था। कुछ विद्वानों का मत है कि गाथा और उन्हें गाने वाले के लिये 'गाथिन' शब्द ऋग्वेद में मिलता है। बाल्मीकि रामायण में लव-कुश द्वारा गाथा गाने का वर्णन मिलता है, पंडवानी गायक स्वतः को कुशील वंशीय मानते हैं। कहा जा सकता है कि यह गाथा परंपरा कुशीलव, मागध, चारण हरबोलों से होती हुई वर्तमान रूप में पहुंची है। भारत के प्राचीनतम महाकाव्य महाभारत, रामायण आदि लोक गाथाओं का ही विस्तार लगते हैं। ये महाकाव्य भारत की प्राचीन संस्कृतियों का खजाना है।"³

गाथा शब्द को 19वीं सदी के अंत से संभवतः लोक गाथा कहा जाने लगा। विस्तार और संक्षिप्तीकरण इसका स्वभाव है। जैसे रामायण यानी रामकथा ने भारत से निकल कर तिब्बत, तुर्किस्तान, इंडोनेशिया आदि सुदूर देशों तक विस्तार पायी, इसी तरह फ्रेंच मूल का बैलेड (वीरगीत) स्कॉटलैंड से विकसित

हो अमेरिका और ऑस्ट्रेलिया तक पहुंचा। गाथा की उत्पत्ति के सन्दर्भ में पाश्चात्य विद्वानों द्वारा स्वीकृत आठ सिद्धांत माने गये हैं, जिनका उल्लेख प्रथम अध्याय में विस्तार से किया जा चुका है।

‘गाथा’ शब्द अर्थ भाव की दीर्घता को व्यंजित करता है। लोक में प्रचलित ये उक्तियां “काये खौं गाथा गा रये”? या जा गाथा तो चार दिना लौं नई बड़ाने” इत्यादि। इन उक्तियों में छुपी व्यंजकता गाथा की अंतहीनता की ओर ही संकेत कर रही है। इन अभिव्यक्तियों का रचनाकार राज्याश्रय से मुक्त हैं। फलतः जनमानस के प्रति पूर्वाग्रही नहीं है, न जाति के प्रति, न सम्प्रदाय के प्रति, बल्कि जो जैसा है, उसे वैसा ही व्यंजना में अभिव्यक्त करता है, यह रचनात्मकता की अनिवार्य शर्त भी है। इन लोकगाथाओं में निहित लोकत्व ही उनका प्राण है, जैसे रामायण का प्रत्येक प्रसंग श्रोता/दर्शक का अपना प्रसंग बन जाता है। यही सहृदय भाव गाथा का भावनात्मक पक्ष है, जो प्रत्येक व्यक्ति को उससे गहन रूप से आबद्ध कर देता है।

बुंदेलखंड में प्रचलित लोक गाथाएं किसी एक काल या स्थान में निर्मित नहीं हैं, बल्कि कुछ आदिकालीन हैं। कुछ मध्यकालीन। गाथाओं की कथावस्तु के आधार पर यह पता लगाया जा सकता है, कि वे किस काल में रची गईं।

गाथायें पीढ़ी-दर-पीढ़ी विकसित होती हैं अतः उनके ‘पाठ’ के विश्लेषण एवं ऐतिहासिक साक्ष्य की तुलना के द्वारा इनके समय और स्थान की पड़ताल की जा सकती है। लोकप्रिय लोक गाथायें एक जनपद तक सीमित नहीं रहतीं, बल्कि इनका निरंतर विस्तार होता है तथा पाठान्तर बनते जाते हैं, इन पाठान्तरों के आधार पर कभी-कभी यह तय कर पाना कठिन हो जाता है कि मूल गाथा की उत्पत्ति का केन्द्र कौन सा है? किसी भी सृजनात्मक अभिव्यक्ति का यह विस्तार निश्चय ही सकारात्मक है, क्योंकि यहां क्षेत्र, जाति, सम्प्रदाय के प्रश्न समाप्त हो जाते हैं।

बुंदेलखंड में प्रचलित लोक गाथाओं को स्थूलतः हम भक्ति संबंधी, पौराणिक, वीरता परक, चरगाही आदि भागों में वर्गीकृत कर सकते हैं, किन्तु समग्र रूप से देखा जाये तो इस तरह की सीमा रेखायें नहीं खींची जा सकती, क्योंकि हर भाव हर गाथा में विद्यमान है बस कहीं गौण रूप में है तो कहीं मुख्य रूप में गाथाओं की विषय वस्तु के आधार पर इनका संक्षिप्त विवेचन प्रस्तुत है-

सुरहिन की गाथा

यह नीतिपरक आख्यान है, जिसमें पंचतंत्र की कथा एवं जातक कथाओं का मिला-जुला शिल्प मिलता है, इस गाथा में गाय-बछड़े और शेर के मध्य संवाद बताया गया है, जो पंचतंत्र की कथाओं के सादृश्य है, वहीं सिंह द्वारा क्षमा मांगने का दृश्य जातक कथाओं के समान प्रतीत होता है। गाथा में एक गाय कथा है, जो देवी के चन्दन बिरछ को चर लेती है। सिंह जो देवी की सवारी है, यह देख लेता है, सिंह आक्रामक और हिंसक है। उसके जातीय चरित्र के अनुसार वह गाय को कठोर दंड देना चाहता है, किन्तु चूंकि वह देवी की सवारी है, अतः वह गाय को क्षमा कर देता है यानी देवी की भक्ति उसे उदार बना देती है, इस तरह हिंसक पशु की उदारता का चित्रण कर इस गाथा के माध्यम से नीतिपरक सोच जन-मानस के सामने कथाकार रखता है। पूरी कथा देवी भक्ति पर आधारित है, इसलिये देवी गाथा या भक्तिपरक गाथा माना गया है।

दानौ की गाथा

इस गाथा की प्रेरणास्रोत शिवपुराण की पौराणिक कथा है। यह कथा बहुत रोचक है, इसमें ब्रह्मा पत्र लिखकर असुरों के संहार हेतु देवी दुर्गा का आह्वान करते हैं, शंकर महादेव, विष्णु सभी दल-बल समेत देवी दुर्गा के नेतृत्व में असुरों से लड़ने चलते हैं। दुर्गा अपनी सवारी को खोजने स्वयं जाती है, न मिलने पर डमरू बजाती हैं, तब सिंह प्रकट होते हैं, इस तरह यह काफिला आगे बढ़ता है, किन्तु जैसे ही दानौ (दानव) घनघोर गर्जना करता है। सभी देवता भाग खड़े होते हैं, तब दुर्गा त्रिशूल का वार करती है, जिसके आघात से दानौ के लहू की जितनी बूंदें गिरती हैं इतने और दानौ प्रकट हो जाते हैं। तब दुर्गा अपनी देह के मैल से चौंसठ पुतरियां बना खड़ी कर देती हैं, जिन्हें चौंसठ योगिनी कहा जाता है। ये योगिनियां लहू की बूंदों को अपने खप्पर में ले लेती और दानौ का बनना रूक जाता है और दुर्गा खड्ग के एक वार से दानौ का वध कर देती हैं।

यह कथा देवी भक्ति पर आधारित मात्र कथा नहीं कही जा सकती है, इसमें कुछ ऐसे तथ्य अंतर्निहित हैं, जो इसे अपने समय से बहुत आगे का बना देती हैं, जैसे इस कथा में स्त्री देवता का नेतृत्व में होना, पुरुष देवताओं का डर कर पलायन करना और अन्ततः स्त्री देवता द्वारा आतताईयों के मर्दन का वर्णन इत्यादि पुराणों की उस प्रच्छन्न सोच का प्रतीक है, जहां स्त्री की क्षमताओं को, उसके विवेक को, उसके निर्णयों को सम्मान और स्वीकृति प्राप्त थी। ये कथायें वे सांस्कृतिक औजार हैं, जिनके माध्यम से हम इतिहास की बेहतर समझ हाजिर कर सकते हैं। दूसरे ऐसी गाथायें जब संकीर्ण सामंतीय समाज के बीच व्याख्यायित होती हैं, तो विसंगति मूलक समाज के मध्य थोड़ी संभावनायें जगा देती है। यह हमारे सामंतीय सोच की सीमा है कि हम त्याग-बलिदान, पराक्रम को देवत्व की श्रेणी में लाये बिना सम्मान नहीं देते। विद्वानों का मत है कि यह एक दीर्घगीत है इसे गाथा नहीं कहा जा सकता। मेरे विचार से यह आकार लोक कलाकारों द्वारा तय किया गया है, इसमें गाथा में उल्लेखित घटना एक प्रतीक मात्र है, जिसमें अनेकानेक घटनाओं, सन्दर्भों को जोड़ उसे दीर्घ ही नहीं सामयिक भी बनाया जा सकता है। अतः दीर्घता और लघुता तकनीकी प्रश्न है, जिन्हें हल किया जा सकता है।

राजा भोज की गाथा: राजा भोज एक ऐतिहासिक चरित्र है, जिन्हें धार के परमार नरेश के रूप में जाना जाता है, कहा जाता है कि भोज ने ऐसा राज्य ही नहीं किया, एक मजबूत सत्ता स्थापित की, उदारता के साथ दान दिये, शास्त्रों का गहन अध्ययन किया। जैसा किसी राजा ने नहीं किया। इस गाथा में राजा भोज के जीवनकाल का वर्णन है। कहा जाता है कि अपने पिता को भोज ने युद्ध में करारी मात दी थी, जिसका बदला लेते हुए कर्ण ने जय सिंह यानी भोज के पुत्र को पराजित कर मालवा को अपने राज्य में मिला लिया था।

गाथा के एक प्रसंग का वर्णन मिलता है जिसमें पिता अपने पुत्र को चौथी दिशा में जाने से रोकता है। पुत्र जैसे ही जाने की तैयारी करता है, पिता को छींक आ जाती है, इसके बाद भी राजकुमार उसी दिशा में जाता है और सकुशल वापस लौट आता है। इसे देख राजदरबार में पंडित भविष्यवाणी करते हैं

कि राजा के अच्छे दिन आ गये हैं, किन्तु तभी एक पंडित भविष्यवाणी करता है कि राजा भोज की मृत्यु कल निश्चित है। यह सुनते ही उस ज्योतिष को बंदी बना लिया जाता है, क्योंकि उसने राजा के प्रति अशुभ सत्य बोला था। राजा को भी तालों में बंद रखा जाता है। सैकड़ों सैनिक तैनात कर दिये जाते हैं। राजा अपनी निष्क्रियता को छोड़ सजीव हो जाता है और अपने मैल से सांड बनाता है और उसे अपना पहरूआ बना कर खड़ा कर देता है। यह वर्णन दो संकेत देता है, प्रथम इन घटनाओं के पीछे कोई देवी चमत्कार था, जो तर्कातीत है, दूसरा राजा की तीव्र सजगता का जन्म ले लेना है, जिसमें उसका रोम-रोम अपने जीवन को सुरक्षित रखने हेतु प्रयासरत हो उठता है।

गाथा के अंत में लाख सुरक्षाओं के बाद भी राजा की मृत्यु हो जाती है और राज्य राजकुमार पालन्दर यानी जय सिंह के हाथ आ जाता है, जो अपनी निष्क्रियताओं के कारण बहुत जल्द पदच्युत हो जाता है।

राजा भोज का यशगान और उनके जाते ही राज्य का नष्ट होने का वर्णन इस गाथा में है। गाथा में यह प्रश्न किया जाता है कि प्रजा के प्रति राजा का रवैया कैसा होना चाहिये? प्रश्न का उत्तर गाथा में इस प्रकार मिलता है- “रइयत तो तोरी ऐसे कै राखों जैसे चोलन में पलोटे पान हो मांया।” यह प्रश्न गाथा को स्थानीय संस्कृति से भी जोड़ता है। इस क्षेत्र में पान की उपज होती है। पान चुलिया में रखे जाते हैं, जिन्हें सड़ने से बचाने के लिये बार-बार पलटना पड़ता है। यानी जिस तरह एक-एक पान की देख-रेख ध्यान से करनी पड़ती है, वैसे ही राजा को भी अपनी प्रजा का ध्यान रखना चाहिये। पूरी गाथा अपनी गेयता के साथ आगे बढ़ती है। अभिधा शैली की यह गाथा अनेक व्यंजनायें अपने में छुपाये हैं।

धांदू की गाथा

धांदू एक सामान्य लोक चरित्र है, जो देवी का भक्त हैं, इस गाथा में धांदू का जीवन, उसके जीवन के अभाव तथा देवी भक्ति के प्रति उसके चरम समर्पण को वर्णित किया गया है अपनी भक्ति की एक निष्ठता को दिखाने हेतु धांदू अपना सिर काटकर देवी को अर्पित कर देता है, उसका मृत शरीर नदी में डाल दिया जाता है, परन्तु कोई जीव-जन्तु उसे नहीं खाता, न वह सूखता है न कुम्हलाता है। अन्त में लुंगारा (देवी का सेवक) के कहने पर, देवी अंगुली चीरकर इमरत (अमृत) छिड़कती है, जिससे धांदू जीवित हो जाता है और वह उठकर देवी के चरण पकड़ लेता है।

अब न चरन छुड़ाव मोरी मांय हौं।

हौं चरनन् की धूल हो मांया।

भक्ति आधारित गाथाओं में अधिकांशतः देवी भक्ति की प्रमुखता है, ये गाथायें संवाद शैली या प्रश्नोत्तर शैली में हैं। लोकधुन इन्हें प्रभावोत्पादक बना देती है, इन गीतों के साथ स्त्री वेश में प्रमुख नर्तक नृत्य करते चलते हैं। इन गीतों में आलंकारिकता और व्यंजना को लाने हेतु कोई सचेतन प्रयास नहीं किया जाता, न ही इस बात पर जोर दिया जाता है, भक्ति की सघनता को व्यक्त करने के लिये कहीं-कहीं आलंकारिता एवं व्यंजना अनायास आ जाती है।

चंदेलवंश के शासन के दौरान साहित्य और कलाओं ने विकास के नये सोपान तय किये गीत, गाथा कथा की समृद्ध परंपरा इस काल में मिलती है। भक्ति के अलावा युद्धों पर आधारित वीरता मूलक गाथाओं का विस्तार इस काल में हुआ। वीर रस परक गाथाओं के अलावा इस युग में विकसित ‘चरागाही’ लोकगाथा, गीत महत्वपूर्ण है, जो जनमानस के अभिव्यक्ति रूप थे। ये गाथायें पशुपालकों, पशुओं को चराने वाले यानी अहीर और यादव जाति की जीविका और जीवन शैली के मध्य निर्मित हुई। अतः लोक दृष्टि से ये महत्वपूर्ण अभिव्यक्तियां हैं।

चरागाही लोक गाथायें

चरागाही संस्कृति बुंदेलखंड की प्राचीनतम लोक संस्कृति है इतिहास ग्रन्थों से ज्ञात होता है कि महाभारत काल में यह जनपद यादवों का गढ़ रहा है। विद्वान एफ. ई. पार्जीटर ने महाभारत के चेदि जनपद की तुलना बुंदेलखंड से की है। इस जनपद में पशुपालन प्रमुख जीविका थी। फलतः पशुपालकों का समाज में महत्वपूर्ण स्थान था। गोपगिरि यानी ग्वालियर पशुपालकों का केन्द्र स्थान था। इस क्षेत्र में अहीरों की संख्या अधिक थी, उनके द्वारा गाये गये दीवारी गीत चरागाही संस्कृति के प्रतिनिधि गीत हैं। ये गीत-गाथायें, जन-जीवन से उद्भूत हुई और वहीं उन्हें गाया गया। इनमें निहित लोकत्व, लोकभाव और अनुभूति को सहज ही सम्प्रेषित कर देता है। चंदेलकाल का प्रमुख लोकादर्श युद्ध में खेत रहना था- “जो मर जैहे रन खेतन मां, साका चलो अंगारू जाय” (आल्हा)। इसके बावजूद लोक चेतना, लोक संस्कृति और लोक अभिव्यक्तियों का झुकाव सत्ताओं की अपेक्षा जनमानस की ओर अधिक दिखाई देता है।

इन गाथाओं में वर्णित स्त्री चरित्रों से उस काल में स्त्रियों की स्थिति को समझा जा सकता है। इस युग में विवाह को एक हथियार की तरह इस्तेमाल किया जा रहा था, स्त्रियां मानवीय काया नहीं! बल्कि जीती गई वस्तु के रूप में हस्तारित की जाती थीं। युद्धों में पराजित राजा के घर की अविवाहित स्त्रियों (बहन-बेटी) पर विजित राजा संपत्ति की तरह अपना अधिकार समझते थे। वत्सराज कृत रूपकषटकम्। हिन्दी महाकाव्य पृथ्वीराज रासो तथा लोक काव्य आल्हा में ऐसे उद्धरण मिलते हैं। पराजित राजा की बेटी का अपहरण कर विजयी राजा उन्हें हमेशा के लिये अपना आश्रित बना लेते थे। कारसदेव की गाथा में गढ़राज्ञौर का राजा राजू गूजर की कन्या एलादी का विवाह अपने पुत्र से करने का हठ करता है, अन्यथा जबरदस्ती उठवा लेने की धमकी देता है, राजू गूजर इस विवाह को डांड यानी दंड कहता है। इस तरह ये कथायें इस बात का प्रमाण हैं कि मुगल आक्रान्ताओं से स्त्रियां जितनी असुरक्षित थीं उतनी ही वे देसी राजाओं से भी असुरक्षित थीं, इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता। देसी सामंत राजाओं ने अपनी अहंता एवं एकाधिकार के चलते स्त्रियों को घूंघट में रहने को बाध्य किया था, जबकि इतिहास ग्रन्थ मुगल शासकों को पर्दे के लिये, स्त्रियों की असुरक्षा के लिये जिम्मेदार बताते हैं।

कारसदेव एवं धर्मासांवरी की गाथा

ऐसा माना जाता है कि ये गाथायें 12वीं से 13वीं सदी में लिखी गईं, दोनों ही कथाएं चरागाही पृष्ठभूमि पर आधारित हैं, गाथाओं के नायक वीर भाव से ओत-प्रोत संघर्षशील युवक हैं। कारसदेव लोक देवता हैं, अतः इस गाथा का केन्द्रीय भाव भक्ति है। जबकि धर्मासांवरी आम स्त्री चरित्र है जिसमें थोड़ी

चात्मकारिकता है। इन दोनों गाथाओं के कथानक, शिल्प एवं शैली भिन्न हैं। कारसदेव को भिंड, मुरैना, ग्वालियर, दतिया, झांसी, जालौन, हमीरपुर, महोबा, बांदा आदि जनपदों में लोकदेव के रूप में पूजा जाता था संभवतः इसलिये इन क्षेत्रों में कारसदेव के चबूतरे/मंदिर अधिक मिलते हैं। कारसदेव की गोठों को एक सुर में, एक साथ गाया जाता है, इन के आरम्भ में ही पृथ्वीराज चौहान का नामोच्चार किया जाता है। जिसके आधार पर कहा जा सकता है कि इसका रचनाकाल 112वीं से 12वीं सदी के पूर्व का है।

कारसदेव की पूरी गाथा खंडों में विभक्त है, जिसे गोठ कहा जाता है, ऐसा माना जाता है कि गोठों के एकचित्त गायन से भक्तों के सिरों पर कारसदेव आ जाते हैं। जिसे धुल्ला कहते हैं यदि एक टुकड़ा गाने से ही देवता आ जाते हैं तो अगली कड़ी नहीं गाई जाती। एक गोठ में एलादी द्वारा शिव की आराधना का वर्णन किया गया है, चूंकि पूरी गोठों को सामान्यतः एक साथ नहीं गाया जाता गाथा कई टुकड़ों में विभक्त है, फलतः इसके पाठान्तर भी मिलते हैं।

इस गाथा की केन्द्र बिन्दु 'एलादी' नामक युवती है, जिसने बाध्य हो राजा के हाथी को रास्ते से हटाने के लिये उसे पछाड़ दिया और अपना रास्ता साफ कर पूरे आत्म-सम्मान से आगे बढ़ गई लड़की की यह हिमाकत राजा को बर्दाश्त नहीं हुई और उसने लड़की को जबरदस्ती अपनी पुत्र वधु बनाने का आदेश दिया। तब एलादी का पिता राजू गूजर कहता है कि एलादी मेरी नाक का बाल है यानी मेरी पूरी सामाजिक प्रतिष्ठा उस पर निर्भर है। राजू गूजर स्पष्ट रूप से विवाह के लिये मना नहीं कर पाता, परन्तु उसे पता था राजा उसे छोड़ेगा नहीं। अतः वो रातों रात घर छोड़कर चला जाता है। इस गाथा का जो पाठान्तर मिलता है, वह और भी रोमांचक तथा विस्मयकारी है, किन्तु इस कथा में भी 'एलाद' का दुःसाहसी वीर चरित्र उभरता है। इस पाठान्तर में 'एलादी' का पिता राजा के पुत्र को चुनौती देता है कि लड़ते हुए 'दो पड़ा' को यदि राजा का पुत्र सींग पकड़कर अलग कर देगा, तो एलादी से उसका विवाह कर दिया जायेगा, लेकिन राजा का पुत्र पराजित हो जाता है, जबकि एलादी ने दोनों पड़ों को आसानी से अलग कर देती है।

कै भये कनैया कै कारस भये,
जिन्ने गइयन की राखी लाज हो ओ.....
धान-धान झांझ की गइयां,
धान-धान झांझ की खोड़
धान-धान कारस महाराज हो ओ.....

इसी कथा में एलादी शक्ति पाने के लिये बारह वर्ष तक शिव की आराधना करती है, जिसके फलस्वरूप उसे बलशाली भाई के अवतरण का वरदान मिलता है-

राजन के उड़वैया,
भूतन के भगवैया, भैंसन के चरवैया
बाहुबल भैया भोला जू मोखों,
ऐसो वर दइयो, हो ओ...।

यह गाथा का विरोधाभास है 'एलादी' स्वतः निर्भीक, दुःसाहसी एवं वीर है, तब बलशाली भाई पाने के लिये साधना की आवश्यकता क्यों? दरअसल ये अन्तर्विरोध समाज संरचना के हैं। स्त्री के ये गुण समाज स्वीकार नहीं करते हैं। सामंती ठसक वाले उस समाज में एक आम स्त्री को दुस्साहसी, बलशाली और आत्मसम्मान से भरी हुई नायकी के रूप में प्रस्तुत करना गाथा की उल्लेखनीय विशेषता है। बहरहाल, यह सनातन सत्य है कि समाजों में दमन/उत्पीड़न मौजूद होता है। वह प्रतिकार के स्वर उतने अधिक उठते हैं। अकड़ आत्म-सम्मान, लड़ाकूपन, स्वाभिमान और सहजता बुन्देलखण्ड का बुनयादी चरित्र है-

चामल सी बये दूद की नदियां
बाजै दुहनियं कछार,
दूदन-पूतन गोरी धान फलतै,
हार-पहारन करै सिंगार
कारस तोरी जै-जेकार, हो,
ओ-ओ.....।

इन पंक्तियों के साथ गाथा एक सांस्कृतिक उत्सव में बदल जाती है, जहां सबके मंगल की कामना है। गाथा में पराजित राजा से दंड स्वरूप उनकी बेटियों, बहनों पर जबरदस्ती कब्जा करने की सामंतीय-अमानवीय परंपरा का सामुदायिक प्रतिरोध है कहीं समझौता या पराजय नहीं है।

डॉ. नर्मदा प्रसाद गुप्त की टिप्पणी अवलोकनीय है- "प्रस्तुत गाथा की प्रमुख विशेषता वह समन्वय है, जो कि धार्मिक, सामाजिक और राजनीतिक चेतना को संघटित करता है। एक ओर उसमें एलादी की साधना, कारसदेव का अवतरण और उनके चमत्कार धार्मिकता को व्यक्त करते हैं, तो दूसरी ओर झांझ में रहने वाले गूजर परिवार ने पशुओं के रहने का वर्णन, बिटिया को जबरन ब्याहने की समस्या और जन्मभूमि छोड़ने के बाद मिली निर्धनता जैसी पारिवारिक, सामाजिक स्थितियों का वर्णन मिलता है, कारस देव एक पशु पालक का पुत्र होते हुए भी राजा से संघर्ष करता है और सत्ता को चुनौती देता है। यह राजनीतिक जागरूकता इस गाथा में छोटे-बड़े के बीच समता का आग्रह करती है। लोक कथाओं में अक्सर राजा-रानी की कथा आती है, जिसमें समुदाय का छोटे से छोटा आदमी राज-काज में हस्तक्षेप करने की शक्ति रखता है। यह हस्तक्षेप लोक गाथाओं में ही घटित हुआ है, जो राजतंत्र के युग में प्रजातांत्रिक प्रतिक्रिया का प्रामाणिक साक्ष्य है, यह समन्वय की क्रिया चारागाही भूमि पर घटित होती है, इसलिये यह गाथा चारागाही लोक संस्कृति के स्वरूप का प्रामाणिक दस्तावेज बन गई है।"

धर्मासंवारी की गाथा

धर्म संवारी की गाथा को दाम्पत्य जीवन की समस्या पर केन्द्रित कथा माना गया है। गाथा में स्त्री के मूलभूत अधिकार को बहुत स्पष्ट रूप से उठाया गया है, इस गाथा का कथानक इस तरह है—

चिड़वा और चिड़िया का विवाद संतति के बंटवारे को लेकर है चिड़िया का तर्क है कि जंगल में आग लगने पर चिड़वा भाग खड़ा होता है, जबकि चिड़िया आग की परवाह न कर अंडों की सुरक्षा में पंख फैलाये भूखी-प्यासी बैठी रहती है, इसलिये संतति पर चिड़िया का हक है चिड़वा का नहीं, लेकिन तमाम तर्कों के बाद भी राजा भोज और बाणासुर की कचहरी में यह निर्णय लिया जाता है कि पुरुष बच्चे चिड़वा के पास और महिला बच्चे चिड़िया को दे दिये जायें। चिड़िया को यह निर्णय मान्य नहीं अतः वह निर्णय ताम्रपत्र पर लिखवा देती है और दुखी होकर, आत्महत्या कर लेती है। चिड़वा भी अपने प्राण त्याग देता है।

गाथा के इस भाग का मानवीकरण यदि किया जाये तो यह हमारे समाज का जीवंत सच है स्त्रियां हर हाल में बच्चों पर आंचल रखती हैं, जबकि पुरुष बहुत से आकर्षणों, चाहतों, सुविधा-असुविधाओं और नफे-नुकसान में उलझे रहते हैं, यह पूरे समाज की आधी आबादी का अनुभव है, यहां महत्वपूर्ण बात यह है कि इस कथा के माध्यम से उस सामंती समाज में स्त्री अधिकार की बात भर नहीं उठाई गई उसे बड़े ही मानवीय संवेदनात्मक तर्कों के साथ पुष्ट भी किया गया है। गाथाकार यथार्थ चित्र के साथ अनेक कल्पनायें, पुनर्जन्म, अंध-विश्वासों, जादू-टोनों, भविष्यवाणियों के माध्यम से कथा को और रोमांचकारी, चमत्कारी बनाता हुआ आगे बढ़ाता है, जहां कथा अपना यथार्थ विजन खो देती है, किन्तु लोक गाथाओं के यही उपांग जैसे प्रतीक और चमत्कार कथा को विस्तार भी देते हैं।

गाथा के दूसरे भाग में चिड़िया का पुनर्जन्म होता है। अब उसका नाम धर्मा संवारी तथा चिड़वा का नाम दंग रिछारिया है। धर्मा बाणासुर की पुत्री है, किन्तु वह अपने पिछले जन्म के अनुभव को भूल नहीं पाती और घोड़ा से नगर की घोड़ियों के घोड़ा-बच्चों को अपने बाड़े में बंधवा लेती है। जब घोड़ियों के स्वामी राजा से शिकायत करते हैं तो वही ताम्रपत्र दिखलाती है, जो उसे पिछले जन्म में दिया गया था।

बच्चों से विलग होने की टीस और अन्यायपूर्ण निर्णय को वह भूल नहीं पाती, यह स्त्री वेदना है। दूसरे जन्म तक उसकी स्मृति में इस अनुभव के बने रहने के अनुभव को वर्णित कर लोक कलाकार ने स्त्री के साथ होने वाली असमानता से उठी टीस की तीव्रता को अभिव्यक्ति दी है। इस तरह अनेक छोटी-छोटी घटनायें गाथा का हिस्सा बनती चलती हैं बहुत से चमत्कार, जादू-टोना इत्यादि जुड़ते जाते हैं और कथा को विस्तार देते हैं, यही लोक रंग है। नायिका के सौन्दर्य को चित्रित करती ये पंक्तियां द्रष्टव्य हैं—

सहजई हे धर्मा को रूप,
सूरज की किरन सी दमक रई रे।
भौहन चढ़ी है कमान,
हिरनी सी आंखियां डोल रई रे॥
यह सहज और अबोध भावबोध प्रकृति के गहन सान्निध्य का परिणाम है। गाथा का अंत संभावनाओं के साथ होता है—
पुन हो गई आनन्दी चारऊं खूंट।
सुक की मुरलिया बज रयी रे॥

यह लोकगाथा अन्य गाथाओं से भिन्न है, इसमें राजाओं के युद्ध वर्णन नहीं है, जीतने-हारने की जद्दोजहद नहीं है, बल्कि एक सामान्य परिवार की स्त्री का सीधा-सा प्रश्न है कि अपने द्वारा जन्म दिये गये बच्चे, जिनका पूरा संरक्षण स्त्री करती है, उनके पोषण का अधिकार उसे क्यों नहीं है? साथ ही मां के लिये बेटा-बेटी अलग नहीं है, फिर ऐसा अन्यायपूर्ण निर्णय क्यों? परन्तु यह निर्णय पूरे सामंतीय समाज का निर्णय है, किसी एक राजा या न्यायाधीश का निर्णय नहीं।

गहनई लोक गाथा

डॉ. नर्मदा प्रसाद गुप्त का मानना है कि इस गाथा का पाठ सागर विश्वविद्यालय के भाषा-विज्ञान के अध्यक्ष डॉ. भगवानदीन मिश्र द्वारा संकलित है। गहनई लोकगाथा मूलतः चरवाहों के मध्य निर्मित हुई गाथा है। अहीर समुदाय के लोग समूह में जानवरों को चराने के लिये चार माह के लिये घरों से दूर निकल जाते हैं। घरों से इतने लम्बे समय तक दूर रहते हुए ये समूह कथाओं, गाथाओं, गीतों के मध्य ही अपना समय व्यतीत करते हैं। संभवतः इसलिये इस अवधि में गाये गीतों को 'बिरहा गीत' कहा जाता है। कृष्ण ग्वालों के मित्र हैं, वे भी गाय चराते हैं, अतः चरवाहों के गीतों का नायक भी कृष्ण है, किन्तु इस गाथा में कृष्ण की छवि भिन्न है। यह गाथा कालिंजर युद्ध पर आधारित है, जिसमें गुमान बैल तथा नाचनी गाय को छोड़कर बाकी सभी पत्थर के हो गये थे, इन दोनों ने पूरा हाल गौरा को सुनाया और गौरा ने कन्हैया की पत्नी को। गौरा ने उससे अपने पति, अन्य चरवाहे, गायों तथा पशुधन को जीवित करने के लिये कहा, देवी के वरदान से ग्वालिन ने अपनी छिगुरी चीरकर पत्थरों पर छिड़क दी, जिससे वे सब जीवित होकर सुख-पूर्वक रहने लगे।

दरअसल यह गाथा घाटी के राजा तथा चरवाहों के बीच हुए संघर्ष में हुई अहीरों की मौतों और उनकी विधवाओं की वेदना की गाथा है। गाथा के बीच अनेक प्रसंग जुड़ते चलते हैं जैसे ग्वालिन का अपने पति के वियोग में प्रलाप और उसे पाने के लिये प्रयास, गुमान और नाचनी गाय की पूजा करना इत्यादि। इन सब घटनाक्रमों को वर्णित करती हुई गाथा आगे बढ़ती है और अंत में युद्ध में मारे गये लोग जीवित हो उठते हैं। युद्ध में मारे गये लोगों की विधवाओं की वेदना तथा कारुणिक संवेदना की धारा के किनारे उगी चरागाही लोक संस्कृति से जुड़ी उक्तियां इस गाथा की प्राण हैं—

जैतिन पात पतारे
उतनी अहिर के गाय।
अगहर पावै पानी
पछहर कांदौ खाय।।

(अर्थात् जितनी घास-पात है उतनी ही अहिर की गायें होती हैं, आगे की गायें तो पानी पा लेती हैं) यह लोकगाथा, विशेष रूप से स्त्रियों की वेदना को व्यक्त करती है, जिसमें कुछ दैवीय चमत्कारों को अवश्य जोड़ा गया है, किन्तु इनसे गाथा के अन्तर में प्रवाहित स्त्रियों की पीड़ा को और बल मिलता है, यह गाथा इन अर्थों में अन्य गाथाओं से भिन्न भर नहीं विशिष्ट है, क्योंकि यह दैवीय चमत्कारों या भक्ति पर आधारित नहीं, बल्कि साक्षात् स्त्री काया की कथा है।

परसा लोक गाथा

परसा कथा धर्मा सांवरी का ही एक हिस्सा है, जिसे संकलन कर्त्ताओं तथा कलाकारों ने अलग नाम दे दिया है। इस गाथा का आरम्भ देवी के सुमिरन से होता है। 'रिछारिया माल' देवी से बंगाल जाने की आज्ञा मांगता है, परन्तु देवी उसे वहां रहने वाली हेमा धोबिन और जादुगरनी के कारण वहां जाने से रोकती हैं, इसी तरह उसकी माता भी उसे बंगाल जाने की अनुमति नहीं देती, तब वह 'नकला दानों' को पहरे पर बैठाकर बंगाल चला जाता है, वहां धोबिन उसे जादू से बांध देती है और दिन में सुआ तथा रात में मनुष्य बनाकर रखती है सात माह उससे काम करवाकर उसे छोड़ देती है। आगे जाकर उसका सामना हेमा जादुगरनी से होता है, जहां गाड़ीवानों से उसका झगड़ा होता है, वह इन बावन गाड़ीवानों को पराजित कर देता है और अकेले बावन गाड़ियां खींचकर ले आता है। हेमा जादुगरनी उसकी वीरता देख प्रसन्न हो जाती है और उसे 'पड़ा' बना देती है और राजकुमारी धर्मा को इसकी सूचना देती है। धर्मा राजा नेमू की सुपुत्री थी, जिस पर मुगल शासक सुल्तान की कुदृष्टि है, वह उसे उठा ले जाना चाहता है, जिसके लिये वह आक्रमण करता है और महल में पहुंच जाता है। धर्मा को मुस्लिम बनना स्वीकार करना पड़ता है, किन्तु वह छह माह का समय मांगती है, उसका डोला उठाया जाता है। रास्ते में वह अपनी ननद से मिलती है अपनी पूरी बात सुनाती है, परसा यह सब सुनता है और वहां परसा देवी की मदद से 'सांग' लेकर सुल्तान पर आक्रमण कर देता है। देवी की कृपा से वह जीत जाता है। धर्मा का डोला फिर निमनापुर पहुंच जाता है।

कथा के तीसरे हिस्से में अकबर के निमनापुर पर आक्रमण का वर्णन है, जहां परसा पुनः युद्ध वीर की भूमिका निभाता है। यहां उसके पास शेषनाग से मिले मुरली और महूना दो वरदान थे, जिनके साथ है, वह निमनापुर पहुंचता है। वहां उसे धर्मा संवारी तथा रिछारिया माल भी मिल जाते हैं, गाथा के अगले प्रवाह में बहुत से घटनाक्रम जुड़ते जाते हैं तथा अंतर में सागरताल की सुन्दरी गोपीचंदा से अपनी वीरता के प्रदर्शन के बाद परसा विवाह करने में सफल होता है। इस पूरी कथा में अनेक स्त्री चरित्र हैं और सभी के पास जादुई ताकत है। संभवतः गाथाकार यहां उस सामाजिक धारणा को व्यक्त करना चाह रहा है, जिसमें यह माना जाता है कि स्त्रियों के पास सम्मोहनी शक्ति होती है जिसके वश में पुरुष आ जाते हैं। गाथा में हर एक स्त्री के पास जादू की ताकत है जिसके बल पर वे जैसा चाहती है वैसा पुरुषों को बना देती है।

इस गाथा में स्त्रियों के बलात् अपहरण, युद्ध में स्त्रियों पर कब्जा तथा वीरता के प्रदर्शन द्वारा ही विवाह संभव होना आदि मान्यताओं के, प्रचलनों को पुष्ट किया गया है। गाथाओं को प्रभावी या वर्णनात्मक बनाने के लिये ही जादू, चमत्कार, दैवीय शक्ति का सहारा नहीं लिया है यानी ये सिर्फ कवि की कल्पना नहीं है, बल्कि ये तमाम बातें उस सामंतीय समाज में रची बसी थीं। यही कारण है कि हर गाथा में ये तत्व किसी न किसी रूप में अवश्य वर्णित हुए हैं।

अन्ततः उपर्युक्त चारों गाथायें चारागाही संस्कृति की उपज है। ये इनका सर्वाधिक सकारात्मक जनवादी पक्ष है, जिन्हें लोगों ने सुजा है, जो राज दरबार में नहीं रची गई, न ही किसी विशिष्ट कवि द्वारा रची गई और संभवतः रची भी नहीं जा सकती थी और नही किसी विशिष्ट राजा के मनोरंजनार्थ रची गई। यही लोक है चरवाहे जो जन-मानस के प्रतिनिधि हैं। उनकी वीरता/निर्भीकता को सामंत और राजा पचा नहीं पाते। उनके आत्मनिर्णय की योग्यता को यह वर्ग बर्दाश्त नहीं कर पाता। अतः निरंतर उनके मार्ग में बाधाएँ उपस्थित की जाती हैं या उनके घर की स्त्रियों को आघात पहुंचा इनकी एकजुटता तथा साहस को तोड़ने का प्रयास किया जाता है, तब गाथाकार दैवीय चमत्कारों का आश्रय लेता है, क्योंकि इसके अलावा कोई विकल्प बचता भी नहीं। देवी भक्ति से मिली मनोवैज्ञानिक ताकत से ये वर्ग पुनः संघर्ष करता है और विजयी होता है, इन गाथाओं का मूल सारतत्व यही है।

कारसदेव की गाथा में राजू गूजर राजा से आक्रान्त होकर अपना घर छोड़ देता है। 'एलादी' अपने आत्मबल और ताकत से अपने आप को बचाती है। धर्मा सांवरी गाथा पति-पत्नी के रिश्ते में निहित असमानता की कथा है, जो प्रश्न आधुनिक विमर्श में चर्चा में आये हैं। लोक उन प्रश्नों से पहले से जूझ रहा था तथा उन्हें प्रश्नांकित भी कर रहा था। गहनई एकदम ठोस धरातल पर बनी गाथा है, जिसमें स्त्रियों के अकेलेपन, समाज का उनके प्रति नकारात्मक रवैया एकल महिला की पीड़ाओं की करुण अभिव्यक्ति हुई है। इन गाथाओं की स्त्री छवियां कहीं भी पराजित या निराश नहीं दिखाई देती, बल्कि आश्चर्यजनक रूप से सामंतीय समाज की सीमाओं को तोड़ती हुई अपने अस्तित्व को स्थापित करने में सफल होती है। ये गाथायें किसी सोच, विमर्श या सैद्धांतिकी की सोची-समझी, पूर्व नियोजित योजना का हिस्सा नहीं, बल्कि 'लोक' में रहने वाली कर्मठ, कढ़ावर, प्रतिकूलताओं से जूझती चलती-फिरती स्त्री काया की छवियां हैं, यानी वो वैसी ही हैं इन गाथाओं ने उन्हें सराहा है। इन गाथाओं के अतिरिक्त बुंदेलखंड में अनेक पौराणिक ऐतिहासिक गाथायें भी प्रचलित हैं। पौराणिक गाथाओं के अन्तर्गत डॉ. नर्मदा प्रसाद गुप्त ने समुद्र मंथन एवं महिषासुर की गाथाओं को सम्मिलित किया है। ऐतिहासिक गाथाओं के अन्तर्गत 'जगदेव का पुंआरा' इसके दो पाठ हैं, अकबर की गाथा तथा 'तुमरे गढ़ मुगलन घेरियों हो मां' को सम्मिलित किया है।

समुद्र मंथन गाथा में देवी जालपा स्नान हेतु समुद्र में जाती हैं। समुद्र उनके कपड़े बहा ले जाता है, तब जालपा देवी कुम्हार से मटकी, बड़ई से मथानी और पटवा से रस्सी लाकर समुद्र मंथन करती है। दो बार के मंथन में ही समुद्र आधा रह जाता है। समुद्र देवी के सम्मुख नतमस्तक हो जाता है और देवी के मंदिर की परिक्रमा करता है, इस तरह इस गाथा के माध्यम से देवी की शक्ति की उपासना की गई है। एक और गाथा है, जिसमें देवता देवी को आमंत्रित

करते हैं और देवी सिंह की सवारी पर वहां पहुंचती है। देवता उनसे महिषासुर दानव को मारने की प्रार्थना करते हैं, दानव जैसे ही आक्रमण करता है, देवता वहां से भाग जाते हैं। देवी त्रिशूल से दानव का वध करना चाहती है, किन्तु जितनी खून की बूंदें गिरती हैं, उतने ही दानव पैदा हो जाते हैं। तब देवी अपनी देह के मैल से पुतरियां बनाती हैं, जो लहू की बूंदें धरती पर नहीं गिरने देती और देवी दानव का वध करने में सफल हो जाती है।

यह गाथा वस्तुतः उन आक्रान्ताओं की ओर संकेत करती है, जिन्होंने पूरे राज्य पर कब्जा कर लिया था और उसके समर्थकों एवं चाटुकारों की संख्या निरंतर बढ़ती ही जाती थी, जिसका सामना शक्ति की प्रतीक और स्वामिनी स्त्रियां ही कर सकती थीं, क्योंकि वे न पौरुष के अहं में डूबी थीं, न साम्राज्य विस्तार की कोई विकृत चाहत उनके अंदर थी।

जीते राजा जगात जालपा के वरदान।

लाज बचा लई बुंदेलन की, देकें बलिदान।

राजा जगत रन को चढ़े हो ओ.....।

ऐतिहासिक गाथाओं में 'अकबर' प्रमुख पात्र की तरह आये हैं। इन गाथाओं में युद्ध, साम्राज्य विस्तार, कब्जा तो वर्णित हुए हैं, इनके अतिरिक्त लगभग सभी गाथाओं में युद्ध में विजित राज्य से उसकी कन्या पर बल-पूर्वक कब्जे, जबरदस्ती विवाह करने का दबाव आदि घटनाओं का वर्णन मिलता है और पराजित राजा अपनी बेटी का जबरदस्ती विवाह कर संघर्ष करता है, भले ही अपने सम्मान की रक्षा में वह बलिदान हो जाता है। 'अकबर की गाथा' कर की वसूली से आरम्भ होती है। 'देवी' का सेवक (लंगुरा) वसूली की गई राशि छीन लेता है। सैनिक दिल्ली जाकर अकबर को सूचित करते हैं।

अकबर देवी की सैन्य ताकत का पता लगाता है, वहां उसे एक लंगुरा और सिंह ही मिलते हैं, तब अकबर देवी के पास जाता है, जहां उनके मध्य विवाद होता है। अकबर देवी के पूजन स्थल के वृक्ष कटवा देता है, मढ़िया नष्ट कर देता है तथा उस भूमि पर धान की खेती की आज्ञा देता है। देवी ज्वालामुखी को आज्ञा देती है फलतः मुगलों के तम्बू से बने सभी ठिकाने जल जाते हैं, उनके परिवार भी खत्म हो जाते हैं, अकबर पर्वत पर चढ़ जाता है, वहां भी दावाग्नि लग जाती है, समुद्र में कूदता है तो वहां बड़वाग्नि लग जाती है। अतंतः अकबर देवी की शक्ति के सम्मुख झुक जाता है और मढ़िया की परिक्रमा करता है।

यह गाथा राजाओं द्वारा किये जा रहे प्रजा के शोषण को व्यक्त करती है, किन्तु उससे निपटने के लिये कथाकार देवीय ताकत को आश्रय बताता है, यही से गाथा की शक्ति कमजोर पड़ जाती है, यह गाथा शासन की नीतियों को तो बखानती है, किन्तु इसका मूल उद्देश्य देवी की आराधना है, उसकी शक्ति के प्रति समर्पण का भाव ही है-

पत रखो री मड़िया,

परों तोरे पांव, पत राखौ।

अरे कौना ने चढ़ाई पान सुपारी

सौ कौना ने चढ़ाई कपूर बाती

अरे राजा ने चढ़ाई पान सुपारी

सो रानियों ने चढ़ाई कपूर बाती

पत रखो री मड़िया,

परों तोरे पांव, पत राखौ।

तुमरे गढ़ मुगलन घेरियों हो मां

यह गाथा भी अकबर गाथा के सदृश ही है। इसमें अकबर मढ़िया की जगह भांग बुआना चाहता है। देवी क्रोधित होकर चौसठ योगनियों को आज्ञा देती है और वे मुगलों के पूरे तम्बू जला देती हैं और मुगल अल्ला-अल्ला कर भाग जाते हैं।

ये गाथायें मुगल आक्रान्ताओं के प्रतिरोध में रची गई हैं। अकबर यद्यपि हिन्दुओं के प्रति उदार था, परन्तु इन गाथाओं में उसकी चर्चा मुगल प्रतिनिधि के रूप में हुई है। यहां अकबर समस्त मुगल आक्रान्ताओं का प्रतीक है। गाथा प्रतिरोध का, गुस्से का, विरोध का एक रचनात्मक रूप है। पौराणिक गाथाओं के अन्तर्गत पार्वती को जन्म और तप, कर्ण की गाथा, राजा हरिश्चन्द्र की गाथा, राजा नल की गाथा तथा श्रवण कुमार की गाथा आदि बुंदेलखंड में बहुप्रचलित हैं। दरअसल ये चरित्र लोकजीवन का अभिन्न हिस्सा बन गये हैं। बात-बात में चरित्रों के उदाहरण दिये जाते हैं। ये गाथायें वर्णन प्रधान हैं, इनकी गेयता इन्हें रोचक बनाये रखती हैं।

माता-पिता मिले न मोल।

बिटिया जाय, तिरिया मिल जाय।

चार दिना कौ जौ सिन्सारा।

अबके लरका ऐसे भये,

लैके लुगइयां विलग भये।

इन गाथाओं में तत्कालीन उस समय की लोक संस्कृति तथा राजनीतिक वातावरण के चित्र देखे जा सकते हैं। जन मानस में चेतना का, आक्रान्ताओं के विरुद्ध एकजुट होने की अलख जगाने का महत् कार्य इन गाथाओं ने किया है।

संदर्भ ग्रंथ

1. डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय लोक संस्कृति की रूप रेखा (द इंग्लिश बैलेड) पृष्ठ सं. 81
2. डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय लोक संस्कृति की रूप रेखा (द इंग्लिश बैलेड) पृष्ठ सं. 81
3. दैनिक भास्कर, 14 मई 2011
4. लोक साहित्य परम्परा और इतिहास, पृष्ठ सं. 129
5. समस्त गाथायें-बुंदेली संस्कृति और साहित्य डॉ. नर्मदा प्रसाद गुप्त।

ई-पुस्तकालय और ई-पुस्तकों और ऑडियो-पुस्तकों की बढ़ती लोकप्रियता: एक अवलोकन

डॉ० अंजनी सराफ

सहायक प्राध्यापक, पुस्तकालय एवं सूचना विज्ञान-विभाग, डॉ०सी०वी० रमन विश्वविद्यालय, बिलासपुर, छ.ग.

सारांश

ई-पुस्तकालय (E-Library) एक डिजिटल लाइब्रेरी है, जो कागजी किताबों की जगह डिजिटल रूप में जानकारी प्रदान करती है। इसमें कंप्यूटर, मोबाइल या अन्य उपकरणों का उपयोग करके डिजिटल पुस्तकों, पत्रिकाओं, लेखों और अन्य शैक्षणिक सामग्रियों को पढ़ा जा सकता है।

पुस्तकालयों में ई-पुस्तकों और ऑडियो-पुस्तकों का उपयोग बढ़ रहा है। ई-पुस्तकें डिजिटल प्रारूप में उपलब्ध होती हैं, जिन्हें कंप्यूटर, टैबलेट या स्मार्टफोन जैसे उपकरणों पर पढ़ा जा सकता है, जबकि ऑडियो-पुस्तकें सुनने के लिए होती हैं। पुस्तकालय इन डिजिटल संसाधनों को अपने उपयोगकर्ताओं को प्रदान करते हैं, जिससे वे अपनी सुविधानुसार कहीं भी और कभी भी पढ़ या सुन सकते हैं।

पुस्तकालयों में ई-पुस्तकों और ऑडियो-पुस्तकों की बढ़ती लोकप्रियता एक महत्वपूर्ण शोध का विषय है। डिजिटल सामग्री की उपलब्धता और उपयोग, पारंपरिक मुद्रित पुस्तकों की तुलना में, पुस्तकालयों और पाठकों दोनों के लिए कई अवसर और चुनौतियां पेश करती है।

राष्ट्रीय ई-पुस्तकालय शिक्षा मंत्रालय के अंतर्गत स्कूल शिक्षा और साक्षरता विभाग द्वारा शुरू की गई एक अभिनव परियोजना है। यह एक निःशुल्क डिजिटल लाइब्रेरी के रूप में कार्य करता है और भारत के युवा दिमागों के लिए विशेष रूप से तैयार किए गए ज्ञान और कहानियों के राष्ट्रीय भंडार के रूप में कार्य करता है।

इस डिजिटल प्लेटफॉर्म का उद्देश्य पढ़ने की संस्कृति को विकसित करना और युवाओं में अपनी विरासत और उपलब्धियों के बारे में गर्व और जिज्ञासा की भावना को बढ़ावा देना है। इसका उद्देश्य आने वाली पीढ़ियों के लिए ज्ञान का एक केंद्रीय स्रोत बनना भी है।

मूल शब्द: ई-पुस्तकालय, ई-पुस्तक, ऑडियो-पुस्तक, प्रकाशन उद्योग, कम्प्यूटर, मोबाइल, इंटरनेट, विद्यार्थी-शोधार्थी

प्रस्तावना

ई-पुस्तकालय (ई-लाइब्रेरी) और ई-पुस्तकें/ऑडियो-पुस्तकें, डिजिटल रूप से उपलब्ध अध्ययन सामग्री हैं जो पारंपरिक पुस्तकालयों और पुस्तकों का एक आधुनिक विकल्प प्रदान करती हैं। ई-पुस्तकालय, डिजिटल पुस्तकालय होते हैं जहां अध्ययन सामग्री को ऑनलाइन एक्सेस किया जा सकता है, जबकि ई-पुस्तकें और ऑडियो-पुस्तकें, डिजिटल प्रारूप में प्रकाशित पुस्तकें और श्रव्य पुस्तकें हैं।

ई-पुस्तकालय का शाब्दिक अर्थ होता है कि पाठ्य सामग्री या पुस्तकें डिजिटल रूप में होती हैं अर्थात् ई-पुस्तकें कागज के बजाय डिजिटल संचिका के रूप में प्राप्त की जाती हैं। जिन्हें हम आज के वर्तमान समय में कम्प्यूटर एवं मोबाइल या अन्य यंत्रों की सहायता लेकर पढ़ा जा सकता है। इसके अलावा इन्हें इंटरनेट पर भी पढ़ा जा सकता है। ये पुस्तकें विभिन्न प्रकार के फाईल फॉर्मेट में होती हैं। जो PDF, XPS आदि को सम्मिलित किया गया है। इनमें से PDF Format अधिक प्रचलित है। बहुत ही जल्द पाम्परिक पुस्तकें और पुस्तकालयों के स्थान पर सुप्रसिद्ध उपन्यासों और पुस्तकों के नये रूपों में जैसे ऑडियो पुस्तकें, मोबाइल, टेलीफोन पुस्तकें, ई-पुस्तकें इत्यादि उपलब्ध होगी।

आज के वर्तमान समय में ई-पुस्तकालय आम हो चुका है। प्रत्येक व्यक्ति ई-पुस्तकालय की सेवाएं प्राप्त करना चाहता है।

ई-पुस्तकालय में इलेक्ट्रॉनिक संसाधन विभिन्न प्रकार के उपलब्ध होते हैं। जिनका उपयोग पाठक अपनी आवश्यकतानुसार कर सकते हैं, इनके प्रकार निम्न हैं:--

- ई-बुक E-Book
- ई-जर्नल
- ई-शोध प्रबंध
- ई-अखबार
- ई-मैगजीन्स
- ई-डिजिटल ईमेज

- ई-डिक्शनरी
- ई-ग्लोसरी
- ई-पुस्तकें डिजिटल प्रारूप में होती हैं, जिन्हें पीडीएफ, ईपीयूबी, या अन्य स्वरूपों में डाउनलोड या ऑनलाइन पढ़ा जा सकता है।
- पुस्तकालय ई-पुस्तकें खरीदते हैं और उन्हें अपने उपयोगकर्ताओं को ऑनलाइन उपलब्ध कराते हैं।
- ई-पुस्तकों को पढ़ने के लिए ई-रीडर, कंप्यूटर, टैबलेट या स्मार्टफोन जैसे उपकरणों की आवश्यकता होती है।
- ई-पुस्तकों में खोज, बुकमार्क, और एनोटेशन जैसे अतिरिक्त लाभ होते हैं।

ऑडियो-पुस्तक (audiobooks)

- ऑडियो-पुस्तकें पुस्तकों का श्रवण प्रारूप हैं, जिन्हें सुना जा सकता है।
- पुस्तकालय विभिन्न प्लेटफार्मों के माध्यम से ऑडियो-पुस्तकें प्रदान करते हैं, जैसे कि ओवरड्राइव या लिबी।
- ऑडियो-पुस्तकें सुनने के लिए हेडफोन या स्पीकर वाले किसी भी उपकरण का उपयोग किया जा सकता है।
- ऑडियो-पुस्तकें उन लोगों के लिए उपयोगी हैं जो पढ़ना नहीं चाहते हैं या जो चलते-फिरते सुनना पसंद करते हैं।

पुस्तकालयों में ई-पुस्तकों और ऑडियो-पुस्तकों का महत्व

- ई-पुस्तकें और ऑडियो-पुस्तकें पुस्तकालयों में पारंपरिक पुस्तकों का एक पूरक विकल्प प्रदान करती हैं।
- ये डिजिटल संसाधन पुस्तकालयों को अधिक पाठकों और श्रोताओं तक पहुंचने में मदद करते हैं।
- ई-पुस्तकें और ऑडियो-पुस्तकें उन लोगों के लिए विशेष रूप से उपयोगी हैं जो पढ़ने या सुनने के लिए पारंपरिक पुस्तकों तक पहुंचने में असमर्थ हैं।
- पुस्तकालयों में ई-पुस्तकों और ऑडियो-पुस्तकों का उपयोग पढ़ने और सीखने के नए तरीकों को बढ़ावा देता है।

ई-पुस्तकों और ऑडियो-पुस्तकों की लोकप्रियता तेजी से बढ़ रही है, खासकर युवा पीढ़ी में। ई-पुस्तकें और ऑडियो-पुस्तकें पारंपरिक मुद्रित पुस्तकों के साथ-साथ, पाठकों और श्रोताओं के लिए एक सुविधाजनक और आकर्षक विकल्प प्रदान करती हैं।

ई-पुस्तकें और ऑडियो-पुस्तकें प्रकाशन उद्योग में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं, और उनकी लोकप्रियता लगातार बढ़ रही है। जबकि मुद्रित पुस्तकों का अपना स्थान है, ई-पुस्तकें तथा ऑडियो-पुस्तकें पाठकों और श्रोताओं के लिए एक सुविधाजनक, किफायती, और सुलभ विकल्प प्रदान करती हैं।

ई-पुस्तकों और ऑडियो-पुस्तकों का पुस्तकालयों में प्रभाव

- बढ़ती पहुंच: ई-पुस्तकें और ऑडियो-पुस्तकें, भौगोलिक सीमाओं को पार करते हुए, दूरस्थ स्थानों और सीमित गतिशीलता वाले लोगों के लिए भी ज्ञान का प्रसार करती हैं, जिससे पुस्तकालयों की पहुंच व्यापक होती है।
- विभिन्न प्रकार के पाठकों को आकर्षित करना: ई-पुस्तकें और ऑडियो-पुस्तकें की उपलब्धता विभिन्न प्रकार के पाठकों को आकर्षित करती है, जिनमें वे लोग भी शामिल हैं जो पारंपरिक मुद्रित पुस्तकों को पढ़ने में सहज नहीं हैं, जैसे कि दृश्य बाधित या पढ़ने में कठिनाई वाले लोग।
- पुस्तकालयों के लिए लागत-प्रभावशीलता: ई-पुस्तकें और ऑडियो-पुस्तकें को संग्रहीत करने और प्रबंधित करने की लागत पारंपरिक मुद्रित पुस्तकों की तुलना में कम हो सकती है, जिससे पुस्तकालयों को अधिक संसाधन उपलब्ध हो सकते हैं।
- डिजिटल पुस्तकालयों का विकास: ई-पुस्तकें और ऑडियो-पुस्तकों की बढ़ती लोकप्रियता के साथ, डिजिटल पुस्तकालयों का विकास हो रहा है, जो भौतिक पुस्तकालयों के पूरक या विकल्प के रूप में काम कर सकते हैं।

ई-लाइब्रेरी का सामयिक महत्व

किताबों के शौकीन लोगों के लिए ऑनलाइन यानी ई-लाइब्रेरी किसी तोहफे से कम नहीं है। आज के युग में डिजिटल मोड से जुड़े लर्निंग के सभी साधनों का उपयोग हमें स्पर्धा में आगे रखेगा। 5जी की शुरुआत होने वाली है। ई-लाइब्रेरी के फैलाव से हम सबके लिए ई-लर्निंग में एक नई क्रांति की शुरुआत होगी।

सीखने, सिखाने का जमाना डिजिटल होता जा रहा है। इसके साथ ही देश में ई-लाइब्रेरी का चलन बड़ी तेजी से फैल रहा है। हाल ही में डिजिटल इंडिया पहल का समर्थन करने की प्रतिबद्धता और देश भर में ई-कंटेंट की पहुंच बढ़ाने के लिए एक प्राइवेट डिजिटल लाइब्रेरी लॉन्च की गई है। यह डिजिटल लाइब्रेरी देश की नई शिक्षा नीति के उद्देश्यों के भी अनुरूप है। एक बड़ी पब्लिशिंग कंपनी द्वारा स्थापित की गई डिजिटल लाइब्रेरी का उद्देश्य देश के विभिन्न शिक्षण संस्थानों, शिक्षकों और शिक्षार्थियों को एक व्यापक डिजिटल शिक्षण समाधान उपलब्ध कराना है। यह लाइब्रेरी कई विषयों में ई-पुस्तक संग्रह और डिजिटल सामग्री की एक विस्तृत श्रृंखला प्रदान करेगी। इस लाइब्रेरी में 4000 से अधिक ई-बुक टाइटल का संकलन किया गया है। गुणवत्तापूर्ण संसाधनों की बढ़ती मांग को पूरा करने और भारत को वैश्विक अध्ययन गंतव्य बनाने में यह मदद करेगा।

डिजिटल लाइब्रेरी का उद्देश्य बिल्ट-इन एनालिटिक्स का उपयोग करके सटीक गुणवत्ता वाली सामग्री की पेशकश करना है। यह शिक्षण संस्थानों के लिए आसान शिक्षण प्रबंधन प्रणाली (एलएमएस) एकीकरण छात्रों और शिक्षकों के लिए एकल-साइन-ऑन पहुंच का लाभ देगा, जिसका अर्थ है कि वे एक अलग लॉगिन की आवश्यकता के बजाय कॉलेज प्रणाली में एकल क्रेडेंशियल के साथ उत्पादों तक पहुंच सकते हैं। क्लाउड और आईपी पर सब्सक्रिप्शन मॉडल

के आधार पर, यह संस्थानों को डिजिटल में जाने और भौतिक बुनियादी ढांचे पर महत्वपूर्ण बचत करके लागत दक्षता बढ़ाने में मदद करेगा। नई शिक्षा नीति को ध्यान में रखकर तैयार की गई यह डिजिटल लाइब्रेरी छात्रों के लिए वन-स्टॉप, डिजिटल हैंडी रिपोजिटरी के रूप में भी कार्य करेगी, जिससे उन्हें किसी भी समय, कहीं भी परेशानी मुक्त अध्ययन सामग्री के साथ चलते-फिरते सीखने की स्वतंत्रता मिलेगी। कोरोना महामारी के दौरान घर पर बैठकर की जा रही पढ़ाई में नेशनल डिजिटल लाइब्रेरी ऑफ इंडिया छात्रों की पहली पसंद बनकर उभरी है। देश में कोरोना की पहली लहर आने के बाद भारत सरकार के शिक्षा मंत्रालय की ओर से इसे तैयार किया गया था।

वहीं इसे इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी खड़गपुर के द्वारा चलाया जा रहा है। खास बात है कि पिछले साल तैयार हुई इस लाइब्रेरी में अभी तक 60 लाख से ज्यादा छात्र रजिस्ट्रेशन करा चुके हैं। इस लाइब्रेरी से रोजाना तकरीबन दो लाख डॉक्यूमेंट पढ़ाई के लिए इस्तेमाल किए जा रहे हैं। यह संख्या लगातार बढ़ रही है। इसके साथ ही इस लाइब्रेरी के प्लेटफॉर्म को इस्तेमाल करने के लिए रजिस्ट्रेशन अनिवार्य है। ऐसे में अभी तक 60 लाख के लगभग बच्चे यहां रजिस्टर्ड हैं, जबकि करीब 32 लाख छात्र इस लाइब्रेरी पर सक्रिय हैं। इसमें 7.3 करोड़ पढ़ाई से संबंधित दस्तावेज या किताबों का ज्ञान उपलब्ध है, जिसमें से 60-70 फीसदी मैटीरियल पूरी तरह फ्री है। हालांकि इस लाइब्रेरी से संबंधित किसी भी किताब या डॉक्यूमेंट के इस्तेमाल पर कोई शुल्क नहीं है, लेकिन बाकी बचा हुआ करीब 30 फीसदी मैटीरियल सब्सक्रिप्शन पर मिलता है। ऐसे में करीब छह करोड़ के आसपास किताबें यहां से बच्चे किसी भी वक्त इस्तेमाल कर सकते हैं। इस लाइब्रेरी में प्राइमरी से लेकर पोस्ट ग्रेजुएशन तक की किताबें उपलब्ध हैं। इसके साथ ही यहां छात्रों से लेकर टीचर्स, रिसर्चर्स, लाइब्रेरियन और अन्य प्रोफेशनल के लिए भी किताबें मौजूद हैं। यहां मिलने वाला कंटेंट या मैटीरियल ऑडियो, वीडियो, डॉक्यूमेंट और किताबों के अलावा थ्रीसिस के रूप में है। डिजिटल युग में पढ़ना तेजी से स्क्रीन-आधारित हो गया है। ई-लाइब्रेरी से मतलब उस डिजिटल लाइब्रेरी या डिजिटल पुस्तकालय से है, जहां पर हमें फिजिकल रूप से जाना नहीं पड़ता तथा 365 दिन हम 24 घंटे इस लाइब्रेरी का उपयोग कर सकते हैं तथा अपने अनुसार अध्ययन सामग्री प्राप्त कर सकते हैं।

ई-लाइब्रेरी का अर्थ एक ऐसी लाइब्रेरी से है जहां पर डिजिटल रूप से सूचना और अध्ययन सामग्री एक्सेस की जाती है। इस लाइब्रेरी में इंटरनेट कनेक्शन के द्वारा कंप्यूटर या फिर एंड्राइड मोबाइल के द्वारा हम कहीं पर भी देश के किसी भी कोने में बैठकर किसी भी समय अपने अनुसार सूचना तथा अध्ययन सामग्री प्राप्त कर सकते हैं। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों या स्रोतों जैसे कम्प्यूटर, मोबाइल, टीवी, रेडियो आदि के माध्यम से कई प्रकार की सूचनाएं तथा विभिन्न क्षेत्रों का ज्ञान प्राप्त करना ई-लाइब्रेरी का भाग है। ई-लाइब्रेरी में सभी स्तर के अनुसार अधिगम सामग्री उपलब्ध कराई जाती है। इसमें आप प्राथमिक स्तर से लेकर उच्च स्तर तक तथा अनुसंधानकर्ताओं के लिए भी हर प्रकार की सामग्री उपलब्ध रहती है। ई-लाइब्रेरी अनुसंधान कार्य को अत्यंत सरल बना देती है क्योंकि इसके द्वारा समस्त प्रकार की अधिगम और अनुसंधान संबंधित सूचनाएं तथा लिखा हुआ लेख अधिगमकर्ताओं तक बहुत ही आसानी से पहुंच जाता है। ई-लाइब्रेरी द्वारा अधिगम या ज्ञान प्राप्त करने के लिए कुछ माध्यमों की आवश्यकता होती है, जैसे कंप्यूटर, मोबाइल फोन, बहु माध्यम नेटवर्किंग आदि। इन सभी की सहायता से ई-लाइब्रेरी बहुत ही सरल और आसान बन गई है। ई-लाइब्रेरी ऑनलाइन लाइब्रेरी का ही एक प्रारूप है। यह उन लोगों के लिए अत्यंत उपयोगी है जिनके पास समय की कमी है। इन लोगों के पास यह सुविधा होती है कि वे ऑनलाइन किताबें पढ़ सकें। इसमें उन्हें पन्ने पलटने की भी जरूरत नहीं होती। सरकारों को ई-लाइब्रेरी की सुविधा विकसित करने के लिए काम करना चाहिए और फंडिंग के लिए आगे आना चाहिए। स्कूल, कॉलेज, विश्वविद्यालयों में छात्रों के लिए यह वरदान है। ई-लाइब्रेरी से आपको बाजार में आई नई किताबों के बारे में जानकारी मिल जाती है। आपके मनपसंद लेखक की कौन सी नई किताब आई, इसके बारे में आपको पता लग जाता है। इन ऑनलाइन लाइब्रेरियों में आप विज्ञान, अर्थशास्त्र, राजनीति शास्त्र की किताबों से लेकर हिंदी उपन्यास भी पढ़ पाएंगे।

कई ऐसी ऑनलाइन लाइब्रेरी हैं जिनमें आप किताबों की समीक्षा लिख सकते हैं। इससे आपको कौन सी किताब खरीदनी है, इसके बारे में अंदाज लग जाता है। अभी कुछ दिनों पहले ही सोशल नेटवर्किंग साइट पर एक ऑनलाइन बुक क्लब की शुरुआत की गई है। 'वीरीड' नाम का यह एप्लीकेशन कई सोशल नेटवर्किंग साइट पर मौजूद होगा। इसके माध्यम से आप अपने दोस्तों से किताबों से जुड़ी इनफॉर्मेशन शेयर कर सकते हैं। इसमें आपको इस बात का फायदा है कि आप अपना कैटलॉग बना सकें। वहीं समान विचारधारा वाले लोगों से किताबों के बारे में बात करने से आपका ज्ञान भी बढ़ता है। इसके माध्यम से रिसर्च से जुड़े लोगों को घर बैठे ही विशेष सामग्री उपलब्ध हो जाती है। इसके लिए उन्हें लाइब्रेरी और विभिन्न जगहों के चक्कर नहीं लगाने पड़ते। साथ ही किसी विषय विशेष के बारे में विस्तृत जानकारी मिल जाती है। कई ऑनलाइन लाइब्रेरी आपको किसी विषय के बारे में जानकारी एकत्रित करने के लिए साइटों के रेफरेंस देती हैं। साथ ही इन पर विषय और टॉपिक के अनुसार उस विषय के लेखकों की किताबों के नाम दिए जाते हैं जिससे आपको विभिन्न लोगों से इस बात की पूछताछ नहीं करनी पड़ती कि अमुक विषय के लिए कौनसी किताब पढ़ी जाए। किताबों के शौकीन लोगों के लिए ऑनलाइन यानी ई-लाइब्रेरी किसी तोहफे से कम नहीं है। आज के युग में डिजिटल मोड से जुड़े लर्निंग के सभी साधनों का उपयोग हमें स्पर्धा में आगे रखेगा। 5जी की शुरुआत होने वाली है। ई-लाइब्रेरी के फैलाव से हम सबके लिए ई-लर्निंग में एक नई क्रांति की शुरुआत होगी। हम ज्यादा ज्ञान से पॉवरफुल होंगे। यह राष्ट्र हित के लिए महत्वपूर्ण है।

वेबसाइट statista.com के अनुसार, भारत में ई-बुक्स का बाजार तेजी से बढ़ रहा है, क्योंकि सरकार की डिजिटल साक्षरता नीति और किफायती स्मार्टफोन की उपलब्धता बढ़ रही है। 2024 के अंत तक, भारत में ई-बुक्स बाजार का राजस्व रु. US\$236.40m तक पहुंचने का अनुमान है और 2028 तक ई-बुक्स बाजार के 138.7 मिलियन पाठकों तक पहुंचने की उम्मीद है।

अनुसंधान के क्षेत्र

- उपयोगकर्ता व्यवहार: यह अध्ययन करना महत्वपूर्ण है कि पाठक ई-पुस्तकों और ऑडियो-पुस्तकों का उपयोग कैसे करते हैं, उनकी प्राथमिकताएं क्या हैं, और वे पारंपरिक पुस्तकों से कैसे भिन्न हैं।

- डिजिटल साक्षरता: डिजिटल पुस्तकालयों और संसाधनों का प्रभावी ढंग से उपयोग करने के लिए पाठकों की डिजिटल साक्षरता में सुधार करना आवश्यक है।
- पुस्तकालयों की भूमिका: पुस्तकालयों को डिजिटल युग में अपनी भूमिका को फिर से परिभाषित करना होगा, जिसमें डिजिटल संसाधनों का प्रबंधन, डिजिटल साक्षरता का समर्थन और पाठकों को डिजिटल सामग्री का उपयोग करने में मदद करना शामिल है।
- कॉपीराइट और लाइसेंसिंग: ई-पुस्तकों और ऑडियो-पुस्तकों के उपयोग से जुड़े कॉपीराइट और लाइसेंसिंग मुद्दों को समझना महत्वपूर्ण है।

निष्कर्ष

ई-पुस्तकालय वास्तव में वर्तमान समय की आवश्यकता है साथ ही इससे अनेक लाभ हो रहे हैं जिसके परिणाम स्वरूप अधिकांश पाठकों इसे स्वीकार है किया है।

ई-पुस्तकालय वास्तव में वर्तमान समय की आवश्यकता है साथ ही इससे अनेक लाभ हो रहे हैं जिसके परिणाम स्वरूप अधिकांश पाठकों इसे स्वीकार है किया है।

कम्प्यूटर में एक क्लिक करने के साथ ही अपने मनपसंद कवि, साहित्यकार व उपन्यासकार द्वारा लिखित कृतियों को पढ़ सकेंगे और रोजगार व नौकरी के लिए भी सरकारी तथा गैरसरकारी सेक्टरों के रिक्त पदों के लिए ऑनलाइन आवेदन की सुविधा भी ई-लाइब्रेरी से मिल सकती है।

ई-पुस्तकों और ऑडियो-पुस्तकों की बढ़ती लोकप्रियता पुस्तकालयों के लिए एक महत्वपूर्ण विकास है। इन डिजिटल संसाधनों का प्रभावी ढंग से उपयोग करने के लिए, पुस्तकालयों को डिजिटल युग में अपनी भूमिका को फिर से परिभाषित करना होगा और पाठकों की बदलती जरूरतों को पूरा करना होगा।

संदर्भ

1. सी. लाल ग्रंथालय एवं आधुनिक प्रौद्योगिकी एस.एस. पब्लिकेशन, नई दिल्ली
2. पुस्तकें – विश्वभर में बाजार पूर्वानुमान Statista
3. ई-बुक्स बनाम मुद्रित पुस्तकें: अधूरी लड़ाई! – लीवरेज एंडु
4. ई-बुक बनाम मुद्रित पुस्तकें: 2023 के लिए आंकड़े, बिक्री, तथ्य और रुझान – स्कैन्स
5. Harvey, Ross; Weatherburn, Jaye (2018). *Preserving Digital Materials* (3rd ed.). Rowman & Littlefield. ISBN 9781538102985.
6. McCormack, Allison, and Rachel Wittmann. (2022) "Rarely Analyzed The Relationship Between Digital and Physical Rare Books Collections". *Information technology and libraries* 41.2; 1–13.
7. Pomerantz, Jeffrey, and Gary Marchionini. 2007. "The Digital Library as Place". *Journal of Documentation* 63(4): 505–33.
8. <https://www.nayaindia.com/hindi-news/national-digital-library-is-now-open-to-every-citizen.html>
9. <https://www.ala.com>
10. <https://epustakalay.com/>
11. The Five Laws of Library Science by S.R. Ranganathan
12. Metadata and Digital Library Development - Library of Congress, 2008
13. <https://hi.m.wikipedia.org>

‘તત્વમસિ’ એક નદી ની પરિક્રમા

વાઘેલા કિરણબેન જયંતિલાલ

પી.એચ.ડી. શોધછાત્રી પાટણ ઉત્તર ગુજરાત યુનિવર્સિટી માર્ગદર્શક ડૉ. સોહન દવે જી.ડી. મોદી કોલેજ - પાલનપુર

‘તત્વમસિ’એ નવલકથા એ નર્મદા નદીને કેંદ્રમાં રાખીને રચાઈ છે. તેના આજુબાજુના પરિવેશનું વર્ણન જોવા મળે છે. કથાની શરૂઆતમાં વનકન્યા ‘લે ખાઈ લે’ એ અવાજ સાવ નજીકથી સંભળાય છે. હું ગાઢ નિંદ્રામાંથી જાગતો હોઉં કે તંત્રમાં હોઉં એમ સ્વર અને શબ્દ ઓળખવા પ્રયત્ન કરવો પડે છે. નિર્જન વનો, ટેકરીઓ, આકાશને પેલે પારથી આવતાં હોય તેવા શબ્દો સ્ત્રીવરના છે. એટલું જાણી શક્યો.

કિનારે ઝુકેલી વનરાજી, રંગબેરંગી પાંચીકા જેવા ગોળ પથ્થરોથી છવાયેલો કિનારો અને અબોલ ટેકરીઓ, નિર્મળ જળ, આ બધાંની સાક્ષીએ, જેને આદિ નથી, અંત નથી તેવી કોઈ મહાકથાની જેમ આ શબ્દો ‘આપી દે’ અને ‘લ’ અનાદિ, અનંત બની આટલાંમાં જ ક્યાંક વહેતા હોય છે. મેં મકાઈ પરથી ધ્યાન ખસેડીને તે આપનાર તરફ નજર કરી કોણ હશે આ વનકન્યા? બોલવાનો પ્રયત્ન કરું છું, તો ગળૂંભરાઈ આવે છે. સાથે સાથે આંખો પણ ઝળઝળીયા પાછળ આછાં દ્રશ્યો દેખાય છે. નર્મદે હર! બુમો પડતાં માણસો ટ્રેનમાં ચડી રહ્યા હતા. મારી બાજુમાં એક વૃદ્ધ માણસે બારી બહાર નદીમાં સામે જોઈને મલક્યાં અને તેમને કહ્યું હવે સુઈ જા, બેટા અને સાંભળ, બારી તો ઉપાડી રાખ્યે જ સારું.

કચ્છના એક ખૂણે નાનકડા ગામડામાં પિતેલા વર્ષને જો ભાગ્યે જ ક્યારેક સંભાર્યું હશે, ઝડપથી વહી રહેલા વર્ષો, કમાઓ અને ભણો અને ખાઓ કંઈક બનો, આગળ નીકળી જાઓ, આ બધી ધમાલોમાં જાને સમય પણ ક્યાં હતો? આજે કંઈ કામ નથી. આ અરણ્યે ખોળે વસેલા શહેરમાં મારી આંખો સમક્ષ સુકી ધરા પર થોરિયાની વાડો વચ્ચે વસેલું ગામડું આવીને ઉભું રહે છે. અરણ્યોમાં આદીવાસીઓની અનેક જાતિઓ વસે છે. આ બધામાં એક અલગ અને અનોખી જાતિ છે. જે સાફ સાલી ખુબ ઊંડા વનોમાં રહે છે. બીજી જાતિની સાથે વ્યવહાર ભાગ્યે જ રાખે છે અને ખાસ જરૂર વગર પોતાના વિસ્તારને છોડીને ક્યાંય જતા નથી. કોઈ એમની રજા વગર એમના ઈલાકામાં જતુ તો તેઓ પોતાની જાતને નબળા ન રક્ષણહાર અને વનોના રક્ષકો ગણે છે.

નર્મદા નદીની પરિક્રમા! આટલી લાંબી પથરાયેલી નદીની પરિક્રમા મારા અચરજનો પાર ન રહે. સુપ્રિયાએ મને જે વિગત સમજાવી તે જાણીને પણ હું માની ન શકું કે કોઈ આવું કરે. નર્મદા કિનારાના કોઈ એકાદ સ્થળેથી માનવી પગપાળો આ પાટાએ નીકળી પડે છે. માર્ગમાં ભુલથી પણ નર્મદાને ઓળંગી ન જવાય તે પ્રતિજ્ઞા સાથે નગરો, મંદિરો, અરણ્યો અને પથ્થર મઢ્યા એક કા તો પાર કરતો તે નદીના ઉદ્ગમ સુધી પહોંચે છે. લ્યુઈસીએ આ જોઈ સાંભળે તો તેને કેટલો રોમાંચ થાય? એમાંય સ્વયં નર્મદા કોઈ વખત પરિક્રમાવાસીને દર્શન આપે છે. તે જાણીને તો તે ઉત્તેજનાથી પાગલ થઈ જાય. આ અરણ્યો પશુપંખીઓએ તેને અધિકારી ગણાવીને શરૂઆત તો કરી જ દીધી છે. પણ માનવીને પોતાના અધિકારનું જ્ઞાન પ્રાપ્ત કરવાનો એક નક્કી માર્ગ અને સમય આ પ્રકૃતિએ નિર્ધાર્યો જ છે. આ અરણ્યોએ તો અને કોને જ્ઞાન આપ્યું છે. કદાચ તેનો સમય પણ આવશે.

વિદેશથી લ્યુઈસી આવી ભારત વસ્ત્રોમાં સજ્જ માથે ઓઢીને ઊભેલી કન્યાને જોઈને ઘડીભર હું માની ન શક્યો. લ્યુઈસી નદીના એકાતે સફરે ચાલ્યો, લ્યુઈસીએ પરીક્ષાવાસી તરફ તાકી રહેતા બોલી, આખરે શુ પામવા ઈચ્છે છે આ લોકો નર્મદામારાથી કહેવાઈ ગયું.

લ્યુઈસી ફરીને એ જ શબ્દ બોલી અને વહેતી નર્મદાને જોઈ! કેટલીય મુશ્કેલ યાત્રા આવા અર્થો માં! મે ક્યું, દરેક પરિક્ષાવાસી એક શ્રદ્ધા સાથે નીકળે છે. સ્વયં નર્મદા તેની સંભાળ લેશે, પાણીના એક પ્રવાહનું આટલું સામર્થ્ય? લ્યુઈસી અહીં રહે પછા લ્યુઈસી બોલી, હું ઈચ્છતો હતો કે લ્યુઈસી અહીં રહે પછા લ્યુઈસીને તો અહીં રહેવું નથી. હુ રેવાનો આનંદ માણી રહ્યો હતો. મને જાણે કે રહસ્ય લાધી ગયું. આ આનંદ, નિર્મળ પ્રાકૃતિક અનુભવ, એ અનુભુતિની ઈચ્છા આ દેશ ને એકરૂપતાને ટકાવી રાખનાર એક તંતુ છે.

‘તત્વમસિ’ નર્મદા અને તેની આસપાસના વનો, જીવન અને સૌથી વિશેષ એક પાત્રની ‘પર’થી ‘સ્વ’ સુધીની યાત્રાની વાત આલેખાઈ છે, ૨૦૦૨માં ગુજરાત સાહિત્ય અકાદમી એવોર્ડ મેળવનારી આ કથા સહજીવનની કથા છે. માનવની માનવ સાથે કુદરત સાથે લોકમાતા નર્મદા જેવી નદી સાથે અને સમગ્ર સંસ્કૃતિ સાથે વાત આમ, તો એક નદીની છે. તેની આસપાસનાં જીવનની સજીવસૃષ્ટિ અને એમાં સંકળાયેલા તમામ તત્વોની એક નદીને તમે કેટલા સ્વરૂપે કલ્પી શકો!

અહં બ્રહ્માસ્મિ સમજવા સાથે જ સમજાય છે કે ખરેખર તો ‘અહં’ જેવું કંઈ જ અસ્તિત્વમાં જ નથી જે છે તે બધું જ. ‘તત્વમસિ’ છે. વ્યાપક એકાત્મતાની ખોજમાં નીકળેલા યાત્રીનો આ છે. ‘તત્વમસિ’ નો સાક્ષાત્કાર અહમનું પુર્ણ વિગલન તત્વમાત્ર સાથેની તદ્રુપતાના અનુભવને અહીં સર્જક કાવ્યાત્મક, હૃદયસ્પર્શી ભાવપૂર્ણ વાચા આપી શક્યા છે. એ ભાવકના સંવિતને ભારતીયતાના - ભારતીય સંસ્કૃતિના આગવા સ્વરૂપમાં તક્ષીન કરે છે.

સંદર્ભસૂચિ : -

૧. ‘તત્વમસિ’-ધ્રુવભટ્ટ - પ્રકાશક : - ગુર્જર ગ્રંથરત્ન કાર્યાલય અમરભાઈ ઠાકોરલાલ શાહ : રતન પોળનાકા સામે, ગાંધીમાર્ગ, અમદાવાદ - પુનર્મુદ્રણ : જુન ૨૦૧૯, પ્રથમ આવૃત્તિ - ૧૯૯૮.
૨. સન્મુખમ - દક્ષાવ્યાસ, પ્રથમ આવૃત્તિ - ૨૦૧૦, મુદ્રક - સર્જન કોમ્પ્યુટર્સ, મલય સોસાયટી, વાસણા બેરેજ ગાર્ડન પાસે, અમદાવાદ.

भारत-अमेरिका संबंध: हिन्द प्रशांत-क्षेत्र के संदर्भ में

पवन कुमार

शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग, चौधरी बंसी लाल विश्वविद्यालय, भिवानी

शोध सार

भारत और अमेरिका के बीच संबंध हिन्द-प्रशांत क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण भू-राजनीतिक और आर्थिक साझेदारी को दर्शाते हैं। दोनों देश एक मुक्त, खुला और समावेशी हिन्द प्रशांत क्षेत्र का समर्थन करते हैं और साझा मूल्यों जैसे कि लोकतंत्र और कानून के शासन के आधार पर अपने संबंधों को मजबूत करने पर सहमत हैं। इसलिए हिन्द प्रशांत क्षेत्र भारत-अमेरिका साझेदारी का एक अहम क्षेत्र बन गया है। प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी की अगुवाई में दोनों देशों ने हिन्द-प्रशांत क्षेत्र की लेकर अपने गठबन्धन को बढ़ाया है। दोनों देश इस क्षेत्र में बढ़ रही चीन की गतिविधियों का लेकर चिंतित हैं। जिस कारण इस क्षेत्र को ज्यादा प्राथमिकता देने लगे। भारत तथा अमेरिका क्वाड के माध्यम से भी अपने सहयोग को बढ़ाकर इण्डो-पसिफिक इकोनॉमिक फ्रेमवर्क जैसे अन्य मंचों पर भी बातचीत कर रहे हैं। हिन्द-प्रशांत क्षेत्र की चुनौतियां जैसे-जैसे बढ़ रही हैं, वैसे ही भारत तथा अमेरिका के लिए बेहतर होगा कि वे इस क्षेत्र में नजदीकी परामर्श तथा समन्वय के साथ काम करें।

मुख्य शब्द- भू-राजनीतिक, क्वाड, रणनीतिक, एक्ट ईस्ट, कन्वर्जन्स, आसियान, ईस्ट एशिया, ओबीओआर (OBOR), प्रभुसत्ता, कूटनीति, मेक इन इण्डिया, उग्रवाद।

शोध प्रविधि

प्रस्तुत शोध पत्र को पूरा करने के लिए द्वितीय आंकड़ों का प्रयोग किया गया है। जिसमें मुख्यतः पुस्तकें, समाचार पत्र, पत्रिकाएँ, जर्नल, विदेश मन्त्रालय विभाग की रिपोर्ट, लोक सभा चैनल आदि शामिल हैं।

शोध उद्देश्य

हिन्द-प्रशांत महासागर व क्वाड में भारत व अमेरिका की उपस्थिति का आंकलन करना।

प्रस्तावना

हिन्द-प्रशांत क्षेत्र हाल के वर्षों में भू-राजनीतिक रूप से विश्व की विभिन्न शक्तियों के मध्य कूटनीतिक एवं संघर्ष का नया मंच बन चुका है। वर्तमान में विश्व व्यापार की 75 प्रतिशत वस्तुओं आयात-निर्यात इसी क्षेत्र से होता है तथा हिन्द-प्रशांत क्षेत्र से जुड़े हुए बंदरगाह विश्व के सर्वाधिक व्यस्त बंदरगाहों में शामिल हैं। हिन्द-प्रशांत क्षेत्र में कुल 38 देश शामिल हैं जो विश्व के सतह क्षेत्र का 44 प्रतिशत और विश्व की कुल आबादी का 65 प्रतिशत हिस्सा हैं। हाल ही की कुछ घटनाएँ इस क्षेत्र में जोर पकड़ रही भू-आर्थिक प्रतिस्पर्धा का संकेत देती हैं, जिसमें दुनिया की सबसे तेजी से बढ़ती अर्थव्यवस्थाएँ बढ़ता सैन्य खर्च और नौ सैनिक क्षमताएँ, प्राकृतिक संसाधनों को लेकर गलाकाट प्रतिस्पर्धा शामिल हैं। इसके अंतर्गत एक महत्वपूर्ण क्षेत्र दक्षिण चीन सागर आता है। यहाँ आसियान के देशों तथा चीन के मध्य लगातार विवाद चलता रहता है। दूसरा महत्वपूर्ण क्षेत्र मलक्का का जलडमरूमध्य है। इण्डोनेशिया के पास स्थित यह जलडमरूमध्य रणनीतिक तथा व्यापारिक दृष्टि से बेहद महत्वपूर्ण है।

इस क्षेत्र के महत्व के कारण ही भारत तथा अमेरिका हिन्द-प्रशांत क्षेत्र में पहले से ज्यादा समान दृष्टिकोण अपना रहे हैं। इसमें मई 2014 में प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी के सत्ता संभालने के बाद और भी इजाफा हुआ है। निश्चित ही अब हिन्द-प्रशांत क्षेत्र अब भारत-अमेरिका संबंधों का महत्वपूर्ण अंग बन गया है। प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी के अमेरिकी राष्ट्रपति बाराक ओबामा, डोनाल्ड ट्रंप, जो बाइडेन व पुनः डोनाल्ड ट्रंप ने भी वर्ष 2014 से ही हिन्द-प्रशांत क्षेत्र पर अपना ध्यान केन्द्रित करने के दृष्टिकोण को और सकारात्मकता प्रदान की है।

हिन्द-प्रशांत क्षेत्र में भारत

अमेरिका द्विपक्षीय संबंधों के लिए चार आयाम बहुत महत्वपूर्ण हैं।

1. द्विपक्षीय संबंधों में हिन्द-प्रशांत को लेकर सहयोग तथा समन्वय को सीधे शामिल करने के लिए कोशिश कर उन्हें मजबूत करना।

2. एक नए लघुपक्षीय तंत्रिका को प्राथमिकता देना जैसे-क्वाड (क्वाड्रिलैटरल सिक्योरिटी डायलॉग), आसियान में ईस्ट एशिया समिट व डिफेंस मिनिस्टर मिटिंग प्लस आदि।
3. भारत का रणनीतिक अविश्वास एवं चीन के साथ अमेरिका की बढ़ती प्रतिस्पर्धा।
4. क्षेत्रीय आर्थिक पहलों को लेकर मिश्रित बातचीत जो बाइडेन प्रशासन के इण्डो-पैसिफिक इकोनॉमिक फ्रेमवर्क के साथ चल रही थी। इसके बावजूद भी दोनों देशों के बीच हिन्द-प्रशांत में संबंधों का दृष्टिकोण न तो एकसमान है और न ही एक जैसा। लेकिन यह दृष्टिकोण उनके सम्पूर्ण संबंधों को बेहद मजबूती प्रदान करने वाला है। सहयोग की यह उन स्थिति उन दिनों से एकदम नाटकीय अंदाज में अलग है जब वे हिन्द-प्रशांत क्षेत्र के मुद्दों की लेकर एक-दूसरे के साथ कोई साझा दृष्टिकोण नहीं रखते थे।

हिन्द-प्रशांत क्षेत्र में द्विपक्षीय सहयोग एवं समन्वय

वर्ष 1991 में तत्कालीन प्रधानमंत्री पी.वी. नरसिम्हा राव द्वारा शुरू की 'लुक ईस्ट' पॉलिसी को तीस वर्ष पूर्ण होने वाले ही थे कि प्रधानमंत्री जी नरेन्द्र मोदी ने मई 2014 में सत्ता संभाली। ईस्ट एशिया समिट में पहली बार हिस्सा लेते हुए प्रधानमंत्री मोदी ने यह घोषणा कर दी कि अब भारत 'लुक ईस्ट' पॉलिसी के स्थान पर 'एक्ट ईस्ट' पॉलिसी को अपनाएगा। यह घोषणा इस बात की ओर संकेत करती है कि भारत अब इस क्षेत्र को लेकर प्रतिबद्धता के साथ काम करेगा। 'लुक ईस्ट' पॉलिसी की शुरुआत एक आर्थिक पहल के रूप में की गई थी। लेकिन 'एक्ट ईस्ट' पॉलिसी में आर्थिक पहलू के साथ-साथ राजनीतिक, रणनीतिक और सांस्कृतिक पहलू शामिल हैं। भारत तथा अमेरिका ने एशिया-पैसिफिक तथा हिन्द महासागर क्षेत्र के लिए जनवरी 2015 में अपना संयुक्त कूटनीतिक बयान जारी किया। यह बयान भारत के गणतन्त्र दिवस समारोह में मुख्य अतिथि के रूप से आए अमेरिकी राष्ट्रपति बराक ओबामा की भारत यात्रा के दौरान जारी किया गया था। प्रधानमंत्री मोदी ने उस वक्त कहा था कि, "बहुत लम्बे समय से भारत तथा अमेरिका ने एक-दूसरे की तरफ यूरोप और अटलांटिक के आर-पार देखा है। अब जब मैं पूर्व की ओर देखता हूँ तो मुझे अमेरिका का पश्चिम किनारा दिखाई देता है"। इस क्षेत्र को लेकर भारत-अमेरिका के पहले द्विपक्षीय बयान में एशिया-पैसिफिक और हिन्द महासागर दोनों ही क्षेत्रों का उल्लेख मिलता है। यह इस बात का संकेत है कि ऐतिहासिक रूप से केवल एशिया-पैसिफिक पर ध्यान केन्द्रित करने वाले अमेरिका की नजर अब हिन्द महासागर पर भी जमी हुई है। जबकि केवल हिन्द महासागर तक ध्यान देने वाला भारत भी अब एशिया पैसिफिक में ज्यादा नजर रख रहा है। दोनों देशों के बीच हिंद महासागर तथा प्रशांत महासागर के बीच की कड़ी को लेकर देखे जा रहे कन्वर्जन्स का ही प्रभाव है कि अब इस क्षेत्र को हिन्द-प्रशांत क्षेत्र कहा जाने लगा।

हिन्द-प्रशांत क्षेत्र में चीन की बढ़ती हुई गतिविधियाँ दोनों देशों के लिए चुनौती

चीन हमेशा से एशियाई-प्रशांत देशों के लिए एक बड़ा खतरा रहा है। इसके अलावा वह हिन्द महासागर क्षेत्र में भारतीय हितों के लिए भी खतरा पैदा करता है। चीन ने श्रीलंका के हंबनटोटा बंदरगाह को हथिया लिया है जो कि भारत के तटों से कुछ सौ मील की दूरी पर है। यह स्थिति स्पष्ट रूप से भारत के लिए काफी चिन्ताजनक है। चीन-भारत के पड़ोसी देशों म्यांमार, श्रीलंका, बांग्लादेश, पाकिस्तान और थाइलैंड को सैन्य उपकरण जैसे पनडुब्बी और युद्ध-पोत आदि मुहैया करा रहा है। भू-राजनीति के जानकर इस स्थिति को सैन्य उपनिवेशवाद के रूप में परिभाषित करते हैं। इसलिए वर्तमान समय में वैश्विक राजनीति की दिशा तय करने में हिन्द-प्रशांत क्षेत्र की भूमिका महत्वपूर्ण रही है और भारत को इस क्षेत्र में एक अहम साझेदार के तौर पर देखा जा रहा है। यह वह क्षेत्र है जहाँ अमेरिका और चीन के बीच रणनीतिक प्रतिस्पर्धा अपने चरम पर है। अमेरिका, ऑस्ट्रेलिया, जापान, दक्षिण कोरिया, यूनाइटेड किंगडम, यूरोपीय यूनियन और आसियान जैसे ज्यादातर देशों ने हिन्द-प्रशांत क्षेत्र को अपनी विदेश नीति के लिए प्रमुख माना है जिसमें भारत की केन्द्रीय भूमिका है। भारत की हिन्द-प्रशांत नीति का उद्देश्य इस क्षेत्र में समान विचारधारा वाले देशों के साथ साझेदारी को मजबूत करना और क्षेत्र के लिए महत्वपूर्ण समझ वाले मुद्दों को केन्द्र में रखते हुए नए गठजोड़ बना रहा है ताकि नई रणनीतिक और सुरक्षा संबंधी चुनौतियों का समाधान ढूंढा जा सके। क्वाड के माध्यम से अमेरिका, जापान और ऑस्ट्रेलिया जैसे देशों के साथ भारत की बढ़ती भागीदारी के साथ इसे स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। क्वाड (क्वाड्रिलैटरल सिक्योरिटी डायलॉग) जिसे 'चतुर्भुज सुरक्षा वार्ता' भी कहा जाता है। यह स्वतन्त्र, खुले और समृद्ध हिन्द-प्रशांत क्षेत्र को सुरक्षित करने के लिए चार देशों के साझा उद्देश्य के रूप में पहचाना जाता है। क्वाड भारत, अमेरिका, जापान तथा ऑस्ट्रेलिया की संयुक्त रूप से अनौपचारिक रणनीतिक वार्ता है। 13वीं ईस्ट एशिया समिट के दौरान ही क्वाड सम्मेलन का भी आयोजन किया गया था। यह क्वाड सम्मेलन मुख्यतः इण्डो-पैसिफिक क्षेत्र में अवसंरचनात्मक परियोजनाओं एवं समुद्री सुरक्षा योजनाओं पर केन्द्रित था।

यद्यपि इस समूह का घोषित लक्ष्य हिन्द-प्रशांत क्षेत्र की समृद्धि व खुलेपन से संबंधित है, किन्तु इसका मुख्य लक्ष्य OBOR (वन बेल्ट वन रोड) पहल के माध्यम से हिन्द-प्रशांत क्षेत्र में चीनी दबदबे को नियंत्रित करना है। क्योंकि चीन अपनी OBOR परियोजना के माध्यम से हिन्द-प्रशांत सहित आसियान के कई देशों पर अपनी प्रभुसत्ता स्थापित करने की कोशिश कर रहा है।

अमेरिकी राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप के व्हाइट हाउस के अपने दूसरे कार्यकाल के शुरुआती दिनों में और तेजी से बदलते रणनीतिक समीकरणों के बीच पिछले महीने प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी की अमेरिका यात्रा संपन्न हुई। ट्रंप के पहले कार्यकाल के दौरान भारत और अमेरिका ने हिन्द-प्रशांत क्षेत्र में तालमेल को आगे बढ़ाने के मामले में महत्वपूर्ण प्रगति की थी। हालांकि अमेरिका ऐतिहासिक रूप से हिन्द-प्रशांत क्षेत्र की भू-राजनीतिक और सिक्योरिटी आर्किटेक्चर में भारी निवेश करता रहा है और चीन की बढ़ती गतिविधियों ने अमेरिका को भारत के साथ मजबूत संबंध बनाने के लिए निश्चय ही बाध्य किया है। जहाँ तक भारत का सवाल है, अपने भू-राजनीतिक हितों को सुरक्षित करने की दृष्टि से एक महत्वपूर्ण इलाका होने के कारण इस क्षेत्र ने हिन्द-प्रशांत पर हमेशा से अपना ध्यान केन्द्रित किया है।

प्रधानमंत्री मोदी और राष्ट्रपति ट्रम्प के बीच हाल ही में हुई बैठक के दौरान जो बात सामने आई एक नई पहल, जिसका नाम इण्डो-पैसिफिक स्ट्रेटिजिक वेंचर है, इसकी घोषणा की गई। इसके अलावा हिन्द महासागर में कनेक्टिविटी के एजेंडे को एक अंडर सी केबल परियोजना के क्रियान्वयन में कई अरब डॉलर की लागत वाली कई साल की निवेश की घोषणा के साथ इसे बढ़ावा मिला है। यह कदम इस क्षेत्र में डिजिटल कनेक्टिविटी को बढ़ावा देगा। जबकि दोनों देशों के लिए आर्थिक और डिजिटल कनेक्टिविटी महत्वपूर्ण है। लेकिन हिन्द महासागर में मजबूत सुरक्षा साझेदारी के लिए सहयोग को मजबूत करने के लिए एक नए दृष्टिकोण की भी आवश्यकता है। हिन्द महासागर को दी जा रही यह बढ़ती प्रथमिकता व्यापक हिन्द प्रशांत क्षेत्र के भीतर इस के स्ट्रेटिजिक महत्व के मुद्दे पर भारत और अमेरिका के बीच बढ़ती आम सहमति को दर्शाती है। भारत और अमेरिका के नेताओं के बीच हाल ही में हुई द्विपक्षीय बैठक से ऐसा लगता है कि कनेक्टिविटी का मुद्दा भारत और अमेरिका के बीच बढ़ती समुद्री साझेदारी के भविष्य का आधार बनेगा और दोनों देशों को अपना ध्यान सुरक्षा पर केन्द्रित करना होगा।

निष्कर्ष

इण्डो-पैसिफिक (हिन्द-प्रशांत) स्ट्रेटिजी रिपोर्ट द्वारा पहचाने गए अभिसारी दृष्टिकोण के बावजूद, यह अनिवार्य है कि संयुक्त राज्य अमेरिका और भारत को अप्रवासी वीजा और व्यापार नीति जैसे विषयों पर अपने द्विपक्षीय संबंधों में चुनौतियों का सामना करना पड़ेगा। राष्ट्रपति ट्रम्प के 'अमेरिकी पहल' अभियान और प्रधानमंत्री मोदी के "मेक इन इण्डिया" की असंगतता का उल्लेख नहीं करना है। भारत का चीन और पाकिस्तान के साथ अपनी सीमाओं पर मौजूदा क्षेत्रीय विवाद, साथ ही कश्मीर, पूर्वोत्तर और अन्य जगहों पर उग्रवाद, भारत की इण्डो-पैसिफिक के अन्य क्षेत्रों पर निरंतर ध्यान देने की क्षमता को बाधित करते हैं।

अप्रैल 2019 में भारतीय विदेश मंत्रालय ने हिन्द-प्रशांत विंग की स्थापना कर एक उत्साहजनक संकेत दिया कि भारत व्यापक क्षेत्र में एक बड़ी, अधिक सुसंगत भूमिका निभाने के लिए तैयार है। निकट भविष्य में जहां तक देखा जा सकता है वहाँ तक तो हिन्द-प्रशांत ही भारत-अमेरिका के द्विपक्षीय संबंधों का एक मजबूत एवं टिकाऊ पहलू दिखाई देता है। दोनों देशों के बीच द्विपक्षीय साझेदारी विकसित हुई है। यह अब उस दौर से आगे निकल चुकी है जब इस क्षेत्र को लेकर होने वाली किसी भी चर्चा के दौरान अमेरिका के किसी भी कूटनीतिक दस्तावेज में भारत का एक बार भी उल्लेख नहीं किया जाता था। आज दोनों ही देश इस क्षेत्र को लेकर अपनी कूटनीति तथा नीति संबंधी घोषणाओं में एक दूसरे का उल्लेख करते हैं। पिछले एक दशक से अब भारत तथा अमेरिका हिन्द-प्रशांत क्षेत्र में पहले से ज्यादा समान दृष्टिकोण अपना रहे हैं। दोनों के बीच द्विपक्षीय संबंध मुख्य सिद्धांतों पर आधारित होकर एक-दूसरे के करीब आए हैं। इसमें क्वाड को लेकर कूटनीति, चीन, वाणिज्यिक पहलों का समावेश है। प्रधानमंत्री मोदी की ओर से घोषित भारत की 'एक्ट ईस्ट' पॉलिसी में हिन्द प्रशांत को लेकर भारत के विचार को स्पष्ट कर दिया गया है।

इस नीति में इण्डो-पैसिफिक ओशन इनिशिएटिव को लेकर समुद्री धारणा की बात कही गई है थी। उसके बाद के वर्षों में ही भारत-अमेरिका के बीच संबंधों में हिन्द-प्रशांत क्षेत्र में नियमित रूप से मजबूती देखी गई है। यह मजबूती दोनों देशों के व्यक्तिगत संबंधों में एक-दूसरे के साझेदार के रूप में तथा अपने नजदीकी सहयोगी या फिर क्वाड के साझेदारों के साथ देखी जा सकती है। निश्चित रूप से भारत-अमेरिका के बीच बढ़ते हुए संबंधों में हिन्द-प्रशांत एक अहम और प्रमुख हिस्सा है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- 1) कार्मेक डस्टिन और अक्षय माथुर- "अगले दशक में भारत-अमेरिका संबंधों की प्राथमिकताएँ", ऑब्जर्वर रिसर्च फाउंडेशन, नई दिल्ली, अक्टूबर 2022, पृ0 सं0 15-16
- 2) डॉ. राजकुमार रंजन सिंह, भारत के विदेश राज्य मंत्री, (भाषण, 24 मार्च, 2022), विदेश मंत्रालय, भारत सरकार।
- 3) सतु लिमये और लेई निशिउबातोका, "भारत-अमेरिका संबंध: हिंद-प्रशांत में 'कन्वर्जन्स', ऑब्जर्वर रिसर्च फाउंडेशन, नई दिल्ली, अक्टूबर 2024, ओआरएफ ईश्यू ब्रीफ नं0 740
- 4) हिन्द-प्रशांत क्षेत्र और भारत, दृष्टि द विजन, दिसम्बर 2019, नई दिल्ली। drishtiias.com/hindi/printpdf/ Navigating-The-Indo-Pacific
- 5) राजदूत (सेवानिवृत्त) अशोक सज्जनहार, (व्याख्यान कासरगोड, 11 फरवरी, 2015), विदेश मन्त्रालय, भारत सरकार <https://www.mea.gov.in/distinguished-lectors-detail.htm?213>
- 6) गिरीश लूथरा, हिन्द-प्रशांत क्षेत्र की खोज", आब्जर्वर रिसर्च फाउंडेशन, जुलाई, 2021, नई दिल्ली, ईश्यू न0 473, पृ0 सं0 3-4
- 7) राजीव सीकरी, "भारत की विदेश नीति: चुनौती और रणनीति", सेज प्रकाशन, नई दिल्ली, 2017, पृ0 सं0-276
- 8) राष्ट्रपति बराक ओबामा भारत की राजकीय याचा गेटवे हाऊस, इंडियन लाअसल ऑन-ग्लोबल रिलेशंस, नई दिल्ली, 2019. <https://www.gatewayhouse.in>
- 9) भारत के प्रधानमंत्री मोदी की अमेरिका यात्रा के दौरान भारत-अमेरिका संयुक्त वक्तव्य, 14 फरवरी 2025, पीएम इंडिया।www.pmindia.gov.in
- 10) डॉ0 तेशु सिंह, "पूर्वी चीन सागर विवाद: हिन्द प्रशांत क्षेत्र के निहितार्थ, भारतीय वैश्विक परिषद, सप्रू हाऊस, नई दिल्ली, फरवरी 2023 <https://www.kwa.in>
- 11) विदेश मन्त्रालय, भारत सरकार <https://pib.gov.in/newsite/printrelease.aspx>
- 12) व्हाइट हाऊस, प्रेस सचिव कार्यालय, "(एशिया-प्रशांत और हिन्द महासागर क्षेत्र के लिए अमेरिका-भारत संयुक्त रणनीतिक दृष्टिकोण)" <https://Obamawhitehouse.archives.gov/the-press-office/2015/01/25/us-india-Joint-Strategic-vision-asia-pacific-and-indian-ocean-region>
- 13) डॉ0 स्तुति बनर्जी, "भारत और संयुक्त राज्य अमेरिका की साझेदारी: सहयोग के उभरते क्षेत्र में, भारतीय वैश्विक परिषद, सप्रू हाऊस, नई दिल्ली, अक्टूबर 2023 <https://www.icwa.in/shows-content.php?lang=2&level=&rts-id=10031&lid=6394>
- 14) "प्रधानमंत्री मोदी का यूएस दौरा रहा सफल, भारत-अमेरिका संबंध होंगे और अधिक मजबूत", डी.डी. न्यूज, 14 फरवरी 2025, www.ddnews.gov.in

‘तिरस्कृत’ आत्मकथा का समाजशास्त्रीय अध्ययन

डॉ० अब्दुल हासिम

अतिथि अध्यापक, जामिया मिल्लिया इस्लामिया

शोध-सार- हिंदी दलित आत्मकथा में समाज के विभिन्न पहलुओं का व्यापक रेखांकन हुआ है। दलित वर्ग की सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक, राजनीतिक आदि विभिन्न जीवन स्थितियों का बहुआयामी व वृहद रेखांकन हुआ है। ये आत्मकथाएँ जीवन से जुड़ी हुई ही नहीं बल्कि जीवन का उसके विभिन्न आयामों में छायांकन भी करती हैं। अतः इस परिप्रेक्ष्य में आत्मकथाओं का अनुशीलन एक अनिवार्य और औचित्य पूर्ण अंग सिद्ध होगा। इस दृष्टि से आत्मकथाओं का सामाजिक अध्ययन करने हेतु मानव एवं मानव के मध्य परस्पर संबंध व प्रभाव तथा संस्कृति व साहित्य का विश्लेषण समीचीन लगता है। यहाँ ऐसे तत्त्व हैं जहाँ भेदभाव है, ऊँच-नीच है, मान-अपमान है तथा इन की प्राप्ति गुण-कर्म पर नहीं अपितु अनुवांशिकता पर आधारित है। मसलन, जाति-पाँति, अस्पृश्यता, अंधविश्वास, रूढ़ियाँ, धर्म के नाम पर अगणित कर्मकांड आदि। मनुष्य संस्कृति के नाम पर उचित-अनुचित अनेक आचार-विचार सीखता है। मनुष्य के सांस्कृतिकरण से समाज का स्वरूप भी उज्ज्वल होता है। इससे निरंकुशता व अव्यवस्थाओं पर नियंत्रण पाया जा सकता है जिससे समाज में एकरूपता आती है।

बीज शब्द- दलित साहित्य, दलित-चेतना, आत्मकथा, अम्बेडकरवाद, वर्ण-व्यवस्था, जाति-व्यवस्था, प्रतिरोध, समता, स्वतंत्रता, बंधुत्व, शोषण, भेदभाव

मूल आलेख- सूरजपाल चौहान की आत्मकथा ‘तिरस्कृत’ दलित जीवन की पीड़ा को संपूर्ण अभिव्यक्ति प्रदान करती है। समाज में सदियों से सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, संस्कृति विभिन्न आधारों पर शोषित वंचित एवं तिरस्कृत होते आ रहे दलित जीवन के प्रत्येक पड़ाव का मार्मिक चित्रण हुआ है। लेखक ने अपने जीवन के अनुभव को बचपन से लेकर प्रौढ़ावस्था तक वर्णन किया है। वास्तव में यह आत्मकथा न केवल लेखक की है बल्कि समूचे दलित समाज की है।

अशिक्षा दलित समाज की सबसे बड़ी और आधारभूत समस्या के रूप में उभर के सामने आती है। वर्ण-व्यवस्था से निर्मित सामाजिकता ने इस वर्ग को सदैव अज्ञानता की तरफ धकेला। अशिक्षा और अज्ञानता ने तर्क करने का अवसर ही प्रदान नहीं किया न ही कभी अपनी परिस्थितियों पर चिंतन करने का ही अवसर मिला। दलित विचारक सुभाष चन्द्र के अनुसार, “शिक्षा और ज्ञान किसी समुदाय के विकास के मुख्य कारक हैं। ज्ञान पर एकाधिकार करके व शूद्रों को ज्ञान से वंचित कर रख कर ही ब्राह्मणवाद अपना वर्चस्व स्थापित करने में कामयाब हुआ था।”¹ सूरजपाल चौहान की आत्मकथा ‘तिरस्कृत’ में माँ की बीमारी का जिक्र करते हुए लिखते हैं, “रात-रात भरमेरी बीमार माँ को भक्त लोग बीच में कैद कर बैठे रहते उनमें से कोई थालीपीटता, कोई डमरू बजाता तो कोई चम्मच से पीतल का गिलासा वातावरण में भय उत्पन्न करता संगीत बजता और भक्तों में से कोई एक अपनी गर्दन को जोर से झटकता हुआ आवाज निकालता। उनकी ऐसी हरकतों को देख कर मैं डर जाता और घिघियाता हुआ मौसी चमेरी की गोद में मुँह छुपा लेता।”² उपर्युक्त कथन से हमें पता चलता है कि बीमार होते हुए इंसान को बाहर वैद्य को दिखाने के लिए ना उनके पास पैसा है और ना ही जागरूकता। हर कोई भगवान के नाम से अपनी भावना का समर्थन कर समस्या का समाधान करने का प्रयास करता है।

सूरजपाल चौहान अपनी आत्मकथा में आर्थिक संकट, इलाज का अभाव तथा अंधविश्वास के कारण अपनी माँ के असमय गुजर जाने का वर्णन करते हुए बताया है कि किस तरह दलित समाज धन के अभाव में तथा अज्ञानता की वजह से बीमार लोगों का इलाज तक नहीं करा पाते जिसकी वजह से उनकी मृत्यु हो जाती है। सूरजपाल चौहान अपने परिवार के व्यवसाय के बारे में लिखते हैं कि, “पिता हम दोनों भाइयों के विषय में रह-रह कर सोचते। परिवार के सदस्यों ने सीधे-सीधे शब्दों में हमें रखने से मना कर दिया था। बाबा बेचारे क्या करते हैं। चाचा ताऊ के पास गांव में ना खेती के लिए भूमि थी और ना कोई दूसरा कारोबार। वे सभी गांव के सवर्णों के यहाँ मोहल्ले कमाने का काम या उनके खेतों में मजदूरी करते थे। अपना पेट भरना और अपने बच्चों का लालन-पालन करना ही उनके लिए दूभर था तो फिर हम दोनों भाइयों को भला कैसे पालते।”³ इस कथन से पता चलता है कि व्यवसाय के क्षेत्र में दलित वर्ग अत्यंत कमजोर था तथा वह सवर्ण समाज पर निर्भर था। यहाँ एक बात गौर करने की है कि यदि दलित समाज के पास बेगारी ना करने के बजाए उनकी अपनी कृषिभूमि होती तो शायद उनकी आर्थिक स्थिति बेहतर होती। व्यवसाय ही शोषण का मूल कारण बनता रहा और दलित समुदाय इस दंश को झेलने को विवश रहा।

इसी तरह सूरजपाल चौहान की आत्मकथा के दोनों भागों ‘तिरस्कृत’ और ‘संतप्त’ में भी जातीय समस्या का व्यापक चित्रण हुआ है। पहली बार अपनी माँ के साथ जूठन उठाने जाएँ के संदर्भ में उन्होंने लिखा है- “मैं मन ही मन बहुत खुश था कि आज माँ के साथ जूठन उठाने जा रहा हूँ। माँ ने डलिया और खाली मटकी अपने हाथों में उठा ली और मुझे खाली बाल्टी पकड़ा दी। चलते-चलते माँ ने मुझे कोने में रखे डंडे को भी उठाने को कहा।”⁴ डंडा कुत्तों को को भगाने के काम आता था जिससे यह ध्वनित होता है कि कुत्तों के खाने और मनुष्यों के खाने की सामग्री एक है। इस वर्णन से दलित वर्ग की घोर अपमानजनक सामाजिक स्थिति का पता चलता है। इसी क्रम में आगे सूरजपाल चौहान लिखते हैं कि, “माँ दोनों हाथों से जूठन सकेलने (बटोरने) में लगी हुई थी और मैं डंडा लिए होशियार खड़ा था। कुत्ते मेरे ऊपर गुर्रा रहे थे, लेकिन डंडे की मार से घबरा कर दूर खड़े हुए थे, कुत्तों का गुर्रा उचित था क्योंकि हम उनके हिस्से का माल समेट रहे थे।”⁵ सूरजपाल जी की आत्मकथा में दलित जीवन के जातीय दमन का व्यापकता से वर्णन हुआ है।

दलित साहित्य की तरह सभी हिंदी दलित आत्मकथाओं में भी समाज के अंतर्गत व्याप्त जातीय भेदभाव का स्वानुभूतिपरक व्यापक चित्रण हुआ है जो पाठक को गहराई तक झकझोरते हैं। साथ ही ये सोचने पर बाध्य करते हैं कि समाज में जातीयता का विद्रूप चेहरा नहीं होना चाहिए। सुभाष चन्द्र के अनुसार, “जाति-प्रथा और छुआछूत शोषण का जरिया रहा है। शोषण को वैध ठहराने व इसके विरुद्ध रोष को समाप्त करने में भी जाति ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।”⁶ आज तक जो भी चलता आया वह बहुत ही गलत और बलपूर्वक थोपी हुई व्यवस्था रही है जिसका परिमार्जन होना ही चाहिए। मोहनदास नैमिशराय के अनुसार, “भारत में दलितों ने यातना को कई हजार वर्षों को भोगा है। फिर भी विशन और विपरीत परिस्थितियों में उन्होंने संघर्ष किया।... जिन्हें गुलामी या दासत्व रास नहीं आया होगा, उन्होंने जरूर संघर्ष किया होगा। अब यह सिद्ध हो गया है कि दलितों के उसी संघर्ष से दलित साहित्य का जन्म हुआ है।”⁷ एक ऐसी व्यवस्था की पुनर्चना हो जिसमें सभी मनुष्यों के प्रति मानवीय दृष्टिकोण हो, उनकी उच्चता और निम्नता का मानदंड गुणकर्म अर्थात् योग्यता-कुशलता हो, सबको न्याय मिले और सभी शोषणमुक्त होकर सहज जीवन बिताएँ। यह सहजता और न्यायपूर्ण समानता की व्यवस्था वास्तव में प्रत्येक मनुष्य का प्राकृतिक रूप से ही मनुष्य होने के नाते अधिकार है किंतु यह हक शताब्दियों तक समाज के एक विशाल वर्ग को प्राप्त नहीं हो सका और आश्चर्य की बात तो यह है कि उनकी चेतना को इतना दमित और अचेतन बना दिया गया है कि अपने शोषण के कारणों से अनभिज्ञ हैं।

सूरजपाल चौहान की आत्मकथा में उनके बाल जीवन की दयनीय आर्थिक दशा का विस्तृत वर्णन हुआ है। अभाव भरे जीवन की तस्वीर ‘तिरस्कृत’ में उन्होंने इस तरह खींची है- “मां, जिसे मैं और छोटा रगबर जीजी कहकर पुकारते थे, मोहल्ले की सफाई का कार्य करती थी। इस काम के बदले में बसीठों(सवर्णों) के घरों से एक-एक रोटी ही मिलती थी। किसी घर से गौचना, किसी से बेझर और किसी किसी घर से मटरे की, गौचने की रोटी एकाध ही मिल पाती थी। ड्रमुझे अच्छी तरह से याद है कि मटर के आटे की बनी रोटी के कौर चबाने से मसूड़े छिल जाया करते थे। सिलबट्टे पर पिसी मिर्च की चटनी के साथ रोटी हलक में जाने के बजाय इसी के साथ मुंह से बाहर को आती थी। पानी के घूंट के साथ बस किसी तरह मैं मटरे की रोटी को निगलता।”⁸

तिरस्कृत आत्मकथा में लेखक अपनी मां के बीमार होने के प्रसंग के विषय में लिखते हैं- “रात रात भर मेरी बीमार मां को भक्त लोग बीच में घेर कर बैठे रहते। उनमें से कोई थाली पीटता, कोई डमरु पीटता, तो कोई चम्मच से पीतल का गिलास। वातावरण में भय उत्पन्न करता हुआ संगीत बजता और बैठे हुए भक्तों में से कोई एक अपनी गर्दन को जोर से झटकता हूँ-हूँ-हूँ की आवाज निकालता।”⁹ दलित समाज की दयनीय स्थिति में इस प्रकार के कई अंधविश्वासों का महत्वपूर्ण योगदान है। मोहनदास नैमिशराय अपने एक लेख में लिखते हैं कि, “आधुनिक युग में जिस गति से समता और बराबरी का दर्शन गहराता जा रहा है। उस गति से सामाजिक चेतना के स्रोत नहीं उभर पाए हैं। भारतीय समाज में संस्कारों का मोह आज भी किसी न किसी रूप में बना हुआ है। दलित समाज ब्राह्मणवाद के खिलाफ आवाज उठाता रहा दूसरी तरफ वही समाज सांप की कंचुली की तरह अपने आपको उसी ताने-बाने में उलझाता भी रहा। शिक्षा और ढकोसला के संगम पर नए विचार दफनाये जा रहे हैं। आज का युग लकीर का फकीर होने का नहीं है, बल्कि वैज्ञानिकता में लिप्त होने का है।”¹⁰ गौरतलब है कि डॉक्टर आंबेडकर की विचारधारा में वैज्ञानिकता और तार्किकता पर जोर दिया गया है। यदि दलित समाज वैज्ञानिक होकर परिस्थितियों को समझने का प्रयास करें तो वह सही दिशा में अग्रसर हो सकता है। धार्मिक जकड़बंदी को दलित समाज ने अपने ऊपर जबरदस्ती थोप रखा है। एक तरफ धर्म के ठेकेदार या यूँ कहें कि धर्म हीइन्हें अछूत मानता है तथा धर्म से दूर रखता है फिर भी दलित समाज सभी धार्मिक रीति-रिवाज, परंपरा और अंधविश्वास को अपनाता आ रहा है।

तिरस्कृत आत्मकथा में लेखक अपनी मां के बीमार होने के प्रसंग के विषय में लिखते हैं- “रात रात भर मेरी बीमार मां को भक्त लोग बीच में घेर कर बैठे रहते। उनमें से कोई थाली पीटता, कोई डमरु पीटता, तो कोई चम्मच से पीतल का गिलास। वातावरण में भय उत्पन्न करता हुआ संगीत बजता और बैठे हुए भक्तों में से कोई एक अपनी गर्दन को जोर से झटकता हूँ-हूँ-हूँ की आवाज निकालता।”¹¹ दलित समाज की दयनीय स्थिति में इस प्रकार के कई अंधविश्वासों का महत्वपूर्ण योगदान है।

वर्ण-व्यवस्था के कारण यहाँ पर वर्ण और जाति के आधार पर श्रम का विभाजन किया गया जिसमें ब्राह्मण को सर्वोच्च स्थान प्राप्त हुआ और दलितों को उनकी गुलामी करनी पड़ी। दलित समाज को ऊपर के तीन वर्गों की सेवा करने का आदेश दिया गया। ऐसी धारणा बना दी गई कि यदि वह ऐसा नहीं करेंगे तो उन्हें मुक्ति प्राप्त नहीं हो सकेगी। इस तरह के धार्मिक पाबंदियों की वजह से उनका शोषण करना आसान हो गया। शरणकुमार लिंबाले के अनुसार, “स्वतंत्रता मिलने के बाद ऐसी आशा पैदा हुई कि लोगों के सभी प्रश्न हल होंगे। पर समय के साथ अनेक समस्याएं बढ़ती गयीं।”¹² गौरतलब है कि अशिक्षा और आर्थिक अभाव के कारण दलित समाज के खानपान एवं रहन-सहन में अत्यंत दयनीयता दिखाई देती है। सवर्ण समाज के घर और खेतों में कार्य करने के पश्चात या बेगारी करने के पश्चात भी उन्हें नाममात्र मजदूरी दी जाती थी जिसकी वजह से उनका जीवन स्तर बहुत निम्न होता चला गया। दलित समाज जूठन खाकर, मरे हुए जानवरों के मांस खाकर या फिर बहुत ही मामूली भोजन पर अपना गुजारा करता था। यदि हम उनके रहन-सहन की बात करें तो उनकी बस्तियों को हमेशा गांव की मुख्य बस्ती से दूर बसाया जाता था। इसके पीछे की मान्यता यह है कि सवर्ण समाज पर उनकी परछाई तक न पड़े। उन्हें बदबूदार गंदी बस्तियों में रहने के लिए विवश कर दिया गया। अब प्रश्न यह है कि आज जब स्थितियाँ कुछ सुधर रही हैं तो सवर्ण समाज इस बदलाव को बर्दाश्त नहीं कर पा रहा है। उसका लगातार यही प्रयास है कि वह दलित समाज को दोबारा उसी दयनीय और आर्थिक बदहाली के कगार पर लाकर खड़ा कर दे जहाँ से वह उठकर आ रहे हैं। हिंदी दलित आत्मकथाओं में दलित समाज की स्थिति को अत्यंत यथार्थ पूर्वक दिखलाया गया है तथा इस बात पर जोर दिया गया है कि इनकी बदहाली का एकमात्र कारण वर्ण व्यवस्था तथा सामाजिक असमानता है।

हिंदी दलित आत्मकथा में दलित समाज के खानपान एवं रहन-सहन की स्थिति का परिचय देने वाले अनेक उदाहरण आए हैं। सूरजपाल चौहान ने लिखा है- “सूअर के मांस के छोटे-छोटे टुकड़े करते समय मांस काटने वाले बच्चों को सूअर की चर्बीयुक्त खाल, जिन्हें तिव्का कहते हैं, पकड़ा दिया करते थे। मोहल्ले के सभी बच्चे उन तिव्कों को गचर-गचर चबाते।”¹³ बच्चों को इस तरह कच्चा मांस खाने के लिए बड़ों द्वारा दे दिया जाना और बच्चों द्वारा लेकर उसे खाना इस बात का परिचायक है घर में खानपान के लिए अच्छी वस्तुओं की व्यवस्था नहीं है जिससे उन्हें किसी भी तरह की खान-पान की स्थिति से गुजरना पड़ता है।

हिंदू धर्मने दलितों के मन-मस्तिष्क पर कब्जा कर रखा था क्योंकि दलित वर्ग भीसवर्ण हिंदुओं का अनुकरण कर घर में अलग देवताओं की पूजा किया करते थे। भारतीय धार्मिक व सामाजिक व्यवस्था संस्कृति के नाम पर उत्पीड़न, अत्याचार और अंधविश्वास को बढ़ावा ही देती रही। सूरजपाल चौहान ने अपनी आत्मकथा तिरस्कृत इस तरह के अविवेकपूर्ण मानसिकता का जबरदस्त विरोध किया है। आत्मकथा के आरंभ में ही सूरजपाल चौहान ने भंगी भक्तों द्वारा अपनी मां की हत्या का अत्यंत मार्मिक चित्रण करते हुए लिखा है, “मां ठीक होने की बजाय और अधिक बीमार होती गई। पिता ने भक्तों के कहने पर सभी देवी देवताओं की मनौतियाँ मानी। कुल आपवन, बुलाखी मसान व नेता खईस को खुश करने के लिए मुर्गे, बकरे, घो- घोंटिया और दारू की बेटे चढ़ाई। आगरा जाकर बुलाखी मसान और गुड़गाँव जाकर ललिता भवानी की जोत जलायी। पिता ढोंगी-भक्तों के चक्कर में पूरी तरह कर चुके थे।”¹⁴ दलित समाज परंपरागत रूढ़ियों, अंधविश्वासों और कुरीतियों के बीच फंसा हुआ था। इन आत्मकथाओं में इस जकड़न की फांस और इनकी पहुँच देखी जा सकती है इसलिए दलित आत्मकथाकार इसके खिलाफ खड़ा होता है। सूरजपाल चौहान ने भी अपनी आत्मकथा में इन सभी का पुरजोर विरोध किया है।

दलित समाज ने हजारों वर्ष की सामाजिक यात्रा में जो भोगा है, उनके जो अनुभव में उनसे सामाजिक व्यवस्था के प्रति नकार की भावना उत्पन्न हो गई है। भारतीय समाज व्यवस्था में दलित ही हैं जो सदियों सेविषमतावादी जाति-व्यवस्था के शिकार रहे हैं। यही कारण है कि उन्हें पशुवत जीवन जीने पर विवश किया गया। गाँव से बहिष्कृत, अधिकारों से वंचित, अस्पृश्य और अछूत उपाधि प्राप्त करने वाले दलित समाज की यातना का अंदाजा लगाना बेहद मुश्किल कार्य है, भारतीय समाज व्यवस्था में वर्ण व्यवस्था बेहद महत्वपूर्ण है यहाँ अर्थात् हिंदू समाज में व्यक्ति की पहचान उसके गुण, कर्म, योग्यता के आधार पर ना होकर उसके वर्ण और जाति से होती है। वर्ण-व्यवस्था के कारण उनका जीवन अत्यंत कष्टमय हो जाता है। जाति का सबसे अधिक दुख दलितों को ही भोगना पड़ता है। अपना भोगे हुए कष्टमय जीवन को जब वह शब्द देते हैं तो आत्मकथा का निर्माण होता है। हिंदी साहित्य के दलित आत्मकथाओं में चित्रित जाति एवं वर्ण-व्यवस्था के दंश को, एवं स्थापित व्यवस्था के कारण भोगे हुए अनुभवों का दलित आत्मकथाकारों ने अपनी आत्मकथाओं में चित्रित किया है। सूरजपाल चौहान अपनी आत्मकथा तिरस्कृत में दलितों के प्रति सवर्ण समाज की नफरत को बताते हुए लिखते हैं- “एक नई जात दलित ना जाने कहाँ से आ गई, महात्मा गाँधी ने देश के भंगी, चमारों, नाई, धोबियों, महार आदि को हरिजन नाम दिया था, लेकिन पता नहीं यह दलित नाम की नई जात कहाँ से उत्पन्न हो गई। भारी-भरकम पेट वाले आदमी की बक-बक जारी थी।”¹⁵ आज की स्थिति में भी इस संदर्भ को लेकर देखा जाए तो आज भी यथास्थिति वैसी ही है। सवर्ण समाज हर संभव प्रयास कर दलित वर्ग को हाशिए पर धकेलने के लिए लगातार षड्यंत्र रच रहा है।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि दलित समाज अज्ञानता, अशिक्षा, दरिद्रता में घिरे रहने के कारण शोषण, अन्याय के थपेड़े हजारों वर्षों से अनेकपीढ़ियों को झेलने पड़े फिर भी उन्हें इस अत्याचार और अन्याय का भान भी नहीं हुआ। शिक्षा एवं रोजगार के क्षेत्र में विभिन्न अवसरों के सम्मुख इस बात का पता चल चुका है कि मनुष्य होने के नाते प्राकृतिक रूप से उसने भी वही अधिकार होने चाहिए जो तथाकथित उच्च वर्ग के हैं। जब कोई शिक्षित व्यक्ति यह सोचता है कि हजारों साल उनके साथ अन्याय क्यों होता रहा?, इसके कारण कौन-कौन से हैं?, तब उन्हें यह ज्ञात होता है कि अनेक कारण हैं जिनके लिए एक प्रमुख साधन के रूप में धर्म का उपयोग हुआ है। यही कारण है कि दलित साहित्यकार धार्मिक मान्यताओं का वैचारिक एवं क्रियात्मक दोनों पर विरोध करते आ रहे हैं। सूरजपाल चौहान ने इसी चेतना को आगे बढ़ाते हुए अपनी आत्मकथा में दलित समाज के शोषण का मार्मिक चित्रण किया है। तिरस्कृत आत्मकथा के समाजशास्त्रीय अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि धर्म की आड़ में दलित समाज के प्रति दीर्घकाल तक शोषण एवं अन्याय का साम्राज्य चलता रहा है और वे जोर-जुल्म सहते हुए, अपने अधिकारों से वंचित रहते हुए, अपमान सहते और अभावों में जीते आ रहे हैं। अतः इन मान्यताओं को टूटना चाहिए और सामाजिक स्वतंत्रता, समानता, बंधुता और न्याय की व्यवस्था कायम होनी चाहिए।

संदर्भ:-

- 1 दलित आत्मकथाएँ: अनुभव से चिंतन, सुभाष चन्द्र, साहित्य उपक्रम, दिल्ली, पृष्ठ-52
- 2 तिरस्कृत- सूरजपाल चौहान, अनुभव प्रकाशन, पृष्ठ-10
- 3 वही, पृष्ठ-14
- 4 वही, पृष्ठ-17
- 5 वही, पृष्ठ-18-19
- 6 दलित आत्मकथाएँ: अनुभव से चिंतन, सुभाष चन्द्र, साहित्य उपक्रम, दिल्ली, पृष्ठ-58
- 7 हिंदी दलित साहित्य- मोहनदास नैमिशराय, साहित्य अकादमी, पृष्ठ-13
- 8 तिरस्कृत- सूरजपाल चौहान, अनुभव प्रकाशन, पृष्ठ-13
- 9 वही, पृष्ठ-9-10
- 10 दलित चेतना का उदय और विकास- शिवचरण चौड़वाल, पोइंटर पब्लिशर्स, पृष्ठ-118 से उद्धृत
- 11 तिरस्कृत- सूरजपाल चौहान, अनुभव प्रकाशन, पृष्ठ-9-10
- 12 दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र- शरणकुमार लिंबाले, वाणी प्रकाशन, पृष्ठ-37
- 13 तिरस्कृत- सूरजपाल चौहान, अनुभव प्रकाशन, पृष्ठ- 27
- 14 वही, पृष्ठ-10
- 15 वही, पृष्ठ-25

“भारत में स्वतंत्र एवं निष्पक्ष चुनाव व गंभीर समस्याओं का एक अध्ययन”

डॉ० जितेन्द्र कुमार

(सहायक आचार्य), डिग्री कॉलेज उपरदहा, बरौत, प्रयागराज

लोकतंत्र की सफलता स्वतंत्र एवं निष्पक्ष चुनावों पर निर्भर करती है। भारतीय गणतंत्र विस्तार, क्षेत्र, जनसंख्या और संसाधनों की दृष्टि से विश्व का सबसे बड़ा लोकतंत्र है। स्वतंत्रता के बाद से चुनावी प्रक्रिया के माध्यम से सरकारें चुनता आ रहा है। स्वतंत्र एवं निष्पक्ष चुनाव भारतीय लोकतंत्र की नींव हैं, लेकिन इन चुनावों को निष्पक्ष बनाए रखना एक चुनौती भी है।

निर्वाचकों की संख्या की दृष्टि से भी सार्वभौम वयस्क मताधिकार पर आधारित यह विश्व की सबसे बड़ी सहभागिता पूर्ण राजनीतिक व्यवस्था है, जिसमें शासन के सभी स्तरों, पंचायती राज की तीन स्तरों और स्थानीय निकायों से लेकर राज्य विधान सभाओं, संसद तक के निर्वाचनों में मताधिकार का प्रभावी प्रयोग किया जाता है। स्वतंत्र व निष्पक्ष चुनाव प्रजातंत्र की आधार शिला है। यह बहुत कठिन कार्य है। इस कार्य के संचालन के लिए भारतीय संविधान में एक निर्वाचन आयोग का प्रावधान किया गया है। हमारे संविधान में निर्वाचन तथा निर्वाचन प्रणाली से सम्बन्धित एक अध्याय (अनुच्छेद-324-329, भाग-15) दिया गया है।

लोकतांत्रिक शासन प्रणाली में निर्वाचन का महत्वपूर्ण स्थान होता है। निर्वाचन के माध्यम से ही लोकनीति में नागरिकों के मनो भावों की सहभागिता से प्रजातंत्र का क्रियान्वयन होता है। विशाल जनसंख्या, विस्तृत भूमि क्षेत्र तथा व्यापक कार्य क्षेत्र के कारण आधुनिक लोकतांत्रिक राज्यों में जनता प्रत्यक्ष रूप से शासन में सहभागी हो, ऐसा असम्भव है। इसके विकल्प के रूप में ही प्रतिनिधि मूलक प्रजातंत्र का प्रचलन हुआ है। इस तरह के प्रजातांत्रिक राज्य में जनता अपनी शासन शक्ति का प्रयोग प्रतिनिधियों को चुनकर उनके माध्यम से करती है। इस तरह प्रतिनिधित्व का महत्व प्रजातंत्र के विकास के साथ ही बढ़ता गया है। लोकतंत्र में राजनीतिक व्यवस्था से सम्बन्धित सत्ता जनता के पास होती है। यह जनता प्रतिनिधियों को निर्वाचित कर अपनी ओर से उन्हें शासन का अधिकार प्रदान करती है। इससे हर प्रजातांत्रिक राजनीतिक व्यवस्था में प्रतिनिधि ही व्यवहार में शासन शक्ति के धारणकर्ता एवं प्रयोगकर्ता दोनों हो जाते हैं। वर्तमान समय में जनता का महत्वपूर्ण कार्य उन प्रतिनिधियों के बीच माध्यम बनना है, जो राजनीतिक व्यवस्था में दृष्टिगोचर होते हैं, जिसे राबर्ट डहल ने प्रजातंत्र का द्वितीय हस्तान्तरण की प्रक्रिया कहा है।

1950 से अब तक हमारे देश में लोक सभा के 14 निर्वाचन तथा राज्य विधान सभाओं के अनेक चुनाव सम्पन्न हो चुके हैं। निर्वाचन आयोग द्वारा समस्त निर्वाचनों का आयोजन एवं संचालन अत्यन्त दक्षता, कुशलता तथा तत्परता पूर्वक करने का प्रयत्न किया गया है। प्रत्येक चुनाव के अनुभवों ने भविष्य में होने वाले चुनाव के लिए मार्गदर्शन का कार्य किया है। निर्वाचन आयोग प्रत्येक आम चुनाव के पश्चात अपने प्रतिवेदन सुनिश्चित करता है और इन प्रतिवेदनों में निर्वाचन आयोग ने चुनावों के आयोजन में आने वाले कठिनाइयों एवं समस्याओं का उल्लेख किया है।

भारत में भारतीय संविधान द्वारा वयस्क मताधिकार अपनाया गया है, जिसका उल्लेख संविधान के अनुच्छेद 326 में स्पष्ट रूप से किया गया है। इस अनुच्छेद के तहत यह व्यवस्था की गई है कि कोई भी भारतीय नागरिक, जो 18 वर्ष की आयु पूरी कर चुका है, मतदाता सूची में नाम दर्ज कराने के लिए अर्ह है। प्रारम्भ में यह आयु सीमा 21 वर्ष थी, लेकिन 1989 में 8 यह आयु सीमा घटाकर 18 वर्ष कर दी गई। तब से आज तक यही आयु सीमा मतदाता सूची में नाम दर्ज कराने के लिये किसी भी भारतीय नागरिक के लिए आवश्यक है। ऐसा व्यक्ति जिसका नाम मतदाता सूची में दर्ज नहीं है, निर्वाचन में मतदान के माध्यम से अपनी सरकार चुनने का वैधानिक अधिकार नहीं रखता है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि अगर कोई भी ऐसा व्यक्ति है, जिसका नाम मतदाता सूची में मतदाता के रूप में पंजीकृत नहीं है, वह मतदान का अधिकारी नहीं होता है। अगर कोई भी व्यक्ति शासन सत्ता में अपनी भागीदारी सुनिश्चित करना चाहता है, तो उसे मतदाता सूची में मतदाता के रूप में अपना नाम दर्ज कराना अनिवार्य शर्त है।

वास्तव में अगर देखा जाय तो भारतीय संविधान में किसी भी स्थानपर नागरिकों को सरकार के निर्माण का अधिकार स्पष्ट रूप से उल्लिखित नहीं है, परन्तु जनता का सरकार बनाने या लोकप्रिय सरकार की स्थापना का अधिकार लोकतंत्र का मुख्य स्तम्भ होता है। यह अधिकार किसी भी नागरिक की उस सर्वोच्च स्वतंत्रता को परिलिखित करता है, जिसे अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता कहा जाता है। अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को भारतीय संविधान में मूल अधिकारों की श्रेणी में रखा गया है।

निर्वाचन आयोग अनेक बार निर्वाचनों के आयोजन में आकस्मिक कठिनाइयों के समय अपनी स्थिति को काफी असहाय व अशक्त महसूस करता है, जिससे निर्वाचन आयोग स्वतंत्र व निष्पक्ष चुनाव कराने में समर्थ नहीं हो पाता है। निर्वाचन के समय निर्वाचन आयोग की राज्यस्तरीय निर्वाचन तंत्र पर निर्भरता, सम्बन्धित राज्य सरकार के असहयोग, निर्वाचन कानूनों की दुर्बलता, चुनाव में काले धन की भूमिका, सरकार द्वारा सरकारी तंत्र व सरकारी संसाधनों का दुरुपयोग, प्रत्याशियों द्वारा निर्धारित सीमा से अधिक खर्च करना, आचार संहिता का सरकार, राजनीतिक दलों, प्रत्याशियों इत्यादि द्वारा पालन न किया जाना

तथा इस सम्बन्ध में निर्वाचन आयोग की असमर्थता इत्यादि द्वारा एक स्वतंत्र व निष्पक्ष चुनाव सम्पन्न कराना निर्वाचन आयोग के लिए एक गम्भीर समस्या बन गयी है।

निर्वाचन आयोग द्वारा स्वतंत्र व निष्पक्ष चुनाव के संचालन में एक मुख्य समस्या निर्वाचन आयोग के अपने सचिवालय के कर्मियों तथा अधिकारियों की नियुक्ति व सेवा शर्तों इत्यादि के सम्बन्ध में उसकी सरकार के ऊपर निर्भरता भी है। इन सभी प्रक्रियाओं का सम्पादन एवं प्रशासनिक नियंत्रण भारत सरकार के विधि मंत्रालय के विधान विभाग द्वारा किया जाता है। निर्वाचन आयोग की वित्त व्यवस्था भी सरकारी नियंत्रण में रहती है, जिसके परिणाम स्वरूप निर्वाचन आयोग निर्वाचनों के संचालन के समय अपने आप को कार्यपालिका के नियंत्रण से मुक्त नहीं कर पाता है।

वास्तव में लोकतंत्र में महत्वपूर्ण बात यह नहीं है कि सरकार का निर्वाचन जनता द्वारा किया जाता है, बल्कि महत्वपूर्ण पहलू यह है कि निर्वाचन कितने निष्पक्ष व स्वतंत्र होते हैं और आम जनता का निर्वाचन आयोग पर कितना विश्वास होता है तथा निर्वाचन तंत्र का संगठन कितनी निष्पक्षता, ईमानदारी व स्वतंत्रता पूर्वक हुआ है। इसके साथ ही महत्वपूर्ण तथ्य यह भी है कि निर्वाचन आयोग द्वारा स्वतंत्रता पूर्वक अपने दायित्वों का निर्वहन सम्भव है या नहीं? क्योंकि लोकतंत्र की सुचिता, निर्वाचन तंत्र की निष्पक्षता और जन विश्वास पर ही निर्भर करता है।

वर्तमान समय में किसी भी देश में निर्वाचन के माध्यम से कानून निर्मात्री संस्था का गठन तो कर लिया जाता है परन्तु कोई भी शासन व्यवस्था अपने कार्यों का सम्पादन कुशलता पूर्वक तभी कर सकता है, जब कार्य करने वाला तंत्र पूर्ण ईमानदारी एवं निष्ठापूर्वक अपने दायित्वों का निर्वहन करे। यह तभी सम्भव है जब उसका निर्वाचन स्वतंत्रता पूर्वक व निष्पक्षता पूर्ण तरीके से हुआ हो। निर्वाचन ही वह बुनियादी आधार है जिस पर शासन व्यवस्था रुपी भवन का निर्माण किया जाता है। अतः यह नितान्त आवश्यक है कि जब निर्वाचन का तरीका श्रेष्ठ व स्वच्छ है, तो शासन करने वाला तंत्र भी श्रेष्ठ व स्वच्छ तरीके से अपने कार्यों का निर्वहन कर सकेगा। आज स्वतंत्र व निष्पक्ष निर्वाचन एक सामयिक आवश्यकता है, जिससे यह बात सुनिश्चित हो सके कि भारतीय राजनीतिक प्रणाली स्वतंत्र, स्वच्छ व निष्पक्ष है।

किसी भी प्रजातंत्र का वर्तमान व भविष्य उसके निर्वाचकों के निष्पक्ष, स्वतंत्र एवं सुचिता पूर्ण व्यवहार पर निर्भर करता है। वास्तव में निर्वाचन लोकतंत्र का अनिवार्य अंग है और शुद्ध, स्वच्छ, स्वतंत्र व निष्पक्ष निर्वाचन प्रणाली प्रजातंत्र को प्रतिनिधि तंत्र बनाने का महानतम साधन है। लोकतंत्र सहमति व सहभागिता पर आधारित एक ऐसी सहकारी संस्था है, जिसका अस्तित्व निर्वाचन व्यवस्था की निष्पक्ष क्षमता पर निर्भर करता है।

भारतीय संविधान निर्माताओं को लोकतांत्रिक सरकारों की ऐसी पृष्ठभूमि का ज्ञान था, जिसमें विधायिका के सर्वोत्कृष्ट मन्त्रियों के वावजूद स्वतंत्र व निष्पक्ष निर्वाचन तंत्र के अभाव में निर्वाचन कानून राजनीतिक द्वेष के साधन बना दिये जाते हैं। संविधान निर्माताओं की मान्यता थी कि किसी भी लोकतांत्रिक सरकारों की पूर्ण अवधारणा में आम जनता का विश्वास इस बात पर निर्भर करता है कि निर्वाचन सम्पन्न कराने वाला तंत्र, उसका प्रशासन तथा निर्वाचन प्रक्रिया कितनी स्वतंत्र व निष्पक्ष है। हमारे संविधान निर्माताओं को यह विश्वास था कि लोकतांत्रिक संसदीय सरकार की अवधारणा में आम जनता का विश्वास एवं निष्ठा इस बात पर निर्भर करती है कि निर्वाचन तंत्र एवं उससे सम्बन्धित प्रशासन के नियमों के अधीन निर्वाचन प्रक्रिया कितनी ईमानदार, जन विश्वासी, गोपनीय एवं निर्वाचन पंजीकरण तंत्र तथा मतगणना सम्पन्न करने वाला तंत्र कितना निष्पक्ष है।

भारतीय संविधान निर्माताओं ने यह भली-भांति आत्मसात कर लिया था कि लोकतंत्र की सफलता एवं उसका भविष्य निर्वाचन की सुचिता एवं निष्पक्षता पर निर्भर करता है। यह शाश्वत सत्य है कि राजनीति और प्रशासन तंत्र कभी एक दूसरे से अप्रभावित नहीं रह सकते हैं। राजनीति और प्रशासन तंत्र सदैव एक दूसरे को प्रभावित करते रहते हैं। हमारे संविधान निर्माता निर्वाचन की निष्पक्षता एवं स्वतंत्रता के महत्व से भी अवगत थे। वास्तव में स्वतंत्र व निष्पक्ष चुनाव एक गम्भीर समस्या है। निर्वाचन के आयोजन में निर्वाचन आयोग की भूमिका को सामान्यतया संदेह से परे माना जाता है, लेकिन निर्वाचनों के दौरान आने वाले कठिनाइयों द्वारा निष्पक्ष व स्वतंत्र निर्वाचन में निर्वाचन आयोग अपने को सक्षम नहीं पाता है। उसके साथ ही कुछ संगठनात्मक कठिनाइयाँ भी स्वतंत्र व निष्पक्ष निर्वाचन में गम्भीर समस्या पैदा कर देती हैं।

स्वतंत्र एवं निष्पक्ष चुनाव के घटक-

1. चुनाव आयोग की स्वतंत्रता- भारत में चुनाव आयोग (ECI) एक संवैधानिक निकाय है जो चुनावों की पारदर्शिता बनाए रखने के लिए स्वतंत्र रूप से कार्य करता है।
2. मतदान की गोपनीयता- मतदाता की स्वतंत्रता सुनिश्चित करने के लिए गोपनीय मतदान की व्यवस्था की जाती है।
3. आदर्श आचार संहिता (MCC)- चुनावों के दौरान निष्पक्षता बनाए रखने के लिए MCC लागू किया जाता है।
4. इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीन (EVM) एवं VVPAT- चुनावी प्रक्रिया में पारदर्शिता लाने के लिए म्टड और टटचज् प्रणाली का उपयोग किया जाता है।
5. चुनावी निगरानी एवं मीडिया की भूमिका- मीडिया और निगरानी एजेंसियां चुनाव प्रक्रिया में निष्पक्षता सुनिश्चित करने में अहम भूमिका निभाती हैं।

भारत में स्वतंत्र एवं निष्पक्ष चुनाव की गंभीर समस्याएँ-

1. धनबल और बाहुबल का प्रभाव, चुनावों में उम्मीदवारों द्वारा अवैध रूप से धन का प्रयोग करके मतदाताओं को प्रभावित करने के प्रयास किए जाते हैं। कई क्षेत्रों में बाहुबलियों द्वारा मतदाताओं को धमकाने की घटनाएँ भी सामने आती हैं।
2. पक्षपातपूर्ण मीडिया और फेक न्यूज, चुनावों के दौरान मीडिया का दुरुपयोग, गलत जानकारी और दुष्प्रचार लोकतांत्रिक प्रक्रिया को प्रभावित करता है। सोशल मीडिया पर फेक न्यूज फैलाकर मतदाताओं की राय को प्रभावित करने के प्रयास होते हैं।

3. मतदाता सूची में अनियमितता, कई बार मतदाता सूची में गलतियों के कारण कई पात्र मतदाता मतदान से वंचित रह जाते हैं। बोगस वोटिंग और डुप्लीकेट वोटिंग जैसी समस्याएँ भी सामने आती हैं।
4. सांप्रदायिक और जातिगत ध्रुवीकरण, चुनावों के दौरान राजनीतिक दल धर्म और जाति के आधार पर ध्रुवीकरण करने का प्रयास करते हैं, जिससे निष्पक्षता प्रभावित होती है।
5. चुनावी हिंसा और आचार संहिता के उल्लंघन, कई स्थानों पर चुनावी हिंसा, बूथ कैप्चरिंग और अन्य अवैध गतिविधियाँ निष्पक्ष चुनाव में बाधा डालती हैं। राजनीतिक दल आचार संहिता का पालन नहीं करते और अनुचित प्रचार करते हैं।

समाधान एवं सुधार के सुझाव-

1. चुनाव आयोग को और सशक्त बनाना- चुनाव आयोग को स्वतंत्र रूप से निर्णय लेने की और अधिक शक्ति दी जानी चाहिए।
2. चुनावी वित्तीय पारदर्शिता- चुनावी चंदे की पारदर्शिता सुनिश्चित करने के लिए सख्त कानून लागू किए जाने चाहिए।
3. फेक न्यूज पर नियंत्रण- सोशल मीडिया प्लेटफार्मों पर फेक न्यूज को नियंत्रित करने के लिए कठोर नियम बनाए जाएं।
4. मतदाता शिक्षा अभियान- मतदाताओं को उनके अधिकारों और निष्पक्ष मतदान के महत्व के बारे में जागरूक करने के लिए व्यापक अभियान चलाए जाएं।
5. प्रौद्योगिकी का उपयोग- बायोमेट्रिक वोटिंग सिस्टम और 1P आधारित निगरानी प्रणाली से चुनावी अनियमितताओं को कम किया जा सकता है।

निष्कर्ष-

भारत में स्वतंत्र एवं निष्पक्ष चुनावों को सुनिश्चित करने के लिए कई संवैधानिक प्रावधान मौजूद हैं, लेकिन इन चुनावों को प्रभावित करने वाली समस्याएँ भी गंभीर हैं। चुनावी सुधारों के माध्यम से इन चुनौतियों से निपटा जा सकता है ताकि लोकतांत्रिक प्रक्रिया अधिक पारदर्शी और निष्पक्ष बन सके।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- आमण्ड, गैबरिल एण्ड पावेल कम्परेटिव पालिटिक्स-ए डेवलपमेंट एप्रोच, बोस्टन, 1966
- आचार्य, के. आर. द क्रिटिकल्स इलेक्सन्स-ए स्टडो आफ आन्ध्र प्रदेश इलेक्सन्स, 1978, हैदराबाद, 1979
- अग्रवाल, जे. सी. इलेक्सन्स इन इण्डिया (1952-1998), शिप्रा पब्लिकेशन्स नई दिल्ली 1998
- बार्कर, अर्नेस्ट प्रिंसिपल आफ सोसल-पोलिटिकल थ्योरी, आक्सफोर्ड, 1951
- बार्कर, अर्नेस्ट पोलिटिकल आफ एरिस्टाटल, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1948
- बाल, ए आर माडर्न पोलिटिक्स एण्ड गवर्नमेंट, लन्दन 1971
- डहल, राबर्ट डेमोक्रेसी एण्ड इट्स क्रिटिकस, ओरिएन्ट लाँगमन, दिल्ली 1991
- बीयर सैनल, एच. प्रेसर ग्रुप एण्ड पार्टीज इन ब्रिटेन अमेरिकन पोलिटिकल साइंस, रीव्यू, वाल्यूम-1, नम्बर-3, 1956
- भल्ला, आर. पी. इलेक्सन्स इन इंडिया, एस. चौद एण्ड कम्पनी नई दिल्ली, 1973
- भल्ला, आर. पी. इलेक्सन्स इन इंडिया, एस. चौद एण्ड कम्पनी नई दिल्ली, 1998
- बनर्जी, ए. के. द फोर्थ जनरल इलेक्सन्स इन इंडिया-एन एनालिसिस, कलकत्ता, बेनसन्स, 1967
- डहल, राबर्ट एण्ड ए न्यू बियर डोन माडर्न पोलिटिकल्स एनालिसिस, नई दिल्ली, 1965
- दिवाकर आर. के. कांस्टीट्यूसनल असेम्बली डिबेट्स, खण्ड -7
- ईस्टन, डेविड द पोलिटिकल सिस्टम, लन्दन, 1953
- ईस्टन, डेविड ए फ्रेम वर्क फार पोलिटिकल एनालिसिस, न्यू यार्क, 1960
- इबन्स्टोन, बिलियम माडर्न पोलिटिकल थोट-द ग्रेट इश्यूज, न्यूयार्क 1970
- गुप्ता, अनिरुद्ध रिवोल्यूसन थू बैलेट, अंकुर पब्लिकेशन्स हाउस, 1977
- आस्टिन, ग्रेनविल द इण्डियन कांस्टीट्यूशन कार्नर स्टोन आफ ए नेशन, आक्सफोर्ड, 1966
- कोठारी, रजनी पोलिटिक्स इन इंडिया, ओरिएन्ट लाँगमन लिमिटेड, 1970
- कोठारी, रजनी एण्ड अदर्श कान्टेक्स्ट आफ इलेक्ट्रोलर चेंजेज इन इंडिया, जनरल इलेक्सन्स 1967, बाम्बे एकेडमी बुक 1969
- मैकाइवर, आर. एम. द वेब आफ गवर्नमेंट्स, न्यूयार्क 1947
- मिलर, जे.डी.वी.द नेचर आफ पोलिटिक्स, लन्दन 1962
- महेश्वरी, आर. आर. द जनरल इलेक्सन्स इन इंडिया, चौतन्य पब्लिसिंग हाउस, इलाहाबाद, 1963
- नारायण, इकबाल एण्ड अदर्स इलीट एण्ड इलेक्सन्स, मिनाक्षी प्रकाशन, मेरठ, 1978
- पामर, एन. डी. इलेक्सन्स एण्ड पोलिटिकल डेवलपमेंट द साउथ एशियन इक्सपीरिएन्स, विकास, नई दिल्ली 1976

भक्ति साहित्य की प्रासंगिकता

डॉ० चंद्रकांत बापूराव जोगदंड

विभागाध्यक्ष, हिन्दी विभाग, आर. वाय. पी. कला महाविद्यालय, विहामांडवा, ता. पैठण, जि. औरंगाबाद

प्रस्तावना

धर्म ग्रंथों में यह प्रतिपादित हुआ है कि भक्ति मानव सभ्यता की आदि भावना है। धर्म का संचालन तीन माध्यमों से व्यक्त होता है- ज्ञान, कर्म तथा भक्ति। ज्ञान, कर्म एवं भक्ति इन तीनों के सामंजस्य से ही धर्म पूर्णता को प्राप्त होता है। मानव के लिए इस भू-लोक में कर्म और भक्ति ही वास्तविक सम्पत्ति होती है। मानव जीवन की सुगमता के लिए ही भक्ति पंथ का विस्तृत प्रचार धार्मिक जगत में विद्यमान है। भक्ति की विशेषता यह है कि इसके माध्यम से ही मानव ईश्वरीय शक्ति अपना तादात्म्य स्थापित कर सकता है। इस सन्दर्भ में महर्षि शांडिल्य का कथन इस प्रकार है-

“ईश्वर के प्रति अनन्य अनुरक्ति अथवा अनुराग को ही भक्ति की संज्ञा प्रदान की गयी है।”

इसके अतिरिक्त नारद भक्ति सूत्र में भी भक्ति की व्याख्या इस प्रकार की गयी है-

“ईश्वर के प्रति प्रेम का नाम ही भक्ति है। भक्ति अमृत स्वरूपा होती है। अमृत रूपी भक्ति का पान करके मनुष्य तृप्त (मोक्ष की प्राप्ति) हो जाता है।”¹

श्रीमद् भागवत महापुराण में भक्ति को सांसारिक विषयों का ज्ञान देने वाली इन्द्रियों की स्वाभाविक प्रवृत्ति, निष्काम रूप से जब भगवान में लगती है तब इसी प्रवृत्ति को भक्ति की संज्ञा प्रदान की जाती है। भक्ति की विशेषता यह है कि यह पूर्ण रूपेण निष्काम होगी तभी वह भक्ति मानी जायेगी अन्यथा इसे आडम्बर कहा जायेगा। भक्ति का आश्रय लेने वाला भक्त जब भगवान में अनुरक्त होकर स्वच्छ चित्त वृत्ति, परिग्रह शून्य, शान्त, समस्त जीवों पर दया की भावना तथा अभिमान रहित होकर स्थित होता है तब वह परमानन्द (अपार सुख) की अनुभूति करता है। इस परमानन्द का अनुभव ईश्वर भक्त के अतिरिक्त अन्य कोई नहीं अनुभव कर सकता है। ईश्वर के प्रति अनन्य श्रद्धा शरणागति, अनुराग तथा प्रेम इत्यादि सगुणभक्ति के लक्षण हैं।

सृष्टि के आरम्भ से ही मानव ईश्वर भक्ति का उपासक रहा है। सृष्टि के प्रारम्भ में वैदिक धारणा के अंतर्गत ‘ब्रह्म’ के प्राकट्य के पश्चात् त्रिमूर्ति स्वरूप में ब्रह्मा विष्णु-महेश का प्रादुर्भाव माना जाता है। इसके पश्चात् ब्रह्मा जी ने परमशक्ति के आदेशानुसार मानवी सृष्टि का प्रारम्भ किया और सनत-सनन्दन-सनातन-सन्तकुमार इन चार आदि ऋषियों की उत्पत्ति की। ये चार ऋषि बाल ब्रह्मचारी के स्वरूप में ही सदैव रहते हैं तथा ईश्वर की आराधना में ही तल्लीन एवं मग्न रहकर मानव कल्याण की आकांक्षा की कामना करते रहते हैं। इसके पश्चात् सप्तर्षियों की उत्पत्ति का प्रमाण प्राप्त होता है ये सप्तर्षि इस प्रकार हैं- कश्यप, अत्रि, वशिष्ठ, विश्वामित्र, गौतम, जमदग्नि तथा भारद्वाज आदि। इन सप्तर्षियों ने भी मानव हितार्थ ईश्वर की उपासना की है। अतः यह सिद्ध होता है कि सृष्टि की उत्पत्ति के समय से ही सगुण भक्ति का प्रमाण वैदिक एवं अन्य धार्मिक ग्रंथों के माध्यम से प्राप्त होता है। भक्ति साहित्य क्या है? इसके विषय में ज्ञात करना अति आवश्यक है।

भक्ति

हिन्दी साहित्य के इतिहास का अध्ययन करने के उपरांत यह विदित होता है कि हिन्दी साहित्य के इतिहास को काल क्रमानुसार साहित्यिक विद्वानों द्वारा तीन कालखण्डों में विभाजित किया गया है।

1. आदिकाल अर्थात् वीरगाथा काल
2. मध्यकाल अर्थात् भक्तिकाल
3. आधुनिक काल।”²

आधुनिक साहित्यिक विद्वानों ने हिन्दी साहित्य के काल को पाँच भागों में विभक्त किया है। यथा-1 आदिकाल, 2. भक्तिकाल, 3. रीतिकाल, 4. आधुनिक काल तथा 5. नव्योत्तर काल आदि।

भक्ति शब्द का आशय ज्ञात करने के लिए नालंदा विशाल शब्द सागर में इस प्रकार वर्णित हुआ है। “1. बाँटना, अनेक भागों में विभक्त करना, 2. भाग, विभाग, 3. वह विभाग जो रेखा द्वारा किया गया हो 4. बाँटने या विभाग करने 5. अंग, अवयव, 6. खण्ड, 7. पूजा, अर्चन, 8. सेवा शुश्रूषा 9. विश्वास, 10. श्रद्धा, 11. रचना, 12. स्नेह, अनुराग, 13. देवी-देवता या ईश्वर के प्रति होने वाली विशेष श्रद्धा और प्रेम जो नौ प्रकार का माना गया है यथा-श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वंदन, दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन आदि। 14. किसी बड़े के प्रति होने वाली श्रद्धा या आदर भाव। 15. जैन मतानुसार वह ज्ञान जिसमें निरतिशय आनंद हो तथा जो सर्वप्रिय, अनन्य, प्रयोजन, विशिष्ट और वितृष्णा का उदयकारक हो, 16. एक वर्णवृत्त जिसके प्रत्येक चरण में तगण, यगण और अन्त में दो गुरु होते हैं, 17. उपचार, 18. भंगी तथा 19 गौणवृत्ति आदि।”³

ईश्वर भक्ति अर्थात् ईश्वर की पूजा-अर्चना आदिक्रिया का विश्लेषण करने वाले साहित्य को भक्ति साहित्य की संज्ञा प्रदान की गयी है। इस धरा मंडल पर जब-जब मानवता को आसुरी प्रवृत्तियों द्वारा दुःख पहुँचाया गया तब-तब अवतार लेना पड़ा है तथा दुष्टों का संहार करके धर्म की स्थापना का कार्य भी करना पड़ा है।

“यदा-यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजनाम्यहम्॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मं संस्थापनार्थाय सम्भवानि युगे-युगे॥”⁵

भक्ति साहित्य के प्रकार

भक्ति साहित्य को विद्वत् जनों ने दो भागों में विभक्त किया है। सगुण भक्ति साहित्य तथा निर्गुण भक्ति साहित्य।

हिन्दी साहित्य के इतिहास में काल विभाजन के अन्तर्गत भक्तिकाल का समय विक्रमी संवत् 1375 से 1700 तक माना गया है। इसमें यह भी वर्णित हुआ है कि भक्ति की दो धाराएँ हैं प्रथम सगुण भक्ति तथा द्वितीय निर्गुण भक्ति। निर्गुण भक्ति धारा के अन्तर्गत अनेक निर्गुण संतों तथा सूफी संतों का साहित्य समावेशित है। सगुण भक्ति धारा में राम तथा कृष्ण भक्ति की दो शाखाएँ समावेशित हैं।

सगुण भक्ति साहित्य

सगुण भक्ति अर्थात् राम और कृष्ण की भक्ति का उद्भव हमें वेद ग्रंथों से प्राप्त होता है। भारतवर्ष की पावन धरा पर सगुण भक्ति का उदय वेद ग्रंथों के माध्यम से ही हुआ है भक्ति साहित्य के अन्तर्गत वेद आदि ग्रंथ है। इसके अनन्तर, उपनिषद, भाष्य, 18 महापुराण, उपपुराण, श्रीमद्भगवद्गीता, रामायण, महाभारत अरण्यक, ब्राह्मण ग्रंथ, जैन साहित्य, बौद्ध साहित्य, जातक ग्रंथ के अतिरिक्त अनेक साधु संतों के ग्रंथ तथा अनेक साहित्यकारों की भक्तिपरक साहित्यिक कृतियों में भी सगुण भक्ति का विवरण हमें प्राप्त होता है। भक्ति पथ सभी भक्तों के लिए समान रूप से उन्मुक्त होता है। भक्ति का उदय आत्मा के जन्म-मरण के चक्र को समाप्त करने के लिए हुआ है। भक्ति का भाव उत्पन्न होने पर भव-बंधन का चक्र कट जाता है। यह धार्मिक धारणा संत-मुनियों एवं विद्वत् जनों ने स्थापित की है। इस मृत्युलोक में ‘श्री रामचरित मानस’ ग्रंथ सगुण भक्ति का सर्वोत्तम उत्कृष्ट ग्रंथ है। वैसे यदि देखा जाये तो श्रीमद् भगवद्गीता में भी भक्ति की व्याख्या की गयी है। परन्तु उसमें आध्यात्मिकता की मात्रा अधिक है।

श्रीमद् भागवत महापुराण ग्रंथ भक्ति साहित्य की एक अनमोल कृति है। इस ग्रंथ में भक्ति की विस्तृत व्याख्या प्रस्तुत हुई है। इसके अतिरिक्त भी अनेक पुराण ग्रंथों में भगवान कृष्ण के अवतार एवं विशद स्वरूप की व्याख्या विशुद्ध रूप से प्रस्तुत की गयी है। मानव का जन्म परमात्मा के माध्यम से ही हुआ है। अतः मानव में स्वभावतः ही ईश्वर भक्ति विद्यमान है।

निष्कर्ष

मानव सृष्टि का अनमोल रत्न है। मानव ईश्वरीय शक्तियों से ओत-प्रोत, असीम सिद्धियों से युक्त तथा सर्वाधिक शक्तिशाली प्राणी है। इसके अतिरिक्त वह बुद्धिमान, ज्ञानी, देवत्व दर्शन वाला भी है। ईश्वर ने उसके मन-मस्तिष्क एवं शरीर में आत्मा में ज्ञान का अक्षय भण्डार भर दिया है। उसी से दैवी चेतना विकसित होकर उसमें ईश्वर की ज्योति जगमग प्रकाश करती है। ज्योति के जगमग होने का स्रोत भक्ति भावना है। इन्हीं अनेकानेक विशेषताओं के कारण मानव जीवन में सगुण भक्ति का अत्यन्त महत्व है। सगुण भक्ति साहित्य के माध्यम से समाज को व्यवस्थित स्वरूप प्रदान किया जा सकता है सामाजिक विकारों को नष्ट किया जा सकता है। अतः मानव के सुखमय जीवन के लिए सगुण भक्ति साहित्य नितान्त आवश्यक है।

संदर्भ-ग्रंथ-सूची

1. वैष्णव धर्म एवं दर्शन-पं. रघुवीर सिंह शर्मा, पृ. 38, आभा प्रकाशन दिल्ली
2. वही, पृ. 38
3. हिन्दी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ-डॉ. शिवकुमार मिश्र, पृ. 6, अशोक प्रकाशन दिल्ली
4. नालंदा विशाल शब्द सागर, सं. श्री नवल जी, पृ. 1006, आदीश बुक डिपो, दिल्ली
5. श्रीमद्भगवद्गीता 4/7-8

“विपणन रणनीतियों के विकास में संचालन अनुसंधान तकनीकों की उपयोगिता : एक व्यावहारिक अध्ययन”

भुवनेश कुमार शर्मा

ईश्वरदयाल परसदीदेवी (स्नातकोत्तर) महाविद्यालय, बुलन्दशहर

सम्बद्ध: चौधरी चरण सिंह युनिवर्सिटी, मेरठ

शोधसार :

वर्तमान वैश्वीकरण और प्रतिस्पर्धात्मक युग में विपणन (मार्केटिंग) केवल उत्पाद के प्रचार तक सीमित न होकर एक बहुआयामी रणनीतिक प्रक्रिया बन चुकी है, जो उपभोक्ता की मनोवृत्ति, बाजार प्रवृत्तियों, आपूर्ति-शृंखला और व्यावसायिक संसाधनों के इष्टतम उपयोग पर आधारित होती है। इस शोध-पत्र में संचालन अनुसंधान (Operations Research) की विश्लेषणात्मक तकनीकों की उपयोगिता का गहन परीक्षण किया गया है, जो विपणन रणनीतियों के वैज्ञानिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।

प्रस्तुत अध्ययन में रैखिक प्रोग्रामन (Linear Programming), सिमुलेशन (Simulation), गेम थ्योरी (Game Theory), क्यू थ्योरी (Queuing Theory), और निर्णय विश्लेषण (Decision Analysis) जैसे संचालन अनुसंधान उपकरणों का प्रयोग विभिन्न विपणन परिदृश्यों में किया गया है, जैसे-विपणन बजट का आवंटन, विज्ञापन माध्यमों का चयन, वितरण नेटवर्क का अनुकूलन, उपभोक्ता व्यवहार की भविष्यवाणी आदि। अध्ययन का स्वरूप विशुद्ध रूप से व्यावहारिक है, जिसमें बहुराष्ट्रीय कंपनियों और उभरते स्टार्टअप्स के केस स्टडीज के माध्यम से यह स्पष्ट किया गया है कि कैसे संचालन अनुसंधान विपणन निर्णयों को डेटा-आधारित, कुशल और प्रतिस्पर्धात्मक बनाता है।

शोध निष्कर्ष दर्शाते हैं कि संचालन अनुसंधान तकनीकों के समावेश से न केवल विपणन प्रक्रियाओं में लागत-कुशलता और समय-संवेदनशीलता प्राप्त होती है, बल्कि यह भी सुनिश्चित होता है कि विपणन रणनीतियाँ अधिक वैज्ञानिक, मापनक्षम और अनुकूल परिस्थितियों के अनुसार अनुक्रियाशील हों। इस प्रकार, यह अध्ययन विपणन और संचालन अनुसंधान के अंतर्संबंध को व्यावसायिक सफलता की दिशा में एक सशक्त युग्म के रूप में प्रस्तुत करता है।

Keywords: संचालन अनुसंधान, विपणन रणनीति, रैखिक प्रोग्रामन, सिमुलेशन तकनीक, गेम थ्योरी, रणनीतिक नियोजन।

भूमिका :

21वीं सदी के व्यापारिक परिवेश में विपणन (Marketing) एक मात्र उत्पाद प्रचार क्रिया न होकर एक रणनीतिक नवाचार (Strategic Innovation) बन चुका है, जो बाजार की अनिश्चितताओं, उपभोक्ता की बदलती प्राथमिकताओं और वैश्विक प्रतिस्पर्धा के संदर्भ में निरंतर विकसित होता जा रहा है। इस जटिल और गतिशील ढांचे में संचालन अनुसंधान (Operations Research – OR) तकनीकों का प्रयोग एक क्रांतिकारी परिवर्तन के रूप में उभरकर सामने आया है। संचालन अनुसंधान वह वैज्ञानिक अनुशासन है, जो गणितीय मॉडलिंग, सांख्यिकीय विश्लेषण और तर्कशास्त्रीय निर्णय-प्रणालियों के माध्यम से जटिल व्यावसायिक समस्याओं के समाधान प्रस्तुत करता है।

विपणन रणनीतियों के निर्माण में अब केवल अनुभव या पारंपरिक विधियों पर निर्भर नहीं रहा जा सकता। उपभोक्ता व्यवहार की जटिलता, बाजार विभाजन (Market Segmentation), मूल्य निर्धारण (Pricing), उत्पाद स्थिति निर्धारण (Product Positioning), और वितरण चैनलों (Distribution Channels) के लिए डेटा-आधारित निर्णय-प्रणालियों की आवश्यकता बढ़ गई है। संचालन अनुसंधान की तकनीकें जैसे-रैखिक प्रोग्रामन, नियतात्मक मॉडलिंग, सिमुलेशन, क्यू थ्योरी, गेम थ्योरी, तथा बहु-प्रत्याशा निर्णय विश्लेषण-इन समस्याओं को विश्लेषणात्मक ढंग से सुलझाने में मदद करती हैं।

यह अध्ययन विश्लेषण करता है कि किस प्रकार संचालन अनुसंधान की तकनीकें विपणन रणनीति के विभिन्न आयामों-जैसे बजट आवंटन, संसाधन नियोजन, प्रचार माध्यम चयन, वितरण नेटवर्क निर्माण, और ग्राहक संतुष्टि मूल्यांकन-में लागू की जा सकती हैं। शोध में प्रायोगिक उदाहरणों, केस स्टडीज, और मॉडलिंग तकनीकों के माध्यम से यह स्पष्ट किया गया है कि संचालन अनुसंधान विपणन रणनीतियों को अनुकूल, कुशल और प्रतिस्पर्धात्मक बनाने में कैसे सहायक सिद्ध होता है।

आज के डिजिटल युग में जब बिग डेटा, क्लाउड एनालिटिक्स, और AI-संचालित मार्केटिंग जैसी अवधारणाएँ विकसित हो रही हैं, संचालन अनुसंधान की पद्धतियाँ विपणन निर्णयों को न केवल अधिक वैज्ञानिक और मापनक्षम, बल्कि उपभोक्ता-केन्द्रित भी बनाती हैं। इस शोध का उद्देश्य इन तकनीकों के व्यावहारिक अनुप्रयोगों की पहचान कराना, उनकी सीमाओं और संभावनाओं का विश्लेषण करना, और भविष्य के लिए एक समग्र दृष्टिकोण विकसित करना है।

शोध की आवश्यकता

वर्तमान वैश्विक व्यापार जगत में जहाँ एक ओर प्रतिस्पर्धा तीव्र गति से बढ़ रही है, वहीं दूसरी ओर उपभोक्ता की अपेक्षाएँ भी अत्यंत जटिल और परिवर्तनशील होती जा रही हैं। ऐसी स्थिति में किसी भी व्यावसायिक संगठन के लिए यह आवश्यक हो गया है कि वह अपनी विपणन रणनीतियों को केवल परंपरागत अनुभव या अनुमान के आधार पर न बनाकर वैज्ञानिक एवं विश्लेषणात्मक विधियों पर आधारित करे। इस परिप्रेक्ष्य में संचालन अनुसंधान (Operations Research – OR) की तकनीकें एक अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं, जो विपणन क्षेत्र को सुव्यवस्थित, मापनक्षम और प्रतिस्पर्धात्मक बनाने की दिशा में सशक्त उपकरण प्रदान करती हैं।

व्यापारिक क्षेत्र में विशेष रूप से यह देखा गया है कि व्यापारिक संस्थान सीमित संसाधनों, जटिल आपूर्ति श्रृंखला, बजटीय दबावों तथा समय-संवेदी निर्णयों के बीच कार्य करते हैं। संचालन अनुसंधान, अपनी गणितीय मॉडलिंग, सांख्यिकीय विश्लेषण तथा निर्णय-निर्माण तकनीकों के माध्यम से इन समस्याओं को न केवल सुलझाता है, बल्कि उन्हें सामरिक अवसरों में परिवर्तित करने की क्षमता भी प्रदान करता है। विपणन रणनीतियों के विविध पक्ष-जैसे मूल्य निर्धारण, विज्ञापन माध्यम का चयन, लक्षित ग्राहक समूह की पहचान, और वितरण नेटवर्क का अनुकूलनख़ड़िन सभी में OR तकनीकों की प्रासंगिकता आज पहले से कहीं अधिक गहरी हो चुकी है।

आधुनिक व्यापारिक परिदृश्य में डेटा-संचालित निर्णय प्रणाली (Data-driven Decision System) का बोलबाला है। कंपनियाँ उपभोक्ता व्यवहार को समझने के लिए बिग डेटा एनालिटिक्स, मशीन लर्निंग, तथा पूर्वानुमान मॉडलिंग जैसी तकनीकों का सहारा ले रही हैं। इन सभी आधुनिक प्रविधियों की बुनियादी संरचना कहीं न कहीं संचालन अनुसंधान की सिद्धांतात्मक एवं व्यावहारिक तकनीकों से जुड़ी होती है। ऐसे में यह शोध इस तथ्य की पड़ताल करने के लिए अत्यावश्यक है कि कैसे वे तकनीकें आधुनिक विपणन रणनीतियों को गति और दिशा प्रदान कर सकती हैं।

इस शोध की आवश्यकता इसलिए भी है क्योंकि व्यापार के क्षेत्र में OR और विपणन के अंतर्संबंध पर सीमित मात्रा में भारतीय परिप्रेक्ष्य आधारित अध्ययन उपलब्ध हैं। अधिकांश शोध या तो सैद्धांतिक स्तर तक सीमित हैं या पश्चिमी देशों के व्यवसायिक मॉडल पर आधारित हैं। इस शोध के माध्यम से भारतीय व्यापारिक संस्थानों-विशेषतः लघु, मध्यम और स्टार्टअप इकाइयों-में संचालन अनुसंधान तकनीकों के व्यावहारिक अनुप्रयोग को प्रस्तुत करना एक महत्वपूर्ण उद्देश्य है।

इसके अतिरिक्त, यह शोध व्यावहारिक केस स्टडी, ऑकड़ों का विश्लेषण, और मौजूदा रणनीतियों के तुलनात्मक अध्ययन के माध्यम से यह भी स्पष्ट करता है कि किस प्रकार संचालन अनुसंधान विपणन निर्णयों को अधिक प्रभावी, दक्ष, एवं अनुकूलनशील बनाता है। इससे व्यापार जगत को एक ऐसा रणनीतिक खाका प्राप्त होगा, जिसके माध्यम से वे न केवल प्रतिस्पर्धा का सामना कर सकेंगे, बल्कि दीर्घकालिक विकास की दिशा में सशक्त कदम भी उठा सकेंगे।

अतः वर्तमान युग में जहाँ व्यापार और प्रौद्योगिकी का गहन समावेश हो रहा है, वहाँ संचालन अनुसंधान तकनीकों के माध्यम से विपणन रणनीतियों के विकास का यह अध्ययन न केवल शोध-साहित्य में एक नवीन योगदान प्रस्तुत करेगा, बल्कि कॉमर्स जगत को वैज्ञानिक दृष्टिकोण से युक्त रणनीतिक दिशा भी प्रदान करेगा।

संचालन अनुसंधान की अवधारणा व ऐतिहासिक विकास

संचालन अनुसंधान (Operations Research – OR) एक अंतर्विषयी वैज्ञानिक अनुशासन है, जो गणितीय मॉडल, सांख्यिकीय विश्लेषण, तथा तर्कशील निर्णय-निर्माण की विधियों के माध्यम से जटिल समस्याओं के इष्टतम समाधान की तलाश करता है। यह क्षेत्र व्यापार, उद्योग, सेना, सरकार, और सामाजिक संस्थानों में संसाधनों के युक्तियुक्त उपयोग, लागत नियंत्रण, समय प्रबंधन और निर्णय कुशलता के उद्देश्य से कार्य करता है।

संचालन अनुसंधान का आरंभ द्वितीय विश्व युद्ध (World War II) के समय ब्रिटेन में हुआ, जब युद्धकालीन सैन्य समस्याओं को वैज्ञानिक दृष्टिकोण से हल करने के लिए मल्टीडिसिप्लिनरी टीमों का गठन किया गया। इन टीमों ने विमानों की उड़ान योजना, रडार की स्थिति, काफिले सुरक्षा, और युद्धसामग्री की आपूर्ति जैसे निर्णयों में गणितीय मॉडलिंग, सांख्यिकीय निष्कर्ष और तर्कशास्त्रीय विश्लेषण का प्रयोग किया। युद्ध के उपरांत इस पद्धति को औद्योगिक संगठनों और व्यावसायिक समस्याओं में भी सफलता पूर्वक लागू किया गया।

भारत में OR का प्रवेश 1950 के दशक में हुआ, जब सरकारी और औद्योगिक संस्थानों ने इसे प्रबंधन, उत्पादन, परिवहन, और वितरण समस्याओं के समाधान में अपनाना प्रारंभ किया। आज के डिजिटल युग में वे का क्षेत्र अत्यधिक व्यापक हो गया है, जहाँ यह बिग डेटा, मशीन लर्निंग, एआई-संचालित विश्लेषण, और सप्लाय चेन मैनेजमेंट जैसे आधुनिक क्षेत्रों से जुड़ चुका है।

OR की तकनीकों का अनुप्रयोग विपणन क्षेत्र में विशेष रूप से महत्वपूर्ण होता जा रहा है। उपभोक्ता मांग के पूर्वानुमान, उत्पाद मिलान, विज्ञापन बजट आवंटन, प्रचार माध्यम चयन, मूल्य निर्धारण रणनीति, और वितरण चैनल अनुकूलन जैसे अनेक क्षेत्रों में रैखिक प्रोग्रामिंग (Linear Programming), क्यू थ्योरी (Queuing Theory), सिमुलेशन (Simulation), निर्णय विश्लेषण (Decision Analysis), तथा नेटवर्क ऑप्टिमाइजेशन (Network Optimization) तकनीकों का प्रयोग व्यावहारिक लाभ देने लगा है। अतः वर्तमान प्रतिस्पर्धी और डेटा-संचालित व्यापारिक परिवेश में केवल अनुभव पर आधारित विपणन निर्णय पर्याप्त नहीं हैं। वैज्ञानिक एवं मापनक्षम दृष्टिकोण अपनाकर ही विपणन को रणनीतिक सफलता की दिशा में अग्रसर किया जा सकता है।

विपणन रणनीति का स्वरूप एवं घटक

विपणन रणनीति (Marketing Strategy) किसी भी व्यावसायिक संगठन की वह समग्र रूपरेखा है, जो उत्पादों और सेवाओं को लक्षित उपभोक्ता समूह तक प्रभावी ढंग से पहुँचाने, प्रतिस्पर्धात्मक लाभ अर्जित करने और दीर्घकालिक बाजार स्थिरता प्राप्त करने हेतु बनाई जाती है। यह रणनीति उपभोक्ता की आवश्यकताओं, बाजार की प्रवृत्तियों, प्रतिस्पर्धियों की स्थिति और संगठन की आंतरिक क्षमताओं के समन्वय पर आधारित होती है। एक सफल विपणन रणनीति न केवल बिक्री बढ़ाने का माध्यम होती है, बल्कि ब्रांड छवि, ग्राहक संतोष और बाजार स्थिति को भी सुदृढ़ करती है।

विपणन रणनीति के प्रमुख घटक:

विपणन रणनीति अनेक घटकों से मिलकर बनी होती है, जिनमें से प्रत्येक घटक का विश्लेषण संचालन अनुसंधान की तकनीकों के माध्यम से अधिक सटीक और प्रभावी रूप में किया जा सकता है।

1. बाजार विभाजन (Market Segmentation): उपभोक्ताओं को उनके व्यवहार, जनसांख्यिकी, भूगोल या मनोवैज्ञानिक गुणों के आधार पर विभाजित करना ताकि प्रत्येक खंड की विशेष आवश्यकताओं के अनुरूप रणनीति विकसित की जा सके।
2. लक्षित बाजार चयन (Target Market Selection): विभाजित बाजार खंडों में से सर्वाधिक लाभकारी खंड को प्राथमिकता देना, जहाँ कंपनी अपने संसाधनों का कुशलतम प्रयोग कर सके। यह निर्णय संचालन अनुसंधान में प्रयुक्त आंकड़ा विश्लेषण और पूर्वानुमान मॉडल से समर्थ होता है।
3. स्थिति निर्धारण (Positioning): उत्पाद या सेवा को उपभोक्ता के मन में विशिष्ट स्थान देना, जैसे गुणवत्ता, मूल्य, या नवाचार के आधार पर। यह रणनीति उपभोक्ता अनुसंधान और प्रतिस्पर्धात्मक विश्लेषण से प्रभावित होती है।
4. विपणन मिश्रण (Marketing Mix – 4P's):
 - Product (उत्पाद): उत्पाद की विशेषताएँ, गुणवत्ता, विविधता, ब्रांडिंग।
 - Price (मूल्य): मूल्य निर्धारण रणनीति, छूट, भुगतान शर्तें।
 - Place (स्थान): वितरण चैनल, स्थानिक पहुँच, लॉजिस्टिक्स।
 - Promotion (प्रचार): विज्ञापन, प्रचार, जनसंपर्क और बिक्री प्रोत्साहन।
5. ग्राहक संबंध प्रबंधन (Customer Relationship Management – CRM): दीर्घकालिक ग्राहक संबंध बनाए रखने हेतु तकनीकी एवं सेवा-आधारित रणनीतियाँ।
6. प्रतिस्पर्धात्मक विश्लेषण (Competitive Analysis): बाजार में प्रतिस्पर्धियों की गतिविधियों, शक्तियों और कमजोरियों का अध्ययन और उसके आधार पर अपनी रणनीति को लचीला बनाना।

संचालन अनुसंधान से जुड़ाव:

इन सभी घटकों के निर्माण और विश्लेषण में संचालन अनुसंधान तकनीकों का विशेष योगदान होता है। जैसे:

- रैखिक प्रोग्रामन (Linear Programming) द्वारा मूल्य निर्धारण या वितरण नेटवर्क का अनुकूलन,
- पूर्वानुमान तकनीकों द्वारा ग्राहक मांग की भविष्यवाणी,
- सिमुलेशन मॉडल द्वारा प्रचार प्रभाव का मूल्यांकन,
- नेटवर्क एनालिसिस द्वारा आपूर्ति श्रृंखला की दक्षता बढ़ाना,
- निर्णय सिद्धांत (Decision Theory) द्वारा विभिन्न विकल्पों का तुलनात्मक विश्लेषण।

इस प्रकार, विपणन रणनीति का प्रत्येक घटक यदि संचालन अनुसंधान की वैज्ञानिक दृष्टि से संचालित हो, तो वह न केवल अधिक प्रभावी सिद्ध होता है, बल्कि संगठनों को बदलते बाजार परिवेश में प्रतिस्पर्धात्मक रूप से सक्षम भी बनाता है।

संचालन अनुसंधान तकनीकों के प्रकार

संचालन अनुसंधान (Operations Research – OR) की विविध तकनीकें जटिल समस्याओं के समाधान हेतु एक वैज्ञानिक आधार प्रदान करती हैं। विशेषकर विपणन क्षेत्र में, जहाँ निर्णय-निर्माण बहुआयामी और अनिश्चितताओं से युक्त होता है, वहाँ इन तकनीकों की उपयोगिता अत्यधिक बढ़ जाती है। इस खंड में, हम संचालन अनुसंधान की प्रमुख तकनीकों का प्रकारानुसार विश्लेषण प्रस्तुत करते हैं, और उनके व्यावहारिक अनुप्रयोगों को विपणन रणनीति के सन्दर्भ में स्पष्ट करते हैं।

रैखिक प्रोग्रामन (Linear Programming - LP) वह तकनीक है जो संसाधनों (जैसे – पूँजी, समय, मानवशक्ति) के सीमित उपयोग में अधिकतम लाभ अथवा न्यूनतम लागत सुनिश्चित करने हेतु प्रयुक्त होती है। विपणन रणनीतियों में रूच का उपयोग विज्ञापन बजट के इष्टतम आवंटन, उत्पाद मिक्स निर्धारण तथा वितरण नेटवर्क के अनुकूलन में किया जाता है। Hindustan Unilever ने अपने उत्पाद वितरण केंद्रों के लोकेशन निर्णय में LP मॉडल का उपयोग कर परिवहन लागत में 15% की कमी प्राप्त की (Kumar - Rao, 2019)।

सिमुलेशन (Simulation) तकनीक वास्तविक जीवन की परिस्थितियों का आभासी मॉडल बनाकर विभिन्न परिदृश्यों का परीक्षण करने में सक्षम होती है। विपणन संदर्भ में इसका उपयोग ग्राहक सेवा प्रतिक्रिया का पूर्वानुमान लगाने, प्रचार रणनीति की प्रभावशीलता का मूल्यांकन करने, तथा नए उत्पादों के बाजार प्रवेश से पूर्व व्यवहार विश्लेषण हेतु किया जाता है। Tata Motors ने नए वाहन लॉन्च से पूर्व ग्राहक प्रतिक्रिया का पूर्वानुमान सिमुलेशन तकनीकों द्वारा किया (Patel - Bhargava, 2022)।

पूर्वानुमान तकनीकें (Forecasting Techniques) विपणन क्षेत्र में अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं क्योंकि ये भविष्य की बाजार मांग, उपभोक्ता व्यवहार, तथा बिक्री प्रवृत्तियों की भविष्यवाणी में मदद करती हैं। इसमें समय श्रृंखला विश्लेषण, मूविंग एवरेज, तथा एक्सपोनेंशियल स्मूदिंग जैसी सांख्यिकीय विधियाँ सम्मिलित हैं। इन तकनीकों का उपयोग उत्पाद योजना, स्टॉक प्रबंधन और आपूर्ति शृंखला के पूर्व नियोजन में व्यापक रूप से किया जाता है।

निर्णय सिद्धांत (Decision Theory) उस स्थिति में विशेष उपयोगी होता है जब विपणन प्रबंधक को अनिश्चित परिस्थितियों में विकल्पों में से सर्वोत्तम निर्णय लेना होता है। यह लाभ-हानि विश्लेषण, उपयोगिता सिद्धांत एवं गेम थ्योरी को सम्मिलित करता है। जैसे-उत्पाद। अथवा B को बाजार में लांच करने का निर्णय, अथवा प्रतिस्पर्धात्मक रणनीति का निर्माण। ICICI Bank ने अपने डिजिटल उत्पादों की पोजिशनिंग हेतु निर्णय सिद्धांत आधारित विकल्प मूल्यांकन मॉडल अपनाया (Sharma - Banerjee, 2020)।

क्लस्टर विश्लेषण (Cluster Analysis) उपभोक्ताओं को समान विशेषताओं के आधार पर समूहित करने की एक शक्तिशाली तकनीक है। यह उपभोक्ता वर्गीकरण, लक्षित विपणन अभियान के निर्माण, और ब्रांड पोजिशनिंग निर्णयों में प्रभावी सिद्ध होती है।

नेटवर्क मॉडल्स (Network Models) वितरण एवं लॉजिस्टिक संरचनाओं के अनुकूलन, उत्पाद प्रवाह और समय निर्धारण, तथा आपूर्ति शृंखला के विभिन्न बिंदुओं के समन्वय में प्रयुक्त होते हैं।

इस प्रकार, संचालन अनुसंधान की विविध तकनीकें विपणन क्षेत्र में निर्णयों को अधिक वैज्ञानिक, तर्कसंगत एवं डेटा-संवेदित बनाकर उन्हें रणनीतिक दृष्टि से अधिक प्रभावशाली बनाती हैं।

व्यावहारिक अध्ययन:

संचालन अनुसंधान तकनीकों की वास्तविक उपयोगिता तब परिलक्षित होती है जब उन्हें व्यावसायिक संदर्भ में, विशेषकर विपणन रणनीतियों के निर्माण और मूल्यांकन में प्रत्यक्षतः प्रयोग किया जाता है। आज के प्रतिस्पर्धात्मक एवं डेटा-संवेदनशील व्यापारिक परिदृश्य में, केस स्टडी, गणितीय मॉडलिंग तथा डेटा एनालिटिक्स जैसे उपकरणों का प्रयोग विपणन में वैज्ञानिक निर्णय लेने की प्रक्रिया को अधिक सशक्त बनाता है। इस खंड में हम विभिन्न व्यावहारिक उदाहरणों के माध्यम से यह स्पष्ट करेंगे कि संचालन अनुसंधान तकनीकों ने विपणन रणनीति को किस प्रकार प्रभावित किया है।

विपणन में मॉडलिंग (Modeling) का प्रयोग, किसी उत्पाद के जीवन चक्र, विज्ञापन प्रभाव, या ग्राहक प्रतिक्रिया जैसे तत्वों का विश्लेषण करने हेतु किया जाता है। उदाहरणतः, Nestlé India ने अपने प्ढनदबीष ब्रांड के लिए बहु-चर मॉडलिंग तकनीक का प्रयोग कर उपभोक्ताओं के स्वाद, मूल्य संवेदनशीलता और विज्ञापन प्रतिक्रिया का विश्लेषण किया। इससे ब्रांड पोजिशनिंग को लक्ष्य समूह के अनुसार पुनः परिभाषित किया गया (Verma - Sahu, 2021)।

केस स्टडी आधारित विश्लेषण विपणन निर्णयों के पीछे के रणनीतिक और तकनीकी कारकों को व्यावहारिक दृष्टिकोण से उजागर करता है। उदाहरण के लिए, कंइनत ने अपनी शहद श्रेणी में उपभोक्ता व्यवहार अध्ययन और क्लस्टर विश्लेषण के संयोजन द्वारा एक नई प्रचार रणनीति तैयार की, जिससे ग्रामीण और शहरी उपभोक्ताओं में समरूपता और भिन्नता को समझा जा सका। इसके आधार पर कंइनत ने दो अलग-अलग विज्ञापन मॉड्यूल लागू किए, जिससे उत्पाद बिक्री में 22% की वृद्धि हुई (Chatterjee - Roy, 2020)।

डेटा एनालिटिक्स (कंज। दंसलजपवे) विपणन रणनीति निर्माण में निर्णयों को सटीक, वास्तविक और प्रभावकारी बनाने का कार्य करता है। बिग डेटा टूल्स जैसे – Hadoop, Tableau और Python आधारित विश्लेषणात्मक मॉडल ख आज कंपनियों को ग्राहकों की क्रय प्रवृत्तियों, उत्पाद प्रदर्शन, प्रतिस्पर्धात्मक स्थितियों तथा बाजार के रुझानों को समझने में सक्षम बनाते हैं। Flipkart, Amazon, और Reliance Retail जैसी कंपनियाँ अपने उत्पाद अनुशांसा प्रणाली, कीमत निर्धारण रणनीति और लॉयल्टी प्रोग्रामों में डेटा एनालिटिक्स का व्यापक प्रयोग कर रही हैं।

संचालन अनुसंधान की तकनीकों, जब व्यावहारिक अध्ययन से जोड़ी जाती हैं, तो वे मात्र सैद्धांतिक न रहकर संगठनात्मक निर्णय प्रक्रिया का केंद्रीय तत्व बन जाती हैं। इससे न केवल विपणन रणनीति की सटीकता बढ़ती है, अपितु ग्राहक संतोष, ब्रांड मूल्य और प्रतिस्पर्धात्मक लाभ में भी उल्लेखनीय सुधार होता है।

प्रमुख सार एवं विश्लेषण

इस व्यावहारिक अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि संचालन अनुसंधान तकनीकें विपणन रणनीतियों को अधिक वैज्ञानिक, संगठित और डेटा-आधारित बनाने में अत्यंत प्रभावशाली सिद्ध हो रही हैं। रैखिक प्रोग्रामन, सिमुलेशन, पूर्वानुमान तकनीकें, निर्णय सिद्धांत, क्लस्टर विश्लेषण और नेटवर्क मॉडल जैसी विधियों ने विपणन प्रबंधकों को अधिक तर्कसंगत, कुशल एवं पूर्वदर्शी निर्णय लेने की दिशा में सक्षम बनाया है। यह अध्ययन दर्शाता है कि संचालन अनुसंधान तकनीकों का प्रयोग न केवल विज्ञापन बजट के इष्टतम विभाजन या वितरण नेटवर्क के अनुकूलन में उपयोगी है, बल्कि ग्राहक व्यवहार की गहन समझ, बाजार विभाजन की स्पष्टता तथा प्रतिस्पर्धात्मक लाभ की दृष्टि से भी यह एक अनिवार्य उपकरण बन चुका है। उदाहरणस्वरूप, Nestlé, Tata Motors, और कंइनत जैसी कंपनियों ने अपने विपणन निर्णयों में इन तकनीकों का प्रयोग कर उल्लेखनीय व्यावसायिक लाभ प्राप्त किया। इसके अतिरिक्त, डेटा एनालिटिक्स

और बिग डेटा टूलस ने विपणन संस्कृति को अनुभव-आधारित से डेटा-संवेदित दिशा में स्थानांतरित किया है, जिससे रणनीतियों की सटीकता और नवाचार क्षमता में वृद्धि हुई है। निष्कर्षतः, संचालन अनुसंधान अब केवल एक विश्लेषणात्मक उपकरण नहीं रह गया है, बल्कि वह रणनीतिक विकास का अभिन्न अंग बन चुका है।

संभावनाएँ, सीमाएँ और सुझाव

विपणन रणनीतियों के विकास में संचालन अनुसंधान तकनीकों की उपयोगिता को देखते हुए, भविष्य में इसके अनुप्रयोग की व्यापक संभावनाएँ दिखाई देती हैं। सबसे बड़ी संभावना कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI), मशीन लर्निंग और डिजिटल एनालिटिक्स के साथ संचालन अनुसंधान के समेकन की है, जिससे विपणन निर्णय अत्यधिक बुद्धिमान, स्वचालित और उत्तरदायी बन सकते हैं। साथ ही, सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्यमों (MSME) तथा ग्रामीण विपणन क्षेत्रों में अभी OR तकनीकों का पूर्ण उपयोग नहीं हो पाया है, जहाँ इसके लिए पर्याप्त संभावनाएँ मौजूद हैं। प्रबंधन शिक्षा में OR आधारित मार्केटिंग रणनीतियों के प्रशिक्षण कार्यक्रम नवाचार को भी बढ़ावा दे सकते हैं।

हालाँकि, इसके उपयोग में कुछ सीमाएँ भी हैं। संचालन अनुसंधान की तकनीकें उच्च तकनीकी कौशल और आंकड़ा-संग्रह की श्रेष्ठ व्यवस्था की मांग करती हैं, जो भारत जैसे विकासशील देशों में अब भी सीमित हैं। डेटा की गुणवत्ता और वास्तविकता की कमी भी निर्णय की प्रभावशीलता को प्रभावित कर सकती है। इसके अतिरिक्त, लघु व्यवसायों के लिए इन तकनीकों को अपनाना आर्थिक रूप से चुनौतीपूर्ण हो सकता है।

इन सीमाओं को देखते हुए कुछ सुझाव प्रस्तुत किए जाते हैं। सर्वप्रथम, विपणन शिक्षा में OR की विधियों को अनिवार्य रूप से सम्मिलित किया जाना चाहिए, जिससे भावी प्रबंधक अधिक वैज्ञानिक और विश्लेषणात्मक दृष्टिकोण विकसित कर सकें। द्वितीय, सरकार एवं नीति निर्माताओं को चाहिए कि वे डैडम इकाइयों को व तकनीकों को अपनाने हेतु तकनीकी एवं वित्तीय सहायता प्रदान करें। तृतीय, डेटा गुणवत्ता सुधारने हेतु केंद्रीकृत डेटा संरचना, विश्लेषणात्मक प्लेटफॉर्म और डेटा सुरक्षा की व्यवस्था की जाए। अंततः, व्यावसायिक संगठनों को अनुभव पर आधारित निर्णयों के साथ-साथ डेटा और मॉडल-आधारित दृष्टिकोण को भी अपनाना चाहिए।

निष्कर्ष:

वर्तमान वैश्विक व्यापार परिदृश्य में जहाँ बाजार की गति तीव्र, उपभोक्ता की प्रवृत्तियाँ परिवर्तनशील, और प्रतिस्पर्धा बहुआयामी हो चुकी है, वहाँ परंपरागत विपणन दृष्टिकोणों से परे जाकर वैज्ञानिक, विश्लेषणात्मक और आंकड़ा-आधारित रणनीतियों की आवश्यकता है। इस सन्दर्भ में संचालन अनुसंधान (Operations Research) की तकनीकें एक सशक्त उपकरण के रूप में उभर कर सामने आई हैं। इस शोध-पत्र ने यह सिद्ध किया है कि विपणन रणनीतियों के विकास, कार्यान्वयन और मूल्यांकन की प्रत्येक अवस्था में संचालन अनुसंधान की तकनीकों – जैसे रैखिक प्रोग्रामन, सिमुलेशन, पूर्वानुमान, निर्णय सिद्धांत, क्लस्टर विश्लेषण और नेटवर्क मॉडल – की उपयोगिता व्यावहारिक रूप से प्रमाणित है।

इन तकनीकों ने विपणन प्रबंधकों को जटिल निर्णयों को संरचित, मापन योग्य और पुनरावृत्त प्रारूप में लेने की शक्ति प्रदान की है। कंपनियों जैसे Nestlé, Dabur, Tata Motors, Flipkart आदि द्वारा इन तकनीकों के सफल अनुप्रयोग ने दर्शाया है कि डेटा-संवेदित, वैज्ञानिक रणनीतियाँ न केवल लागत और संसाधन उपयोग को अनुकूल बनाती हैं, बल्कि ग्राहक संतोष, ब्रांड प्रतिबद्धता और बाजार हिस्सेदारी में भी ठोस वृद्धि करती हैं।

साथ ही, यह भी स्पष्ट हुआ कि भविष्य में जब संचालन अनुसंधान का समन्वय कृत्रिम बुद्धिमत्ता, मशीन लर्निंग एवं बिग डेटा एनालिटिक्स के साथ होगा, तब विपणन रणनीति अधिक बुद्धिमान, उत्तरदायी और अनुकूलनीय बन सकेगी। यद्यपि तकनीकी जटिलता, प्रशिक्षण की आवश्यकता और डेटा संरचना की सीमाएँ इस मार्ग में कुछ बाधाएँ उत्पन्न कर सकती हैं, परंतु उपयुक्त नीति, प्रशिक्षण एवं तकनीकी सहयोग से इन चुनौतियों को अवसरों में बदला जा सकता है।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि विपणन रणनीति के क्षेत्र में संचालन अनुसंधान की तकनीकें भविष्य का मार्ग प्रशस्त करने वाली परिवर्तनकारी शक्तियाँ हैं। इनका विवेकपूर्ण प्रयोग न केवल निर्णयों को तर्कसंगत बनाता है, बल्कि संगठनात्मक नवाचार, प्रतिस्पर्धात्मक बढ़त और दीर्घकालिक सफलता का आधार भी निर्मित करता है।

संदर्भ सूची

- कपूर, डी., एवं सिंह, वी. (2023). रणनीतिक विपणन में बिग डेटा एनालिटिक्स: भारतीय खुदरा क्षेत्र का एक अध्ययन. एशिया-पैसिफिक जर्नल ऑफ डेटा-ड्रिवन स्ट्रैटेजी, 7(2), 77-90।
- शर्मा, आर. (2022). उभरते बाजार की रणनीति में संचालन अनुसंधान की भूमिका. इंडियन मैनेजमेंट रिव्यू, 11(4), 88-104।
- गुप्ता, ए., एवं मेहता, के. (2021). विपणन में संचालन अनुसंधान और कृत्रिम बुद्धिमत्ता का समेकन: एक भावी दृष्टिकोण. जर्नल ऑफ बिजनेस इनोवेशन, 5(1), 55-72।
- वर्मा, आर., एवं साहू, पी. (2021). उपभोक्ता मॉडलिंग और विपणन रणनीति: नेस्ले मंच का एक केस अध्ययन. जर्नल ऑफ मार्केटिंग इनसाइट, 6(1), 33-47।
- चटर्जी, एस., एवं रॉय, ए. (2020). ग्रामीण-शहरी एफएमसीजी रणनीति में क्लस्टर विश्लेषण: डाबर हनी का केस अध्ययन. इंडियन जर्नल ऑफ एप्लाइड मार्केटिंग, 9(3), 101-116।
- कुमार, एस., एवं राव, आर. (2019). रैखिक प्रोग्रामन द्वारा वितरण रणनीति का इष्टकरण. इंडियन जर्नल ऑफ मैनेजमेंट रिसर्च, 12(3), 67-78।

- शर्मा, एम., एवं बनर्जी, आर. (2020). बैंकिंग क्षेत्र में निर्णय सिद्धांत द्वारा रणनीतिक विपणन निर्णय. एशियन जर्नल ऑफ डिजीजन साइंसेज, 5(1), 42-55।
- पटेल, ए., एवं भार्गव, वी. (2022). ऑटोमोबाइल विपणन रणनीतियों में सिमुलेशन मॉडलिंग. जर्नल ऑफ एप्लाइड कॉमर्स, 10(2), 91-103।
- मिश्रा, एस., एवं मिश्रा, ए. (2021). विपणन में रणनीतिक निर्णय-निर्माण में संचालन अनुसंधान की भूमिका. जर्नल ऑफ कॉमर्स एंड बिजनेस स्टडीज, 8(2), 45-59।
- शर्मा, आर. (2022). भारतीय एसएमई में डेटा एनालिटिक्स और संचालन अनुसंधान आधारित विपणन ढाँचे. इंटरनेशनल जर्नल ऑफ बिजनेस इंटेलिजेंस रिसर्च, 13(1), 24-39।
- टाहा, ए. एच. (2017). संचालन अनुसंधान: एक परिचय. पियरसन एजुकेशन।
- हिलियर, एफ. एस., एवं लिबरमैन, जी. जे. (2020). संचालन अनुसंधान का परिचय (10वीं संस्करण). मैकग्रा-हिल एजुकेशन।
- कोटलर, पी., एवं केलर, के. एल. (2016). विपणन प्रबंधन (15वीं संस्करण). पियरसन एजुकेशन।
- लिलियन, जी. एल., कोटलर, पी., एवं मूर्ति, के. एस. (1992). विपणन मॉडल्स. प्रेंटिस हॉल।
- चर्चमैन, सी. डब्ल्यू., अकोफ, आर. एल., एवं अर्नाफ, ई. एल. (1957). संचालन अनुसंधान का परिचय. वायली।
- चार्नेस, ए., एवं कूपर, डब्ल्यू. डब्ल्यू. (1961). रैखिक प्रोग्रामन के प्रबंधन मॉडल और औद्योगिक अनुप्रयोग. वायली।
- रमणाथन, आर. (2006). अनुप्रयोगों सहित संचालन अनुसंधान का परिचय. पीएचआई लर्निंग।
- जैन, एस. सी., एवं महाजन, वी. (1979). विपणन रणनीति में प्रतिस्पर्धी वातावरण का मूल्यांकन. जर्नल ऑफ मार्केटिंग, 43(3), 68-76।

बिटकॉइन से केंद्रीय डिजिटल मुद्रा तक: वैश्विक अर्थव्यवस्था में परिवर्तन

डॉ० नंद कुमार भोई

कार्यकारी प्राचार्य, रामचंडी महाविद्यालय, सरायपाली, जिला महासमुंद

सारांश

यह लेख 21वीं सदी में वित्तीय प्रणाली में आ रहे एक ऐतिहासिक परिवर्तन पर केंद्रित है, जहाँ बिटकॉइन जैसी क्रिप्टोकॉरेसी से लेकर केंद्रीय बैंक डिजिटल मुद्रा (CBDC) तक की यात्रा का विश्लेषण किया गया है। लेख की शुरुआत बिटकॉइन के तकनीकी और आर्थिक प्रभावों से होती है, जिसमें इसके विकेंद्रीकृत स्वरूप, ब्लॉकचेन तकनीक, सीमित आपूर्ति और गोपनीयता जैसे पहलुओं पर चर्चा की गई है। इसके बाद यह बताया गया है कि कैसे अन्य क्रिप्टोकॉरेसी-जैसे इथेरियम, लाइटकॉइन, और रिपलखने पारंपरिक बैंकिंग को चुनौती दी और कमथ की अवधारणा को जन्म दिया। लेख में विभिन्न सरकारों की चिंताओं, जैसे नियमन की कमी, अवैध लेनदेन और मौद्रिक नीति पर प्रभाव का भी विश्लेषण किया गया है। इन चुनौतियों के जवाब में CBDC का उदय हुआ, जिसे सरकारें विनियमित, स्थिर और पारदर्शी डिजिटल मुद्रा के रूप में विकसित कर रही हैं। भारत में 2022 में डिजिटल रुपया (e₹) की शुरुआत इसी दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम रहा, जिससे भुगतान प्रणाली में पारदर्शिता, लागत में कमी और रीयल-टाइम ट्रांजेक्शन संभव हो सके। इसके साथ-साथ वैश्विक परिदृश्य में चीन, स्वीडन, UAE जैसे देशों द्वारा अपनाई जा रही डिजिटल मुद्रा पहलें और IMF, BIS जैसी संस्थाओं की नीतिगत भूमिका भी रेखांकित की गई है। लेख में अंततः सामाजिक, तकनीकी और नैतिक चुनौतियों को रेखांकित करते हुए कुछ ठोस नीतिगत सुझाव प्रस्तुत किए गए हैं, जिनमें बहुभाषी इंटरफेस, डिजिटल साक्षरता, डेटा सुरक्षा कानून, और सार्वजनिक-निजी समन्वय जैसे कदम शामिल हैं।

बीज शब्द:- बिटकॉइन, क्रिप्टोकॉरेसी, केंद्रीय बैंक डिजिटल मुद्रा, डिजिटल रुपया (e₹), ब्लॉकचेन तकनीक

प्रस्तावना

21वीं सदी में वैश्विक अर्थव्यवस्था एक महत्वपूर्ण संक्रमण काल से गुजर रही है, जहाँ वित्तीय प्रणाली का स्वरूप तेजी से बदल रहा है। इस परिवर्तन की पृष्ठभूमि में एक अभूतपूर्व नवाचार है - क्रिप्टोकॉरेसी, विशेषकर बिटकॉइन। इसकी शुरुआत ने न केवल मौजूदा बैंकिंग प्रणाली को चुनौती दी, बल्कि एक विकेंद्रीकृत वित्तीय ढांचे (Decentralized Finance - DeFi) की अवधारणा को भी जन्म दिया। वहीं, दूसरी ओर सरकारें और केंद्रीय बैंक अपनी डिजिटल मुद्राएँ (Central Bank Digital Currencies - CBDCs) लेकर सामने आ रहे हैं, जो विनियमित, स्थिर और व्यापक रूप से मान्य डिजिटल मुद्रा के रूप में विकसित की जा रही हैं। यह लेख बिटकॉइन की उत्पत्ति, उसके तकनीकी और आर्थिक प्रभाव, और उसके उत्तरवर्ती नवाचारों की चर्चा करता है, साथ ही यह विश्लेषण करता है कि कैसे केंद्रीय डिजिटल मुद्राएँ वैश्विक अर्थव्यवस्था को सुरक्षित, पारदर्शी और समावेशी दिशा में आगे ले जाने का प्रयास कर रही हैं।

बिटकॉइन: एक क्रांतिकारी अवधारणा की शुरुआत

उत्पत्ति और उद्देश्य:

बिटकॉइन की शुरुआत 2009 में सातोशी नाकामोटो नामक अज्ञात व्यक्ति या समूह द्वारा की गई थी। इसका मूल उद्देश्य एक ऐसी मुद्रा विकसित करना था जो बिना किसी बिचौलिए (जैसे बैंक) के व्यक्ति-से-व्यक्ति लेन-देन को संभव बना सके। इसका संचालन एक ब्लॉकचेन तकनीक पर आधारित है, जो विकेंद्रीकृत और पारदर्शी है।

प्रमुख विशेषताएँ

बिटकॉइन की विशेषताएँ ही इसे पारंपरिक मुद्राओं से अलग और अनूठा बनाती हैं। इसकी सबसे प्रमुख विशेषता है इसका विकेंद्रीकृत नियंत्रण, अर्थात् इसका संचालन किसी एक संस्था, सरकार या केंद्रीय बैंक के अधीन नहीं होता। यह एक पीयर-टू-पीयर नेटवर्क पर आधारित है, जहाँ उपयोगकर्ता स्वयं लेन-देन को सत्यापित करते हैं और किसी मध्यस्थ की आवश्यकता नहीं होती। यह प्रणाली उपयोगकर्ताओं को अधिक आर्थिक स्वतंत्रता प्रदान करती है और पारंपरिक बैंकिंग ढांचे की निर्भरता को समाप्त करती है। बिटकॉइन की आपूर्ति सीमित है - इसकी अधिकतम सीमा 21 मिलियन बिटकॉइन तक ही निर्धारित की गई है, जिससे यह मुद्रास्फीति (inflation) के प्रभाव से सुरक्षित मानी जाती है। इस सीमा के कारण इसकी मांग समय के साथ बढ़ती गई है, जिससे यह एक निवेश के साधन के रूप में भी लोकप्रिय हुआ है। इसके अलावा, बिटकॉइन में की जाने वाली प्रत्येक लेन-देन एन्क्रिप्शन तकनीक पर आधारित

होती है, जिससे इसकी गोपनीयता और सुरक्षा सुनिश्चित होती है। उपयोगकर्ता की पहचान छुपी रहती है, जबकि लेन-देन ब्लॉकचेन पर सार्वजनिक रूप से दर्ज होते हैं। बिटकॉइन का एक और महत्वपूर्ण पक्ष है इसका खुला स्रोत (Open Source) होना, जिसका अर्थ है कि इसका स्रोत कोड सभी के लिए उपलब्ध है और कोई भी तकनीकी जानकारी इसमें सुधार, अध्ययन या नया प्रयोग कर सकता है। इन सभी विशेषताओं ने बिटकॉइन को एक क्रांतिकारी डिजिटल मुद्रा के रूप में स्थापित किया है, जिसने वैश्विक वित्तीय प्रणाली को पुनर्परिभाषित करने की दिशा में पहला बड़ा कदम उठाया।

क्रिप्टोकॉरेंसी और वित्तीय प्रणाली पर प्रभाव

बिटकॉइन की सफलता के बाद, डिजिटल मुद्रा की अवधारणा को व्यापक मान्यता मिली और धीरे-धीरे सैकड़ों अन्य क्रिप्टोकॉरेंसी अस्तित्व में आ गई। इनमें प्रमुख नाम हैं - इथरियम (Ethereum), लाइटकॉइन (Litecoin), रिपल (Ripple), डॉजकॉइन (Dogecoin), कार्डानो, सोलाना, आदि। प्रत्येक क्रिप्टोकॉरेंसी की अपनी विशिष्ट कार्यप्रणाली और उद्देश्य होता है। उदाहरणस्वरूप, इथरियम केवल मुद्रा के रूप में नहीं, बल्कि स्मार्ट कॉन्ट्रैक्ट और विकेंद्रीकृत अनुप्रयोगों (DApps) के लिए एक मंच के रूप में कार्य करता है। रिपल का उपयोग वैश्विक स्तर पर बैंक-से-बैंक ट्रांजेक्शन को तेज और सस्ता बनाने के लिए किया जाता है। इन क्रिप्टोकॉरेंसी ने पारंपरिक बैंकिंग प्रणाली को चुनौती दी है, क्योंकि इनका संचालन विकेंद्रीकृत नेटवर्क द्वारा होता है जिसमें बिचौलियों की भूमिका नगण्य होती है। इससे लेन-देन की लागत में कमी, प्रक्रिया की पारदर्शिता और गति में वृद्धि होती है। लेकिन साथ ही, यह मौद्रिक नीति निर्माताओं के लिए एक चुनौती बन गया है, क्योंकि ये मुद्राएँ सरकार के नियंत्रण से बाहर होती हैं। कई देश इस डर में हैं कि यदि क्रिप्टोकॉरेंसी को अनियंत्रित छोड़ दिया जाए तो यह वित्तीय स्थिरता, राजस्व नियंत्रण, और अवैध वित्तीय गतिविधियों का माध्यम बन सकती हैं। इसके बावजूद, निवेशकों और तकनीकी विशेषज्ञों के बीच इनकी लोकप्रियता लगातार बढ़ रही है।

प्रमुख प्रभाव

बिटकॉइन और अन्य क्रिप्टोकॉरेंसी ने विश्व की पारंपरिक बैंकिंग प्रणाली को गहराई से प्रभावित किया है। इनका सबसे प्रमुख प्रभाव मध्यस्थ संस्थाओं की भूमिका में कमी के रूप में देखा गया है, जहाँ पहले बैंक जैसे संस्थान हर वित्तीय लेन-देन में अनिवार्य होते थे, वहीं अब क्रिप्टो प्लेटफॉर्म पर व्यक्ति सीधे दूसरे व्यक्ति को भुगतान कर सकता है। इसने न केवल प्रक्रिया को तेज और सस्ता बनाया है, बल्कि उपयोगकर्ताओं को बिचौलियों की आवश्यकता से भी मुक्त कर दिया है। इसके साथ ही विकेंद्रीकृत वित्त (DeFi) की अवधारणा ने तेजी से विस्तार पाया है, जिसके अंतर्गत लोग बिना किसी बैंक या पारंपरिक संस्था के माध्यम से ऋण लेना, बीमा करवाना और निवेश करना संभव बना रहे हैं। हालाँकि, इस वित्तीय स्वतंत्रता के साथ नियमन और सुरक्षा की चिंताएँ भी उभरकर सामने आई हैं। चूंकि इन लेन-देन में उपयोगकर्ताओं की पहचान गुप्त रहती है, इसलिए सरकारों को मनी लॉन्ड्रिंग, हवाला, और आतंकवाद के वित्तपोषण जैसे मुद्दों की आशंका बनी रहती है। यही कारण है कि कई देशों में क्रिप्टोकॉरेंसी को विनियमित करने या प्रतिबंधित करने की चर्चा चल रही है। बावजूद इसके, बिटकॉइन जैसे डिजिटल टोकन को अब एक 'डिजिटल गोल्ड' के रूप में देखा जाने लगा है, जो दीर्घकालिक निवेश का एक नया और प्रभावी माध्यम बनकर उभरा है। इसकी सीमित आपूर्ति और बढ़ती मांग ने इसे मूल्यवान संपत्ति की श्रेणी में ला खड़ा किया है। इस प्रकार, क्रिप्टोकॉरेंसी ने वित्तीय प्रणाली को न केवल आर्थिक आजादी दी है, बल्कि विनियामक ढांचे को भी चुनौती दी है।

सरकारी प्रतिक्रिया और विनियमन की आवश्यकता

सरकारों की आशंका

क्रिप्टोकॉरेंसी के बढ़ते उपयोग और लोकप्रियता के साथ-साथ विभिन्न सरकारों और केंद्रीय बैंकों के सामने अनेक चिंताजनक चुनौतियाँ भी उत्पन्न हुई हैं। सबसे पहली समस्या है इसका विनियमन का अभाव, क्योंकि अधिकांश क्रिप्टोकॉरेंसी किसी सरकार या नियामक संस्था के अधीन नहीं होतीं। इसके कारण इनका नियंत्रण कठिन हो जाता है और वित्तीय प्रणाली में अनिश्चितता उत्पन्न होती है। इसके अतिरिक्त, क्रिप्टोकॉरेंसी की कीमतों में अत्यधिक उतार-चढ़ाव देखा गया है, जिससे यह निवेश के लिए अस्थिर और जोखिमपूर्ण माध्यम बन जाती है। दूसरी ओर, क्रिप्टोकॉरेंसी के लेन-देन में उपयोगकर्ता की पहचान गुप्त रखी जाती है, जिससे इनका प्रयोग गैरकानूनी गतिविधियों जैसे मनी लॉन्ड्रिंग, आतंकवाद के वित्तपोषण, और ड्रग ट्रेफिकिंग आदि के लिए भी किया जा सकता है। यही कारण है कि कई देश इसे पूरी तरह प्रतिबंधित करने की दिशा में कदम उठा रहे हैं। साथ ही, इन मुद्राओं के प्रचलन से सरकार के राजकोषीय नियंत्रण पर भी प्रभाव पड़ता है, क्योंकि जब मुद्रा निर्भरता बैंकों या सरकारों के बजाय निजी विकेंद्रीकृत प्रणालियों पर होती है, तो सरकार की मौद्रिक नीति और टैक्स प्रणाली कमजोर हो सकती है। इन सभी कारणों से क्रिप्टोकॉरेंसी को लेकर वैश्विक स्तर पर स्पष्ट और प्रभावी नीति ढांचे की आवश्यकता महसूस की जा रही है।

प्रतिक्रियाएँ

क्रिप्टोकॉरेंसी को लेकर विश्वभर में देशों की नीतियाँ और प्रतिक्रियाएँ भिन्न-भिन्न रही हैं। कुछ देशों ने इसे पूरी तरह प्रतिबंधित कर दिया है, तो कुछ ने इसे वैधता प्रदान कर आर्थिक प्रयोग के रूप में स्वीकारा है। उदाहरणस्वरूप, चीन ने क्रिप्टोकॉरेंसी की खनन (mining) और ट्रेडिंग दोनों पर पूर्णतः रोक लगा दी है, यह तर्क देते हुए कि इससे वित्तीय अस्थिरता और अवैध गतिविधियों को बढ़ावा मिलता है। वहीं दूसरी ओर, एल साल्वाडोर ने 2021 में एक ऐतिहासिक कदम उठाते हुए बिटकॉइन को कानूनी मुद्रा के रूप में मान्यता दी, जिससे यह पहला ऐसा देश बना जिसने क्रिप्टोकॉरेंसी को अपनी मौद्रिक व्यवस्था में औपचारिक रूप से शामिल किया। भारत का रुख इन दोनों के बीच संतुलन साधने की कोशिश कर रहा है। भारतीय रिजर्व बैंक (RBI) ने स्पष्ट रूप से क्रिप्टोकॉरेंसी के खिलाफ अपना पक्ष रखा है और इसे वित्तीय प्रणाली के लिए जोखिमपूर्ण बताया है। हालाँकि, सरकार और RBI दोनों ही ब्लॉकचेन तकनीक की संभावनाओं को स्वीकारते हैं और उसे डिजिटल नवाचार के एक सशक्त उपकरण के रूप में देख रहे हैं। वर्तमान में भारत केंद्रीय डिजिटल मुद्रा (CBDC) की दिशा में कार्य कर रहा है, जिससे वह क्रिप्टोकॉरेंसी के जोखिमों से बचते हुए तकनीक के लाभों को अपना सके।

केंद्रीय डिजिटल मुद्रा (CBDC): एक विनियमित विकल्प

परिभाषा

CBDC (Central Bank Digital Currency) एक ऐसी डिजिटल मुद्रा होती है जिसे किसी देश का केंद्रीय बैंक जारी करता है, और यह उस देश की मौजूदा आधिकारिक फिएट मुद्रा का डिजिटल संस्करण होती है। यह नकद मुद्रा की तरह ही कानूनी मान्यता प्राप्त होती है, लेकिन इसका संचालन और विनियमन पूरी तरह डिजिटल प्लेटफॉर्म पर होता है। इसका उद्देश्य पारंपरिक मुद्राओं की तरह लेन-देन को आसान बनाना है, लेकिन अधिक पारदर्शिता, गति और सुरक्षा के साथ। उदाहरणस्वरूप, भारत में भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा जारी की गई डिजिटल मुद्रा को डिजिटल रुपया (e₹) कहा जाता है; अमेरिका में फेडरल रिजर्व द्वारा प्रस्तावित मुद्रा को डिजिटल डॉलर, और चीन में पहले से परीक्षण की जा रही डिजिटल मुद्रा को e-CNY या डिजिटल युआन कहा जाता है। ये सभी रूपें उसी देश की मौजूदा मुद्रा के मूल्य पर आधारित होती हैं और इन्हें कानूनी भुगतान माध्यम के रूप में उपयोग किया जा सकता है। बटक पारंपरिक क्रिप्टोकॉरेसी से इस मायने में अलग होती है कि इसे सरकार द्वारा विनियमित और नियंत्रित किया जाता है, जिससे मौद्रिक नीति, वित्तीय स्थिरता और राजकोषीय नियंत्रण सुनिश्चित किया जा सके।

आवश्यकताएँ

केंद्रीय बैंक डिजिटल मुद्रा (CBDC) को विकसित करने के पीछे कई महत्वपूर्ण उद्देश्य हैं, जो आधुनिक अर्थव्यवस्था की आवश्यकताओं और चुनौतियों का समाधान प्रस्तुत करते हैं। सबसे पहले, क्रिप्टोकॉरेसी द्वारा उत्पन्न की गई चुनौतियों—जैसे विनियमन का अभाव, अवैध उपयोग, और मूल्य में अस्थिरता—का उत्तरदायी विकल्प देने के लिए CBDC एक सशक्त माध्यम बनकर उभरा है। यह एक ऐसी डिजिटल मुद्रा है जिसे सरकार नियंत्रित करती है, जिससे यह विनियमित और सुरक्षित बनती है। CBDC का दूसरा प्रमुख लाभ है भुगतान प्रणाली में पारदर्शिता और गति। इसके माध्यम से लेन-देन रीयल टाइम, कम लागत और सुरक्षित हो सकते हैं। साथ ही, यह प्रणाली सरकार को मनी लॉन्ड्रिंग और आतंकवाद के वित्तपोषण जैसी समस्याओं पर नियंत्रण पाने में भी सहायता करती है, क्योंकि CBDC आधारित लेन-देन ट्रेसबल और कानूनी निगरानी के अंतर्गत होते हैं। इसके अतिरिक्त, सरकारी सब्सिडी और प्रत्यक्ष लाभ अंतरण (DBT) के प्रभावी वितरण में भी CBDC विशेष रूप से सहायक हो सकती है। इससे लाभार्थियों को बिना किसी बिचौलिए के सीधे सरकारी सहायता उनके डिजिटल वॉलेट में प्राप्त हो सकती है, जिससे भ्रष्टाचार में कमी और लाभ की पारदर्शी आपूर्ति संभव हो सकेगी। इस प्रकार, CBDC न केवल एक तकनीकी नवाचार है, बल्कि वित्तीय समावेशन और सुशासन की दिशा में एक महत्वपूर्ण पहल भी है।

CBDC और क्रिप्टोकॉरेसी: तुलना

आधार	क्रिप्टोकॉरेसी	CBDC
नियंत्रण	विकेंद्रीकृत	केंद्रीय बैंक द्वारा नियंत्रित
मूल्य स्थिरता	अत्यधिक अस्थिर	स्थिर (मुद्रा नीति से जुड़ा)
कानूनी स्थिति	अधिकांश देशों में अनियमित	आधिकारिक कानूनी मुद्रा
गोपनीयता	उच्च, पर जोखिमयुक्त	सीमित, पर विनियमित
सुरक्षा	ब्लॉकचेन आधारित	तकनीकी और कानूनी सुरक्षा व्यवस्था

भारत में डिजिटल रुपया (e₹): एक नई शुरुआत

भारत सरकार और भारतीय रिजर्व बैंक (RBI) ने 2022 में डिजिटल रुपया (e₹) की पायलट शुरुआत की, जो केंद्रीय बैंक डिजिटल करेंसी (CBDC) के रूप में भारतीय रुपये का आधिकारिक और वैध डिजिटल संस्करण है। यह पहल भारतीय अर्थव्यवस्था को डिजिटल वित्तीय प्रणाली की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है, जिसका उद्देश्य नकद के डिजिटल विकल्प के रूप में काम करना है, जिससे लेनदेन अधिक पारदर्शी, कुशल और सुरक्षित बन सके। डिजिटल रुपया न केवल नकद मुद्रा की तरह ही काम करेगा, बल्कि इससे जुड़े तकनीकी लाभ जैसे कि तेज भुगतान, कम लागत, और लेनदेन का बेहतर ट्रैकिंग भी सुनिश्चित होंगे। यह प्रणाली केंद्रीय बैंक द्वारा नियंत्रित होगी, जिससे यह क्रिप्टोकॉरेसी से अलग और अधिक भरोसेमंद मानी जाती है। डिजिटल रुपया विभिन्न प्रकार के लेनदेन, जैसे कि खुदरा और थोक भुगतान, के लिए प्रयोग में लाया जा सकता है, और इसकी शुरुआत ने भारत को वैश्विक डिजिटल मुद्रा परिदृश्य में एक अग्रणी देश के रूप में स्थापित करने की दिशा में आधार प्रदान किया है। इसके कुछ प्रकार हैं –

1. CBDC-R (Retail): आम जनता के लिए
2. CBDC-W (Wholesale): बैंकों और वित्तीय संस्थाओं के लिए

लाभ

डिजिटल रुपया (e₹) की शुरुआत से कई महत्वपूर्ण लाभ सामने आते हैं, जो न केवल देश की वित्तीय प्रणाली को आधुनिक बनाने में सहायक हैं, बल्कि प्रशासनिक दक्षता भी बढ़ाते हैं। सबसे पहला लाभ नकद प्रबंधन लागत में कमी है, क्योंकि डिजिटल मुद्रा के चलते मुद्रा छपाई, भंडारण और परिवहन जैसी लागतें घटेंगी। दूसरा, यह रीयल टाइम भुगतान सुविधा प्रदान करता है, जिससे उपभोक्ता और व्यवसाय दोनों के लिए तेज, सुरक्षित और पारदर्शी लेनदेन

संभव होते हैं। तीसरा, डिजिटल रुपया प्रत्यक्ष लाभ अंतरण (DBT) और अन्य सरकारी योजनाओं के लिए आसान और लक्षित वितरण सुनिश्चित करता है, जिससे लाभार्थियों को बिना बिचौलियों के समय पर भुगतान मिल सकेगा। अंततः, डिजिटल रुपया अंतरराष्ट्रीय भुगतान प्रणाली में भारत की स्थिति को मजबूत करेगा, क्योंकि यह वैश्विक स्तर पर डिजिटल लेनदेन की प्रतिस्पर्धा में देश को आगे बढ़ाने में मदद करेगा, विशेष रूप से सीमा-पार व्यापार और विदेशी निवेश के संदर्भ में।

वैश्विक परिदृश्य: CBDC की स्थिति

यहाँ विभिन्न देशों और वैश्विक संगठनों द्वारा सेंट्रल बैंक डिजिटल करेंसी (CBDC) को लेकर की जा रही पहलों का विस्तृत विवरण बुलेट पॉइंट्स में दिया गया है:

चीन (China):

- चीन CBDC के क्षेत्र में सबसे अग्रणी देशों में से एक है।
- उसने e-CNY (डिजिटल युआन) को बड़े पैमाने पर पायलट प्रोजेक्ट के तहत विभिन्न शहरों में लागू किया है।
- e-CNY का उपयोग सार्वजनिक परिवहन, खुदरा खरीदारी, सरकारी भुगतान और मोबाइल वॉलेट में व्यापक रूप से हो रहा है।
- इसे चीन की वैश्विक डिजिटल मुद्रा रणनीति और डॉलर पर निर्भरता को कम करने की नीति के हिस्से के रूप में देखा जा रहा है।

स्वीडन (Sweden):

- स्वीडन ने म-ज़तवद नामक डिजिटल करेंसी की शुरुआत की है।
- देश में नकदी का उपयोग बहुत कम है, इसलिए यह पहल डिजिटल भुगतान को और मजबूत बनाने के लिए की गई है।
- Riksbank (स्वीडन का केंद्रीय बैंक) द्वारा संचालित यह प्रोजेक्ट तकनीकी और कानूनी पहलुओं की सक्रिय समीक्षा कर रहा है।
- यह परियोजना नागरिकों को नकदी के समान भरोसेमंद और सुरक्षित डिजिटल विकल्प देने की दिशा में काम कर रही है।

बहरीन और संयुक्त अरब अमीरात (UAE):

- इन दोनों खाड़ी देशों ने ब्रिज का उपयोग क्रॉस-बॉर्डर (सीमा-पार) ट्रांजेक्शन के लिए प्रयोग किया है।
- "mBridge" परियोजना के तहत चीन, हांगकांग, थाईलैंड और UAE जैसे देशों ने एक साझा डिजिटल मुद्रा मंच विकसित करने की दिशा में सहयोग किया है।
- इस पहल का उद्देश्य तेज, सस्ता और सुरक्षित अंतरराष्ट्रीय भुगतान सुनिश्चित करना है, जो पारंपरिक स्विफ्ट (SWIFT) सिस्टम की सीमाओं को पार करता है।

अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष (IMF) और बैंक फॉर इंटरनेशनल सेटलमेंट्स (BIS):

- ये दोनों वैश्विक वित्तीय संस्थान CBDC को लेकर वैश्विक सहयोग, नीति निर्माण और तकनीकी मानक तैयार करने में सक्रिय भूमिका निभा रहे हैं।
- IMF और BIS मिलकर इस बात की रूपरेखा बना रहे हैं कि कैसे विभिन्न देशों की डिजिटल मुद्राएं एक-दूसरे के साथ संगत हों और वित्तीय स्थिरता बनी रहे।
- इसके अंतर्गत क्रॉस-बॉर्डर पेमेंट, डाटा सुरक्षा, गोपनीयता और साइबर जोखिम जैसे मुद्दों पर अंतरराष्ट्रीय दिशानिर्देश विकसित किए जा रहे हैं।
- उनका उद्देश्य एक संतुलित वैश्विक डिजिटल फाइनेंशियल इकोसिस्टम बनाना है जो नवाचार को बढ़ावा दे, लेकिन जोखिमों को भी नियंत्रित करे।

चुनौतियाँ और सावधानियाँ

तकनीकी चुनौतियाँ

डिजिटल रुपया (e₹) और अन्य केंद्रीय बैंक डिजिटल मुद्राओं (CBDCs) की शुरुआत के साथ जहाँ अनेक लाभ हैं, वहीं कुछ गंभीर चुनौतियाँ और जोखिम भी सामने आते हैं। इन्हें विस्तार से निम्न बिंदुओं में समझा जा सकता है:

साइबर हमलों का खतरा:

- डिजिटल मुद्रा पूरी तरह तकनीकी अवसंरचना पर आधारित होती है, जिससे यह हैकिंग, फिशिंग और अन्य साइबर अपराधों के लिए एक संवेदनशील लक्ष्य बन जाती है।
- यदि कोई दुश्मन देश या साइबर अपराधी नेटवर्क को नुकसान पहुंचाता है, तो इससे व्यापक वित्तीय संकट उत्पन्न हो सकता है।
- डिजिटल मुद्रा में लोगों की जमा राशि और लेनदेन से जुड़ी जानकारी खतरे में पड़ सकती है, जिससे लोगों का विश्वास भी डगमगा सकता है।

नेटवर्क असफलता और डेटा चोरी:

- डिजिटल रुपया के निर्बाध उपयोग के लिए एक मजबूत और विश्वसनीय नेटवर्क आवश्यक है। लेकिन भारत जैसे विविध और विशाल देश में नेटवर्क की अस्थिरता एक चुनौती है।

- कमजोर इंटरनेट कनेक्टिविटी वाले क्षेत्रों में लेनदेन में रुकावट आ सकती है, जिससे उपयोगकर्ताओं को असुविधा हो सकती है।
- इसके साथ ही, डेटा गोपनीयता और सुरक्षा भी एक बड़ी चिंता है, क्योंकि हर डिजिटल ट्रांजेक्शन रिकॉर्ड होता है और यदि डेटा लीक होता है, तो नागरिकों की वित्तीय जानकारी सार्वजनिक हो सकती है।

डिजिटल विभाजन (Digital Divide):

- भारत जैसे विकासशील देश में डिजिटल साक्षरता और संसाधनों तक पहुंच में भारी असमानता है।
- ग्रामीण क्षेत्रों, बुजुर्गों, आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों और तकनीक से वंचित लोगों के लिए डिजिटल रुपया अपना चुनौतीपूर्ण हो सकता है।
- यदि यह डिजिटल असमानता दूर नहीं की गई, तो डिजिटल रुपया समाज में आर्थिक असमानता और बहिष्करण को और गहरा कर सकता है।

इन सभी चुनौतियों को ध्यान में रखते हुए, डिजिटल रुपया को सफलतापूर्वक लागू करने के लिए सरकार और तृण को व्यापक साइबर सुरक्षा ढांचा, डिजिटल समावेशन की रणनीति, और जनता में जागरूकता फैलाने की आवश्यकता है।

सामाजिक और नैतिक प्रश्न

गोपनीयता बनाम निगरानी

- डिजिटल रुपया के सभी लेनदेन रिकॉर्ड होते हैं, जिससे नागरिकों की वित्तीय गोपनीयता खतरे में पड़ सकती है।
- सरकार या केंद्रीय संस्थाएं इन आंकड़ों का दुरुपयोग करके व्यक्तिगत निगरानी बढ़ा सकती हैं, जिससे निजता के अधिकार पर प्रश्नचिह्न लग सकता है।

बैंकिंग प्रणाली में असंतुलन

- यदि लोग बड़े पैमाने पर डिजिटल रुपया अपनाते हैं, तो पारंपरिक बैंकों में जमा राशि में गिरावट आ सकती है, जिससे बैंकिंग प्रणाली की स्थिरता प्रभावित हो सकती है।
- इससे वित्तीय मध्यस्थ संस्थानों की भूमिका कमजोर हो सकती है और ऋण वितरण प्रणाली बाधित हो सकती है।

ग्रामीण और डिजिटल रूप से अक्षम वर्ग का बहिष्करण

- डिजिटल रुपया उन लोगों को मुख्यधारा से बाहर कर सकता है, जो तकनीक, स्मार्टफोन, इंटरनेट या डिजिटल साक्षरता से वंचित हैं।
- इससे सामाजिक-आर्थिक असमानता और बढ़ सकती है, विशेषकर ग्रामीण, आदिवासी और बुजुर्ग वर्गों के बीच।

नीतिगत सुझाव

बहुभाषी, सरल इंटरफेस

- डिजिटल रुपया ऐप और प्लेटफॉर्म को अनेक भारतीय भाषाओं में उपलब्ध कराना चाहिए ताकि भाषा बाधा न बने।
- इंटरफेस को यूजर फ्रेंडली और दृष्टिबाधितों सहित सभी के लिए सुलभ बनाना चाहिए।

डिजिटल साक्षरता अभियान

- ग्रामीण क्षेत्रों, महिलाओं, वरिष्ठ नागरिकों और अल्पशिक्षित वर्गों के लिए व्यापक डिजिटल साक्षरता अभियान चलाना आवश्यक है।
- इसके लिए स्कूलों, पंचायतों, और स्वयंसेवी संस्थाओं की मदद ली जा सकती है।

निजी डेटा की सुरक्षा हेतु मजबूत कानून

- डिजिटल रुपया के संदर्भ में डेटा संरक्षण, साइबर सुरक्षा और उपयोगकर्ता की गोपनीयता को सुनिश्चित करने के लिए कठोर और स्पष्ट कानून बनाए जाएं।
- नागरिकों को यह विश्वास दिलाना जरूरी है कि उनके डेटा का उपयोग केवल अधिकृत कार्यों के लिए ही होगा।

सार्वजनिक और निजी संस्थाओं के बीच समन्वय

- डिजिटल मुद्रा की सफलता के लिए सरकारी निकायों, बैंकों, टेक कंपनियों और नागरिक समाज के बीच गहरा समन्वय आवश्यक है।
- नीति-निर्माण, तकनीकी विकास और उपयोगकर्ता समर्थन हेतु सभी पक्षों को सम्मिलित करते हुए साझा रणनीति तैयार की जानी चाहिए।

भविष्य की संभावनाएँ

डिजिटल मुद्रा प्रणाली न केवल भुगतान और लेन-देन की प्रक्रिया को सुव्यवस्थित करेगी, बल्कि आर्थिक समावेशन, पारदर्शिता और त्वरित प्रशासन को भी सुनिश्चित करेगी। आने वाले समय में ब्लॉकचेन, आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस (AI) और मशीन लर्निंग जैसी तकनीकों के साथ मिलकर यह प्रणाली और भी मजबूत हो सकती है। भारत जैसे विकासशील देश के लिए यह एक अवसर है कि वह अपनी मुद्रा को डिजिटल वैश्विक ढांचे में मजबूती से प्रस्तुत करे और नकद रहित अर्थव्यवस्था की दिशा में अग्रसर हो।

निष्कर्ष

बिटकॉइन से लेकर बटक तक की यात्रा वैश्विक वित्तीय प्रणाली के गहरे परिवर्तन का संकेत है। जहाँ क्रिप्टोकॉरेंसी ने वित्तीय स्वतंत्रता, पारदर्शिता और विकेंद्रीकरण की नई राहें खोलीं, वहीं इसके साथ अनेक खतरे और चुनौतियाँ भी सामने आईं। जैसे कि अवैध लेनदेन, मूल्य अस्थिरता और सरकारी नियंत्रण की कमी। इन खतरों का उत्तर CBDC के रूप में उभरा, जो एक सुरक्षित, स्थिर और विनियमित डिजिटल मुद्रा का विकल्प प्रस्तुत करता है। भारत का डिजिटल रुपया न केवल तकनीकी नवाचार का प्रतीक है, बल्कि यह प्रशासनिक पारदर्शिता, आर्थिक समावेशन और वित्तीय पहुंच को भी सशक्त करता है। हालांकि, इसकी सफलता के लिए आवश्यक है कि सरकार और नीति-निर्माता सामाजिक और तकनीकी असमानताओं को संबोधित करें, गोपनीयता की रक्षा करें, और डिजिटल जागरूकता को बढ़ावा दें। आने वाले समय में, डिजिटल मुद्रा का यह मॉडल पारंपरिक वित्तीय व्यवस्था को नई दिशा दे सकता है, यदि इसे विवेकपूर्ण और समावेशी ढंग से लागू किया जाए।

संदर्भ सूची

1. गोयल, पी. (2021). क्रिप्टोकॉरेंसी और वैश्विक वित्तीय प्रणाली पर प्रभाव. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.
2. जैन, आर. (2022). डिजिटल मुद्रा: केंद्रीय बैंक की नई पहल. वित्तीय शोध पत्रिका, 8(2), 45-58.
3. कुमार, एस. (2020). ब्लॉकचेन प्रौद्योगिकी और वित्तीय नवाचार. भारत प्रौद्योगिकी समीक्षा, 6(1), 22-35.
4. मिश्रा, एन. (2021). बिटकॉइन: अवसर और जोखिम. भारतीय अर्थनीति जर्नल, 9(3), 66-78.
5. वर्मा, ए. (2023). CBDC बनाम क्रिप्टोकॉरेंसी: एक तुलनात्मक अध्ययन. नीति और प्रशासन समीक्षा, 5(1), 90-102.
6. शर्मा, के. (2022). डिजिटल रुपया और भारतीय अर्थव्यवस्था. नई दिल्ली: प्रभात पब्लिकेशन्स.
7. राठौर, डी. (2021). डिजिटल भुगतान प्रणाली का विकास. आर्थिक दृष्टिकोण, 12(4), 51-63.
8. सिन्हा, एल. (2020). क्रिप्टोकॉरेंसी के कानूनी पहलू. भारतीय विधि समीक्षा, 15(2), 77-89.
9. BIS (2021). CBDCs: foundational principles and core features- Bank for International Settlements- <https://www.bis.org/publ/othp33.htm>
10. RBI. (2022). केंद्रीय बैंक डिजिटल मुद्रा पर संकल्पना पत्र. भारतीय रिजर्व बैंक. <https://www.rbi.org.in>
11. IMF. (2021). *The rise of central bank digital currencies*. International Monetary Fund. <https://www.imf.org>
12. World Bank. (2020). *Digital financial inclusion: emerging policy approaches*. <https://www.worldbank.org>
13. OECD. (2021). *Crypto assets in the global economy*. Organisation for Economic Co-operation and Development. <https://www.oecd.org>
14. Mehta, V. (2022). *Blockchain for governance: Indian policy response*. Indian Journal of Innovation, 4(2), 105-119.
15. Sharma, T. (2023). *Cryptocurrency regulation in developing nations: A case of India*. Global Finance Insights, 7(1), 33-48.

भारत की प्रचलित लोक प्रदर्शकारी कलाएँ

प्रतिभा कुमारी

शोधार्थी, विश्वविद्यालय स्नातकोत्तर संगीत विभाग, तिलका माँझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर

शोध सारांश:-

लोक कला का उस कला को कहते हैं, जो आमजन द्वारा प्रचलित और सांस्कृतिक परंपराओं का हिस्सा होती हैं। प्रदर्शनकारी कलाओं यथा- संगीत, नृत्य, नाटक और अन्य रूपों के माध्यम से आमतौर पर समाज के विभिन्न पहलुओं को व्यक्त करने का एक प्रभावशाली साधन है और इससे लोगों के बीच संवाद और समझ का विकास होता है। ये कलाएँ न केवल मनोरंजन का साधन हैं, बल्कि समाज और संस्कृति के मूल्य, परंपराएँ और धार्मिक भावनाओं को भी प्रकट करती हैं। भारत में अनेक लोक प्रदर्शनकारी कलाएँ प्रचलित हैं, जिनमें नृत्य, संगीत, नाटक, चित्रकला और अन्य सांस्कृतिक अभिव्यक्तियाँ शामिल हैं।

लोक प्रदर्शनकारी कलाएँ वैसे तो समाज के हर क्षेत्र में अपनी-अपनी क्षेत्रीयता को प्रदर्शित अवश्य करती हैं, लेकिन क्षेत्रीय प्रदर्शन से प्रदर्शन में शामिल लोगों के जीविका का सहारा तो होता है, लेकिन हर समय उन्हें काम नहीं मिलने और आर्थिक समस्याओं के कारण इसके प्रति लोगों का रुझान घटता जा रहा है, जिसको समाज एवं सरकार के सहारे की आवश्यकता है। ताकि प्रदर्शनकारी कलाओं को लोग अपने आय का श्रोत बना सकें और समाज के साथ कदम-से-कदम मिलाकर चल सकें।

संकेताक्षर: सांस्कृतिक, प्रदर्शनकारी, परंपराएँ, धार्मिक, अभिव्यक्तियाँ

परिचय:-

ललित कला का एक विशेष रूप भी है, जिसमें कलाकार दर्शकों के सामने अपना काम लाइव करते हैं, इसे प्रदर्शन कला कहा जाता है। प्रदर्शन कलाओं में नृत्य, संगीत, ओपेरा, रंगमंच और संगीत थिएटर, जादू, भ्रम, माइम, बोले गए शब्द, कठपुतली, सर्कस कला, स्टैंड-अप कॉमेडी, इम्प्रोव, पेशेवर कुश्ती और प्रदर्शन कला इत्यादि सम्मिलित हैं।

लोक संगीत पारंपरिक प्रकार के संगीत और लोक संगीत की आधुनिक धारणा दोनों को संदर्भित करता है जो संयुक्त राज्य अमेरिका में 1960 के दशक के दौरान उत्पन्न हुई थी। पारंपरिक लोक संगीत तब तक का ही रहा है, जब तक कि संगीत ही नहीं था, लेकिन “लोक संगीत” शब्द का प्रयोग वास्तव में 1800 के दशक तक नहीं किया गया था।

बिहार की प्रमुख लोक में प्रचलित प्रदर्शनकारी कलाएँ:-

किसी भी देश की सामान्य जनता अपने वातावरण तथा रुचि के अनुकूल विनोद का साधन स्वभाव का निकाल ही लेती है। इन साधनों में नाटक का स्थान इस प्रकार सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। जिस प्रकार पठित समाज में काव्येषु नाटकम का पठित समाज के सदृश अपठित तथा अर्ध पठित समाज में भी प्रतिभाशाली व्यक्ति होते रहते हैं, जो अपने समुदाय के अनुरूप जनकाव्य और जननाटक का सृजन करते रहते हैं। उनकी रचना द्वारा लक्ष-लक्ष ग्रामीण जनता दृश्य तथा श्रव्य का रसास्वादन करती है। यह परंपरा अनादि काल से चली आ रही है।⁽¹⁾

बिहार की लोक नृत्य परंपरा भारत के सांस्कृतिक इतिहास का एक अनमोल हिस्सा है। इस पुस्तक में लेखक ने प्रमुख लोक नृत्यों जैसे जट-जटिन, सोहराई, बिदेसिया, झिझिया, और सामा चकेवा का विवरण दिया है। ये नृत्य न केवल मनोरंजन के साधन हैं बल्कि इनके माध्यम से समाज की सांस्कृतिक, सामाजिक और धार्मिक परंपराओं का प्रदर्शन भी होता है।

जट-जटिन बिहार का एक प्रमुख नृत्य है, जो विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्रों में पुरुषों और महिलाओं द्वारा किया जाता है। इसका मूल उद्देश्य कृषि जीवन, विवाह संबंधी समस्याओं और सामाजिक मुद्दों को प्रदर्शित करना होता है।

वहीं, सोहराई नृत्य मुख्य रूप से शादी-ब्याह और अन्य धार्मिक आयोजनों पर किया जाता है। इसके साथ ही झिझिया और सामा चकेवा जैसे नृत्य स्थानीय त्योहारों से जुड़े हैं और ग्रामीण महिलाओं द्वारा प्रकृति की पूजा और सामाजिक संदेशों के साथ किया जाता है।

बिदेसिया नृत्य, जिसे भिखारी ठाकुर द्वारा प्रसिद्ध किया गया, बिहार का एक अद्वितीय लोक नृत्य है जो प्रवासी मजदूरों और उनकी जीवनशैली की कहानियों को प्रदर्शित करता है।⁽²⁾

सोहर नृत्य विशेष रूप से बिहार की धार्मिक और सांस्कृतिक परंपराओं से जुड़ा है, जो मुख्य रूप से बच्चों के जन्म के समय गाया और नाचा जाता है।

भारत का इतिहास आदिकाल से लोक कलाओं से समृद्ध रहा है। यह न सिर्फ अपने देश की बल्कि विश्व के कई धर्मों और सम्प्रदाय की संस्कृति को अपने अंदर समेटे हुए है। यहाँ की प्रचलित कुछ प्रमुख लोक प्रदर्शनकारी कलाएँ निम्नलिखित हैं:-

1. लोक नृत्य (Folk Dance)

लोक नृत्य समाज की सांस्कृतिक धरोहर को प्रकट करने का एक महत्वपूर्ण साधन है। यह नृत्य सामाजिक अवसरों, त्योहारों और धार्मिक अनुष्ठानों का हिस्सा होते हैं। कुछ प्रमुख लोक नृत्य इस प्रकार हैं:-

- भांगड़ा (Bhangra): यह पंजाबी लोक नृत्य है, जो मुख्य रूप से खुशियों और उत्सवों के समय किया जाता है, विशेष रूप से फसल की कटाई के दौरान किया जाता है। यह किसान के समृद्धि की खुशी को अभिव्यक्त करता है।
- लावणी (Lavani): महाराष्ट्र का लोकप्रिय लोक नृत्य है, जो विशेष रूप से महिलाएँ करती हैं। यह नृत्य उत्सवों और सांस्कृतिक समारोहों में किया जाता है।
- गरबा (Garba): यह गुजरात का पारंपरिक नृत्य है, जो विशेष रूप से नवरात्रि के दौरान किया जाता है। आज के दौर में समाज के हर क्षेत्र में यह काफी प्रचलित हो चुका है और भारत के हर भाग में इसका प्रचलन लगातार बढ़ रहा है।
- बंसी वादन (Flute Music): उत्तर भारत और खासकर वृंदावन और मथुरा में बंसी (बांसुरी) का संगीत एक सांस्कृतिक पहचान बन चुका है।
- कथकली (Kathakali): यह केरल का प्रमुख नृत्य-नाट्य रूप है, जो रंगमंच पर प्रदर्शित किया जाता है।
- कृष्ण रास (Krishna Ras): यह नृत्य वृंदावन और देश के कई प्रान्तों में भगवान कृष्ण की लीलाओं को प्रस्तुत करने के लिए किया जाता है।

2. लोक संगीत (Folk Music):

लोक संगीत धार्मिक, सांस्कृतिक और सामाजिक भावनाओं को व्यक्त करने का एक सशक्त माध्यम है। यह गीत आमतौर पर समुदायों द्वारा मौखिक रूप से प्रस्तुत किए जाते हैं और इनमें लोक जीवन की विविधता, संघर्ष और प्रेम की भावनाएँ होती हैं। कुछ प्रमुख लोक संगीत रूप इस प्रकार हैं:-

- कव्वाली (iQawwali): यह सूफी भक्ति गीत है, जो खासकर उत्तर भारत और पाकिस्तान में प्रचलित है। इन गीतों के माध्यम से भगवान के प्रति भक्ति और श्रद्धा व्यक्त की जाती है।
- भजन (Bhajan): धार्मिक गीत होते हैं, जो भगवान के प्रति भक्ति और श्रद्धा को व्यक्त करते हैं। ये आमतौर पर मंदिरों और धार्मिक आयोजनों में गाए जाते हैं। यह समाज के हर क्षेत्र में काफी प्रचलित है, इसके माध्यम से समाज के बीच सौहार्द और आपसी प्रेम की भावना को बढ़ावा मिलता है।
- गजल (Ghazal): एक शेर-ओ-शायरी का रूप है, जो प्रेम और दर्द को व्यक्त करता है।
- सुरा (Sura): बिहार और उत्तर प्रदेश में विशेष रूप से प्रचलित लोक संगीत है, जो कृषि कार्यों और उत्सवों से जुड़ा होता है।

3. लोक नाटक और नाट्य रूप (Folk Theatre and Drama):

भारत काल में लोकधर्मी और नाट्यधर्मी परंपराएं स्वतंत्र रूप से विकसित हो रही थी। लोकधर्मी नाट्य शास्त्रीय पद्धति की अभिज्ञता, रंगमंच निर्माण की विस्तृत विधियों से अपरिचय तथा वस्तुगत वैचित्त्य के अभाव में भी प्राचीन काल में भारतीय जनपदों की छाया में विकसित हवसएव 4अवसएव 4अरहा था। ऋतु, उत्सव, विवाह, जन्म, अभ्युदय एवं अन्य मांगलिक अनुष्ठानों के अवसरों पर ग्रामों और नगरों में लोकनाट्यों का आयोजन किया जाता था। प्राचीन समय के नगरों में आयोजित नाट्य प्रयोग शास्त्र अनुमोदित, सुसंस्कृत और उच्च कोटि के होते थे। ग्रामों के आयोजन शुद्ध और प्राकृत रूप में, भारत ने ग्रामों एवं नगरों में प्रचलित नाट्य की इन दो धाराओं को ही लोक एवं नाट्यधर्मी के रूप में गणना की है।⁽³⁾

लोक नाटक और नाट्य रूप समाज की ऐतिहासिक और धार्मिक घटनाओं को जीवन्त रूप में प्रस्तुत करते हैं। इन नाटकों में आमतौर पर जीवन की आम घटना के विभिन्न पहलुओं, संघर्षों और धार्मिक संदेशों को प्रदर्शन किया जाता है। कुछ प्रमुख लोक नाटक रूप इस प्रकार हैं:-

- रामलीला (Ramleela): यह भगवान राम के जीवन की घटनाओं को नाटकीय रूप में प्रस्तुत करता है, जो विशेष रूप से दशहरे के समय पूरे उत्तर भारत में किया जाता है। “रामलीला के अभिनय से भारतीय समाज के विविध पक्षों धर्म, समाज, अर्थ, राजनीति आदि का एक साथ उद्घाटन हो जाता है।” सत्कर्मों का उत्कर्ष एवं निकृष्ट कर्मों का अपकर्ष दिखाना रामलीला का प्रमुख उद्देश्य है।⁽⁴⁾
- नौटंकी (Nautanki): यह उत्तर भारत, खासकर उत्तर प्रदेश और बिहार में प्रचलित एक लोक नाट्य शैली है, जिसमें हास्य, रोमांस और सामाजिक संदेश होते हैं। “नौटंकी का अब कोई एक निश्चित रूप नहीं रहा। आरंभ में यह नौटंकी नाम की राजकुमारी के जीवन वृत्त से पूर्णतः संबंधित थी।”⁽⁵⁾
- पंडवानी (Pandvani): महाभारत के पांडवों की कथा का गान और नाटक के रूप में प्रदर्शन किया जाता है, जो छत्तीसगढ़ और मध्य प्रदेश में प्रचलित है।
- झिझिया (Jijhiya): यह नृत्य और गीतों का मिश्रण होता है, जो विशेष रूप से बिहार के मिथिला क्षेत्र में होता है।

4. लोक कला (Folk Art):

लोक कला विभिन्न चित्रकला, शिल्प और हस्तकला रूपों में प्रदर्शित होती है। ये कला रूप समाज की सांस्कृतिक अभिव्यक्ति होते हैं और आमतौर पर पारंपरिक विषयों को चित्रित करते हैं। कुछ प्रमुख लोक कला रूप इस प्रकार हैं:-

- मधुबनी चित्रकला (Madhubani Painting): यह बिहार की प्रसिद्ध कला शैली है, जो धार्मिक और सामाजिक कथाओं को चित्रित करती है।
- पेटी चित्रकला (Pattachitra Painting): यह ओडिशा और बंगाल की पारंपरिक कला है, जिसमें धार्मिक विषयों को चित्रित किया जाता है।
- फूल पत्तियों से कला (Floral Art): विभिन्न प्रकार के फूलों और पत्तियों से बनी कला भी लोक कला का हिस्सा है।⁽⁶⁾

5. लोक नृत्य-गीतों की प्रस्तुतियाँ (Folk Dance - Song Performances):

इन प्रस्तुतियों में नृत्य और संगीत का मिश्रण होता है, जो खास अवसरों पर समाज की सांस्कृतिक परंपराओं को दर्शाता है। कुछ प्रमुख नृत्य-गीत प्रस्तुतियाँ इस प्रकार हैं:

- चौक पूजा (Chauka Puja): यह नृत्य उत्तर बिहार और झारखंड में पूजा के समय किया जाता है, जिसमें नृत्य, संगीत और धार्मिक अनुष्ठान होते हैं।
- तरही रास (Tarahi Ras): यह नृत्य बिहार के ग्रामीण इलाकों में प्रचलित है और विशेष रूप से सामाजिक आयोजनों में होता है।

6. कविता और कहानी कहने की परंपराएँ (Poetry and Storytelling Traditions):

कविता और कहानी कहने की परंपरा लोक संस्कृति का अहम हिस्सा है। ये परंपराएँ समाज की विविधताओं, संघर्षों और विश्वासों को व्यक्त करने का एक साधन हैं। कुछ प्रमुख लोककथा परंपराएँ इस प्रकार हैं।

- लोरिक चंदा (Lorik Chanda): यह एक प्रसिद्ध लोककथा है, जो बिहार और उत्तर प्रदेश में प्रचलित है। इसे गाने और नृत्य के रूप में प्रस्तुत किया जाता है।⁽⁷⁾
- फाग गीत (Phag Geet): सांस्कृतिक विरासत का प्रतिबिम्ब यह पर्व होली के रूप में मनाया जाता है, जिसमें गाए जाने वाले गीत होते हैं, जो उत्सव के आनंद को व्यक्त करते हैं। इसके माध्यम से समाज के हर वर्ग के लोगों के बीच आपसी सामंजस्य एवं एकता की भावना का विकास होता है। जिसे बिहार के कुछ क्षेत्रों में “फगुआ” यानि फागुन मास में गाये जाने वाले गीत के नाम से जाना जाता है।⁽⁸⁾

निष्कर्ष:-

लोक में प्रचलित प्रदर्शनकारी कलाएँ न केवल समाज और संस्कृति का गहरा संबंध दर्शाती हैं, बल्कि ये पारंपरिक मूल्य और जीवन दृष्टिकोण को भी व्यक्त करती हैं। इसका उद्देश्य मनोरंजन के साथ-साथ सामाजिक, सांस्कृतिक और धार्मिक संदेशों का प्रसार करना है। इन लोक कलाओं के माध्यम से समाज न सिर्फ अपने पुराने परम्पराओं को संजोए रखता है, बल्कि पीढ़ी-दर-पीढ़ी सांस्कृतिक धरोहर को हस्तांतरित करता जाता है।

संदर्भ ग्रंथ:-

1. ओझा, दशरथ (1990) हिंदी नाटक उद्भव और विकास, राजपाल एंड संस, नई दिल्ली 110006, पृ.सं. 35.
2. ठाकुर, भिखारी (1978) बिदेसिया और अन्य लोक नाटक, लोकभारती प्रकाशन, पृ.सं. 25-30.
3. दाधीच, डॉ. पुरु (1985) एकादश नाटक संग्रह और प्रयोक्तागण, मध्य प्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी, भोपाल, पृ.सं. 100-101.
4. श्याम, डॉ. सीताराम झा (1982) हिंदी नाटक: समाजशास्त्रीय अध्ययन, बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी, पटना, पृ.सं. 88.
5. मिश्रा, डॉ. सत्येंद्र (1995) भारतीय लोकनाट्य परंपरा, साहित्य प्रकाशन, पृ.सं. 42-43.
6. नारायण, रमेश चंद्र (1992) भारतीय लोक कला: एक अध्ययन, ग्रंथ अकादमी, पृ.सं. 50-52.
7. झा, डॉ. रामकिशोर (1987) मिथिला की लोक कलाएँ और परंपराएँ, मिथिला रिसर्च पब्लिशर्स, पृ.सं. 77-78.
8. त्रिपाठी, डॉ. कमलाकांत (1990) भारत की सांस्कृतिक विरासत, नेशनल बुक ट्रस्ट, पृ.सं. 120-123.

महिला शिक्षा की आवश्यकता

विनीता कुमारी

शोधार्थी, स्नातकोत्तर गृह विज्ञान विभाग, भूपेन्द्र नारायण मंडल विश्वविद्यालय मधेपुरा (बिहार)

शिक्षा प्रगति का आधार है, चिन्तन अथवा सृजन का द्वार खोलती है- शिक्षा। अशिक्षित रहकर कोई भी समाज आगे नहीं बढ़ सकता है। सदियों से मानव सभ्यता अपने परिष्करण का प्रयास करती रही है। सम्पूर्ण विश्व पर दृष्टिपात करें तो सहज ही यह अनुमान लग जाता है कि उन राष्ट्रों ने प्रगति के शिखर को छुआ है, जिनमें शिक्षा के वितरण को लेकर कोई भेदभाव नहीं किया गया है। यदि हम भारतीय परिप्रेक्ष्य धारण करें तो पायेंगे कि यहाँ शिक्षा के वितरण में हमारी अंध परम्परायें व हमारा पुरुष एवं उच्च वर्ण प्रधान तंत्र ने सर्व सुलभ होने के अनेक वर्षों तक रोके रखा है। शिक्षा शुद्रों के लिए उपलब्ध नहीं थी, महिलाएँ शिक्षा से वंचित थी। समाज का ऐसा सामान्यीकृत विचार था कि महिलाओं के लिए शिक्षा विषय उतना गंभीर नहीं जितना पुरुषों के लिए है।

शिक्षा प्रत्येक मनुष्य का अधिकार है क्योंकि शिक्षा मानव जीवन की आधार शीला है और शिक्षा को प्रकाश का श्रोत एवं मनुष्य का अंतर्चक्षु माना गया है।

शिक्षा के द्वारा व्यक्ति की जन्मजात प्रवृत्तियों का विकास, ज्ञान एवं कला-कौशल में वृद्धि तथा व्यवहार में परिवर्तन कर उसे सभ्य सुसंस्कृत एवं योग्य नागरिक बनाया जाता है। जिससे व्यक्ति समाज, राष्ट्र का समस्त विकास हो सके। यहाँ व्यक्ति का तात्पर्य केवल पुरुष से ही नहीं बल्कि महिला से भी है, स्त्री पुरुष की अर्द्धांगिनी ही नहीं समाज का अभिन्न अंग भी है। समाज के विकास में दोनों का महत्वपूर्ण स्थान है। अतः दोनों का शिक्षित होना आवश्यक है।

नेपोलियन ने कहा था- “मुझे सुशिक्षित माताएँ दो मैं एक सुशिक्षित राष्ट्र का निर्माण कर दुंगा।⁽¹⁾”

समग्र विकास के लिए महिला पुरुष दोनों का शिक्षित होना आवश्यक है, बात जब महिला शिक्षा की आती है तो महिला शिक्षा की तस्वीर पहले कैसी थी, क्यों बिगड़ी और कैसी बन रही है इन सब प्रश्नों के उत्तर के लिए इसके अतीत पर विचार करना पड़ता है। अध्ययन से पता चलता है कि प्राचीन वैदिक काल में शिक्षा सार्वभौमिक थी, महिला और पुरुष दोनों को शिक्षा प्रदान किया जाता था। परंतु वैदिक काल में वर्ण व्यवस्था के अस्तित्व में आने के बाद शुद्रों एवं महिला शिक्षा के महत्व में कमी आयी और महिलाओं एवं शुद्रों को शिक्षा से वंचित कर दिया गया।

एल.एस. मुकर्जी का मत है कि- “यह संभव है कि इस युग में महिलाओं की शिक्षा के लिए संगठित व्यवस्था नहीं थी, किन्तु इस विषय में हमारे पास कोई निश्चित प्रमाण नहीं है।”⁽²⁾

बौद्ध काल के प्रारम्भ में स्त्रियों को शिक्षा से दूर रखा गया, परन्तु बुद्ध ने स्त्रियों को संघ में प्रवेश करने की आज्ञा देकर उनकी शिक्षा को नव-जीवन प्रदान किया। ए.एस. अल्टेकर के अनुसार स्त्रियों को संघ में प्रवेश करने की आज्ञा ने स्त्री-शिक्षा को पर्याप्त प्रोत्साहन प्रदान किया।⁽³⁾

इस काल में स्त्रियों की प्रतिभा उच्च कोटि एवं शिक्षा की स्थिति संतोषजनक रही है, किन्तु इस काल में भी शिक्षा व्यवस्था में उच्च वर्गीय स्त्रियों की प्रधानता रही एवं निम्न वर्ग शिक्षा से उपेक्षित रहा।

मुस्लिम समाज का आ जाना भारतीय शिक्षा के लिए दुर्भाग्यपूर्ण रहा, क्योंकि इस काल में शिक्षा की स्थिति प्रायः अति दयनीय रही। बाल-विवाह एवं पर्दा-प्रथा के कारण स्त्रियों को शिक्षा से वंचित होना पड़ा केवल राजघराने एवं अमीरों की बालिकाओं के लिए मकतब, मस्जिद में शिक्षा व्यवस्था थी।

टी.डब्ल्यू.सिकर ने कहा है- भारतवर्ष में मुसलमानों का विजय इस्लामी शिक्षा के उस अन्धकार युक्त युग के समा भी जब पाठशालाओं में संस्कृति अपने उदार उद्देश्य खो बैठी।⁽⁴⁾

ब्रिटिश कालीन भारत में अंग्रेज अपने हित के अनुरूप कार्य में रूचि रखते थे। ब्रिटिश शासन ने स्त्री शिक्षा पर विशेष ध्यान नहीं दिया। इसका कारण यह था कि कम्पनी को अपने राजकीय कार्यों के लिए महिलाओं की आवश्यकता नहीं थी। इस काल में जो प्रयास हुआ, उसका श्रेय इसाई मिशनरियों को जाता है। 1902 के बाद स्त्री शिक्षा की ओर ध्यान दिया जाने लगा और 1904 में श्रीमती एनीबेसेंट ने बनारस में सेन्ट्रल हिन्दु बालिका विद्यालय की स्थापना की। 1913 में दिल्ली में लेडी हार्डिंग मेडिकल कॉलेज की स्थापना की गई। ये स्त्री शिक्षा के प्रथम कॉलेज थे। लेकिन भारतीय दृष्टिकोण हो या पाश्चात्य प्रायः महिलाओं के प्रति रूढ़िवादी रहा है। विलियम एडम ने स्त्री-शिक्षा का वर्णन करते हुए लिखा है- “शिक्षा की समस्त स्थापित देशी संस्थाएँ केवल पुरुषों के लाभार्थ है और समस्त महिला जगत को विधिपूर्वक अज्ञानता को अर्पित कर दिया गया है।”⁽⁵⁾

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद महिला शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया जाने लगा एवं सरकार भी महिला शिक्षा के प्रति सजग दिखा पड़ी। क्योंकि स्वतंत्रता आन्दोलन के बाद समाज एवं तत्कालीन नेतृत्व को महिलाओं की पारिवारिक, सामाजिक एवं राजनैतिक अहमियत का अंदाजा हो चुका था और यह भी जान चुके थे कि देश के विकास के लिए महिलाओं का शिक्षित होना कितना आवश्यक है।

महिला शिक्षा या सशक्तिकरण की बात उठते ही मस्तिष्क चिंतन करने लगता है कि क्या वास्तव में महिला कमजोर है, उसमें आत्मविश्वास की कमी है, उसके सशक्तिकरण की आवश्यकता है? ईश्वर ने उसे असीम गुणों से मुक्त कर सृष्टि को जन्म देने जैसा कार्य सौंपा है। अपनी शक्ति एवं गुणों के कारण उसे भारतीय मानस में देवी कहा जाता है।

“नर नारी प्रोदरति मज्जन्तं भव वारिधौ”

संसार रूपी समुद्र में डुबते नर का उद्धार नारी करती है, तो फिर नारी कमजोर कैसे? इसका उत्तर देते हुए स्वामी विवेकानन्द ने कहा है- स्त्रियों को सदैव असहायता और दुसरों पर वासवत् निर्भरता की शिक्षा दी गयी है।⁽⁶⁾

समाज की पुरानी कहावत है- “अबला जीवन हाथ तुम्हारी यही कहानी आंचल में है दुध और आँखों में पानी”। वास्तव में नारी का अध्ययन करने पर कहीं-न-कहीं उसकी शिक्षा एवं सशक्तिकरण की कमी अवश्य झलकती है। वर्तमान समय में इतने प्रयासों के बाद महिला कल्याण योजनाओं यथा- बालिका शिक्षा मदद योजना के बावजूद महिला शिक्षा एवं सशक्तिकरण में वांछित लक्ष्यों को प्राप्त किया जाना शेष है। क्योंकि इतना कुछ होने के पश्चात् भारत में अब भी महिला शिक्षा एवं उसकी सामाजिक स्थिति बड़ी दयनीय है।

महिलाओं ने आज किसी भी क्षेत्र को अछूता नहीं छोड़ा है चाहे वह पारिवारिक हो, सामाजिक हो, राजनैतिक हो या आर्थिक और प्रशासनिक, परम्परागत शिक्षा हो या उत्पादन शिक्षा सभी क्षेत्रों में महिलाएँ अदम्य साहस का परिचय दे रही हैं। महिलाओं का शिक्षित होना अति आवश्यक है। सामाजिक कुप्रथाओं, बुराईयों के प्रति जागरण के साथ-साथ रोजगारपरक शिक्षा भी मिलना चाहिए। इस दृष्टि से एक व्यापक पाठ्यक्रम की आवश्यकता है। शिक्षित नारी ही अपने पारिवारिक, समाज तथा देश के गौरव को ऊँचा उठाती है। अतः देश की सामाजिक सांस्कृतिक और आर्थिक परिस्थितियों को ध्यान में रखकर उसकी शिक्षा की व्यवस्था करनी चाहिए।

नेपोलियन ने कहा है- “बालक का भावी भविष्य सदैव उसकी माता द्वारा निर्मित किया जाता है।”

अमेरिका के पूर्व राष्ट्रपति लिंकन ने कहा था- “मैं जो कुछ भी हूँ और जो कुछ होने की आशा करता हूँ उसके लिए मैं अपनी माता का कृतज्ञ हूँ।”⁽⁷⁾

बात चाहे जो भी हो एक बात तय है स्त्रियों की दयनीय दशा और उन पर होने वाले अत्याचार के पीछे कहीं-न-कहीं उनकी अशिक्षा ही जिम्मेदार है। पुराने समय में विवसता की बेड़ियों में जकड़ी हुई नारी के दूषित, कुलषित, कुंठित मन में शिक्षा की अलख जग रही है और वह चहारदीवारी एवं पर्दों के पीछे कैद रहकर घुट-घुटकर जीने वाली बेपढ़ी लिखी घूँघट की गुड़िया नहीं रही। बल्कि शिक्षक, डॉक्टर, इंजीनियर, वैज्ञानिक, सैनिक के रूप में पुरुषों के कंधे-से-कंधा मिलाकर हर क्षेत्र में उनसे होड़ ले रही हैं। आज वह श्रीमती इन्दिरा गांधी, सुनीता विलियम्स, पूर्व राष्ट्रपति श्रीमती प्रतिभा पाटिल, द्रौपदी मुर्मु आदि के रूप में यह सिद्ध करती है कि अब वह किसी क्षेत्र में पीछे नहीं रही।

बाबू जगजीवन राम ने कहा है- “एक कन्या को पढ़ा देने से आगे आने वाली पीढ़ी सुशिक्षित होगी। अतः स्त्री शिक्षा का प्रबन्ध करना राष्ट्र की अनिवार्य आवश्यकता है।”⁽⁸⁾

जिस प्रकार शिक्षा जीवन एवं विकास की आधार शीला होती है, उसी प्रकार स्त्रियाँ परिवार का आधार होती हैं। उनके विकास पर ही परिवार का विकास निर्भर करता है और सभ्य सुसंस्कृत एवं उन्नतशील समाज की स्थापना होती है। किसी ने कहा है- जो हाथ पालने को झुलाता है, वह शासन भी करता है।

बालिकाओं, स्त्रियों और उनकी शिक्षा की अवहेलना न सिर्फ उनके साथ अन्याय है, बल्कि समाज की आनेवाली भावी पीढ़ी के साथ भी अन्याय होगा।

विश्वविद्यालय आयोग ने भी स्त्री शिक्षा के महत्व पर प्रकाश डालते हुए कहा है कि स्त्री शिक्षा के बिना लोग शिक्षित नहीं हो सकते।

अतः अगर हम समाज एवं राष्ट्र का निर्माण करना चाहते हैं तो स्त्री को पुरुषों के समान वास्तविक और प्रभावपूर्ण ढंग से शिक्षा के अवसर प्रदान करने होंगे। एक ऐसे पाठ्यक्रम की व्यवस्था करनी होगी, जो स्त्री शिक्षा के वांछित लक्ष्य की प्राप्ति करने में सफल हो।

अगर हम वास्तव में सम्पूर्ण सभ्यता का विकास चाहते हैं तो किसी भी प्रकार से महिला शिक्षा को नजर अंदाज नहीं कर सकते। क्योंकि जब तक महिलाओं को शिक्षित नहीं किया जायेगा, तब तक समग्र विकास के उच्च स्तर को प्राप्त नहीं किया जा सकता है। अतः हमें एक अच्छे प्रगतिशील, प्रतिभाशाली, श्रेष्ठ, वैभवशाली, स्वाभिमानी, पुरुषों के कंधे-से-कंधा मिलाकर चलनेवाली आत्मनिर्भर महिलाओं को तैयार करने वाली शिक्षा की आवश्यकता होगी। एक ऐसी शिक्षा जो स्त्री को पुरुष का प्रतिद्वन्दी न बनकर उसे इस रूप में तैयार कर सके, जिससे वह स्वयं पर अधिक विश्वास कर सके, उसे किसी पुरुष की सहायता के रूप में आवश्यकता न रहे। वह अपने फैसले स्वयं ले सके। ऐसे में उपयुक्त महिला शिक्षा की अत्यावश्यकता है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची:-

1. एल. वी. बाजपेयी एवं मालती सारस्वत, भारतीय आलोक प्रकाशन इलाहाबाद (1994) शिक्षा का इतिहास एवं सामयिक समस्याएँ। पृ. सं. 292.
2. पी. डी. पाठक- भारतीय शिक्षा और उसकी समस्याएँ। विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, पृ.सं. 46
3. वही, पृ. सं.- 461
4. एल०वी० बाजपेयी एवं मालती सारस्वत- भारतीय शिक्षा का इतिहास एवं सामयिक समस्याएँ, आलोक प्रकाशन, इलाहाबाद(1994), पृ.सं.-29.
5. पी. डी. पाठक- भारतीय शिक्षा और उसकी समस्याएँ। विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, पृ.सं. 461.
6. वही, पृ.सं. 460.
7. एल. वी. बाजपेयी एवं मालती सारस्वत- भारतीय शिक्षा का इतिहास एवं सामाजिक समस्याएँ, आलोक प्रकाशन, इलाहाबाद (1994), पृ. सं. 29
8. पी. डी. पाठक- भारतीय शिक्षा और उसकी समस्याएँ, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, पृ.सं. 459.

हिन्दी साहित्य में संस्मरणों का विकासक्रम

डॉ० पूनम शर्मा

सहायक आचार्य (हिन्दी) रघुकुल कॉलेज, गोनेर, जयपुर, राजस्थान

साहित्य का विकास क्रम साहित्य की दुनिया का अपना पदानुक्रम है। इस पदानुक्रम में कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक आलोचना, निबंध आदि को साहित्य की प्रमुख विधाएँ माना जाता है और जीवनी आत्मकथा, संस्मरण, रेखाचित्र, यात्रा, वृत्तान्त रिपोर्टाज आदि को फुटकर या अन्य अद्य विधाओं की श्रेणी में डाल दिया जाता है। डॉ० नगेन्द्र द्वारा संपादित 'हिंदी साहित्य का इतिहास' से लेकर डॉ० रामचंद्र तिवारी के 'हिंदी का गद्य साहित्य' और दूसरी प्रमुख पुस्तकों तक इन विधाओं को हाशिये का साहित्य समझने की प्रवृत्ति साफ-साफ दिखाई देती है। लेकिन समय के साथ-साथ फुटकर कोटे में रखी जाने वाली ये विधाएँ साहित्य के केंद्र स्थल की ओर बढ़ रही हैं और वर्तमान समय में इनका महत्व साहित्य की परंपरागत केन्द्रीय विधाओं से कतई कम नहीं माना जाता है। विगत कुछ वर्षों में इनमें से कुछ गद्य विधाओं ने अपने लिए हिंदी साहित्य में खास मुकाम बनाया है और इनकी चर्चा कहानी, उपन्यास, कविता नाटक से कम नहीं हो रही है।

हाशिये से उठकर केंद्र में आने वाली ऐसी ही एक विधा संस्मरण भी पश्चिम की देन है। बीसवीं सदी की शुरुआत में हिन्दी साहित्य में प्रकट होने वाली यह आधुनिक विधा पश्चिम की देन है। बीसवीं सदी को भारतीय जीवन में बदलाव की सदी कहा जा सकता है। इस सदी में समाज, राजनीति, अर्थव्यवस्था, संस्कृति साहित्य-हर क्षेत्र में व्यापक परिवर्तन और अभिनव प्रयोग दिखाई देते हैं। इस अभिनव प्रयोगशीलता और बदलाव की प्रेरणा ने साहित्य के क्षेत्र में भी नयी विधाओं के जन्म और विकास में अपनी भूमिका निभाई। पश्चिमी साहित्य के प्रभाव से इस सदी के आरंभ से ही नयी विधाओं का जन्म हुआ, जिनमें संस्मरण, रेखाचित्र, रिपोर्टाज, जीवनी, आत्मकथा, कथा यात्रा साहित्य प्रमुख हैं। इसमें दो राय नहीं कि ये विधाएँ यूरोपीय साहित्य की देन हैं। इन विधाओं का सूत्र प्राचीन साहित्य में खोजना एक दुराग्रह मात्र कहा जा सकता है। इस तरह संस्मरण अतीत का आँखों देखा हाल है जिसे प्रामाणिकता देने के लिए ग्रंथों या संदर्भों का सहारा नहीं लिया जाता बल्कि संस्मरण लिखने वाला ही उसकी प्रामाणिकता के लिए जिम्मेवार होता है इसलिए इस पर पूरी तरह भरोसा भी नहीं किया जा सकता है। संस्मरण को संदेह से देखा जाना चाहिए उसे संदेह से परे मानने की भूल कतई नहीं करना चाहिए।

संस्मरण की एक और महत्वपूर्ण बात यह है कि यह मूल रूप से किसी प्रसिद्ध व्यक्ति या अपने क्षेत्र में प्रतिष्ठा अर्जित करने वाले व्यक्ति द्वारा अपने समकालीन किसी प्रसिद्ध व्यक्ति पर लिखा जाता है। संस्मरण लेखक अपने निजी अनुभव को विशिष्ट व्यक्तियों, वस्तुओं अथवा क्रियाकलापों के चित्रण के माध्यम से व्यक्त करता है। उसके वर्णन में अपनी अनुभूतियाँ, संवेदनाएँ भी रहती हैं।

इस दृष्टि से शैली में वह निबंधकार के समीप है। संस्मरण लेखक यदि अपने बारे में लिखता है तो उसकी रचना आत्मकथा के निकट होगी यदि अन्य व्यक्तियों के विषय में लिखे तो 'जीवनी' के निकट इन दो प्रकार के संस्मरणों को अंग्रेजी में क्रमशः मेमोयर्स तथा रेमिनिसेंसिज कहते हैं। सबसे बड़ी बात है कि संस्मरण में लेखक किसी विषय या व्यक्ति के जीवन के किसी अंग को प्रकाश में लाने का प्रयत्न करते हैं तब संस्मरण का जन्म होता है, ये संस्मरण अतीत को सजीव करते हैं। सामान्यतः इसमें चरित्रिक गुणों से युक्त किसी महान व्यक्ति को याद करते हुए उसके परिवेश के साथ उसका प्रभावशाली वर्णन किया जाता है। इसमें लेखक अपने विषय का ज्यों का त्यों अंकन न करके उसका पुनर्जनन करता है। आत्मकथात्मक विधा होते हुए भी संस्मरण आत्मकथा से पर्याप्त भिन्नता रखता है। इसके (संस्मरण) के विकास क्रम को निम्न भागों में बांटा जा सकता है-

- आरंभिक युग
- द्विवेदी युग
- छायावादोत्तर युग
- स्वातंत्र्योत्तर युग
- समकालीन युग

प्रायः प्रत्येक नयी विधा अपनी शुरुआत पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से ही करती है संस्मरण साहित्य की शुरुआत भी कुछ इसी तरह से हुई है। हिन्दी संस्मरण साहित्य का प्रारंभिक स्वरूप 'सरस्वती', 'माधुरी' सुधा', विशाल भारत', 'हंस' जैसी पत्रिकाओं से उपलब्ध होता है। डॉ० मनोरमा शर्मा भारतेन्दु युग से ही संस्मरण का प्रारंभ मानती है, कुछ विद्वान बालमुकुंदगुप्त द्वारा सन् 1907 में प्रतापनारायण मिश्र पर लिखे संस्मरण को हिन्दी का प्रथम संस्मरण मानते हैं। लेकिन वास्तविकता यह है कि संस्मरण साहित्य की शुरुआत द्विवेदी युग से पहले नहीं हुई, सही मायने में संस्मरण द्विवेदी युग के बाद ही दिखते हैं।

आरम्भिक युग

बालमुकुन्द गुप्त द्वारा सन् 1907 में प्रतापनारायण मिश्र पर लिखे संस्मरण को हिन्दी का प्रथम संस्मरण माना जाता है। बाद में इस काल की एक मात्र संस्मरण पुस्तक 'हरिऔध' पर केंद्रित गुप्त जी द्वारा लिखित 'हरिऔध' के संस्मरण के नाम से प्रकाशित हुई। इसमें हरिऔध को वर्ण्य विषय बनाकर पंद्रह

संस्मरणों की रचना की गई है। पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश' का भी संस्मरण लेखकों में विशेष स्थान है इन्होंने अपने संस्मरणों का विषय साहित्यकारों को बनाया, ये उग्र स्वभाव के थे जिसके परिणामस्वरूप उनके संस्मरणों में सरसता के साथ-साथ नोंक-झोंक के भी दर्शन होते हैं।

पंडित श्री नारायण चतुर्वेदी का संस्मरणों का संकलन लखनऊ से देहरादून तक की यात्रा में किया गया है इनके संस्मरणों के इस संग्रह में हास्य विनोद की प्रधानता है।

श्रीराम शर्मा के संस्मरण शिकार से संबंधित हैं, शर्मा शिकार के शौकीन थे। वैयक्तिकता की प्रधानता के कारण से संस्मरणों में यथार्थ को अधिक महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है, इनके संस्मरण रोचक भी हैं और पठनीय भी हैं। इनका संस्मरण 'सन बयालीस के संस्मरण' है।

'बनारसीदास चतुर्वेदी' संस्मरण के प्रति पूर्ण समर्पित व्यक्ति है। उन्होंने अनेक संस्मरण लिखकर हिन्दी संस्मरण साहित्य में संवृद्धि की है, अपने संस्मरणों में महापुरुषों को विषय रूप में ग्रहण करके सामाजिक वातावरण को सजीवता प्रदान की है। संस्मरण के लोकप्रिय होने का सबसे बड़ा आकर्षण का केन्द्र मनुष्य ही है, मनुष्य मुलत साहित्यकार का लक्ष्य भी जनजीवन का ही अध्ययन करता रहता है, जनजीवन की इकाई भी मनुष्य है इसलिए उसी का अध्ययन साहित्य में किया जाता है आचार्य हजारी प्रसाद .. द्विवेदी जी इसी विषय में लिखते हैं- "साहित्य में उसी के आवेग, उद्वेग और उल्लासों का स्पन्दन आपने देखा होगा। यह विधा स्मृतियुक्त है, इसलिए कुछ विद्वानों ने इसका मूल 'स्मरण' अलंकार में ढूँढने का प्रयास किया है।" समस्त जड़ चेतन अथवा अध्यात्म-जगत की जो-जो अनुभूतियाँ उसके मानस पटल पर स्मृति के माध्यम से अंकित होती है।

द्विवेदी युग-

यह सही है कि संस्मरण विधा का आरंभ द्विवेदी युग से पहले नहीं हुआ। "सरस्वती इस युग की महत्वपूर्ण पत्रिका थी और संस्मरण साहित्य ने इसके माध्यम से ही अपने आगमन की सूचना दी। इसके विभिन्न अंकों में स्वयं महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 'अनुमोदन का अंत' फरवरी 1907 सभों की सभ्यता' अप्रैल 1907' विज्ञानाचार्य वसु का विज्ञान मंदिर-जनवरी 1918 आदि की रचना करके संस्मरण साहित्य की श्रीवृद्धि की....."। सरस्वती पत्रिका में महावीर प्रसाद द्विवेदी के अतिरिक्त रामकुमार खेमका, जगद्विहारी सेठ, पांडुरंग खानखोजे, प्यारेलाल मिश्र, काशीप्रसाद, जायसवाल, जगन्नाथ खन्ना भोलादत्त पांडेय आदि द्वारा लिखे संस्मरण भी प्रकाशित हुए। पुरस्कार रूप में प्रकाशित संस्मरण साहित्य की दृष्टि से 'हरिऔध' जी के संस्मरण ही इस युग की उल्लेखनीय कृति है। इसके लेखक बालमुकुंद गुप्त हैं।"²

हिन्दी साहित्य में वास्तविक संस्मरण लेखन द्विवेदी युग से ही प्रारंभ हुआ। इन्हीं की प्रेरणा से सरस्वती में अनेक संस्मरण प्रकाशित हुए। इन संस्मरणों में लेखक की स्वयं की आत्मानुभूति की प्रधानता रही है। उन्हें मात्र उनका जीवन वृत्तान्त नहीं कहा जा सकता है वह तो उनकी अनुभूति से परिपूर्ण संस्मरणात्मक जीवन वृत्त है। संस्मरण साहित्य को समझ बनाने में अनेक संस्मरणकारों का योगदान मिला जिनमें प्रमुख संस्मरण लेखक रहे हैं।

स्वामी सत्यदेव परिव्राजक- हिन्दी संस्मरण लेखकों में स्वामी सत्यदेव परिव्राजक का विशेष महत्व है। सन 1905 ई. में उन्होंने अमेरिका की यात्रा की थी। अपने संस्मरण में उन्होंने यात्रा से संबंधित घटनाओं एवं संपर्क में आने वालों का सजीव वर्णन किया है जो भाव एवं अनुभूति प्रधान है।

हेमचन्द्र जोशी- हेमचन्द्र जोशी फ्रांस यात्रा पर गए थे। यात्रा के दौरान उन्होंने अनेक अनुभव किए जिसे उन्होंने शैली में सरस एवं मनोरम प्रस्तुत किया, इसमें साहित्यिकता अधिक है, जोशी के संस्मरण का संकलन 'फ्रांस यात्रा' संस्मरण में किया गया है।

इसी क्रम में द्विवेदी युग के अन्य संस्मरणकारों में रामकुमार खेमका

(इधर-उधर की बातें, 1918), जगत बिहारी सेठ जंगलाच रखना तथा भोलादत्त पाण्डेय (मेरी नई दुनिया सम्बन्धी राम कहानी, 1906) आदि प्रसिद्ध हैं। 'शिकार' (1936). बोलती प्रतिमा 1937 भाई जगनाथ, प्राणों का सौदा (1939) जंगल के जीव (1942) ई.।

वैसे तो छायावाद अपने काव्य के लिए जाना जाता है किंतु जहाँ तक संस्मरणों का संबंध है पूर्ववर्ती युग के समान इस युग में भी पत्र-पत्रिकाओं ने ही सर्वाधिक योगदान दिया। सरस्वती में रामकुमार खेमका, कृपानाथ मिश्र, रामनारायण मिश्र, भगवानदीन दुबे, रामेश्वरी नेह, श्रीमन्नारायण अग्रवाल आदि के अनेक यात्रावृत्तान्तमूलक संस्मरण प्रकाशित हुए जिनमें देश-विदेश के जीवन के विविध पक्षों, दर्शनीय स्थानों, प्राकृतिक सौंदर्य आदि का वर्णन विवरणपरक भावनात्मक शैली में रोचक ढंग से किया गया। विशाल 'भारत', 'सुधा', 'माधुरी', में भी कई संस्मरण प्रकाशित हुए। आचार्य रामदेव अमृतलाल चक्रवर्ती, बनारसी दास चतुर्वेदी, मंगलदेव शर्मा जैसे लेखकों ने इन पत्रिकाओं के लिए क्रमशः स्वामी श्रद्धानंद, बालमुकुंद गुप्त, श्रीधर पाठक और पदमसिंह शर्मा से संबंधित जीवनीपरक संस्मरणों की रचना की। 'सुधा' (1921) में प्रकाशित इलाचन्द्र जोशी कृत 'मेरे प्राथमिक जीवन की स्मृतियाँ' तथा वृंदावन लाल वर्मा कृत 'कुछ संस्मरण' भी उल्लेखनीय रचनाएँ हैं।

"हिंदी संस्मरण परंपरा के प्रारंभिक उन्नायकों में पद्म सिंह शर्मा, राधिकरमण सिंह तथा श्रीराम शर्मा का नाम महत्वपूर्ण हैं। पद्मसिंह शर्मा संस्मरण परम्परा के जनक माने जाते हैं। बाबूराव विष्णुराव पड़ारकर द्वारा..... 'हंस' का प्रेमचन्द स्मृति अंक (1937) तथा ज्योतिराव लाल भार्गव द्वारा संपादित साहित्यकारों के संस्मरण भी इसी युग की उल्लेखनीय रचनाएँ हैं।"³

शिवरानी प्रेमचंद का 'प्रेमचन्द घर में' (1944) का महत्व भी संस्मरण की दुनिया में निर्विवाद है। महादेवी वर्मा के संस्मरणात्मक रेखाचित्रों का प्रकाशन भी इसी काल में शुरू हो चुका था। समग्रतः आलोच्य युग में संस्मरणों और रेखाचित्रों में कथ्य और शिल्प दोनों ही दृष्टियाँ पर्याप्त वैविध्य दृष्टिगत होता है। "कथ्य की दृष्टि से संस्मरण साहित्य में जहाँ समाज सेवी नेताओं, साहित्यकारों तथा प्रवासी भारतीयों के स्मृति प्रसंग को रोचक एवं प्रवाहपूर्ण शैली में प्रस्तुत करके पाठक को कर्मक्षेत्रों में अग्रसर होने की प्रेरणा दी गई है, वहीं रेखाचित्रों में समाज के उपेक्षित व्यक्तियों के चित्रों पर बल दिया गया है।"⁴

छायावादोत्तर युग-

संस्मरण विद्या के प्रतिष्ठापकों में पंडित बनारसीदास चतुर्वेदी तथा समवृक्ष बेनीपुरी के नाम अग्रगण्य हैं। पंडित बनारसी दास चतुर्वेदी की दो संस्मरण कृतियाँ हैं- 'हमारे आराध्य' तथा संस्मरण। "‘‘रामवृक्ष बेनीपुरी की विशेष ख्याति उनके संस्मरणों के कारण भी है। ‘माटी की मूरतें’ मील के पत्थर’, जंजीरे और दीवारें आदि रचनाओं में इन्होंने स्वानुभूतियों को अंकित किया है।”⁵ महादेवी वर्मा के संस्मरण रेखाचित्र और संस्मरण का मिला जुला रूप है। ‘स्मृति की रेखाएँ’ और अतीत के चलचित्र उनके संस्मरणात्मक रेखाचित्र हैं। ‘पथ के साथी’ में उन्होंने कुछ प्रमुख समकालीन साहित्यिक हस्तियों के संस्मरण लिखे हैं। ‘पथ के साथी’ में रवीन्द्रनाथ ठाकुर, मैथिलीशरण गुप्त, जयशंकर प्रसाद सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, सुमित्रानंदन पंत, सुभद्राकुमारी चौहान तथा सियाराम शरण गुप्त के उत्कृष्ट शब्द चित्र हैं। राहुल सांकृत्यायन के जीवनीपरक साहित्य की भी इस विद्या में अनुपम देन है। ‘बचपन की स्मृतियाँ’ ‘मेरे असहयोग के साथी’ तथा ‘जिनका मैं कृतज्ञ’ उनके तीन संस्मरण संग्रह हैं। डॉ. पद्मसिंह शर्मा ‘कमलेश’ का भी संस्मरण लेखकों में विशेष स्थान है इन्होंने अपने संस्मरणों का विषय साहित्यकारों को बनाया, ये उग्र स्वभाव के थे जिसके परिणामस्वरूप उनके संस्मरणों में सरसता के साथ-साथ नॉक-ड्रॉक के भी दर्शन होते हैं।

पंडित श्री नारायण चतुर्वेदी का संस्मरणों का संकलन लखनऊ से देहरादून तक की यात्रा में किया गया है इनके संस्मरणों के इस संग्रह में हास्य विनोद की प्रधानता है। श्रीराम शर्मा के संस्मरण शिकार से संबंधित हैं, शर्मा शिकार के शौकीन थे। वैयक्तिकता की प्रधानता के कारण संस्मरणों में यथार्थ को अधिक महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है, इनके संस्मरण रोचक भी हैं और पठनीय भी। इनका संस्मरण ‘सन बयालीस के संस्मरण’ है। ‘बनारसीदास चतुर्वेदी’ संस्मरण के प्रति पूर्ण समर्पित व्यक्ति है। उन्होंने अनेक संस्मरण लिखकर हिन्दी संस्मरण साहित्य में संवृद्धि की है, अपने संस्मरणों में महापुरुषों को विषय रूप में ग्रहण करके सामाजिक वातावरण को सजीवता प्रदान की है।

सन्दर्भ

1. डॉ. नगेन्द्र: हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ.- 522
2. वही, पृ.- 523
3. वही, पृ.- 597
4. वही, पृ.- 597
5. खेलचन्द्र आनन्द: आधुनिक हिन्दी गद्य, पृ.- 140

भारत के भाषा परिवार और संपर्क भाषा हिंदी

डॉ० जितेन्द्र कुमार सिंह

सह आचार्य, हिंदी विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

भारत एक बहुभाषिक और बहुसांस्कृतिक देश है। यहाँ भारोपीय, द्रविड़, आस्ट्रो-एशियाटिक और चीनी-तिब्बती चार भाषा परिवारों की लगभग 1650 के ऊपर भाषाएँ बोली जाती हैं। एक मत के अनुसार लगभग 1455 भाषाएँ ऐसी हैं जिन्हें 10 हजार से भी कम लोग बोलते हैं। 'Census Data 2011' के अनुसार- "हिंदी और उसकी बोलियों को मिलाकर कुल बोलनेवालों की संख्या 52,83,47,193 बतायी गयी है। तथा अन्य बोलियों सहित कुल 56 बोलियों का जिक्र है।" आज संवैधानिक मान्यता प्राप्त 22 भाषाएँ (हिंदी, संस्कृत, मलयालम, तेलुगु, तमिल, कन्नड़, मराठी, बंगला, पंजाबी, गुजराती, कश्मीरी, उर्दू, उड़िया, असमिया, बोडो, संथाली, सिंधी, मैथिली, डोगरी, कोंकणी, मणिपुरी, नेपाली) हैं। हिंदी की पाँच उपभाषाएँ पूर्वी हिंदी, पश्चिमी हिंदी, राजस्थानी, पहाड़ी और बिहारी एवं उसकी अठारह बोलियाँ-अवधी, बघेली, छत्तिसगढ़ी, खड़ीबोली, ब्रज, हरियाणवी, बुंदेली, कन्नौजी, मारवाड़ी, मालवी, ढूँढारी, मेवाती, गढ़वाली, कुमायूनी, हिमाचली, भोजपुरी, मगही, मैथिली मानी गई हैं। हिंदी का एक अन्य रूप दक्खिनी हिंदी दक्षिण में आंध्रप्रदेश, कर्नाटक, और महाराष्ट्र के सीमावर्ती क्षेत्रों में अर्थात् गोलकुंडा, बीजापुर, गुलबर्गा, औरंगाबाद, आदि स्थानों में बोली जाती है। हिंदी की एक बोली मैथिली 2003 में आठवीं अनुसूची में शामिल हो चुकी है। तथा 100 से भी ज्यादा ऐसी भाषाएँ हैं जो आठवीं अनुसूची में शामिल नहीं हैं। भारत के इस बहुसंख्यक भाषायी परिदृश्य और बोलने वालों की संख्या तथा भौगोलिक दृष्टि से जब विचार किया जाता है तो ज्ञात होता है कि हिंदी केन्द्रीय महत्त्व की भाषा है, क्योंकि यह देश के सबसे बड़े भू-भाग की भाषा है। यह दस प्रदेशों- उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, राजस्थान, बिहार, हिमाचल प्रदेश, हरियाणा, छत्तीसगढ़, उत्तराखण्ड, झारखण्ड, तथा दिल्ली की प्रधान भाषा है, तथा अन्य कई प्रदेशों में गौण भाषा के रूप में भी व्यवहृत होती है। इसके बोलने वालों की संख्या देश की जनसंख्या की लगभग 42.88 प्रतिशत है। यही कारण है कि देश की भाषाओं में, कुछ छिटपुट भाषेतर विवाद के बावजूद, हिंदी को प्रतिनिधि भाषा माना गया है।

भारोपीय (Indo-European)

(a) भारत-आर्य (Indo-Aryan) : 1. अममिया, 2. बंगाली, 3. भीली/भीलोड़ी, 4. विष्णुपुरिया, 5. डोगरी, 6. गुजराती, 7. हलबी, 8. हिंदी, 9. कश्मीरी, 10. खानदेशी, 11. कोंकणी, 12. लहंदा, 13. मैथिली, 14. मराठी, 15. नेपाली, 16. उड़िया, 17. पंजाबी, 18. संस्कृत 19. शाइना, 20. सिंधी, 21. उर्दू (कुल 21 भाषाओं में से 15 भाषाएँ आठवीं अनुसूची में दर्ज)

(b) इरानियन (Iranian) : 1. अफगानी/काबुली/पस्तो, 2. पर्सियन

(c) जर्मनिक (Germanic) : 1. इंग्लिश

द्रविड़ भाषा परिवार (Dravidian): 1. कुर्गी/कोडगु, 2. गोण्डी, 3. जातपु, 4. कन्नड 5. खोंड/खोंध, 6. किसान, 7. कोलमी, 8. कोंडा, 9. कोया, 10. कुड़, 11. कुरुख/ओराँव, 12. मलयालम, 13. माल्टो, 14. पर्जी, 15. तमिल, 16. तेलुगु, 17. तुलु। (कुल 17 भाषाओं में से 4 भाषाएँ आठवीं अनुसूची में दर्ज)

आस्ट्रो-एशियाटिक (Austro-Asiatic) : 1. भूमिज, 2. गदबा, 3. हो, 4. जौंग, 5. खरिया, 6. खासी, 7. कोडा/कोरा, 8. कोरकु, 9. कोरवा, 10. मुंडा, 11. मुंडारी, 12. निकोबारी, 13. संताली, 14. सवार। (कुल 14 भाषाओं में से 1 भाषा आठवीं अनुसूची में दर्ज)

चीनी-तिब्बती (Tibeto-Burmese): 1. आदी, 2. अनल, 3. अंगामी, 4. आओ, 5. बाल्टी, 6. भोटिया, 7. बोडो, 8. चकेसंग, 9. चक्रु/चोकरी 10. चंग, 11. देवरी, 12. दिमस, 13. गांग्ते, 14. गारो, 15. हलम, 16. हमर, 17. कबुई, 18. कबी/मिकिर 19. खेजा, 20. खेमनुंगम, 21. किन्चौरी, 22. कोच, 23. कोम, 24. कोंयाक, 25. कुकी, 26. लहाखी, 27. लाहौली, 28. लखेर, 29. ललुंग, 30. लेप्चा, 31. लाइंगमी, 32. लिंबू, 33. लोथा, 34. लुशइ/मिजो, 35. मणिपुरी, 36. मरम, 37. मरिंग, 38. मिरी/मिशिंग, 39. मिशामी, 40. मोघ, 41. मोंपा, 42. निस्सी/डफ्ला, 43. नोक्ते, 44. पैटे, 45. पवी, 46. फोम, 47. पोचुरी, 48. रभा, 49. रड़, 50. रेंगमा, 51. संगटम, 52. सेमा, 53. सेरपा, 54. सिम्टे, 55. तमंग, 56. तंखुल, 57. टंसा, 58. थाडो, 59. तिब्बत, 60. त्रिपुरी, 61. वैफेइ, 62. वांचो, 63. यिमचुंगरी, 64. जेलिंग, 65. जेमी, 66. जोड। (कुल 66 भाषाओं में से 2 भाषाएँ आठवीं अनुसूची में दर्ज)

सामी-हामी परिवार (Semito-Hamitic): 1. अरबिक/अरबी

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि भारोपीय, द्रविड़, आस्ट्रो-एशियाटिक और चीनी-तिब्बती चार भाषा परिवारों के अतिरिक्त ईरानी, जर्मनिक और सामी-हामी अर्थात् सात भाषा-परिवारों की गणना की गई है। इन सभी परिवारों की भाषाएँ मातृभाषा के रूप में बोली जाती हैं। जर्मनिक परिवार की अंग्रेजी भाषा का भी प्रयोग होता है। सामी-हामी परिवार की मात्र एक भाषा अरबी का प्रयोग भी भारत में मिल जाता है।

भारतीय समाज कभी भी बंद समाज नहीं रहा है। इस समाज में विभिन्न कारणों से परस्पर सम्पर्क और भाषागत आदान-प्रदान विभिन्न रूपों में निरंतर होता रहा है। ये भी निर्विवाद ऐतिहासिक तथ्य है कि भारत पर हजारों वर्षों से विदेशी आक्रमण होते रहे और बाहर के लोग यहाँ की भौगोलिक विशिष्टताओं के कारण यहाँ आकर बसते गए। ऐसे में बाहरी भाषाओं से भारतीय भाषाओं का लगातार सम्पर्क बना रहा और भारतीय भाषाओं में स्वाभाविकता से परिवर्तन होता रहा। इसका एक परिणाम आधुनिक भारतीय भाषाओं में कई विदेशी शब्दों के रूप में देख सकते हैं। विभिन्न भारतीय भाषाओं में कई विदेशी भाषा के शब्द ऐसे घुल-मिल गए हैं कि यह पता लगाना भी अत्यंत कठिन हो जाता है कि ये शब्द मूलतः भारतीय हैं या अभारतीय।

भारतीय भाषाएँ प्राचीन काल से ही विश्व की अनेक भाषाओं के सम्पर्क में रही हैं और दोनों में शब्द, ध्वनि आदि कई स्तरों पर आदान-प्रदान होता आया है। ऐसे में यह तथ्य आश्चर्यजनक नहीं माना जा सकता कि प्राचीन एवं आधुनिक भारतीय भाषाओं एवं कई पाश्चात्य भाषाओं में ध्वनि, शब्द-रचना, वाक्य-रचना आदि के आधार पर कई प्रकार की समानताएँ देखी जाती हैं। हालाँकि इन्हीं समानताओं को आधार बनाकर कई पाश्चात्य एवं भारतीय भाषा-वैज्ञानिकों ने भारतीय एवं पाश्चात्य भाषाओं को एक ही 'भाषा-परिवार' की भाषाएँ सिद्ध करने का प्रयास किया है, लेकिन इस तथ्य को भी पूर्णतः उपेक्षित नहीं किया जा सकता कि भारतीय एवं पाश्चात्य भाषाओं में ध्वनि, शब्द-रचना, वाक्य-रचना आदि में व्याप्त समानताएँ भारत एवं शेष विश्व के समाजों के बीच परस्पर सम्पर्कों के परिणाम हैं, न कि दोनों की उत्पत्ति का मूल स्रोत एक है। केवल पाश्चात्य भाषा-परिवारों से ही नहीं, भारतीय भाषाओं का सम्पर्क चीनी, अरबी एवं दक्षिण-पूर्वी देशों की भाषाओं से भी होता रहा है और भारतीय भाषाओं पर कई विदेशी भाषाओं के सम्पर्क का प्रभाव भी स्पष्टतः देखा जा सकता है। ऐसा नहीं है कि विदेशी भाषाओं से निरंतर सम्पर्क से केवल भारतीय भाषाएँ ही प्रभावित हुई हैं, बल्कि कई विदेशी भाषाओं पर भी भारतीय भाषाओं के सम्पर्क का प्रभाव देखा जा सकता है। वैसे भी हिंदी किसी एक विशेष भाषा या बोली का नाम नहीं है। इसके अन्तर्गत कई उपभाषाएँ एवं बोलियाँ आती हैं और इनके रूपों में भी विभिन्न स्तरों पर कई प्रकार के अंतर भी देखे जा सकते हैं।

हालाँकि संस्कृत की प्राचीनता सर्वविदित है और व्याकरण की दृष्टि से इसकी समानता यूरोप की कई पुरानी भाषाओं जैसे लैटिन, ग्रीक आदि से भी पाई जाती है। डॉ. धर्मवीर शायद हिंदी की 'आत्मा' में प्रवेश करने के चक्कर में कई बार अतिशयोक्ति का प्रयोग भी कर बैठते हैं। जैसे उन्हीं के शब्दों में--“यह इतिहास का सच है कि जब संस्कृत, फारसी और अंग्रेजी के कारण खड़ी बोली का नामोनिशान मिट जाना चाहिए था, यह उलटे इन भाषाओं के सम्मुख सिर तान कर खड़ी हो गई है। खड़ी बोली हिंदी चुपचुप इन तीनों भाषाओं के कारण समृद्ध होती चली गई थी। इसने तीनों भाषाओं के शब्द ग्रहण करने आरंभ कर दिये थे। संयोग से देश में लोकतंत्र का समय आ गया और भारत के नए संविधान ने हिंदी को राज भाषा का स्थान दे दिया है। यहाँ केवल यह कहना शेष रह जाता है कि खड़ी बोली अपने खड़ी बोली क्षेत्र में बोली के रूप में तब भी जीवित रही जब संस्कृत, राज भाषा और साहित्यिक भाषा थी और तब भी जब फारसी और अंग्रेजी राजभाषाएँ बनी रहीं। इस तर्क से खड़ी बोली पाणिनि द्वारा व्याकरण बद्ध की गई संस्कृत से भी पुरानी बोली सिद्ध होनी चाहिए।”²

विभिन्न विद्वानों द्वारा संपर्क भाषा की जो परिभाषाएँ दी गयी हैं उनका उल्लेख निम्नवत् किया गया है-

डॉ. दंगल झाल्टे ने लिखा है कि-“अनेक भाषाओं की उपस्थिति के कारण जिस सुविधाजनक विशिष्ट भाषा के माध्यम से व्यक्ति-व्यक्ति, राज्य-राज्य, राज्य-केंद्र तथा देश-विदेश के बीच संपर्क स्थापित किया जाता है उसे संपर्क भाषा (Contact or Inter Language) की संज्ञा दी जाती है।”³

डॉ. पूरनचंद टंडन ने विचार करते हुए लिखा है कि- “संपर्क भाषा से तात्पर्य उस भाषा रूप से है जो समाज के विभिन्न वर्गों या निवासियों के बीच संपर्क के काम आती है। इस दृष्टि से भिन्न-भिन्न बोली बोलने वाले अनेक वर्गों के बीच हिंदी एक संपर्क भाषा है और अन्य कई भारतीय क्षेत्रों में भिन्न-भिन्न भाषाएँ बोलने वालों के बीच भी संपर्क भाषा है।”⁴

डॉ. महेंद्र सिंह राणा के अनुसार- “परस्पर अबोधगम्य भाषा या भाषाओं की उपस्थिति के कारण जिस सुविधाजनक विशिष्ट भाषा के माध्यम से दो व्यक्ति, दो राज्य, कोई राज्य और केंद्र तथा दो देश संपर्क स्थापित कर पाते हैं, उस भाषा विशेष को संपर्क भाषा/संपर्क साधक-भाषा (Contact Language or Interlink Language) कहा जा सकता है।”⁵

इस प्रकार संपर्क भाषा को मातृभाषा से इतर अन्य भाषा के रूप में देखा जा सकता है क्योंकि संपर्क भाषा भी एक भाषा ही होती है। यह भाषा विभिन्न भाषा-भाषियों के बीच संपर्क स्थापित करने का काम करती है। जिन देशों में बहुभाषिकता की स्थिति नहीं होती, वहाँ संपर्क भाषा का प्रश्न नहीं होता। किंतु बहुभाषिक संस्कृति वाले किसी भी देश में एक ऐसी भाषा की जरूरत पड़ती ही है जो अनेक भाषाओं के बीच संपर्क सेतु का काम करे जो व्यापक स्तर पर प्रचलित हो, जिसे ज्यादा से ज्यादा लोग समझते-बोलते हों। बहुभाषा-भाषी देश के रूप में, उदाहरण के तौर पर भारत के अलावा पूर्व सोवियत संघ के नाम का उल्लेख किया जा सकता है जहाँ लगभग 66 भाषाएँ बोली तो जाती थीं किंतु संपर्क भाषा रूसी ही थी।

बहुभाषा-भाषी देश में संपर्क भाषा का विशेष महत्व है। वैसे, संपर्क भाषा के रूप में कभी-कभी ऐसा भी होता है कि किसी बहुभाषा-भाषी देश में एक से अधिक भाषाओं को संपर्क भाषा के रूप में व्यवहार में लाया जाए। उदाहरण के लिए, कतिपय कारणों से आज भारत में हिंदी के साथ-साथ अंग्रेजी भी संपर्क भाषा के रूप में प्रयुक्त हो रही है।

हिंदी का केन्द्रीय महत्व उसके राजभाषा और संपर्क भाषा के रूप में सिद्ध हो चुका है। यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि व्यापार, जनसंचार तथा राजनीति की दृष्टि से हिंदी ने संपर्क भाषा का पद बखूबी पा लिया है। हिंदी का महत्व उसके नाम से भी सिद्ध है। हिंदी को छोड़कर अन्य भाषाएँ क्षेत्रीय नामों से जानी जाती हैं, जैसे पंजाबी पंजाब की, मराठी महाराष्ट्र की, बंगला बंगाल की, असमिया असम की, तमिल तमिलनाडु की भाषा वैसे ही हिंदी, हिंद की या हिन्दुस्तान की भाषा कही गई है।

संपर्क भाषा के रूप में हिंदी केंद्र सरकार के कानूनी प्रावधानों के परिणामस्वरूप भी विकसित हो रही है। भारत के संविधान में राजभाषा हिंदी संबंधी व्यवस्थाएँ की गई हैं, किंतु संपर्क भाषा का प्रत्यक्ष रूप से कोई उल्लेख नहीं किया गया है। किंतु संविधान में हिंदी भाषा के विकास से संबंधित लक्ष्य जिस

प्रकार निर्धारित किए गए हैं, उनमें एक ऐसी हिंदी भाषा के विकास पर बल दिया गया है जिसमें अन्य भारतीय भाषाओं और संस्कृत की शब्दावली, शैली और रूप समाहित हों। इसके परिणामस्वरूप हिंदी भारत की सामासिक संस्कृति की वाहक है और यह सामासिक संस्कृति की अभिव्यक्ति का माध्यम बन सकेगी। भारतीय संविधान की धारा '351' में हिंदी भाषा के विकास के लिए निदेश दिया गया है। इस धारा का सार रूप इस प्रकार है कि-संघ का कर्तव्य होगा कि वह हिंदी भाषा का प्रसार बढ़ाए, उसका विकास करे जिससे वह भारत की सामासिक संस्कृति के सभी तत्वों की अभिव्यक्ति का माध्यम बन सके। इसके लिए हिंदी भाषा की प्रकृति में हस्तक्षेप किये बिना हिंदुस्तानी में और संविधान की आठवीं अनुसूची में विनिर्दिष्ट भारत की अन्य भाषाओं में प्रयुक्त रूप, शैली और पदों को आत्मसात किया जाए और जहाँ आवश्यक या वांछनीय हो वहाँ हिंदी के शब्द-भंडार के लिए मुख्य रूप से संस्कृत से और गौण रूप से अन्य भाषाओं से शब्द ग्रहण करते हुए संघ, हिंदी की समृद्धि सुनिश्चित करे।

आज हिंदी भारत में हर जगह अल्पाधिक बोली और समझी जाती है। इस दृष्टि से हिंदी भिन्न-भिन्न बोलियों-भाषाओं को बोलने वाले अनेक वर्गों के बीच संपर्क भाषा की भूमिका निभा रही है। हिंदी अनेक भारतीय क्षेत्रों में भिन्न-भिन्न भाषाएँ बोलने वाले लोगों के बीच संपर्क भाषा के रूप में सक्रिय है। अखिल भारतीय भाषाओं में से केवल हिंदी ही ऐसी भाषा है जो संपर्क भाषा के रूप में व्यवहृत होती है। देश के किसी भी कोने में कहीं भी चले जाएँ लोग थोड़ी-बहुत ही सही किंतु बोल और समझ ही लेते हैं। स्थिति यह है कि हिंदी राष्ट्र की सांस्कृतिक चेतना से जुड़ी हुई है। संस्कृत, हिंदी की जननी-भाषा है और हिंदी उसकी उत्तराधिकारिणी। हिंदी में संस्कृत शब्दावली के समावेश के कारण हिंदीतर भाषी लोग भी समझ जाते हैं। इसका कारण यह है कि उनकी भाषाओं में संस्कृत के शब्दों का पहले से ही समावेश है, चलन है। इससे शब्दावली-परिचय के स्तर पर साम्य की स्थिति बन जाती है और दो व्यक्तियों आदि के बीच संवाद स्थापित कराने में हिंदी सक्षम हो जाती है।

जब हम संपर्क की चर्चा करते हैं तो सबसे पहले पूरे देश के लोगों को आपस में जोड़ने की बात आती है। उदाहरण के लिए दो भिन्न भाषा-भाषी राज्यों के लोग तब तक एक-दूसरे से संपर्क नहीं कर सकते, जब तक कि उनके बीच एक भाषाई माध्यम उपलब्ध न हो। तमिलनाडु और आंध्रप्रदेश, कर्नाटक और केरल, पश्चिम बंगाल और उड़ीसा आदि इसी प्रकार के दो भिन्न भाषा-भाषी राज्यों का उदाहरण के तौर पर उल्लेख किया जा सकता है जहाँ के लोग एक भाषाई माध्यम की अनुपलब्धता की स्थिति में एक-दूसरे से संपर्क नहीं कर पाते। ऐसे में यह आवश्यक हो जाता है कि या तो वे दोनों प्रदेशों की भाषाओं को व्यवहार में लाएँ या फिर दोनों में से एक भाषा को संपर्क के लिए अपनाएँ। ऐसी अधिकांश परिस्थितियों में भाषिक संपर्क-संबंध स्थापित नहीं हो पाता। तब समाधान के रूप में देश की संपर्क भाषा हिंदी को ही माध्यम बनाना पड़ता है, अपनाया पड़ता है।

इस संदर्भ में डॉ. सुनीति कुमार चाटुर्ज्या के 'भारतीय आर्य भाषा और हिंदी' नामक पुस्तक में उल्लिखित विचार विशेष तौर पर ध्यातव्य है कि- "बोलने वालों एवं व्यवहार करने तथा समझने वालों की संख्या की दृष्टि से हिंदुस्तानी का स्थान जगत की महान भाषाओं में तीसरा है, इसके पहले केवल चीनी भाषा की उत्तरी बोली तथा अंग्रेजी का है। इस प्रकार हिंदी या हिंदुस्तानी आज के भारतीयों के लिए एक बहुत बड़ा रिक्थ है। यह हमारे भाषा विषयक प्रकाश का महत्तम साधन तथा भारतीय एकता एवं राष्ट्रीयता का प्रतीक रूप है। वास्तव में हिंदी ही भारत की भाषाओं का प्रतिनिधित्व कर सकती है।"⁶

भारत के प्राचीन इतिहास पर यदि हम नजर डालते हैं तो पाते हैं कि यहाँ हर युग में राष्ट्र की एक प्रमुख भाषा संपर्क भाषा की भूमिका का निर्वाह करती रही है। आधुनिक भारतीय भाषाओं के उद्भव और विकास से पहले संपर्क भाषा की इसी परंपरा के क्रम में हम संस्कृत, पालि, प्राकृत और अपभ्रंश का प्रांजल प्रयोग पाते हैं। बाद में, मुगल शासन, देशी राजाओं और अंग्रेजी शासन काल में हिंदी का संपूर्ण रूप से तो नहीं, किंतु आंशिक रूप से संपर्क भाषा के रूप में व्यवहार किया गया। आजादी की लड़ाई के समय में गाँधी और सुभाष जैसे गैर हिंदी भाषी नेताओं ने देश के विभिन्न क्षेत्रों में क्रांति संदेश देने और दो भिन्न-भाषियों के बीच संपर्क के लिए हिंदी को संपर्क भाषा के रूप में अपनाया। आजादी के बाद हमारे यहाँ हिंदी देश की सर्वमान्य भाषा के रूप में प्रतिष्ठित हो चुकी है।

हिंदी आज संसार में सर्वाधिक बोली जानेवाली भाषाओं में से एक है। उसका अंतरभारतीय स्वरूप ही नहीं, अंतरराष्ट्रीय रूप भी विकसित हुआ है। एशिया ही नहीं यूरोप और अमेरिका के देशों जैसे मारिशस, सूरीनाम, फिजी, ट्रिनिडाड, केनिया, नैरोबी, ब्रिटिश गाइना, दक्षिण अफ्रीका, बर्मा (टांगू जिला) आदि में भी हिंदी समझनेवाले लोग हैं। भारत के विशाल बाजार में प्रवेश के लिए उसे जनसंचार माध्यमों में अपनाया गया है। विज्ञापनों से लेकर अंग्रेजी के प्रसारणों तक को व्यापक जनता तक पहुँचाने के लिए हिंदी में 'डब' किया जाता है। प्रायः कहा जाता है कि आनेवाले समय में वही भाषाएँ जीवित रहेंगी जो बाजार की भाषाएँ होंगी। इस कसौटी पर हिंदी दुनिया के सबसे बड़े बाजार की संपर्क भाषा है। अतः उसका भविष्य सुरक्षित है।

हिंदी भाषा के उद्भव और विकास के बारे में अनेक विद्वानों ने लिखा है। अधिकांश विद्वान हिंदी की उत्पत्ति का मूल 'संस्कृत' से मानते हैं। उनके अनुसार हिंदी का विकास संस्कृत - झ पालि - झ प्राकृत - झ अपभ्रंश से हुआ है। जबकि रामविलास शर्मा 'संस्कृत' के सभी भारतीय भाषाओं के मूल होने पर संदेह व्यक्त किया है। उन्होंने लिखा है कि-- "संस्कृत किसी आर्य नाम की नस्ल की भाषा नहीं है। उसके निर्माण में अनेक भाषा-परिवारों का योग रहा है।...किंतु संस्कृत भारत की एकमात्र भाषा कभी नहीं रही।" उनकी मान्यता है कि संस्कृत का विकास भारत की बोलियों से हुआ था। वे आगे लिखते हैं कि-- "भरत या कुरुजन की बोली के आधार पर संस्कृत का विकास हुआ और वह विभिन्न जनपदों के व्यवहार की भाषा बनी।"⁸ अधिकांश विद्वान 'वैदिक संस्कृत' को भारत की सबसे प्राचीन भाषा मानते हैं। रामविलास शर्मा के अनुसार वैदिक धर्म के प्रचार के लिए भी जनभाषाओं का उपयोग अनिवार्य था। उन्होंने लिखा है कि "धार्मिक कर्मकांड के लिए चाहे जिस लोकोत्तर वाणी का प्रयोग हो, जन-साधारण में धर्म का प्रचार तो उनकी भाषा के बिना असम्भव है। वैदिक धर्म का प्रचार भी जब हुआ होगा, तो लोक-भाषाओं द्वारा ही हुआ होगा।"⁹ साथ ही हिंदी के उद्भव और विकास के संबंध में डॉ. रामविलास शर्मा का मत है-- "...हिंदी और उसके साथ की बोलियों के अनेक रूप काफी प्राचीन सिद्ध होते हैं। संस्कृत-प्राकृत-अपभ्रंश की मंजिलों को आधुनिक भारतीय भाषाओं के विकास की सही मंजिलें मानने के कारण भाषाविद् तथ्यों को तोड़-मरोड़कर पेश करते हैं और उनसे गलत निष्कर्ष निकालते हैं।"¹⁰ हालाँकि रामविलास शर्मा ने 'वैदिक संस्कृत' को एक बोलचाल की भाषा माना है लेकिन उसे प्राचीन बोलियों का एक समुच्चय माना है, न कि आधुनिक भारतीय भाषाओं की जननी। संस्कृत से हिंदी का संबंध जरूर है लेकिन वह हिंदी की जननी नहीं है। उन्हीं के शब्दों में "वैदिक भाषा को बोलचाल की भाषा मानना चाहिए।

जिस भाषा में भी साहित्य रचा जाय, वह कृत्रिम होगी। यह तर्क असंगत है। वैदिक संस्कृत और लौकिक संस्कृत से हिंदी आदि आधुनिक भाषाओं का गहरा संबंध है।... साथ ही आधुनिक भाषाओं की अपनी विशेषताएँ हैं जो प्राचीन काल में यहाँ बहुत सी भिन्न प्रकृति वाली भाषाओं और भाषा परिवार के अस्तित्व की सूचना देती हैं। हिंदी के क्रिया-रूप संस्कृत से मिलते-जुलते हैं, यद्यपि वे उनकी नकल नहीं हैं।¹¹ हिंदी भाषा के विकास में संस्कृत की भूमिका के संबंध में डॉ. रामविलास शर्मा की स्पष्ट मान्यता है कि संस्कृत ने हिंदी को भाषिक रूप से समृद्ध अवश्य किया है किन्तु संस्कृत से हिंदी का विकास नहीं हुआ है।

डॉ. रामविलास शर्मा इस तथ्य पर जोर देते हैं कि भाषाओं का विकास, या दूसरे शब्दों में कहें तो भाषा में परिवर्तन, आपसी सम्पर्क का परिणाम होता है। जिस समाज का इतिहास जितना पुराना होगा, जिस समाज का अन्य समाजों से सम्पर्क जितना अधिक होगा, उस समाज का विकास भी उतना ही अधिक होगा और उस समाज की भाषा का शब्द-भंडार भी उतना ही बड़ा होगा। हर भाषा का विकास उसके समाज के ऐतिहासिक एवं भौगोलिक परिप्रेक्ष्य में ही संभव है। हर भाषा का विकास उसके सामाजिक संदर्भों पर आधारित रहा है। अतः भारत संघ की राजभाषा हिंदी का विकास भी उसके सामाजिक संदर्भों को ध्यान में रखकर देखा जाना चाहिए।

भारतीय भाषाओं में भारतीय संघ की राजभाषा हिंदी का महत्व सर्वविदित है। हिंदी भारत-सरकार की राजभाषा ही नहीं, वरन् भारत की सर्वप्रमुख अघोषित सम्पर्क भाषा भी है। हिंदी वास्तव में पाँच उपभाषाओं एवं 17 बोलियों का समुच्चय है। इन बोलियों की उत्पत्ति विभिन्न प्राकृत भाषाओं से मानी गई है और इन प्राकृतों का मूल संस्कृत को माना गया है। प्रकारान्तर से हिंदी की उत्पत्ति संस्कृत से ही मानी गई है।

महावीर प्रसाद द्विवेदी, किशोरीदास वाजपेयी, डॉ. रामविलास शर्मा, डॉ. धर्मवीर, आदि का जोर इसी बात की ओर अधिक है कि प्राचीन काल में संस्कृत के समानान्तर बहुत-सी जनभाषाएँ एवं जनबोलियाँ भी मौजूद थीं जिनमें आज की भारतीय भाषाओं की 'आत्मा' बसी हुई है। इन्हीं भारतीय भाषाओं में हिंदी भी शामिल है जिसका विकास संस्कृत की समकालीन जनभाषाओं से हुआ है। प्राचीन भारतीय भाषाओं का विकास हो या आधुनिक भारतीय भाषाओं का, यह निरंतर लंबे समय तक चली विकास-प्रक्रिया का हिस्सा है।

ध्यान रहे कि पिछले कुछ वर्षों में इस दिशा में तेजी से परिवर्तन हुए हैं तथा कंप्यूटर पर हिंदी का प्रयोग तीव्र गति से बढ़ा है। अब तो कंप्यूटर को निर्देश देने और ब्राउजर तक की सुविधा हिंदी में उपलब्ध है। विभिन्न विषयों का ज्ञान-विज्ञान डिजिटल रूप में हिंदी में आ रहा है। भारत में जब व्यापक रूप में कंप्यूटर आरंभ किया गया उस समय सरकार की जल्दीबाजी के कारण भारतीय भाषाओं के लिए अपने फांट की प्रतीक्षा नहीं की गई जिसके कारण काफी अराजकता कंप्यूटर पर हिंदी प्रयोग में देखी जाती है। परंतु अब यूनिकोड की उपलब्धता और कोड परिवर्तकों की खोज ने इस समस्या को बड़ी सीमा तक सुलझा दिया है। इसका अभिप्राय है कि कंप्यूटर पर हिंदी के प्रयोग के लिए अब आसमान दूर-दूर तक साफ है। यहाँ फिर दोहरना होगा कि भविष्य की विश्व भाषाओं के लिए यह भी एक शर्त समझी जाती है कि वे कंप्यूटर की भाषा हों। हिंदी इस कसौटी पर भी खरी उतर रही है। इसलिए आनेवाला समय हिंदी का समय है।

संदर्भ-

1. <http://censusindia.gov.in/2011Census/Language-2011/Statement-1.pdf>
2. डॉ. धर्मवीर, हिन्दी की आत्मा, पृ. 17
3. दंगल झाल्टे, 'प्रयोजनमूलक हिंदी: सिद्धांत और प्रयोग', वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 1996, पृ. 53
4. पूरनचन्द टण्डन, 'आजीविका-साधक हिंदी', इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन, दिल्ली, 1998, पृ. 151
5. महेन्द्र सिंह राणा, 'प्रयोजनमूलक हिंदी के आधुनिक आयाम', हर्ष प्रकाशन, दिल्ली, 2003, पृ. 79
6. सुनीति कुमार चाटुर्ज्या, 'भारतीय आर्य भाषा और हिंदी', राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1963, पृ. 149
7. रामविलास शर्मा, भाषा और समाज, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., नई दिल्ली, पाँचवाँ संस्करण, 2002, पृ. 208
8. वही, पृ. 219
9. वही, पृ. 229
10. वही, पृ. 217
11. वही, पृ. 216-217

सहभागी शासन- भारत के संदर्भ में

प्रोफेसर (डॉ०) अनुपम शर्मा

प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, राजनीति विज्ञान एवं लोक प्रशासन विभाग, डॉ० हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर (केंद्रीय विश्वविद्यालय),
सागर, मध्य प्रदेश

सहभागी शासन आधुनिक लोकतंत्र का महत्वपूर्ण पहलू है। यह लोकतंत्र के लिए स्तम्भ है, (चौधरी एवं श्रीवास्तव 2025) तथा लोकतंत्र को मजबूत बनाने के साथ उसको विस्तारित करता है। इस प्रक्रिया के माध्यम से नीति निर्माण की प्रक्रिया समावेशी बनती है तथा सरकार ये भी सुनिश्चित करती है कि समाज में विविध समुदायों की आवश्यकताओं, मांगों एवं हितों का प्रतिनिधित्व हो रहा है। शीन्डर हार्टमट ने (1999) निर्णय निर्माण प्रक्रिया में सभी हितधारकों की सहभागिता को सहभागी शासन की पहचान माना है। सहभागी शासन की अवधारणा शासन में नीति निर्माण के साथ, कार्यान्वयन एवं मूल्यांकन की प्रक्रियाओं में नागरिकों की सक्रिय भागीदारी पर बल देता है। यह समावेशता तथा समता को बढ़ावा देता है तथा निर्णय निर्माण प्रक्रिया में सभी के प्रतिनिधित्व पर बल देता है विशेषकर उन समुदायों को जो किन्हीं कारणोंवश हाशिये पर रह गये हैं। सहभागी शासन व्यवस्था इन सभी की आवाजों, अपेक्षाओं, मांगों को भी समान रूप से हिस्सेदारी में प्रतिनिधित्व सुनिश्चित करती है जिससे निर्णय निर्माण समावेशी हो। नागरिकों के शासन प्रक्रिया में प्रभावी एवं सक्रियता से संलग्न करने के साथ सहभागी शासन लोकतांत्रिक सिद्धान्तों जैसे प्रतिनिधियात्मक, दायित्वों एवं पारदर्शिता में भी सहायक सिद्ध होता है। सहभागी शासन निर्णय निर्माण प्रक्रिया को सहयोगात्मक बनाने पर बल देता है तथा निर्णय निर्माण की प्रक्रिया को जनता के बीच, आसान पहुँच, पारदर्शी एवं जवाबदेह बनाता है। यह सरकारी संस्थाओं को जवाबदेह रखने में मदद करता है तथा नागरिकों को भाग लेने, जाँच करने और निर्णयों को प्रभावित करने का अवसर प्रदान करता है।

सहभागी शासन की अवधारणा विशेषकर एशिया, अफ्रीका, लैटिन अमेरिका के देशों में मुख्यतः विकेन्द्रीकरण एवं उनकी चुनावी प्रक्रिया में सहभागिता के साथ आरम्भ हुई तथा इसके पश्चात् यह विस्तारित होकर राजनीतिक प्रक्रिया के अन्य क्षेत्रों में भी विस्तृत हुई। 20वीं शताब्दी के अंतिम दशक में अंतरराष्ट्रीय स्तर पर सुशासन की अवधारणा ने सहभागी शासन की अवधारणा को और अधिक स्पष्ट रूप से व्याख्यायित किया। 21वीं शताब्दी में वैश्विक स्तर पर सभी अभिकर्ताओं की राजनीतिक निर्णय निर्माण प्रक्रिया में सहभागिता को सुनिश्चित करने के लिए विभिन्न सहभागी नीतियों, कार्यक्रम आदि के माध्यम से प्रयास किये जा रहे हैं। इन प्रयासों का उद्देश्य सभी अभिकर्ताओं की भूमिका को सभी राजनीतिक संस्थाओं में नीति निर्माण प्रक्रिया, नीति क्रियान्वयन एवं अन्य सभी प्लेटफॉर्म एवं स्तर पर उनकी आवाज को महत्व एवं मान्यता प्रदान करना है। सहभागी शासन की यह अवधारणा नागरिकों को एक सक्रिय अभिकर्ता के रूप में स्थान दिलाती है अर्थात् नागरिक की भूमिका राजनीतिक प्रक्रिया में केवल मतदान तक सीमित न होकर उससे वृहत्तर है। यह शासन के विभिन्न स्तरों पर शासन प्रक्रिया में सक्रिय भूमिका का निर्वाह करके लोकतांत्रिक व्यवस्था को मजबूती प्रदान करती है। निर्णय निर्माण प्रक्रिया में नागरिकों को अवसर मिलने के परिणाम स्वरूप सरकार में नागरिकों की संतुष्टि और विश्वास बढ़ता है। सरकारी नीतियाँ नागरिकों की मांगों एवं जरूरतों के अनुसार बनायी जाती हैं एवं सरकार भी उत्तरदायी रहती है।

भारत में स्वतंत्रता के पश्चात् संविधान के माध्यम से लोकतांत्रिक व्यवस्था को अपनाया गया और इस व्यवस्था में नागरिकों की सहभागिता को सुनिश्चित करने के लिए संविधान में विभिन्न प्रावधानों की व्यवस्था की गयी है जिसके परिणामस्वरूप नागरिक राजनीतिक प्रक्रिया में अपनी सहभागिता रखते हैं। सरकारों के द्वारा लोकतंत्रात्मक व्यवस्था को सहभागी बनाने के लिए अनेक नीतियाँ एवं कार्यक्रमों के रूप में भी कदम उठाये गये जिससे सहभागी शासन की प्रक्रिया अधिक प्रभावी हो रही है।

भारत में लोकतंत्रात्मक व्यवस्था पिछले सात दशकों में निष्पक्ष, शांतिपूर्ण, सार्वभौमिक मतदान व्यवस्था के माध्यम से जीवंत एवं गत्यात्मक रही है। लोकतांत्रिक व्यवस्था की यही गत्यात्मकता उसको अन्य देशों, जो उसी काल खण्ड में स्वतंत्र हुए थे, से आगे की पंक्ति एवं कुछ विकसित देशों की राजनीतिक व्यवस्थाओं के समकक्ष लाकर पंक्तिबद्ध करती है। भारत विश्व का सबसे बड़ा लोकतंत्र है एवं लोकतंत्र भारत की आत्मा है। भारत में लोकतंत्र शासन व्यवस्था से ऊपर प्राचीन संस्कृति, हजारों वर्षों के अनुभव से विकसित राजनीतिक संस्कृतिक है। प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी ने संयुक्त राष्ट्र संघ में अपने उद्बोधन में कहा कि लोकतंत्र भारत की आत्मा है। लोकतांत्रिक परम्परा का प्रभाव वर्तमान में भी भारतीय जनमानस में है। इसलिए भारत में स्वतंत्रता के पश्चात् लोकतंत्र सहज रूप सभी को स्वीकार्य है, और इसी सहज रूप से इसका विकास हुआ है।

स्वतंत्रता के पश्चात् भारत में साक्षरता की दर कम अवम् गरीबी अधिक थी तथा देश की सांस्कृतिक, धार्मिक, भाषाई विभिन्नताओं को दृष्टिगत रखते हुए बहुत से पश्चिमी विचारकों के द्वारा यह अनुमान लगाया जा रहा था कि भारत में लोकतांत्रिक व्यवस्था सफल नहीं हो पायेगी, परन्तु भारत ने इन सभी अनुमानों को गलत सिद्ध करते हुए तत्कालीन विभिन्नताओं के उपरान्त भी लोकतंत्र का विकास जिस प्रकार हुआ वैसा अन्य देशों में सम्भव नहीं हो पाया। भारत में स्वतंत्रता के पश्चात् लोकतंत्र में जनता के विश्वास में निरन्तर वृद्धि हुई है तथा लोकतंत्र की यात्रा गत्यात्मक बनी रही है, जिसमें संविधान के माध्यम से जिन राजनीतिक संस्थाओं का गठन किया गया था उनमें गठन के साथ लोकतांत्रिक प्रक्रिया को अपनाया गया तथा सामाजिक एवं आर्थिक क्षेत्रों में भी

लोकतांत्रिक प्रणाली अपनाने पर निरन्तर बल दिया गया। इन प्रयासों के परिणामस्वरूप ही स्थानीय राजनीतिक संस्थाओं की जड़े मजबूत हुई और लोकतांत्रिक प्रणाली का भी निरन्तर विकास हुआ है। स्वतंत्रता के पश्चात गठित सरकारों ने संविधान के भाग 4 में वर्णित राज्य के नीति निर्देशक तत्वों को व्यवहारिक बनाने के लिए अनेक कदम उठाये जिसका प्रभाव भारतीय शासन व्यवस्था में स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है। सरकार के द्वारा उठाये गये इन सकारात्मक प्रयासों से समाज में लोकतांत्रिक व्यवस्था और अधिक सुदृढ़ हुई।

भारत में सहभागी शासन की विशेषताएँ प्राचीन समय से उपस्थित रही। सभा, समितियों एवं परिषदों के माध्यम से लोग शासन की प्रक्रियाओं में भाग लेते थे और अपनी सक्रिय भूमिका का निर्वाह करते थे। भारत में प्राचीन सहभागी शासन की विशेषताएँ आधुनिक लोकतांत्रिक व्यवस्था में पायी जाती है, जिसमें नागरिक विभिन्न राजनीतिक क्रियाओं के माध्यम से शासन व्यवस्था में भाग लेते हैं। भारत में स्थानीय स्तर की राजनीतिक संस्थाओं के गठन एवं जनता की सहभागिता के लिए स्वतंत्रता के पश्चात से निरन्तर प्रयास किये गये। इन प्रयासों के परिणामस्वरूप देश में 20वीं सदी के अंतिम दशक में ऐतिहासिक संवैधानिक संशोधनों के माध्यम से स्थानीय स्तर पर नागरिकों को राजनीतिक संस्थाओं के माध्यम से नीति निर्माण प्रक्रिया में भागीदारी का अवसर प्रदान किया। इन संशोधनों के माध्यम से स्थानीय स्तर पर राजनीतिक संस्थाओं का गठन हुआ, तथा आरक्षण के माध्यम से समाज के पिछड़े वर्गों एवं महिलाओं के प्रतिनिधित्व को सुनिश्चित किया गया तथा शासन के स्वरूप को सहभागी शासन की तरफ कदम उठाया गया।

स्थानीय स्तर पर राजनीतिक संस्थाओं का गठन-

स्वतंत्रता के पश्चात से किए गए प्रयासों के परिणामस्वरूप भारत में सहभागी शासन की अवधारणा मूर्त रूप ले रही है। यद्यपि इस मार्ग में अनेक चुनौतियाँ हैं परन्तु भारत इन चुनौतियों का सामना करते हुए निरन्तर आगे बढ़ रहा है। भारत में शासन को सहभागी बनाने के लिए अन्य प्रयासों के साथ महत्वपूर्ण ऐतिहासिक कदम संवैधानिक संशोधन 73वें एवं 74वें हैं, जिनके माध्यम से स्थानीय स्तर पर राजनीतिक संस्थाओं में अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों एवं महिलाओं को आरक्षण के माध्यम से शासन में उनकी सहभागिता सुनिश्चित की गयी। इन संवैधानिक संशोधनों के माध्यम से शक्तियों का विकेन्द्रीकरण एवं शासन व्यवस्था को अधिकाधिक लोकतांत्रिक बनाना गया। लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण की प्रक्रिया स्थानीय स्तर पर राजनीतिक संस्थाओं के माध्यम से नीति निर्माण में नागरिकों की भागीदारी, स्थानीय आवश्यकताओं के अनुरूप नीति निर्माण में तथा विकास परियोजनाओं को लागू करने में सहायता करता है। इन प्रावधानों के माध्यम से स्थानीय नागरिक अवम उनके राजनीतिक प्रतिनिधियों के द्वारा स्वयं के लिए नीति निर्माण के मुद्दों की पहचान की जाती है, और उन मुद्दों पर नीतियों का निर्माण किया जाता है। अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजातियों एवं महिलाओं के लिए आरक्षण के प्रावधान, स्थानीय राजनीतिक संस्थाओं को सहभागी बनाने की प्रक्रिया में एक महत्वपूर्ण कदम था। इस प्रावधान के माध्यम से समाज का वह वर्ग जो विभिन्न कारणों से निर्णय निर्माण प्रक्रिया से वंचित था, उसकी भी शासन प्रक्रिया में सहभागिता सुनिश्चित हो गयी। इस ऐतिहासिक प्रयास ने शासन की प्रक्रिया को स्थानीय स्तर पर सहभागी अवम प्रभावी बनाया।

सूचना का अधिकार अधिनियम (2005)- सूचना का अधिकार अधिनियम नागरिकों को सरकार की गतिविधियों एवं निर्णयों के बारे में जानने का अधिकार प्रदान करता है। यह अधिनियम देश में नागरिकों को सूचनाओं के माध्यम से सशक्त बनाता है। सूचनाओं के माध्यम से सशक्त नागरिक शासन के साधनों पर निगरानी रखते हैं तथा आवश्यकतानुसार सूचनाओं के माध्यम से शासन को बेहतर बनाने पर बल देते हैं। इसके साथ यह अधिनियम सरकार की कार्यप्रणाली में पारदर्शिता और जवाबदेही बनाने पर बल देता है। सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005 के परिणामस्वरूप भारतीय लोकतंत्र को मजबूत बनाने के साथ नागरिकों की शासन में भागीदारी बढ़ी है। सूचनाओं से सशक्त नागरिक सरकार से, अपनी आवश्यकताओं, माँगों एवं आकांक्षाओं के अनुरूप कार्य करने की माँग करते हैं। इसके माध्यम से यह भी सुनिश्चित होता है कि सरकार की नीतियाँ और कार्यक्रम जनता की भलाई और विकास के लिए बनाये जायें तथा उनको प्रभावी प्रकार से क्रियान्वित किया जाये। सूचना एक ऐसा यंत्र है जो प्रत्येक नागरिक के लिए शासन में प्रतिभाग करने के लिए नितान्त आवश्यक है। नागरिक सूचना प्राप्त करके शासन तंत्र में अपनी सक्रिय हिस्सेदारी सुनिश्चित करते हैं।

इलैक्ट्रॉनिक्स और सूचना प्रौद्योगिकी मंत्रालय (Meity): इस मंत्रालय के द्वारा वर्ष 2005 में भारत का राष्ट्रीय पोर्टल, (National Portal of India) (India.gov.in) एवं वर्ष 2012 में ओपन गवर्नमेंट डेटा प्लेटफार्म (Open Government Data Platform) (data.gov.in) में सार्वजनिक सूचना एवं आँकड़ों की आसान पहुँच प्रदान करने के लिए इन प्लेटफार्म को लॉन्च किया गया था। सरकार के द्वारा सार्वजनिक सेवाओं एवं वस्तुओं की जनता तक पहुँच सुनिश्चित करने के लिए सूचना एवं संचार तकनीक का प्रयोग किया जा रहा है। भारत दुनिया के उस समूह का प्रमुख सदस्य है जो जनता तक पहुँच के लिए तकनीक का अधिकाधिक प्रयोग कर रहे हैं। संयुक्त राष्ट्र ई सरकार सर्वेक्षण वर्ष 2022 के आँकड़ों के अनुसार जिसमें देश में 22 ऑनलाइन सेवाओं का मूल्यांकन किया गया था, भारत ने 2014 से 2022 तक 13 रैंक की बढ़ोत्तरी दर्ज की है। अन्तर्राष्ट्रीय रिपोर्ट दर्शाती है कि भारत में सरकार के द्वारा ऑनलाइन सेवाओं को प्रदान करने का दायरा विस्तृत हो रहा है तथा लोगों को ये सेवाएँ एवं अपने इलैक्ट्रॉनिक डिवाइस के माध्यम से तुरन्त ही उपलब्ध हो जाती है। परिणामस्वरूप उपयोगकर्ता को सरकारी सेवाओं का लाभ कम समय एवं लागत, शीघ्रता तथा गुणवत्तापूर्ण सेवाएँ पारदर्शिता के साथ मिलती है।

माइगोव डॉट इन (MyGov.in):- भारत में नागरिकों की शासन में सहभागिता के लिए यह एक महत्वपूर्ण मंच है जो नागरिकों को सरकारी विभागों, नीति निर्माताओं, कार्यान्वयनकर्ताओं एवं सरकार के विभिन्न विभागों एवं मंत्रालयों से जुड़ने का सुनहरा अवसर प्रदान करता है (MyGov.in)। डिजिटल इंडिया डॉट गोव डॉट इन के अनुसार इस प्लेटफार्म पर अब तक 3.9 करोड़ उपयोगकर्ता पंजीकृत हैं (digitalindia.gov.in)। प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी ने अपने उद्बोधन में कहा कि माइगोव डॉट इन प्लेटफार्म, भारत का कल्याण चाहने वाले हर व्यक्ति के लिए यह एक बहुत बड़ा अच्छा अवसर है, एक माध्यम है, ये एक शुरुआत है। उन्होंने विश्वास जताया कि सभी देशवासी इस पहल का स्वागत करेंगे। इस डिजिटल प्लेटफार्म के माध्यम से सरकार की तरफ से सूचना साझा करने तथा सरकारी प्रयासों के बारे में उनकी राय को शेयर करने का एक महत्वपूर्ण प्लेटफार्म है। यह डिजिटल प्लेटफार्म जनता एवं सरकार को एक

दूसरे के करीब लाता है। 26 जुलाई 2014 को लांच किये जाने के बाद से इस प्लेटफार्म पर 20 मिलियन से अधिक पंजीकृत उपयोगकर्ता हैं (MyGov.in)। सभी सरकारी विभाग अपनी नागरिक जुड़ाव गतिविधियों, नीति निर्माण के लिए परामर्श और विभिन्न सरकारी योजनाओं एवं कार्यक्रमों के लिए नागरिकों को सूचना प्रसार करने के लिए इस मंच से जुड़कर इसका लाभ उठाते हैं। इस डिजिटल प्लेटफार्म ने इंटरनेट, मोबाइल एवं आई.वी.आर.एस., एस.एम.एस. और आउटबाउंड (POBD) तकनीकों का अभिनव ढंग से उपयोग करने, चर्चाओं, कार्यों, जनमतों, सर्वेक्षण, ब्लागों, वार्ताओं और क्विज जैसी अनेक जुड़ाव पद्धतियों को अपनाया है। भारत में लोकतांत्रिक प्रक्रिया के माध्यम से नीति निर्माण का कार्य किया जाता है। शासन व्यवस्था को सहभागी बनाने के लिए इस प्लेटफार्म के माध्यम से नागरिकों की नीति निर्माण में सक्रिय भूमिका को बढ़ावा दिया जा रहा है। नीति निर्माण एक गत्यात्मक अवधारणा है जिससे समयानुसार एवं जनता की आवश्यकतानुसार भारत में नीतियों का निर्माण किया जाता है। नीति निर्माण की प्रक्रिया को अधिक सहभागी बनाने के लिए सरकार के द्वारा माइगाव डॉट इन के माध्यम से जनता की राय को भी महत्व दिया जा रहा है। माइगाव डॉट इन के माध्यम से पिछले कुछ वर्षों में समय समय पर नागरिकों से ड्राफ्ट नीतियों पर सुझाव माँगे गये थे जिनमें से राष्ट्रीय शिक्षा नीति, डेटा सेंटर नीति, डेटा संरक्षण नीति, राष्ट्रीय बंदरगाह नीति, आई. आई. एम. विधेयक इत्यादि हैं। माइगाव डॉट से इन इस प्रक्रिया में सभी हितधारकों के द्वारा इन विधेयकों पर अपनी राय एवं विचार, सरकार से साझा किये गये थे। सरकार के द्वारा इन सभी आमन्त्रित विचारों एवं सुझावों को सम्मिलित करने के साथ ही नीतियों को अंतिम स्वरूप प्रदान किया गया। माइगाव डॉट इन पर सरकार मन की बात, वार्षिक बजट, परीक्षा पर चर्चा आदि अन्य पहलों के लिए विचार भी मांगती रही है। माइगाव डॉट इन डिजिटल इण्डिया प्लेटफार्म के माध्यम से देश में सहभागी शासन की अवधारणा मूर्त रूप ले रही है। सूचना एवं संचार तकनीक के माध्यम से शासन के स्वरूप में परिवर्तन आ रहा है जिसका प्रभाव राजनीतिक प्रक्रिया के प्रत्येक स्तर पर अनुभव किया जा सकता है।

माइगाव डॉट इन प्लेटफार्म ने समाज को जागरूक बनाने के साथ-साथ, समाज में भ्रम को दूर कर, देश में सकारात्मक माहौल बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया है। समाज में नागरिकों की भागीदारी तय करने के साथ छिपी प्रतिभाओं को निखारकर माइगाव ने नागरिकों के साथ एक अनमोल दिल का रिश्ता स्थापित किया है। देश भर के लोगों की भागीदारी और भरोसे से यह प्लेटफार्म निरन्तर आगे बढ़ रहा है। अब यह एक आनलाइन प्लेटफार्म से आगे बढ़कर भारत की आत्मा बन रहा है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति की आवाज सुनी जाती है, समझी जाती है और उसका प्रभाव भी दिखायी देता है। भारत में सूचना अवम् तकनीक के प्रयोग से नीति निर्माण प्रक्रिया में निश्चित रूप से परिवर्तन आया है (शर्मा, 2022, पृष्ठ 426)।

भारत में सहभागी शासन की अवधारणा को धरातल पर उतारने के लिए विभिन्न क्षेत्रों में जैसे शिक्षा, स्वास्थ्य, यातायात एवं अन्य क्षेत्रों में तकनीक के प्रयोग से नागरिक की सहभागिता के लिए अवसर प्रदान किये जा रहे हैं। इन अवसरों के माध्यम से नागरिक सक्रिय लाभार्थी के रूप में सरकारी सेवाओं का लाभ उठा रहे हैं। डिजिटल प्लेटफार्म पर सरकार एवं नागरिक एक दूसरे से प्रत्यक्ष जुड़े हैं। सरकार के द्वारा सार्वजनिक सेवाओं एवं वस्तुओं की जनता तक पहुँच सुनिश्चित करने के लिए सूचना एवं संचार तकनीक का प्रयोग किया जा रहा है। भारत दुनिया के उस समूह का प्रमुख सदस्य है जो जनता तक पहुँच के लिए तकनीक का अधिकाधिक प्रयोग कर रहा है। सरकार ने तकनीक का प्रयोग करके लगभग सभी क्षेत्रों के लिए मोबाइल एप्स बनाये हैं जिसके माध्यम से लाभार्थी इन एप्स को डाउनलोड करके सरकारी सेवाओं का लाभ उठा रहे हैं। सहभागी शासन की अवधारणा क्षेत्रों, सीमाओं को पीछे छोड़ते हुए सभी को शासन प्रक्रिया का अंग बना रही है। सहभागी शासन नागरिकों को अपने समुदायों और समाज को आकार देने में सक्रिय भागीदार बनाने का अवसर देता है तथा लोगों की भलाई में योगदान करने और सकारात्मक परिवर्तन के लिए कौशल एवं आत्मविश्वास विकसित करने में भी मदद करता है।

भारत में सामाजिक एवं सांस्कृतिक विभिन्नतायें विद्यमान हैं। सहभागी शासन इन विविध समूह एवं समुदायों को एक साथ लाकर साझा लक्ष्यों और आकांक्षाओं की दिशा में काम करने के लिए तथा सामाजिक सामंजस्य और एकजुटता बनाने में योगदान दे सकता है। सहभागी शासन के माध्यम से समुदायों आपस के मतभेद को दूर रखकर सामूहिक लक्ष्यों एवं आकांक्षाओं के लिए एक साथ मिलकर कार्य करते हैं। भारत में लोकतांत्रिक संस्थाओं को मजबूत बनाने, लोकतांत्रिक मूल्यों को बढ़ावा देने, समावेशी एवं समता स्थापित करने, निर्णय निर्माण प्रक्रिया को बेहतर बनाने, नागरिकों को सशक्त करने तथा सतत् विकास को बढ़ावा देने के लिए सहभागी शासन महत्वपूर्ण है। नागरिकों को प्रत्येक स्तर पर निर्णय निर्माण प्रक्रिया में शामिल करने, सरकारी संस्थाओं एवं जनता के मध्य दूरी कम करके सहयोग को बढ़ावा देकर सहभागी शासन को अधिक उत्तरदायी, जवाबदेह, पारदर्शी एवं न्यायसंगत बनाने पर बल देता है। सहभागी शासन में व्यक्ति की स्थिति का विकास हुआ है, अब व्यक्ति एक मूक विषय से सशक्त नागरिक बन गया है जिसकी अपनी आवाज अवम् लक्ष्य है तथा जो संसाधनों के उत्पादन और उपभोग के तरीके को भी आकार दे रहा है।

भारत में सामाजिक एवं सांस्कृतिक विभिन्नतायें विद्यमान हैं। सहभागी शासन इन विविध समूह एवं समुदायों को एक साथ लाकर साझा लक्ष्यों और आकांक्षाओं के दिशा में काम करने के लिए तथा सामाजिक सामंजस्य और एकजुटता बनाने में योगदान दे सकता है। सहभागी शासन के माध्यम से समुदाय आपस के मतभेद को दूर रखकर सामूहिक लक्ष्यों एवं आकांक्षाओं के लिए एक साथ मिलकर कार्य करते हैं। सहभागी शासन भारत में लोकतांत्रिक संस्थाओं को मजबूत बनाने, लोकतांत्रिक मूल्यों को बढ़ावा देने, समावेशी एवं समता स्थापित करने निर्णय निर्माण प्रक्रिया को बेहतर बनाने, नागरिकों को सशक्त करने तथा सतत् विकास को बढ़ावा देने के लिए सहभागी शासन महत्वपूर्ण है। नागरिकों को प्रत्येक स्तर पर निर्णय निर्माण प्रक्रिया में शामिल करने, सरकारी संस्थाओं एवं जनता के मध्य दूरी कम करके सहयोग को बढ़ावा देकर सहभागी शासन अधिक उत्तरदायी, जवाबदेह, पारदर्शी एवं न्यायसंगत बनाने पर बल देता है।

भारतीय लोकतांत्रिक व्यवस्था में शासन प्रक्रिया में सरकारी अंगों, व्यवस्थापिका, कार्यपालिका एवं न्यायपालिका के साथ-साथ अन्य संगठनों जैसे गैर सरकारी संगठन, नागरिक समाज एवं हित समूहों की भूमिका में भी तीव्र वृद्धि हुई है। सुशासन की वैश्विक अवधारणा के साथ ही नागरिक समाज की भूमिका में भारत में भी परिवर्तन आया है। नागरिक समाज स्वैच्छिक नागरिक और सामाजिक संगठनों तथा संस्थाओं की समग्रता से बना एक ऐसा संगठन है जो 'विधि के शासन' को आधार बनाकर अपने दायित्वों का निर्वहन करता है (त्रिपाठी, 2021, पृष्ठ-1)। नागरिक समाज ने अपने निर्माणकारी घटकों के माध्यम से जैसे समुदाय आधारित संगठन, गैर सरकारी संगठनों, युवाओं के संगठन एवं समूह, महिला संगठन एवं समूह, धार्मिक संघ एवं समूह, सहकारी समूह, श्रमिकों

के संघ, किसानों के संघ एवं समुदाय ने अपनी भूमिकाओं का सुचारू रूप से निर्वहन किया है (त्रिपाठी, 2021, पृष्ठ-5)। नागरिक समाज अपने सदस्यों जिनमें महिला, विद्यार्थी, कृषक, पर्यावरणविद, ट्रेड यूनियन, वकील, डाक्टर आदि के द्वारा समाज की मांगों को सरकार तक पहुँचाता है। भारत में माइगाँव डॉट इन डिजिटल प्लेटफार्म के माध्यम से नागरिक समाज के सदस्य भी अपने विचार एवं राय सरकार के साथ साझा करते हैं, जो नीति निर्माण में अपनी प्रभावी भूमिका रखता है।

शासन की सहभागी प्रक्रिया नीति निर्माण के साथ क्रियान्वयन में भी परिलक्षित हो रही है। यद्यपि नीति क्रियान्वयन में प्रमुख भूमिका सरकारी संगठनों की रही है परन्तु वर्तमान संदर्भों में यह विस्तारित हुई है। सरकारी संगठनों के साथ गैर सरकारी संगठन, हित समूह, नागरिक समाज के सदस्य भी नीति क्रियान्वयन में सहायक के रूप में उभरकर सामने आ रहे हैं। ये सभी संगठन सरकार की नीतियों को जनता तक लेकर जाते हैं नागरिकों को जागरूक बनाते हैं और नागरिकों की मांगों एवं आवश्यकताओं को सरकार तक पहुँचाते हैं। भारत जैसे विशाल क्षेत्र में इन संगठनों की भूमिका सरकार एवं नागरिकों को पास लाने में प्रभावी हो जाती है। विभिन्न शोध एवं लेखन के माध्यम से यह परिणाम आ रहे थे कि नीति क्रियान्वयन की प्रक्रिया लचीली रहने के कारण अपेक्षित परिणामों से दूर रहती था दूसरी तरफ 21वीं सदी में सहभागी अवधारणा के परिणामस्वरूप भी नागरिकों की भूमिका को आवश्यक माना जा रहा है। यही आवश्यकता सहभागी शासन को सशक्त बनाती है।

भारत में सहभागी शासन के समक्ष चुनौतियाँ:-

भारत क्षेत्र एवं जनसंख्या की दृष्टि से एक विशाल देश है जिसका अपना एक लिखित एवं विस्तृत संविधान है। देश में शासन व्यवस्था का संचालन संविधान के माध्यम से गठित सरकारों द्वारा किया जाता है। स्वतंत्रता के पश्चात से ही भारत में राजनीतिक सहभागिता पर बल दिया जा रहा है और इसमें वृद्धि के लिए भी अनेकों कदम उठाये गये हैं। लोकतांत्रिक व्यवस्था को अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए सहभागी शासन को प्रमुखता दी जा रही है जिससे नागरिकों की शासन के सहभागिता सक्रियता एवं प्रभावशीलता के साथ हो सके। सरकारों के द्वारा सहभागी शासन की धारणा को धरातल पर उतारने एवं प्रभावी बनाने के लिए विशेष प्रयास किये जा रहे हैं जिसके परिणाम भी देश के समक्ष हैं। परन्तु इस दिशा में कुछ चुनौतियाँ हैं जिनका सामना करने के लिए विशेष प्रयास किए जाने की आवश्यकता है।

स्थायी निकायों में आरक्षण होने पर भी महिलाएँ अपने राजनीतिक सशक्तिकरण को पूर्णतया साकार नहीं कर पायी हैं। महिलाओं में शिक्षा के दर में कमी, जागरूकता का अभाव, सामाजिक मनोवृत्ति, राजनीतिक एवं प्रशासनिक समझ का अभाव महिलाओं को विकासात्मक कार्यों को प्रभावी रूप से सम्पादित करने में बाधा पहुँचाता है। सरकार के द्वारा पिछड़े वर्गों एवं महिलाओं के विकास के लिए नीतियों एवं कार्यक्रम का आरम्भ किया गया। लेकिन सरकारी योजनाओं के सम्बन्ध में जागरूकता के अभाव के कारण वे उनकी आर्थिक एवं सामाजिक सहभागिता के रास्ते में बाधा डालती है।

सूचना एवं संचार तकनीक के प्रयोग से सरकार के द्वारा सार्वजनिक सेवाओं एवं वस्तुओं की उपलब्धता नागरिकों को घर पर ही सुनिश्चित की जा रही है। परन्तु तकनीक की अपनी सीमाओं के कारण इन उपलब्धताओं का लाभ सभी को मिलने में चुनौती आ रही है। सीमांत क्षेत्र में हाई स्पीड नेटवर्क एवं तकनीकी साक्षरता की कमी के कारण सेवाओं एवं वस्तुओं की ऑनलाइन उपलब्धता में बाधा आती है।

साइबर सुरक्षा भी इस दिशा में एक बड़ी चुनौती है। उपयोगकर्ता के द्वारा ऑनलाइन ट्रांजैक्शन के दौरान सुरक्षा उपायों का सही से प्रयोग न करना भी एक बड़ी चुनौती है क्योंकि इसके परिणामस्वरूप उपयोगकर्ता साइबर अपराधों का शिकार हो सकता है। सरकार की शासन को सहभागी बनाने के लिए विशेष कदम उठाये गये हैं परन्तु सभी तक इनकी पहुँच न हो पाना भी एक बड़ा कारण है।

इन सेवाओं की प्राप्ति में सबसे बड़ी चुनौती डिजिटल विभाजन है। भारत जैसे विशाल देश में सभी उपयोगकर्ताओं तक कम्प्यूटर, मोबाइल, आईपैड, इंटरनेट की उपलब्धता एक बड़ी समस्या है। माइगाँव डॉट इन प्लेटफार्म से जुड़ने तथा सरकार तक अपनी आवाज पहुँचाने के लिए इन डिवाइस का होना अनिवार्य है। इनके अभाव में समाज का एक बड़ा वर्ग इस प्रक्रिया से पहले ही अलग हो जाता है जिसके परिणामस्वरूप सहभागी शासन की प्रक्रिया बाधित होती है। वर्तमान में तकनीक तेजी से परिवर्तन हो रही है (सिंह, 2021, पृष्ठ 30)। परिवर्तित तकनीक के साथ सरकारी मशीनरी तथा उपयोगकर्ताओं का मिलकर चलना एक बड़ी चुनौती है। समाज का बड़ा वर्ग मोबाइल, कम्प्यूटर, आईपैड, अन्य डिवाइस एवं इंटरनेट होने के उपरान्त भी उसका बेहतर तरीके से इनका प्रयोग करने में समर्थ नहीं होता है। परिणामस्वरूप वह सरकारी सेवाओं का लाभ उठाने से वंचित रह जाता है। तकनीक महत्वपूर्ण परिवर्तन ला सकती है (कोपर एवं अन्य 2015, पृष्ठ 27) परन्तु इन परिवर्तनों को सुनिश्चित करने के लिए इसका उचित प्रयोग किया जाना आवश्यक है।

माई गाँव डॉट इन आदि आनलाइन प्लेटफार्म में पंजीकृत उपयोगकर्ताओं की संख्याओं में वृद्धि हो रही है परन्तु जनसंख्या के अनुपात में पंजीकृत उपयोगकर्ताओं की संख्या अभी कम है। डिजिटल प्रक्रिया को अधिक सहभागी बनाने के लिए उपयोगकर्ताओं की संख्या में वृद्धि करने के प्रयास किये जाने की आवश्यकता है जिससे सहभागी शासन की प्रक्रिया में सभी की सहभागिता सुनिश्चित हो सके और यह प्रक्रिया और अधिक भी प्रभावी हो सके।

सहभागी शासन की सफलता में एक बड़ी चुनौती सामान्य जानकारी एवं समझ का अभाव है। स्थानीय नागरिक समाज समूह, गैर सरकारी संगठन, विकास के भागीदारों, हित धारकों में इस ज्ञान का अभाव पाया जाता है कि वे किस प्रकार और कैसे शासन प्रक्रिया में भाग लें। नागरिक कभी-कभी अवधारणा से परिचित होते हैं परन्तु उचित जानकारी का अभाव उनको सहभागी प्रक्रिया का हिस्सा बनने में बाधा उत्पन्न करता है। इस कारण का समाधान ढूँढ़ने के लिए सहभागिता शासन पद्धति के रणनीतिक उपयोग में सुधार कैसे किया जाय, इस बात पर बल दिया जाना चाहिए।

सहभागी शासन हेतु प्रभावी प्रयास:- सहभागी शासन को सुनिश्चित करने के लिए समुदाय या समाज के भीतर किसी विशेष विषय या मुद्दे पर दृश्यता एवं विश्वनीयता को बढ़ावा देने के लिए बड़े पैमानों पर मीडिया अभियान चलाकर तथा छोटे एवं स्थानीय स्तरों पर जागरूकता निर्माण गतिविधियों के द्वारा किया जा सकता है। सरकार के द्वारा विशेष विषय, मुद्दे या नीति निर्माण के दौर सरकारी अधिकारियों के द्वारा नागरिकों के साथ मीटिंग करके विचारों का

आदान प्रदान करके एक संयुक्त कार्य योजना बनाने का प्रयास करना चाहिए। नागरिकों से सम्बन्धित जिन विषयों, मुद्दों, नीति निर्माण, नीति क्रियान्वयन जो उनके लिए किया जा रहा है उनमें उनकी सहभागिता होनी चाहिए।

सहभागी शासन को प्रभावी बनाने के लिए जनता की सक्रिय भूमिका राजनीतिक सहभागिता के प्रत्येक स्तर पर सुनिश्चित किये जाने की आवश्यकता है। भारतीय लोकतांत्रिक व्यवस्था में लोगों की भूमिका वोट देने की प्रक्रिया से आगे बढ़कर अपने जनप्रतिनिधियों से समय-समय पर नीतिगत मुद्दों पर विचार-विमर्श कर अपने इनपुट पहुँचाना, नीति क्रियान्वयन को सफल एवं प्रभावी बनाने के लिए अपनी सहभागिता सुनिश्चित करते हुए गैर सरकारी संगठनों के साथ मिलकर कार्य किया जाना चाहिए। सरकारी मशीनरी के द्वारा नीति क्रियान्वयन में आने वाली चुनौतियों को दूर करने के लिए जनता के साथ सहभागी भूमिका में रहते हुए कार्य करना चाहिए।

सहभागी शासन के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए समाज के सभी वर्गों की सहभागिता को सुनिश्चित करने के लिए सरकार एवं समाज के द्वारा सहयोगी प्रक्रिया से प्रयास किये जायें जिससे सभी की सहभागिता के माध्यम से सहभागी शासन के लक्ष्य को प्राप्त करने के साथ उसको प्रभावी भी बनाया जाय।

केंद्रीय विज्ञान एवं प्रौद्योगिकीय पृथ्वी विज्ञान राज्य मंत्री स्वतंत्र प्रभार तथा प्रधानमंत्री कार्यालय परमाणु ऊर्जा विभाग अंतरिक्ष विभाग कर्मिकए लोक शिकायत एवं पेंशन राज्य मंत्री डॉण् जितेंद्र सिंह ने पूर्व प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी की 100वीं जयंती के उपलक्ष्य में मनाए जाने वाले सुशासन दिवस पर (25 दिसंबर 2024) अपने उद्बोधन में 2014 से मोदी सरकार के तहत शासन सुधारों में हुई प्रगति पर प्रकाश डाला और समावेशी एवं सहभागी शासन को सरकार के दृष्टिकोण का आधार बताया (www.pib.gov.in)। सहभागी शासन की अवधारणा को मूर्त रूप प्रदान करने के लिए जो सकारात्मक प्रयास किये जा रहे हैं वे महत्वपूर्ण एवं सराहनीय हैं। इस मार्ग में आने वाली चुनौतियों का सामना करने के लिए सरकार के द्वारा विशेष प्रयास किये जायें जिससे इन चुनौतियों से बाहर आया जा सके। वर्तमान में सरकारी अधिकारियों अवम कर्मचारियों के साथ नागरिकों, गैर सरकारी संगठन, नागरिक समाज के सदस्यों को एक साथ जोड़ने के लिए समझ का निर्माण करने के लिए विभिन्न स्तरों पर सामूहिक प्रयास किए जाने की आवश्यकता है। जिससे सहभागी शासन को भारत में और प्रभावी बनाया जाये और लोकतंत्र को अधिक विकसित किया जाये।

निष्कर्ष रूप में सहभागी शासन वर्तमान लोकतंत्र में नागरिकों को निर्णय लेने की प्रक्रिया में योगदान करने के लिए सक्षम बनाता है। उनकी आवाजों को, इच्छाओं एवं आवश्यकताओं को निर्णय लेने की प्रक्रिया तक पहुँचाता है तथा साथ ही साथ उनके जीवन को भी प्रभावित करता है। सहभागी शासन से समावेशी निर्णय निर्णय प्रक्रिया को बढ़ावा मिलता है तथा समाज के सभी समुदायों एवं वर्गों की भागीदारी सुनिश्चित होती है। नागरिकों की निर्णय निर्माण प्रक्रिया में भागीदारी के साथ नागरिकों की संतुष्टि में वृद्धि होती है तथा सरकार पर विश्वास भी बढ़ता है। भारत में सहभागी शासन की धारणा उपरोक्त प्रक्रिया के माध्यम से और अधिक प्रभावी हो रही है तथा लोकतांत्रिक व्यवस्था को मजबूती प्रदान कर रही है।

संदर्भ सूची:-

- त्रिपाठी, प्रकाश मणि नागरिक समाज की प्रशासन में भूमिका' लोक प्रशासन, खंड 13, अंक-1, जनवरी-जून 2021, पृष्ठ - 1, 51
- data.gov.in, 20/07/2025
- <https://www.digitalindia.gov.in/> accessed on 27/07/2025
- <https://www.pib.gov.in/PressRelease> लोक शिकायत एवं पेंशन मंत्रालयए पोस्ट किया गया, 25 दिसंबर 2024, 3; 46 अपराध, पीआईबी दिल्ली द्वारा, accessed on 25/07/2025
- Koper, C.S, Lum, C., Willis, J.J, Woods, D.J. Hibdon, J. 'Realizing the Potential of Technology in Policing A Multisite Study of the Social, Organizational, and Behavioral Aspects of Implementing Policing Technologies' December 2015
- McNULTY, S. L. and Wampler, B. - Participatory Governance, page 2 available on <https://emergingtrends.stanford.edu/files/original> -<https://emergingtrends.stanford.edu/files/original/29891fc7b357b1a93fec6791d4bb22e2793de70c.pdf>
- National Portal of India भारत का राष्ट्रीय पोर्टल (India.gov.in) 27/06/2025.
- 'Chaudhary, S.S and Srivastava, A. '2025½ Can Participatory Governance Reform Higher Education System? A Case of India' National Journal of Education, Vol. XXXIII, No. a/41) January, 2025 Available on bhu.ac.in, accessed on 06/06/2025
- Schneider H. (1999) Participatory Governance: The Missing Link for Poverty Reduction. OECD DEVELOPMENT CENTRE, page 07
- Sharma, A. "Promoting Greater efficiency and Better Governance Through ICT Application" in 'Indian Journal of Public Administration', published by Sage Publications, Vol. 68 Issue 3, page no. 426-435 September 2022 A, India.gov.in, 22/06/2025
- Singh, P.K. (2021) Technology trends-challenges for policing, Indian Journal of Police page 42, July -September page 30-42
- UN E-Government Survey (2022), Ch. 1, Global Trends in E-Government page no. 21, available on <https://publicadministration.un.org/egovkb/en-us/Reports/UN-E-Government-Survey-2022> [accessed on January 16 2024].

आचार्य गौडपाद की द्वन्द्व-न्यायात्मक तर्कणा-पद्धति

डॉ० संजीव कुमार सुधांशु

असिस्टेंट प्रोफेसर, दर्शनशास्त्र विभाग, राम जयपाल कॉलेज, छपरा, जय प्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा

सारांश

गौडपाद अद्वैत वेदान्त-दर्शन के प्रवर्तक आचार्य है।¹ यद्यपि अद्वैतवादी विचारधारा श्रुतिमूलक है तथापि आज जो वैश्विक दार्शनिक जगत् में अद्वैतवेदान्त-दर्शन को ख्याति प्राप्त हुई है, उसमें मुख्य भूमिका गौडपाद एवं शंकराचार्य की है। जहाँ गौडपाद ने प्रकृत विचारधारा को वैदिक औपनिषदिक रहस्यात्मक धरातल से उतारकर इसे स्वतंत्र दार्शनिक स्वरूप प्रदान किया, वहीं शंकराचार्य ने तत्कालीन प्रचलित सभी विरोधी मतों का खण्डन कर अद्वैतवाद का संरक्षण किया। प्रश्न उठता है कि - ऋग्वेदिक एवं औपनिषदिक इस रहस्यात्मक अद्वैतवादी विचारधारा को तत्कालीन दार्शनिक प्रतिरोधों के मध्य गौडपाद ने इसे किस प्रकार स्थापित किया। क्या यह इसके निमित्त किसी तार्किक प्रणाली या किसी विशेष प्रकार की शैली का प्रयोग किये। गौडपाद ने एक विशेष तर्क प्रणाली का प्रयोग किया जिसे अद्वैतवादी द्वन्द्व-न्यायात्मक तर्कणा-पद्धति से अभिहित किया जा सकता है, जिसका उद्देश्य है- खण्डन विधि द्वारा अद्वैत वेदान्त-दर्शन का विकास करना।

मुख्यशब्द: द्वन्द्व न्याय, अजातिवाद, आभासवाद, अद्वैतवाद

वैश्विक चिन्तन परम्परा में गौडपाद² (780 ई०) के बहुत पहले द्वन्द्व-न्यायात्मक तर्कणा-पद्धति (क्वंसमबजपब) का प्रयोग दार्शनिक समस्याओं के समाधान के निमित्त हो चुका था। विश्व की प्राचीनतम साहित्य ऋग्वेदिक नासदीय-सूक्त में तर्कणा-पद्धति का प्रयोग हुआ है।³ प्रकृत सूक्त द्वन्द्व-न्याय के घटकत्रय वाद (पक्ष), प्रतिवाद (विपक्ष) एवं संवाद (निष्कर्ष) से समन्वित है। अतः यह स्पष्ट हो जाता है कि-अद्वैतवादी द्वन्द्व-न्यायात्मक तर्कणा-पद्धति का मूल स्रोत ऋग्वेद-संहिता है। पाश्चात्य दार्शनिक चिन्तन परम्परा सुकरात (470-399 ई०पू०) को द्वन्द्व-न्यायात्मक तर्कणा-पद्धति का उद्भावक स्वीकार करती है। द्वन्द्व-न्यायात्मक तर्कणा-पद्धति ज्ञान प्राप्त करने की एक उत्तम प्रक्रिया है। विश्व प्रसिद्ध दार्शनिक एवं विचारक सुकरात के अनुसार “द्वन्द्व-न्यायात्मक तर्कणा-पद्धति (क्वंसमबजपब) की मूल विशेषता इस बात में है कि प्रतिवादी किसी तर्क-वाक्य को तब तक स्वीकार न करे जब तक उसे उसकी सत्यता में गम्भीरता पूर्वक विश्वास न हो जाये।”⁴ प्लेटो (428-348 ई०पू०) के अनुसार चिन्तन की द्वन्द्व-न्यायात्मक तर्कणा-पद्धति मनुष्य की बौद्धिक प्रतिभा का सक्रिय स्वरूप है।⁵ इसे वे संज्ञान की ऐसी प्रक्रिया मानते हैं जो केवल आध्यात्मिक होने से आधिभौतिक इन्द्रियमूलक संज्ञान से मूलतः भिन्न है।⁶ डॉ. एडवर्ड केयार्ड के अनुसार “यह विरोधी दर्शन-पद्धतियों के विभाजन के मध्य पूर्वमान्य एकत्व के सिद्धांत की ओर ले जाता है, जिससे एक ऐसा समुच्चयी प्रत्यय प्राप्त हो सके, जिसमें समस्त विरोध और नानात्व समा सके।”⁷ प्रो० संगमलाल पाण्डेय के अनुसार “द्वन्द्व-न्यायात्मक तर्कणा-पद्धति परमसत्य को जानने की आलोचनात्मक प्रविधि है।”⁸ प्रो० हृदयनारायण मिश्र के अनुसार, “द्वन्द्व-न्याय तर्क की वह प्रक्रिया है, जिसके द्वारा परमतत्त्व का ज्ञान होता है।”⁹ अद्वैतानुभूति परक ज्ञानात्मक प्रक्रिया है।

गौडपाद की “द्वन्द्व-न्यायात्मक तर्कणा-पद्धति का स्वरूप हमें उनके माण्डूक्य-कारिका में प्राप्त होता है।”¹⁰ गौडपाद ने अपनी “द्वन्द्व-न्यायात्मक तर्कणा-पद्धति के माध्यम से अद्वैतवाद, अजातिवाद एवं आभासवाद कि स्थापना की है। यद्यपि ऋग्वेदिक ऋशियों के द्वारा एकदेववाद को शेषनाद हो चुका था, किन्तु दार्शनिक धरातल पर अद्वैतवाद को तर्कणा-पद्धति के द्वारा स्थापित करने वाले प्रथम आचार्य गौडपाद हैं। ध्यातव्य हो कि-एकदेववाद और अद्वैतवाद में तात्त्विक अन्तर है। जो एक शोध का विषय है। गौडपाद अद्वैत तत्त्व के पक्ष में यह तर्क देते हैं कि वह तुरीय आत्मा ही अद्वैत तत्त्व हैं क्योंकि वह दुःख के निवृत्ति में समर्थ है।¹¹ तात्पर्य यह कि- अद्वैत तत्त्व का ज्ञान दुःख निवृत्ति में हेतु है। गौडपाद अद्वैत तत्त्व को सर्वव्यापक मानते हैं। अद्वैतानुभूति के विषय में इनकी मान्यता है कि- अनादि माया आत्मानुभूति में बाधक है। तत्त्व ज्ञान से माया के बाधित हो जाने से अद्वैत तत्त्व का बोध होता है। प्रश्न उठता है कि जब प्रपंच की निवृत्ति अद्वैतानुभूति में हेतु है तो प्रपंच के रहते हुए अद्वैत तत्त्व की कल्पना कैसे कि जा सकती है? गौडपाद कि मान्यता के अनुसार- प्रपंच यदि होता तो हो सकता था कि उसकी निवृत्ति हो जाती है।¹² किन्तु यह द्वैतरूपी प्रपंचज्य तो माया मात्र है। आचार्य के कहने का तात्पर्य यह है कि-अद्वैत तत्त्व की एक मात्र परमार्थ वस्तु है। इसके अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। गौडपाद द्वैत की सत्ता को स्वीकार नहीं करते हैं। गौडपाद ने अपनी द्वन्द्व-न्यायात्मक तर्कणा-पद्धति से यह सिद्ध कर दिया है कि अद्वैत तत्त्व का ज्ञान ही एकमात्र दुःख की निवृत्ति में समर्थ है। इन्होंने दुःख और दुःख के कारणों को स्पष्ट करते हुए इसकी निवृत्ति में अद्वैत ज्ञान को हेतु सिद्ध किया है। इसके लिए आचार्य तर्कणा-पद्धति का प्रयोग करते हैं।

अजातिवाद गौडपादीय दर्शन का आधारभूत सिद्धांत है। इस सिद्धांत का सम्बन्ध ब्रह्म तत्त्व के जन्म रहितता से है। इनकी मान्यता के अनुसार अद्वैत तत्त्व अजन्मा है। यही कारण है कि-आत्म सम्बन्धी यह गौडपादीय सिद्धांत अजातिवाद के नाम से प्रसिद्ध हुआ। गौडपादाचार्य अजातिवाद के पक्ष में तर्क देते हैं कि-आत्मा आकाश के समान है। वह घटकाशों के समान जीव रूप से उत्पन्न हुआ।¹³ घटादि के समान ही देहादि संघात भी उत्पन्न होते हैं। घटादि के लीन होने पर जिस प्रकार घटाकाशिदि महाकाश में लीन हो जाते हैं उसी प्रकार जीव इस अवस्था में विलीन हो जाते हैं। इनके अनुसार ब्रह्म अजन्मा है। ब्रह्म उपचार

यानी कर्तृत्व रहित है। गौडपादीय अजातिवाद का सिद्धांत प्रयोजन मूलक है। ब्रह्म को अजन्मा सिद्ध कर आचार्य ने ब्रह्म की जगत् कारणता का खण्डन किया है। प्रसंगतः प्रश्न उठता है कि सब दृश्यमान जगत् का कारण ब्रह्म नहीं है तो इसकी सत्ता किस पर अबलम्बित है। गौडपादीय दर्शन के सन्दर्भ में कहा जा सकता है कि- यह जगत् स्वाप्नि पदार्थ के समान आभासमात्र है।¹³ वस्तुतः इसकी पारमार्थिक सत्ता नहीं है। गौडपाद का मानना है कि- कोई भी जीव उत्पन्न नहीं होता, क्योंकि उसका कोई कारण नहीं है। अजातिवाद के निरूपाणार्थ आचार्य तर्क देते हैं कि-यदि कार्य उत्पन्न हुआ होता तो उसके कारण का ग्रहण अवश्य हुआ होता¹⁴ किन्तु ऐसा नहीं होने से कार्यात्पत्ति का सिद्धांत निरस्त हो जाता है। इस तर्क के आधार पर गौडपाद ने ब्रह्म को अजन्मा सिद्ध किया है। गौडपाद अपने अजातवादीय सिद्धांत के माध्यम से यह सिद्ध कर देते हैं कि-किसी भी वस्तु की उत्पत्ति नहीं होती। गौडपाद-कारिका के अध्ययन से ज्ञात होता कि-गौडपादचार्य के काल में ही उनके आधार भूत सिद्धांत अजातिवाद पर आरोप लगने लगा था कि यह बौद्धवादी सिद्धांत है। यदि ऐसा नहीं होता तो गौडपाद प्रकृत सिद्धांत के पक्ष में अपनी द्वन्द्व-न्यायात्मक तर्कणा-पद्धति से यह सिद्ध नहीं करते कि-यह अजातिवाद औपनिशदिक है। इसके लिए वे दो हेतु प्रस्तुत करते हैं। प्रथम तर्क यह देते हैं कि-तत्त्वज्ञानियों का ज्ञान विषों से सर्वमित नहीं होता¹⁵ द्वितीय तर्क यह है कि वह आत्मा (विषी) विषान्तर को प्राप्त नहीं होता।¹⁶ अतः यह औपनिशदिक सिद्धांत है। इस सिद्धांत के निमित्त गौडपाद ने अद्वैत वेदान्त-दर्शन एवं बौद्ध दर्शन के दार्शनिक सूक्ष्मता को प्रस्तुत किया है।

गौडपादीय दर्शन में आभासवाद का महत्वपूर्ण स्थान है। इनका मानना है कि-दृश्यमान प्रपञ्च आभास मात्र है। आभासवाद को सिद्ध करने के लिए वे सर्वप्रथम स्वाप्नि पदार्थों की आभासमात्रता सिद्ध करते हैं।¹⁷ स्वाप्नि पदार्थ वत् जाग्रतावस्था में अनुभूत पदार्थ भी मिथ्या है। इसमें वे यह हेतु देते हैं कि-उभयकालीन पदार्थों के दृश्य होने से वे स्पन्कालीन एवं जाग्रतावस्था के दृष्ट पदार्थ गज, पर्वतादि सभी आभासमात्र है। गौडपाद का मानना है कि-दृष्ट वस्तु मिथ्या है। प्रश्न उठता है कि-गौडपाद स्वाप्नि एवं जाग्रतावस्था में दृष्ट पदार्थों में कोई अन्तर मानते हैं कि नहीं। आचार्य का मानना है कि-दोनों अवस्थाओं के पदार्थों में इतना ही अन्तर है कि एक अन्तःस्थ है। गौडपाद ने अपनी द्वन्द्व-न्यायात्मक तर्कणा-पद्धति के माध्यम से दृश्यमान प्रपञ्च को आभास सिद्ध करने के लिए स्वप्न कालीन एवं जाग्रतवस्था कालीन पदार्थों को आधार बनाया है। इन उभयकालीन पदार्थों के मध्य दृष्ट्यत्व हेतु का समन्वय कर गौडपाद ने प्रपञ्च की आभासमात्रता को सिद्ध किया है।

गौडपाद सृष्टि विषयक तत्कालीन सभी मतों का खण्डन अपनी द्वन्द्व-न्यायात्मक तर्कणा-पद्धति के माध्यम से करते हैं। जिन सृष्टि विषयक मतों का खण्डन गौडपाद ने किया है, उनमें विभूतिवाद¹⁹ स्वप्नमायावाद, ईश्वरेच्छावाद, कालावाद, भोगवाद²⁰ एवं क्रीडावाद का उल्लेख माण्डूक्य-कारिका में प्राप्त होता है। गौडपाद का मानना है कि-जगत् की उत्पत्ति में देव स्वभाव ही हेतु है।²¹ गौडपाद सृष्टि विषयक देवस्वभाववाद के आधार पर विरोधी मतों का खण्डन करते हैं। तदन्तर अपनी अजातिवादीय सिद्धांत के पक्ष में देवस्वभाववादीय सृष्टि विषयक सिद्धांत का प्रत्याख्यान करते हैं। अजातिवाद के दृष्टि से ब्रह्म कर्तव्य रहित है। आचार्य ने अद्वैततत्त्व की आप्ता कामता को हेतु बनाकर प्रतिवादी सम्मत सृष्टि विषयक भोगवाद एवं क्रीडावाद का खण्डन किया है। गौडपाद सृष्टि विषयक स्वसिद्धांत देवस्वभाव के खण्डन में हेतु देते हैं कि स्वभाव अविद्या जनित है। तात्पर्य यह है कि-गौडपाद के अनुसार अजन्मा ब्रह्म से किसी वस्तु की उत्पत्ति सम्भव नहीं है।

गौडपाद ने मूलभूतत्व के प्रतिपादनार्थ समन्वयात्मक द्वन्द्व-न्यायात्मक तर्कणा-पद्धति को प्रयोग किया है। इन्होंने जिन मूलतत्त्व सम्बन्धी मतवादों को उद्भूत कर अपने मत प्रतिपादन किया है, उनमें प्राणात्मवाद²³ भूतात्मवाद²⁴, गुणात्मवाद²⁵, शिवशक्त्यात्मवाद²⁶ विषात्मवाद,²⁷ लोकात्मवाद,²⁸ देवात्मवाद²⁹, वेदात्मवाद, यज्ञात्मवाद, भोक्तात्मवाद³⁰ भोज्यपदार्थात्मवाद, सूक्ष्मात्मवाद, स्थूलात्मवाद, मूर्त्यात्मवाद, अमूर्त्यात्मवाद,³¹ कालात्मवाद, दिशात्मवाद³², मन्त्रात्मवाद, भुवनात्मकवाद, मनात्मवाद,³³ चित्तात्मवाद,³⁴ धर्मात्मवाद, पुरुषप्रकृत्यात्मवाद, पञ्चविंशत्यात्मवाद,³⁸ लिङ्गत्मवाद,³⁹ परापरात्मब्रह्मवाद, सृष्ट्यात्मवाद,⁴⁰ लयात्मवाद⁴¹ एवं स्थित्यात्मवाद है। गौडपादीय दर्शन की दृष्टि से उक्त सभीवाद अद्वैततत्त्व में कल्पित हैं।⁴² गौडपादीय मूलतत्त्व सम्बन्धी समन्वयात्मक तर्कणा-पद्धति भाव निष्ठ एवं अनुभवजन्य है। इनकी यह समन्वयवादी सिद्धांत ऋग्वेद मूलक है। गौडपाद के अनुसार आत्म तत्त्वानुसंधान में गुरु के उपदेश का विशेष महत्व है। उनका मानना है कि-गुरु आत्मतत्त्व के जिज्ञासुओं को जिस भाव या जिस रूप में उस परामतत्त्व का अनुभूति कराता है, जिज्ञासु शिष्य उसी अनुभूतिगम्य भाव को आत्म स्वरूप के रूप में देखने लगता है। शिष्य जिस भाव का अनुभूति करता है वह भाव तद्रूप होकर उसकी रक्षा करता है।⁴³ अतन्तः शिष्य स्वात्मनिष्ठ हो जाता है। गौडपादीय दर्शन अद्वैत मूलक है। इसके आधार पर यह निष्कर्ष उचित प्रतीत होता है कि-उक्त पद्धति के मूल में अद्वैत तत्त्व की सर्वव्यापकता का सिद्धांत निहित है।

निष्कर्ष

गौडपादीय द्वन्द्व-न्यायात्मक तर्कणा-पद्धति का स्वरूप हमें उनके माण्डूक्य-कारिका में प्राप्त होता है। इनकी द्वन्द्व-न्यायात्मक तर्कणा-पद्धति श्रुतिमूलक होते हुए भी तर्क एवं अनुभव प्रधान है। इन्होंने समन्वयात्मक तर्कणा-पद्धति से जहाँ सर्वव्यापक सर्वोच्चसत्ता अद्वैततत्त्व को एक दार्शनिक के रूप में प्रतिष्ठापित किया है वहीं दर्शन शास्त्र की सर्वमान्य समस्या दुःख एवं दुःख के कारणों को स्पष्ट करते हुए इसकी आत्यन्तिक निवृत्ति का साधन बताया है। गौडपाद ने अपनी तर्कणा-पद्धति से यह सिद्ध कर दिया है कि दुःख की आत्यन्तिक निवृत्ति एकमात्र अद्वैतज्ञान से ही सम्भव है, क्योंकि दुःख अविद्या जन्य है। अद्वैतज्ञान होते ही अविद्या एवं इसके कार्य दुःखादि का बाध हो जाता है। गौडपादीय दर्शन पर जो बौद्ध दर्शन से प्रभावित होने का आक्षेप लगाया जाता है वह उचित नहीं है क्योंकि यह पूर्ण रूप से औपनिशदिक दर्शन है।

गौडपाद ने जिस प्रकार से अपनी द्वन्द्व-न्यायात्मक तर्कणा-पद्धति का प्रयोग कर अद्वैतवाद, अजातिवाद एवं आभासवाद को एक दार्शनिक की भाँति स्थापित किया है। वह परवर्ती दार्शनिकों के लिए अनुकरणीय है। गौडपाद ने एक आदर्श दार्शनिक कि भाँति शास्त्रज्ञान एवं इतिहासबोध के साथ समन्वय बैठा कर अपनी द्वन्द्व-न्यायात्मक तर्कणा-पद्धति से अद्वैतवेदान्त दर्शन को स्थापित किया है।

संदर्भ

1. एस0एन0 गुप्त, भारतीय दर्शन का इतिहास, भाग-1, पृष्ठ 393
2. वही
3. नासदीय-सूक्त, ऋग्वेद 10.129.1, 10.129.2
4. दया कृष्ण, प्राश्चात्य दर्शन का इतिहास भाग-1, पृष्ठ 194
5. दया कृष्ण, प्राश्चात्य दर्शन का इतिहास भाग-1, पृष्ठ 202
6. हृदय नारायण मिश्र, अद्वैत वेदान्त का ऐतिहासिक विवेचन, पृष्ठ
7. Samgamlal Pandey, Pre SamkarAdvait Philosophy, P.247
8. हृदय नारायण मिश्र, अद्वैत वेदान्त का ऐतिहासिक विवेचन, पृष्ठ 394
9. एस0एन0 गुप्त, भारतीय दर्शन का इतिहास, भाग-1, पृष्ठ 392
10. निवृत्ते सर्वदुःखानामीशानः प्रभुरव्ययः। अद्वैतः सर्वभावनां देवस्तुयों विभुः स्मृतः॥ माण्डूक्य-कारिका 1/10
11. प्रपञ्चो यदि विद्येत निवर्तते न संशयः। मायामात्रमिदद्वैतमद्वैतपरमार्थतः॥ माण्डूक्य-कारिका 1/17
12. आत्मा ह्यायाकाशवज्जीवैर्घटाकाशैरिवोदितः। घटादिवच्च संधातैर्जातावेतन्निदर्शनम्। माण्डूक्य-कारिका 3/3
13. अन्तः स्थानातु भेदानां तस्माज्जागरिते स्मृतम्। यथा तत्र तथा स्वप्ने संवृतत्वेन मिद्यते। माण्डूक्य-कारिका 2/4
14. पूर्वापरापरिज्ञानमजातेः परिदीपकम्। जायमानाद्धिवै धर्मात्कथं पूर्वं न गृहायते। माण्डूक्य-कारिका 4/21
15. क्रमते नहि बुद्धस्य ज्ञानं धमेशु तायिनः। सर्वे धर्मास्तथा ज्ञानं नैतत्बुद्धेन भाशितम्। माण्डूक्य-कारिका 4/99
16. वही
17. वैतथ्यं सर्वाभावनां स्वप्नआहुर्मनीशिणः। अन्तः स्थानास्तु भावनां संवृतत्वेन हेतुना॥ माण्डूक्य-कारिका 2/1
18. अन्तः स्थानातु भेदानां तस्माज्जागरिते स्मृतम्। यथा तत्र तथा स्वप्ने संवृतत्वेन मिद्यते। माण्डूक्य-कारिका 2/4
19. विभूतिं प्रसवं त्वन्ये मन्यते सृष्टि चिन्तकाः। स्वप्नमायारूपेति सृष्टि रन्यैर्विकल्पिता॥ माण्डूक्य-कारिका 1/7
20. भोगार्थसृष्टिरियन्ते क्रीडार्थमतिचापरे। माण्डूक्य-कारिका 1/9
21. देवस्यैश्वर्यभावोऽप्यमाप्तकामस्यकास्पृद्य। माण्डूक्य-कारिका-9
22. वही
23. प्राणइतिप्राणविदोभूतानीति च तद्विदः। गुणाइविगुणविदस्तत्त्वनीति च तद्विदः। माण्डूक्य-कारिका 2/20
24. वही
25. वही
26. वही
27. पादाइतपादविदोविषाइति तद्विदः। लोकाइतिलोकविदोदेवाइति च तद्विदः। माण्डूक्य-कारिका 2/21
28. वही
29. वही
30. वेदाइतिवेदोयज्ञाहित च तद्विदः। भोक्तेति च भोक्तृविदो भोज्यमिति च तद्विदः। माण्डूक्य-कारिका 2/22
31. मूर्तइति मूर्तिविदोऽश्मृतेइति च तद्विदः। माण्डूक्य-कारिका 2/23
32. कालइतिकालविदोदिशइति च तद्विदः। माण्डूक्य-कारिका 2/24
33. मनइतिमनोविदो। माण्डूक्य-कारिका 2/25
34. चित्तमितिचित्तविदो। माण्डूक्य-कारिका 2/25
35. पञ्चविंशक इत्येके। माण्डूक्य-कारिका 2/26
36. पञ्चविंशइतिचापरे। माण्डूक्य-कारिका 2/26
37. लोकाँल्लोकविदः प्रादुराश्रमा। माण्डूक्य-कारिका 2/27
38. वही
39. स्त्रीपुंनपुंसकं लैगडा। माण्डूक्य-कारिका 2/28
40. सृष्टिरितिसृष्टिविदोदोलयइति च तद्विदः। माण्डूक्य-कारिका 2/28
41. वही
42. 'सर्वेचेह तुसर्वदा'। माण्डूक्य-कारिका 2/47
43. विकल्पोविनिवर्तकल्पितो यदि केनचित्।
44. उपदेशादयंवादो ज्ञातेद्वैतं न विद्यते॥ माण्डूक्य-कारिका 1/18

रमणिका गुप्ता की कहानियों में अभिव्यक्त सामाजिक यथार्थ

डॉ० रावेन्द्र कुमार साहू

सहायक प्राध्यापक-हिन्दी, शासकीय महाविद्यालय सेमरिया, जिला रीवा (म.प्र.)

एक भावुक एवं संवेदना से भरपूर साहित्यकार होने की वजह से रमणिका गुप्ता ने समाज के उत्पीड़ित, दलित, शोषित मजदूरों, आदिवासियों एवं नारियों को ही अपने कृतित्व का माध्यम इसी वजह से बनाया जिससे वह उनका स्वर बन सकें, एवं वह तो स्वयं एक नारी हैं, इसीलिए अपनी रचनाओं के द्वारा वो इस हाशिए में आए लोगों की आवाज मुखर करना चाहती हैं, जिससे वे अपनी अस्मिता एवं गौरव के लिए संघर्ष कर सकें। उनका मानना है कि अब समाज को एक क्रांतिकारी बदलाव की आवश्यकता है। इस संदर्भ में अपने विचार व्यक्त करते हुए वो कहती हैं- “इस बहिष्कृत समाज को बाकी समाज के समकक्ष लाए बिना मनुष्यता का तकाजा अधूरा रह जाएगा और मानवता अपूर्ण ही रहेगी।”¹ बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक में भारतीय समाज में परिवर्तन की बयार काफी हद तक चली है, लेकिन जो जातिगत कोढ़ है वो इतनी आसानी से तो समाप्त नहीं होने वाला है, लेकिन फिर भी शुरूआत तो हो चुकी है।

समाज के इस वर्ग का अगर शोषण एवं उत्पीड़न हुआ है तो इसकी वजह भी समाज का दूसरा वर्ग ही है। सामाजिक ढांचा ही कुछ इस तरह का है कि उसमें शोषक हमेशा से ही शोषितों का शोषण करता आया है। यहाँ तक कि जब शोषित भी सामर्थ्यवान एवं शक्तिशाली हो जाता है तो वह स्वयं भी शोषित बन जाता है। इस संदर्भ में बात करते हुए हरिनारायण ठाकुर कहते हैं- “यद्यपि प्रवृत्ति और मानसिकता के स्तर पर हम अब भी सामंतवाद से ही लड़ रहे हैं। किन्तु आज यह मूल्य नहीं प्रवृत्ति है, केवल मानसिकता। पर व्यवहार से अधिक मानसिकता के खतरे हैं।”² यदि इंसान सफलता की सीढ़ी चढ़ते हुए अपनी इंसानियत ही भूल जाए तो उसे समाज की प्रगति तो बिलकुल नहीं समझा जा सकता है।

‘बहू-जुठाई’ कहानी का सहदेव भी ठाकुर को सतर्क करते हुआ कहता है- “समय के साथ चलिए। अब पुरानी चाल छोड़िये बाबू साहब। वह युग बीत गया है। अब इनके मुँह में भी जबान आ गई है।”³ आज हम हम इक्कीसवीं शताब्दी की दहलीज में प्रवेश कर चुके हैं यदि हम आज भी किसी व्यक्ति को उसके जाति एवं धर्म के आधार पर कमतर समझते हैं भले ही वह कितना भी शिक्षित ही क्यों न हो, तब तो उनमें विद्रोह की चिंगारी निकलेगी ही, क्योंकि यदि यह ज्वालामुखी फटा तो उसकी लपटों में तो समाज के सभी लोग आ जाएँगे। इस बारे में ओमप्रकाश जी ने लिखा है - “इस आजाद भारत में भी चलती हुई ट्रेन में साहित्यकार ओमप्रकाश वाल्मीकि ने जैसे ही अपने सहयात्री को अपनी भंगी जाति का परिचय दिया वैसे ही उसकी सारी आत्मीयता घृणा में बदल गयी और उसने मुँह फेर लिया।”⁴

डॉ० भीमराव अंबेडकर आधुनिक भारत में दलित चेतना के जनजायक थे। बाबा साहेब डॉ० अंबेडकर दलित रचनाकारों के सदैव प्रेरणा स्रोत बने रहेंगे एवं उनकी विचारधारा जिसमें दलितों के जीवन एवं साहित्य की आधारशिला टिकी है वह सदा जातीय विषमता एवं वर्ण-व्यवस्था का संहार करती रहेगी। बाबा साहेब ने दलितों को संबोधित करते हुए कहा है “शिक्षित बनो, संघर्ष करो और संगठित रहो” यही उनके मूलमंत्र थे। हालांकि आज के इस आधुनिक युग के वर्तमान भारत में दलितों की दशा में कुछ सीमा तक परिवर्तन तो आया है, परन्तु आज भी ‘रोहित वेमुला’ जैसे दलित विद्यार्थी आत्महत्या जैसा कदम उठाने के लिए कहीं न कहीं मजबूर तो हो रहे हैं। दलितों की आर्थिक परिस्थितियों में परिवर्तन तो आया है, किन्तु जाति नाम का बिच्छू आज भी उन्हें डंक तो मार ही रहा है। इस जातीय विषमता के संदर्भ में बात करते हुए मोहनदास नैमिश्वराय कहते हैं- “भारत के आधुनिक समाज की यह विडंबना ही कही जाएगी कि लोकतांत्रिक विचारों और मूल्यों तथा समानता और भाईचारे के प्रचार-प्रसार के बावजूद जातिगत भेदभाव और छुआछूत जैसी बीमारियाँ हमारे समाज का अपरिहार्य अंग बनी हुई हैं। आज भी ब्राह्मणवाद संस्कार जड़ें जमाए हुए हैं। प्रगतिशील और जनवादी विचारों और मूल्यों का समर्थन करने वाले लोग भी अपने जातिवादी संस्कारों का मोह नहीं त्याग पा रहे हैं।”⁵ इन सभी के अतिरिक्त इस मानसिकता के दलितों को अपनी अभिव्यक्ति के वर्चस्व को समझ तो गए ही हैं चैतन्य हो गए हैं, अब शायद इतने जागरूक तो हो ही चुके हैं कि अब उनका उत्पीड़न एवं शोषण करना संभव न हो सके, हालांकि अभी भी चाहे वह किसी भी रूप में क्यों न हो।

शिक्षित होने से दलितों में कहीं न कहीं इतनी जागृति तो आई है कि वे पुरानी सड़ी-गली कुप्रथाओं एवं अमानुषिक अत्याचारों एवं दकियानूसी परंपराओं के विरुद्ध अपना स्वर तो मुखर कर ही रहे हैं। अपनी कहानी ‘बहू-जुठाई’ के समाज के बारे में बात करते हुए रमणिका कहती हैं- “शिक्षा ने उसे सोच दी, सघर्ष ने हौसला और संगठन ने बल और उस पशुतुल्य जूठन पर जीने वाले समाज ने फैंसला किया कि बहु की डोली पहली रात जमींदार के घर ‘जुठाने’ के लिए नहीं जाएगी। जो जीवन भर-‘जी हुजूर’-‘हुक्म हुजूर’, कहते रहे, वे मनुष्यता की बोली में गरज उठे नहीं जाएगी डोली। वे अपनी बोली सुनकर चकित थे। अभिव्यक्ति की यह ताकत जानवर बना दिए गए मनुष्यों ने कैसे हासिल की ‘बहू-जुठाई’ कहानी में इसी संघर्ष की गाथा है।”⁶ ‘बहू-जुठाई’ कहानी का दलित समाज की इसी अमानुषिक व्यवहार की कथा है, जहाँ पर किसी भी दलित के घर दुल्हन की डोली पहले ठाकुरों की हवेली पर ही उतरती थी। उसकी

पहली रात उसे ठाकुर के साथ ही गुजारनी पड़ती थी। जब एक रात ठाकुर उसे अपनी हवस का शिकार बना लेते थे, तभी वह अपने पति के घर जा पाती थी। इसी रिवाज को 'बहू-जुठाई' कहा जाता था।

इतनी भयावह एवं दर्दनाक उत्पीड़न के बावजूद भी उन बहुएँ को इसी बात पर नाज होता था कि उन्हें किसी जवान ठाकुर ने भोगा है, न कि किसी बूढ़े ठाकुर ने। उनके इसी विचारधारा से यह अंदाजा लगाया जा सकता है कि उनका दृष्टिकोण अतयंत संकीर्ण एवं दूषित है, जो कि इन्हीं कुप्रथाओं की देन है। हालांकि उन्हें भी इस बात का अंदाजा है कि यह उनके साथ अन्याय की पराकाष्ठा है। फिर भी इसे वे कहीं न कहीं गर्व के दृष्टिकोण से ही देखती हैं। यह बात तो फिर भी ग्रामीण परिवेश की है। लेकिन यह भी अटल सत्य है कि यदि कोई लड़का किसी दलित कन्या से शादी कर लेता है तब तो उससे सर्वश्रेष्ठ कोई दूसरा लड़का हो ही नहीं सकता। परन्तु दूसरी तरफ यदि कोई सवर्ण लड़की किसी दलित से शादी कर ले तो फिर उससे बेवकूफ व्यक्ति इस धरा पर कोई नहीं है। यही हमारे आधुनिक भारतीय समाज की हकीकत है जो अभी भी कायम है। इन्हीं कुप्रथाओं के चलते राजू जो महाविद्यालय में शिक्षा ग्रहण कर रहा है, वो अपनी बहन की विदाई उस गाँव में करने से इंकार कर देता है। उसके इस निर्णय का स्वागत सभी ग्रामवासी करते हैं तथा उसके साथ खड़े भी रहते हैं। उस गाँव के सभी युवा अपने-अपने हाथों में हथियार लेकर डोली के साथ ही जाते हैं, "माधो समेत गाँव के नौजवान चिल्लाए- 'नहीं जाएगी डोली।' पूरा जंगल हाथ हिलाकर बोला 'नहीं जाएगी डोली', नहीं जाएगी डोली!"

हरिनारायण ठाकुर इस कहानी के संदर्भ में कहते हैं- " 'बहू-जुठाई' अपनी छोटी सी फलक पर सामंती शोषण और अत्याचार तले दबे दलित समाज की वह त्रासद कथा कहती है, जिसे सुनकर मानवता तार-तार हो जाती है। न केवल शर्मिंदगी से सर झुक जाता है, बल्कि भवें भी तन जाती हैं।... कहानी शुरू से अंत तक प्रतिरोध और प्रतिकार के तेवर में लिखी गई। किन्तु बीच-बीच में वातावरण निर्माण और चरित्र को पुष्ट करनेवाले मार्मिक चित्रण और कसे हुए संवाद पूरे दलित समाज के शोषण और त्रासद के यथार्थ को रेखांकित कर देता है।"⁸

रमणिका गुप्ता के कथा-साहित्य में अधिकतर स्त्रियाँ ही मूल केन्द्र-बिन्दु रहती हैं, फिर चाहे वो आदिवासी हों, या फिर दलित। अधिकांश कहानियों के शीर्षक से ही यह स्पष्ट हो जाता है, 'सीता' और 'मौसी' (उपन्यास), 'चंदा मर नहीं सकती', 'ललिता', 'वह जिएगी अभी', 'चमेली', 'प्यारी', और शीर्षक कहानी 'बहू-जुठाई'। ये सारी कथाएँ लगभग रमणिका जी का देखा-भाला अनुभव है। जिनसे वो कहीं न कहीं रूबरू हुई हैं। उनकी सभी मुख्य पात्राएँ समाज के भीतर उत्पीड़ित एवं शोषित हुई हैं, परन्तु उनकी ये विशेषता है कि वे इससे संघर्ष करने और जीतने की क्षमता भी रखती हैं। इन पात्रों के संदर्भ में लेखिका स्वयं कहती हैं, "मेरी कहानियाँ भी कविताओं की तरह ही प्रेरणा आधारित रही हैं। मेरी कहानियों की प्रेरणा स्रोत भी स्वयं इन कहानियों की सजीव, जीवित नायिकाएँ रही हैं। नायिकाएँ, जो जीवन की विपरीत स्थितियों में बर्बरताओं और समाज की विकृतियों को झेलतीं, उससे जूझती रहीं, कभी थकी नहीं। उनमें अपनी अस्मिता का जबरदस्त अहसास था और था अपने होने का, अपने को जिंदा रखने का पत्थर-सा ठोस संकल्प।"⁹

रमणिका जी की ये नायिकायें सवाल उठाना जानती हैं, अपना हक भी समझती हैं। कहानी 'ललिता' की ललिता सवाल उठाती है कि- "जब नाबालिग होने के कारन अर्जुन के साथ मेरा विवाह गलत है, तो तुम कैसे मेरा विवाह दूसरे के साथ करा रहे थे? उसी तर्क से अर्जुन और उसकी पहली पत्नी और मेरी दोनों बड़ी बहनों का विवाह भी गलत है- चूँकि ब्याह के समय वे सभी नाबालिग थे। फलतः उनकी औलाद भी नाजायज है।.... क्या भारत का कानून मेरी रक्षा करने में सक्षम है? क्या भारत में मुझे न्याय मिलेगा? क्या अर्जुन जिसके साथ मैं भागी थी जेल में यूँ ही सड़ता रहेगा? पुलिस ने मेरा बयान कोर्ट में क्यों नहीं दर्ज करवाया?"¹⁰

ये है रमणिका जी की नायिकाएँ, जो कि दबंग एवं निडर हैं ये अपनी जिंदगी की सभी समस्याओं से लड़कर विरोध करने में सक्षम हैं। हालांकि रमणिका जी का कार्यक्षेत्र आदिवासी एवं दलित वर्ग की कठिनाईयों से संबंधित ही रहा है। पर उनकी रचनाओं की आधारशिला नारी ही रही है।

यदि आज के इस आधुनिक युग में सफलता का कोई मापदंड होता तो वह निःसंदेह ही स्त्री-जागृति है। इस बारे में जयदेव तनेजा कहते हैं, "समाजशास्त्र की दृष्टि से यदि बीसवीं शताब्दी की सबसे बड़ी किसी उपलब्धि का नाम लेना हो तो वह निर्विवाद रूप से 'नारी-जागरण' या स्त्री स्वातंत्र्य ही होगा। परन्तु इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता कि एक खामोश या दबी घुटी सिसकी से लेकर आक्रोश भरी विस्फोटक चीख के बीच स्त्री की एक पूरी दुनिया हमारे आज और समाज में एक साथ मौजूद है। दमन और स्वच्छन्दता के न मालूम कितने स्वर आधुनिक परिवेश में एक साथ सुने जा सकते हैं। आज स्त्री की वास्तविक स्थिति चरम गुलामी और परम आजादी के दो अतिवादी के बीच न जाने कितने रूपों, घरातलों और स्तरों पर एक साथ मौजूद है।"¹¹

दलित एवं आदिवासी वर्ग की नारियों की परिस्थितियाँ उच्च एवं मध्यवर्ग की स्त्रियों की परिस्थितियों एवं समस्याओं से कुछ ही हद तक भिन्न होती हैं। रमणिका कहती हैं- "तथाकथित पिछड़ी कही जाने वाली जातियों की औरत इस मामले में इन तथाकथित उच्च-जातीय अथवा मध्यम -वर्गीय स्त्रियों से सदैव कुछ अधिक आजाद रही है क्योंकि वह कमाती भी रही है। वह न सती होती थी, न ही किसी मर्द नाम के खूँटे से बंधकर उसके मरने के बाद लड़ाई या मूल्यों के विघटन की आधी में सब गड़मगड़ु हो गया जो स्त्रियाँ सीमित ही सही पर सामाजिक स्तर पर कुछ आजाद थीं, वे भी मध्यम वर्गीय मानसिकता की शिकार होने लगीं।"¹² यही वजह है कि 'जिरवा और जिरवा माय' जैसी महिलाएँ तेज एवं पुरुषविरोधी होने के बाद भी पुरुषों के द्वारा ही 'छली और छिली' जाती रही हैं, "जब तक कि ये स्त्रियाँ निजता को सामाजिक प्रतिबद्धता, आवेश को विवेक और हिंसा को आंदोलन में तब्दील करने का मूलमंत्र नहीं जानती।"¹³ रोहिणी अग्रवाल इस बारे में बात करते हुए कहती हैं- "व्यक्तिगत राग-द्वेष की क्षुद्र सीमाओं का अतिक्रमण करते ही वह क्रमशः 'अंगद का पाँव' और 'व्यक्तित्व' बनकर प्रतिष्ठा अर्जित करने लगती हैं। यह उसकी दोहरी सफलता है- अपनी पहचान खुद बनाने के लिए तथा 'मुर्दा समाज को पोस्टमार्टम टेबल' तक पहुँचाने के लिए।"¹⁴ आत्मनिर्भर होना, स्वतंत्र व्यक्तित्व होना तथा निजी व्यक्तित्व की चमकदार सच्चाई के भीतर दबी परतों के त्रासदीपूर्ण एवं भयंकर सत्य की कालिख को देख पाना अत्यंत कठिन है लेकिन अतिआवश्यक पहल भी है। "स्त्री विमर्श एक गंभीर, संवेदनशील एवं बहुआयामी विषय है। दैहिक, मनोवैज्ञानिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक क्षेत्र विमर्श के कई पहलू हैं।"¹⁵ आत्म-स्वाभिमान, स्वावलंबी और स्वतंत्र व्यक्तित्व ही वास्तव में नारी विमर्श का केन्द्र-बिन्दु है। स्त्री को भी समानता का अधिकार, न्याय एवं आदर मिलना एवं प्रत्येक प्रकार के शोषण से मुक्त करवाना ही इसका मुख्य उद्देश्य है।

समाज में अपने खुद के अस्तित्व को कायम रखने के लिए परिस्थितियाँ अनेक प्रकार का संघर्ष कर रही है। जिरवा के बारे में बात करते हुए रमणिका गुप्ता कहती हैं- “देह देकर अगर जिंदगी मिलती है तो इसमें हर्ज क्या है। ऐसे भी तो लोग डरा-धमका कर जबरन उसकी देह भोगते रहे हैं। जिन्दा रहने के लिए देह का सौदा उसे खलता जरूर था- पर यह जरूरी भी था। वह जीना तो अपनी शर्त पर चाहती थी पर जीने के लिए कभी-कभी दूसरे की शर्त मानना भी उसकी मजबूरी हो जाती थी। किसी का जरूरी काम करवाना हो और उसमें जिरवा का नाम होता हो, तो भी वह अपनी इच्छा से समझौता कर लेती पर काम करवाकर ही रहती! एक जगह इज्जत गई तो दूसरी जगह इज्जत पाई।”¹⁶ पहचान बनाने की होड़ में अपने आप को कहीं खो देना यह भी स्त्री जीवन की विडंबना है, सामाजिक गर्व-बोध प्राप्त करने में आत्म-संतुष्टि कहीं खो न जाए यह भी विचारणीय है। इसीलिए लड़ाई बाहरी और भीतरी दोनों है।

सन्दर्भ-सूची:-

1. रमणिका गुप्ता, 'दलित हस्तक्षेप', संपा० ओमप्रकाश वाल्मीकि, अक्षर प्रकाशन, सं० 2014, पृष्ठ 15
2. हरिनारायण ठाकुर, 'दलित साहित्य का समाजशास्त्र', ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली, सं० 2010, पृष्ठ 10
3. रमणिका गुप्ता, 'बहू-जुठाई' शिल्पायन प्रकाशन, सं० 2010, पृष्ठ 41
4. ओमप्रकाश वाल्मीकि, 'जूठन', राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, सं० 1997, पृष्ठ 158-159
5. मोहनदास नैमिश्वराय, 'हिंदी दलित साहित्य', साहित्य अकादमी, दिल्ली, सं० 2011, पृष्ठ 152
6. रमणिका गुप्ता, 'बहू-जुठाई', शिल्पायन प्रकाशन, सं० 2010, पृष्ठ 9
7. रमणिका गुप्ता, 'बहू-जुठाई', शिल्पायन प्रकाशन, सं० 2010, पृष्ठ 39
8. हरिनारायण ठाकुर, 'दलित साहित्य का समाजशास्त्र', ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली, सं० 2010, पृष्ठ 440
9. रमणिका गुप्ता, 'अब मूरख नहीं बनेंगे हम', अभिरूचि प्रकाशन, सं० 1997, पृष्ठ 41
10. रमणिका गुप्ता, 'अब मूरख नहीं बनेंगे हम', अभिरूचि प्रकाशन, सं० 1997, पृष्ठ 21
11. रमणिका गुप्ता, कहानी संग्रह, 'बहू-जुठाई', शिल्पायन प्रकाशन, सं० 2010, पृष्ठ 134
12. रमणिका गुप्ता, 'अब मूरख नहीं बनेंगे हम', अभिरूचि प्रकाशन, सं० 1997, पृष्ठ 24
13. अभय कुमार दुबे, 'आधुनिकता के आईने में दलित', वाणी प्रकाशन, दिल्ली, सं० 2008, पृष्ठ 261
14. हरिनारायण ठाकुर, 'दलित साहित्य का समाजशास्त्र', ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली, सं० 2010, पृष्ठ 154
15. अभय कुमार दुबे, 'आधुनिकता के आईने में दलित', वाणी प्रकाशन, दिल्ली, सं० 2008, पृष्ठ 61
16. रमणिका गुप्ता, 'स्त्री विमर्श कलम और कुदाल के बहाने', शिल्पायन प्रकाशन, दिल्ली, सं० 2010, पृष्ठ 10

वैदिक कालीन उपलब्धियां एवं रथ का इतिहास

रश्मि पान्डे

शोध छात्रा - प्राचीन इतिहास विभाग, ओ०पी०जे०एस० विश्वविद्यालय, चुरू, राजस्थान

डॉ० संजय कुमार मंजुल

प्राचीन इतिहास विभाग, ओ०पी०जे०एस० विश्वविद्यालय, चुरू, राजस्थान

परिचय

भारत का प्राचीन इतिहास वैदिक काल से संबंधित कई महत्वपूर्ण उपलब्धियों से भरपूर है। यह काल लगभग 1500 से 500 ईसा पूर्व तक माना जाता है। वैदिक काल का मुख्य आधार वेदों, उपनिषदों, और स्मृतियों के शिक्षण, धार्मिक आचार-व्यवहार और सामाजिक संरचना में है। इस काल में विज्ञान, गणित, खगोलशास्त्र, और तर्कशक्ति के क्षेत्र में कई महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ रही हैं।¹ इसके साथ ही, रथ का विकास और उपयोग भी इस काल की एक महत्वपूर्ण विशेषता है। रथ न केवल परिवहन का साधन था, बल्कि यह युद्ध और धार्मिक उत्सवों में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता था।

वैदिक कालीन उपलब्धियाँ²

साहित्य और ज्ञान

वैदिक काल के दौरान वेदों की रचना हुई, जिनमें ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद, और अथर्ववेद शामिल हैं। ये ग्रंथ न केवल धार्मिक महत्व रखते हैं, बल्कि सामाजिक, आर्थिक, और वैज्ञानिक ज्ञान को भी समेटे हुए हैं। उदाहरण के लिए, ऋग्वेद में कई मंत्र हैं जो चिकित्सा, गणित, और खगोलशास्त्र पर प्रकाश डालते हैं।

अथर्ववेद में औषधियों और उपचार विधियों का उल्लेख मिलता है, जो यह दर्शाता है कि उस समय तक चिकित्सा विज्ञान का एक ठोस आधार विकसित हो चुका था। इसके अलावा, वेदों में भक्ति, कर्मकांड, और पूर्वजों की पूजा के माध्यम से धार्मिक और आध्यात्मिक पहलुओं का भी विस्तार किया गया।

विज्ञान और गणित

वैदिक काल में गणित के विकास ने महत्वपूर्ण योगदान दिया। उस समय संख्याओं की अवधारणा, ज्यामिति के आधार, और प्रमेयों के अध्ययन का आधार तैयार किया गया। आरण्यक और उपनिषदों में तर्कशक्ति और चिकित्सीय ज्ञान से संबंधित कई सिद्धांत पाए जाते हैं। इसका प्रमाण यह है कि इन्हीं अवधारणाओं का उपयोग बाद में भारतीय गणितज्ञों ने किया।

वैदिक काल की वैज्ञानिक एवं तकनीकी उपलब्धियाँ³

वैदिक काल में विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में भी महत्वपूर्ण प्रगति हुई। ज्योतिष, गणित, आयुर्वेद और धातु विज्ञान जैसे क्षेत्रों में महत्वपूर्ण विकास हुआ। वैदिक ऋषियों ने खगोल विज्ञान के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान दिया, और उन्होंने ग्रहों और नक्षत्रों की गति का अध्ययन किया। गणित में, उन्होंने अंकगणित, बीजगणित और ज्यामिति के सिद्धांतों का विकास किया। आयुर्वेद, चिकित्सा विज्ञान का एक प्राचीन रूप है, जो वैदिक काल में विकसित हुआ। इस प्रणाली में जड़ी-बूटियों और प्राकृतिक उपचारों का उपयोग करके रोगों का इलाज किया जाता था। धातु विज्ञान में, वैदिक लोगों ने तांबा, कांस्य और लोहे जैसी धातुओं का उपयोग करना सीखा।

कृषि और आर्थिक क्रांति

वैदिक काल में कृषि को एक महत्वपूर्ण आर्थिक गतिविधि के रूप में देखा गया। इस दौर में विभिन्न कृषि तकनीकों का विकास हुआ। जल प्रबंधन, फसल चक्र, और स्थायी खेतिहर व्यवस्था विकसित की गई, जो कृषि उत्पादन को बढ़ाने में सहायक थीं। आर्थिक विकास ने समाज में श्रेणीबद्धता को जन्म दिया, जो बाद में जातिगत संरचना में बदल गई।

सामाजिक ढांचा

वैदिक काल का सामाजिक ढांचा भी बहुत महत्वपूर्ण था। जिस समय वर्ण व्यवस्था का जन्म हुआ, उससे समाज में विभिन्न वर्गों का निर्माण हुआ। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, और शूद्र इन वर्गों की पहचान इस काल में बनी। यह सामाजिक संरचना ने भारतीय समाज को विशेषता दी, जिसमें धर्म, कर्तव्य, और नैतिकता की व्याख्या की गई। वैदिक काल में परिवार सामाजिक जीवन की आधारभूत इकाई था, और पितृसत्तात्मक परिवार प्रणाली प्रचलित थी। महिलाओं को समाज में सम्मानजनक स्थान प्राप्त था, और वे धार्मिक और सामाजिक कार्यों में भाग लेती थीं।

वैदिक काल की धार्मिक उपलब्धियां

वैदिक धर्म, जिसे हिंदू धर्म का प्रारंभिक रूप माना जाता है, इस काल की महत्वपूर्ण उपलब्धि थी। वैदिक ऋषियों ने वेदों की रचना की, जिनमें ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद शामिल हैं। वेदों में देवताओं की स्तुतियां, यज्ञों के अनुष्ठान और दार्शनिक विचार शामिल हैं। वैदिक धर्म में इंद्र, अग्नि, वरुण और सूर्य जैसे देवताओं की पूजा की जाती थी। यज्ञ, वैदिक धर्म का एक महत्वपूर्ण अनुष्ठान था, जिसमें देवताओं को आहुति दी जाती थी।

रथ का इतिहास

रथ, वैदिक काल की एक महत्वपूर्ण तकनीकी उपलब्धि थी, जिसने युद्ध और परिवहन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। रथों का उल्लेख ऋग्वेद में मिलता है, जिससे पता चलता है कि वे वैदिक काल में व्यापक रूप से उपयोग किए जाते थे। रथों को घोड़ों द्वारा खींचा जाता था, और वे युद्ध में योद्धाओं को तेजी से स्थानांतरित करने और दुश्मनों पर हमला करने के लिए उपयोग किए जाते थे। रथों का उपयोग परिवहन के लिए भी किया जाता था, और वे लंबी दूरी की यात्रा के लिए उपयोगी थे।⁴

रथों का निर्माण एक जटिल प्रक्रिया थी, जिसमें कुशल कारीगरों की आवश्यकता होती थी। रथों के पहिए लकड़ी से बने होते थे, और वे धातु के रिम से बंधे होते थे। रथों के ढांचे को भी लकड़ी से बनाया जाता था, और उन्हें चमड़े और अन्य सामग्रियों से ढका जाता था। रथों को सजाने के लिए सोने, चांदी और अन्य कीमती धातुओं का उपयोग किया जाता था।

रथ का उपयोग और महत्व

रथ युद्ध में एक महत्वपूर्ण उपकरण था। युद्ध के मैदान में रथ की गति और क्षमता ने सेनानियों को शत्रुओं के बीच एक लाभ दिया।⁵ रथ पर खड़े होकर योद्धा आसानी से तीर चलाते थे और दुश्मनों से सुरक्षित रह सकते थे। रथों का युद्ध में महत्वपूर्ण प्रभाव था। वे योद्धाओं को तेजी से स्थानांतरित करने और दुश्मनों पर हमला करने के लिए उपयोग किए जाते थे। रथों पर सवार योद्धा तीर, भाले और तलवार जैसे हथियारों का उपयोग करते थे। रथों की गति और मारक क्षमता ने उन्हें युद्ध में एक दुर्जेय शक्ति बना दिया। इसके अलावा, धार्मिक समारोहों में भी रथ का उपयोग होता था। रथ उत्सवों का आयोजन केवल परिवहन का साधन नहीं था, बल्कि यह विभिन्न देवताओं की पूजा का एक महत्वपूर्ण हिस्सा था।

रथ के विभिन्न प्रकार

वैदिक काल में विभिन्न प्रकार के रथ विकसित किए गए, जिनमें युग्म रथ, चतुष्कोणीय रथ, और अधिक को विभिन्न प्रयोजनों के लिए बनाया गया। इसका स्पष्ट उदाहरण महाभारत और रामायण जैसे ग्रंथों में मिलता है, जहां रथ की युद्ध में रणनीति का उल्लेख मिलता है।

समकालीन अनुसंधान और प्रासंगिकता

आज के दृष्टिकोण से, वैदिक कालीन ज्ञान का इतिहासनिर्माण और अनुसंधान आधुनिक विज्ञान में भी महत्वपूर्ण है। यद्यपि यह काल प्राचीन था, लेकिन इसके सिद्धांत और विचारशीलताएं आधुनिक विज्ञान और प्रौद्योगिकी के विकास को प्रभावित कर रही हैं। भारतीय चिकित्सा पद्धतियों में प्राचीन औषधियों का अध्ययन अब भी जारी है।

रथ के विकास ने न केवल युद्ध के राजनैतिक पहलुओं को बदला, बल्कि नए तरह के वाहनों के विकास में भी योगदान दिया। आधुनिकीकरण के इस दौर में, रथ के डिजाइन और उपयोग में तकनीकी नवाचार जारी हैं। यह सुनिश्चित करना कि रस्ते और गाड़ियों की संरचना सुरक्षित हो, वैश्विक परिवहन का एक अनिवार्य हिस्सा है।⁶

वैदिक काल की विरासत

वैदिक काल ने भारतीय संस्कृति और सभ्यता पर गहरा प्रभाव डाला। वेदों, उपनिषदों और अन्य वैदिक ग्रंथों ने भारतीय दर्शन, धर्म और साहित्य को आकार दिया। वर्ण व्यवस्था, संयुक्त परिवार प्रणाली और यज्ञ जैसे वैदिक रीति-रिवाजों का आज भी भारतीय समाज में पालन किया जाता है। आयुर्वेद, ज्योतिष और योग जैसे वैदिक विज्ञानों का आज भी व्यापक रूप से उपयोग किया जाता है।

निष्कर्ष

भारत का प्राचीन इतिहास वैदिक काल से जुड़ा है, जो लगभग 1500 से 500 ईसा पूर्व तक माना जाता है। इस समय का मुख्य आधार वेदों, उपनिषदों और स्मृतियों का अध्ययन है, जो धार्मिक आचार-व्यवहार और सामाजिक संरचना का पता देते हैं। वैदिक काल में विज्ञान, गणित, खगोलशास्त्र, और तर्कशक्ति में महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ हुईं। रथ का विकास भी इस काल की खासियत थी, जिसका उपयोग परिवहन, युद्ध, और धार्मिक उत्सवों में किया जाता था।

इस काल में वेदों की रचना हुई, जिसमें ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद, और अथर्ववेद शामिल हैं। ये ग्रंथ न केवल धार्मिक, बल्कि सामाजिक, आर्थिक, और वैज्ञानिक ज्ञान को भी दर्शाते हैं। ऋग्वेद में चिकित्सा, गणित, और खगोलशास्त्र के मंत्र मिलते हैं, और अथर्ववेद में औषधियों की जानकारी दी गई है। धार्मिक क्रियाओं और भक्ति के पहलू भी वेदों में उल्लेखित हैं।

गणित में वैदिक काल का योगदान उल्लेखनीय रहा। यहां संख्याओं की अवधारणा, ज्यामिति, और प्रमेयों का अध्ययन शुरू हुआ। आरण्यक और उपनिषदों में तर्क और चिकित्सा ज्ञान के कई सिद्धांत हैं। विज्ञान के क्षेत्र में भी विभिन्न विकास हुए, जिनमें ज्योतिष, गणित, और आयुर्वेद जैसी चिकित्सा प्रणालियाँ शामिल हैं। धातु विज्ञान में भी तांबा, कांस्य, और लोहे का प्रयोग सीखा गया।

कृषि को इस काल में महत्वपूर्ण आर्थिक गतिविधि माना गया, और कई कृषि तकनीकों का विकास हुआ, जिससे उत्पादन बढ़ा। इस आर्थिक विकास ने समाज में वर्गीय संरचना को जन्म दिया, जो आगे चलकर जातिगत व्यवस्था में परिवर्तित हुआ।

समाज में वर्ण व्यवस्था का विकास हुआ, जिसमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, और शूद्र के वर्ग बनाए गए। परिवार इस समय का सामाजिक जीवन का मुख्य आधार था, और पितृसत्तात्मक प्रणाली प्रचलित थी। महिलाओं को सम्मानित स्थान दिया गया और वे धार्मिक व सामाजिक कार्यों में भाग लेती थीं।

वैदिक धर्म, जिसे प्रारंभिक हिंदू धर्म माना जाता है, भी इस काल का एक महत्वपूर्ण हिस्सा था। देवताओं की स्तुतियाँ, यज्ञ और दार्शनिक विचार वेदों में शामिल हैं। रथ, जो इस काल की तकनीकी उपलब्धि है, ने युद्ध और परिवहन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। रथ का उपयोग केवल युद्ध में नहीं, बल्कि धार्मिक समारोहों में भी किया जाता था।

वैदिक काल की उपलब्धियाँ आज भी भारतीय संस्कृति और सभ्यता को प्रभावित करती हैं। इस काल के अध्ययन से हमें ये समझने में मदद मिलती है कि कैसे प्राचीन ज्ञान और प्रौद्योगिकी आधुनिक जीवन को प्रभावित करते हैं। वैदिक काल भारतीय इतिहास में एक खास स्थान रखता है और इसके उपलब्धियाँ कई क्षेत्रों में महत्वपूर्ण हैं।

संदर्भ

- 1- Basham, A. L. (1954). The Wonder That Was India: A Survey of the Culture of the Indian Sub-Continent Before the Coming of the Muslims. Grove Press.
- 2- Sharma, R. S. (1983). Material Culture and Social Formations in Ancient India. Macmillan Publishers.
- 3- Kumar, R. (2020). Ancient Indian Science and Technology. New Delhi: Academic Press.
- 4- Bisht, R. (2016). Vedic Literature: The Eternal Wisdom. Dehradun: Himalayan Publishing House.
- 5- Goel, A. (2018). The Evolution of Warfare in Ancient India. New Delhi: Prakash Publications.
- 6- Sharma, P. (2017). The Architectural Heritage of India: The Vedic Perspective. Jaipur: Heritage Press.

वर्तमान समय में ग्रामीण महिलाओं की सामाजिक आर्थिक स्थिति

कुमारी रिकी

शोध छात्रा, गृह विज्ञान विभाग, भगवन्त विश्वविद्यालय, अजमेर, राजस्थान, भारत

डॉ० सुषमा श्रीवास्तव

भगवन्त विश्वविद्यालय, अजमेर, राजस्थान, भारत

परिचय

भारत में ग्रामीण महिलाओं की सामाजिक आर्थिक स्थिति में पिछले कुछ दशकों में महत्वपूर्ण परिवर्तन आए हैं। यह परिवर्तन न केवल उनके आर्थिक अधिकारों की परिभाषा में वृद्धि को दर्शाता है, बल्कि सामाजिक मानदंडों और चिकित्सीय स्वास्थ्य, शिक्षा और विभिन्न रोजगार क्षेत्रों में उनकी भागीदारी को भी प्रभावित करता है। इस लेख में, हम ग्रामीण महिलाओं की स्थिति का विस्तृत विश्लेषण करेंगे, जिसमें उनके अधिकार, चुनौतियाँ और उभरते अवसरों का ब्यौरा दिया जाएगा।

ग्रामीण महिलाओं की सामाजिक स्थिति

ग्रामीण महिलाओं की सामाजिक स्थिति आमतौर पर उनके शिक्षा स्तर, पारिवारिक जिम्मेदारियों और समुदाय में उनकी भूमिका से प्रभावित होती है। शिक्षा की कमी और लिंग भेदभाव इन महिलाओं की सामाजिक स्थिति को कमजोर बनाते हैं। हालाँकि, हाल के वर्षों में कुछ सकारात्मक परिवर्तन देखे गए हैं। सरकारी योजनाएँ, जैसे कि 'बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ' और 'महिला मुद्रा योजना', ने महिलाओं के प्रति समाज के दृष्टिकोण में परिवर्तन लाने का प्रयास किया है।

ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाएँ अब अधिक कामकाजी बनने लगी हैं। वे केवल घरेलू कामकाज में ही नहीं, बल्कि कृषि, पशुपालन और छोटे व्यवसायों में भी सक्रिय रूप से भाग ले रही हैं। इसके बावजूद, उनके काम को अक्सर अविकसित समझा जाता है और उचित मान्यता नहीं मिलती। यह स्थिति महिलाओं को उनके अधिकारों के प्रति जागरूक होने की आवश्यकता को बताती है।¹

ग्रामीण महिलाओं की सामाजिक स्थिति कई कारकों से प्रभावित होती है, जिनमें शिक्षा, स्वास्थ्य, और सामाजिक मान्यता शामिल हैं।

शिक्षा: ग्रामीण क्षेत्रों में, लड़कियों की शिक्षा को अभी भी उतनी प्राथमिकता नहीं दी जाती जितनी लड़कों की शिक्षा को। इसके कई कारण हैं, जिनमें गरीबी, सामाजिक रूढ़िवादिता, और स्कूलों की कमी शामिल हैं। शिक्षा की कमी के कारण, ग्रामीण महिलाएँ अक्सर कम वेतन वाली नौकरियों तक ही सीमित रह जाती हैं, और वे अपने अधिकारों और अवसरों के बारे में कम जागरूक होती हैं।²

स्वास्थ्य: ग्रामीण महिलाओं के स्वास्थ्य की स्थिति भी चिंताजनक है। वे अक्सर कुपोषण, एनीमिया, और मातृ मृत्यु दर जैसी समस्याओं से पीड़ित होती हैं। इसका कारण है कि उन्हें उचित स्वास्थ्य सेवाओं तक पहुँच नहीं होती है, और वे अपने स्वास्थ्य के बारे में कम जागरूक होती हैं।³

सामाजिक मान्यता: ग्रामीण महिलाओं को अक्सर समाज में कम सम्मान दिया जाता है। उन्हें पुरुषों के बराबर नहीं माना जाता है, और उन्हें अक्सर घरेलू काम और बच्चों की देखभाल तक ही सीमित कर दिया जाता है। सामाजिक मान्यता की कमी के कारण, वे अक्सर आत्मविश्वास और आत्म-सम्मान की कमी महसूस करती हैं।

ग्रामीण महिलाओं की आर्थिक स्थिति

आर्थिक दृष्टिकोण से, ग्रामीण महिलाओं की स्थिति में सुधार हो रहा है, लेकिन यह असमान है। बहुसंख्यक ग्रामीण महिलाएँ अभी भी कृषि कार्यों पर निर्भर हैं। कृषि क्षेत्र में काम करने वाली महिलाओं को अक्सर श्रम का कम मूल्यांकन मिलता है और उन्हें औपचारिक आर्थिक व्यवस्था से बाहर रखा जाता

है। हालांकि, कुछ महिलाएँ स्वयं सहायता समूहों के माध्यम से उद्यमिता की ओर अग्रसर हो रही हैं, जो उनकी आय में वृद्धि का माध्यम बन रहा है।

ग्रामीण महिलाओं की आर्थिक स्थिति भी चुनौतीपूर्ण है। वे अक्सर कृषि और अन्य अनौपचारिक क्षेत्रों में काम करती हैं, जहां उन्हें कम वेतन मिलता है और उनके काम की कोई सुरक्षा नहीं होती है। इसके अतिरिक्त, उन्हें ऋण और अन्य वित्तीय सेवाओं तक पहुंच प्राप्त करने में भी कठिनाई होती है।⁵

कृषि: भारत में, कृषि ग्रामीण अर्थव्यवस्था का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है, और ग्रामीण महिलाएँ कृषि में महत्वपूर्ण योगदान देती हैं। वे खेतों में काम करती हैं, फसलें उगाती हैं, और पशुधन की देखभाल करती हैं। हालांकि, उन्हें अक्सर उनके काम के लिए कम वेतन मिलता है, और उन्हें भूमि स्वामित्व का अधिकार नहीं होता है।

अनौपचारिक क्षेत्र: ग्रामीण महिलाएँ अक्सर अनौपचारिक क्षेत्र में भी काम करती हैं, जैसे कि घरेलू काम, निर्माण, और हस्तशिल्प। इन नौकरियों में, उन्हें कम वेतन मिलता है और उनके काम की कोई सुरक्षा नहीं होती है।

वित्तीय सेवाएं: ग्रामीण महिलाओं को ऋण और अन्य वित्तीय सेवाओं तक पहुंच प्राप्त करने में भी कठिनाई होती है। इसका कारण है कि उनके पास अक्सर संपाश्वर्क नहीं होता है, और वे वित्तीय संस्थानों के बारे में कम जागरूक होती हैं।

हाल ही में, ग्रामीण क्षेत्रों में तकनीकी विकास और कुटीर उद्योगों के उन्नयन ने महिलाएँ को नई आर्थिक संभावनाएँ प्रदान की हैं। उदाहरण के लिए, शिल्पकला, खानपान और हस्तशिल्प में महिलाओं ने स्वयं को स्थापित किया है। ये महिलाएँ न केवल अपने परिवार का पालन-पोषण कर रही हैं, बल्कि अपने काम से समाज में एक महत्वपूर्ण भूमिका भी निभा रही हैं।

चुनौतियाँ

यद्यपि ग्रामीण महिलाओं की आर्थिक स्थिति में सुधार हो रहा है, लेकिन कई चुनौतियाँ अभी भी विद्यमान हैं। इनमें लिंग भेदभाव, शिक्षा की कमी, स्वास्थ्य सेवाओं तक पहुँच की कमी और सामाजिक अवरोध शामिल हैं। कई ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं को उनके अधिकारों के प्रति जागरूक किया जाना आवश्यक है। इसके अलावा, घरेलू हिंसा और सामाजिक सत्तावाद भी महिलाओं की स्थिति को प्रभावित करते हैं, जिससे उनकी व्यक्तिगत और आर्थिक स्वतंत्रता पर प्रभाव पड़ता है।

हालांकि ग्रामीण महिलाओं की स्थिति में कुछ सुधार हुआ है, लेकिन अभी भी कई चुनौतियाँ बाकी हैं जिनका सामना उन्हें करना पड़ता है।

सामाजिक रूढ़िवादिता: ग्रामीण क्षेत्रों में, सामाजिक रूढ़िवादिता अभी भी व्याप्त है, और यह महिलाओं की शिक्षा और रोजगार के अवसरों को सीमित करती है।

गरीबी: ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबी अभी भी एक बड़ी समस्या है, और यह महिलाओं को शिक्षा, स्वास्थ्य, और वित्तीय सेवाओं तक पहुँच प्राप्त करने से रोकती है।

भूमि स्वामित्व: ग्रामीण महिलाओं को भूमि स्वामित्व का अधिकार नहीं होता है, और यह उन्हें आर्थिक रूप से कमजोर बनाता है।

वर्तमान समय में सुधार

हाल के वर्षों में, ग्रामीण महिलाओं की सामाजिक और आर्थिक स्थिति में कुछ सुधार हुआ है।⁶ सरकार और गैर-सरकारी संगठनों द्वारा कई कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं जो उन्हें शिक्षा, स्वास्थ्य, और वित्तीय सेवाओं तक पहुँच प्रदान करते हैं। इसके अतिरिक्त, ग्रामीण महिलाओं को स्वयं सहायता समूहों (एसएचजी) में शामिल होने के लिए प्रोत्साहित किया जा रहा है, जो उन्हें एक साथ आने और अपने अधिकारों और अवसरों के बारे में जानने में मदद करते हैं।

शिक्षा: सरकार ने ग्रामीण क्षेत्रों में लड़कियों की शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए कई कार्यक्रम शुरू किए हैं, जैसे कि सर्व शिक्षा अभियान और बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ योजना। इन कार्यक्रमों के कारण, ग्रामीण क्षेत्रों में लड़कियों के नामांकन दर में वृद्धि हुई है।

स्वास्थ्य: सरकार ने ग्रामीण महिलाओं के स्वास्थ्य में सुधार के लिए भी कई कार्यक्रम शुरू किए हैं, जैसे कि राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन। इस कार्यक्रम के कारण, ग्रामीण क्षेत्रों में मातृ मृत्यु दर में कमी आई है।

वित्तीय सेवाएं: सरकार ने ग्रामीण महिलाओं को वित्तीय सेवाओं तक पहुँच प्रदान करने के लिए भी कई कार्यक्रम शुरू किए हैं, जैसे कि प्रधानमंत्री जन धन योजना। इस योजना के कारण, ग्रामीण क्षेत्रों में बैंक खातों की संख्या में वृद्धि हुई है।

आज की तारीख में, सरकारें और एनजीओ ग्रामीण महिलाओं को सशक्त बनाने के लिए विभिन्न कार्यक्रम लागू कर रही हैं। इनमें कौशल विकास, शिक्षा योजनाएं, स्वास्थ्य सेवाएं और कानूनी जागरूकता शामिल हैं। 'नरेगा' जैसी योजनाएँ ग्रामीण महिलाओं को रोजगार प्रदान कर रही हैं और आर्थिक स्वतंत्रता की ओर एक कदम बढ़ा रही हैं।

अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर, संयुक्त राष्ट्र द्वारा 'सतत विकास लक्ष्यों' को भी ध्यान में रखा जा रहा है, जिसमें महिलाओं और लड़कियों के अधिकारों और समानता की प्राप्ति का लक्ष्य निर्धारित किया गया है। ये पहल ग्रामीण महिलाओं की स्थिति को सुधारने में सहायक सिद्ध हो रही हैं।

भविष्य की संभावनाएँ

भविष्य में, यदि यह गति जारी रहती है, तो ग्रामीण महिलाओं की सामाजिक और आर्थिक स्थिति में और अधिक सुधार देखे जा सकते हैं। शिक्षा के स्तर में वृद्धि, नई तकनीकों का उपयोग और सामाजिक समर्थन प्रणाली मजबूत होने से महिलाएँ अधिक स्वतंत्र और सशक्त बनेंगी।

यद्यपि संख्या में वृद्धि हो रही है, फिर भी दुखद है कि ये परिवर्तन धीरे-धीरे हो रहे हैं। यह आवश्यक है कि महिलाएँ अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हों और समाज में अपनी भूमिका को समझें। शिक्षा और कौशल विकास के माध्यम से, महिलाएँ अपनी सामाजिक और आर्थिक स्थिति को बेहतर बना सकती हैं।

निष्कर्ष

ग्रामीण महिलाएँ भारत के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। उनकी सामाजिक और आर्थिक स्थिति में सुधार करना आवश्यक है ताकि वे अपनी पूरी क्षमता तक पहुँच सकें। सरकार, गैर-सरकारी संगठनों, और समाज को मिलकर काम करना होगा ताकि ग्रामीण महिलाओं को शिक्षा, स्वास्थ्य, वित्तीय सेवाएँ, और भूमि स्वामित्व का अधिकार मिल सके। तभी हम एक न्यायपूर्ण और समान समाज बना सकते हैं।

ग्रामीण महिलाओं की सामाजिक आर्थिक स्थिति में सुधार हो रहा है, लेकिन अभी भी कई चुनौतियाँ हैं। हमें यह समझना होगा कि महिलाओं को सशक्त करना केवल उनके लिए नहीं, बल्कि सम्पूर्ण समाज के विकास के लिए आवश्यक है। सही नीति, जागरूकता और समर्थन के माध्यम से, ग्रामीण महिलाएँ न केवल अपने लिए बल्कि आने वाली पीढ़ियों के लिए एक बेहतर भविष्य बना सकती हैं।

संदर्भ

- 1- Bharati, V. (2021). Empowering rural women in India: Challenges and opportunities. *Journal of Rural Development*, 40(2), 225-240.
- 2- Mishra, S. (2022). The role of education in empowering rural women: A case study of India. *International Journal of Educational Development*, 81, 102-109.
- 3- Sahu, A. (2023). Women's health and economic participation in rural India: A socio-economic perspective. *Journal of Health and Social Sciences*, 8(1), 34-50.
4. कौशिक बसु, एवं अन्नली लेविनसन। (2021)। “भारत में लिंग असमानता”। विश्व बैंक नीति अनुसंधान वर्किंग पेपर।
- 5- Kumar, A., & Gupta, R. (2020). Economic empowerment of women through self-help groups in rural India: A study of selected states. *Indian Journal of Gender Studies*, 27(1), 1-20.
6. ग्रामीण विकास मंत्रालय, भारत सरकार। (2021)। वार्षिक रिपोर्ट 2020-21।

वैदिक ग्रंथों में पर्यावरणीय चिंतन

डॉ० सृष्टि गर्ग

पी. एच. डी. एम. ए. पीएचडी (इतिहास) एल. एन. मिथिला युनिवर्सिटी दरभंगा, बिहार

वैदिक ग्रंथों का तात्पर्य-वेद, वेदांग, उपनिषद्, अरण्यक, पुराण आदि ग्रंथों से है। वैदिक वाङ्मयों में पर्यावरणीय संरक्षण सम्बन्धी अवधारणा वैदिक मंत्रों में स्पष्ट दिखाता है। वेदों में पर्यावरण के उस अर्थ से साम्य रखने वाले शब्द परिधि, परिभू, अभीवार, पर्यभवत, छन्दासि, आवृता, परिवृता आदि मिलते हैं।¹ वेदों, उपनिषदों, ब्राह्मण ग्रंथों, पुराणों में इन्द्र, वरूण, सविता (सूर्य), अग्नि आदि देवता पर्यावरण के अनिवार्य घटकों के उदात्तीकृत देव रूप बताया है। इस वैदिक ग्रंथों में पर्यावरण से जुड़े देव तथा देव तत्वों की प्रार्थना और स्तुति करते हुए बहुत सा मंत्र मिल जाता है। यानि वैदिक काल में ऋषियों ने प्रकृति के इन देवताओं की उपासना, पूजा करने का प्रावधान किया। वे वैदिककाल के आरंभिक दिनों में ही समझ लिया कि प्रकृति के घटकों या पर्यावरण का निर्माण करने वाले घटकों भूमि, जल, अग्नि वायु आदि प्रसन्न और स्वस्थ रखेंगे तो मानव भी प्रसन्न और स्वस्थ रहेंगे और मानव रोग, दोष, संताप, प्रकृति के रूद्ररूप से सुरक्षित या दूर रहेंगे। पर्यावरण संरक्षण के महत्वपूर्ण घटक वृक्षों व वनों की महत्ता को वैदिक काल में बहुत महत्व दिया गया था। तभी तो वैदिक ग्रंथों में अग्नि, सोम, सूर्य आदि देवताओं की भाँति वेदों में वृक्षों को भी देवत्व की संज्ञा से विभूषित किया गया है, उनकी स्तुति की गई है -

नमो वृक्षेभ्यः।²

वनानां पतये नमः।³

औषाधीनां पतये नमः।⁴

वृक्षाणां पतये नमः।⁵

वैदिक ऋषियों ने पर्यावरण संतुलन के लिए वृक्षों की महत्ता को समझते हुए मत्स्य पुराण में निर्देशित किया है कि एक वृक्षारोपण का फल दस पुत्रों के बराबर का महत्त्व है।⁶ यह भी कहा गया है कि एक वृक्ष को काटना दस पुत्रों की हत्या के बराबर है। अतः वेदों में वृक्षों को पुत्रवत् ख्याल रखने का निर्देश देता है। विष्णु स्मृति में भी प्रतिपादित किया है कि 'वृक्षरोपयितुर्वृक्षः परलोके पुत्रः भवन्ति।

अर्थात् - जो व्यक्ति वृक्षों का रोपण करता है, वे वृक्ष परलोक में उसके पुत्र होकर जन्म लेते हैं।

ऋग्वेद में भी वृक्षों को लगाना और संवर्द्धन करना पुण्य का कार्य बताया गया है। ऋग्वेद⁶ में पेड़ों को 'देवत्व' और वायु को 'अमृतत्व' कहा गया है। चूँकि वृक्ष मनुष्य को प्राणवायु अर्थात् ऑक्सीजन रूपी अमृत व दीर्घायु प्रदान करता है। शतपथ ब्राह्मण⁷ में वृक्षों को 'शिवत्व' और यजुर्वेद⁸ में शिव को वृक्ष का 'स्वामी' बताया है। वृक्षों को शिवत्व इसलिए कहा गया है, जैसा कि भगवान शिव ने समुद्र मंथन के उपरांत विष को पीकर मानव जाति को बचाया था, उसी प्रकार वृक्ष, विषरूपी कार्बन डाईऑक्साइड को पीकर हमें ऑक्सीजन रूपी अमृत प्रदान करते हैं। जैसा कि यजुर्वेद में उल्लेखित है -

या ते रूद्र शिवा तनूः शिवा विश्वहा भेषजी।

शिवा रूतस्थ भेषजी तथा नो मृद जीवसे।⁹

वैज्ञानिक शोध के अनुसार एक पेड़ 17 टन कार्बन मोनोऑक्साइड, 93 टन सल्फर डाई ऑक्साइड तथा 210 टन ओजोन जैसे विषैले गैसों को वायुमण्डल से हटाकर पर्यावरण को शुद्ध करता है। अतएव वृक्षों को शिव कहा गया है और पशुपति को भी शिव कहा गया है। वेदों में वायु को 'यज्ञप्रीः' और 'शिव' कहा है। ऋग्वेद¹⁰ के एक मंत्र में कहा गया है कि हे वायुः! तुम्हारे पास अमृत की निधि है, उससे तुम हमें शक्ति दो। वहीं दूसरे मंत्र में कहा गया है कि वायु में अमृत है, उसे नष्ट न होने दें। शतपथ ब्राह्मण¹¹ के अनुसार वायु ही प्राण है। अथर्ववेद¹² में अनुसार वायु सभी रोगों व दोषों को दूर करने वाला बताया है। इसलिए उसे 'विश्वभेषज' कहा गया है। ऋग्वेद¹³ में भी कहा गया है कि वायु में सभी प्रकार के औषधि विद्यमान है।

वैदिक काल में यज्ञ एक महत्वपूर्ण धार्मिक क्रिया-कलाप व विधान था। यज्ञ सालोंभर चलते रहता था। घर-घर में यज्ञ का आयोजन होता था। यज्ञ छोटे-बड़े होते रहते थे। पर्यावरण को शुद्ध करने में यज्ञ की विशेष भूमिका होती है। हमारे वैदिक काल के ऋषि-मुनियों द्वारा यज्ञ की वैज्ञानिक पद्धति को अंगीकार करते हुए नित्यकर्म के रूप में मान्यता दी गई थी। ऋग्वेद¹⁴ तथा यजुर्वेद प्राकृतिक यज्ञ का वर्णन करते हुए कहा गया है कि बसन्त ऋतु 'घी' है, गीष्म ऋतु 'समाधि' है, शरद ऋतु 'हव्य' है।¹⁵ यज्ञ से वातावरण शुद्ध होता है। वायुमण्डल में ऑक्सीजन तथा कार्बन डाई-आक्साइड का संतुलन बना रहता है।

छान्दोग्यपनिषद्¹⁶ में यज्ञ को पर्यावरण-प्रदूषण को दूर करने का सर्वोत्तम उपाय बताया गया है। नवीनतम अनुसंधान व शोध से साबित हो चुका है कि सुगंधित 'हव्य' सामग्री के हवन से न केवल बीमारियों के कीटाणु-विषाणु नष्ट होते हैं, वरन उससे निकलने वाले धुएँ के सुक्ष्म परमाणु, प्रदूषित कार्बन डाइक्साइड के परमाणुओं के साथ मिलकर गंदे चीजों को अवशोषित कर लेता है और उसे शुद्ध तत्वों में बदल देता है।

यज्ञ व हवन के क्रम में मंत्रों का उच्चारण से प्रकृति व पर्यावरण के घटकों से शांति की अपील करने का उल्लेख वैदिक ग्रंथों में मिलता है। वैदिक ग्रंथों में कामना करते हुए मिल जाता है कि -

घौः शांतिः अन्तरिक्षं शांतिः पृथिवी शांतिरापः शांतिरोषधयः शांति।

वनस्पतयः शांतिर्वि श्रवेदेवाः शांति ब्रह्म शांतिः सर्व शांतिः शांतिदेव शांतिः सा मा शांतिरोधि॥¹⁷

अर्थात् धुलोक, अंतरिक्षलोक तथा पृथ्वीलोक हमें शांति प्रदान करे। जल शांति प्रदायक हो, औषधियाँ तथा वनस्पतियाँ शांति प्रदान करने वाली हों। सभी देवगण शांति प्रदान करें। सर्वव्यापी ब्रह्म व परमात्मा सम्पूर्ण जगत में शांति स्थापित करें। शांति भी हमें परम शांति प्रदान करें। यज्ञ के दौरान हवन करते समय प्रकृति के पंचतत्वों पृथ्वी, जल, वायु, सूर्य और अग्नि की शांति के लिए अपील किया जाता है।

ध्वनि प्रदूषण - याज्ञिक कर्म करते समय मन की स्वच्छता, जल की शुद्धता का ध्यान रखा जाता है। पवित्रता और स्वच्छता पर्यावरणीय तत्वों का ही एक अंग है। याज्ञिक कर्मों के समय जल, वायु की शुद्धता के साथ-साथ ध्वनि की शुद्धता होती है। यज्ञ के समय वैदिक मंत्रों के सुस्वर मधुरवायन से निकलने वाले ध्वनि तरंगें, ध्वनि प्रदूषण को खत्म करती है।

जल संरक्षण - वेदों में वायु की शुद्धता के साथ-साथ जल की शुद्धता, जल की उपयोगिता तथा महत्त्व पर प्रकाश डाला है। वैदिक ग्रंथों में जल जीवनदायी, अमृतकारी, भेषज, रोगनाशक और आयुवर्धक बताया है।¹⁸ अतः जल की शुद्धता और पवित्रता पर विशेष बल दिया जाता था। यहां तक की भारतीय मनीषियों की जल के प्रति शुद्धिकरण के चिंतन की परम्परा का दर्शन पुराणों¹⁹ में भी परिलक्षित होता है। जहां सखा निर्देश देते हुए उल्लेख मिलता है कि जल में थूकना, मल-मूत्र विसर्जित करना, कूड़ा डालना, गंदी पानी बहाना, जल में शौच करना पूर्णतः निषिद्ध है, क्योंकि इससे जल प्रदूषित होता है।

भूमि की शुद्धता व संरक्षण - प्रकृति के महत्त्वपूर्ण घटक 'भूमि' की शुद्धता का संकेत वैदिक ग्रंथों में मिलता है। वैदिक ग्रंथों में भूमि और पृथ्वी की महत्ता को स्पष्ट करते हुए अथर्ववेद के 12वें काण्ड के प्रथम सूक्त में पृथ्वी व भूमि के विषय में लिखा है कि:-

माता भूमि: पुत्रो अहं पथिव्याः

यानि पृथ्वीमाता पुत्र की भांति फल, औषधियाँ, फसलें आदि पुष्टि कारक तत्व देती है, जो इसी भूमि पर उत्पन्न होते हैं। अतः हम पृथ्वी को माता के समान आदर दें। यजुर्वेद के एक श्लोक में लिखा है कि धू और भू हमारे रक्षक है, पालक है। अतः यह माता-पिता तुल्य है, इसकी रक्षा करना और प्रदूषण मुक्त रखना कर्तव्य है। फिर आगे लिखा है कि -

शिला भूमि रश्मा पांसु सा भूमिः संघृताधता

तस्यै हिरण्यवक्षसे पृथिव्या अकरं नमः॥²⁰

अर्थात् भूमि चट्टान, पत्थर और मिट्टी है। मैं उसी हिरण्यगर्भा पृथ्वी के लिए स्वागत वचन बोलता हूँ। नाना प्रकार के फल, औषधियाँ, फसलें, अनाज, पेड़-पौधे इसी मिट्टी पर उत्पन्न होते हैं। अतः पृथ्वी को हम माता के समान आदर दें। वैदिक ग्रंथों में भूमि संरक्षण के विषय में कहा है कि पृथ्वी के जिस भाग को खोदें, उसे फिर पूरा भर दें।

निष्कर्ष - इस प्रकार वैदिक वाङ्मयों में प्रकृति के सभी घटकों की शुद्धता तथा संरक्षण से सम्बन्धित अनेकों मंत्र हैं। यानि पर्यावरण समस्या के समाधान में वैदिक वाङ्मय अद्वितीय है। वैदिक काल में प्रकृति के घटकों को दैवीय शक्ति का प्रतीक मानते हुए इसकी पूजा - अर्चना, मंत्रों के माध्यम से आह्वान करना शुरू किया, जैसे - प्रकाश और उष्मा के देवता - अग्निदेव, जल का स्वामी- वरूण, वायु का स्वामी - मरुत, वर्षा के देवता-इन्द्र आदि। यहां तक पेड़-पौधों, पशु-पक्षियों को किसी न किसी - वैदिक देवी-देवताओं से जोड़कर इसकी संरक्षण, संवर्द्धन करने का संकेत वैदिक ग्रंथों में मिलता है। जैसे नारियल वृक्ष - उर्वरता की देवी से, पीपल वृक्ष - विष्णु, लक्ष्मी, दुर्गा के वास से, तुलसी-लक्ष्मी, विष्णु, राम, शिव, कृष्ण के वास से आदि। इसी तरह पर्यावरणीय घटक पशु-पक्षी को भी देवी-देवताओं से जोड़कर इसकी पूजा करते थे, जैसे शिव का वाहन नंदी, विश्वकर्मा का हाथी आदि। वैदिक आर्यों के द्वारा सूर्य, अग्नि, पृथ्वी को देवता का रूप देकर पूजा - यज्ञ विधान सम्पन्न करते थे। वैदिक वाङ्मयों में सूर्य के विषय में लिखा है कि सूर्य अपनी पवित्र किरणों द्वारा वायुमण्डल को प्रदूषण से मुक्त कर वातावरण को शुद्ध कर सकते हैं। वैदिक मंत्रों में अग्नि को भी विशेष महत्त्व दिया गया है। अग्नि पर्यावरण में व्याप्त समस्त दोषों व प्रदूषणों को विनष्टकर मानव कल्याणार्थ पवित्र वातावरण तैयार करता है।

इस प्रकार वैदिक काल की जीवन शैली को अपनाकर बहुत हद तक पर्यावरणीय समस्या का समाधान कर सकते हैं। चूँकि वैदिक वाङ्मयों में पर्यावरण से सम्बन्धित वायु प्रदूषण, जल प्रदूषण, भूमि प्रदूषण, ध्वनि प्रदूषण की समस्या के समाधान के लिए समर्पित अनेकों मंत्र हैं। वैज्ञानिकों ने यह भी साबित कर दिया है कि वैदिक काल की याज्ञिक क्रिया-कलाप वायु प्रदूषण को कम करने में कारगर है।

संदर्भ ग्रंथ सूची -

1. आशा रानी पाण्डेय, वेदों में पर्यावरण विमर्श, (संपा.) वीरेन्द्र सिंह यादव, भारतीय संस्कृति में पर्यावरण चिंतन के विविध आयाम, पृ० - 89
2. यजुर्वेद 16/17
3. यजुर्वेद 16/18
4. यजुर्वेद 16/19
5. यजुर्वेद 16/18
6. ऋग्वेद 10/186/3
7. शतपथ ब्राह्मण 6/1/3/12
8. यजुर्वेद 16/17-19
9. यजुर्वेद 16/49
10. ऋग्वेद 6/37/3
11. शतपथ ब्राह्मण 1/1/2/14
12. अथर्ववेद 4/13/3
13. ऋग्वेद 10/36/3
14. ऋग्वेद 10/90/6
15. यजुर्वेद 31/14
16. छादोग्य उपनिषद् 4/16/1
17. यजुर्वेद 36/17
18. ऋग्वेद 1/23/19, अथर्ववेद 6/24/1
19. पद्म पुराण 8/8-10
20. अथर्ववेद 12/1/26

ऐथेलेटिक्स खिलाड़ियों की शारीरिक क्षमता पर योग के प्रभाव का अध्ययन

भरत सिंह

शोधार्थी, शिक्षा संकाय, जनार्दन राय नागर राजस्थान विद्यापीठ विश्वविद्यालय (डीम्ड-टू-बी विश्वविद्यालय), उदयपुर

डॉ० ममता कुमावत

शोध मार्गदर्शिका, शिक्षा संकाय

जनार्दन राय नागर राजस्थान विद्यापीठ विश्वविद्यालय (डीम्ड-टू-बी विश्वविद्यालय), उदयपुर

सारांश:

प्रस्तुत शोध अध्ययन में ऐथेलेटिक्स खिलाड़ियों के अवधान पर अष्टांग योग, हठ योग एवं विन्यास योग का अध्ययन किया गया। अध्ययन के लिए न्यायदर्श हेतु 30 ऐथेलेटिक्स खिलाड़ियों का चयन किया गया। ऐथेलेटिक्स खिलाड़ियों को 90 दिवस तक अष्टांग योग, हठ योग एवं विन्यास योग का अभ्यास कराया गया। ऐथेलेटिक्स खिलाड़ियों के अवधान के अध्ययन हेतु स्वनिर्मित उपकरण का प्रयोग किया गया। अध्ययन में ऐथेलेटिक्स खिलाड़ियों के अवधान पर योग अभ्यास के पूर्व एवं पश्च परीक्षण का तुलनात्मक अध्ययन किया गया।

प्रस्तावना

अस्वस्थ शरीर एवं क्षमता वाले व्यक्ति को अनेक अधिव्याधियों ने घेर लिया है। अतः आज आवश्यकता है कि उचित दिशा-निर्देश देने, अंधकार में भटकने से बचाने की। यह सम्भव है कि शरीर की क्रियात्मकता से और क्रियाशीलता को बनाये रखने के लिए योग शिक्षा की आवश्यकता को नकारा नहीं जा सकता है।

शिक्षा का मुख्य उद्देश्य किशोरों के सर्वांगीण विकास करना है। योग भी शिक्षा का एक अभिन्न अंग है। योग में छात्रों की शारीरिक क्षमता एवं मानसिक विकास सम्पूर्ण एवं सही दिशा में होता है। शारीरिक क्षमता एवं मानसिक स्वास्थ्य एक-दूसरे के पूरक है। शारीरिक रूप से स्वास्थ्य किशोर ही मानसिक रूप से स्वस्थ हो सकता है।

योग शारीरिक क्षमता एवं मानसिक स्वास्थ्य का सबसे उत्तम साधन है। योग से शरीर आन्दोलित हो जाता है। इससे शरीर में तथा अवयवों में गति आती है तथा शरीर के तन्त्र, तंत्रिका तथा मांसपेशिया सबल होती है। शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य को सुदृढ़ बनाने, मनोबल एवं आत्मविश्वास बढ़ाने में योग की भूमिका रहती है।

आज प्रतिस्पर्धा की अधिकता के कारण किशोरों का शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य निखर गया है।

योग से किशोरों की मस्तिष्क में एवं शरीर में एक समुचित ऊर्जा का विकास किया जा सकता है। योग से किशोरों के तनाव को दूर किया जा सकता है। योग से किशोरों में सहनशीलता, विनम्रता, संयोगिता से अनुशासित जीवन का निर्माण होता है।

किशोरों में आज मीडिया व टेलीविजन के कारण पुनः योग के प्रति रुझान बढ़ा है।

भारत में योग की परम्परा हजारों वर्षों से चली आ रही है। यह न केवल शारीरिक स्वास्थ्य को सुदृढ़ करने का माध्यम है बल्कि मानसिक एकाग्रता और भावनात्मक सतुलन में भी सहायक है। वर्तमान समय में विद्यार्थियों विशेषकर और भी बढ़ जाती क्योंकि उनके लिए शारीरिक क्षमता और मानसिक सतर्कता दोनों आवश्यक हैं। आदिवासी क्षेत्रों में संसाधनों की कमी एवं प्रतिस्पर्धात्मक वातावरण की अनुपस्थिति के कारण वहाँ के छात्र अपेक्षाकृत कमजोर स्थिति में होते हैं। ऐसे में योग एक सशक्त माध्यम बन सकता है। जो उनके शारीरिक स्वास्थ्य और मानसिक ध्यान को सकारात्मक रूप से प्रभावित कर सकता है। ऐथेलेटिक्स खेलों में भाग लेने वाली खिलाड़ियों को उत्कृष्ट शारीरिक फिटनेस के साथ-साथ तीव्र मानसिक सजगता और ध्यान केंद्रण की आवश्यकता होती है। हालांकि भारत के आदिवासी क्षेत्रों में खिलाड़ियों को उचित प्रशिक्षण, संसाधनों और मानसिक विकास के अवसरों की कमी का सामना करना पड़ता है ऐसे में योगाभ्यास न केवल उनके शारीरिक स्वास्थ्य को सुधारने में सहायक हो सकता है। बल्कि उनकी मानसिक क्षमता विशेषकर ध्यान (Attention) को भी सुदृढ़ कर सकता है।

योग के नियमित अभ्यास से शरीर की कार्यक्षमता, सहनशक्ति लचीलापन और मन की एकाग्रता में वृद्धि होती है।

भारत सरकार ने भी नई शिक्षा नीति 2020 में योग को शिक्षा का अनिवार्य हिस्सा बनाने की सिफारिश की है। इसका उद्देश्य विद्यार्थियों को शारीरिक, मानसिक और सामाजिक रूप से संतुलित बनाना है।

आदिवासी समुदायों में आज भी पारंपरिक जीवन शैली विद्यमान है। जो उन्हें एक विशेष सांस्कृतिक पहचान प्रदान करती है परन्तु आधुनिक समाज की चुनौतियाँ जैसी शैक्षणिक प्रतिस्पर्धा, खेलों में प्रदर्शन की अपेक्षा और मानसिक तनाव उन्हें भी प्रभावित कर रही है। ऐसे में योग जैसे समन्वित अभ्यास इन युवाओं के जीवन में संतुलन लाने में सहायक हो सकते हैं।

योग में प्रयुक्त आसन, प्राणायाम और ध्यान की क्रियाएं न केवल शारीरिक स्वास्थ्य में सुधार लाती हैं। बल्कि आत्म-अनुशासन, मानसिक शांति और तनाव प्रबंधन जैसे गुणों का भी विकास करती हैं। ऐथेलेटिक्स खिलाड़ियों के लिए योग अभ्यास अत्यंत उपयोगी हो सकता है। विशेषकर प्रतियोगिताओं के दौरान मानसिक दबाव को नियंत्रित करने एवं खेल में सफलता हासिल करने के लिए।

संबंधित शोध साहित्य के अध्ययन के फलस्वरूप पाया गया कि भारत में ऐथेलेटिक्स खेल संबंधी शोधकार्य बहुत कम है। शोधार्थी स्वयं एक ऐथेलेटिक्स खिलाड़ी है व ऐथेलेटिक्स खेल में संबंध रखता हुए स्वयं राजकीय विद्यालय में ऐथेलेटिक्स शारीरिक शिक्षक है। इसलिए स्वयं की जिज्ञासा को शान्त करने के विचार से प्रस्तुत शोध विषय का चयन किया गया।

समस्या कथन

ऐथेलेटिक्स खिलाड़ियों के अवधान पर योग के पूर्व एवं पश्च परीक्षणों का तुलनात्मक अध्ययन है।

शोध उद्देश्य

1. ऐथेलेटिक्स खिलाड़ियों की शारीरिक क्षमता का पूर्व परीक्षण के दत्तों का विश्लेषण करना।
2. ऐथेलेटिक्स खिलाड़ियों की शारीरिक क्षमता पर योग के प्रभाव का पश्च परीक्षण के दत्तों का विश्लेषण करना।
3. ऐथेलेटिक्स खिलाड़ियों की शारीरिक क्षमता के पूर्व एवं पश्च परीक्षण के दत्तों का तुलनात्मक विश्लेषण करना।

शोध परिकल्पना

1. ऐथेलेटिक्स खिलाड़ियों के अवधान पर योग के प्रभाव के पूर्व एवं पश्च परीक्षणों में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

अध्ययन का परीसीमन

1. प्रस्तुत शोध ऐथेलेटिक्स खिलाड़ियों तक सीमित रखा गया।
2. प्रस्तुत शोध 30 ऐथेलेटिक्स खिलाड़ियों तक सीमित रखा गया।

पारिभाषिक शब्दावली:

1. ऐथेलेटिक्स खिलाड़ी
2. अष्टांग योग
3. हठ योग
4. विन्यास योग
5. अवधान

न्यादर्श:

प्रस्तुत शोध में न्यायदर्श चयन हेतु उच्च माध्यमिक स्तर के 30 ऐथेलेटिक्स 30 खिलाड़ियों का चयन किया गया।

उपकरण

प्रस्तुत शोध में ऐथेलेटिक्स खिलाड़ियों के अवधान पर योग के प्रभाव के पूर्व एवं पश्च परीक्षण के आकड़ों को प्राप्त करने हेतु स्वनिर्मित उपकरण का प्रयोग किया गया।

सांख्यिकी:

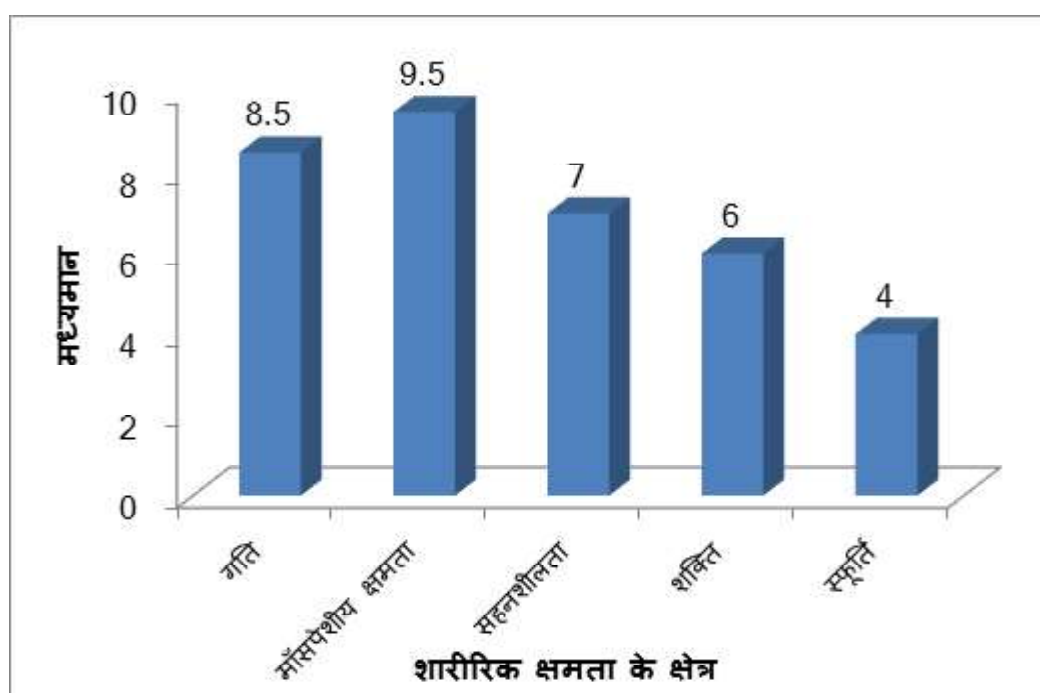
प्रस्तुत शोध में ऐथेलेटिक्स खिलाड़ियों के अवधान का योग अभ्यास के पूर्व एवं पश्च परीक्षण का अध्ययन के लिए मध्यमान एवं मानक विचलन का प्रयोग किया गया।

दत्तो का विश्लेषण एवं व्याख्या:

सारणी 1: ऐथेलेटिक्स खिलाड़ियों की शारीरिक क्षमता का पूर्व परीक्षण के दत्तो का सांख्यिकीय विश्लेषण

क्र.सं.	शारीरिक क्षमता के क्षेत्र	मध्यमान	वरीयता क्रम
1	गति	8.50	II
2	माँसपेशीय क्षमता	9.50	I
3	सहनशीलता	7.00	III
4	शक्ति	6.00	IV
5	स्फूर्ति	4.00	V

आरेख 1: ऐथेलेटिक्स खिलाड़ियों की शारीरिक क्षमता का पूर्व परीक्षण के दत्तो का सांख्यिकीय विश्लेषण



क्षेत्रवार विश्लेषण

उपरोक्त सारणी के आँकड़ों का अवलोकन से निम्नलिखित परिणाम परिलक्षित होते हैं।

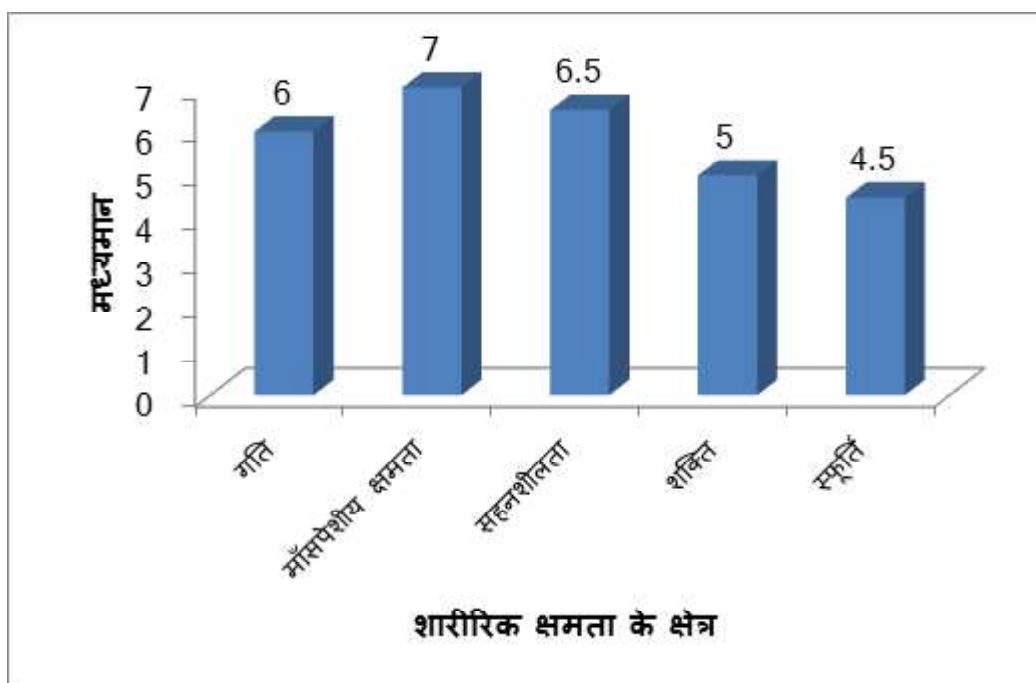
1. गति- ऐथेलेटिक्स खिलाड़ियों की शारीरिक क्षमता के अध्ययन हेतु आपहंर यूथ शारीरिक क्षमता परीक्षण का प्रयोग करते हुए शारीरिक क्षमता के क्षेत्र गति पर ऐथेलेटिक्स खिलाड़ियों के प्राप्त प्राप्तांको का मध्यमान 8.50 प्राप्त हुआ जो कि वरीयता क्रम के अनुसार द्वितीय स्थान पर है। अतः ऐथेलेटिक्स खिलाड़ियों की माँसपेशीय क्षमता की तुलना में उनकी गति कम पायी गयी।
2. माँसपेशीय क्षमता- ऐथेलेटिक्स खिलाड़ियों की शारीरिक क्षमता के अध्ययन हेतु आपहंर यूथ शारीरिक क्षमता परीक्षण का प्रयोग करते हुए शारीरिक क्षमता के क्षेत्र माँसपेशीय क्षमता पर ऐथेलेटिक्स खिलाड़ियों की माँसपेशीय की तुलना में उनकी सहनशीलता कम पायी गयी।
3. सहनशीलता- ऐथेलेटिक्स खिलाड़ियों की शारीरिक क्षमता के अध्ययन हेतु आपहंर यूथ शारीरिक क्षमता परीक्षण का प्रयोग करते हुए शारीरिक क्षमता के क्षेत्र सहनशीलता पर ऐथेलेटिक्स खिलाड़ियों के प्राप्त प्राप्तांको का मध्यमान 7.00 प्राप्त हुआ जो कि वरीयता क्रम के अनुसार तृतीय स्थान पर है। अतः ऐथेलेटिक्स खिलाड़ियों की माँसपेशीय की तुलना में उनकी सहनशीलता कम पायी गयी।
4. शक्ति- ऐथेलेटिक्स खिलाड़ियों की शारीरिक क्षमता का अध्ययन हेतु आपहंर यूथ शारीरिक क्षमता परीक्षण का प्रयोग करते हुए शारीरिक क्षमता के क्षेत्र शक्ति पर ऐथेलेटिक्स खिलाड़ियों के प्राप्त प्राप्तांको का मध्यमान 6.00 प्राप्त हुआ। जो कि वरीयता क्रम के अनुसार चतुर्थ स्थान पर है। अतः ऐथेलेटिक्स खिलाड़ियों की माँसपेशीय की तुलना में उनकी शक्ति कम पायी गयी।

5. स्फूर्ति- ऐथेलेटिक्स खिलाड़ियों की शारीरिक क्षमता का अध्ययन हेतु आपहेंर यूथ शारीरिक क्षमता परीक्षण का प्रयोग करते हुए शारीरिक क्षमता के क्षेत्र स्फूर्ति पर ऐथेलेटिक्स खिलाड़ियों के प्राप्त प्राप्तांको का मध्यमान 4.00 प्राप्त हुआ। जो की वरीयता क्रम के अनुसार पाँचवे स्थान पर है। अतः ऐथेलेटिक्स खिलाड़ियों की माँसपेशीय क्षमता की तुलना में उनकी स्फूर्ति कम पायी गयी।

सारणी 2: ऐथेलेटिक्स छात्रा खिलाड़ियों की शारीरिक क्षमता के पञ्च परीक्षण दत्तों का सांख्यिकी विश्लेषण

क्र.सं.	शारीरिक क्षमता के क्षेत्र	मध्यमान	वरीयता क्रम
1	गति	6	II
2	माँसपेशीय क्षमता	7	I
3	सहनशीलता	6.5	III
4	शक्ति	5.0	IV
5	स्फूर्ति	4.5	V

आरेख 2: ऐथेलेटिक्स छात्रा खिलाड़ियों की शारीरिक क्षमता के पूर्व दत्तों का सांख्यिकी विश्लेषण



क्षेत्रवार विश्लेषण

- माँसपेशीय क्षमता (Muscular Strength): ऐथेलेटिक्स खिलाड़ियों की शारीरिक क्षमता के विभिन्न पहलुओं में माँसपेशीय क्षमता का मध्यमान 7.0 प्राप्त हुआ, जो वरीयता क्रम में प्रथम स्थान पर है। इससे यह स्पष्ट होता है कि इन खिलाड़ियों की माँसपेशियाँ अपेक्षाकृत अधिक सशक्त हैं, जो उनके शारीरिक प्रदर्शन का मूल आधार है।
- गति (Speed): गति का मध्यमान 6.0 प्राप्त हुआ है, जो द्वितीय स्थान पर है। इसका अर्थ है कि खिलाड़ियों की रनिंग या स्प्रींट क्षमता अच्छी है, किंतु माँसपेशीय शक्ति की तुलना में थोड़ी कम है। अतः गति सुधार हेतु लक्षित अभ्यास की आवश्यकता है।
- सहनशीलता (Endurance): सहनशीलता क्षेत्र में 6.5 का मध्यमान दर्ज किया गया, जो तृतीय स्थान पर आता है। यह दर्शाता है कि खिलाड़ी लंबी अवधि तक शारीरिक प्रयास कर सकते हैं, किंतु यह क्षेत्र गति व माँसपेशीय शक्ति से थोड़ा पीछे है। निरंतर अभ्यास से इसमें वृद्धि की संभावनाएँ हैं।
- शक्ति (Power): शक्ति का मध्यमान 5.0 रहा, जो चतुर्थ स्थान पर है। यह संकेत करता है कि विस्फोटक ऊर्जा (explosive power) या बल के मामले में खिलाड़ी अपेक्षाकृत कमजोर हैं। उच्च तीव्रता वाले प्रशिक्षण की आवश्यकता है ताकि शक्ति बढ़ाई जा सके।

5. स्फूर्ति (Agility): स्फूर्ति क्षेत्र में खिलाड़ियों का मध्यमान 4.5 पाया गया, जो सबसे अंतिम (पाँचवाँ स्थान) पर आता है। इसका अर्थ है कि खिलाड़ियों की त्वरित प्रतिक्रिया, दिशात्मक बदलाव, और गतिशीलता में कमजोरी है। इसे सुधारने के लिए विशेष शैगिलिटी ट्रेनिंग आवश्यक है।

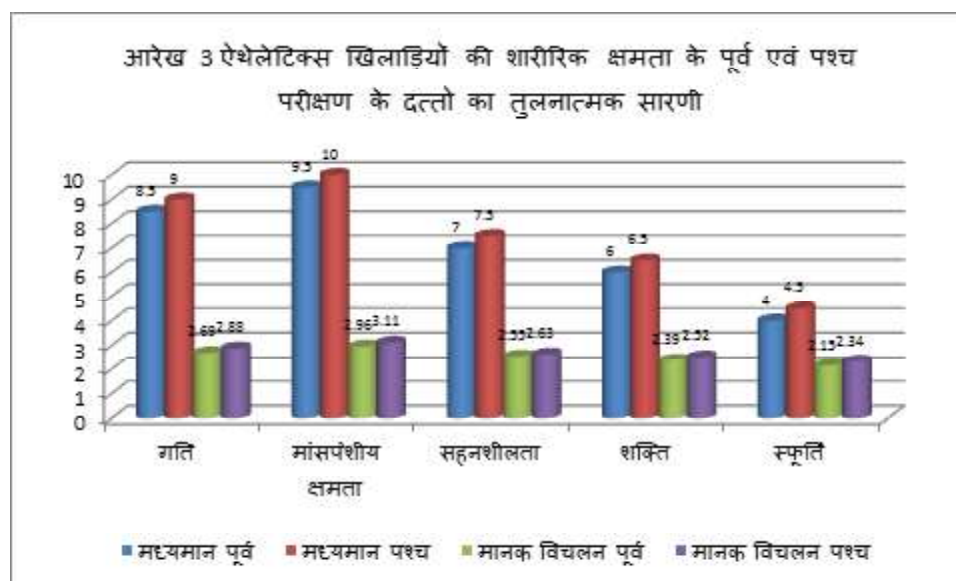
ऐथेलेटिक्स खिलाड़ियों की शारीरिक क्षमता के पूर्व एवं पश्च परीक्षण के दत्तो का तुलनात्मक विश्लेषण

सारणी 3: ऐथेलेटिक्स खिलाड़ियों की शारीरिक क्षमता के पूर्व एवं पश्च परीक्षण के दत्तो का तुलनात्मक सारणी

क्र. सं.	मांसपेशीय क्षमता	मध्यमान		मानक विचलन		t मान	सार्थकता
		पूर्व	पश्च	पूर्व	पश्च		
1	गति	8.50	9.00	2.69	2.88	2.99	0.01 स्तर पर सार्थक
2	मांसपेशीय क्षमता	9.50	10.00	2.96	3.11	3.25	0.01 स्तर पर सार्थक
3	सहनशीलता	7.00	7.50	2.55	2.63	2.81	0.01 स्तर पर सार्थक
4	शक्ति	6.00	6.50	2.39	2.52	2.72	0.01 स्तर पर सार्थक
5	स्फूर्ति	4.00	4.5	2.15	2.34	2.69	0.01 स्तर पर सार्थक

स्वतंत्रता के अंश (df) 58 के सारणीमान 0.05 स्तर पर सारणीमान = 2.00

0.01 स्तर पर सारणीमान = 2.66



उपरोक्त सारणी से निम्नांकित परिणाम परिलक्षित होते हैं।

- गति - ऐथेलेटिक्स खिलाड़ियों की शारीरिक क्षमता के तुलनात्मक अध्ययन हेतु आपहेंर यूथ शारीरिक क्षमता परीक्षण का प्रयोग किया गया। शारीरिक क्षमता के क्षेत्र गति पर पूर्व व पश्च प्राप्त प्राप्तांको के मध्यमान व मानक विचलन क्रमशः 8.50, 9.00 एवं 2.69, 2.88 प्राप्त हुए। पूर्व व पश्च मध्यमानों के मध्य अन्तर की सार्थकता ज्ञात करने के लिए टी-मान ज्ञात किया गया। इस समूह का टी-मान 2.99 प्राप्त हुआ जो स्वतंत्रता के अंश की (58) के 0.01 स्तर पर सारणीमान 2.66 से अधिक पाया गया। पूर्व व पश्च परीक्षण के मध्य सार्थक अन्तर पाया गया।

अतः निष्कर्ष निकलता है कि। ऐथेलेटिक्स खिलाड़ियों के शारीरिक क्षमता के क्षेत्र गति पर विन्यास योग एवं हठ योग का प्रभाव पड़ता है।

2. मांसपेशीय क्षमता- ऐथेलेटिक्स खिलाड़ियों की शारीरिक क्षमता के तुलनात्मक अध्ययन हेतु आपहेंर यूथ शारीरिक क्षमता परीक्षण का प्रयोग किया गया। शारीरिक क्षमता के क्षेत्र मांसपेशीय क्षमता पर पूर्व व परीक्षण प्राप्त प्राप्तांको के मध्यमान व मानक विचलन क्रमशः 9.50, 10.00 व 2.96, 3.11 प्राप्त हुए। पूर्व व पश्च मध्यमानों के मध्य अन्तर की सार्थकता ज्ञात करने के लिए टी-परीक्षण करने पर ज-मान 3.25 प्राप्त हुआ। जो कि स्वतंत्रता के अंश की (58) के 0.01 स्तर पर सारणीमान 2.66 से अधिक पाया गया। पूर्व व पश्च परीक्षण के मध्य सार्थक अन्तर पाया गया।
अतः निष्कर्ष निकलता है कि ऐथेलेटिक्स खिलाड़ियों के शारीरिक क्षमता के क्षेत्र मांसपेशीय क्षमता पर अष्टांग, हठ एवं विन्यास योग का प्रभाव पड़ता है।
3. सहनशीलता- ऐथेलेटिक्स खिलाड़ियों की शारीरिक क्षमता के तुलनात्मक अध्ययन हेतु आपहेंर यूथ शारीरिक क्षमता परीक्षण का प्रयोग किया गया। शारीरिक क्षमता के क्षेत्र सहनशीलता पर पूर्व व पश्च परीक्षण के प्राप्त प्राप्तांको के मध्यमान व मानक विचलन क्रमशः 7.00, 7.50 व 2.55, 2.63 प्राप्त हुए। पूर्व व पश्च मध्यमानों के मध्य अन्तर की सार्थकता ज्ञात करने के लिए टी परीक्षण करने पर टी-मान 2.81 प्राप्त हुआ। जो कि स्वतंत्रता के अंश df 58 के 0.01 स्तर पर सारणीमान 2.66 से अधिक पाया गया। पूर्व व पश्च परीक्षण में मध्यम सार्थक अन्तर पाया गया।
अतः निष्कर्ष निकलता है कि ऐथेलेटिक्स खिलाड़ियों के शारीरिक क्षमता के सहनशीलता पर अष्टांग योग के यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान व समाधि का प्रभाव पड़ता है।
4. शक्ति- ऐथेलेटिक्स खिलाड़ियों की शारीरिक क्षमता के तुलनात्मक अध्ययन हेतु आपहेंर यूथ शारीरिक क्षमता परीक्षण का प्रयोग किया गया। शारीरिक क्षमता के क्षेत्र शक्ति पर पूर्व व पश्च प्राप्त प्राप्तांको का मध्यमान व मानक विचलन क्रमशः 6.00, 6.50 व 2.39, 2.52 प्राप्त हुए। पूर्व व पश्च मध्यमानों के मध्य अन्तर की सार्थकता ज्ञात करने के लिए टी-मान ज्ञात किया गया। इस समूह का टी-मान 2.72 प्राप्त हुआ। जो स्वतंत्रता के अंश df (58) के 0.01 स्तर पर सारणीमान 2.66 से अधिक पाया गया। पूर्व व पश्च परीक्षण के मध्य सार्थक अन्तर पाया गया।
अतः निष्कर्ष निकलता है कि ऐथेलेटिक्स खिलाड़ियों के शारीरिक क्षमता के क्षेत्र शक्ति पर विन्यास योग का प्रभाव पड़ता है।
5. स्फूर्ति- ऐथेलेटिक्स खिलाड़ियों की शारीरिक क्षमता के तुलनात्मक अध्ययन हेतु आपहेंर यूथ शारीरिक क्षमता परीक्षण का प्रयोग किया गया। शारीरिक क्षमता के क्षेत्र स्फूर्ति पर पूर्व व पश्च प्राप्त प्राप्तांको का मध्यमान व मानक विचलन क्रमशः 4.00, 4.50 एवं 2.15, 2.34 प्राप्त हुआ। पूर्व व पश्च मध्यमानों के मध्य अन्तर की सार्थकता ज्ञात करने के लिए टी मान ज्ञात किया गया। इस समूह का टी-मान 2.69 प्राप्त हुआ। जो स्वतंत्रता के अंश की 58 के 0.01 स्तर पर सारणीमान 2.66 से अधिक पाया गया पूर्व व पश्च परीक्षण के मध्य अन्तर पाया गया।
अतः निष्कर्ष निकलता है कि ऐथेलेटिक्स खिलाड़ियों के शारीरिक क्षमता के क्षेत्र स्फूर्ति पर योग का प्रभाव पड़ता है।

संदर्भ सूची:

1. बुच, एम.बी. - शिक्षा में शोध का तृतीय निरीक्षण 1978-82, नई दिल्ली, एनसीआईआरटी (1983)
2. बुच, एम.बी.: शिक्षा में शोध का चतुर्थ निरीक्षण, 1983-88 नई दिल्ली, एनसीआईआरटी (1989)
3. बुच, एम.बी.: शिक्षा में शोध का पंचम निरीक्षण 1988-92, नई दिल्ली, एनसीआईआरटी (1993)
4. ढौडियाल, सच्चिदानन्द फाटक ए.: शैक्षिक अनुसंधान का विधि शास्त्रा, राजस्थान हिन्दी अकादमी
5. डॉ. कपिल, एच.के.: अनुसंधान विधियां (1994-95), कचहरी, घाट, आगरा
6. लाल, रगन बिहारी: शिक्षा सिद्धान्त, रस्तोगी पब्लिकेशन, शिवाजी रोड, मेरठ
7. मित्तल, एम.एल.: शिक्षा सिद्धान्त, लायल बुक डिपो, मेरठ (1993)
8. राय, पारसनाथ: अनुसंधान परिचय, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा (1993)
9. शर्मा, आर.ए.: शिक्षा अनुसंधान, आर. लाल बुक डिपो, मेरठ
10. सुखिया, एस.पी.ए, मेहरोत्रा, पी.वी., मेहरोत्रा, आर.एन.: शैक्षिक अनुसंधान के मूल तत्व विनोद पुस्तक मन्दिरा, आगरा (1990)
11. Clark, H. Harrison, Physical Fitness News Letters, 5 March, 1959.
12. Corbin, Charles B. and Lindsey, Ruth, Concept of Physical Fitness with Laboratories, Sixth Ed., Dubach, Ayova: W. M. C. Brown Publishers.
13. Gopal, Usha, Yoga and Health, New Delhi: Sports Publication, 2006.
14. Gujarat Vyayam Pracharak Mandal, Philosophy, Health and Fitness Science Kosh - 9, 1st Ed., Rajpipala: Gujarat Vyayam Pracharak Mandal, November, 2003.
15. Sarin, N., Yoga Education and Therapy by Yoga, Delhi: Sports Literature Center, Ashok Vihar. Shah, Chinubhai P., Vyayam Vigyan Kosh - 5, Rajpipala: Gujarat Vyayam Pracharak Mandal, September, 1982.
16. Swami Rajarshi Muni, Yogadarshika, 11th Ed., Vadodara: Gujarat Samachar, 2005.
17. Vyas, Sushilkumar, Yoga Education, New Delhi: Sports Literature Center, Dariya Ganj.

राष्ट्रीय आंदोलन में बिहार के सत्याग्रहियों की भूमिका: एक अध्ययन

डॉ० आलोक रंजन

दोनार चौक (हनुमान मंदिर के बगल में), लालबाग, दरभंगा, पिन कोड - 846004

राष्ट्रीय आन्दोलन में बिहार की भूमिका काफी प्रभावशाली रहा है। देश के अन्य प्रांतों की भांति बिहार में राष्ट्रीय आन्दोलन का उदय लगभग 1857 के बाद से शुरू हो गया था। जब राष्ट्रीय स्तर पर इसका प्रचार एवं प्रसार चल रहा था। इस तरह यह कहा जा सकता है कि ब्रिटिश गुलामी से मुक्ति प्राप्त करने के लिए जो राष्ट्रीय आन्दोलन प्रारंभ किया गया था उसमें बिहार की भूमिका अहम रही है। बिहार काफी समय से ब्रिटिश विरोधी आन्दोलनों का केन्द्र बिन्दू रहा है। बहावी आन्दोलन, जनजातिय विद्रोह, 1857 का संग्राम एवं कतिपय किसान आन्दोलनों ने बिहार के जनमानस पर एक गहरा प्रभाव छोड़ा, जिसके फलस्वरूप ही बिहार राष्ट्रीय आन्दोलन का केन्द्र बिन्दू बना रहा। बिहार का यह सौभाग्य रहा है कि महात्मा गांधी ने अपने सत्याग्रह का प्रथम प्रयोग बिहार की धरती चम्पारण से ही किया था और दरअसल चम्पारण सत्याग्रह के बाद से ही भारतीय राष्ट्रीय जागरण का इतिहास प्रारंभ होता है। इस प्रकार देश की आजादी प्राप्त होने तक बिहार की जनताओं ने राष्ट्रीय आन्दोलन के सभी चरणों में सक्रिय रूप से भाग लिया।

उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध में भारत में नवोदित मध्यम वर्ग ने आधुनिक राष्ट्रवाद के उदय का मार्ग प्रशस्त किया, किन्तु यह अभिजात्य वर्ग तक ही सीमित रहा। किन्तु गांधी जी ने सत्य-अहिंसा रूपी अपनी राजनीतिक औजार का कार्यशाला बिहार की धरती चम्पारण में स्थापित कर बिहार को स्वतंत्रता आन्दोलन की मुख्य धारा से आबद्ध किया क्योंकि इसने अपना स्वरूप जन राष्ट्रवाद के रूप में धारित किया। यद्यपि इससे पूर्व भी देश में कार्यरत राजनीतिक एवं संगठनात्मक संगठनों के आदर्शों एवं सिद्धांतों से बिहार के छात्र अनुप्राणित होते रहे जिसमें सर्वेन्ट्स ऑफ इण्डिया सोसाइटी, ब्याईज एसोसियेशन नामक तरुणों का संघ एवं राखी बन्धन दिवस की घटना आदि प्रमुख थे। साथ ही पाश्चात्य शिक्षा के प्रसार ने नये राजनीतिक विचारों के प्रसार में अपना योगदान दिया था, जिससे बिहार के राष्ट्रवादियों ने काफी प्रेरणा ग्रहण किए थे। यही कारण था कि 1886 ई० में काँग्रेस के कलकत्ता अधिवेशन में बिहार के प्रतिनिधियों ने बद्ध-चढ़कर भाग लिया था।

दरभंगा के महाराजा लक्ष्मेश्वर सिंह ने भी आर्थिक सहयोग प्रदान कर काँग्रेस जैसे संगठन को मजबूती प्रदान किया था। 'मुजफ्फरपुर बम कांड' में खुदीराम बोस की शहादत और इस षड्यंत्र के सुराग पकड़े जाने पर मानिकतल्ला में 36 क्रांतिकारियों की गिरफ्तारी, इनको अलग-अलग कठोर सजाएं और गोली, फांसी, अरविंद घोष की फरारी और तिलक पर मुकदमा चलाकर उन्हें छः साल के लिए राजनैतिक मंच से हटा देने की घटनाएं इसी काल में संबंधित है। पर तिलक की गिरफ्तारी एवं लंबी अवधि के लिए उन्हें जेल भेज दिए जाने पर भी शांति नहीं हुई, बल्कि उपरोक्त दमनात्मक कार्रवाइयों, क्रूर सजाओं एवं तिलक की गिरफ्तारी ने अशांति को और गहरा ही किया। सारे देश में क्रोध एवं क्षोभ की लहर दौड़ गयी। बंबई में एक सप्ताह तक अराजकता फैली रही। अधिकांश मिल-मजदूरों ने हड़ताल कर दी। शराब की दुकानें तोड़फोड़ डाली गयीं। सड़कों पर दिखाई देने वाले अंग्रेज पीटे जाने लगे। भीड़ पुलिस पर पथराव करती रही और पुलिस बराबर गोलियों से उसका जवाब देती रही। आतंकपूर्ण दमन से गरम दल का लगभग सफाया कर दिया गया था, लेकिन सरकार के लिए यह विजय महंगी पड़ी। अब लोग संवैधानिक आंदोलन की अपेक्षा बमबाजी में विश्वास करने लगे थे और बहुत सी गुप्त क्रांतिकारी समितियां गठित हो गयी थीं। जब खतरनाक करार दे दिए गए संगठनों पर सख्ती करने से भी दमन असरकारी नहीं हुआ, तो वाइसराय ने भारत-मंत्री को सुझाया, शासन-सुधारों की किश्त देने का समय आ गया है। पर पहले दवा पिलाइये, फिर उसकी कड़वाहट दूर करने का प्रयत्न करिए। फलस्वरूप 'क्रिमनल लॉ संशोधन बिल' लाकर पहले नौकरशाही को अधिक अधिकार दिया गया कि वह कुछ अपराधों में शीघ्रता से मुकदमा चलाने और सार्वजनिक शांति के लिए खतरनाक संगठनों पर प्रतिबन्ध लगाने के लिए सक्षम हो सके। और फिर शासन-सुधारों की घोषणा की गयी। यह बिल पास होने के दो दिन बाद दस बंगाली क्रांतिकारियों को बिना मुकदमा चलाये निर्वासन-दंड दे दिया गया और उसके पांच दिन बाद योजनानुसार भारत मंत्री का शासनसुधार बिल पेश किया गया। यह 1909 का 'इण्डियन काउन्सिल एक्ट' था, जिसे 'मिन्टो-मार्ले सुधार' कहा जाता है।

आधुनिक भारत का इतिहास साक्षी है कि महात्मा गांधी द्वारा 1917 में भारत में सत्याग्रह का पहला प्रयोग बिहार के चम्पारण जिला में किया गया। 1916 में काँग्रेस के लखनऊ अधिवेशन में चम्पारण के राजकुमार शुक्ल, जो नील की खेती से स्वयं उत्पीड़ित थे, ने किसानों की स्थिति की ओर गांधी जी का ध्यान आकर्षित कराया तथा गांधी जी उनके अनुरोध पर चम्पारण आने की सहमति प्रदान किए। अप्रैल 1917 में महात्मा गांधी चम्पारण आये, वे गिरफ्तार कर लिए गये तथा उनपर मुकदमा भी चला। परन्तु गांधी के सत्याग्रह को मनमाने ढंग से कुचला जाना सरकार के लिए आसान नहीं था। तत्कालीन बिहार के उपराज्यपाल एडवर्ड ने गांधी जी को वार्ता हेतु आमंत्रित किया तथा एक कमिटी बनाई जिसने तीन कठिया व्यवस्था को समाप्त कर दिया, किसान पर लगान घटा दिया गया तथा उन्हें क्षतिपूर्ति भी दिया। चम्पारण में सत्याग्रह के प्रयोग में बिहार के राजेन्द्र प्रसाद, मजहरूल हक, आचार्य कृपलानी, रामचन्द्र शुक्ल, धरणीधर प्रसाद, ब्रज किशोर प्रसाद, रामनवमी प्रसाद जैसे अनेक बिहारी सत्याग्रहियों का दल गांधी जी के साथ था। रॉलेट कानून के विरुद्ध हुए आन्दोलन

बिहार में 1919 के फरवरी के अंतिम दिनों में प्रारंभ हुआ जिसमें छपरा, भागलपुर, मूंगेर आदि स्थानों पर अनेक सभाएँ हुई जिसमें हर वर्ग के लोग शामिल हुए। इन सभाओं में हड़ताल करने एवं विनम्रता एवं उपासना के दिन के रूप में मनाने का निर्णय लिया गया। इस सभा में डा० राजेन्द्र प्रसाद, मजहरूल हक, सैयद हसन इमाम जैसे लोगों ने भाग लिया। 16 अप्रैल को निले जुलूस में लाखों की संख्या में बिहार के लोगों ने हिस्सा लिया। 16 फरवरी 1919 को पटना में हसन इमाम की अध्यक्षता में एक सभा हुई जिसमें खलीफा के प्रति मित्र राष्ट्रों द्वारा उचित व्यवहार के लिए लोकमत बनाने की बात कही गई। इसी बीच सेव्रे की संधि द्वारा तुर्की पर अनेक कठोर शर्तें आरोपित करने की बातों ने भारतीय मुसलमानों को रोष बढ़ा दिया। गांधी जी ने समारोहों का बहिष्कार किया तथा पटना में भी शांति समारोहों का बहिष्कार किया गया।

दरभंगा जिला के राज मैदान में 3 मार्च, 1809 को एक सभा में बॉयज एसोसियेशन नामक एक तरुणों के संघ की स्थापना की गई। इस सभा की अध्यक्षता एक बैरिस्टर, अशफाक खाँ ने की थी। इसकी स्थापना इस इलाके में राजनीतिक जागरण के उन्मेष की दिशा में एक महत्वपूर्ण मोड़ की परिचायक थी। इसकी प्रेरणा पूर्व बंगाल के कुछ क्रान्तिकारियों ने दी थी। ये जबतक क्रान्तिवाद के संदेश का प्रचार करने वहाँ आया करते थे। बॉयज एसोसियेशन के संस्थापक श्री सूर्यदेव नारायण वर्मा थे, कमलेश्वरी चरण सिन्हा उसके संस्थापक सचिव एवं गोष्ठा बिहारी बनर्जी, दीनानाथ झा और जगदीश्वर प्रसाद झा सहकारी सचिव थे। कुछ वर्षों तक यह एसोसियेशन दरभंगा जिला में राजनीतिक गतिविधि का केन्द्र बना रहा। यह 1920 तक काम करता रहा। उन्हीं दिनों दरभंगा में एक महत्वपूर्ण घटना थी पहली जनवरी, 1901 को सरस्वती अकादमी की स्थापना। आर्थिक कठिनाइयों के कारण इस स्कूल के संस्थापक इसके लिए पक्का भवन बनवाने का प्रबंध नहीं कर सके। फलतः यह स्कूल एक फूस के मकान में काम करता रहा। किन्तु मकान के अभाव की पूर्ति उस समय आत्मत्यागी, सुयोग्य एवं विद्वान शिक्षकों के द्वारा की जाती थी। ये लोग देश प्रेम के महान आदर्शों से अनुप्रेरित थे तथा अपने छात्रों को भी उसकी प्रेरणा देते थे। कमलेश्वरी चरण सिन्हा इस स्कूल के प्राण थे। बिहार के एक अन्य उदीयमान देशभक्त ब्रजकिशोर प्रसाद उनके सुयोग्य सहकर्मी थे। ब्रजकिशोर बाबू इस स्कूल के अध्यक्ष के रूप में इसके उत्थान के हेतु उसकी अनेक तरह से सहायता की। हरनन्दन दास एवं रामनिहोरा सिंह उसके अन्य प्रमुख अधिकारियों में थे। जब भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के कलकत्ता अधिवेशन में असहयोग आन्दोलन का प्रस्ताव पारित हुआ तो इससे पूर्व ही बिहार में असहयोग का प्रस्ताव पारित हो चुका था और बिहार के राष्ट्रवादियों ने असहयोग प्रारंभ कर दिया था।

असहयोग आंदोलन के क्रम में मजहरूल हक, राजेन्द्र प्रसाद, ब्रज किशोर प्रसाद, मोहम्मद शफी आदि बिहार के नेताओं ने विधायिका के चुनाव में अपनी उम्मीदवारी वापस ले ली थी। कई अधिकारियों ने पद से त्याग-पत्र दे दिया तथा वकीलों ने अदालतों का बहिष्कार किया। बिहार के छात्रों को शिक्षा का वैकल्पिक साधन उपलब्ध कराने के लिए पटना-गया रोड पर एक राष्ट्रीय महाविद्यालय की स्थापना की गई जिसके प्राचार्य डा० राजेन्द्र प्रसाद को बनाया गया। मजहरूल हक ने पटना के दीघा के पास सदाकत आश्रम का निर्माण किया जो बिहार में राष्ट्रीय आंदोलन का मुख्य केन्द्र बन गया। मजहरूल हक ने सदाकत आश्रम से 'दी मदरलैण्ड' नामक अखबार निकालना शुरू किया जिसका उद्देश्य राष्ट्रीय भावना का प्रसार, असहयोग कार्यक्रम का प्रचार तथा हिन्दू-मुस्लिम एकता का उपदेश देना था। यद्यपि बिहार के चौरा-चौरी कांड के पश्चात् गांधी जी ने असहयोग आंदोलन को स्थगित कर दिया तथा खिलाफत का भी अन्त हो गया, परन्तु इन दोनों आंदोलनों ने बिहार में राजनीतिक चेतना जगाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। बिहार राष्ट्रीय आंदोलन की मुख्य धारा से पूरी तरह जुड़ गया। मुजफ्फरपुर, शाहाबाद, आरा, राँची, मूंगेर, दरभंगा, पूर्णिया आदि जगहों पर इसका प्रभाव देखा गया तथा पटना इसका मुख्य केन्द्र बना रहा।

ब्रिटिश सरकार से असहयोग के क्रम में पटना के फुलवारी में मौलाना सज्जाद द्वारा इमारत शरिया की संस्था का गठन किया गया जिसका कार्यक्षेत्र बिहार एवं उड़ीसा था। महात्मा गांधी की दूसरी बिहार यात्रा 11 जनवरी 1927 ई० से शुरू हुई। इस क्रम में महात्मा गांधी चरखा और खदर के लिए धन संग्रह एवं खादी बेचने आए थे। महादेव देसाई ने गांधी जी की इस यात्रा के अवसर पर दरभंगा जिला के संदर्भ में आधुनिक तीर्थ स्थान के रूप में स्वीकारा था। अखिल भारतीय चरखा संघ की स्थापना एवं बिहार में उसकी एक शाखा खोले जाने से खादी का काम नये सिरे से प्रारंभ हुआ। गांधी जी के इस रचनात्मक कार्य में बिहार के आचार्य कृपलानी, राम विनोद सिंह एवं राजेन्द्र प्रसाद की भूमिका सराहनीय रहा। भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का प्रथम चरण गांधी जी के नेतृत्व में नमक सत्याग्रह के रूप में शुरू हुआ। बिहार में नमक सत्याग्रह 6 अप्रैल 1930 को निर्धारित की गई। बिहार में नमक सत्याग्रह चम्पारण और सारण जिला से प्रारंभ किया गया। गांधी जी के अपील पर बिहार में अनेक महिलाएँ पर्दा से बाहर आईं। नमक सत्याग्रह का पहला जत्था करीब विपिन बिहारी वर्मा के अध्यक्षता में बेंतिया पहुँचा जिसमें करीब 3 हजार 8 सौ स्वयंसेवक कार्यरत थे। पुलिस ने विभिन्न थाने के नेताओं को एक ही दिन गिरफ्तार कर लिया। पटना में अम्बिका कांत के नेतृत्व में, दरभंगा में श्री सत्य नारायण सिंह के नेतृत्व में स्वयंसेवकों का पहला जत्था दरभंगा नगर से रवाना हुआ। मूंगेर जिला से बाबू श्रीकृष्ण सिंह के नेतृत्व में नमक कानून भंग करने के लिए रवाना हुई थी। इसके अतिरिक्त मानभूमि, देवघर, भागलपुर, संधाल परगना में भी नमक सत्याग्रह का कार्यक्रम चलाया गया। इस प्रकार बिहार में जून 1930 ई० के अन्त तक नमक कानून भंग करने का कार्यक्रम चला।

नमक सत्याग्रह में बिहार के महिलाओं में श्रीमती हसन इमाम, श्रीमती विध्यवासिनी देवी एवं श्रीमती कमला कामिनी देवी ने बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया। 1930 में ही पटना में अखिल भारतीय महिला सम्मेलन का एक अधिवेशन हुआ जिसमें गिरीडीह अनुमंडल की एक महिला कार्यकर्ता श्रीमती मीरा देवी को पुलिस गिरफ्तार कर जेल भेज दिया जो बिहार में गिरफ्तार होनेवाली तिसरी महिला थी। भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन में बिहार की सहभागिता तब स्पष्ट रूप से परिलक्षित हो रहा था जब गांधी जी 8 अगस्त 1942 ई० को भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के समक्ष भारत छोड़ो आंदोलन का अपना ऐतिहासिक प्रस्ताव रखा। गांधी जी के इस प्रस्ताव के नारे से सारा भारत गूँज उठा और गांधी जी के नेतृत्व में स्वतंत्रता प्रेमियों, राष्ट्रवादियों, नौजवानों एवं छात्रों ने इस आंदोलन में अपने को झोंक दिया। भारत छोड़ो आंदोलन में बिहार के छात्रों एवं तरुणों ने खुलकर हिस्सा लिया। पटना सचिवालय गोली कांड के 11 अगस्त की घटना बिहार में स्वतंत्रता आंदोलन के इतिहास के लिए सदा स्मरणीय रहेगा। बिहार के सात सपूतों ने पटना सचिवालय भवन पर राष्ट्रीय झंडा फहराने के क्रम में गोली लगने से वीरगति को प्राप्त हुए थे। बिहार के छात्रों की इस सहादत ने पूरे प्रांत में आजादी की लड़ाई में एक नयी जान ला दी। बिहार के विभिन्न जिलों में गांधीवादी सत्याग्रहियों द्वारा आंदोलन चलाया गया, रेल की पटरियाँ उखाड़ी गईं, डाकघर एवं थाने जलाए गए, सरकारी कार्यों में व्यवधान डाला गया।

जिसके फलस्वरूप ही 15 अगस्त 1947 को स्वतंत्रता तक पहुँचाने में काफी मददगार सिद्ध हुई। इस प्रकार यह कहना सर्वथा उपयुक्त होगा कि स्वतंत्रता आंदोलन में बिहार के गांधीवादी सत्याग्रहियों की भूमिका काफी सराहनीय एवं उल्लेखनीय रही।

संदर्भ सूची:-

1. महात्मा गांधी, आत्मकथा, पृ० 494
2. जी० डी० तेंदुलकर, जब गांधी जी चम्पारण आए, पटना, 1976, पं० 33
3. राजेन्द्र प्रसाद, (1965) चम्पारण में महात्मा गाँधी, पटना: बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पृ० 81
4. डा० आर.आर. दिवाकर: बिहार शुरू दी एजेज, सं. पृ० 19
5. विपिन चन्द्र, भारत का स्वतंत्रता संघर्ष, हिन्दी माध्यम, कार्यान्वयन निदेशालय, नई दिल्ली, पृ० 135
6. के० के० दल्ला, (1957) हिस्ट्री ऑफ द फ्रीडम मूवमेंट इन बिहार, तीन जिल्द, पटना, पृ० 307
7. नेहरू, जवाहर लाल (1981) विष्व इतिहास की झलक, नई दिल्ली, ऑक्सफर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, पृ० 16
8. आर० आर० दिवाकर, सत्याग्रह मीमांसा, पृ० 11
9. द सर्चलाइट - 24 अप्रैल 1930, बिहार प्रांतीय काँग्रेस कमिटी का रिपोर्ट।
10. सच्चिदानन्द सिन्हा, सम एमीनेन्ट बिहार कन्टेम्पोररीज, पृष्ठ 107।
11. ए सेलेक्शन फ्रॉम द स्पीचेज ऐंड राइटिंग्स ऑफ सच्चिदानन्द सिन्हा, पृष्ठ 495।

झारखंड की जनजातीय महिलाओं के प्रजनन स्वास्थ्य एवं स्वास्थ्य जागरूकता का अध्ययन

डॉ० विभा राय

सहायक प्राध्यापिका, गृह विज्ञान विभाग, महिला महाविद्यालय गोड्डा (झारखंड), सिदो कान्हू मूर्मू विश्वविद्यालय, दुमका (झारखंड)

सारांश

भारत में, प्रजनन आयु की महिलाओं का कुल जनसंख्या का 22.2% हिस्सा है। जनजातीय क्षेत्रों में मातृ स्वास्थ्य देखभाल के उपयोग में असमानता, सुरक्षित मासिक धर्म स्वास्थ्य की पहुँच की कमी, कुपोषण, और कम गर्भनिरोधक उपयोग जैसी समस्याएँ हैं। यह शोध झारखंड में जनजातीय प्रजनन आयु समूहों के बीच स्वास्थ्य देखभाल योजनाओं के उपयोग का अध्ययन करने का लक्ष्य रखेगा। निष्कर्षों के आधार पर एक स्वास्थ्य जागरूकता पुस्तिका विकसित की जाएगी और मान्यता प्राप्त की जाएगी। यह अध्ययन प्रभावी हस्तक्षेपों और नीतियों के निर्माण में योगदान कर सकता है जो जनजातीय समुदायों की विशिष्ट आवश्यकताओं को पूरा करते हैं, अंततः उनकी गुणवत्ता स्वास्थ्य सेवाओं तक पहुँच में सुधार करते हैं। प्रस्तावित शोध क्रमिक व्याख्यात्मक दृष्टिकोण का पालन करेगा, जिसे दो चरणों में किया जाएगा। पहले चरण में जनजातीय महिलाओं के बीच प्रजनन स्वास्थ्य देखभाल योजनाओं के ज्ञान, दृष्टिकोण, और प्रथाओं का आकलन किया जाएगा। हम विभिन्न हितधारकों के दृष्टिकोण से योजनाओं की उपलब्धता में सहायक तत्वों और चुनौतियों का भी पता लगाएंगे। दूसरे चरण में जनजातीय महिलाओं के लिए जागरूकता पुस्तिका का विकास और मान्यता प्राप्त की जाएगी। नमूना फ्रेम में किशोरियों (10-19 वर्ष) और प्रजनन आयु समूह की महिलाओं (15-49 वर्ष) को शामिल किया जाएगा, जो झारखंड के पूर्व सिंहभूम जिले की जनजातीय समुदायों से होंगी। गुणात्मक पहलुओं में अध्ययन प्रतिभागियों में ब्लॉक कार्यक्रम प्रबंधक, ब्लॉक प्रशिक्षक, मान्यता प्राप्त सामाजिक स्वास्थ्य कार्यकर्ता (आशा), सहायक नर्स मिडवाइफरी (एनएम), आंगनवाड़ी कार्यकर्ता (एडब्ल्यूडब्ल्यू), चिकित्सा अधिकारी, गांव के नेता, और जनजातीय महिलाएं शामिल होंगी। भारत के जनजातीय क्षेत्रों में स्वास्थ्य कवरेज योजनाओं के प्रति ज्ञान, दृष्टिकोण और प्रथाओं पर शोध स्वास्थ्य विषमताओं को संबोधित करने के लिए आवश्यक है। जागरूकता और समझ में सुधार, दृष्टिकोण संबंधी बाधाओं को पार करना, नीति विकास को सूचित करना, और स्वास्थ्य देखभाल में समानता और सामाजिक न्याय को बढ़ावा देना कुछ विषमताएँ हैं। यह अध्ययन प्रजनन आयु समूह की जनजातीय महिलाओं के स्वास्थ्य कवरेज योजनाओं के लिए ज्ञान, जागरूकता और दृष्टिकोण में वृद्धि करने में मदद करेगा।

कीवर्ड: स्वास्थ्य सेवा, आदिवासी महिलाएं, स्वास्थ्य अवसरचना, स्वास्थ्य स्थितियाँ

परिचय

महिलाओं का प्रजनन स्वास्थ्य भारत में एक महत्वपूर्ण मुद्दा है। प्रजनन आयु की महिलाएँ कुल जनसंख्या का 22.2% हैं। जनसंख्या की वृद्धि और विकास सुनिश्चित करने के लिए, देश को बहुत काम करना है। भारत में महिलाओं के स्वास्थ्य कवरेज कार्यक्रमों पर कई अध्ययन किए गए हैं ताकि समस्याओं को समझा जा सके। पिछले 20 वर्षों में, भारत ने आर्थिक विकास में वृद्धि का अनुभव किया है, लेकिन स्वास्थ्य और मानव विकास सूचकांकों के मामले में इसका प्रदर्शन खराब रहा है। स्वास्थ्य सेवा तक पहुँच और महत्वपूर्ण स्वास्थ्य असमानताएँ राज्यों के समुदायों में और भी खराब हो गई हैं और बनी हुई हैं। जनजातीय क्षेत्रों में, मातृ स्वास्थ्य देखभाल के उपयोग में असमानताएँ, सुरक्षित मासिक धर्म स्वास्थ्य की पहुँच की कमी, कुपोषण, और गर्भनिरोधक के उपयोग में कमी देखी जाती है।

झारखंड राज्य की मातृ मृत्यु दर (56 प्रति लाख जीवित जन्म) भारत (97 प्रति लाख जीवित जन्म) की तुलना में घटती हुई प्रवृत्ति दिखा रही है, जैसा कि नमूना पंजीकरण प्रणाली (SRS): 2018-20 के अनुसार है।¹ हालांकि, झारखंड में 'मातृ एवं बाल स्वास्थ्य सेवाओं' का उपयोग पिछड़ा रहा है। राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण (NFHS)-5 के आंकड़ों के अनुसार, भारत में कम से कम चार एंटीनेटल केयर (ANC) विजिट करने वाली माताओं का प्रतिशत 54.2 है, जबकि झारखंड में यह केवल 36.4% है। इसी तरह, ग्रामीण झारखंड में 92.3% पंजीकृत गर्भधारण हैं, लेकिन केवल 36.4% ने चार ANC विजिट की हैं, 13.2% माताएँ गर्भावस्था के दौरान 180 दिनों (लगभग छह महीने) तक आयरन फोलिक एसिड का सेवन कर रही थीं, और 66.7% माताओं को प्रसवोत्तर देखभाल प्राप्त हुई।² सुरक्षित मासिक धर्म स्वास्थ्य की पहुँच की कमी के संदर्भ में, पश्चिम सिंहभूम के ग्रामीण क्षेत्र में एक अध्ययन ने पाया कि 38% किशोरियाँ एनीमिक थीं, और 27% किशोरियाँ अपने मासिक धर्म के दौरान स्थानीय नैपकिन का उपयोग करती हैं। गर्भवती महिलाओं में एनीमिया (15-49 वर्ष) 59.2% है और किशोरियों (15-19 वर्ष) में यह 66.7% है, झारखंड NFHS 5 रिपोर्ट के अनुसार, यह भारतीय संदर्भ से थोड़ा अधिक है,

जिसमें क्रमशः 54.3% और 60.2% है।³ ग्रामीण महिलाओं में जिनका बॉडी मास इंडेक्स सामान्य से कम था, उनकी संख्या 29.2% पाई गई, जबकि भारत के समग्र संदर्भ में यह 21.2% है। झारखंड के ग्रामीण क्षेत्रों में पुरुष नसबंदी का प्रतिशत 0.2% है, इसके बाद महिला नसबंदी 0.4%, कंडोम का उपयोग 3.5%, और केवल 3.1% पर गोली का उपयोग है। स्वास्थ्य सेवा प्रदाताओं ने झारखंड के ग्रामीण क्षेत्रों में गैर-उपयोगकर्ता महिलाओं के साथ परिवार नियोजन पर चर्चा की। NFHS 5 रिपोर्ट से 29.5% की रिपोर्ट की गई।

साहित्यिक खोज पर भारत के जनजातीय समुदायों के बीच प्रजनन स्वास्थ्य सेवा में असमानताओं के संबंध में विभिन्न साक्ष्य रिपोर्ट किए गए। भारत में किए गए एक सर्वेक्षण के अनुसार, चयनित भारतीय राज्यों में “मातृ एवं बाल स्वास्थ्य सेवाओं” के उपयोग में महत्वपूर्ण जाति/जनजाति असमानताएँ पाई गई। इन सेवाओं के कम उपयोग के मुख्य कारण, विशेष रूप से हाशिए पर रहने वाले सामाजिक समूहों के सदस्यों के लिए, सीमित उपलब्धता और समग्र स्वास्थ्य देखभाल की अनुपस्थिति है।⁴ एक अन्य अध्ययन ने ग्रामीण भारत में मातृ स्वास्थ्य देखभाल में असमानता के स्तर का विश्लेषण किया, जिसमें पूर्ण एंटीनेटल देखभाल (पूर्ण एनएनसी), कुशल जन्म सहायक (एसबीए), और पोस्टनैटल देखभाल (पीएनसी) शामिल हैं।⁵ उत्तर प्रदेश में “गर्भवती और स्तनपान कराने वाली ग्रामीण महिलाओं के लिए प्रजनन स्वास्थ्य से संबंधित योजनाओं की पहुंच” पर एक गुणात्मक अध्ययन किया गया, जिसमें पाया गया कि अध्ययन ने महिलाओं के स्वास्थ्य देखभाल योजनाओं का उपयोग करने में अनुभव और बाधाओं पर ध्यान केंद्रित किया।⁶ एक और अध्ययन ‘मध्य प्रदेश’, ‘झारखंड’ और ‘छत्तीसगढ़’ के तीन भारतीय राज्यों में किया गया, जहाँ जनजातियाँ निवास करती हैं। वर्तमान अध्ययन का मुख्य उद्देश्य मातृ स्वास्थ्य सेवाओं के उपयोग को प्रभावित करने वाले कारकों का विश्लेषण करना था। अध्ययन में ‘राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण’ के डेटा का उपयोग किया गया। अध्ययन के निष्कर्षों के अनुसार, जांच के विषय में तीनों राज्यों में मातृ और बाल स्वास्थ्य सेवाओं के उपयोग में बड़े ‘सामाजिक-आर्थिक’ असमानताएँ थीं। ‘प्रतिगमन’ विश्लेषण के अनुसार, जनजातीय क्षेत्र में रहने वाले लोग अन्य जाति समूहों की तुलना में मातृ और बाल स्वास्थ्य देखभाल सुविधाओं और लाभों का उपयोग करने की संभावना कम रखते हैं।⁷ इसलिए, एक अध्ययन में कहा गया कि भारत के सबसे कमजोर और गरीब राज्यों में से एक झारखंड है। किशोर और युवा सार्वजनिक स्वास्थ्य मुद्दों जैसे लिंग और यौनिकता को प्राथमिकता देने वाले सामुदायिक आधारित कार्यक्रमों और अभियानों की कमी है।⁸

हालांकि, भारत में प्रजनन आयु वर्ग की महिलाओं के स्वास्थ्य में सुधार के लिए कुछ प्रमुख स्वास्थ्य कवरेज योजनाएँ चल रही हैं, जैसे कि जननी सुरक्षा योजना, जननी शिशु स्वास्थ्य कार्यक्रम, प्रधान मंत्री मातृ वंदना योजना, राष्ट्रीय किशोरी स्वास्थ्य कार्यक्रम, पोषण अभियान, और एनीमिया मुक्त भारत।

इसलिए, यह शोध झारखंड में जनजातीय प्रजनन आयु समूहों के बीच स्वास्थ्य देखभाल योजनाओं के उपयोग का अध्ययन करने का लक्ष्य रखेगा। निष्कर्षों के आधार पर, एक स्वास्थ्य जागरूकता पुस्तिका विकसित की जाएगी और मान्यता प्राप्त की जाएगी। हमारा अध्ययन प्रभावी हस्तक्षेपों और नीतियों के डिजाइन में योगदान कर सकता है जो जनजातीय समुदायों की विशिष्ट आवश्यकताओं को पूरा करते हैं, अंततः उनकी गुणवत्ता स्वास्थ्य सेवाओं तक पहुंच में सुधार करते हैं। भारत के जनजातीय क्षेत्रों में स्वास्थ्य कवरेज योजनाओं के प्रति ज्ञान, दृष्टिकोण और प्रथाओं पर शोध स्वास्थ्य विषमताओं को संबोधित करने के लिए आवश्यक है। जागरूकता और समझ में सुधार, दृष्टिकोण संबंधी बाधाओं को पार करना, नीति विकास को सूचित करना, और स्वास्थ्य देखभाल में समानता और सामाजिक न्याय को बढ़ावा देना कुछ विषमताएँ हैं। यह जनजातीय समुदायों की विशिष्ट आवश्यकताओं को पूरा करने वाले प्रभावी हस्तक्षेपों और नीतियों के डिजाइन में योगदान कर सकता है, अंततः उनकी गुणवत्ता स्वास्थ्य सेवाओं तक पहुंच में सुधार करता है।

यह शोध झारखंड में जनजातीय प्रजनन आयु समूहों के बीच स्वास्थ्य देखभाल योजनाओं के उपयोग का अध्ययन करने का लक्ष्य रखेगा। निष्कर्षों के आधार पर एक स्वास्थ्य जागरूकता पुस्तिका विकसित की जाएगी और मान्यता प्राप्त की जाएगी। हमारा अध्ययन प्रभावी हस्तक्षेपों और नीतियों के डिजाइन में योगदान कर सकता है जो जनजातीय समुदायों की विशिष्ट आवश्यकताओं को पूरा करते हैं, अंततः उनकी गुणवत्ता स्वास्थ्य सेवाओं तक पहुंच में सुधार करते हैं। इसलिए, यह अध्ययन प्रजनन आयु समूह की जनजातीय महिलाओं के स्वास्थ्य कवरेज योजनाओं के लिए ज्ञान, जागरूकता और दृष्टिकोण में वृद्धि करने में मदद करेगा, जो क्षेत्रीय भाषा में अधिक चित्रात्मक सामग्री के साथ प्रस्तुत किया जाएगा, जिसे आसानी से समझा जा सके।

विधियाँ/डिजाइन

हम “अनुक्रमिक व्याख्यात्मक डिजाइन” के अनुसंधान डिजाइन का पालन करेंगे। यह आदिवासी महिलाओं के लिए एक मान्यताप्राप्त स्वास्थ्य जागरूकता पुस्तिका के विकास के लिए साक्ष्य उत्पन्न करने की दिशा में ले जाएगा। यह अध्ययन प्रोटोकॉल एक पीएच.डी. परियोजना का हिस्सा है, और अध्ययन प्रोटोकॉल को 16 अगस्त 2023 को संस्थागत वैज्ञानिक समिति (ISC) से तैयार और अनुमोदित किया गया, इसके बाद संस्थान नैतिकता समिति (IEC) से IEC संख्या MTMC/IEC/2023/53 के साथ अनुमोदन प्राप्त हुआ और विश्वविद्यालय से भी। इस अध्ययन के लिए भर्ती अवधि की शुरुआत इस प्रकार है:

चरण 1 के तहत डेटा संग्रह, उद्देश्य 1 (मात्रात्मक भाग) 2 मार्च 2024 से शुरू हुआ और 2 सितंबर 2024 को समाप्त हुआ। इसके बाद, उद्देश्य 2 (गुणात्मक पहलू) और चरण 2 के तहत, उद्देश्य 3: आदिवासी महिलाओं के लिए स्वास्थ्य जागरूकता पुस्तिका का विकास और मान्यता 30 अक्टूबर 2026 तक पूरा करने की योजना है।

अध्ययन सेटिंग

यह अध्ययन प्रजनन आयु वर्ग (15-49 वर्ष) की जनजातीय महिलाओं और जनजातीय किशोरियों (10-19 वर्ष) के बीच किया जाएगा, जो सामुदायिक चिकित्सा विभाग के क्षेत्रीय अभ्यास क्षेत्र में निवास करती हैं। जनसंख्या विभिन्न जनजातीय समुदायों से संबंधित व्यक्तियों का समावेश करती है, जिसमें संथाल,

हो, मुंडा, भूमिज, खरिया और सबर जनजातियाँ शामिल हैं। क्षेत्र में बोली जाने वाली प्रमुख भाषाएँ संथाली, हो, मुंडारी, बांग्ला और हिंदी हैं, जो क्षेत्र की समृद्ध भाषाई विविधता को दर्शाती हैं। जनसंख्या की प्राथमिक आजीविका में कृषि, दैनिक मजदूरी और गृहस्थी शामिल हैं, जो जनजातीय समुदायों के सामाजिक-आर्थिक और सांस्कृतिक ताने-बाने से प्रभावित हैं। भौगोलिक रूप से, यह क्षेत्र पठार, समतल और वन्य क्षेत्र के मिश्रण द्वारा विशेषता प्राप्त करता है, जो जीवनशैली और स्वास्थ्य सेवाओं की पहुँच को आकार देता है।⁹

नमूना

पूर्व सिंहभूम झारखंड राज्य में स्थित एक जिला है। इसमें दो उप-विभाग हैं, दलभुम और घाटशिला। 11 ब्लॉकों में शामिल हैं, पोटका, गोलमुरी कुम जुगसलाई, पटमदा, घाटशिला, बोराम, मुसाबनी, डुमरिया, भारगोडा, दलभुमगढ़, चाकुलिया, और गुरबंदा। दो यादृच्छिक रूप से चयनित ब्लॉकों से कुल बारह गांव लिए जाएंगे। पहले उद्देश्य के लिए नमूना ढांचा किशोरियों और प्रजनन आयु वर्ग की महिलाओं की सूची से बनेगा। दूसरे उद्देश्य के गुणात्मक पहलू के लिए, नमूना ढांचे में अन्य हितधारक शामिल होंगे जैसे कि ब्लॉक कार्यक्रम प्रबंधक/अधिकारी, ब्लॉक प्रशिक्षक, मान्यता प्राप्त सामाजिक स्वास्थ्य कार्यकर्ता (आशा), सहायक नर्स मिडवाइफरी (एएनएम), आंगनवाड़ी कार्यकर्ता (एडब्ल्यूडब्ल्यू), चिकित्सा अधिकारी, गांव के मुखिया, और प्रजनन आयु वर्ग की जनजातीय महिलाएं। आंकड़ों का विश्लेषण उद्देश्य 1 और 3 (फीडबैक फॉर्म) के लिए, दो चर के बीच संबंध जानने के लिए वर्णात्मक डेटा विश्लेषण और ची-स्क्वायर परीक्षण होगा। जबकि, उद्देश्य 2 के लिए, गुणात्मक डेटा विषयगत विश्लेषण को ट्रांसक्रिप्ट से उत्पन्न कोड के आधार पर किया जाएगा। उद्देश्य 1 में अध्ययन डिजाइन क्रॉस-सेक्शनल अध्ययन होगा। जनसंख्या में शामिल होंगे किशोर लड़कियाँ (10-19 वर्ष) और प्रजनन आयु समूह (15-49 वर्ष) की जनजातीय महिलाएँ जो निम्नलिखित जनजातियों से संबंधित हैं: संथाल, हो, मुंडा, भूमिज, खरिया, और सबर। धर्म के अनुसार जैसे कि सरना धर्म, ईसाई धर्म, या हिंदू धर्म। अध्ययन में भाग लेने के लिए सहमति देने वाले अध्ययन प्रतिभागी। प्रवासी जनसंख्या और मानसिक बीमारी से पीड़ित जनजातीय महिलाओं को अध्ययन से बाहर रखा जाएगा।

नमूना आकार की गणना एक ऑनलाइन उपकरण calculator-net के माध्यम से की गई, जिसमें विश्वास स्तर (z) 95% पर रखा गया, और सीमांत त्रुटि (E) 5% पर, जनसंख्या अनुपात 50% और जनसंख्या आकार 258454।¹⁰ 20% की ड्रॉप आउट को ध्यान में रखते हुए, डिजाइन प्रभाव 1.5 के साथ, नमूना आकार $385 (385+337) = 722$ हो जाता है, जिसे 745 में गोल किया जाता है। उपयोग किया गया सूत्र: $n = (Z1 - a/2)^2 \cdot p(1-p)/d^2$ । जहाँ n=नमूना आकार, Z=विश्वास स्तर, E=सीमांत त्रुटि, P=जनसंख्या अनुपात।¹¹

सरल यादृच्छिक नमूना और स्तरित नमूना तकनीक का उपयोग किया जाएगा। दो ब्लॉकों में से, बारह गांवों का यादृच्छिक चयन किया जाएगा, प्रत्येक ब्लॉक से छह गांव। प्रत्येक गांव से दो स्तरों में विभाजित किया जाएगा, जनजातीय किशोर लड़कियाँ (n=32/गांव) और प्रजनन आयु समूह की जनजातीय महिलाएं (n=30 प्रति गांव)।

एक स्व-प्रशासित प्रश्नावली का उपयोग किया जाएगा, और यदि अध्ययन प्रतिभागी निरक्षर हैं, तो प्रश्नावली का फॉर्म साक्षात्कारकर्ता द्वारा भरा जाएगा या उस व्यक्ति द्वारा जो डेटा एकत्र करने जा रहा है, अध्ययन प्रतिभागी की ओर से। विकसित प्रश्नावली की मान्यता बाहरी विषय विशेषज्ञों के माध्यम से की जाएगी और सामग्री वैधता सूचकांक (CVI) स्कोर निकाला जाएगा। प्रश्नावली की विश्वसनीयता की जांच मुख्य अध्ययन के नमूना आकार से 10 प्रतिशत अध्ययन प्रतिभागियों के बीच पायलटिंग के माध्यम से की जाएगी और क्रोनीबैक का अल्फा स्कोर निकाला जाएगा। प्रश्नावली के डोमेन में दो अनुभाग शामिल होंगे, अनुभाग A- सामाजिक-जनसांख्यिकी विवरण और अनुभाग B- प्रारंभिक सर्वेक्षण जिसमें भारत के संबंधित आठ प्रजनन स्वास्थ्य देखभाल योजनाओं के प्रति जनजातीय महिलाओं के ज्ञान, दृष्टिकोण और प्रथाओं पर प्रश्न शामिल होंगे।

आठ प्रजनन स्वास्थ्य देखभाल योजनाओं के विवरण तालिका 1 में उल्लिखित हैं। भागीदारी सूचना पत्र (PIS) को समझाया जाएगा, और अध्ययन प्रतिभागियों से सूचित सहमति (IC) प्राप्त की जाएगी। डेटा प्रश्नावली के आधार पर एकत्र किया जाएगा। अध्ययन प्रतिभागियों को कुल 20-30 मिनट दिए जाएंगे और डेटा एकत्र करने के लिए प्रति गांव अधिकतम 10-15 दिन दिए जाएंगे। आवृत्ति, प्रतिशत, अनुपात के संदर्भ में मात्रात्मक डेटा विश्लेषण किया जाएगा और श्रेणीबद्ध डेटा के लिए ची-स्क्वायर परीक्षण किया जाएगा। KAP स्कोर की गणना की जाएगी और मध्यिका और अंतरक्वार्टाइल रेंज के आधार पर इसे अंततः निम्न, मध्यम और उच्च ज्ञात स्कोर के रूप में व्याख्यायित किया जाएगा। सभी मात्रात्मक विश्लेषण श्रंखला अप सॉफ्टवेयर (संस्करण 2.2.5) के माध्यम से किया जाएगा।

शोधकर्ता राज्य जनजातीय कल्याण आयुक्त, जिला सर्जन, उप आयुक्त और चिकित्सा अधिकारी (MOIC) से अनुमति प्राप्त करने के बाद निर्धारित सामुदायिक सेटिंग्स में जाएंगे। अध्ययन जनसंख्या के गहन साक्षात्कार के माध्यम से गुणात्मक डेटा एकत्र किया जाएगा, जिसमें भागीदारी सूचना पत्र (PIS) की व्याख्या की जाएगी और सहमति पत्रों पर हस्ताक्षर कराए जाएंगे। साक्षात्कार के लिए लगभग 20-30 मिनट का समय दिया जाएगा। विषयगत विश्लेषण एटलस टीआई सॉफ्टवेयर (संस्करण 8) के माध्यम से किया जाएगा।

चरण 2 विकास और मान्यता चरण होगा। जनजातीय महिलाओं के बीच सर्वेक्षण के परिणामों और सभी हितधारकों के गहन साक्षात्कार के आधार पर, किशोर और प्रजनन आयु वर्ग की जनजातीय महिलाओं के लिए लक्षित विभिन्न योजनाओं पर एक स्वास्थ्य जागरूकता पुस्तिका विकसित की जाएगी, जैसा कि तालिका 1 में उल्लेखित है। इस पुस्तिका में इस प्रकार की जानकारी शामिल होगी।

तालिका 1. भारत में प्रजनन आयु वर्ग की जनजातीय महिलाओं के लिए स्वास्थ्य योजनाएँ

किशोरियों के लिए योजनाएँ (10-19 वर्ष)	प्रजनन आयु वर्ग की महिलाओं के लिए योजनाएँ (15-49 वर्ष)
1. राष्ट्रीय किशोरी स्वास्थ्य कार्यक्रम	1. जननी सुरक्षा योजना
2. पोषण अभियान	2. जननी शिशु सुरक्षा कार्यक्रम
3. एनीमिया मुक्त भारत	3. प्रधान मंत्री मातृ वंदना योजना
	4. प्रधान मंत्री सुरक्षित मातृत्व अभियान
	5. एनएचएम के तहत परिवार नियोजन योजनाएँ जिनमें शामिल हैं:
	a. आशा योजना
	b. संवर्धित मुआवजा योजना
	एनीमिया मुक्त भारत

पुस्तिका की मान्यता एक विशेषज्ञों के समूह (6-10) की सहायता से और अध्ययन प्रतिभागियों के बीच पायलटिंग द्वारा की जाएगी। पुस्तिका की मान्यता के लिए सामग्री मान्यता उपकरणों का उपयोग किया जाएगा, जिसमें आइटम निर्माण (मौजूदा साहित्य, पूर्व के शोध, विशेषज्ञ ज्ञान के माध्यम से), विषय विशेषज्ञों, स्वास्थ्य पेशेवरों, चिकित्सा शिक्षा विशेषज्ञों और शोधकर्ताओं की सहायता से विशेषज्ञ पैनल समीक्षा शामिल होगी। आइटम का मूल्यांकन उनके निर्णय के आधार पर किया जाएगा, आइटम चयन और विशेषज्ञ टिप्पणियों के आधार पर परिष्करण और संशोधन द्वारा संशोधित किया जाएगा, और सामग्री मान्यता सूचकांक (CVI) की गणना की जाएगी। विकसित की गई पुस्तिका का पायलट अध्ययन जनसंख्या (प्रजनन आयु की जनजातीय महिलाएं और किशोर लड़कियाँ) में किया जाएगा। मुख्य नमूना आकार 745 में से लगभग 20% अध्ययन प्रतिभागियों को शामिल किया जाएगा। कुल 149, 150 तक गोल किया जाएगा, 12 गांवों में से प्रत्येक गांव से 12-13 प्रतिभागियों को लिया जाएगा। इसलिए, यहां उपयोग की गई नमूनाकरण विधि स्तरीकृत नमूनाकरण तकनीक और सरल यादृच्छिक नमूनाकरण होगी। किशोर लड़कियों और प्रजनन आयु की महिलाओं के लिए प्रशिक्षण सत्रों की एक श्रृंखला (प्रत्येक गांव में एक, प्रत्येक दो घंटे का सत्र) आयोजित की जाएगी। प्रशिक्षण सत्र इंटरैक्टिव सत्रों, नुक्कड़ नाटक (सड़क नाटक) के साथ स्थानीय भाषा में पुस्तिका के ऑडियो/विजुअल क्लिप के माध्यम से होंगे। सत्रों में सामग्री, उपयोग, चुनौतियों और पुस्तिका में उल्लिखित स्वास्थ्य देखभाल योजनाओं को संबोधित करने के तरीकों पर जानकारी दी जाएगी। प्रशिक्षण और जागरूकता सत्र मासिक नियमित टीकाकरण दिवस, साप्ताहिक सुबह ग्राम सभा और साप्ताहिक महिला मंडल बैठकों पर आयोजित किए जाएंगे।

प्रशिक्षण हिंदी और संथाली (आदिवासी) भाषा में प्रदान किया जाएगा, अन्य आदिवासी भाषाएँ जैसे हो और मुंडारी को अध्ययन प्रतिभागियों की आवश्यकता और मांग के अनुसार शामिल किया जा सकता है।

प्रतिभागियों की जागरूकता बुकलेट के प्रति प्रतिक्रिया का मूल्यांकन एक फीडबैक फॉर्म के माध्यम से प्रशिक्षण सत्रों के बाद किया जाएगा। प्रशिक्षण के बाद की प्रतिक्रिया में प्रशिक्षण सत्र, समय, गति, और प्रतिभागियों की संतोषजनकता से संबंधित प्रश्न शामिल होंगे। जबकि बुकलेट के लिए प्रतिक्रिया में सामग्री की उपयुक्तता, संतोष, सामग्री को समझने की क्षमता, और स्थानीय भाषा की प्रभावशीलता शामिल होगी। नीचे तालिका 1 में, भारत की आठ स्वास्थ्य योजनाओं के नाम का प्रतिनिधित्व किया गया है जो अध्ययन में शामिल की जाएगी।

निष्कर्ष

इस अध्ययन के माध्यम से प्रजनन आयु वर्ग की जनजातीय महिलाओं के बीच स्वास्थ्य देखभाल योजनाओं के उपयोग का आधारभूत डेटा (KAP) प्रस्तुत किया जाएगा। इसके साथ ही, यह अध्ययन विभिन्न हितधारकों के दृष्टिकोण से सेवाओं के उपयोग में आने वाली चुनौतियों की पहचान करेगा। जनजातीय महिलाओं के लिए लक्षित प्रजनन स्वास्थ्य देखभाल योजनाओं को कवर करने वाली पुस्तिका का विकास और मान्यता, विभिन्न स्वास्थ्य योजनाओं पर प्रशिक्षण कार्यक्रम के बाद जनजातीय महिलाओं के बीच ज्ञान बढ़ाने में सहायक होगी (8) जो पुस्तिका में उल्लेखित हैं। यह शोध नीति निर्माताओं, स्वास्थ्य सेवा प्रदाताओं और कार्यान्वयनकर्ताओं के लिए मूल्यवान अंतर्दृष्टि प्रदान करेगा ताकि वे कार्यक्रमों को जनजातीय समुदायों की विशिष्ट आवश्यकताओं और प्राथमिकताओं के अनुसार अनुकूलित कर सकें, जिससे उनके प्रभावी उपयोग और प्रभाव सुनिश्चित हो सके। समुदाय को इस अध्ययन के निष्कर्षों के आधार पर हस्तक्षेप और सिफारिशों से लाभ हो सकता है। इसलिए, यह अध्ययन एक आधारभूत अध्ययन के रूप में कार्य कर सकता है, जिसके आधार पर कुछ बड़े अध्ययन योजनाबद्ध किए जा सकते हैं ताकि अधिक सामान्यीकृत निष्कर्ष प्राप्त किए जा सकें।

संदर्भ

1. भारत के गृह मंत्रालय और भारत सरकार के रजिस्ट्रार जनरल एवं जनगणना आयुक्त का कार्यालय। मातृ मृत्यु दर पर विशेष बुलेटिन, नमूना पंजीकरण प्रणाली (SRS) भारत 2018-20
2. रोज क्लार्क के, अन्य। ग्रामीण पूर्वी भारत में किशोरियों का स्वास्थ्य, पोषण और कल्याण: एक वर्णात्मक, क्रॉस-सेक्शनल सामुदायिक आधारित अध्ययन। BMC सार्वजनिक स्वास्थ्य। 2019;19(1):1-11
3. स्वास्थ्य और परिवार कल्याण मंत्रालय और भारत सरकार। राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण (NFHS 5) 2019-21, भारत और 14 राज्यों/संघ शासित प्रदेशों का तथ्य पत्रक संकलन (चरण-11)।
4. बांगो एम, घोष एस। भारत में मातृ और बाल स्वास्थ्य देखभाल सेवाओं के उपयोग में सामाजिक और क्षेत्रीय विषमताएँ: राष्ट्रीय स्वास्थ्य मिशन के बाद की अवधि का अध्ययन। फ्रंट पीडियाट्रि।
5. अली बी, चौहान एस। ग्रामीण भारत में मातृ स्वास्थ्य देखभाल के उपयोग में असमानताएँ: राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण III और IV से साक्ष्य। BMC सार्वजनिक स्वास्थ्य। 2020;20(1):1-13।
6. पन्नू पी, गुलाटी एन, यादव एन। गर्भवती और स्तनपान कराने वाली ग्रामीण महिलाओं के लिए प्रजनन स्वास्थ्य से संबंधित योजनाओं की पहुँच: कुछ विचार। कम्युनिकेट। 2019;LIV (3)।
7. चौहान बीजी, जंगारी एस। भारत के जनजातीय प्रभुत्व वाले राज्यों में मातृ और बाल स्वास्थ्य देखभाल सेवाओं के उपयोग को प्रभावित करने वाले कारक। अंतर्राष्ट्रीय सामुदायिक स्वास्थ्य शिक्षा पत्रिका। 2021;42(1):47-56।
8. चक्रवर्ती एस। झारखंड में किशोरों और युवाओं के लिंग और यौन प्रजनन स्वास्थ्य अधिकारों के बारे में बात करना। एशियाई महिला अध्ययन पत्रिका। 2019;25(3):468-81।
9. इवानकोवा एनवी, क्रेसवेल जे डब्ल्यू, स्टिक एसएल। मिश्रित-तरीकों के अनुक्रमिक व्याख्यात्मक डिजाइन का उपयोग: सिद्धांत से अभ्यास तक। फील्ड मेथड्स। 2006;18(1):3-20।
10. रजिस्ट्रार जनरल और जनगणना आयुक्त का कार्यालय, गृह मंत्रालय, और भारत सरकार। भारत - ए-11 परिशिष्ट: जिला वार अनुसूचित जनजाति जनसंख्या (परिशिष्ट), झारखंड - 2011
11. चयनित सांख्यिकी सेवाएँ। जनसंख्या अनुपात - नमूना आकार - चयनित सांख्यिकी सलाहकार [ऑनलाइन]।

“स्वतंत्रता संग्राम के दौरान बिहार के जनजागरण में अनुग्रह नारायण सिंह की भूमिका”

डॉ० दिलीप कुमार सिंह

“शोध पर्यवेक्षक”

अभिमन्यु कुमार

शोध छात्र, स्नातकोत्तर इतिहास विभाग, भूपेन्द्र नारायण मंडल वि.वि. मधेपुरा (बिहार)

भूमिका:

कोई भी आंदोलन तब होता है, जब लोग किसी समस्या, शोषण, अन्याय या असंतोष के खिलाफ संगठित होकर विरोध करते हैं। आंदोलन एक-दो दिन या दो-चार महीने में नहीं बल्कि वर्षों का शोषण और असंतोष की भावना व अन्य प्रकार के किए गए जुर्मों के खिलाफ जब आम लोग एकत्रित होकर एक शक्ति के रूप में परिणत हो जाते हैं तो वह आंदोलन का रूप ले लेता है।

भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन भी ठीक उसी प्रकार से हुआ। भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन इसलिए हुआ क्योंकि भारतवासी अंग्रेजों के शोषण, अत्याचार व अन्यायपूर्ण शासन से निजात पाना चाहते थे।

भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन भारत की आजादी के लिए एक लंबा व कठिन संघर्षपूर्ण अभियान था। इस आंदोलन के कुछ प्रमुख कारण निम्न हैं-

धार्मिक शोषण-ब्रिटिश शासन के दौरान भारत का आर्थिक शोषण मुख्य रूप से कृषि, उद्योग और व्यापार के माध्यम से हुआ। अंग्रेज ने भारत को केवल कच्चा माल देने वाला देश और ब्रिटेन का बाजार बना दिया था। दादा भाई नौरोजी ने बताया भारत से ब्रिटेन हर वर्ष विशाल मात्रा में धन भेजा जाता है, बिना किसी भी लाभ के बदले।¹ अंग्रेजों ने भूमि कर बढ़ा दिया जिसके कारण किसान कर्ज में डूब गया और भूमि से बेदखल हो गया।² औद्योगिक पतन- अंग्रेजी मिलों से मुकाबला करने में भारतीय कुटीर उद्योग असमर्थ हुआ जिसके कारण भारतीय कुटीर उद्योग पूरी तरह बर्बाद हो गया।³ जबर्न किसानों से अपने अनुसार खेती करवाना, उदाहरण स्वरूप तीन कठिया व्यवस्था तीनकठिया व्यवस्था के अधीन एक बीघा जमीन में तीन कठिया में 20 से 30 वर्षों तक रैयतों को नील की खेती करना पड़ता था। 1859- 60 में बंगाल में रियासतों के भीषण विद्रोह के बाद कुछ सुधार हुआ परंतु बिहार में स्थिति खराब ही रही।⁴

सामाजिक भेदभाव- अंग्रेजों के अंदर नस्लीय श्रेष्ठ का भाव था, वह भारतीय को असभ्य मानते थे, वे किसी भी उच्च पद हेतु भारतीय को योग्य नहीं मानते थे।⁵ अंग्रेज भारतीय के साथ सार्वजनिक स्थानों पर भी भेदभाव जैसे रेलवे, होटल, क्लब, स्कूल जैसे सार्वजनिक स्थानों में प्रवेश नहीं देता था या उनके लिए अलग व्यवस्था होती थी।⁶ अंग्रेज भारतीयों के साथ शैक्षणिक भेदभाव भी किया जिसके अंतर्गत अंग्रेजों द्वारा बनाए गए पाठ्यक्रम में वह अंग्रेजी शिक्षा को श्रेष्ठ बताया व भारतीय संस्कृति को हीन बताया।⁷ इसके अलावा राजनीतिक, धार्मिक, राष्ट्रीय चेतना का विकास व अन्य कारण भी इस आंदोलन के कारण बना।

भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन में भारत के अनेक नेताओं ने अपने त्याग संघर्ष व बलिदान से भारत की स्वतंत्रता की नींव रखी। बिहार विभूति के नाम से प्रसिद्ध डॉ. अनुग्रह नारायण सिंह भी महान स्वतंत्रता सेनानियों में से एक थे। डॉ. अनुग्रह नारायण सिंह ने राष्ट्रीय आंदोलन में अहम भूमिका निभाई जिसके कारण कई बार उन्हें जेल भी जाना पड़ा, परंतु डॉ. अनुग्रह नारायण सिंह राष्ट्रीय आंदोलन में अपना योगदान देते रहे व स्वतंत्रता के बाद भी राष्ट्र निर्माण में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

प्रारंभिक जीवन

डॉ. अनुग्रह नारायण सिंह का जन्म 18 जून 1887 को बिहार के औरंगाबाद जिले के पोई (औरौं) गाँव में हुआ, उनके पिता का नाम विशेश्वर सिंह था जो एक प्रतिष्ठित किसान थे।⁸ अनुग्रह बाबू बचपन से ही अपनी विरासत-राजपूती साहस, वीरता आदि के साथ परंपरागत सांस्कृतिक धरोहर से अवगत थे। बचपन से ही अनुग्रह नारायण सिंह ने आत्मबल और सेवा भाव आदि को विकसित किया। ऐसा कहा जाता है कि आरम्भ में उनका नाम उग्रह सिंह था, पर उनकी शालीनता और उदारता को देखकर उनके एक शिक्षक ने उनका नाम अनुग्रह रख दिया।⁹ अनुग्रह बाबू की पांच साल के उम्र में अपने गाँव के ही स्कूल में पढ़ाई आरम्भ हुई। डॉ. अनुग्रह नारायण सिंह को कोई चीज की कमी नहीं थी, और न कोई नौकरी करनी थी, आखिर जमीन जमींदारी थी ही शायद

इसलिए उनके पिता ने आगे पढ़ने से रोका जिसके कारण उनको अपनी पढ़ाई को तीन साल तक रोकना पड़ा। लेकिन उसके बादमें विद्रोही बालक ने घर छोड़कर औरंगाबाद आकर मिडल स्कूल में भर्ती हो गया।

एक बार बालक अनुग्रह को एक लेख के लिए पुरस्कार भी मिला जिसका शीर्षक भारत में अंग्रेजी राज्य था। इस लेख में उन्होंने अंग्रेजों के शासन की निंदा की थी।¹⁰ कॉलेज की शिक्षा के लिए अनुग्रह बाबू पटना आये। बी.ए. के छात्र के रूप में अर्थशास्त्र विभाग के चाणक्य समिति के प्रथम सचिव रहे। 1915 में अनुग्रह बाबू भागलपुर के तेजनारायण जुबली कॉलेज में इतिहास व्याख्याता के रूप में नियुक्त हुये, लगभग सोलह महीने तक इन्होंने अपना काम बहुत ही ईमानदारी पूर्वक किया। भागलपुर में बाढ़ के समय अनुग्रह बाबू छात्रों के साथ राहत कार्य में मदद करते व चंदा इकट्ठा करने में भी साथ रहते थे। परंतु बहुत दिनों तक उन्हें कॉलेज के व्याख्याता के रूप में रहना गंवारा नहीं हुआ, क्योंकि वो पूरी स्वतंत्रता चाहते थे। जब उनकी माता का देहांत हो गया तो, वो भागलपुर की नौकरी छोड़कर 1916 में पटना आ गये। पटना में उन्हें एक वकील के रूप में काम करने में ज्यादा स्वतंत्रता मिली। यही पर उन्हें राजेंद्र बाबू की छत्रछाया में काम करने का भी अवसर मिला।¹¹ इस प्रकार डॉ. अनुग्रह बाबू एक वकील, समाजसेवी के रूप में कार्य करते रहे।

गांधी जी से मुलाकात व चंपारण आंदोलन में प्रवेश

बिहार के चंपारण में ब्रिटिश नीलहों द्वारा किसानों पर तीनकठिया प्रथा थोपी जाती थी, जिसके तहत किसानों को एक बीघा में तीन कट्टा पर नील की खेती करना अनिवार्य था। लगातार नील की खेती से खेत की उर्वरा शक्ति कमजोर हो जाती थी और खेत बंजर बन जाती थी, और नील के सही दाम भी नहीं मिल पाता था, जिससे किसान आर्थिक रूप से बर्बाद हो रहे थे। इस शोषण के खिलाफ आवाज उठाने के लिए स्थानीय लोगों ने महात्मा गांधी को आमंत्रित किया। गांधी जी अप्रैल 1917 में चंपारण आये और वहाँ के किसानों की समस्या को बड़े ही ध्यान पूर्वक सुना। समस्या को सुनकर गांधी जी चंपारण सत्याग्रह की योजना बनायी तो अनुग्रह बाबू भी इस संघर्ष में कूद पड़े। राजेंद्र बाबू, ब्रजकिशोर बाबू आदि के साथ वे भी मोतिहारी आ गये।¹² जिन पांच बिहारी वकीलों ने छह महीने के लिए वकालत छोड़कर गांधीजी के साथ काम करने का निश्चय किया उनमें अनुग्रह बाबू भी थे।¹³ अनुग्रह बाबू का मुख्य काम किसानों का बयान लेकर गांधीजी तक पहुँचाना था। धीरे-धीरे किसानों की संख्या बढ़ती गयी। 19 अप्रैल से सैकड़ों किसान मोतिहारी शहर आकर बयान देने लगे। अनुग्रह बाबू स्पष्ट लिखते हैं, इच्छा न रहते भी इन्कार की हिम्मत नहीं हुई। एक बार गांधी जी के संपर्क में आने पर मेरी अवस्था तो बिल्कुल बदल गई। आदेश के प्रति मेरी तर्क बुद्धि खो गई। जैसा आदेश हो, मैंने उसका पालन करने के लिए अपने को सदा तैयार पाया।¹⁴ गांधीजी से मुलाकात के बाद अनुग्रह बाबू के जीवन में एक नया मोड़ आया। अब तक अनुग्रह बाबू छुआ-छूत को मानते थे। एक घटना ने अनुग्रह बाबू की जीवन से छुआ-छूत की भावना को सदा के लिए मिटा दिया, घटना कुछ इस प्रकार है, अनुग्रह बाबू एवम अन्य कुछ उच्च जाति के लिए ब्राह्मण रसोईया खाने बनाते थे, जबकि अन्य के लिए अलग से खाना बनता था। गांधीजी को यह बात बिल्कुल सही नहीं लगी और उन्होंने इस बात की आलोचना की, गांधी जी ने कहा जो लोग सेवा कार्य में लगे हैं, उनकी एक ही जाति माननी चाहिए।¹⁵ गांधी जी के इस कथन का डॉ. अनुग्रह बाबू पर बहुत गहरा असर हुआ और अब अलग-अलग खाना बनना बंद हो गया। लगातार गांधी जी के समर्थन में किसानों की संख्या बढ़ती गयी जिससे अंग्रेजों को झुकना पड़ा व जांच समिति गठन किया जिसके सदस्य गांधी जी भी बने।

जांच समिति की रिपोर्ट किसानों के पक्ष में आया और सिफारिशों को सरकार ने स्वीकार किया, जिससे किसानोंको राहत मिली व तीनकठिया प्रणाली का अंत हुआ। इस चंपारण एक्ट के पास होने के छह महीने बाद तक अनुग्रह बाबू अपने कुछ साथियों के साथ मोतिहारी में रहे और गांधी जी के रचनात्मक कार्य को आगे बढ़ाया। नए स्कूल खुलवाये, लोगों को नए सुमार्ग पर चलने को उत्साहित किया। कुछ दिनों तक बिहार के बाहर के कुछ स्वयंसेवी यहां रहे, जैसे सर्वेंट आफ इंडिया सोसाइटी के डॉ. हरिकृष्ण देव आदि।

असहयोग आंदोलन में अनुग्रह बाबू

1920 के मध्य तक महात्मा गांधी राष्ट्रीय कांग्रेस के सर्वोच्च नेता के रूप में उभर रहे थे।¹⁶ 19 मार्च 1920 को गांधी जी ने घोषणा कर दी कि अगर मुसलमानों की खिलाफत संबंधी मांग को सरकार महत्व नहीं देगी तो वे असहयोग आंदोलन शुरू करेंगे। असहयोग आंदोलन को बिहार में एक नई दिशा देने का काम अनुग्रह बाबू ने किया। महात्मा गांधी जब भी असहयोग आंदोलन के दौरान प्रांत आए तो अनुग्रह बाबू उन्हें यहां के कार्यक्रमों की प्रगति से भलीभांति अवगत कराया। कुछ सभाओं में डॉ. अनुग्रह बाबू गांधी जी के साथ भी रहे सरकारी नौकरी, विदेशी वस्त्रों और अंग्रेजी संस्थाओं का बहिष्कार करने के लिए जनता को प्रेरित किया।

असहयोग आंदोलन के दौरान जब खादी का काफी प्रचार हुआ तो अनुग्रह बाबू भी यही कपड़ा पहनने लगे। आरम्भ में जो धोतिया बनती वह इतनी भारी होती कि उन्हें साफ करने और सुखाने में कठिनाई होती, लेकिन धीरे-धीरे वह इसके आदी हो गये।¹⁷

स्वराज की प्राप्ति के लिए जिन कार्यों का प्रचार करना था उनका बिहार में प्रचार करना अनुग्रह बाबू के जिम्मे में आया। 1921 के दिसंबर में जब विलायत से प्रिंस ऑफ वेल्स के बिहार आने का प्रोग्राम था अनुग्रह बाबू और उनके सहकर्मियों ने जोरदार हड़ताल की योजना बनायी। लोगों को प्रिंस के स्वागत से अलग रहने के नोटिस बंटवाये। वायसराय रीडिंग और तेज बहादुर सपू तथा सी.आर.दास के बीच बातचीत के बावजूद पटना का कार्यक्रम जारी रहा। जब प्रिंस आये तो शहर में सफल हड़ताल रही।¹⁸ बहुत से वकील अपने काम पर नहीं गये।

इस घटना के बाद बिहार के बहुत से नेता गिरफ्तार कर लिए गए और बिहार के गवर्नर एस.पी. सिन्हा ने अपने पद से इस्तीफा दे दिया। पटना में अनुग्रह बाबू को गिरफ्तार कर लिया गया। लेकिन पटने के एक आयरिश मजिस्ट्रेट ने इन्हें छोड़ दिया, क्योंकि इन्होंने कोई गैर-कानूनी काम नहीं किया था।¹⁹ असहयोग आंदोलन को सफल बनाने के लिये अनुग्रह बाबू दिन-रात एक कर दिये, जिसके कारण वह बीमार हो गये और स्वास्थ्य लाभ के लिए दो सप्ताह गया शहर से बाहर जाना पड़ा।

सविनय अवज्ञा आंदोलन में अनुग्रह बाबू

भारत की स्वतंत्रता संग्राम अनेक आंदोलन व संघर्ष से भरा हुआ है, परंतु उसमें भी कुछ अति-महत्वपूर्ण आंदोलन हैं। जिसमें एक आंदोलन सविनय अवज्ञा आंदोलन भी है। यह आंदोलन ब्रिटिश शासन के अन्यायपूर्ण कानूनों के खिलाफ आहिंसक जबाब था। इस आंदोलन में बिहार से डॉ. अनुग्रह बाबू का योगदान अत्यंत प्रेरणादायक है। जब 1930 में गांधीजी डांडी मार्च के साथ इस आंदोलन की शुरुआत की, तो देशभर में इस आंदोलन का व्यापक असर पड़ा। डॉ. अनुग्रह नारायण सिंह बिहार में इस आंदोलन को संगठित करने के साथ अपनी संगठनात्मक कौशल और प्रभावशाली भाषणों के माध्यम से आंदोलन को व्यापक बनाया।

डॉ. राजेंद्र प्रसाद की तरह अनुग्रह बाबू को भी प्रारंभ में नमक सत्याग्रह की सफलता को लेकर संदेह था। 1930 ईस्वी में जब नमक सत्याग्रह की शुरुआत हुई मुझे इस बात का तनिक भी विश्वास नहीं था कि सविनय अवज्ञा आंदोलन कोई विशेष रूप धारण करेगा अथवा उसकी संभावनाएं इतनी गहरी होगी कि वह देश में युगांतकारी अवस्था उत्पन्न करने की शक्ति रखेगा। फिर भी जिस तरह कांग्रेस के हुकुम को मानकर सब काम करता था, उसी तरह उसमें भी जरूरत पड़ने पर शामिल होऊंगा, ऐसी धारणा को ही लेकर 1930 ईस्वी के देशव्यापी आंदोलन में शरीक होने के लिए मैंने अपने आप को तैयार रखा।²⁰

बिहार में नमक सत्याग्रह चलाना कोई साधारण बात नहीं थी। यह प्रांत समुद्र से बहुत दूर है। समुद्र के किनारे जो रहते थे वे तो सरकारी आज्ञा के विरुद्ध नमक जमा कर या समुद्र का नमकीन पानी गर्म कर नमक सत्याग्रह कर सकते थे, पर बिहार में ऐसा नहीं हो सकता था। किंतु यहां नुनिया मिट्टी (एक प्रकार की नमकीन मिट्टी) की कोई कमी नहीं थी। उस मिट्टी से भी नमक बनाया जा सकता था। नुनिया मिट्टी से सरकारी आज्ञा के विरुद्ध नमक सत्याग्रह किया जा सकता था और ऐसा ही किया भी गया। बिहार में नमकीन मिट्टी से नमक बनाने का शुभारंभ चंपारण तथा सारण जिले में हुआ। चंपारण जिले में जिला कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष विपिन बिहारी वर्मा ने 15 अप्रैल को नमक कानून भंग किया।

धीरे-धीरे यह आंदोलन बृहद होते जा रही थी। ब्रिटिश शासन इस आंदोलन को रोकने के लिए तरह तरह के हथकंडे अपनाये, लाठी चार्ज किये। जब राजेंद्र बाबू को पटना के स्टीमर घाट पर इस घटना की सूचना प्राप्त हुई तो वे सीधे उस स्थान पर गए, जहां पुलिस ने कतार बनाकर सत्याग्रहियों का रास्ता रोका था। सत्याग्रही दिन भर वहीं खड़े रहे। रात होने पर सड़क पर ही सो गए। इस तरह पहला दिन सड़क पर ही समाप्त हुआ। दूसरे दिन जिलाधिकारी ने राजेंद्र प्रसाद से कहा कि वह सत्याग्रहियों को वहां से हटा ले, नहीं तो सरकार की ओर से आवश्यक कार्रवाई की जाएगी और पूरी जवाबदेही उन्हीं पर होगी। अब तक सत्याग्रहियों पर लाठी चार्ज हो चुका था और उन पर घोड़े दौड़ाने की तैयारी थी। इस विषम परिस्थिति में भी राजेंद्र बाबू विचलित नहीं हुए और अनुग्रह बाबू, कृपलानी जी आदि सहयोगियों से सलाह करने के बाद उन्होंने सत्याग्रहियों को हटाने से इनकार कर दिया। इस दृढ़ता का अनुकूल प्रभाव पड़ा और प्रशासन ने सत्याग्रहियों पर घोड़े दौड़ाने का विचार छोड़ दिया इससे सत्याग्रहियों का उत्साह कई गुना बढ़ गया। निश्चित रूप से इस ठोस निर्णय के पीछे राजेंद्र बाबू के साथ-साथ अनुग्रह बाबू का भी हाथ था जिसके फल स्वरूप सत्याग्रहियों का मनोबल बढ़ा।

राजेंद्र बाबू एवं दीप नारायण सिंह के गिरफ्तारी के बाद तृतीय अधिनायक के नाते बिहार विभूति डॉ. अनुग्रह बाबू पूरे प्रांत के सत्याग्रह संचालन का कार्यभार संभाला। पूरे प्रांत में जहां-जहां सत्याग्रह की तैयारी नहीं होती थी वहां-वहां वे पहुंचते और लोगों में जोश भरते। साथ ही लोगों को सत्याग्रह करने की प्रेरणा देते। राजेंद्र बाबू का कहना था कि सभी नेताओं को एक साथ गिरफ्तार नहीं होना चाहिए। उन्हें आशंका थी कि ऐसा करने से हो सकता है कि बिहार में नमक सत्याग्रह ठप पड़ जाए। इसीलिए कुछ व्यक्तियों को राजेंद्र बाबू का ऐसा आदेश था कि वह अपने को यथासंभव गिरफ्तारी से बचाए। ऐसे ही व्यक्तियों में अनुग्रह बाबू भी एक थे।²¹

26 जनवरी 1933 को पटना में स्वतंत्रता की घोषणा पढ़ने पर डॉक्टर अनुग्रह बाबू को ब्रिटिश सरकार ने गिरफ्तार कर लिया। उन पर देशद्रोह का आरोप लगा और उन्हें 15 महीने की कठोर कारावास की सजा सुनाई गई। उन्हें हजारीबाग जेल भेजा गया वहां उन्होंने अन्य स्वतंत्रता सेनानियों के साथ मिलकर ब्रिटिश दमन के विरुद्ध अपने विचारों को और प्रखर किया।

भारत छोड़ो आंदोलन

भारत छोड़ो आंदोलन भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का एक निर्णायक चरण था। इस आंदोलन को अगस्त क्रांति के नाम से भी जाना जाता है। महात्मा गांधी ने 8 अगस्त 1942 ईस्वी को मुंबई में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक में “करो या मरो” का नारा दिया और अंग्रेजों से भारत छोड़ने की मांग की। इस आंदोलन में देश के विभिन्न क्षेत्रों से लाखों लोगों ने भाग लिया, जिनमें बिहार के प्रमुख नेता डॉ. अनुग्रह नारायण सिंह ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

आंदोलन शुरू होते ही 9 अगस्त को गांधीजी समेत प्रमुख कांग्रेसी नेता को गिरफ्तार कर अज्ञात स्थान पर भेज दिया गया। इसी दिन सदाकत आश्रम से गिरफ्तार कर राजेंद्र बाबू को भी जेल भेज दिया गया। अपनी गिरफ्तारी के समय महात्मा गांधी ने राष्ट्र के नाम संदेश प्रसारित किया और लोगों से अपील की कि लोग अपने को आजाद समझे, अहिंसात्मक तरीके से सरकारी प्रशासन को ठप कर दें, तथा मरकर भी राष्ट्र को जिंदा रखें।²²

8 अगस्त को अनुग्रह बाबू रायबरेली में थे। गिरफ्तारियों के समाचार मिलने के बाद 9 अगस्त की रात में वे पटना पहुंचे, जहां 10 अगस्त के सुबह उन्हें भी गिरफ्तार कर लिया गया। सरकार ने कांग्रेस कमेटी को गैर कानूनी करार दिया तथा सदाकत आश्रम को पुलिस ने कब्जे में ले लिया।²³

सरकार के इस दमनकारी नीति से देश भर में मानो तूफान सा आ गया। प्रमुख नेताओं की गिरफ्तारी की सूचना मिलते ही पटना में छात्रों ने एक विशाल जुलूस निकाली, यह जुलूस बी.एन. कॉलेज से निकलकर पटना के विभिन्न चौक चौराहों होते हुए विश्वविद्यालय में आकर सभा में परिणत हो गयी। वहां सभा की अध्यक्षता कर रहे श्री सूरज देव ने अपने भाषण में राजेंद्र बाबू, अनुग्रह बाबू, श्रीकृष्ण बाबू व अन्य नेताओं की गिरफ्तारी की भर्त्सना किया, और आजादी की लड़ाई में आगे आकर भाग लेने के लिए छात्रों से अपील की।²⁴ 10 अगस्त को राज्य के अधिकतर स्कूल, कॉलेज के छात्र हड़ताल पर रहे वह प्रदर्शन करते रहे।

11 अगस्त को पटना में स्थिति बहुत गंभीर हो गयी। उस दिन ऐसी घटना घटी जो सदियों तक याद रखा जाएगा। क्योंकि यह शहादत का दिन था। सचिवालय पर झंडा फहराने को संकल्पित छात्रों पर गोलियां चलाई गयीं, जिससे सात छात्र घटनास्थल पर ही शहीद हो गए व पच्चीस छात्र गंभीर रूप से घायल हुए। सचिवालय के पास शहीद होने वाले छात्र “करो या मरो” के प्रतीक बन गए।

इधर अनुग्रह बाबू, श्री कृष्णा बाबू व अन्य नेताओं को बांकीपुर जेल से हजारीबाग जेल स्थानांतरित कर दिया गया। हजारीबाग जेल से अनुग्रह बाबू का पुराना परिचय था, क्योंकि इससे पूर्व भी नमक सत्याग्रह व्यक्तिगत सत्याग्रह के समय यहां आ चुके थे। जून 1944 तक अनुग्रह बाबू जेल में रहे। जब बाहर आए तो देखा बहुत कुछ बदल गया है राजनीतिक से लोग निष्क्रिय हो गये हैं, दूसरी ओर बिहार के दरभंगा क्षेत्र में मलेरिया जैसी महामारी फैली हुई है। यथासंभव अनुग्रह बाबू लोगों की मदद किया और फिर से पूर्व की तरह देश की आवाज को बुलंद करना शुरू कर दिया। कांग्रेस को पुनर्संगठित किया और जनता को संदेश दिया अब आजादी बहुत नजदीक है।

1946 में अंतरिम सरकार की गठन हुई, तो वह बिहार के वित्त मंत्री व उपमुख्यमंत्री का दायित्व संभाला। इस पद पर अनुग्रह बाबू आजादी के बाद 1957 तक बने रहे। इस पद पर रहते हुए अनुग्रह बाबू ने एक आदर्श प्रशासनिक ढांचा तैयार करने की दिशा में कार्य किया।

1946-47 के समय देश विभाजन विभाषिका का दर्श झेल रहा था, तब अनुग्रह बाबू बिहार में सामाजिक सौहार्द बनाये रखने की दिशा में प्रशंसनीय कार्य किये। 1947 में जब देश आजाद हुआ तो उस समय तक अनुग्रह बाबू बिहार की जनता की आशा व विश्वास के प्रतीक बन चुके थे।

निष्कर्ष

भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन में अनुग्रह बाबू के योगदानों को भुलाया नहीं जा सकता। अनुग्रह बाबू का जीवन गांधीवादी विचारधाराओं से अत्यधिक प्रभावित हुआ। गांधी जी द्वारा चलाए गए लगभग सभी आंदोलनों में डॉ. अनुग्रह बाबू अपना महत्वपूर्ण योगदान दिए। चंपारण सत्याग्रह से लेकर भारत छोड़ो आंदोलन तक अनुग्रह बाबू लगातार संघर्ष करते रहे। उन्हें कई बार जेल जाना पड़ा, अंग्रेजों का अत्याचार सहना पड़ा। परंतु कभी भी अपने सिद्धांतों के साथ समझौता नहीं किया। उन्होंने बिहार को हमेशा आगे बढ़ाने हेतु संघर्ष किया। अनुग्रह बाबू गांधी जी के सच्चे अनुयाई थे, उन्होंने गांधी जी के तरह सत्य, अहिंसा और सेवा का मार्ग अपनाया उन्होंने लोगों को शिक्षा, खादी, स्वदेशी और सामाजिक सुधार की ओर प्रेरित किया।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी अनुग्रह बाबू पूर्व की तरह समर्पण भाव से कार्य किया। बिहार के पहले उपमुख्यमंत्री व वित्त मंत्री के रूप में बिहार के विकास की आधारशिला रखी।

अतः हम कह सकते हैं कि उनके द्वारा किए गए कार्य आज भी हमारे लिए प्रेरणा के स्रोत हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची-

1. पॉवर्टी एंड अनब्रिटिश रूल इन इंडिया- दादाभाई नौरोजी, पृष्ठ- 30
2. इंडिया स्ट्रगल फॉर इंडिपेंडेंस- बिपिन चंद्र, पृष्ठ-17
3. आधुनिक भारत का इतिहास- बिपिन चंद्र, पृष्ठ- 114
4. बिहार विभूति डॉक्टर अनुग्रह नारायण सिंह- एक जीवनी, डॉ.(प्रो.) जगदीशचंद्र झा, पृष्ठ- 19
5. इंडिया आफ्टर गांधी- रामचंद्र गुहा, पृष्ठ-39
6. आधुनिक भारत का इतिहास-बिपिन चंद्र, पृष्ठ-122
7. प्लासी टू पार्टीशन-शेखर बंधोपाध्याय, पृष्ठ- 228
8. एस.पी.सेन डिक्शनरी ऑफ नेशनल बायोग्राफी कलकत्ता-1974, पृष्ठ- 236
9. बिहार विभूति डॉ.अनुग्रह नारायण सिंह-एक जीवनी-डॉ.(प्रो.) जगदीश चंद्र झा, पृष्ठ-10
10. बाबू साहब की देन-उमाशंकर, पृष्ठ-6
11. बिहार विभूति डॉ. अनुग्रह नारायण सिंह-एक जीवनी- डॉ.(प्रो.) जगदीशचंद्र झा, पृष्ठ-14
12. डी.जी तंदुलकर, महात्मा गांधी की जीवनी, बम्बई 1951, पृष्ठ 245
13. के. के. दत्त -गांधी इन बिहार- पटना, 1969, पृष्ठ-13
14. मेरे संस्मरण -डॉ. अनुग्रह नारायण सिंह, पृष्ठ-20
15. राजेन्द्र प्रसाद-महात्मा गांधी एंड बिहार, पृष्ठ-26
16. बी.एन. पांडेय (संपादक) ए सेटेनरी हिस्ट्री ऑफ द इंडियन नेशनल कांग्रेस, नई दिल्ली 1985, पृष्ठ-68
17. मेरे संस्मरण - डॉ. अनुग्रह नारायण सिंह, पृष्ठ- 79
18. बिहार और उड़ीसा, 1921, पृष्ठ-156
19. बाबू साहब की देन- उमाशंकर, पृष्ठ-55
20. अनुग्रह नारायण सिंह, पूर्वोक्त, पृष्ठ-150
21. बाबू साहब की देन - उमाशंकर, पृष्ठ-87,88
22. कांग्रेस रिस्पॉन्सिबिलिटी फॉर द डिस्टर्बेस (1942-43) भारत सरकार नई दिल्ली, 1943, पृष्ठ-80
23. सर्वलाईट, 11 अगस्त 1942
24. डॉ. के. के. दत्त, पूर्वोक्त भाग-3, पृष्ठ-31

रूस-यूक्रेन संघर्ष में नाटो की भूमिका

डॉ० बेचु प्रसाद सिंह

शोध निर्देशक, एसोसिएट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, शेरशाह कॉलेज, सासाराम (रोहतास)

रम्भा कुमारी

शोधार्थी, स्नातकोत्तर राजनीति विज्ञान विभाग, वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा

सारांश

24 फरवरी, 2022 को, मॉस्को ने सीमाओं के निकट सैन्य अभ्यासों के बाद यूक्रेन पर पूर्ण पैमाने पर आक्रमण शुरू किया। पहले उसने इस तरह के उद्देश्य होने से इनकार किया था। उसने कीव और पश्चिम पर आरोप लगाया कि वे डोनबास में संकट को बढ़ाने के लिए पक्षपाती रुख अपनाकर यूक्रेन को उकसा रहे हैं। दिसंबर 2021 के मध्य में प्रकाशित दो मसौदा समझौतों ने स्पष्ट किया कि वह क्या हासिल करना चाहता था: नाटो के पूर्व की ओर विस्तार को रोकना और इस संबंध में कानूनी रूप से बाध्यकारी प्रतिबद्धताएँ प्राप्त करना। यह 1990 के दशक के नाटो और रूस के बीच के समझौतों का संदर्भ देकर करता है। मॉस्को ने चिंता व्यक्त की कि विशेष रूप से, यूक्रेन की नाटो में सदस्यता रूसी सुरक्षा और अमेरिका-रूसी रणनीतिक संतुलन को खतरे में डाल देगी। हालांकि अमेरिका और नाटो ने हथियार नियंत्रण मुद्दों पर बातचीत करने की इच्छा दिखाई थी, वे यूरोपीय सुरक्षा प्रणाली के सिद्धांतों को बदलने के लिए तैयार नहीं थे। मॉस्को ने इसे स्वीकार करने से इनकार कर दिया और बल का सहारा लिया। उसने संकट को कम करने और बिना आदर्शों से समझौता किए हथियार नियंत्रण के माध्यम से सैन्य पूर्वानुमानिता को पुनः प्राप्त करने के लिए नई बातचीत शुरू करने की संभावनाओं की अनदेखी की। इस पेपर का मुख्य उद्देश्य रूसी-यूक्रेनी संघर्ष में नाटो की भूमिका पर चर्चा करना और संघर्ष के कारणों को खोजना है। इस शोध पत्र में मुख्य रूप से द्वितीयक स्रोतों का उपयोग किया जा रहा है।

मुख्य शब्द: युद्ध, सैन्य, आक्रमण, सुरक्षा, गठबंधन, आक्रामकता।

परिचय

नाटो ने यूक्रेन में रूस के आक्रमण की कड़ी निंदा की है, इसे “एक पीढ़ी में सबसे बड़ा सुरक्षा खतरा” बताया है। गठबंधन ने रूस से तुरंत दुश्मनी समाप्त करने, यूक्रेन से अपनी सभी सेनाओं को वापस बुलाने और एक कूटनीतिक समाधान की दिशा में काम करने की मांग की है। नाटो ने स्पष्ट रूप से कहा है कि वह यूक्रेन में सैनिक नहीं भेजेगा, जो कि नाटो का सदस्य नहीं है, और न ही वह रूस के साथ टकराव से बचने के लिए यूक्रेन के ऊपर नो-फ्लाई जोन लागू करेगा। यूक्रेन को हथियारों और आपूर्ति के हस्तांतरण की अधिकांश व्यवस्थाएँ (व्यक्तिगत नाटो सहयोगियों द्वारा) और अभूतपूर्व प्रतिबंधों का लागू होना नाटो ढांचे के बाहर किया गया है। नाटो की निरोधक स्थिति में काफी सुधार हुआ है, भविष्य के रूसी आक्रमण को रोकने और अपने सहयोगियों को आश्वस्त करने के लिए गठबंधन के पूर्वी किनारे पर महत्वपूर्ण सैनिकों और उपकरणों की तैनाती की गई है।

उत्तर अटलांटिक संधि संगठन (नाटो): एक अवलोकन

नाटो एक बहुराष्ट्रीय संगठन है जो अपने सदस्यों को एक ऐसा मंच प्रदान करता है जहाँ वे किसी भी मुद्दे पर चर्चा कर सकते हैं जो उनके लिए महत्वपूर्ण है और राजनीतिक तथा सैन्य मामलों पर निर्णय ले सकते हैं जो उनकी सुरक्षा स्तर को प्रभावित करते हैं। कोई भी सदस्य राज्य अपने लिए निर्धारित मौलिक राष्ट्रीय सुरक्षा लक्ष्यों को केवल देश के भीतर के संसाधनों का उपयोग करके पूरा करने के लिए बाध्य नहीं है। सदस्यों द्वारा अनुभव की जाने वाली सुरक्षा की भावना सभी द्वारा साझा की जाती है, जो यूरो-एटलांटिक क्षेत्र में जीवन की निरंतरता में योगदान करती है।¹ उत्तर अटलांटिक संधि संगठन (नाटो) का प्राथमिक उद्देश्य राजनीतिक और सैन्य साधनों के माध्यम से अपने सदस्य राज्यों की संप्रभुता और सुरक्षा को बनाए रखना है। जब इसे पहली बार स्थापित किया गया था, तो नाटो का मुख्य उद्देश्य ‘सामूहिक रक्षा’ विकसित करना था। उत्तर अटलांटिक संधि संगठन पर अनुच्छेद 5 के अनुसार, एक सदस्य पर दूसरे द्वारा किया गया हमला सभी सदस्यों पर हमले के रूप में माना जाता है। वर्तमान में, उत्तर अटलांटिक संधि संगठन (नाटो) के तीस देश सदस्य हैं।

तालिका 1. उत्तर अटलांटिक संधि संगठन (नाटो) के सदस्य

देश	नाटो सदस्यता वर्ष
नॉर्वे	
बेल्जियम	
आइसलैंड	
पुर्तगाल	1949
कनाडा	
इटली	
डेनमार्क	
लक्जमबर्ग	
मॉन्टेनेग्रो	
ग्रीस	1952
स्पेन	1982
चेक गणराज्य	
हंगरी	1999
पोलैंड	
लिथुआनिया	
स्लोवेनिया	
एस्टोनिया	
लातविया	2004
स्लोवाकिया	
बुल्गारिया	
रोमानिया	
अल्बानिया	
क्रोएशिय	2009
अल्बानिया	

नाटो के कार्य

उत्तर अटलांटिक संधि संगठन (नाटो) एक अंतरराष्ट्रीय संगठन है जो लोकतंत्र को बढ़ावा देने, मानव अधिकारों की रक्षा करने, व्यक्तिगत स्वतंत्रताओं की सुरक्षा करने और यूरोप में कानून के शासन को बनाए रखने के लिए समर्पित है। यदि संकट और संघर्ष सहयोगियों की सीमाओं से परे फैलते हैं, तो यह उद्देश्य खतरे में पड़ सकता है। यह गठबंधन साझेदारियों का निर्माण करके और संकट प्रबंधन गतिविधियों में भाग लेकर दुनिया में शांति और स्थिरता में भी योगदान करता है। नाटो का प्राथमिक कार्य अपने सदस्यों को उनके संबंधित राष्ट्रीय सीमाओं की रक्षा में सहायता करना है। हालाँकि, यह आवश्यक होने पर संकटों को संभालने, संघर्ष के बाद की स्थितियों में शांति लाने और पुनर्निर्माण में सहायता प्रदान करने के लिए भी हस्तक्षेप करता है। यह दुनिया के अन्य हिस्सों में अपने मूल्यों का प्रतिनिधित्व करने के लिए ऐसा करता है। उत्तर अटलांटिक संधि संगठन (नाटो) यूरोप और उत्तरी अमेरिका की सुरक्षा को जोड़ने वाला ट्रांसअटलांटिक लिंक के रूप में कार्य करता है। यह गठबंधन रणनीति को लागू करने के लिए एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।³ यह इन लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए अपनाए गए राजनीतिक और सैन्य उपायों पर उच्चतम स्तर का मार्गदर्शन प्रदान करता है, और यह ऐसा समग्र रूप से करता है।

यूक्रेन को नाटो में शामिल होने की इच्छा क्यों है?

संभावना है कि पूर्वी और पश्चिमी यूक्रेन लगभग विभाजित हैं, जिसमें पूर्व रूस के साथ अधिक निकटता से जुड़ा हुआ है और पश्चिम यूरोपीय संघ के साथ संबंधित है। रूस द्वारा समर्थित विद्रोहियों ने यूक्रेन के पूर्व में एक महत्वपूर्ण क्षेत्र पर नियंत्रण कर लिया है। रूस ने आधिकारिक रूप से स्वीकार किया है कि डोनेट्स्क और लुहान्स्क के क्षेत्र अलग-अलग क्षेत्र हैं। रूसी सेना विशाल है, जबकि यूक्रेनी सेना उस कुल का केवल एक छोटा हिस्सा है। रूस का सैन्य खर्च यूक्रेन की तुलना में लगभग सौ गुना अधिक है। यूक्रेन निश्चित रूप से एक ऐसी सेना का सामना कर रहा है जिसे वह अकेले पराजित करने में सक्षम नहीं है। इसलिए, इसे नाटो जैसे संगठन का समर्थन करना चाहिए, जो अपने सदस्य राज्यों को एक रक्षा गठबंधन प्रदान करता है।

नाटो की भूमिका यूक्रेन संकट में क्या है?

रूस की यूक्रेन के खिलाफ आक्रामकता पहले से ही तनावपूर्ण संबंधों को और बढ़ा देगी जो नाटो और रूस के बीच हैं। रूस और पश्चिम ने अपनी शीत युद्ध की स्थिति को फिर से जीवित कर दिया है। हालाँकि व्लादिमीर पुतिन इन हालिया घटनाओं के लिए मुख्य रूप से जिम्मेदार हैं, लेकिन पिछले कुछ महीनों में रूस के प्रति नाटो का घमंडी और असंवेदनशील व्यवहार भी इसके लिए जिम्मेदार है। 25 वर्षों से अधिक समय से, एक यथार्थवादी और संयमित अमेरिकी विदेश नीति के समर्थकों ने दुनिया की सबसे शक्तिशाली सैन्य गठबंधन का विस्तार किसी अन्य महत्वपूर्ण राज्य को शामिल करने के खिलाफ चेतावनी दी है। यूक्रेन में संघर्ष स्पष्ट रूप से यह दर्शाता है कि ऐसा नहीं हुआ। भले ही रूस ने नाटो को एक खतरे के रूप में नहीं देखा होता, फिर भी इसे पूर्व की ओर बढ़ाना कठिन होता। इन योजनाओं में से सबसे सरल को लागू करने के लिए भी गठबंधन को पूर्व सोवियत संघ के दरवाजे तक ले जाना होगा। कुछ परिस्थितियों में, गठबंधन प्रभावी रूप से रूसी संघ को घेर सकता है। यह उस समय लिखा गया था जब विस्तार के लिए सिफारिशें न्यूयॉर्क और वाशिंगटन के विदेश नीति सेमिनारों में केवल काल्पनिक थीं, 'नाटो के परे: यूरोप के युद्धों से बाहर रहना' कई महत्वपूर्ण बिंदुओं को उठाता है। मुख्य रक्षा यह थी कि यह रूस को अनावश्यक रूप से उकसाएगा। बिल क्लिंटन के प्रशासन ने पिछले वर्ष कुछ पूर्व वारसों संधि देशों को नाटो में शामिल करने के लिए लॉबी करने का भाग्यशाली निर्णय लिया, लेकिन उस समय बहुत कम लोगों को इसके बारे में पता था। इसके तुरंत बाद, अमेरिकी सीनेट ने प्रशासन के प्रस्ताव का समर्थन किया कि पोलैंड, चेक गणराज्य और हंगरी को उत्तरी अटलांटिक संधि संगठन में शामिल होने के लिए प्रोत्साहित किया जाए।⁴ सदस्यों ने यह अनुमान लगाया कि यह एक श्रृंखला में शामिल होने का एक हिस्सा होगा।

पहले चरण ने रूस में आक्रोश और निंदा को जन्म दिया। रूसी राष्ट्रपति बोริस येल्टसिन और उनके सहयोगियों ने विस्तार के खिलाफ कड़ा विरोध किया, इसे उनकी कमजोरियों का लाभ उठाने और यूरोप की विभाजन रेखा को पूर्व की ओर धकेलने की चाल के रूप में देखा, जिससे वे अलग-थलग पड़ गए। क्लिंटन की विदेश मंत्री, मैडेलीन ऑलब्राइट, अपनी जीवनी में लिखती हैं। इस मामले में रूसी मानसिकता को समझना महत्वपूर्ण है। कई रूसी नाटो को शीत युद्ध का अवशेष और अपने देश के प्रति एक मौलिक रूप से शत्रुतापूर्ण शक्ति मानते हैं। वे आश्चर्य करते हैं कि पश्चिम ने ऐसा क्यों नहीं किया, भले ही उनका सैन्य गठबंधन, वारसों संधि, भंग हो चुका है। यह एक बड़ा सवाल था, और न तो क्लिंटन प्रशासन और न ही इसके पूर्ववर्तियों ने सबसे संभावित उत्तर प्रदान किया। मई 1998 में न्यूयॉर्क टाइम्स के एक साक्षात्कार में, जॉर्ज केन्नन, जो संयुक्त राज्य अमेरिका की शीत युद्ध की रोकथाम रणनीति के संस्थापक हैं, ने नाटो के पहले दौर के विस्तार की सीनेट की स्वीकृति के प्रभावों की भविष्यवाणी की। केन्नन का मानना है कि एक नया शीत युद्ध बस शुरू हो रहा है। यह निष्कर्ष निकालना कठिन है कि रूसियों की आक्रामकता की भावना विकसित हुई और उनकी नीति को प्रभावित किया। मुझे लगता है कि विस्तार एक गंभीर गलती थी। इसका कोई औचित्य नहीं था। कोई अन्य लोग खतरे में नहीं थे। केन्नन सही थे, लेकिन अमेरिका और नाटो के नेताओं ने विस्तार जारी रखा, जिसमें तीन बाल्टिक देशों का विवादास्पद समावेश भी शामिल था। ये राष्ट्र न केवल सोवियत संघ का हिस्सा थे बल्कि जारिस्ट रूस के साम्राज्य का भी हिस्सा थे। उस विस्तार की लहर के कारण नाटो अब रूसी संघ की सीमा पर था।

मॉस्को नाटो के बढ़ते हस्तक्षेप के प्रति असंतोष व्यक्त कर रहा था। जब पुतिन ने मार्च 2007 में म्यूनिख सुरक्षा सम्मेलन में दर्शकों को संबोधित किया, तो उन्होंने गठबंधन को पीछे हटने की चेतावनी दी। 'नाटो के अग्रिम मोर्चे के सैनिक हमारे सीमाओं पर तैनात किए गए हैं,' पुतिन ने अफसोस जताया। लेखक के अनुसार, नाटो का विस्तार 'एक गंभीर उकसावा है जो विश्वास को कमजोर करता है।' और रूसियों को समझ में आता है कि यह विस्तार किसके खिलाफ है। वारसों संधि के विघटन के बाद, पुतिन ने पश्चिमी भागीदारों द्वारा किए गए वादों पर सवाल उठाना जारी रखा। 1993 में बुश के कार्यालय छोड़ने के बाद रूस के साथ संबंधों का प्रबंधन खराब तरीके से किया गया, यह रॉबर्ट एम. गेट्स, जो जॉर्ज डब्ल्यू. बुश और बराक ओबामा के तहत रक्षा सचिव थे, के अनुसार है। अध्ययन के अनुसार, 'रोमानिया और बुल्गारिया की सरकारों के साथ अमेरिकी व्यवस्थाएं उन देशों में सैनिकों को परिवहन करने के लिए एक अनावश्यक उकसावा थीं।' 'जॉर्जिया और यूक्रेन को नाटो में शामिल करने की कोशिश करना एक बुरा उदाहरण स्थापित कर रहा था,'⁵ गेट्स ने छोटे बुश के बारे में कहा। यह कार्रवाई 'स्पष्ट रूप से उन चीजों की अनदेखी करती है जो रूसियों ने अपने महत्वपूर्ण राष्ट्रीय हितों के रूप में देखी।'

हालाँकि, पश्चिमी राजनीतिज्ञ, विशेष रूप से अमेरिका के लोग, लाल चेतावनी संकेतों की अनदेखी करते रहे। 2013 और 2014 में ओबामा प्रशासन के चौकाने वाले घमंडी हस्तक्षेप के परिणामस्वरूप तनाव बढ़ गया जब उसने यूक्रेन के घरेलू राजनीतिक मामलों में प्रदर्शनकारियों का समर्थन किया ताकि यूक्रेन के निर्वाचित प्रॉ-रूस राष्ट्रपति को उखाड़ फेंका जा सके। प्रतिशोध में, मॉस्को ने क्रीमिया पर कब्जा कर लिया और उसे अपने में मिला लिया, जिससे एक नए शीत युद्ध की शुरुआत हुई। जो बाइडेन प्रशासन ने रूसी मांगों के प्रति ठंडे और टालमटोल वाले तरीके से प्रतिक्रिया दी, जिसमें महत्वपूर्ण पश्चिमी रियायतें और सुरक्षा गारंटी शामिल थीं। फिर पुतिन ने स्थिति को बढ़ाने का निर्णय लिया। भले ही देश औपचारिक रूप से गठबंधन में शामिल न हो, वाशिंगटन का यूक्रेन को एक राजनीतिक और सैन्य मोहरे के रूप में उपयोग करने का प्रयास यूक्रेनी लोगों के लिए गंभीर परिणाम हो सकता है। इतिहास दिखाएगा कि वाशिंगटन ने सोवियत संघ के पतन के बाद रूस के साथ निपटने में एक महत्वपूर्ण नीति त्रुटि की। नाटो का विस्तार लगभग निश्चित रूप से रूस के साथ संबंधों में महत्वपूर्ण, यदि हिंसक नहीं, तो गिरावट का परिणाम होगा। समझदार विशेषज्ञों ने परिणामों के बारे में चेतावनी दी, लेकिन किसी ने नहीं सुना। अमेरिकी विदेश नीति के अभिजात वर्ग की मूर्खता और घमंड हमें महंगा पड़ रहा है। यूक्रेन के खिलाफ रूसी आक्रमण पहले से ही तनावपूर्ण नाटो और रूस के बीच संबंधों को और बढ़ा देगा। रूस और पश्चिम ने अपने शीत युद्ध को फिर से जीवित किया है। हालाँकि इन हालिया घटनाओं के लिए मुख्य रूप से व्लादिमीर पुतिन जिम्मेदार हैं, नाटो को हाल के वर्षों में रूस के प्रति अपने घमंडी, बेतुके दृष्टिकोण के लिए एक बड़ा हिस्सा जिम्मेदारी उठाना चाहिए। 25 वर्षों से अधिक समय से, एक यथार्थवादी और संयमित अमेरिकी विदेश नीति के समर्थकों ने दुनिया के सबसे शक्तिशाली सैन्य गठबंधन का विस्तार करने के खिलाफ चेतावनी दी है ताकि एक और महत्वपूर्ण राज्य को शामिल किया जा सके। यूक्रेन में संघर्ष स्पष्ट रूप से दिखाता है कि ऐसा नहीं हुआ।

यह सच है कि यदि रूस ने नाटो को शत्रुतापूर्ण नहीं माना होता, तब भी पूर्व की ओर इसका विस्तार करना कठिन होता। सबसे सरल परिदृश्यों को छोड़कर, यह गठबंधन पूर्व सोवियत संघ की सीमाओं तक फैलेगा। कुछ परिस्थितियों में, यह गठबंधन रूसी संघ को प्रभावी रूप से घेर सकता था। पुस्तक शबियॉन्ड

नाटो: अवॉइडिंग वॉर इन यूरोप में कुछ मुख्य बिंदुओं का उल्लेख किया गया है, जो तब प्रकाशित हुई थी जब न्यूयॉर्क और वाशिंगटन में विस्तार की मांगें पूरी तरह से सैद्धांतिक थीं।⁶ मुख्य रक्षा यह थी कि यह रूस को अनावश्यक रूप से उकसाएगा। उस समय कई लोगों को यह नहीं पता था कि बिल क्लिंटन की प्रशासन ने पहले ही पिछले वर्ष कई पूर्व वारसों संधि देशों को नाटो में शामिल करने का निर्णय लिया था। इसके तुरंत बाद, अमेरिकी सीनेट ने प्रशासन के प्रस्ताव का समर्थन किया कि पोलैंड, चेक गणराज्य और हंगरी को उत्तरी अटलांटिक संधि संगठन में शामिल होने के लिए प्रोत्साहित किया जाए। इसे सदस्यता विस्तार की कई लहरों में से पहली माना गया। पहले चरण ने भी रूस में आक्रोश और निंदा को जन्म दिया। अपनी आत्मकथा में, पूर्व विदेश मंत्री मैडेलीन ऑलब्राइट कहती हैं कि रूसी राष्ट्रपति बोरिस येल्टसिन और उनके लोग विस्तार के खिलाफ थे क्योंकि उन्हें लगता था कि यह उनकी कमजोरी का फायदा उठाने का एक तरीका था और यूरोप की विभाजन रेखा को पूर्व की ओर ले जाने का प्रयास था, जिससे वे अकेले रह जाएंगे। इस मामले में रूसी मानसिकता को समझना महत्वपूर्ण है। कई रूसी नाटो को शीत युद्ध का अवशेष और अपने देश के प्रति एक मौलिक शत्रुतापूर्ण शक्ति मानते हैं। वे आश्चर्य करते हैं कि पश्चिम ने ऐसा क्यों नहीं किया, भले ही उनका सैन्य गठबंधन, वारसों संधि, भंग हो चुका है। यह एक बड़ा सवाल था, और न तो क्लिंटन प्रशासन और न ही इसके पूर्ववर्तियों ने सबसे संभावित उत्तर प्रदान किया।

1998 में मई के न्यू यॉर्क टाइम्स के एक साक्षात्कार में, जॉर्ज केन्नन, जो संयुक्त राज्य अमेरिका की शीत युद्ध नीतियों के संस्थापक हैं, ने नाटो के पहले चरण के विस्तार की सीनेट की स्वीकृति के प्रभावों की भविष्यवाणी की। केन्नन का मानना है कि एक नया शीत युद्ध बस शुरू हो रहा है। यह निष्कर्ष निकालना कठिन है कि रूसियों की आक्रामकता की भावना विकसित हुई और उनके नीति को प्रभावित किया। मेरे विचार में, यह विस्तार एक गंभीर गलती थी। इसका कोई औचित्य नहीं था। कोई अन्य लोग खतरे में नहीं थे। केन्नन सही थे, लेकिन अमेरिका और नाटो के नेताओं ने विस्तार जारी रखा, जिसमें तीन बाल्टिक देशों का विवादास्पद समावेश भी शामिल था। ये देश जाह्नवादी युग के दौरान रूसी साम्राज्य और सोवियत संघ दोनों के सदस्य थे। उस वृद्धि के परिणामस्वरूप, नाटो अब रूसी संघ की सीमा पर स्थित था।

मॉस्को नाटो के बढ़ते हस्तक्षेप के प्रति अधीर हो रहा था। जब पुतिन ने मार्च 2007 में म्यूनिख सुरक्षा सम्मेलन में बात की, तो उन्होंने गठबंधन को पीछे हटने की चेतावनी दी। 'नाटो के अग्रिम मोर्चे के सैनिक हमारे सीमाओं पर तैनात किए गए हैं,'⁷ पुतिन ने अफसोस जताया। लेखक के अनुसार, नाटो का विस्तार 'एक गंभीर उकसावा है जो विश्वास को कमजोर करता है।' और यह रूसियों के लिए स्पष्ट है कि यह विस्तार किसके खिलाफ है। वारसों संधि के विघटन के बाद, पुतिन ने पश्चिमी भागीदारों द्वारा किए गए वादों पर सवाल उठाना जारी रखा। अध्ययन के अनुसार, अमेरिका के रोमानिया और बुल्गारिया की सरकारों के साथ सैनिकों को उनके सुविधाओं के माध्यम से ले जाने के लिए किए गए समझौतों को अनुचित उकसावा माना गया। 'जॉर्जिया और यूक्रेन को नाटो में शामिल करने की कोशिश करना एक बुरा उदाहरण स्थापित करना था,' गेट्स ने छोटे बुश के बारे में कहा। यह कार्रवाई 'लापरवाही से इस बात की अनदेखी करती है कि रूसियों ने अपने मौलिक राष्ट्रीय हितों के रूप में क्या देखा।'

पश्चिमी (विशेषकर अमेरिकी) नेताओं ने चेतावनी के संकेतों को अनदेखा किया। ओबामा प्रशासन की 2013 और 2014 में यूक्रेन की घरेलू राजनीति में घमंडी भागीदारी, जो प्रदर्शनकारियों को रूस समर्थक राष्ट्रपति को गिराने में मदद करने के लिए थी, सबसे बेशर्म उकसावे के रूप में सामने आई, जिसने तनाव को बढ़ा दिया। प्रतिशोध में, मॉस्को ने क्रीमिया पर कब्जा कर लिया और उसे अपने में मिला लिया, जिससे एक नए शीत युद्ध की शुरुआत हुई। जो बाइडेन प्रशासन ने रूस की महत्वपूर्ण पश्चिमी रियायतों और सुरक्षा गारंटी की मांगों के प्रति ठंडी और मंअपअम प्रतिक्रिया दी। फिर पुतिन ने स्थिति को बढ़ाने का निर्णय लिया। भले ही देश औपचारिक रूप से गठबंधन में शामिल न हो, वाशिंगटन का यूक्रेन को एक राजनीतिक और सैन्य मोहरे के रूप में उपयोग करने का प्रयास यूक्रेनी लोगों के लिए गंभीर परिणाम ला सकता है। इतिहास यह दिखाएगा कि वाशिंगटन ने सोवियत संघ के पतन के बाद रूस के साथ निपटने में एक महत्वपूर्ण नीति त्रुटि की। नाटो के विस्तार के परिणामस्वरूप मॉस्को के साथ संबंधों का टूटना लगभग निस्संदेह नाटकीय था, यदि हिंसक नहीं।⁸ समझदार विशेषज्ञों ने परिणामों के बारे में चेतावनी दी, लेकिन किसी ने नहीं सुनी। अमेरिका की विदेश नीति के अभिजात वर्ग की मूर्खता और घमंड हमें महंगा पड़ रहा है।

निष्कर्ष

पश्चिम, रूस और यूक्रेन के बीच संबंध हमेशा तनावपूर्ण रहे हैं, और पिछले कुछ वर्षों में उन्हें निश्चित रूप से महत्वपूर्ण बाधाओं का सामना करना पड़ा है। यूक्रेन के लिए एक कार्यात्मक लोकतांत्रिक सरकार विकसित करना कठिन रहा है। पिछले 20 वर्षों में, यह अधिकतर पश्चिमी या रूसी नेतृत्व के तहत लगातार अस्थिर रहा है। पश्चिमी सरकारों के लिए रूस के अस्थिर करने वाले प्रभाव और उसके छोटे भाई के प्रति अवैध कार्यों पर उंगली उठाना आसान है। फिर भी, यह महत्वपूर्ण है कि दोनों पक्षों की गलतियों को पहचाना जाए, केवल पूर्वी पक्ष की नहीं। उत्तरी अटलांटिक संधि संगठन का पूर्व की ओर बढ़ना पश्चिम की सबसे बड़ी रणनीतिक गलती है। रूस इस रक्षा सैन्य गठबंधन को एक प्रतिकूल शक्ति और एक वास्तविक और गंभीर खतरे के रूप में देखता है। शीत युद्ध के अंत में, सोवियत नेता मिखाइल गोर्बाचेव को उच्च अधिकारियों से आश्वासन मिला था कि नाटो और पूर्व की ओर नहीं बढ़ेगा। रूसी संघ को टूटे हुए वादे के कारण धोखा और गुस्सा महसूस हुआ। ऐतिहासिक रूप से, जॉर्जिया और यूक्रेन को पश्चिमी देशों के लिए 'प्रतिबंधित' माना गया है क्योंकि वे मातृभूमि के प्रभाव क्षेत्र में हैं।

यह देखते हुए कि सभी महान देश क्षेत्रीय प्रभुत्व की खोज में हैं, रूस की इस क्षेत्र में अपनी प्रभुत्व और शक्ति बनाए रखने की इच्छा और पश्चिमी प्रयासों को इस क्षेत्र में घुसपैठ करने से रोकने की कोशिश समझ में आती है और यह आश्चर्यजनक नहीं है। रूस का क्रीमिया का अधिग्रहण एक सोची-समझी चाल थी, जिसका उद्देश्य देश के भू-राजनीतिक हितों और सांस्कृतिक संबंधों की रक्षा करना था। रूस का यूक्रेनी अलगाववादियों का समर्थन समझ में आता है, यह देखते हुए कि वे एक ऐसे प्रशासन के खिलाफ लड़ रहे हैं, जो कम से कम पश्चिमी समर्थक है और जिसे रूस के प्रति शत्रुतापूर्ण माना जा सकता है। इस मामले में, पश्चिम के लिए यथार्थवादी दृष्टिकोण अपनाना अधिक उपयुक्त है, न कि उदारवादी। जबकि उदारवाद के समर्थकों की प्रशंसा की जा

सकती है जो लोकतंत्रीकरण और मानवाधिकारों को बढ़ावा देते हैं, वे जो समाधान यूक्रेन के संकट के लिए प्रस्तावित करते हैं, वे हिंसा को बढ़ावा देते हैं। भविष्य में रूस और नाटो एक साथ रह सकते हैं, लेकिन फिलहाल, नाटो के पूर्व की ओर विस्तार को रोकना सबसे अच्छा है।

संदर्भ

1. क्लैप, एस. (2022). एक नजर में। यूरोपीय संसदीय अनुसंधान सेवा।
2. क्लैप, एस. (2022). एक नजर में। यूरोपीय संसदीय अनुसंधान सेवा।
3. रूस-यूक्रेन संघर्ष और नाटो: भूमिका, कार्य और शक्तियाँ। (2022, 28 फरवरी)। इंडिया टुडे; इंडिया टुडे वेब डेस्क।
4. इंडिया, बी. आई. (2022, 24 फरवरी)। समझाया: रूस-यूक्रेन संघर्ष में नाटो की भूमिका। बिजनेस इनसाइडर।
5. इंडिया, बी. आई. (2022, 24 फरवरी)। समझाया: रूस-यूक्रेन संघर्ष में नाटो की भूमिका। बिजनेस इनसाइडर।
6. उपरोक्त संदर्भ, संख्या 2।
7. इन, बी. टी. (2022, 25 फरवरी)। रूस-यूक्रेन युद्ध: नाटो क्या है, संघर्ष में इसकी भूमिका क्या है। बिजनेस टुडे।
8. इन, बी. टी. (2022, 25 फरवरी)। रूस-यूक्रेन युद्ध: नाटो क्या है, संघर्ष में इसकी भूमिका क्या है। बिजनेस टुडे।

भारतीय ज्ञान परम्परा के स्रोत

डॉ० सुनील यशवंत व्यवहारे

हिंदी विभागाध्यक्ष, सरस्वती विद्या मंदिर कला महाविद्यालय, किनवट, नांदेड़ (महाराष्ट्र)

हमारी भारतीय ज्ञान परम्परा/सम्पदा केवल अतीत की धरोहर ही नहीं बल्कि मार्गदर्शक भी है। यदि हम इस ज्ञान प्रणाली को अपने में आत्मसात् कर लें तो हम स्वयं के साथ-ही-साथ सम्पूर्ण मानव समुदाय को सुख, समृद्धि और शान्ति की ओर अग्रसर कर सकते हैं। इस भारतीय ज्ञान सम्पदा में 'सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयः' का भाव सन्निहित है, जो विश्व कल्याण की भावना का द्योतक है।

प्राचीन भारतीय ज्ञान परम्परा अति समृद्ध थी तथा इसका उद्देश्य चार चतुष्टय (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) को समाहित करते हुए व्यक्तियों के सम्पूर्ण व्यक्तित्व को विकसित करना था। "जब सम्पूर्ण विश्व अज्ञान रूपी अंधकार में भटकता था?, तब हमारे देश भारतवर्ष के मनीषी/ऋषिगण उच्चतम ज्ञान का प्रसार करके मानव को पशुता से मुक्त करके श्रेष्ठ संस्कारों से संस्कारित करते सभ्य मानव बनाते थे।"

हमारा देश अत्यन्त प्राचीन एवं जीवंत समृद्ध तथा विविधताओं से परिपूर्ण देश है। हमारे यहाँ की संस्कृति सर्वोत्तम, अनोखी, सुन्दर तथा सत्यम शिवम् सुन्दरम् में समाहित है। भारतीय संस्कृति के धार्मिक संस्कार, रीति-रिवाज, परम्पराएँ, मान्यताएँ, जीवन मूल्य, सुसंस्कृत शिष्टाचार, सत्यभाषण, सभ्य भाषा तथा शिष्टाचार आदि अपने आप में विश्व की अन्य संस्कृतियों से पृथक् करते हैं। हमारे यहाँ पृथक्, पृथक् धर्म, भाषा, रहन, सहन, खान-पान, वेश-भूषा तथा स्वभावों (आदतों) वाले लोग प्रेम एवं सद्भाव से सामंजस्य स्थापित करके रहते हैं। इसके अतिरिक्त यहाँ के सांस्कृतिक कार्यक्रम नृत्य-संगीत-कला आदि में विशेषता दृष्टिगोचर होती है। "हमारे देश की ज्ञान परम्परा अद्वितीय ज्ञान तथा प्रज्ञा की प्रतीक है। भारतीय ज्ञान परम्परा में ज्ञान विज्ञान, लौकिक-पारलौकिक तथा भोग-त्याग आदि सभी का अद्भुत मिश्रण समाहित है। भारतीय ज्ञान-विज्ञान की परम्परा सम्पूर्ण विश्व को आलोकित करने वाली है। वैदिक काल से लेकर वर्तमान समय तक प्रकृति एवं वनस्पतियों की पूजा एवं उत्तम उपयोग हेतु विचार-विमर्श की रीति प्रचलित है।"²

भारतीय ज्ञान परम्परा के स्रोतों की संख्या अगणित है परन्तु मुख्य-मुख्य स्रोत इस प्रकार हैं-

1. वेद (ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद, सामवेद)
2. उपनिषद्
3. ब्राह्मण ग्रंथ
4. कृष्ण यजुर्वेद
5. शुक्ल यजुर्वेद
6. श्रीमद् भगवद्गीता
7. रामायण
8. अठारह पुराण
9. उप पुराण
10. महाभारत आदि।

इसके अतिरिक्त भी ज्ञान परम्परा के स्रोत हैं जिनके माध्यम से ज्ञान रूपी प्रकाश समस्त जगत् को प्रकाशित कर रहा है। "भारतीय ज्ञान परम्परा में आध्यात्मिक सूत्रों को इस प्रकार पिरोया गया है जिससे जीव का ईश्वर से एकात्मक भाव उत्पन्न हो तथा वह ईश्वर से अपना सम्बन्ध स्थापित कर सके। प्रभु ने नाम, रूप, गुण तथा लीलाओं का स्मरण, प्रभु का चिन्तन, प्रभु से मिलने का भाव तथा प्रभु की उपासना आदि कल्याणकारी एवं मानव जीवन के लिए उपयोगी हैं।"³

इस संदर्भ में गोस्वामी तुलसीदास जी का श्रीरामचरित मानस में कथन इस प्रकार है-

"व्यापक अकल अनीह अज,
निर्गुण नाम न रूप।
भगत हेतु नाना विधि,
करत चरित्र अनूप॥"⁴

इसी प्रकार सूरदास जी ने सूरसागर में परमात्मा के स्वरूप को इस प्रकार सुन्दर ढंग से व्यक्त किया है-

“अलख अगोचर को लखै,
ब्रज में सब कोइ धाय।
प्रेम योग की भूमि में,
अगुन-सगुन बन जाय।”⁵

हमारी भारतीय ज्ञान परम्परा सांस्कृतिक, भौतिक, परिपूर्ण भण्डार है। हम प्राचीन ज्ञान और सिद्धान्तों को भारतीय ज्ञान परम्परा से जोड़कर आधुनिक शिक्षा प्रणाली को समृद्ध शिक्षा प्रणाली का स्वरूप निर्मित कर सकते हैं। हमें छान्दोग्य उपनिषद् में इस प्रकार का उल्लेख प्राप्त होता है-

“सर्वं खल्विदम् ब्रह्म”⁶

अर्थात् यह समस्त विश्व ही ब्रह्म है। इसी एक मूल तत्त्व से सृष्टि का निर्माण हुआ है और यही भारतीय दर्शन में एकत्व का परिकल्पना का आधार है। वर्तमान युग कलियुग अर्थात् विज्ञान का युग है। जब विज्ञान प्राथमिक अवस्था में था, तब अथवा उससे भी पूर्व हमारे प्राचीन भौतिक विज्ञान के प्रसिद्ध वैज्ञानिक कणाद ऋषि वैशेषिक सूत्रों के प्रणेता बन चुके थे।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में इस बात का स्पष्ट संकेत प्राप्त होता है कि भारतीय ज्ञान परम्परा के अस्तित्व को पुनर्जीवित करने के लिए वेदों की ओर वापस लौटने अर्थात् वेदाध्ययन की अनिवार्यता को प्राथमिकता प्रदान की गयी है। इससे स्पष्ट होता है कि वेद ही ज्ञान परम्परा के वास्तविक स्रोत हैं। हो सकता है कि भविष्य में विद्यार्थी जीवन में ही गुरुकुलों एवं विद्यार्जन आश्रमों की भाँति विद्यालयों एवं महाविद्यालयों में छात्र-छात्राओं को वेद-वेदांगों का अध्ययन कराया जाये। इस अध्ययन से सर्वाधिक लाभ यह होगा कि पुनः भारतभूमि चरक, वराह, मिहिर, आर्यभट्ट, सुश्रुत, नागार्जुन, भास्कराचार्य, द्रोणाचार्य, परशुराम, विश्वामित्र, के साथ-ही-जगदीशचन्द्र बसु, चन्द्रशेखर वेंकटरमन, डॉ. अब्दुल कलाम, श्रीनिवास रामानुज, गौतम बुद्ध, स्वामी विवेकानन्द, रामानुजाचार्य, तथा आदि गुरु शंकराचार्य जैसे आचार्यों से शुशोभित हो सके। भारतीय ऋषि-मुनियों के अपार ज्ञान कोश पर शोध करके मानव अपनी खोई हुई आध्यात्मिक शक्ति को प्राप्त कर सकता है तथा भारतवर्ष के साथ-ही-साथ सम्पूर्ण विश्व की मानव जाति को कल्याण की प्राप्ति करा सकता है।

“भारतीय शिक्षा पद्धति विश्व की सर्वोच्च गुणवत्ता वाली पद्धति है। शिक्षा के माध्यम से व्यक्ति का विकास होता है तथा शिक्षा ही व्यक्ति के अभ्युदय में सहायक बनती है कहने का तात्पर्य यह है कि शिक्षा ही संस्कार (सभ्यता) की प्रथम सीढ़ी है, जिस पर चढ़कर मनुष्य सभ्य मनुष्य बनता है। वह सभ्य, सुसंस्कृत होकर पूर्णत्व को प्राप्त करता है। हमारे साहित्य की मूल अवधारणा यही है कि हमारे देश भारतवर्ष ने जब दुनिया को शून्य (0) का ज्ञान कराया तब ही दुनिया ने गिनती सीखी है।”

श्रीमद् भगवद्गीता में भी यह वर्णित है कि ‘श्रद्धावान लभते ज्ञानम्’ अर्थात् श्रद्धा से ही ज्ञान प्राप्त होता है। इसी प्रकार महाभारत में भी हमें यह वर्णन मिलता है कि-‘नास्ति विद्या समम् चक्षुः’ अर्थात् विद्या के समान कोई अन्य नेत्र नहीं है। यहाँ हम विद्या को यदि ज्ञान के नाम से सम्बोधित करें तो किसी प्रकार की अतिशयोक्ति नहीं होगी। यही कारण है कि भारतीय ज्ञान परम्परा को प्रकाश पुंज कह सकते हैं। ज्ञान, चरित्र तथा लोक संस्कृति की त्रिवेणी ही मानव जीवन को लोकमंगलमय बनाती है। इस आधार पर हम इसको जीवन का तीर्थराज (प्रयाग) कह सकते हैं। भविष्य में हमारी भारतीय ज्ञान परम्परा प्राचीनकाल की भाँति वैदिक मूल्यों पर आधारित मानव को सभ्य एवं सुसंस्कृत बनाकर उसके अन्दर से अज्ञानता रूपी अंधकार को मिटाकर ज्ञान रूपी प्रकाश पुंज की ओर ले जाकर लोकमंगल के पथ पर स्थापित करेगी।

भारतीय ज्ञान परम्परा के माध्यम से सैद्धान्तिक शिक्षा की अपेक्षा प्रयोगात्मक शिक्षा पर बल देने की आवश्यकता है। यह हमें कौशल विकास की ओर ले जाकर रोजगारोन्मुख बनाएगी, जिससे हम विकास का मार्ग आलोकित कर सकें। शिक्षा का स्तर ऐसा हो जो समाज के उत्थान के लिए हो। शिक्षा मनुष्य के अभ्युदय के लिए होती है। आज हजारों वर्ष व्यतीत हो जाने के बाद भी ज्ञान परम्परा वैसी ही स्वच्छ एवं वैज्ञानिक कसौटी कर खरी है। वैदिककाल का ज्ञान उज्ज्वल समुच्चय के विश्लेषण पर केन्द्रित है।

निष्कर्ष

भारतीय ज्ञान परम्परा के मूल स्रोत हमारे धार्मिक ग्रंथ हैं। धार्मिक ग्रंथों में वेद सर्वोच्च स्थान पर हैं। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद इनमें ज्ञान का अक्षय भण्डार समाहित है। इसके अतिरिक्त उपनिषद्, भाष्य, ब्राह्मण ग्रंथ, कर्मकाण्ड ग्रंथ, श्रीमद्भगवद्गीता, रामायण, महाभारत, पुराण, उपपुराण, श्रीरामचरितमानस तथा अनेक साहित्यिक ग्रंथों में ज्ञान समाहित है। ज्ञान की पराकाष्ठा हमारे ऋषि-मुनियों द्वारा प्रतिपादित है, यदि देखा जाये तो वास्तव में ऋषि-मुनि ही ज्ञान परम्परा के आदि दृष्टा एवं प्रचारक-प्रसारक माने जा सकते हैं। योग की साधना एवं तपबल पर वे आज भी हमारे समक्ष अदृश्य रूप में उपस्थित हैं। ईश्वर केवल धर्म को स्थापित कर आतताइयों को समाप्त करके लीला समाप्त कर देते हैं, परन्तु ऋषि-मुनि उस ज्ञान परम्परा को निरन्तर प्रवाहित करते रहते हैं।

संदर्भ

1. भारतीय ज्ञान सम्पदा, प्रा. टेकाले विठ्ठल, पृ. सम्पादकीय, संस्करण 2025, समता प्रकाशन, रुरा कानपुर देहात।
2. भारतीय ज्ञान परंपरा व संस्कृति संधान-डॉ. संदीप कुमार पाण्डेय, पृ. 13, संस्करण 2025, समता प्रकाशन रुरा, कानपुर देहात।
3. भारतीय ज्ञान परम्परा के मूल्यों का अनुशीलन-डॉ. कलावती गाडरिया, पृ. 74, संस्करण 2025, संकल्प प्रकाशन कानपुर।
4. श्रीरामचरितमानस-गोस्वामी तुलसीदास, बालकाण्ड।
5. सूरसागर-सूरदास
6. छान्दोग्योपनिषद्
7. भारतीय ज्ञान परम्परा के मूल्यों का अनुशीलन-डॉ. कलावती गाडरिया, पृ. 85, संस्करण 2025, संकल्प प्रकाशन कानपुर।

मनुस्मृति और श्रीमद्भगवद्गीता में त्रिगुणों की तुलना एवं दैनिक जीवन में अनुप्रयोग

पटेल दिपिकाबेन बबाभाई

पीएच.डी. स्कॉलर (एम.ए., एम.फिल.), संस्कृत विभाग, एच.एन.जी.यू, पाटन

सारांश :

यह शोध-पत्र भारतीय दार्शनिक परंपरा के मूलभूत सिद्धांत त्रिगुणों (सत्त्व, रजस्, तमस्) पर आधारित है, जिसका विस्तृत विवेचन मनुस्मृति और श्रीमद्भगवद्गीता दोनों में किया गया है। यह अध्ययन दोनों ग्रंथों में त्रिगुणों की अवधारणा, उनके लक्षणों, और कर्मों पर उनके प्रभाव की तुलना करता है। जहाँ मनुस्मृति मुख्य रूप से त्रिगुणों को पुनर्जन्म और सामाजिक आचार के संदर्भ में व्याख्यायित करती है, वहीं भगवद्गीता उन्हें मोक्ष (गुणातीत अवस्था) प्राप्त करने के साधन के रूप में प्रस्तुत करती है। इस शोध का उद्देश्य आधुनिक जीवन में इन शाश्वत सिद्धांतों के व्यावहारिक अनुप्रयोग को भी स्पष्ट करना है।

प्रस्तावना :

भारतीय दर्शन में, विशेष रूप से सांख्य दर्शन में, प्रकृति को तीन मूलभूत घटकों या गुणों से निर्मित माना गया है: सत्त्व (सुख/सत्यता/प्रकाश), रजस् (दुःख/क्रियाशीलता/वेग), और तमस् (मोह/अज्ञान/जड़ता)।^१ ये तीनों गुण ब्रह्मांड की हर वस्तु और प्रत्येक जीव के मन, बुद्धि, और व्यवहार को प्रभावित करते हैं। मनुस्मृति^२ और श्रीमद्भगवद्गीता^३ दोनों ही इन गुणों के प्रभाव और उनसे मुक्ति के मार्ग का विस्तृत वर्णन करती हैं।

१. त्रिगुणों के लक्षण और प्रभाव :

मनुस्मृति^४ और भगवद्गीता^५ में त्रिगुणों के लक्षणों और उनसे उत्पन्न होने वाले बंधनों का वर्णन किया गया है:

- (१) सत्त्व गुण (प्रकाश और सुख) : सत्त्व गुण का स्वरूप शुद्धता, प्रकाश और सुख से युक्त है। भगवद्गीता (१४/६) इसे प्रकाशक (ज्ञान देने वाला) और अनघ (पाप रहित) बताती है। सत्त्व, प्राणी को सुख की आसक्ति और ज्ञान के बंधन से बाँधता है। मनुस्मृति (१२/२६) के अनुसार, इसके मुख्य लक्षण ज्ञान (प्रकाश), धर्माचरण, विवेक और सुख की अनुभूति हैं। जब यह गुण बढ़ता है, तो व्यक्ति में निर्मलता, शांति, सत्य के प्रति रुचि और मानसिक प्रसन्नता की वृद्धि होती है। यह गुण व्यक्ति को श्रेष्ठ कर्मों और ज्ञान प्राप्ति की ओर प्रेरित करता है।
- (२) रजस् गुण (क्रियाशीलता और आसक्ति) : रजस् गुण का स्वरूप उत्कट इच्छा, क्रियाशीलता और आसक्ति से भरा है। भगवद्गीता (१४/७) इसे रागात्मक (आसक्ति रूप) बताती है, जो तृष्णा और संग (कर्मफल में आसक्ति) से उत्पन्न होता है। यह गुण प्राणी को कर्मों में प्रवृत्ति और फल की इच्छा से दृढ़तापूर्वक बाँधता है। मनुस्मृति (१२/२८) में इसके लक्षण राग-द्वेष की प्रधानता, तीव्र क्रियाशीलता और कर्मों में आसक्ति बताए गए हैं। रजोगुण की वृद्धि होने पर व्यक्ति में अशांति, लोभ, अत्यधिक परिश्रम, और निरंतर प्रयास करने की बेचौनी उत्पन्न होती है, जिसका मूल कारण इच्छाओं की पूर्ति की लालसा है।
- (३) तमस् गुण (अज्ञान और जड़ता) : तमस् गुण का स्वरूप अंधकार, अज्ञान और जड़ता है। भगवद्गीता (१४/८) इसे अज्ञानज (अज्ञान से उत्पन्न) बताती है, जो सभी देहधारियों को प्रमाद, आलस्य और निद्रा से बाँधता है। यह गुण प्राणी को मोह और निष्क्रियता में धकेलता है। मनुस्मृति (१२/२९) के अनुसार, इसके लक्षण अज्ञान (मोह), आलस्य, प्रमाद और किसी भी कार्य को करने में शिथिलता हैं। तमोगुण के बढ़ने पर व्यक्ति में विवेकहीनता, उदासी, कर्तव्य के प्रति उपेक्षा, और अंधकारपूर्ण विचार हावी हो जाते हैं। यह गुण पतन और अधोगति का कारण बनता है।

यह दोनों ग्रंथों में त्रिगुणों का वर्णन समान दार्शनिक आधार पर होते हुए भी, उनके उद्देश्य और परिणाम की व्याख्या में अंतर है:

२. फल और गति :

महर्षि मनु का मुख्य ध्यान त्रिगुणों के आधार पर कर्मों के फल और अगले जन्म की गति निर्धारित करने पर है।

सात्त्विक कर्म : वेद ज्ञान, तपस्या, ज्ञान, पवित्रता, इन्द्रियनिग्रह, धर्मक्रिया, और आत्मचिंतन से सात्त्विक मनुष्य उत्तम गति देवलोक प्राप्त करते हैं।^६

राजस कर्म : यज्ञ, दान, अर्थोपार्जन से राजस मनुष्य मध्यम गति मनुष्य लोक प्राप्त करते हैं।^७

तामस कर्म : लोभ, हिंसा, ईर्ष्या, क्रूरता, प्रमाद और अधर्म से तमस मनुष्य निकृष्ट गति पशु-पक्षी, जड़योनि प्राप्त करते हैं।^८

भगवद्गीता (१४/१४-१५): गीता भी गति (पुनर्जन्म) का वर्णन करती है, लेकिन उसका जोर केवल गति पर नहीं है, बल्कि जीवन में गुणों के प्रभाव को पहचान कर उनसे मुक्त होने पर है। सत्त्व में मरने वाला मनुष्य उत्तम लोक (स्वर्ग) को, राजस्व में करने वाला मनुष्य लोक को और तमस्व में मरनेवाला कीटक-पशु योनि (नर्क) को प्राप्त करता है।^९

३. गुणातीत अवस्था :

मनुस्मृति मुख्य रूप से धर्म (कर्तव्य) और शुद्धाचरण पर जोर देती है, जिसका अंतिम फल मोक्ष है। हालाँकि, वह 'गुणातीत' स्थिति का सीधा और स्पष्ट वर्णन नहीं करती, बल्कि यह बताती है कि शुद्धतम सत्त्व से मोक्ष प्राप्त होता है।^{१०}

भगवद्गीता गीता का अंतिम लक्ष्य गुणातीत होना है। भगवान् कृष्ण बताते हैं कि केवल सत्त्व गुण को बढ़ाना ही पर्याप्त नहीं है, क्योंकि सत्त्व भी बाँधता है। गुणातीत वह है जो तीनों गुणों के उदय और अस्त होने पर विचलित नहीं होता और समभाव में स्थित रहता है।^{११}

४. दैनिक जीवन में त्रिगुणों का अनुप्रयोग :

आधुनिक जीवन में त्रिगुणों के सिद्धांत का उपयोग आत्म-विकास और बेहतर जीवन शैली के लिए किया जा सकता है।

(१) आहार :

- सात्विक आहार :- ताजा, हल्का, पौष्टिक भोजन (फल, सब्जियाँ) मन को शांत और बुद्धि को एकाग्र करता है। यह आध्यात्मिक साधना के लिए आवश्यक है।
- राजस आहार :- अत्यधिक मसालेदार, गर्म, या उत्तेजक भोजन (चाय, कॉफी) अस्थायी ऊर्जा देता है, लेकिन बेचौनी और तनाव पैदा करता है।
- तामस आहार :- बासी, अत्यधिक तला-भुना, या नशीला भोजन (शराब, तंबाकू) चेतना को मंद और शरीर को आलसी बनाता है।

(२) कार्य और कर्म :

- सात्विक कर्म :- कार्य को कर्तव्य मानकर, निष्काम भाव से, बिना फल की चिंता किए करना (योग और ज्ञान का मार्ग)। यह कार्य संतुष्टि और दीर्घकालिक सफलता देता है।
- राजस कर्म :- महत्वाकांक्षा, फल की लालसा और श्रुद्धे पाना हैश की भावना से प्रेरित होकर अत्यधिक तीव्रता से कार्य करना। यह त्वरित सफलता तो देता है, पर मानसिक अशांति भी लाता है।
- तामस कर्म :- आलस्य, और प्रमाद के साथ कार्य करना, या गलत उद्देश्यों से प्रेरित होकर कार्य करना।

(३) मानसिक स्वास्थ्य :

सत्त्व की वृद्धि से ध्यान, एकाग्रता, और सकारात्मकता बढ़ती है, जिससे तनाव कम होता है। रजस्व का नियंत्रण बेचौनी और क्रोध को शांत करता है। और तमस्व को दूर करना उदासी, निष्क्रियता और अवसाद से मुक्ति दिलाता है।

५. निष्कर्ष :

मनुस्मृति और श्रीमद्भगवद्गीता दोनों ही भारतीय आचार संहिता और दर्शन के स्तंभ हैं। मनुस्मृति त्रिगुणों को सामाजिक व्यवस्था और कर्मफल की नींव के रूप में स्थापित करती है, जबकि भगवद्गीता इसे आध्यात्मिक मुक्ति (मोक्ष) का मार्ग मानती है।

दैनिक जीवन में, यह त्रिगुण सिद्धांत हमें आत्म-निरीक्षण का एक स्पष्ट मापदंड देता है: सत्त्व को बढ़ाना, रजस्व का बुद्धिमानी से उपयोग करना, और तमस्व को कम करना। यह मार्गदर्शन मनुष्य को केवल धार्मिक नहीं, बल्कि एक संतुलित, जागरूक और सफल जीवन जीने में सहायता करता है।

पादटीप

१. सांख्यकारिका - १२
२. मनुस्मृति - १२/२४
३. श्रीमद्भगवद्गीता - १४/५
४. मनुस्मृति - १२/२६-२८
५. श्रीमद्भगवद्गीता - १४/ ६-८
६. मनुस्मृति - १२/३१, ४०
७. वही, १२/४०
८. वही, १२/४०
९. श्रीमद्भगवद्गीता - १४/१८
१०. मनुस्मृति - १२/५०
११. श्रीमद्भगवद्गीता - १४/२२-२५

સંદર્ભ ગ્રંથ

૧. મનુસ્મૃતિ: - શ્રીકુલ્લૂક ભટ્ટપ્રણીત, 'મન્વર્થમુક્તાવલી' ટીકાસહિત 'મણિપ્રભા'કલ હિન્દીવ્યાખ્યોપેતા, શ્રી પં. હરગોવિન્દશાસ્ત્રી, ચૌખમ્બા સંસ્કૃત ભવન, સં.- તૃતીય, વિ. સં. ૨૦૭૮
૨. સાંખ્યકારિકા - ડૉ. દેવેન્દ્રનાથ પાળડેય (રીડર), જગદીશ સંસ્કૃત પુસ્તકાલય જયપુર
૩. શ્રીમદ્ભગવદ્ગીતા - ('તત્ત્વાવેશનો હિન્દી ટીકા'નો ગુજરાતી અનુવાદ), જય દલાલ ગાયન્દકા, ગીતા પ્રેસ, ગોરખપુર, સં. ૨૦૭૮
૪. મનુસ્મૃતિ - શાસ્ત્રી ગિરિજાશંકર માયાશંકર, સસ્તુ સાહિત્ય વર્ધક કાર્યાલય, ૨૦૨૪

जयशंकर प्रसाद के स्कन्दगुप्त नाटक में अनंतदेवी का चरित्रांकन

डॉ० सविता

एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, माता सुंदरी कॉलेज फॉर वूमैन, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

शोध सार: जयशंकर प्रसाद का 'स्कन्दगुप्त' नाटक 1928 में प्रकाशित हुआ था और ये एक ऐतिहासिक नाटक था। स्कन्दगुप्त तीसरी से पांचवी शताब्दी तक राज करने वाले गुप्त वंश के मगध सम्राट थे। उन्होंने मध्य एशियाई हूणों से युद्ध किया था और विजयी होकर अपने राज्य को सुरक्षित किया। 'स्कन्दगुप्त' नाटक में राजनैतिक संघर्ष, पारिवारिक षड्यंत्र, गृह क्लेश, विमाता का अपने पुत्र पुरगुप्त के लिए राज्य सिंहासन पाने की लालसा हेतु षड्यंत्र जो विमाता अनंतदेवी इस ऐतिहासिक नाटक में विद्यमान है। नाटक में कुमारगुप्त की कई रानियाँ होने के प्रसंग जिनमें से अनंतदेवी भी एक हैं जो मगध के सिंहासन पर अपने पुत्र पुरगुप्त को आसीन करने के उद्देश्य से षड्यंत्र करती है और स्कन्दगुप्त का वध करवाने उनकी माता और अपनी सौत बड़ी रानी देवकी का भी वध करवाने का प्रयास करती हैं। कुमारगुप्त की छोटी रानी अनंतदेवी जो कि एक षड्यंत्रकारी नकारात्मक पात्रा है। वह अपने स्वार्थ और महत्त्वाकांक्षाओं को पूरा करने के लिए किस हद तक गिर सकती है। उसी का वर्णन करना इस आलेख का उद्देश्य है।

बीज शब्द : - नाटक, ऐतिहासिक, संघर्ष, प्रयास, चरित्र, महत्त्वाकांक्षा और साम्राज्य।

शोध की प्रस्तावना : - जयशंकर प्रसाद के नाटकों में ऐतिहासिक पात्रों की भूमिका मुख्य रूप से देखी जा सकती है। किन्तु इसी के साथ-साथ ही गौण पात्रों की भूमिका भी नाटकों में चरित्र की दृष्टि से सशक्त रूप में देखी जा सकती है। डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल ने सारिका पाक्षिक मार्च 1980 अंक में ठीक ही लिखा है कि - “बर्तन को जिसमें आप कुछ रखें। आप उसमें चरित्र रखते हैं। चरित्र कहते हैं कि जो चरै-ति अर्थात् जो डायनेमिक (गतिशील) हो, जो अपना जीवन जीता हो।” इसलिए शास्त्रीय दृष्टि से देखा जाए तो पात्र या चरित्र ही वह माध्यम या साधन है जिसके द्वारा रचना का कार्य व्यापार घटित होता है, गतिशील होता है। नाटक में पात्रों का संघर्ष रहता है जैसा कि स्कन्दगुप्त में है। इस विवेच्य नाटक में नायक स्कन्दगुप्त को बाह्यतः दो-दो स्तरों पर विरोधियों से संघर्ष करना पड़ता है और अपने को सुरक्षित भी रखना पड़ता है। पहला संघर्ष पूर्णतया राजनीतिक और हूण हमलावरों खिगलादि से होता है। दूसरा इसी के साथ-साथ राजनीतिक पारिवारिक स्तर पर भी होता है। वह अपने ही परिजनों से जिनकी सूत्रधार और सर्वोपरि सक्रिय पात्रा है - अनंतदेवी है। इस नाटक में मगध के सम्राट कुमारगुप्त की छोटी रानी, पुरगुप्त की माता, स्कन्दगुप्त की विमाता और ज्येष्ठा महारानी देवकी की सौत - अनंतदेवी है। वह मुख्य रूप से इतिहासपुष्ट चरित्र है किन्तु स्व-कल्पना है। धारणाओं का नाटकोचित समावेश कर जयशंकर प्रसाद ने जैसे पूर्व प्रसिद्ध - कैकेयी और मंथरा जैसे चरित्रों से प्रेरित और प्रभावित होकर उनके ही समान अनंतदेवी को नाटक में प्रस्तुत किया है। हम दूसरे शब्दों में यह कह सकते हैं कि नारी हृदय की जिनती भी दुर्बलताएं हो सकती हैं, वह सब अनंतदेवी के चरित्र में दिखलाई देती हैं। इनका चरित्र जैसे 'त्रिया चरित्तर' का पूंजीभूत प्रमाण है। नाटक में प्राप्त उसका चरित्र रूप दिखलाई दे रहा है।

मगध-रानी अनंतदेवी अति की महत्त्वाकांक्षिणी, पुत्र मोह से ग्रस्त, अतिशय अधिकार लोलुप और सब मिलाकर 'वृद्धस्थ भार्या' वाली परम्परागत धारणा को पुष्ट करने वाली युवा नारी है। वह अनिंद्य सुन्दरी, कामातुर और अतृप्ता दिखलाई पड़ रही है। वह अपना उल्लू सीधा करने के लिए वह अच्छे से अच्छे पुरुषों को जैसे भटार्क और विजया को उल्लू बना सकती है, निरपराध और सद्जनों के जीवन-मार्ग को अपने महत्त्वाकांक्षा-मार्ग से हटाने के लिए, कंटकित ही नहीं कर सकती बल्कि वह अपने जीवन तक को समाप्त करने के प्रयास कर सकती है। यथा देवकी-प्रसंग में देखिए तो कठोरता और स्वार्थान्धता में किसी से नाना और स्वयं उसके ही परिजनों तक की हत्याएं करवा सकती है। यहाँ तक कि अनंतदेवी स्वयं के पति कुमारगुप्त (मगध सम्राट) तक की हत्या करवा सकती है। इतना ही नहीं वह अपना काम सिद्ध करने के लिए अपने मादक यौवन को दाव पर लगा सकती है। और कुमारगुप्त को मरवाने का षड्यंत्र भी कर सकती है भटार्क के साथ मिलकर। तो अनंतदेवी पतन की किसी भी सीमा तक निम्नस्तरीय रूप में गिर सकती है। इस प्रकार वह एक कुटिल नारी है छल-कपट प्रपंच से सराबोर है। ईर्ष्या भाव उसका प्रमुख गुण है। लालच के वशीभूत होकर अनंतदेवी अपने पति कुमारगुप्त की हत्या करवाती है। उसने इस नाटक में यही किया है। जैसे - “अपने स्वार्थ के अन्धेपन में ही वह पति मगध-नरेश कुमारगुप्त का वध कराती है, सौतेले पुत्र स्कन्दगुप्त के विरोध में षड्यंत्र रचती है, देवी-तुल्य देवकी की हत्या की चेष्टा करती है, परपुरुष भटार्क के साथ मद्यपान करके कामुक चेष्टाएं करती है, राष्ट्र-द्रोहिणी होकर साम्राज्य के विरुद्ध विदेशियों (हूणों) की सहायता करती है।” इस प्रकार, “जानि न जाइ नारि गति, भाई” “त्रिया चरित- देवो न जानति कुतौ मनुष्या”, “अधम ते अधम हीनमता नारि” आदि सभी लौकोक्तियाँ अनंतदेवी पर एकदम सटीक बैठती हैं। इसलिए कहा जाता है कि त्रिया चरित्र को कोई भी आज तक नहीं जान पाया है। वह जो चाहे कर सकती है जबकि स्त्री को ममत्वशील सहन की मूर्ति माना जाता है किन्तु स्कन्दगुप्त नाटक में वह पाप कार्य करती है वो भी थोड़े से कामसुख और लालच के लिए?

प्रसाद जी के नाटकों में स्वार्थ भी अपने-अपने स्वार्थ को पूरा करने के लिए प्रयुक्त हुआ है। और नाटक का प्रत्येक पात्र भी पात्रानुकूल है। इसलिए देश-प्रेम के सम्बन्ध में डॉ० जगन्नाथ प्रसाद शर्मा ने 'प्रसाद के नाटकों का शास्त्रीय अध्ययन' में कहा है कि - "इसका देश-प्रेम किसी की सहायता अथवा सैन्य बल पर आश्रित नहीं है।" यहाँ ऐसा ही चरित्र अनंतदेवी का दिखलाई दे रहा है। स्कन्दगुप्त नाटक में यही स्थिति देखी जा सकती है। अनंतदेवी धृतराष्ट्र की तरह पुत्र मोहान्ध तथा कैकेयी मंथरा की तरह भयंकर षड्यंत्रकारिणी है। कुटिलता और क्रूरता की वह साकार प्रतिमा है तथा इतनी अधिक चतुर भी है भटार्क तक उसके सम्बन्ध में यही सोचता है कि, "एक दुर्भेद्य नारी हृदय में विश्व-प्रहैलिका का रहस्य-बीज है। ... देखूँ, गुप्त साम्राज्य के भाग्य की कुंजी यह किधर घुमाती है।" यहाँ पर भी प्रेम के क्षेत्र में भी वह एकदम अतृप्ता और वासना से भरी हुई भूखी ही लगती है। अनंतदेवी के पर्याप्त समर्थक भटार्क की यह धारणा भी सही दिखलाई दे रही है कि - "इसकी आँखों में काम-पिपासा के संकेत अभी उबल रहे हैं, अतृप्ति की चंचल प्रवंचना कपोलों पर रक्त होकर क्रीड़ा कर रही है, हृदय के श्वासों की गरमी विलास का सन्देश वहन कर रही है।"⁴

निष्कर्ष

वस्तुतः अनंतदेवी अत्यन्त काइयाँ और बुरे एवं घृणित स्वभाव वाली भी है। वह प्रत्येक परिस्थितिवश हर प्रकार का अभिनय करती है तथा अपने पाखण्डी-आडम्बरी और कामनिका स्वरूप को भी व्यक्त करती है। 'क्षणे रूष्टा, क्षणे तुष्टा' की स्थिति नजर आती है। वह स्कन्द के विरुद्ध हर सीमा तक नीचे भी उतरी है, सौत देवकी को मरवाने का प्रयास कराती है तथा रंगे हाथों पकड़े जाने पर स्कन्द से अनंतदेवी कहती है कि "तुम भी मेरे पुत्र हो ... क्षमा करो सम्राट" ऐसा कहकर क्षमायाचना करती है। दूसरी ओर, जिस विजया को उसने पुरगुप्त की भावी महारानी बनवाने का लालच दिया था, उसी विजया को, विरोधी हुआ जानकर अनंतदेवी विजया को तिरस्कृत भी बुरी तरह से करती है - कहती है - "तुच्छ स्त्री! तू जानती है कि किसके साथ बात कर रही है? ... जा, जा, ले अपने भटार्क को, मुझे ऐसे कीट पतंगों की आवश्यकता नहीं।" यहाँ पर भी अनंतदेवी के घटियापन का अस्तित्व दिखलाई पड़ रहा है। विजया का तिरस्कार करते हुए आवेश भरे कथन में वह जैसे अपनी स्थिति को स्वयं उजागर करते हुए कहती है " ... मैं हूँ अनंतदेवी, तेरी कूटनीति के कलंकित कानन की दावाग्नि, तेरे गर्व-शैल-श्रृंग का वज्र। मैं वह आग लगाऊंगी जो प्रलय के समुद्र से भी न बुझे।" और उसने निश्चित रूप से नाटक में किया भी यही है। अनेकांश में वह यही करती है। "वह चारों ओर उथल-पुथल कर देती है, वह साम्राज्य को छिन्न-भिन्न कर देना चाहती है। उसके कारण ही सम्पूर्ण साम्राज्य अंधोगति को प्राप्त होता है, अन्तर्कलह छिड़ जाता है, बाह्य आक्रमण होते हैं जिससे साम्राज्य की सुरक्षा खतरे में पड़ जाती है। इस तरह से हूणों के नृशंस अत्याचारों से मालव आक्रान्त हो उठता है, मालव का पतन हो जाता है तथा उसी के षड्यंत्र से स्कन्दगुप्त और उसकी सेना कुमा के बाँध में बहने लगती है।"⁵

इतना सब कुछ होने के बाद भी वह स्कन्दगुप्त से क्षमा प्राप्त कर लेती है और पुत्र पुरगुप्त को स्वयं स्कन्दगुप्त ही अपने सौतेले भाई पुरगुप्त को राज्याधिकार प्रदान कर देता है। युवराज का तिलक करके उसको मगध सत्ता का स्वामी बना देता है जिससे राज्य सुरक्षित रहकर अतिशील बन जाए। इस प्रकार अनंतदेवी नाटक के खल पात्रों में सर्वोपरि सिद्ध होती है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल - सारिका पाक्षिक: मार्च 1980, अंक 'ऐतिहासिक नाटक और गौण पात्र'।
2. जयशंकर प्रसाद - स्कन्दगुप्त नाटक, पृष्ठ संख्या - 67
3. डॉ० जगन्नाथ शर्मा - प्रसाद के नाटकों का शास्त्रीय अध्ययन, पृष्ठ संख्या - 160
4. जयशंकर प्रसाद - स्कन्दगुप्त नाटक, पृष्ठ संख्या - 76
5. जयशंकर प्रसाद - स्कन्दगुप्त नाटक, पृष्ठ संख्या - 22

भारत में कौशल विकास और व्यावसायिक शिक्षा: एक समकालीन विश्लेषण

कामेश्वर प्रसाद

शोधार्थी, शिक्षाशास्त्र संकाय, बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

डॉ० शिव शंकर प्रसाद

शोध निर्देशक, एसोसियट प्रोफेसर सह विभागाध्यक्ष, दर्शनशास्त्र विभाग, एम.एस. कॉलेज, मोतिहारी

सार-संक्षेप:

वर्तमान समय में भारत की व्यावसायिक शिक्षा प्रणाली समय की मांग के अनुरूप अधिक लचीला, उद्योग-केंद्रित और सामाजिक रूप से स्वीकार्य बनाने की आवश्यकता है। भारत के पास युवा लोगों की बहुत बड़ी जनसंख्या है, फिर भी उनमें कौशल की भारी कमी है। 19 से 24 साल के केवल 5 प्रतिशत युवाओं को ही कोई औपचारिक काम की ट्रेनिंग मिल पाती है। 1966 के कोठारी आयोग से लेकर अब तक की सरकारी संस्थाएँ इस दिशा में विकास के लिए नीतियाँ निर्धारण एवं उनका कार्यान्वयन करती रही हैं। परंतु कुल आठ मुख्य बाधाएँ इस प्रगति में बाधक रही हैं। इनमें सबसे बड़ी समस्याएँ हैं: हाथ से किए जाने वाले काम के प्रति समाज की नकारात्मक सोच, सामान्य स्कूली शिक्षा और टेक्निकल ट्रेनिंग को पूरी तरह से अलग रखना, छात्रों को व्यावहारिक प्रशिक्षण का अभाव, और अनुभवी प्रशिक्षकों की कमी। हाल में किये गए प्रयासों जैसे 'स्किल इंडिया' और राष्ट्रीय शिक्षा नीति (एन.ई.पी.) 2020 का भी मूल्यांकन किया गया है। एन.ई.पी. 2020 का एक महत्वाकांक्षी लक्ष्य है कि 2025 तक 50 प्रतिशत छात्रों को व्यावसायिक शिक्षा दी जाए। एन.ई.पी. 2020 ने क्लास 6 से ही इंटरशिप शुरू करके और इस ट्रेनिंग को सामान्य शिक्षा में एकीकृत कर स्थिति में सुधार किया है। परंतु नीतियों को समुचित एवं प्रभावी ढंग से लागू किये जाने से ही सफलता संभव है।

मुख्य-शब्द: व्यावसायिक शिक्षा, युवा जनसंख्या, कौशल विकास, राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020, टेक्निकल ट्रेनिंग, कोठारी आयोग, इंटरशिप।

परिचय:

किसी राष्ट्र के आर्थिक विकास की दिशा उसके मानव पूंजी की क्षमताओं और तत्परता से से जुड़ी होती है। भारत जैसे देश के लिए, जहाँ 15 से 29 वर्ष के युवाओं की संख्या देश की कुल जनसंख्या का 27.2 प्रतिशत से अधिक है। इस स्थिति में औपचारिक शिक्षा प्रणाली श्रम परिदृश्य की आवश्यकताओं के अनुरूप कौशल विकास का कार्य करे, इस की आवश्यकता है।

यह वर्तमान विश्लेषण भारत में व्यावसायिक शिक्षा और कौशल विकास के व्यापक आख्यान को समझने के दृष्टिकोण से किया गया है जिसमें संस्थागत विकास के संबंध में जानकारी प्राप्त की गई है। साथ ही, उन सामाजिक-आर्थिक स्थितियों पर प्रकाश डाला गया है जो कौशल विकास की गति को तीव्रता प्रदान करने में सहायक हैं, और कार्यान्वयन विफलताओं और प्रणालीगत कमियों की पृष्ठभूमि में नई शिक्षा नीति (एन.ई.पी.) 2020 के परिवर्तनकारी प्रावधानों का आलोचनात्मक मूल्यांकन किया गया है।

भारत में 'वैश्विक मानव संसाधन प्रदाता' बनने की क्षमता है, खासकर जब 2030 तक विकसित राष्ट्रों में पाँच करोड़ युवा श्रमिकों की अनुमानित कमी संभावित है। नौकरी की इच्छा रखने वाले पाँच करोड़ युवाओं की यह घरेलू आपूर्ति एक सममित अवसर पैदा करती है। हालाँकि, यह भविष्य देश की एक विशाल समूह-विशेष रूप से, 40 करोड़ भारतीय युवाओं को रोजगार योग्य कौशल में निपुण बनाने के महत्वाकांक्षी लक्ष्य को तेजी से कौशल प्रदान करने की क्षमता पर निर्भर करता है। इस कार्य की सफलता के लिए खंडित पहलों से परे जाकर उन गहरी संरचनात्मक और अवधारणात्मक बाधाओं को दूर करने की आवश्यकता है जिन्होंने ऐतिहासिक रूप से व्यावसायिक प्रशिक्षण को त्रस्त किया है।

कृषि संकट और ग्रामीण कौशल उन्नयन की अनिवार्यता

भारत की आर्थिक नींव, तीव्र औद्योगिकीकरण और सेवा क्षेत्र के विकास के बावजूद, अपनी कृषि आधार और ग्रामीण आबादी में गहराई से निहित है। जनसांख्यिकीय वास्तविकता चौंकाने वाली है: शहरीकरण की गति तेज होने के बावजूद, 68.74 प्रतिशत आबादी अभी भी ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करती है¹।

इसके अलावा, भारत के पास दुनिया की 52 प्रतिशत खेती योग्य भूमि है, और यह विश्व में पाए जाने वाली 60 प्रकार की मिट्टियों में से 46 का घर है, जो इस क्षेत्र की अपार क्षमता और महत्व को रेखांकित करता है।

हालाँकि भारत चावल का दुनिया का अग्रणी उत्पादक, फलों और सब्जियों का दूसरा सबसे बड़ा उत्पादक, और समग्र अनाज उत्पादन में तीसरा सबसे बड़ा उत्पादक है, यह सफलता एक गहरे होते संकट को छिपाती है। ऐसा माना जाने लगा है कि हरित क्रांति अब फीकी पड़ गई है। इस ठहराव को उदारीकरण के बाद के नीतिगत वातावरण ने और बढ़ा दिया है जिसने कृषि के ऊपर सेवा और विनिर्माण क्षेत्रों को प्राथमिकता दी, जिससे संरचनात्मक उपेक्षा हुई।

आंकड़ों से ज्ञात होता है कि शहरी आबादी 1951 में 17.3 प्रतिशत से बढ़कर आज 31.16 प्रतिशत हो गई है। यह प्रवृत्ति लगातार ग्रामीण-से-शहरी प्रवासन से प्रेरित है। अधिक चिंताजनक रूप से, 2007 और 2012 के बीच, 3.2 करोड़ से अधिक किसानों ने या तो अपनी जमीन बेच दी या शहरों में आजीविका ढूँढ ली।³ इन प्रवासियों में अक्सर अपेक्षित कौशल की कमी होती है, जिससे वे दिहाड़ी मजदूरी तक सीमित हो जाते हैं। यह आंदोलन ग्रामीण अर्थव्यवस्था के पूर्ण पतन का कारण बना है।

ग्रामीण कार्यबल के सबसे कमजोर वर्गों की अनिश्चित स्थिति एक और जटिल मुद्दा है। भूमिहीन खेतिहर मजदूरों की संख्या 2001 में 10.67 करोड़ से बढ़कर 2011 में 14.43 करोड़ हो गई है।⁴ ये व्यक्ति कम मजदूरी, खराब जीवन स्तर, और अपने बच्चों के लिए अपर्याप्त शैक्षिक अवसरों का सामना करते हैं। साथ ही, कृषि में लगे कार्यबल का समग्र अनुपात सात साल की अवधि में 56.7 प्रतिशत से घटकर 48.8 प्रतिशत हो गया है, जो 3.57 करोड़ कृषि श्रमिकों की कमी को दर्शाता है।

समाधान बहुआयामी बनाने का प्रयास करते हुए सरकार ने 2014-15 के बजट प्रावधान जैसी पहलों के माध्यम से 50 लाख से अधिक बटाईदारों और भूमिहीन व्यक्तियों को ऋण देने के लिए प्रतिबद्धता दिखाई है।⁵ परंतु मुख्य मुद्दा कृषि पद्धतियों के भीतर कौशल विकास का एकीकरण बना हुआ है। बागवानी, खाद्य प्रसंस्करण, और कुशल फसल कटाई के बाद के प्रबंधन (अनुमानित 1 लाख करोड़ रुपये के नुकसान को कम करना) स्थानीय, कुशल रोजगार के लिए बड़े अवसर प्रस्तुत करते हैं। कृषि का कायाकल्प एक ठोस रणनीति पर निर्भर करता है जिसमें महत्वपूर्ण सरकारी कार्रवाई और एक नवीनीकृत सामाजिक मान्यता शामिल है कि 'खेती उत्तम, व्यापार मध्यम, सेवा निम्न और भीख मांगना सबसे बुरा व्यवसाय है'।

नीतिगत प्रक्षेपवक्र और राष्ट्रीय मिशन

लगातार कौशल घाटे को पहचानते हुए, प्रशासनों ने बड़े पैमाने पर मिशन लागू किए हैं। यू.पी.ए.-02 प्रशासन के दौरान, महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम (मनरेगा) को कौशल विकास को शामिल करने के लिए पुनर्गठित करने के प्रयास किए गए थे।

यह सीमित सफलता प्रशिक्षण घाटे की गहराई को रेखांकित करती है। भारत का कुशल कार्यबल वर्तमान में उसके कुल श्रम बल का केवल 35 प्रतिशत है। यह आंकड़ा अंतरराष्ट्रीय बेंचमार्क की तुलना में बहुत कम है, जैसे कि जर्मनी में 74 प्रतिशत और दक्षिण कोरिया में प्रभावशाली 96 प्रतिशत।

वर्तमान नीतिगत पारिस्थितिकी तंत्र

1. प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना (पी.एम.के.वी.वाई.): यह मिशन भविष्य के बाजारों के लिए मानव संसाधन और कौशल विकसित करने के लिए मुख्य कारक है। प्रधानमंत्री द्वारा व्यक्त किया गया राजनीतिक विश्वास यह है कि भारत को 'दुनिया के मानव संसाधन हब' के रूप में विकसित होना चाहिए।
2. रोजगार मेला: प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी द्वारा 22 अक्टूबर, 2022 को शुरू की गई, इस रोजगार मेले की पहल का उद्देश्य 2023 तक 10 लाख नई नौकरियों का सृजन करना है।⁶
3. आयुष्मान भारत योजना (पी.एम.-जे.ए.वाई.): यह स्वास्थ्य योजना, जो 23 सितंबर, 2018 को शुरू की गई⁸, सूचीबद्ध अस्पतालों में गंभीर बीमारियों के लिए 5 लाख रुपये तक का मुफ्त उपचार प्रदान करती है, जिससे कमजोर वर्गों के श्रम बल का स्वास्थ्य संरक्षित होता है।
4. नीति समन्वय: जून 2015 में रायपुर में आयोजित नीति आयोग उप-समिति की बैठक में एक प्रमुख रणनीति स्थापित की गई: मनरेगा श्रमिकों के साथ-साथ बागवानी और कृषि को कौशल उन्नयन कार्यक्रमों से जोड़ना।⁹

इन मिशनों की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि सरकार कितनी तेजी से युवाओं को प्रशिक्षित कर सकती है। 2022 में अनुमान लगाया गया था कि 2024 तक आर्थिक क्षेत्रों में 11 करोड़ अतिरिक्त श्रमिकों की आवश्यकता होगी¹⁰, जिसमें परिवहन, स्वास्थ्य, और ब्यूटी पार्लर सेवाओं में अधिकतम रोजगार सृजन की उम्मीद है।

एन.ई.पी. 2020 का परिवर्तनकारी दृष्टिकोण

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (एन.ई.पी.) 2020 व्यावसायिक शिक्षा की धारणा में एक मौलिक और आवश्यक बदलाव लाती है, इसे मुख्यधारा की शिक्षा का एक अभिन्न अंग बनाती है। मूलभूत उद्देश्य भारत को एक "वैश्विक ज्ञान महाशक्ति"¹¹ में बदलना है।

यह नीति एक महत्वपूर्ण लक्ष्य निर्धारित करती है: यह सुनिश्चित करना कि 2025 तक स्कूल और उच्च शिक्षा प्रणालियों में कम से कम 50 प्रतिशत छात्रों को व्यावसायिक शिक्षा प्राप्त हो¹²। यह महत्वाकांक्षी लक्ष्य 12वीं पंचवर्षीय योजना (2012-17) के डेटा में परिलक्षित ऐतिहासिक विफलता को संबोधित करता है, जिसने दिखाया कि 19-24 आयु वर्ग में भारतीय कार्यबल के केवल एक नगण्य 5 प्रतिशत को औपचारिक व्यावसायिक प्रशिक्षण प्राप्त हुआ था, जो विकसित राष्ट्रों से नाटकीय रूप से पीछे था।¹³

मुख्य प्रावधान

1. प्रारंभिक एकीकरण (कक्षा 6 से आगे): व्यावसायिक शिक्षा को कक्षा 6 से शुरू किया जाएगा।
2. बैगलेस इंटरनशिप कार्यक्रम: कक्षा 6 से 8 तक के छात्रों के लिए 10-दिवसीय बैगलेस कार्यक्रम एक अनौपचारिक व्यावसायिक इंटरनशिप है, जिसे 'लोक विद्या' के रूप में जाना जाता है¹⁴।
3. अनिवार्य प्रगति: माध्यमिक स्तर पर अतिरिक्त विषय और वरिष्ठ माध्यमिक स्तर पर अनिवार्य विषय, जो एनएसक्यूएफ द्वारा निर्धारित मानकों के अनुरूप होगा।
4. हब और स्पोक मॉडल: स्कूलों के पास मौजूदा बुनियादी ढाँचे ('हब') का उपयोग पड़ोसी स्कूलों ('स्पोक स्कूल') के छात्रों द्वारा किया जाएगा।
5. उच्च शिक्षा एकीकरण: बी.वोक. की डिग्री जारी रहेगी, और व्यावसायिक पाठ्यक्रम चार वर्षीय बहु-विषयक स्नातक कार्यक्रम सहित सभी अन्य यूजी डिग्री कार्यक्रमों में उपलब्ध कराए जाएंगे।

गंभीर चुनौतियाँ और निर्देशात्मक समाधान: आगे का मार्ग

1. शारीरिक श्रम के प्रति गलत दृष्टिकोण

सबसे मौलिक बाधा शारीरिक श्रम के प्रति सामाजिक पूर्वाग्रह है। ऐतिहासिक रूप से, शारीरिक श्रम को तिरस्कार के साथ देखा गया है, एक ऐसी भावना जिसे कोठारी आयोग¹⁵ ने प्रतिध्वनित किया है। इसके लिए आवश्यक है कि एक राष्ट्रीय आंदोलन, जो तीन आवश्यक सिद्धांतों को बढ़ावा दे: (क) कि शारीरिक श्रम एक गुण है; (ख) कि तकनीकी शिक्षा राष्ट्रीय प्रगति की नींव है; और (ग) समान दर्जा और पारिश्रमिक सुनिश्चित करके पेशे को आकर्षक बनाता।

2. सामान्य और तकनीकी शिक्षा के बीच स्पष्ट विभाजन

तकनीकी संस्थान अक्सर मानववादी तत्व की उपेक्षा करते हुए तकनीकी कौशल को प्राथमिकता देते हैं, जिसके परिणामस्वरूप एकतरफा शिक्षा होती है। इसके लिए कोठारी आयोग ने सुझाव दिया कि "सभी प्रकार की तकनीकी शिक्षा में सामान्य शिक्षा का एक उपयुक्त घटक होना चाहिए।" इसमें मानविकी और सामाजिक विज्ञान को अनिवार्य रूप से शामिल करना शामिल है।

3. दोषपूर्ण पाठ्यक्रम

पाठ्यक्रम दो मुख्य दोषों से ग्रस्त हैं: संकीर्णता और एकरूपता। इसके लिए आवश्यक है कि पाठ्यक्रम को विषयों की एक विस्तृत श्रृंखला को शामिल करके विविध बनाया जाना चाहिए। कोठारी आयोग के अनुसार, "कठोर एकरूपता से सावधानीपूर्वक बचने और पाठ्यक्रम को लगातार संशोधित करने" की आवश्यकता है।

4. अनुचित शिक्षा का माध्यम (अंग्रेजी)

छात्रों को अंग्रेजी में सीखने, पढ़ने और लिखने के लिए मजबूर किया जाता है, जिससे उच्च संख्या में ड्रॉपआउट और विफलताएँ होती हैं। इसके लिए आवश्यक है कि दीर्घकालिक समाधान शिक्षा के माध्यम के रूप में अंग्रेजी को क्षेत्रीय भाषाओं से बदलना है। कोठारी आयोग ने सिफारिश की कि क्षेत्रीय भाषाओं को पॉलिटेक्निक (डिप्लोमा) स्तर पर शिक्षा का माध्यम होना चाहिए।

5. व्यावहारिक प्रशिक्षण की उपेक्षा

भारतीय तकनीकी संस्थानों के खिलाफ एक प्रचलित शिकायत व्यावहारिक प्रशिक्षण की कीमत पर सैद्धांतिक निर्देश पर भारी जोर है। इस संदर्भ में कोठारी आयोग ने प्रस्तावित किया कि डिप्लोमा छात्रों को सैद्धांतिक ज्ञान की तुलना में अधिक व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। पाँचवीं पंचवर्षीय योजना¹⁶ ने कार्यशालाओं और प्रयोगशालाओं को अद्यतन उपकरणों के साथ आधुनिक बनाने के लिए प्रतिबद्धता व्यक्त की।

6. ड्रॉपआउट और नियमित रहना

अध्ययन काल में विद्यालय छोड़ देने (ड्रॉपआउट) की समस्या गंभीर है, जिसका अनुमान कोठारी आयोग द्वारा डिप्लोमा स्तर पर लगभग 40 प्रतिशत और डिग्री स्तर पर 20 प्रतिशत लगाया गया है। ड्रॉपआउट को समाप्त करने के लिए मूल कारणों को हल करने की आवश्यकता है। कोठारी आयोग ने बेहतर स्क्रीनिंग और अच्छे छात्रों का चयन करने का सुझाव दिया।

7. शिक्षकों की कमी

योग्य प्रशिक्षकों की कमी एक गंभीर और बढ़ती समस्या बनी हुई है। कोठारी आयोग ने इंजीनियरिंग कॉलेजों में वर्तमान कमी को "परेशान करने वाला" बताया है। इसके लिए कोठारी आयोग ने चार व्यावहारिक कदम प्रस्तावित किए: (क) शिक्षकों के वेतन में पर्याप्त वृद्धि; (ख) काम करने की परिस्थितियों में सुधार; (ग) अनुसंधान सुविधाओं का प्रावधान; और (घ) शिक्षकों को स्थानीय उद्योगों में सलाहकार के रूप में काम करने की अनुमति देना।

8. अध्ययन के उपरान्त शिक्षा का अभाव (सतत शिक्षा)

शिक्षा एक आजीवन प्रक्रिया है, फिर भी तकनीकी और व्यावसायिक पेशेवरों के लिए सतत शिक्षा का कोई संरचित प्रावधान नहीं है। ऐसे में निरंतरता स्थापित करने के लिए सतत शिक्षा की एक प्रणाली स्थापित की जानी चाहिए। कोठारी आयोग ने अल्पकालिक सायंकालीन पाठ्यक्रम, पत्राचार पाठ्यक्रम

और छुट्टियों के दौरान तकनीकी कार्यशालाओं और प्रयोगशालाओं का उपयोग करने की सिफारिश की। पाँचवीं पंचवर्षीय योजना¹⁷ ने अल्पकालिक, अनौपचारिक शिक्षा के लिए कार्यक्रम शुरू किए हैं।

निष्कर्ष:

एन.ई.पी. 2020 की प्रतिबद्धता कौशल को मुख्यधारा में लाने और ऐतिहासिक धारणा को दूर करने की दिशा में सबसे महत्वपूर्ण नीतिगत कदम है। सफलता इस बात से निर्धारित होगी कि राष्ट्र कोठारी आयोग जैसे आयोगों द्वारा प्रस्तावित समाधानों पर ध्यान केंद्रित करके प्रणालीगत बाधाओं को कितनी प्रभावी ढंग से खत्म कर सकता है।

संदर्भ सूची

1. Modi, N. (n.d.). Vision for India as the Global Human Resource Hub (Government Policy Statement).
2. Registrar General & Census Commissioner, India. (n.d.). Rural-Urban Distribution of Population: 2011 Census Data (Government Publication).
3. National Sample Survey Office (NSSO). (2013). Interim Report on Farmer Migration and Livelihood Changes (2007-2012).
4. Registrar General & Census Commissioner, India. (2011). Census of India 2011: Data on Landless Agricultural Laborers.
5. Ministry of Finance, Government of India. (2014). Union Budget 2014-15: Financial Inclusion and Agricultural Credit.
6. Ministry of Skill Development and Entrepreneurship. (2015). Pradhan Mantri Kaushal Vikas Yojana (PMKVY) Strategic Document.
7. Press Information Bureau (PIB), Government of India. (2022, October 22). Launch of Rozgar Mela and Distribution of 75,000 Appointment Letters.
8. Ministry of Health and Family Welfare, Government of India. (2018, September 23). Launch of Pradhan Mantri Jan Arogya Yojana (PM-JAY).
9. NITI Aayog. (2015, June). Minutes of the Sub-Committee Meeting on Linking Agriculture and Skill Development (Raipur Session).
10. National Skill Development Corporation (NSDC). (n.d.). Skill Gap Report 2022: Sectoral Requirements and Manpower Forecast.
11. Ministry of Education, Government of India. (2020). National Education Policy 2020.
12. Ministry of Education, Government of India. (2020). National Education Policy 2020: Implementation Targets.
13. Planning Commission of India. (2012). Twelfth Five-Year Plan (2012-2017): Chapter on Vocational Training.
14. Ministry of Education, Government of India. (2020). National Education Policy 2020: Vocational Education Provisions (Lok Vidya, Credit Framework).
15. Education Commission. (1966). Education and National Development: Report of the Education Commission (1964-66) (D. S. Kothari, Chair).
16. Planning Commission of India. (1974). Fifth Five-Year Plan (1974-1979): Technical and Vocational Education.
17. Planning Commission of India. (1974). Fifth Five-Year Plan (1974-1979): Technical and Vocational Education.

‘अकेली’ तथा ‘मजबूरी’ कहानी में जिजीविषा को तलाशती नारी

डॉ० रजिंदर कौर

एसोसिएट प्रोफेसर, माता सुंदरी कॉलेज

शोध-सार

जिजीविषा यानी जीवन जीने की इच्छा या लालसा। सभी प्राणियों में जीवन जीने की चाह होती है। प्रतिकूल परिस्थितियाँ व्यक्ति में स्थितियों से लड़कर जीने का हौसला भरती हैं। मन्नू भंडारी की कहानियाँ भारतीय स्त्री जीवन की उस जटिल धारा को उजागर करती हैं, जिसमें संवेदनाएँ, परिस्थितियों का दबाव तथा भीतर छिपी जीवन जीने की इच्छा लगातार टकराते रहते हैं। ‘अकेली’ तथा ‘मजबूरी’ कहानी में भी लेखिका ने दोनों नारी पात्रों सोमा बुआ तथा बूढ़ी अम्मा के जीवन की प्रतिकूल परिस्थितियों का वर्णन किया है, लेकिन इसके बावजूद भी वह हिम्मत नहीं हारती और जीवन को जीने की इच्छा को समाप्त नहीं होने देती।

बीज शब्द: जीवन, मृत्यु, अकेली, बूढ़ी अम्मा, पोता, पुत्र, बहू।

प्रस्तावना

आधुनिक हिंदी लेखिकाओं में मन्नू भंडारी एक उच्च दर्जे की लेखिका रही हैं। लेखिका की सहज रचना धर्मिता ने उन्हें समकालीन लेखिकाओं से ही नहीं बल्कि दूसरे कथाकारों से अलग पहचान दी है। डॉ. वेदप्रकाश अमिताभ ने अपनी पुस्तक ‘नयी कहानी प्रतिनिधि हस्ताक्षर’ में लिखा है- “नई कहानी के दौरान उषा प्रियंवदा शायद पहली महिला कहानीकार थीं, जिन्होंने पाठकों विशेषतः समीक्षकों का ध्यान आकृष्ट किया। लेकिन प्रारंभिक चमक के बाद उषा प्रियंवदा की कहानियाँ हाशिये पर चली गईं। बाद में महिला लेखन के नाम पर जिन कहानीकारों की रचनाएँ सामने आईं, उनके साथ भी लगभग यही हादसा हुआ। दो एक अच्छी रचनाओं के बाद अधिकतर महिला कहानीकार ‘नेपथ्य’ से ही अपना राग अलापती रहीं। उनकी चर्चा इसलिए नहीं हुई कि उनकी रचनाधर्मिता ‘जेनुइन’ थी या उसमें परिदृश्य को ईमानदारी से आकने की कोशिश की, उनकी चर्चा प्रायः उनकी कुछ कहानियों के उस उत्तेजनात्मक मुहावरे के फलस्वरूप हुई, जिसमें कथित ‘बोल्डनेस’ यौन संदर्भों से जुड़ी हुई ‘बोल्डनेस’ का प्रदर्शन था। इन तमाम कहानीकारों के बीच मन्नू भंडारी की पहचान उनकी सहज रचनाधर्मिता के फलस्वरूप बराबर अलग बनी रही। वे आज भी महिला कहानीकारों में शीर्षस्थ हैं।”

मन्नू भंडारी ने अपनी कहानियों के माध्यम से नारी जीवन की अनेक समस्याओं को उठाया है। पुरुष प्रधान समाज में आज नारी को जितनी स्वतंत्रता तथा अधिकार मिले हैं, उतनी ही वह समस्याओं का भी शिकार होती जा रही है। इतना होने के बावजूद उसने परिस्थितियों से हार नहीं मानी है और वह संघर्षरत है। उसमें जीवन जीने की अदम्य इच्छा तथा लालसा है। चाहे पुरुष हो या नारी कोई भी व्यक्ति जीवन से हार कर पलायन नहीं करना चाहता। मन्नू भंडारी ने विभिन्न नारी पात्रों के माध्यम से भारतीय समाज में पलती नारी की जिजीविषा को चित्रित करने की कोशिश की है। यदि उनके अपने व्यक्तिगत जीवन पर दृष्टिपात किया जाए तो उनमें भी अद्भुत जिजीविषा के साक्षात् दर्शन होते हैं। परिस्थितियाँ जितनी विपरीत होती हैं, उतनी ही वह इंसान में उनसे लड़ने की हौसला भर देती हैं, ऐसी ही परिस्थितियाँ स्वयं मन्नू भंडारी के जीवन में रहीं लेकिन उन्होंने कभी भी न तो हिम्मत हारी और न ही हार मानी।

जिजीविषा की दृष्टि से देखा जाए तो उनकी कहानियों के पात्रों में कहीं प्रत्यक्ष तो कहीं परोक्ष रूप से जिजीविषा व्यक्त हुई है, लेकिन ‘अकेली’ तथा ‘मजबूरी’ कहानियाँ जिजीविषा की दृष्टि से सशक्त कहानियाँ मानी जा सकती हैं। इन कहानियों के पात्र जिंदगी में आने वाली हर कठिन से कठिन परिस्थितियों का मुकाबला करते हैं। वे कभी हारते नहीं हैं। लेखिका खुद यह मानती हैं कि जीवन ही संघर्ष है और जिस व्यक्ति ने इन संघर्षों के बीच जीना सीख लिया, वही जीवन सही मायने में जीने योग्य है।

‘अकेली’ कहानी एक ऐसी स्त्री, सोमा बुआ की कहानी है, जो अपने परिवार में अकेली है। वह बूढ़ी है तथा परित्यक्ता है। उसके पुत्र की अचानक मृत्यु हो जाती है, जिस कारण उसका पति संन्यासी बन जाता है। परिवार में कोई भी ऐसा सदस्य नहीं था, जो उनका अकेलापन दूर कर पाए। बीस वर्ष बीत गए थे, लेकिन उनका जीवन अकेले यूँ ही बीतता जा रहा था। उनके पति हर साल एक महीने के लिए उनके पास आकर रहते पर सोमा बुआ ने कभी भी अपने पति के आने की प्रतीक्षा नहीं की क्योंकि उनके पति जब भी एक महीने के लिए आते तो उनका दूसरों से मिलना-जुलना बंद हो जाता। बुआ ग्यारह महीने अकेले रहती थीं। इस संसार व समाज में उसका अपना कोई नहीं था इसलिए वह पड़ोसियों के सहारे अपनी जिंदगी काटती हैं। उसके अंदर जीने की चाह है, इच्छाशक्ति है। वह सभी को अपना बना लेना चाहती हैं, इसलिए जब कभी किसी पड़ोसी के घर में कोई भी खुशी या गमी का उत्सव होता, तो बुआ उनके घर पहुंच जातीं और घर के कामों में ऐसे हाथ बंटती जैसे कि वह किसी और के घर में नहीं बल्कि अपने घर में काम कर रही हो। इस प्रकार

अपने जीवन की नीरसता को खत्म करने के लिए वह अपने आस-पड़ोस के लोगों से जुड़ने की कोशिश करती हैं और पड़ोसी भले ही उन्हें बुलाएं या न बुलाएं वह पहुंच जाती हैं। वह ऐसा करके एक ऐसा माहौल खड़ा करना चाहती हैं, जिससे कि सभी लोग उसे अपना स्वीकार करें।

“किसी के घर मुण्डन हो, जनेऊ हो, शादी हो या गमी, सोमा बुआ पहुंच जातीं और फिर छाती फाड़कर काम करतीं, मानो वह दूसरे के घर में नहीं, अपने ही घर में काम कर रही हों।”²

हालांकि उनके पति को बुआ का यह व्यवहार पसंद नहीं था इसलिए जब भी वह साल में एक महीने के लिए आते तो बुआ की इन हरकतों से नाराज होते, उनको फटकारते हैं-

“तुम इन लोगों के बीच व्यर्थ में टांग क्यों अड़ाती हो? इन लोगों का तो अपने साथ रिश्ता केवल जुड़ने भर का है, वास्तविक नहीं है।”³

बुआ का लोगों के साथ अपनापन, बिना किसी स्वार्थ भाव से उनकी मदद करना तथा दूसरों के काम को अपना समझ कर करना यह स्पष्ट करता है कि प्रतिकूल परिस्थितियों में भी उनमें जीवन को जीने की इच्छा है। वास्तव में लोगों का रिश्ता बुआ से केवल स्वार्थ तक सीमित है लेकिन बुआ इस वास्तविकता को किसी भी प्रकार से स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं है। जब किसी रिश्तेदार के घर में शादी होती है और उन्हें न्यौता नहीं आता तो वह कहती हैं-

“बेचारे इतने हंगामे में बुलाना भूल गए तो मैं भी मान करके बैठ जाती? फिर घर वालों को कैसा बुलावा ? मैं तो अपनेपन की बात जानती हूँ। कोई प्रेम न रखे तो दस बुलावे पर भी नहीं जाऊँ, प्रेम रखे तो बिना बुलाए भी सिर के बल जाऊँ।”⁴

एक बार किसी दूर के रिश्तेदार की शादी उनके में होने वाली थी इस बात का पता चलने पर बुआ उनके बिना बुलावा दिए ही यह मान बैठी कि बुलावा तो उन्हें आएगा ही आएगा और बिना निमंत्रण के ही शादी में जाने की तैयारी करने लगीं। यह सोचकर कि शादी में खाली हाथ थोड़े जाएंगी वह अपने पास रखी मृत बेटे की एकमात्र निशानी उसकी अंगूठी लेकर आती हैं, न चाहते हुए भी वह अपने मृत पुत्र की एकमात्र निशानी अंगूठी भी बेचने के लिए तैयार हो जाती है। वह राधा से कहती है-

“बड़ा बुरा मानेंगे, सारे शहर के लोग जाएंगे और मैं समझी होकर नहीं जाऊँगी तो यही समझेंगे कि देवर जी मरे तो मरे संबंध भी तोड़ लिया। नहीं-नहीं, तू यह अंगूठी बेच ही दे।”⁵

वह अपने लिए भी यह सोचकर चूड़िया खरीदती है कि समधियों के यहां जाना है, तो जेवर नहीं है तो कांच की चूड़ियां ही कम से कम डाल दे। हालांकि चूड़ी खरीदने से पहले वह थोड़ा संकोच तथा लाज करती है लेकिन अगले ही क्षण वह उस पर विजय प्राप्त कर चूड़ी वाले को रोक लेती है। धीरे-धीरे शादी का दिन नजदीक आ जाता है और बुआ शादी में ले जाने के लिए एक थाल सजाती हैं, जिसमें चांदी की सिन्दूरकदानी, एक साड़ी, ब्लाउज का कपड़ा रखती हैं। वह इतनी खुश थीं कि अंगूठी बेचने का गम भी उसे नहीं था।

समय बीत जाने पर जब उनके पास बुलावा नहीं आता, तब उन्हें वास्तविकता का अहसास होता है कि आखिर उसकी औकात ही क्या है? वह थाली में सजाया सामान सन्दूक में रख देती है और अपने हाथों से चूड़ियां निकाल देती है। इतना होने पर भी वह बुझे हुए दिल से खाना बनाने के लिए अंगीठी जलाती है।

लेखिका ने इस कहानी के माध्यम से एक नारी की परिस्थिति का वर्णन किया है, जो अकेली है। एकाकी जीवन व्यतीत करते हुए भी वह अपने अस्तित्व को बनाए रखती है, जिससे यह सिद्ध होता है कि उसमें जीवन को जीने की दृढ़ इच्छा है। परिवार तथा समाज से कुछ हासिल न होने के बावजूद भी वह इस जिजीविषा को खत्म नहीं होने देती। वह अपने भीतर भी थकान, असुरक्षा तथा अधूरेपन को पहचानते हुए यह समझती है कि यदि उसे अपना जीवन सार्थक बनाना है तो उसे अपनी इच्छाओं को समझना होगा, अपने निर्णय स्वयं लेने होंगे और अपने जीवन की बागडोर किसी और के हाथों में नहीं बल्कि स्वयं संभालनी होगी।

‘मजबूरी’ कहानी में मन्नु भंडारी ने गांव में रहने वाली एक बूढ़ी विधवा औरत की जिजीविषा को चित्रित किया है, जो विपरीत परिस्थितियों में भी आशा नहीं खोती।

बूढ़ी अम्मा का इकलौता बेटा आर्थिक मजबूरी के कारण अपने परिवार से दूर रहकर नौकरी करता है। बूढ़ी अम्मा गरीबी के कारण उसे न चाहते हुए भी नौकरी करने के लिए अपने से दूर भेज देती हैं तथा खुद अकेली रहती हैं। उसका जीवन अपने बेटे के बिना नीरस हो जाता है। वह इस बात को बातों-बातों में अपनी नौकरानी नर्वदा से कहती है-

“देख नर्वदा, मेरे रामेश्वर के लिए कुछ मत कहना। यह तो मैं जानती हूँ कि तीन-तीन बरस मुझसे दूर रहकर उसके दिन कैसे बीतते हैं, पर क्या करें, नौकरी तो आखिर नौकरी है। मेरे पास आज लाखों का धन होता तो बेटे को यों नौकरी करने परदेश नहीं जाने देती पर।”⁶

बूढ़ी अम्मा अकेलेपन में किसी प्रकार अपना जीवन जैसे-तैसे व्यतीत कर रही थी कि लगभग तीन वर्ष बाद उसका बेटा अपनी पत्नी और बेटे के साथ घर लौटता है। अपने बेटे और उसके परिवार को देखकर अम्मा की खुशी का ठिकाना नहीं रहता। उनके अम्मा के पास रूकने से अम्मा का सूना घर फिर से जीवंत हो उठता है। कुछ दिन अम्मा के पास रूकने के बाद रामेश्वर वापिस नौकरी पर जाने की तैयारी करता है, तो उसकी पत्नी जो कि मातृत्व की अवस्था में होती है वह अपने बड़े बेटे को अम्मा के पास कुछ समय के लिए छोड़ने का फैसला करती है। अम्मा यह सुनकर अत्यंत प्रसन्न होती है। उसे लगता है कि जैसे उसके जीवन में फिर से जीने की चाह पैदा हो गई है। पहले तो उसे यकीन नहीं होता लेकिन जब रामेश्वर और उसकी पत्नी अपने बेटे को छोड़ चले जाते हैं तो अम्मा का जीवन नीरसता से सरसता में बदल जाता है। उसके जीवन में एक नई ऊर्जा का संचार हो जाता है। पोते के साथ हैंसी,

खेल और स्नेहपूर्ण संवाद उसके जीवन के अभिन्न अंग बन जाते हैं। अब उसका संपूर्ण अस्तित्व उस बालक के चारों ओर केंद्रित हो जाता है। वह अपने दुःख-दर्द तथा अकेलापन को भूलकर केवल पोते के साथ हंसी मजाक में खोई रहती। वह पोते के बिना अपने जीवन की कल्पना भी नहीं कर सकती थी। उससे बिछुड़न की बात सोचकर ही उसे ऐसा लगता था जैसे उसके प्राण निकल गए हों। अम्मा अब पोते के साथ अपने तन-मन के दर्द भूलकर अपने दिन हंसते-खेलते बिताने लगती है।

दूसरे साल रमा अपने बेटे के बदले तौर-तरीकों को देखकर बेटू को अपने साथ ले जाने का प्रस्ताव रखती है, तो बूढ़ी अम्मा इसका विरोध करते हुए बंटू को उसके साथ जाने नहीं देती।

अगले साल फिर जब रमा व रामेश्वर उससे मिलते आते हैं तो यह जानते हुए भी बेटू के विछोह से अम्मा की क्या हालत होगी अपने बेटू को ले जाने की तैयारी करते हैं। यह बात सुनकर अम्मा के पैरों तले की जमीन खिसक जाती है। वह कहती है-

“रामेश्वर को भी तो मैंने ही पाला-पोसा है उसे क्या गंवार ही रख दिया ? फिर यह तो मुझे और भी प्यारा है। मूल से ज्यादा ब्याज प्यारा होता है, इसे तो मैं खूब पढ़ाऊंगी, तू चिंता मत कर बेटू, पर इसे ले जाने की बात मत कर।” लेकिन रमा और रामेश्वर अपने बेटू के भविष्य को सोचते हुए अपना निर्णय नहीं बदलते और बेटू को अपने साथ ले जाते हैं। अम्मा फिर से अकेली रह जाती है।

अम्मा फिर भी इस उम्मीद में रहती है कि बेटू उसके पास वापिस आ जाएगा लेकिन जब बंटू को छोड़ने गया शिबू अम्मा को यह बताता है कि बेटू को बहू ने अच्छी तरह हिलमिला दिया है तो उसकी आंखें भर आती हैं और अपने पर नियंत्रण कर कोशिश करती है कि बेटू के बिना भी वह पहले की तरह खुश रहेगी। अम्मा की यह सोच उसकी जिजीविषा की परिचायक है। वह जीवन से पलायन नहीं करती और किसी भी परिस्थिति में आशा रूपी किरण के सहारे अपना बाकी जीवन जीना चाहती है।

निष्कर्ष

इस प्रकार इन दोनों कहानियों में ‘अकेली’ की सोमा बुआ तथा ‘मजबूरी’ की बूढ़ी अम्मा दोनों ही जीवन से संघर्ष करती हैं। इसके बावजूद भी उनमें जीवन जीने की अदम्य लालसा है।

नारी अपने परिवार के लिए सबकुछ त्याग करने को तैयार रहती है। वह अपने पति तथा बच्चों की खुशी में अपनी खुशी महसूस करती है। मन्नू भंडारी की कहानियों में भी नारियां पारिवारिक तथा सामाजिक व्यवस्था से संबंधित अनेक समस्याओं से घिरी रहती हैं। वह अपने परिवार के दायित्व को निभाते हुए जीने की कोशिश करती हैं। वह घर परिवार की जिम्मेदारियों, आर्थिक तंगी, भावात्मक तथा सामाजिक उपेक्षाओं के बीच जीवन को उसी दृढ़-संकल्प के साथ थामे रहती हैं जैसे कोई नाविक तूफान में नाव को कसकर थामे रहता है। मन्नू भंडारी ने नायिका को किसी विजेता की तरह नहीं बल्कि एक ऐसी स्त्री के रूप में चित्रित किया है जो जीवन के हर मोड़ पर संघर्ष करती है, लड़ती है लेकिन हारती नहीं। यही असली जिजीविषा है- वह शक्ति है जो उसे भीतर से जीवित रखती है। वह परिस्थितियों के दबाव में पिसती है लेकिन टूटती नहीं है।

संदर्भ ग्रंथ सूची:

1. नई कहानी: प्रतिनिधि हस्ताक्षर, डॉ वेद प्रकाश अमिताभ, डॉ रंजना शर्मा, पृ.- 93
2. मन्नू भंडारी, दस प्रतिनिधि कहानियां, पृ.- 11
3. मन्नू भंडारी, दस प्रतिनिधि कहानियां, पृ.- 12
4. मन्नू भंडारी, दस प्रतिनिधि कहानियां, पृ.- 12-13
5. मन्नू भंडारी, दस प्रतिनिधि कहानियां, पृ.- 14
6. मन्नू भंडारी, दस प्रतिनिधि कहानियां, पृ.- 18
7. मन्नू भंडारी, दस प्रतिनिधि कहानियां, पृ.- 123-24

लैंगिक समानता एवं राजनीतिक न्याय

डॉ० श्याम लाल निराला

शासकीय जमुना प्रसाद वर्मा स्नातकोत्तर कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय, बिलासपुर, छत्तीसगढ़, भारत

सारांश

लैंगिक समानता एवं राजनीतिक न्याय आधुनिक लोकतांत्रिक समाज की आधारशिला हैं। लैंगिक समानता का तात्पर्य केवल पुरुष और महिला के बीच समान अधिकारों से नहीं है, बल्कि इसमें सभी लिंग पहचानों को समान अवसर, सम्मान और सहभागिता प्रदान करना भी शामिल है। राजनीतिक न्याय का अर्थ है सत्ता, निर्णय-निर्माण और संसाधनों के वितरण में निष्पक्षता तथा समावेशिता सुनिश्चित करना। यह शोध-सारांश इस बात पर केंद्रित है कि लैंगिक समानता के बिना राजनीतिक न्याय की कल्पना अधूरी है। भारत जैसे विविधतापूर्ण समाज में ऐतिहासिक, सामाजिक और सांस्कृतिक कारणों से महिलाओं और अन्य हाशिए पर मौजूद लिंग समूहों की राजनीतिक भागीदारी सीमित रही है। यद्यपि संवैधानिक प्रावधान, आरक्षण नीति और कानूनी सुधारों ने इस दिशा में महत्वपूर्ण प्रगति की है, फिर भी वास्तविक समानता प्राप्त करने में कई बाधाएँ बनी हुई हैं। इनमें पितृसत्तात्मक सोच, शिक्षा और संसाधनों की असमान पहुँच, तथा राजनीतिक संस्थाओं में प्रतिनिधित्व की कमी प्रमुख हैं। यह अध्ययन दर्शाता है कि जब तक नीति-निर्माण की प्रक्रियाओं में सभी लिंगों की समान भागीदारी सुनिश्चित नहीं की जाती, तब तक राजनीतिक निर्णय समाज की वास्तविक आवश्यकताओं को पूरी तरह प्रतिबिंबित नहीं कर सकते। लैंगिक समानता न केवल सामाजिक न्याय को मजबूत करती है, बल्कि शासन की गुणवत्ता, पारदर्शिता और जवाबदेही को भी बढ़ाती है। अतः लैंगिक संवेदनशील नीतियाँ, शिक्षा के माध्यम से जागरूकता, और राजनीतिक संस्थाओं में संरचनात्मक सुधार, राजनीतिक न्याय की स्थापना के लिए अनिवार्य हैं। यह शोध इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि लैंगिक समानता और राजनीतिक न्याय एक-दूसरे के पूरक हैं और सतत लोकतंत्र के लिए दोनों का साथ-साथ सुदृढ़ होना आवश्यक है।

(मुख्य शब्द: लैंगिक समानता, राजनीतिक न्याय, लोकतंत्र, प्रतिनिधित्व, सामाजिक न्याय, समावेशिता)

भूमिका

लैंगिक समानता एवं राजनीतिक न्याय का प्रश्न समकालीन सामाजिक विज्ञान और लोकतांत्रिक विमर्श का एक केंद्रीय विषय है। किसी भी लोकतांत्रिक व्यवस्था की गुणवत्ता इस बात से आँकी जाती है कि वह अपने नागरिकों को कितनी समानता, स्वतंत्रता और न्याय प्रदान करती है। लैंगिक समानता का अर्थ केवल पुरुष और महिला के बीच अधिकारों की समानता तक सीमित नहीं है, बल्कि यह सभी लिंग पहचानों को समान अवसर, गरिमा और निर्णय-निर्माण में भागीदारी सुनिश्चित करने से जुड़ी हुई है। वहीं राजनीतिक न्याय का आशय सत्ता, संसाधनों और नीतिगत निर्णयों के वितरण में निष्पक्षता और समावेशन से है।

इतिहास साक्षी है कि राजनीति का क्षेत्र लंबे समय तक पुरुष-प्रधान रहा है। महिलाओं और अन्य हाशिए पर स्थित लिंग समूहों की राजनीतिक भागीदारी सीमित रही, जिसके कारण नीतियाँ अक्सर समाज के एक बड़े वर्ग के अनुभवों और आवश्यकताओं को प्रतिबिंबित नहीं कर पाईं। भारत सहित अनेक देशों में स्वतंत्रता और संविधान के बाद समान अधिकारों की घोषणा तो की गई, परंतु व्यवहार में लैंगिक असमानताएँ बनी रहीं (भारत का संविधान, अनुच्छेद 14 और 15)। यह अंतर दर्शाता है कि कानूनी समानता और वास्तविक समानता के बीच एक स्पष्ट खाई मौजूद है।

लैंगिक समानता और राजनीतिक न्याय का आपसी संबंध अत्यंत गहरा है। यदि राजनीति में सभी लिंगों की समान भागीदारी नहीं होगी, तो नीति-निर्माण की प्रक्रिया अधूरी और पक्षपातपूर्ण रह जाएगी। संयुक्त राष्ट्र ने भी यह स्पष्ट किया है कि सतत विकास और प्रभावी शासन के लिए महिलाओं की राजनीतिक भागीदारी अनिवार्य है (United Nations, 2015)। इस संदर्भ में लैंगिक समानता केवल एक सामाजिक लक्ष्य नहीं, बल्कि राजनीतिक न्याय की पूर्वशर्त बन जाती है।

इस अध्ययन का मुख्य उद्देश्य लैंगिक समानता और राजनीतिक न्याय की अवधारणाओं को समझना तथा उनके अंतर्संबंध का विश्लेषण करना है। इसके अंतर्गत यह जानने का प्रयास किया गया है कि लैंगिक असमानता किस प्रकार राजनीतिक प्रतिनिधित्व, निर्णय-निर्माण और शासन की प्रकृति को प्रभावित करती है। साथ ही यह शोध उन संरचनात्मक और सामाजिक कारकों की पहचान करता है जो लैंगिक समानता की राह में बाध बनते हैं।

अतः यह भूमिका स्पष्ट करती है कि लैंगिक समानता एवं राजनीतिक न्याय केवल सैद्धांतिक अवधारणाएँ नहीं हैं, बल्कि एक न्यायपूर्ण, समावेशी और मजबूत लोकतंत्र के निर्माण के लिए व्यावहारिक और अनिवार्य शर्तें हैं (Sen, 1999, Phillips, 1998)।

लैंगिक समानता: अवधारणात्मक ढांचा

लैंगिक समानता एक व्यापक और बहुआयामी अवधारणा है, जिसका आशय समाज के सभी लिंगों को समान अधिकार, अवसर और सम्मान प्रदान करना है। यह धारणा केवल जैविक लिंग तक सीमित नहीं रहती, बल्कि सामाजिक रूप से निर्मित लिंग भूमिकाओं, अपेक्षाओं और सत्ता संबंधों को भी संबोधित करती है। सरल शब्दों में, लैंगिक समानता का अर्थ है कि किसी व्यक्ति के अवसर और अधिकार उसके लिंग के आधार पर निर्धारित न हों।

दार्शनिक और समाजशास्त्रीय दृष्टि से लैंगिक समानता न्याय, स्वतंत्रता और समानता के सिद्धांतों पर आधारित है। जॉन स्टुअर्ट मिल ने उन्नीसवीं शताब्दी में ही यह तर्क दिया था कि महिलाओं की अधीनता न केवल अन्यायपूर्ण है, बल्कि समाज की प्रगति में भी बाधक है (Mill, 1869)। आधुनिक समय में यह विचार और अधिक विस्तृत हुआ है, जिसमें शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार, राजनीति और निजी जीवन के सभी क्षेत्रों में समानता को शामिल किया गया है।

लैंगिक असमानता के रूप कई स्तरों पर दिखाई देते हैं। इनमें संसाधनों तक असमान पहुँच, निर्णय-निर्माण में सीमित भागीदारी, घरेलू और सार्वजनिक दोनों क्षेत्रों में भेदभाव, तथा सांस्कृतिक रूढ़ियाँ प्रमुख हैं। अमर्त्य सेन ने लैंगिक असमानता को “क्षमता वंचना” के रूप में परिभाषित किया है, जहाँ महिलाएँ और अन्य लिंग समूह अपनी क्षमताओं का पूर्ण विकास नहीं कर पाते (Sen, 1999)। यह दृष्टिकोण दर्शाता है कि लैंगिक समानता केवल कानूनी अधिकारों का प्रश्न नहीं, बल्कि वास्तविक अवसरों और क्षमताओं का भी विषय है।

अंतरराष्ट्रीय स्तर पर लैंगिक समानता को मानवाधिकार के रूप में मान्यता प्राप्त है। संयुक्त राष्ट्र का मानवाधिकार घोषणा-पत्र (1948) और महिला भेदभाव उन्मूलन संधि (CEDAW, 1979) लैंगिक समानता को स्पष्ट रूप से स्थापित करते हैं। भारत के संदर्भ में, संविधान के अनुच्छेद 14, 15 और 16 समानता और भेदभाव निषेध की गारंटी देते हैं, जो लैंगिक समानता के वैधानिक आधार को मजबूत करते हैं।

इस प्रकार लैंगिक समानता का अवधारणात्मक ढांचा यह स्पष्ट करता है कि यह एक स्थिर अवस्था नहीं, बल्कि एक सतत प्रक्रिया है। इसमें सामाजिक संरचनाओं, सत्ता संबंधों और सांस्कृतिक मान्यताओं में परिवर्तन की आवश्यकता होती है। जब तक इन गहरे निहित ढाँचों को नहीं बदला जाता, तब तक लैंगिक समानता केवल एक आदर्श बनी रहेगी, न कि एक जीवंत सामाजिक वास्तविकता (Phillips, 1998)।

राजनीतिक न्याय की संकल्पना

राजनीतिक न्याय लोकतांत्रिक व्यवस्था का एक मूलभूत सिद्धांत है, जिसका संबंध सत्ता, अधिकार और निर्णय-निर्माण की प्रक्रियाओं में निष्पक्षता से है। इसका आशय यह है कि समाज के सभी नागरिकों को, बिना किसी भेदभाव के, राजनीतिक व्यवस्था में भाग लेने, अपने विचार व्यक्त करने और शासन की दिशा को प्रभावित करने का समान अवसर प्राप्त हो। राजनीतिक न्याय केवल औपचारिक अधिकारों तक सीमित नहीं रहता, बल्कि यह इस बात पर भी निर्भर करता है कि ये अधिकार व्यवहार में कितने प्रभावी रूप से लागू हो पा रहे हैं।

दार्शनिक दृष्टि से राजनीतिक न्याय की जड़ें समानता, स्वतंत्रता और सहभागिता के सिद्धांतों में निहित हैं। जॉन रॉल्स ने राजनीतिक न्याय को “न्याय के रूप में निष्पक्षता” (Justice as Fairness) के रूप में परिभाषित किया है, जहाँ संस्थाएँ इस प्रकार संरचित हों कि वे समाज के सभी वर्गों के हितों का संतुलन बनाए रखें (टूसे, 1971)। इस दृष्टिकोण के अनुसार, यदि कुछ समूहों को ऐतिहासिक या संरचनात्मक कारणों से राजनीति में कम प्रतिनिधित्व मिलता है, तो केवल समान अधिकारों की घोषणा पर्याप्त नहीं मानी जा सकती।

लोकतंत्र में राजनीतिक न्याय का महत्व इसलिए भी बढ़ जाता है क्योंकि लोकतंत्र जनता की संप्रभुता पर आधारित होता है। यदि नीति-निर्माण की प्रक्रिया में समाज के कुछ वर्ग या लिंग समूह बाहर रह जाते हैं, तो लोकतांत्रिक निर्णय अपूर्ण और एकांगी हो जाते हैं। हन्ना अरेन्ड्ट के अनुसार, सार्वजनिक क्षेत्र में सक्रिय भागीदारी ही नागरिकता का वास्तविक आधार है, और इससे वंचित होना राजनीतिक अन्याय का रूप है (Arendt, 1958)।

भारतीय संदर्भ में राजनीतिक न्याय का विचार संविधान की प्रस्तावना में निहित है, जहाँ “सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय” को सुनिश्चित करने की प्रतिज्ञा की गई है। सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार, समान नागरिक अधिकार और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता राजनीतिक न्याय के महत्वपूर्ण उपकरण हैं। फिर भी, जाति, वर्ग और लिंग आधारित असमानताओं के कारण इन अधिकारों का लाभ सभी को समान रूप से नहीं मिल पाता (Kothari, 1988)।

इस प्रकार राजनीतिक न्याय की संकल्पना यह स्पष्ट करती है कि न्याय केवल चुनाव में मतदान का अधिकार देने से पूरा नहीं होता। इसके लिए यह आवश्यक है कि राजनीतिक संस्थाएँ समावेशी हों, प्रतिनिधित्व विविध हो, और निर्णय-निर्माण की प्रक्रियाएँ सभी के लिए सुलभ हों। यही कारण है कि राजनीतिक न्याय को लैंगिक समानता के संदर्भ में समझना अनिवार्य हो जाता है, क्योंकि बिना लैंगिक समावेशन के राजनीतिक न्याय अधूरा रह जाता है।

लैंगिक असमानता और राजनीति

लैंगिक असमानता और राजनीति के बीच संबंध ऐतिहासिक और संरचनात्मक दोनों स्तरों पर देखा जा सकता है। राजनीति लंबे समय तक एक पुरुष-प्रधान क्षेत्र रही है, जहाँ सत्ता, नेतृत्व और निर्णय-निर्माण पर मुख्यतः पुरुषों का वर्चस्व रहा। इस वर्चस्व के कारण महिलाओं और अन्य हाशिए पर स्थित लिंग समूहों की राजनीतिक भागीदारी सीमित बनी रही, जिससे राजनीतिक संस्थाएँ समाज की विविध वास्तविकताओं को समुचित रूप से प्रतिबिंबित नहीं कर पाईं।

ऐतिहासिक रूप से, महिलाओं को नागरिकता और राजनीतिक अधिकारों से वंचित रखा गया। मताधिकार आंदोलन के बाद ही अनेक देशों में महिलाओं को वोट देने और चुनाव लड़ने का अधिकार मिला। भारत में स्वतंत्रता के साथ ही महिलाओं को समान मताधिकार प्राप्त हुआ, परंतु इसके बावजूद राजनीति में उनकी उपस्थिति अपेक्षाकृत कम रही (Deshpande, 2007)। यह स्थिति दर्शाती है कि कानूनी अधिकारों की उपलब्धता अपने आप में राजनीतिक समानता सुनिश्चित नहीं करती।

राजनीतिक संरचनाओं में लैंगिक असमानता कई रूपों में दिखाई देती है। संसद, विधानसभाओं और राजनीतिक दलों के नेतृत्व में महिलाओं का प्रतिनिधित्व सीमित है। इसके अतिरिक्त, निर्णय-निर्माण की अनौपचारिक प्रक्रियाएँ, जैसे दलगत शक्ति संतुलन और संसाधनों का नियंत्रण, अक्सर पुरुषों के हाथों में केंद्रित रहते हैं। ऐनी फिलिप्स का तर्क है कि जब तक राजनीति में “उपस्थिति की राजनीति” (Politics of Presence) को महत्व नहीं दिया जाएगा, तब तक महिलाओं के मुद्दे हाशिए पर ही बने रहेंगे (Phillips, 1998)।

सामाजिक और सांस्कृतिक कारक भी लैंगिक असमानता को मजबूत करते हैं। पितृसत्तात्मक मान्यताएँ महिलाओं को सार्वजनिक क्षेत्र से जोड़ने के बजाय निजी क्षेत्र तक सीमित करती हैं। राजनीति को “कठोर” और “संघर्षपूर्ण” क्षेत्र मानकर महिलाओं की क्षमता पर संदेह किया जाता है। इसके साथ ही घरेलू जिम्मेदारियों का असमान बोझ भी महिलाओं की राजनीतिक सक्रियता को सीमित करता है (Basu, 2010)।

लैंगिक असमानता का प्रभाव केवल प्रतिनिधित्व तक सीमित नहीं रहता, बल्कि नीतिगत प्राथमिकताओं पर भी पड़ता है। जब निर्णय लेने वाले मंचों पर महिलाओं की संख्या कम होती है, तो शिक्षा, स्वास्थ्य, पोषण और लैंगिक हिंसा जैसे मुद्दे अक्सर पर्याप्त महत्व नहीं पाते। अतः यह स्पष्ट होता है कि राजनीति में लैंगिक असमानता न केवल लोकतांत्रिक आदर्शों के विरुद्ध है, बल्कि यह शासन की प्रभावशीलता और सामाजिक न्याय दोनों को कमजोर करती है।

संवैधानिक और कानूनी प्रावधान

लैंगिक समानता एवं राजनीतिक न्याय को सुनिश्चित करने में संवैधानिक और कानूनी प्रावधानों की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। किसी भी लोकतांत्रिक समाज में संविधान वह मूल दस्तावेज होता है, जो समानता, स्वतंत्रता और न्याय के सिद्धांतों को वैधानिक आधार प्रदान करता है। भारत का संविधान लैंगिक समानता के प्रश्न पर एक प्रगतिशील दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है और राज्य को यह दायित्व सौंपता है कि वह ऐतिहासिक रूप से वंचित वर्गों को समान अवसर उपलब्ध कराए।

भारतीय संविधान का अनुच्छेद 14 कानून के समक्ष समानता की गारंटी देता है, जबकि अनुच्छेद 15 धर्म, जाति, लिंग या जन्मस्थान के आधार पर भेदभाव को निषिद्ध करता है। विशेष रूप से अनुच्छेद 15(3) राज्य को महिलाओं के पक्ष में विशेष प्रावधान करने की अनुमति देता है, जिससे यह स्पष्ट होता है कि समानता का अर्थ केवल समान व्यवहार नहीं, बल्कि आवश्यकता पड़ने पर सकारात्मक हस्तक्षेप भी है। अनुच्छेद 16 सार्वजनिक रोजगार में समान अवसर की बात करता है, जो राजनीतिक और प्रशासनिक भागीदारी के लिए आवश्यक है (भारत का संविधान)।

राजनीतिक न्याय के संदर्भ में 73वाँ और 74वाँ संविधान संशोधन अधिनियम अत्यंत महत्वपूर्ण माने जाते हैं। इन संशोधनों के माध्यम से पंचायती राज संस्थाओं और नगर निकायों में महिलाओं के लिए कम से कम 33 प्रतिशत आरक्षण सुनिश्चित किया गया। विभिन्न अध्ययनों से यह स्पष्ट हुआ है कि इस आरक्षण ने स्थानीय स्तर पर महिलाओं की राजनीतिक भागीदारी को बढ़ाया है और शासन में उनकी भूमिका को मजबूत किया है (Chattopadhyay - Duflo, 2004)। हालाँकि, यह भी देखा गया है कि कई स्थानों पर “प्रॉक्सी प्रतिनिधित्व” जैसी समस्याएँ बनी हुई हैं।

इसके अतिरिक्त, महिलाओं के अधिकारों की रक्षा और लैंगिक समानता को बढ़ावा देने के लिए अनेक कानून बनाए गए हैं, जैसे कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न (निवारण, प्रतिषेध और प्रतिरोध) अधिनियम, 2013 तथा घरेलू हिंसा से संरक्षण अधिनियम, 2005। ये कानून न केवल सामाजिक न्याय से जुड़े हैं, बल्कि अप्रत्यक्ष रूप से राजनीतिक न्याय को भी सुदृढ़ करते हैं, क्योंकि सुरक्षित और समान सामाजिक वातावरण के बिना राजनीतिक भागीदारी संभव नहीं है (Agnes, 2011)।

अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भारत महिला भेदभाव उन्मूलन संधि (CEDAW) का हस्ताक्षरकर्ता है, जो राज्य को महिलाओं के राजनीतिक और सार्वजनिक जीवन में समान भागीदारी सुनिश्चित करने के लिए प्रतिबद्ध करता है। फिर भी, यह स्पष्ट है कि कानूनी प्रावधानों की प्रभावशीलता उनके क्रियान्वयन पर निर्भर करती है। अतः संवैधानिक और कानूनी ढाँचा लैंगिक समानता और राजनीतिक न्याय के लिए एक आवश्यक आधार तो प्रदान करता है, परंतु वास्तविक परिवर्तन के लिए सामाजिक इच्छाशक्ति और संस्थागत सुधार भी उतने ही आवश्यक हैं।

राजनीतिक भागीदारी में बाधाएँ

लैंगिक समानता और राजनीतिक न्याय की दिशा में किए गए संवैधानिक एवं कानूनी प्रयासों के बावजूद, राजनीतिक भागीदारी में अनेक व्यावहारिक बाधाएँ बनी हुई हैं। ये बाधाएँ विशेष रूप से महिलाओं और अन्य हाशिए पर स्थित लिंग समूहों को प्रभावित करती हैं, जिससे उनकी सक्रिय और प्रभावी राजनीतिक सहभागिता सीमित रह जाती है। इन बाधाओं को सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और संस्थागत स्तरों पर समझा जा सकता है।

सबसे प्रमुख बाधा पितृसत्तात्मक सामाजिक संरचना है, जिसमें राजनीति को पुरुषों का क्षेत्र माना जाता है। महिलाओं की प्राथमिक भूमिका को परिवार और घरेलू दायित्वों तक सीमित कर दिया जाता है, जिसके कारण उनके पास राजनीतिक गतिविधियों के लिए समय, संसाधन और समर्थन का अभाव रहता है। अनेक अध्ययनों में यह पाया गया है कि घरेलू श्रम का असमान बोझ महिलाओं की सार्वजनिक भागीदारी को गंभीर रूप से प्रभावित करता है (Basu, 2010)।

आर्थिक निर्भरता भी राजनीतिक भागीदारी में एक बड़ी बाधा है। चुनाव लड़ने, प्रचार करने और राजनीतिक नेटवर्क बनाने के लिए वित्तीय संसाधनों की आवश्यकता होती है, जिन तक महिलाओं की पहुँच सीमित रहती है। इसके साथ ही शिक्षा और राजनीतिक प्रशिक्षण के अवसरों में असमानता भी उनके आत्मविश्वास और नेतृत्व क्षमता के विकास में रुकावट डालती है (Deshpande, 2007)।

संस्थागत स्तर पर राजनीतिक दलों की आंतरिक संरचना भी लैंगिक असमानता को बढ़ावा देती है। टिकट वितरण, नेतृत्व पदों और निर्णय-निर्माण समितियों में महिलाओं को अपेक्षाकृत कम स्थान दिया जाता है। कई बार महिलाओं को केवल प्रतीकात्मक प्रतिनिधित्व तक सीमित कर दिया जाता है, जिससे उनकी वास्तविक भूमिका कमजोर हो जाती है। ऐनी फिलिप्स इसे “संरचनात्मक बहिष्करण” का रूप मानती हैं (Phillips, 1998)।

इसके अतिरिक्त, राजनीति में हिंसा, अपमानजनक भाषा और लैंगिक उत्पीड़न भी महिलाओं की भागीदारी को हतोत्साहित करते हैं। सोशल मीडिया और सार्वजनिक मंचों पर होने वाला लैंगिक आक्रमण कई संभावित महिला नेताओं को राजनीति से दूर रहने पर मजबूर करता है (Krook, 2020)।

अतः यह स्पष्ट है कि राजनीतिक भागीदारी में बाधाएँ केवल व्यक्तिगत नहीं, बल्कि गहराई से सामाजिक और संस्थागत हैं। जब तक इन बाधाओं को समग्र दृष्टिकोण से दूर नहीं किया जाता, तब तक लैंगिक समानता और राजनीतिक न्याय को व्यवहार में पूर्ण रूप से साकार करना संभव नहीं होगा।

लैंगिक समानता को बढ़ावा देने के उपाय

लैंगिक समानता एवं राजनीतिक न्याय की स्थापना के लिए केवल समस्याओं की पहचान पर्याप्त नहीं है, बल्कि उनके समाधान हेतु ठोस और व्यावहारिक उपायों की भी आवश्यकता है। राजनीतिक क्षेत्र में लैंगिक समानता को बढ़ावा देने के लिए नीतिगत, संस्थागत और सामाजिक स्तरों पर समन्वित प्रयास अनिवार्य हैं।

नीतिगत स्तर पर, महिलाओं और अन्य हाशिए पर स्थित लिंग समूहों के लिए प्रतिनिधित्व सुनिश्चित करने वाले उपाय अत्यंत प्रभावी सिद्ध हो सकते हैं। विधायी संस्थाओं में आरक्षण या कोटा प्रणाली ने कई देशों में सकारात्मक परिणाम दिए हैं। भारत में पंचायती राज संस्थाओं में महिला आरक्षण ने स्थानीय शासन में उनकी भागीदारी और नेतृत्व क्षमता को बढ़ाया है (Chattopadhyay - Duflo, 2004)। इसी तर्ज पर संसद और विधानसभाओं में महिला आरक्षण जैसे उपाय राजनीतिक न्याय को सुदृढ़ कर सकते हैं।

शिक्षा और जागरूकता लैंगिक समानता की दिशा में दीर्घकालिक परिवर्तन के प्रमुख साधन हैं। लैंगिक संवेदनशील शिक्षा न केवल महिलाओं को सशक्त बनाती है, बल्कि समाज में व्याप्त रूढ़ धारणाओं को भी चुनौती देती है। राजनीतिक साक्षरता, नेतृत्व प्रशिक्षण और क्षमता निर्माण कार्यक्रम महिलाओं के आत्मविश्वास और निर्णय-निर्माण कौशल को विकसित करने में सहायक होते हैं (UN Women, 2018)।

संस्थागत सुधार भी उतने ही आवश्यक हैं। राजनीतिक दलों को अपनी आंतरिक संरचना में लैंगिक समानता को बढ़ावा देना चाहिए, जैसे टिकट वितरण में पारदर्शिता, नेतृत्व पदों पर महिलाओं की भागीदारी और सुरक्षित कार्य वातावरण सुनिश्चित करना। इसके साथ ही राजनीति में लैंगिक हिंसा और उत्पीड़न के विरुद्ध सख्त नियम और तंत्र विकसित किए जाने चाहिए (Krook, 2020)।

सामाजिक स्तर पर, पितृसत्तात्मक मानसिकता में परिवर्तन के बिना लैंगिक समानता संभव नहीं है। इसके लिए मीडिया, नागरिक समाज और समुदाय-आधारित संगठनों की भूमिका महत्वपूर्ण है। जब महिलाओं को नेतृत्व करते हुए देखा जाता है, तो यह सामाजिक मान्यताओं को बदलने में सहायक होता है और आने वाली पीढ़ियों के लिए सकारात्मक उदाहरण प्रस्तुत करता है (Sen, 1999)।

अतः यह कहा जा सकता है कि लैंगिक समानता को बढ़ावा देने के उपाय बहुआयामी होने चाहिए। जब नीति, शिक्षा, संस्थान और समाज एक साथ मिलकर कार्य करते हैं, तभी राजनीतिक न्याय की दिशा में वास्तविक और स्थायी प्रगति संभव हो पाती है।

लैंगिक समानता और राजनीतिक न्याय का अंतर्संबंध

लैंगिक समानता और राजनीतिक न्याय के बीच गहरा और अविभाज्य संबंध है। राजनीतिक न्याय की सार्थकता तभी स्थापित हो सकती है, जब समाज के सभी लिंग समूहों को सत्ता, प्रतिनिधित्व और निर्णय-निर्माण की प्रक्रियाओं में समान भागीदारी प्राप्त हो। यदि राजनीति में किसी एक लिंग का वर्चस्व बना रहता है, तो नीतियाँ और कानून समाज की विविध आवश्यकताओं को पूर्ण रूप से संबोधित नहीं कर पाते। इस दृष्टि से लैंगिक समानता राजनीतिक न्याय की आधारशिला के रूप में उभरती है।

जब राजनीति में महिलाओं और अन्य लिंग समूहों की उपस्थिति बढ़ती है, तो नीति-निर्माण की प्राथमिकताओं में भी बदलाव देखने को मिलता है। अनेक अध्ययनों से यह स्पष्ट हुआ है कि महिला प्रतिनिधि शिक्षा, स्वास्थ्य, पोषण, जल, स्वच्छता और सामाजिक सुरक्षा जैसे मुद्दों को अधिक गंभीरता से उठाती हैं, जो समाज के व्यापक हित से जुड़े होते हैं (Chattopadhyay - Duflo, 2004)। इससे शासन अधिक उत्तरदायी और जन-केंद्रित बनता है, जो राजनीतिक न्याय का एक महत्वपूर्ण तत्व है।

ऐनी फिलिप्स का “उपस्थिति की राजनीति” का सिद्धांत इस अंतर्संबंध को और स्पष्ट करता है। उनके अनुसार, केवल विचारों की समानता पर्याप्त नहीं है, बल्कि निर्णय लेने वाले मंचों पर विभिन्न सामाजिक और लैंगिक समूहों की वास्तविक उपस्थिति आवश्यक है (चेपससपचे, 1998)। जब महिलाएँ और अन्य हाशिए पर स्थित लिंग समूह राजनीति में शामिल होते हैं, तो वे अपने अनुभवों और दृष्टिकोणों के माध्यम से न्याय की अवधारणा को अधिक समावेशी बनाते हैं।

लैंगिक समानता राजनीतिक न्याय को इसलिए भी सुदृढ़ करती है क्योंकि यह सत्ता के केंद्रीकरण को चुनौती देती है। विविध प्रतिनिधित्व सत्ता के संतुलन को बेहतर बनाता है और लोकतांत्रिक संस्थाओं की पारदर्शिता तथा जवाबदेही को बढ़ाता है। अमर्त्य सेन के अनुसार, लोकतंत्र की मजबूती इस बात पर निर्भर करती है कि वह कितनी प्रभावी ढंग से सभी नागरिकों की “आवाज” को स्थान देता है (Sen, 1999)।

अतः यह स्पष्ट है कि लैंगिक समानता और राजनीतिक न्याय एक-दूसरे के पूरक हैं, न कि अलग-अलग लक्ष्य। लैंगिक समानता के बिना राजनीतिक न्याय अधूरा रहता है, और राजनीतिक न्याय के बिना लैंगिक समानता को स्थायी रूप से स्थापित नहीं किया जा सकता। एक समावेशी, न्यायपूर्ण और सशक्त लोकतंत्र के निर्माण के लिए दोनों का साथ-साथ सुदृढ़ होना अनिवार्य है।

अध्ययन के निष्कर्ष

प्रस्तुत अध्ययन के विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि लैंगिक समानता एवं राजनीतिक न्याय एक-दूसरे से गहराई से जुड़े हुए और परस्पर आश्रित अवधारणाएँ हैं। राजनीतिक न्याय की स्थापना तब तक संभव नहीं है, जब तक समाज के सभी लिंग समूहों को समान राजनीतिक अधिकार, अवसर और प्रतिनिधित्व प्राप्त न हो। अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि केवल संवैधानिक और कानूनी प्रावधानों के माध्यम से लैंगिक समानता सुनिश्चित नहीं की जा सकती, बल्कि इसके लिए सामाजिक संरचनाओं और संस्थागत प्रक्रियाओं में भी व्यापक परिवर्तन आवश्यक हैं।

शोध में यह सामने आया है कि भारत सहित अनेक लोकतांत्रिक देशों में महिलाओं और अन्य हाशिए पर स्थित लिंग समूहों की राजनीतिक भागीदारी अभी भी सीमित है। इसके पीछे पितृसत्तात्मक सोच, आर्थिक निर्भरता, शिक्षा और संसाधनों तक असमान पहुँच तथा राजनीतिक दलों की आंतरिक संरचनाएँ प्रमुख कारण हैं। यद्यपि पंचायती राज संस्थाओं में महिला आरक्षण जैसे उपायों ने स्थानीय स्तर पर सकारात्मक परिवर्तन किए हैं, फिर भी उच्च राजनीतिक संस्थाओं में प्रतिनिधित्व की कमी राजनीतिक न्याय की प्रक्रिया को कमजोर करती है।

अध्ययन यह भी दर्शाता है कि जहाँ लैंगिक समानता को बढ़ावा दिया गया है, वहाँ शासन की गुणवत्ता में सुधार देखने को मिला है। महिलाओं की बढ़ी हुई भागीदारी ने नीति-निर्माण को अधिक समावेशी, संवेदनशील और जन-केंद्रित बनाया है। इससे यह स्पष्ट होता है कि लैंगिक समानता केवल किसी एक वर्ग के सशक्तीकरण का प्रश्न नहीं, बल्कि संपूर्ण लोकतांत्रिक व्यवस्था के सुदृढ़ीकरण का माध्यम है।

इसके अतिरिक्त, शोध से यह निष्कर्ष भी निकलता है कि राजनीतिक न्याय की अवधारणा को केवल औपचारिक अधिकारों तक सीमित नहीं रखा जा सकता। वास्तविक राजनीतिक न्याय तभी संभव है, जब सभी लिंग समूहों को निर्णय-निर्माण की प्रक्रियाओं में प्रभावी और सार्थक भागीदारी मिले। इसके लिए शिक्षा, जागरूकता, नेतृत्व विकास और संस्थागत सुधारों का समन्वित दृष्टिकोण आवश्यक है।

अतः समग्र रूप से यह अध्ययन इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि लैंगिक समानता एवं राजनीतिक न्याय लोकतंत्र के अनिवार्य स्तंभ हैं। इनके बिना न तो सामाजिक न्याय की स्थापना संभव है और न ही एक समावेशी एवं उत्तरदायी राजनीतिक व्यवस्था का निर्माण।

सुझाव एवं नीतिगत अनुशासण

लैंगिक समानता एवं राजनीतिक न्याय को व्यवहार में साकार करने के लिए ठोस, दीर्घकालिक और बहुस्तरीय नीतिगत प्रयासों की आवश्यकता है। प्रस्तुत अध्ययन के आधार पर कुछ प्रमुख सुझाव एवं नीतिगत अनुशासण निम्नलिखित हैं, जो राजनीतिक संस्थाओं को अधिक समावेशी और न्यायपूर्ण बनाने में सहायक हो सकती हैं।

सबसे पहले, विधायी स्तर पर महिलाओं के प्रतिनिधित्व को सुनिश्चित करने हेतु प्रभावी कदम उठाए जाने चाहिए। संसद और राज्य विधानसभाओं में महिला आरक्षण जैसे उपाय न केवल संख्यात्मक भागीदारी बढ़ाएंगे, बल्कि नीति-निर्माण में लैंगिक दृष्टिकोण को भी सुदृढ़ करेंगे। पंचायती राज संस्थाओं में आरक्षण के सकारात्मक अनुभव इस दिशा में एक मजबूत आधार प्रदान करते हैं।

दूसरे, राजनीतिक दलों की आंतरिक संरचना में सुधार आवश्यक है। टिकट वितरण, नेतृत्व पदों और निर्णय-निर्माण समितियों में महिलाओं और अन्य हाशिए पर स्थित लिंग समूहों को पर्याप्त प्रतिनिधित्व दिया जाना चाहिए। दलों के भीतर लैंगिक समानता से संबंधित स्पष्ट दिशानिर्देश और जवाबदेही तंत्र विकसित किए जाने चाहिए, ताकि प्रतीकात्मक प्रतिनिधित्व के बजाय वास्तविक सशक्तीकरण सुनिश्चित हो सके।

तीसरे, शिक्षा और क्षमता निर्माण पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए। राजनीतिक साक्षरता, नेतृत्व प्रशिक्षण और नीति-निर्माण से जुड़े कार्यक्रम महिलाओं के आत्मविश्वास और प्रभावी सहभागिता को बढ़ा सकते हैं। इसके साथ ही विद्यालय और विश्वविद्यालय स्तर पर लैंगिक समानता आधारित शिक्षा से सामाजिक दृष्टिकोण में दीर्घकालिक परिवर्तन लाया जा सकता है।

चौथे, राजनीति में लैंगिक हिंसा, उत्पीड़न और भेदभाव से निपटने के लिए सख्त कानूनी और संस्थागत तंत्र विकसित किए जाने चाहिए। सुरक्षित और सम्मानजनक राजनीतिक वातावरण के बिना समान भागीदारी संभव नहीं है।

अंततः, नागरिक समाज, मीडिया और सामुदायिक संगठनों की भूमिका को सुदृढ़ किया जाना चाहिए। ये संस्थाएँ सामाजिक जागरूकता बढ़ाने, रूढ़ियों को चुनौती देने और महिला नेतृत्व को प्रोत्साहित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती हैं। इन समन्वित प्रयासों के माध्यम से ही लैंगिक समानता और राजनीतिक न्याय को स्थायी रूप से स्थापित किया जा सकता है।

संदर्भ सूची

1. भारत का संविधान, भारत सरकार (2023), भारत का संविधान, विधि एवं न्याय मंत्रालय, नई दिल्ली। (अनुच्छेद 14-16: पृष्ठ 11-15; प्रस्तावना: पृष्ठ 1)
2. सेन, अमर्त्य (1999), डेवलपमेंट ऐज फ्रीडम (हिंदी अनुवाद), ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली। (लैंगिक असमानता और क्षमता दृष्टिकोण: पृष्ठ 86-110)
3. फिलिप्स, ऐनी (1998), द पॉलिटिक्स ऑफ प्रेजेन्स (हिंदी संदर्भ संस्करण), क्लेरेंडन प्रेस, ऑक्सफोर्ड। (राजनीतिक प्रतिनिधित्व और लैंगिक समानता: पृष्ठ 38-67)
4. रॉल्स, जॉन (1971), ए थ्योरी ऑफ जस्टिस (हिंदी अनुवाद), हार्वर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस। (राजनीतिक न्याय की अवधारणा: पृष्ठ 52-78)
5. अरेंड्ट, हन्ना (1958), द ह्यूमन कंडीशन (हिंदी संस्करण), यूनिवर्सिटी ऑफ शिकागो प्रेस। (सार्वजनिक क्षेत्र और नागरिक सहभागिता: पृष्ठ 175-198)
6. चट्टोपाध्याय, रघुबेंद्र एवं डुफ्लो, एस्थर (2004), "Women as Policy Makers- Evidence from India", इकोनॉमेट्रिका। (पंचायती राज और महिला नेतृत्व: पृष्ठ 1409-1443)
7. बसु, अमृता (2010), Women, Political Parties and Social Movements in South Asia, यूनिवर्सिटी ऑफ कैलिफोर्निया प्रेस। (पितृसत्ता और राजनीतिक भागीदारी: पृष्ठ 112-145)
8. देशपांडे, अश्विनी (2007), Gender and Political Participation in India, रूटलेज इंडिया। (भारत में महिलाओं की राजनीतिक स्थिति: पृष्ठ 59-92)
9. एग्नेस, फ्लेविया (2011) Law and Gender Inequality (हिंदी संदर्भ संस्करण), ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस। (कानून, लैंगिक न्याय और राजनीति: पृष्ठ 201-230)
10. ब्रूक, मोना लीना (2020), Violence Against Women in Politics, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस। (राजनीति में लैंगिक हिंसा: पृष्ठ 1-34)
11. संयुक्त राष्ट्र महिला (UN Women) (2018), Women's Political Participation and Leadership, संयुक्त राष्ट्र प्रकाशन। (नीतिगत सुझाव और वैश्विक दृष्टिकोण: पृष्ठ 15-40)

भक्तिकाल की मुख्य विशेषताएँ: एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

डॉ० सोनिया दहिया

सहायक प्रोफेसर, हिंदी विभाग, चौ. ईश्वर सिंह कन्या महाविद्यालय, फतेहपुर- पूंडरी (कैथल)

सार

इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता है की हिंदी भाषा में भक्ति-काल सबसे प्रमुख समय माना जाता है। हम यह कह सकते हैं कि इस काल में भारत में बहुत से महान कवियों और विचारकों का जन्म हुआ था। सूरदास, तुलसीदास और कबीरदास सभी महान हिंदी कवि भक्तिकाल की उपज हैं। ऐसा माना जाता है की कबीरदास, तुलसीदास और सूरदास का पूरा काव्य भक्तिकाल के समय लिखा गया था। कबीरदास हिंदी साहित्य के भक्तिकाल के प्रमुख पात्र और संस्थापक थे। संपूर्ण हिंदी साहित्य का भक्तिकाल कबीरदास जी के ईर्द-गिर्द घूमता है। हिंदी साहित्य के भक्तिकाल में इन हिंदी कवियों का पूरा काव्य भक्ति पर आधारित था। उन्होंने अपने लेखन में भक्ति-काव्य में अपने भगवान की आराधना, भक्ति पर जोर दिया था। हम यह कह सकते हैं कि इस काल की महंता की वजह से हिंदी साहित्य में भक्ति-काल को हिंदी भाषा का 'स्वर्ण-युग' माना जाता है। हिन्दी साहित्य के भक्ति काल की समयावधि 1375 से 1700 तक मानी जाती है। इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता है की भक्तिकाल में ईश्वर की प्रति अनन्य और असीम भक्ति देखी गई है। इस हिंदी साहित्य के भक्तिकाल में, हिंदी कवियों ने निर्गुण भक्ति और सगुण भक्ति का वर्णन किया है। निर्गुण भक्ति में भक्ति-काल कवि मानते हैं कि भगवान निराकार हैं और सगुण भक्ति में कवियों का मानना है कि ईश्वर कृष्ण और राम के समान है। हम यह कह सकते हैं कि इसीलिए सगुण भक्ति को राममयी भक्ति शाखा और कृष्णमयी भक्ति शाखा कहा जाता है। भक्तिकाल में अवधी और ब्रजभाषा मुख्य भाषाएं थी। इस शोध-पत्र में लेखक हिंदी साहित्य के भक्ति-काल की मूलभूत विशेषताओं का पता लगाने का प्रयास करता है।

मुख्य शब्द: हिंदी, स्वर्ण-युग, भक्तिकाल, ईश्वर।

भूमिका-

हिंदी भाषा का भक्ति साहित्य से तात्पर्य विभिन्न संतों, कवियों और रहस्यवादियों की भक्तिमय रचनाओं से है जिन्होंने विभिन्न भाषाओं और विधाओं के माध्यम से ईश्वर के प्रति अपने प्रेम और भक्ति को व्यक्त किया था। यह भारत के विभिन्न क्षेत्रों में एक लोकप्रिय आंदोलन के रूप में उभरा था, जिसने ब्राह्मणवादी रूढ़िवादिता और अनुष्ठानों के प्रभुत्व को चुनौती दी थी। इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता है की हिंदी-साहित्य में भक्ति-काल को हिंदी भाषा का 'स्वर्ण-युग' माना जाता है क्योंकि इस भक्ति युग में प्रसिद्ध कबीर, सूर, तुलसी जैसे हिंदी कवियों ने भक्ति-भाव, समाज-सुधार और लोक-जागरण के माध्यम से हिंदी कला व भाव का अद्भुत समन्वय प्रस्तुत किया था। ऐसा माना जाता है की भक्तिकाल में समाज सुधार पर बहुत काम हुआ था क्योंकि उस समय जाति या धर्म का नाम पर शोषण हो रहा था। तत्कालीन इस्लामी शासन ने धर्म के नाम पर हिंदुओं पर अत्याचार किया था। हम यह कह सकते हैं कि हिंदू वर्चस्वशाली जातियों ने निचली हिंदू जातियों के लोगों का शोषण किया था। भारत में भक्तिकाल के समय, आम जनता के पास ईश्वर के प्रति भक्ति के अलावा कोई और रास्ता नहीं था। उस समय आम लोगों के पास अपने दर्द को कम करने का कोई उपाय नहीं था इसलिए वे भगवान से प्रार्थना करते थे कि वे उनके दर्द को कम करें। उस समय शासक जनता को लूट रहे थे। इसीलिए, लोगों की चिंताओं को कम करने के लिए ईश्वर भक्ति अंतिम विकल्प था। हिंदी साहित्य में, भक्तिकाल का उदय भारत में सामाजिक और राजनीतिक उथल-पुथल के दौर में हुआ था और इसने कठोर जाति व्यवस्था के नकारात्मक प्रभाव को कम करने के लिए एक वैकल्पिक दृष्टिकोण प्रस्तुत किया था।¹ यह समकालीन सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितियों में बिल्कुल सही था।

ऐसा माना जाता है हिंदी भक्तिकाल की मुख्य विशेषताएँ ईश्वर के प्रति अनन्य प्रेम, सगुण और निर्गुण भक्ति की धाराएँ, जाति-पाति का खंडन, गुरु महिमा का गुणगान, सामाजिक समरसता, लोक-भाषाओं का प्रयोग और नैतिकता पर बल थीं जिसके कारण इस काल को हिंदी साहित्य का 'स्वर्ण-युग' बनाया था। इस वजह से, भक्तिकाल हिंदी साहित्य का एक प्रमुख युग है जिसकी समयावधि 1375 से 1700 विक्रम संवत तक मानी जाती है। ऐसा माना जाता है हिंदी भक्तिकाल के समय भारत इस्लामी शासन के अधीन था, इसलिए सभी भक्ति कवियों ने ईश्वर को प्रसन्न करने के लिए ये रचनाएँ कीं थी। हम यह कह सकते हैं कि क्योंकि भारतीय जनता इस्लामी शासन की अत्याचार के कारण भयभीत थी। इस्लामी शासन ने भारतीय हिंदू जनता पर इतना अत्याचार किया था कि भक्ति कवियों ने ईश्वर से भारतीय जनता के दर्द को कम करने की प्रार्थना की थी। क्योंकि हिंदू लोग इस्लामिक शासन का प्रतिकार करने की स्थिति में नहीं थे। यह ईश्वर भक्ति के माध्यम से संभव हो सकता था की ये आम लोग अपने तमाम दुखों से मुक्त हो जाएं। भक्तिकाल के कवियों

द्वारा भगवान की शरण ली गई थी ताकी समाज के लोगों का दुख कम हो जाए।² उस दौर के सभी हिंदी कवि धर्मनिरपेक्ष, ईमानदार, सच्चे और जनहितैषी थे।

ऐसा माना जाता है की इस भक्तिकाल में भक्ति, ईश्वर प्रेम, सामाजिक समरसता, धर्मनिरपेक्षता और धार्मिक उदारता को हिंदी-साहित्य का मूल स्वरूप बनाया गया था। इस वजह से, इस भक्तिकाल युग में हिंदी साहित्य के कवियों ने भक्ति-भावना के दो मुख्य प्रवाह-निर्गुण भक्ति और सगुण भक्ति को प्रस्तुत किया था। ऐसा माना जाता है की हिंदी साहित्य की भक्ति काल की निर्गुण भक्ति शाखा में भगवान, ईश्वर को निराकार, गुण-रहित माना गया था और निर्गुण भक्ति शाखा में कबीर, दादू, रैदास जैसे हिंदी कवि प्रमुख रहे थे। हिंदी साहित्य की भक्ति काल की सगुण भक्ति शाखा में भगवान को पूजा गया जिसके प्रमुख कवि तुलसीदास, सूरदास, मीराबाई आदि हैं। ऐसा माना जाता है की भक्तिकाल ने हिंदी साहित्य को सामाजिक-धार्मिक एकता, लोक-भाषाओं में अभिव्यक्ति और मानवता की भावना दी थी। हिंदी भक्ति-काल प्रख्यात हिंदी लेखकों के लिए जाना जाता था। हिंदी भक्ति-काल के समय में प्रख्यात हिंदी लेखकों ने समानता, बंधुत्व, मानवतावाद और सार्वभौमिकता की अवधारणाओं का समर्थन किया था। उदाहरण के लिए हम ऐसा कह सकते हैं की रामानंद ने समाज की सभी जातियों के शिष्यों को स्वीकार किया था, कबीर ने हिंदू और मुस्लिम दोनों धर्मों की बुरी सामाजिक प्रथाओं की आलोचना की थी, मीराबाई ने हिंदू धर्म के पितृसत्तात्मक ढांचे को चुनौती दी थी³

ऐसा माना जाता है की भक्तिकाल हिंदी साहित्य का एक स्वर्णिम युग था जिसका कालखंड लगभग 1318-1643 ई. या 1375-1700 विक्रम संवत है जो भक्ति-भाव, आपसी प्रेम और सामाजिक समरसता पर केंद्रित था जिसमें ईश्वर के निराकार (निर्गुण रूप-कबीर, दादू) और साकार (सगुण रूप- राम, कृष्ण) रूपों की उपासना की गई थी। हम यह कह सकते हैं कि इस काल में सूरदास, तुलसीदास, मीराबाई, कबीर जैसे महान कवि हुए और इसे लोकजागरण का 'स्वर्ण-युग' माना जाता है। ऐसा माना जाता है की भक्तिकाल की भाषा मुख्य रूप से अवधी और ब्रजभाषा थी, जिसका उपयोग भक्तिकाल के कवियों ने ईश्वर प्रेम और भक्ति को जन-साधारण तक पहुँचाने के लिए किया था, जिससे यह काल हिंदी साहित्य का 'स्वर्ण-काल' कहलाया था जहाँ तुलसीदास जी ने अवधी में 'रामचरितमानस' लिखा, वहीं सूरदास जी ने ब्रजभाषा में 'सूरसागर' रचा, और कबीर जी की भाषा सधुक्कड़ी (पंचमेल-खिचड़ी) कहलाती थी, जिसमें कई लोक-भाषाओं का मिश्रण था।⁴

इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता है की भक्तिकाल का उदय लगभग 1375-1700 ईस्वी में मुख्य रूप से दक्षिण भारत के आलवार संतों द्वारा शुरू हुए भक्ति आंदोलन से हुआ था जो सामाजिक कुरीतियों, जाति-पाति के भेदभाव और मुगलों के अत्याचारों के विरुद्ध एक धार्मिक-सामाजिक प्रतिक्रिया थी जिसमें ईश्वर या भगवान के प्रति प्रेम-भाव और समर्पण-भाव पर जोर दिया गया था और भक्तिकाल ने कबीर जी, सूरदास जी, तुलसीदास जी जैसे महान कवियों को जन्म दिया था जिससे हिंदी साहित्य का 'स्वर्ण-युग' आया था। और इस प्रकार, यह कहा जा सकता है कि हिंदी साहित्य में भक्तिकाल की शुरुआत संवत 1375 से मानी जाती है और यह विक्रम संवत 1700 तक जारी रहा था जिसे आचार्य रामचंद्र शुक्ला जी ने 'प्रारंभिक मध्ययुगीन काल' के रूप में संदर्भित किया था। और इसे हिंदी साहित्य का 'स्वर्ण-युग' कहा जाता है क्योंकि इस साहित्य समय अवधि के दौरान भक्ति की भावना से ओतप्रोत उत्कृष्ट हिंदी साहित्य की रचना हुई थी।⁵

हिंदी साहित्य के भक्ति-काल की मूलभूत विशेषताएँ:

ऐसा माना जाता है की हिंदी साहित्य के भक्तिकाल का मुख्य उद्देश्य ईश्वर के प्रति अनन्य प्रेम और समर्पण के माध्यम से सांसारिक पीड़ाओं के बीच 'मोक्ष' प्राप्त करना था और इसके साथ ही साथ धार्मिक-सामाजिक सुधार लाना, जाति-पाति का खंडन करना और हिन्दू-इस्लाम धर्मों के लोगों के बीच में सामाजिक-समन्वय स्थापित करना भी मुख्य उद्देश्य था, जिसमें हिंदी साहित्य के संतों ने लोक-भाषाओं में सरल हिंदी भक्ति-साहित्य रचकर जनता को सीधे ईश्वर से जोड़ा और धार्मिक भाईचारे के साथ-साथ सामाजिक समरसता को बढ़ावा दिया था।⁶

इस तथ्य पर भरोसा करने के लिए पर्याप्त तर्क हैं की भक्तिकाल के जनक संत कवि कबीरदास जी माने जाते हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल जी और कई प्रमुख हिंदी साहित्य के साहित्यकारों के अनुसार कबीर जी निर्गुण भक्ति-धारा के प्रवर्तक थे और भक्ति आंदोलन के स्रोत के रूप में उनकी भूमिका हिंदी साहित्य के भक्तिकाल में महत्वपूर्ण थी। ऐसा माना जाता है की कबीरदास जी ने सामाजिक समानता, जातिवाद का विरोध, मूर्तिपूजा व बाह्य आडंबर की आलोचना करने के साथ-साथ सीधे-सीधे परमात्मा के भक्तिभाव को लोक-भाषा में प्रस्तुत किया था जोकि अपने आप में एक अनूठा काम था। हम यह कह सकते हैं कि उनके विचार, दोहे और पद हिंदी जनमानस, भारतीय सामान्य समाज एवं हिंदी साहित्य में व्यापक परिवर्तन और जागरूकता लाने वाले सिद्ध हुए और इसी कारण कबीरदास जी को 'भक्तिकाल' का जनक माना जाता है।⁷

भक्तिकाल के सभी कवि इस तथ्य में विश्वास रखते हैं कि 'गहन- भक्ति' ही ईश्वर तक पहुँचने का एकमात्र मार्ग है। कोई इंसान 'गहन भक्ति' के द्वारा ईश्वर तक पहुँच सकता है। गहन भक्ति के द्वारा ईश्वर तक पहुँचने का प्राथमिक मार्ग जटिल अनुष्ठानों या पुरोहित मध्यस्थों के बजाय शुद्ध, भावुक प्रेम और समर्पण के माध्यम से ही संभव हो सकता है। ईश्वर के प्रति असीम प्रेम और समर्पण इस काल की केंद्रीय भावना थी, जहाँ प्रेम ही भक्ति का मार्ग बना था। सभी भक्तों ने एक ही सर्वशक्तिमान ईश्वर को माना, चाहे वह सगुण हो या निर्गुण था। हिंदी भक्तिकाल में 'गुरु की महत्ता' भक्तिकाल के सभी हिंदी कवियों ने मानी है। भक्तिकाल के कवियों का मानना है कि गुरु ही एकमात्र स्रोत हैं जो भ्रमित मनुष्य को सही मार्ग दिखा सकते हैं। उनका मानना है कि सही गुरु के मार्गदर्शन के बिना सही ज्ञान संभव नहीं है इसलिए यह कहा जा सकता है कि मनुष्य के जीवन में सही दिशा के लिए गुरु आवश्यक है। सभी हिंदी भक्तिकाल के कवियों ने यह दावा किया है कि मनुष्य के लिए आंतरिक पवित्रता अत्यंत आवश्यक है क्योंकि मोक्ष प्राप्त करने के लिए शुद्ध आत्मा का होना आवश्यक है। भक्ति आंदोलन की प्रमुख विशेषता 'समावेशिता' थी। इसमें विभिन्न जातियों, धर्मों और क्षेत्रों के लोगों की सभी चिंताओं को शामिल किया गया था। तत्कालीन शासन से हिंदू और मुसलमान दोनों ही नाखुश थे, इसलिए भक्तिकाल के कवियों ने सभी समुदायों की चिंताओं को उजागर करने का प्रयास किया था।

हिंदी साहित्य के भक्तिकाल की प्रमुख धाराओं का आशय :

निर्गुण धारा (प्रतिपादक कबीर, दादू, रैदास):

ऐसा माना जाता है की निराकार ब्रह्म की भक्ति, आडंबरों का खंडन और ज्ञान पर जोर देना भी भक्तिकाल में हिन्दी साहित्य के कवियों का मुख्य उद्देश्य था। यह निर्गुण धारा ईश्वर को निराकार, गुणरहित (कबीर, दादू, रैदास) मानती है। निर्गुण धरा को मानने वाले कबीर, रैदास और दादू हैं।

सगुण धारा (प्रतिपादक तुलसीदास, सूरदास, मीराबाई):

भक्तिकाल में हिन्दी साहित्य के कवियों का मुख्य उद्देश्य राम और कृष्ण जैसे साकार रूपों की लीलाओं का गान, प्रेम और माधुर्य भाव की भक्ति था। संक्षेप में, हिन्दी साहित्य के भक्तिकाल का लक्ष्य ईश्वर के प्रति प्रेम के द्वारा व्यक्तिगत प्रेम और समाज में समरसता लाना था, जिसने भारतीय संस्कृति और साहित्य को एक नई दिशा दी जा सके⁹ ऐसा माना जाता है की इस सगुण धारा में ईश्वर को साकार रूप (राम, कृष्ण) में पूजने वाले तुलसीदास, सूरदास और मीराबाई हैं।

ऐसा माना जाता है की भक्तिकाल की समय के साथ, ये दोनों धाराएँ आगे चलकर दो-दो उपधाराओं में विभाजित हो गई थी।

इसी प्रकार भक्तिकाल की निर्गुण भक्ति धारा समय के साथ निम्न दो शाखाओं में बँट गई थी:- 1. ज्ञानमार्गी शाखा 2. प्रेममार्गी शाखा

इसी प्रकार भक्तिकाल की सगुण भक्ति धारा समय के साथ निम्न दो उप-शाखाओं में बँट गई थी:- 1. कृष्ण भक्ति शाखा 2. रामभक्ति शाखा

हिंदी साहित्य के भक्तिकाल के प्रमुख उद्देश्य:

ईश्वर प्रेम और मोक्ष: भक्तिकाल में हिन्दी साहित्य के कवियों द्वारा ऐसा माना जाता है की भक्ति मार्ग को 'मोक्ष' प्राप्त करने का सरल और श्रेष्ठ साधन बनाना था जिससे भक्त भगवान के साथ एकाकार हो सकें।

सामाजिक सुधार: भक्तिकाल के समय, भारतीय समाज कई सामाजिक परंपराओं और अतार्किक अनुष्ठानों के कारण पीड़ित था, इसलिए भक्तिकाल के कवियों के लिए इस प्रकार की सामाजिक समस्याओं की निंदा करना अनिवार्य था। भक्तिकाल में हिन्दी साहित्य के कवियों द्वारा ऐसा माना जाता है की ब्राह्मणवादी कर्मकांडों और जटिल जाति-प्रथा का विरोध करना, समानता (जाति-पाति पूछे नहीं कोई) स्थापित करना मुख्य उद्देश्य था¹⁰।

धार्मिक समन्वय: भक्तिकाल के समय भारत को हिंदू और मुस्लिम धर्म के बीच धार्मिक मतभेदों के कारण काफी कष्ट झेलना पड़ा था। ऐसा माना जाता है की हिन्दू धर्म और इस्लाम के बीच सौहार्द बढ़ाना और दोनों धर्मों के अनुयायियों को एक ही ईश्वर के रूप में देखना भक्तिकाल में हिन्दी साहित्य के कवियों का उद्देश्य था।

लोकभाषाओं को प्रोत्साहन: ऐसा माना जाता है की संस्कृत के बजाय आम-लोगों की भाषाओं अवधी, ब्रजभाषा में साहित्य रचकर भक्ति को जन-जन तक पहुँचाना भक्तिकाल में हिन्दी साहित्य के कवियों का मुख्य उद्देश्य था।

मानवता की स्थापना: ऐसा माना जाता है की धार्मिक कट्टरता छोड़कर, प्रेम, करुणा और मानवीय मूल्यों पर आधारित जीवन जीने का संदेश देना भक्तिकाल में हिन्दी साहित्य के कवियों का मुख्य उद्देश्य था¹¹।

निष्कर्ष

संक्षेप में, निष्कर्ष रूप में हम यह कह सकते हैं कि यह विश्वसनीय तथ्य है कि भारत में भक्तिकाल एक ऐसा युग था जिसने प्रेम, समानता, सामाजिक सुधार और लोकभाषाओं के माध्यम से हिंदी साहित्य को एक नया आयाम दिया गया था जिससे यह सांस्कृतिक और साहित्यिक रूप से समृद्ध हुआ। भक्ति काल के समय भारत में इस्लामी शासन के कारण भारतीय जनता व्यथित थी। भारतीय जनता को शांत करने के लिए कोई आध्यात्मिक रूप से कोई सहारा नहीं था। इसीलिए भक्ति-कवियों ने भक्ति का मार्ग चुना था। ऐसा माना जाता है की भक्ति के माध्यम से उन्होंने ईश्वर से जनता के दुख को दूर करने की प्रार्थना की थी। उस समय भारत में मुस्लिम शासक वर्ग भारतीय जनता को लूट रहा था और उनका शोषण कर रहा था। हिंदुओं के पास क्रूर इस्लामी शासन का प्रतिशोध लेने का कोई रास्ता नहीं था, इसलिए भक्ति कवियों ने ईश्वर से प्रार्थना करने के लिए भक्ति का चयन किया था। भक्तिकाल उस समय की वास्तविकता को स्पष्ट रूप से दिखाता है। भक्तिकाल एक उल्लेखनीय विकास था जिसने भारत की सांस्कृतिक संरचना को समृद्ध किया था। ऐसा माना जाता है की इसने भारतीय जनता की आकांक्षाओं और भावनाओं को प्रतिबिंबित किया था और भक्तिकाल कवियों ने एक मिश्रित संस्कृति के विकास में योगदान दिया था।

संदर्भ सूची :

- ममता गोयल और हरिसिंह बिसोरिया, भक्तिकाल, हिंदी साहित्य का स्वर्ण युग: सामान्य विश्लेषण, अनुसंधान समीक्षा: इंटरनेशनल जर्नल ऑफ मल्टीडिसिप्लिनरी, 8, 2, (2023): 112-116.
- अवधेश्वर अरुण, भक्तिकालीन हिन्दी कवियों का वात्सल्य-चित्रण, रेखा प्रकाशन, मुजफ्फरपुर, 1976.
- नवीन, "भक्तिकाल और भारतीय मानस.", साहित्य संहिता, 2.1, (2016): 6-10.
- कमलेश कुमार, भक्तिकालीन साहित्य में सगुण भक्ति की व्यापकता का अनुशीलन, शोधकोश: जर्नल ऑफ विजुअल एंड परफॉर्मिंग आर्ट्स, 5(5), 2024, 938-943.

5. बच्चन सिंह, हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1996.
6. संगीता सिंह और संतोष कुमार सिंह. "भारतीय साहित्य में नारी: आदिकाल से आधुनिक काल तक की यात्रा-वृत्तान्त", शोधबोधालय, (2023):14-27.
7. सुमन लता. "भक्तिकाल में तुलसी के सामाजिक सरोकार' रामचरितमानस के परिप्रेक्ष्य में", अंतर्राष्ट्रीय हिंदी एवं सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका, 11.2, (2023): 58-67.
8. बीना माथुर. प्लुग मुगल काल में हिंदी, अंतर्राष्ट्रीय हिंदी एवं सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका, 3.1, (2015):88-91.
9. रामस्वरूप चतुर्वेदी, हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2005.
10. अरुण लता वर्मा, हिंदी साहित्य का स्वर्ण युग : भक्ति काल, विज्ञान, इंजीनियरिंग और प्रौद्योगिकी में नवोन्मेषी अनुसंधान का अंतर्राष्ट्रीय जर्नल, 6(12) 2017, 23114-23125.
11. रामरतन चौधरी. "रसलीन और शृंगार रस", इंटरनेशनल जर्नल ऑफ एडवांसेज इन सोशल साइंसेज, 9.3, (2021):142-145.

समकालीन हिंदी कविताओं में नारी चेतना के स्वर

प्रोफ़ेसर इफ़्फ़त असगर

हिन्दी विभाग, अलीगढ़, मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़

समकालीन हिंदी कविता में स्त्री-विमर्श एक सशक्त सामाजिक और सांस्कृतिक चेतना के रूप में उभरता है, जहाँ स्त्री केवल विषय नहीं, बल्कि सचेत सर्जक के रूप में अपने अस्तित्व, अस्मिता और स्वाधीनता की घोषणा करती दिखाई देती है। पितृसत्तात्मक व्यवस्था द्वारा सदियों से लगाए गए बंधनों को तोड़ते हुए आधुनिक कवयित्रियाँ—जैसे सविता सिंह, सुधा अरोड़ा, अनामिका, सुशीला टाकभौरे, कुसुम मेघवाल, निर्मला पुतुल, रजनी तिलक और रजत रानी मीनू—स्त्री के संघर्ष, पीड़ा, प्रतिरोध और आत्मनिर्णय को नए आयामों में प्रस्तुत करती हैं। इनकी कविताओं में स्त्री अब करुणा या त्याग का प्रतीक नहीं, बल्कि एक सजग, संघर्षशील और परिवर्तनकारी शक्ति के रूप में सामने आती है, जो न केवल लैंगिक असमानता और पितृसत्ता को चुनौती देती है, बल्कि जाति-वर्ग आधारित शोषण और सामाजिक अन्याय पर भी प्रहार करती है। दलित और आदिवासी स्त्री की पीड़ा, दमन और उसकी अस्मिता की खोज को भी इन कवयित्रियों ने प्रमुखता से स्वर दिया है, जिससे नारी-चेतना का स्वर बहुआयामी और व्यापक हुआ है। समकालीन कविता की स्त्री समानता, गरिमा, आत्मनिर्भरता और स्वतंत्र अस्तित्व की आकांक्षा के साथ एक नए मानवीय समाज के निर्माण का स्वप्न देखती है; इस प्रकार स्त्री-विमर्श आज के हिंदी काव्य में प्रतिरोध, पुनर्निर्माण और सामाजिक परिवर्तन का सशक्त आधार बनकर उभरता है।

स्वाधीनता प्रत्येक मनुष्य की स्वाभाविक एवं जन्मजात आकांक्षा है। मनुष्य तभी पूर्ण जीवन जी सकता है जब उसे सोचने, बोलने और अपनी पहचान व्यक्त करने की स्वतंत्रता मिले। लेकिन भारतीय समाज की पितृसत्तात्मक व्यवस्था ने स्त्री को सदियों तक इस स्वतंत्रता से वंचित रखा। ऐसे में साहित्य, विशेषतः कविता, स्त्री के लिए आत्माभिव्यक्ति और स्वाधीनता का एक प्रभावी माध्यम बनकर उभरा। स्त्री-लेखन केवल साहित्यिक कर्म नहीं, बल्कि स्वतंत्र अस्तित्व की खोज का प्रतीक है। लेखन के माध्यम से स्त्री अपने अनुभव, पीड़ा, संघर्ष और स्वप्नों को शब्द देती है। यह लेखन उस समाज को चुनौती देता है जिसने उसे हमेशा द्वितीय दर्जे का नागरिक माना। स्त्री-लेखन का महत्व इस बात में है कि यह पितृसत्तात्मक मानसिकता को पहचानता है, उसका विश्लेषण करता है और उसे साहित्य एवं समाज दोनों स्तरों पर चुनौती देता है। यह पारंपरिक सोच से टकराते हुए एक नई चेतना को जन्म देता है जो समानता, अस्मिता और स्वतंत्रता की दिशा में समाज को आगे बढ़ाती है।

समकालीन कविता में स्त्री के स्वर में स्वाभिमान और स्वाधीनता की गूँज स्पष्ट सुनाई देती है। स्त्री अब करुणा या त्याग की प्रतीक मात्र नहीं रह गई, बल्कि वह अपने अधिकारों के प्रति सजग, सचेत और संघर्षशील है। बीसवीं सदी के उत्तरार्ध से स्त्री ने साहित्य में स्वयं को केवल विषय के रूप में नहीं, बल्कि एक सचेत सर्जक के रूप में प्रस्तुत किया है। इस काल की कविताओं में स्त्री के संघर्ष, उसकी अस्मिता, अस्तित्व और आत्मसम्मान की गूँज सुनाई देती है। नारी अब केवल संवेदना की प्रतीक नहीं रही, बल्कि वह प्रतिरोध की प्रतीक बनकर उभरती है। इन कविताओं में स्त्री-मन की पीड़ा, समाज द्वारा लगाए गए बंधनों के विरुद्ध विद्रोह, और आत्मनिर्णय की आकांक्षा स्पष्ट रूप से दिखाई देती है।

समकालीन हिंदी कविता में नारी-चेतना के अनेक स्वर उभरकर सामने आए हैं। इन स्वरों में विरोध, अस्मिता, स्वाधीनता, संवेदना, और आत्मस्वीकृति के विविध रूप दिखाई देते हैं। प्रारंभिक चरण में स्त्री की चेतना परिवार, विवाह, मातृत्व और सामाजिक बंधनों तक सीमित थी, किंतु वर्तमान समय में यह चेतना सीमाओं को तोड़कर व्यापक सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक प्रश्नों से जुड़ गई है। आज की कवयित्रियाँ केवल स्त्री के दुःख या दमन को व्यक्त नहीं करतीं, बल्कि वे उस अन्यायपूर्ण संरचना पर प्रश्नचिह्न लगाती हैं जो स्त्री को द्वितीय श्रेणी का नागरिक बनाती है। समाज में व्याप्त लैंगिक असमानता, घरेलू हिंसा, यौन शोषण, आर्थिक निर्भरता और सांस्कृतिक पितृसत्ता के विरुद्ध स्त्री का स्वर अब मुखर और संघर्षशील हुआ है। नारी-चेतना के ये स्वर केवल स्त्री की मुक्ति तक सीमित नहीं हैं, बल्कि वे संपूर्ण समाज के मानवीय पुनर्गठन की माँग करते हैं। इस दृष्टि से नारी-चेतना एक सामाजिक क्रांति का रूप धारण करती है, जो साहित्य के माध्यम से समाज को संवेदनशीलता, समानता और स्वतंत्रता की नई दृष्टि प्रदान करती है।

सविता सिंह की 'जैसे एक स्त्री जानती है', 'रात नींद सपने और स्त्री', 'स्त्री सच है', 'प्रेम करती बेटियाँ' आदि कविताएँ नारी के स्वाभिमान, आत्मनिर्भरता और स्वतंत्र अस्तित्व की सशक्त अभिव्यक्ति प्रस्तुत करती हैं। सविता सिंह की कविताओं में स्त्री अब किसी 'पुरुष-पराश्रित' सत्ता की प्रतीक नहीं, बल्कि अपने स्वयं के अस्तित्व, चेतना और गौरव की प्रतिनिधि के रूप में उभरती है। वह समाज द्वारा थोपे गए पारंपरिक ढाँचे को अस्वीकार करते हुए स्वयं अपनी पहचान गढ़ती है। कवयित्री के लिए नारी का जीवन किसी सहारे पर आधारित नहीं, बल्कि आत्मविश्वास और स्वायत्तता के बल पर निर्मित एक स्वतंत्र इकाई है। सविता सिंह अपनी कविता 'मैं किसकी औरत हूँ' में लिखती हैं—

“सोचकर बहुत मैंने कहा उससे
मैं किसी की औरत नहीं हूँ
मैं अपनी औरत हूँ”

अपना खाती हूँ
जब जी चाहता है तब खाती हूँ
मैं किसी की मार नहीं सहती
और मेरा परमेश्वर कोई नहीं”

यह प्रश्न एक स्त्री के अपने अस्तित्व और पहचान पर जोर देता है, जो किसी के अधीन नहीं है, बल्कि अपने आप में पूर्ण है।

सुधा अरोड़ा अपनी कविताओं ‘अकेली औरत का हँसना’, ‘अकेली औरत का रोना’, ‘यहीं कहीं था घर’, ‘पचपन पार की औरतें’, ‘इंतजार’, में स्त्री के बदलते स्वभाव और जागरूक चेतना का सशक्त चित्र प्रस्तुत करती हैं। उनके अनुसार प्रारंभिक काल की स्त्री ममता, त्याग और समर्पण की मूर्ति थी, जो परिवार और समाज के दायरे में सीमित थी; किंतु अब वह बदल चुकी है। आधुनिक स्त्री में अन्याय और शोषण के विरुद्ध संघर्ष करने की शक्ति जाग्रत हो चुकी है। वह अब केवल सहने वाली नहीं, बल्कि प्रतिरोध करने वाली सशक्त सत्ता बन गई है। उनकी प्रसिद्ध कविता ‘शतरंज के मोहरे’ में यह चेतना गहराई से व्यक्त होती है-

“उन सारे महापुरुषों को
अपने ठोंगे पर रखती
एक विजेता की मुस्कान के साथ
सड़क के दोनों किनारों पर
फँकती चलती है वह औरत”¹

यह पंक्तियाँ समकालीन स्त्री की स्वतंत्रता, आत्मविश्वास और सामाजिक बंधनों से मुक्ति की उद्घोषणा हैं। कवयित्री उस सशक्त स्त्री-स्वर को सामने लाती हैं जो अब किसी भी पुरुष-मर्यादा, परंपरा या समाज द्वारा निर्धारित सीमाओं में नहीं बंधी। वह औरत अब पुरुषप्रधान समाज के महापुरुषों के आदर्शों को चुनौती देती है वे महापुरुष जो सदियों से स्त्री के लिए मर्यादा, त्याग और आज्ञाकारिता का ढांचा खड़ा करते आए थे।

अनामिका की कविताएँ स्त्री के भीतर के संघर्ष और बाहरी सामाजिक विसंगतियों के मध्य एक गहरा संवाद स्थापित करती हैं। वे स्त्री को केवल संवेदना का प्रतीक नहीं, बल्कि प्रतिरोध और पुनर्निर्माण की शक्ति के रूप में प्रस्तुत करती हैं। उनकी कविताएँ पितृसत्तात्मक समाज की अन्यायपूर्ण संरचनाओं को चुनौती देती हैं और यह उद्घोष करती हैं कि स्त्री की मुक्ति उसकी आत्मस्वीकृति और आत्मनिर्णय में निहित है। इनकी कुछ कविताएँ इतनी गम्भीर हैं जो पाठक को भाव विभोर कर सोचने पर मजबूर कर देती हैं। उनमें प्रमुख है- ‘चौदह बरस की दो सेक्स-वर्कर्स, वृद्धाएँ धरती का नमक हैं, भीख मांगते बच्चे का वर्णन’ ‘स्त्रियाँ’ आदि। अनामिका की कविताओं में तीव्र आक्रोश की अपेक्षा एक संयमित और आत्ममंथनशील स्वर विद्यमान है-

“पढ़ा गया हमको
जैसे पढ़ा जाता है कागज
बच्चों की फटी कॉपियों का
चनाजोर गर्म के लिफाफे बनाने के पहले!
देखा गया हमको
जैसे कि कुप्त हो उनींदें
देखी जाती है कलाई घड़ी
अलसबुह अलार्म बजने के बाद”²

उनकी कविताओं की स्त्रियाँ प्रतिरोध से अधिक संवाद और आत्मपहचान की आकांक्षा रखती हैं। वे आग्रह करती हैं कि उन्हें समझा जाए एक जीवित, सोचने-विचारने और निर्णय लेने वाली सत्ता के रूप में। अनामिका की कविताएँ स्त्री-पक्ष की गहरी पड़ताल करती हैं तथा आधी आबादी के मूल अधिकारों, गरिमा और समानता के प्रश्नों को केंद्र में लाती हैं। कवयित्री अपने काव्य-संसार में स्त्री के भोगे हुए यथार्थ को अत्यंत सूक्ष्मता और संवेदनशीलता के साथ चित्रित करती हैं। उनकी कविताओं में नारी की आवाज अपने अस्तित्व को पहचानने और स्वीकार करने की प्रक्रिया से गुजरती है। अनामिका के यहाँ स्त्री अपने मौन को तोड़कर बोलना सीखती है वह अपने भीतर छिपी हुई ऊर्जा, स्वप्न और आकांक्षा को पहचानती है-

“एक दिन हमने कहा
हम भी इंसान हैं-
हमें कायदे से पढ़ो एक-एक अक्षर
जैसे पढ़ा होगा बी.ए. के बाद
नौकरी का पहला विज्ञापन!
देखो तो ऐसे
जैसे कि ठिठुरते हुए देखी जाती है
बहुत दूर जलती हुई आग!”³

अनामिका की कविताओं में आधुनिक भारतीय स्त्री की आवाज स्पष्ट रूप से सुनाई देती है। वे अपनी रचनाओं के माध्यम से स्त्री के जीवन से जुड़ी पीड़ा, संघर्ष, दुःख और सामाजिक असमानताओं को उजागर करती हैं। अनामिका पुरुष-विरोध नहीं करतीं, बल्कि वह उस पितृसत्तात्मक मानसिकता को चुनौती देती हैं जिसने सदियों से स्त्री को दबाकर रखा है। उनकी कविताएँ स्त्री के अस्मिता-बोध और स्वतंत्र अस्तित्व की मांग को अभिव्यक्त करती हैं-

“हे परमपिताओं,

परमपुरुषों

बखर्छो, बखर्छो, अब हमें बखर्छो!”⁵

समाज में हमेशा से औरतों को पुरुषों की तुलना में कमतर और निर्भर माना गया है। यह केवल पुरुषों की गलती नहीं है उन्हें बचपन से ही यह सिखाया जाता है कि स्त्री का स्थान घर और रसोई तक सीमित है, जबकि पुरुष स्वभावतः श्रेष्ठ और सक्षम हैं। अनामिका की कविताएँ स्त्री-विमर्श, समकालीन जीवन विमर्श को दर्शाती हैं। वे स्त्री मुक्ति की मांग करती हैं। पर वह यह नहीं कहती कि स्त्री को पुरुष से मुक्ति चाहिए, अपितु यह चाहती हैं कि स्त्री को भी पुरुष वर्ग के समकक्ष समान अधिकार मिले।

सुशीला टाकभौरे स्वयं दलित लेखिका हैं। दलित नारी की पीड़ा, व्यथा, शोषण, अन्याय, अंधविश्वास, पढ़ी-लिखी नारी की घुटन, छुआछूत के विरुद्ध दलित नारी को शिक्षित बनने की प्रेरणा प्रदान करती हैं। वह अपनी कविता ‘स्वाति बूँद खारे मोती’, ‘टूटता अहम’, ‘यह तुम भी जानो’, ‘तुमने उसे कब पहचाना’, ‘हमारे हिस्से का सूरज’ आदि नारी अस्मिता पर लिखी गयी कवितायें हैं। सुशीला टाकभौरे की कविताओं में विद्रोह के साथ परिवर्तन का संदेश भी निहित है। वे दलित स्त्री को जागरूक, सशक्त और स्वाभिमानी रूप में प्रस्तुत करती हैं। ‘गाली’ नामक कविता में नारी और पुरुष के अर्थ को हृदय विदारक रूप में दिखाया है। उनकी रचनाएँ स्त्री में आत्मविश्वास और प्रेरणा जगाती हैं। ‘जानकी जान गयी है’ में उन्होंने पुरुष वर्चस्व से पीड़ित स्त्री की छवि उकेरी है, जहाँ सीता की वेदना समस्त स्त्री जाति की पीड़ा बन जाती है।

“ओ शबरी के राम !

आँखें चुराकर

संवेदना न दिखाओ

तुम्हीं ने सीता को

धरती में समाया था”⁶

सुशीला टाकभौरे अपनी कविताओं में स्त्री की विवशता और उसकी आकांक्षाओं के बीच की खाई को पाटते हुए स्त्री-जीवन का एक नया और सशक्त चित्र प्रस्तुत करती हैं। स्त्री की विवशता व आकांक्षा की दूरी को पार कर वे स्त्री जीवन का नया ताना-बाना बुनती हैं-

“मुझे अनंत असीम दिगंत चाहिए,

छत का खुला आसमान नहीं,

आसमान की खुली छत चाहिए

मुझे अनंत आसमान चाहिए”

कुसुम मेघवाल अपनी कविताओं में पुरुष-प्रधान समाज की अन्यायपूर्ण व्यवस्था और स्त्री के शोषण के खिलाफ तीखा स्वर उठाती हैं। उनकी ‘रोटी’ और ‘मेहतारानी की कोस’ कवितायें इसका सशक्त उद्धारण है। ‘मेहतारानी की कोस’ कविता का एक अंश-

“दिन में मेहतारानी की छाया से डरते

मूँछों पर ताव दे-दे

दूर-दूर हट-हट करते

रात्रि में उसके हारे

खेत में पथार में

उससे सटते, उसे चूमते-चाटते रहे

और एक दिन

कमला की गोद में

दे दिया एक लाल

दोहरी चाल वाले ठाकुरों ने”⁸

यह अंश समाज की दोहरे चरित्र वाली मानसिकता और जातिगत-लैंगिक शोषण को तीखे व्यंग्य के साथ उजागर करता है। उच्चवर्ग की पाखंडी नैतिकता, स्त्री की विवशता और दलित स्त्री के प्रति होने वाले अत्याचार को बेनकाब करता है। कविता सामाजिक अन्याय के विरुद्ध एक सशक्त प्रतिरोध-स्वर है।

वे समाज में व्याप्त पितृसत्तात्मक सोच, भेदभाव, और स्त्री के अस्तित्व के दमन को अपनी कविताओं का विषय बनाती हैं। उनकी रचनाओं में यह स्पष्ट दिखाई देता है कि वे स्त्री को वस्तु या पराधीन नहीं, बल्कि स्वतंत्र, आत्मनिर्भर और संवेदनशील मानव के रूप में देखना चाहती हैं-

“रमुआ ने पूछा/माँ
तुम तोड़ती क्यों / पत्थर
क्यों चिलचिलाती / धूप में
बरसते/अंगारों के बीच/बैठी हो/चुप्पी साधे
न छाया है/न पानी है/यहाँ तो केवल/तपती दोपहरी है
माँ ने कहा-‘बेटे’दो जून की/रोटी जो कमानी है।’”

स्त्री चेतना की प्रखर कवयित्री निर्मला पुतुल मूल रूप से संथाली भाषा में लेखन करती हैं। उनके दो काव्य-संग्रह ‘नगाड़े की तरह बजते शब्द’ और ‘अपने घर की तलाश में’ हिंदी में प्रकाशित हुए हैं। इन संग्रहों में उन्होंने आदिवासी जीवन की कठिनाइयों, स्त्री संघर्षों और उनकी सामाजिक स्थिति को प्रभावशाली स्वर दिया है। निर्मला पुतुल की कविताएँ आदिवासी संस्कृति और जीवन-मूल्यों से जुड़ी हैं। उन्होंने अपने आसपास की स्त्रियों के सुख-दुःख और संवेदनाओं को बड़ी सच्चाई से व्यक्त किया है। उनकी कविताओं में वह स्त्री दिखाई देती है जो अपनी पहचान और अस्तित्व की तलाश में प्रश्न उठाती है। उनकी कविता में संघर्षशील, सजग और आत्मसम्मान से भरी स्त्री की आवाज सुनाई देती है। उनकी कविता में स्वयं को तलाशती स्त्री पूछती है-

“यह कैसी विडम्बना है
कि हम सहज अभ्यस्त हैं
एक मानक पुरुष-दृष्टि से देखने
स्वयं की दुनिया
मैं स्वयं को स्वयं की दृष्टि से देखते
मुक्त होना चाहती हूँ अपनी जाति से।”⁹

सवर्ण और हाशिए की स्त्रियों के बीच की दूरी मिटाने का कार्य रजत रानी मीनू और रजनी तिलक जैसी लेखिकाओं ने किया है। उनका मानना है कि यदि मुख्यधारा की स्त्रियाँ दलित स्त्रियों की पीड़ा समझतीं, तो अलग दलित नारीवाद की जरूरत न पड़ती। वे कहती हैं कि पितृसत्ता का अंत तभी संभव है जब पुरुष और स्त्री दोनों मिलकर संघर्ष करें। रजनी तिलक समाज में अस्पृश्य समझी जाने वाली जातियों के साथ होने वाले अन्याय, अपमान एवं हिंसा के खिलाफ आवाज उठाने वाली कर्मठ आंदोलन कर्मी थीं। आज उनके दूसरे परिनिर्वाण दिवस के मौके पर उनकी रचनाओं का पुनर्पाठ कर रही हूँ तो आभास हो रहा है कि इतने लम्बे अरसे तक उनके सानिध्य में रहने पर भी शायद इस रजनी तिलक को तो हमने कभी जाना ही नहीं। वह अपनी वास्तविक जिंदगी में भी वैसी ही थीं जैसी कि उनकी रचनाओं में रची-बसी, संघर्ष करती रजनी तिलक।

यह सचमुच विडम्बना है कि सृजनशील होने के बावजूद परंपरा ने स्त्री की स्वतंत्रता के सभी मार्ग बंद कर दिए। आधुनिक स्त्रीवादी आंदोलनों ने भले ही उसे स्वाधीनता दी हो, पर दलित स्त्री उसके दायरे से बाहर रही। दलित स्त्री पर अत्याचार समाज को नहीं झकझोरते, जबकि सवर्ण स्त्री के साथ हुई हिंसा पर मीडिया तुरंत सक्रिय हो जाता है। यह दर्शाता है कि दलित स्त्री का अस्तित्व अभी स्वीकार ही नहीं किया गया है। मीनू की कविता ‘क्यों नहीं हिलता पत्ता एक भी’ इसी अनस्तित्व की पीड़ा को केंद्र में रखती है। यथा-

हमारे साथ जब होता है बलात्कार/सामूहिक बलात्कार-
तब क्यों हिलता नहीं पत्ता एक भी?/और जब तुम्हारे साथ हुआ बलात्कार
तब क्यों हिल गई संसद भी?/चीख उठी महिला सांसद बलात्कार के खिलाफ
क्यों उड़ गई महिला आयोग की चौन की नींद?/आज क्यों उठी बलात्कारियों को
सजा-ए-मौत की मांग/कल क्यों मौन थीं तुम?’¹¹

मीनू का यह कथन गहरे सामाजिक सच को उजागर करता है। वे कहती हैं कि अगर सवर्ण समाज ने वास्तव में अन्याय को अन्याय और जुल्म को जुल्म समझा होता, चाहे वह किसी पर भी हुआ हो, तो समाज में समानता और संवेदनशीलता की बुनियाद मजबूत हो जाती। परंतु सवर्णों ने दलितों पर हुए अत्याचारों को कभी अपनी समस्या नहीं माना। रजत मीनू केवल शिकायत नहीं करती, बल्कि समाज के दोहरे मानदंडों की ओर इशारा करती है। उनका कहना है कि यदि सवर्ण समाज ने दलितों के दुख को भी अपने दुख की तरह महसूस किया होता, तो दलित स्त्री को भी जीने की प्रेरणा और शक्ति मिलती। उसे अपने अस्तित्व के लिए अकेले नहीं लड़ना पड़ता। यथा-

कारण मालूम है मुझे/क्योंकि तुम हो आभिजात्य सवर्ण
और मैं ठहरी दलित/यदि हजारों बालाओं के साथ
किए जा रहे बलात्कारों पर/तुम खामोश नहीं रही होतीं,
तो तुम्हारे बोलने से मिल जाता/मेरी आवाज को थोड़ा संबल
आज तुम्हारी बच्ची के साथ/भी नहीं होता बलात्कार।¹²

पितृसत्ता और जातिवाद के गठजोड़ ने ऐसी मानसिकता बनाई है जहाँ दलित स्त्री को न तो स्त्री के रूप में सम्मान मिलता है और न ही मनुष्य के रूप में। सवर्ण पुरुष उसे केवल शोषण का साधन या निम्न वर्ग की वस्तु समझते हैं। वे जिस समाज में समानता और नैतिकता की बातें करते हैं, वहीं दलित

स्त्री के साथ हुए अत्याचारों पर मौन साध लेते हैं। यह मौन उनके जातिगत अहंकार और सत्ता-भाव को उजागर करता है। समाज में समानता की फसल तभी लहलहाएगी जब नकारात्मक और प्रतिक्रियावादी शक्तियों का अंत किया जाएगा। यह परिवर्तन एक दिन में संभव नहीं, इसके लिए साझा और सतत प्रयास आवश्यक हैं।

यह कहना आवश्यक है कि स्त्री और पुरुष के बीच कोई विरोध नहीं, बल्कि दोनों को मिलकर समाज में फैली वर्ग, जाति और सामंती मानसिकता की दीवारें गिरानी होंगी। नारीवाद किसी के विरुद्ध नहीं, बल्कि समता और समानता की स्थापना का आंदोलन है। समकालीन हिंदी कविता में नारी चेतना एक सशक्त और जागरूक रूप में उभरकर सामने आई है। अब स्त्री मात्र भावनाओं की प्रतीक नहीं, बल्कि संघर्ष, आत्मसम्मान और अस्तित्व की खोज का प्रतीक बन गई है। इन कविताओं में स्त्री अपने ऊपर हुए अन्याय, शोषण और पितृसत्तात्मक बंधनों के खिलाफ आवाज उठाती है। अनामिका, निर्मला पुतुल, कुसुम मेघवाल, सुशीला टाकभौरे, रजनी तिलक जैसी कवयित्रियों ने स्त्री के भीतर छिपी चेतना, विद्रोह और आत्मविश्वास को शब्द दिए हैं। इनकी कविताएँ स्त्री को वस्तु नहीं, बल्कि विचार और संघर्ष का केंद्र बनाती हैं। समकालीन कविताओं में नारी चेतना केवल विरोध तक सीमित नहीं है; यह परिवर्तन, समानता और आत्मनिर्भरता की आकांक्षा भी व्यक्त करती है। स्त्री अब अपने जीवन की नायिका है, जो स्वयं अपनी राह तय करती है। समकालीन हिंदी कविताओं में नारी चेतना का स्वर समानता, स्वतंत्रता और आत्म-सम्मान की नई दृष्टि प्रस्तुत करता है जो एक संवेदनशील और न्यायपूर्ण समाज की दिशा में अग्रसर है।

समकालीन हिंदी कविता में स्त्री विमर्श का उद्देश्य केवल स्त्री की पीड़ा का चित्रण नहीं, बल्कि उसकी चेतना, आत्मसम्मान और स्वतंत्र अस्तित्व की स्थापना है। आज की कवयित्रियाँ यह स्पष्ट कर रही हैं कि स्त्री अब किसी की दया या संरक्षण की पात्र नहीं, बल्कि अपने अधिकारों और पहचान की स्वयं निर्माता है। स्त्री अब समाज की चारदीवारी में सीमित नहीं रहना चाहती, बल्कि वह समानता, स्वायत्तता और आत्मनिर्णय की दिशा में आगे बढ़ रही है। पितृसत्तात्मक सोच और बाजारवादी व्यवस्था के दोहरे दबावों के बीच भी वह अपने निजत्व और अस्तित्व की घोषणा कर रही है। अतः कहा जा सकता है कि समकालीन हिंदी कविता में स्त्री अब वस्तु नहीं, विचार है; मौन नहीं, स्वर है; और पराधीन नहीं, स्वतंत्र सत्ता है जो समाज को नई दृष्टि और संवेदना प्रदान कर रही है।

सन्दर्भ सूची-

1. मैं किसकी औरत हूँ, सविता सिंह
2. शतरंज के मोहरे, सुधा अरोड़ा
3. स्त्रियाँ, अनामिका
4. स्त्रियाँ, अनामिका
5. स्त्रियाँ, अनामिका
6. जानकी जान गयी है, सुशीला टाकभौरे
7. विद्रोहिणी, सुशीला टाकभौरे
8. मेहतारानी की कोस, कुसुम मेघवाल
9. रोटी, कुसुम मेघवाल
10. अपनी जमीन तलाशती बेचौन स्त्री, निर्मला पुतुल
11. पिता भी तो होते हैं माँ, रजतरानी मीनू
12. पिता भी तो होते हैं माँ, रजतरानी मीनू

साहित्य के सामाजिक प्रयोजन का प्रश्न और लघुपत्रिका आंदोलन

डॉ० उपेन्द्र प्रसाद

हिंदी विभागाध्यक्ष, रामेश्वर महाविद्यालय, मुजफ्फरपुर

साहित्य के सामाजिक प्रयोजनों, सरोकारों एवं साहित्य की सामाजिकता के अभियानों की चर्चा खूब होती रही है। आरा से निकलने वाली 'मित्र' ने तो साहित्य की सामाजिकता का रचनात्मक 'अभियान' अपना नारा ही घोषित कर दिया। आम आदमी के जीवन से किताबों को और प्रकारान्तर से साहित्य को अनुपस्थित किया जा रहा है। एक बड़ी आबादी को श्रम की संस्कृति के विरुद्ध उकसाया जा रहा है। श्रम की संस्कृति की जगह 'पाप कल्चर' जैसी अन्तर्विरोधी संस्कृति को महिमा मंडित किया जा रहा है, इस षड्यंत्र में सर्वाधिक सक्रियता 'इलेक्ट्रॉनिक मीडिया' ने दिखाई है, लेकिन अफसोस प्रिंट मीडिया भी बहती गंगा में हाथ धोने से पीछे नहीं रहा। दूरदर्शन ने समाज के स्थसन्य के लिए क्या किया? व्यक्तिवादिता, मक्कारी, धूर्तता, स्वार्थपरता, चाटुकारिता, मुनाफाखोरी, एग्याशी एवं आरामतलबी को 'इंजेक्ट' करने का काम किया है, लोगों की चेतना में फकत एक रोटी की खातिर न जाने कितने लोग हाड़तोड़ मेहनत करते हैं। दिन भर यह दूरदर्शनी संस्कृति उन्हें रातों को 'इलीट कल्चर' के बोध में डेल देती है। यह 'पाप कल्चर' है जो भ्रमों की विराट् दुनिया रचती है। आम आदमी कटु-कठोर यथार्थ से पलायन की सुविधा पा जाता है। यह सिर्फ दुःखों से ध्यान हटाने की तरकीब है, दुःखों के विरोध की, उनसे संघर्ष की कोई तकनीक नहीं ऊर्जा भी नहीं। एडीनों ने लिखा है कि पाप कल्चर- कठमुल्ला, समाज से कटा हुआ और उन्मादी मनुष्य निर्मित करता है। जो हताश होता है और पलायनवादी भी। जाहिर है ऐसी संस्कृति, साहित्य को हाशिए पर डालने की साजिशें तो रचेगी ही। मिथिलेश्वर ठीक ही चिन्तित हैं कि अपने घर-परिवार में, समाज के विभिन्न हिस्से एवं आयोजनों में साहित्य की उपेक्षा और अनुपयुक्तता का एहसास हम करने लगे हैं, या हमें कराया जाने लगा है¹¹। उन्होंने उस विभीषिका की तरफ भी ध्यान दिलाया है जब हम अपने-अपने द्वीपों में अपनी स्वेच्छा से कैद कर दिए जाएँगे, तब सम्भवतः अपने माध्यम के साथ अपने समाज परिवार एवं घर में निपट अकेले होते जाना हमारी नियति हो जायेगी। यह हमारे समाज का और एक व्यापक असर वाले माध्यम के निरर्थक हो जाने का सच है, जिससे इनकार नहीं किया जा सकता¹² लब्ध प्रतिष्ठ आलोचक विश्वनाथ त्रिपाठी कहते हैं कि "किताबों की बदौलत आप एकान्त में देशकाल की यात्रा करते हैं। अच्छी किताबों का पाठक होना, सभ्य और सुसंस्कृत मनुष्य की बहुत बड़ी पहचान है"¹³ श्री त्रिपाठी का किताबों से मतलब साहित्य से है। और इसमें कोई विवाद नहीं कि लघु पत्रिकाओं के बिना साहित्य को बचा पाना ही मुश्किल है। परमानन्द श्रीवास्तव तो कहते हैं कि दरअसल लघु पत्रिकाओं के बिना साहित्य का इतिहास ही नहीं लिखा जा सकता¹⁴। ऐसे में लघु पत्रिकाओं की भूमिका और बढ़ जाती है। एक समाज जिसका 'लुम्पेनाइजेशन' किया जा रहा है, जिसमें क्रमशः प्रतिरोधी स्वरों को (जिसमें साहित्य भी शामिल है) हाशिए पर डाला जा रहा है; लघु पत्रिकाओं की जिम्मेदारी कुछ अधिक ही प्रतीत होने लगती है। शंभुनाथ कहते भी हैं कि, "यह बौद्धिक प्रतिवाद का बचा हुआ मंच है"¹⁵ लघु पत्रिकाएँ ही हैं जो उपभोक्तावाद और बाजारवाद के हमलों के बीच मानवीयता को बचा सकती हैं। क्योंकि 'ये उनकी निर्मितियाँ हैं जिनके दिल जुझारू विचारों एवं कलाओं से भरे होते हैं'¹⁶।

वस्तुतः लघु पत्रिकाओं के सामने सबसे बड़ी चुनौती है और रही है कि समाज में जरूरी परिवर्तन किए जाएँ। परिवर्तन कामी शक्तियों को बल प्रदान करे। आजादी के ठीक बाद जब व्यावसायिक घरानों ने साहित्य को अपने घर की चेरी बनाने की कोशिशें की, साहित्य को बेच कर मुनाफा कमाने का प्रयास किया, उस समय बड़ी संख्या में लघु पत्रिकाओं ने प्रतिरोध का वातावरण बनाया एवं उस प्रतिरोध को आन्दोलन का रूप दिया। आज फिर त्रासद स्थिति है। व्यावसायिक घरानों ने अपनी उन तमाम पत्रिकाओं को बंद कर दिया जिनमें वे कभी साहित्य की छौंक मारा करते थे। कागजों के दाम बढ़े इमरजेंसी लगी, छपाई मंहगी हुई। पढ़ने की संस्कृति पर हमले किए गए लेकिन लघु पत्रिकाएँ अभी भी जीवित हैं। एक अनुमान के मुताबिक आज करीब चार सौ के आस-पास हिन्दी में लघु पत्रिकाएँ निकल रही हैं, तब रमेश उपाध्याय का कथन बढ़ा अजीब लगता है कि "लघु पत्रिकाओं के दिन पूरे हो गए"¹⁷।

शंभुगुप्त लघु पत्रिकाओं को 'इंजिन' कहते हैं जिनके बिना साहित्य की गाड़ी का चलना मुश्किल है¹⁸ लेकिन उस समाज की भी कल्पना कम मुश्किल नहीं प्रतीत होती जहाँ साहित्य की कोई संस्कृति ही न हो। लघु पत्रिकाओं के माध्यम से साहित्य ने ये साबित किया है कि समाज के स्पन्दनों पर अभी भी उसकी पकड़ है। इन्हीं लघु पत्रिकाओं के माध्यम से साहित्य समाज में संवेदनाएँ रोपता है, मानवीयता को हरा-भरा रखता है। ऊँचे मानवीय मूल्यों की स्थापना करता है।

आम तौर पर लघु पत्रिकाएँ मानवीय स्वतंत्रता की ही संवाहक होती हैं इसके बावजूद कि बाजारवाद ने साहित्य को भी काफी क्षति पहुँचाई है। अपसंस्कृति के तात्कालिक हमलों से क्षणिक तौर पर यह प्रतीत हो सकता है कि साहित्य की जगह सिकुड़ती जा रही है लेकिन साहित्य की प्रकृति भी 'अग्निपक्षी' की तरह है, जो बार-बार मर कर बार-बार जीवित हो उठती है।

परमानन्द श्रीवास्तव ने लघु पत्रिकाओं के जरूरी आदर्शों को गिनाते हुए यह बताया है कि, "अपने कठिन समय को परिभाषित करना, उन ज्वलंत सवालियों के परिप्रेक्ष्य में, जो आज के समाज को तीखे ढंग से प्रभावित कर रहे हैं"¹⁹ यानी सामाजिक सरोकारों को एक बार फिर उन्होंने साहित्य एवं साहित्यिक पत्रिकाओं के मूल स्वर के रूप में रेखांकित किया है।

शंभुनाथ कहते हैं कि, “साहित्य लेखन एक मुश्किल काम है, पर इससे ज्यादा मुश्किल है एक साहित्यिक संस्कृति बनाना”⁹ बेशक और तब तो और जब तमाम तरह की सत्ताएँ साहित्य की दुनिया को अनुकूलित करने में लगी हैं। बाजार की सत्ता हो, अर्थ की सत्ता हो, राजनीतिक सत्ता हो या समाज की अन्य वर्चस्वशाली शक्तियाँ हो। लेकिन परमानन्द श्रीवास्तव ठीक ऐसे ही समय में उस विचार को चिन्हित करते हैं जो इन लघु पत्रिकाओं के पीछे सबसे बड़ा सम्बल बन खड़ा होता है, “लघु पत्रिकाओं में स्वीकृत नवीनता को अक्सर एक विचारधारा का बल प्राप्त होता है, जो प्रभुता सम्पन्न वर्ग को चुनौती देने वाली हों, जो सामाजिक परिवर्तन की वाँछित कल्पना की पक्षधर हो, जो जनता के संघर्ष से जुड़ी हो”¹⁰।

सामाजिक परिवर्तन की इच्छा एवं जनता के संघर्षों से तीव्र जुड़ाव ही लघु पत्रिका आन्दोलन के मूल में रहा। समाज की उन्हीं स्थितियों से उपजे तनाव एवं उसकी अभिव्यक्ति ने लघु-पत्रिका आन्दोलन में सूत्रधार की भूमिका निभाई।

‘नये पत्ते (1953) ‘नयी कविता (1954) निष्कर्ष (1955) इत्यादि पत्रिकाओं के प्रकाशन ने हिन्दी साहित्य में कई नई बहसों को जन्म दिया। समवेत (1956) सागर आकलन (1956) कथा कहानी (बिल्ली) ने न सिर्फ अपने समय के नवलेखन को ही रेखांकित किया अपितु कई नव विमर्शों को भी आमंत्रित किया। विचार को लेकर भी तीखी बहसें जारी रही। प्रगतिशीलों एवं परिमलियों के बीच की वैचारिक बहसों ने परस्पर एक-दूसरे खेमों को रचनात्मक ऊर्जा से तो लैस किया ही, उनमें सांगठनिक एवं प्रकाशन से संबंधित सक्रियता भी भरी। ‘कथा कहानी’ – ने इसी समय ‘राज्याश्रय बनाम सेठाश्रय की बहस को बड़ी गम्भीरता से चलाया था। नई कहानी और कविता के आन्दोलन इसी दौर की परिणतियाँ हैं।

नक्सलवादी आन्दोलन को भी लघु-पत्रिकाओं ने वैचारिक समर्थन दिया। इमर्जेन्सी के दिनों में तमाम तरह के प्रतिबन्धों को झेलते हुए भी जीने का माददा इन्हीं लघु पत्रिकाओं ने दिखाया। न जाने ऐसी कितनी बहसें, लघु पत्रिकाओं के द्वारा संचालित की गई एवं प्रचारित-प्रसारित की गई जो कहीं भी-कभी भी किसी व्यावसायिक पत्रिका की सीमा और क्षमता से बाहर ही पड़ती। लघु पत्रिकाएँ इन्हीं अर्थों में और सार्थक हो उठती हैं कि वे एक सतत संवाद भी होती हैं। जनता और समकालीन वैचारिकी के बीच एक सेतु। 1950 में प्रकाशित ‘नई चेतना’ सही अर्थों में सृजनात्मक लेखन के प्रति प्रतिबद्ध पत्रिका के रूप में सामने आती है।

‘नया साहित्य’ ने एक नई गति प्रदान की साहित्यिक लेखन से लेकर साहित्य के वातावरण तक। इसके सम्पादक प्रकाश चन्द्र गुप्त थे। मई 1951 का अंक काफी विवादास्पद रहा। जैनेन्द्र विषयक यशपाल के आलेख से और उसके बाद राम विलाश शर्मा को लेकर की गई सम्पादकीय टिप्पणियों से।

साहित्यिक पत्रकारिता के क्षेत्र में ‘प्रतीक’ की अपनी विशिष्ट पहचान है। मुख्य रूप से सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्सायन के सम्पादन में प्रयाग से प्रकाशित प्रतीक ने बाद में कई श्रेष्ठ अंक दिए।

विश्व साहित्य के प्रति जागरूकता के परिणामस्वरूप हरीश रायजादा के सम्पादन में “विश्वसाहित्य” नामक पत्रिका ने प्रमुख भाषाओं की कुछ प्रतिनिधि रचनाओं को पहले ही अंक में प्रकाशित कर साहित्य की हलचलों को कुछ और बढ़ाया।

1956 में इलाहाबाद से ‘सृजन’ बद्रीनाथ तिवारी के सम्पादन में, प्रकाशित हुआ जबकि 1953 से ही इलाहाबाद परिमल की ओर से रामस्वरूप चतुर्वेदी के सम्पादन में ‘नए पत्ते’ निकल ही रहा था। प्रगतिशील खेमों की ओर से भी दुष्यन्त कुमार के सम्पादन में “विहान” का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ।

मध्य प्रदेश भी साहित्य सर्जना के लिहाज से काफी उर्वर रहा है। और साहित्यिक सांस्कृतिक गतिविधियों के लिहाज से तो हर वक्त दो कदम आगे ही। इसी सक्रियता की निष्पत्ति लघु पत्रिकाओं के प्रकाशन के रूप में होती है। 1955 में श्रीकांत वर्मा ने रायपुर से ‘नयी दिशा’ त्रैमासिक का प्रकाशन प्रारम्भ किया। हालाँकि पीछे मूल प्रेरणा मुक्तिबोध की ही थी परन्तु मध्य प्रदेश के लगभग सारे लेखकों ने इसे समृद्ध करने में अपना-अपना योगदान किया था।

लेकिन साठ के दशक की सर्वाधिक प्रभावपूर्ण पत्रिका ‘वसुधा’ थी। हरिशंकर परसाई के सम्पादन में इस पत्रिका ने प्रगतिशील वातावरण के निर्माण की जिस गौरवशाली परम्परा की नींव डाली थी, वह प्रो० कमला प्रसाद की प्रतिबद्ध वैचारिकी एवं कुशल सम्पादन में अद्याविधि अक्षुण्ण है।

वैसे साठ के दशक की अनेक पत्रिकाएँ हैं जिन्होंने लघु पत्रिकाओं के आन्दोलनात्मक स्वरूप को समृद्ध किया था। जैसे – कलकत्ता से राम बहादुर सिंह ‘मुक्त’ के द्वारा ‘क्षितिज’, नलिन विलोचन शर्मा ने पटना से 1957 में कविता को केन्द्र में रखकर ‘कविता’, वाराणसी से एक अन्य कविता को केंद्रित पत्रिका ‘कवि’, तो दिल्ली से कहानी पर केन्द्रित ‘कथा कहानी’ एवं राजस्थान के अजमेर से ‘लहर’। राजस्थान के ही लेकिन जयपुर से 1960 में कृष्णवल्लभ शर्मा के सम्पादन में ‘निष्ठा’ निकली।

इन्हीं छोटी-मोटी लेकिन गम्भीर कोशिशों का सुफल रहा कि लघु पत्रिकाएँ खुद तो संजीदा हुई ही; तत्कालीन साहित्यिक परिदृश्य में इन्हें संजीदगी से लिया भी जाने लगा। यह सही है कि कुछ अवसरवादी लोगों ने लघु पत्रिका आन्दोलन की शक्ति का निहित स्वार्थों के लिए दुरुपयोग भी किया। तमाम लेखकों ने उस दौर को ‘भयंकर व्यक्तिवाद एवं अराजकता का दौर’¹¹ बताया है। यह भी कि ‘इनका (लघु पत्रिकाओं का) उद्देश्य अत्यन्त संकुचित था। वे किसी बृहत्तर साहित्यिक या सामाजिक उद्देश्य से नहीं, बल्कि मान्यता और प्रतिष्ठा करने के लिए निकाली गई थी’¹²।

लेकिन यह दशक लघु पत्रिकाओं के आन्दोलन के सकारात्मक पक्षों के लिए ज्यादा जाना जाता है। सर्वप्रथम एक महत्वपूर्ण तथ्य लक्षित करने योग्य यह है कि लघु पत्रिकाएँ ठीक इसी दशक में व्यावसायिक पत्रिकाओं से सीधे-सीधे मुठभेड़ को सन्यस्त हुईं। अब इनकी उपेक्षा संभव नहीं रह गई थी। इनकी धार सभी महसूस करने लगे थे। इनके प्रभाव से वाकिफ भी होने लगे थे। और इनकी शक्ति के आगे समर्पण भी करने लगे थे। हालाँकि दिनमान साप्ताहिक के 18 मार्च 1966 के अंक में सर्वेश्वर दयाल सक्सेना ने लघु पत्रिकाएँ महात्वाकांक्षाएँ शीर्षक आलेख में लघु पत्रिकाओं को खारिज कर देने की एक कोशिश तो की थी। परन्तु रमेश बक्षी जो प्रारम्भ से ही व्यावसायिक प्रतिष्ठानों-पत्रिकाओं से जुड़े रहे थे, अचानक साहित्यिक पत्रकारिता की ओर उन्मुख हुए एवं ‘आवेश’ नामक पत्रिका का प्रकाशन भी प्रारम्भ कर दिया।

यद्यपि कि इस दशक का सबसे बड़ा अवदान रहा 'लघु पत्रिका' प्रदर्शनी और लघु पत्रिकाओं पर गोष्ठी का आयोजन। कई मायनों में यह ऐतिहासिक रहा।

प्रथमतः यह कि लघु पत्रिकाओं से जुड़े हुए लोग कोई छोटी जमात के नहीं हैं। यह जान कर कि 128 पत्रिकाएँ निकल रही हैं, तत्कालीन लघु पत्रिका आन्दोलन एक नई गति से भर उठा। सुदूर अंचलों से गाँवों-कस्बों से लघु पत्रिका के प्रति प्रतिबद्ध लोगों का दिल्ली जैसी जगह में जुटना ही बड़ी बात थी।

इस संगोष्ठी एवं प्रदर्शनी ने यह भी किया कि लघु पत्रिकाओं की 'रेंज' की सही जानकारी हो गई। यह भाव भी विन्यस्त हुआ कि जनोन्मुखी-प्रतिबद्ध साहित्य लघु पत्रिकाओं में ही छप रहा है, और यह भी कि व्यावसायिक पत्रिकाओं का बहिष्कार लेखकों के चरित्र को और भाँजता ही है। लघु पत्रिका में छप रहे साहित्यकार इस हीनता ग्रन्थि से भी बाहर आए कि वे व्यावसायिक पत्रिकाओं में छप रहे और छाप रहे महान् साहित्यकारों की कृपा से ही साहित्य की दुनिया में है।

'आवेश' के माध्यम से रमेश बक्षी ने लघु पत्रिकाओं के क्षेत्र में भी प्रवेश किया, परन्तु बहुत दिनों तक टिक नहीं पाए। लेकिन इस अल्पावधि में ही रमेश बक्षी ने न सिर्फ लघु पत्रिकाओं के आन्दोलन में एक अनिवार्य ऊर्जा भरी अपितु उसके संघर्षों को एक व्यापक फलक भी सौंपा। कुछ प्रमुख पत्रिकाओं को निम्नवत चिन्हित किया जा सकता है-

नवलेखन (भोपाल), रागरंग (कलकत्ता), रूपाम्बरा (कलकत्ता), विशेष (कलकत्ता), वातायन (बीकानेर), युयुत्सा (कलकत्ता), लेखन (कलकत्ता), समीक्षा (पटना), भराल (वाराणसी), समानान्तर (चण्डीगढ़), शब्द (अलवर), कविता (दिल्ली), साहित्य दर्पण (दिल्ली), अक्षर (कलकत्ता), सामयिक (कलकत्ता), संविधा (छपरा), आरम्भ (लखनऊ), शताब्दी (जबलपुर), परिचय (जबलपुर), प्रज्ञा (कलकत्ता), अंकन (चेन्नई), विनियोग (वाराणसी), कथा (इलाहाबाद), कथांतर (मिर्जापुर), इतरेतर (लखनऊ), मूल्यांकन (लखनऊ), हस्ताक्षर (रायपुर), आधुनिका (मुजफ्फरपुर), अ-रचना (रायपुर), फेनिल (मुरादाबाद), नवलेखन (भोपाल), दिशा (दिल्ली), क ... ख ... ग (इलाहाबाद), दर्पण (हाबड़ा), बिन्दु (उदयपुर), रेखांकन (भिलाईनगर), संबोधन (कांकोली), कविताएँ (जयपुर) एवं सम्प्रति (गोरखपुर) इत्यादि।

अधिक क्रांतिकारी और कम क्रांतिकारी; सुविधाजीवी और संघर्षकामी, ये इस तरह के विभाजन रहे हैं कि इसने वामपंथ की प्रतिरोधी चेतना को तो क्षीण किया ही, लघु पत्रिका आन्दोलन को भी लक्ष्य भ्रष्ट किया। क्योंकि यह निर्विवाद तथ्य है कि लघु पत्रिका आन्दोलन को वामपंथी चेतना ने एक स्वरूप, एक व्यक्तित्व, एक विचार तो दिया ही है कुछ इस कदर कि दोनों को पर्याय भी समझा जाने लगा था। लेकिन 'एफ्रो-एशियाई लेखक सम्मेलन' में वामपंथ और लेखकीय प्रतिबद्धता को जैसे विवाद का मुद्दा बनाया गया उससे क्षति ही अधिक पहुँची। मुद्रा राक्षस, रमाकान्त और धमेन्द्र गुप्त जैसे 'अतिक्रान्तिकारी' लेखकों ने सज्जाद जहीर और मुल्कराज आनन्द को 'कुछ कम' क्रांतिकारी बताते हुए उन्हें 'सुविधाजीवी कम्युनिस्ट' भी करार दिया एवं इस पूरे सम्मेलन का विरोध किया।¹³

इसके बाद इन तीनों लेखकों ने 'लेखन को इस बहुरूपिएपन'¹⁴ से बचाने के लिए अप्रैल 1971 में 'निकेत' नामक एक नई पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ किया, धमेन्द्र गुप्त के निर्देशन में।

आठवें दशक में और भी कई पत्रिकाएँ निकलीं। जिनमें सर्वाधिक ख्याति अर्जित की, 'पहल' ने अपने प्रकाशन से लेकर आज तक, जबकि 88वाँ अंक सामने है, लघु पत्रिका का एकदम से अनाबिल आदर्श सामने रखा है। 'पहल' को छोड़ भी दें तब भी लघु पत्रिका आन्दोलन के लिहाज से सर्वाधिक महत्वपूर्ण दशक यही रहा। कुछ प्रमुख पत्रिकाओं की सूची श्री धमेन्द्र गुप्त ने बनाई है, "निकेत के अतिरिक्त आठवें दशक में अनेक लघु पत्रिकाएँ प्रकाशित हुईं जैसे विनियम (पटना), पहल (जबलपुर), अस्वीकार (कलकत्ता), अप्रस्तुत (कलकत्ता), ओरांग उटांग (उज्जैन), तनाव (पिपरियाँ), बाम (आरा), प्रतिमान (गोड्डा), हम (जयपुर), चिति (बीकानेर), बातचीत (मुंगेर), निरंतर (कानपुर), अथवा (दिल्ली), विचार (मुंबई), अब (सासाराम), अन्तर (दिल्ली), उत्तरार्ध (कोटा), निष्कर्ष (सुल्तानपुर), पुरुष (मुजफ्फरपुर), मंगिया (गोरखपुर), आवेग (रतलाम), कैमूर (सासाराम), प्रगतिशील समाज (पटना), क्यों (मीनमाल), उत्तरार्ध (मथुरा), केतन (दिल्ली), कालपात्र (दिल्ली), विवेक-विकास (जयपुर), समानान्तर साहित्य (पटना), प्रतिमा (प्रयाग), ओर (भरतपुर), दीर्घा (दिल्ली), मंच (अम्बाला), समकालीन कविता (इलाहाबाद), लोक सम्पर्क (जयपुर), दीर्घा (दिल्ली), मंच (अम्बाला), समकालीन कविता (इलाहाबाद), लोक सम्पर्क (जयपुर), त्रिज्या (पिपरिया), अवाम मित्र (रतलाम), ऋतुचक्र (इन्दौर), इबादत (रतलाम), प्रतिबद्ध कविता (दिल्ली), संज्ञा (बड़ौदा), प्रतिमान (शाहजहाँपुर), धरती (कानपुर), तत्काल (मुंगेर), अकविता (दिल्ली), अभिव्यंजना (कलकत्ता) तश्य (दिल्ली), समझ (पटना), गवाह (औरंगाबाद), शिल्पी (भागलपुर), युवा (कानपुर), कंक (रतलाम), युवा कविता (दिल्ली), उदाहरण (कन्नौज), नागफनी (कलकत्ता), दिशाबोध (दिल्ली), बोध (कलकत्ता), पदक्षेप (बिहारशरीफ), अस्ति (दिल्ली), धरातल (नालंदा), इत्यलम (रायपुर), कथानक (कानपुर), अभिव्यक्ति (चण्डीगढ़) नया कथन (कलकत्ता), बुनीया (सागर), विषय वस्तु (दिल्ली), जारी (रायपुर), हस्तक्षेप (नैनीताल), अंचल भारती (देवरिया), मधुमाधवी (जयपुर), ग्रहण (छिन्दवाड़ा), कथाराज (डूंगरगढ़), मासिकी (दिल्ली) इत्यादि।¹⁵

वस्तुतः आठवाँ दशक ही सही अर्थों में लघु पत्रिकाओं को आन्दोलनात्मक विस्तार देता है। विचार-तेवर से लेकर स्वरूप और सम्भावनाओं तक में। यहाँ तक कि सर्वेश्वर दयाल सक्सेना को भी इनकी महत्ता को स्वीकार करते हुए उसी दिनमान में लिखना पड़ा, "एक चीज साफ दिखाई देती है। जो राहत देती है और जिसका पूरी तरह स्वागत किया जाना चाहिए वह है छोटी पत्रिकाओं के मिजाज में परिवर्तन। छोटी पत्रिकाएँ, 'स्त्री की योनि' से निकल कर एक स्वस्थ सार्थक धरातल पर आ गई हैं।"¹⁶

इसी सन्दर्भ में मुंबई में आयोजित मार्च 1975 में अखिल भारतीय हिन्दी लेखक सम्मेलन में धर्मवीर भारती द्वारा पठित आलेख के भी महत्व का रेखांकन जरूरी प्रतीत होता है जिसका विषय था 'छोटी पत्रिकाएँ, बड़ी पत्रिकाएँ और साहित्यिक संस्कार'। हालाँकि इसमें उन्होंने छोटी पत्रिकाओं के महत्व और उनकी आवश्यकता को समझते हुए, व्यवसायी पत्रिकाओं के साथ उनके सहयोगी रूख पर बल प्रदान तो किया परन्तु लघु पत्रिकाओं की विरोधी मुहिम की एक तरह से हवा निकाल देने की की। कोशिश भी जब उन्होंने कहा कि, "इस दिशा में उन सबको विचार करना होगा जिनके विरोध की भिंगमाएँ केवल व्यक्तिगत कुण्ठा या दलगत आग्रह के कारण नहीं हैं।"

आशय साफ है कि विरोध की एक धारा व्यक्तिगत कुण्ठा और दलगत आग्रहों के आधार पर चल रही है, उसे शेष धारा से काट कर दो धाराएँ बनाई जाएं। ताकि इनके अन्तर्विरोध बड़े। दूसरा यह भी कि इन 'कुण्ठाओं और आग्रहों को छोड़ कर' उस मुहिम के कुछ लोग इनसे आ मिले जो नहीं मिलेंगे वे, कुण्ठा और दलगत आधार पर आग्रही हैं।

नवें दशक में लघु पत्रिकाओं की दुनिया कुछ सिमटी। लघु पत्रिका आन्दोलन की चर्चित शिखरधारी धर्मेन्द्र गुप्ता का कहना है कि, "नवें दशक को पूर्वार्ध और उत्तरार्ध में विभाजित करके देखा जाना ही हितकर होगा।"¹⁷ उनका मानना है और यह सही भी प्रतीत होता है कि नवें दशक का उत्तरार्ध जो हास संकेतित करता है पूर्वार्ध में वैसा नहीं लगता क्योंकि प्रेमचन्द जन्मशताब्दी वर्ष, 1980 ने शुरुआत में ही एकदम से पूरे आन्दोलन को ऊर्जा से भर दिया। कई विशेषांक निकले, गोष्ठीयाँ-सेमिनार हुए। दिल्ली से प्रकाशित 'विषयवस्तु' ने अपना प्रवेशांक ही 'प्रेमचन्द विशेषांक' के रूप में निकला। 1981 में इलाहाबाद से राजेन्द्र कुमार के सम्पादन में शुरू 'अभिप्राय' ने अपने प्रवेशांक में 'प्रेमचन्द के मजदूर और प्रेमचन्द की सामाजिक चेतना' विषयक दो महत्वपूर्ण आलेख भी दिये।

लेकिन उत्तरार्ध जरूर निराश जनक रहा। वर्ष 1988 में सिर्फ तीन नई लघु पत्रिकाएँ सामने आती हैं। और क्रमशः 89-90 में दो-दो। इसके कारणों की पड़ताल में जाएँ तो व्यवसायिक घरानों की कुटिल चालें तो मिलती ही हैं, सत्ता और साहित्य के तनाव पूर्ण सम्बन्ध भी कहीं न कहीं उत्तरदायी ठहरते हैं। क्योंकि इमर्जेन्सी के बाद सत्ता ने अपने कसबल कुछ कड़े किए थे। लघु पत्रिकाओं ने उसे स्वीकार नहीं किया। लेकिन राजनीति ने समाचार पत्रों के माध्यम से अपनी गोटी लाल करने की सोची। सफलता भी मिली। बड़े-बड़े प्रतिष्ठानों ने साहित्य छापने का ढोंग भी अब छोड़ दिया। "सत्ता की राजनीति और राजनीति पत्रकारिता में एक समझौता हो गया।"¹⁸ परिणाम यह हुआ कि साहित्य भी समाचार बन कर रह गया। सूचना और सिर्फ सूचना ज्ञान का कोई मतलब नहीं। विचार और वैचारिकी को खत्म कर देने की साजिशों के बावजूद नवें दशक के पूर्वार्ध में कुछ लघु पत्रिकाएँ सामने आईं जिनमें प्रमुख हैं - विचार (लातूर) वृत्तान्त (कलकत्ता), कथाबिम्ब (मुंबई), लेखन (इलाहाबाद), वर्तमान साहित्य (इलाहाबाद), अभिप्राय (इलाहाबाद), इसबार (आरा), प्रस्थान (पटना), वसुधा (भोपाल), पलप्रतिपल (पंचकूला) समकालीन सृजन (कलकत्ता), अगला कदम (इलाहाबाद), कारखाना (जमालपुर), कथाभाषा (फरीदाबाद) समग्र चेतना (कानपुर), स्वर्ण रेखा (राँची), प्रसंगवश (अलगढ़), व्योम (पटना) व्याख्यान माला (जयपुर) युग स्पंदन (दिल्ली) कश्यपरूप (इलाहाबाद) इत्यादि।

इसके साथ ही अंतिम दशक की कुछ लघु पत्रिकाओं का भी उल्लेख ताकि आज तक के प्रतिरोधी विचारों एवं मुक्तिकामी चेतना के अभियानों की झलक पायी जा सके। अभिव्यक्ति (कोटा), सम्यक् (मथुरा) अब (सासाराम) अमिधा (मुजफ्फरपुर), द्वारा (काकिनाड़ा), सहकार (उन्नाव), अभिनव प्रसंग (अलीगढ़), युद्धरत आम आदमी (हजारीबाग अब दिल्ली), कला (पूर्णिया) शेष (जोधपुर) महिम पतिमा (इम्फाल) सरयू धारा (देवरिया) असुविधा (सोनभद्र) सरोकार (अररिया) अक्षत (बोकारो) संभवा (मुजफ्फरपुर) आवर्त (मुजफ्फरपुर) इत्यादि।

लेकिन सर्वाधिक महत्वपूर्ण परिघटना रही 'हंस' का प्रकाशन। वस्तुतः अन्तिम दशक लघु पत्रिकाओं की सत्ता का दशक रहा। भूमण्डलीकरण कई आर्थिक नीतियों एवं बाजारवादी हमले के बावजूद नवें दशक का अन्तिम वर्ष मण्डल कमीशन के लिए ही नहीं जाना जाएगा, शोषितों वंचितों की राजनीतिक अभिव्यक्ति के लिए भी जाना जाएगा। राजनीति की सत्ता ने उनमें प्रतिरोधी विचारों का प्रकटीकरण किया। उसी तरह नरसिंह राव की सरकार और नई आर्थिक नीतियों के स्वीकरण ने आम जनता में प्रतिरोधी चेतना का बीज वपन किया। बाबरी मस्जिद विध्वंस ने प्रतिरोध की एक तरह से लहर ही पैदा कर दी। तब तक गुजरात दंगों ने एक बार फिर प्रतिवाद के स्तरों को तीव्र होने का अवसर दिया। इन तमाम घटनाओं ने साहित्य के सामाजिक प्रयोजन लघु पत्रिकाओं की भूमिका को भी निखरने का अभूतपूर्व अवसर प्रदान किया जिसे लघुपत्रिकाओं ने भी दोनों हाथों लपक लिया।

संदर्भ सूची :-

1. मिथिलेश्वर, प्रवेशांक 'मित्र', सम्पादकीय, पृष्ठ 4
2. वही
3. विश्वनाथ त्रिपाठी, हरेप्रकाश को साक्षात्कार देते हुए, दैनिक हिन्दुस्तान, पटना, साप्ताहिक परिशिष्ट 'कृति' 17 मई 2005
4. परमानन्द श्रीवास्तव, समकालीन सृजन, संयुक्तांक, 9-12 पृष्ठ 179
5. शम्भूनाथ, मित्र -1, बाजारवाद, कट्टरतावाद और परिधि की आवाजें, पृष्ठ 58
6. रमेश उपाध्याय, राष्ट्रीय सहारा, साप्ताहिक परिशिष्ट 'हस्तक्षेप' 13 नवम्बर 1994
7. शम्भूनाथ, मित्र-1, बाजारवाद, कट्टरतावाद और परिधि की आवाजें, पृष्ठ 60
8. परमानन्द श्रीवास्तव, समकालीन सृजन, संयुक्तांक, 9-12 पृष्ठ 183
9. शम्भूनाथ, मित्र-1, बाजारवाद, कट्टरतावाद और परिधि की आवाजें, पृष्ठ 61
10. परमानन्द श्रीवास्तव, समकालीन सृजन, संयुक्तांक, 9-12 पृष्ठ 180
11. रमेश उपाध्याय, राष्ट्रीय सहारा, साप्ताहिक परिशिष्ट 'हस्तक्षेप' 13 नवम्बर 1994
12. रमेश उपाध्याय, राष्ट्रीय सहारा, साप्ताहिक परिशिष्ट 'हस्तक्षेप' 13 नवम्बर 1994
13. धर्मेन्द्र गुप्ता, लघु पत्रिकाएँ और साहित्यिक पत्रकारिता, पृष्ठ 139
14. वही
15. वही, पृष्ठ 140
16. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, 'दिनमान' 18 अगस्त 1974
17. धर्मेन्द्र गुप्त, पूर्वोक्त पृष्ठ 142
18. वही

दुष्यन्त कुमार के कथा साहित्य का सर्वेक्षण

डॉ० अभिनय कुमार

सहायक प्राध्यापक, हिन्दी विभाग, रामेश्वर महाविद्यालय, मुजफ्फरपुर

दुष्यन्त कुमार की प्रसिद्धि कवि के रूप में रही है। उन्होंने काव्य के कई रूपों को अपना रचनात्मक समय-स्पर्श देकर महत्वपूर्ण बनाया है। गीत, गजल, मुक्त छंद, गीतिनाट्य सबमें उन्होंने अपनी विलक्षण प्रतिभा का परिचय दिया है। उनके उपन्यासों के पहले उनका काव्य-नाटक 'एक कंठ विषपायी' प्रकाशित हो चुका था। इसमें उन्होंने अपनी कथा-शिल्प की प्रौढ़ता का प्रमाण दिया था।

दुष्यन्त कुमार ने 'छोटे-छोटे सवाल' और 'आंगन में एक वृक्ष' नामक दो सम्पूर्ण उपन्यास लिखे हैं। ये दोनों उपन्यास हिन्दी की दो अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रकाशन संस्थाओं से प्रकाशित हैं। राजकमल और राधाकृष्ण प्रकाशन द्वारा प्रकाशित इन उपन्यासों के अनेक संस्करण हो चुके हैं। इसी से इन ग्रन्थों की लोकप्रियता का अनुमान किया जा सकता है। 'छोटे-छोटे सवाल' 1964 में लिखा गया और उसी वर्ष प्रकाशित हुआ जबकि 'आंगन में एक वृक्ष' 1967-69 के मध्य लिखा गया और 1970 में प्रकाशित हुआ। 'छोटे-छोटे सवाल' एक महत्वपूर्ण उपन्यास है जो निम्नलिखित उपशीर्षकों में समायोजित है:- 'इंटरव्यू से पहले', 'सलेक्शन कमेटी', 'गूंगे की दुकान', 'कोठरी', 'कृषि योजना', 'लौटते हुए', 'प्रिंसिपल की कुर्सी', 'हॉस्टल', 'विमर्श और परामर्श', 'समझौता?', 'बजती हुई साँकलें', 'जाले', 'संरक्षक', 'टूटी हुई छत', 'तूफान', 'मोड़', 'अधिकार', 'धीरज का बांध', 'तालाब का पक्षी', 'दो सेक्रेटरी', 'मुख्य द्वार', 'हड़ताल', 'इज्जत का सवाल', 'बुझी हुई लालटेन', 'निर्णय', 'प्रश्नाहत जिंदगी'।

'आंगन में एक वृक्ष' अपेक्षाकृत छोटा उपन्यास है। पहले उपन्यास में नियुक्ति-प्रक्रिया को कथात्मक रूप दिया गया है तो दूसरे में चन्दन के माध्यम से जीवन की सार्थकता पर विचार किया गया है। उपन्यास का अंत एक पत्र के साथ होता है। पत्र इस प्रकार है:-

प्यारी गुलाबी भाभी,

तुम्हारा खत कल ही मुझे मिला। तुम्हारे रूपए पहले ही मिल गए थे। पांच नोट थे न! पांच ही लौटा रहा हूँ। अगर न रखे तो देखना, मेरे मरे का मुंह भी न देख पाओगी।

मेरी बीमारी से तुम दुखी हो, यह बड़ी अच्छी बात है। पर कहीं चन्दन पर भी विष व्याप्त सुना है। तुम इस वहम को तबीयत से निकाल दो कि शराब मुझे पी रही है। मैं मरूंगा तो शराब में नहीं, मुहब्बत के समुद्र में डूबकर मरूंगा। इति।

तुम्हारा चन्दन।

इस पत्र की प्रतिक्रिया के साथ उपन्यास समाप्त होता है। 'उस पत्र को पढ़ने के बाद मैं सहसा अपनी उम्र से बहुत बड़ा हो गया था। मुझे किसी तरह की दुविधा और किसी मार्ग या मार्गदर्शक की आवश्यकता अनुभव नहीं हो रही थी। मैंने अपना पुराना निश्चय खुद बदल दिया था।

एकदम दृढ़ और सधे हुए कदमों से भाभी के पास जाकर मैंने भाई साहब का वह खत और सौ-सौ रूपए के पांचों नोट उनके सामने फेंक दिए थे। मुझे ऐसा लगा था मानो मैं एक ऋण से उन्मुक्त हो गया हूँ। आज उस भावुक अभद्रता पर थोड़ी ग्लानि भी होती है, क्योंकि भाभी ने मेरी ओर इस प्रकार देखा था जैसे मैं नहीं, कोई और मेरा लिबास पहनकर उनके सामने आ खड़ा हुआ हो। फिर भी, रूपए उन्होंने सहेजकर रख लिए थे।²

'छोटे-छोटे सवाल' में कॉलेज परिसर में पनप रहे भ्रष्टाचार, अनियमितता, अनुशासनहीनता आदि चित्रण किया गया है। शिक्षण संस्थाओं के नाम पर घृणित व्यवसाय चलानेवाले सेठों और उन्हीं जैसे अन्य व्यक्तियों की कमीनी हरकतों का अंकन ही उपन्यासकार का लक्ष्य है। इस चक्रव्यूह में चरित्रवान और ईमानदार शिक्षक किस प्रकार दूध की मक्खी की तरह निकाल-बाहर किये जाते हैं, इसका यथार्थ चित्रण उपन्यास में किया गया है। 'आंगन में एक वृक्ष' में एक स्त्री के अपने सौतेले पुत्र के प्रति निश्छल प्रेम का चित्रण किया गया है। इसके साथ ही उपन्यास में जमींदार परिवार की ठसक, मुकदमेबाजी, घरजमाई की समस्या, निर्धन परिवार से आयी बहू पर होने वाले अत्याचार आदि का अंकन हुआ है।

'एक अधूरी कवि-कथा' भी औपन्यासिक संरचना की ही असमाप्त कृति है। महावीर जैसे कई नाम इस कृति को आत्मकथा के रूप में परिणत करते हैं। ऐसा माना जा सकता है कि इस उपन्यास के संदर्भ दुष्यन्त के जीवन के हैं। इसका प्रारंभ इस प्रकार हुआ है- 'दिल में आज एक दर्द-सा उठ रहा है-पहले भी उठा करता था। ऐसा दर्द जो मुझे काफी प्रिय है। सोचता हूँ कि यह दर्द कभी खत्म न हो। पर दर्द तो दर्द है, आखिर कभी खत्म होगा ही। मैंने हमेशा कलम लेकर इस दर्द को अभिव्यक्ति देने की कोशिश की है, पर हमेशा असफल रहा हूँ। आज सोचता हूँ कि अच्छा ही किया जो लिखने से हाथ खींच लिया। ऐसे लिखने से क्या लाभ, जो आत्माभिव्यक्ति तक न कर पाए?

महावीर से जब-जब इस दर्द का जिक्र किया तो उसने गंभीरतापूर्वक बताया, 'प्रतिभा की अकुलाहट है भाई, तुम देखना कि यही दर्द कभी सृजन बनकर फूटेगा।' उस वक्त बड़ा अच्छा लगता था उसका यह कहना। पर आत्मप्रवचना थी। आज जब सब कुछ इतना स्पष्ट होकर सामने आ रहा है, तो यह खामख्याली और मिथ्या विश्वास मुझे ज्यादा छल नहीं सकता। क्योंकि मुझे ऐसा लगता है कि मैं बड़ा आदमी बन सकता हूँ- पैसेवाला-मगर बड़ा साहित्यकार नहीं।³

इसमें एक नवोदित रचनाकार का उत्साह भी है। 'पुकार' नामक उस पत्रिका का उल्लेख भी है जिसका संपादन दुष्यन्त ने रामकुमार राजपूत और महावीर सिंह के साथ मिलकर की थी। कथानायक ने अपनी रचना को प्रकाशन का संदर्भ देते हुए कहा है—'फिर तो कंचन और कामिनी के नशे से भी ज्यादा तेज बनकर कविता का नशा मुझ पर सवार हुआ। दिन में दो-दो तीन-तीन गीत लिखने लगा। सोते-जागते, उठते-बैठते हर वक्त कविता ही सूझती थी। कभी-कभी घंटों बैठकर यों ही आसमान की ओर ताकता रहता—क्योंकि सुना था कि कवि बड़े खोए-खोए से रहते हैं। मैं चाहता था कि मैं भी भावुक हो जाऊँ। कॉलेज में इतिहास के घंटे में नागरिकशास्त्र की किताबें खोलकर सहपाठियों की नजरों में भुलक्कड़ दिखाना मुझे अच्छा लगता और जब वे कहते—'कवि तो आधे पागल होते हैं' भाई। और ये भी कवि हैं।' तो मेरा सीना एक गज का हो जाता था।

उन्हीं दिनों मेरा एक गीत 'पुकार' नामक मासिक पत्रिका में स्वीकृत हुआ। संपादक ने स्वीकृति की सूचना देते हुए लिखा था—'गीत की व्याख्या भेजने का कष्ट आगे से न उठाएं। यहां भी कुछ पढ़े-लिखे व्यक्ति हैं।' मुझे कितना हर्ष हुआ, मैं कह नहीं सकता। पत्र को जब मैं डालकर कॉलेज ले गया। बीसियों साधियों को दिखाया और कक्षा में रघुवंश और ऐसे ही दो-चार साहित्य में रुचि रखने वाले विद्यार्थियों के पास बैठकर मैंने बातों ही बातों में वह खत इस प्रकार उन्हें दिखा दिया। गोया मेरे लिए यह एक बहुत साधारण-सी बात है। व्याख्या वाली बात पर रघुवंश थोड़ा हंसा। बोला—'तुम पर व्यंग्य किया है हजरत।'4

इस उपन्यास में काव्य-गोष्ठी का जीवन्त वर्णन भी है—'संयोजिका ने घोषित किया, अब तुम्हारी सरोज अज्ञात कवि के रूप में आपके सामने आएंगी। कुमारी सरोज।'

मैंने पुस्तक बंद कर मंच की ओर देखा। सरोज के रूप में वही लड़की वहां बैठी थी। हल्की-सी दृष्टि मेरी ओर डालकर उसने खंगारकर गला साफ किया और कविता प्रारंभ की—

चूमने को आ गया आकाश धरती का किनारा

तुम नहीं आए तुम्हें हर बोल में मैंने पुकारा

प्रथम पंक्तियां गाने के साथ ही उसकी भावपूर्ण आंखें बंद हो गईं और वह पूरी तन्मयता से गीत में खो गईं।

गीत की पहली पंक्तियां सुनकर मैंने और महावीर ने लगभग एक ही समय में एक-दूसरे की ओर देखा। दोनों के अधर थोड़ा फड़के और फिर जैसे सब कुछ कह-सुनकर चुप हो गए। वस्तुतः वह गीत मेरा ही था, जो उसी मास की 'परिभाषा' नामक मासिक पत्रिका में प्रकाशित हुआ था।

हॉल में पूर्ण निस्तब्धता थी। लोग एकाग्र मन होकर वह गीत सुन रहे थे। सरोज की मधुर स्वर-लहरी वातावरण में गूंज रही थी। जब उसने अंतिम पद गाया तो जाने कैसा दर्द अपने स्वर में भर लिया जैसे उसी की व्यथा उन पंक्तियों में मुखर हो उठी हो:-

प्यार के संसार पर गहरा धुंधलका छा रहा है

धूप के छल से उम्मीदों का कमल मुरझा रहा है

प्यास मेरी सोख क्यों पाता नहीं सागर तुम्हारा

तुम नहीं बोले तुम्हें हर बोल में मैंने पुकारा।5

दुष्यन्त कुमार रचनावली के तीसरे खंड में एक अप्रकाशित उपन्यास का एक अंश प्रस्तुत किया गया है। उपन्यास का कोई शीर्षक नहीं है और यह अंश महज पांच पृष्ठों का है। उपन्यास का प्रारंभ ही नाटकीयता के साथ होता है—भट्टाचार्य के बहुत आग्रह करने पर मैं नाटक का एक रिहर्सल देखने चला गया।

एक बड़े-से-हॉल कमरे में नाटक की तैयारियां हो रही थीं। एक बड़े पावर का बल्ब कमरे के बीचोबीच लटक रहा था और उसके नीचे घूमते-फिरते नाटक के पात्र पुतलों की तरह लगते थे। कमरे में चटाइयाँ बिछी थीं और जगह-जगह मेकअप का सामान, साड़ियाँ और कपड़े तथा नकली दाढ़ी-मूंछें बेतरतीब-सी पड़ी थीं।

अन्नी इस सबको देखकर बहुत खुश हुई।

भट्टाचार्य ने मुझे आया देखकर बड़े तपाक से मेरा स्वागत किया और कोने में पड़ी कुर्सी से साड़ियाँ हटाकर बैठने का विनम्र आग्रह करते हुए दूसरे कलाकारों से मेरा परिचय कराने लगा—आप हैं अर्पिता के भाई और हिन्दी के प्रसिद्ध कवि, राजीव लोचन अग्निहोत्री। इस नाटक की भाषा को बनाने में आपका बहुत बड़ा हाथ है।'

'भयऽय तू!' अर्पिता ने बड़े जोश से शीशे के सामने से गर्दन घुमाकर मेरी ओर देखा और फिर अन्नी को साथ पाकर इस तरह मेरी ओर झपटी जैसे बाज किसी चिड़िया पर झपटता है।6

उपन्यास अंश की समाप्ति कुछ इस प्रकार है—'वह बिल्कुल खामोश बैठा रहा और पास की बंसबट पर चिड़ियों के झुंड चूँ-चूँ कर रहे थे। न जाने कब से जलती हुई सिगरेट का टुकड़ा अचानक ऐश-ट्रे के भीतर लुढ़का तो मैंने अचानक उसका कंधे पकड़कर उसे बुरी तरह झकझोर दिया और शायद ऊँची आवाज में बोला, 'तू कुछ कह चाहे तो जूतों से मार! पर यों खामोश न बैठ! तेरी चुप्पी मुझे मारे डाल रही है।'

'ठीक है', अचानक बिल लेकर सामने आ खड़े हुए बैरे की ओर देखते हुए कमल ने मुझे भी वस्तुस्थिति का बोधा करा दिया। पेमेंट लेकर बैरा चला गया तो उसने कहा, 'तुम अगर मेरे दोस्त न होते.....तो मैं तुम्हारी खाल खींचकर उसमें भुसा भर देता और इन बँसैली की सटियों से तब तक तुम्हें मारता रहता, जब तक भीतर का भुसा और बाहर की चमड़ी सलामत रहती।'

इसके बाद एक गहरी अर्थपूर्ण चुप्पी हमारे चेहरों की गंभीरता पर छा गई थी। पेड़ों से झरते हुए पत्ते, धूप-छाँह में खेलती हुई चिड़ियाँ और सूना नीरस आकाश, सब कुछ अपनी जगह छोड़कर अचानक हम दोनों उठ खड़े हुए। बिना कुछ बोले स्टैंड से साइकिल उठायी और धीरे-धीरे घर की ओर चल दिए।

परन्तु फर्क सिर्फ इतना था कि इस बार वह साइकिल चला रहा था और मैं पीछे कैरियर पर बैठा था।⁷

दुष्यन्त ने कहानियाँ अधिक नहीं लिखीं। उनकी प्रकाशित कहानियों की संख्या मात्र सात है। 'आघात' उनकी पहली कहानी है। दो पृष्ठों की इस कहानी में उन्होंने चौधारी साहब के पुत्रमोह और मोहभंग का चित्रण किया है। उनकी दूसरी कहानी 'कलयुग' बोधकथा जैसी है। चार पृष्ठों की इस कहानी में पौराणिक संदर्भों की अनुकृति है। 'मिस पीटर' तीसरी कहानी है। 1949 में लिखी गई यह कहानी अपेक्षाकृत लम्बी कहानी है। कहानी का अंत इस प्रकार है—और फिर उसने बिल्कुल मिस पीटर जैसी आवाज में बड़ी खुली और फिर साफ अंग्रेजी बोली और फिर एक कागज पर कुछ लिखा भी, जिससे मैं उस पत्र की लिखावट भी पहचान लूँ। दोनों एक थीं।

फिर मैं एक क्षण भी वहाँ न रुका। साइकिल उठाकर फौरन लौट पड़ा। सुख स्वप्नों का जाल छिन्न-छिन्न होकर इधर-उधर जा पड़ा था। रास्ते-भर सोचता आया कि सब मित्र अपने मित्रों या जान-पहचान वालों के द्वारा बेवकूफ बनते हैं, बनते थे, बनते रहेंगे। पर शायद ऐसा कोई न बने।

कमरे पर पहुँचा तो सुना—कांता धर्मवीर से कह रहा था कि बेचारा कहीं फेल न हो जाए, इस भय से हमने यह ड्रामा समाप्त कर दिया। मैं नमित-सा, दुखिता-सा, चकित-सा जाकर बिस्तर में पड़ा रहा।⁸

'छमिया' उनकी एक कहानी है जिसमें छमिया के चरित्र को उभारा गया है। 'मड़वा उर्फ माड़े' कहानी 'कल्पना' के अगस्त 1957 के अंक में प्रकाशित हुई थी। छह पृष्ठों की इस कहानी में गँवई जीवन की सरलता और स्वाभिमान की चेतना देखी जा सकती है—लोग कहते हैं, जब डकैती हो रही थी, माड़े बीड़ी सुलगाए गाँव के पश्चिम की ओर खड़े एक ऊँचे-से दरख्त पर चढ़ा हुआ अपने मधुर पर दर्द-भरे स्वर में आल्हा गा रहा था—

लुट गया सारा गाँव नवादा
पर जा खड़ी-खड़ी चिल्लाया
जुलम गुजर गए पर लो हो गई
अब कुछ रहा ठिकाना नाय
धुँआधार चल रही गोली
मच रहा भारी हाहाकार
जिन तिरियन के पग नहीं देखे
उन तिरियन के मुँह दिखाया।

दूसरे दिन सुबह होते ही लोगों ने देखा कि माड़े अपना सामान बाँध रहा है। गुलाबी ने पूछा, माड़े, क्या बात है? कहाँ को चल दिया?

माड़े ने बड़े कष्ट के साथ उत्तर दिया, 'अब ऐसे गाँव में रहने का धर्म नहीं जहाँ नामर्द बसते हों। मैंने तो सबकी पूँछ उठाकर देख लिया, मुझे सब मादा दिखाई दिए—नर कोई नहीं मिला।'⁹

'हाथी का प्रतिशोध' भी एक छोटी घटना है जिसमें एक घटना को रोमांचक प्रसंग देने का प्रयत्न किया गया है। 'वह मुसाफिर' अधूरी कहानी है जिसमें यात्रा के मनोविज्ञान को अभिव्यक्त करने की चेष्टा की गई है। अपनी कहानियों में दुष्यन्त ने कोई क्रांति नहीं की है। कहानी के संबंध में उनकी अपनी अवधारणा रही है। छठे दशक में उन्होंने हिन्दी कहानी के बदलते मिजाज को रेखांकित किया है। 'नयी कहानी' उन्हीं का दिया हुआ नाम है। नयी कहानी पर उनका लेख 'नयी कहानी : परम्परा और प्रयोग' 'कल्पना' के जनवरी 1953 अंक में प्रकाशित हुआ। इसमें उन्होंने हिन्दी कहानी के कथ्यगत और शिल्पगत परिवर्तनों की ओर संकेत किया। 'ज्ञानोदय' के अगस्त 1966 ई0 के अंक में 'कथा-संचेतना का बदलता फोकस' शीर्षक आलेख में उन्होंने अपनी कथा-दृष्टि का परिचय दिया है। प्रसिद्ध आंचलिक कथाकार रेणु पर उनकी टिप्पणी है—'लगता है, अपने पहले उपन्यासों की सफलता से रेणु ने एक सूत्र बनाया है जो उपन्यास-लेखक को सरल व्यावसायिक आधार प्रदान करता है—एक अंचल लीजिए। वहाँ के पाँच-सात प्रमुख पात्र छाँट लीजिए। उनमें से एक को कंजूस, एक को बदमाश, एक को शोषक, एक को प्रेमी और एक को लठैत बनाइए। फिर एक अच्छी-सी लड़की ले आइए (अगर वह लड़की बंगाल की हो, जैसा कि इस उपन्यास में है, तो क्या कहने) और जरा सावधानी से आंचलिक भाषा का पुट देते हुए सबको उस लड़की की तरफ आकृष्ट करा दीजिए। इस बात का ख्याल रखिए कि लड़की आदर्शवादी हो। फिर दो-एक ऐसे शहरी चरित्रों को लेकर चाशनी बनाइए जो या तो आदर्श की मशाल दिखाएँ या कोई और राजनीतिक रोल अदा करें। वार्तालाप पर विशेष ध्यान दीजिए और अंग्रेजी शब्दों को तोड़कर ग्रामीण हिन्दी में डाल लीजिए। आप पाएँगे कि एक कहानी बन गई है और उपन्यास की शक्ल लेती हुई आगे बढ़ रही है।

खुद 'जुलूस' रेणु के पिछले उपन्यासों की जूठन भर है। अंत केवल यह है कि 'मैला आंचल' और 'परती परिकथा' के बड़े कलेवर में जो दोष दिखाई नहीं देते थे, वे वहाँ खूब उजागर हैं।¹⁰

इस प्रकार दुष्यन्त की कथा-दृष्टि में व्यापकता थी किन्तु उनकी सृष्टि उस अनुपात में व्यापक नहीं हो सकी।

सन्दर्भ

1. दुष्यन्त कुमार रचनावली, खण्ड-3, पृष्ठ : 323
2. उपरिवत्
3. उपरिवत्, पृ0 : 329
4. उपरिवत्, पृ0 : 330-331
5. उपरिवत्, पृ0 : 324
6. उपरिवत्, पृ0 : 324
7. उपरिवत्, पृ0 : 328
8. दुष्यन्त कुमार रचनावली, खण्ड-3, पृ0 : 329
9. उपरिवत्, पृ0 : 38-39
10. दुष्यन्त कुमार रचनावली, खण्ड-4, पृ0 : 407

प्रेमचंद की गोदान में ग्रामीण जीवन का यथार्थवादी चित्रण

डॉ० रीना देवी

सहायक प्रोफेसर, हिंदी विभाग, चौधरी ईश्वर सिंह कन्या महाविद्यालय पूंडरी (कैथल)

सार:

यह माना जा सकता है कि गोदान एक गांव के किसान की दर्द भरी कहानी थी जिसका नाम होरी था इस गोदान उपन्यास में। इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता कि गोदान उपन्यास में ग्रामीण भारत का यथार्थवादी चित्रण है। इस उपन्यास में प्रेमचंद बताते हैं कि ग्रामीण अर्थव्यवस्था कृषि पर आधारित है और कृषि से पर्याप्त आय नहीं होती है इसलिए किसान हमेशा 'होरी' की तरह अभाव में ही जीवन यापन करते हैं। गोदान में होरी का किरदार एक मजबूर इंसान की तरह दिखता है मुंशी प्रेमचंद जी द्वारा लिखा गया 'गोदान' उपन्यास दिखाता है कि होरी ने अपने परिवार की भलाई के लिए बहुत कुछ किया, लेकिन उसकी कोई निश्चित आमदनी न होने के कारण सब व्यर्थ हो गया था। उसके पास बड़ी कृषि भूमि नहीं है इसलिए वह साहूकारों से उच्च ब्याज दर पर ऋण लेता है। इस उपन्यास में प्रेमचंद ने किसान और कृषि की दयनीय स्थिति को दर्शाया था। मुंशी प्रेमचंद जी द्वारा लिखा गया 'गोदान' उपन्यास दिखाता है कि होरी, किसान और कृषि की खराब स्थिति का सबसे अच्छा उदाहरण था। गोदान उपन्यास में होरी के माध्यम से मुंशी प्रेमचंद जी ब्राह्मणवादी रीति-रिवाजों की निंदा करते हैं क्योंकि उनका मानना है कि ये ब्राह्मणवादी सामाजिक रीति-रिवाज हिंदू समाज के लिए बहुत ही हानिकारक हैं और इन रीति-रिवाजों को तुरंत समाप्त किया जाना चाहिए। गोदान उपन्यास में प्रेमचंद का मुख्य उद्देश्य मनुष्य में मानवतावादी भावना को जगाना है ताकि हिंदू समाज समानता, न्याय, बंधुत्व और सामाजिक शांति के मार्ग पर अग्रसर हो सके। इस 'गोदान' उपन्यास में मुंशी प्रेमचंद ने उन लोगों पर प्रहार किया है जो अप्रासंगिक सामाजिक बुराइयों का समर्थन और संरक्षण करते हैं क्योंकि इन बुराइयों का भारतीय ग्रामीण समाज पर बुरा प्रभाव पड़ता है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि मुंशी प्रेमचंद हिंदी साहित्य में एक सुधारवादी के रूप में जाने जाते थे। इस उपन्यास में मुंशी प्रेमचंद भारतीय ग्रामीण जीवन की वास्तविक तस्वीर, विशेषकर एक गरीब किसान के संघर्ष को दर्शाने का प्रयास करते हैं।

मुख्य शब्द: गोदान, प्रेमचंद, होरी, ग्रामीण जीवन, यथार्थवादी, उपन्यास

भूमिका:

इस गोदान उपन्यास में 'होरी' नामक किसान मुख्य पात्र था इसका मतलब है कि पूरा उपन्यास होरी पर आधारित है। गोदान महाकाव्यात्मक उपन्यास को मुंशी प्रेमचंद ने कृषक जीवन का महाकाव्य कहा है क्योंकि यह गोदान महाकाव्यात्मक उपन्यास भारतीय ग्रामीण कृषक समाज, ग्रामीण कृषि संस्कृति और ग्रामीण किसानों की गरीबी, शोषण, रूढ़ियों तथा ग्रामीण संघर्षों का सजीव और संपूर्ण मार्मिक चित्रण करता है जिसमें नायक होरी के माध्यम से भारतीय किसान की आत्मा की करुण-गाथा की वास्तविक तस्वीर दिखाई गई है। यह माना जा सकता है कि गोदान महाकाव्यात्मक उपन्यास केवल एक निराश किसान की दुखद कृषक कहानी नहीं है बल्कि ग्रामीण भारत की मार्मिक आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक करुण वास्तविकताओं का एक विशाल ग्रामीण महाकाव्यात्मक दस्तावेज है। 'गोदान' मुंशी प्रेमचंद का एक महाकाव्यात्मक उपन्यास है जो औपनिवेशिक भारत के ग्रामीण जीवन, विशेषकर किसान होरी के शोषण, संघर्ष और मर्यादा की कहानी है जहाँ होरी की एक गाय रखने की छोटी सी इच्छा भी गरीबी और सामाजिक दबाव के कारण पूरी नहीं हो पाती है। इस कहानी का सबसे निराशाजनक पहलू यह था कि होरी नामक मुख्य पात्र की गाय खरीदने की इच्छा पूरी नहीं हुई है। यह माना जा सकता है कि गोदान उपन्यास भारतीय ग्रामीण और शहरी जीवन के यथार्थवादी निराशाजनक चित्रण के साथ भारतीय ग्रामीण समाज के विरोधाभासों, वर्ग संघर्षों और नैतिक पतन को दर्शाता है और इसे भारतीय गांव के किसान के जीवन के संघर्षों का निराशाजनक महाकाव्य माना जाता है।

गोदान को मुंशी प्रेमचंद के कृषक जीवन का महाकाव्य कहा जाता है क्योंकि यह भारतीय ग्रामीण समाज, कृषि संस्कृति और किसानों की गरीबी, शोषण, रूढ़ियों तथा संघर्षों का सजीव, संपूर्ण और मार्मिक चित्रण करता है गोदान में नायक होरी के माध्यम से भारतीय किसान की आत्मा की करुण गाथा कही गई है। मुंशी प्रेमचंद जी द्वारा लिखा गया 'गोदान' उपन्यास दिखाता है कि यह केवल एक निराशाजनक कहानी नहीं, बल्कि ग्रामीण भारत की आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक वास्तविकताओं का एक विशाल ग्रामीण भारत का महाकाव्यात्मक दस्तावेज है। यह माना जा सकता है कि गोदान की रचना कृषक जीवन से जुड़ी समस्याओं का चित्रण करने के लिए की गई है। यह भी विडम्बना ही है कि अपने शोषकों के बारे में 'होरी' जैसा किसान अच्छी तरह जानता है फिर भी सांस्कृतिक रूढ़ियों और सामाजिक संस्कारों से बंधा हुआ होने के कारण वह उनके प्रति क्रोधाभिभूत नहीं हो पाता और इस ब्राह्मणवादी शोषण के लिए वह अपने भाग्य को दोषी मानता है। मुंशी प्रेमचंद जी द्वारा लिखी गयी 'गोदान' में पूरे भारतीय ग्रामीण जीवन को जहाँ मार्मिक तरीके से उजागर किया गया था तो वही शहरी जीवन को भी रईस, तेज रफ्तार, प्रेम, धन दौलत, ईर्ष्या से भरी जिंदगी से रंगीन कर दिया गया था। इस उपन्यास में होरी

को एक संघर्षशील सामाजिक व्यक्ति के रूप में दर्शाया गया है जो अपनी सामाजिक, पारिवारिक और धार्मिक जिम्मेदारी के प्रति पूरी तरह समर्पित है। मुंशी प्रेमचंद जी द्वारा होरी-धनिया की जिंदगी को जिस तरह से पिरोया गया था यह एक प्रशंसनीय साहित्यिक कार्य था इस उपन्यास में होरी को एक संघर्षशील सामाजिक दुख से भरी जीवन में भी संघर्षशीलता के साथ चेहरे पर संतुष्टि के भाव के साथ जीवन जीते हुए आदमी की रूप में देखा गया था²

गोदान उपन्यास में होरी और उसके परिवार के सदस्यों का चरित्र चित्रण:

‘गोदान’ में होरी पारंपरिक शोषित किसान का प्रतीक है और जबकि दूसरी तरफ उसकी पत्नी धनिया विद्रोह की जुझारू आवाज है और इस उपन्यास में होरी का बेटा गोबर गांव की कठोर सामाजिक और आर्थिक संरचना से आजादी की तलाश करने वाले आधुनिक व्यक्ति का प्रतीक है। गोबर अपने गाँव को छोड़ना चाहता था क्योंकि उसे लगता था कि गाँव का जीवन अभावों से भरा है इसलिए वह अपने परिवार के लिए पैसे कमाने के लिए लखनऊ शहर जाना चाहता था। वह अच्छी तरह जानता था कि उसके पिता हमेशा गाँव में ही रहे हैं और इसलिए उनका परिवार गरीबी में जीवन यापन करता है। गोबर औद्योगीकरण से प्रभावित था, इसलिए उसकी रुचि अपने पिता के पेशे कृषि की बजाय नौकरी में थी। गोदान उपन्यास से पता चलता है कि भारतीय कृषि प्रणाली गांवों में पर्याप्त रोजगार प्रदान करने में विफल रही है, इसलिए लोग रोजगार और अच्छी आय के लिए बड़े शहरों की ओर पलायन कर रहे हैं। हम कह सकते हैं की होरी और धनिया के पुत्र गोबर युवा पीढ़ी के बदलते दृष्टिकोण और ग्रामीण जीवन से शहरी जीवन में परिवर्तन का प्रतीक है। यह कहा जा सकता है कि शुरू में गोबर एक साधारण गांव का लड़का होता है। वह भोला की बेटी झुनिया को गर्भवती कर देता है और फिर सामाजिक परिणामों के डर से लखनऊ शहर भाग जाता है। यह कहा जा सकता है कि लखनऊ शहर में आकर वह दुनियादारी सीखता है और लखनऊ शहर में आकर वह समझदार बन जाता है। वह लखनऊ शहर में कड़ी मेहनत करता है पैसे कमाता है और अंततः झुनिया के साथ लखनऊ शहर में बस जाता है। धनिया, होरी की पत्नी है, जो एक मजबूत, साहसी और व्यावहारिक महिला है और अपने आज्ञाकारी पति के बिल्कुल विपरीत उसका चरित्र चित्रण है। यह कहा जा सकता है कि होरी के विपरीत धनिया सामाजिक सत्ता को चुनौती देने, सामाजिक-धार्मिक पाखंड पर सवाल उठाने या अन्याय के खिलाफ बोलने से नहीं डरती है। इस गोदान उपन्यास में यह देखा जा सकता है कि धनिया अक्सर होरी से बहस करती है और धनिया दूसरों के लिए लगातार बलिदान देने या गांव के बुजुर्गों और गांव के जमींदारों को खुश करने के बजाय अपने और अपने परिवार के हितों के लिए खड़े होने के लिए होरी को मनाती है। इस गोदान उपन्यास में यह देखा जा सकता है कि धनिया ऐसी महिला की प्रतीक है जो सामाजिक बुराइयों की परवाह किए बिना करुणापूर्वक गोबर की प्रेमिका झुनिया को अपने घर में शरण देती है। इस गोदान उपन्यास में यह देखा जा सकता है कि धनिया ग्रामीण महिलाओं की ताकत का प्रतिनिधित्व करती हैं जो पितृसत्तात्मक और आर्थिक कठिनाइयों का सामना करती हैं लेकिन इस क्रूर समाज में अपने परिवारों के अस्तित्व के लिए संघर्ष करती हैं।

प्रेमचंद की गोदान में ग्रामीण जीवन का यथार्थवादी चित्रण:

यह माना जा सकता है कि प्रेमचंद के ‘गोदान’ में ग्रामीण जीवन का यथार्थवादी चित्रण अत्यंत गहरा और अत्यंत मार्मिक है जहाँ होरी जैसे किसान की अत्यंत गरीबी, अत्यंत शोषण इस गोदान उपन्यास में दिखाई देता है। इस उपन्यास ‘गोदान’ में यह देखा गया है कि ग्रामीण जीवन जमींदारों, साहूकारों और पुजारियों द्वारा निर्धारित रीति-रिवाजों और परंपराओं में जकड़ा हुआ है। और अंततः प्रेमचंद जी ने होरी की दयनीय मौत के माध्यम से भारतीय कृषि-जीवन की पूरी तस्वीर ‘गोदान’ में उकेरी गई है जिसमें कर्ज, अंधविश्वास और व्यवस्थागत अन्याय को प्रमुखता से दिखाया गया है जो इसे एक क्लासिक और प्रासंगिक कृति बनाता है। ‘गोदान’ में मुंशी प्रेमचंद ने भारतीय ग्रामीण जीवन का यथार्थवादी चित्रण किया है जिसमें किसानों की गरीबी, शोषण, कर्ज के जाल, सामाजिक असमानता और सामाजिक रूढ़ियों से जकड़े जीवन को होरी और धनिया जैसे किरदारों के माध्यम से दिखाया गया है जो जमींदारों, महाजनों और अधिकारियों द्वारा निरंतर शोषित होते हैं और अंततः यह माना जा सकता है कि यह ‘गोदान’ उपन्यास ग्रामीण यथार्थ की जीवंत और सार्वकालिक तस्वीर पेश करता है। यह माना जा सकता है कि गोदान की मूल समस्या भारतीय ग्रामीण समाज, विशेषकर किसानों की गरीबी, शोषण और उनकी त्रासद नियति है मुंशी प्रेमचंद जी द्वारा लिखा गया यह ‘गोदान’ उपन्यास दिखाता है कि जहाँ होरी जैसे किसान ऋण, जमींदार, महाजन, सरकारी तंत्र और सामाजिक रूढ़ियों, मर्यादा, अंधविश्वास के जाल में फँसकर जीवन भर संघर्ष करते हुए अंततः अपनी जमीन और जीवन दोनों से हाथ धो बैठते हैं जिससे उनकी ‘गोदान’ करने की अंतिम इच्छा भी अधूरी रह जाती है और यह प्रासंगिक कृति ‘गोदान’ में उनकी बेबसी उजागर होती है³

प्रेमचंद की गोदान में यथार्थवादी चित्रण के प्रमुख बिंदु:

गोदान में किसान के एक संगठित शोषण का चक्र: मुंशी प्रेमचंद जी द्वारा लिखा गया ‘गोदान’ उपन्यास दिखाता है कि कैसे भारतीय ग्रामीण किसान विशेषकर होरी, जमींदार राय साहब, महाजन, पुरोहित, और पटवारी-कारिंदों के एक संगठित सामूहिक आर्थिक जाल में फँसा रहता है जिससे वह कभी बाहर नहीं निकल पाता। उन सभी ने उसका आर्थिक शोषण किया था। होरी सामाजिक अपराधियों के इस सामूहिक गिरोह से भयभीत था⁴

गोदान में आर्थिक विषमता और गरीबी: यह माना जा सकता है कि होरी की गाय रखने की अधूरी इच्छा और लगातार कर्ज में डूबना ग्रामीण गरीबी और आर्थिक विषमता का प्रतीक है जो आज भी प्रासंगिक है। होरी ने अपना जीवन गरीबी और अभाव में बिताया और इन सामाजिक परिस्थितियों में जीने के अलावा उसके पास कोई और विकल्प नहीं था।

गोदान में रूढ़ियों और संस्कारों का बंधन: यह माना जा सकता है कि होरी अपनी रूढ़ियों और संस्कारों जैसे दान-धर्म, परंपरा के कारण जमींदार राय साहब, महाजन, पुरोहित, और पटवारी-कारिंदों के एक संगठित सामूहिक आर्थिक शोषकों के खिलाफ आवाज नहीं उठा पाता और भाग्य को दोष देता है, जो भारतीय किसान की एक बड़ी कमजोरी है। हिंदू पारंपरिक अनुष्ठानों में अत्यधिक आस्था के कारण, होरी ने पारंपरिक सामाजिक बुराइयों के खिलाफ कोई अभियान शुरू नहीं किया। गोदान उपन्यास में यह दिखाया गया है कि धर्म, जाति और सामाजिक मर्यादाओं के नाम पर किसानों का शोषण होता है और वे इन बेड़ियों में फँसे रहते हैं जैसा कि पुरोहित और मुखिया भी शोषण में शामिल होते हैं।

गोदान में मानव-प्रकृति और रिश्तों का यथार्थ: इस गोदान उपन्यास में प्रेमचंद ने मानव-प्रकृति के संबंध, पति-पत्नी होरी-धनिया, माँ-बेटे के रिश्तों और उनकी पारंपरिक सामाजिक जटिलता को बड़ी सच्चाई से चित्रित किया है जिसमें धनिया का संघर्ष और साहस भी शामिल है जो पारंपरिक सामाजिक बुराइयों के खिलाफ नारी शक्ति का प्रतीक है।

गोदान में भाषा और वातावरण: गोदान उपन्यास में, स्थानीय पारंपरिक सामाजिक लोकभाषा, सामान्य पारंपरिक सामाजिक मुहावरों और ग्रामीण क्षेत्र की छवियों का उपयोग ग्रामीण वातावरण को जीवंत बनाता है और इस कारण से पाठक गोदान उपन्यास से सीधे जुड़ते हैं।

गोदान में शहर और गाँव का विभाजन: इस गोदान उपन्यास में प्रेमचंद ने ग्रामीण यथार्थ को और अधिक गहरा किया है। इस उपन्यास में यह दिखाया गया है कि कैसे शहरी पूंजीवाद और सामंती व्यवस्था मिलकर गाँव का शोषण करती है। इस गोदान उपन्यास में नागरिक पात्रों ने ग्रामीण जीवन के शोषण को दिखाया है और यह दर्शाते हुए कि किसान का दुख केवल गाँव तक सीमित नहीं है बल्कि पूरे आर्थिक-सामाजिक ढाँचे का परिणाम है।

गोदान में पात्रों की सच्चाई: होरी की गाय रखने की इच्छा अधूरी रह जाती है, धनिया का संघर्ष और त्याग, तथा गोबर-झुनिया जैसे किरदारों के माध्यम से इस गोदान उपन्यास में प्रेमचंद ने मानवीय भावनाओं और नैतिक द्वंद्वों का गहरा यथार्थ प्रस्तुत किया है।

गोदान 'एक किसान का शोक-गीत': 'गोदान' को भारतीय ग्रामीण किसान के आंसुओं और पीड़ादायक नियति का महाकाव्य माना जाता है, जो उस समय के ग्रामीण भारत का एक सच्चा और हृदयविदारक दस्तावेज है और आज भी प्रासंगिक है।

संक्षेप में, यह माना जा सकता है कि 'गोदान' भारतीय पारंपरिक ग्रामीण जीवन का एक ऐसा सच्चा आईना है, जिसमें किसान की आकांक्षाओं, संघर्षों और अंतहीन दुखों का चित्रण है, जो तत्कालीन भारतीय ग्रामीण समाज के यथार्थ को दर्शाता है और यही गोदान को हिंदी साहित्य की एक अमर कृति बनाता है। संक्षेप में, यह माना जा सकता है कि 'गोदान' भारतीय किसान के जीवन का एक 'शोक-गीत' या 'आँसू भरी कहानी' है जो न केवल अपने समय का बल्कि आज भी प्रासंगिक और सार्वकालिक दस्तावेज है जहाँ हर शोषित किसान को होरी के रूप में देखा जा सकता है। यह माना जा सकता है कि गोदान एक ऐसा उपन्यास था जो ग्रामीण भारत की वास्तविकता को दर्शाता है, जो अंधविश्वासों और तर्कहीन रीति-रिवाजों से भरा हुआ है। यह उपन्यास भारतीय किसान समुदाय के पतन को दर्शाता है। यह ग्रामीण भारत के गाँवों में रहने वाले किसानों की पीड़ाओं को भी उजागर करता है। यह दर्शाता है कि किस प्रकार गरीबी ने भारतीय ग्रामीण किसानों को जकड़ रखा है। गोदान के माध्यम से लेखक प्रेमचंद यह दर्शाते हैं कि किस प्रकार कृषि उनके परिवार के लिए भरण-पोषण प्रदान करने में विफल रही है। यह माना जा सकता है कि गोदान दर्शाता है कि कृषि प्रणाली की विफलता का कारण आवश्यक आय का अभाव है।

निष्कर्ष

यह माना जा सकता है कि गोदान उपन्यास भारत के औपनिवेशिक काल के दौरान किसानों के सामाजिक-आर्थिक संघर्षों के यथार्थवादी और सशक्त चित्रण के लिए एक उत्कृष्ट कृति माना जाता है। गोदान एक ऐसा उपन्यास था जिसमें कहानी बेलारी नामक काल्पनिक गाँव के एक गरीब किसान होरी महतो और उसके जीवन भर के सामाजिक सम्मान प्राप्त करने और गाय रखने के अपने सपने को पूरा करने के संघर्ष पर केंद्रित है। प्रेमचंद ने गोदान के इस उपन्यास में दिखाया है कि होरी अपने पारिवारिक दायित्वों के प्रति बहुत सजग है और वह अपने सभी पारिवारिक, सामाजिक और धार्मिक दायित्वों को पूरा करने का प्रयास कर रहा है। होरी आर्थिक अभाव से पीड़ित था क्योंकि उसके पास कृषि के अलावा कोई और काम नहीं था, इसलिए यह कहा जा सकता है कि कृषि होरी और उसके परिवार की जरूरतों को पूरा करने के लिए पर्याप्त नहीं थी। होरी अपने परिवार की जरूरतों के लिए एक गाय खरीदना चाहते थे, लेकिन तमाम कोशिशों के बावजूद उन्हें गाय नहीं मिल पाई। साहूकार के उच्च ब्याज दर से होरी भयभीत हो गया था। आर्थिक तंगी के कारण होरी लगातार बीमार रहा और अंततः उसकी मृत्यु हो गई। होरी की मृत्यु के बाद उसके परिवार को उसकी इच्छा पूरी करने के लिए गाय दान दान करने की कोशिश की थी। हम कह सकते हैं कि गोदान के उपन्यास में होरी के चरित्र के माध्यम से भारतीय किसान समुदाय के शोषण को दर्शाया गया है। प्रेमचंद अपने उपन्यास 'गोदान' में यह कहना चाहते हैं कि किसानों का शोषण साहूकारों और भारतीय सामाजिक व्यवस्था द्वारा किया जा रहा था। इस शोध पत्र में संक्षेप में हम कह सकते हैं कि प्रेमचंद किसानों के शोषण से बहुत नाराज थे और सरकार, नौकरशाही, साहूकार और हिंदू सामाजिक व्यवस्था द्वारा किसानों का शोषण किया जा रहा है। इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि गोदान भारतीय समाज को एक संदेश देने में सफल रहा है। इसने भारतीय ग्रामीण समाज की वास्तविकता को दर्शाया है।

संदर्भग्रंथ सूची:

1. सुनीता, 'उपन्यासकार प्रेमचंद की सामाजिक चेतना', साहित्य संहिता पत्रिका, 1.11, 2015, 21-24.
2. नीलम कुमारी, 'प्रेमचंद और हमारा समय', पूर्वोत्तर प्रभा पत्रिका, 1.1, 2021, 47-53.
3. कृतिका राय और सौम्या श्रीवास्तव, 'प्रेमचंद के गोदान में जातिगत गतिशीलता का अनावरण', एसपीएल जर्नल ऑफ लिटरेरी हर्मेन्यूटिक्स: स्वतंत्र आलोचनात्मक सोच की एक द्विवार्षिक अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका, 3.2, 2023, 207-217.
4. के. शाहीन और पी. बशीर खान, शोषणकारी सामंती व्यवस्था: मुंशी के गोदान में सामाजिक-आर्थिक संघर्ष, थिंक इंडिया जर्नल, 2019, 12.10, 9696-9701.
5. किरण शर्मा, गोदान में नारी शक्ति का चित्रण: एक आलोचनात्मक विश्लेषण, जर्नल ऑफ ह्यूमैनिटीज एंड कल्चरल स्टडीज, 3.6, 2024, 28-30.

आधुनिक संस्कृत साहित्य में जैन मनीषियों का प्रदान

डॉ० जागृति के० शाह

एन.के. महेता एन्ड एम. एफ. दाणी, आर्ट्स कॉलेज मालवण, जि. महीसागर

प्रस्तावना:

संस्कृत वाङ्मय और भारतीय तत्वज्ञान के उद्भव और विकास में जितना योगदान वैदिक दार्शनिकों का है उतना ही योगदान श्रमणचिन्तनधारा का भी है। यह बात अलग है कि श्रमणचिन्तनधारा का क्षेत्र अधिक व्यापक नहीं हो पाया। और श्रमण परंपरा का साहित्य प्रबुद्ध समाज के पठन, मनन का विषय नहीं बन पाया जैन मनीषियों ने प्रायतः ईसा की प्रथम शताब्दि से ही अपने मूल परम्परागत सिद्धांत के अनुसार संस्कृत, प्राकृत आदि भाषाओं में अपने ग्रन्थ लिखे। जहां बौद्ध धर्मदर्शन की धारा प्रवाह सूखने लगा वहां जैन दर्शन के क्षेत्र में आधुनिक काल में भी निर्माण की प्रवृत्ति बनी हुई है। जैनधर्म योगप्रधान है। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य तथा अपरिग्रह ही शरीर को साधनायोग्य बनाते हैं। सोलह संस्कार, त्यागोन्मुख भोग पर विश्वास कर्मफल के सिद्धांत पर आस्था के साथ जैनधर्म एवं दर्शन का प्रचार-प्रसार जैन मनीषियों के उद्देश्य थे। इसी कारण अपने ग्रन्थों में सोलह कारण भावनाओं, श्रावक के द्वारा ग्यारह प्रतिमाओं का ग्रहण, जिससे मानव मुक्ति, आचार्यत्व तथा तीर्थंकरत्व को प्राप्त कर सके। प्रस्तुत शोधपत्र में प्रमुख जैन मनीषियों के संस्कृत साहित्य में प्रदान विषय पर विमर्श प्रस्तुत किया जायेगा।

आधुनिक संस्कृत साहित्य में जैन मनीषियों का प्रदान

आधुनिक संस्कृत साहित्य में जैन मनीषियों के प्रदान में प्रमुख जैन सर्जकों के साहित्यिक योगदान पर प्रकाश डालने का प्रयास करेंगे।

१. मुनि सुधर्मसागर महाराज

जन्म इ.स. १८८७ में मुल नाम नन्दलाल शास्त्री था। मथुरा तथा बम्बई में संस्कृत साहित्य, व्याकरण, न्याय एवं आर्यवेदशास्त्र का अध्ययन किया। शास्त्री तथा न्यायवाचस्पति की उपाधि प्राप्त कर लेखक तथा व्याख्याता हुए। हिन्दी, संस्कृत, गुजराती तथा मराठी में साहित्यकृतिओं का सर्जन किया। आचार्य शान्तिसागर से सप्तमप्रतिमा का व्रत लिया। अनेक जैनग्रन्थों की संस्कृत भाषा में टीकाएँ लिखीं जिनमें पुरुषार्थानुशासन, रयणसार, प्रतिक्रमण, षट्कर्मोपदेशरत्नमाला, उमास्यामिकृत श्रावकाचार, परमार्थोपदेशगुणभूषण, श्रावकाचार आदि संस्कृत ग्रन्थों की टीकाएँ हैं। उन्होंने ने संघ के तपस्वीयों को जैनधर्म के उपदेश के साथ साथ संस्कृत का अध्ययन कराय, जिससे मुनिराज नेमिसागर, वीरसागर, कन्थुसागर, क्षुल्लकपाशर्वकीर्तीजी संस्कृत, जैसे ग्रन्थों की रचना की। सुधर्मध्यानप्रदीप नामक उपदेशात्मक काव्य की रचना संस्कृत में की थी। ग्रन्थ की भाषा सुस्पष्टपदवल्ली से युक्त सरल तथा उपदेशात्मक होने से बोधगम्य है।

२. मुनि ज्ञानसागर

जन्म इ.स. १८९२ राजस्थान के राणोली ग्राम में दिगम्बर जैन खण्डेलवाल के धावडा गोत्र में उत्पन्न शेट सुखदेवजी के परिवार में हुआ था। सुखदेवजी के पुत्र चतुर्भुज इनके पिता थे। ज्ञानसागरजी की बाल्यावस्था का नाम 'भूरामल' था। १०-वर्ष की आयु में पिता का देहान्त होने से परिवार के जीवनयापन का दायित्व आने से वस्त्रविक्रेता के यहाँ नोकरी की। वाराणसी के स्यादवाद महाविद्यालय में संस्कृत साहित्य एवं जैनदर्शन की उच्च शिक्षा प्राप्त की। क्वीन्स कॉलेज काशी से शास्त्री की परीक्षा उत्तीर्ण की। अध्ययनकाल में ही उन्होंने अप्रकाशित जैनधर्म के ग्रन्थों के प्रकाशन का कार्य किया। जैनाचार्यों द्वारा प्रणीत नव्यव्याकरण, साहित्य आदि विषयों के ग्रन्थोंका अध्ययन तथा स्वाध्याय आदि की माध्यम से ज्ञान प्राप्ति के बाद गृहस्थ धर्म का दायित्व ग्रहण न करके ज्ञानसागरजीने आजीवन ब्रह्मचारी रहने का व्रत लिया। इन्होंने संस्कृत भाषा में आठ ग्रन्थों की तथा हिन्दी में चौदह ग्रन्थों की रचना की। महाकाव्य, चम्पूकाव्य तथा मुक्तक विद्याओं से जुडकर जयोदय, सुदर्शनोदय, श्री समुद्रदत्तचित इन चार महाकाव्यों की रचना की। द्योदय चम्पूकाव्य और मुनिशतक नामक मुक्तक काव्य की रचना की। दार्शनिक ग्रन्थों में 'प्रवचनसार सम्यकत्वसारशतक' ये दो ग्रन्थ संपूर्ण संस्कृत वाङ्मय तथा जैन साहित्य की अमूल्य निधि हैं।

३. आचार्य कन्थुसागर मुनि

कन्थुसागर कर्णाटक के एनापुर ग्राम के निवासी थे तथा शान्तिसागर के शिष्य थे। शान्तिसागरजी से दीक्षा लेने के बाद पाशर्वकीर्ति नाम से विख्यात हुए। गुजरात की जनताने कन्थुसागरजी की वक्तृत्वशक्ति का सर्वाधिक लाभ प्राप्त किया। उन्होंने जैनधर्म के सिद्धांतों को संस्कृत भाषा में लगभग त्रिस्र ग्रन्थों में व्यक्त किया। उनके प्रमुख ग्रन्थों में चतुर्विंशतिजिनस्तुति, शान्तिसागरचरित्र, बोधामृतसार, निजात्मशुद्धिभावना, मोक्षमार्गप्रदीप, ज्ञानामृतसार, लघुबोधसार, स्वरूपदर्शनसूर्य, नरेशधर्मदर्पण, लघुप्रतिक्रमण, लघुज्ञानमृतसार, शान्तिसुधासिन्धु, श्रावकधर्मप्रदीप, मुनिधर्मप्रदीप, लघुसुधर्मोपदेशामृतसार, स्वपददर्शनसूर्य, भावत्रयफलदर्शी, सुवर्णसूत्रम् इत्यादि ग्रन्थों की रचना करके संस्कृत भाषा को नवपल्लवित किया।

४. मूलचन्द्र शोस्त्री

जन्म इ.स. १८०३ में जैन परिवार में हुआ था। वे अपने माता-पिता की इकलौती संतान थे। पितृविहीन होने कारण अभावों में ही जीवन व्यतीत किया तथा विद्यार्जन किया। उनकी बहुमुखी प्रतिभा काव्य की अनेक विद्याओं में अभिव्यक्त हुई। लोकशाहमहाकाव्य, वचनदूतम् खण्डकाव्य तर्धमानचम्पू नामक चम्पूकाव्य का सर्जन किया। इन्होंने टीकग्रन्थों का भी प्रणयन किया। हरिभद्रसूरि प्रणीत षोडशक प्रकरण की १५००० श्लोकप्रमाण टीका तथा विजय हर्षसूरि प्रबन्ध की ४५० श्लोक प्रमाण टीकाये उल्लेखनीय है। 'अभिनवस्त्रोत' स्तोत्रामक रचना का निर्माण किया। अभिनन्दन ग्रन्थों में अनेक स्तुत्यात्मक रचनाएं प्रकाशित हैं। जिनमें विद्यासागर पत्रिका में प्रकाशित ज्ञानसागर संस्तुति तथा शिवसागर स्मृतिग्रन्थ में प्रकाशित शिवसागरस्तुति तथा गणेशस्तुति प्रसिद्ध है। इन्होंने न्यायरत्न नामक दार्शनिक सूत्र ग्रन्थ की भी रचना की।

५. दयाचन्द्र शास्त्री

जन्म इ.स. १९१५ में सागर जिले के शाहपुर स्थान में हुआ था। उन्होंने अनेक शिक्षण संस्थाओं में अध्यापन किया। जैनपूजाकाव्य पर विद्यावाचस्पति की पदवी प्राप्त करके छात्रहितैषी पत्रिका का सम्पादन करते हुए जैनदर्शन आचार तथा सिद्धांत विषयक त्रिस ग्रन्थों का सर्जन किया। अमरभारती भाग १, २ और ३ नाम से प्रकाशित संस्कृत रचना दयाचन्द्रजी की अनुठी रचना है। जिसमें स्फूट रचनाएं, प्रतिभापरिचय, सरस्वतीवन्दनाष्टक, संस्कृतभाषास्तवन आदि संकलित है। गुरुवर गोपालदास की गौरवगाथा समस्यापूर्ति के रूप में कतिपय, संस्कृतपद्य, रक्षाबन्धनम् आदि शीर्षक के माध्यम से स्फूट रचनाएं हैं। इनके द्वारा रचित तीन अन्य ग्रन्थ हैं मीमांसा निबन्ध तथा मित्र। दयाचन्द्रजी के कवित्व की भाषा अनुप्रास, यमक, उपमादि अलंकारों से अलंकृत होने से प्रशंसनीय तथा विद्वज्जनो द्वारा पठनीय है।

६. जवाहरलाल सिद्धान्तशास्त्री

राजस्थान स्थित भीण्डर निवासी जवाहरलाल शास्त्रीने आधुनिक साधु, बृहदजिनोपदेश, कर्माष्टक, प्रकृतिग्रन्थ तथा क्षपणकसार आदि ग्रन्थों का पद्यानुवाद भी किया। संस्कृत भाषा में प्रणीत दो काव्य पद्यप्रभस्तवनम् तथा जिनोपदेशः है। पद्यप्रभस्तवनम् राजस्थान से प्रकाशित श्रेष्ठ काव्यकृति है जिसमें छठे तीर्थंकर पद्यप्रभ की पचीस पद्यों में स्तुति है। कवि महाप्रभु को अपने आराध्य के रूप में चित्रित करते हुए चारित्रिक पक्ष की भक्तिपूर्ण अभिव्यंजना करता है। शजिनोपदेश शतककाव्य है। जैनधर्म के विख्यात सिद्धांतों की आध्यात्मिक अभिव्यक्ति है। भाषा सरल, सरस प्रसाद तथा माधुर्यगुण प्रधान है। जवाहरलाल शास्त्रीजी के काव्यों का जैन साहित्य के विकास में विशेष योगदान है।

७. पंडित जुगलकिशोर मुखतार

जन्म इ.स. १८७७ में हुआ था। वे विपत्तियों को प्रकृति की देन माननेवाले तथा कर्मयोगी की भाँति जीवन व्यतित करनेवाले प्रतिभा संपन्न सर्जक थे। सहारनपुर जिले के छोटे से गाँव में उनका जन्म हुआ था। वे सत्य तथा न्याय का आश्रय लेते हुए उपदेश का कार्य करते रहे और साहित्य आराधना से कभी भी विचलित नहीं हुए। उन्होंने समन्तभद्र आश्रम की स्थापना की और समन्तभद्र की समस्त पुस्तकों पर भाष्यलेखन किया। जिससे उनके बहुआयामी व्यक्तित्व का परिचय हुआ। 'अनेकान्त' नामक मासिक पत्रिका के प्रकाशक तथा सम्पादक रहे। 'जैन साहित्य और इतिहास पर 'विशदप्रकाश' नामक ग्रन्थ में उन्होंने बत्तीस निबन्ध सामाजिक, राष्ट्रीय, आचारमूलक, भक्तिपरक, दार्शनिक एवं जीवनशोधक थे। संस्कृत रचनाओं में जैनदर्श दसश्लोकात्मक स्फूट काव्यरचना है।

८. राजवैद्य पंडित बालेलालजी जैन

जन्म टीकमगढ़ जिले के राजवैद्य परिवार में हुआ था। 'आहारतीर्थस्तवनम्' नामक सोलह पद्यों से समन्वित लघुकाव्य रचना का सर्जन किया। आहार क्षेत्र में एकमासोपवासी मुनि को एक व्यापारीने नवधाभक्तिपूर्वक अहार दिया। यहाँ प्रथम जिनालय में शान्तिनाथ की प्रतिभा स्थापित है।

९. नेमिचन्द्र ज्योतिषाचार्य

जन्म १८१५ ईस में हुआ था। आरा जैन कॉलेज में अध्यापन करते हुए अनेक हिन्दी और संस्कृत ग्रन्थों की रचना की और मागधम् पत्रिका का सम्पादन भी किया। 'संस्कृतगीतकाव्यानुचिन्तनम्' नामक संस्कृत ग्रन्थ का सर्जन किया। श्रद्धाप्रसूनांजलि, द्रव्यसंग्रह चन्द्रप्रभाचरितम् तथा तत्त्वसिद्धि का 'हिन्दी भाषा में अनुवाद किया। महेन्द्रकुमार शास्त्री की श्रद्धांजलि रूप पंच श्लोकात्मक इनकी स्फूट रचना है।

१०. आचार्य तुलसी

तेरापंथ परंपरा के नवम आचार्य तुलसीने बीसवीं शताब्दि में संस्कृत साहित्य के प्रति महत्वपूर्ण योगदान दिया है तथा अपनी ज्ञानज्योति को न्यायदर्शन, नीतिविषयक साहित्य, समस्यापूर्ति, स्तुतिकाव्य उपरान्त अनेक विद्याओं में प्रस्तुत किया है। उन्होंने चौबीस तीर्थंकरों की स्तुति से सम्बन्ध चतुर्विंशतिस्तवनम् तथा समस्यापूर्तिरूप कल्याणमंदिरस्तोत्र कर्तव्यषट्त्रिंशिका, दर्शनविषयक जैनसिद्धान्तदीपिका, न्यायविषयक मनोघ्नुशासनम् की रचना करके सरल व सुबोध तथा मूल्यवान सामग्री प्रदान की है।

११. आचार्य नथमल मुनि

तेरापंथ में आचार्य नथमलजी का विशिष्ट योगदान रहा है। तेरापंथ के चतुर्थ आचार्य श्रीमज्जयाचार्य तथा अन्य आचार्यों ने जैनधर्म के मौलिक तत्वों के प्रचार-प्रसार की दृष्टि से आप्त पुरुषों तथा धार्मिक महापुरुषों के गौरव के वर्णन की दृष्टि से प्रभावी राजा, मंत्री तथा अनुयायियों के अनुरोध से संस्कृत तथा हिन्दी में अपनी कारयित्री तथा भावयित्री प्रतिभा का प्रसार किया।

नथमल मुनिने बहुआयामि प्रतिभा से महाकाव्य, खण्डकाव्य, स्फूटश्लोक, मुक्तक तथा विभिन्न विषयों पर निबन्ध की रचना के माध्यम से विविध रूपों में परिलक्षित होती है।

१२. आचार्यचंदनमुनि

वे तेरापंथ के नवमे आचार्य तथा अणुव्रतप्रवर्तक आचार्य तुलसी के सहपाठी रहे हैं। इनका जन्म पंजाब प्रान्त के सिरसा गाँव में हुआ था। इ.स. १९२३ में नौ वर्ष की आयु में सुजानगढ़ राजस्थान में जैनधर्म की दीक्षा ली। वे ध्यान, साधना, स्वाध्याय, चिन्तन, अध्ययन, अध्यापन तथा साहित्य सर्जन में विशेष रूप से संलग्न रहे। आचार्य चन्दनमुनिने संस्कृत, प्राकृत, पंजाबी, गुजराती, हिन्दी, राजस्थानी आदि भाषाओं में काव्यकृतिओं का सर्जन किया। इनकी रचनाओं का मुख्य उद्देश्य व्यक्ति को आत्माभिमुख बनाने का एवं सत्यं शिवं की और अग्रेसर करना है। चन्दनमुनि की प्रमुख संस्कृत रचनाओं में आर्जुनमालाकारम्, प्रभवप्रबोधकाव्य, अभिनिष्क्रमणम्, ज्योतिस्फूटलिङ्गा, उपदेशामृतम्, प्रास्ताविकश्लोकशतकम्, वैराग्यकसप्ततिः, प्रबोधपञ्चपञ्चाशिका, अनुभवशतकम्, पञ्चतीर्थी, आत्मभावद्वित्रिशिका, पथिकपञ्चदशकम् तथा संवरसुधा आचार्य चंदनमुनि की संस्कृत भाषा में रचित उत्तम कृतियां हैं।

जैन आर्थिकाओं का प्रदान

जैन आर्थिकाओं का भी संस्कृत वाघमय में महत्वपूर्ण योगदान रहा है। आर्थिका सुपाशर्व माताजी, आर्थिका ज्ञानमति, आर्थिका जिनभक्ति की दार्शनिक तथा स्तोत्रात्मक रचनाएँ संस्कृत भाषा का गौरव हैं। यहां प्रमुख आर्थिकाओं का परिचय प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

१३. आर्थिका सुपाशर्वमाताजी

सुपाशर्व माताजी का जन्म राजस्थान के नागौर जिले में हुआ था। वे गृहस्थिक सुखों से वंचित रही। बालवैधव्य की स्थिति में उन्होंने धर्म की शरण ली तथा अजितसागर के सहयोग से विद्याध्यन करते हुए इ.स. १९५७ में आर्थिका दीक्षा ली। श्ववरीश से आर्थिका सुपाशर्वमती हो गयी। उन्होंने हिन्दी और संस्कृत भाषा में अनेक ग्रन्थों का सर्जन किया। संस्कृत-प्रकृत ग्रन्थों का सम्पादन तथा अनुवाद भी किया। पञ्चश्लोकात्मक महावीरकीर्ति महावीरस्मृतिग्रन्थ में प्रकाशित है। इसमें दीक्षागुरु विमलसागर को नमन तथा विद्यागुरु आचार्य महावीरकीर्ति की संस्तुति है। द्वादश पद्यात्मक जयमाला में अजितसागर के बाह्य तथा अन्तरंग व्यक्तित्व का सूक्ष्म परिचय विवेचन है। वन्देध्वदेहं इन्दुमातरम् नो श्लोको से युक्त तथा इन्दुमतीस्मृतिग्रन्थ में प्रकाशित स्फूट रचना में इन्दुमती का परिचय तथा दीक्षा आदि की तिथियों का उल्लेख है। शिवसागर स्मृतिग्रन्थ में प्रकाशित अष्टश्लोकात्मक रचना शिवसागर के प्रति श्रद्धांजलि है। इन कृतियों में छन्दों का वैविध्य तथा अनुप्रास यमकादि शब्दमूलक अलंकारों तथा उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि अर्थमूलक अलंकारों की छटा है।

१४. आर्थिका ज्ञानमती

आर्थिका ज्ञानमती का जन्म इ.स. १९३४ में टिकैतनगर बाराबंकी के अग्रवाल परिवार में हुआ था। उन्होंने १९-वर्ष की आयु में आजीवन ब्रह्मचर्य का व्रत ग्रहण किया। क्षुल्लक दीक्षा तथा आर्थिका दीक्षा लेने के बान ज्ञानमती के नाम से विख्यात होकर जैनसाहित्य की अपूर्व सेवा की। संस्कृत में स्फूट रचनाये स्तुति रूप में हैं। अष्टश्लोकात्मकशान्तिसागरस्तुति, एकादशपद्यात्मक, शिवसागरस्तुति तथा महावीर कीर्तयाचार्यस्तुति, पंचमेरुस्तुति, षट्पद्यात्मक स्तोत्रकाव्य है। इनमें पाँच पर्वतो पर जिनालयों में स्थित होने के कारण दर्शनीय पवित्र तथा पूज्य पर्वतो की महत्ता वर्णित है।

१५. आर्थिका जिनमती

महाराष्ट्र में जन्मी जिनमती का गृहस्थावस्था का नाम प्रभावती था। आर्थिका ज्ञानमती के सम्पर्क से सोलह वर्ष की आयु में ब्रह्मचर्य लिया। इ.स. १९५५ में वीरसागर से क्षुल्लिका दीक्षा, शिवसागर से इ.ए. १९६२ में आर्थिका दीक्षा ली। संस्कृत रचना स्मृतिपरक शिवाष्टक स्तोत्र है। इनके दस पद्य अनुष्टुप तथा शिखरिणी में हैं।

१६. क्षुल्लिका राजमतीमाताजी

दक्षिण भारत में जन्मी राजमती माताजी मुनि जम्मुसागर की युवावस्था की पत्नी हैं। संस्कृत भाषा में स्तुतिरूप स्फूटरचना शान्तिसागर से सम्बन्ध नवश्लोकात्मक है जिसमें शान्तिसागर के सर्प के समान होने पर भी विचलित न होने का संकेत है।

उपसंहार

संस्कृत वाघमय को नवपल्लवित करने में जैन मनीषीओं का योगदान इस शोधलेख में प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। यहाँ विभिन्न जैन मुनि, आचार्य, विद्वान एवं आर्थिकाओं के आधुनिक संस्कृत साहित्य में योगदान विषयक निष्कर्ष प्रस्तुत किया है।

सहायक सन्दर्भग्रन्थ सूचि:

१. जैन चरित्रकोश, लेखक : आचार्यश्री सुभद्रमुनीजी महाराज युनिवर्सिटी पब्लिकेशन ७/१३, अंसारी रोड, दरियागंज, दिल्ली
२. कर्तव्य कौमुदी, मुनिश्री रत्नचन्द्र स्वामी, हिन्दी पद्यानुवादक: पंडित मूलचंदजी वत्सल, जैन साहित्य प्रचारक समिती, अजमेर, व्यावर, प्रकाशन वर्ष इ.स. १९३९
३. अर्वाचीन जैन ज्योतिर्धरो, लेखन, संपादन श्रद्धेय श्री आत्मानंदजी, प्रकाशक: श्री चन्दुलाल छोटालाल महेता, सहसंपादक: प्रकाशभाई डी. शाह, सतश्रुत सेवा साधना केन्द्र, मुख्य मथक: श्रीमद् राजचन्द्र आध्यात्मिक साधना केन्द्र, कोबा, जि. गांधीनगर
४. जिनतत्व, रमणलाल ची शाह, प्रकाशक: श्री मुंबई जैन युवक संघ, ३८५, सरदार वल्लभभाई पटेल रोड, मुंबई

અરવલ્લી માનવીઓના સાંસ્કૃતિક મુલ્યોને ઉજાગર કરતી અનોખી કૃતિ

ભરતપુરી કેશપુરી ગૌસ્વામી

શોધછાત્ર, પાટણ ઉત્તર ગુજરાત યુનિવર્સિટી

ડૉ. રાજેશ ત્રિવેદી, શંખેશ્વર કોલેજ

માર્ગદર્શક

ભારતની આ અતિપ્રાચીન પર્વતમાળા ધારવાટ સમયના અંતભાગમાં અસ્તિત્વમાં આવેલી છે. તે કાળખંડ દરમિયાન તે સ્થળમાં વિસ્તરેલા દુનિયાનાં જૂનામાં જૂના ભુસંનતીમય સમુદ્રથાળામાં સતત એકઠો થયેલો વિશાળ નિક્ષેપજથ્થો, પ્રચંડ ભૂસંચલન ઘટના દ્વારા તબક્કાવાર થયેલ ઉર્ધ્વગમનની ક્રિયાને પરિણામે ઊંચકાઈને આવ્યો. ત્યારથી એટલે ૧૫૦ કરોડ વર્ષ માંડીને આ જ પર્વત અરવલ્લી ગિરિમાળાનાં પર્વતો નવરચનાનાં કાર્યો કરતા રહ્યા છે. રાજસ્થાન, બનાસકાંઠા, સાબરકાંઠા અને મહેસાણામાં છેક તારંગાની ટેકરીઓથી લઈને રાજપીપળા સુધી અરવલ્લીને પામવા માટે અવારનવાર ફર્યો છું. ‘અરવલ્લી’ નવલકથા જુદી તારી આવે છે. તેના કેન્દ્રમાં કોઈ માનવપાત્ર નથી; પરંતુ માનવસંસ્કૃતિનાં ઉદ્ભવ અને વિકાસનો સાક્ષી અરવલ્લી પર્વત છે. દક્ષિણની ગિરિમાળાથી શરૂ કરીને આજના હિમાલયની હારમાળા સુધી વિસ્તરેલી અરવલ્લીની પર્વતમાળા પહેલા ઘણી ઊંચાઈ ધરાવતી હતી; ‘અરવલ્લી’ આખે આખો પામવાનાં પ્રયત્નરૂપે આ નવલકથા રચવા પોતે તત્પર થયાનું લેખકે આરંભમાં સ્પષ્ટ કર્યું છે. અરવલ્લીનું સૌન્દર્યને આજુબાજુનાં જનજીવનનું નિરૂપણ કર્યું છે. એક જ તાંતણે આગળ વધતી કથા ઘટનાઓ આલેખન કથાવસ્તુમાં જોવા મળે છે.

‘અરવલ્લી’માં વસ્તુનો તંતુ બહુ પાતળો રહ્યો છે. નાયક ‘હું’ બનાસકાંઠા જીલ્લાનાં જંગલની જાસોરની રેંજનાં વન અધિકારી તરીકે નીમાય છે. તે જંગલનાં લોકો ઉપરાંત વનસ્પતિ અને વન્યસૃષ્ટિનો પરિચય કેળવે છે અને કાયમ ને માટે પાણીની સમસ્યા હાલ થાય. જંગલનાં લાકડાં ગેરકાયદેસર કપાય નહિ. વનવાસિઓનો સ્વભાવ જીવનરીતિ શ્રદ્ધા, રીતરિવાજ વગેરેનો પરિચય આપે છે. વર્ષોથી કુદરતના સાંનિધ્યમાં ઉભેલા અરવલ્લીને વામનમાંથી વિરાટ થયેલા વિષ્ણુની જેમ સાડા ત્રણ ડગમાં પામવાની અને માણવાની લેખકે કોશિષ કરી છે અરવલ્લીમાં પ્રતું વર્ણનનું વિશેષ મહત્વ જોવા મળે છે. આ અરવલ્લીનાં ગામોના લોકોની આસ્થા ફાલી હતી. સવારનો વરસાદી સૂરજ વિહ્વળ બનીને જાણે કોઈની પ્રતીક્ષા કરતો હોય એ રીતે ગંભીર પગલે આકાશ કેડીએ ડગલાં ભરી રહ્યા છે. લીલુછમ ઘાસ અને આ ઘટાદાર વૃક્ષોની સુગંધ સવારને તરબતર કરી રહી છે. મેં આવી સુગંધ ક્યારે માણી નથી.

અરવલ્લીમાં વસતાં વનવાસીઓની શક્તિઓ, વિચારો, શ્રદ્ધાઓ, ખ્યાલો, ચમત્કારોનું લેખકે સજીવ વાસ્તવિક રીતે આલેખ્યા છે. વનવાસીઓની ઉદારતા, સરચાઈ, વીરતા, એકતા, પ્રમાણિકતા, સહનાશિલતા, અડગતા વગેરે ગુણોને સર્જકે આલેખ્યા છે. આ લોકો પ્રકૃતિ અને કુદરતના સાંનિધ્યમાં જીવન ગુજારે છે. ડુંગર, વૃક્ષો, જંગલ, ઢોર-ઢાંખર, ખેતર એ જ એમનો વૈભવ, તેથી આર્થિક દ્રષ્ટિએ અમીર કે તવંગર નથી. ઘણા લોકો પાસે અન્ન, વસ્ત્ર અને ઘરના પણ ફાંફાં છે. પણ આંગતા-સ્વાગતા અને વાણી વ્યવહારની દ્રષ્ટિએ શહેરનાં ભલભલા લોકોને શરમાવે તેવા છે. લોકો સંપીને સ્વમાન તેમજ સ્વાભિમાનથી જીવે છે. પશુ-પંખી અને જીવ-જંતુઓ જેવી વન્ય જીવસૃષ્ટિની વિશેષતા, વિશિષ્ટતાનો પરિચય કરાવ્યો છે.

અરણ્યમાં ઉજવાતા શરદોત્સવ, કૌમુદી મહોત્સવ, વસંતોત્સવ, ફાલ્ગુની મહોત્સવ આ બધા ભલે લોકોત્સવ રહ્યા પણ સાચા અર્થમાં તો એ અરણ્યોત્સવ છે. મુશળાધાર તડકો વરસાવતી ગ્રીષ્મ, હેમંતની શીતળ હવા, રસકારતી અને કામનાઓનું ઉદ્દિપન કરતી વસંત અને અગ્નિનાં તાપે તપતી હોલિકા રસથી પકવ થયેલી શરદ, નવજીવન લઈને આવતી વર્ષા, કૌમુદીની આહલાદકતા અને પાનખરના ખરતા પાણીની વેદના આ બધું તો અરણ્ય સિવાય બીજે ક્યાં મળવાનું હતું ! ભલે અહીં જન-શૂન્ય હશે, જીવ-શૂન્ય નથી એની પ્રતીતિ થયા કરે છે. દિવાસો, નોરતા, કાળી ચૌદસ, હોળી જેવા વાર, તહેવારની ઉજવણીની વિશેષતાઓ, લગ્નગીતોમાં ગવાતી ગાળો, ભીંતો પર દોરેલા, સ્ત્રી-પુરુષનાં

ચિત્રો, લગ્નના રીત-રીવાજો, મરણવિધિ, ભૂત-ભૂવા, ચુકેલ, ડાકણ જેવી સૃષ્ટિની ગાથાનું આલેખન અરવલ્લીમાં જોવા મળે છે. કેદારનાથ, બાલારામ, મુની કી કુટિયા જેવા સ્થળોની નાયકની મુલાકાત અને આ સ્થળો સાથે જોડાયેલી માન્યતાઓ ત્યાંની વિશિષ્ટતાઓને લેખકે એકરસ બને તે રીતે આલેખી છે. અરવલ્લીની સાક્ષી છે. તેથી આડી પૌરાણિક અને ઐતિહાસિક કાલથી આ ગીરીમાલા આધ્યાત્મિક સંસ્કૃતિના મુળિયા પણ અહીં જ ઊંડાણ તાગી શક્યા છે, તેથી આ પર્વતો માત્ર પર્વતો નહિ પણ આપના સંસ્કારના શિખરો છે. તેથી એનાં અણુએ અણુમાં અને વનરાજીનાં પર્ણ પર્ણમાં આપણો ધબકાર સંભળાય છે. એમાં કોઈ મહાન સિદ્ધયોગીઓની વાયકાઓ વહેતી હોય છે.

‘અરવલ્લી’ એ કૃતિમાં ત્યાંના વનવાસી સમુદાયના લોકો લગ્નપ્રસંગની વિધિનું વર્ણન પણ મનોરથ જોવા મળે છે. લગ્ન પ્રસંગે એમના ફટાણા એ તો જાણે માઝા મુકી દીધી હતી! આ લોકો કેવી મુક્તિ અનુભવે છે! કેવો આનંદ લઈ શકે છે? કેટલી હદ સુધી જી શકે છે. એ જતાં તો મારી આંખો તરબતર બની ગઈ ! ક્યાં ફાઈવસ્ટાર કલ્ચર અને ક્યાં આ વનવાસી સંસ્કૃતિ?

અપના સબ કુછ અરવલ્લી કો સોંપ દો, અરવલ્લી હી શિવ હૈ’, અહીં સુરજ વહેલો જાગે છે અને મોડો ઉગે છે. વન, ડુંગર, વૃક્ષો, વેલીઓ વહેતી લાગે છે.

સંદર્ભગ્રંથસૂચિ :-

- (૧) ‘અરવલ્લી’ - કિશોરસિંહ સોલંકી
પ્રકાશક - બાબુભાઈ એચ. વોરા, નીશાપોળ,
જુવેરીવાડ, રીલીફ રોડ, અમદાવાદ - ૩૮૦૦૦૦૧, પ્રથમ આવૃત્તિ - ૨૦૦૭
- (૨) કેતન બુન્હા - ‘અરવલ્લી’ એક અધ્યયન
પ્રકાશક - ફ્લેમિન્ગો પબ્લીકેશન, અમદાવાદ
પ્રથમ આવૃત્તિ ૨૦૧૩

उत्तर प्रदेश के बलिया जिले में पंचायती राज व्यवस्था में महिलाओं की सहभागिता

ज्ञान प्रकाश

असिस्टेंट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, श्री बजरंग स्नातकोत्तर महाविद्यालय, दादर आश्रम, सिकन्दरपुर, बलिया

सारांश

पंचायती राज व्यवस्था भारत में ग्रामीण स्वशासन की नींव है, जिसका लक्ष्य लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण के माध्यम से सशक्तिकरण करना है। 73वें संविधान संशोधन, 1992 ने इसे संवैधानिक दर्जा दिया और महिलाएं इस प्रणाली में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं। बलिया जिला, जिसकी ऐतिहासिक और सामाजिक विशेषताएं हैं, महिलाओं की भागीदारी के अध्ययन के लिए महत्वपूर्ण है। यहां की पंचायतों में महिलाओं की सहभागिता बढ़ी है, लेकिन पितृसत्तात्मक सोच, ज्ञान की कमी और संस्थागत समर्थन की कमी जैसी चुनौतियाँ मौजूद हैं। बलिया में महिलाओं की संख्या में वृद्धि एक सकारात्मक संकेत है, लेकिन उनकी निर्णय लेने की शक्ति सीमित है। इसे दूर करने के लिए बलिया को अन्य जिलों के साथ मिलकर प्रयास करने होंगे। महिलाएं जब तक आत्मविश्वास से अपने कर्तव्यों का पालन नहीं कर पाएंगी, तब तक ग्रामीण स्वशासन का लक्षित समावेशी विकास हासिल नहीं होगा। क्षमता विकास, सामाजिक परिवर्तन और संस्थागत प्रतिबद्धता की आवश्यकता है ताकि महिलाएं सशक्त हो सकें।

प्रस्तावना

पंचायती राज व्यवस्था भारत में ग्रामीण स्वशासन की आधारशिला है, जिसका उद्देश्य लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण के माध्यम से जमीनी स्तर पर सशक्तिकरण लाना है। 73वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1992 ने इसे संवैधानिक दर्जा प्रदान किया और महिलाओं के लिए आरक्षण सुनिश्चित करके ग्रामीण शासन में उनकी भागीदारी का मार्ग प्रशस्त किया। उत्तर प्रदेश, भारत का सबसे अधिक आबादी वाला राज्य होने के नाते, इस संवैधानिक प्रयोग को क्रियान्वित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। बलिया जिला, जो अपनी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि और सामाजिक संरचना के लिए जाना जाता है, पंचायती राज संस्थाओं में महिलाओं की भागीदारी के अध्ययन के लिए एक महत्वपूर्ण केस स्टडी प्रस्तुत करता है। यह निबंध बलिया जिले में पंचायती राज व्यवस्था के तहत महिलाओं की सहभागिता के वर्तमान परिदृश्य, उसमें आने वाली चुनौतियों, प्राप्त सफलताओं और भविष्य की संभावनाओं का विस्तृत विश्लेषण प्रस्तुत करता है।

पंचायती राज में महिलाओं के लिए आरक्षण का वैधानिक आधार

73वें संविधान संशोधन ने पंचायतों में महिलाओं के लिए सीटों का एक तिहाई आरक्षण अनिवार्य किया। उत्तर प्रदेश ने इस प्रावधान को राज्य के पंचायती राज अधिनियमों में सफलतापूर्वक समाहित किया। बलिया जिले में भी ग्राम पंचायत, क्षेत्र पंचायत (ब्लॉक स्तर) और जिला पंचायत (जिला स्तर) तीनों स्तरों पर महिलाओं के लिए पर्याप्त आरक्षण लागू है। इस आरक्षण ने स्वाभाविक रूप से ग्रामीण राजनीति में महिलाओं की संख्यात्मक उपस्थिति को बढ़ाया है। जहां पहले महिलाएं निर्णय लेने की प्रक्रिया से पूरी तरह बाहर थीं, वहीं आरक्षण ने उन्हें औपचारिक मंच प्रदान किया है। हालांकि, संख्यात्मक प्रतिनिधित्व और वास्तविक निर्णय लेने की क्षमता के बीच का अंतर बलिया के संदर्भ में महत्वपूर्ण है। कई मामलों में, महिलाएं निर्वाचित होती हैं, लेकिन उनके पति या परिवार के पुरुष सदस्य पर्दे के पीछे से सत्ता का संचालन करते हैं, जिसे अक्सर शरपंच पतिश या प्रतिनिधि शासन की समस्या के रूप में जाना जाता है।

बलिया में महिलाओं की चुनावी भागीदारी और उपस्थिति

बलिया जिले में पिछले कुछ पंचायती चुनावों के आंकड़ों से स्पष्ट होता है कि महिला उम्मीदवारों की भागीदारी बढ़ी है। विशेष रूप से ग्राम प्रधान (ग्राम पंचायत अध्यक्ष) के पदों पर, जहां आरक्षण चक्रवात में आते रहते हैं, महिलाओं की संख्या में उल्लेखनीय वृद्धि देखी गई है। ग्रामीण महिलाएं अब राजनीतिक प्रक्रियाओं में अधिक रुचि दिखा रही हैं, खासकर जब उन्हें लगता है कि वे अपने समुदाय की समस्याओं का समाधान कर सकती हैं। उदाहरण के लिए, कई महिलाएं शिक्षा, स्वास्थ्य और स्वच्छता जैसे मुद्दों पर बेहतर परिणाम देने में सफल रही हैं। इन सफलताओं ने अन्य महिलाओं को भी चुनाव लड़ने के लिए प्रेरित किया है। सामाजिक रीति-रिवाजों और रूढ़िवादों के बावजूद, कुछ गांवों में महिलाओं ने सफलतापूर्वक अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग किया है और भ्रष्टाचार तथा अकुशलता को चुनौती दी है।

सहभागिता की गुणवत्ता, चुनौतियाँ और बाधाएँ

बलिया में महिलाओं की राजनीतिक सहभागिता की मात्रा में वृद्धि हुई है, लेकिन उसकी गुणवत्ता अभी भी कई गंभीर चुनौतियों से घिरी हुई है। ये चुनौतियाँ मुख्य रूप से सामाजिक, आर्थिक और संस्थागत कारकों से उपजी हैं।

सबसे प्रमुख चुनौती सामाजिक पितृसत्तात्मक मानसिकता है। ग्रामीण समाज में महिलाओं को पारंपरिक रूप से घर की चारदीवारी तक सीमित रखा जाता है। सार्वजनिक बैठकों में भाग लेने, निर्णय लेने और अधिकारियों से सीधे संवाद करने में वे झिझक महसूस करती हैं। कई बार, उन्हें परिवार के सदस्यों द्वारा बैठकों में भाग लेने की अनुमति नहीं दी जाती या उनके निर्णयों को अस्वीकार कर दिया जाता है।

दूसरी बड़ी बाधा क्षमता निर्माण और जागरूकता की कमी है। भले ही एक महिला निर्वाचित हो गई हो, उसे अक्सर पंचायती राज अधिनियमों, वित्तीय प्रबंधन, सरकारी योजनाओं और प्रशासनिक प्रक्रियाओं की पर्याप्त जानकारी नहीं होती है। प्रशिक्षण कार्यक्रमों का आयोजन किया जाता है, लेकिन उनकी प्रभावशीलता और निरंतरता अपर्याप्त रही है। इस ज्ञान के अभाव का फायदा उठाकर पुरुष सदस्य या स्थानीय नौकरशाह महिलाओं को दरकिनार कर देते हैं।

आर्थिक निर्भरता भी एक बड़ी बाधा है। ग्रामीण महिलाएं अक्सर आर्थिक रूप से पुरुषों पर निर्भर होती हैं, जिससे उन्हें राजनीतिक निर्णय लेते समय स्वायत्तता नहीं मिल पाती। इसके अलावा, हिंसा और धमकी का डर भी महिलाओं को मुखर होने से रोकता है। यदि कोई महिला भ्रष्टाचार का विरोध करती है या प्रभावी ढंग से काम करने की कोशिश करती है, तो उसे सामाजिक बहिष्कार या शारीरिक खतरे का सामना करना पड़ सकता है।

सकारात्मक पहल और सफल उदाहरण

इन चुनौतियों के बावजूद, बलिया में कई सकारात्मक उदाहरण सामने आए हैं जो महिलाओं की क्षमता को दर्शाते हैं। जब महिलाओं को मजबूत समर्थन और सही मार्गदर्शन मिलता है, तो वे असाधारण परिणाम देती हैं।

कई महिला प्रधानों ने अपने कार्यकाल में स्वच्छ भारत मिशन के तहत व्यक्तिगत शौचालय निर्माण में उच्च लक्ष्य हासिल किए हैं। उदाहरण के लिए, कुछ ग्राम पंचायतों ने जल संरक्षण के लिए तालाबों के जीर्णोद्धार और सामुदायिक शौचालयों के रखरखाव में सक्रिय भूमिका निभाई है। ये पहल अक्सर तभी सफल होती हैं जब महिला नेता समुदाय की महिलाओं के साथ सीधे संवाद स्थापित करती हैं और उनकी जरूरतों को प्राथमिकता देती हैं, जो पुरुष प्रधान व्यवस्था में कम देखने को मिलता है।

बलिया के कुछ क्षेत्रों में महिला स्वयं सहायता समूहों (एसएचजी) के साथ मजबूत तालमेल स्थापित हुआ है। ये समूह महिलाओं को आर्थिक रूप से सशक्त बनाते हैं और राजनीतिक मंच पर उनके लिए एक सहायक नेटवर्क का काम करते हैं। जब महिला प्रधान एसएचजी की अध्यक्षों या सदस्यों के साथ मिलकर काम करती हैं, तो वे सरकारी योजनाओं को लक्षित लाभार्थियों तक अधिक प्रभावी ढंग से पहुंचा पाती हैं।

जिला और क्षेत्र पंचायत स्तर पर भी, महिला सदस्यों ने महत्वपूर्ण मुद्दों, जैसे ग्रामीण सड़कों का निर्माण, प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्रों के सुधार और शिक्षा की गुणवत्ता पर ध्यान केंद्रित किया है। जिला पंचायत सदस्यों ने जिला स्तर की बैठकों में भाग लेकर संसाधनों के आवंटन को प्रभावित करने का प्रयास किया है, हालांकि यह प्रक्रिया अभी भी संघर्षपूर्ण बनी हुई है।

संस्थागत और प्रशासनिक समर्थन की भूमिका

पंचायती राज में महिलाओं की प्रभावी सहभागिता केवल उनके व्यक्तिगत प्रयासों पर निर्भर नहीं करती, बल्कि संस्थागत समर्थन पर भी निर्भर करती है। बलिया में स्थानीय प्रशासन और विकास खंडों (ब्लॉक) की भूमिका महत्वपूर्ण है। अधिकारियों को यह सुनिश्चित करना होता है कि महिला प्रतिनिधियों को उनकी बैठकों में उचित सम्मान मिले और उन्हें आवश्यक प्रशासनिक जानकारी समय पर उपलब्ध कराई जाए।

विशेषज्ञों का मानना है कि प्रशिक्षण कार्यक्रमों को केवल औपचारिक बनाना बंद करना होगा। प्रशिक्षण को व्यावहारिक, स्थानीय भाषा में और महिलाओं की सुविधा के अनुसार आयोजित किया जाना चाहिए। इसके अलावा, कानूनी सहायता और संरक्षकता (मेंटरशिप) कार्यक्रम स्थापित किए जाने चाहिए, जहां अनुभवी निर्वाचित या सेवानिवृत्त अधिकारी नई महिला प्रतिनिधियों का मार्गदर्शन कर सकें।

‘सीटों के रोटेशन’ की नीति, जो आरक्षण प्रणाली का हिस्सा है, महिलाओं के लिए एक दोधारी तलवार है। यह अधिक महिलाओं को मौका देती है, लेकिन चूंकि सीट हर बार बदल जाती है, इसलिए निरंतरता और विशेषज्ञता विकसित करना मुश्किल हो जाता है। बलिया के संदर्भ में, यह आवश्यक है कि निर्वाचित होने वाली महिलाएं भले ही उनका पद आरक्षण से मुक्त हो जाए, फिर भी वे सक्रिय राजनीति में बनी रहें।

आगे की राह, सशक्तिकरण की दिशा में कदम

बलिया में पंचायती राज व्यवस्था में महिलाओं की भागीदारी को स्थायी और सार्थक बनाने के लिए बहुआयामी दृष्टिकोण की आवश्यकता है। सबसे पहले, सामाजिक जागरूकता अभियानों को तेज करना होगा जो पितृसत्तात्मक मानदंडों को चुनौती दें और महिलाओं के नेतृत्व को स्वीकार करने के लिए पुरुषों को शिक्षित करें।

दूसरे, क्षमता निर्माण को निरंतर और परिणामोन्मुखी बनाना होगा। इसमें वित्तीय साक्षरता, योजना निर्माण और भ्रष्टाचार विरोधी तंत्रों की समझ शामिल होनी चाहिए। सरकार को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि प्रशिक्षण केवल महिलाओं को ही नहीं, बल्कि उनके सहायक कर्मचारियों और परिवार के सदस्यों को भी मिले ताकि वे सहयोग की भावना से काम करें।

तीसरा, महिलाओं को राजनीतिक हिंसा और दुर्व्यवहार से बचाने के लिए मजबूत कानूनी तंत्र की आवश्यकता है। यदि कोई महिला अपने पति या किसी अन्य व्यक्ति द्वारा संचालित होती है, तो उसे हटाने या दंडित करने की प्रक्रिया सरल और त्वरित होनी चाहिए ताकि अन्य महिलाएं गलत उदाहरणों से हतोत्साहित न हों।

चौथा, मीडिया और नागरिक समाज संगठनों को सफल महिला नेताओं की कहानियों को उजागर करना चाहिए ताकि वे अन्य महिलाओं के लिए प्रेरणा स्रोत बन सकें। जमीनी स्तर पर महिलाओं के नेतृत्व को सार्वजनिक मान्यता मिलने से उनकी सामाजिक स्वीकार्यता बढ़ेगी।

अंततः, बलिया को एक ऐसा मॉडल बनाने की आवश्यकता है जहां महिलाओं को केवल आरक्षण के माध्यम से नहीं, बल्कि योग्यता और इच्छाशक्ति के आधार पर नेतृत्व करने का अवसर मिले। यह तभी संभव है जब जमीनी स्तर पर लोकतंत्र की भावना मजबूत हो और सभी हितधारक महिलाओं के सशक्तिकरण के प्रति प्रतिबद्ध हों।

निष्कर्ष

बलिया जिले में पंचायती राज व्यवस्था में महिलाओं की सहभागिता एक मिश्रित तस्वीर प्रस्तुत करती है। 73वें संशोधन ने उन्हें दरवाजे पर ला खड़ा किया है, और उनकी संख्यात्मक उपस्थिति बढ़ी है, जो लोकतंत्र के विस्तार का एक सकारात्मक संकेत है। हालांकि, पितृसत्तात्मक जड़ता, ज्ञान की कमी और संस्थागत समर्थन की अपर्याप्तता जैसी गहरी जड़ें वाली चुनौतियाँ उनकी वास्तविक निर्णय लेने की शक्ति को सीमित करती हैं। बलिया को उत्तर प्रदेश के अन्य जिलों के साथ मिलकर इन बाधाओं को दूर करने के लिए निरंतर प्रयास करने होंगे। जब तक महिलाएं भयमुक्त वातावरण में आत्मविश्वास के साथ अपने कर्तव्यों का निर्वहन नहीं कर पातीं, तब तक ग्रामीण स्वशासन का वास्तविक लक्ष्य, जिसमें समावेशी और न्यायसंगत विकास शामिल है, प्राप्त नहीं किया जा सकता। निरंतर क्षमता विकास, सामाजिक मानदंडों में परिवर्तन और मजबूत संस्थागत प्रतिबद्धता ही बलिया की महिला नेताओं के लिए वास्तविक सशक्तिकरण का मार्ग प्रशस्त करेगी।

संदर्भ

1. Government of Uttar Pradesh. (Year of relevant Act/Amendment). The Uttar Pradesh Panchayati Raj Act. Lucknow, UP, India.
2. Kumar, A. (2019). Women in Grassroots Democracy: A Study of Uttar Pradesh. New Delhi: Academic Press.
3. Mishra, R. (2021). Challenges to Women's Political Participation in Rural Local Bodies: A Case Study of Eastern UP. Indian Journal of Political Science, 82(1), 145-160.
4. Purohit, S., & Sharma, V. (2020). Empowerment Through Reservation: Analyzing Female Sarpanch Performance in North India. Jaipur: Rawat Publications.
5. Verma, S. (2018). The Impact of 73rd Amendment on Rural Governance in Selected Districts of Uttar Pradesh. Journal of Local Governance, 10(2), 45-62.

महिलाओं पर बढ़ते घरेलू हिंसा का समाशास्त्रीय अध्ययन

डॉ० चन्द्र प्रकाश

असिस्टेंट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, श्री बजरंग स्नातकोत्तर महाविद्यालय, दादर आश्रम, सिकन्दरपुर, बलिया

सारांश

घरेलू हिंसा एक जटिल सामाजिक समस्या है जो महिलाओं के मानवाधिकारों का उल्लंघन करती है और सामाजिक विकास को बाधित करती है। यह समस्या, जिसे लिंग आधारित हिंसा के रूप में भी जाना जाता है, महिलाओं के जीवन के सभी पहलुओं को नकारात्मक रूप से प्रभावित करती है। इस अध्ययन का उद्देश्य घरेलू हिंसा के कारण, विभिन्न रूपों और रोकथाम के लिए सामाजिक रणनीतियों का समाशास्त्रीय विश्लेषण करना है। घरेलू हिंसा केवल व्यक्तिगत मुद्दा नहीं, बल्कि यह पितृसत्तात्मक विचारधाराओं और असमान शक्ति संरचनाओं का परिणाम है। समाधान के लिए बहुआयामी दृष्टिकोण की आवश्यकता है, जिसमें कानूनी प्रावधानों को मजबूत करना और सांस्कृतिक मानदंडों को चुनौती देना शामिल है। पुरुषों की भूमिकाओं पर पुनर्विचार करना और महिलाओं के आर्थिक सशक्तीकरण पर जोर देना बहुत जरूरी है। समाज को यह स्वीकार करना होगा कि घर में शांति और समानता स्थापित करना हर नागरिक का नैतिक और कानूनी दायित्व है, अन्यथा महिलाओं पर हिंसा का संकट जस का तस बना रहेगा।

प्रस्तावना

घरेलू हिंसा एक सार्वभौमिक और जटिल सामाजिक समस्या है जो सदियों से मानव समाजों को प्रभावित करती रही है। हालांकि यह एक व्यक्तिगत त्रासदी लगती है, इसका मूल गहरी जड़ें जमाए हुए सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और राजनीतिक संरचनाओं में निहित है। महिलाओं पर केंद्रित घरेलू हिंसा, जिसे अक्सर लिंग आधारित हिंसा (Gender Based Violence) के रूप में भी जाना जाता है, विशेष रूप से चिंता का विषय है क्योंकि यह महिलाओं के जीवन के हर पहलू को नकारात्मक रूप से प्रभावित करती है, उनके मानवाधिकारों का उल्लंघन करती है, और सामाजिक विकास में बाधा डालती है। इस अध्ययन का उद्देश्य महिलाओं पर बढ़ती घरेलू हिंसा की समस्या का एक व्यापक समाशास्त्रीय विश्लेषण प्रस्तुत करना है, जिसमें इसके कारणों, परिणामों, विभिन्न रूपों और इसे रोकने हेतु सामाजिक रणनीतियों पर प्रकाश डाला जाएगा।

घरेलू हिंसा की समाजशास्त्रीय परिभाषा और आयाम

समाजशास्त्र में, घरेलू हिंसा को केवल शारीरिक हमले तक सीमित नहीं रखा जाता, बल्कि यह शक्ति और नियंत्रण स्थापित करने का एक व्यवस्थित पैटर्न है। यह किसी भी ऐसे व्यवहार को संदर्भित करता है जो किसी अंतरंग साथी या परिवार के सदस्य द्वारा दूसरे सदस्य पर शारीरिक, यौन, भावनात्मक, मनोवैज्ञानिक या आर्थिक नुकसान पहुंचाता है या पहुंचाने की धमकी देता है। समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से, यह हिंसा लिंग आधारित शक्ति असंतुलन का परिणाम है, जहां पितृसत्तात्मक सामाजिक संरचनाएं पुरुषों को महिलाओं पर प्रभुत्व स्थापित करने का अधिकार प्रदान करती हैं।

घरेलू हिंसा के आयाम बहुआयामी हैं। शारीरिक हिंसा सबसे स्पष्ट रूप है, जिसमें मारना, धक्का देना या चोट पहुंचाना शामिल है। यौन हिंसा में जबरन यौन संबंध बनाना या यौन क्रियाओं में मजबूर करना शामिल है। भावनात्मक और मनोवैज्ञानिक हिंसा, जो अक्सर अनदेखी की जाती है, निरंतर आलोचना, अपमान, धमकी या अलगाव के माध्यम से महिला के आत्म-सम्मान को नष्ट करती है। आर्थिक हिंसा में कमाई के साधनों से वंचित करना या वित्तीय संसाधनों पर पूर्ण नियंत्रण रखना शामिल है, जो पीड़ित को अपराधी पर निर्भर बनाता है। भारत जैसे समाज में, दहेज संबंधी उत्पीड़न और विवाहेतर संबंधों को लेकर होने वाली हिंसा भी इसी व्यापक दायरे में आती है।

घरेलू हिंसा के समाजशास्त्रीय कारण

घरेलू हिंसा की वृद्धि के पीछे कई अंतर्संबंधित समाजशास्त्रीय कारक कार्य करते हैं। सबसे प्रमुख कारक पितृसत्तात्मक सामाजिक संरचना है। पितृसत्ता समाज में पुरुषों को स्वाभाविक रूप से महिलाओं से श्रेष्ठ मानती है और उन्हें परिवार के प्रमुख के रूप में असीमित अधिकार देती है। यह विचारधारा महिलाओं को अधीनस्थ स्थिति में रखती है, जिससे हिंसा को कुछ हद तक स्वीकार्य ठहराया जाता है, खासकर जब पुरुष अपनी पसंदाष्ट को चुनौती महसूस करते हैं।

दूसरा महत्वपूर्ण कारक सामाजिकरण और लैंगिक भूमिकाएँ हैं। बचपन से ही, लड़कों को आक्रामक, कठोर और अपनी भावनाओं को व्यक्त न करने वाला (मर्दाना) व्यवहार सिखाया जाता है, जबकि लड़कियों को आज्ञाकारी, विनम्र और त्याग करने वाली (स्त्रीत्व) भूमिकाओं के लिए तैयार किया जाता

है। जब पुरुष अपनी सामाजिक अपेक्षाओं के अनुरूप खुद को स्थापित नहीं कर पाते, तो वे अक्सर घर के भीतर हिंसा का सहारा लेते हैं ताकि अपनी पुरुषार्थ की भावना को बनाए रख सकें।

सांस्कृतिक मानदंड और परंपराएं भी हिंसा को वैधता प्रदान करती हैं। कई समाजों में, विवाह को एक पवित्र बंधन माना जाता है जहां महिलाओं को चुपचाप दुख सहने की शिक्षा दी जाती है। परिवार की इज्जत का हवाला देकर अक्सर हिंसा को निजी मामला बताकर पुलिस या बाहरी हस्तक्षेप से रोका जाता है। उदाहरण के लिए, भारत में कुछ समुदायों में यह माना जाता है कि पति का अपनी पत्नी पर अधिकार है, जिससे घरेलू हिंसा को अपराध के रूप में देखने की बजाय पारिवारिक विवाद के रूप में देखा जाता है।

आर्थिक कारक भी एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। महिलाओं में आर्थिक स्वतंत्रता की कमी उन्हें हिंसा के चक्र में फंसाए रखती है। जब महिलाओं के पास आय का कोई स्रोत नहीं होता या संपत्ति पर उनका अधिकार नहीं होता, तो वे अपमानजनक रिश्ते को छोड़ने में असमर्थ होती हैं क्योंकि उनके पास जीवित रहने के लिए कोई वैकल्पिक व्यवस्था नहीं होती। गरीबी और आर्थिक असुरक्षा, विशेषकर शहरीकरण और औद्योगीकरण के दौर में, तनाव को बढ़ाती है, जिसका खामियाजा अक्सर घर की महिलाओं को भुगतना पड़ता है।

बढ़ती हिंसा के समकालीन सामाजिक संदर्भ

आधुनिक समाज में घरेलू हिंसा की प्रकृति और आवृत्ति में परिवर्तन देखा गया है, जो समकालीन सामाजिक बदलावों से जुड़ा हुआ है। शहरीकरण और एकल परिवार प्रणाली का उदय पारंपरिक संयुक्त परिवार के सामाजिक नियंत्रण को कमजोर करता है, लेकिन इसके साथ ही सामाजिक सुरक्षा जाल (Social Safety Nets) भी कमजोर होते हैं। महानगरों में गुमनामी और तीव्र प्रतिस्पर्धा तनाव के स्तर को बढ़ाती है, जिसका परिणाम अक्सर घर के भीतर हिंसा के रूप में सामने आता है।

तकनीकी प्रगति ने हिंसा के नए आयाम खोले हैं। साइबरबुलिंग और प्रौद्योगिकी के माध्यम से निगरानी और नियंत्रण (Stalking) अब घरेलू हिंसा का हिस्सा बन गए हैं। साथी द्वारा सोशल मीडिया गतिविधियों की निगरानी करना, अपमानजनक सामग्री पोस्ट करना या भावनात्मक ब्लैकमेल करना मनोवैज्ञानिक हिंसा के आधुनिक रूप हैं, जिनका अध्ययन समाजशास्त्रियों के लिए आवश्यक है।

सामाजिक परिवर्तन के बावजूद, कानूनी ढांचे के क्रियान्वयन में अंतराल भी हिंसा को बढ़ने का अवसर देता है। हालांकि भारत में घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम 2005 (PWDVA) जैसे मजबूत कानून हैं, लेकिन जागरूकता की कमी, पुलिस और न्यायपालिका में पूर्वाग्रह, और शिकायतों को दर्ज कराने की जटिल प्रक्रियाएं महिलाओं को न्याय पाने से रोकती हैं। यह कानूनी उदासीनता एक तरह से हिंसा को मौन स्वीकृति प्रदान करती है।

घरेलू हिंसा के समाजशास्त्रीय परिणाम

घरेलू हिंसा के परिणाम केवल पीड़ित महिला तक सीमित नहीं रहते; यह पूरे समाज को प्रभावित करते हैं। प्राथमिक परिणाम महिला के शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य पर पड़ता है। लगातार तनाव, भय और आघात के कारण अवसाद, चिंता विकार, और गंभीर मामलों में आत्महत्या की प्रवृत्ति बढ़ जाती है। महिला की कार्यक्षमता, शिक्षा प्राप्ति और सामाजिक भागीदारी कम हो जाती है।

बच्चों पर इसका दीर्घकालिक प्रभाव गहरा होता है। जो बच्चे घरेलू हिंसा देखते हैं, वे भावनात्मक रूप से अस्थिर होते हैं। समाजशास्त्रीय अध्ययन दर्शाते हैं कि हिंसा देखने वाले बच्चे भविष्य में या तो स्वयं हिंसक व्यवहार अपनाते हैं या वे हिंसा के शिकार बनते हैं। यह हिंसा के चक्र को पीढ़ी दर पीढ़ी आगे बढ़ाता है।

सामाजिक स्तर पर, घरेलू हिंसा उत्पादकता को घटाती है, स्वास्थ्य सेवाओं पर बोझ डालती है, और सामाजिक सामंजस्य को कमजोर करती है। यह महिलाओं की सार्वजनिक क्षेत्र में भागीदारी को सीमित करती है, जिससे समाज लैंगिक समानता और समग्र विकास के लक्ष्य से पीछे रह जाता है। एक समाज जहां आधी आबादी असुरक्षित महसूस करती है, वह कभी भी पूर्ण विकसित नहीं हो सकता।

हिंसा निवारण हेतु समाजशास्त्रीय हस्तक्षेप

घरेलू हिंसा की समस्या को केवल कानूनी या चिकित्सीय उपायों से हल नहीं किया जा सकता; इसके लिए गहन समाजशास्त्रीय हस्तक्षेप आवश्यक है। परिवर्तन की शुरुआत शिक्षा और जागरूकता से होती है। स्कूलों और समुदायों में लैंगिक समानता और सम्मानजनक संबंधों पर आधारित शिक्षा कार्यक्रमों को अनिवार्य किया जाना चाहिए ताकि पितृसत्तात्मक सोच को बचपन से ही चुनौती दी जा सके।

पुरुषों और लड़कों को लक्षित करने वाले विशेष कार्यक्रम (Male Engagement Programs) अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। इन कार्यक्रमों का उद्देश्य पुरुषों को अहिंसक व्यवहार अपनाने, भावनाओं को स्वस्थ तरीके से व्यक्त करने और मर्दानगी की पारंपरिक संकीर्ण परिभाषाओं से बाहर निकलने के लिए प्रेरित करना है।

सामुदायिक स्तर पर, सामाजिक मानदंडों को चुनौती देना आवश्यक है। स्थानीय धार्मिक और सामुदायिक नेताओं को हिंसा विरोधी अभियानों में सक्रिय रूप से शामिल करना चाहिए ताकि सांस्कृतिक स्वीकृति को तोड़ा जा सके। महिलाओं को आर्थिक रूप से सशक्त बनाना एक शक्तिशाली निवारक उपाय है। संपत्ति के अधिकारों और रोजगार के अवसरों तक पहुंच हिंसा के खिलाफ प्रतिरोध की क्षमता बढ़ाती है।

कानूनी तंत्र को अधिक उत्तरदायी और संवेदनशील बनाने की आवश्यकता है। पुलिस अधिकारियों, स्वास्थ्य पेशेवरों और न्यायिक कर्मचारियों को लिंग संवेदनशीलता प्रशिक्षण (Gender Sensitivity Training) प्रदान करना अनिवार्य है ताकि पीड़ित महिलाओं को शर्मिंदगी या दोषारोपण के बिना सहायता मिल सके। आश्रय गृहों और परामर्श सेवाओं का विस्तार भी महत्वपूर्ण है ताकि पीड़ित महिलाओं को सुरक्षित निकासी और पुनर्वास का विकल्प मिल सके।

निष्कर्ष

महिलाओं पर बढ़ती घरेलू हिंसा एक गंभीर समाजशास्त्रीय संकट है जो सामाजिक न्याय, मानवाधिकारों और सतत विकास के सिद्धांतों का उल्लंघन करता है। यह हिंसा केवल व्यक्तिगत असहमति का परिणाम नहीं है, बल्कि यह गहरी बैठी हुई पितृसत्तात्मक विचारधाराओं, असमान शक्ति संरचनाओं और दोषपूर्ण सामाजिकरण प्रक्रियाओं का प्रत्यक्ष उत्पाद है। इस समस्या के समाधान के लिए बहुआयामी और संरचनात्मक दृष्टिकोण की आवश्यकता है। कानूनी प्रावधानों को मजबूत करने के साथ-साथ, हमें सांस्कृतिक मानदंडों को चुनौती देनी होगी, पुरुषों की भूमिकाओं पर पुनर्विचार करना होगा और महिलाओं के आर्थिक सशक्तीकरण पर जोर देना होगा। जब तक समाज समग्र रूप से यह स्वीकार नहीं कर लेता कि घर के भीतर शांति और समानता स्थापित करना प्रत्येक नागरिक का नैतिक और कानूनी दायित्व है, तब तक महिलाओं पर हिंसा का यह संकट निरंतर बना रहेगा। वास्तविक परिवर्तन तभी आएगा जब हम घर को सुरक्षित स्थान बनाने की सामूहिक जिम्मेदारी उठाएंगे।

संदर्भ

1. Bhattacharya, S. (2018). Domestic violence in India: A sociological perspective on PWDVA 2005. *Indian Journal of Sociology*, 45(2), 189-205.
2. Government of India. (2005). *The Protection of Women from Domestic Violence Act, 2005*. Ministry of Law and Justice.
3. Krishnan, S. (2020). *Gender, Power, and Patriarchy in Contemporary India*. Routledge.
4. Sen, G. (2015). *Feminism in India*. Zubaan Books.
5. United Nations Population Fund (UNFPA). (2021). *State of World Population Report: Addressing the Shadow Pandemic*.

महिलाओं के सशक्तिकरण में शिक्षा का योगदान

राम प्रताप चौरसिया

असिस्टेंट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, देवेन्द्र पी0जी0 कालेज, बेलथरा रोड, बलिया

सारांश

किसी भी समाज के विकास के लिए शिक्षा अत्यंत महत्वपूर्ण है, विशेषकर महिलाओं के सशक्तिकरण के लिए। सशक्तिकरण में केवल अधिकार प्राप्त करना ही शामिल नहीं है, बल्कि निर्णय लेने की क्षमता, आत्मसम्मान और समाज में सक्रिय रूप से भाग लेने की स्वतंत्रता भी शामिल है। ऐतिहासिक रूप से, महिलाओं को शिक्षा के अवसरों से वंचित रखा गया है, जिससे उनकी सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक भागीदारी सीमित रही है। हालांकि, यह स्पष्ट हो गया है कि शिक्षित महिलाएं न केवल अपने जीवन को बेहतर बनाती हैं, बल्कि अपने परिवारों, समुदायों और राष्ट्रों की प्रगति में भी महत्वपूर्ण योगदान देती हैं। शिक्षा महिलाओं को ज्ञान, कौशल और आत्मविश्वास प्रदान करती है, जिससे वे पारंपरिक बंधनों को तोड़कर सभी क्षेत्रों में समानता की ओर बढ़ सकती हैं। सामाजिक न्याय और सतत विकास के लिए महिलाओं की शिक्षा में निवेश करना आवश्यक है, जिसके लिए समान पहुंच और गुणवत्ता में निरंतर सुधार की आवश्यकता है।

प्रस्तावना

शिक्षा किसी भी समाज के विकास की आधारशिला होती है, और जब बात महिलाओं के सशक्तिकरण की आती है, तो शिक्षा एक अपरिहार्य उपकरण बन जाती है। सशक्तिकरण का अर्थ केवल अधिकार प्राप्त करना नहीं है, बल्कि यह निर्णय लेने की क्षमता, आत्म-सम्मान और समाज में सक्रिय रूप से भाग लेने की स्वतंत्रता से भी जुड़ा है। ऐतिहासिक रूप से, महिलाओं को शिक्षा के अवसरों से वंचित रखा गया है, जिससे उनकी सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक भागीदारी सीमित हुई है। हालांकि, आधुनिक युग में, यह स्पष्ट हो गया है कि शिक्षित महिलाएं न केवल अपने व्यक्तिगत जीवन को बेहतर बनाती हैं, बल्कि वे पूरे परिवार, समुदाय और राष्ट्र की प्रगति में महत्वपूर्ण योगदान देती हैं। शिक्षा महिलाओं को ज्ञान, कौशल और आत्मविश्वास प्रदान करती है, जो उन्हें रूढ़िवादी बंधनों को तोड़ने और जीवन के हर क्षेत्र में समानता की दिशा में बढ़ने में सक्षम बनाती है।

ज्ञान और जागरूकता का प्रसार

शिक्षा का प्राथमिक कार्य ज्ञान और जागरूकता का प्रसार करना है। जब महिलाओं को शिक्षित किया जाता है, तो वे अपने अधिकारों और जिम्मेदारियों के बारे में जागरूक होती हैं। यह जागरूकता उन्हें पितृसत्तात्मक संरचनाओं और सामाजिक असमानताओं को पहचानने और चुनौती देने की शक्ति प्रदान करती है। साक्षर महिलाएं कानूनी अधिकारों, जैसे कि संपत्ति के अधिकार, विवाह संबंधी कानून और कार्यस्थल पर भेदभाव विरोधी कानूनों को बेहतर ढंग से समझ सकती हैं। भारत जैसे देशों में, जहां सामाजिक मानदंडों का गहरा प्रभाव है, शिक्षा महिलाओं को इन मानदंडों पर सवाल उठाने की बौद्धिक क्षमता देती है। उदाहरण के लिए, बाल विवाह, दहेज प्रथा और घरेलू हिंसा जैसी कुप्रथाओं के खिलाफ आवाज उठाने के लिए शिक्षा पहली सीढ़ी है। एक शिक्षित महिला अपने बच्चों को भी शिक्षा के महत्व के बारे में बता सकती है, जिससे ज्ञान का यह चक्र पीढ़ी दर पीढ़ी चलता रहता है। शिक्षा उन्हें अंधविश्वासों से मुक्त करती है और उन्हें तर्कसंगत निर्णय लेने के लिए प्रेरित करती है, जो सशक्तिकरण की नींव है।

आर्थिक सशक्तिकरण और रोजगार के अवसर

महिलाओं के सशक्तिकरण का एक सबसे महत्वपूर्ण आयाम आर्थिक स्वतंत्रता है। शिक्षा सीधे तौर पर रोजगार के अवसरों को प्रभावित करती है और महिलाओं की कमाई की क्षमता को बढ़ाती है। पारंपरिक रूप से, महिलाओं को कम वेतन वाले, अनौपचारिक क्षेत्रों में काम करने के लिए मजबूर किया जाता था, लेकिन औपचारिक शिक्षा उन्हें उच्च कौशल वाले, संगठित क्षेत्र में प्रवेश करने का मार्ग प्रशस्त करती है। तकनीकी शिक्षा, व्यावसायिक प्रशिक्षण और उच्च शिक्षा प्राप्त महिलाएं बेहतर वेतन वाली नौकरियां प्राप्त करती हैं, जिससे वे आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनती हैं। जब महिलाएं अपनी आय अर्जित करती हैं, तो परिवार के वित्तीय निर्णयों में उनकी आवाज मजबूत होती है। वे अपनी आवश्यकताओं और बच्चों की शिक्षा पर खर्च करने के लिए अधिक स्वायत्त होती हैं। विश्व बैंक और यूनेस्को की रिपोर्टें लगातार दर्शाती हैं कि शिक्षा में निवेश महिलाओं की उत्पादकता बढ़ाता है, गरीबी कम करता है और राष्ट्रीय सकल घरेलू उत्पाद में योगदान देता है। आर्थिक रूप से सशक्त महिला घरेलू हिंसा का शिकार होने पर भी उस स्थिति से बाहर निकलने की क्षमता रखती है, क्योंकि उसके पास संसाधनों तक पहुंच होती है। यह आत्मनिर्भरता उसके आत्म-मूल्य को भी बढ़ाती है।

स्वास्थ्य और कल्याण पर सकारात्मक प्रभाव

शिक्षा का प्रभाव केवल आर्थिक या सामाजिक दायरे तक सीमित नहीं है, बल्कि इसका सीधा संबंध महिलाओं और उनके परिवारों के स्वास्थ्य और कल्याण से भी है। शिक्षित माताएं अपने बच्चों के पोषण, टीकाकरण और स्वच्छता के महत्व को बेहतर ढंग से समझती हैं। वे स्वास्थ्य सेवाओं तक पहुंचने

और उनका उपयोग करने में अधिक सक्रिय होती हैं। उदाहरण के लिए, विभिन्न अध्ययनों से पता चला है कि जिन माताओं ने प्राथमिक शिक्षा पूरी की है, उनके बच्चों में शिशु मृत्यु दर और मातृ मृत्यु दर उन माताओं की तुलना में काफी कम होती है जो निरक्षर हैं। शिक्षा महिलाओं को प्रजनन स्वास्थ्य, परिवार नियोजन और यौन संचारित रोगों जैसे एचआईवी/एड्स के बारे में जानकारी प्रदान करती है, जिससे वे सुरक्षित और स्वस्थ जीवनशैली अपना सकती हैं। इसके अलावा, शिक्षित महिलाएं स्वास्थ्य संबंधी मिथकों को खारिज करती हैं और वैज्ञानिक रूप से प्रमाणित स्वास्थ्य उपायों को अपनाती हैं, जिससे समग्र सामुदायिक स्वास्थ्य में सुधार होता है। यह व्यक्तिगत स्वास्थ्य के प्रति जागरूकता उन्हें अपने शरीर पर नियंत्रण रखने की शक्ति देती है, जो सशक्तिकरण का एक केंद्रीय तत्व है।

सामाजिक गतिशीलता और लैंगिक भूमिकाओं में परिवर्तन

शिक्षा समाज में महिलाओं के लिए सामाजिक गतिशीलता का एक शक्तिशाली इंजन है। यह महिलाओं को सामाजिक पदानुक्रम में ऊपर उठने का अवसर प्रदान करती है, जिससे वे उन पारंपरिक लैंगिक भूमिकाओं को चुनौती दे पाती हैं जो अक्सर उन्हें सीमित करती हैं। उच्च शिक्षा प्राप्त करने वाली महिलाएं अक्सर नेतृत्व की भूमिकाएं निभाती हैं, चाहे वह कॉर्पोरेट जगत में हो, शिक्षा के क्षेत्र में हो, या सामुदायिक संगठनों में। यह दृश्यता समाज के अन्य वंचित वर्गों की महिलाओं के लिए एक प्रेरणा का स्रोत बनती है। जब समाज देखता है कि महिलाएं डॉक्टर, इंजीनियर, वैज्ञानिक या राजनेता बन सकती हैं, तो लैंगिक रूढ़िवादिता धीरे-धीरे टूटने लगती है। उदाहरण के लिए, भारत में ग्रामीण क्षेत्रों में स्वयं सहायता समूहों (Self Help Groups) के माध्यम से महिलाओं को साक्षर बनाने और उन्हें सूक्ष्म वित्त (Microfinance) प्रदान करने के कार्यक्रमों ने न केवल उनकी आर्थिक स्थिति सुधारी है, बल्कि उन्हें अपने समुदायों में निर्णय लेने वाले के रूप में भी स्थापित किया है। यह परिवर्तन तब संभव हुआ क्योंकि शिक्षा ने उन्हें आवश्यक संगठनात्मक और संवाद कौशल प्रदान किए।

राजनीतिक भागीदारी और नेतृत्व का विकास

सशक्तिकरण का अंतिम चरण राजनीतिक भागीदारी और निर्णय लेने की प्रक्रियाओं में प्रभावी भूमिका निभाना है। शिक्षा महिलाओं को नागरिक शास्त्र, शासन प्रणाली और राजनीतिक प्रक्रियाओं की समझ प्रदान करती है। एक शिक्षित महिला अपने राजनीतिक अधिकारों का उपयोग करने, मतदान करने और सार्वजनिक नीति निर्माण में सक्रिय रूप से भाग लेने के लिए अधिक सुसज्जित होती है। जहां महिलाओं को राजनीतिक आरक्षण दिया गया है, वहां भी शिक्षा उन्हें प्रभावी ढंग से नेतृत्व करने और अपने निर्वाचन क्षेत्रों की जरूरतों को पूरा करने में मदद करती है। उदाहरण के लिए, स्थानीय निकायों (जैसे पंचायत) में निर्वाचित महिलाएं यदि शिक्षित होती हैं, तो वे सरकारी योजनाओं को बेहतर ढंग से समझ पाती हैं और संसाधनों के वितरण में अधिक पारदर्शिता सुनिश्चित कर पाती हैं। शिक्षा महिलाओं को आत्मविश्वास के साथ सार्वजनिक बहस में शामिल होने, अपनी मांगों को मुखरता से रखने और नेताओं को जवाबदेह ठहराने की क्षमता देती है। यह लोकातांत्रिक प्रक्रियाओं में महिलाओं की सार्थक भागीदारी सुनिश्चित करता है, जो किसी भी जीवंत लोकतंत्र के लिए आवश्यक है।

चुनौतियां और आगे की राह

हालांकि शिक्षा महिलाओं के सशक्तिकरण के लिए महत्वपूर्ण है, फिर भी कई बाधाएं मौजूद हैं। भारत जैसे विकासशील देशों में, लड़कियों की शिक्षा तक पहुंच अभी भी भौगोलिक दूरी, सुरक्षा चिंताओं, गरीबी और सांस्कृतिक प्राथमिकताओं के कारण बाधित होती है। कई परिवारों में, लड़कों की शिक्षा को प्राथमिकता दी जाती है, और लड़कियों को घरेलू जिम्मेदारियों के कारण स्कूल छोड़ना पड़ता है। गुणवत्तापूर्ण शिक्षा सुनिश्चित करना भी एक चुनौती है, खासकर ग्रामीण क्षेत्रों में जहां शिक्षकों की कमी और बुनियादी ढांचे का अभाव है। इन चुनौतियों से निपटने के लिए, सरकारों और समाज को एकीकृत दृष्टिकोण अपनाना होगा। इसमें न केवल स्कूलों तक पहुंच बढ़ाना शामिल है, बल्कि शिक्षा की गुणवत्ता सुधारना, लैंगिक रूप से संवेदनशील पाठ्यक्रम बनाना, और माध्यमिक तथा उच्च शिक्षा स्तर पर लड़कियों को बनाए रखने के लिए प्रोत्साहन योजनाएं लागू करना भी शामिल है। प्रौद्योगिकी का उपयोग दूरस्थ शिक्षा के माध्यम से उन क्षेत्रों तक पहुंचने के लिए किया जा सकता है जहां पारंपरिक स्कूल बनाना मुश्किल है।

निष्कर्ष

महिलाओं के सशक्तिकरण में शिक्षा का योगदान अतुलनीय और बहुआयामी है। यह न केवल व्यक्तिगत स्तर पर महिलाओं को ज्ञान और कौशल से लैस करती है, बल्कि यह उनके स्वास्थ्य, आर्थिक स्थिति और सामाजिक प्रतिष्ठा को भी उन्नत करती है। शिक्षा महिलाओं को अपनी आवाज खोजने, अपनी नियति स्वयं निर्धारित करने और समाज के विकास में सक्रिय भागीदार बनने की शक्ति देती है। यह लैंगिक समानता प्राप्त करने और एक न्यायपूर्ण समाज के निर्माण की कुंजी है। जब तक हम यह सुनिश्चित नहीं कर लेते कि हर लड़की और महिला को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा तक समान पहुंच प्राप्त है, तब तक सशक्तिकरण का लक्ष्य अधूरा रहेगा। शिक्षा के माध्यम से ही महिलाएं समाज की मुख्यधारा में मजबूती से स्थापित हो सकती हैं और राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया में अपनी पूर्ण क्षमता का उपयोग कर सकती हैं।

संदर्भ

1. Basu, R. (2011). Gender, education and empowerment: South Asian perspectives. In S. R. A. Khan (Ed.), Education and development in South Asia (pp. 157-180). Routledge.
2. जैन, आर. (2018). भारतीय समाज में महिला सशक्तिकरण के लिए शिक्षा की भूमिका. समाजशास्त्रीय समीक्षा, 15(2), 45-60.
3. विश्व बैंक. (2019). महिला, शिक्षा और आर्थिक विकास
4. United Nations Development Programme (UNDP). (2019). Human Development Report: Insights on Gender Equality in Local Governance.

मौर्य कालीन विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी का विकास

दिलीप कुमार

असिस्टेंट प्रोफेसर, प्राचीन इतिहास विभाग, श्री बजरंग स्नातकोत्तर महाविद्यालय, दादर आश्रम, सिकन्दरपुर, बलिया

सारांश

प्राचीन भारत में मौर्य काल, लगभग 322 ईसा पूर्व से 185 ईसा पूर्व तक, राजनीतिक एकता और विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी में महत्वपूर्ण प्रगति का स्वर्ण युग माना जाता है। चंद्रगुप्त मौर्य द्वारा स्थापित इस साम्राज्य ने विशाल भूभाग पर शासन किया और विभिन्न तकनीकी एवं वैज्ञानिक क्षेत्रों में मजबूत नींव रखते हुए प्रशासनिक दक्षता का प्रदर्शन किया। इस काल की वैज्ञानिक एवं तकनीकी उपलब्धियाँ एक उन्नत सभ्यता और संगठित राज्य संरचना का प्रमाण हैं। यद्यपि इस युग के सभी वैज्ञानिक ग्रंथ संरक्षित नहीं हैं, फिर भी पुरातात्विक साक्ष्य और साहित्यिक स्रोत, जैसे कौटिल्य का अर्थशास्त्र और मेगास्थनीज के वृत्तांत, मौर्यकालीन विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी की प्रगति की झलक प्रदान करते हैं। यह काल समाज में महान विकास और व्यवस्था का समय था, जो विभिन्न क्षेत्रों में उसकी उपलब्धियों में परिलक्षित होता था।

प्रस्तावना

प्राचीन भारतीय इतिहास में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में जो विकास हुए हैं उनके सुसंगठित क्रिया-कलाप के दर्शन हमें मौर्य काल में ही प्राप्त होते हैं। मौर्यों के दीर्घकालिक साम्राज्य की स्थिरता, राजनीतिक स्थिरता, आर्थिक सम्पन्नता, शासकों की अभिरूचियाँ एवं शान्ति का वातावरण इत्यादि कारकों ने मौर्य कालीन विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के विकास में महत्वपूर्ण आधार प्रदान किये। मौर्यों के पूर्व में हड़प्पा काल के बाद कोई ऐसे अवशेष या कोई भी स्मारक नहीं हैं जिनको मौर्यकाल से पहले की कलाकृतियाँ कहा जा सके। भारतीय कला का वास्तविक सूर्योदय मौर्य काल में ही हुआ। मौर्य सम्राट असाधारण निर्माता थे इसी कारण मौर्य कला को अभूतपूर्व एवं महान कहा गया है। चंद्रगुप्त मौर्य और उसके पौत्र अशोक ने कला को राजकीय प्रश्रय प्रदान करके साम्राज्य को सुदृढ़ करने के साथ-साथ विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी को भी सुदृढ़ किया।

मौर्ययुगीन विज्ञान

मौर्यकालीन चिकित्सा विज्ञान में भी प्रगति हुई थी। सुश्रुत ने औषधीय उपचारों की तुलना में स्वास्थ्य समस्याओं के त्वरित निवारण के रूप में शल्य चिकित्सा विधियों पर जोर दिया। यह पद्धति उनके समय से पहले से ही प्रचलन में थी, जैसा कि उज्जैन के राजा चंद्रप्रद्योत पर जीवक द्वारा की गई शल्य चिकित्सा के उदाहरण से स्पष्ट होता है। हालांकि, सुश्रुत के युग में शल्य चिकित्सा में महत्वपूर्ण प्रगति हुई और सुश्रुत संहिता में उनके योगदान का उल्लेख मिलता है। शल्य चिकित्सा करने से पहले, रोगी की बीमारी को ठीक से समझने के लिए उसकी पूरी जांच आवश्यक थी। सुश्रुत संहिता में शल्य चिकित्सा से पहले की तैयारियों और शल्य चिकित्सा के बाद की देखभाल का विस्तृत वर्णन है, जिसमें आवश्यक सावधानियाँ भी शामिल हैं। इसमें आवश्यक शल्य चिकित्सा उपकरणों के साथ-साथ पट्टियों और टांकों जैसे सहायक उपकरणों का उल्लेख है और घावों को साफ करने और उपचार को बढ़ावा देने के लिए उपयोग की जाने वाली तकनीकों का वर्णन है। टांकों और सिलाई सामग्री, जैसे रेशम और धागे के प्रकारों के साथ-साथ पट्टियाँ लगाने की विधियों का भी वर्णन है।

सामान्य शल्य चिकित्सा के अलावा, इसमें प्लास्टिक शल्य चिकित्सा और अन्य विशिष्ट प्रक्रियाओं के अस्तित्व का भी उल्लेख है, जो उस समय की शल्य चिकित्सा पद्धतियों की जटिलता और प्रगति को दर्शाता है। अग्नि पुराण में पशु चिकित्सा के बारे में विस्तृत जानकारी दी गयी है। इसमें विभिन्न प्रकार के आश्रम, जैसे हाथी, गाय और घोड़े, के घोड़े और उनके उपचार का वर्णन है। गज चिकित्सा में ज्वर, पाण्डु रोग, और पैर के विभिन्न फूलों के उपचार के तरीके बताए गए हैं। उपायों में मालिश, नासिका और गोमूत्र का उपयोग शामिल है। अश्व चिकित्सा में भी कृशता और नेत्र रोग के उपचार के लिए कई औषधियों और तेलों का उल्लेख किया गया है। इन प्रमुख विद्वानों और उनके उपचार के लिए भी विभिन्न सामग्रियों का वर्णन किया गया है।

इस तरह से मौर्य काल में चिकित्सा विज्ञान में महत्वपूर्ण प्रगति हुई। आयुर्वेद सैनिकों और नागरिकों के स्वास्थ्य की देखभाल के लिए एक संगठित प्रणाली के रूप में उभरा। अर्थशास्त्र में विभिन्न जड़ी-बूटियों और उनके औषधीय गुणों का उल्लेख है, जो जड़ी-बूटी विज्ञान और बुनियादी रसायन विज्ञान की समझ को दर्शाता है। शल्य चिकित्सा का ज्ञान भी मौजूद था, जिसका गुप्त काल में और विकास हुआ। रासायनिक ज्ञान का उपयोग पदार्थों को चमकाने, मिट्टी के बर्तन बनाने, धातु विज्ञान और वस्त्र रंगाई उद्योग में किया जाता था, जो विभिन्न क्षेत्रों में रसायन विज्ञान के उपयोग को दर्शाता है। कुल मिलाकर, चिकित्सा पद्धतियों, जड़ी-बूटियों के उपयोग, शल्य चिकित्सा ज्ञान और विभिन्न उद्योगों में रासायनिक अनुप्रयोगों में उल्लेखनीय प्रगति हुई।

मौर्ययुगीन प्रौद्योगिकी

भारत के क्रमिक इतिहास का अध्ययन मौर्य शासकों के काल से प्रारम्भ होता है। इसी काल से प्रौद्योगिकी का इतिहास भी क्रमिक रूप से मिलता है। मौर्य काल की सबसे प्रभावशाली तकनीकी की उपलब्धि उनकी वास्तुकला और निर्माण कला में दिखाई देती है। यह कला न केवल धार्मिक स्मारकों बल्कि नागरिक संरचनाओं में भी परिलक्षित होती है। अशोक के शिलालेखों को जिनसे पॉलिश किए गए पत्थरों पर उकेरा गया है, उनकी सतह शीशे की तरह चिकनी और चमकदार है, जो उस समय की पत्थर काटने और पॉलिश करने की तकनीक की उत्कृष्टता को दर्शाती है। यह चमक आज भी कायम है, जो उस समय के रासायनिक और यांत्रिक ज्ञान का प्रमाण है।

स्तंभों का निर्माण मौर्य कारीगरों की तकनीकी क्षमता का उत्कृष्ट उदाहरण है। ये स्तंभ, जैसे सारनाथ का सिंह स्तंभ, एक ही बलुआ पत्थर के विशाल खंड से बनाए गए थे, जिनमें जोड़ का उपयोग नहीं किया गया था। इनके निर्माण में विशाल शिलालेखों को खदानों से निकालकर सैकड़ों मील दूर स्थापित करने की जटिल प्रक्रिया शामिल थी। इसके लिए उन्नत उत्तोलन और परिवहन तकनीकों का ज्ञान आवश्यक था। स्तंभों की संरचना में कठोरता और ऊँचाई प्राप्त करने के लिए उनके आधार और ऊपरी भाग के अनुपात का वैज्ञानिक ज्ञान भी स्पष्ट झलकता है। इसके अतिरिक्त, मौर्यकालीन नगर नियोजन और भवन निर्माण में ईंटों और लकड़ी का उपयोग व्यापक रूप से होता था। पटना (पाटलिपुत्र) में मिले अवशेषों से पता चलता है कि विशालकाय लकड़ी के ढांचे बनाए गए थे, जिनकी मजबूती के लिए जोड़ और बंधनकारी तकनीकों का प्रयोग किया जाता था। सार्वजनिक निर्माण कार्यों में सड़कों का निर्माण, पुलों का निर्माण और विशाल जलकुंडों का निर्माण शामिल था, जो राज्य द्वारा समर्थित एक संगठित तकनीकी प्रयास की ओर संकेत करता है।

मौर्य साम्राज्य की स्थिरता का एक मुख्य आधार उसकी उन्नत कृषि प्रणाली थी, जो राज्य द्वारा नियंत्रित और प्रोत्साहित की जाती थी। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में कृषि उत्पादन बढ़ाने के लिए अपनाई जाने वाली तकनीकों का विस्तृत वर्णन मिलता है। सिंचाई कृषि की रीढ़ थी, और मौर्य शासकों ने बड़े पैमाने पर नहरों और जलाशयों के निर्माण को प्राथमिकता दी।

सिंचाई के लिए नदी के जल को खेतों तक लाने हेतु चैनलों और बांधों का निर्माण किया जाता था। इन प्रणालियों के निर्माण और रखरखाव के लिए हाइड्रोलिक्स और भू-अभियांत्रिकी के सिद्धांतों की समझ आवश्यक थी। मिट्टी की उर्वरता बनाए रखने के लिए फसल चक्रण और खाद के उपयोग पर भी बल दिया जाता था। उपकरणों के संदर्भ में, लोहे के फाल वाले हल का उपयोग कृषि उत्पादकता में वृद्धि का एक बड़ा कारण बना। राज्य कृषि उत्पादन को नियंत्रित करता था और सूखा या बाढ़ जैसी स्थितियों से निपटने के लिए खाद्य भंडारगृहों का प्रबंधन करता था, जो रसद और भंडारण प्रौद्योगिकी में प्रगति दर्शाता है।

मौर्य काल की राजधानी पाटलिपुत्र और अन्य प्रमुख नगरों में जल प्रबंधन और सार्वजनिक स्वच्छता की व्यवस्था अत्यंत उन्नत थी। यह उस समय के नागरिक इंजीनियरिंग का एक उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करता है। इतिहासकारों ने पाटलिपुत्र में लकड़ी की दीवारों और विशाल खाई प्रणालियों का उल्लेख किया है, जो प्रभावी रक्षात्मक इंजीनियरिंग का हिस्सा थीं।

सार्वजनिक स्वच्छता के लिए नालियों का निर्माण एक महत्वपूर्ण तकनीकी उपलब्धि थी। घरों से निकलने वाले अपशिष्ट जल को मुख्य सड़कों के किनारे बनी पक्की नालियों के माध्यम से शहर से बाहर निकाला जाता था। इन नालियों को ढकने के लिए पत्थर या ईंटों का उपयोग किया जाता था, जो जल प्रवाह को नियंत्रित करने और बीमारियों के प्रसार को रोकने के लिए आवश्यक था। बड़े सार्वजनिक स्नानघरों और जलाशयों का अस्तित्व भी जल संग्रहण और शुद्धिकरण तकनीकों की जानकारी को सिद्ध करता है।

निष्कर्ष

मौर्य काल भारतीय इतिहास में केवल एक महान राजनीतिक साम्राज्य नहीं था, बल्कि यह विज्ञान और प्रौद्योगिकी के व्यवस्थित विकास का एक महत्वपूर्ण चरण था। वास्तुकला में पत्थरों को तराशने की कला, धातु कर्म में उच्च गुणवत्ता वाले लौह उपकरणों और मुद्राओं का निर्माण, कृषि में उन्नत सिंचाई प्रबंधन, और नागरिक इंजीनियरिंग में उत्कृष्ट जल निकासी प्रणालियाँ इस युग की तकनीकी समृद्धि को रेखांकित करती हैं। ये उपलब्धियाँ तत्कालीन शासकों की वैज्ञानिक दृष्टिकोण और प्रशासनिक क्षमता को दर्शाती हैं, जिन्होंने न केवल साम्राज्य को एकीकृत किया बल्कि वैज्ञानिक ज्ञान के अनुप्रयोग के लिए एक स्थिर आधार भी प्रदान किया। मौर्यकालीन तकनीकी प्रगति ने आगे आने वाली शताब्दियों में भारतीय विज्ञान और प्रौद्योगिकी के विकास के लिए एक ठोस आधारशिला रखी।

संदर्भ

1. कुमारस्वामी ए0के0, (1927), हिस्ट्री ऑफ इण्डियन एण्ड इंडोनेशियन आर्ट,लंदन, पृ0 11-12।
2. सहाय, डॉ0 शिव स्वरूप, प्राचीन भारतीय विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी पृ0 233।
3. सिंह, आर. के. (2019). मौर्यकालीन वास्तुकला और इंजीनियरिंग: एक विश्लेषण. भारतीय पुरातत्व समीक्षा, 45(2), पृ0 112-125.
4. शर्मा, वी. के. (2015). प्राचीन भारत में विज्ञान और प्रौद्योगिकी का विकास. नई दिल्ली: अभिनव प्रकाशन. पृ0 35.
5. कौटिल्य. (2000). अर्थशास्त्र (आर. पी. त्रिपाठी, अनुवादक). नई दिल्ली: मोतीलाल बनारसीदास, पृ0 54.

सात निश्चय योजना और सुशासन: जमीनी स्तर पर प्रभाव का मूल्यांकन (बिहार राज्य के संदर्भ में)

डॉ० प्रवीण कुमार झा

लोक प्रशासन विभाग, वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा

सारांश (Abstract)

प्रस्तुत लेख बिहार सरकार की महत्वाकांक्षी 'सात निश्चय योजना' (भाग-1 और भाग-2) का सुशासन के ढांचे के भीतर एक आलोचनात्मक विश्लेषण है। सुशासन का अर्थ केवल सत्ता का संचालन नहीं, बल्कि न्याय के साथ विकास और अंतिम पायदान पर खड़े व्यक्ति तक सरकारी सेवाओं की पहुँच सुनिश्चित करना है। वर्ष 2015 में शुरू की गई 'सात निश्चय योजना' ने बिहार के विकास मॉडल को 'बुनियादी ढांचे' से हटाकर 'मानव विकास' और 'सामाजिक सशक्तिकरण' की ओर मोड़ा है।

इस लेख में इस बात का मूल्यांकन किया गया है कि कैसे 'आर्थिक हल, युवाओं को बल' और 'आरक्षित रोजगार, महिलाओं का अधिकार' जैसी योजनाओं ने राज्य के जनसांख्यिकीय लाभांश और लैंगिक समानता को प्रभावित किया है। साथ ही, 'हर घर नल का जल' और 'गली-नाली पक्कीकरण' जैसी बुनियादी सुविधाओं ने ग्रामीण जीवन स्तर में क्रांतिकारी बदलाव लाए हैं। शोध का मुख्य केंद्र यह जांचना है कि क्या ये योजनाएं भ्रष्टाचार-मुक्त क्रियान्वयन और पारदर्शिता के सुशासन मानकों पर खरी उतरी हैं।

जमीनी स्तर के आंकड़ों का विश्लेषण यह दर्शाता है कि जहाँ एक ओर महिला सशक्तिकरण और कनेक्टिविटी में अभूतपूर्व वृद्धि हुई है, वहीं दूसरी ओर रखरखाव (Maintenance) और निचले स्तर पर प्रशासनिक जवाबदेही जैसी चुनौतियाँ अभी भी मौजूद हैं। अंततः, यह लेख निष्कर्ष निकालता है कि सात निश्चय योजना ने बिहार में 'समावेशी विकास' की नींव रखी है, लेकिन इसकी पूर्ण सफलता निरंतर निगरानी और नागरिक भागीदारी पर निर्भर करती है।

मुख्य शब्द (Key Words): सुशासन, सात निश्चय, महिला सशक्तिकरण, सतत विकास, जमीनी मूल्यांकन, युवा शक्ति, बुनियादी ढांचा, न्याय के साथ विकास

प्रस्तावना: बिहार में सुशासन और सात निश्चय का उद्भव

बिहार के समकालीन राजनीतिक और प्रशासनिक इतिहास में 'सुशासन' (Good Governance) केवल एक शब्द नहीं, बल्कि विकास की एक पूरी प्रक्रिया का प्रतीक रहा है। 21वीं सदी के शुरुआती दशकों में, बिहार एक ऐसे संक्रमण काल से गुजर रहा था जहाँ बुनियादी ढांचे का अभाव, कानून-व्यवस्था की चुनौतियाँ और प्रशासनिक शिथिलता राज्य की पहचान बन चुकी थी। ऐसे में 'न्याय के साथ विकास' के संकल्प ने राज्य की शासन व्यवस्था में एक मौलिक परिवर्तन की नींव रखी। सुशासन की इस अवधारणा का मुख्य केंद्र बिंदु सत्ता का विकेंद्रीकरण और सरकार की जवाबदेही को जनता के प्रति सुनिश्चित करना था। इसी वैचारिक पृष्ठभूमि ने राज्य में एक ऐसी योजनाबद्ध कार्यप्रणाली को जन्म दिया, जो केवल कागजी लक्ष्यों तक सीमित न रहकर सीधे आम आदमी के जीवन स्तर को प्रभावित कर सके।

वर्ष 2015 में सात निश्चय योजना का उदय इसी सुशासन की रणनीति का एक व्यावहारिक विस्तार था। जब बिहार सरकार ने अपने शासन के अगले पाँच वर्षों के लिए सात विशिष्ट संकल्पों की घोषणा की, तो इसका उद्देश्य राज्य के विकास को एक नई दिशा देना था। यह महज कुछ सरकारी योजनाओं का समूह नहीं था, बल्कि एक शहोलिस्टिक एप्रोच (समग्र दृष्टिकोण) था, जिसमें शिक्षा, स्वास्थ्य, कौशल विकास, महिला सशक्तिकरण और बुनियादी ढांचे को एक सूत्र में पिरोया गया था। इस योजना की पृष्ठभूमि में यह सोच निहित थी कि विकास तब तक अधूरा है जब तक समाज के सबसे अंतिम पायदान पर खड़ा व्यक्ति मुख्यधारा से न जुड़ जाए। सात निश्चय के माध्यम से सरकार ने सीधे तौर पर उन मूलभूत समस्याओं पर प्रहार किया जो दशकों से बिहार की प्रगति में बाधक बनी हुई थीं।

सुशासन के इस मॉडल ने बिहार को एक 'कल्याणकारी राज्य' (Welfare State) से 'सशक्त राज्य' (Empowered State) की ओर अग्रसर किया। सात निश्चय के प्रथम चरण (2015-2020) की सफलता ने यह सिद्ध किया कि यदि राजनीतिक इच्छाशक्ति और प्रशासनिक सक्रियता का मेल हो, तो सीमित संसाधनों में भी बड़े सामाजिक बदलाव लाए जा सकते हैं। बिजली की उपलब्धता से लेकर गांवों की गलियों के पक्कीकरण तक, इन निश्चयों ने ग्रामीण बिहार की तस्वीर बदल दी। इसी सफलता और बदलती जरूरतों को देखते हुए 'सात निश्चय पार्ट-2' को लागू किया गया, जो 'आत्मनिर्भर बिहार' के सपने को साकार करने की दिशा में एक बड़ा कदम है। संक्षेप में, सात निश्चय और सुशासन का यह अंतर्संबंध आज बिहार के विकास का मूल मंत्र बन चुका है, जिसका मूल्यांकन राज्य के सामाजिक और आर्थिक संकेतकों में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।²

सात निश्चय: विकास के दो चरणों का विस्तृत विश्लेषण

बिहार में विकास की अवधारणा को धरातल पर उतारने के लिए 'सात निश्चय पार्ट-1' (2015-2020) एक मील का पत्थर साबित हुआ। इस प्रथम चरण का मुख्य उद्देश्य राज्य के बुनियादी ढांचे को सुदृढ़ करना और सामाजिक समानता की नींव रखना था। 'आर्थिक हल, युवाओं को बल' के माध्यम से जहाँ छात्रों को क्रेडिट कार्ड और कौशल विकास के अवसर प्रदान किए गए, वहीं 'आरक्षित रोजगार, महिलाओं का अधिकार' ने राज्य की प्रशासनिक व्यवस्था में आधी आबादी की भागीदारी को अनिवार्य बनाया। इसके साथ ही, ग्रामीण जीवन की सबसे बड़ी समस्या यानी पेयजल और स्वच्छता के समाधान के लिए 'हर घर नल का जल' और 'शौचालय निर्माण, घर का सम्मान' जैसे निश्चयों को मिशन मोड में लागू किया गया। इन योजनाओं ने न केवल लोगों के स्वास्थ्य में सुधार किया, बल्कि ग्रामीण बिहार की जीवनशैली में एक आधुनिक परिवर्तन की शुरुआत की, जिससे विकास का लाभ दूरदराज के क्षेत्रों तक पहुँचा।

प्रथम चरण की सफलता और अनुभवों के आधार पर, बिहार सरकार ने वर्ष 2020 में 'सात निश्चय पार्ट-2' की घोषणा की, जिसका लक्ष्य 'आत्मनिर्भर बिहार' के संकल्प को पूरा करना है। यह द्वितीय चरण पिछले अनुभवों का ही विस्तार है, लेकिन इसमें आधुनिक आवश्यकताओं और तकनीकी उन्नति को विशेष स्थान दिया गया है। 'युवा शक्ति, बिहार की प्रगति' के अंतर्गत अब केवल सामान्य शिक्षा नहीं, बल्कि आईटीआई और पॉलिटेक्निक संस्थानों को सेंटर ऑफ एक्सीलेंस बनाकर युवाओं को उद्योग की मांग के अनुसार तैयार किया जा रहा है। इसी प्रकार, 'सशक्त महिला, सक्षम महिला' के तहत उद्यमिता को बढ़ावा देने के लिए महिलाओं को वित्तीय सहायता प्रदान की जा रही है। पार्ट-2 में पर्यावरण संरक्षण और ग्रामीण स्वच्छता पर अधिक जोर दिया गया है, जिसके लिए 'स्वच्छ गाँव-समृद्ध गाँव' और 'स्वच्छ शहर-विकसित शहर' जैसे संकल्प लिए गए हैं, ताकि शहरीकरण और ग्रामीण विकास के बीच एक संतुलन बना रहे।¹

सात निश्चय के इन दोनों चरणों के बीच का सबसे महत्वपूर्ण पहलू इनकी निरंतरता और समयबद्धता है। जहाँ प्रथम चरण ने 'कनेक्टिविटी' (सड़क और बिजली) और 'बुनियादी सुविधाओं' (पानी और शौचालय) पर ध्यान केंद्रित किया, वहीं द्वितीय चरण 'गुणवत्तापूर्ण जीवन' और 'आर्थिक आत्मनिर्भरता' की ओर बढ़ रहा है। 'सुलभ संपर्कता' के तहत अब गाँवों को मुख्य सड़कों से जोड़ने के साथ-साथ बाईपास और फ्लाईओवर का निर्माण किया जा रहा है ताकि परिवहन व्यवस्था को गति मिल सके। साथ ही, 'सबके लिए अतिरिक्त स्वास्थ्य सुविधा' के माध्यम से स्वास्थ्य सेवाओं के विकेंद्रीकरण पर जोर दिया गया है, जिससे गाँव स्तर पर ही बेहतर चिकित्सा सुविधा उपलब्ध हो सके। यह क्रमबद्ध विकास दर्शाता है कि सुशासन का यह मॉडल केवल तात्कालिक समस्याओं का समाधान नहीं है, बल्कि बिहार के उज्ज्वल भविष्य की एक दीर्घकालिक और नियोजित ब्लूप्रिंट है।

जमीनी स्तर पर प्रभाव: एक डेटा-आधारित मूल्यांकन

सात निश्चय योजना का सबसे व्यापक और दृश्यमान प्रभाव बिहार के ग्रामीण जनजीवन और सामाजिक संरचना पर पड़ा है। यदि हम 'महिला सशक्तिकरण' के क्षेत्र में इसके प्रभाव का मूल्यांकन करें, तो सरकारी नौकरियों में 35 प्रतिशत आरक्षण के निश्चय ने राज्य के प्रशासनिक और पुलिस ढांचे का चेहरा बदल दिया है। आज बिहार, भारत के उन अग्रणी राज्यों में शामिल है जहाँ पुलिस बल में महिला कर्मियों का प्रतिशत सर्वाधिक है। यह न केवल लैंगिक समानता को दर्शाता है, बल्कि सार्वजनिक स्थानों पर महिलाओं के आत्मविश्वास और सुरक्षा की भावना को भी पुख्ता करता है। इसके साथ ही, 'उच्चतर शिक्षा हेतु महिलाओं को प्रोत्साहन' जैसी योजनाओं ने स्कूल और कॉलेज छोड़ने वाली लड़कियों की दर में भारी कमी लाई है, जिससे राज्य के सकल नामांकन अनुपात (GER) में सकारात्मक वृद्धि दर्ज की गई है।⁴

बुनियादी ढांचे और सार्वजनिक स्वास्थ्य के स्तर पर 'हर घर नल का जल' योजना एक क्रांतिकारी कदम साबित हुई है। बिहार जैसे राज्य में, जहाँ एक बड़ी आबादी जल-जनित बीमारियों (जैसे फ्लोराइड और आर्सेनिक की अधिकता) से प्रभावित थी, वहाँ पाइप के जरिए शुद्ध पेयजल पहुँचाना एक बड़ी चुनौती थी। सांख्यिकीय आंकड़े बताते हैं कि इस योजना के अंतर्गत 95 प्रतिशत से अधिक ग्रामीण परिवारों को कवर किया जा चुका है, जिससे ग्रामीण क्षेत्रों में स्वास्थ्य पर होने वाले व्यक्तिगत खर्च (Out-of-pocket expenditure) में कमी आई है। इसी प्रकार, 'घर-तक पक्की गली-नालियाँ' निश्चय ने मानसून के दौरान ग्रामीण क्षेत्रों में होने वाले जलजमाव और कीचड़ की समस्या को लगभग समाप्त कर दिया है, जिससे न केवल आवागमन सुलभ हुआ है, बल्कि स्वच्छता के मानकों में भी सुधार हुआ है।

आर्थिक मोर्चे पर 'युवा शक्ति' पर केंद्रित निश्चयों ने बिहार के युवाओं को पलायन के बजाय स्वरोजगार और कौशल विकास की ओर प्रेरित किया है। 'कुशल युवा कार्यक्रम' (KYP) के माध्यम से लाखों युवाओं ने भाषा, संवाद और कंप्यूटर का बुनियादी ज्ञान प्राप्त किया है, जिससे उनकी रोजगार क्षमता (Employability) बढ़ी है। इसके अतिरिक्त, बिहार स्टूडेंट क्रेडिट कार्ड योजना ने उन मेधावी छात्रों के लिए उच्च शिक्षा के द्वार खोल दिए हैं, जो आर्थिक तंगी के कारण अपनी पढ़ाई बीच में ही छोड़ देते थे। ग्रामीण बिजली की निरंतर आपूर्ति ने छोटे और कुटीर उद्योगों को नई संजीवनी दी है, जिससे स्थानीय स्तर पर आर्थिक गतिविधियों में तेजी आई है। इन सभी कारकों ने संयुक्त रूप से बिहार की विकास दर को राष्ट्रीय औसत के समकक्ष या उससे बेहतर बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।⁵

सुशासन के दृष्टिकोण से इस प्रभाव का मूल्यांकन करें तो पता चलता है कि इन योजनाओं ने सरकारी तंत्र और आम जनता के बीच की दूरी को कम किया है। योजनाओं के क्रियान्वयन में आईटी (IT) और डिजिटल डैशबोर्ड के उपयोग ने पारदर्शिता को बढ़ाया है, जिससे बिचौलियों की भूमिका कम हुई है। हालाँकि, जमीनी स्तर पर कुछ स्थानों पर तकनीकी खामियाँ और रख-रखाव की चुनौतियाँ देखी गई हैं, लेकिन कुल मिलाकर सात निश्चय ने बिहार के 'बदनाम पिछड़ेपन' की छवि को तोड़कर एक 'उभरते और प्रगतिशील राज्य' की पहचान गढ़ने में सफलता पाई है। यह प्रभाव केवल भौतिक नहीं, बल्कि मनोवैज्ञानिक भी है, जिसने बिहार के नागरिकों में राज्य के विकास के प्रति एक नया विश्वास जगाया है।

चुनौतियां, आलोचना और भविष्य की राह

सात निश्चय योजना की व्यापक सफलता के बावजूद, जमीनी स्तर पर इसके क्रियान्वयन में कई गंभीर चुनौतियां और बाधाएं भी उभर कर सामने आई हैं। सबसे प्रमुख चुनौती 'गुणवत्ता और रखरखाव' (Maintenance) की है। उदाहरण के लिए, 'हर घर नल का जल' योजना के तहत बिछाई गई पाइपलाइनों और मोटर पंपों के खराब होने पर ग्रामीण स्तर पर उनकी तत्काल मरम्मत के लिए कोई सशक्त तंत्र विकसित नहीं हो पाया है। कई पंचायतों में तकनीकी खराबी के कारण जल आपूर्ति बाधित होने की शिकायतें आम हैं।⁶ इसी प्रकार, 'गली-नाली पक्कीकरण' में प्रयुक्त निर्माण सामग्री की गुणवत्ता को लेकर भी समय-समय पर सवाल उठाए जाते रहे हैं। सुशासन के दृष्टिकोण से, योजना का ढांचा तो मजबूत है, लेकिन निचले स्तर पर प्रशासनिक भ्रष्टाचार और बिचौलियों की सक्रियता आज भी एक बड़ी चुनौती बनी हुई है, जो विकास के लाभ को शत-प्रतिशत जनता तक पहुँचाने से रोकती है।

आलोचनात्मक दृष्टि से देखा जाए तो 'बिहार स्टूडेंट क्रेडिट कार्ड' जैसी योजनाओं में बैंकों के साथ समन्वय और ऋण वापसी (Recovery) की प्रक्रिया को लेकर जटिलताएं बनी हुई हैं। इसके कारण कई योग्य छात्र तकनीकी कारणों से इस लाभ से वंचित रह जाते हैं। इसके अतिरिक्त, 'स्वच्छ गाँव-समृद्ध गाँव' जैसे लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए केवल भौतिक बुनियादी ढांचा तैयार करना पर्याप्त नहीं है; इसके लिए व्यापक 'व्यवहार परिवर्तन' (Behavioral Change) की आवश्यकता है। कचरा प्रबंधन और स्वच्छता के प्रति जन-भागीदारी की कमी अक्सर सरकारी प्रयासों को सीमित कर देती है। साथ ही, सात निश्चय पार्ट-2 के तहत 'युवा शक्ति' को कौशल प्रदान करना तो सराहनीय है, लेकिन राज्य के भीतर ही बड़े उद्योगों के अभाव के कारण इन कुशल युवाओं के लिए रोजगार के पर्याप्त अवसर सृजित करना एक निरंतर चुनौती है, जिससे पलायन की समस्या का स्थायी समाधान अभी भी प्रतीक्षित है।⁷

भविष्य की राह की ओर देखें तो सात निश्चय योजना के अगले चरण को अधिक 'डेटा-संचालित' (Data-driven) और 'जन-केंद्रित' बनाने की आवश्यकता है। योजनाओं की सफलता के लिए केवल निर्माण ही नहीं, बल्कि उनके 'सतत प्रबंधन' (Sustainable Management) पर निवेश करना होगा। पंचायतों को वित्तीय और तकनीकी रूप से अधिक सशक्त बनाना चाहिए ताकि वे स्थानीय स्तर पर ही मरम्मत और रखरखाव का कार्य कर सकें। तकनीक का उपयोग बढ़ाकर, जैसे कि 'IoT' (Internet of Things) के माध्यम से नल-जल योजना की रियल-टाइम मॉनिटरिंग, भ्रष्टाचार और लीकेज को कम किया जा सकता है। इसके अलावा, सात निश्चय को 'जलवायु परिवर्तन' की चुनौतियों से जोड़ना भी अनिवार्य है, जैसा कि 'जल-जीवन-हरियाली' अभियान के माध्यम से किया जा रहा है।⁸

निष्कर्षतः, सात निश्चय योजना और सुशासन का समन्वय बिहार के लिए एक दिशा-परिवर्तक (Game-changer) साबित हुआ है। इसने राज्य को 'अभाव' की राजनीति से निकालकर 'अधिकार' और 'सुविधा' की राजनीति की ओर मोड़ा है। यदि भविष्य में इन योजनाओं में पारदर्शिता, तकनीकी निगरानी और सामुदायिक स्वामित्व (Community Ownership) को और अधिक शामिल किया जाए, तो बिहार न केवल भारत के अन्य राज्यों के लिए एक रोल मॉडल बनेगा, बल्कि अपने गौरवशाली ऐतिहासिक वैभव को पुनः प्राप्त करने की दिशा में भी अग्रसर होगा। न्याय के साथ विकास का यह सपना तभी पूर्ण होगा जब सरकारी संकल्प और जन-सहयोग का संगम निरंतर बना रहे।

संदर्भ ग्रंथ सूची (References)

1. बिहार सरकार. (2015). सात निश्चय: विकसित बिहार के लिए हमारा संकल्प. योजना एवं विकास विभाग। <https://state.bihar.gov.in/planning/>
2. अर्थशास्त्र एवं सांख्यिकी निदेशालय. (2024). बिहार आर्थिक सर्वेक्षण 2023-24. वित्त विभाग, बिहार सरकार।
3. नीति आयोग. (2023). राष्ट्रीय बहुआयामी गरीबी सूचकांक: प्रगति समीक्षा 2023. भारत सरकार। <https://niti.gov.in>
4. कुमार, एन. (2021). सुशासन के कार्यक्रम: सात निश्चय का प्रभाव. बिहार प्रशासनिक सुधार मिशन सोसाइटी (BPSM)।
5. पंचायती राज विभाग. (2022). स्वच्छ गाँव, समृद्ध गाँव: सात निश्चय पार्ट-2 के क्रियान्वयन की मार्गदर्शिका. बिहार सरकार।
6. विश्व बैंक. (2020). भारत: बिहार में जल आपूर्ति और स्वच्छता सेवाओं का सुदृढ़ीकरण. वर्ल्ड बैंक ग्रुप रिपोर्ट।
7. सिंह, एस. के., एवं झा, आर. (2022). बिहार में सुशासन और विकेंद्रीकरण: एक आलोचनात्मक अध्ययन। भारतीय लोक प्रशासन पत्रिका, 68(2), 145-160।
8. सूचना एवं जनसंपर्क विभाग (IPRD). (2023). बिहार की विकास यात्रा: सात निश्चय से आत्मनिर्भरता तक. बिहार सरकार।

कृष्णा सोबती के उपन्यासों में स्त्री-अस्मिता और सशक्तीकरण: समकालीन सामाजिक संदर्भ

डॉ० गीता

सहायक आचार्य, हिन्दी विभाग, शिब्ली नेशनल पी० जी० कालेज, आजमगढ़

कृष्णा सोबती एक ऐसी सशक्त नारीवादी लेखिका हैं, जिन्होंने अपने लेखन में स्त्री की बदलती हुई स्थिति, उसकी यातनाओं संघर्षों को स्त्रीवादी परिप्रेक्ष्य से प्रस्तुत किया है। उनके उपन्यासों में स्त्री-चेतना का मुखर रूप मिलता है। पुरातनपंथी कुत्सित सोच के मकड़जाल में फंसी स्त्रियों को समाज किस प्रकार ट्रीट करता है, यह उनके लेखन में स्पष्ट जाहिर होता है। लेखिका की स्त्री पात्र रत्ती, पाशो, मित्रो महक, कुटुम्ब, अरण्या जैनी जब भी परम्परागत जीवन मूल्यों के अधीन पुरुष प्रधान समाज की जी हुजूरी में समर्पित होती हैं, तब तक वे पैर की जूती से अधिक नहीं समझी जातीं। उनका शोषण ही होता है, किन्तु जैसे ही लेखिका ने परम्परागत जीवन मूल्यों को तोड़, उन्हें अपने अधिकारों व अस्तित्व गौरव के प्रति सचेत किया, उनमें एक प्रकार का आत्मसम्मान व सशक्तीकरण आ गया।

‘मित्रो मरजानी’ की मित्रो परम्परागत जीवन मूल्यों को तोड़ने वाली रुढ़िमुक्त स्त्री है, जो स्त्री के परम्परागत रूप से भिन्न एक नये रूप में अवतरित हुई है। मित्रो अपनी शरीर की जरूरत को खुलेआम कहती है। वर्षों से नैतिकता के नाम पर स्त्रियों का यौन दमन किया जाता रहा है। सेक्स के विषय में स्त्री का मुखर होना अनैतिक व चारित्रिक पतन कहा जाता था, जिसके कारण स्त्री शारीरिक उलझन व मानसिक संत्रास सहने को विवश रहती थी। लेखिका ने मित्रो के माध्यम से पुरुषों द्वारा निर्धारित इस रूढ़िगत पारम्परिक मूल्य को तोड़वाया है। पुंसवादी समाज में पुरुष अपनी अनिवार्यताओं को चाहे वह मानसिक हो या शारीरिक खुलेआम कह सकता है, किन्तु स्त्री नहीं। मित्रो की सबसे बड़ी समस्या यह है कि वह अपने वैवाहिक जीवन में असंतुष्ट है, अतृप्त है। पति सरदारी उसकी शारीरिक आवश्यकता को पूर्ण करने में असमर्थ है। ऐसे में मित्रो अपने पति की कमजोरी का खुलासा करती है। मित्रो के इस प्रकार मुखर अभिव्यक्ति को सुन पुरुष समाज के कान खड़े हो गये। मित्रो स्त्री के नारीत्व, स्त्री की गरिमा को एक कापुरुष के सामने गिरवी रखने को विवश है, किन्तु वह अपनी इस बेवशी को अन्दर ही अन्दर पीती नहीं है, बल्कि अपनी समस्या को खुलेआम व्यक्त करती है-‘देवर तुम्हारा भैया मेरा रोग नहीं पहचानता... बहुत हुआ हफ्ते पखवाड़े..... मेरी इस देह में इतनी प्यास है कि मछली सी तड़पती हूँ।’ मित्रो अपनी दमित कामवासना की पूर्ति अपने शरीर को प्रदर्शित कर, यौन शब्दों के प्रयोग से करती है। मित्रो व्यवस्था के सभी शिकंजे को धत्ता बताती हुई ऐसी नई स्त्री का नया रूप लेकर सामने आ खड़ी होती है, जो पूर्व के पुरुष निर्धारित परम्परागत स्त्री बिम्बों को एकदम से खारिज करके स्त्री की नई छवि गढ़ने की वकालत करती है।

इसी संदर्भ में ‘बलात्कार’ का अर्थ होता है, उस संस्कृति का खण्डन, जिसमें स्त्री का जननेन्द्रिय तथा उसके शरीर की पवित्रता को ही स्त्री होने का पर्याय माना जाता है। सामाजिक मूल्यों की रूढ़ बेड़ियों में जकड़ी स्त्री स्वयं भी यौनि खंडन को संस्कृति का विखंडन समझने लगती है, जो सोचनीय है-‘बलात्कार का निशाना यौनि/जननेन्द्रिय है और यह आघात शरीर के इसी भाग से मानसिक और भावनात्मक रूप से जुड़ जाता है और नारी यौनि/जननेन्द्रिय पर प्रहार को अपने समस्त शरीर व्यक्तित्व और निजी संस्कृति का विखण्डन समझती है।’² इस परम्परागत मूल्य को बचाने के चक्कर में ही रत्ती का जीवन होम हो जाता है। ‘सूरजमुखी अंधेरे के’ की रत्ती ऐसी जड़ परम्परागत सामाजिक मूल्य के दबाव से जब तक प्रतिरक्षण का कवच पहने रहती है, तब तक वह यौन उत्पीड़न के कष्ट को सहती है, किन्तु जागरण के नवीन चेतना से युक्त रत्ती जब इस मूल्य से बाहर निकलती है, तो एक खुशहाल जीवन जीती है। यहाँ सड़े-गले परम्परागत मान्यताओं के स्थान पर नवीन स्त्री सोच का विकास होना स्वाभाविक है। इसी संदर्भ में अनामिका द्वारा दिये गये एक वक्तव्य को उद्धृत करना प्रासंगिक होगा, जिससे स्त्री की नवीन प्रगतिशील सोच का उदाहरण मिलता है-‘लोकजीवन में अंगों के कुछेक अमानवीय झटकों को इज्जत जाना या इज्जत लुट जाना कहते हैं। पर मेरी समझ में बिल्कुल नहीं आता कि इज्जत जैसी बड़ी चीज के साथ अंगों के अमानवीय घर्षण का हादसा क्यों जोड़ा जाता है? देह पर कीचड़, विष्टा पड़ जाने से उसकी इज्जत नहीं चली जाती। आखिर किस तर्क से एक ताकतवर पशु के अंग विशेष के बीमार स्राव की कुछ बूँदें गिर जाने से उसकी इज्जत चली जायेगी।’³

पारंपरिक गृहस्थी (स्त्री के घर के अन्दर के कामकाज) का विरोध लेखिका ने अम्मू नामक स्त्री पात्र से अपने जीवन के अंत समय में करवाया है। अम्मू की विवश अभिव्यक्ति जीवन के निर्मोह क्षणों में होती है-बरसों, सालों साल इस दुनिया में रही हूँ, पर इन दिनों बार-बार यही मन में कि इतना जीना था, तो कुछ ढंग का काम ही किया होता। इतनी बड़ी दुनिया है, उसे ही देख डालती पर गृहस्थी के ताने बाने में ही उम्र गुजर गई।’ इस प्रकार ऐसा कहलवा लेखिका ने परम्परागत रूढ़िवादी स्त्री के कष्टों को उजागर कर उस परम्परा व सामाजिक मूल्यों के प्रति विद्रोह प्रदर्शित किया है। संस्थागत इकाइयों परिवार और समाज: अपने रूढ़ि पारम्परिक रूप में किस प्रकार एक स्त्री को अपनी अस्मिता के प्रति बेसुध बनाये रखते हैं, इसका तीक्ष्ण अनुभव अम्मा को इस प्रकार होता है-सबकी खूबियाँ निगल जाता है यह परिवार। गृहस्थ में पाँव रखकर स्त्री का जो मंथन-मर्दन होता है, वह भूचाल के झटकों से कम नहीं होता। औरत सहन कर लेती है, क्योंकि उसे सहन करना पड़ता है।⁴

इसी प्रकार सामाजिक परम्परा के प्रति विद्रोह कर छुन्ना बीबी विधवा होने के बाद घर के कामों में दबती घुटती परावलम्बी स्त्री की भूमिका से इनकार कर स्कूल में पढ़ाने जाना स्वीकार करती हैं और भुवन से आर्यसमाजी पद्धति से पुनर्विवाह कर उस यथास्थिति को भंग कर देती है। इस प्रकार कृष्णा सोबती के स्त्री पात्र परम्परागत जीवन मूल्यों के प्रति विद्रोह करते नजर आते हैं, जो महिलाओं को सशक्त बनाने का पहला चरण है। कृष्णा सोबती के उपन्यास में औरत कतरा-कतरा जिंदगी जीती पिसती अपनी अस्मिता के लिए संघर्ष करती हैं। आज तक स्त्री के साथ समाज ने मानवीय ढंग से बर्ताव नहीं किया और न ही उसे पूर्ण मनुष्य रूप में स्वीकार किया। इसीलिए उसके साथ अमानवीय व्यवहार होता रहा। स्त्री के प्रति इसी तरह के हिंसक, अमानवीय, बर्बरतापूर्ण, व्यवहार को कृष्णा सोबती ने अपनी लेखनी का विषय बनाया है तथा इसके लिए पितृसत्ता को दोषी ठहराया है, जो स्त्री के प्रति हिंसक दृष्टिकोण रखता आया है। कृष्णा सोबती के चरित्र सहज मानव की तरह उन्मुक्त और पूर्ण जीवन जीने की हिमायती हैं, जिसमें पुरुष अहं बाधा बनकर सामने आ खड़ा होता है।

‘डार से बिछुड़ी’ की पाशो कुलनाशनी है, क्योंकि उसकी माँ ने मनमर्जी से अपना विवाह किया। ‘मित्रो मरजानी’ मुँह खोल-खोलकर अपनी दैहिक जरूरतों का बात करती है। इसलिए वह ‘मरजानी’ है। ‘रत्ती’ पर तो बलात्कार हुआ है, वह बहिष्कृत है। महक’ रखैल है, अर्थात् सभी चरित्र नष्टप्राय हैं। इनका दोष सिर्फ इतना है कि ये अमानवीय अनाचारों के प्रति चीख-चीखकर अपना आक्रोश व्यक्त करते हैं और ऐसी स्त्रियों में समाज के संस्थागत मूल्य कहकर बनकर उन पर टूट पड़ते हैं। समाज की जघन्य क्रूरताओं के खिलाफ ये स्त्रियाँ अपने जीवन की रक्षा हेतु किस प्रकार बार-बार संघर्ष करती हैं, यह इस प्रकार है-‘डार से बिछुड़ी’ की पाशों एक सुखद जीवन जीने की इच्छा से युक्त एक ऐसी युवती हैं, जिसकी माँ अज्ञात कारणों से अपने भाइयों की पत उतारती शेंखों के यहाँ जाकर बसी है। माँ की लांक्षना का समाज अपनी नैतिकता की अवज्ञा मान उसका बदला पाशो से लेना चाहता है। चढ़ती उम्र की सहज सरल इच्छा को बड़ी ही क्रूरता से बर्बरतापूर्वक कुचलने की कोशिश की जाती है। ‘मित्रो मरजानी’ की मित्रो जैसी पात्र भी अमानवीय अत्याचार का शिकार होती है तथा उसके विरुद्ध विद्रोह करती है। युवा शरीर के सहज प्यास को समेटे उसके मन में भी मातृत्व के गौरव के प्राप्ति की इच्छा जागती है। उनकी यौन क्षुधा को उसका पति शांत करने में असफल है। मित्रो अपनी शरीर की बनावट सुंदरता पर गर्व करती है और उसकी मुखर अभिव्यक्ति करती है। समाज इसे अश्लील मान अपना अपमान समझता तथा उस पर क्रूरताओं की बौछार करता है, उसका पति अपनी असमर्थता तथा मित्रो की मुखर अभिव्यक्ति से चिढ़कर उस पर अत्याचार करता है-‘गुरुदास घरवाली से कुछ कहने ही जाते थे कि मझली बहू के कमरे से धौले-धप्पे की आवाज सुन सहम गये। धनवन्ती ने हाथ मल-मल दिये। फिर वही मार पिटाई।’⁵ ‘उड़े उड़े बिखरे बालों में सौदाई सी मझली बहू सरदारी लाल से हाथ छुड़वाती थी और तहबन्द कस सरदारी पटाक पटाक धौल जमाता था।’ परिवार की अन्य स्त्री को माँ बनते देख उसमें भी मातृत्व की इच्छा प्रबल होती है और बांझ कहलवाने के विरुद्ध अपने पति की अक्षमता पर वह खुले आम आरोप लगाती है, जिसके कारण उसका जेट उसे ‘बुरी स्त्री’ और ‘अश्लील स्त्री’ बताया है। क्या स्त्री शरीर के प्राकृतिक यौनिक उफनते ज्वर को मारपीट कर दबाया जा सकता है। पुरुष अपने अभावों व कमियों का ठीकरा भी स्त्री के माथे ही फोड़ता है। मित्रो इन सामाजिक पारिवारिक अत्याचारों का खुलकर विरोध करती है। वह जीवन को खुशियों का ऐसा बुलबुला समझती है, जो न जाने किस घड़ी समाप्त हो जाय-छन छन छोड़ती देह से जितना रस हो सके बटोर लेना चाहती है। उसका मानना है कि सारी जीवंतता को समाज की रुढ़ियाँ गीली लकड़ी सी सुलगती रहने को विवश कर देती है। मित्रो उन रूढ़ मान्यताओं के खिलाफ संघर्ष करती है जो उस पर अत्याचार करने को प्रेरित करती है।

‘सूरजमुखी अंधेरे के’ की रत्ती के साथ अमानवीय अनाचार होता है। जब वह छोटी बच्ची थी लगभग 5 से 10 वर्ष की उम्र में ही उसके साथ बलात्कार होता है। जैसे जैसे वह बड़ी होती है, उसकी अन्दरूनी चोट बाहरी तौर पर भी अपनी गिरफ्त में ले लेती है। शारीरिक कष्टों से अधिक मानसिक निराशा व कष्टों से गुजरती है। लेखिका कहती है-‘बलात्कार केवल कानून की दफा नहीं, मात्र रसभंग ही नहीं, छोटे बच्चों के अधकचरे खेल भी नहीं, अमंगल लहर की वह टूट आसंग स्थिति है, जिसे अपने चाहने से स्रोत तक लौट आना जन्म जन्मांतरो सा ही अनिश्चित है।’⁶ एक तरफ बलात्कार जैसे अमानवीय अत्याचार की शिकार रत्ती के साथ समाज व उसके परिवार के लोग तक बार-बार कटूक्तियों व्यंग्यों से बलात्कार कर उसके साथ अत्याचार करते हैं। उसे परिवार के लोग तक अछूत समझते हैं। बिना किसी गलती के भी लोग उसे घृणा की ऐसी पात्र समझते हैं, जिसके पास से भी गुजरना लोग अच्छा नहीं समझते। आते-जाते हर स्थान पर स्कूल से लेकर बाजार घर तक व्यंग्यों एवं कटूक्तियों से लोग उसके जख्मों पर नमक छिड़कते हैं और लोगों के इस तरह के व्यवहार से लगातार अपमानित हो, वह अपने को एक ठंडी औरत समझने लगती है। जीवित होते हुए भी वह मृत के समान हो जाती है-‘रत्ती ने आँखें मूंद ली। उसका तारा चमकता तारा नहीं है, है तो सिर्फ कोयला पत्थर। वही रंग-वही तासीर।’ ‘रत्ती’ को पता है कि उसका आत्माभिमान व आत्मसम्मान दोनों ही छिन्न भिन्न हो गये हैं और वह अपने पर हुए अमानवीय अनाचार के खिलाफ संघर्ष कर अपने खोये सम्मान को वापस पाना चाहती है। वह इस जघन्य क्रूरतम अनाचार के खिलाफ लड़ाई छेड़ देती है, यह काम इतना आसान नहीं था, क्योंकि समय द्वारा निर्मित नैतिक मानदण्डों के हस्तक्षेप को पूरी तरह से नकारना बहुत ही साहस का काम है। जीवन (एरॉस) से मृत्यु (थेनेरॉस) को पछाड़ना था। काम संबंधी जीवन और मृत्यु एरॉस और थेनेरॉस की अभिव्यक्ति देते हुए ‘देवेन्द्र इस्सर’ रत्ती पर हुए इस क्रूरता और उसके असर को इस प्रकार चित्रित करते हैं-‘सूरजमुखी अंधेरे के की मूल समस्या ‘एरॉस और थेनेरॉस’ के द्वन्द्व की है। एरॉस सूर्योन्मुख है, जो प्रकाश और ऊष्मा लिए हुए है। थेनेरॉस मृत्युन्मुख है-अंधकारमय और ठण्डा। बलात्कार यानी एरॉस का बलपूर्वक हिंसात्मक हनन रत्ती (सूरजमुखी) को अंधेरे की अंतहीन गुफा में फेंक देता है उसे ठण्डी औरत बना देता है और अन्ततः महज बर्फ की शिला, औरत नहीं। यही से शुरू होती है-एरॉस’ और अथेनेरॉस’ की लड़ाई-रत्ती के भीतर और रत्ती के बाहर।’⁷

इस अमानवीय अनाचार के विरुद्ध लड़ाई लड़ने के लिए रत्ती को अपने समाजीकरण की पूरी स्थिति से अलग हो जाना पड़ता है। समाज के लोगों द्वारा उस पर किये जाने वाले व्यंग्यों की परवाह न करती हुई वह अपने बीते कल से विमुख होने के लिए बार-बार संघर्ष करती हैं-‘रत्ती का समूचा अंतरंग व्यवहार सायास है। सहज नहीं। इतना है कि हर कदम, कभी देह, कभी मन, कभी अपने से, अपने अतीत से मुक्ति पा लेने की छटपटाहट, कभी दरारों की अनज्ञपकी आँख तले बार-बार वह अकेली लड़की संघर्ष करती है-हथियार डालती है फिर लड़ती है।’⁸ बलात्कार जैसे जघन्य अपराध में स्त्री की कोई गलती न होने पर भी उसका दर्द स्त्री को ही भोगना पड़ता है उसे समाज व परिवार से सहानुभूति की जगह जिल्लत व अपमान मिलता है। इसी अपमान व जिल्लत की वशीभूत हो स्त्री निराशा से युक्त कुठित जीवन जीने की ओर बढ़ जाती है। आवश्यकता है इस अमानवीय अनाचार को समाज से समाप्त करने की। इसका शिकार हुई स्त्री को साहसपूर्वक इसका विरोध करने की तथा इस घटना को मात्र यौनि खण्डन मानना व्यक्तित्व खण्डन नहीं। समाज के पुरुष वर्ग को जता देने की कि अनैतिकतासूचक हीनता से स्त्री अब मुक्त हो गई है।

विधवा होने में भी स्त्री का कोई दोष नहीं होता, किन्तु इसकी सारी जिम्मेदारी स्त्री पर थोपी जाती है। समाज के द्वारा उस पर तरह तरह के अमानवीय जुल्म किये जाते हैं। उसके यौन उद्वाहों को शमित करने के लिए उसका भोजन स्वादहीन होता है, उसके कपड़े सादे होते हैं। उसे अमंगलसूचक मान किसी शुभ कार्य के समय उसकी उपस्थिति वर्जित होती है। इस तरह शारीरिक उलझनों को सहते हुए उसे अपनी इच्छाओं आकांक्षाओं का दमन कर जिंदा लाश की तरह रहना होता है। ऐसे में जो परिवार व समाज उसे लक्ष्मी कहता था, उसी की दृष्टि क्षण में बदल जाती है, वही उसे कुलक्षिणी भक्षिणी आदि नाम देते हैं। इस प्रकार के अमानवीय अत्याचार स्त्रियों पर वर्षों से होते आये हैं, पर कृष्णा सोबती के पात्र इस अत्याचार का मुखर विरोध करते हैं। दिलोदामिनी की छुन्ना बीबी' विधवा हो जाती है, तो उन्हें ससुराल और मायके दोनों ही स्थानों पर घोर मानसिक यंत्रणा से गुजरना पड़ता है। युवा शरीर और यौन आकांक्षाएँ उसके शरीर को उलझनों से भर उसे दोहरे दर्द को सहने के लिए विवश करती है, उसे आये दिन सामाजिक अत्याचार से दो चार होना पड़ता है, उसे गालियाँ व कटूक्तियाँ ही हर कदम सुनना पड़ता है। अपनी अंतरात्मा पर असंख्य घावों का दर्द लिए छुन्ना अपने शरीर को देवर की कुत्सित नजरों से बचाकर कहीं छुप जाना चाहती है। उसको 'विधवा' संबोधन बहुत अखरता है, जो उसे जिल्लत भरा जीवन जीने के लिए विवश करता है। ससुराल और मायके दोनों जगह के लोगों की जलती नजरें उसके हिस्से के जमीन और उसकी सन्दूकची पर ही लगी रहती है। 'छुन्ना' बेचारी अनचाहे मेहमान की तरह संघर्ष करती है। इस सामाजिक परम्परा को तोड़ वह मन की पीड़ाओं से थक हारकर 'भुवन' से विवाह का निर्णय लेती है।

कृष्णा सोबती के प्रायः सभी स्त्री पात्र समाज-व्यवस्था की रूढ़ियों को तोड़कर नवीन संचेतना से युक्त उन्मुक्त जीवन जीने की तैयारी करते हैं। वे जाति, धर्म, सम्प्रदाय, आदि की सीमाओं से परे समानता के धरातल पर जीने की स्वतंत्रता चाहती हैं। वर्षों से जो कुत्सित नियम, जिन्हें उन्होंने संस्कार के रूप में आत्मसात किया है, 'वाल्मीकि-कवच' बनकर उनके अस्तित्व व अस्मिता को धूमिल किया है, वे उनसे मुक्त होना चाहती हैं। वे नियम व रूढ़ मान्यताएँ उनकी इस स्वतंत्रता की राह में अवरोध बनती हैं। दुःखद बात तो यह है कि आज भी स्त्रियाँ पुरुष से शोषित होना ही अपनी नियति मान सब कुछ चुपचाप सहती हैं। स्वयं को व्यक्तिनिष्ठ से अधिक वस्तुनिष्ठ समझने की यह रूढ़ सामाजिक सोच स्त्री के व्यक्तित्व ही नहीं अस्तित्व के लिए भी अत्यन्त घातक है। कन्यापूण हत्या से लेकर, दहेज हत्या, घरेलू हिंसा, यौन उत्पीड़न, यौन दमन, के रूप में हम इस खतरे को समाज में देख सकते हैं।

कृष्णा सोबती के 'डार से बिछुड़ी' की 'पाशो' निरपराध होने के बावजूद भी कलंक कथा के कारण मामा का परिवार उसके प्रति हृदयहीन हो गया है। सामाजिक मर्यादा एवं प्रतिष्ठा बनाये रखने के लिए उसके पैरों में वर्जना की बेड़ी डालना पर यौवन के उन्माद में स्वतंत्र उन्मुक्त जीवन जीने की लालसा पाशो के लिए अभिशाप बन गई है। पाशों समाज के हाथों नैतिक मूल्यों की बेदी पर चढ़ाई गई बलि है। इस उपन्यास में लेखिका का रचना कौशल इसी में है कि वह रूढ़ियों से ग्रस्त समाज की पराधीनता में फंसी स्त्री की दुर्दशा दिखा, इसे तोड़ने के विकल्पों की ओर मूक, किन्तु विचारणीय संकेत करती है। पाशो की मूकता और हीनता से पूरी तरह से भिन्न व्यक्तित्व है मित्रो मरजानी के मित्रो का। समाज व्यवस्था की जिन रूढ़ मान्यताओं में स्त्री का जन्म एक शर्मनाक घटना है उन मान्यताओं को सिरे ने नकार मित्रो अपनी स्त्रैण-इन्द्रियों पर जी भर गर्व करती आत्ममुग्ध होती है। वह उन जड़ परम्पराओं व रूढ़ियों को भी अस्वीकार करती है जिसे सदियों से भारतीय समाज के परिवार की बहू-बेटियों का लक्षण माना जाता था। वह पर्दा प्रथा को अस्वीकार कर घूँघट की परवाह नहीं करती। स्त्रियोचित नैतिक गुण शर्म तो उसमें है ही नहीं जिसे पुरुषों ने स्त्री का आभूषण माना है जो पुरुष के सामंती मानसिकता का परिणाम है। वह न ही धीमी वाणी में ही बोलती है-सरदारी ने कड़ककर पूछा-नजर नीची करती है कि नहीं? मंझली बहू ने ऐसा सब कुछ नहीं किया। बड़ी बड़ी भूरी आंखें घरवालों का सामना किये रहीं।⁹ मित्रो का चरित्र पारंपरिक पारिवारिक रूढ़ नैतिक मान्यताओं को हर स्थान पर चुनौती देता प्रतीत होता है। 'बनवारी कहता है-मित्रो, तेरी देह क्या निरा शीरा है शीरा! उस नास होने से कहती हूँ-अरे इसी शीरे में तेरी जान को डंक मारते सर्पों की फौजें पलती हैं।'¹⁰ अब तक की भारतीय समाज व्यवस्था में स्त्री की देह का नियंत्रण स्त्री की हाथों में नहीं, बल्कि पुरुष के हाथों में रहता आया है।

'सूरजमुखी अंधेरे के' की रती' नामक पात्र बचपन में ही बलात्कार का शिकार हो जाती है। जड़ समाज ने मानो उसे बेइज्जती और जिल्लत पाने का लाईसेंस दे दिया हो। यह एक ऐसी स्त्री की सत्यकथा है, जो भारतीय समाज की रूढ़ियों में जकड़ी बेबश लाचार और अभिशाप हैं। ऐसी घटना का शिकार स्त्री घोर निराशा व कुण्ठा का शिकार हो जाती है। समाज के लोग उसके साथ सहानुभूति पूर्ण व्यवहार करने के बजाय उसे ही इस कुकृत्य का दोषी मानते हैं- 'जिस स्त्री के साथ बलात्कार हुआ हो, उसे शंका की निगाह से देखा जाता है। माना जाता है कि बलात्कार को संभव बनाने में उसकी भी कुछ भूमिका रही होगी। कानूनी हल्कों का ये दृष्टांत मशहूर है कि जिस तरह कोई सूई लगातार हिलाई जाती रहे, तो उसमें धागा नहीं डाला जा सकता, उसी तरह एक असहमत तथा संघर्षशील स्त्री से जबर्दस्ती संभोग नहीं किया जा सकता।' इसी कारण रती को 'बुरी लड़की' 'पाप का घट' कहा जाता है।

ऐसे में बलात्कार की शिकार स्त्री जिंदा लाश जैसी हो जाती है, जो अपमान व जिल्लत की जिंदगी जीना ही अपनी नियति समझ लेती है, क्योंकि हमारा समाज स्त्री की पवित्रता और अपवित्रता का संबंध यौनि खण्डन या अखण्डन से लगाता है, जो एक कुत्सित रूढ़ि है स्त्री की उच्चता बोधक गुण तो मन की शुद्धि, तर्कशीलता, उच्च शिक्षा, सौंदर्य, विवेक, आदि होते हैं। स्त्री रूढ़ि का शिकार हो कौमार्य भंग होने को अपवित्र होना मान लेती है। रती भी स्वयं को अपवित्र मान आत्महत्या और आत्मपीड़न जैसी व्याधियों से घिर जाती है, किन्तु शीघ्र ही इस कुत्सित सोच से चौतन्यता के बल पर मुक्त हो जाती है। वह नवीन चौतन्यता से युक्त हो स्त्री यौनि की प्रधानता की रूढ़ धारणा को अस्वीकार कर अपने जीवन को विक्षिप्त होने से बचा अपने व्यक्तित्व में उच्छुंखलता लाती है, जो परिस्थितिजन्य है, किन्तु रूढ़िमुक्त और स्वतंत्र होते हुए भी उसकी आंतरिक बुनावट भारतीय ही रहती है। कई पुरुषों के साथ संबंध जोड़ने के बाद भी उसका अपना एक संस्कार है। वह मुक्त होती है, तो कुत्सित रूढ़ियों जड़ परम्पराओं से प्रेम जैसे पवित्र रिश्ते से नहीं वह दूसरों के प्रेम और विश्वास को छीनकर कुछ हासिल करना नहीं चाहती। रती अस्तित्व सम्पन्न रूढ़िमुक्त स्त्री है, जब उसके शरीर की अपूर्णता समाप्त हो जाती है, तो वह स्वस्थ हो जाती है। पुरुषों के साथ उसका संबंध 'भोग' या उन्माद' की स्थिति को प्रकट नहीं करता, बल्कि संघर्ष के कठिन क्षणों को उजागर करता है।

'दिलोदामिनी' में महक 'रखैल' शब्द से अपमानित होने पर भी कृपानारायण के प्रति जितनी समर्पिता है, उतनी उनकी पत्नी महक भी नहीं। यहाँ लेखिका समाज व्यवस्था की रूढ़ियों की ओर संकेत किया है, जिसमें स्त्रियों का अनादर होता है। विधवा विवाह का संकेत उपन्यास में लेखिका ने किया है। लेखिका ने विधवा पुनर्विवाह का संयोग कर वर्षों पुरानी कुत्सित कुरीति का विरोध किया है। लेखिका ने उस रूढ़ परम्परा का भी खण्डन किया है, जिसमें पुत्र एवं पुत्री में अंतर किया जाता है। लेखिका का मानना है कि दोनों को समान अवसर मिलना चाहिए। ऐ लड़की' की बूढ़ी अम्मा को यह दुःख हमेशा सताता है- 'जरा

सोचो मैं अपने भाई की तरह पढ़ती तो क्या बनती? क्या होती मैं और क्या होते मेरे बच्चे? सच तो यह है कि लड़कियों को तैयार ही जानमारी के लिए किया जाता है, भाई पढ़ रहा है, जाओ दूध दे आओ। भाई सो रहा है, जाओ कंबल ओढ़ा दो। जल्दी से भाई की थाली परोस दो। उसे भूख लगी है। भाई खा चुका है, तो अब तुम भी खा लो।¹¹ अपने अनमोल जीवन को सामाजिक रूढ़ियों की कैद में बिता देने का दर्द बहुत ही मर्मन्तक है। समाज की इन अंधेरी मान्यताओं को बंद गुफाओं का प्रतीक मानती है।

कृष्णा सोबती के प्रायः सभी पात्र समाज व्यवस्था की रूढ़ियों को प्रकारान्तर से तोड़ते नजर आते हैं। जिंदगीनामा में भी ससुराल का घर छोड़ प्रेमी के साथ भाग आयी चाची महरी, बरकती जो मायके के बर्बादी का कारण बन जाती है। विधवा ब्राह्मणी का प्रेम करना, फतह और शाहजी का प्रेम परवान चढ़ना-समाज व्यवस्था की रूढ़ियों को तोड़ते नजर आते हैं। समय-सरगम के ईशान और अरण्या का साथ रहना भी वर्षों की रुढ़ि का खण्डन करता है जबकि हमारा समाज ऐसे संबंधों की स्वीकृति नहीं देता।

इस प्रकार कृष्णा सोबती ने समाज में व्याप्त रूढ़ियों और कुरीतियों के प्रति विद्रोह करने वाले पात्रों को पैदा किया है। पर यह विद्रोह एक नवीन प्रकार का है। इनमें परम्परागत रूढ़ नैतिक मान्यताओं के प्रति विद्रोह और सनातन मानवीय मूल्यों के प्रति अगाध आस्था को दर्शाता है। हिन्दी साहित्य की अन्य नारियाँ अनथक संघर्ष के उपरांत उपलब्धि के नाम पर रिक्त के बोध से ग्रस्त हो जाती हैं, किन्तु कृष्णा सोबती की स्त्री अधिकारी के नाम पर कोई स्थूल सुविधा पाकर भी असीम संतोष की अनुभूति करती है, वह आत्मसम्मान बनाये रखती है। इनके उपन्यासों में जड़ मान्यताओं व रूढ़ियों का खण्डन किया गया है, स्त्री इन रूढ़ियों से बाहर निकल अपने अस्तित्व और अस्मिता की पहचान कर मुक्त और स्वतन्त्र जीवन जीती है। इस प्रकार स्त्री की चौतन्यता व जागरूकता उन्हें सशक्त बनाती है।¹²

कृष्णा सोबती के लेखन में स्त्री की बुनियादी चिंताएं न केवल उसके अन्तर्मन के सवालियों से जुड़ने भर की है और न ही बाह्य समाज का तथ्यात्मक वर्णन ही। स्त्री-पुरुष वैमनस्य में 'कटे हुए व्यक्ति! की पीड़ा को ध्यान में रखकर लेखिका का सम्पूर्ण लेखन शोषित के प्रति सहानुभूति और उनके समान अधिकारों की जायज माँग है। लेखिका ने पुरुष प्रधान समाज की सामंतवादी सामाजिक प्रथाओं का यथार्थ चित्रण किया है, जिसमें स्त्री व पुरुष को क्रमशः शोषित व शोषक के रूप में देखा जाता है। उनका लेखन आधुनिक परिवेश के बदलते अन्तर्विरोधों को तटस्थता से विश्लेषित करता है। लेखिका का मानना है कि नवीनबोध, ताजगी, जागरूकता, अवेयरनेस-इन सब के लिए नई पीढ़ी, नया लेखक, नया लेखन की ही आवश्यकता नहीं होती, उसके लिए जड़ सामाजिक व्यवस्था का पुनर्मूल्यांकन कर उसमें परिवर्तन की भी जरूरत होती है। लेखिका के उपन्यासों में सामाजिक अव्यवस्थाओं के विरुद्ध संघर्ष दिखाई पड़ता है, साथ ही आर्थिक अव्यवस्था, आर्थिक रूप से परावलम्बी स्त्री की दुर्दशा व स्वावलम्बी होने से प्राप्त आत्मसम्मान, स्वतन्त्रता का वर्णन मिलता है। पुरातनपंथी सोच में उलझी स्त्रियों को समाज किस प्रकार शोषित करता है, यह कृष्णा सोबती के उपन्यासों में साफ स्पष्ट हुआ है। उनकी स्त्री पात्र-रत्ती, पाशो, मित्रो, महक, छुना कुटुम्ब, जब तक समाज व्यवस्था के अधीन हो पितृसत्तात्मक समाज के सामने निरीह भाव से रहती हैं, तब तक वे पैर की जूती या वस्तु से अधिक कुछ नहीं समझी जातीं। उनका जीवन के हर मोड़ पर पुरुषों द्वारा शोषण होता है, किन्तु जब वे अपने अधिकार व अस्मिता के प्रति सजग होती हैं, उनके अंदर व्यवस्था के जीर्ण-शीर्ण नियमों के परिवर्तन का भाव आ जाता है? वे जड़ सामाजिक अव्यवस्था के विरुद्ध संघर्ष करने लगती हैं? ¹³

कृष्णा सोबती ने अपने उपन्यासों में एक गंभीर स्त्री विमर्श को प्रस्तुत कर महिला सशक्तीकरण की दिशा में मजबूत उपस्थिति दर्ज की है। उनके उपन्यासों में परम्परागत जीवन मूल्यों के प्रति विद्रोह मिलता है, जिन जीवन मूल्यों के कारण स्त्री घुटघुटकर जीने को विवश होती है। स्त्रियों पर होने वाले अमानवीय अत्याचारों पर प्रकाश डाल उनके खिलाफ संघर्ष छेड़ा है। रूढ़ियों एवं कुत्सित परम्पराओं के प्रति संघर्ष करते हुए स्त्री पात्र इन्हें सिर से नकारती है, इन्हीं रूढ़ियों व कुरीतियों का शिकार स्त्री वर्षों से अमानवीय अत्याचार सहती आयी है। परम्परागत जीवन मूल्यों में अपनी अस्मिता को गँवाने वाली स्त्री को यहाँ अपनी अस्मिता को खोज उसकी सार्थकता सिद्ध करते देखा जाता है, जो सामाजिक आर्थिक अव्यवस्था के विरुद्ध संघर्ष कर अपनी अस्मिता व अस्तित्व की रक्षा करती है।

सन्दर्भ

1. मित्रो मरजानी-कृष्णा सोबती, पृष्ठ संख्या-20
2. ऐ लड़की-कृष्णा सोबती, पृष्ठ संख्या-99
3. डार से बिछुड़ी-कृष्णा सोबती, पृष्ठ संख्या 22
4. मित्रो मरजानी-कृष्णा सोबती, पृष्ठ संख्या-12
5. सूरजमुखी अंधेरे के-कृष्णा सोबती, पृष्ठ संख्या-68
6. कृष्णा सोबती: एक सोहबत-कृष्णा सोबती, पृष्ठ संख्या-404
7. मित्रो मरजानी-कृष्णा सोबती, पृष्ठ संख्या-17
8. कृष्णा सोबती: एक सोहबत-कृष्णा सोबती, पृष्ठ संख्या-397
9. अस्तित्व, अस्मिता और कृष्णा सोबती-डॉ० रूपा सिंह, पृष्ठ संख्या-95
10. एक दुनिया: समानान्तर-राजेन्द्र यादव, पृष्ठ संख्या-33
11. दिलोदानिश-कृष्णा सोबती, पृष्ठ संख्या-173
12. स्त्री-अस्मिता और कृष्णा सोबती-डॉ० रूपा सिंह, पृष्ठ संख्या-178
13. डार से बिछुड़ी-कृष्णा सोबती, पृष्ठ संख्या-84

कमलेश्वर की कहानियों में सामाजिक यथार्थ: एक दृष्टिपात

प्रदीप कुमार यादव

शोधार्थी, हिंदी विभाग, बरेली कॉलेज, बरेली, महात्मा ज्योतिबा फुले रुहेलखण्ड विश्वविद्यालय, बरेली, उत्तर प्रदेश

डॉ० सुषमा गौडियाल

(शोध निर्देशक) प्रोफेसर, हिंदी विभाग, बरेली कॉलेज, बरेली महात्मा ज्योतिबा फुले रुहेल खण्ड, बरेली, उत्तर प्रदेश

सामान्य रूप से यथार्थ को आदर्श का विरोधी एवं प्रतिद्वन्दी माना जाता है किन्तु यथार्थ आदर्श का विरोधी न होकर वास्तविक सत्य का प्रतिरूप है। आदर्श की स्थिति व्यापक निष्ठा एवं उसके संस्कार की है, जब कि यथार्थ घटित सत्य का पर्याय है। यथार्थ और यथार्थवाद एक दूसरे के पूरक होते हुए भी कला के स्तर पर दोनों भिन्न हैं। जीवन की सच्ची अनुभूति यथार्थ है पर इसका कलात्मक अभिव्यक्तिकरण यथार्थवाद है। यथार्थ मानवजगत की वास्तविकता की अनुभवजन्य अनुभूति है और इसका अभिव्यक्ति करण यथार्थवाद है।¹

समाज से सम्बन्धित किसी भी घटनाक्रम का ज्यो-का-त्यों चित्रण ही सामाजिक यथार्थ कहलाता है। इसके अतिरिक्त सामाजिक यथार्थ से तात्पर्य आम प्रचलित शब्दों में मनुष्य द्वारा की गई सामान्य क्रियाओं के सच्चे चित्रण से लिया जाता है। ज्ञान शब्द कोश में सामाजिकशब्द का अर्थ 'समाज सम्बन्धी' समाज में पायेजानेवाला आदि से लिया गया है।² इसी शब्दकोश में यथार्थ का अर्थ 'सत्य प्रकट, उचित आदि दिया गया है।' इन दोनों के अर्थों को मिलाकर सामाजिक यथार्थ से तात्पर्य समाज में घटित होनेवाली सच्ची घटनाओं का यथार्थ चित्रण ही सामाजिक यथार्थ कहलाता है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं सामाजिक यथार्थ एक अमूर्त शब्द है। फिर भी इसका मुख्य प्रयोजन समाज में जो दिन-प्रतिदिन मनुष्यों द्वारा कार्यकलाप होते रहते हैं। उनका मूल प्रदर्शन ही सामाजिक यथार्थ कहलाता है। सामाजिक यथार्थ को अनदेखा नहीं किया जा सकता।

सामाजिक शब्द की व्याख्या करते हुए डॉ. सुरेश घोंगडा ने लिखा है कि प्यक्ति या मनुष्य इन्ही प्राथमिक या द्वितीयक समूहों का सदस्य होता है।³ इस प्रकार प्राथमिक समूहों के अंतर्गत परिवार बच्चों के झुण्ड पड़ोस अथवा बुजुर्गों की मण्डली को रखा है। ये समूह व्यक्ति को सामाजिक एकता का पूर्णतम व सर्वप्रथम अनुभव देते हैं। प्रेमचन्द्र ने सामाजिक यथार्थ को चित्रित करते हुए 'शतरंज के खिलाडी' कहानी में लिखा है। 'तुम्हें निगोडी शतरंज इतनी प्यारी है। चाहे कोई मर ही जाए, पर उठने का नाम नहीं लेते। नौज कोई तुम जैसा आदमी हो।' इससे सामाजिक यथार्थ की स्थिति का स्पष्टीकरण हो जाता है।⁴

साहित्य समाज का दर्पण है। समाज में होनेवाली घटनाओं का लेखा जोखा उसके तत्कालीन साहित्य के द्वारा ही पता चलता है। इस अध्ययन से हम यह जानने में सक्षम होते हैं कि अतीत और वर्तमान मान दण्डों के मूल्यों के विषय में जानकारी प्रदान करते हैं। यथा "वो भी क्या वक्त थे! लोक मिडिल पास कर डिप्टीकलट्टी करते थे और आजकल की तालीम है कि एण्ट्रेन्स तक अंग्रेजी पढ़कर लडके तीस चालीस से आगे नहीं बढ़ पाते।"⁵

सामाजिक यथार्थ से ही साहित्य में अभिरूचि पैदा होती है, क्योंकि साहित्य का प्रयोजन किसी भी सचाई को वास्तविक तौर पर चित्रण करना होता है। यथा "मैं तुम से पांचसाल बड़ा हूँ और चाहे आज तुम मेरी ही जमाअत में आ जाओ, लेकिन मुझ में और तुम में पांच साल का अन्तर है, उसे तुम क्या खुदी भी नहीं मिटा सकता।"⁶

आधुनिक हिन्दी कहानियों में समाज में नारी की प्रगति के भी पुट दिखाई देते हैं। आज की नारी वह नारी नहीं रही, जिसे पहले घर की चहार दीवारी के भीतर ही बन्द करके रखा जाता था। आज वह शिक्षा के क्षेत्र में पुरुष से भी आगे बढ़ रही है। नारी को पुरुष के समान ही अधिकार प्रदान किये गये हैं। नारियों में दृढ संकल्प लेने की भावना भरी होती है। जैसे 'प्रणय वंचिता स्त्रियाँ अपनी राह के रोड़े-चिन्हों को दूर करने के लिए वज्र से भी दृढ होती हैं।'⁷ इसलिए यह निर्विवाद सत्य है कि आधुनिक युग में नारियाँ विकास के रास्तों की ओर बड़ी तेजी से अग्रसर हो रही हैं।

हिन्दी कहानियों में सामाजिक यथार्थ को चित्रित करनेवाली अनेक कहानियों में पुलिस व्यवस्था का विकृत रूप भी हमें देखने को मिलता है। पुलिस कमजोर या गरीब आदमियों को आतंकित करती रहती हैं। जब तक उनकी जेबे घूस या रिश्वत से भरी नहीं जाती तब तक वे मामूली सी बातों के पीछे भी मुजरिम को छोड़ते नहीं हैं। पुलिसवाले ज्यादातर शरीफ एवं निदोष व्यक्तियों को झूठा इल्जाम लगाकर अपनी हिरासत ले लेते हैं। भगवती चरण वर्मा ने अपनी 'रहस्य और रहस्योद्घाटन' नामक कहानी में पुलिस व्यवस्था का किस तरह पर्दाफाश किया है 'बड़े पहुँचे हुए सिद्ध है कल रात करीब एक बजे बटलर रोड पर आई.जी. के बंगले के पास से होते हुए, लम्बे-लम्बे डग भरते हुए बनारसी बाग जा रहे थे कि पुलिस वालोने उन्हें रोक कर उनसे पूछताछ की। लेकिन बाबा ने चुप्पी साध ली तो पुलिसवालों ने उन्हें हवालात में बन्द कर दिया।'⁸

सामाजिक यथार्थ को रूपायित करते समय हम समाज में व्याप्त कुरीतियों का भी चित्रण करते हैं। समाज में आये दिन बलात्कार, व्यभिचार, चोरी, डकैती आदि के भी मामले यदा कदा सामने आते रहते हैं। यौनाचार के लिए वे लोग जिम्मेदार हैं, जो अभी पूर्णरूपेण सुशिक्षित या सभ्य नहीं हैं। क्योंकि उन्हें अपनी मान-मर्यादा का कोई ख्याल नहीं होता। इसके लिए हम पूर्णतया पुरुष वर्ग को ही जिम्मेदार नहीं ठहराते, क्योंकि आधुनिक समाज में नारियों ने अपने अंग-प्रदर्शन को एक फैशन का रूप मान रखा है। फिलहाल वह अपने शरीर को अर्ध-नग्न रखती हैं। जिससे स्वाभाविक है कि पुरुष वर्ग उनके प्रति आकर्षित होता है। इससे इस प्रवृत्ति को और बढ़ावा मिलता है।

हिन्दी कहानियों में समाज का यथार्थ चित्रण करते हुए देखने को मिलता है कि हर आदमी चिन्ताग्रस्त रहता है उसे जीवन में किसी-न-किसी प्रकार की चिन्ताएँ सताती रहती हैं यथा 'संसार में कौन चिन्ता ग्रस्त नहीं है? पशु पक्षी, कीट पतंग, चेतन और अचेतन सभी को किसी न किसी प्रकार की चिन्ता है"।⁹

समाज में स्वच्छन्द प्रेम-प्रवृत्ति भी पाई जाती है। प्राचीन समय में माता-पिता अपने बेटे बेटियों की शादी के बारे में चिन्तित रहते थे, लेकिन आधुनिक समाज में युवा वर्ग इतना वेशर्म होता जा रहा है कि उन्हें अपने माता-पिता की इज्जत का कोई ध्यान नहीं होता बल्कि अपनी मर्जी से शादी करने में प्रेम का नाम देते हैं। जैसे प्रेम चतुर मनुष्य के लिए नहीं वह तो शिशु जैसे सरल हृदयों की वस्तु है¹⁰ उच्चवर्ग का नैतिक पतन भी समाज में सामाजिक यथार्थ की व्याख्या करता है। इसके लिए उनके पास पैसे की अधिकता है, जिससे वे आदमी को आदमी नहीं कहते। यथा- 'बड़प्पन किसे कहते हैं? कंगाल वो कंगाल। गधी लड़की। भला उसने कभी मोती देखे थे, चबाने लगी होगी"।¹¹ इस प्रकार उच्च वर्ग की नियत का पर्दाफाश होता है।

समाज में मजदूर वर्ग का शोषण भी सामाजिक यथार्थ की परिभाषा के अंदर ही समाहित है। आज पूँजी-पतिवर्ग मजदूरों का शोषण कर रहा है। मजदूरों की दर निश्चित कुछ कर रखी है, जब कि उन्हें भुगतान उससे कुछ कम ही दिया जाता है। इस प्रकार सामाजिक यथार्थ का क्षेत्र व्यापक है तो इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं है।

कहानीकार, आलोचक व संपादक के रूप में कमलेश्वर ने हिन्दी कहानी के विकास में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है। एक रचनाकार के नाते कमलेश्वर ने कहानी को नई दिशा प्रदान की है। इन्होंने अपनी कहानी की विकास यात्रा के प्रारम्भ में ही कहानी को जीवन से सम्बद्ध और उसके प्रतिबद्ध ही माना है। कमलेश्वर के शब्दों में 'एक अन्तर्द्वन्द्व हमेशा मन में रहा है। क्योंकि कोई भी विचार अन्तिम नहीं है, और बदलते परिवेश में जहाँ मूल्यों का संकट हो, आस्था को फिर-फिर टटोलने की आवश्यकता हो, निराशा से उबकर घबराने की स्थिति हो, वहाँ एक लेखक का काम बहुत नाजुक हो जाता है.... इस संक्रान्ति को धीरे-धीरे देखकर, अनुभव के स्तर पर जीकर संवेदनात्मक स्वर में कुछ कहना ही मुझे अपना दायित्व लगता है-और कहानियों की 'धीम' को चुनने की यही मेरी दृष्टि भी है। इसलिए जीवन के प्रति प्रतिबद्धता होना मेरी अनिवार्यता है।¹² इन्होंने मध्यवर्गीय जीवन के यथार्थ का चित्रण किया है और समष्टिगत चिन्तन व्यष्टिचिन्तन की भावभूमि मान कर दिया है। कहानी-संरचना में वे नई दृष्टि को महत्व देते हैं। यो कह सकते हैं कि उनकी कहानी नए जीवन मूल्यों को केन्द्र मानकर चलती है। उन्होंने आधुनिक व्यक्ति के अस्तित्व, संकट, संक्रास, भय, मृत्युबोध का अंकन युगीन कहानी में किया है। सच्चाई तो यह है कि उन्होंने संक्रमित, सामाजिक जीवन मूल्यों का अंकन व्यक्ति परक दृष्टि से किया। उनकी कहानियों में मानव विवशताओं-विद्रुपताओं तथा खोखले जीवन के चहरो के आलेखन, आलोचना की प्रमुखता है। वे व्यक्ति की नैतिकता को महत्व देते हैं। उनकी कहानी प्रेम और आर्थिक संघर्ष में टूटते व्यक्ति और अस्तित्व की नई दिशा की खोज में रहती है।

कमलेश्वर ने हिन्दी कहानी को कुण्ठा और घुटन से निकालकर मुक्त वातावरण में सांस लेने का अवसर प्रदान किया है। कमलेश्वर के शब्दों में पश्चिम की कुण्ठा, कुत्सा, अकेलापन, पराजय और हताशा का विषय हो सकती है, वर्ण्य नहीं, क्योंकि हमारी कुण्ठा, अकेलापन और अस्तित्व का संकट उससे नितान्त भिन्न है। वह टूटते परिवार से अद्भुत है, वह आर्थिक सम्बन्धों के दबाव से अनुस्यूत है।¹³ कमलेश्वर में लोकजीवन की सांस्कृतिक स्पर्श मूलक संवेदनाएँ भरपूर हैं। अगर कमलेश्वर की कहानी को व्यक्ति के व्यथित मन की गाथा कहा जाए तो अतिशयोक्ति न होगी।

कमलेश्वर मूलतः कस्बाई मनोवृत्ति के कहानीकार हैं किन्तु जब से इन्होंने कस्बों को छोड़कर नगरों में रहना आरम्भ किया है। तबसे उनकी जीवन-दृष्टि में भी बदलाव आ गया है। डॉ. मदान लिखते हैं - 'एक कस्बे का आदमी बड़े शहर में आकर किस तरह भटकन, अकेलेपन, सूनेपन को महसूस करता है, उसके लिए स्थिति और दृष्टि दोनों किस तरह बदल जाती है - यह कमलेश्वर की कहानी का मूल स्वर है"।¹⁴ 'राजा निरबंसिया' और 'कस्बे का आदमी' संग्रह की अधिकतर कहानियाँ कस्बाई मनोवृत्ति की कहानियाँ हैं। 'मुर्दों की दुनिया' में कस्बाई परिवेश का चित्रण बड़ी सूक्ष्मता से हुआ है। 'आत्मा की आवाज' में कस्बाई परिवेश का चित्रण बड़ी सूक्ष्मता से हुआ है। 'आत्मा की आवाज' में कस्बाई जीवन की स्त्री भाभी के जीवन का सफल चित्रण देखने को मिलता है। कस्बाई जीवन में भी धीरे-धीरे परिवर्तन आ रहा है, परम्परागत बन्धन टूट रहे हैं, ये स्थितियाँ 'तीन दिन पहले की रात' कहानी में देखी जा सकती है। 'गर्मियों के दिन', 'चाय घर' और 'सीखचे' कहानियों में कस्बाई जीवन में आनेवाला परिवर्तन द्रष्टव्य है। कस्बाई परिवेश की नारियों में भी नगरीय बोध के कारण क्रान्ति की भावना घुसती जा रही है। ये स्त्रियाँ परम्परागत बन्धनों को तोड़ डालना चाहती हैं- 'इन सात फेरों में क्या विशेषता है? क्या शक्ति है? .. तो पति में ऐसी क्या विशेषता है? वह स्त्री के लिए कैसा वरदान है?'¹⁵

कमलेश्वर की कहानियों का दूसरा दौर 1959-1960 ई दिल्ली आगमन से प्रारम्भ हुआ। दिल्ली पहुँचने के बाद इनकी जीवन दृष्टि में परिवर्तन आया, अतः बाद की कहानियों में नगरीय बोध का ही चित्रण देखने को मिलता है। स्वयं कमलेश्वर लिखते हैं-"इस संग्रह की (खोयी हुई दिशाएँ) कहानियाँ एक बदली हुई मनः मनः स्थिति की कहानियाँ हैं। तीन वर्ष पहले मुझे टेलीविज़न की नौकरी के सिलसिले में दिल्ली जाना पड़ा। इलाहाबाद छोड़ते हुए बड़ी तकलीफ हुई, पर यहाँ आकर जब चारों तरफ देखना शुरू किया तो लगा कि एका एक सब कुछ बदल गया है। यहाँ एक नई जिन्दगी थी, एक ऐसी जिन्दगी जिसके किनारे खड़े होकर देखने से बहाव का पता ही नहीं चला था... एक अजीब-सा परायापन और बेगनापन है यहाँ"।¹⁶ इस दौर की कहानियों में 'जार्ज पंचम की नाक' दिल्ली में एक मौत, 'खोई हुई दिशाएँ' 'परायाशहर' 'एक रू की हुई जिन्दगी', 'दुखभरी दुनिया', 'जो लिखा नहीं जाता', 'एक थी विमला', 'तलाश', 'अपने देश के लोग', 'मांस का दरिया' और 'युद्ध' प्रमुख हैं। उपर्युक्त कहानियों में भ्रष्ट राजतन्त्र तथा सरकारी लालफीताशाही की बीच पिसनेवाले व्यक्ति के दर्द को अभिव्यक्ति प्रदान किया है। 'जार्ज पंचम की नाक' कहानी में सरकारी नीति और दफ्तरी दुनिया के माहौल पर तीखा व्यंग्य है। किसी विदेशी

अतिथि के आगमन पर मचनेवाली धूम-पर व्यंग्य करते हुए कहा “रानी एलिजाबेथ की जन्म पत्री भी छपी, प्रिंसफिलिप के कारनामे छपे और, तो और उनके नौकरों, बावर्चियों, खान सामों, अंगरक्षकों की पूरी की पूरी जीवनियाँ देखने में आयी ! शाही महल में रहने और पलनेवाले कुतो तक की तस्वीरें अखबार में छप गयी.. बड़ी धूम थी। बड़ा शोर-शराबा था। शंख इंगलैण्ड में बज रहा था, गूँज हिन्दुस्तान में आ रही थी”।¹⁷ अपने देश में होनेवाली पश्चिमी - करण की स्थिति पर कमलेश्वर ने तीखा व्यंग्य किया है।

‘मास का दरिया’ कहानी में वेश्या जीवन का यथार्थ चित्र अंकित किया गया है। “इसे नंगे जीवन का नंगा चित्र कहा जाए या नंगे जीवन पर झीना परदा डालना कहा जाए जो नंगेपन को और भी नंगा कर देता है। इस कहानी के पहले भी वेश्या के जीवन को लेकर कहानियाँ लिखी गई हैं। इस जिन्दगी की तस्वीरों को उतारने की कोशिश होती रही है कभी समस्या के रूप में, कभी सामाजिक, कुरीति की आलोचना के रूप में, तो कभी सामान्य व्यक्ति के रूप में लेकिन, ‘मासका दरिया’ कहानी कूपरिन के ‘यमा दि पिट’ (यमा का कटरा) की झलक दे जाती है। जिसमें इस जीवन पर परदा नहीं डाला गया है;। यह चित्र अभिजात संवेदना को धिनौना लग सकता है, लेकिन इसमें अनुभूति की प्रामाणिकता है जिस पर कमलेश्वर बल देते हैं”।¹⁸

दूसरे दौर की कहानियों में व्यक्ति की अस्मिता की तलाश है। स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी के सशक्त हस्ताक्षर कमलेश्वर मूलतः कस्बाई मनोवृत्ति के कहानीकार हैं। जब वे नगरों में रहने लगे तो कमलेश्वर की जीवन दृष्टि में बदलाव आ गया। उन्होंने ‘खोयी हुई दिशाएँ’ संग्रह की भूमिका में लिखा है। “इस संग्रह की कहानियाँ एक बदली हुई मनः स्थिति की कहानियाँ हैं। तीन वर्ष पहले मुझे टेलिविजन की नौकरी में दिल्ली आना पड़ा। इलाहाबाद छोड़ते हुए बड़ी तकलीफ हुई। पर यहाँ आकर जब चारों तरफ देखना, शुरू किया तो लगा कि एका एक सबकुछ बदल गया है। यहाँ एक नयी जिन्दगी थी, एक ऐसी जिन्दगी जिसके किनारे खड़े होकर देखने से बहाव का पता नहीं चला था। एक अजीब सा परायापन और बेगानापन है यहाँ”।¹⁹ ‘खोयी हुई दिशाएँ’ कहानी का नायक चन्दर दिल्ली में आकर सम्बन्धों की बड़ी पहचान, रिश्ते की वही गर्मी अनुभव करना चाहता है जो उसे अपने कस्बे में मिली थी। ‘दिल्ली में एक मौत’ कहानी महानगरीय सभ्यता की कृत्रिमता, यांत्रिकता व संवेदनाशून्यता को तीव्रता के साथ स्पष्ट करती है। ‘मास का दरिया’ कहानीमें दलती उम्र एवं बीमारियों ग्रसित वेश्या जुगनू के दुखपूर्ण जीवन, उसकी मानवीय भावनाओं और मजबूरियों का मार्मक चित्रण है।

कमलेश्वर की कथा का तीसरा दौर, 1966-1972 ई० तक है। ‘नागमणि’, ‘बयान’ ‘आसक्ति’, ‘जोखिम’, ‘राते’, ‘लाश’ ‘उस रात वह ब्रीच कैण्डी पर मिली थी’ आदि इस दौर की कहानियाँ हैं। ‘नागमणि’ कहानी में विश्वनाथ के माध्यम से व्यक्ति के दर्द को चित्रित करके मूल्यों के बिखराव पर प्रकाश डाला गया है। ‘बयान’ में दिखाया है कि प्रजातंत्रीय व्यवस्था के बाद यहाँ ऐसी स्थिति मौजूद है कि ईमानदार और संवेदनशील आदमी को जीना मुश्किल हो गया है। इस कहानी का फोटो ग्राफर अपनी पत्नी की तस्वीरों का गलत उपयोग परिस्थिति वश करता है। ‘आसक्ति’ कहानी का विनोद पड़ोसियों, बहनोई, बहन और सब के द्वारा नकारा जाने पर जिन्दगी की आसक्ति के कारण जी रहा है। कमलेश्वर ने व्यक्त किया है कि ‘दूसरा दौर था, व्यक्ति के दारुण और विसंगत सन्दर्भों को समय के परिप्रेक्ष्य में समझने का और तीसरा दौर है, यातनाओं के जंगल से गुजरते मनुष्य के साथ और समान्तर चलने का”।²⁰ “कमलेश्वर की कहानियाँ व्यापक मानवीय संवेदनाओं पर जोर देने वाली हैं। इनकी कहानियों के अध्ययन से लगता है कि उनका कहानीकार व्यक्तित्व लगातार विकासमान रहा है और वे समय के स्पन्दन को पकड़कर अपनी कहानियों के माध्यम से आवाज देने में बहुत सिद्ध हुए हैं।

सुप्रसिद्ध कहानीकार और मीडियामैन कमलेश्वर ने विविध क्षेत्रों में जो भी मानक स्थापित किए हो उनके कृतित्व का प्रधान क्षेत्र कहानियाँ हैं। आरम्भ से लेकर आज तक उन्होंने एक विशिष्ट विचारधारा तथा भावना से परिचालित होकर ही अपनी समग्र कहानियाँ लिखी हैं। इसके उन्नयन के लिए उन्होंने अनेक साहित्यिक आन्दोलनों का भी संचालन किया है। इस दृष्टि से कहानियों के उनके समग्र लेखन का विशिष्ट ऐतिहासिक महत्त्व है, जिसका अध्ययन किया जाता रहेगा।

पिछली अनेक दशाब्दियों के हिन्दी कथाकारों में कमलेश्वर का अपना अलग स्थान है जो अब उनकी नई ‘कितने पाकिस्तान’ (उपन्यास)। जैसी कृतियों के कारण विशेष रूप से चर्चा में है। उनके यथार्थवादी सृजन ने रचनात्मकता के साथ साथ जीवन एवं इतिहास के उदार चिन्तन के लिए द्वार भी खोल दिए हैं। कहानी लिखना कमलेश्वर के लिए एक विश्वास है। अस्तित्व के संकट को वे कहानी लेखन के साथ ठेलना और झेलना चाहते हैं। “यद्यपि यह संकट उनके लिये सम्पूर्ण प्राप्ति नहीं है। इस संकट के पीछे छिपे तथ्य और रहस्य भी चेतना का प्राप्य हैं, इसीलिए क्षण में जीने की कोई बाध्यता नहीं होती, पीछे देखकर, वर्तमान को वहन कर आगे देखना कमलेश्वर के लिए सहज प्रक्रिया बन जाती है। मृत्यु कमलेश्वर के व्यक्तित्व की नियति है। विचारों की नहीं”।²¹ विचारों की यह सम्पत्ति परम्परा से ही मिलती है और उनमें जीते हुए निरंतर विकसित एवं नया होते रहने की अनिवार्यता अपने परिवेश में जीनेवाले व्यक्ति की शर्त है। रचनाकार मृत्यु का नहीं जीवन का साथी होता है। शब्द की साधना अघोर पंथी तांत्रिक करते हैं, लेखक नहीं।

कमलेश्वर की कहानियाँ जीवन से जुड़ी हुई हैं। जिसका मूल स्रोत है जीवन का यथार्थवाद। और इस यथार्थ को लेकर चलनेवाला यह विराट मध्य और निम्न वर्ग है, जो अपनी जीवनी शक्ति से आज के दुर्दान्त संकट को जाने-अनजाने झेल रहा है। कमलेश्वर की कहानियों के केन्द्रीय पात्र है। (अपने विविध रूपों और परिवेशों में...) जीवन को वहन करनेवाला व्यक्ति। कमलेश्वर की कहानियों में आधुनिक सचेतना की अभिव्यक्ति का आधुनिक प्रयास है। यथा “घोर आत्मपरकता”, कृष्ण, घुटन एवं पलायनवादी प्रवृत्तियों के घने जाल से हिन्दी कहानी को खुली वायु में लाकर नया अर्थ देने का श्रेय बहुत अंशों में कमलेश्वर को है”।²² डॉ. सुरेश सिन्हा के इस निष्कर्ष में बहुत बड़ा तथ्य है। इस काल की कहानियों के सम्बन्ध में स्वयं कमलेश्वर ने एक जगह लिखा है- “मानवीय मूल्यों के संरक्षण, जीवन शक्ति के परिप्रेषण एवं सामाजिक नव-निर्माण की जितनी उत्कट प्यास इस पीढ़ी के कहानीकारों में है वह पिछले दौर में नहीं थी”।²³ जब इस प्रकार के किसी विशिष्ट मंजिल को कथाकार अपने सम्मुख रखता है। तब उसके अनुकूल ही वह वस्तु का चयन करता है। इसीलिए ‘सामाजिकता और सोदेश्यता’ इनकी कहानियों की प्रमुख विशेषता है।

कमलेश्वर की कहानी कला के तीन दौर माने जाते हैं। पहले दौर में अनुभव क्षेत्र की प्रामाणिक पहचान और परम्परा से विद्रोह किया गया है। इस दौर में उनके दो कहानी संग्रह आए।

‘राजा निरबंसिया’ (फरवरी 1957 ई०) और ‘कस्बे का आदमी’ नवम्बर (1957ई०) तत्पश्चात दोनों संग्रहों की कहानियों का एक ही पुस्तक ‘राजा निरबंसिया’ के रूप में प्रकाशित हुआ। स्वयं कमलेश्वर ने निम्नलिखित कहानियों को इस दौर की विशिष्ट कहानियाँ मानी: ‘सीखचे’, ‘मुद्दों की दुनिया’, ‘आत्मा की आवाज’, ‘गर्मियों के दिन’, ‘राजा निरबंसिया’ ‘देवा की माँ’ ‘भटके हुए लोग’ व ‘नीली झील’। हमारी दृष्टि में इस दौर की श्रेष्ठ कहानियाँ हैं। ‘एक अशील्ल कहानी’ अकाल व पीलागुलाब दूसरे दौर के कहानी संग्रह ‘मांस का दरिया’ में आई है मगर कमलेश्वर ने इसे प्रथम दौर की अंतिम कहानी कहा है। यह उनकी बहुत चर्चित कहानी है, इसकी चर्चा प्रथम दौर की कहानियों के अन्तर्गत ही करेंगे।

‘राजा निरबंसिया’ कहानी संग्रह में ‘देवा की माँ’ पहली कहानी है। देवा की माँ आदर्श पत्नी है। जिसके माध्यम से नारी का संघर्षशील रूप प्रकट किया गया है। वह पति के अत्याचारों को सहती है। उसके दूसरी शादी करने, स्वयं को त्याग देने और किसी तरह की आर्थिक सहायता न करने के बावजूद भी देवा की माँ उसे पति के रूप में स्वीकारती रही। देवा की सारी जिम्मेदारी माँ पर छोड़ दी जाती हैं। देवा का जेल से छुड़ाने का कोई प्रयास उसके पिता के द्वारा नहीं किया जाता तब देवा की माँ को अपने पति के चालाकी भरे धोखे का पता चलता है तब वह भावात्मक व व्यावहारिक दोनों स्तर पर पति के अस्तित्व को नकारती हुई परम्परागत पति-संस्था के वर्चस्व से पूर्ण मुक्त हो जाती है। पति की बीमारी की बात जानकर माँ में सिन्दूर भरना, किंतु देवा के पूछने पर पति को मिलने से इन्कार करने का पारंपरिक परिवार में आमूल परिवर्तन व पारिवारिक विघटन को प्रस्तुत करता है। यहाँ परम्परागत पारिवारिक मूल्यों की परजाय होती है क्योंकि पत्नी पति के नियन्त्रण से पूर्णतः मुक्त हो जाती है। देवा की माँ उसे केवल ‘पत्नी’ बनाये रखनेवाली पारिवारिक संस्था और पति संस्था से विद्रोह करती हुई अपनी स्वतंत्र व्यक्ति सत्ता की सुरक्षा का प्रयास करती है।

देवा की माँ अपनी जिन्दगी के टूटते तार टूटे ‘सूत’ से जोड़ने की कोशिश करती रहती हैं पर उसकी जिन्दगी के सूत तो कुछ ऐसे बिखरे हैं जो उसकी पकड़ में नहीं आते हैं। संघर्ष का यह बाह्यस्तर है किन्तु उसके अंतर्द्वन्द्व का चित्रण कहानी का एक दूसरा पक्ष है। वह “काँपती उंगलियों से अपना सारा सिन्दूर ‘तुलसी की नीली झील’ पत्तियों पर बिखेर कर अपना सुहाग उसे सौंप, सजल नयनों से उस बिखरे को ताकती रहती है”²⁴ उसमें भारतीय नारी के संस्कार हैं। अपने सहज स्वाभिमान और पति के लिए हृदय में संचित प्रेम के बीच झूलती देवा की माँ हमारी सहानुभूति की पात्र हो उठती है। डॉ. बच्चनसिंह को देवा की ‘माँ’ में नवीन नारी का दृप्त स्वर सुनाई पड़ता है, जो नए मूल्यों की सृष्टि करता है। ‘पुराने जीर्ण सम्बन्धों को काटकर यह स्वावलम्बन और श्रम के प्रति अटूट निष्ठा व्यक्त करती है”²⁵ इस प्रकार देवा की माँ पुराने और नए मूल्यों के बीच झूलती संक्रमण कालीन हिन्दुस्तानी नारी है।

कमलेश्वर की पहले दौर की अत्यधिक प्रसिद्ध एवं चर्चित कहानी है ‘राजनिरबंसिया’ इसकी वस्तु पुरानी है आर्थिक दबाव में किसी स्त्री को प्राप्त कराना कथावस्तु की दृष्टि से मूल कथा एक धार्मिक लोककथा से जोड़ी गयी है जो संगीतात्मक महत्त्व रखते हुए भी मूल कथा के साथ-साथ चलती है। लोक कथा का निस्संतान राजा दूसरी उपकथा के निःसंतान राजा को दुःखद आशवासन देता है। इस कहानी में आर्थिक विवशताओं द्वारा उत्पन्न दाम्पत्य सम्बन्धों के तनाव, उन संबंधों का टिड़कना व आर्थिक मजबूरियों में मनुष्य की निरुपायता का बहुत सशक्त निरूपण हुआ है। कहानी दुहरे कथानक के संश्लिष्ट शिल्प में बहुत खूबी से बुनी गई है। सुरेन्द्र के अनुसार “दुहरे कथानक और लोककथा के सम्बन्ध का नए वस्तु शिल्पबोध के समान्तर उपयोग ‘नई कहानी’ में हुआ है। लेकिन इस मिजाज की चर्चा करने योग्य कहानी अपने पूरे महत्त्व में कमलेश्वर ही दे पाए हैं, ‘राजा निरबंसिया’ उनकी ऐसी ही कहानी है”²⁶ दो, विभिन्न युगों की दो कहानियाँ साथ- साथ विकसित हुई हैं। निरबंसिया राजा रानी की लोककथा का समानांतर प्रयोग वर्तमान के जगपती और चन्दा के दुख को अधिक गहरा देता है, उसके संसार की समस्त खुशी को छीन लेता है। बीमार जगपती और फिर लकड़ी की टाल का कारोबार चलाते जगपती धीरे धीरे अपनी पत्नी का कंपाउन्डर बचन सिंह के अधिकार में चला जाना देखकर जो कष्ट मानसिक स्तर पर झेलना पड़ा है, उसका प्रामाणिक एवं मार्मिक वर्णन कमलेश्वर ने किया है। जगपति के दुखदर्द, अन्तः संघर्ष, लाचारी की वेदना पूर्ण नीलीलहर पूरी कहानी में व्याप्त है। बचनसिंह के यहाँ से चन्दा का लौटना जगपति को लोककथा के राजा के समान ही लगा था। मगर उसके हृदय में और भी भाव घुमड़ रहे थे, वे फिर लोककथा के माध्यम से इस प्रकार उजागर हुए पर राजा को रानी का इस तरह मंत्री के साथ जाना अच्छा नहीं लगा। रानी ने राजा को समझाया कि वह तो केवल राजा के प्रति अटूट प्रेम के कारण अपने को न रोक सकी। राजा-रानी एक दूसरे को बहुत चाहते थे। पर दोनों के दिलों में एक बात शूल सी गड़ती रहती कि उनके कोई संतान न थी.... राजवंश का दीपक बुझने जा रहा था और कुल की मर्यादा नष्ट होने की शंका बढ़ती जा रही थी”²⁷ यहाँ पर बताया गया है कि राजा-रानी लोक कथा की बाते वर्तमान जगपति और चन्दा पर कितनी सटीक बैठती है। इसी प्रकार लकड़हारों के लकड़ी काटने आने पर जगपति का कम्बल लपेटकर घर की ओर चलेजाना फिर निरबंसिया राजा के सुबह टहलने जानेवाली समानांतर घटना के द्वारा उन सब लोकापवादों को संकेतित किया गया है, जिनका मुकाबला लोककथा के राजा को ही नहीं जगपति को भी करना पड़ता है। राजा तो राजपाट छोड़कर चला गया था मगर जगपती की मजबूरी थी कि वह यह भी नहीं कर पाता। इस प्रकार लोककथा के समानांतर शिल्प ने एक नई अर्थवत्ता, सांकेतिकता एवं प्रभान्विति भर दी है। आलोचक नामवरसिंह ने भी स्वीकारा है। “लोककथा मुख्य कथा को और भी मार्मिकता प्रदान करती है। जैसे दो समीपवर्ती तारों में से एक की झंकार दूसरे में भी सहस्पंदन उत्पन्न कर देती हैं। मुख्य कथा की गति में जैसे ही संवेदना की तीव्रता है वह सहधर्मी लोककथा से छू जाती है और हम देखते हैं कि लोककथा का टूटा हुआ सूत्र अनेजाने ही हाथ में आ गया है। शिल्प के लिए लाई हुई अतीत की यह, कथा वर्तमान वास्तविका को उभारने के साथ ही अतीत का अर्थ हमारे लिए बदल देती है शिल्प विधान का यह नया योग कहानी में अनेक अर्थों और व्याख्याओं की संभावना कर देता है और इस तरह एक विशेष घटना के भीतर से मानवीय सत्य की व्यापकता उद्भासित हो उठती है”²⁸ यह कहानी दाम्पत्य सम्बन्धों पर पड़ती आर्थिक मजबूरियों के दबाव, उससे उत्पन्न पीड़ा व निरुपायता का सशक्त चित्रण करती है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. ज्ञान शब्द कोश: सं. मुकुन्दलाल श्री वास्तव, पृ. 857 प्र.सं. 2011 वि
2. वही पृ. 664
3. हिन्दी कहानी: दो दशक, डॉ. सुरेश धींगड़ा पृ.16 1976 प्र.सं.

4. आठ श्रेष्ठ कहानियाँ - सत्यकाम विद्यालंकार पृ.9 शिक्षा भारती, दिल्ली
5. कहानी कलिका: सं.डॉ. शशिभूषणसिंहल पृ.53 प्रकाशन विभाग कुरू क्षेत्र विश्वउमाशंकर सतीश पृ.55
6. हिन्दी कहानी - सिद्धान्त और विवेचन महेन्द्र उमाशंकर सतीश पृ.55 साहित्य रत्नभंडार, आगरा प्र.सं.1966
7. प्रसाद की कहानियाँ के नारी पात्र सुलभा बाजीराव पाटील पृ.71 पंचशील प्रकाशन जयपुर प्र.सं.1992
8. मेरी प्रिय कहानियाँ भगवती चरण वर्मा पृ.48
9. प्रसाद की कहानियाँ के नारी पात्र-सुलभा बाजीराव पाटील पृ.20
10. प्रसाद की कहानियाँ के नारी पात्र सुलभा बाजीराव पाटील पृ.20
11. कहानी नयी पुरानी:इन्द्रनाथ मदान पृ.47
12. मांस का दरिया: आत्मकथा, पृ.7-8 कमलेश्वर
13. सतरोत्तर हिन्दी कहानियों में बदलते मानवीय संबंध अजिता के नायर पृ.73
14. हिन्दी कहानी : डॉ. इन्द्रनाथ मदान पृ.110
15. समग्र कहानियाँ - कमलेश्वर पृ.71
16. स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कहानी में सामाजिक परिवर्तन- डॉ. मैरू लाल गर्ग पृ.,115
17. समग्र कहानियाँ कमलेश्वर पृ.288
18. हिन्दी कहानी: अपनी जबानी डॉ. इन्द्रनाथ मदान पृ.121,122
19. खोयी हुई दिशाएँ- कमलेश्वर पृ.10
20. मेरी प्रिय कहानियाँ कमलेश्वर पृ.07
21. मांस का दरिया (आत्मकथ्य) कमलेश्वर पृ.5
22. नयी कहानी की मूल संवेदना डॉ. सुरेशसिन्हा, पृ.107
23. वही पृ.107
24. समग्र कहानियाँ कमलेश्वर पृ.160
25. नयी कहानी : सन्दर्भ और प्रकृति संपादक देवीशंकर अवस्थी पृ.255
26. नई कहानी: प्रकृति और पाठ सुरेन्द्र पृ.21
27. समग्र कहानियाँ कमलेश्वर पृ.135
28. कहानी: नयी कहानी नामवरसिंह पृ.29

‘डॉ. रांगेय राघव और उनका साहित्य सृजन: एक दृष्टि’

डॉ. चन्द्रकान्ता पिलवाल

सहायक आचार्य - हिन्दी, राजस्थान स्कूल ऑफ आर्ट, जयपुर

डॉ. रांगेय राघव का व्यक्तित्व और कृतित्व हिन्दी साहित्य जगत् की प्रगतिवादी विचारधारा के रचनाकारों में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखता है। कहानी हो या उपन्यास, कविता हो या आलोचना, प्रत्येक विद्या पर अपनी छाप छोड़ी है। इस असाधारण बहुमुखी प्रतिभा के धनी और हिन्दी साहित्य जगत के समर्पित साहित्यकार का जन्म 17 जनवरी 1923 को राजस्थान के भरतपुर जिले के वैर नामक गाँव में हुआ।

आपका मूल नाम तिरुमल्लै नम्बाकम वीर राघवाचार्य था। “साहित्यिक जीवन में पर्दापण के पश्चात इन्होंने अपना नाम रांगेय राघव रखा, जिससे आज साहित्य प्रेमी परिचित हैं।”

एक बार भारत भूषण अग्रवाल ने इन्हें उनके विशाल दक्षिणात्य कवित्वहीन नाम का आतंक दिखाया, जिसकी वजह से उनकी कविता सादर लौटा दी जाती थी। तभी से डॉ. रांगेय राघव ने अपना साहित्यिक नाम रखा रांगेय राघव।”

डॉ. रांगेय राघव के वंशज तिरुपति (आन्ध्रप्रदेश) के निवासी थे। इनके पिताजी श्री टी. एन. रंगाचार्य वैर के जागीरदार थे। रांगेय राघव की शिक्षा-दीक्षा आगरा में सम्पन्न हुई। सन् 1944 में एम. ए. की परीक्षा पास करने के उपरान्त रांगेय जी ने मध्य युग के सन्धिकाल का मनन: गोरखनाथ विषय पर शोध कार्य प्रारम्भ किया और सन् 1948 में आगरा विश्वविद्यालय से पी. एच. डी. की उपाधि प्राप्त हुई। आगे चलकर 1963 में इस शोध प्रबन्ध का प्रकाशन गोरखनाथ और उनका युग विषय के रूप में हुआ जो इसी का सम्पादित रूप है।

“डॉ. रांगेय राघव का साहित्यिक जीवन संघर्षमय और चुनौतिपूर्ण रहा है। अपने किशोरावस्था में लेखन आरम्भ कर दिया था। कालान्तर में आर्थिक विषमता ने इन्हें इतना अधिक झकझोर दिया कि परमुखापेक्षी बनने के लिए विवश हो गए।”¹ साहित्यिक जीवन की यन्त्रणाएँ रहते हुए साहित्यिक क्षितिज पर जिस तीव्र गति से डॉ. रांगेय राघव छाये वह किसी भी सजनधर्मी के लिए एक चुनौती से कम नहीं है। ये उन लेखकों में से हैं जिनके साथ व्यक्ति और समाज के परस्पर संघर्ष की भावना छाया की भाँति साथ रही है। ये मानवीय मूल्यों के प्रतिनिधि रचनाकार थे। उनकी साहित्यिक मन्दाकिनी की प्रत्येक पंक्ति में मानवतावादी विचारधारा प्रस्फुटित हुई है। ये युग के साथ चलने वाले रचनाकार थे, लेकिन अफसोस की युग उनका साथ न दे सका और डॉ. रांगेय राघव 12 सितम्बर 1962 को दुनियाँ से चल बसे। लेकिन उनके कृतित्व की विपुल निधि आज भी आलोकित है जो प्रत्येक सृजनाधर्मी के लिए साहित्यिक क्षेत्र की ओर बढ़ने की प्रेरणा प्रदान करती है।

“कविता डॉ. रांगेय राघव की जीवन संगिनी थी। वे साहित्य की इस विधा को लेकर साहित्य के मैदान में उतरे थे। ‘मेधावी’ (महाकाव्य) ‘अजये खण्डहर’ (खण्ड काव्य) ‘पिघलते पत्थर’ (काव्य संग्रह) ‘राह के दीपक’ (काव्य संग्रह) ‘पाँचाली’ (खण्डकाव्य) ‘रूप छाया’ ‘श्यामलाल’, ‘काव्य-कलश’ ‘मृत्युंजय’ आदि रचनाएँ आपके कवित्व की पहचान बरकरार रखे हुए हैं। ‘पिघलते पत्थर’ मुक्तक रचना है जिसमें एक ओर साम्राज्यवाद, फासिज्म एवं पूँजीवाद के विरोधी विचार व्यक्त हुए हैं तो दूसरी ओर राष्ट्रीयता समाजवाद एवं मानवतावाद से सम्बन्धित भावनाये व्यजित हैं।”² इसी प्रकार इनकी अन्य काव्य कृतियों में भी वर्गचेतना और जनसंघर्ष, मध्यवर्ग के जीवन की विभिन्न समस्याओं का अंकन और शोषित वर्ग के जागरण का स्वर मुखरित हुआ है। डॉ. राघव एक प्रखर आलोचक भी थे। “सृजनात्मक साहित्य की तरह रांगेय राघव का आलोचनात्मक साहित्य भी परिमाण में अत्यन्त विशाल और बहुमुखी है।”³ आपकी आलोच्य कृतियों में ‘भारतीय पुनर्जागरण की भूमिका’, ‘भारतीय संत परम्परा और समाज’, ‘गोरखनाथ और उनका युग’, ‘काव्य यथार्थ और प्रगति’, ‘प्राचीन भारतीय परम्परा और इतिहास’, ‘प्रगतिशील साहित्य के मानदण्ड’ आदि प्रमुख हैं।

डॉ. रांगेय राघव के उपन्यासकार रूप की चर्चा पृथक् से की जायेगी किन्तु कहानीकार के रूप में इनका संक्षिप्त परिचय यहाँ देना सर्वथा उचित रहेगा। डॉ. रांगेय राघव ने कहानीकार के रूप में 100 से अधिक ही कहानियाँ लिखी हैं। वर्ग संघर्ष की भावना को कहानियों में विशेष रूप से उभारा गया है। सामाजिक व सांस्कृतिक परिवेश का सुन्दर संयोजन आपकी कहानी कला में देखने को मिलता है। कहानी के विषय में डॉ. रांगेय राघव की धारणा है कि ‘कहानी करुणा नहीं जगाती, जगाती है करुणा के माध्यम से विवेक।’ यह विभत्सता जो सुन्दरता के साथ चलती है, उसका उद्देश्य अन्त में जाकर पूरा हो जाता है। ‘इंसान पैदा हुआ’, ‘अंगारे न बुझे’, ‘देवदासी’, ‘पाँच गधे’, ‘एय्यास मुर्दे’, ‘समाज का वैभव’, ‘मेरी प्रिय कहानियाँ’, ‘तूफानों के बीच’, ‘समुद्र के फेन’, ‘एक छोड़ एक’ उनके प्रतिनिधि कहानी संग्रह हैं।

रांगेय राघव साम्यवादी विचारधारा के सशक्त रचनाकार हैं। चिन्तनशील प्रकृति के होने के कारण इन्होंने साम्यवादी सिद्धान्तों को ज्यों का त्यों स्वीकार करना उचित नहीं समझा। ‘इन्होंने अपने दृष्टिकोण से मार्क्सवाद के सिद्धान्तों की व्याख्या की और जो इनकी तर्क-कसौटी पर खरे उतरे, उन्हें स्वीकार कर लिया।’⁴ ये समाजवादी यथार्थवाद के समर्थक थे क्योंकि इनके मतानुसार यथार्थ जीवन का वह वास्तविक चित्रण है जो समाज का पूरा चित्र उतार देता है। ‘अपने समाजवादी दृष्टिकोण के कारण वे सामाजिक समस्याओं का निदान संघर्ष में ही सम्भव मानता हैं। उनकी यह चिन्तन प्रक्रिया एक लम्बी विकास प्रक्रिया है। वह एक ओर जहाँ समकालीन ग्रामीण यथार्थ को उसकी समग्रता में चित्रित करता है वहीं दूसरी ओर उसकी संवेदना का आकर्षण अतीतोन्मुखी सांस्कृतिक इतिहास भी है।’⁵ इनके मानवतावादी व्यक्तित्व पर गाँधीवाद का प्रभाव भी परिलक्षित होता है। इस सबके बावजूद हम डॉ. रांगेय राघव को किसी वाद विशेष

की बेड़ियों में नहीं जकड़ना चाहते क्योंकि इन्होंने अपने आपको वादों से दूर रखते हुए लिखा है “मैं किसी वाद में सीमित नहीं होना चाहता क्योंकि मैंने किसी की नकल नहीं की।”⁷ “सादा जीवन और विद्रोही व्यक्तित्व के धनी डॉ. रांगेय राघव को चित्रकला और संगीत से विशेष लगाव था। धर्म के मानवतावादी पक्ष से जितना इन्हें प्रेम था, ठीक विपरीत इसके बाह्याडम्बरों और साम्प्रदायिक रूप से घृणा थी। डॉ. राघव मानवता मात्र के प्रेमी थे। इन्हें इस दुनिया में मानवता से बड़ा कोई धर्म दिखाई नहीं देता था।”⁸

डॉ. रांगेय राघव का परिचय इन चन्द पंक्तियों में देने की कल्पना भी नहीं कर सकते किन्तु फिर भी ‘क्षितिज पर तीव्र गति से उदित होकर अपना अपूर्व आलोक बिखेरते हुए समय से पूर्व ही एक नक्षत्र का तिरोहित हो जाना’ ऐसा ही कुछ परिचय डॉ. रांगेय राघव का दिया जा सकता है।

रांगेय राघव उपन्यासकार के रूप में

डॉ. रांगेय राघव के साहित्यिक व्यक्तित्व का सबसे प्रभावशाली स्वरूप उपन्यासकार का ही रहा है। हिन्दी उपन्यास विधा के भी अपने विभिन्न क्षेत्र हैं और डॉ. राघव किसी भी क्षेत्र से अछूते नहीं रहे अपितु ये तो उपन्यास जगत में अन्य साहित्य साधकों से एक कदम आगे ही निकले क्योंकि हिन्दी साहित्य के उपन्यास क्षेत्र में जीवन चरित्रात्मक उपन्यास इनकी अपनी एक ऐतिहासिक देन है। किन्तु पहले उन उपन्यास क्षेत्रों को लेते हैं जहाँ अन्य उपन्यासकार रूपी किसानों ने लेखनी रूपी हल से उपन्यास कला रूपी खेती जोती है।

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है क्योंकि समाज से बाहर हम इसकी कल्पना भी नहीं कर सकते। जब साहित्यकार अपनी तुलिका से अपने साहित्य में समाज के सुख-दुःख विनाश और विकास, संघर्ष और प्रेम आदि कल्पना और यथार्थ की स्याही से चित्रित करता है तो वह चित्र सामाजिक साहित्य का बनता है, जिसमें हमें हमारे समाज की तस्वीर साफ दिखाई देती है। डॉ. रांगेय राघव ने सामाजिक उपन्यासों के क्षेत्र में उपन्यास सम्राट प्रेमचन्द की परम्परा को आगे बढ़ाया है। क्योंकि इन्होंने भी वर्ग चेतना से प्रभावित होकर सामाजिक वर्ग वैषम्यों से पीड़ित मानव के जीवन को अपने उपन्यासों की कथावस्तु बनाया है। “‘घरौंदे’ (1946) डॉ. राघव का प्रथम मौलिक तथा सामाजिक उपन्यास है। लेखक ने इसमें कॉलेज की बहुविध समस्याओं को उठाया है। छात्र-छात्राओं में पारस्परिक चलने वाले प्रेम, प्राध्यापक एवं छात्रों के बीच होने वाले घात-प्रतिघातों तथा कॉलेज की राजनीतिक गतिविधियों को लेकर लेखक ने तीखा व्यंग्य किया है।”⁹ इसके अतिरिक्त ‘दायरे’, ‘उबाल’ ‘आग की प्यास’ ‘बौने और घायल फूल’, ‘कल्पना’, ‘बंदूक और बीन’, ‘पतझर’, ‘राई और पर्वत’, ‘प्रोफेसर’, ‘छोटी सी बात’, ‘पराया’, ‘पापी’, ‘आखिरी आवाज’। ‘बोलते खण्डहर’ ‘अन्धेरे की भूख’ इनके प्रमुख सामाजिक उपन्यास हैं। “इनमें समाज के विभिन्न वर्गों की आन्तरिक स्थिति का उद्घाटन करते हुए शोषण, अत्याचार, रूढ़िवादिता, राजनीतिक पाखण्ड, छल-छद्म आदि का चित्रण नग्न रूप में किया गया है।”¹⁰

यद्यपि रांगेय राघव किसी वाद विशेष के गुलाम नहीं रहे तो भी उन्होंने प्रगतिशील विचारधारा को अपने जीवन का अभिन्न अंग बना लिया। अर्थात् यह कह सकते हैं कि प्रगतिवाद या साम्यवाद उन्हें अपना दास न बना सका परन्तु उन्होंने साम्यवाद को अपना दास बना लिया जो किसी न किसी रूप में डॉ. राघव के विचारों को संरक्षण प्रदान करता रहा। यही कारण है कि उनके हृदय में मानव मात्र के प्रति गहरी सहानुभूति है, एक लगाव है। एक ललक है ये जताने की कि आज समाज में हम जिसे पिछड़ा वर्ग कहते हैं, शोषित कहते हैं, वह पिछड़ा और शोषित क्यों हैं? क्या उसके पीछे समाज का हाथ है या फिर समाज का हाथ न होकर समाज के ही मुट्ठी भर लोग, जो अपने आपको सभ्य कहते हैं, तथा जिन्हें हम शोषक की उपाधि प्रदान करते हैं, वही इस शोषण के पीछे का संचालक हैं। इसी छोर पर आकर रांगेय राघव के हृदय में एक आक्रोश का ज्वालामुखी इस शोषक वर्ग के प्रति फूट पड़ता है और वे अपनी रचनाओं में समानता की आवाज उठाते हुए मानवीय मूल्यों के हामी के रूप में हमें खड़े पाते हैं और यही हमें उनका समाजवादी रूप दिखाई पड़ता है, जिसे हम प्रगतिशील, साम्यवादी या मार्क्सवादी की संज्ञा प्रदान करते हैं। इसी को आधार बनाकर उन्होंने समाजवादी उपन्यास भी रचे हैं जिनमें ‘विषादमठ’ ‘हुजूर’ तथा ‘सीधा सादा रास्ता’ प्रमुख हैं। “‘विषाद मठ’ को लेखक ने बंगाल के अकाल की नींव पर खड़ा किया है जिसमें त्रस्त मानवता का करुणामय चित्रण है जो मानव को उसकी करनी का ही भयंकर रूप दिखाता है क्योंकि ‘बंगाल का यह ऐतिहासिक अकाल इतना प्राकृतिक नहीं था, जितना विकृत मानवीय व्यवस्था का परिणाम। इस उपन्यास में भूख की दारुणता कई घटनाओं के माध्यम से उभर कर आती है, कहीं मुद्राओं के माध्यम से, कहीं स्थितियों और कहीं वृत्तियों के माध्यम से।”¹¹ इसी प्रकार अन्य कृतियों में भी कथाकार ने भारतीय समाज के विविध वर्गों में गहराती स्वार्थपरता, मिथ्या और बाह्याडम्बरों और मानवता के नैतिक, चारित्रिक पतन पर गहरी चोट की है। “डॉ. रांगेय राघव की औपन्यासिक यात्रा के दो छोर हैं – एक वर्तमान जीवन की व्याकुलता तथा छटपटाहट को लिए हुए अपने आक्रोश को अभिव्यक्त करना, वहीं दूसरी ओर मानसिक तृप्ति के लिए अतीत की ओर झाँकते हुए विगत सांस्कृतिक ऊचाइयों की ओर इंगित करना।”¹² इनके हृदय में भारतीय संस्कृति के प्रति गहरी आत्मीयता झलकती है। भारतीय संस्कृति की आधारभूत विशेषताओं की पावन धारा उनकी रचनाओं में अविरल रूप से प्रवाहित होती रहती है। इसलिए रांगेय राघव ने आंचलिक उपन्यास लिखकर संस्कृति के प्रचारक, प्रसारक और आंचलिक उपन्यासकारों की पहली पंक्ति में अपने आपको खड़ा कर लिया है। इस विधा का रचनाकार अपनी कृति में जहाँ अपने क्षेत्र विशेष या अंचल के द्वन्द्वों, संघर्षों, विषमताओं, विसंगतियों, लोक जीवन को दिखलाता है, उसके यथार्थ की कटुता और मैले पक्ष का उद्घाटन करता है, वहीं दूसरी ओर वह उस अंचल के मानवीय पक्षों का प्रतिपादन कर उसके सांस्कृतिक वैशिष्ट्य को भी चित्रित करता है। डॉ. राघव के आंचलिक उपन्यास इस कसौटी पर खरे उतरते हैं। ‘कब तक पुकारूँ’, ‘काका’ तथा ‘धरती मेरा घर’ इस क्षेत्र के उपन्यासों में अपनी अलग ही पहचान बनाये हुए हैं। भारतीय लोक जीवन में आज भी एक जाति या वर्ग दूसरी जाति और वर्ग पर अनेक प्रकार के शोषण करने को अपना जन्मसिद्ध अधिकार मानते हुए उन्हें उनके मानवीय अधिकारों से वंचित करता है। रांगेय राघव के हृदय में इस विषमता के प्रति एक गहरी टीस है, पीड़ा है और इसी कारण वे अपनी कृतियों में शोषित जनता को जागरूक बनाने की आवाज बुलंद करते रहे। “कब तक पुकारूँ” (1957) रांगेय राघव का प्रतिनिधि आंचलिक उपन्यास है। इसमें राजस्थान में रहने वाली नटों की एक कसरत उपजाति के जीवन का चित्रण है। लोग इन्हें जरायमपेशा कहते हैं और इनके जीवन को घोर अनैतिक समझते हैं लेकिन डॉ. रांगेय राघव की घोर संवेदनशील दृष्टि इनमें भी सुखराम जैसी गुदड़ी के लाल को ढूँढ़ निकालने में सफल हुई है। साथ ही इस उपन्यास में तत्कालीन परिस्थितियों में इस पिछड़ी समझी जाने वाली जाति कसरत के माध्यम से अब तक समाज में उन सभी निम्न समझी जाने वाली जातियों में समाज की अन्य जातियों के साथ समानता प्राप्त करने की उभरती नवचेतना का बड़ा ही यथार्थ और सजीव चित्रण हुआ है।¹³ इन उपन्यासों में शोषित वर्ग शोषण के खिलाफ खड़ा होता है जो भारतीय समाज के लिए शुभ संकेत प्रतीत होता है।

“रचनाकार रांगेय राघव की तरह ही पांडित रांगेय राघव भी मनुष्य और समाज को समझने के लिए मात्र वर्तमान को ही नहीं टटोलते, इतिहास की जड़ों की ओर भी जाते हैं।”¹⁴ “डॉ. रांगेय राघव उपन्यासों के माध्यम से ऐतिहासिक अध्ययन को ‘सामाजिक यथार्थ की अविच्छिन्न श्रृंखला को देखना’ मानते हैं

और उसके अध्ययन द्वारा अपनी 'संस्कृति की विरासत ग्रहण करना' स्वीकार किया है।¹⁵ रांगेय राघव इतिहास को आधार बनाकर वर्तमान समस्याओं का हल ढूँढने का सार्थक प्रयास करते हैं। उन्होंने अपने ऐतिहासिक उपन्यासों के माध्यम से 'इतिहास की वास्तविकता' और प्राचीन वर्ग संघर्ष के यथार्थ रूप का 'दिग्दर्शन' इस रूप में कराया है कि अतीत के सच्चे गौरव और आत्मबल से हमारा सीना तन सके और अतीत के झूठे मोह से हम मुक्ति पा सकें। "अति राष्ट्रीयतावाद और सनातनवाद" के अवांछनीय प्रभाव पर आघात किया जा सके। उन्होंने प्राचीन समाज के अन्तर्विरोधों को दिखाकर तत्कालीन समाज के प्रगतिशील तत्वों को प्रदर्शित करना ही अपने उपन्यासों का लक्ष्य बनाया है।¹⁶ 'मुर्दों का टीला', 'पक्षी और आकाश', 'अंधेरे के जुगनू', 'चीवर', 'महायात्रा: गाथा' आदि इनके प्रसिद्ध ऐतिहासिक उपन्यास हैं। " 'मुर्दों का टीला' ऐतिहासिक उपन्यासों की प्रतिनिधि रचना है। 'मुर्दों का टीला' की कथा प्रागैतिहासिक काल पर आधारित है। लेखक ने वातावरण सम्बन्धी प्राप्य सूत्रों के बल पर अत्यन्त समृद्ध तथा सुसभ्य नगर की कल्पना की है और अन्त में प्रकृति को उसके नाश का कारण ठहराया है।¹⁷ इसमें मानव जाति के सुदूर अतीत से ही समाज में विद्यमान वर्ग विभाजन, उत्पीड़न और उसके विरुद्ध संघर्ष का ऐतिहासिक संगति में प्रस्तुतीकरण मिलता है। " 'सिन्धु घाटी की सभ्यता' के नाम से प्रख्यात सभ्यता ही इस कथा की पृष्ठभूमि है, यो इस कथा को मोहन जोदड़ों का केवल नाम ही मिला है।¹⁸ इस प्रकार "रांगेय राघव ने ऐतिहासिक उपन्यासों की रचना भारतवर्ष के प्रागैतिहासिक की सभ्यता एवं संस्कृति को स्पष्ट करते हुए भौतिक विकासवाद के सिद्धान्तों का दिग्दर्शन करने के लिए की है।"¹⁹

निष्कर्ष

रांगेय राघव ने हिन्दी उपन्यास के क्षेत्र में एक नया आविष्कार किया है। जिसे हिन्दी साहित्य में 'जीवन चरितात्मक उपन्यास', औपन्यासिक जीवनियाँ या जीवनी परक उपन्यास के नाम से जाना गया है। इन उपन्यासों में लेखक का उद्देश्य उन युग निर्माताओं का जीवन चरित्रांकन रहा है जो अपने युग विशेष में मानव मात्र के हितार्थ अपने आपको समर्पित कर गये। चाहे उनका क्षेत्र धर्म का रहा हो या साहित्य का समाज सुधार की भावना उन सबमें प्रबल रही है। इन उपन्यासों में रांगेय राघव ने मानव जाति के उत्थान में उन युग निर्माताओं के योगदान का सफल आकलन किया। इनमें तत्कालीन परिस्थितियों का चित्रण होते हुए भी उद्घाटन किसी व्यक्ति विशेष का ही हुआ है। रांगेय राघव की हिन्दी उपन्यास साहित्य को ये एक अनूठी और ऐतिहासिक देन है। आपके जीवन चरितात्मक उपन्यासों के नाम हैं- 'देवकी का बेटा', 'यशोधरा जीत गई', 'राह न रुकी', 'धुनों का धुआँ', 'मेरी भव बाधा हरो', 'जब आवेगी काल घटा', 'लोई का ताना', 'रत्ना की बात', 'लखिमा की आँखें', 'आँधी की नाँव' तथा 'भारती का सुपत'। इन उपन्यासों में क्रमशः भगवान श्रीकृष्ण, भगवान बुद्ध, वसुमती, गुरु गोरखनाथ, बिहारी, चर्पटनाथ, कबीरदास, गोस्वामी तुलसीदास, विद्यापति, महाराणा प्रताप और भारतेंदु हरिश्चन्द्र के समाज सुधारक दृष्टिकोण का मूल्यांकन किया गया है। जीवन चरितात्मक उपन्यास लघु शोध प्रबन्ध का विषय होने के कारण विस्तृत चर्चा अगले अध्यायों में की जायेगी। डॉ. रांगेय राघव के व्यक्तित्व और कृतित्व ने अपने साहित्यिक क्षेत्र को अत्यन्त व्यापक बना लिया है। लगभग प्रत्येक विधा में इनकी लेखनी ने अद्भुत कमाल दिखाया है। डॉ. राघव के साहित्य में समाज के नवनिर्माण की भावना, मानवता का स्वर और रूढ़ियों के प्रति क्रांति का स्वर सन्निहित है। वे पूर्व प्रचलित अंध-विश्वासों की दीवार को तोड़कर शोषण के पहाड़ को फोड़कर मानवीय मूल्यों पर आधारित एक नये समाज के निर्माण की उम्मीद में आजीवन संघर्षरत रहे। डॉ. रांगेय राघव की यही भावना उनके साहित्य के पन्ने पलटते ही छलक पड़ती है।

संदर्भ ग्रंथ सूची:-

1. डॉ. रांगेय राघव और उनके उपन्यास: डॉ. लालसाहब सिंह, पृ. 5, अनुपमा प्रकाशन, बम्बई
2. डॉ. रांगेय राघव और उनके उपन्यास: डॉ. लाल साहब सिंह पृ.19, अनुपमा प्रकाशन, बम्बई।
3. हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास: डॉ. गणपति चन्द्र गुप्त (द्वितीय खण्ड) पृ. 137 लोक भारती, इलाहाबाद
4. रांगेय राघव ग्रन्थावली: सम्पादक डॉ. सुलोचना रांगेय राघव (भाग 10) प्रकाशन, अलीक प्रकाशक, राजस्थान, अलवर
5. डॉ. रांगेय राघव और उनके उपन्यास: डॉ. लाल साहब सिंह, पृ. 23, अनुपमा प्रकाशन, बम्बई, 1973
6. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास में ग्रामीण यथार्थ और समाजवादी चेतना: सुरेन्द्र प्रताप यादव, पृ. 148, भावना प्रकाशन, दिल्ली, 1992
7. साहित्य सन्देश: आधुनिक उपन्यास अंक, जुलाई अगस्त 1956, पृ. 87, साहित्य भवन, आगरा
8. हिन्दी उपन्यास के सौ वर्ष: डॉ. रामदरश मिश्र (सं.), पृ. 276, गिरनार प्रकाशन महसना 1960
9. डॉ. रांगेय राघव और उनके उपन्यास: डॉ. लाल साहब सिंह, पृ. 39 अनुपमा प्रकाशन, बम्बई, 1973
10. हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास: डॉ. गणपति चन्द्र गुप्त, द्वितीय खण्ड, पृ. 442, लोक भारती प्रकाशन इलाहाबाद 1965 ई.
11. हिन्दी उपन्यास में प्रतीकात्मक शिल्प: डॉ. सुनीला शर्मा, पृ. 163, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली 1986
12. हिन्दी उपन्यास के सौ वर्ष: डॉ. रामदरश मिश्र (सं.), पृ. 278 गिरनार प्रकाशन महसना 1960
13. आधुनिक हिन्दी साहित्य (1947-1962): डॉ. राम गोपाल सिंह चौहान, पृ. 219, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा 1965
14. रांगेय राघव ग्रन्थावली: डॉ. सुलोचना रांगेय राघव (सं.) भाग 10, प्रस्तावना, राजपाल एण्ड सन्स दिल्ली 1980
15. अंधेरे के जुगनू: डॉ. रांगेय राघव, भूमिका, पृ. 3, प्रकाशन वर्ष 1953, दिल्ली
16. आधुनिक हिन्दी साहित्य (1947-1962): डॉ. राम गोपाल सिंह चौहान, पृ. 257, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा 1965
17. हिन्दी उपन्यास की प्रवृत्तियाँ: डॉ. शशि भूषण सिंहल, पृ. 368 विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा 2010
18. हिन्दी उपन्यास में प्रतीकात्मक शिल्प: डॉ. सुशीला शर्मा, पृ. 187, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली 1986
19. हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास: डॉ. गणपति चन्द्र गुप्त (द्वितीय खण्ड) पृ. 434, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद 1965

प्रवासी भारतीय क्रांतिकारी आंदोलन में भीकाजी कामा का प्रभाव

बिजेन्द्र कुमार श्रीवास्तव

शोधार्थी, इतिहास विभाग, राजा हरपाल सिंह महाविद्यालय, सिंगरामऊ, जौनपुर, वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर, उ०प्र०

सारांश

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का इतिहास बहुआयामी है, जिसमें विभिन्न वर्गों, क्षेत्रों और व्यक्तियों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। इस प्रक्रिया में भीकाजी कामा ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। वह अपने देश में अंग्रेजी सरकार के द्वारा किये जा रहे अत्याचार, शोषण से दुःखी थी। अगस्त 1907 में जर्मनी के स्टुटगार्ट में झण्डा फहराकर और दमदार भाषणों के द्वारा साम्राज्यवादी लालच को संसार के सामने बेपर्दा कर दिया। विदेशी यात्रा के दौरान भारत की आर्थिक लूट को अंतर्राष्ट्रीय मंच पर रखने हेतु वह अक्टूबर 1907 में अमेरिका गई। वह चाहती थी कि भारत भी रूसी क्रांति से प्रेरणा लेकर आगे बढ़े। इस कार्य हेतु भीकाजी कामा ने बम की संस्कृति को अपनाया। कामा के आयरिश नेताओं से सम्पर्क क्रांतिकारी साथियों को बचाने की कोशिशों, भारत में गुपचुप साधनों से हथियार भेजने स्वतंत्रता आंदोलन में किए गए कार्यों को अभी प्रकाश में लाने की जरूरत है।

प्रमुख शब्द: क्रांति की माँ, वंदेमातरम्, अन्तर्राष्ट्रीय, क्रांतिकारी, नारी शक्ति और समानता, साम्राज्यवाद, समाचार पत्र।

प्रस्तावना

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का इतिहास बहुआयामी है, जिसमें विभिन्न वर्गों, क्षेत्रों और व्यक्तियों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। आमतौर पर इस संघर्ष को भारत के भीतर होने वाली गतिविधियों तक सीमित समझा जाता है, किन्तु वास्तविकता यह कि विदेशों में बसे भारतीयों ने भी इस आंदोलन को दिशा और गति प्रदान की। प्रवासी भारतीय क्रांतिकारी आंदोलन ने ब्रिटिश साम्राज्यवाद के खिलाफ अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर जनमत तैयार किया। इस प्रक्रिया में भीकाजी कामा ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उन्होंने अंतर्राष्ट्रीय मंचों पर भारत की स्वतंत्रता का प्रश्न उठाया, राष्ट्रवादी विचारधारा का प्रचार किया और प्रवासी भारतीयों के बीच राजनीतिक चेतना विकसित की।

1. अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर स्वतंत्रता का प्रतीक स्थापित करना

भीकाजी अपने देश में अंग्रेजी सरकार के द्वारा किये जा रहे अत्याचार, शोषण से दुःखी थी। वह स्वतंत्रता हेतु कुछ करना चाहती थी। उनके जीवन में वह क्षण आया, जब अगस्त 1907 के दिन जर्मनी के स्टुटगार्ट नगर में अन्तर्राष्ट्रीय समाजवादी सम्मेलन का आयोजन हुआ। उस सम्मेलन में झण्डा फहराते हुए उन्होंने कहा “प्रख्यात दुनिया भर के स्वतंत्रता प्रेमियों से अपील करती हूँ कि वे विश्व की 1/5 प्रतिशत आबादी को आजाद कराने में सहयोग दे।” अपने भाषणों के द्वारा साम्राज्यवादी लालच को संसार के सामने इस तरह बेपर्दा कर दिया। भारत की आजादी की आकांक्षा को पहली बार वैश्विक मंच पर प्रस्तुत करके स्वतंत्रता आंदोलन में नया आत्म विश्वास दिया।

भीकाजी की सबसे प्रसिद्ध मित्र जो सर्वत्र प्रसिद्ध है वह है हाथ में तिरंगा थामे खड़ी दिखाई देना। कामा के द्वारा विदेश में झण्डा फहराना औपनिवेशिक साम्राज्य के गाल पर एक तमाचा था। सरोजिनी नायडू ने 1912 में आयोजित मुस्लिम लीग के ऐतिहासिक अधिवेशन को संबोधित किया। 1917 में एनी बेसेंट भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की पहली महिला अध्यक्ष बनी। 1925 में सरोजिनी नायडू कांग्रेस की अध्यक्ष बनी। इन दो महिलाओं को यह गौरव भारत में मिला परन्तु भीकाजी इनके पहले ही वह भी एक विदेश में क्रांति की माँ की उपलब्धि हासिल कर महिलाओं के लिए प्रेरणा स्रोत बनी।

विदेशी मंच पर पूर्ण स्वतंत्रता का नारा उठाने वाली वह पहली महिला थी। स्वतंत्र भारत के प्रतीक ध्वज के महत्व को समझने वाली और भारतीय तिरंगा फहराने वाली भी वे पहली महिला थी।²

वह अपने समय से काफी आगे थी। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर उनके द्वारा फहराये गये झण्डे, प्रतीकों व नारों का प्रभाव कालान्तर में 22 साल बाद दिसम्बर 1929 को कांग्रेस के लाहौर अधिवेशन में पड़ा जहाँ पूर्ण स्वतंत्रता की बात स्पष्ट रूप से की गई और तिरंगे झण्डे को फहराया गया।

2. अन्तर्राष्ट्रीय जनमत को भारत के पक्ष में करना

विदेशी यात्रा के दौरान भारत की आर्थिक लूट को अन्तर्राष्ट्रीय मंच पर रखने हेतु वह अक्टूबर 1907 में अमेरिका गई। वह जानती थी कि अमेरिका ने अपनी स्वाधीनता के लिए संघर्ष किया है और वह स्वाभाविक रूप से स्वाधीनता संघर्ष करने वालों के प्रति सहानुभूति रखेगा।³ कामा अमेरिकन वासियों की प्रशंसा करते हुए भारत के मदद के लिए विनती करते हुए कहती हैं हम शांति से रहने वाले लोग हैं। खून-खराबा हमें पसंद नहीं, पर इतनी तो उम्मीद रखते

हैं कि हमारे देशवासियों को उनके अधिकारों की शिक्षा दी जाय, ताकि वे इस अत्याचारी शासन की जड़ को उखाड़ फेंके। एक छोटी सी अवधि के भीतर ही श्रीमती भीकाजी कामा यूरोप और अमेरिका में लोकप्रिय हो गई। उनकी इस अमेरिका यात्रा का सकारात्मक प्रभाव पड़ा। भारतीय क्रांतिकारियों व अमेरिकावासियों के बीच मधुर सम्बन्धों की स्थापना हुई। हरदयाल ने अमेरिका में 'गदर पार्टी' की स्थापना की और भीकाजी के साथ अपने घनिष्ठ सम्बन्ध बनाए रखा जिसकी सहायता से उन्होंने क्रांतिकारी गतिविधियों के रंगमंच का विस्तार तुर्की, फारस, मिस्त्र और अफगानिस्तान तक किया ताकि मुसलमानों को एकजुट किया जा सके। यही पर उनकी भेंट बरकतउल्ला फेलप्स से हुई। उनके नेतृत्व में कई भारी कार्यक्रमों की रूपरेखा बनाई गई। इनके यात्रा के बाद गदर पार्टी के सरदार सोहन सिंह भाकना, लाला हरदयाल, डॉ० पाण्डुरंग खानखोजे विष्णु गणेशपिंगले, करतार सिंह सराभा जैसे सदस्य भारतीय राष्ट्रवाद की चिंगारी को तेज करने हेतु अमेरिका से मदद लेते रहे। लाला लाजपत राय भी कुछ वर्ष तक अमेरिका में रहकर कार्य किया था। कामा के अमेरिका जाने का एकमात्र उद्देश्य यही था कि वे भारतीय आंदोलन के प्रति अमेरिकी अधिकारियों के रवैये का अनुमान लगा सके और वे अपने इस उद्देश्य में सफल रही।

जब भारत के लोग सवैधानिक तरीकों से बंगाल के विभाजन को रद्द करने में विफल रहे, तो कुछ लोग रूसी तरीकों को अपनाने की आवश्यकता महसूस की।⁴ इनमें मैडम कामा प्रमुख थी, वह रूस में हुई क्रांति उसके दूरगामी प्रभाव आदि के बारे में अच्छी तरह जानती थी। वह रूसी लेखक 'मैक्सिम गोर्की' से पत्र व्यवहार किया करती थी। मैडम कामा मार्क्सवाद से प्रभावित होने वाली पहली महिला थी।⁵ वह चाहती थी कि भारत भी रूसी क्रांति से प्रेरणा लेकर आगे बढ़े। इस कार्य हेतु भीकाजी कामा ने बम की संस्कृति को अपनाया। जिसके उपरान्त गुप्त गतिविधियों की भरमार हो गई जिसे उन्होंने पूरी मदद और समर्थन दिया। इनमें हेमचन्द्रदास ने मुख्य भूमिका निभाई। पेरिस में एक रूसी अराजकतावादी ने युवा भारतीय क्रांतिकारियों को विस्फोटकों के उपयोग में प्रशिक्षित किया। प्रशिक्षित क्रांतिकारी चोरी छिपे हथियारों आदि सामग्री को भारत भेजते थे जिससे भारत में क्रांतिकारी गतिविधियों को अंजाम दिया जा सके।

3. क्रांतिकारी तंत्र का निर्माण

पराधीन भारत की स्वाधीन होने की इच्छा लिए विदेशों में विभिन्न क्रांतिकारियों के संगठनों के साथ उन्होंने सम्पर्क स्थापित की। आयरलैंड, रूस, मिश्र, जर्मनी जैसे देशों के साथ उनका निरंतर सम्पर्क रहा। भीकाजी 1905 में श्याम जी कृष्ण वर्मा द्वारा स्थापित इंडियन होमरूल सोसायटी के साथ घनिष्ठ रूप से जुड़ी थी।⁶

अमेरिका में रहते हुए उन्होंने आयरिश राष्ट्रवादियों से सम्पर्क स्थापित की जो पहले से वहां ब्रिटिश विरोधी प्रचार कर रहे थे। ब्रिटिश खुफिया स्रोतों के अनुसार न्यूयार्क में हमेशा असंतुष्ट आयरिश मौजूद थे जो ब्रिटिश को शर्मिदा करने वाला कोई भी आंदोलन शुरू करने के लिए हमेशा तैयार रहते थे और भारतीयों के ब्रिटिश विरोधी विचारों का खुले हाथों से स्वागत करते थे।⁷ स्वाभाविक था इसका लाभ उनको भी मिलता। लंदन में इंडिया होमरूल सोसायटी की स्थापना में आयरिश लोगों ने भीकाजी व श्याम जी कृष्ण वर्मा की अपनी तरफ से खूब मदद की। क्लान ना गेल जैसे आयरिश संगठनों ने यह सलाह दी कि पश्चिमी तरीके से भारतीय युवाओं को प्रशिक्षित किया जाय, ब्रिटिश शासन और निर्मित हथियारों का बहिष्कार जैसे कार्यक्रम किये जाय। ये सभी गतिविधियाँ उनके द्वारा सम्पन्न की गई। जिसके प्रभाव स्वरूप भारत के उग्रवाद और आतंकवादी घटना में बढ़ोत्तरी हुई। उनके द्वारा जार्ज आयरिश संगठनों से जुड़ने का प्रभाव यह हुआ कि उन्होंने समाचार पत्रों में भारतीयों के लिए सहानुभूति पैदा की। वह अत्याचारी, शोषणकारी विदेशी सत्ता को उखाड़ फेंकने के अपने प्रयासों में जुटी रहीं। इटली के गुप्त क्रांतिकारी संगठन कार्बोनरी की तरह भारत में ढाका में 1905 में अनुशीलन समिति का गठन किया गया। इस समिति के गठन के पीछे भीकाजी का ही प्रोत्साहन था। समिति का उद्देश्य विदेशी सामानों का बहिष्कार करना, युवाओं को (लाठी, छुरे, तलवार और हत्या के लिए हथियारों के प्रयोग में प्रशिक्षित करना व विभाजन के विरोध में प्रदर्शन करना था।) बंगाल के प्रशासन को पगु बनाने के लिए उपयुक्त कदम उठाना ताकि ब्रिटिश सरकार को स्वराज प्रदान करने के लिए मजबूर किया जा सके।

देश के लिए भीकाजी कामा के महानतम कार्यों में पेरिस में राष्ट्रीय निधि योजना का प्रारम्भ भी था जिसका लक्ष्य भारत के बाहर क्रांतिकारी आन्दोलन और सावरकर के मामले के लिए आर्थिक सहायता देना था। उन्होंने 5000 फ्रेंच फ्रैंक का योगदान देते हुए कोषाध्यक्ष बनीं। उनके देख-रेख में निधि का कड़ाई से पालन किया जाता था।

भीकाजी कामा और उनके साथियों ने उपयोगी अंतर्राष्ट्रीय सम्पर्क बनाए रखा। आयरिश, मिस्त्रवासियों, तुर्क और रूसियों का समर्थन क्रांतिकारी आंदोलन के प्रसार के लिए काम आया जब भारत में क्रांतिकारी गतिविधियों का दमन हुआ तब लंदन, पेरिस, न्यूयार्क, बर्लिन, स्विट्जरलैण्ड आदि देश उनकी गतिविधियों का केन्द्र बना गया।

वह प्रारम्भिक भारतीय क्रांतिकारियों में से एक थी जिन्होंने भारत की मुक्ति के लिए यूरोपीय महाद्वीप में काम किया। उन्होंने घर पर क्रांतिकारियों के साथ नियमित सम्पर्क बनाए रखा। उन्होंने इंग्लैण्ड, फ्रांस, अमेरिका, जर्मनी व अन्य देशों के साम्राज्यवादी विरोधी संगठनों में क्रांतिकारियों के साथ संबंध स्थापित किया। उन्होंने फ्रांस में रहकर भारत के क्रांतिकारियों के पास हथियार भेजे। हथियार खिलौने की पेटियों में छिपाकर भेजे जाते थे।⁸

भीकाजी ने क्रांतिकारी गतिविधियों को अंजाम देने हेतु इंडिया हाउस से सम्पर्क स्थापित की वहां एस०आर० राणा, हरदयाल जी, श्यामजी कृष्ण वर्मा, सेनापति बापट, वीरेन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय, परमानंद व एम०पी०टी० आचार्य, वी०डी० सावरकर जैसे देशभक्तों के साथ आंदोलन को आगे बढ़ाने की योजनाएं तैयार करती। उन्होंने हिंसा का सहारा लेने की आवश्यकता को अपरिहार्य मानते हुए कई युवा क्रांतिकारियों के हथियारों के उपयोग और बमों के निर्माण में वास्तविक प्रशिक्षण का आयोजन किया। जिसके परिणामस्वरूप भारत में नासिक षडयंत्र केस जैसे कई उग्र घटनाएं आए दिन अंग्रेजों के लिए सिर दर्द साबित हुए।

4. लेखन शक्ति के माध्यम से ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरुद्ध प्रचार

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में उन्होंने पुस्तिकाएं, लेख और भाषणों के माध्यम से ब्रिटिश शासन के अत्याचारी और भारत की दुर्दशा के बारे में बताकर वैश्विक जनमत को जाग्रत किया। 1907 में लाला लाजपत राय के भारत निर्वासन का श्यामजी कृष्ण वर्मा ने अपने पत्र 'इण्डियन सोशियोलॉजिस्ट' में विरोध किया

था। भीकाजी कामा ने भी अपना एक पत्र युवाओं के लिए प्रकाशित किया कि वे लाला लाजपत राय की तरह वीरों की वाणी बोलना सीखें।⁹ कामा उग्रवादी विचारों की अभिव्यक्ति को एक अखबार के पताका तले संगठित करने की जरूरत को महसूस करते हुए हरदयाल के साथ 1909 में वंदेमातरम पत्रिका निकाली। इसी पत्रिका के माध्यम से मैडम कामा ने अंग्रेजों से भारत छोड़ने की मांग की।¹⁰ उन्होंने कलम की शक्ति को पहचाना था और समझ चुकी थी कि आम जन तक इसका असर कैसे होता है? यह लगातार विभिन्न समाचार पत्रों के माध्यम से भारत के आजादी हेतु संघर्ष किया।

उनके लेख भारत में युवाओं को प्रेरित कर रहे थे और वे विभिन्न क्रांतिकारी दलों में शामिल होकर हिंसा के द्वारा ब्रिटिश हुकमरानों के नाम में दम कर रहे थे अतः इस पर लगाम लगाने के लिए अंग्रेजों ने उनके डाक पर भी सेंसर लगा दिया यहां तक कि समुद्री बंदरगाहों पर पूरी तरह जांच की जाती थी। फिर भी ऐसी रणनीति उन्हें डिगा नहीं सकी, उनकी पर्चीयाँ और पार्सल (बंडल) पांडिचेरी के रास्ते भारत पहुँचाती रही और राष्ट्रवाद के चिंगारी को हवा देती रही। वह एक उत्साही महिला थी। उन्होंने अपनी पत्रिकाओं में तत्कालीन ज्वलंत मुद्दों को स्थान दिया। उदाहरण के लिए '1911 में भारत की शाही यात्रा', 'लार्ड किचनर की मिस्त्र यात्रा' और 'लार्ड हार्डिंग का दिल्ली में आगमन' ऐसे मुद्दे थे जिन्हें पत्रिका में स्थान देकर भारतीय जनमत को अंग्रेजों के विरुद्ध वैचारिक रूप से सबल बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। भारत में जगह-जगह गुप्त क्रांतिकारी संगठन बनने, हिंसात्मक कार्यवाही होने में उनकी लेखन शक्ति का भी प्रभाव था, अतः ब्रिटिश सरकार उनकी लाखों की सम्पत्तियों को जब्त कर उन पर अंकुश लगाने की कोशिश की मगर समाचार पत्र में आने वाले विचारों के चक्रवात को भला कब तक रोका जा सकता था!

नारी शक्ति और समानता पर जोर

भीकाजी भारत को अंग्रेजी दासता से मुक्ति दिलाने के साथ-साथ महिला सशक्तिकरण हेतु सदैव प्रयासरत रहती थी। 1906 में उन्होंने महिलाओं के लिए अन्तर्राष्ट्रीय परिषद की एक बैठक में भाग लिया और भारत के लिए न्याय की अपील की। वह चाहती थी कि प्रत्येक देश की महिलाएं जागृत होकर अपने-अपने देश के लिए कार्य करें। मिस्त्र की राष्ट्रीय सभा में महिलाओं के अनुपस्थिति पर उन्होंने प्रश्न उपस्थिति किया था।¹¹ पुनः भाषण में महिलाओं को उत्साहित बोली “वह कोमल हाथ जो पालना झुलाता है, वही व्यक्ति के चरित्र का निर्माण करता है। भीकाजी के विचारों, कार्यक्रमों, ओजस्वी भाषणों नीतियों से प्रभावित होकर देश के लिए कुछ कर गुजरने की इच्छा रखने वाली अन्य महिलाओं में मिस पेरिस एंडी० नौरोजी, मिस गोशी एंडी० नौरोजी और मिस नीगेज एंडी० नौरोजी थे जो आतंकवादी गतिविधियों हेतु योजनाएं बनाती थी।

निष्कर्ष

इस प्रकार क्रांति की माँ भीकाजी कामा का स्वतंत्रता आंदोलन पर प्रभाव सर्वव्यापी था। उन्होंने लगभग 34 वर्ष विदेश में रहकर भारत की आजादी के संघर्ष को विश्व रंगमंच पर ले जाने, क्रांतिकारियों को एक जुट करने और राष्ट्रवादी विचारधारा को फैलाने में प्रभावशाली भूमिका निभाई। उनका संघर्ष, निर्वासन, बीमारी और उपेक्षा से भरा रहा, किन्तु उन्होंने कभी अपने उद्देश्य से समझौता नहीं किया। उन्होंने महिला को केवल सहायक भूमिका में नहीं, बल्कि क्रांति की अग्रदूत के रूप में प्रस्तुत किया भीकाजी कामा ने स्वतंत्रता के लिए कष्ट सहन करते हुए जो प्रयास की उनका मूल्य किसी जेल की सलाखों से कम नहीं आंका जा सकता, उनकी देश भक्ति प्रेम एवं आदर्श ने स्वतंत्रता के इतिहास में उन्हें अमर बना दिया है।

स्त्रीवादी और वैकल्पिक इतिहास लेखन ने भीकाजी के योगदान को रेखांकित करने का प्रयास किया है। फिर भी अभी तक वह मुख्यधारा के इतिहास लेखन में उपेक्षित ही रही है। कामा के आयरिश नेताओं से सम्पर्क, प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान सक्रिय गतिविधियों, क्रांतिकारी साथियों को बचाने की कोशिश, भारत में गुपचुप साधनों से हथियार भेजने उनके द्वारा स्वतंत्रता आंदोलन में किए गए कार्यों को अभी प्रकाश में लाने की आवश्यकता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. यामिनी रचना भोला (2013) : प्रथम संस्करण मैडम भीकाजी कामा प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ० 37-38
2. सेठना, खुशींद अली, (2013) : मैडम भीकाजी रूस्तम कामा, प्रकाशन विभाग सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, पृ० 149
3. Report the proceeding of twenty second Indian national conference, Calcutta, 1906, P. 7
4. गुप्त विश्व प्रकाश और मोहनी गुप्त (2022) : स्वतंत्रता संग्राम और महिलाएं कामा नमन प्रकाशन नई दिल्ली पृ० 233
5. Chowdhary Balo Roy, Madame Cama A short life sketh New Delhi people's publishing House, 1977, P. 5
6. Ker Janes Canpbellm Political trouble in India 1907-1917 Calcutta super, intendend Government printing press, 1917, PP. 220-224
7. जैन मीरा, (2011): भारत की वीरांगनाएं, विद्या विहार, नई दिल्ली, पृ० 48
8. सेठना खुशींद अली, अनुवादक (नरेन्द्र सिन्हा) मैडम भीखईजी रूस्तम कामा, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली कामा 1992 पृ० 51
9. भोला रचना यामिनी, (2013) : मैडम भीकाजी कामा, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ० 71
10. फिल्म - स्वातंत्र्य वीर सावरकर (2024) : निर्देशक-रणदीप हुड्डा

ब्रिटिश शासन के अधीन कृषि का व्यावसायीकरण तथा स्वतंत्र भारत में भारतीय कृषक समाज एवं उसकी आर्थिक विरासत पर इसका प्रभाव: एक ऐतिहासिक-विश्लेषणात्मक अध्ययन

Commercialization of Agriculture under British Rule and Its Impact on Indian Peasantry and the Economic Legacy in Independent India

अनुपमा सिंह

(शोधार्थी) इतिहास विभाग, राजा हरपाल सिंह पीजी कॉलेज, सिंगरामऊ, जौनपुर, वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय (उ. प्र.)

सारांश

भारत का सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक विकास सदियों तक कृषि-केंद्रित रहा है। कृषि केवल उत्पादन का माध्यम ही नहीं थी बल्कि ग्रामीण सामाजिक संबंधों, सामुदायिक संरचनाओं, स्थानीय विनिमय व्यवस्था, पारिवारिक श्रम-विभाजन तथा राजनीतिक स्थिरता की आधारशिला भी थी। औपनिवेशिक शासन से पूर्व भारतीय कृषि का स्वरूप मुख्यतः जीवन-निर्वाह परक (Subsistence-oriented), स्थानीय जलवायु पर आधारित तथा समुदाय-नियंत्रित था। किंतु अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में ईस्ट इंडिया कम्पनी के राजनीतिक प्रभुत्व और उन्नीसवीं शताब्दी में ब्रिटिश औद्योगिक पूँजीवाद के विस्तार से भारतीय कृषि की संरचना में अभूतपूर्व बदलाव आया।

ब्रिटिश शासन ने भारतीय कृषि को स्थानीय उपभोग और खाद्य-सुरक्षा की प्रणाली से भिन्न निर्यातोन्मुख, राजस्व-आधारित तथा बाजार-निर्भर उत्पादन प्रणाली में परिवर्तित किया। ऐतिहासिक तौर पर इस प्रक्रिया को कृषि का व्यावसायीकरण के रूप में देखा जाता है। ब्रिटिश काल में कपास, नील, जूट, चाय, कॉफी, अफीम और गन्ने जैसी नकदी फसलों का विस्तार कृषि उत्पादन की मात्रा एवं पद्धति में परिवर्तन मात्र नहीं था बल्कि इसने भूमि संबंधों, ग्रामीण वित्त, श्रम संगठन, खाद्य उपलब्धता, सामाजिक वर्ग-संबंधों और क्षेत्रीय विकास की दिशा को भी पुनर्परिभाषित किया।

यह शोध-पत्र ब्रिटिश शासन के दौरान कृषि-व्यावसायीकरण के ऐतिहासिक संदर्भ, उसके आर्थिक और सामाजिक प्रभावों, भारतीय किसानों की प्रतिक्रियाओं एवं स्वतंत्र भारत की आर्थिक नीतियों पर उसकी दीर्घकालिक विरासत का आलोचनात्मक मूल्यांकन प्रस्तुत करता है।

प्रमुख शब्द: कृषि का व्यावसायीकरण, औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था, भारतीय किसान, ग्रामीण समाज, नकदी फसलें, भूमि-संबंध, आर्थिक इतिहास।

भूमिका

भारत को प्राचीन काल से ही कृषि-प्रधान अर्थव्यवस्था के रूप में जाना जाता रहा है। वैदिक काल से लेकर मध्यकाल तक कृषि भारतीय समाज की आर्थिक रीढ़ रही। गाँव केवल आवासीय इकाइयाँ नहीं थे बल्कि उत्पादन, विनिमय, सामाजिक न्याय और संसाधन प्रबंधन की स्वायत्त इकाइयाँ थे। किसान स्थानीय जलवायु, मिट्टी, मानसून और सामुदायिक आवश्यकताओं के अनुरूप धान, गेहूँ, ज्वार, बाजरा, दालें और तिलहन जैसी फसलें उगाते थे।

इरफान हबीब के अनुसार, पूर्व-औपनिवेशिक भारत में कृषि 'कृषि समुदाय प्रणाली (Agrarian Community System)' पर आधारित थी, जहाँ उत्पादन का उद्देश्य स्थानीय आवश्यकताओं की पूर्ति और ग्रामीण स्थिरता था।¹

1765 में बंगाल की दीवानी प्राप्त करने के बाद ईस्ट इंडिया कम्पनी ने कृषि को राजनीतिक नियंत्रण और आर्थिक संसाधन-संग्रह के साधन के रूप में देखना प्रारंभ किया। इसी समय औद्योगिक क्रांति ने ब्रिटेन की औद्योगिक संरचना को बदल दिया जिसके चलते उसे निरंतर कच्चे माल तथा नए बाजारों की आवश्यकता हुई। भारत इस औद्योगिक आवश्यकता की पूर्ति का प्रमुख स्रोत बना।

कृषि के व्यावसायीकरण से किसानों द्वारा उत्पादित फसलें और अन्य कृषि उत्पाद उनके स्वयं के उपभोग के लिए नहीं बल्कि बाजार में बिक्री के उद्देश्य से उत्पादित किए जाने लगे। बिपन चंद्र लिखते हैं कि ब्रिटिश शासन ने भारतीय कृषि को 'स्थानीय निर्वाह अर्थव्यवस्था (Local Subsistence Economy)' से शाही बाजार अर्थव्यवस्था (Imperial Market Economy)' में परिवर्तित कर दिया।²

आर. सी. दत्त कहते हैं कृषक को भूमि-कर निर्धारण की प्रक्रिया में कोई अधिकार या मत नहीं था। कर निर्धारित करते समय उससे कोई परामर्श नहीं लिया जाता था। माँग तय हो जाने के बाद उससे कहा जाता था कि या तो वह कर अदा करे अन्यथा अपनी पैतृक भूमि छोड़कर भूखों मरने के लिए तैयार रहे।³

इस प्रकार औपनिवेशिक शासन में कृषि-उत्पादन प्रक्रिया भारतीय किसान की आजीविका या स्थानीय आवश्यकताओं की पूर्ति के बजाय औपनिवेशिक राजस्व और साम्राज्यवादी आर्थिक हितों के अधीन हो गई थी।

भारतीय कृषि के व्यावसायीकरण की अवधारणा और ऐतिहासिक आधार

कृषि का व्यावसायीकरण उस प्रक्रिया को संदर्भित करता है जिसमें कृषि उत्पादन का प्राथमिक उद्देश्य स्थानीय उपभोग के बजाय बाजार में बिक्री, नकद आय और लाभार्जन बन जाता है। आर्थिक विकास के इतिहास में इस प्रक्रिया को सामान्यतः औद्योगीकरण और बाजार विस्तार से जोड़कर देखा जाता है किंतु औपनिवेशिक भारत में यह संक्रमण स्वाभाविक आर्थिक विकास का परिणाम नहीं था अपितु राज्य-प्रेरित आर्थिक पुनर्गठन था।

तीर्थकर रॉय के अनुसार, औपनिवेशिक भारत में कृषि का व्यावसायीकरण कृषि उत्पादों का वैश्विक वस्तु आपूर्ति शृंखलाओं के साथ एकीकरण (Integration of Peasant Production with Global Commodity Circuits) था जिसमें ग्रामीण कृषि उत्पादन को अंतर्राष्ट्रीय व्यापार, ऋण और मूल्य-व्यवस्था से जोड़ दिया गया।

1860 से 1920 के बीच भारत में कृषि योग्य भूमि में लगभग 50 प्रतिशत की वृद्धि दर्ज की गयी और इस विस्तार को व्यापार तथा कृषि के व्यावसायीकरण ने प्रोत्साहित किया। बढ़ती बाजार-माँग की पूर्ति फसल-क्षेत्र के विस्तार, लंबी दूरी के व्यापारिक नेटवर्कों तथा आधारभूत संरचना के विकास के माध्यम से सुनिश्चित की गई।⁴

अमिय कुमार बागची के अनुसार, औपनिवेशिक काल के उत्तरार्ध में भारतीय कृषि उत्पादन का एक बढ़ता हुआ हिस्सा स्थानीय उपभोग के लिए नहीं, बल्कि विदेशी व्यापार तथा उद्योगों के लिए कच्चे माल की आपूर्ति हेतु नियोजित होने लगा।⁵

ब्रिटिश कालीन कृषि-व्यावसायीकरण की पृष्ठभूमि में कई परस्पर संबंधित कारण थे। पहला कारण ब्रिटेन की औद्योगिक आवश्यकता थी। मैनचेस्टर और लंकाशायर के वस्त्र उद्योग को बड़ी मात्रा में कपास की आवश्यकता थी। तत्कालीन यूरोपीय वस्त्र उद्योग के लिए नील रंग की माँग भी बढ़ रही थी। इसके साथ ही चीन के साथ व्यापार संतुलन बनाए रखने के लिए अफीम उत्पादन रणनीतिक रूप से अत्यंत महत्वपूर्ण था।

दूसरा कारण तत्कालीन भारत में प्रचलित भूमि-राजस्व प्रणाली थी। स्थायी बंदोबस्त (1793), रैयतवाड़ी और महालवाड़ी व्यवस्थाओं ने किसानों को नकद राजस्व भुगतान के लिए बाध्य किया। नकद कर भुगतान ने किसानों को बाजार-निर्भर बना दिया। बी. एच. बैडेन पॉवेल (B. H. Baden-Powell) लिखते हैं कि ब्रिटिश कालीन भूमि-राजस्व व्यवस्था ने किसानों और भूमि के बीच पारंपरिक संबंधों को बदल दिया तथा कृषि को कर-आधारित बाजार प्रणाली में धकेल दिया।⁶

तीसरा कारण परिवहन और संचार अवसंरचना का विकास था जिसके परिणामस्वरूप औपनिवेशिक आर्थिक हितों के लिए भारतीय रेल मार्ग का विस्तार किया गया। इरफान हबीब लिखते हैं कि रेलवे, बंदरगाह और संचार नेटवर्क औपनिवेशिक निष्कर्षण तंत्र (Colonial Extraction Mechanism) का हिस्सा थे, न कि ग्रामीण पुनर्निर्माण कार्यक्रम का।

खाद्यान्न कृषि से नकदी कृषि की ओर संक्रमण

व्यावसायीकरण का सबसे प्रत्यक्ष प्रभाव फसल-पद्धति में परिवर्तन था। पश्चिम बंगाल में नील और जूट, महाराष्ट्र (तत्कालीन बॉम्बे प्रेसिडेंसी) में कपास, बिहार में अफीम, असम में चाय तथा उत्तर भारत में गन्ना उत्पादन में तीव्र वृद्धि हुई।

अमिय कुमार बागची बताते हैं कि 1860 से 1900 के बीच कई क्षेत्रों में खाद्यान्न फसलों की तुलना में नकदी फसलों के उत्पादन में अधिक तेजी से वृद्धि दर्ज की गयी।

जार्ज ब्लिन द्वारा दिए गए आँकड़े बताते हैं कि नकदी फसलों की कुल उपज और प्रति एकड़ उत्पादन में वृद्धि ने खेती के इस व्यावसायीकरण को और अधिक विस्तार प्रदान किया।

ब्रिटिश भारत (1891-1946) में औसत वृद्धि दर (प्रतिशत के अनुसार)

जनसंख्या	0.67%
कुल फसलों का क्षेत्रफल	0.40%
कुल फसलों का उत्पादन	0.37%
खाद्यान्नों का उत्पादन	0.11%
नकदी फसलों का उत्पादन	1.31%
खाद्यान्नों का प्रति एकड़ उत्पादन	0.18%
नकदी फसलों का प्रति एकड़ उत्पादन	0.86%

(स्रोत: ब्लिन, जॉर्ज-Agricultural Trends in India, 1891-1947: Output, Availability and Productivity, University of Pennsylvania Press, 1966, pp.150-160)

उपरोक्त आँकड़े स्पष्ट करते हैं कि ब्रिटिश शासन के दौरान कृषि का झुकाव खाद्यान्नों की तुलना में नकदी फसलों की ओर अधिक था जिससे कृषि उत्पादन की दिशा निर्यातानुमुख और वाणिज्यिक हो गयी।

अनुबंधित कृषि, नील और अफीम का शोषणकारी ढाँचा

कृषि व्यावसायीकरण मात्र बाजार विस्तार नहीं था बल्कि अनुबंधित नियंत्रण का तंत्र भी था। पश्चिम बंगाल और बिहार में किसानों को अग्रिम ऋण देकर नील उत्पादन के लिए बाध्य किया जाता था। उत्पादन जोखिम किसान का होता था किंतु मूल्य निर्धारण यूरोपीय एजेंटों के हाथ में होता था। नील आंदोलन इसी शोषण के विरुद्ध एक महत्वपूर्ण किसान आंदोलन था।

रामचंद्र गुहा का मानना है, किसान को उसके अपने विद्रोह का निर्माता स्वीकार करना उसमें एक चेतना को स्वीकार करना है, इसलिए 'विद्रोह' शब्द का प्रयोग उस चेतना के लिए किया गया है जो ग्रामीण जनसमूह की गतिविधियों को संचालित करती है।⁷

रजत कांता रे लिखते हैं, अफीम व्यापार ने भारत की अर्थव्यवस्था को न केवल चीन के साथ व्यापारिक संबंधों से जोड़ा, बल्कि वह ब्रिटिश साम्राज्य की राजकोषीय एवं वित्तीय संरचना का भी एक महत्वपूर्ण आधार बन गया।⁸

ऋणग्रस्तता, साहूकारी और भूमिहीनता

व्यावसायिक कृषि के विस्तार के साथ किसान मूल्य-उतार-चढ़ाव, ऋण और विपणन जोखिमों के अधीन हो गया। पूँजी के अभाव में छोटे कृषक महाजनों पर निर्भर हुए और ऋणग्रस्तता ने भूमि के हस्तांतरण तथा भूमिहीनता को बढ़ाया।⁹

बी. एच. बैडेन पावेल (B. H. Baden-Powell) के भूमि-अध्ययनों से स्पष्ट होता है कि कई प्रांतों में वास्तविक कृषक धीरे-धीरे भूमि से विस्थापित होते गये। इस प्रक्रिया ने भूमिहीन मजदूर वर्ग में विस्तार के साथ-साथ ग्रामीण अर्थव्यवस्था पर जनसंख्या की निर्भरता को भी बढ़ाया।

अकाल, खाद्य संकट और जनसांख्यिकीय प्रभाव

1870, 1880 और 1890 के दशकों के सूखे और अकालों में मरने वाले लाखों लोग वास्तविकता में खाद्यान्न की कमी के शिकार नहीं थे बल्कि उन साम्राज्यवादी बाजार शक्तियों के शिकार थे जिन्होंने भोजन को गरीबों से हटाकर अमीरों की ओर पुनर्वितरित किया।¹⁰

नकदी फसलों के विस्तार ने खाद्यान्न सुरक्षा को कमजोर किया। 1876 से 1878 के बीच पड़े भीषण अकाल तथा 1943 का भयावह बंगाल का अकाल औपनिवेशिक कृषि नीति की अमानवीय पहलू के प्रतीक हैं।

भुखमरी इस बात की द्योतक नहीं है कि समग्र रूप से भोजन पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध नहीं है बल्कि इस बात की द्योतक है कि कुछ लोगों के पास खाने के लिए पर्याप्त भोजन नहीं है।¹¹ अमर्त्य सेन ने इसे पात्रता विफलता (Entitlement Failure) कहा क्योंकि भोजन उपलब्ध होने के बावजूद लोगों की क्रय-क्षमता समाप्त हो गई थी।

सामाजिक संरचना और वर्गीय विभाजन

कृषि आधारित अर्थव्यवस्था उन विभिन्न समूहों के बीच संबंधों का एक जाल है जो भूमि से अपनी आजीविका प्राप्त करते हैं। व्यावसायीकरण ने ग्रामीण समाज को वर्गीय आधार पर पुनर्गठित किया जिससे बड़े भूमिधर, व्यापारी, निर्यात एजेंट और साहूकार लाभान्वित हुए जबकि छोटे किसान और खेतिहर मजदूर आर्थिक रूप से अधिक असुरक्षित हो गये। डेनिएल थॉर्नर (Daniel Thorner) इसे किसान भेदभाव (Peasant Differentiation) कहते हैं।¹²

ए. आर. देसाई के अनुसार, ब्रिटिश शासन ने ग्रामीण भारत में भूमि-संबंधों के नए रूप, शोषण के नए स्वरूप और नए सामाजिक वर्गों को जन्म दिया। औपनिवेशिक ग्रामीण अर्थव्यवस्था ने वर्गीय असमानता को संस्थागत रूप दिया।¹³

स्वतंत्र भारत के लिए सकारात्मक विरासत

यद्यपि औपनिवेशिक व्यावसायीकरण का मूल उद्देश्य शोषण था किंतु इस काल में विकसित कुछ संस्थागत संरचनाएँ स्वतंत्र भारत के लिए उपयोगी सिद्ध हुईं। रेलवे, बंदरगाह, गोदाम, निर्यात तंत्र, भूमि अभिलेख और क्षेत्रीय कृषि-विशेषीकरण ने कृषि विपणन के लिए आधार प्रदान किया।

तीर्थकर रॉय लिखते हैं कि औपनिवेशिक बाजार एकीकरण ने स्वतंत्र भारत में कृषि विपणन सुधारों के लिए आधार तैयार किया। स्वतंत्र भारत में योजना आयोग ने प्रथम पंचवर्षीय योजना में ग्रामीण विकास हेतु नीति निर्माण के लिए इन्हीं अवसंरचनात्मक आधारों का उपयोग किया।

स्वतंत्र भारत के लिए नकारात्मक विरासत

1947 में भारत कम उत्पादकता, भूमिहीनता, खाद्यान्न संकट, ऋणग्रस्तता और ग्रामीण गरीबी से जूझ रहा था। स्वतंत्र भारत के प्रथम प्रधानमंत्री पंडित जवाहर लाल नेहरू ने भूमि सुधार, सहकारी संस्थाओं के निर्माण एवं सिंचाई परियोजनाओं के क्रियान्वयन को राष्ट्रीय प्राथमिकता बनाया।¹⁴ हरित क्रांति औपनिवेशिक कृषि संरचना की कमियों को दूर करने का राष्ट्रीय स्तर पर किया गया एक महत्वपूर्ण प्रयास था। प्रसिद्ध कृषि वैज्ञानिक डॉ. एम. एस. स्वामीनाथन ने कृषि आत्मनिर्भरता को राष्ट्रीय संप्रभुता का आधार बताया।¹⁵

निष्कर्ष

ब्रिटिश शासन के दौरान कृषि का व्यावसायीकरण भारतीय कृषि इतिहास की सबसे निर्णायक प्रक्रियाओं में से एक था। यदि समग्रता में देखा जाए तो स्वतंत्र भारत को जो विरासत मिली, वह अवसरों से अधिक चुनौतियों से भरी थी। कृषि उत्पादन में क्षेत्रीय असमानता, किसानों की बाजार-निर्भरता, साहूकारी

संस्कृति, भूमिहीनता, खाद्यान्न-असुरक्षा और मूल्य-अस्थिरता जैसी समस्याएँ स्वतंत्रता के समय तक भारतीय कृषि अर्थव्यवस्था में गहराई तक बैठ चुकी थीं। इसलिए स्वतंत्र भारत की कृषि-नीति वस्तुतः औपनिवेशिक असंतुलन को संतुलित करने का एक ऐतिहासिक प्रयास तक सीमित रह गयी।

भूमि-सुधार कार्यक्रमों का उद्देश्य जमींदारी संरचना को समाप्त करना था जबकि सहकारी आंदोलन ग्रामीण ऋणग्रस्तता को कम करने के लिए शुरू किया गया। न्यूनतम समर्थन मूल्य (Minimum Support Price) की अवधारणा किसानों को बाजार जोखिम से सुरक्षा देने के लिए विकसित हुई। सार्वजनिक वितरण प्रणाली (Public Distribution System) खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए विकसित की गई जबकि हरित क्रांति ने खाद्यान्न आत्मनिर्भरता प्राप्त करने का मार्ग प्रशस्त किया।

यद्यपि ब्रिटिश शासन द्वारा कृषि का व्यावसायीकरण भारतीय कृषि को आधुनिक बाजार-अवसंरचना से जोड़ने वाली निर्णायक प्रक्रिया अवश्य था किंतु इसकी संरचना असंतुलित, शोषणकारी और सामाजिक रूप से विषम थी। इसने जहाँ एक ओर बाजार-अवसंरचना और कृषि-औद्योगिक संबंधों की नींव रखी, वहीं दूसरी ओर ऋणग्रस्तता, भूमिहीनता, खाद्य संकट, सामाजिक असमानता और क्षेत्रीय विषमता जैसी समस्याओं को संस्थागत रूप प्रदान किया। आधुनिक भारत की कृषि-नीति, किसान कल्याण योजनाएँ, समर्थन मूल्य तंत्र और खाद्य सुरक्षा कार्यक्रम वस्तुतः उसी औपनिवेशिक विरासत को सुधारने, संतुलित करने और अधिक न्यायपूर्ण बनाने का सतत ऐतिहासिक प्रयास हैं।

संदर्भ- ग्रंथ सूची

1. Habib, I. (1999): The Agrarian System of Mughal India, Oxford University Press (pp. 285-289)
2. चंद्र, विपन (2009): आधुनिक भारत का इतिहास, ओरिएंट ब्लैकस्वान, नई दिल्ली पृ. (104-108)
3. Dutt, R. C. (1902): The Economic History of India under Early British Rule, Kegan Paul (pp. 285-289)
4. रॉय, तीर्थकर (2020): द इकोनॉमिक हिस्ट्री ऑफ इंडिया, 1857-2010 (चतुर्थ संस्करण), ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस (पृ. 112-113)
5. बागची, अमिय कुमार (2010): औपनिवेशवाद और भारतीय अर्थव्यवस्था (हिंदी संस्करण), ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली (पृ. 148-149)
6. Baden-Powell, B. H. (1892): The Land Systems of British India (Vol. 2), Oxford Press (pp. 302-311)
7. Guha, R. (1983): Elementary Aspects of Peasant Insurgency in Colonial India, Oxford University Press (p. 4)
8. रे, रजत कांता (1992): भारत में उद्यमिता और उद्योग (1800-1947), हिंदी संस्करण, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली (पृ. 53-54)
9. सरकार, सुमित (2011): आधुनिक भारत (1885-1947), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली (पृ. 36-39)
10. Davis, M. (2001): Late Victorian holocausts, Verso (p. 31)
11. Sen, A. (1981): Poverty and Famines: An Essay on Entitlement and Deprivation Oxford University Press (p. 1)
12. Thorner, D. (1962): Land and Labour in India, Asia Publishing House (pp. 24-25)
13. देसाई, ए. आर. (2007): भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि ग्रंथ शिल्पी, नई दिल्ली (पृ. 312-316)
14. Nehru, J. (1958). Selected works of Jawaharlal Nehru (Vol. 39). Government of India. (p. 214)
15. Swaminathan, M. S. (2006). From green to evergreen revolution. Academic Foundation. (p. 67)